

अंक ३४

[उद्योगपर्व १]

# महाभारत।

( भाषा-भाष्य-समेत )

संपादक — श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.  
स्वाध्याय मंडल, औध ( जि. सातारा )

तैत्तिरीय है ।

- (१) आदिपर्व । पृष्ठ संख्या ११२५, मूल्य म. आ. से ६) रु.  
और वी. पी. से ७) रु.  
(२) सभापर्व । पृष्ठ संख्या १५६ मूल्य म. आ. से २)  
और वी. पी. से २॥ )  
(३) वनपर्व । पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य ८) रु.  
और वी. पी. से. ९) रु.  
(४) विराटपर्व । पृष्ठ संख्या ३०६ मू. म. आ. से १॥) और  
वी. पी. से २) रु.  
(५) महाभारत । समालोचना

१ प्रथम भाग मू. ॥) वी. पी. से ॥) आने । २ द्वितीय भाग मू. ॥) वी. पी. से ॥) आने ।

महाभारत के ग्राहकों के लिये १२०० पृष्ठों का ६) रु. मूल्य होगा ।

मंत्री — स्वाध्याय मंडल, औध, ( जि. सातारा )

१२ अंकों का मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) बिंदु के लिये ८)







श्री महर्षि व्यास प्रणीत

# महाभारत ।

( भाषाभाष्य समेत )

## उद्योग पर्व ।

भाषांतरकर्ता और प्रकाशक ।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मण्डल, औंध ( जिल्हा सातारा )

—:():—

संवत् १९८३

शके १८४८

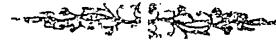
सन १९२६

## उन्नतिके साधन ।

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः ।  
समीक्ष्य च समारंभो विद्धि मूलं भवस्य तु ॥

महाभारत उद्योगपर्व ३९ । ३९

उदयके लिये प्रयत्न करना, इन्द्रियों को जीतना, दक्षता धारण करना, भूल न करना, धैर्य धारण करना, सारण रखना और उत्तम विचार कर कर्मोंको करना ये ही अशुदयके मुख्य साधन हैं ।







श्री महर्षिव्यासप्रणीतम् ।

# म हा भा र त म् ।

## उद्योगपर्व ।

सेनोद्योगपर्व ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीविदेव्यासाय नमः ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच-कृत्वा विवाहं तु कुरुप्रवरिरास्तदाऽभिमन्योर्मुदिताः स्वपक्षाः ।

विश्रम्य रात्रावुषसि प्रतीताः सभां विराटस्य ततोऽभिजग्मुः ॥ १ ॥

सभा तु सा मत्स्यपतेः समृद्धा मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा ।

न्यस्तासना माल्यवती सुगंधा तामभ्ययुस्ते नरराजवृद्धाः ॥ २ ॥

अथाऽऽसनान्याविशतां पुरस्तादुभौ विराटद्रूपदौ नरेंद्रौ ।

वृद्धौ च मान्यौ पृथिवीपतीनां पित्रा समं रामजनार्दनौ च ॥ ३ ॥

पांचालराजस्य समीपतस्तु शिनिप्रवीरः सहरौहिणेयः ।

उद्योगपर्वमें पहला अध्याय और

सेनोद्योगपर्व ।

नारायण नरोत्तम नर और सरस्वती देवी को प्रणाम करके जय कीर्तन करना उचित है । ( १ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! इस प्रकार कुरुकुल श्रेष्ठ पाण्डवोंने अपने सङ्ग्रियोंके सहित प्रमत्त हांकर अभिमन्युका विवाह किया, फिर रात्रिभर सुखसे अपने घरमें रहे और

प्रातःकाल जागृत होतेही राजा विराट की सभामें आये । वह राजा विराटकी सभा मणियोंसे खिची हुई, फूलोंकी मालाओंसे सुशोभित, आमनोंसे युक्त और सुगन्धित जलसे छिडकी थी । उसी सभामें सब राजोंमें श्रेष्ठ लोग आये । तब पहिले सब राजोंसे पूजित बूढ़े महाराज विराट और रूपद आसनोंपर बैठे । उनके पश्चात् वसुदेव सहित श्रीकृष्ण और बलराम बैठे । महाराज

मत्स्यस्य राज्ञस्तु सुसन्निकृष्टो जनार्दनश्चैव युधिष्ठिरश्च ॥ ४ ॥  
 सुताश्च सर्वे द्रुपदस्य राज्ञो भीमार्जुनौ माद्रवतीसुतौ च ।  
 प्रद्युम्नसंबौ च युधि प्रवीरौ विराटपुत्रैश्च सहाऽभिमन्युः ॥ ५ ॥  
 सर्वे च शूराः पितृभिः समाना वीर्येण रूपेण बलेन चैव ।  
 उपाविशन्द्रौपदेयाः कुमारः सुवर्णचित्रेषु वरासनेषु ॥ ६ ॥  
 ततोपविष्टेषु महारथेषु विराजमानाभरणांबरेषु ।  
 रराज सा राजवती समृद्धा ग्रहैरिव द्यौर्विभलैरुपेता ॥ ७ ॥  
 ततः कथास्ते समवाययुक्ताः कृत्वा विचित्राः पुरुषप्रवीराः ।  
 तस्थुर्मुहूर्त्तं परिचिन्तयन्तः कृष्णं नृपास्ते समुदीक्षमाणाः ॥ ८ ॥  
 कथांतमासाद्य च माधवेन संघट्टिताः पांडवकार्यहेतोः ।  
 ते राजसिंहाः सहिता ह्यशृण्वन्वाक्यं महार्थं सुमहोदयं च ॥ ९ ॥  
 श्रीकृष्ण उवाच-सर्वैर्भवद्भिर्विदितं यथाऽयं युधिष्ठिरः सौबलेनाऽक्षयत्याम् ।  
 जितो निकृत्याऽपहृतं च राज्यं वनप्रवासे समयः कृतश्च ॥ १० ॥

द्रुपदके पास कृतवर्मा और बलदेव बैठे,  
 तथा राजा विराटके पास महाराज  
 युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण बैठे । ( १-४ )

राजा द्रुपदके सब पुत्र, भीमसेन,  
 अर्जुन, नकुल, सहदेव, प्रद्युम्न, साम्ब,  
 अभिमन्यु और राजा विराटके महावीर  
 पुत्र ये सब एकस्थान पर बैठे । पाण्डवोंके  
 तुल्य रूपवान्, बलवान् और पराक्रमी  
 द्रौपदीके पांच महावीर पुत्र सोनेसे  
 चित्रित श्रेष्ठ सिंहासनो पर बैठे । जब  
 उत्तम वस्त्र और आभूषणधारी राजा  
 लोग अपने अपने योग्य आसनों पर बैठे  
 चुके, तब वह राजासे भरी सभा ऐसे  
 शोभित हुई जैसे निर्मल तारोंसे भरा  
 आकाश शोभित होता है । ( ५-७ )

सब पुरुषसिंह राजाोंने परस्पर कुशल

प्रश्न किया, फिर आनन्द की बात करके  
 मुहूर्तभर विचार करते हुए सब चुप  
 होगये, और श्रीकृष्णकी ओर देखने  
 लगे । कुशलादिकी बात होनेके पश्चात्  
 सबकी यह इच्छा हुई, कि हम सबको  
 श्रीकृष्णने पाण्डवोंके निमित्त यहां  
 बुलाया है, इस लिये सबसे पहले यही  
 कुछ कहें । पुरुषसिंह राजाओंकी इच्छाको  
 जानकर कृष्ण महान् अर्थसे भरे और  
 श्रेष्ठ फलसे युक्त कहने लगे । ( ८-९ )

श्रीकृष्ण बोले, हे राजसिंह ! आप  
 सब लोगोंको विदित है, कि सुबलपुत्र  
 छली शकुनीने कपटसे महाराज युधिष्ठिर  
 को किस प्रकार जुबमें जीता था ? किम  
 प्रकार इनका राज्य छीना है ? और  
 किस प्रकार वनमें रहनेकी प्रतिज्ञा भी

शक्तैर्विजेतुं तरसा महीं च सत्ये स्थितैः सत्यरथैर्यथावत् ।

पांडोः सुतैस्तद्रतमुग्ररूपं वर्षाणि षट् सप्त च चीर्णमग्न्यैः ॥ ११ ॥

त्रयोदशश्चैव सुदुस्तरोऽयमज्ञायमानैर्भवतां समीपे ।

क्लेशानसह्यान्विविधान्सहद्विर्महात्मभिश्चापि वने निविष्टम् ॥ १२ ॥

एतैः परप्रेष्यनियोगयुक्तैरिच्छद्विराप्तं स्वकुलेन राज्यम् ।

एवं गते धर्मसुतस्य राज्ञो दुर्योधनस्यापि च यद्वितं स्यात् ॥ १३ ॥

तच्चितयध्वं कुरुपुंगवानां धर्म्यं च युक्तं च यशस्करं च ।

अधर्मयुक्तं न च कामयेत राज्यं सुराणामपि धर्मराजः ॥ १४ ॥

धर्मार्थयुक्तं तु महीपतित्वं ग्रामेऽपि कस्मिंश्चिदयं बुभूषेत् ।

पित्र्यं हि राज्यं विदितं वृषाणां यथाऽपकृष्टं धृतराष्ट्रपुत्रैः ॥ १५ ॥

मिथ्योपचारेण यथा ह्यनेन कृच्छ्रं महत्प्राप्तमसह्यरूपम् ।

न चापि पार्थो विजितो रणे तैः स्वतेजसा धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः ॥ १६ ॥

तथाऽपि राजा सहितः सुहृद्विरभीप्सन्नेऽनामयमेव तेषाम् ।

करायी थी ? यद्यपि पाण्डवलोग अपने बलसे समस्त पृथ्वीको जीत सकते हैं, तथापि उन्होंने सत्यको ग्रहण करके मुनियोंका वेष धारण किया और तेरह वर्ष वनमें बिताये । आप लोग जानते हैं, कि इस तेरहवें वर्षमें राजा विराटके यहां छिप कर रहे हैं और इन महात्मा पाण्डवोंने वनमें कैसे कैसे न सहने योग्य दुःखोंको सहा है । ( ९-१२ )

यहभी निश्चय है कि, महाराज युधिष्ठिर अपने कुलके राज्यकी इच्छा करते हैं । परन्तु इसके लिये किसी दूसरेको दूत बनाना चाहते हैं; सो हमारी इच्छा यह है कि इस राज्य-प्राप्तिमें राजा दुर्योधनकी भी हानि न हो, साथही पुरुषसिंह पाण्डवोंका धर्म और यशभी

बढे, क्योंकि धर्मराज अधर्मसे इन्द्रके राज्यकी भी इच्छा नहीं करते, और धर्म और अर्थसे एक गांवका स्वामी होनाभी अच्छा समझते हैं । और यहभी आप लोगों पर विदित है, कि यह राज्य पाण्डवोंके पुरुषोंका है, उसको छलसे कौरवोंने छीन लिया है । ( १३-१५ )

आप लोग जानते हैं, कि धृतराष्ट्रके पुत्रने कभी किसी युद्धमें कुन्ती पुत्र अर्जुन को नहीं जीता, और यहभी प्रत्यक्ष ही है कि इन्होंने छलके वशमें होकर कैसे न सहने योग्य दुःख सहे हैं, तथापि महाराज युधिष्ठिर अपने मित्रोंके सहित धृतराष्ट्र पुत्रोंका कल्याणही चाहते हैं । महावीर पाण्डव लोग अपने उस धन और राज्यकी इच्छा करते हैं, जो



यत्तु स्वयं पांडुस्तुतैर्विजित्य समाहृतं भूमिपतीन्प्रपीड्य ॥ १७ ॥  
 तत्प्रार्थयंतं पुरुषप्रवीराः कुन्तीसुता माद्रवतीसुतौ च ।  
 बालास्त्रिवमे तैर्विविधैरुपायैः संप्रार्थिता हंतुममित्रमघैः ॥ १८ ॥  
 राज्यं जिहीर्षद्भिरसद्भिरुग्रैः सर्वं च तद्वो विदितं यथावत् ।  
 तेषां च लोभं प्रसमीक्ष्य वृद्धं धर्मज्ञतां चापि युधिष्ठिरस्य ॥ १९ ॥  
 संबन्धितां चापि समीक्ष्य तेषां मतिं कुरुध्वं सहिताः पृथक्च ।  
 इमे च सत्येऽभिरताः सदैव तं पालयित्वा समग्रं यथावत् ॥ २० ॥  
 अतोऽन्यथा तैरुपचर्यमाणा हन्युः समेतान्धृतराष्ट्रपुत्रान् ।  
 तैर्विप्रकारं च निशम्य कार्यं सुहृज्जनास्तान्परिवारयेयुः ॥ २१ ॥  
 युद्धेन बाधेयुरिमांस्तथैवं तैर्बाध्यमाना युधि तांश्च हन्युः ।  
 तथाऽपि नेमेऽल्पतया समर्थास्तेषां जघायेति भवेन्मतं वः ॥ २२ ॥  
 समेत्य सर्वे सहिताः सुहृद्भिस्तेषां विनाशाय यतेयुरेव ।  
 दुर्योधनस्याऽपि मतं यथावन्न ज्ञायते किं नु करिष्यतीति ॥ २३ ॥  
 अज्ञायमाने च मते परस्य किं स्यात्समारभ्यतमं मतं वः ।  
 तस्मादितो गच्छतु धर्मशीलः शुचिः कुलीनः पुरुषोऽप्रमत्तः ॥ २४ ॥

उन्होंने स्वयं राजोंको जीतकर उत्पन्न किया है। यह भी आप लोगोंको विदित है कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने इनके मारनेके लिये बालकपनमें कितने यत्न किये थे? वे लोग राज्य लेनेके लिये कितनी मूर्खता और दुष्टता करते हैं सो भी आप लोगोंसे छिपा नहीं है। (१६-१९)

महाराज युधिष्ठिरका धर्म और दुर्योधनके लोभके कहनेकी भी कुछ आवश्यकता नहीं है। महाराज युधिष्ठिर और दुर्योधनके सम्बन्धको भी आप लोग जानते ही हैं। इन सब बातोंको विचार कर जो कुछ करने योग्य काम हो उसको सब मिलकर वा अलग अलग सम्मति

कीजिये। ये पांचों अपनी प्रतिज्ञा पालन करके सत्यका पालन कर रहे हैं। नहीं तो आज तक सब धृतराष्ट्रपुत्रोंका नाश कर देते। यही धृतराष्ट्रपुत्रोंका अपकार विचारकर इनके सब मित्र इनकी सहायताको आये हैं। (१९-२१)

यद्यपि ये पांचोंही स्वयं युद्ध करेंगे या शत्रु इनके साथ युद्ध करेंगे तथापि ये अपने शत्रुओंके मारनेमें समर्थ हैं, तथापि आप लोग इनको जय प्राप्तिके लिये निर्वल समझते होंगे। आप सब मिलकर इनके शत्रुओंके नाशके लिये यत्न करेंगे ही परंतु इस विषयमें दुर्योधनका मत ज्ञात न होनेसे आगेके कार्यका निश्चय होना ही कठिन

दूतः समर्थः प्रशमाय तेषां राज्यार्थदानाय युधिष्ठिरस्य ।

निशम्य वाक्यं तु जनार्दनस्य धर्मार्थयुक्तं मधुरं समं च ॥ २५ ॥

समाददे वाक्यमथाऽग्रजोऽस्य संपूज्य वाक्यं तदतीव राजन् ॥ २६ ॥ [२६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि

सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितयाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

बलदेव उवाच—श्रुतं भवद्भिर्गदपूर्वजस्य वाक्यं यथा धर्मवदर्थवच्च ।

अजातशत्रोश्च हितं हितं च दुर्योधनस्यापि तथैव राज्ञः ॥ १ ॥

अर्थं हि राज्यस्य विस्तृत्य वीराः कुंतीसुतास्तस्य कृते यतन्ते ।

प्रादाय चाऽर्थं धृतराष्ट्रपुत्रः सुखी सहाऽस्माभिरतीव मोदेत् ॥ २ ॥

लब्ध्वा हि राज्यं पुरुषप्रवीराः सम्यक्प्रवृत्तेषु परेषु चैव ।

ध्रुवं प्रशान्ताः सुखमाविशेयुस्तेषां प्रशान्तिश्च हितं प्रजानाम् ॥ ३ ॥

दुर्योधनस्यापि स्मृतं च वेत्तुं वक्तुं च वाक्यानि युधिष्ठिरस्य ।

प्रियं च मे स्याद्यदि तत्र कश्चिद्भूजेच्छमार्थं कुरुपांडवानाम् ॥ ४ ॥

स भीष्ममामंथ्य कुरुप्रवीरं वैचित्रवीर्यं च महानुभावम् ।

हैं, इस लिये हमारी संसति में एक पवित्र धर्मात्मा, कुलीन, पाण्डित पुरुष दूत होकर दुर्योधनके पास जाय । वहां जाकर वह शान्ति पूर्वक युधिष्ठिरका राज्य मांगे । ( २२-२५ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! श्रीकृष्णके धर्म और अर्थसे भरे सीठे वचन सुन कृष्णके वचनोंकी प्रशंसा करके श्रीबलदेवजी बोले । ( २५-२६ ) [२६]

उद्योगपर्वमें पहला अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें दूसरा अध्याय ।

श्रीबलदेवजी बोले, आप लोगोंने कृष्णके वचन सुने, ये वचन धर्म और अर्थसे भरे तथा महाराज युधिष्ठिर और राजा दुर्योधन दोनोंहीको सुख देनेवाले

हैं । महाराज युधिष्ठिरने पहले ही दुर्योधनको आधा राज्य बांट दिया था, उसीको अब फिर चाहते हैं । आधा राज्य देकर राजा दुर्योधन इन लोगोंके संग सुखसे रहें, और शत्रुओंकी अच्छी प्रवृत्तिसे पुरुषवीर पाण्डव लोग भी आधा राज्य पाकर शान्ति पूर्वक प्रजाको सुख दें । ( १-३ )

मुझको भी यह अभीष्ट है, कि राजा दुर्योधनकी सम्मतिको जाननेके लिये और महाराज युधिष्ठिरके वचन कहनेके लिये एक दूत शान्ति करनेको हस्तिनापुर जाय ! वह दूत कुरुकुल श्रेष्ठ महानुभाव भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, विदुर, कृपाचार्य, शकुनि

द्रोणं सपुत्रं विदुरं कृपं च गांधारराजं च ससूतपुत्रम् ॥ ५ ॥  
 सर्वे च येऽन्ये धृतराष्ट्रपुत्रा बलप्रधाना निगमप्रधानाः ।  
 स्थिताश्च भर्मेषु तथा स्वकेषु लोकप्रवीराः श्रुतकालवृद्धाः ॥ ६ ॥  
 एतेषु सर्वेषु समागतेषु पौरैषु वृद्धेषु च संगतेषु ।  
 ब्रवीतु वाक्यं प्रणिपानयुक्तं कुन्तीसुतस्याऽर्थकरं यथा स्यात् ॥ ७ ॥  
 सर्वास्ववस्थासु च ते न कोप्या ग्रस्तो हि सोऽर्थो बलमाश्रितैस्तैः ।  
 प्रियाभ्युपेतस्य युधिष्ठिरस्य वृत्ते प्रसक्तस्य हृतं च राज्यम् ॥ ८ ॥  
 निवार्यमाणश्च कुरुप्रवीरः सर्वैः सुहृद्भिर्ह्ययमप्यतज्ज्ञः ।  
 स दीव्यमानः प्रतिदीव्य चैनं गांधारराजस्य सुतं मताक्षम् ॥ ९ ॥  
 हित्वा हि कर्णं च सुयोधनं च सभाह्वयदेवितुमाजभीढः ।  
 दुरोदरास्तत्र सहस्रशोऽन्ये युधिष्ठिरो यान्विषहेत जेतुम् ॥ १० ॥  
 उत्सृज्य तान्सौबलमेव चाऽयं सभाह्वयत्तेन जितोऽक्षवत्याम् ।  
 स दीव्यमानः प्रतिदेवनेन अक्षेषु नित्यं तु पराङ्मुखेषु ॥ ११ ॥  
 संरंभमाणो विजितः प्रसह्य तत्राऽपराधः शकुनेन काश्चित् ।

और कर्ण आदि प्रधान, सेनापति और धृतराष्ट्रके पुत्र आदि वीर धर्मात्मा बुद्धिमान, बूढ़े, नगर निवासियोंके बीचमें महाराज युधिष्ठिरके वचन सुनावे; परन्तु वे वचन ऐसे होने चाहिये जिसमें युधिष्ठिरका कल्याण हो । ( ४—७ )

दूत कहै कि, “ आप लोग किसी अवस्थामें भी पाण्डवोंको कोधित मत कीजिये, क्योंकि वे वनवास रूपी प्रतिज्ञासे पार हो गये और अब बहुत बलवान भी हो गये हैं, आप लोगोंने प्रियसाधनके लिये प्राप्त हुए राजा युधिष्ठिरका राज्य जुवेमें लीना है, सो भी छलसे; क्योंकि कुरुकुल वीर युधिष्ठिरको सब भिवोंने जुवा खेलनेसे रोका था,

तथापि उन्होंने जुवा खेला; वे जुवेकी विद्याको भी नहीं जानते थे और शकुनि जुवेमें प्रविण था, उसने छलसे इनको जीत लिया । ( ६—९ )

राजा धृतराष्ट्रने कर्ण और दुर्योधनको छोडकर युधिष्ठिरको जुवा खेलनेको बुलाया था, परन्तु सभामें सहस्रों अधर्मी इकट्ठे कर लिये थे। उन सबको महाराज युधिष्ठिर अपने बलसे जीत सकते थे, परन्तु उन सबको छोडकर इन्होंने शकुनि हीसे जुवा खेला। उसने इनको जीत लिया। वह सदा जुवा खेलता रहता है, और ये सदा जुवेसे विमुख रहते हैं। यह जुवा हठसे हुआ था, इस लिये शकुनिका कुछ अपराध नहीं है । ( १०—१२ )



तस्मात्प्रणम्यैव वचो ब्रवीतु वैचित्रवीर्यं बहु सामयुक्तम् ॥ १२ ॥

तथा हि शक्यो धृतराष्ट्रपुत्रः स्वार्थे नियोक्तुं पुरुषेण तेन ।

अयुद्धमाकांक्षत कौरवाणां साम्रैव दुर्योधनमाह्वयध्वम् ॥ १३ ॥

साम्राजितोऽर्थोऽर्थकरो भवेत् युद्धेऽनयो भविता नेह सोऽर्थः ॥ १४ ॥

वैशंपायन उवाच—एवं ब्रुवत्येव मधुप्रवीरे शिनिप्रवीरः सहस्रोत्पपात ।

तच्चापि वाक्यं परिनिच्य तस्य समाददे वाक्यमिदं समन्युः ॥ १५ ॥ [४१]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिकयामुद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि बलदेववाक्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सात्यकिरुवाच— यादृशः पुरुषस्याऽऽत्मा तादृशं संप्रभाषते ।

यथारूपोऽन्तरात्मा ते तथारूपं प्रभाषसे ॥ १ ॥

सन्ति वै पुरुषाः शूराः सन्ति कापुरुषास्तथा ।

उभावेतौ दृढौ पक्षौ दृश्येते पुरुषान्प्रति ॥ २ ॥

एकस्मिन्नेव जायेते कुले क्लीबमहाबलौ ।

फलाफलवती शाखे यथैकस्मिन्वनस्पतौ ॥ ३ ॥

नाऽभ्यसूयामि ते वाक्यं ब्रुवतो लांगलध्वज ।

दूत राजा धृतराष्ट्रको प्रणाम करके  
ऐसेही ऐसे शान्ति भरे वचन कहे ।  
ऐसा करनेहीसे दुर्योधन दूतके वचनोंको  
मानेगा । आप लोग पाण्डव और कौरवों  
में युद्ध करानेका यत्न मत कीजिये,  
शान्तिहीसे दुर्योधनको प्रसन्नकर लीजि-  
ये । शान्तिसे जो काम होता है, सो  
उत्तम है, युद्धमें अन्याय होजाता है,  
इस लिये युद्ध अच्छा नहीं । (१२-१४)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, यदुकुलवीर  
श्रीबलदेवजीके ऐसे वचन सुन सात्यकी  
क्रोधमें भरके खड़े हुए, और श्रीबलदेव-  
जीके वचनोंका खण्डन करके इस प्रकार  
कहने लगे । ( १५ ) [ ४१ ]

उद्योगपर्वमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें तीसरा अध्याय ।

सात्यकी बोले, हे बलदेव ! पुरुष  
अपने आत्माके अनुसारही वचन कहता  
है, अर्थात् पुरुषकी जैसी आत्मा है,  
वैसेही वचन उसके मुखसे निकलते हैं ।  
आपकी जैसी आत्मा है, वैसेही आपने  
वचनभी कहे । जगतमें वीर और कायर  
दोनों ही होते हैं, और पक्षभी दोनोंही  
का प्रबल दीखता है । एकही कुलमें  
वीर और कायर दोनों उत्पन्न होते हैं,  
जैसे एकही वृक्षकी दो डालियां होती  
हैं, एक पर फल लगता है, दूसरीपर  
नहीं लगता । ( १—३ )

हे बलभद्र ! “ इस कर्ममें शकुनिका  
कुछ अपराध नहीं ” इत्यादि आपके

ये तु शृण्वन्ति ते वाक्यं तानसूयासि साधव ॥ ४ ॥

कथं हि धर्मराजस्य दोषमनपमपि ब्रुवन् ।

लभते परिषन्मध्ये व्याहृतुमकुतोभयः ॥ ५ ॥

समाहूय महात्मानं जितवन्तोऽक्षकोविदाः ।

अनक्षजं यथाश्रद्धं तेषु धर्मजयः कुतः ॥

यदि कुंतीसुतं रोहेः कीदृशं भ्रातृभिः सह ॥ ६ ॥

अभिगम्य जयेयुस्ते तत्तेषां धर्मतो भवेत् ।

समाहूय तु राजानं शत्रुधर्मरत्नं सदा ॥ ७ ॥

निकृत्या जितवन्तस्ते किं न तेषां परं शुभम् ।

कथं प्रणिपतेच्चाऽयमिह कृत्वा पणं परम् ॥ ८ ॥

वनवासाद्विमुक्तस्तु प्रातः पैतामहं पश्य ।

यद्ययं पापवित्तानि काश्यपेन युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

एवमप्ययमत्यन्तं पराक्षाऽर्हति याचितुम् ।

कथं च धर्मयुक्तास्ते न च राज्यं जिहीर्षवः ॥ १० ॥

निवृत्तवासान्कौन्तेयान्य आहुर्विदिता इति ।

अनुनीता हि भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ॥ ११ ॥

इस वचनकी मैं निन्दा नहीं करता, परन्तु जिन्होंने इन वचनोंको सुनकर क्षमा करी उन्होंनेकी निन्दा करता हूँ । धर्मराजको थोड़ा दोष लगा करभी आप किस प्रकार निर्भय होकर सभामें प्रतिष्ठा चाहते हैं ? जुवेकी विद्या न जानने वाले महात्मा धर्मराजको बुलाकर जुवेके जानने वाले शकुनिने अधर्मसे जीत लिया, क्या आप इसीको धर्म समझते हैं ? ( ४-६ )

यदि भाइयोंके सहित घरमें बैठे महाराज युधिष्ठिरको कोई जीत लेता तबतो धर्म होता। अत्रियोंके धर्मको मानने

वाले युधिष्ठिरको घरमें बुलाकर अधर्मसे जीत लिया, इसे धर्म कौन कह सकता है ? इतने परभी धर्मराज युधिष्ठिर क्यों विनयसे राज्य मांगेगे । ( ६-८ )

वनवासमें छूटकर युधिष्ठिर अपने पिताके राज्यके अधिकारी हो चुके, तथापि ये पापके धनको लेनेकी इच्छा नहीं करते, ये कदापि दुर्योधनसे राज्य नहीं मांग सकेंगे । वे लोग कैसे धर्मात्मा हैं ? उनका धर्मतो इसीसे प्रकट है, कि वनवासका समय बीतने परभी युधिष्ठिरको राज्य नहीं देते, और द्रोणाचार्य, भीष्म और विदुरने पाण्डवोंने प्रतिज्ञा पूर्ण की

न व्यवस्यन्ति पांडूनां प्रदातुं पैतृकं वलु ।  
 अहं तु ताञ्छितैर्बाणैर्नुनीय रणे बलात् ॥ १२ ॥  
 पादयोः पातयिष्यामि कौतेयस्य महात्मनः ।  
 अथ ते न व्यवस्यन्ति प्रणिपाताय धीमतः ॥ १३ ॥  
 गमिष्यन्ति सहायात्या यमस्य सदनं प्रति ।  
 नहि ते युयुधानस्य संरब्धस्य युयुत्सतः ॥ १४ ॥  
 वेगं समर्थाः संसोढुं वज्रस्येव महीधराः ।  
 को हि गांडीवधन्वानं कश्च चक्रायुधं युधि ॥  
 मां चापि विषहेत्कुदं कश्च भीमं दुरासदम् ॥ १५ ॥  
 यमौ च दृढधन्वानौ यमकालोपमव्यूती ।  
 विराटद्रुपदौ वीरौ यमकालोपमव्यूती ॥ १६ ॥  
 को जिजीविषुरासादेष्टुष्टवृद्धं च पार्षतम् ।  
 पंचैतान्पांडवेयांस्तु द्रौपद्याः कीर्तिवर्धनान् ॥ १७ ॥  
 समप्रमाणान्पांडूनां समवर्ध्यान्मदोत्कटान् ।  
 सौभद्रं च महेष्वासममरैरपि दुःसहम् ॥ १८ ॥  
 गदप्रवृद्धसांवांश्च कालसूर्यानलोपमान् ।

है ' ऐसे कहने परभी कहते हैं कि पाण्डव लोग अज्ञात वास पूर्ण होनेके पूर्वही प्रगट हुए हैं । मला वे अबभी पाण्डवोंके पिताके धन क्यों नहीं देते ? हम प्रतिज्ञा करते हैं कि उनको अपने तेज बाणोंसे जीत कर महात्मा युधिष्ठिर के पैरों पर गिरा देंगे । ( ९—१३ )

यदि वे लोग महात्मा युधिष्ठिरको प्रणाम न करेंगे तो अवश्यही मन्त्रियोंके सहित यमराजका दर्शन करेंगे । क्या उनकी यह शक्ति है, कि युद्ध करते हुए सात्यकिके बाणोंको सह सकें ? हमें निश्चय है कि हमारे बाणोंसे वे

लोग नष्ट हो जायेंगे जैसे वज्रसे पर्वत नष्ट होते हैं । कौन ऐसा वीर है, जो अर्जुन, कृष्ण, सात्यकी, बलवान भीम, महा धनुषधारी यमराज और कालके समान क्रोधी दृढधनुवाले नकुल सहदेव विराट और महाराज द्रुपदको देख सकें । ( १३—१६ )

कौन ऐसा बलवान है जो युद्ध में पराक्रमी धृष्टद्युम्नसे जीता बच जाय ? कौन वीर पाण्डवोंके तुल्य पराक्रमी द्रौपदी पुत्र, देवताओं की जीतनेवाले सुभद्रापुत्र अभिमन्यु, काल सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी साम्ब गद और



ते वयं धृतराष्ट्रस्य पुत्रं शकुनिना सह ॥ १९ ॥  
 कर्णं चैव निहत्याऽऽजावभिषेक्ष्याम पांडवम् ।  
 नाऽधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून्हत्वाऽऽततायिनः ॥ २० ॥  
 अधर्म्यमयशस्यं च शात्रवाणां प्रयाचनम् ।  
 हृद्गतस्तस्य यः कामस्तं कुरुध्वमतंद्रिताः ॥ २१ ॥  
 निश्चष्टं धृतराष्ट्रेण राज्यं प्राप्नोतु पांडवः ।  
 अद्य पांडुसुतो राज्यं लभतां वा युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥  
 निहता वा रणे सर्वे स्वप्स्यन्ति वसुधातले ॥ २३ ॥ [ ६४ ]  
 इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि  
 सेनोद्योगपर्वणि सात्यकिर्क्रोधवाक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

द्रुपद उवाच— एवमेतन्महाबाहो भविष्यति न संशयः ।  
 न हि दुर्योधनो राज्यं मधुरेण प्रदास्यति ॥ १ ॥  
 अनुवत्स्यति तं चापि धृतराष्ट्रः सुतप्रियः ।  
 भीष्मद्रोणौ च कार्पण्यान्भौरुर्याद्राधेयसौबलौ ॥ २ ॥  
 बलदेवस्य वाक्यं तु मम ज्ञाने न युज्यते ।  
 एतद्धि पुरुषेणाऽग्रे कार्यं सुनयमिच्छता ॥ ३ ॥

प्रचुम्नसे युद्ध कर सकता है ? सो हम-  
 सब लोग धृतराष्ट्रपुत्रके सहित शकुनि  
 और कर्णको मारकर युधिष्ठिरको राज्य  
 देंगे । ( १७—२० )

दुष्ट शत्रुओंके मारनेमें कुछ अधर्म नहीं  
 है, परन्तु शत्रुसे भीख मांगना अधर्म  
 और अयशको बढ़ाता है। अब आप लोग  
 आलस्यको छोड़कर युधिष्ठिरके कल्याण  
 का यत्न कीजिये। धृतराष्ट्रको युधि-  
 स्थिरको राजा बनानाही होगा। आज  
 युधिष्ठिर राजा होंगे, अथवा सब दुर्योधन-  
 दिक मरके पृथ्वीमें गिरेंगे । ( २०—२३ )

उद्योगपर्वमें तीसरा अध्याय समाप्त । [ ६४ ]

उद्योगपर्वमें चार अध्याय ।

महाराज द्रुपद बोले, हे महाबाहो !  
 तुमने जो कुछ कहा सो सब ऐसे ही  
 होगा; क्योंकि दुर्योधन शांतिसे राज्य  
 नहीं देगा । ( १ )

राजा धृतराष्ट्र पुत्रके प्रेमसे, भीष्म  
 और द्रोणाचार्य उनका अन्न खानेके  
 कारण दीन होनेसे, तथा शकुनि  
 और कर्ण मूर्खतासे दुर्योधनके संगी  
 होंगे। यद्यपि पहले शान्ति चाहने वा-  
 ले; पुरुषको श्रीबलदेवजीके कहनेके  
 अनुसार ही चलना चाहिये; तथापि  
 उनके वचन मुझे अच्छे नहीं लगते,

न तु वाच्यो मृदु वचो धार्तराष्ट्रः कथंचन ।  
 न हि मारुवसाध्योऽसौ पापबुद्धिर्मनो मम ॥ ४ ॥  
 गर्दभे मारुवं कुर्याद्गोषु तीक्ष्णं समाचरेत् ।  
 मृदु दुर्योधने वाक्यं यो ब्रूयात्पापचेतसि ॥ ५ ॥  
 मृदुं वै मन्यते पापो आषमाणमशक्तिकम् ।  
 जितमर्थं विजानीयादबुधो मारुवे सति ॥ ६ ॥  
 एतच्चैव करिष्यामो यत्नश्च क्रियतामिह ।  
 प्रस्थापयाम मित्रेभ्यो बलान्युद्योजयंतु नः ॥ ७ ॥  
 शल्यस्य धृष्टकेतोश्च जयत्सेनस्य वा विभो ।  
 केकयानां च सर्वेषां दूता गच्छंतु शीघ्रगाः ॥ ८ ॥  
 स च दुर्योधनो नूनं प्रेषयिष्यति सर्वशः ।  
 पूर्वाभिपन्नाः संतश्च भजन्ते पूर्वचोदनम् ॥ ९ ॥  
 तत्त्वरध्वं नरेन्द्राणां पूर्वमेव प्रचोदने ।  
 महद्भि कार्यं बोधयामिति मे वर्त्तते मतिः ॥ १० ॥  
 शल्यस्य प्रेष्यतां शीघ्रं ये च तस्याऽनुगा नृपाः ।  
 भगदत्ताय राज्ञे च पूर्वसागरवासिने ॥ ११ ॥

क्योंकि दुर्योधन मीठे वचन कहनेके योग्य नहीं है वह महापापी और दुष्ट बुद्धि मारुवसे साध्य नहीं है । (१-४)

जो पापी दुर्योधनसे मीठे वचन कहे उसकी वैसीही भूल है, जैसे गधेकी रक्षा और गऊकी हत्या करनेवालेकी । वह दुष्ट मीठे वचन सुनकर हमारे पक्षको दुर्बल समझेगा । मूर्ख लोग कोमलतासे शत्रुको अपने वशमें समझ लेते हैं । हम तुम्हारे कहनेके अनुसारही करेंगे, इस विषय में यत्न करना चाहिये । अब हम अपने मित्रोंको बुलानेके लिये दूत भेज कर उनको अपनी सेनाको तैयार रखने

के लिये कहते हैं । (५-७)

शीघ्र चलनेवाले दूत इसी समय हमारी आज्ञासे शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन और केकय देशके राजोंके पास जायं, क्योंकि निःसंदेह दुर्योधनभी सब राजोंके पास अपने दूत भेजेगा, और लोग पहली बातको मानेंगे, इस लिये शीघ्रही राजोंके पास दूत भेजने चाहिये क्योंकि बड़ा भारी काम करना है । (८-१०)

राजा शल्यके पास पहले दूत जायं । वे अपने सङ्गी राजोंके सहित युद्ध करने को आवें । पूर्व समुद्र निवासी भगदत्त, अमितौजा, हार्दिक्य, उग्र, अन्धक

अमितौजसे तथोग्राय हार्दिकयाथाऽधकाय च ।  
 दीर्घप्रज्ञाय शूराय रोचमानाय वा विभो ॥ १२ ॥  
 आनीयतां बृहन्तश्च सेनाविन्दुश्च पार्थिवः ।  
 सेनजित्प्रतिविन्ध्यश्च चित्रवर्मा सुवास्तुकः ॥ १३ ॥  
 बाल्हीको मुञ्जकेशश्च चैद्याधिपतिरेव च ।  
 सुपार्श्वश्च सुबाहुश्च पौरवश्च महारथः ॥ १४ ॥  
 शकानां पल्लवानां च दरदानां च ये नृपाः ।  
 सुरारिश्च नदीजश्च कर्णवेष्टश्च पार्थिवः ॥ १५ ॥  
 नीलश्च वीरधर्मा च भूमिपालश्च वीर्यवान् ।  
 दुर्जयो दन्तवक्रश्च रुक्मी च जनमेजयः ॥ १६ ॥  
 आषाढो वायुवेगश्च पूर्वपाली च पार्थिवः  
 भूरितेजा देवकश्च एकलव्यः सहाऽऽत्मजैः ॥ १७ ॥  
 कारुषकाश्च राजानः क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान् ।  
 कांबोजा ऋषिका ये च पश्चिमानूपकाश्च ये ॥ १८ ॥  
 जयत्सेनश्च काश्यश्च तथा पञ्चनदा नृपाः ।  
 काथपुत्रश्च दुर्धर्षः पार्वतीयाश्च ये नृपाः ॥ १९ ॥  
 जानकिश्च सुशर्मा च मणिमान्योऽतिमत्सकः ।  
 पांशुराष्ट्राधिपश्चैव धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ॥ २० ॥  
 तुंडश्च दंडधारश्च बृहत्सेनश्च वीर्यवान् ।  
 अपराजितो निषादश्च श्रेणिमान्वसुमानपि ॥ २१ ॥  
 बृहद्वलो महौजाश्च बाहुः परपुरंजयः ।

दीर्घप्रज्ञ, शूर, रोचमान, बृहन्त, सेना-  
 विन्दु, सेनजित, प्रतिविन्ध्य, चित्रवर्मा,  
 सुवास्तुक, बाल्हीक, मुञ्जकेश, चैद्याधि-  
 पाति, सुपार्श्व, सुबाहु, महारथ पौरव,  
 शक, पल्लव, दरद, सुरारि, नदीज,  
 कर्णवेष्ट, नील, वीरधर्मा, महाबलवान्  
 महायोद्धा दन्तवक्र, रुक्मी, जनमेजय,  
 आषाढ, वायुवेग, पूर्वपाली, भूरितेजा

देवक, पुत्रोंके सहित एकलव्य, कारुषक  
 देशके राजा, बलवान् क्षेमधूर्ति, कांबोज,  
 ऋषिक, और द्वीपोंके राजा, जयत्सेन  
 काशिराज, पञ्जावके सब राजा, काथपुत्र  
 दुर्धर्ष, सब पर्वतोंके राजा, जानकी,  
 सुशर्मा, मणिमान्य, अतिमत्स्यक, पांशु-  
 देशके राजा, बलवान् धृष्टकेतु, तुंड,  
 दण्डधार, बलवान् बृहत्सेन, अपराजित,

समुद्रसेनो राजा च सह पुत्रेण वीर्यवान् ॥ २२ ॥

उद्भवः क्षेमकश्चैव वाटधानश्च पार्थिवः ।

श्रुतायुश्च दृढायुश्च शाल्वपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ २३ ॥

कुमारश्च कलिगानामीश्वरो युद्धदुर्मदः ।

एतेषां प्रेष्यतां शीघ्रमेतद्वि मम रोचते ॥ २४ ॥

अयं च ब्राह्मणो विद्वान्मम राजन्पुरोहितः ।

प्रेष्यतां धृतराष्ट्राय वाक्यमस्मै प्रदीयताम् ॥ २५ ॥

यथा दुर्योधनो वाच्यो यथा शान्तिनवो नृपः ।

धृतराष्ट्रो यथा वाच्यो द्रोणश्च रथिनां वरः ॥ २६ ॥ [ ९० ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि

सेनोद्योगपर्वणि द्रुपदवाक्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वासुदेव उवाच— उपपन्नमिदं वाक्यं सोमकानां धुरंधरे ।

अर्थसिद्धिकरं राज्ञः पाण्डवस्याऽभितौजसः ॥ १ ॥

एतच्च पूर्वं कार्यं नः सुनीतमभिकांक्षताम् ।

अन्यथा ह्याचरन्कर्म पुरुषः स्यात्सुबालिशः ॥ २ ॥

किं तु संबंधकं तुल्यमस्माकं कुरुपाण्डुषु ।

यथेष्टं वर्त्तमानेषु पाण्डवेषु च तेषु च ॥ ३ ॥

निषाद, श्रेणिमान, वसुमान, बृहद्बल, बाहु, महौजा, परपुरञ्जय, बलवान पुत्रों के सहित राजा समुद्रसेन, उद्भव, क्षेमक, राजा वाटधान, श्रुतायु, दृढायु, बलवान् शाल्व पुत्र, और महायोद्धा कलिग देशके राजाके पास हमारे दूत जायं, और हमारा बुद्धिमान पुरोहित धृतराष्ट्रके पास जायं जो कुछ दुर्योधन, भीष्म, धृतराष्ट्र और महारथ द्रोणाचार्यसे कहना हो, सो उनसे कह दिया जाय । ये बहुत बुद्धिमान और पण्डित हैं । (११-२६)

उद्योगपर्वमें चार अध्याय समाप्त । ( ९० )

उद्योगपर्वमें पांच अध्याय ।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज सोमकोंमें श्रेष्ठ द्रुपदने जो कुछ कहा वह सब बहुत उचित है, ऐसाही करनेसे महा तेजस्वी युधिष्ठिरके कार्य सिद्ध होंगे । शान्तिकी इच्छा करनेवाले हम लोगोंको पहले ऐसाही करना चाहिये, नहीं तो हम लोग सूर्यके समान बैठेही रह जायेंगे । परन्तु हम लोगोंका दुर्योधन और पाण्डवोंसे समानही सम्बन्ध है, इस लिये हम लोग किसीकी ओर होकर कोई काम नहीं कर सकते । ( १—३ )

ते विवाहार्थमानीता वयं सर्वे तथा भवान् ।  
 कृते विवाहे मुदिता गमिष्यामो गृहान्प्रति ॥ ४ ॥  
 भवान्वृद्धतमो राज्ञां वयसा च श्रुतेन च ।  
 शिष्यवत्ते वयं सर्वे भवामेह न संशयः ॥ ५ ॥  
 भवंतं धृतराष्ट्रश्च सततं बहु मन्यते ।  
 आचार्ययोः सखा चाऽसि द्रोणस्य च कृपस्य च ॥ ६ ॥  
 स भवान्प्रेषयत्वद्य पाण्डुवार्थकरं वचः ।  
 सर्वेषां निश्चितं तन्नः प्रेषयिष्यति यद्ववान् ॥ ७ ॥  
 यदि तावच्छमं कुर्यान्न्यायेन कुरुपुंगवः ।  
 न भवेत्कुरुपाण्डूनां सौभ्रात्रेण महान्क्षयः ॥ ८ ॥  
 अथ दर्पान्वितो मोहान्न कुर्याद्धृतराष्ट्रजः ।  
 अन्येषां प्रेषयित्वा च पश्चादस्मान्समाह्वयेः ॥ ९ ॥  
 ततो दुर्योधनो मंदः सहामात्यः सर्वांधवः ।  
 निष्ठामापत्स्यते मूढः क्रुद्धे गाण्डीवधन्वनि ॥ १० ॥  
 वैशम्पायन उवाच-ततः सत्कृत्य बाष्पेयं विराटः पृथिवीपतिः ।  
 गृहात्प्रस्थापयामास सगणं सहबांधवम् ॥ ११ ॥

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है कि हम सब लोग अभिमन्यु के विवाहके नेवतेमें यहाँ आये हैं, तब विवाह बीत गया अब यहाँ रहनेका क्या काम है? अब प्रसन्न होकर हम लोग बिदा होते हैं, परन्तु आप हम सब लोगोंमें बूढ़े हैं, और पण्डितभी हैं, इस लिये हम सब लोग आपके शिष्योंके समान हैं; और महाराज धृतराष्ट्र आपको बहुत मानते हैं। इसके अतिरिक्त आप कृपा-चार्य और द्रोणाचार्यके मित्र भी हैं। इस लिये आपही अपनी ओरसे पाण्डवोंकी सिद्धि के लिये एक दूत भेजिये। आप

जो कुछ कह देंगे, सोई हम लोग सब मान लेंगे। ( ५—७ )

यदि महाराज धृतराष्ट्र न्यायसे शान्त हो जायं तो कौरव और पाण्डवोंका युद्ध नहीं होगा, इससे सब भाइयोंमें प्रेम बना रहेगा। यदि महामानी धृतराष्ट्रपुत्र लोभ और भूलके वशमें होकर सन्धि न करे तो सब राजोंको बुलानेके पीछे हम लोगोंको बुलाइयेगा। उस समय मूर्ख दुर्योधन भाई, बन्धु और मन्त्रियोंके सहित क्रोधी अर्जुनके बाणोंसे मरकर पृथ्वीमें गिर जायगा। (८—१०)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उसी

द्वारकां तु गते कृष्णे युधिष्ठिरपुरोगमाः ।  
 चक्रुः सांग्रामिकं सर्वं विराटश्च महीपतिः ॥ १२ ॥  
 ततः संप्रेषयामास विराटः सह बांधवैः ।  
 सर्वेषां भूमिपालानां द्रुपदश्च महीपतिः ॥ १३ ॥  
 वचनात्कुरुसिंहानां मत्स्यपाञ्चालयोश्च ते ।  
 समाजग्मुर्महीपालाः संप्रहृष्टा महाबलाः ॥ १४ ॥  
 तच्छ्रुत्वा पाण्डुपुत्राणां समागच्छन्महद्वलम् ।  
 धृतराष्ट्रसुताश्चापि सनानिन्युर्महीपतीन् ॥ १५ ॥  
 समाकुला मही राजन्कुरुपाण्डवकारणात् ।  
 तदा समभवत्कृत्स्ना संप्रयागे महीक्षिताम् ॥ १६ ॥  
 संकुला च तदा भूमिश्चतुरंगबलान्विता ।  
 बलानि तेषां वीराणामागच्छन्ति ततस्ततः ॥ १७ ॥  
 चलयन्तीव गां देवीं सपर्वतवनामिमाम् ।  
 ततः प्रज्ञावयोवृद्धं पाञ्चाल्यः स्वपुरोहितम् ।  
 कुरुभ्यः प्रेषयामास युधिष्ठिरमते स्थितः ॥ १८ ॥ [१०८]

इति श्रीमहाभारते वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितयाने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

समय महाराज विराटने श्रीकृष्णको भाई  
 और बान्धवोंके सहित प्रसन्न करके विदा  
 किया । जब श्रीकृष्ण द्वारिकाको चले  
 गये, तब महाराज युधिष्ठिर आदि राजा  
 लोगोंने विराटकी सहायतासे युद्धकी  
 सामग्री इकट्ठी करनी आरम्भ करी । फिर  
 महाराज द्रुपदने और राजा विराटने सब  
 राजोंके यहां बान्धवोंके सहित बुलानेको  
 निमन्त्रण भेजे । कुरुकुलश्रेष्ठ पाण्डव,  
 विराट और महाराज द्रुपदकी आज्ञासे  
 अनेक महा बलवान राजालोग प्रसन्न  
 होकर विराट नगरमें आये । ११-१४  
 राजा युधिष्ठिरको महासेना इकट्ठी

करते सुन धृतराष्ट्रपुत्रोंनेभी माननीय  
 राजोंको बुलाना आरम्भ किया । हे राजन्!  
 उस समय कौरव पाण्डवोंके लिये आने  
 वाले राजोंसे सब पृथ्वी भरगई । समस्त  
 पृथ्वीमें राजोंकी सेनाही दीखने लगी ।  
 हाथी, घोड़े, रथ और पैदलही चारों  
 ओर दीखते थे ! उस समय, समस्त  
 पृथ्वी पर्वत और नदियोंके समेत हिल-  
 ने लगी । उस समय महाराज द्रुपदने  
 युधिष्ठिरकी संमतिसे बुद्धि और अव-  
 स्थामें बूढ़े अपने पुरोहितको कौरवोंके  
 पास भेजा । ( १५-१८ ) [ १०८ ]

उद्योगपर्वमें पांच अध्याय समाप्त ।

द्रुपद उवाच— भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।  
 बुद्धिमतस्तु नराः श्रेष्ठा नरेष्वपि द्विजातयः ॥ १ ॥  
 द्विजेषु वैद्याः श्रेष्ठांसो वैद्येषु कृतबुद्धयः ।  
 कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥ २ ॥  
 स भवान्कृतबुद्धीनां प्रधान इति मे मतिः ।  
 कुलेन च विशिष्टोऽसि वयसा च श्रुतेन च ॥ ३ ॥  
 प्रज्ञया सहस्रश्चासि शुक्रेणाऽऽगिरसेन च ।  
 विदितं चापि ते सर्वं यथावृत्तः स कौरवः ॥ ४ ॥  
 पाण्डवश्च यथावृत्तः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
 धृतराष्ट्रस्य विदिते वंचिताः पाण्डवाः परैः ॥ ५ ॥  
 विदुरेणाऽनुनीतोऽपि पुत्रमेवाऽनुवर्तते ।  
 शकुनिर्वुद्धिपूर्वं हि कुन्तीपुत्रं समाह्वयत् ॥ ६ ॥  
 अनक्षज्ञं मताक्षः सन्क्षत्रवृत्ते स्थितं शुचिम् ।  
 ते तथा वंचयित्वा तु धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७ ॥

उद्योगपर्वमें छः अध्याय ।

महाराज द्रुपद बोले, सब जगत्के भूतोंमें प्राणी श्रेष्ठ हैं, और प्राणियों में बुद्धिसे जीनेवाले श्रेष्ठ हैं, बुद्धिसे जीने वालोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, ब्राह्मणोंमें विद्यावान् श्रेष्ठ हैं, विद्वानोंमें सिद्धान्तज्ञ श्रेष्ठ हैं, सिद्धान्तज्ञों में करनेवाले और करने वालोंमें वेद जानने वाले श्रेष्ठ हैं । हमारी बुद्धिमें आता है कि आप सब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, हमारी सम्मतिमें आप कुल, अवस्था और विद्यामें सबसे श्रेष्ठ हैं, आप बुद्धिमें अङ्गिरापुत्र शुक्रे के समान हैं, ऐसी कोई विद्या नहीं जिसको आप नहीं जानते; आप महा-

राज धृतराष्ट्रके स्वभावकोभी अच्छी तरह जानते हैं; और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके स्वभावकोभी आप जानते हैं । ( १-५ )

धृतराष्ट्रके पुत्रोंने धृतराष्ट्रकी संमति से छलसे युधिष्ठिरको जीता है, यहभी आप जानतेही हैं; यद्यपि विदुर उनको बहुत समझाते हैं, तौभी वे अपनी पुत्र हीकी सम्मति मानते हैं; शकुनिने जान बुझकर युधिष्ठिरको बुलाकर जुवेमें जीता था; महाराज युधिष्ठिर जुवा नहीं जानते और शकुनि जुवामें निपुण है, महाराज युधिष्ठिर बहुत पवित्र और सच्चे हैं इसीसे शकुनिसे हार गये । उन्होंने छलसे युधिष्ठिरको जीता है, इससे हमें

न कस्यांचिदवस्थायां राज्यं दास्यति वै स्वयम् ।  
 भवांस्तु धर्मसंयुक्तं धृतराष्ट्रं ब्रुवन्वचः ॥ ८ ॥  
 मनांसि तस्य योधानां ध्रुवमावर्त्तयिष्यति ।  
 विदुरश्चापि तद्वाक्यं साधयिष्यति तावकम् ॥ ९ ॥  
 भीष्मद्रोणकृपादीनां भेदं संजनयिष्यति ।  
 अमात्येषु च भिक्षेषु योधेषु विसृज्येषु च ॥ १० ॥  
 पुनरेकत्रकरणं तेषां कर्म भविष्यति ।  
 एतस्मिन्नंतरे पार्थाः सुखमेकाग्रबुद्धयः ॥ ११ ॥  
 सेनाकर्म करिष्यन्ति द्रव्याणां चैव संचयम् ।  
 विद्यमानेषु च स्वेषु लब्धमाने तथा त्वयि ॥ १२ ॥  
 न तथा ते करिष्यन्ति सेनाकर्म न संशयः ।  
 एतत्प्रयोजनं चाऽत्र प्राधान्येनोपलभ्यते ॥ १३ ॥  
 संगत्या धृतराष्ट्रश्च कुर्याद्विष्यं वचस्तव ।  
 स भवान्धर्मयुक्तश्च धर्म्यं तेषु समाचरन् ॥ १४ ॥  
 कृपालुषु परिक्लेशान्पाडवीयान्प्रकीर्त्तयन् ।

निश्चय होता है कि इनको वे लोग कदापि अपनी इच्छासे राज्य नहीं देंगे । ( ५-८ )

आप धृतराष्ट्रके पास जाकर धर्मके सहित वचन सुनाइये जिससे उनके योद्धाओंके चित्त फिर जायं, आपके वचनमें विदुरभी सहायता देंगे । वे भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आदि वीरोंमें भेद करा देंगे । जब मन्त्रियोंमें भेद और योद्धाओंमें द्वेष हो जायगा, तब वे लोग उनको एकमें मिलानेकी चेष्टा करेंगे । इतने ही समयमें पाण्डव लोग सुख पूर्वक धन और सेनाका प्रबन्ध कर सकेंगे । ( ८-१२ )

जिस समय पाण्डवोंके सब वीरोंमें मेल रहेगा, और आप वहाँ जाकर कार्यमें विलम्ब करेंगे तब वे लोग अपना सब प्रबन्ध ठीक न कर लेंगे और सेना भी बहुतसी इकट्ठी नहीं कर लेंगे ! इसी लिये विशेषकर आप भेजे जाते हैं; आप के जानेसे राजा धृतराष्ट्र आपके धर्मयुक्त वचनोंको मानेंगे । आप बहुत धर्मात्मा हैं, जब उनसे धर्म सहित वचन कहियेगा, तब सब कार्य सिद्ध हो जायेंगे । महाराज धृतराष्ट्रके यहां जो कृपालु होंगे उनको आप कहियेगा कि, पाण्डव लोग बहुत दुःख सह चुके हैं, और वे लोग आपकी कृपा चाहते हैं । जो



वृद्धेषु कुलधर्मं च ब्रुवन्पूर्वैरनुष्ठितम् ॥ १५ ॥

विभेत्स्यति भर्तास्येषामिति मे नात्र संशयः ।

न च तेभ्यो भयं तेऽस्ति ब्राह्मणो ह्यसि वेदवित् १६ ॥

दूनकर्मणि युक्तश्च स्थविरश्च विशेषतः ।

स भवान्पुण्ययोगेन सुहृत्तेन जयेन च ।

कौरवेयान्प्रयात्वाशु कौन्तेयस्याऽर्थसिद्धये ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच-तथाऽनुशिष्टः प्रथयौ द्रुपदेन महात्मना ।

पुरोधो वृत्तसंपन्नो नगरं नागसाह्वयम् ॥ १८ ॥

शिष्यैः परिवृतो विद्वान्नीतिशास्त्रार्थकोविदः ।

पाण्डवानां हितार्थाय कौरवान्प्रतिजग्मिवान् ॥ १९ ॥ [ १२७ ]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितयाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच-पुरोहितं ते प्रस्थाप्य नगरं नागसाह्वयम् ।

दूतान्प्रस्थापयामासुः पार्थिवेभ्यस्ततस्ततः ॥ १ ॥

प्रस्थाप्य दूतानन्यत्र द्वारकां पुरुषर्षभः ।

स्वयं जगाम कौरव्यः कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ २ ॥

गते द्वारवतीं कृष्णे बलदेवे च माधवे ।

उनमें बूढ़े हैं, उनको पूर्वपुरुषोंसे आचरित कुलधर्म कहना चाहिये । ऐसे ऐसे वचन कहकर आप उनके मनको निःसन्देह अपने वशमें कर लेंगे । १२-१६

आपको उन लोगोंसे कुछ भय भी नहीं है, क्योंकि आप वेद जानने वाले ब्राह्मण हैं और दूत कर्मको जानते हैं, विशेषकर बूढ़े हैं । इस लिये आप पुण्य नक्षत्र और जय मूहूर्तमें हस्तिनापुरको यात्रा कीजिये । आपके जानेसे युधिष्ठिर की कार्य सिद्धि होगी । ( १६-१७ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महात्मा द्रुपदकी आज्ञा सुन बूढ़े पुरोहित हस्ति-

नापुरको चले । ये नीतिशास्त्रके जानने वाले महात्मा अपने शिष्योंके सहित पाण्डवोंके हितसाधनके लिये हस्तिनापुरको चले । ( १८-१९ ) [ १२७ ]

उद्योगपर्वमें छः अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें सात अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! पाण्डवोंने हस्तिनापुरमें पुरोहितको दूत भेजकर और राजाके पास दूत भेजा ! पश्चात् स्वयम् पुरुषसिंह कुन्तीपुत्र अर्जुन श्रीकृष्णके बुलानेको द्वारिका गये । ( १-२ )

जिन दिन बलदेव और श्रीकृष्ण

सह वृष्णयन्धकैः सर्वैर्भोजैश्च शतशस्तदा ॥ ३ ॥  
 सर्वभागमयासास पाण्डवानां विचेष्टितम् ।  
 धृतराष्ट्रात्मजो राजा गूढैः प्रणिहितैश्चरैः ॥ ४ ॥  
 स श्रुत्वा साधवं यातं सद्द्वैरनिलोपमैः ।  
 बलेन नाऽतिमहता द्वारकामभ्ययात्पुरीम् ॥ ५ ॥  
 तमेव दिवसं चापि कौन्तेयः पाण्डुनन्दनः ।  
 आनर्त्तनगरीं रम्यां जगात्ताऽऽशु घनंजयः ॥ ६ ॥  
 तौ यात्वा पुरुषव्याघ्रौ द्वारकां कुरुनन्दनौ ।  
 सुप्तं ददृशतुः कृष्णं शयानं चाऽभिजग्मतुः ॥ ७ ॥  
 ततः शयाने गोविन्दे प्रविवेश सुयोधनः ।  
 उच्छीर्षितश्च कृष्णस्य निषसाद् वरासने ॥ ८ ॥  
 ततः किरीटी तस्याऽनु प्रविवेश महामनाः ।  
 पश्चाच्चैव स कृष्णस्य प्रहोऽतिष्ठत्कृताञ्जलिः ॥ ९ ॥  
 प्रतिबुद्धः सबाष्पेणो ददर्शाऽग्रे किरीटिनम् ।  
 स तयोः स्वागतं कृत्वा यथावत्प्रतिपूज्य तौ ॥ १० ॥  
 तदागमनजं हेतुं पप्रच्छ मधुसूदनः ।

वृष्णि और अन्धक तथा भोज वंशियों के सहित द्वारिकाको चले गये थे, उसी दिन धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने इन सब पाण्डवोंके समाचारोंको गुप्त दूतोंके द्वारा जान लिया था ! जब उन्होंने सुना कि श्रीकृष्ण वायुके समान वेगवान् घोड़ोंके रथपर बैठकर द्वारिकाको चले गये, तभी राजा दुर्योधन रथपर बैठकर अल्प सेनाके सहित द्वारिकाको चले । जिस दिन दुर्योधन द्वारिकाको चले, उसी दिन कुन्तीपुत्र अर्जुन भी आनतोंके सम-णीय द्वारिकाको चले । ( ३—६ )

ये दोनों पुरुषसिंह कुरुकुल श्रेष्ठ वीर

एकही दिन द्वारिकापुरीमें पहुंचे; वहां श्रीकृष्ण सोरहेथे ऐसी अवस्थामें उनके पास गये परन्तु पहले दुर्योधन पहुंचे और एक अच्छे आसनपर कृष्णके शिरकी ओर बैठ गये। उनके पीछे अर्जुन पहुंचे वे हाथ जोड़कर कृष्णके पैताने खड़े हो गये । ( ७—९ )

उसी समय कृष्णकी निद्रा खुली; उन्होंने मुंह खोलतेही आगे खड़े अर्जुन को पहले देखा और पीछे शिरहाने बैठे दुर्योधनको देखा । कृष्णने दोनोंकी उचित पूजा करी और दोनोंका सत्कार किया, फिर दोनोंसे आनेका कारण

ततो दुर्योधनः कृष्णमुवाच प्रहसन्निव ॥ ११ ॥  
 विग्रहेऽस्मिन्भवान्साह्यं मम दातुमिहाऽर्हति ।  
 समं हि भवतः सख्यं मम चैवाऽर्जुनेऽपि च ॥ १२ ॥  
 तथा संबंधकं तुल्यमस्माकं त्वयि माधव ।  
 अहं चाऽभिगतः पूर्वं त्वामद्य मधुसूदनः ॥ १३ ॥  
 पूर्वं चाऽभिगतं संतो भजन्ते पूर्वसारिणः ।  
 त्वं च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन ॥ १४ ॥  
 सततं संमतश्चैव सद्गुणमनुपालय ।  
 कृष्ण उवाच— भवानभिगतः पूर्वमत्र मे नाऽस्ति संशयः ।  
 दृष्टस्तु प्रथमं राजन्मया पार्थो धनंजयः ॥ १५ ॥  
 तव पूर्वाभिगमनात्पूर्वं चाप्यस्य दर्शनात् ।  
 साहाय्यमुभयोरेव करिष्यामि सुयोधन ॥ १६ ॥  
 प्रवारणं तु बालानां पूर्वं कार्यमिति श्रुतिः ।  
 तस्मात्प्रवारणं पूर्वमर्हः पार्थो धनंजयः ॥ १७ ॥  
 मत्संहननतुल्यानां गोपानामर्बुदं महत् ।  
 नारायणा इति ख्याताः सर्वे संग्रामयोधिनः ॥ १८ ॥

पूछा । उसी समय दुर्योधनने हंसकर कृष्णसे कहा, आप इस युद्धमें हमारी सहायता कीजिये, आप हमसे और अर्जुनसे समानही प्रीति रखते हैं; और हमसे और अर्जुनसे आपका सम्बन्ध भी समानही है; इसके अतिरिक्त हम आपके यहां पहले आये हैं; और यह नियम है कि महात्मा लोग पहले आये मनुष्यको मानते हैं । हे कृष्ण ! आप इस समय सब जगतके विद्वानोंमें श्रेष्ठ हैं, आपका सब कोई सम्मान करते हैं, इस लिये आप महात्माओंके अनुसार हमारी सहायता कीजिये । (९-९५)

श्रीकृष्ण बोले, हे राजन्! इसमें कुछ संदेह नहीं कि आपही हमारे यहां पहले आये हैं; परंतु हमने पहले कुंतीपुत्र अर्जुनहीको देखा है। हे दुर्योधन! आप पहले आये और अर्जुनको पहले देखा इस लिये हम दोनोंकी सहायता करेंगे। हमने ऐसा सुना है कि लडकोंका कार्य पहले सिद्ध करना चाहिये, इस लिये अर्जुनहीको सहायता देना उचित है। हमारे समान युद्ध करनेवाले एक अर्बुद ग्वालिये हमारे यहां रहते हैं, वे नारायणके नामसे प्रसिद्ध हैं और महा योद्धा हैं; हम एक ओर युद्धमें अजेय उन

ते वा युधि दुराधर्षा भवन्वेकस्य सैनिकाः ।

अयुध्यमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः ॥ १९ ॥

आभ्यामन्यतरं पार्थ यत्ते हृद्यतरं मतम् ।

तद् वृणीतां भवानग्रे प्रचार्यस्त्वं हि धर्मतः ॥ २० ॥

वैशंपायन उवाच-एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुंतीपुत्रो धनंजयः ।

अयुध्यमानं संग्रामे वरयामास केशवम् ॥ २१ ॥

नारायणमभिघ्नं कामाज्जातमजं नृपु ।

सर्वक्षत्रस्य पुरतो देवदानवयोरपि ॥ २२ ॥

दुर्योधनस्तु तत्सैन्यं सर्वमावरयत्तदा ।

सहस्राणां सहस्रं तु योधानां प्राप्य भारत ॥ २३ ॥

कृष्णं चाऽपहृतं ज्ञात्वा संप्राप परमां मुदम् ।

दुर्योधनस्तु तत्सैन्यं सर्वमादाय पार्थिवः ॥ २४ ॥

ततोऽभ्ययाङ्गीमबलो रौहिणेयं महाबलम् ।

सर्वं चाऽऽगमने हेतुं स तस्मै संन्यवेदयत् ।

प्रत्युवाच ततः शौरिर्द्वीर्तराष्ट्रमिदं वचः ॥ २५ ॥

बलदेव उवाच-विदितं ते नरव्याघ्र सर्वं भवितुमर्हति ।

यन्मयोक्तं विराटस्य पुरा वैवाहिके तदा ॥ २६ ॥

को रखते हैं, और एक ओर आप होते हैं वे लोग युद्ध करेंगे और हम युद्धमें शस्त्रभी नहीं लुवेंगे। हम दोनोंमेंसे जिसकी जिसे लेनेकी इच्छा हो उसे ले; परंतु पहले अर्जुनको मांगना चाहिये क्योंकि धर्मसे यही प्रथम मांगनेके अधिकारी हैं। (१६-२०)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तब अर्जुन ने संग्राममें युद्ध न करनेवाले कृष्णही को मांगा; क्योंकि कृष्ण शत्रुओंके नाश करनेवाले वस्तुतः जन्म रहित परंतु मायावेशधारी, तथा सब क्षत्रिय और

दानवों में श्रेष्ठ थे। हे जनमेजय! राजा दुर्योधनने कही एक अर्बुद नारायणी सेनाको मांगा। वह यह जानकर प्रसन्न हुआ कि सेना रहित कृष्ण हमारी ओर नहीं जायंगे। उस सब सेनाको लेकर महाबलवान् राजा दुर्योधन महापराक्रमी बलदेवके पास गए और उनसे अपने आनेका प्रयोजन कह सुनाया। तब श्रीबलदेवजीने दुर्योधनसे कहा। (२१-२५)

श्रीबलदेवजी बोले, हे पुरुषसिंह; तुम इन सब विषयोंको पहलेहीसे जानते

निगृह्योक्तो हृषीकेशस्त्वदर्थं कुरुनन्दन ।

मया संबंधकं तुल्यमिति राजन्पुनः पुनः ॥ २७ ॥

नच तद्वाक्यमुक्तं वै केशवं प्रत्यपद्यत ।

न चाऽहमुत्सहे कृष्णं विना स्यातुमपि क्षणम् ॥ २८ ॥

नाऽहं सहायः पार्थस्य नाऽपि दुर्योधनस्य वै ।

इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्य ह ॥ २९ ॥

जातोऽसि भारते वंशे सर्वपार्थिवपूजिते ।

गच्छ युध्यस्व धर्मेण क्षात्रेण पुरुषर्षभ ॥ ३० ॥

वैशम्पायन उवाच--इत्येवमुक्तस्तु तदा परिष्वज्य हलायुधम् ।

कृष्णं चाऽपहतं ज्ञात्वा युद्धान्मेने जितं जयम् ॥ ३१ ॥

सोऽभ्ययात्कृतवर्माणं धृतराष्ट्रसुतो नृपः ।

कृतवर्मा ददौ तस्य सेनामक्षौहिणीं तदा ॥ ३२ ॥

स तेन सर्वसैन्येन भीमेन कुरुनन्दनः ।

वृतः परिययौ हृष्टः सुहृदः संप्रहर्षयन् ॥ ३३ ॥

ततः पीताम्बरधरो जगत्स्रष्टा जनार्दनः ।

गते दुर्योधने कृष्णः किरीटिनमथाऽब्रवीत् ॥ ३४ ॥

थे, जो अभिमन्युके विवाहके समय राजा विराटकी सभामें हमने कहा था। हे कुरुनन्दन! हमने तुम्हारे लिये कृष्णसे बहुत कहा भी था। हे राजन्! हमने यह भी दिखलाया था कि दुर्योधन और युधिष्ठिरसे सम्बन्ध भी तुल्यही है, परन्तु कृष्णने हमारे वचनोंको नहीं माना और हम कृष्णके विना क्षणमात्र भी कहीं नहीं रह सकते, इस लिये हम दोनोंमेंसे किसीकी भी सहायता नहीं करेंगे। तुम सब राजोंमें श्रेष्ठ भरत वंशमें उत्पन्न हुए हो, सो जाकर क्षत्रियोंके धर्मके अनुसार युद्ध करो, हम

किसी ओर भी नहीं जायेंगे। २६-३०

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बलदेवजीकी निश्चय बुद्धि जान उनको आलिंगन देकर और कृष्णको दूसरी ओर समझ राजा दुर्योधनने अपनी विजयका निश्चय किया, और कृतवर्माके पास गए। कृतवर्माने एक अक्षौहिणी सेना महाराज दुर्योधनको दी। इन सब सेनाओंको लेकर मित्रोंको आनन्द देनेवाले महाराज दुर्योधन बहुत प्रसन्नता पूर्वक-हस्तिनापुरको लौटे। ( ३१-३३ )

दुर्योधनके जानेके पश्चात् पीताम्बरधारी जगत्कर्ता श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे

अयुध्यमानः कां बुद्धिमास्थायामहं वृतस्त्वया ।

अर्जुन उवाच— भवान्समर्थस्तान्सर्वान्निहतुं नाऽत्र संशयः ।

निहतुमहमप्येकः समर्थः पुरुषर्षभ ॥ ३५ ॥

भवाम्स्तु कीर्तिमाँल्लोके तच्चशस्त्वां गमिष्यति ।

यशसां चाऽहमप्यर्थी तस्मादसि मया वृतः ॥ ३६ ॥

सारथ्यं तु त्वया कार्यमिति मे मानसं सदा ।

चिररात्रोप्सितं कामं तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ ३७ ॥

वासुदेव उवाच—उपपन्नामिदं पार्थ यत्स्पृहसि मया सह ।

सारथ्यं ते करिष्यामि कामः संपद्यतां तव ॥ ३८ ॥

वैशंपायन उवाच—एवं प्रसुदितः पार्थः कृष्णेन सहितस्तदा ।

वृतो दाशार्हप्रचरैः पुनरायाचुधिष्ठिरम् ॥ ३९ ॥ [ १६६ ]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिन्यामुद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि कृष्णसारथ्यस्वीकारे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वैशंपायन उवाच—शल्यः श्रुत्वा तु दूतानां सैन्येन सहता वृतः ।

अभ्ययात्पाण्डवान् राजन्सह पुत्रैर्महारथैः ॥ १ ॥

तस्य सेनानिवेशोऽभूदध्यर्द्धमिव योजनम् ।

तथा हि विपुलां सेनां विभर्ति स नरर्षभः ॥ २ ॥

कहा, तुमने सब सेनाको छोड़ कर अकेले  
हमको क्यों मांगा ? ( ३४-३५ )

अर्जुन बोले, हे कृष्ण ! आप अकेले  
ही उन सबको मार सकते हैं और मैं  
भी अकेलाही उन सबको मार सकता  
हूँ; जगत्में आपकी कीर्ति बहुत है;  
आपके हमारी ओर चलनेसे हमारा यश  
होगा और हम यशहीकी इच्छा करते  
हैं इसलिये मैंने आपको मांगा है ।  
इसके अतिरिक्त बहुत दिनसे हमारी यह  
इच्छा है कि आप हमारा रथ हाँकें; सो  
अब आपको रथ हाँकना होगा। (३५-३७)

श्रीकृष्णजी बोले, हे अर्जुन ! तुमने

जो कहा सो सब सत्यही है, हम अव-  
श्य तुम्हारा सारथी बनैंगे । ( ३८ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इस प्रकार  
कृष्णके सहित प्रसन्न हो अनेक उत्तम  
यदुवंशियोंको सङ्ग लेकर अर्जुन फिर  
महाराज युधिष्ठिरके पास आये (३९)

उद्योगपर्वमें सात अध्याय समाप्त [ १६६ ]

उद्योगपर्वमें आठ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा  
शल्य दूतोंके आतेही बहुत सेना और  
महारथ पुत्रोंके सहित पाण्डवोंकी  
सहायताको चले । शल्यके पास ऐसी  
विपुल सेना थी कि यह सेना मार्गमें दो

अक्षौहिणीपती राजन्महावीर्यपराक्रमः ।

विचित्रकवचाः शूरा विचित्रध्वजकार्मुकाः ॥ ३ ॥

विचित्राभरणाः सर्वे विचित्ररथवाहनाः ।

विचित्रस्रग्धराः सर्वे विचित्रांबरभूषणाः ॥ ४ ॥

स्वदेशवेषाभरणा वीराः शतसहस्रशः ।

तस्य सेनाप्रणेतारो बभूवुः क्षत्रियर्षभाः ॥ ५ ॥

व्यथयन्निव भूतानि कंपयन्निव मेदिनीम् ।

शनैर्विश्रामयन्सेनां स ययौ येन पांडवः ॥ ६ ॥

ततो दुर्योधनः श्रुत्वा महात्मानं महारथम् ।

उपायांतमभिद्रुत्य स्वयमानर्च भारत ॥ ७ ॥

कारयामास पूजार्थं तस्य दुर्योधनः सभाः ।

रमणीयेषु देशेषु रत्नचित्राः खलंकृताः ॥ ८ ॥

शिल्पिभिर्विविधैश्चैव क्रीडास्तत्र प्रयोजिताः

तत्र माल्यानि मांसानि भक्ष्यं पेयं च सत्कृतम् ॥ ९ ॥

कूपाश्च विविधाकारा मनोहर्षविवर्धनाः ।

वाप्यश्च विविधाकारा औदकानि गृहाणि च ॥ १० ॥

कोसतक ठहरती थी । महा वीर्यवान् और पराक्रमी शल्यके सङ्ग एक अक्षौहिणी सेना थी । उसमें विचित्र आभूषण, विचित्र रथ, घोड़े, माला, वस्त्र, कवच, ध्वजा और धनुषधारी अनेक वीर थे, वे सब लोग अपने देशके अनुसार आभूषण धारण किये थे । उसके सेनापति भी महा पराक्रमी और महासूर वीर थे । ( १-५ )

वे लोग अपनी सेनाको धीरे धीरे विश्राम पूर्वक चलाते पृथ्वीको कंपाते और सब प्राणियोंको डराते महाराज युधिष्ठिरके पास चले । जब राजा दुर्यो-

धनने सुना कि महारथ शल्य बहुत सेनाके सहित महाराज युधिष्ठिरकी सहायताको जाते हैं, तब उन्होंने आपही मार्गमें आकर राजा शल्यसे भेंट करी । राजा दुर्योधनने उनके सत्कारके लिये मार्गमें अनेक रत्नोंसे चित्रित विचित्र सभा बनवाई; रमणीय देशोंमें अनेक शिल्पकारोंको भेजकर अनेक उत्तम स्थान बनवाये; उनमें माला, खानेके योग्य मांस और अनेक पीनेकी वस्तु रखवा दीं । मार्गमें अनेक सुन्दर कूप, अनेक प्रकारकी बावडियां और जलके स्थान भी बनवाये । ( ६-१० )

स ताः सभाः समासाद्य पूज्यमानो यथाऽमरः ।

दुर्योधनस्य सचिवैर्देशे देशे समन्ततः ॥ ११ ॥

आजगाम सभामन्यां देवावसथवर्चसम् ।

स तत्र विषयैर्युक्तैः कल्याणैरतिमानुषैः ॥ १२ ॥

मेनेऽभ्यधिकमात्मानमवमेने पुरंदरम् ।

पप्रच्छ सततः प्रेक्ष्यान्प्रहृष्टः क्षत्रियर्षभः ॥ १३ ॥

युधिष्ठिरस्य पुरुषाः केऽत्र चक्रुः सभा इमाः ।

आनीयंतां सभाकाराः प्रदेयार्हा हि मे मताः ॥ १४ ॥

प्रसादभेषां दास्यामि कुंतीपुत्रोऽनुमन्यताम् ।

दुर्योधनाय तत्सर्वं कथयंति स्म विस्मिताः ॥ १५ ॥

संप्रहृष्टो यदा शल्यो दिदित्सुरपि जीवितम् ।

गूढो दुर्योधनस्तत्र दर्शयामास मातुलम् ॥ १६ ॥

तं दृष्ट्वा मद्रराजश्च ज्ञात्वा यत्नं च तस्य तम् ।

परिष्वज्याऽब्रवीत्प्रीत इष्टोऽर्थो गृह्यतामिति ॥ १७ ॥

दुर्योधन उवाच—सत्यवाग्भव कल्याण वरो वै मम दीयताम् ।

उन सब सभाओंमें ठहरते हुए और दुर्योधनके मन्त्रियोंसे देवतोंके समान पूजा पाते हुए राजा शल्य चलने लगे। एक दिन राजा शल्य देवतोंके स्थानके समान बनी हुई, मनुष्योंको दुर्लभ और सुख देनेवाले अनेक पदार्थोंसे भरी उत्तम सभामें पहुंचे। उसको देखकर उन्होंने जाना कि यह मनुष्योंका बनाया हुआ स्थान नहीं है, और उन्होंने अपने को इन्द्रके समान माना; परन्तु वे अभीतक यही जानते थे कि हमारा यह सब संस्कार युधिष्ठिरहीकी ओरसे होरहा है। उस दिन उन्होंने प्रसन्न होकर सेवकोंसे पूछा, युधिष्ठिरके कौनसे सेवकोंने

इस सभाको बनाया है? उनको शीघ्र हमारे पास बुला लाओ, हम प्रसन्न होकर उन्हें पारितोषिक देना चाहते हैं; राजा युधिष्ठिर हमारे इस पारितोषिक देनेसे प्रसन्न होंगे। (११-१५)

राजा दुर्योधनके दूतोंने उसी समय जाकर विस्मयपूर्वक दुर्योधनसे कह दिया। जब राजा दुर्योधनने जाना कि अब राजा शल्य अपना प्राणतकभी देनेको उपस्थित हैं, तब छिपकर उनके पास गये, राजा शल्यने उनको देखते ही जान लिया कि इसीका यह सब यत्न है। तब प्रसन्न होकर कहा कि जो तुम्हारी इच्छा हो सो मांगो। १५-१७



सर्वसेनाप्रणेता वै भवान्भवितुमर्हति ॥ १८ ॥

वैशंपायन उवाच—कृतमित्यब्रवीच्छल्यः किमन्यत्क्रियतामिति

कृतमित्येव गांधारिः प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ १९ ॥

शल्य उवाच— गच्छ दुर्योधन पुरं स्वकमेव नरर्षभ ।

अहं गमिष्ये द्रष्टुं वै युधिष्ठिरमरिंदमम् ॥ २० ॥

दृष्ट्वा युधिष्ठिरं राजन्क्षिप्रमेष्ये नराधिप ।

अवश्यं चापि द्रष्टव्यः पांडवः पुरुषर्षभः ॥ २१ ॥

दुर्योधन उवाच— क्षिप्रमागम्यतां राजन्पांडवं वीक्ष्य पार्थिव ।

त्वय्यधीनाः स्म राजेन्द्र वरदानं स्मरस्व नः ॥ २२ ॥

शल्य उवाच— क्षिप्रमेष्यामि भद्रं ते गच्छस्व स्वपुरं नृप ।

परिष्वज्य तथाऽन्योन्यं शल्यदुर्योधनावुभौ ॥ २३ ॥

स तथा शल्यमामंत्र्य पुनरायात्स्वकं पुरम् ।

शल्यो जगाम कौन्तेयाणाख्यातुं कर्म तस्य तत् ॥ २४ ॥

उपप्लव्यं स गत्वा तु स्कंधावारं प्रविश्य च ।

पांडवानथ तान्सर्वान्शल्यस्तत्र ददर्श ह ॥ २५ ॥

समेत्य च महाबाहुः शल्यः पाण्डुसुतैस्तदा ।

दुर्योधन बोले, आप अपने वचन को सत्य कीजिये, और हमारे सेनापति हूजिये । श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, दुर्योधनके वचन सुन शल्य बोले, जो तुमने कहा सो वैसेही होगा और जो कहना हो सो कहो ? दुर्योधनने कहा आपने सब कुछ किया ! (१८-१९)

शल्य बोले, हे पुरुषसिंह दुर्योधन ! तुम हस्तिनापुरको चले जावो, मैं शत्रु नाशन युधिष्ठिरको देखने जाता हूं, क्यों कि पुरुष सिंह युधिष्ठिरको देखनेकी मेरी बहुत इच्छा है । उसको भेंटकर शीघ्र लौटेंगे । दुर्योधन बोले, कि आप

वहांसे शीघ्र लौटें, क्योंकि हम आपहीके आधीन हैं, और अपने वरदानका भी ध्यान रखना । ( २०-२२ )

शल्य बोले, हे राजन् ! तुम हस्तिनापुरको चले जावो, हम बहुत शीघ्र लौटेंगे । परस्पर ऐसे बात कर दोनों चल दिये । राजा दुर्योधन हस्तिनापुरको गये और महाराज शल्य यह सब समाचार कहनेको पांडवोंके यहां गये । उपप्लव्य नामक नगरमें जाकर राजा युधिष्ठिरकी छावनीमें गये ! वहां जाकर राजा शल्यने सब पाण्डवोंको बैठे देखा । ( २३-२५ )

राजा शल्यको देखतेही पाण्डव लोग

पाद्यमर्घ्यं च गां चैव प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ॥ २६ ॥  
 ततः कुशलपूर्वं हि मद्वराजोऽरिसूदनः ।  
 प्रीत्या परमया युक्तः समाश्लिष्य युधिष्ठिरम् ॥ २७ ॥  
 तथा भीमार्जुनौ कृष्णौ स्वस्त्रीयौ च यभावुभौ ।  
 आसने चोपविष्टस्तु शल्यः पार्थमुवाच ह ॥ २८ ॥  
 कुशलं राजशार्दूल कञ्चित्ते कुरुनन्दन ।  
 अरण्यवासादिष्टयाऽसि विमुक्तो जयतां वर ॥ २९ ॥  
 सुदुष्करं कृतं राजन्निर्जने वसता त्वया ।  
 भ्रातृभिः सह राजेन्द्र कृष्णया चाऽनया सह ॥ ३० ॥  
 अज्ञातवासं घोरं च वसता दुष्करं कृतम् ।  
 दुःखमेव कुतः सौख्यं भ्रष्टराज्यस्य भारत ॥ ३१ ॥  
 दुःखस्यैतस्य महतो धार्तराष्ट्रकृतस्य वै ।  
 अवाप्स्यसि सुखं राजन्हत्वा शत्रून्परंतप ॥ ३२ ॥  
 विदितं ते महाराज लोकतन्त्रं नराधिप ।  
 तस्माल्लोभकृतं किञ्चित्तव तात न विद्यते ॥ ३३ ॥  
 राजर्षीणां पुराणानां मार्गमन्विच्छ भारत ।  
 दाने तपसि सत्ये च भव तात युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥

खडे हो गये और पाद्य, अर्घ्य तथा  
 गउसे पूजा करी। फिर शत्रुनाशन महा-  
 राज शल्यने प्रेममें भरके राजा युधिष्ठी-  
 रको अपनी छातीसे लगाया। इसी प्रकार  
 भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और  
 कृष्णसेभी मिले। फिर आसनपर बैठ-  
 कर युधिष्ठिरसे बोले, हे राजशार्दूल ! हे  
 जीतने वालोंमें श्रेष्ठ ! हे कुरुनन्दन !  
 कहो तुम कुशलसे तो हो ? हे राजेन्द्र !  
 हे कुरुनन्दन ! तुम अपने भाई और  
 द्रौपदीके सहित प्रारब्धहीसे लूटे। हे  
 राजन् ! तुमने बहुत भारी काम किया,

जो बारह वर्ष निर्जन-वनमें रहे और  
 एक वर्ष छिप कर रहे। राज्यभ्रष्टको  
 सुख कहाँ है ! इसी लिये तुमने ये सब  
 दुःख भोगे। ( २६-३१ )

इस दुर्योधनके दिये हुए दुःखसे तुम  
 शीघ्रही पार होंगे और सब शत्रुओंको  
 मारकर शीघ्रही राज्य पाओगे। हे  
 महाराज ! तुम जगत्की सब बातोंको  
 जानते हो। लोभमूलक आपके पास कुछ  
 भी नहीं है। हे प्यारे युधिष्ठिर ! तुम  
 पुराने राजोंके समान धर्म करते हो। तुम  
 दान, तप, क्षमा, इन्द्रिय जीतना, सत्य

क्षमा दमश्च सत्यं च अहिंसा च युधिष्ठिर ।

अद्भुतश्च पुनर्लोकस्त्वयि राजन्प्रतिष्ठितः ॥ ३५ ॥

मृदुर्वदान्यो ब्रह्मण्यो दाता धर्मपरायणः ।

धर्मास्ते विदिता राजन्बहवो लोकसाक्षिकाः ॥ ३६ ॥

सर्वं जगदिदं तात विदितं ते परंतप ।

दिष्ट्या कृच्छ्रमिदं राजन्पारितं भरतर्षभ ॥ ३७ ॥

दिष्ट्या पश्यामि राजेंद्र धर्मात्मानं सहानुगम् ।

निस्तीर्णं दुष्करं राजंस्त्वां धर्मनिचयं प्रभो ॥ ३८ ॥

वैशंपायन उवाच-ततोऽस्याऽकथयद्राजा दुर्योधनसभागमम् ।

तच्च शुश्रूषितं सर्वं वरदानं च भारत ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिर उवाच-सुकृतं ते कृतं राजन्प्रहृष्टेनांस्तरात्मना ।

दुर्योधनस्य यद्वीर त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥

एकं त्विच्छामि भद्रं ते क्रियमाणं महीपते ।

राजन्नकर्त्तव्यमपि कर्तुमर्हसि सत्तम ॥ ४१ ॥

मम त्ववेक्षया वीर शृणु विज्ञापयामि ते ।

भवानिह महाराज वासुदेवसमो युधि ॥ ४२ ॥

कर्णार्जुनाभ्यां संप्राप्ते द्वैरथे राजसत्तम ।

अहिंसामें तत्पर हो । यह सब जगत्  
तुम्हारीही शक्तिसे स्थिर है । (३२-३५)

हे राजेन्द्र ! तुम कोमल वाणीवाले,  
ब्राह्मणोंके भक्त, दाता और धार्मिक हो ।  
लोगोंमें दीखने वाले सब धर्म आप जानते  
ही हैं । हे प्यारे युधिष्ठिर ! तुम इस सब  
जगत्को जानते हो, तुम प्रारब्धसे इस  
व्रतके पार होगये । हे पृथ्वीनाथ ! हम  
प्रारब्धहीसे आपको भाइयोंके सहित सब  
दुःखसे पार हुए देखते हैं । (३६-३८)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तब राजा  
शल्यने दुर्योधनके मिलनेका और उसको

वर देनेका समाचार युधिष्ठिरसे कह  
दिया । ( ३९ )

महाराज युधिष्ठिर बोले; हे राजन् !  
हम प्रसन्न होकर कहते हैं कि आपने  
जो दुर्योधनको वरदान दिया सो बहुत  
अच्छा किया, हे वीर ! हमभी एक वर  
दान आपसे मांगना चाहते हैं, सो न  
करनेके योग्य काम भी आपको हमारे  
लिये करना होगा। आप कृष्णके समान  
योद्धा हैं, इस लिये यह वरदान आपसे  
मांगता हूं। हे राजसिंह ! जिस समय कर्ण  
और अर्जुनसे युद्ध होगा, उस समय आप

कर्णस्य भवता कार्यं सारथ्यं नाऽत्र संशयः ॥ ४३ ॥  
 तत्र पात्न्योऽर्जुनो राजन्यदि सत्प्रियमिच्छसि ।  
 तेजोवधश्च ते कार्यः सौनेरस्मज्जयावहः ॥ ४४ ॥  
 अकर्तव्यमपि ह्येतत्कर्तुमर्हसि मातुल ।  
 शल्य उवाच— शृणु पाण्डव भद्रं ते यद्वीषि महात्मनः ।  
 तेजोवधानिमित्तं मां सूतपुत्रस्य संगमे ॥ ४५ ॥  
 अहं तस्य भविष्यामि संग्रामे सारथिर्ध्रुवम् ।  
 वासुदेवेन हि समं नित्यं मां स हि अन्यते ॥ ४६ ॥  
 तस्याऽहं कुरुशार्दूल प्रतीपमहितं वचः ।  
 ध्रुवं संकथयिष्यामि योद्धकामस्य संयुगे ॥ ४७ ॥  
 यथा स हृतदर्पश्च हृतनेजाश्च पाण्डव ।  
 भविष्यति सुखं हंतुं सत्यमेतद्वीमि ते ॥ ४८ ॥  
 एवमेत्करिष्यामि यथा तात त्वमात्थ साम् ।  
 यच्चाऽन्यदपि शक्यामि तत्करिष्यामि ते प्रियम् ४९ ॥  
 यच्च दुःखं त्वया प्राप्तं द्यूते वै कृष्णया सह ।  
 परुषाणि च वाक्यानि सूतपुत्रकृतानि वै ॥ ५० ॥

अवश्य कर्णके सारथी बनैंगे, तब आपको  
 अर्जुनकी रक्षा करनी होगी; यदि आप  
 हमारे प्यारे मामा हैं, तो यह वरदान  
 देनाही होगा। इसके अतिरिक्त उस  
 युद्धमें आप कर्णके बलको घटाइयेगा,  
 इससे हमारी विजय होगी। हे मामा !  
 यद्यपि यह कर्म आपके योग्य नहीं है  
 तथापि आपको हमारे प्रेमसे करना  
 होगा। ( ४०—४५ )

शल्य बोले, हे पाण्डव ! तुम्हारा  
 कल्याण हो, तुम जो हमसे कर्ण और  
 अर्जुनके युद्धके समय कर्णके तेज भंग  
 करनेका वरदान मांगते हो, सो हम

निश्चय कर्णके सारथी बनैंगे। क्योंकि  
 वह हमको कृष्णके समान मानते हैं।  
 हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! जब कर्ण युद्ध करनेकी  
 इच्छा करेंगे तब हम विरोधी और अहित  
 वचन उसके साथ करेंगे। हम प्रतिज्ञा करते  
 हैं कि, हम ऐसा यत्न करेंगे कि जिसमें  
 कर्णका बल घटे ! हे प्यारे। तुमने जो  
 कुछ कहा हम सब वैसेही करेंगे और  
 भी जहां तक हमारी शक्ति होगी तुम्हारा  
 कल्याण हम करेंगे। ( ४५—४९ )

तुमने जो द्रौपदीके सहित जुबेमें  
 दुःख पाया है, कर्णने जो कठोर वचन  
 तुमसे कहे हैं, जटासुर और कीचकने

जटासुरात्परिक्लेशः कीचकाच्च महाद्युते ।

द्रौपद्याऽधिगतं सर्वं दमयंत्या यथाऽशुभम् ॥ ५१ ॥

सर्वं दुःखमिदं वीर सुखोदकं भविष्यति ।

नाऽत्र मनुस्त्वया कार्यो विधिर्हि बलवत्तरः ॥ ५२ ॥

दुःखानि हि महात्मानः प्राप्नुवन्ति युधिष्ठिर ।

देवैरपि हि दुःखानि प्राप्तानि जगतीपते ॥ ५३ ॥

इंद्रेण श्रूयते राजन्सभार्येण महात्मना ।

अनुभूतं महदुःखं देवराजेन भारत ॥ ५४ ॥ [२२०]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि शल्यवाक्ये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच— कथमिंद्रेण राजेन्द्र सभार्येण महात्मना ।

दुःखं प्राप्तं परं घोरमेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ १ ॥

शल्य उवाच— शृणु राजन्पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम् ।

सभार्येण यथा प्राप्तं दुःखमिंद्रेण भारत ॥ २ ॥

त्वष्टा प्रजापतिर्द्यासीद्देवश्रेष्ठो महातपाः ।

स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रोहात्किलाऽसृजत् । ॥ ३ ॥

ऐंद्रं स प्रार्थयत्स्थानं विश्वरूपो महाद्युतिः ।

जो कुछ द्रौपदीको दुःख दिये हैं, दम-  
यन्तीके दुःखके समान उन सबका नाश  
होकर तुम्हें सुख मिलेगा । हे वीर ! हे  
महातेजस्वी ! इन सबमें तुम्हें कुछ  
शोक नहीं करना चाहिये ! प्रारब्ध  
बड़ा बलवान है, महात्माओंको दुःख  
होतेही हैं; देवता लोगोंको भी दुःख  
सहन करना होता है । हमने सुना है  
कि अपनी स्त्रीके सहित देवराज इन्द्रने  
भी बहुत दुःख सहे थे । ( ५०—५३ )

उद्योगपर्वमें आठ अध्याय समाप्त । [ २१९ ]

उद्योगपर्वमें नौ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे राजेन्द्र ! महात्मा

इन्द्रने इन्द्राणीके सहित कब घोर दुःख  
सहा था ? इसको हम सुननेकी इच्छा  
करते हैं, आप कहिये । ( १ )

शल्य बोले, हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार  
इन्द्रने इन्द्राणीके सहित घोर दुःख सहा  
था, सो पुराना इतिहास हम तुमसे क-  
हते हैं, सुनो । ( २ )

पहले समयमें महातपस्वी देवश्रेष्ठ  
त्वष्टा प्रजापति थे । उन्होंने इन्द्रकी श-  
त्रुतासे त्रिशिरा नामक पुत्रको उत्पन्न  
किया । उस महातेजस्वी तीन शिरवाले  
विश्वरूपने इन्द्रासन छीननेकी इच्छा  
करी । उसके तीनों शिर चन्द्रमा, सूर्य

तैस्त्रिभिर्वदनैर्घोरैः सूर्यैर्दुज्ज्वलनोपमैः ॥ ४ ॥  
 वेदानेकेन सोऽधीते सुरामेकेन चाऽपिबत् ।  
 एकेन च दिशः सर्वाः पिबन्निव निरीक्षते ॥ ५ ॥  
 स तपस्वी मृदुर्दान्तो धर्मे तपसि चोद्यतः ।  
 तपस्तस्य महत्तीव्रं सुदुश्चरमरिंदम ॥ ६ ॥  
 तस्य हृष्टा तपोवीर्यं सत्यं चाऽमिततेजसः ।  
 विषादमगमच्छक्र इन्द्रोऽयं मा भवेदिति ॥ ७ ॥  
 कथं सज्जेच्च भोगेषु न च तप्येन्महत्तापः ।  
 विवर्धमानस्त्रिशिराः सर्वं हि भुवनं ग्रसेत् ॥ ८ ॥  
 इति संचिंत्य बहुधा बुद्धिमान्भरतर्षभ ।  
 आज्ञापयत्सोऽप्सरसस्त्वष्टृपुत्रप्रलोभने ॥ ९ ॥  
 यथा स सज्जेत्त्रिशिराः कामभोगेषु वै भृशम् ।  
 क्षिप्रं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत मा चिरम् ॥ १० ॥  
 शृंगारवेषाः सुश्रोण्यो हारैर्युक्ता मनोहरैः ।  
 हावभावसमायुक्ताः सर्वाः सौंदर्यशोभिताः ॥ ११ ॥  
 प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं भयं मम ।  
 अस्वस्थं ह्यात्मनाऽऽत्मानं लक्षयामि वरांगनाः ।

और अग्निके समान थे। वह एकमुखसे  
 वेद पढ़ता था, एकसे मद्य पीता था, और  
 एकसे सब ओर इस प्रकार देखता था,  
 मानो सबको खा जायगा । ( ३-५ )

हे शत्रुनाशन! वह तपस्वी शांत  
 इंद्रियजित तथा धर्म और तपको  
 करनेवाले थे, उन्होंने घोर तप किया।  
 उस महातेजस्वीके तप का वीर्य और  
 सत्यको देखकर इंद्रको शङ्का हुई कि  
 यह इंद्र न हो जाय। इंद्रने विचारा कि  
 इसका तप किस प्रकार नष्ट होय, और  
 यह किस प्रकार भोगोंकी इच्छा करै;

क्योंकि इसकी वृद्धि होनेसे सब लोकका  
 नाश हो जायगा । ( ६-८ )

बुद्धिमान इंद्रने बहुत विचार कर  
 उसके तप नाश करनेके लिये  
 अप्सराओंको आज्ञा दी। इंद्रने  
 अप्सराओंसे कहा तुम लोग शीघ्र  
 त्रिशिराके पास जाकर ऐसा उपाय करो  
 जिसमें वह कामदेवके वशमें होय; तुम  
 लोग शृंगार करके बाल गूथकर  
 मनोहर हार पहनकर अपना रूप सुंदर  
 बनाकर हाव भावसे विश्वरूपको अपने  
 वशमें करो, क्योंकि उसका तप देखकर

भयं तन्मे महाघोरं क्षिप्रं नाशयताऽबलाः ॥ १२ ॥

अप्सरस ऊचुः—तथा यत्नं करिष्यामः शक्र तस्य प्रलोभने ।

यथा नाऽवाप्स्यसि भयं तस्माद्वलनिषूदन ॥ १३ ॥

निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां योऽसावास्ते तपोनिधिः ।

तं प्रलोभयितुं देव गच्छामः सहिता वयम् ॥ १४ ॥

यतिष्यामो वशे कर्तुं व्यपनेतुं च ते भयम् ।

शल्य उवाच— इंद्रेण तास्त्वनुज्ञाता जग्मुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम् ।

तत्र ता विविधैर्भावैर्लोभयन्त्यो वरांगनाः ॥ १५ ॥

नित्यं संदर्शयाभासुस्तथैवाऽंगेषु सौष्ठवम् ।

नाऽभ्यगच्छत्प्रहर्षं ताः स पश्यन्सुमहातपाः ॥ १६ ॥

इंद्रियाणि वशे कृत्वा पूर्वसागरसन्निभः ।

तास्तु यत्नं परं कृत्वा पुनः शक्रमुपस्थिताः ॥ १७ ॥

कृतांजलिपुटाः सर्वा देवराजमथाऽब्रुवन् ।

न स शक्यः सुदुर्धर्षो धैर्याच्चालयितुं प्रभो ॥ १८ ॥

यत्ते कार्यं महाभाग क्रियतां तदनंतरम् ।

संपूज्याऽप्सरसः शक्रो विस्तृज्य च महामतिः ॥ १९ ॥

मैं बहुत असावधान हो रहा हूं, मुझको उससे बहुत भय है, तुम लोग इस भयको दूर करो । ( ९-१२ )

अप्सरा बोलीं, हे इंद्र ! आपने जो कुछ कहा सो हम वैसाही यत्न करेंगी, आप विश्वरूपसे कुछ भय मत कीजिये; यह जो अपने तेज भर नेत्रों से जगत्को जलाये देता है, उस विश्वरूपको हम लोग अपने वश में करनेको जाती हैं । हम लोग यत्नसे उसको वशमें करेंगे जिस से आपका भय नष्ट होगा । ( १३-१५ )

राजा शल्य बोले, इंद्रकी आज्ञा सुन वे सब अप्सरा स्वर्गसे चलीं और जाकर

विश्वरूपको अनेक भावोंसे मोहित करने लगीं । वे सब सुंदर शरीरोंको दिखाने लगीं; परंतु उनके देखनेसे महा तपस्वी विश्वरूपको कुछभी विकार न हुआ । वे अपनी इंद्रियोंको वशमें करके पूर्व समुद्रके समान खड़े रहे । अप्सरा अनेक यत्न करके इंद्रके पास लौट गईं । और जाकर हाथ जोड़ इंद्रसे बोलीं, हे देवराज ! वह महातपस्वी हमारे वशमें होने योग्य नहीं हैं, अब जो आपकी आज्ञा हो सो हम करें । ( १६-१९ )

बुद्धिमान इंद्रने उनकी प्रशंसा करके सबको विदा किया । फिर उसके

चिंतयामास तस्यैव वधोपायं युधिष्ठिर ।  
 स तूष्णीं चिंतयन्वीरो देवराजः प्रतापवान् ॥ २० ॥  
 विनिश्चितमतिधीमान्वधे त्रिशिरसोऽभवत् ।  
 वज्रमस्य क्षियाम्यद्य स क्षिप्रं न भविष्यति ॥ २१ ॥  
 शत्रुः प्रवृद्धो नोपेक्ष्यो दुर्बलोऽपि बलीयसा ।  
 शास्त्रबुद्ध्या विनिश्चित्य कृत्वा बुद्धिं वधे दृढाम् ॥ २२ ॥  
 अथ वैश्वानरनिभं घोररूपं भयावहम् ।  
 मुमोच वज्रं संकुद्धः शक्रश्चिशिरसं प्रति ॥ २३ ॥  
 स पपात हतस्तेन वज्रेण दृढमाहतः ।  
 पर्वतस्येव शिखरं प्रणुन्नं भेदिनीतले ॥ २४ ॥  
 तं तु वज्रहतं दृष्ट्वा शयानमचलोपमम् ।  
 न शर्म लेभे देवेन्द्रो दीपितस्तस्य तेजसा ॥ २५ ॥  
 हतोऽपि दीप्ततेजाः स जीवन्निव हि दृश्यते ।  
 धातितस्य शिरांस्थाजौ जीवन्तीवाऽद्भुतानि वै ॥ २६ ॥  
 ततोऽतिभीतगात्रस्तु शक्र आस्ते विचारयन् ।  
 अथाऽऽजगाम परशुं स्कंधेनाऽऽदाय वर्धकिः ॥ २७ ॥

मारनेका विचार करने लगे । महा  
 प्रतापी देवराज एकांतमें बैठकर  
 विश्वरूपके मारनेका उपाय सोचने लगे।  
 बुद्धिमान इंद्रने विश्वरूपके मारनेका  
 उपाय निश्चय कर लिया, और  
 विचारा, कि मैं उसके शिरमें वज्र  
 मारूंगा, उससे यह मर जायगा । इंद्रने  
 शास्त्रके निश्चयसे विचारा कि बलवान  
 को भी यह उचित नहीं कि अपने दुर्बल  
 शत्रुको जीता छोड़े । (१९-२२)

अनंतर इंद्रने क्रोध करके अग्निके  
 समान घोररूपी वज्रको त्रिशिराके  
 शिरमें मारा! उसके लगनेसे त्रिशिरा

ऐसे मरकर पृथ्वीमें गिरा जैसे पर्वतका  
 शिखर टूटकर गिरता है । उसे मरा  
 हुआ और पर्वतके समान पृथ्वीमें  
 गिरा हुआ देख करभी इंद्र उसके  
 तेजसे शांत न हुए, अर्थात् तब  
 भी डरते ही रहे । वह मरा हुआ भी  
 अपने तेजसे जीतेके समान प्रकाशित  
 हो रहा था । उस मरे हुए के शिरभी  
 जीते हुएके समान दीखते थे । २३-२६

तब इन्द्र भयसे व्याकुल और खड़े  
 होकर सोचने लगे । इतनेहीमें फरसा  
 लिये तक्ष आगये । जहां डरे हुए इन्द्र  
 खड़े थे वहीं तक्ष पहुंच तब भयभीत



तदरण्यं महाराज यत्राऽऽस्तेऽसौ निपातितः ।  
 स भीतस्तत्र तक्षाणं घटमानं शचीपतिः ॥ २८ ॥  
 अपश्यदब्रवीच्चैनं सत्वरं पाकशासनः ।  
 क्षिप्रं छिंधि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम ॥ २९ ॥  
 तक्षोवाच— महास्कंधो भृशं ह्येष परशुर्न भविष्यति ।  
 कर्तुं चाऽहं न शक्यामि कर्म सद्भिर्विगर्हितम् ॥ ३० ॥  
 इंद्र उवाच— मा भैस्त्वं शघ्निमेतद्वै कुरुष्व वचनं मम ।  
 मत्प्रसादाद्धि ते शस्त्रं वज्रकल्पं भविष्यति ॥ ३१ ॥  
 तक्षोवाच— कं भवंतमहं विद्यां घोरकर्माणमद्य वै ।  
 एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन कथयस्व मे ॥ ३२ ॥  
 इंद्र उवाच— अहमिंद्रो देवराजस्तक्षन्विदितमस्तु ते ।  
 कुरुष्वैतद्यथोक्तं मे तक्षन्माऽत्र विचारय ॥ ३३ ॥  
 तक्षोवाच— क्रूरेण नाऽपत्रपसे कथं शक्रेह कर्मणा ।  
 ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न ते ॥ ३४ ॥  
 शक्र उवाच— पश्चाद्धर्मं चरिष्यामि पावनार्थं सुदुश्चरम् ।  
 शत्रुरेष महावीर्यो वज्रेण निहतो मया ॥ ३५ ॥  
 अद्यापि चाऽहमुद्विग्नस्तक्षन्नस्माद्विभेमि वै ।

इन्द्रने सत्वर तक्षसे कहा, कि तुम हमारी आज्ञासे शीघ्र इसके शिर काट दो । तक्ष बोले, इसके शिर बहुत भारी हैं, मेरे काटनेसे नहीं कट सकते और मैं इस कर्मको करना भी नहीं चाहता । ( २९—३० )

इन्द्र बोले, तुम कुछ भय मत करो और हमारी आज्ञाको पालन करो; हमारी कृपासे तुम्हारा फरसा वज्रके तुल्य हो जायगा । ( ३१ )

तक्ष बोले, हम नहीं जानते कि घोर कर्म करनेवाले तुम कौन हो ? तुम

हमसे अपना समाचार कहो । ( ३२ )

इन्द्र बोले, तुम हमको देवराज इन्द्र जानो, और बिना विचारे हमारी आज्ञाको पालन करो । ( ३३ )

तक्ष बोले, हे इन्द्र ! इस नीच कर्मको करके तुम्हें लज्जा क्यों नहीं होती ? क्या इस ऋषि-पुत्रके मारनेसे तुम्हें ब्रह्महत्याका भय नहीं है ? ( ३४ )

इन्द्र बोले, हमने इस महा पराक्रमी शत्रुको वज्रसे मारा है, इसके पीछे प्रायश्चित्त कर लेंगे । हे तक्ष ! मैं अब भी इसके भयसे घबड़ा रहा हूं, तुम शीघ्र

शल्य उवाच—

क्षिप्रं छिंधि शिरांसि त्वं करिष्येऽनुग्रहं तव ॥ ३६ ॥

शिरः पशोस्ते दास्यन्ति भागं यज्ञेषु मानवाः ।

एष तेऽनुग्रहस्तक्षन्क्षिप्रं कुरु मम प्रियम् ॥ ३७ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु तक्षा स महेंद्रवचनात्तदा ।

शिरांस्यथ त्रिशिरसः कुठारेणाऽच्छिनत्तदा ॥ ३८ ॥

निकृत्तेषु ततस्तेषु निष्क्रामन्नण्डजास्त्वथा ।

कर्पिजलास्तितिराश्च कलर्विकाश्च सर्वशः ॥ ३९ ॥

येन वेदानधीते स्म पिबते सोममेव च ।

तस्माद्वक्त्राद्विनिश्चेरुः क्षिप्रं तस्य कर्पिजलाः ॥ ४० ॥

येन सर्वा दिशो राजन्पिबन्निव निरीक्षते ।

तस्माद्वक्त्राद्विनिश्चेरुस्तितिरास्तस्य पांडव ॥ ४१ ॥

यत्सुरापं तु तस्याऽऽसीद्वक्त्रं त्रिशिरसस्तदा ।

कलर्विकाः समुत्पेतुः श्येनाश्च भरतर्षभ ॥ ४२ ॥

ततस्तेषु निकृत्तेषु विज्वरो मघवानथ ।

जगाम त्रिदिवं हृष्टस्तक्षापि स्वगृहान्ययौ ॥ ४३ ॥

मेने कृतार्थमात्मानं हत्वा शत्रुं सुरारिहा ।

त्वष्टा प्रजापतिः श्रुत्वा शक्रेणाऽथ हतं सुतम् ॥ ४४ ॥

इसके शिर काटो, मैं तुम्हारे ऊपर बहुत कृपा करूंगा । आजसे मनुष्य जो यज्ञ किया करैगे उसमें पशुओंका शिर तुम्हें मिला करेगा, यही कृपा हम तुम्हारे ऊपर करते हैं; तुम शीघ्र इसके शिर काटो । ( ३५-३७ )

शल्य बोले, हे राजन् ! इन्द्रके ऐसे वचन सुन तक्षने उसी समय फरसेमे त्रिशिराके शिर काट लिये । जब उसके शिर कट चुके तब उनमे तीतर, सफेद तीतर और कलविङ्क आदि अनेक पक्षी निकले । विश्वरूप जिस मुखसे वेद पढते

थे और जिस मुखसे सोम पीते थे, उससे सफेद तीतर निकले, जिससे सब ओर देखते थे, उस मुखसे तीतर निकले । हे पाण्डव ! हे पृथ्वीनाथ ! विश्वरूप जिस मुखसे मद्य पीते थे, उस मुखसे सफेद तीतर निकले और उसी मुखसे बाज भी निकले । ( ३८-४२ )

हे पुरुषसिंह ! विश्वरूपका शिर कटनेसे इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और प्रसन्न होकर स्वर्गको चले गए । उसी समय तक्ष भी अपने घरको चले गये । दैत्य-नाशक इन्द्र विश्वरूपको मारकर अपने-

क्रोधसंरक्तनयन इदं वचनमब्रवीत् ।  
 तप्यमानं तपो नित्यं क्षान्तं दान्तं जितेन्द्रियम् ।  
 विनाऽपराधेन यतः पुत्रं हिंसितवान्मम ॥ ४५ ॥  
 तस्माच्छक्रविनाशाय वृत्रमुत्पादयाम्यहम् ।  
 लोकाः पश्यंतु मे वीर्यं तपसश्च बलं महत् ॥ ४६ ॥  
 स च पश्यतु देवेन्द्रो दुरात्मा पापचेतनः ।  
 उपस्पृश्य ततः क्रुद्धस्तपस्वी सुमहायशाः ॥ ४७ ॥  
 अग्नौ हुत्वा समुत्पाद्य घोरं वृत्रमुवाच ह ।  
 इंद्रशत्रो विवर्धस्व प्रभावात्तपसो मम ॥ ४८ ॥  
 सोऽवर्द्धत दिवं स्तब्धवा सूर्यवैश्वानरोपमः ।  
 किं करोमीति चोवाच कालसूर्य इवोदितः ॥ ४९ ॥  
 शक्रं जहीति चाऽप्युक्तो जगाम त्रिदिवं ततः ।  
 ततो युद्धं समभवद्वृत्रवासवयोर्महत् ॥ ५० ॥  
 संक्रुद्धयोर्महाघोरं प्रसक्तं कुरुसत्तम ।  
 ततो जग्राह देवेन्द्रं वृत्रो वीरः शतक्रतुम् ॥ ५१ ॥

को कृतकृत्य जानने लगे । जब विश्व-  
 रूपके पिता त्वष्टा प्रजापतिने सुना, कि  
 मेरे पुत्र विश्वरूपको इन्द्रने मार डाला,  
 तब क्रोधमें भरकर ऐसा कहने  
 लगे । ( ४३-४५ )

त्वष्टा बोले, इन्द्रने क्षमावान दयावा-  
 न जितेन्द्रिय मेरे पुत्रको तप करते हुए  
 विना अपराध मार डाला, इस लिये मैं  
 इन्द्रके विनाशके लिये वृत्रासुरको उत्पन्न  
 करता हूं । आज हमारे तपोबलको सब  
 लोक देखें; दुरात्मा पापी इन्द्र भी आज  
 हमारी तपस्याके बलको देखे । ऐसा क-  
 हकर महायशस्वी और महातपस्वी त्वष्टाने  
 शुद्ध जलको स्पर्श किया । उसके पश्चात्

अग्निमें हवन करके घोररूपी वृत्रासुरको  
 उत्पन्न किया । फिर उससे बोले, हे इन्द्र  
 के शत्रु ! तुम हमारे तपके बलसे बढ़ो ।  
 त्वष्टाके वचन निकलतेही वृत्रासुर  
 अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी होकर  
 आकाशतक बढ़ गया । फिर त्वष्टासे  
 बोला कि हम आपके दास हैं, कहिये  
 क्या करें ? ( ४६-४९ )

त्वष्टा बोले, तुम इन्द्रको जीतो । उन  
 के वचन सुनतेही वृत्रासुर स्वर्गको  
 चला गया । तब वृत्रासुर और इन्द्रका  
 घोर युद्ध हुआ । हे कौरव ! उस घोर  
 युद्धमें वीर वृत्रासुरने यज्ञकर्त्ता इन्द्रको  
 पकड़ लिया । फिर क्रोधसे वृत्रासुरने

अपावृत्याऽक्षिपद्वक्त्रे शक्रं कोपसमन्वितः ।  
 ग्रस्ते वृत्रेण शक्रं तु संभ्रांतास्त्रिदिवेश्वराः ॥ ५२ ॥  
 असृजस्ते महासत्त्वा जृम्भिकां वृत्रनाशिनीम् ।  
 विजृम्भमाणस्य ततो वृत्रस्याऽऽस्यादपावृतात् ॥ ५३ ॥  
 स्वान्यंगान्यभिसंक्षिप्य निष्क्रांतो बलनाशनः ।  
 ततः प्रभृति लोकस्य जृम्भिका प्राणसंश्रिता ॥ ५४ ॥  
 जहृषुश्च सुराः सर्वे दृष्ट्वा शक्रं विनिःसृतम् ।  
 ततः प्रववृते युद्धं वृत्रवासवयोः पुनः ॥ ५५ ॥  
 संरन्ध्रयोस्तदा घोरं सुचिरं भरतर्षभ ।  
 यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो बलसमन्वितः ॥ ५६ ॥  
 त्वष्टुस्तेजोबलाविद्धस्तदा शक्रो न्यवर्तत ।  
 निवृत्ते च तदा देवा विषादमगमन्परम् ॥ ५७ ॥  
 समेत्य सह शक्रेण त्वष्टुस्तेजोविमोहिताः ।  
 अमंत्रयंत ते सर्वे मुनिभिः सह भारत ॥ ५८ ॥  
 किं कार्यमिति वै राजन्विचिंत्य भयमोहिताः ।  
 जग्मुः सर्वे महात्मानं मनोभिर्विष्णुमन्ययम् ।

इन्द्रको अपने मुखमें डाल लिया । फिर अपने मुखको बन्द कर लिया । जब इन्द्र-को वृत्रासुर खा गया , तब सब देवता घबड़ाये । उसी समय उन्होंने वृत्रका नाश करने वाली जमुहाईको उत्पन्न किया । उस जमुहाई लेनेसे वृत्रासुरका मुह फैल गया । ( ५०-५३ )

उसी समय अपने शरीरको छोटा बना कर बल नाशक इन्द्र निकल गये । उसी दिनसे जमुहाई सब जगत्में फैल गई । इन्द्रको निकलते हुए देख सब देवता प्रसन्न हुए । फिर वृत्रासुर और इन्द्रका घोर युद्ध होने लगा । हे भरतकुल

सिंह ! यह युद्ध बहुत दिन तक होता रहा , जब त्वष्टाके तपोबलसे वृत्रासुरकी बहुत वृद्धि हुई । तब इन्द्र युद्ध छोडकर भाग गये । तब देवता बहुत घबड़ाये । त्वष्टाके तपोबलसे सब देवताओंकी बुद्धि नाश हो गई । तब इंद्रसहित सब देवताोंने मुनियोंके सङ्ग सम्मति करी । ( ५४-५८ )

हे राजन् ! देवता लोग भयसे मूढ होकर कहने लगे कि अब क्या करना चाहिये ? अनंतर सब देवता भयसे व्याकुल होकर मन्दराचलके शिखरपर बैठे और अविनाशी विष्णुका ध्यान

उपविष्टा मंदराग्रे सर्वे वृत्रवधेप्सवः

॥ ५९ ॥ [२७९]

इति श्रीमहाभारते० वैशाखिक्यामुद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इंद्रविजये नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इंद्र उवाच—

सर्वं व्याप्तमिदं देवा वृत्रेण जगदव्ययम् ।

न ह्यस्य सदृशं किञ्चित्प्रतिघाताय यद्भवेत् ॥ १ ॥

समर्थो ह्यभवं पूर्वमसमर्थोऽस्मि सांप्रतम् ।

कथं नु कार्यं भद्रं वो दुर्धर्षः स हि मे मतः ॥ २ ॥

तेजस्वी च महात्मा च युद्धे चाऽमितविक्रमः ।

ग्रसेत्त्रिभुवनं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ३ ॥

तस्माद्विनिश्चयमिमं शृणुध्वं त्रिदिवौकसः ।

विष्णोः क्षयमुपागम्य समेत्य च महात्मना ॥ ४ ॥

तेन संमन्त्र्य वेत्स्यामो वधोपायं दुरात्मनः ।

शल्य उवाच—

एवमुक्ते मघवता देवाः सर्बिगणास्तदा ।

शरण्यं शरणं देवं जग्मुर्विष्णुं महाबलम् ॥ ५ ॥

ऊचुश्च सर्वे देवेशं विष्णुं वृत्रभयार्दिताः ।

त्रयो लोकास्त्वथाऽऽक्रांतास्त्रिभिर्विक्रमणैः पुरा ॥ ६ ॥

करके वृत्रासुरके नाशकी इच्छासे लोग मनसे महात्मा विष्णुके पास चले, कि उन महात्माके पास चलनेसे वृत्रासुरके मारने का उपाय जान जायगा । (५९) [ २७९ ]

उद्योगपर्वमें नौ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें दस अध्याय ।

इंद्र बोले, हे देव लोगो ! यह सब अविनाशी जगत् वृत्रसे व्याप्त हुआ है। उसका प्रतीकार करने के योग्य साधन मेरे पास कुछ भी नहीं हैं। जो मैं पूर्व कालमें सामर्थ्यवान् था सो अब सामर्थ्यहीन बन गया हूं। मैं आपके कल्याण करने में सांप्रत असमर्थ हूं, क्योंकि वृत्रका जय करना कठिन हुआ

है। वह महात्मा अत्यंत तेजवान् हैं, युद्धमें इसके समान पराक्रमी कोई भी नहीं है। यह देव और असुरोंके साथ संपूर्ण त्रैलोक्यका नाश करनेमें भी समर्थ है। इसलिये हे देवो ! आप मेरा निश्चय सुनो, अब हम सब महात्मा विष्णुके स्थानमें जाकर और उस महात्मा की संमति से वृत्रासुरके वध का उपाय जान लेंगे। १-५

शल्य बोले इंद्रके, ऐसे वचन सुन सब देवता और ऋषि शरणागत पर कृपा करनेवाले विष्णुके पास गये। महाबलवान महात्मा विष्णुके पास जाकर देवता बोले, हे विष्णु ! हम लोग वृत्रासुरके भयसे व्याकुल हो गये हैं,

अमृतं चाऽऽहृतं विष्णो दैत्याश्च निहता रणे ।  
 बलिं बध्वा अहदैत्यं शक्रो देवाधिपः कृतः ॥ ७ ॥  
 त्वं प्रभुः सर्वदेवानां त्वया सर्वमिदं ततम् ।  
 त्वं हि देवो महादेव सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ८ ॥  
 गतिर्भव त्वं देवानां भेद्राणामधरोत्तम ।  
 जगद्भाषामिदं सर्वं वृत्रेणाऽसुरसूदन ॥ ९ ॥

विष्णुरुवाच—

अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमुत्तमम् ।  
 तस्मादुपायं वक्ष्यामि यथाऽसौ न भविष्यति ॥ १० ॥  
 गच्छध्वं सर्पिर्गन्धर्वा यत्राऽसौ विश्वरूपधृक् ।  
 साम तस्य प्रयुजध्वं तन एनं विजेष्यथ ॥ ११ ॥  
 भविष्यति जयो देवाः शक्रस्य अम तेजसा ।  
 अहश्यश्च प्रवेक्ष्यामि वज्रे ह्यस्याऽऽयुधोत्तमे ॥ १२ ॥  
 गच्छध्वमृषिभिः सार्द्धं गन्धर्वैश्च सुरोत्तमाः ।  
 वृत्रस्य सह शक्रेण संधिं कुरुत मा चिरम् ॥ १३ ॥

शल्य उवाच— एवमुक्ते तु देवेन ऋषयस्त्रिदशास्तथा ।

ययुः समेत्य सहिताः शक्रं कृत्वा पुरःपरम् ॥ १४ ॥

आपके तीनों पावों से पहले तीनों लोक व्याप्त थे; आपने अपने दलसे दैत्योंसे अमृत छीना था और उनको युद्धमें माराभी था; आपने महा पराक्रमी बलिको बांधकर इन्द्रको देवराज बनाया था; आप सब देवतोंके स्वामी हैं; आपसे तीनों लोक व्याप्त हैं; आप देवतोंके महादेव हैं, आपको सब लोक नमस्कार करते हैं; हे देवश्रेष्ठ! आप इन्द्रके सहित देवतोंको शरण दें, आप जगतके स्वामी हैं, हे दैत्यनाशक! इस समय तीनों लोकमें वृत्रासुर व्याप्त हो रहा है। ५-९

विष्णु बोले, हमको अवश्य आप

लोगोंका कल्याण करना चाहिये, इस लिये हम वृत्रासुरके नाशका उपाय बताते हैं, आप सब देवता और ऋषि लोग उस विश्वरूपधारी राक्षसके पास जायें और सन्धि करलें; इसके पश्चात् हमारे तेजसे इन्द्रकी विजय होगी, हम इन्द्रके उत्तम शस्त्र वज्रमें प्रवेश कर जायेंगे, परन्तु हमें कोई नहीं देखेगा, हे देवतो! आप लोग ऋषि और गन्धर्वोंके सहित वृत्रासुरके पास जाकर इन्द्रकी सन्धि करा- दें। इसमें विलम्ब मत करें। १०-१३

शल्य बोले, विष्णुकी ऐसी आज्ञा

समीपमेत्य च यदा सर्व एव महौजसः ।  
 तं तेजसा प्रज्वलितं प्रतपन्तं दिशो दृश ॥ १५ ॥  
 प्रसन्तमिव लोकांस्त्रीन्सूर्याचंद्रमसौ यथा ।  
 ददृशुस्ते ततो वृत्रं शक्रेण सह देवताः ॥ १६ ॥  
 ऋषयोऽथ ततोऽभ्येत्य वृत्रसूचुः प्रियं वचः ।  
 व्याप्तं जगदिदं सर्वं तेजसा तव दुर्जय ॥ १७ ॥  
 न च शक्नोषि निर्जेतुं वासवं बलिनां वर ।  
 युध्यतोश्चापि वां कालो व्यतीतः सुमहानिह ॥ १८ ॥  
 पीड्यन्ते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानुषाः ।  
 सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा ॥ १९ ॥  
 अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्र लोकांश्च आश्वतान् ।  
 ऋषिवाक्यं निशम्याऽथ वृत्रः स तु महाबलः ॥ २० ॥  
 उवाच तानृषीन्सर्वान्प्रणम्य शिरसाऽसुरः ।  
 सर्वे यूयं महाभागा गंधर्वाश्चैव सर्वशः ॥ २१ ॥  
 यद् ब्रूथ तच्छ्रुत्वा सर्वं ममाऽपि शृणुताऽनघाः ।  
 संधिः कथं वै भविता मम शक्रस्य चोभयोः ।

सुन देवता और ऋषि इन्द्रको आगे  
 कर वहांसे चल दिये । फिर वृत्रासुरके  
 पास जाकर महा तेजस्वी देवतोंने अपने  
 तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करते  
 हुए वृत्रासुरको देखा । उस समय चन्द्र  
 सूर्यके समान वृत्रासुरका ऐसा तेज बढ़ा  
 था, मानो वह तीनों लोकोंको, खा  
 जायगा । ( १४—१६ )

पहले वृत्रासुरके पास जाकर ऋषि  
 लोग मीठे वचनसे बोले, हे दुःखसे  
 जीतनेयोग्य ! इस समय तीनों लोक  
 तुम्हारे तेजसे भर गये हैं, हे बलियोंमें  
 श्रेष्ठ ! तुम बहुत दिनसे इन्द्रके सङ्ग युद्ध

कर रहे हो, परन्तु उनको जीत नहीं  
 सकते हो; तुम दोनोंके युद्धसे देवता,  
 मनुष्य और राक्षसोंके सहित सब  
 प्रजाको दुःख होता है, इस लिये तुम  
 इन्द्रके सङ्ग मित्रता कर लो । इससे  
 आपको सौख्य और इन्द्रलोक में  
 शाश्वत स्थान मिलेगा । ( १७—२० )

महा पराक्रमी वृत्रासुर ऋषियोंके  
 वचन सुन उनको प्रणाम कर कहने  
 लगा, तुम सब लोग ऋषि और गन्धर्व  
 हमसे जो कहते हो, सो हमने सुनो । हे  
 पाप-रहितो ! हमकोभी जो कुछ कहना  
 है, सो आप सुनें, हमारे और इन्द्रके

तेजसोर्हि द्वयोर्देवाः सख्यं वै भविता कथम् ॥ २२ ॥

ऋषय ऊचुः- सकृत्सतां संगतं लिप्सितव्यं ततः परं भविता भव्यमेव ।

नाऽतिक्रामेत्सत्पुरुषेण संगतं तस्मात्सतां संगतं लिप्सितव्यम् ॥ २३ ॥

दृढं सतां संगतं चापि नित्यं ब्रूयाच्चाऽर्थं ह्यर्थकृच्छ्रेषु धीरः ।

महार्थवत्सत्पुरुषेण संगतं तस्मात्सतं न जिघांसेत धीरः ॥ २४ ॥

इन्द्रः सतां संमतश्च निवासश्च महात्मनाम् ।

सत्यवादी ह्यनिघश्च धर्मवित्सूक्ष्मनिश्चयः ॥ २५ ॥

तेन ते सह शक्रेण संधिर्भवतु नित्यदा ।

एवं विश्वासमागच्छ मा ते भूद् बुद्धिरन्यथा ॥ २६ ॥

शल्य उवाच- महर्षिवचनं श्रुत्वा तालुवाच महाद्युतिः ।

अवश्यं भगवंतो ये जाननीयास्तपस्विनः ॥ २७ ॥

ब्रवीमि यदहं देवास्तत्सर्वं क्रियते यदि ।

ततः सर्वं करिष्यामि यदूचुर्मां द्विजर्षभाः ॥ २८ ॥

न शुष्केण न चाऽऽर्द्रेण नाऽऽसना न च दारुणा ।

न शस्त्रेण न चाऽस्त्रेण न दिवा न तथा निशि ॥ २९ ॥

सङ्ग मित्रता कैसे हो सकती है? क्यों कि हम दोनोंही महा पराक्रमी हैं? (२०-२२)

ऋषि लोग बोले, मनुष्यको उचित है कि सदा महात्माओंकी सङ्गति करे, फिर कल्याणही प्राप्त होता है। इसलिये महात्माओंकी सङ्गतिको नहीं छोड़ना चाहिये सदा सत्संग की ही इच्छा करना इष्ट है। महात्माओंकी मित्रता अचल और नित्य होती है और आपत्तिके समय में महात्मा लोग योग्य उपदेश करते हैं, सत्समागम महा लाभकारी है इसलिये जाननेवाले पुरुष सत्पुरुषके सङ्गको न छोड़ें। इन्द्र सब महात्माओंमें श्रेष्ठ, और महात्माओंका

आश्रय स्थान है, तथा इन्द्र सत्यवादी, महात्मा, धर्मको जानने वाले और धर्मात्मा हैं, इसलिये इन्द्रके सङ्ग तुम्हारी सन्धि होनी चाहिये, यह सन्धि सदाके लिये रहेगी। इसका विश्वास करो इसमें संशय मत करो। (२३-२६)

शल्य बोले, हे राजन् युधिष्ठिर! महातेजस्वी वृत्रासुरने ऋषियोंके वचन सुन कहा कि आप महा तेजस्वी हैं इसलिये हमको आप लोगोंके वचन अवश्य मानने चाहिये, परन्तु हे द्विजश्रेष्ठ! यदि आप लोग हमारे वचनको करें तो मैं आप लोगोंके सब वचनोंको मानूंगा। हे ब्राह्मण-ऋषियो! मैं सब देवतोंके



वध्यो भवेयं विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह दैवतैः ।  
 एवं मे रोचते सांधिः शक्रेण सह नित्यदा ॥ ३० ॥  
 बाढमित्येव ऋषयस्तस्मै च भूभरतर्षभ ।  
 एवं वृत्ते तु संधाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत् ॥ ३१ ॥  
 युक्तः सदाऽभवच्चापि शक्रो हर्षसमन्वितः ।  
 वृत्रस्य वधसंयुक्तानुपायानन्वर्चयत् ॥ ३२ ॥  
 छिद्रान्वेषी समुद्रिग्रः सदा वसति देवराट् ।  
 स कदाचित्समुद्रांते समपश्यन्महासुरम् ॥ ३३ ॥  
 संध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्त्ते चाऽतिदारुणे ।  
 ततः संचिन्त्य भगवान्वरदानं महात्मनः ॥ ३४ ॥  
 संधेयं वर्त्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसं न च ।  
 वृत्रश्चाऽवश्यवध्योऽयं मम सर्वहरो रिपुः ॥ ३५ ॥  
 यदि वृत्रं न हन्यस्य च वंचयित्वा महासुरम् ।  
 महाबलं महाकायं न मे श्रेयो भविष्यति ॥ ३६ ॥  
 एवं संचिन्तयन्नेव शक्रो विष्णुमनुस्मरन् ।  
 अथ केन तदाऽपश्यत्समुद्रे पर्वतोपमम् ॥ ३७ ॥

सहित इन्द्रके हाथसे सूखे, गीले, पत्थर,  
 काठ, शस्त्र और अस्त्रसे भी न दिनमें और  
 रातमें मारा जाऊंगा। ऐसा करनेसे मैं  
 इन्द्रके सङ्ग नित्य सन्धि करूंगा। २७-३०

हे भरत-कुल-श्रेष्ठ युधिष्ठिर ! वृत्रासुर  
 के ऐसे वचन सुन ऋषियोंने कहा कि  
 बहुत अच्छा ऐसेही होगा। फिर इन्द्र  
 और वृत्रासुरकी सन्धि हो गई। इस  
 सन्धिसे वृत्रासुर और इन्द्र दोनों प्रसन्न  
 हुए, और सुखसे सङ्ग रहने लगे, परन्तु  
 इन्द्र वृत्रासुरको मारनेके उपायोंको  
 सोचतेहुए मारनेका छिद्र देखने लगे और  
 घबडाते हुए दिन काटने लगे। ३१-३३

एक दिन सन्ध्या समय दारुण मुहूर्-  
 त्तमें इन्द्रने वृत्रासुरको समुद्रके तटपर  
 घूमते देखा, उसी समय इन्द्रने महात्मा  
 ऋषियोंके वरदानको स्मरण करके सोचा  
 कि यह घोर सन्ध्याका समय है, अब  
 न रात्रि है, अब न दिन है और यह  
 वृत्रासुर हमारा सर्वनाश करनेवाला शत्रु  
 है। इस लिये इसको अवश्य मारना  
 चाहिये, यदि मैं इस समय छलकर  
 वृत्रासुरको न मारूंगा तो मेरा कल्याण  
 नहीं होगा; क्योंकि यह बड़ा बलवान  
 और बड़े शरीरवाला है। ( ३३-३६ )

ऐसा विचारकर इन्द्रने विष्णुका ध्यान

नाऽयं शुष्को न चाऽऽर्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा ।  
 एनं क्षेपस्यामि वृत्रस्य क्षणादेव न शिष्यति ॥ ३८ ॥  
 स वज्रमथ फेनं तं क्षिप्रं वृत्रे निसृष्टवान् ।  
 प्रविश्य फेनं तं विष्णुरथ वृत्रं व्यनाशयत् ॥ ३९ ॥  
 निहते तु ततो वृत्रे दिशो वितिमिराऽभवन् ।  
 प्रवधौ न शिवो वायुः प्रजाश्च जहृषुस्तथा ॥ ४० ॥  
 ततो देवाः सगंधर्वा यक्षरक्षोमहोरगाः ।  
 ऋषयश्च महेन्द्रं तमस्तुवन्विविधैः स्तवैः ॥ ४१ ॥  
 नमस्कृतः सर्वभूतैः सर्वभूतान्यसांत्वयत् ।  
 हत्वा शत्रुं प्रहृष्टात्मा वासवः सह दैवतैः ॥ ४२ ॥  
 विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास धर्मवित् ।  
 ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयंकरे ॥ ४३ ॥  
 अनृतेनाऽभिभूतोऽभूच्छक्रः परमदुर्मनाः ।  
 त्रैशर्षियाऽभिभूतश्च स पूर्वं ब्रह्महत्यया ॥ ४४ ॥  
 सोऽन्तमाश्रित्य लोकानां नष्टसंज्ञो विचेतनः ।  
 न प्राज्ञायत देवेन्द्रस्त्वभिभूतः सकल्मषैः ॥ ४५ ॥

किया । उसी समय समुद्रमें एक पर्वतके  
 समान फेन दिखाई दिया ! उसको देख-  
 कर इन्द्रने विचारा कि यह न सूखा, न  
 गीला, न शस्त्र और न अस्त्र है ! इस  
 लिये इसीसे वृत्रासुरको मारना चाहिये,  
 इसके लगतेही यह मर जायगा । उसी  
 समय इन्द्रने फेन रूप वज्र उठाकर वृत्रा-  
 सुरके शिरमें मारा । उस वज्रमें विष्णुने भी  
 प्रवेश किया था, उसके लगतेही वृत्रासुर  
 मरकर पृथ्वीमें गिर गया । (३७-३९)

वृत्रासुरके मरतेही दिशा निर्मल हो  
 गई । शीतल वायु चलने लगा और प्रजा  
 भी सुखी हो गई । उसी समय देवता,

गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प और ऋषि  
 लोग अनेक प्रकारसे इन्द्रकी स्तुति करने  
 लगे । अपने शत्रुको मारकर इन्द्र देव-  
 तोंके सहित प्रसन्न हुए और सबकी  
 स्तुति सुनकर सबको शान्त करने लगे ।  
 फिर धर्म जाननेवाले इन्द्रने सब जगत्  
 श्रेष्ठ विष्णुकी पूजा करी । (४०-४३)

जब देवतोंको भय देनेवाला महा  
 पराक्रमी वृत्रासुर मारा गया, तब इन्द्र इस  
 विश्वासघात और पहले करी विश्वरूपकी  
 ब्रह्महत्यासे बहुत घबडाये । अनन्तर एका-  
 न्तमें जाकर संज्ञाशून्य होकर बैठ रहे । उस  
 समय पापोंके वशमें होनेसे इन्द्रको कुल

प्रतिच्छन्नोऽवसच्चाऽप्सु चेष्टमान इवोरगः ।

नतः प्रनष्टे देवेन्द्रे ब्रह्महत्याभयार्दिते ॥ ४६ ॥

भूमिः प्रध्वस्तसंकाशा निर्वृक्षा शुष्ककानना ।

विच्छिन्नस्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि च ॥ ४७ ॥

संक्षोभश्चापि सत्वानामनावृष्टिकृतोऽभवत् ।

देवाश्चापि भृशं त्रस्तास्तथा सर्वे महर्षयः ॥ ४८ ॥

अराजकं जगत्सर्वमभिभूतमुपद्रवैः ।

ततो भीताऽभवन्देवाः को नो राजा भवेदिति ॥ ४९ ॥

दिवि देवर्षयश्चापि देवराजविनाकृताः ।

न स्म कश्चन देवानां राज्ये वै कुरुते मतिम् ॥ ५० ॥ [३२९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि

वृत्रवधे इन्द्रविजयोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

शल्य उवाच— ऋषयोऽथाऽब्रुवन्सर्वे देवाश्च त्रिदिवेश्वराः ।

अयं वै नहुषः श्रीमान्देवराज्येऽभिषिच्यताम् ॥ १ ॥

तेजस्वी च यशस्वी च धार्मिकश्चैव नित्यदा ।

ते गत्वा त्वब्रुवन्सर्वे राजा नो भव पार्थिव ॥ २ ॥

स नानुवाच नहुषो देवानृषिगणांस्तथा ।

ज्ञान नहीं रहा, वे जलमें छिपकर सांपके समान रहने लगे । (४३-४६)

जिस समय ब्रह्महत्यासे डरकर इन्द्र भाग गये, उस समय वनोंके वृक्ष सूख गये, भूमि नष्टके समान हो गई, नदियोंके जल सूख गये, तलाव जल रहित हो गये, जल नहीं बरसा इससे सब प्रजा घबडा गई । देवता और ऋषि भी कांपने लगे; सब जगत् राजा न होनेसे उपद्रवोंसे भर गया । तब देवतोंने घबडा कर विचारा कि हम किसे राजा बनावें । इन्द्रसे विरहित होकर देव ऋषि

भी घबडाये परन्तु इन्द्र बनेकी संमति किसीने भी नहीं करी (४६-५०)

उद्योगपर्वमें दस अध्याय समाप्त । [३२९]

उद्योगपर्वमें ग्यारह अध्याय ।

शल्य बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! जिस समय इन्द्र चले गये, तब सब देवता और ऋषि लोग संमति करके कहने लगे कि श्रीमान् महाराज नहुषको इन्द्र बनाना चाहिये, क्योंकि ये तेजस्वी यशस्वी और धार्मिक हैं । ऐसा विचार कर सब देवता और ऋषि नहुषके पास जाकर कहने लगे, हे पृथ्वीनाथ ! आप

पितृभिः सहितान् राजन्परीप्सन्हितमात्मनः ॥ ३ ॥

दुर्बलोऽहं न मे शक्तिर्भवतां परिपालने ।

बलवाञ्जायते राजा बलं शक्ते हि नित्यदा ॥ ४ ॥

तमब्रुवन्पुनः सर्वे देवा ऋषिपुरोगमाः ।

अस्माकं तपसा युक्तः पाहि राज्यं त्रिविष्टपे ॥ ५ ॥

परस्परभयं घोरमस्माकं हि न संशयः ।

अभिषिच्यस्व राजेंद्र भव राजा त्रिविष्टपे ॥ ६ ॥

देवदानवयक्षाणामृषीणां रक्षसां तथा ।

पितृगंधर्वभूतानां चक्षुर्विषयवर्तिनाम् ॥ ७ ॥

तेज आदास्यसे पश्यन्बलवांश्च भविष्यासि ।

धर्मं पुरस्कृत्य सदा सर्वलोकाधिपो भव ॥ ८ ॥

ब्रह्मर्षीश्चापि देवांश्च गोपायस्व त्रिविष्टपे ।

अभिषिक्तः स राजेंद्र तनो राजा त्रिविष्टपे ॥ ९ ॥

धर्मं पुरस्कृत्य तदा सर्वलोकाधिपोऽभवत् ।

सुदुर्लभं वरं लब्ध्वा प्राप्य राज्यं त्रिविष्टपे ॥ १० ॥

धर्मात्मा सततं भूत्वा कामात्मा सप्रपद्यत ।

हम लोगोंके राजा हूजिये । ऐसा सुन राजा नहुष हितकी इच्छासे पितृ, ऋषि और देवतोंसे बोले, हम बहुत दुर्बल हैं, इस लिये आप लोगोंके राजा नहीं हो सकते; बलवानही राजा हो सकता है, और बल सदासे इन्द्रहीमें है । ( १-४ )

उनके वचन सुन ऋषि और देवता बोले, आप हम लोगोंके तपसे रक्षित हो कर स्वर्गका राज्य कीजिये, क्योंकि बिना राजा के परस्पर द्वेष होनेका भय है, इस लिये आप स्वर्गके राजा हूजियो। इन्द्र होतेही आपमें आखोंसे देखने ही से देवता, दानव, यक्ष, राक्षस, ऋषि, पितर

और गन्धर्व आदि सब प्राणियोंका तेज आ जायगा, और आप बलवान् होंगे इस लिये आप धर्म सहित स्वर्गका राज्य कीजिये । आप इन्द्र होकर देवता ऋषि और ब्राह्मणोंकी रक्षा कीजियो । ( ५-९ )

हे युधिष्ठिर ! ऐसा कहकर सचने राजा नहुषका इन्द्र बनाया । वे भी धर्म से तीनों लोकोंका राज्य करने लगे । इस दुर्लभ वरको पाकर धर्मात्मा नहुष इन्द्रका राज्य करने लगे । नहुष नित्य धर्मात्मा होकर भी इन्द्रपद मिलने के पश्चात् काम भोग लेनेकी अभिलाषा करने लगे । उसी समय वह देवों के

देवोद्यानेषु सर्वेषु नन्दनोपवनेषु च ॥ ११ ॥  
 कैलासे हिमवत्पृष्ठे मंदरे श्वेतपर्वते ।  
 सख्ये महेंद्रे मलये समुद्रेषु सरित्सु च ॥ १२ ॥  
 अप्सरोभिः परिवृतो देवकन्यासमावृतः ।  
 नहुषो देवराजोऽथ क्रीडन्बहुविधं तदा ॥ १३ ॥  
 शृण्वन्दिव्या बहुविधाः कथाः श्रुतिमनोहराः ।  
 वादित्राणि च सर्वाणि गीतं च मधुरस्वनम् ॥ १४ ॥  
 विश्वावसुर्नारदश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।  
 कतवः षट् च देवेन्द्रं सूर्तिमंत उपस्थिताः ॥ १५ ॥  
 भारुतः सुरभिर्वाति मनोज्ञः सुग्वशीतलः ।  
 एवं च क्रीडतस्तस्य नहुषस्य दुरात्मनः ॥ १६ ॥  
 संप्राप्ता दर्शनं देवी शक्रस्य महिषी प्रिया ।  
 स तां संदृश्य दुष्टात्मा प्राह सर्वान्सभासदः ॥ १७ ॥  
 इन्द्रस्य महिषी देवी कस्मान्मां नोपतिष्ठति ।  
 अहमिन्द्रोऽस्मि देवानां लोकानां च तथेश्वरः ॥ १८ ॥  
 आगच्छतु शची मत्तं क्षिप्रमेव निवेशनम् ।  
 तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह ॥ १९ ॥

नन्दनादि अनेक उपवनोमें तथा नाना  
 अरण्योमें, कभी कैलासपर्वतमें, कभी हि-  
 मालयके ऊपर, कभी श्वेतपर्वत और मंदर  
 में, कभी सख्य पर्वतमें, कभी महेंद्राचलमें,  
 कभी मलयपर्वतमें, कभी समुद्रमें और  
 कभी नदीयोंके बीचमें अनेक अप्सरा  
 और देव कन्याओंको प्राप्त करके उनके  
 सङ्ग अनेक प्रकारकी काम क्रीडा करने  
 लगे । ( १८-१३ )

उत्तम दिव्य और कर्णारम्य कथा,  
 मनोहर बाजे और मीठे स्वरवाली गी-  
 तोंको सुनते हुए आनन्द करने लगे ।

विश्वावसु, नारद, गन्धर्व अप्सरा और  
 छहों ऋतु रूप धारण करके राजा नहु-  
 षके पास आने लगे । उनके संमुख उ-  
 त्तम स्पर्शवाली सुगन्धयुक्त वायु चलने  
 लगी । इस प्रकार राजा नहुष बहुत  
 दिन तक आनन्द करते रहे । ( १४-१६ )

एक दिन उसने इन्द्रकी प्यारी स्त्री  
 शचीको देखा; उसको देख दुष्ट मन-  
 वाला नहुष सभासदोंसे बोले, इन्द्राणी  
 हमारे पास क्यों नहीं आती ? यह इन्द्रकी  
 प्यारी स्त्री हमसे क्यों प्रेम नहीं करती ?  
 हम इन्द्र हैं, और तीनों लोकोंके स्वामी

रक्ष मां नहुषाद्रक्षस्त्वामस्मि शरणं गता ।  
 सर्वलक्षणसंपन्नां ब्रह्मस्त्वं मां प्रभाषसे ॥ २० ॥  
 देवराजस्य दयितामत्यंतं सुखभागिनीम् ।  
 अवैषव्येन युक्तां चाऽप्येकपत्नीं पतिव्रताम् ॥ २१ ॥  
 उक्तवानसि मां पूर्वमृतां तां कुरु वै गिरम् ।  
 नोक्तपूर्वं च भगवन्ब्रूथा ते किञ्चिदीश्वर ॥ २२ ॥  
 तस्मादेतद्भवेत्सत्यं त्वयोक्तं द्विजसत्तम ।  
 बृहस्पतिरथोवाच शक्राणीं भयमोहिताम् ॥ २३ ॥  
 यदुक्ताऽसि मया देवि सत्यं तद्भाविता ध्रुवम् ।  
 द्रक्ष्यसे देवराजानभिद्रं शीघ्रमिहाऽऽगतम् ॥ २४ ॥  
 न भेतव्यं च नहुषात्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।  
 समानयिष्ये शक्रेण न चिराद्भवन्तीमहम् ॥ २५ ॥  
 अथ शुश्राव नहुषः शक्राणीं शरणंगनाम् ।  
 बृहस्पतेरंगिरसश्चक्रोध स वृषस्तदा ॥ २६ ॥ [ ३५५ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि  
 इन्द्राणीभये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

हैं, इस लिये शीघ्रही शची हमारे घरमें आवे । ( १७—१९ )

ऐसा सुनकर शची बहुत घबडाई,  
 और बृहस्पतिको शरण जाकर कहने  
 लगी, हे ब्राह्मण ! मैं, आपकी शरणागत  
 हूं, आप हमको नहुषसे बचाइये; मैं  
 सब लक्षणोंसे भरी और इन्द्रकी स्त्री हूं,  
 सदासे सुख अनुभव किया है, आपने  
 पहले मुझको आशीर्वाद दिया था, कि तू  
 विधवा नहीं होगी; एककी स्त्री और  
 पतिव्रता रहेगी, सो हे ब्रह्मन् ! हे ईश्वर !  
 आप अपने वचनोंको सत्य कीजिये ।  
 आप कभी झूठ नहीं बोलते हैं, इस लिये

आपके ये वचनभी सत्य होने चाहिये ? १९

भयसे व्याकुल इन्द्राणीसे बृहस्पति  
 बोले, हे देवि ! तुमने हमसे जो कुछ  
 कहा सो सब सत्य ही होगा, तुम  
 शीघ्रही स्वर्गमें आये इन्द्रको देखोगी;  
 इस लिये नहुषसे कुछ मत डरो । मैं  
 तुमसे सत्य कहता हूं, कि मैं शीघ्रही  
 इन्द्रको बुलाऊंगा । ( २२—२५ )

इन्द्राणी बृहस्पतिकी शरणमें गई  
 है, इस समाचारको राजा नहुषने भी  
 सुन लिया, सुनकर बृहस्पतिके ऊपर  
 बहुत क्रोध किया । ( २६ ) [ ३५५ ]

उद्योगपर्वमें ग्यारह अध्याय समाप्त ।

शल्य उवाच—

क्रुद्धं तु नहुषं दृष्ट्वा देवा ऋषिपुरोगमाः ।

अब्रुवन्देवराजानं नहुषं घोरदर्शनम् ॥ १ ॥

देवराज जहि क्रोधं त्वयि क्रुद्धे जगद्विभो ।

त्रस्तं सासुरगंधर्वं सकिंनरमहोरगम् ॥ २ ॥

जहि क्रोधमिदं साधो न कुप्यन्ति भवद्विधाः ।

परस्य पत्नी सा देवी प्रसीदस्व सुरेश्वर ॥ ३ ॥

निवर्नय मनः पापात्परदाराभिमर्शनात् ।

देवराजोऽसि भद्रं ते प्रजा धर्मेण पालय ॥ ४ ॥

एवमुक्तो न जग्राह तद्वचः काममोहितः ।

अथ देवानुवाचेदमिदं प्रति सुराधिपः ॥ ५ ॥

अहल्या धर्षिता पूर्वसृषिपत्नी यशस्विनी ।

जीवतो भर्तुरिद्रेण स वः किं न निवारितः ॥ ६ ॥

बहूनि च नृशंसानि कृतानीद्रेण वै पुरा ।

वैधर्म्याण्युपधाश्चैव स वः किं न निवारितः ॥ ७ ॥

उपतिष्ठतु देवी मामेतदस्याऽहितं परम् ।

गुह्यमाकं च सदा देवाः शिवमेवं भविष्यति ॥ ८ ॥

उद्योगपर्वमें बारह अध्यायः ।

शल्य बोले, जब देवता और ऋषियों ने नहुषको क्रोध किये देखा तब भयंकर दीखनेवाले उनसे सब देव बोले, हे देवराज ! हे जगत्के स्वामी ! आप क्रोध मत कीजिये, आपको क्रोध होनेसे देवता, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर और सर्प आदि सब प्रजा डर रही है, हे महात्मन् ! आप इस क्रोधको छोड़ दीजिये क्योंकि आपके तुल्य मनुष्य क्रोध नहीं करते, हे देवराज ! आप प्रसन्न हूजिये, शची दूसरेकी स्त्री है; आप इस पापसे अपने चित्तको फेरिये,

दूसरेकी स्त्रीके ऊपर दृष्टि करना महात्माओंका काम नहीं है, आप देवराज हैं, धर्मसे प्रजाका पालन कीजिये । १-४

ऋषियों ने अनेक वचन कहे, परन्तु काम मोहित नहुषने कुछ न सुना और देवोंसे कहने लगा कि पहले इन्द्रने गौतम के जीतेही उसकी स्त्री अहल्याको भ्रष्ट किया था, तुम लोगों ने उनको क्यों नहीं मना किया ? उस इन्द्रने पूर्वकालमें निर्दयताके बहुत कुत्थ किये हैं, तथा धर्मको छोड़ कर और कपटका आश्रय करही बहुत काम किये हैं, उस समय आपलोग उनको क्यों नहीं मना करते

देवा ऊचुः— इंद्राणीमानयिष्यामो यथेच्छसि दिवस्पते ।  
 जहि क्रोधमिमं वीर प्रीतो भव सुरेश्वर ॥ ९ ॥

शल्य उवाच— इत्युक्त्वा तं तदा देवा ऋषिभिः सह भारत  
 जग्मुर्वृहस्पतिं वक्तुमिन्द्राणीं चाऽशुभं वचः ॥ १० ॥  
 जानीमः शरणं प्राप्तामिन्द्राणीं तव वेदमनि ।  
 दत्ताभयां च विप्रेन्द्र त्वया देवर्षिसत्तम ॥ ११ ॥  
 ते त्वां देवाः संगंधर्वा ऋषयश्च महाद्युते ।  
 प्रसादयन्ति चेन्द्राणी नहुषाय प्रदीयताम् ॥ १२ ॥  
 इंद्राद्विशिष्टो नहुषो देवराजो महाद्युतिः ।  
 वृणोत्विमं वरारोहा भर्तृत्वे वरवर्णिनी ॥ १३ ॥  
 एवमुक्ते तु सा देवी बाष्पमुत्सृज्य सस्वनम् ।  
 उवाच रुदती दीना वृहस्पतिमिदं वचः ॥ १४ ॥  
 नाऽहमिच्छामि नहुषं पतिं देवर्षिसत्तम ।  
 शरणागताऽस्मि ते ब्रह्मस्त्रायस्व महतो भयात् ॥ १५ ॥

वृहस्पतिरुवाच— शरणागतं न त्यजेयमिन्द्राणि मम निश्चयः ।  
 धर्मज्ञां सत्यशीलां च न त्यजेयमनिदिते ॥ १६ ॥

थे । शची हमारे पास आवे इसीमें उस  
 का और आपका कल्याण होगा । (५-८)  
 देवता बोले, हे स्वर्गनाथ ! आप क्रोध-  
 को दूर कीजिये, हम लोग आपकी इच्छा  
 नुसार इंद्राणीको लानेके लिये जाते हैं । ९

शल्य बोले, नहुषको ऐसा कहकर  
 यह सब समाचार कहनेको देवता और  
 ऋषि बृहस्पति और इंद्राणीके पास गये  
 और बृहस्पतिसे कहने लगे । हे  
 देवऋषियोंमें श्रेष्ठ ! हे ब्राह्मणोत्तम !  
 हम लोग जानते हैं कि उस इंद्राणीको  
 अभय देकर आपने अपने स्थानमें रक्खा  
 है । हे महानेजस्विन् ! आपसे देवता और

ऋषि इंद्राणीको नहुषके लिये मांगते हैं,  
 आप दीजिये । नहुष महानेजस्वी और देव  
 राज के समान तेजस्वी हैं, इस लिये सुंदरी  
 शची उनको अपना पति बनावे । १०-१३

देवताओंके वचन सुन शची रोकर  
 बृहस्पतिसे कहने लगी, हे देवऋषियोंमें  
 श्रेष्ठ ! मैं नहुषको अपना पति बनाना  
 नहीं चाहती, आप इस भयसे मेरी  
 रक्षा कीजिये । (१४-१५)

बृहस्पति बोले, हे इंद्राणी ! मेरी यह  
 प्रतिज्ञा है कि, हम शरणागतको नहीं  
 छोड़ते, हे निन्दारहित शची ! तुम धर्म  
 और सत्यसे भरी हो, इस लिये



नाऽकार्यं कर्तुमिच्छामि ब्राह्मणः सन्निशेषतः ।

श्रुतधर्मा सत्यशीलो जानन्धर्मानुशासनम् ॥ १७ ॥

नाऽहमेतत्कारिष्यामि यच्छब्दं वै सुरोत्तमाः ।

अस्मिंश्चाऽर्थे पुरा गीतं ब्रह्मणा श्रूयतामिदम् ॥ १८ ॥

न तस्य बीजं रोहति रोहकाले न तस्य वर्षं वर्षति वर्षकाले ।

भीतिं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे न स त्रातारं लभते त्राणमिच्छन् ॥ १९ ॥

मोघसन्नं बिंदति चाऽप्यचेताः स्वर्गल्लोकाद्भयति नष्टचेष्टः ।

भीतिं प्रपन्नं प्रददाति यो वै न तस्य हव्यं प्रतिगृह्णाति देवाः ॥ २० ॥

प्रमीयते चाऽस्य प्रजा ह्यकाले सदा विवासं पितरोऽस्य कुर्वते ।

भीतिं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे सैन्द्रादेवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम् ॥ २१ ॥

एतदेवं विजानन्वै न दास्यामि शचीमिमांशु ।

इन्द्राणीं विश्रुतां लोके शक्रस्य महिषीं प्रियाम् ॥ २२ ॥

अस्याऽहितं भवेद्यच्च मम चापि हितं भवेत् ।

क्रियतां तत्सुरश्रेष्ठा नहि दास्याम्यहं शचीम् ॥ २३ ॥

शल्य उवाच— अथ देवाः संगंधर्वा गुरुमाहुरिदं वचः ।

हम तुसको नहीं छोड़ेंगे, मैं ब्राह्मण हूं, इस लिये अधर्म नहीं करूंगा । मैं धर्म जानता हूं, शीलसे भरा हूं और धर्मका शासन मानता हूं, इस लिये अधर्म नहीं करूंगा । ( १६—१७ )

हे देवतो ! तुम लोग चले जाओ मैं इन्द्राणीं को नहीं दूंगा; इस विषयमें ब्रह्माने जो कहा है सो सुनो,—“जो शरणागतको शत्रुको दे देता है, उसके बोये खेतमें अन्न नहीं उत्पन्न होते, वर्षाकाल होनेपर भी समयपर जल नहीं बरसता और आपत्कालमें उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं मिलता; उसका अन्न भक्षण करना व्यर्थ होजाता, और वह भूख स्वर्गलोकसे

भी गिरा दिया जाता है । जो डरे हुए शरणागतको छोड़ देता है, उसकी आहुतिको देवता नहीं ग्रहण करते, उसकी प्रजा नष्ट हो जाती है, उसके पितर नरकमें चले जाते हैं और इन्द्र सहित देवता उसके ऊपर वज्र गिराते हैं ।” ( १८—२१ )

हम इन सबको जानकर शचीको नहीं देंगे, क्योंकि यह जगत्में इन्द्रकी प्यारी स्त्री विख्यात है; जिसमें हमारा और इसका कल्याण हो, सोई काम आप लोगोंको करना चाहिये । हम शचीको नहीं देंगे । ( २२—२३ )

शल्य बोले, बृहस्पतिके ऐसे वचन सुन सब देवता ऋषि और गन्धर्व कहने

कथं लुनीतं तु भवेन्मंत्रयस्व बृहस्पते ॥ २४ ॥

बृहस्पतिरुवाच—नहुषं याचतां देवी किञ्चित्कालांतरं शुभा ।

इन्द्राणीहितमेतद्धि तथाऽस्माकं भविष्यति ॥ २५ ॥

बहुविघ्नः सुराः कालः कालः कालं नयिष्यति ।

गर्वितो बलवांश्चापि नहुषो वरसंश्रयात् ॥ २६ ॥

शल्य उवाच—ततस्तेन तथोक्ते तु प्रीता देवास्तथाऽब्रुवन् ।

ब्रह्मन्साध्विदमुक्तं ते हितं सर्वं दिवौकसाम् ॥ २७ ॥

एवमेतद् द्विजश्रेष्ठ देवी चयं प्रसाधयताम् ।

ततः समस्ता इन्द्राणी देवाश्चाऽग्निपुरोगमाः ॥ २८ ॥

ऊर्ध्वचनमन्यथा लोकानां हितकाम्यया ।

देवा ऊचुः—त्वया जगदिदं सर्वं धृतं स्यावरजंगमम् ।

एकपत्न्यासि सत्या च गच्छस्व नहुषं प्रति ॥ २९ ॥

क्षिप्रं त्वामभिकाशश्च विनशिष्यति पापकृत् ।

नहुषो देवि शक्रश्च सुरैश्वर्यमवाप्स्यति ॥ ३० ॥

एवं विनिश्चयं कृत्वा इन्द्राणी कार्यसिद्धये ।

अभ्यगच्छत सत्रीडा नहुषं घोरदर्शनम् ॥ ३१ ॥

लगे, हे बृहस्पते ! अब किस प्रकारसे कल्याण होगा सो कहो । (२४)

बृहस्पति बोले, कुछ समयके लिये नहुषसे इन्द्राणीको माँगना चाहिये, इसमें हमारा तुम्हारा और इन्द्राणीका कल्याण है । हे देवतो ! कालमें बहुत विघ्न रहते हैं फिर कुछ और विघ्न पड़ जायगा, क्योंकि आपत्तिके कालको दूर करने वाला कालही है । इस समय वरदानसे नहुष बहुत अभिमानी और बलवान हो गया है । (२५-२६)

शल्य बोले, बृहस्पतिके वचन सुन सब देवता प्रसन्न हुए और कहने लगे

कि, हे ब्रह्मन् ! आपने बहुत ठीक कहा, ऐसा करनेसे सब देवतोंका कल्याण होगा । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! ऐसाही करनेसे इन्द्राणीको प्रसन्न करना चाहिये । अनन्तर अग्नि आदिक देवता लोकके कल्याण के लिये इन्द्राणीसे कहने लगे । २७-२९

देवता बोले, हे देवि ! तुम्हारे सत्यसे यह सब स्थिर और चर जगत स्थिर है । तुम पतिव्रता धर्मसे भरी हो, तुम नहुषके पास जाओ, वह इस समय देवराज इन्द्र है, तुमको प्राप्त करतेही उसका नाश हो जायगा । ऐसा निश्चय करके इन्द्राणी पापी नहुषके पास गई । नहुष

दृष्ट्वा तां नहुषश्चापि वयोरूपसम्भन्विताम् ।

समहृष्यत दुष्टात्मा कामोपहतचेतनः ॥ ३२ ॥ [३८७]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्राणीकालावधियाचने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

शल्य उवाच—

अथ तामब्रवीद् दृष्ट्वा नहुषो देवराट् तदा ।

त्रयाणामपि लोकानामहर्षिन्द्रः शुचिस्मिते ॥ १ ॥

भजस्व मां वरारोहे पतित्वे वरवर्णिनि ।

एवमुक्ता तु सा देवी नहुषेण पतिव्रता । ॥ २ ॥

प्रावेपत भयोद्विग्ना प्रवाते कदली यथा ।

प्रणम्य सा हि ब्रह्माणं शिरसा तु कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥

देवराजमथोवाच नहुषं घोरदर्शनम् ।

कालमिच्छाम्यहं लब्धुं त्वत्तः कांचित्सुरेश्वर ॥ ४ ॥

नहि विज्ञायते शक्रः किं वा प्राप्तः क्व वा गतः ।

तत्त्वमेतत्तु विज्ञाय यदि न ज्ञायते प्रभो ॥ ५ ॥

ततोऽहं त्वामुपस्थास्ये सत्यमेतद्व्रीमि ते ।

एवमुक्तः स इन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत् ॥ ६ ॥

नहुष उवाच—

एवं भवतु सुश्रोणि यथा मामिह भाषसे ।

ज्ञात्वा चाऽऽगमनं कार्यं सत्यमेतदनुस्मरेः ॥ ७ ॥

भी उस सुन्दरी रूपवतीको देख  
कामसे मोहित होकर प्रसन्न  
हुए । (३०-३२) [३८७]

उद्योगपर्वमें बारह अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें तेरह अध्याय ।

शल्य बोले, हे राजन् युधिष्ठिर !  
शचीको देख देवराज नहुषने कहा, मैं  
तीनों लोकोंका इन्द्र हूं, हे सुन्दर हंसने  
वाली ! हे सुन्दरमुखी ! हे उत्तम  
वर्णवाली ! तुम हमारी स्त्री होवो । १-२

पतिव्रता शची नहुषके ऐसे वचन  
सुन इस प्रकार कांपने लगी, जैसे महा-

वातसे केलेका वृक्ष कांपता है । फिर  
ब्रह्माको हाथ जोड़कर घोर दीखने वाले  
नहुषसे बोली, हे देवराज ! आप थोडा  
समय हमको दीजिये, क्योंकि मैं यह  
नहीं जानती कि इन्द्र कहां गये और  
किस दशामें हैं ? इस लिये मैं इस  
सबको जानकर यदि इनका पता न लग  
जाय तो आपकी स्त्री हूंगी, यह मेरे  
वचन सत्य है । ( २-६ )

इन्द्राणीके ऐसे वचन सुन नहुष  
प्रसन्न होकर कहने लगे । नहुष बोले, हे  
सुश्रोणि ! तुम जो कहती हो सो ऐसेही

नहुषेण विसृष्टा च निश्चक्राम ततः शुभा ।  
 बृहस्पतिनिकेतं च सा जगाम यशस्विनी ॥ ८ ॥  
 तस्याः संश्रुत्य च वचो देवाश्चाऽग्निपुरोगमाः ।  
 चिंतयामासुरेकाग्राः शक्रार्थं राजसत्तम ॥ ९ ॥  
 देवदेवेन संगम्य विष्णुना प्रभविष्णुना ।  
 ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥ १० ॥  
 ब्रह्मवध्याभिभूतो वै शक्रः सुरगणेश्वरः  
 गतिश्च नस्त्वं देवेश पूर्वजो जगतः प्रभुः ॥ ११ ॥  
 रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ।  
 त्वद्वीर्यनिहते वृत्रे वासवो ब्रह्महत्यया ॥ १२ ॥  
 वृतः सुरगणश्रेष्ठ मोक्षं तस्य विनिर्दिश ।  
 तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां विष्णुरब्रवीत् ॥ १३ ॥  
 मामेव यजतां शक्रः पावयिष्यामि वज्रिणम् ।  
 पुण्येन हयमेधेन मामिष्ट्वा पाकशासनः ॥ १४ ॥  
 पुनरेष्यति देवानामिद्रत्वमकुतो भयः ।  
 स्वकर्मभिश्च नहुषो नाशं यास्यति दुर्मतिः ॥ १५ ॥  
 किञ्चित्कालमिदं देवा मर्षयध्वमनंद्रिताः ।

होगा, तुम इन्द्रकी सब बात जानकर हमारे पास आना, हमकोभी ऐसाही जान पड़ता है। ऐसा कह नहुषने इन्द्राणीको विदा किया ! सुन्दरी यशस्विनी इन्द्राणी वहाँसे चलकर बृहस्पतिके घर गई और सब देवतोंको नहुषके वचन कह सुनाये । ( ६-८ )

अग्नि आदिक देवतोंने शचीके वचन सुन एकान्तमें बैठकर इन्द्रके बुलानेका विचार किया । फिर सब पाण्डित देवता घबड़ाकर जगत्के स्वामी देवदेव विष्णुके पास गये और कहने लगे कि इन्द्र ब्रह्म

हत्यासे घबड़ाकर न जाने कहाँ भाग गये, अब आपही हम सबके स्वामी हैं, और हम लोग आपकी शरण हैं, आप जगत्की रक्षाके लिये विष्णु हुए हैं; आपके बलसे वृत्रासुरको मारकर ब्रह्महत्यासे घबड़ा कर इन्द्र भाग गये । अब आप उनके पवित्र होनेकी कथा बताइये । ९-१३

देवतोंके वचन सुन विष्णु बोले यदि पुण्य हयमेध यज्ञसे इन्द्र हमारी पूजा करे तो हम वज्रधारी इन्द्रको पवित्र कर देंगे । निर्भय इन्द्र फिर देवतोंके राजाहोंगे और पापी नहुषका अपने कर्मोंसे नाश

श्रुत्वा विष्णोः शुभां सत्यां वाणीं ताममृतोपसाम् ॥ १६ ॥  
 ततः सर्वे सुरगणाः सोपाध्यायाः सहर्षिभिः ।  
 यत्र शक्रो भयोद्विग्नस्तं देशमुपचक्रमुः ॥ १७ ॥  
 तत्राश्वमेधः सुमहान्महेन्द्रस्य महात्मनः ।  
 ववृते पावनार्थं वै ब्रह्महत्यापहो नृप ॥ १८ ॥  
 विभज्य ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च ।  
 पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैव युधिष्ठिर ॥ १९ ॥  
 संविभज्य च भूतेषु विशृज्य च सुरेश्वरः ।  
 विज्वरो धूतपाप्मा च वासवोऽभवदात्मवान् ॥ २० ॥  
 अकंपन्नहुषं स्थानाद् दृष्ट्वा बलनिषूदनः ।  
 तेजोघ्नं सर्वभूतानां वरदानाच्च दुःसहम् ॥ २१ ॥  
 ततः शचीपतिर्देवः पुनरेव व्यनश्यत ।  
 अदृश्यः सर्वं भूतानां कालाकांक्षी चचार ह ॥ २२ ॥  
 प्रनष्टे तु ततः शक्रे शची शोकसमन्विता ।  
 हा शक्रेति तदा देवी बिललाप सुदुःखिता ॥ २३ ॥  
 यदि दत्तं यदि हुतं गुरवस्तोषिता यदि ।

हों जायगा । हे देवतो ! तुम लोग थोड़े दिन आलस रहित होकर समय-बिताओ । विष्णुके ऐसे उत्तम वचन सुन देवतोंने इस वाणीको सत्य और अमृत-के समान जाना । इसके पश्चात् सब देवता और ऋषि उस स्थानपर गये, जहाँ भयसे छिपे हुए इन्द्र बैठे थे । १३-१७

हे युधिष्ठिर ! महात्मा इन्द्रने अपने पवित्र होनेके लिये उसी स्थानपर अश्वमेध यज्ञ किया । अनन्तर इन्द्रने उस ब्रह्महत्याको वृक्ष, नदी, पर्वत, भूमी, भूत और स्त्रियोंको बांट दिया । देवराज इन्द्र इस प्रकार ब्रह्महत्या से पवित्र हुए और

सुखी होकर सावधान होगये । (१८-२१)

अनन्तर बलनाशक इन्द्रने देखा कि नहुष वरदानके बलसे इन्द्रासनको नहीं छोड़ता और सब प्राणियोंके तेजका नाश करता है । तब इन्द्र फिर गुप्त होकर अपना अच्छा समय आनेकी आशासे जगत्में घूमने लगे । जब इन्द्र फिर गुप्त होगये तब पतिव्रता शची हाय इन्द्र ! हाय इन्द्र ! कहकर रोने लगी । (२१-२३)

शची बोली यदि मैंने कुछ तप किया हो, यदि मैंने दान किया हो, यदि मैंने गुरुओंको प्रसन्न किया हो और यदि भुझमें कुछ भी सत्य हो, तो इन्द्र

एकभर्तृत्वमेवाऽस्तु सत्यं यद्यस्ति वा मयि ॥ २४ ॥

पुण्यां चेमामहं दिव्यां प्रवृत्तामुत्तरायणे ।

देवीं रात्रिं नमस्यामि सिध्यतां मे मनोरथः ॥ २५ ॥

प्रयता च निशां देवीमुपातिष्ठत तत्र सा ।

पतिव्रतात्वात्सत्येन सोपश्रुतिमथाऽकरोत् ॥ २६ ॥

यत्राऽऽस्ते देवराजोऽसौ तं देशं दर्शयस्व मे ।

इत्याहोपश्रुतिं देवीं सत्यं सत्येन दृश्यताम् ॥ २७ ॥ [४१४]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि उपश्रुतियाचने त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

शल्य उवाच- अथैनां रूपिणी साध्वीमुपातिष्ठदुपश्रुतिः ।

तां वयोरूपसंपन्नां दृष्ट्वा देवीमुपस्थिताम् ॥ १ ॥

इन्द्राणीं संप्रहृष्टात्मा संपूज्यैनामथाऽब्रवीत् ।

इच्छामि त्वामहं ज्ञातुं का त्वं ब्रूहि वरानने ॥ २ ॥

उपश्रुतिरुवाच- उपश्रुतिरहं देवि तवाऽतिकमुपागता ।

दर्शनं चैव संप्राप्ता तव सत्येन भाविनि ॥ ३ ॥

पतिव्रता च युक्ता च यमेन नियमेन च ।

दर्शयिष्यामि ते शक्रं देवं वृत्रनिषूदनम् ॥ ४ ॥

क्षिप्रमन्वेहि भद्रं ते द्रक्ष्यसे सुरसत्तमम् ।

ही मेरे पति हों । मैं उत्तरायण सूर्यकी पवित्र रात्रिको नमस्कार करती हूँ । ये हमारे मनोरथको सिद्ध करें । ऐसा कहकर पतिव्रता शची अपना सन्देह नाश होनेके लिये तप करने लगी और सन्देहनाशिनी उपश्रुति देवीसे बोली, कि जहाँ इन्द्र हैं, उस स्थानको मुझे दिखाओ । ( २४-२७ ) [ ४१४ ]

उद्योगपर्वमें तेरह अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें चौदह अध्याय ।

शल्य बोले, इन्द्राणीके ध्यान करते-ही सन्देहोंको निर्णय करनेवाली उप-

श्रुती नामक देवी उनके पास आई । सुन्दरी युवती उपश्रुती देवीको देख इन्द्राणीने प्रसन्न होकर पूजा करी, और कहा कि हे सुन्दर मुखवाली ! तुम कौन हो ? हम तुम्हें जानना चाहती हैं । ( १२ )

उपश्रुति बोली, हे देवि ! हे भामिनी ! मैं उपश्रुति नामक देवी हूँ, मैं तुम्हें पतिव्रता और नियमयुक्त जानकर तथा सत्यसे तुष्ट होकर तुम्हारे पास आई हूँ, मैं वृत्रासुरनाशक इन्द्रको तुम्हें दिखाऊँगी तुम हमारे सङ्ग चलो, देव-श्रेष्ठ इन्द्रके दर्शन करोगी । ( ३-५ )

ततस्तां प्रहितां देवीमिन्द्राणी सा समन्वगात् ॥ ५ ॥  
 देवारण्यान्यनिक्रम्य पर्वतांश्च बहूस्ततः ।  
 हिमवन्तमतिक्रम्य उत्तरं पार्श्वभागमत् ॥ ६ ॥  
 समुद्रं च समासाद्य बहुयोजनविस्तृतम् ।  
 आससाद् महाद्वीपं नानाद्रुमलतावृतम् ॥ ७ ॥  
 तत्रापश्यत्सरो दिव्यं नानाशकुनिभिर्वृतम् ।  
 शतयोजनविस्तीर्णं तावदेवाऽऽयतं शुभम् ॥ ८ ॥  
 तत्र दिव्यानि पद्मानि पञ्चवर्णानि भारत ।  
 षट्पदैरुपगीतानि प्रफुल्लानि सहस्रशः ॥ ९ ॥  
 सरसस्तस्य मध्ये तु पद्मिनी महती शुभा ।  
 गौरेणोन्नतनालेन पद्मेन महता वृता ॥ १० ॥  
 पद्मस्य भित्वा नालं च विवेश सहिता तथा ।  
 विसर्तंतुप्रविष्टं च तत्रापश्यच्छतक्रतुम् ॥ ११ ॥  
 तं दृष्ट्वा च सुसूक्ष्मेण रूपेणाऽवस्थितं प्रभुम् ।  
 सूक्ष्मरूपधरा देवी बभूवोपश्रुतिश्च सा ॥ १२ ॥  
 इन्द्रं तुष्टाव चेंद्राणी विश्रुतैः पूर्वकर्मभिः ।  
 स्तूयमानस्ततो देवः शचीमाह पुरंदरः ॥ १३ ॥  
 किमर्थमासि संप्राप्ता विज्ञातश्च कथं त्वहम् ।

ऐसा सुनकर इन्द्राणी उनके संग  
 चली । अनेक पर्वत, देवोंके वन और  
 हिमाचलके पार होकर उत्तर कोनेपर  
 पहुंची । वहां जाकर अनेक योजन चौड़े  
 समुद्रको देखा । उनके बीचमें अनेक  
 वृक्ष और लतासे भरे हुए द्वीपमें पहुंची ।  
 उस द्वीपके बीचमें सौ योजन लम्बा  
 अनेक देवस्थान युक्त, पक्षियोंसे भरे  
 एक सुन्दर तालावको देखा । उसमें पांच  
 वर्ण वाले सुन्दर प्रफुल्ल कमलोंको देखा  
 उनपर अनेक भौरे गूँज रहे थे । ६-९

उस तालावके बीचमें एक बड़ी  
 कमलिनी थी, उसमें सफेद और उंची  
 डण्डीसे युक्त कमल खिला रहा था ।  
 अनन्तर उपश्रुति देवी शचीके सहित  
 कमलकी डण्डीमें घुस गई वहां जाकर  
 खतके समान सूक्ष्मरूप धारी इन्द्रको  
 देख उपश्रुतिभी सूक्ष्म होगई । तब इन्द्रा-  
 णीने इन्द्रको उनके प्रख्यात पूर्व कर्म  
 सुनाकर प्रसन्न किया । इस प्रकार स्तुति  
 सुनकर शचीसे इन्द्र बोले, तुम हमारे  
 पास क्यों आई हो ! और तुमने हमको

ततः सा कथयामास नहुषस्य विचेष्टितम् ॥ १४ ॥

इन्द्र त्वं त्रिषु लोकेषु प्राप्य वीर्यसमन्वितः ।

दर्पाविष्टश्च दुष्टात्मा मामुवाच शतक्रनो ॥ १५ ॥

उपतिष्ठेति स क्रूरः कालं च कृतवान्मम ।

यदि न त्रास्यसि विभो करिष्यति स मां वशे ॥ १६ ॥

एतेन चाऽहं संप्राप्ता द्रुतं शक्र तवांस्तिकम् ।

जहि रौद्रं महाबाहो नहुषं पापनिश्चयम् ॥ १७ ॥

प्रकाशयाऽऽत्मनाऽऽत्मानं दैत्यदानवसूदन ।

तेजः समाप्नुहि विभो देवराज्यं प्रशाधि च ॥ १८ ॥ [४३२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि

सेनोद्योगपर्वणि इन्द्राणीस्तवे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

शल्य उवाच— एवमुक्तः स भगवान्शच्या तां पुनरब्रवीत् ।

विक्रमस्य न कालोऽयं नहुषो बलवत्तरः ॥ १ ॥

विवर्द्धितश्च ऋषिभिर्हव्यकव्यैश्च भाविनि ।

नीतिमत्र विधास्यामि देवि तां कर्तुमर्हसि ॥ २ ॥

गुह्यं चैतन्वया कार्यं नाऽऽख्यातव्यं शुभे क्वचित् ।

कैसे जाना ? ( १०-१४ )

तब इन्द्रसे शचीने नहुषका सब समाचार इस प्रकार कहा । हे इन्द्र ! नहुष मुझसे कहता है, कि मैं तीनों लोकोंका इन्द्र हूं, तुम हमारी स्त्री बनो। वह दुष्ट अभिमान और बलसे भरा है, मैंने उससे थोड़ा समय मांग लिया है, हे इन्द्र ! इस समयके बीचमें यदि आप मेरा पालन न करेंगे तो वह अवश्य मुझे अपने वशमें कर लेगा; इसी लिये मैं तुम्हारे पास शीघ्रता सहित आई हूं । हे महाबाहो ! पापी दुष्ट नहुषको जीतो। तुम अपने तेजको

प्रकाश करो; हे दैत्य और दानवोंके मारने वाले ! अब तुम इन्द्र बनकर प्रजाकी रक्षा करो । (१५-१८) [४३२]

उद्योगपर्वमें चौदह अध्याय समाप्त

उद्योगपर्वमें पन्द्रह अध्याय ।

शल्य बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! भगवान् इन्द्र शचीके ऐसे वचन सुन बोले, हे भामिनि ! यह समय युद्ध करने का नहीं है, क्योंकि नहुष बहुत बलवान् है, उसे ऋषियोंने आहुति देकर बहुत बढा दिया है, हे देवि ! मैं एक नीति कहता हूं, तुम उसको करो, तुम इन गुप्त नीतिको किसीसे वर्णन मत



गत्वा नहुषमेकांते ब्रवीहि च सुमध्यमे ॥ ३ ॥

ऋषियानेन दिव्येन मामुपैहि जगत्पते ।

एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति तं वद ॥ ४ ॥

इत्युक्ता देवराजेन पत्नी सा कमलेक्षणा ।

एवमास्त्वित्यथोक्त्वा तु जगाम नहुषं प्रति ॥ ५ ॥

नहुषस्तां ततो दृष्ट्वा सस्मितो वाक्यमब्रवीत् ।

स्वागतं ते वरारोहे किं करोमि शुचिस्मिते ॥ ६ ॥

भक्तं मां भज कल्याणि किमिच्छसि मनस्विनि ।

तव कल्याणि यत्कार्यं तत्करिष्ये सुमध्यमे ॥ ७ ॥

न च व्रीडा त्वया कार्या सुश्रोणि मयि विश्वसेः ।

सत्येन वै शपे देवि करिष्ये वचनं तव ॥ ८ ॥

इन्द्राण्युवाच-

यो मे कृतस्त्वया कालस्तमाकांक्षे जगत्पते ।

ततस्त्वमेव भर्ता मे भविष्यसि सुराधिप ॥ ९ ॥

कार्यं च हृदि मे यत्तद्देवराजाऽवधारय ।

वक्ष्यामि यदि मे राजान्प्रियमेतत्करिष्यसि ॥ १० ॥

वाक्यं प्रणयसंयुक्तं ततः स्यां वशगा तव ।

करना, हे पतलीकमरवाली ! तुम नहुष के पास जाकर एकान्तमें कहो कि तुम देवऋषियोंकी पालकी पर चढ़कर हमारे पास आवो, तब मैं तुमसे प्रसन्न हूँगी । ( १-४ )

इन्द्रके ऐसे वचन सुन कमल नयनी सुन्दर हँसने वाली शची बहुत अच्छा कहकर नहुषके पास गई । नहुष उसको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और हँसकर कहने लगे, हे सुन्दर हँसने वाली ! हे सुमुखि ! हम तुम्हारा स्वागत करते हैं, कहो हम तुम्हारा कौनसा काम करें, हे कल्याणी ! हे मनस्विनि ! हम तुम्हारे

दास हैं, तुम हमारी स्त्री बनो । हे कल्याणी ! हे पतलीकमरवाली ! तुम्हारी जो कुछ सेवा होगी सो हम करेंगे, तुम हमसे लज्जा मत करो और हमारा विश्वास करो, हम सत्य प्रतिज्ञा करते हैं, कि तुम्हारी आज्ञा पालन करेंगे । ( ५-८ )

इन्द्राणी बोली, हे देवराज ! मैंने जो तुम्हारे सङ्ग समयकी प्रतिज्ञा करी थी, सो अब पूरा होगया, यदि तुम मेरे पति होना चाहते हो, तो हमारे मनमें जो कार्य है, सो सिद्ध करो । हे राजन् ! हे देवराज ! यदि तुम इसके करनेकी प्रतिज्ञा करो तो मैं तुमसे कहूँ, हे देव-

इन्द्रस्य वाजिनो वाहा हस्तिनोऽथ रथास्तथा ॥ ११ ॥

इच्छाम्यहमथाऽपूर्वं वाहनं ते सुराधिप ।

यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नाऽसुराणां न रक्षसाम् ॥ १२ ॥

वहंतु त्वां महाभागा ऋषयः संगता विभो ।

सर्वे शिविकया राजन्नेतद्वि मम रोचते ॥ १३ ॥

नाऽऽसुरेषु न देवेषु तुल्यो भवितुमर्हसि ।

सर्वेषां तेज आदत्से स्वेन वीर्येण दर्शनात् ।

न ते प्रमुखतः स्थातुं कश्चिच्छक्नोति वीर्यवान् ॥ १४ ॥

शल्य उवाच— एवमुक्तस्तु नहुषः प्राहृष्यत तदा किल ।

उवाच वचनं चापि सुरेन्द्रस्तामनिदिताम् ॥ १५ ॥

नहुष उवाच— अपूर्ववाहनमिदं त्वयोक्तं वरवर्णिनि ।

इदं मे रुचितं देवि त्वद्रशोऽस्मि वरानने ॥ १६ ॥

न ह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान्कुरुते मुनीन् ।

अहं तपस्वी बलवान्भूतमन्यभवत्प्रभुः ॥ १७ ॥

मयि क्रुद्धे जगन्न स्यान्मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।

राज ! मैं तुमसे विनय पूर्वक प्रार्थना करती हूँ, यदि तुम उसको पूरण करो तो मैं तुम्हारी स्त्री हो जाऊंगी । इन्द्रके यहां रथ, हाथी और घोड़े आदि सब वाहन हैं, परन्तु आप मेरे यहां अपूर्व वाहनपर चढ़कर आइये, हे देवराज ! आपका ऐसा वाहन होना चाहिये जो न इन्द्र न विष्णु और न शिवके यहां हो । ९-१२

हे पृथ्वीनाथ ! आपकी पालकीमें महाभाग सप्त ऋषि लगै, यही हमारे मनकी इच्छा है, आप इसको पूर्ण कीजिये । क्योंकि आप देवता, असुर और राक्षसोंके समान होने योग्य नहीं हैं, तुम अपने दर्शनसे सबके तेजको छीन लेते

हो, तुम्हारे आगे वीर्यवान् इन्द्र भी नहीं ठरह सकते हैं । ( १३-१४ )

शल्य बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! इन्द्राणीके ऐसे वचन सुन नहुष बहुत प्रसन्न हुए और इन्द्राणीसे बोले, हे अनिन्दिते ! तुमने यह बड़ा अपूर्व वाहन बताया, मैं इस वाहनको बहुत अच्छा समझता हूँ । हे वरानने ! मैं जैसे तुमने कहा वैसेही करूंगा; जिसकी सामर्थ्य अल्प है, वह मुनियोंका वाहन कभी नहीं बना सकता । मैं तो इस समय तपस्वी, बलवान्, तीनों लोकका स्वामी हूँ, इसीसे मुनियोंका वाहन बनाऊंगा । ( १५-१७ )

मुझे क्रोध आनेसे सब जगत्का नाश

देवदानवगंधर्वाः किन्नरोरगराक्षसाः ॥ १८ ॥

न मे क्रुद्धस्य पर्याप्ताः सर्वे लोकाः शुचिस्मिते ।

चक्षुषा यं प्रपश्यामि तस्य तेजो हराम्यहम् ॥ १९ ॥

तस्मात्ते वचनं देवि करिष्यामि न संशयः

सप्तर्षयो मां वक्ष्यन्ति सर्वे ब्रह्मर्षयस्तथा ॥ २० ॥

पश्य माहात्म्ययोगं मे ऋद्धिं च वरवर्णिनि ।

शल्य उवाच- एवमुक्त्वा तु तां देवीं विसृज्य च वराननाम् ॥ २१ ॥

विमाने योजयित्वा च ऋषीन्नियममास्थितान् ।

अब्रह्मण्यो बलोपेतो मत्तो मदबलेन च ।

कामवृत्तः स दुष्टात्मा बाह्याभास तानृषीन् ॥ २२ ॥

नहुषेण विसृष्टा च बृहस्पतिमथाऽब्रवीत् ।

समथोऽल्पावशेषो मे नहुषेणेह यः कृतः ॥ २३ ॥

शक्रं सृणुय शीघ्रं त्वं भक्तायाः कुरु मे दयाम् ।

कर सकता हूं। सब जगत् मेरी शक्तिसे स्थिर है, हे सुन्दर हंसनेवाली ! मुझे क्रोध आनेसे देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर, सर्प और राक्षस भी नहीं बच सकते और न मेरे क्रोधको वे लोग सह सकते हैं। मैं जिसको अपने नेत्रसे देखता हूं उसका तेज नाश हो जाता है, इस लिये मैं तुम्हारे वचनको अवश्य करूंगा। सातों ऋषि और ब्रह्मऋषि मेरे वाहन को वहेंगे। हे सुन्दरवर्णवाली ! तुम मेरे महात्म्य और ऐश्वर्यको देखो। ( १८—२१ )

शल्य बोले, सुन्दरी शचीमे ऐसा कह नहुषने उसे विदा किया, फिर नियम संपन्न सातों ऋषियोंको अपनी पालकीमें जोड़कर चले, उस समय राजा नहुषने ब्राह्मणोंकी भक्ति छोड़ दी और बल तथा

अभिमानमें भरकर नियममें रहनेवाले उन सप्त-ऋषियोंको पालकीमें लगा कर इन्द्राणीके यहां चलने लगे, उस समय दुष्टात्मा पापी नहुष कामके वशमें होकर सब भूल गये और ऋषियोंको पालकी में लगा लिया। ( २१-२२ )

जिस समय शचीको विदा किया था उसी समय इन्द्राणी बृहस्पतिके पास गई और कहने लगी, मैंने जो नहुषके सङ्ग समयकी प्रतिज्ञा करी थी, सो उसमें अब बहुत थोड़ा समय शेष रह गया है, इस लिये अब आप कुछ उपाय कीजिये और शीघ्र इन्द्रको हूँदिये, क्योंकि मैं आपकी शरणागत और भक्त हूं, आप हमारी रक्षा कीजिये। ( २२-२४ )

वाढमित्थेव भगवान्बृहस्पतिरुवाच तम् ॥ २४ ॥

न भेतव्यं त्वया देवि नहुषाद् दुष्टचेतसः ।

न ह्येष स्थास्यति चिरं गत एष नराधमः ॥ २५ ॥

अधर्मज्ञो महर्षीणां वाहनाच्च ततः शुभे ।

इष्टिं चाऽहं करिष्यामि विनाशायाऽस्य दुर्मतेः ॥ २६ ॥

शक्रं चाऽधिगमिष्यामि मा भैस्त्वं भद्रमस्तु ते ।

ततः प्रज्वालय विधिवज्जुहाव परमं हविः ॥ २७ ॥

बृहस्पतिर्भहातेजा देवराजोपलब्धये ।

हुत्वाऽग्निं सोऽब्रवीद्राजञ्जक्रमन्विष्यतामिति ॥ २८ ॥

तस्माच्च भगवान्देवः स्वयमेव हुताशनः ।

स्त्रीवेषमद्भुतं कृत्वा तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ २९ ॥

स दिशः प्रदिशश्चैव पर्वतानि वनानि च ।

पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च विचिंत्याऽथ मनोगतिः ॥ ३० ॥

निमेषान्तरमात्रेण बृहस्पतिसुपागमत् ।

अगिरुवाच-

बृहस्पते न पश्यामि देवराजमिह कचित् ।

आपः शेषाः सदा चाऽऽपः प्रवेष्टुं नोत्सहाम्यहम् ॥ ३१ ॥

बृहस्पतिने कहा कि बहुत अच्छा, तुम कुछ भय मत करो, नहुष महापापी और दुष्टात्मा है, वह इस स्थानपर नहीं रह सकता, वह महा अधर्मी है। इस लिये अवश्य सप्तऋषियोंके विमानपर चढ़कर आवेगा, तब ही उसको मारने के लिये मैं इष्टि करूंगा और इन्द्रके दूढ़नेका भी उपाय करूंगा तुम कुछ भय मत करो, मैं अवश्य इन्द्रको लाऊंगा तुम घबड़ाओ मत, तुम्हारा कल्याण हो । ( २४-२७ )

ऐसा कहकर महातेजस्वी बृहस्पतिने अग्नि जलाकर आहुति दी, फिर महा-

तेजस्वी बृहस्पतिने राजा इन्द्रकी प्राप्तिके लिये कहा कि इन्द्रको दूढ़ो। बृहस्पतिके सामने अग्नि स्त्रीका वेष बनाके प्रत्यक्ष हुए और फिर उसी अग्निकुण्ड में अन्तर्द्धान हो गये । ( २७-२९ )

महा बुद्धिमान मनके समान वेगवान् अग्निने कुछ कालके पश्चात् समस्त पृथ्वी, वन, उपवन, नदी और सब दिशाओंमें इन्द्रको दूढ़ा परन्तु कहीं पता नहीं लगा, फिर वह स्त्री थोड़ेही समयमें बृहस्पतिके पास आगइ और कहने लगी कि, हे देवदेव ! हम सब दिशाओंमें घूम आई परन्तु इन्द्रको कहीं नहीं

न मे तत्र गतिर्ब्रह्मन्किमन्यत्करवाणि ते ।

तमब्रवद्दिवगुरुरपो विश महाद्युते ॥ ३२ ॥

अग्निरुवाच— नाऽऽपः प्रवेष्टुं शक्यामि क्षयो मेऽत्र भविष्यति ।

शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि स्वस्ति तेऽस्तु महाद्युते ॥ ३३ ॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमदमनो लोहमुत्थितम् ।

तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ ३४ ॥ [४६८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि

वृहस्पत्यग्निसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

वृहस्पतिरुवाच—त्वमग्ने सर्वदेवानां मुखं त्वमासि हव्यवाद् ।

त्वसंतः सर्वभूतानां गृहश्चरासि साक्षिवत् ॥ १ ॥

त्वामाहुरेकं कवयस्त्वामाहुस्त्रिभिर्धं पुनः ।

त्वया त्यक्ते जगच्चेदं सद्यो नश्येद्भुताशन ॥ २ ॥

कृत्वा तुभ्यं नभो विप्राः स्वकर्माविजितां गतिम् ।

गच्छन्ति सह पत्नीभिः सुतैरपि च शाश्वतीम् ॥ ३ ॥

त्वमेवाऽग्ने हव्यवाहस्त्वमेव परमं हविः ।

यजन्ति सत्रैस्त्वामेव यज्ञैश्च परमाध्वरे ॥ ४ ॥

पाया, जल नित्य है और हम जलमें प्रवेश नहीं कर सकती, इसीसे जलमें मेरी गति नहीं है। सो आप जो चाहें सो विचार कीजिये। वृहस्पतिने कहा कि हे महातेजस्वी ! तुम जलमें प्रवेश करो उसीमें इन्द्र मिलेंगे। अग्नि बोले मैं जलमें प्रवेश नहीं करूँगे क्यों कि उससे मेरा नाश हो जायगा। जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्री और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है, इन सबका तेज सर्वव्यापक है, परन्तु अपने उत्पात्ति स्थानमें जाकर शान्त हो जाते हैं। (३०-३४) [४६८]

उद्योगपर्वमें पन्द्रह अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें सोलह अध्याय ।

वृहस्पति बोले, हे अग्ने ! तुम सब देवताके मुख हो हव्यको भक्षण करते हो, तुम सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें साक्षी होकर घूमते हो, हे अग्ने ! महात्मा लोग तुम एकके तीन भेद कहते हैं, तुम्हारे छोड़नेसे सब जगत् नष्ट हो सकता है, तुमको नमस्कार करके ब्राह्मण लोग अपना कर्म करते हैं। उस कर्मके प्रभावसे स्त्री और पुत्रोंके सहित मोक्षको प्राप्त करते हैं, तुम अग्नि यज्ञमें आहुति भोजन करनेवाले और आहुतिरूप हो, महात्मा

सृष्ट्वा लोकांस्त्रीनिमान्हव्यवाह प्राप्ते काले पचसि पुनः समिद्धः ।  
त्वं सर्वस्य भुवनस्य प्रसूनिस्त्वमेवाऽग्ने भवसि पुनः प्रनिष्ठा ॥ ५ ॥

त्वाभग्ने जलदानाहुर्विद्युतश्च मनीषिणः ।

वहंति सर्वभूतानि त्वत्तो निष्क्रम्य हेतयः ॥ ६ ॥

त्वय्यापो निहिताः सर्वास्त्वयि सर्वमिदं जगत् ।

न तेऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु पावक ॥ ७ ॥

स्वयोनिं भजते सर्वो विशस्वाऽपोऽविशंकितः ।

अहं त्वां वर्धयिष्यामि ब्राह्मैर्मत्रैः सनातनैः ॥ ८ ॥

एवं स्तुतो हव्यवाह स भगवान्कबिरुत्तमः ।

बृहस्पतिमथोवाच प्रीतिमान्वाक्यमुत्तमम् ॥ ९ ॥

दर्शयिष्यामि ते शक्रं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।

शल्य उवाच— प्रविश्याऽपस्तनो वह्निः ससमुद्राः सपत्नवलाः ।

आससाद् सरस्तच्च गूढो यत्र शतक्रतुः ॥ १० ॥

अथ तत्रापि पद्मानि विचिन्वन्भरतर्षभ ।

अपश्यत्स तु देवेन्द्रं विसमध्यगतं तदा ॥ ११ ॥

आगत्य च तनस्तूर्णं तमाचष्ट बृहस्पतेः ।

लोग यज्ञमें तुम्हारीही पूजा करते हैं। (१-४)

हे अग्ने ! तुम इस जगत्को उत्पन्न करके प्रलयकालमें प्रदीप्त होकर नाश कर देते हो, तुम इस जगत्के उत्पन्न करनेवाले और नाश करनेवाले हो; तुम मेघ और विजलीरूप हो, तुम्हींसे शस्त्र बनाकर मनुष्य चलाते हैं। तुम्हारी शक्तिसे जल और जगत् स्थिर हैं, तीन लोकमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है; जिसको तुम नहीं जानते; अपने उत्पत्ति स्थानमें सब जाते हैं। इस लिये तुम शंका रहित होकर जलमें प्रवेश करो,

मैं सनातन वेदमंत्रोंसे तुम्हारी वृद्धि करूंगा। (५-८)

भगवान् अग्नि बृहस्पतिके वचन सुन प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हम तुमसे सत्य कहते हैं कि, हम इन्द्रको तुम्हें दिखावेंगे। (९-१०)

शल्य बोले, इसके पश्चात् अग्निने समुद्र और तलावोंके जलमें प्रवेश किया; पश्चात् उस तलावमें भी पहुँचे जहाँ छिपकर इन्द्र रहते थे, हे युधिष्ठिर ! उस तालावमें जाकर अग्निने कमलोंके भीतर इन्द्रको ढूँढा फिर एक कमल की डण्डीमें उनको पाया, फिर अग्निने उसी समय बृहस्पति

अणुमात्रेण वपुषा पद्मतन्त्राश्रितं प्रभुम् ॥ १२ ॥

गत्वा देवर्षिगन्धर्वैः सहितोऽथ बृहस्पतिः ।

पुराणैः कर्मभिर्देवं तुष्टाव बलसूदनम् ॥ १३ ॥

महासुरां हतः शक्र नमुचिर्दारुणस्त्वया ।

शंखरश्च बलश्चैव तथोभौ घोरविक्रमौ ॥ १४ ॥

शतक्रतो विवर्धस्व सर्वाङ्गवृद्धिबूदय ।

उत्तिष्ठ शक्र संपश्य देवर्षींश्च समागतान् ॥ १५ ॥

महेन्द्र दानवान्हत्वा लोकास्त्रातास्त्वया विभो ।

अपां फेनं समासाद्य विष्णुतेजोतिर्वृंहितम् ॥

त्वया वृत्रो हतः पूर्वं देवराज जगत्पते ॥ १६ ॥

त्वं सर्वभूतेषु शरण्य इड्यस्त्वया सभं विद्यते नेह भूतम् ।

त्वया धार्यते सर्वभूतानि शक्र त्वं देवानां महिमानं चकर्थ ॥ १७ ॥

पाहि सर्वांश्च लोकांश्च महेन्द्र बलमाप्नुहि ।

एवं संस्तूयमानश्च सोऽवर्धत शनैः शनैः ॥ १८ ॥

स्वं चैव वपुरास्थाय बभूव स बलान्वितः ।

से आकर सब समाचार कह दिया,  
कि देवराज इन्द्र सूक्ष्म रूप बनाकर  
अमुक तलावके कमलकी डण्डीमें रहते  
हैं। उसी समय बृहस्पति देवता ऋषि  
और गन्धर्वोंके सहित इन्द्रके पास जा-  
कर उनके पूर्व किये हुए कर्मोंके वर्णनसे  
उनकी स्तुति करने लगे। ( १०-१३ )

बृहस्पति बोले, तुमने महाघोर  
नमुची नामक दैत्यको मारा था, तुमने  
महाबलवान शम्बर और बलको भी  
मारा था, हे सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र !  
तुम उठो और शत्रुओंका नाश करो ।  
हे इन्द्र ! तुम उठकर देखो ये देवता  
और ऋषि तुम्हारे दर्शनोंको खड़े हैं। हे

जगत्के स्वामी देवराज ! तुमने अनेक  
दैत्योंको मारकर तीनों लोकोंकी रक्षा  
करी है, तुमने पहले समयमें विष्णुके  
तेजकी सहायता और जलके फेनसे  
वृत्रासुरको मारा था, तुम सब जगत्के  
पालनेवाले हो, तुमको जगत् प्रणाम  
करता है, तुम्हारे समान कोई प्राणी  
नहीं हुआ और न है, तुम्हारी शक्तिसे  
सब जगत् स्थिर है, और तुम्ही देवताओं  
की महिमाको बढ़ाते हो। हे इन्द्र ! आप  
सबोंका पालन करो और अपने बलको  
प्राप्त हो। ( १४-१८ )

बृहस्पतिके ऐसे वचन सुन इन्द्रका  
धीरे धीरे बल बढ़ा और अपने रूपको

अब्रवीच्च गुरुं देवो बृहस्पतिमवास्थितम् ॥ १९ ॥  
 किं कार्यमवाशिष्टं वो हतस्त्वाष्ट्रो महासुरः ।  
 वृत्रश्च सुमहाकायो यो वै लोकाननाशयत् ॥ २० ॥  
 बृहस्पतिरुवाच— मानुषो नहुषो राजा देवर्षिगणतेजसा ।  
 देवराज्यमनुप्राप्तः सर्वान्नो बाधते भृशम् ॥ २१ ॥  
 इंद्र उवाच— कथं च नहुषो राज्यं देवानां प्राप दुर्लभम् ।  
 तपसा केन वा युक्तः किंवीर्यो वा बृहस्पते ॥ २२ ॥  
 बृहस्पतिरुवाच— देवा भीताः शक्रमकामयन्त त्वया त्यक्तं महदैंद्रं पदं तत् ।  
 तदा देवाः पितरोऽथर्षयश्च गन्धर्वमुख्याश्च समेत्य सर्वे ॥ २३ ॥  
 गत्वाऽब्रुवन्नहुषं तत्र शक्र त्वं नो राजा अब भुवनस्य गोप्ता ।  
 तानब्रवीन्नहुषो नास्मि शक्त आप्यायध्वं तपसा तेजसा माम् ॥ २४ ॥  
 एवमुक्तैर्वाद्वितश्चापि देवै राजाऽभवन्नहुषो घोरवीर्यः ।  
 त्रैलोक्ये च प्राप्य राज्यं सहर्षान्कृत्वा बाहान्याति लोकान्दुरात्मा ॥ २५ ॥  
 तेजोहरं हष्टिविषं सुघोरं मा त्वं पश्येन्नहुषं वै कदाचित् ।

धारण करके गुरु बृहस्पतिसे बोले,  
 आप लोगोंका कौनसा कार्य शेष है,  
 जिसको मैं करूं ? मैंने महा शरीरवाले  
 तीनों लोकोंके दुःख देनेवाले वृत्रासुर  
 को भी मारा । ( १८-२० )

बृहस्पति बोले, मनुष्य नहुषको  
 देवऋषियोंने अपने तेजसे बढाकर इन्द्र  
 बनाया है, वह अब हम लोगोंको बहुत  
 दुःख देता है । ( २१ )

इन्द्र बोले, हे बृहस्पते ! नहुषने  
 ऐसा कौन तप किया था, जिसके प्रभा-  
 वसे वह दुर्लभ इन्द्र पदको प्राप्त हुआ?  
 उसमें कितनी शक्ति है, सो आप हमसे  
 कहिये । ( २२ )

बृहस्पति बोले, जिस समय तुमने

इन्द्रामनको छोड दिया, उस समय  
 देवता लोग बहुत घबडाये, फिर देवतां,  
 पितर, ऋषि और मुख्य गन्धर्व मिल-  
 कर नहुषके पास गये और कहने लगे  
 तुम हमारे राजा और जगत्की रक्षा  
 करने वाले बनो । ( २३—२४ )

नहुषने उनसे कहा कि हमारी  
 शक्ति इन्द्र होनेकी नहीं है, तुम हमको  
 तेज और तपसे बढाओ । ऋषियोंने नहुष  
 के वचन सुन सवने अपना तेज उसे  
 दिया उससे वह बहुत बलवान् होगया,  
 तब सवने उसे इन्द्र बनाया, अब वह  
 दुष्टात्मा ऋषियोंको पालकीमें लगा कर  
 लोकोमें घूमता है, उसके आगे जो  
 जाता है, उसीका तेज नष्ट होजाता है,



देवाश्च सर्वे नहुषं शृशार्ता न पश्यन्ते गूढरूपाश्चरन्तः ॥ २६ ॥

शल्य उवाच— एवं वदत्यंगिरसां वरिष्ठे बृहस्पतौ लोकपालः कुबेरः ।

वैवस्वतश्चैव यमः पुराणो देवश्च सोमो वरुणश्चाऽऽजगाम ॥ २७ ॥

ते वै समागम्य महेंद्रमूचुर्दिष्ट्या त्वाष्ट्रो निहतश्चैव वृत्रः ।

दिष्ट्या च त्वां कुशलिनमक्षतं च पश्यामो वै निहतारिं च शक्र ॥ २८ ॥

स तान्यथावच्च हि लोकपालान्समेत्य वै प्रीतिमना महेंद्रः ।

उवाच चैनान्प्रतिभाष्य शक्रः संचोदयिष्यन्नहुषस्यांस्तरेण ॥ २९ ॥

राजा देवानां नहुषो घोररूपस्तत्र साह्यं दीयतां मे भवद्भिः ।

ते चाऽब्रुवन्नहुषो घोररूपो दृष्टीविषस्तस्य विभीम ईश ॥ ३० ॥

त्वं चेद्राजानं नहुषं पराजयेस्तनो वयं भागमर्हाम शक्र ।

इन्द्रोऽब्रवीद्भवतु भवानपांपनिर्ममः कुबेरश्च मयाऽभिषेकम् ॥ ३१ ॥

संप्राप्नुवंत्वच्च सहैव दैवतै र्पुं जयाम तं नहुषं घोरदृष्टिम् ।

ततः शक्रं ज्वलनोऽप्याह भागं प्रयच्छ मह्यं तच्च साह्यं करिष्ये ।

तस्माद् शक्रो भविताऽन्ने तवापि चेंद्राग्न्योर्वै भाग एको महाकनौ ॥ ३२ ॥

इस लिये तुमभी नहुषको मत देखना,  
कोई देवता कभी नहुषको नहीं देखता  
और छिपकर रहते हैं । ( २४-२६ )

शल्य बोले, जहां अंगिरा वंशश्रेष्ठ  
बृहस्पति इन्द्रसे ऐसा कह रहे थे, तहां  
कुबेर, सूर्यपुत्र यमराज, सनातन देवता  
चन्द्रमा और वरुण आये, वे आकर  
इन्द्रसे कहने लगे तुमने प्रारब्धहीसे  
त्वष्टापुत्र वृत्रासुरको मारा। हे इन्द्र! हम  
लोग प्रारब्धहीसे तुमको कुशलयुक्त  
और घाव रहित देखते हैं, इन्द्र भी लो-  
कपालोंकी यथायोग्य पूजा करके प्रसन्न  
हुए और उनको नहुषसे मित्र करनेके  
लिये कहने लगे कि इस समय घोररूपी  
नहुष देवतोंका राजा बना है, आप लोग

उसके मारनेके लिये हमारी सहायता  
कीजिये । ( २७-३० )

लोकपाल बोले, हे देवराज ! घोर-  
रूपी नहुषकी दृष्टिमें विष है, इस लि-  
ये हमलोग उसके आगे जाते डरते हैं,  
तुम इन्द्र हो और सब बात जानते हो इस  
लिये उसको जीतो, तब हम लोग  
यज्ञोंमें भाग पावेंगे । ( ३०-३१ )

इन्द्र बोले, हम कुबेर, यमराज और  
वरुणका अभिषेक करते हैं, आप लोग  
अपने अपने स्थानोंपर देवतोंके सहित  
जाइये, हम इस घोर दृष्टि वाले नहुष  
शत्रुको जीतेगे। तब अग्निने इन्द्रसे कहा  
कि यदि तुम हमको यज्ञमें भाग दो, तो  
हमभी तुम्हारी सहायता करेंगे । ३१-३२

शल्य उवाच— एवं संचित्य भगवान्महेन्द्रः पाकशामनः ।

कुबेरं सर्वयक्षाणां धनानां च प्रभुं तथा ॥ ३३ ॥

वैवस्वतं पितृणां च वरुणं चाप्यपां तथा ।

आधिपत्यं ददौ शक्रः संचित्य वरदस्तथा ॥ ३४ ॥ [ ५०९ ]

इति श्रीमहामाते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्रवरुणादिसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

शल्य उवाच— अथ संचितयानस्य देवराजस्य धीमतः ।

नहुषस्य वधोपायं लोकपालैः सदैवतैः ॥ १ ॥

तपस्वी तत्र भगवानगस्त्यः प्रत्यहश्यत ।

सोऽब्रवीदर्घ्यं द्रवेन्द्रं दिष्ट्या वै वर्धते भवान् ॥ २ ॥

विश्वरूपविनाशेन वृत्रासुरवधेन च ।

दिष्ट्याऽद्य नहुषो भ्रष्टो देवराज्यात्पुरंदर ॥ ३ ॥

दिष्ट्या हतारिं पश्यामि भवंतं बलसूदन ।

इन्द्र उवाच— स्वागतं ते महर्षेऽस्तु प्रीतोऽहं दर्शनात्तव ।

पाद्यमाचमनीयं च गार्ग्यं च प्रतीच्छ मे ॥ ४ ॥

शल्य उवाच— पूजितं चोपविष्टं तमासने मुनिसत्तमम् ।

इन्द्रने कहा, आजसे बडे बडे यज्ञों में इन्द्र और अधिका एक एक भाग निकला करेगा । ( ३२ )

शल्य बोले, वरदान देने वाले, पाक नामक राक्षसके नाशक भगवान् इन्द्रने यह सब विचार कर कुबेरको सब यक्ष और धनका स्वामी, यमराजको पितरों का स्वामी और वरुणको जलका राजा बनाया । ( ३३-३४ ) [ ५०२ ]

उद्योगपर्वमें सोलह अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें सतरह अध्याय ।

शल्य बोले, हे राजन् युधिष्ठिर । जहां बुद्धिमान भगवान् इन्द्र देवता और लोकपालोंके सहित नहुषके मारनेका उपाय

सोच रहे थे, वहां तपस्वी भगवान् अगस्त्य आये, उन्होंने इन्द्रकी प्रशंसा करके ऐसा कहा, हे देवराज ! प्रारब्ध-हीसे आपकी उन्नति हुई है, प्रारब्धही से आपने वृत्रासुर और विश्वरूपको माग और प्रारब्धसे नहुष भी इन्द्रासन से गिराये गये । हे बलनाशक ! हम आपको प्रारब्धहीसे शत्रु रहित देखते हैं । ( १-४ )

इन्द्र बोले, हे महाऋषि अगस्त्य ! हम आपका स्वागत करते हैं, हम आपके दर्शनसे बहुत प्रसन्न हुए, आप पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय और गौ ग्रहण कीजिये । शल्य बोले, जिस समय मुनि-श्रेष्ठ

पर्यपृच्छत देवेशः प्रहृष्टो ब्राह्मणर्षभम् ॥ ५ ॥

एतदिच्छामि भगवन्कथ्यमानं द्विजोत्तम ।

परिभ्रष्टः कथं स्वर्गान्नहुषः पापनिश्चयः ॥ ६ ॥

अगस्त्य उवाच- शृणु शक्र प्रियं वाक्यं यथा राजा दुरात्मवान् ।

स्वर्गाद्भ्रष्टो दुराचारो नहुषो बलदर्पितः ॥ ७ ॥

श्रमार्त्ताश्च वहंतस्त्वं नहुषं पापकारिणम् ।

देवर्षयो महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ८ ॥

पप्रच्छुर्नहुषं देव संशयं जयतां वर ।

य इमे ब्रह्मणा प्रोक्ता मंत्रा वै प्रोक्षणे गवाम् ॥ ९ ॥

एते प्रमाणं भवन उताहो नेति वासव ।

नहुषो नेति तानाह तमसा मूढचेतनः ॥ १० ॥

ऋषय उचुः- अधर्मे संप्रवृत्तस्त्वं धर्मं न प्रतिपद्यसे ।

प्रमाणमेतदस्माकं पूर्वं प्रोक्तं महर्षिभिः ॥ ११ ॥

अगस्त्य उवाच- ततो विवदमानः स मुनिभिः सह वासवः ।

अथ मामस्पृशन्सूर्धि पादेनाऽधर्मपीडितः ॥ १२ ॥

तेनाऽभूद्व्रततेजाश्च निःश्रीकश्च महीपतिः ।

अगस्त्य सावधान होकर आसनपर बैठे, तब इन्द्रने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण श्रेष्ठसे पूछा, हे भगवन् ! पापी नहुष किस प्रकार स्वर्गसे गिराया गया, सो कथा सुननेकी हमारी इच्छा है, आप हमसे कहिये । ( ४—६ )

अगस्त्य मुनि बोले, हे इन्द्र ! जिस प्रकार दुरात्मा नहुष स्वर्गसे गिराया गया सो उत्तम कथा हम आपसे कहते हैं, सुनिये। पापी अभिमानी नहुष स्वर्गसे नष्ट हुआ कि वह दुष्ट थके हुए महाभाग देवऋषि और ब्रह्मऋषियोंकी पालकीमें चला जाता था, उसी समय

ऋषियोंने उससे एक संशय पूछा, हे जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ ! जो वेदमें गौको प्रोक्षणादि करानेके मन्त्र लिखे हैं, वे आपको प्रमाण हैं वा नहीं ? ऋषियोंके वचन सुन मूर्ख नहुष बोला कि नहीं । ( ७—१० )

ऋषियोंने कहा कि तुम महा अधर्मी हो, धर्मको नहीं जानते हमारे पहले ऋषियोंने उनको प्रमाण माना है । ११

अगस्त्य बोले, हे इन्द्र ! अनन्तर वह अधर्मी ऋषियोंसे फिर विवाद करने लगा । उस समय मेरे गिरमें लात मारी, इससे उसका सब तेज और शोभा नष्ट

ततस्तं तमसाऽऽविग्रमवोचं भृशपीडितम् ॥ १३ ॥

यस्मात्पूर्वैः कृतं राजन्ब्रह्मर्षिभिरनुष्ठितम् ।

अदृष्टं दूषयसि मे यच्च सूध्न्यस्पृशः पदा ॥ १४ ॥

यच्चापि त्वमृषीन्मूढ ब्रह्मकल्पान्दुरासदान् ॥ १५ ॥

वाहान्कृत्वा बाहयसि तेन स्वर्गाद्धितप्रभः ।

ध्वंस पापपरिभ्रष्टः क्षीणपुण्यो महीतले ॥ १६ ॥

दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान् ।

विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गप्रवाप्स्यसि ॥ १७ ॥

एवं भ्रष्टो दुरात्मा स देवराज्यादरिदम ।

दिष्टया वर्धामहे शक्र हतो ब्राह्मणकंटकः ॥ १८ ॥

त्रिविष्टपं प्रपद्यस्व पाहि लोकाञ्शचीपते ।

जितेन्द्रियो जितामित्रः स्तूयमायो महर्षिभिः ॥ १९ ॥

शल्य उवाच — ततो देवा भृशं तुष्टा महर्षिगणसंवृताः ।

पितरश्चैव यक्षाश्च भुजगा राक्षसास्तथा ॥ २० ॥

गंधर्वा देवकन्याश्च सर्वे चाऽप्सरसां गणाः ।

सरांसि सरितः शैलाः सागराश्च विशां पते ॥ २१ ॥

उपागम्याऽब्रुवन्सर्वे दिष्टया वर्धसि शत्रुहन् ।

हो गयी, फिर मैंने मोहसे व्याप्त और दुःखित हुए उसको ऐसा शाप दिया, हे राजन् ! तुम पहले ऋषियोंके कहे ब्रह्मर्षियोंसे किये हुए कर्मकी निन्दा करते हो, तुमने मेरे शिरमें लात मारी और ब्रह्माके तुल्य तेजस्वी ऋषियोंको पालकीमें लगाया, इससे तुम्हारा तेज नाश हो गया, इस लिये अब तुम स्वर्गसे पृथ्वीको चले जाओ, तुम दस सहस्र वर्षतक सांपका रूप धारण करके पृथ्वीमें रहोगे । और नंतर पुनः स्वर्गमें आयेंगे । (१२-१७)

हे शत्रुनाशन इन्द्र ! इस प्रकार वह दुरात्मा ब्राह्मणद्वेषी नहुष स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ और प्रारब्धसे तुम्हारी उन्नति हुई । अब आप स्वर्गमें चलके तीनों लोकोंकी रक्षा कीजिये, आप जितेन्द्रिय शत्रुओंको मारनेवाले हैं ? महाऋषि भी आपकी स्तुति करते हैं । (१८-१९)

शल्य बोले, अनंतर महाऋषि, देवता पितर, यक्ष, राक्षस, सर्प, गंधर्व, देवकन्या, सब अप्सरा, तलाव, नदी, पर्वत और समुद्र प्रसन्न होकर कहने लगे । हे शत्रुनाशन इन्द्र ! प्रारब्धहीसे तुम्हारी

हतश्च नहुषः पापो दिष्ट्याऽगस्त्येन धीमता ॥

दिष्ट्या पापममाचारः कृतः सर्पो महीपते ॥ २२ ॥ [५२४]

इति श्री महाभारते० उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इंद्रागस्त्यसंवादे नहुषअंशे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

शल्य उवाच-

ततः शक्रः स्तूयमानो गंधर्वाप्सरसां गणैः ।

ऐरावतं समारुह्य द्विपेंद्रं लक्षणैर्युतम् ॥ १ ॥

पावकः सुमहानेजा महर्षिश्च बृहस्पतिः ।

यमश्च वरुणश्चैव कुबेरश्च धनेश्वरः ॥ २ ॥

सर्वैर्देवैः परिवृतः शक्रो वृत्रनिषूदनः ।

गंधर्वैरप्सरामिश्च यातस्त्रिभुवनं प्रभुः ॥ ३ ॥

स समेत्य महेंद्राण्या देवराजः शतक्रतुः ।

मुदा परमया युक्तः पालयामास देवराट् ॥ ४ ॥

ततः स भगवांस्तत्र अंगिराः समदृश्यत ।

अथर्ववेदमंत्रैश्च देवेंद्रं समपूजयत् ॥ ५ ॥

ततस्तु भगवानिन्द्रः संहृष्टः समपद्यत ।

वरं च प्रददौ तस्मै अथर्वागिरसे तदा ॥ ६ ॥

अथर्वागिरसो नाम वेदेऽस्मिन्वै भविष्यति ॥

उदाहरणमेतद्वि यज्ञभागं च लप्स्यसे ॥ ७ ॥

उन्नति हुई है । प्रारब्धहीसे बुद्धिमान् अगस्त्यने पापि नहुषका नाश किया, प्रारब्धहीसे पापी नहुष सांप बनकर पृथ्वीमें गिरा । ( २०-२२ ) [ ५२४ ]

उद्योगपर्वमें सतरह अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें अठारह अध्याय ।

शल्य बोले, अनन्तर गन्धर्व और अप्सराओंसे स्तुति सुनते हुए, इन्द्र सब लक्षणोंसे भरे उत्तम ऐरावत हाथीपर चढ़कर स्वर्गको चले, वृत्र नाशक इन्द्रके सङ्ग महा तेजस्वी अग्नि, महाऋषि बृहस्पति, यमराज, वरुण, धनके स्वामी

कुबेर, सब देवता गंधर्व और सब अप्सरा भी चलीं । ( १-३ )

सौ यज्ञ करनेवाले देवराज इन्द्र स्वर्गमें जाकर प्रसन्नता सहित इन्द्राणीसे मिले फिर अपने राज्यका पालन करने लगे । उसी समय भगवान् अङ्गिरा इन्द्रके पास आकर अथर्व वेदके मन्त्रोंसे स्तुति करने लगे । उसी समय भगवान् इन्द्रने प्रसन्न होकर अङ्गिराको वरदान दिया । इन्द्र बोले, तुमने जिन मन्त्रोंसे हमारी स्तुति की है, उनका नाम अथर्वाङ्गिरस वेद होगा, तुमको आजसे

एवं संपूज्य भगवानथर्वागिरसं तदा ।

न्यसर्जयन्महाराज देवराजः शतक्रतुः ॥ ८ ॥

संपूज्य सर्वास्त्रिदशानृषींश्चापि तपोधनान् ।

इन्द्रः प्रमुदितो राजन्धर्मेणाऽपालयत्प्रजाः ॥ ९ ॥

एवं दुःखमनुप्राप्तमिद्रेण सह भार्यया ।

अज्ञातवासश्च कृतः शत्रूणां वधकांक्षया ॥ १० ॥

नाऽत्र मन्युस्त्वया कार्यो यत्किष्टोऽसि महावने ।

द्रौपद्या सह राजेंद्र भ्रातृभिश्च महात्मभिः ॥ ११ ॥

एवं त्वमपि राजेंद्र राज्यं प्राप्स्यसि भारत ।

वृत्रं हत्वा यथा प्राप्तः शक्रः कौरवनन्दन ॥ १२ ॥

दुराचारश्च नहुषो ब्रह्मद्विद् पापचेतनः ।

अगस्त्यशापाभिहतो विनष्टः शाश्वतीः समा ॥ १३ ॥

एवं तव दुरात्मानः शत्रवः शत्रुसूदन ।

क्षिप्रं नाशं गमिष्यन्ति कर्णदुर्योधनादयः ॥ १४ ॥

ततः सागरपर्यन्तां भोक्ष्यसे मेदिनीमिमाम् ।

भ्रातृभिः सहितो वीर द्रौपद्या च सहाऽनया ॥ १५ ॥

उपाख्यानमिदं शक्रविजयं वेदमन्त्रितम् ।

यज्ञमें भाग मिलेगा । ( ४-७ )

हे महाराज ! इस प्रकार अथर्वागिरा मुनिकी पूजा करके सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रने उनको विदा किया, फिर सब देव और ऋषियोंकी पूजा करके इन्द्र प्रसन्नता सहित प्रजाको पालने लगे । इन्द्रने अपनी स्त्रीके सहित इस प्रकार दुःख भोगा था, और इस प्रकार शत्रुओंको मारनेके लिये छिपकर रहे थे, तुमने जो द्रौपदी और अपने भाइयोंके सहित वनमें दुःख भोगे । उसका कुछ दुःख मत कीजिये । ( ८-११ )

हे राजन् ! हे भारत ! हे कौरवनन्दन ! जिस प्रकार इन्द्र वृत्रासुरको मारकर पुनः राजा हुए थे, ऐसेही तुम भी राजा होंगे, जैसे पापी ब्राह्मण-द्रोही नहुष अगस्त्यके शापसे अनेक वर्ष नष्ट हुआ था, ऐसेही तुम्हारे पापी शत्रु कर्ण और दुर्योधनादिका नाश सत्वर होगा । हे शत्रुनाशन ! हे वीर ! उसके पश्चात् तुम अपने भाई और द्रौपदीके सहित समुद्र पर्यन्त पृथ्वीका राज्य करोगे । ( १२-१५ )

हे जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ ! यह इन्द्रके विजयकी कथा वेदमें संमत है, युद्धके

राज्ञा व्यूहेष्वनीकेषु श्रौतव्यं जयमिच्छता ॥ १६ ॥

तस्मात्संश्रावयामि त्वां विजयं जयनां वर ।

संस्तूयमाना वर्धते महात्मानो युधिष्ठिर ॥ १७ ॥

क्षत्रियाणामभावोऽयं युधिष्ठिर महात्मनाम् ।

दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च ॥ १८ ॥

आख्यानमिन्द्रविजयं य इदं नियतः पठेत् ।

धूतपाप्मा जितस्वर्गः परत्रेह च मोदते ॥ १९ ॥

न चाऽरिजं भयं तस्य नाऽपुत्रो वा भवेन्नरः ।

नाऽऽपदं प्राप्नुयात्कांचिद्दीर्घमायुश्च विंदति ।

सर्वत्र जयमाप्नोति न कदाचित्पराजयम् ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच-एवमाश्वासितो राजा शल्येन भरतर्षभ ।

पूजयामास विधिवच्छल्यं धर्मभृतां वरः ॥ २१ ॥

श्रुत्वा तु शल्यवचनं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।

प्रत्युवाच महाबाहुर्मद्राजमिदं वचः ॥ २२ ॥

भवान्कर्णस्य सारथ्यं करिष्यति न संशयः ।

तत्र तेजोवधः कार्यः कर्णस्याऽर्जुनसंस्तवः ॥ २३ ॥

समय विजय करनेकी इच्छावाले राजा-  
को अवश्य सुननी चाहिये। इसीसे मैंने  
तुमको सुनाई; इसके सुननेसे महात्मा-  
ओंकी उन्नति होती है। हे युधिष्ठिर !  
यह घोर समय आगया है, अब दुर्योधन  
के अपराधसे तथा भीमसेन और  
अर्जुनके बलसे महात्मा क्षत्रियोंका नाश  
होगा, हमारी कहीं इस इन्द्र विजयकी  
कथाको जो नियम करके प्रतिदिन पढ़े  
वह सब पापोंसे छूटकर इस लोक और  
परलोकमें सुख पाता है। इसके पढ़ने-  
वाला अपुत्र और निर्द्वन नहीं रहता,  
इसके पढ़नेवालेको कुछ आपत्ति नहीं

होती, और उसकी आयु भी बहुत  
होजाती है, इसको सुननेवाला सदा  
जीतता है कभी हारता नहीं। १६-२०

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरत-  
कुल सिंह जनमेजय ! शल्यके ऐसे  
वचन सुन धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राजा  
युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने  
राजा शल्यकी पूजा करी, अनन्तर महा-  
बलवान कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने मद्राज  
शल्यसे कहा, आप अवश्य कर्णके सार-  
थी बनियेंगा। उस समय कर्णका बल  
नाश कीजियेगा, और अर्जुनके बलको  
बढाइयेगा। ( २१—२३ )

शल्य उवाच— एवमेतत्करिष्यामि यथा मां संप्रभाषसे ।  
 यच्चाऽन्यदपि शक्यामि तत्करिष्याम्यहं तव ॥ २४ ॥  
 वैशम्पायन उवाच—ततस्त्वामंश्र्य कौन्तेयाञ्छल्यो मद्राधिपस्तदा ।  
 जगाम सबलः श्रीमान्दुर्योधनमरिन्दम ॥ २५ ॥ [ ५४९ ]  
 इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि  
 सेनोद्योगपर्वणि शल्यगमनेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच—युयुधानस्ततो वीरः सात्वतानां महारथः ।  
 महता चतुरङ्गेण बलेनाऽगाद्युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥  
 तस्य योधा महावीर्या नानादेशसमागताः ।  
 नानाप्रहरणा वीराः शोभयांचक्रिरे बलम् ॥ २ ॥  
 परश्वधैर्भिन्दिपालैः शूलतोमरमुद्गरैः ।  
 परिघैर्यष्टिभिः पाशैः करवालैश्च निर्मलैः ॥ ३ ॥  
 खड्गकार्मुकनिर्व्यूहैः शरैश्च विविधैरपि ।  
 तैलधौतैः प्रकाशद्भिः सदाऽशोभत वै बलम् ॥ ४ ॥  
 तस्य मेघप्रकाशस्य सौवर्णैः शोभितस्य च ।  
 बभूव रूपं सैन्यस्य मेघस्येव सविद्युतः ॥ ५ ॥

शल्य बोले, तुम जैसा कहते हो, मैं अवश्य ऐसाही करूंगा, इसके अतिरिक्त और भी शक्तिके अनुसार तुम्हारा कल्याण करूंगा । ( २४ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे शत्रु नाशन जनमेजय ! अनन्तर श्रीमान् शल्य पाण्डवोंसे आज्ञा लेकर अपनी सेनाके सहित हस्तिनापुरको चले गये । ( २५ ) [ ५४९ ]

उद्योगपर्वमें अठारह अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें उन्नीस अध्याय

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! उसके पश्चात् यदुवंशियोंमें

श्रेष्ठ महारथ महावीर सात्यकी हाथी, घोड़े, रथ और पदातियोंसे भरी महासेनाके सहित महाराज युधिष्ठिरके पास आये । महावीर सात्यकीके संग अनेक देशके आये हुए महावीर महा योद्धा थे, वे सब अनेक शस्त्रोंको चलानेवाले परश्वध, भिन्दिपाल, शूल, तोमर, मुद्गर, परिघ, लाठी, फांसी, निर्मल करवाल, खड्ग, तेलसे धोनेसे प्रकाशमान बाण और धनुषको धारण करके शोभित होने लगे, मेघके समान वर्णवाला उस महासेनामें सुवर्ण खचित धनुष इस प्रकार चमक रहे थे, जैसे मेघमें बिजली, वह



अक्षौहिणी तु सा सेना तदा यौधिष्ठिरं बलम् ।  
 प्रविश्यांस्तर्दधे राजन्सागरं कुनदी यथा ॥ ६ ॥  
 तथैवाऽक्षौहिणीं गृह्य चेदीनामृषभो बली ।  
 धृष्टकेतुरुपागच्छत्पांडवानमितौजसः ॥ ७ ॥  
 मागधश्च जयत्सेनो जारासंधिर्महाबलः ।  
 अक्षौहिण्यैव सैन्यस्य धर्मराजमुपागमत् ॥ ८ ॥  
 तथैव पांडवो राजेंद्र सागरानूपवासिभिः ।  
 वृत्तो बहुविधैर्यौधैर्युधिष्ठिरमुपागमत् ॥ ९ ॥  
 तस्य सैन्यमतीवाऽऽसीत्तस्मिन्बलसमागमे ।  
 प्रेक्षणीयतरं राजन्सुवेषं बलवत्तदा ॥ १० ॥  
 द्रुपदस्याऽप्यभूत्सेना नानादेशसमागतैः ।  
 शोभिता पुरुषैः शूरैः पुत्रैश्चाऽस्य महारथैः ॥ ११ ॥  
 तथैव राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ।  
 पार्वतीयैर्महीपालैः सहितः पांडवानियात् ॥ १२ ॥  
 इतश्चेतश्च पांडूनां समाजग्मुर्महात्मनाम् ।  
 अक्षौहिण्यस्तु सप्तैता विविधध्वजसंकुलाः ॥ १३ ॥  
 युयुत्समानाः कुरुभिः पांडवान्समहर्षयन् ।

अक्षौहिणी सेना युधिष्ठिरकी सेनामें आकर  
 इस प्रकार मिल गई जैसे समुद्रमें छोटी  
 नदी मिलजाती हैं । ( १—६ )

अनंतर एक अक्षौहिणी सेना लेकर  
 चेदि देशके राजा महा पराक्रमी  
 धृष्टकेतु महाराज युधिष्ठिरके पास आये ।  
 महा पराक्रमी जरामन्धपुत्र मगध देशके  
 राजा जयत्सेन भी एक अक्षौहिणी सेना  
 लेकर धर्मराजके पास पहुंचे । इसी प्रकार  
 पांडव देशका राजा अनेक द्वीपोंके  
 वीरोंके सहित युधिष्ठिरके पास आया,  
 पाण्डव की सेना बहुत और बलवान्

थी तथा उत्तम वस्त्र पहननेसे देखने  
 योग्य होगयी थी । ( ७—१० )

राजा द्रुपदकी महा सेना अनेक देश  
 के वीरोंके सहित महारथ और महा-  
 वीर द्रुपद पुत्रोंसे रक्षित पड़ी थी । राजा  
 विराट पर्वतीय राजोंके साथ पाण्डवोंके  
 पास पहुंचे इस प्रकार कौरवोंसे युद्ध कर-  
 नेके लिये और महात्मा पाण्डवोंके  
 साहाय्यके लिये आयी हुई सात अक्षौ-  
 हिणी सेना इकट्ठी होगई । इस सेनामें अ-  
 नेक प्रकारकी ध्वजा लग गई । इस सेनाको  
 देखकर पाण्डवलोग प्रसन्न हुए । ११-१४

तथैव धार्तराष्ट्रस्य हर्षं समभिवर्धयन् ॥ १४ ॥  
 भगदत्तो महीपालः सेनामक्षौहिणीं ददौ ।  
 तस्य चीनैः किरातैश्च कांचनैरिव संवृतम् ॥ १५ ॥  
 बभौ बलमनाधृष्यं कर्णिकारवनं यथा ।  
 तथा भूरिश्रवाः शूरः शल्यश्च कुरुनंदन ॥ १६ ॥  
 दुर्योधनमुपायातावक्षौहिण्या पृथक् पृथक् ।  
 कृतवर्मा च हार्दिक्यो भोजांधकुरैः सह ॥ १७ ॥  
 अक्षौहिण्यैव सेनाया दुर्योधनमुपागमत् ।  
 तस्य तैः पुरुषव्याघ्रैर्वनमालाधरैर्वलम् ॥ १८ ॥  
 अशोभत यथा भक्तैर्वनं प्रकीडितैर्गजैः ।  
 जयद्रथमुखाश्चाऽन्ये सिंधुसौवीरवासिनः ॥ १९ ॥  
 आजग्मुः पृथिवीपालाः कंपयंत इवाऽचलान् ।  
 तेषामक्षौहिणी सेना बहुला विबभौ तदा ॥ २० ॥  
 विधूयमानो वातेन बहुरूप इवाऽबुदः ।  
 सुदक्षिणश्च कांबोजो यवनैश्च शकैस्तथा ॥ २१ ॥  
 उपाजगाम कौरव्यमक्षौहिण्या विशांपते ।  
 तस्य सेनासमावायः शलभानामिवाऽऽबभौ ॥ २२ ॥  
 स च संप्राप्य कौरव्यं तत्रैवाऽनर्दधे तदा ।

इसी प्रकार राजा दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिये एक अक्षौहिणी सेना लेकर राजा भगदत्त आये, उनके सङ्गही सुवर्णसे युक्त और कर्णिकार समान दीखने वाली पराक्रमी चीन और किरात देशकी सेना भी आई । एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर भूरिश्रवा शल्य हार्दिक्य और कृतवर्मा आये, उनके सङ्गही भोज, अन्धक और कुरुरवंशी क्षत्री आये; इन क्षत्रियोंकी एक अक्षौहिणी सेना थी । वन माला धारी उस सेनाके आ-

नसे दुर्योधनकी सेना ऐसी शोभित हुई जैसे क्रीडा करते मतवारे हाथियोंके सहित वन । ( १४-१९ )

पर्वतोंको कंपाते हुए जयद्रथ आदि सिन्धु और सौवीर देशके राजा आये, उनके सङ्ग एक अक्षौहिणी सेना थी, फिर वायुसे घूमते हुए मेघके समान एक अक्षौहिणी सेना लेकर शक और यवनोंके सहित काम्बोज देशका सुदक्षिण राजा आया, उसकी सेना टीढ़ी दलके समान शोभित होने लगी, वह सेना भी दुर्योधनकी

तथा माहिष्मतीवासी नीलो नीलायुधैः सह ॥ २३ ॥  
 महीपालो महावीर्यैर्दक्षिणापथवासिभिः ।  
 आवंत्यौ च महीपालौ महाबलसुसंवृतौ ॥ २४ ॥  
 पृथगक्षौहिणीभ्यां तावभियातौ सुयोधनम् ।  
 केकयाश्च नरन्याघ्राः सोदर्याः पंच पार्थिवाः ॥ २५ ॥  
 संहर्षयंतः कौरव्यमक्षौहिण्या समाद्रवन् ।  
 तनस्तनस्तु सर्वेषां भूमिपानां महात्मनाम् ॥ २६ ॥  
 तिस्रोऽन्याः समवर्तन्त बाहिन्यो भरतर्षभ ।  
 एवमेकादशावृत्ताः सेना दुर्योधनस्य ताः ॥ २७ ॥  
 युयुत्समानाः कौन्तेयान्नानाध्वजसमाकुलाः ।  
 न हास्तिनपुरे राजन्नवकाशोऽभवत्तदा ॥ २८ ॥  
 राज्ञां स्वबलमुख्यानां प्राधान्येनाऽपि भारत ।  
 ततः पंचनदं चैव कृत्स्नं च कुरुजांगलम् ॥ २९ ॥  
 तथा रोहितकारण्यं मरुभूमिश्च केवला ।  
 अहिच्छत्रं कालकूटं गंगाकूलं च भारत ॥ ३० ॥  
 वारणं वाटधानं च यामुनश्चैव पर्वतः ।  
 एष देशः सुविस्तीर्णः प्रभूतधनधान्यवान् ॥ ३१ ॥

सेनामें मिल गयी । ( १९-२३ )

इसके पश्चात् माहिष्मतीका नील नामक राजा नील आयुधधारी वीरोंको लेकर दुर्योधनके पास आया । अनंतर अनेक दक्षिणी राजोंके सहित उज्जैनके विन्द और अनुविन्द राजा आये इनके संग दो अक्षौहिणी सेना थी । फिर पांचों कैकय देशके राजा दुर्योधनकी प्रसन्नताके लिये एक अक्षौहिणी सेना लेकर हास्तिनापुरको चले । इस प्रकार सब महात्मा राजा दुर्योधनके पास आये और दुर्योधनकी अपनी सेनाभी तीन

अक्षौहिणी थी, इस प्रकार ग्यारह अक्षौहिणी सेना दुर्योधनकी हुई । अनेक ध्वजाओंसे युक्त वह सेना युधिष्ठिरसे युद्ध करनेकी इच्छा करने लगी । हे राजन ! उस समय हास्तिनापुरमें आये हुए राजा और सेना के मुख्य मुख्य अधिकारियोंको भी कोई स्थान खाली न रह गया । ( २४-२९ )

उस समय समस्त पञ्जाब, कुरुदेश, रोहितकारण्य, मारवाड, अहिक्षत्र, काल कूट, गङ्गातट, वारणावत, वाटधान और यामुन पर्वत, जिनमें धन और

बभूव कौरवेयाणां बलेनाऽतीव संवृतः ।

तत्र सैन्यं तथा युक्तं ददर्श स पुरोहितः ॥ ३२ ॥

यः स पांचालराजेन प्रेषितः कौरवान्प्रति ॥ ३३ ॥ [५८२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि  
पुरोहितसैन्यदर्शने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ समाप्तमिदं सेनोद्योगपर्व ।

अथ संजययानपर्व ।

वैशंपायन उवाच-स च कौरव्यमासाद्य द्रुपदस्य पुरोहितः ।

सत्कुलो धृतराष्ट्रेण भीष्मेण विदुरेण च ॥ १ ॥

सर्वकौशल्यमुक्त्वाऽऽदौ पृष्ठा चैवमनामयम् ।

सर्वसेनाप्रणेतृणां मध्ये वाक्यमुवाच ह ॥ २ ॥

सर्वैर्भवद्भिर्विदितो राजधर्मः सनातनः ।

वाक्योपादानहेतोस्तु वक्ष्यामि विदिते सति ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रश्च पांडुश्च सुतावेकस्य विश्रुतौ ।

तयोः समानं द्रविणं पैतृकं नाऽत्र संशयः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्रस्य ये पुत्राः प्राप्तं तैः पैतृकं वसु ।

पांडुपुत्राः कथं नाम न प्राप्ताः पैतृकं वसु ॥ ५ ॥

अन्न पूर्ण था, ये स्थान दुर्योधनकी सेना के निवेश हुए । उन सब देशोंमें ठहरी हुई सेनाको द्रुपदके उस पुरोहितने देखा जो कौरवोंके यहां जा रहा था । ( २९-३३ ) [ ५८२ ]

उद्योग पर्वमें उन्नीस अध्याय और  
सेनोद्योगपर्व समाप्त ।

उद्योगपर्वमें बीस अध्याय और  
संजययान पर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! इस प्रकार द्रुपदका पुरोहित सेनाको देखता हुआ हस्तिनापुर पहुंचा, वहां राजा धृतराष्ट्र, विदुर और भीष्मने

उनका बहुत सम्मान किया । अनन्तर वह पुरोहित सबसे कुशल प्रश्न करके और अपना कुल कहकर सब सेनापतियोंके बीचमें कहने लगे, यद्यपि आप सब लोग सनातन राजधर्मको जानते हैं, तथापि वचनकी भूमिकाके लिये मैं कुछ कहना चाहता हूं । ( १-३ )

आप सब लोग जानते हैं, कि धृतराष्ट्र, और पाण्डु एकही पिताके पुत्र हैं इस लिये पिताका धन दोनोंको समान बंटना चाहिये; परन्तु धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पुरुषोंके धनको पाया तब पाण्डव क्यों नहीं पावेंगे ? आप लोग जानते हैं, कि

एवं गते पाण्डवैर्विदितं वः पुरा यथा ।

न प्राप्तं पैतृकं द्रव्यं धृतराष्ट्रेण संवृतम् ॥ ६ ॥

प्राणांतिकैरप्युपायैः प्रयत्नाद्भिरनेकशः ।

शेषवन्तो न शक्विता नेतुं वै यमसादनम् ॥ ७ ॥

पुनश्च वर्द्धितं राज्यं स्वबलेन महात्मभिः ।

छद्मनाऽपहतं क्षुद्रैर्धार्तराष्ट्रैः ससौबलेः ॥ ८ ॥

तदप्यनुमतं कर्म यथायुक्तमनेन वै ।

वासिताश्च महारण्ये वर्षाणीह त्रयोदश ॥ ९ ॥

सभायां क्लेशितैर्वीरैः सह भार्यैस्तथा भृशम् ।

अरण्ये विविधाः क्लेशाः संप्राप्तास्तैः सुदारुणाः ॥ १० ॥

तथा विराटनगरे योन्यन्तरगतैरिव ।

प्राप्तः परमसंक्लेशो यथा पापैर्महात्मभिः ॥ ११ ॥

ते सर्वं पृष्ठतः कृत्वा तत्सर्वं पूर्वकिल्बिषम् ।

सामैव कुरुभिः सार्धमिच्छन्ति कुरुपुंगवाः ॥ १२ ॥

तेषां च वृत्तमाज्ञाय वृत्तं दुर्योधनस्य च ।

पाण्डव लोग किस प्रकार वनको गये थे ? अब समय बीतने पर धृतराष्ट्र क्यों नहीं उनका धन देते ? धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पाण्डवोंके मारनेके अनेक यत्न किये, परन्तु मार नहीं सके, उन महात्माओंने फिर भी अपने बलसे अपने राजको बढा लिया । परन्तु फिर भी धृतराष्ट्रके नीच पुत्रोंने शकुनिके सङ्ग उनके राज्य को छलसे लिया । ( ४-८ )

महात्मा युधिष्ठिरने उसको भी मान लिया उन्होंने तेरहवर्ष वनमें रहकर घोर दुःख उठाये । आप लोग यह भी जानते हैं कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने द्रौपदीके सहित पाण्डवोंको सभामें कैसा दुःख दिया

था ? फिर उन्होंने बारहवर्ष वनमें कैसे दुःख उठाये ? फिर विराट नगरमें ऐसा वेष धारण किया मानो इनका जन्मही दूसरा हो गया, उन महात्माओंने साधारण पापियोंके समान दुःख उठाये परन्तु महात्मा युधिष्ठिर उन सब दुःखोंको और अपराधको पीछे करके अपनाही राज्य मांगते हैं, उनकी इच्छा यह नहीं है कि क्षत्रियोंका नाश हो । महात्मा पाण्डव लोग कौरवोंके साथ युद्ध करना नहीं चाहते सामही चाहते हैं । ( ९—१२ )

आप सब लोग दुर्योधन और पाण्डवोंके दोष और गुणोंको देखकर दुर्योधन

एवं संपूज्य भगवानथर्वागिरसं तदा ।

व्यसर्जयन्महाराज देवराजः शतक्रतुः ॥ ८ ॥

संपूज्य सर्वास्त्रिदशानृषींश्चापि तपोधनान् ।

इन्द्रः प्रमुदितो राजन्धर्मेणाऽपालयत्प्रजाः ॥ ९ ॥

एवं दुःखमनुप्राप्तमिन्द्रेण सह भार्यया ।

अज्ञातवासश्च कृतः शत्रूणां वधकांक्षया ॥ १० ॥

नाऽत्र मन्युस्त्वया कार्थो यत्किञ्चिदऽसि महावने ।

द्रौपद्या सह राजेंद्र भ्रातृभिश्च महात्मभिः ॥ ११ ॥

एवं त्वमपि राजेंद्र राज्यं प्राप्स्यसि भारत ।

वृत्रं हत्वा यथा प्राप्तः शक्रः कौरवनन्दन ॥ १२ ॥

दुराचारश्च नहुषो ब्रह्मद्विद् पापचेतनः ।

अगस्त्यशापाभिहतो विनष्टः शाश्वतीः समा ॥ १३ ॥

एवं तव दुरात्मानः शत्रवः शत्रुसूदन ।

क्षिप्रं नाशं गमिष्यन्ति कर्णदुर्योधनादयः ॥ १४ ॥

ततः सागरपर्यन्तां भोक्ष्यसे मेदिनीमिमाम् ।

भ्रातृभिः सहितो वीर द्रौपद्या च सहाऽनया ॥ १५ ॥

उपाख्यानमिदं शक्रविजयं वेदसंमितम् ।

यज्ञमें भाग मिलेगा । ( ४-७ )

हे महाराज ! इस प्रकार अथर्वागिरा मुनिकी पूजा करके सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रने उनको विदा किया, फिर सब देव और ऋषिओंकी पूजा करके इन्द्र प्रसन्नता सहित प्रजाको पालने लगे । इन्द्रने अपनी स्त्रीके सहित इस प्रकार दुःख भोगा था, और इस प्रकार शत्रुओंको मारनेके लिये छिपकर रहे थे, तुमने जो द्रौपदी और अपने भाइयोंके सहित वनमें दुःख भोगे । उसका कुछ दुःख मत कीजिये । ( ८-११ )

हे राजन् ! हे भारत ! हे कौरवनन्दन ! जिस प्रकार इन्द्र वृत्रासुरको मारकर पुनः राजा हुए थे, ऐसेही तुम भी राजा होंगे, जैसे पापी ब्राह्मण-द्रोही नहुष अगस्त्यके शापसे अनेक वर्ष नष्ट हुआ था, ऐसेही तुम्हारे पापी शत्रु कर्ण और दुर्योधनादिका नाश सत्वर होगा । हे शत्रुनाशन ! हे वीर ! उसके पश्चात् तुम अपने भाई और द्रौपदीके सहित समुद्र पर्यन्त पृथ्वीका राज्य करोगे । ( १२-१५ )

हे जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ ! यह इन्द्रके विजयकी कथा वेदमें संमत है, युद्धके

राज्ञा व्यूढेष्वनीकेषु श्रोतव्यं जयमिच्छता ॥ १६ ॥

तस्मात्संश्रावयामि त्वां विजयं जयनां वर ।

संस्तूयमाना वर्धते महात्मानो युधिष्ठिर ॥ १७ ॥

क्षत्रियाणामभावोऽयं युधिष्ठिर महात्मनाम् ।

दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च ॥ १८ ॥

आख्यानमिदं विजयं य इदं नियतः पठेत् ।

धृतपाप्मा जितस्वर्गः परत्रेह च मोदते ॥ १९ ॥

न चाऽरिजं भयं तस्य नाऽपुत्रो वा भवेन्नरः ।

नाऽऽपदं प्राप्नुयात्कांचिद्दीर्घमायुश्च विंदति ।

सर्वत्र जयमाप्नोति न कदाचित्पराजयम् ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच-एवमाश्वासितो राजा शल्येन भरतर्षभ ।

पूजयामास विधिवच्छल्यं धर्मभृतां वरः ॥ २१ ॥

श्रुत्वा तु शल्यवचनं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।

प्रत्युवाच महाबाहुर्मद्राजमिदं वचः ॥ २२ ॥

भवान्कर्णस्य सारथ्यं करिष्यति न संशयः ।

तत्र तेजोवधः कार्यः कर्णस्याऽर्जुनसंस्तवः ॥ २३ ॥

समय विजय करनेकी इच्छावाले राजा-  
को अवश्य सुननी चाहिये. इसीसे मैंने  
तुमको सुनाई; इसके सुननेसे महात्मा-  
ओंकी उन्नति होती है। हे युधिष्ठिर !  
यह घोर समय आगया है, अब दुर्योधन  
के अपराधसे तथा भीमसेन और  
अर्जुनके बलसे महात्मा क्षत्रियोंका नाश  
होगा, हमारी कही इस इन्द्र विजयकी  
कथाको जो नियम करके प्रतिदिन पढ़ें  
वह सब पापोंसे छूटकर इस लोक और  
परलोकमें सुख पाता है। इसके पढ़ने-  
वाला अपुत्र और निर्द्धन नहीं रहता,  
इसके पढ़नेवालेको कुछ आपत्ति नहीं

होती, और उसकी आयु भी बहुत  
होजाती है, इसको सुननेवाला सदा  
जीतता है कभी हारता नहीं। १६-२०

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरत-  
कुल सिंह जनमेजय ! शल्यके ऐसे  
वचन सुन धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राजा  
युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने  
राजा शल्यकी पूजा करी, अनन्तर महा-  
बलवान कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने मद्राज  
शल्यसे कहा, आप अवश्य कर्णके सार-  
थी बनियेंगा। उस समय कर्णका बल  
नाश कीजियेगा, और अर्जुनके बलको  
बढाइयेगा। ( २१—२३ )

शल्य उवाच- एवमेतत्करिष्यामि यथा मां संप्रभाषसे ।

यच्चाऽन्यदपि शक्यामि तत्करिष्याम्यहं तव ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततस्त्वामंय कौन्तेयाञ्छल्यो मद्राधिपस्तदा ।

जगाम सबलः श्रीमान्दुर्योधनमरिदम् ॥ २५ ॥ [ ५४९ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि

सेनोद्योगपर्वणि शल्यगमनेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच-युयुधानस्ततो वीरः सात्वतानां महारथः ।

महता चतुरंगेण बलेनाऽगाद्युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

तस्य योधा महावीर्या नानादेशसमागताः ।

नानाप्रहरणा वीराः शोभयांचक्रिरे बलम् ॥ २ ॥

परश्वधैर्भिन्दिपालैः शूलतोमरमुद्गरैः ।

परिधैर्यष्टिभिः पाशैः करवालैश्च निर्मलैः ॥ ३ ॥

खड्गकार्मुकनिर्व्यूहैः शरैश्च विविधैरपि ।

तैलघौतैः प्रकाशद्भिः सदाऽशोभत वै बलम् ॥ ४ ॥

तस्य मेघप्रकाशस्य सौवर्णैः शोभितस्य च ।

बभूव रूपं सैन्यस्य मेघस्येव सविद्युतः ॥ ५ ॥

शल्य बोले, तुम जैसा कहते हो, मैं अवश्य ऐसाही करूंगा, इसके अतिरिक्त और भी शक्तिके अनुसार तुम्हारा कल्याण करूंगा । ( २४ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे शत्रु नाशन जनमेजय ! अनन्तर श्रीमान् शल्य पाण्डवोंसे आज्ञा लेकर अपनी सेनाके सहित हस्तिनापुरको चले गये । ( २५ ) [ ५४९ ]

उद्योगपर्वमें अठारह अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें उन्नीस अध्याय

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! उसके पश्चात् यदुवंशियोंमें

श्रेष्ठ महारथ महावीर सात्यकी हाथी, घोड़े, रथ और पदातियोंसे भरी महासेनाके सहित महाराज युधिष्ठिरके पास आये । महावीर सात्यकीके संग अनेक देशके आये हुए महावीर महा योद्धा थे, वे सब अनेक शस्त्रोंको चलानेवाले परश्वध, भिन्दिपाल, शूल, तोमर, मुद्गर, परिध, लाठी, फांसी, निर्मल करवाल, खड्ग, तेलसे धोनेसे प्रकाशमान बाण और धनुषको धारण करके शोभित होने लगे, मेघके समान वर्णवाला उस महासेनामें सुवर्ण खचित धनुष इस प्रकार चमक रहे थे, जैसे मेघमें बिजली, वह



अक्षौहिणी तु सा सेना तदा यौधिष्ठिरं बलम् ।  
 प्रविश्याऽतर्द्धे राजन्सागरं कुनदी यथा ॥ ६ ॥  
 तथैवाऽक्षौहिणीं गृह्य चेदीनामृषभो बली ।  
 धृष्टकेतुरुपागच्छत्पांडवानमितौजसः ॥ ७ ॥  
 मागधश्च जयत्सेनो जारासंधिर्महाबलः ।  
 अक्षौहिण्यैव सैन्यस्य धर्मराजमुपागमत् ॥ ८ ॥  
 तथैव पांड्यो राजेंद्र सागरानूपवासिभिः ।  
 वृतो बहुविधैर्यौधैर्युधिष्ठिरमुपागमत् ॥ ९ ॥  
 तस्य सैन्यमतीवाऽऽसीत्तस्मिन्बलसमागमे ।  
 प्रेक्षणीयतरं राजन्सुवेषं बलवत्तदा ॥ १० ॥  
 द्रुपदस्याऽप्यभूत्सेना नानादेशसमागतैः ।  
 शोभिता पुरुषैः शूरैः पुत्रैश्चाऽस्य महारथैः ॥ ११ ॥  
 तथैव राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ।  
 पार्वतीयैर्महीपालैः सहितः पांडवानियात् ॥ १२ ॥  
 इतश्चेतश्च पांडूनां समाजग्मुर्महात्मनाम् ।  
 अक्षौहिण्यस्तु सप्तैता विविधध्वजसंकुलाः ॥ १३ ॥  
 युयुत्समानाः कुरुभिः पांडवान्समर्हषयन् ।

अक्षौहिणी सेना युधिष्ठिरकी सेनामें आकर  
 इस प्रकार मिल गई जैसे समुद्रमें छोटी  
 नदी मिलजाती हैं । ( १—६ )

अनंतर एक अक्षौहिणी सेना लेकर  
 चेदि देशके राजा महा पराक्रमी  
 धृष्टकेतु महाराज युधिष्ठिरके पास आये ।  
 महा पराक्रमी जरासन्धपुत्र मगध देशके  
 राजा जयत्सेन भी एक अक्षौहिणी सेना  
 लेकर धर्मराजके पास पहुंचे । इसी प्रकार  
 पांड्य देशका राजा अनेक द्वीपोंके  
 वीरोंके सहित युधिष्ठिरके पास आया,  
 पाण्ड्य की सेना बहुत और बलवान्

थी तथा उत्तम वस्त्र पहननेसे देखने  
 योग्य होगयी थी । ( ७—१० )

राजा द्रुपदकी महा सेना अनेक देश  
 के वीरोंके सहित महारथ और महा-  
 वीर द्रुपद पुत्रोंसे रक्षित पड़ी थी । राजा  
 विराट पर्वतीय राजोंके साथ पाण्डवोंके  
 पास पहुंचे इस प्रकार कौरवोंसे युद्ध कर-  
 नेके लिये और महात्मा पाण्डवोंके  
 साहाय्यके लिये आयी हुई सात अक्षौ-  
 हिणी सेना इकट्ठी होगई । इस सेनामें अ-  
 नेक प्रकारकी ध्वजा लग गई । इस सेनाको  
 देखकर पाण्डवलोग प्रसन्न हुए । ११-१४

तथैव धार्तराष्ट्रस्य हर्ष समभिवर्धयन् ॥ १४ ॥  
 भगदत्तो महीपालः सेनामक्षौहिणीं ददौ ।  
 तस्य चीनैः किरातैश्च कांचनैरिव संवृतम् ॥ १५ ॥  
 बभौ बलमनाधृष्यं कर्णिकारवनं यथा ।  
 तथा भूरिश्रवाः शूरः शल्यश्च कुरुनंदन ॥ १६ ॥  
 दुर्योधनमुपायातावक्षौहिण्या पृथक् पृथक् ।  
 कृतवर्मा च हार्दिक्यो भोजांधकुरैः सह ॥ १७ ॥  
 अक्षौहिण्यैव सेनाया दुर्योधनमुपागमत् ।  
 तस्य तैः पुरुषव्याघ्रैर्वनमालाधरैर्वलम् ॥ १८ ॥  
 अशोभत यथा मत्तैर्वनं प्रक्रीडितैर्गजैः ।  
 जयद्रथमुन्वाश्चाऽन्ये सिंधुसौवीरवासिनः ॥ १९ ॥  
 आजग्मुः पृथिवीपालाः कंपयंत इवाऽचलान् ।  
 तेषामक्षौहिणी सेना बहुला विबभौ तदा ॥ २० ॥  
 विधूयमानो वातेन बहुरूप इवाऽबुदः ।  
 सुदक्षिणश्च कांबोजो यवनैश्च शकैस्तथा ॥ २१ ॥  
 उपाजगाम कौरव्यमक्षौहिण्या विशांपते ।  
 तस्य सेनासमावायः शलभानामिवाऽऽबभौ ॥ २२ ॥  
 स च संप्राप्य कौरव्यं तत्रैवाऽतर्दधे तदा ।

इसी प्रकार राजा दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिये एक अक्षौहिणी सेना लेकर राजा भगदत्त आये, उनके सङ्गही सुवर्णसे युक्त और कर्णिकार समान दीखने वाली पराक्रमी चीन और किरात देशकी सेना भी आई । एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर भूरिश्रवा शल्य हार्दिक्य और कृतवर्मा आये, उनके सङ्गही भोज, अन्धक और कुरुरवंशी क्षत्री आये; इन क्षत्रियोंकी एक अक्षौहिणी सेना थी । वन माला धारी उस सेनाके आ-

नेसे दुर्योधनकी सेना ऐसी शोभित हुई जैसे क्रीडा करते मतवारे हाथियोंके सहित वन । ( १४-१९ )

पर्वतोंको कंपाते हुए जयद्रथ आदि सिन्धु और सौवीर देशके राजा आये, उनके सङ्ग एक अक्षौहिणी सेना थी, फिर वायुसे घूमते हुए मेघके समान एक अक्षौहिणी सेना लेकर शक और यवनोंके सहित काम्बोज देशका सुदक्षिण राजा आया, उसकी सेना टीली दलके समान शोभित होने लगी, वह सेना भी दुर्योधनकी

तथा माहिष्मतीवासी नीलो नीलायुधैः सह ॥ २३ ॥

महीपालो महावीर्यैर्दक्षिणापथवासिभिः ।

आवंत्यौ च महीपालौ महाबलसुसंवृतौ ॥ २४ ॥

पृथगक्षौहिणीभ्यां तावभियातौ सुयोधनम् ।

केकयाश्च नरव्याघ्राः सोदर्याः पंच पार्थिवाः ॥ २५ ॥

संहर्षयंतः कौरव्यमक्षौहिण्या समाद्रवन् ।

ततस्ततस्तु सर्वेषां भूमिपानां महात्मनाम् ॥ २६ ॥

तिस्रोऽन्याः सभवर्तत वाहिन्यो भरतर्षभ ।

एवमेकादशावृत्ताः सेना दुर्योधनस्य ताः ॥ २७ ॥

युयुत्समानाः कौन्तेयान्नानाध्वजसमाकुलाः ।

न हास्तिनपुरे राजन्नवकाशोऽभवत्तदा ॥ २८ ॥

राजां स्वबलमुख्यानां प्राधान्येनाऽपि भारत ।

ततः पंचनदं चैव कृत्स्नं च कुरुजांगलम् ॥ २९ ॥

तथा रोहितकारण्यं मरुभूमिश्च केवला ।

अहिच्छत्रं कालकूटं गंगाकूलं च भारत ॥ ३० ॥

वारणं वाटधानं च यामुनश्चैव पर्वतः ।

एष देशः सुविस्तीर्णः प्रभूतधनधान्यवान् ॥ ३१ ॥

सेनामें मिल गयी । ( १९-२३ )

इसके पश्चात् माहिष्मतीका नील नामक राजा नील आयुधधारी वीरोंको लेकर दुर्योधनके पास आया । अनंतर अनेक दक्षिणी राजोंके सहित उज्जैनके विन्द और अनुविन्द राजा आये इनके संग दो अक्षौहिणी सेना थी । फिर पांचों कैकय देशके राजा दुर्योधनकी प्रसन्नताके लिये एक अक्षौहिणी सेना लेकर हस्तिनापुरको चले । इस प्रकार सब महात्मा राजा दुर्योधनके पास आये और दुर्योधनकी अपनी सेनाभी तान

अक्षौहिणी थी, इस प्रकार ग्यारह अक्षौहिणी सेना दुर्योधनकी हुई । अनेक ध्वजाओंसे युक्त वह सेना युधिष्ठिरसे युद्ध करनेकी इच्छा करने लगी । हे राजन ! उस समय हस्तिनापुरमें आये हुए राजा और सेना के मुख्य मुख्य अधिकारियोंको भी कोई स्थान खाली न रह गया । ( २४-२९ )

उस समय समस्त पञ्जाब, कुरुदेश, रोहितकारण्य, मारवाड, अहिक्षत्र, काल कूट, गङ्गातट, वारणावत, वाटधान और यामुन पर्वत, जिनमें धन और

बभूव कौरवेयाणां बलेनाऽतीव संवृतः ।

तत्र सैन्यं तथा युक्तं ददर्श स पुरोहितः ॥ ३२ ॥

यः स पांचालराजेन प्रेषितः कौरवान्प्रति ॥ ३३ ॥ [५८२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि  
पुरोहितसैन्यदर्शने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ समाप्तमिदं सेनोद्योगपर्व ।

अथ संजययानपर्व ।

वैशंपायन उवाच-स च कौरव्यमासाद्य द्रुपदस्य पुरोहितः ।

सत्कृतो धृतराष्ट्रेण भीष्मेण विदुरेण च ॥ १ ॥

सर्वकौशल्यमुक्त्वाऽऽदौ पृष्ठा चैवमनामयम् ।

सर्वसेनाप्रणेतृणां मध्ये वाक्यमुवाच ह ॥ २ ॥

सर्वैर्भवद्विर्विदितो राजधर्मः सनातनः ।

वाक्योपादानहेतोस्तु वक्ष्यामि विदिने सति ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रश्च पांडुश्च सुतावेकस्य विश्रुतौ ।

तयोः समानं द्रविणं पैतृकं नाऽत्र संशयः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्रस्य ये पुत्राः प्राप्तं तैः पैतृकं वसु ।

पांडुपुत्राः कथं नाम न प्राप्ताः पैतृकं वसु ॥ ५ ॥

अत्र पूर्ण था, ये स्थान दुर्योधनकी सेना के निवेश हुए । उन सब देशोंमें ठहरी हुई सेनाको द्रुपदके उस पुरोहितने देखा जो कौरवोंके यहां जा रहा था । ( २९-३३ ) [ ५८२ ]

उद्योग पर्वमें उन्नीस अध्याय और  
सेनोद्योगपर्व समाप्त ।

उद्योगपर्वमें बीस अध्याय और  
संजययान पर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! इस प्रकार द्रुपदका पुरोहित सेनाको देखता हुआ हस्तिनापुर पहुंचा, वहां राजा धृतराष्ट्र, विदुर और भीष्मने

उनका बहुत सम्मान किया । अनन्तर वह पुरोहित सबसे कुशल प्रश्न करके और अपना कुल कहकर सब सेनापतियोंके बीचमें कहने लगे, यद्यपि आप सब लोग सनातन राजधर्मको जानते हैं, तथापि वचनकी भूमिकाके लिये मैं कुछ कहना चाहता हूं । ( १-३ )

आप सब लोग जानते हैं, कि धृतराष्ट्र, और पाण्डु एकही पिताके पुत्र हैं इस लिये पिताका धन दोनोंको समान बंटना चाहिये; परन्तु धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पुरुषोंके धनको पाया तब पाण्डव क्यों नहीं पावेंगे ? आप लोग जानते हैं, कि

एवं गते पाण्डवेयैर्विदितं वः पुरा यथा ।  
 न प्राप्तं पैतृकं द्रव्यं धृतराष्ट्रेण संवृतम् ॥ ६ ॥  
 प्राणांतिकैरप्युपायैः प्रयताङ्गिरनेकशः ।  
 शेषवंतो न शक्विता नेतुं वै यमसादनम् ॥ ७ ॥  
 पुनश्च वर्द्धितं राज्यं स्वबलेन महात्मभिः ।  
 छद्मनाऽपहृतं क्षुद्रैर्धार्तराष्ट्रैः ससौबलेः ॥ ८ ॥  
 तदप्यनुमतं कर्म यथायुक्तमनेन वै ।  
 वासिताश्च महारण्ये वर्षाणीह त्रयोदश ॥ ९ ॥  
 सभायां क्लेशितैर्वीरैः सह भायैस्तथा भृशम् ।  
 अरण्ये विविधाः क्लेशाः संप्राप्तास्तैः सुदारुणाः ॥ १० ॥  
 तथा विराटनगरे योन्यंतरगतैरिव ।  
 प्राप्तः परमसंक्लेशो यथा पापैर्ब्रह्मात्मभिः ॥ ११ ॥  
 ते सर्वं पृष्ठतः कृत्वा नत्सर्वं पूर्वकिल्बिषम् ।  
 सामैव कुरुभिः सार्धमिच्छन्ति कुरुपुंगवाः ॥ १२ ॥  
 तेषां च वृत्तमाज्ञाय वृत्तं दुर्योधनस्य च ।

पाण्डव लोग किस प्रकार वनको गये थे ? अब समय बीतने पर धृतराष्ट्र क्यों नहीं उनका धन देते ? धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पाण्डवोंके मारनेके अनेक यत्न किये, परन्तु मार नहीं सके, उन महात्माओंने फिर भी अपने बलसे अपने राजको बढ़ा लिया । परन्तु फिर भी धृतराष्ट्रके नीच पुत्रोंने शकुनिके सङ्ग उनके राज्य को छलसे लिया । ( ४-८ )

महात्मा युधिष्ठिरने उसको भी मान लिया उन्होंने तेरहवर्ष वनमें रहकर घोर दुःख उठाये । आप लोग यह भी जानते हैं कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने द्रौपदीके सहित पाण्डवोंको सभामें कैसा दुःख दिया

था ? फिर उन्होंने बारहवर्ष वनमें कैसे दुःख उठाये ? फिर विराट नगरमें ऐसा वेष धारण किया मानो इनका जन्मही दूसरा हो गया, उन महात्माओंने साधारण पापियोंके समान दुःख उठाये परन्तु महात्मा युधिष्ठिर उन सब दुःखोंको और अपराधको पीछे करके अपनाही राज्य मांगते हैं, उनकी इच्छा यह नहीं है कि क्षत्रियोंका नाश हो । महात्मा पाण्डव लोग कौरवोंके साथ युद्ध करना नहीं चाहते सामही चाहते हैं । ( ९-१२ )

आप सब लोग दुर्योधन और पाण्डवोंके दोष और गुणोंको देखकर दुर्योधन

के प्राद्वंश्रेदिपतिं विहाय सिंहं हृष्टा क्षुद्रमृगा इवाऽन्ये ॥ २८ ॥  
 यस्तं प्रतीपस्तरसा प्रत्युदीयादाशंसमानो द्वैरथे वासुदेवम् ।  
 सोऽशेन कृष्णेन हतः परासुर्वातिनेवोन्मथितः कर्णिकारः ॥ २९ ॥  
 पराक्रमं मे यद्वेदयंत तेषामर्थे संजय केशवस्य ।  
 अनुस्मरंस्तस्य कर्माणि विष्णोर्गावल्गणे नाऽधिगच्छामि शान्तिम् ॥ ३० ॥  
 न जातु ताञ्छत्रुरन्यः सहेत येषां स स्यादग्रणीवृष्णिर्सिंहः ।  
 प्रवेपते मे हृदयं भयेन श्रुत्वा कृष्णावेकरथे समेतौ ॥ ३१ ॥  
 न चेद्गच्छेत्संगरं नंदबुद्धिस्ताभ्यां लभेच्छर्म तदा सुतो मे ।  
 नो चेत्कुरून्संजय निर्दहेतामिन्द्राविष्णू दैत्यसेनां यथैव ॥ ३२ ॥  
 मतो हि मे शक्रसमो धनंजयः सनातनो वृष्णिवीरश्च विष्णुः ।  
 धर्मारामो ऽहीनिषेवस्तरस्त्री कुंतीपुत्रः पांडवोऽजातशत्रुः ॥ ३३ ॥  
 दुर्योधनेन निकृतो मनस्वी नोचेत्कुहः प्रदहेद्दार्तराष्ट्रान् ।  
 नाऽहं तथा ह्यर्जुनाद्वासुदेवाद्भीमाद्वाऽहं यमयोर्वा बिभेमि ॥ ३४ ॥

रथपर चढके युद्ध करनेको आये थे, उस समय शिशुपालको छोड़ और कौन सा वीर उनसे युद्ध करनेको उपस्थित हुआ था ? उस समय सब राजा दबकर ऐसे रह गये थे, जैसे सिंहसे छोटे हरिण दब जाते हैं, उस समय शिशुपाल ही कृष्णके संग दो रथसे युद्ध करनेको गये थे । जिस कृष्णने उस शिशुपालको इस प्रकार मारकर गिरा दिया, जैसे कचनारके वृक्षको काटकर गिरा देता है । हमने दूतोंसे सुना है कि वही पराक्रमी कृष्ण युधिष्ठिरकी ओर होकर आये हैं । हे संजय ! जिस कृष्णके चरित्रोंको स्मरण करके चित्त शान्त नहीं होता, वे ही कृष्ण युधिष्ठिरकी ओर हो गये हैं ॥ २८-३०

जिसकी ओर साक्षात् कृष्ण हैं, उस

युधिष्ठिरसे कौन युद्ध कर सकता है ? जब हम इस बातको सुनते हैं कि अर्जुन और कृष्ण एक रथपर चढके लड़नेको आवेंगे, तब हमारा हृदय भयसे कांपने लगता है । यदि मेरा मूर्ख पुत्र युद्ध करनेको न जाय, तो कृष्ण और अर्जुनसे जीता वच जायगा । नहीं तो अर्जुन और कृष्ण हमारे वंशको इस प्रकार भस्म कर देंगे जैसे इन्द्र और विष्णु दैत्योंका नाश करते हैं । हम अर्जुनको इन्द्रके समान वीर जानते हैं, और कृष्ण तो सनातन विष्णुही हैं ॥ (३१-३३)

इस मूर्ख दुर्योधनने महात्मा, लज्जान, महा पराक्रमी, शत्रु रहित युधिष्ठिरको बहुत दुःख दिया है; अब वे क्रोध करके अवश्य इसका नाश कर

यथा राज्ञः क्रोधदीप्तस्य सूत मन्योरहं भीततरः सदैव ।  
 महातपा ब्रह्मचर्येण युक्तः संकल्पोऽयं मानसस्तस्य सिद्धयेत् ॥ ३५ ॥  
 तस्य क्रोधं संजयाऽहं समीक्ष्य स्थाने जानन्भृशमस्म्यद्य भीतः ।  
 स गच्छ शीघ्रं प्रहितो रथेन पांचालराजस्य चमूनिवेशनम् ॥ ३६ ॥  
 अजातशत्रुं कुशलं स्म पृच्छेः पुनः पुनः प्रीतियुक्तं वदेस्त्वम् ।  
 जनार्दनं चापि समेत्य तात महामात्रं वीर्यवतामुदारम् ॥ ३७ ॥  
 अनामयं मद्वचनेन पृच्छेर्धृतराष्ट्रः पांडवैः शांतिमीप्सुः ।  
 न तस्य किंचिद्वचनं न कुर्यात्कुंतीपुत्रो वासुदेवस्य सूत ॥ ३८ ॥  
 प्रियश्चैवाभात्मसमश्च कृष्णो विद्वांश्चैषां कर्माणि नित्ययुक्तः ।  
 समानीतान्पाण्डवान्सृजयांश्च जनार्दनं युयुधानं विराट् ॥ ३९ ॥  
 अनामयं मद्वचनेन पृच्छेः सर्वास्तथा द्रौपदेयांश्च पंच ।  
 यद्यत्तत्र प्राप्तकालं परेभ्यस्त्वं मन्येथा भारतानां हितं च ॥  
 तद्भाषेथाः संजय राजमध्ये न भूच्छयेद्यत्र च युद्धहेतुः ॥ ४० ॥ [ ६६४ ]  
 इति श्रीमहाभारते० संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि संजययाने धृतराष्ट्रसंदेशे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

देंगे। मैं इतना अर्जुन, कृष्ण, भीम नकुल और सहदेवसे नहीं डरता, जितना धर्मराज युधिष्ठिरके क्रोधसे डरता हूं; क्योंकि उनका क्रोध महा कठोर है, वे ब्रह्मचारी और सत्यवादी हैं, उनकी प्रतिज्ञा अवश्य सत्य होती है। हे संजय ! उनके क्रोधको याद करके मैं रात दिन भयसे व्याकुल रहता हूं। ३३-३६

तुम इसी समय शीघ्र चलानेवाले रथपर चढ़कर द्रुपदकी सेनामें जाओ; वहां जाकर महाराज युधिष्ठिरसे प्रीतिके सहित हमारी ओरसे बार बार कुशल पूछना। महापराक्रमी पाण्डवोंके मुख्य मन्त्री कृष्णसे भी कुशल पूछना और कहना कि महाराज धृतराष्ट्र कुशलसे हैं, वे

आपके संग सन्धि करना चाहते हैं। हे सूत ! तुम यह सब वचन कृष्णहीसे कहना, कृष्णके वचनको युधिष्ठिर अवश्य मानते हैं। कृष्ण उनके प्यारे मन्त्री विद्वान और पाण्डवोंके सब कर्मोंके करनेवाले हैं। ( ३६—३९ )

इसके पश्चात् पांडवोंने जिन राजोंको बुलाया है, उन सबसे, सृजयोंसे, कृष्णसे और राजा विराटसे हमारी ओरसे कुशल पूछना, इसके पश्चात् द्रौपदीके पांच पुत्रोंसे कुशल पूछना, इसके पश्चात् जिनसे योग्य समझो उनसे भी हमारी ओरसे कुशल पूछना। इसके पश्चात् सब राजोंके बीचमें कालके अनुसार हमारे कल्याणके वचन कहना;

वैशंपायन उवाच-राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रस्य संजयः ।

उपप्लव्यं ययौ द्रष्टुं पांडवानामितौजसः ॥ १ ॥

स तु राजानमासाद्य कुंतीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

अभिवाद्य ततः पूर्वं सूतपुत्रोऽभ्यभाषत ॥ २ ॥

गावल्गणिः संजयः सूतसूनुरजातशत्रुभवदत्प्रतीतः ।

दिष्ट्या राजंस्त्वामरोगं प्रपश्ये सहायवंतं च महेंद्रकल्पम् ॥ ३ ॥

अनामयं पृच्छति त्वाऽम्बिकेयो वृद्धो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी ।

कचिद्भीमः कुशली पांडवाग्न्यो धनंजयस्तौ च साद्रीननूजौ ॥ ४ ॥

कचित्कृष्णा द्रौपदी राजपुत्री सत्यवता वीरपत्नी सपुत्रा ।

सनखिनी यत्र च बांछसि त्वमिष्टान्काभान्भारत स्वस्तिकामः ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच— गावल्गणे संजय स्वागतं ते प्रीयामहे ते वयं दर्शनेन ।

अनामयं प्रतिजाने तवाऽहं सहानुजैः कुशली चाऽस्मि विद्वन् ॥ ६ ॥

चिरादिदं कुशलं भारतस्य श्रुत्वा राज्ञः कुरुवृद्धस्य सूत ।

परंतु हमारे वचन ऐसे न हों, जिनसे  
युद्धकी सिद्धि होती हो । (३९-४०) [६६४

उद्योगपर्वमें बाइस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें तेईस अध्याय ।

श्रीवैशंपायन मुनि बोले, हे राजन्  
जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रके ऐसे वचन  
सुन सञ्जय रथमें बैठकर महा तेजस्वी  
पांडवोंको देखनेके वास्ते उपप्लव्य  
नगरको चले, वहां जाकर सूतपुत्र  
सञ्जयने कुंतीपुत्र महाराज युधिष्ठिरको  
देखा, अनंतर गवल्गणके पुत्र सूतपुत्र  
संजयने प्रसन्न होकर महाराजको प्रणाम  
किया और हाथ जोड़कर कहा, हे  
महाराज ! हम आज प्रारब्धहीसे आपको  
रोगरहित, सहायोंके सहित इंद्रके समान  
बैठे देखते हैं । हे महाराज ! अंगिकापुत्र

बूढ़े धृतराष्ट्र आपसे कुशल पूछते हैं;  
वह कहते हैं, कि पांडवश्रेष्ठ भीम,  
अर्जुन, नकुल और सहदेव कुशलसे तो  
हैं? हे भारत ! उन्होंने पूछा है, कि  
जिससे तुम सब कल्याणोंकी इच्छा करते  
हो, वह वीरोंकी स्त्री राजपुत्री  
यशस्विनी पतिव्रता द्रौपदी पुत्रोंके सहित  
कुशलसे तो है ? ( १-५ )

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे गवल्ग-  
णपुत्र सूत सञ्जय ! हम तुम्हारा स्वागत  
करते हैं, तुम्हें देखकर आज हम बहुत  
प्रसन्न हुए । हम अपने भाइयोंके सहि-  
त कुशलसे हैं; तुम अपनी कुशल कहो ।  
आज हमने बहुत दिनपर अपने बूढ़े  
महाराज धृतराष्ट्रकी कुशल सुनी । कुशल  
सुननेहीसे हमको ऐसा आनन्द हुआ



अन्ये साक्षाद् दृष्टमहं नरेन्द्रं दृष्ट्वैव त्वां संजय प्रीतियोगात् ॥ ७ ॥

पितामहो नः स्थविरो मनस्वी महाप्राज्ञः सर्वधर्मोपपन्नः ।

स कौरव्यः कुशली तात भीष्मो यथापूर्वं वृत्तिरस्यस्य कश्चित् ॥ ८ ॥

कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो वैचित्रवीर्यः कुशली महात्मा ।

महाराजो बाह्लिकः प्रातिपेयः कच्चिद्विद्वान्कुशली सूतपुत्र ॥ ९ ॥

स सोमदत्तः कुशली तात कच्चिद्भूरिश्रवाः सत्यसंधः शलश्च ।

द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च विप्रो महेष्वासः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः ॥ १० ॥

सर्वे कुरुभ्यः स्पृहयन्ति संजय धनुर्धरा ये पृथिव्यां प्रधानाः ।

महाप्राज्ञाः सर्वशास्त्रावदाता धनुर्भृतां मुख्यतमाः पृथिव्याम् ॥ ११ ॥

कच्चिन्मानं तात लभन्त एते धनुर्भृतः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः ।

येषां राष्ट्रे निवसति दर्शनीयो महेष्वासः शीलवान्द्रोणपुत्रः ॥ १२ ॥

वैश्यापुत्रः कुशली तात कच्चिन्महाप्राज्ञो राजपुत्रो युयुत्सुः ।

कर्णोऽभात्यः कुशली तात कश्चित्सुयोधनो यस्य मंदो विधेयः ॥ १३ ॥

स्त्रियो वृद्धा भारतानां जनन्यो महानस्यो दासभायाश्च सूत ।

जैसा उनके दर्शनसे होता है ! उनका दर्शनही हमको कल्याणदायक है । हे प्यारे संजय ! कहो हमारे दादा महाबुद्धिमान सब धर्मके जाननेवाले बूढ़े भीष्म कुशलसे तो हैं ? पहलेके समान धर्म करते हैं न ? कहो विचित्रवीर्यपुत्र महाराज धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके सहित अच्छे तो हैं ? हे सूतपुत्र ! महाविद्वान् प्रातिपेयपुत्र महाराज बाह्लिक तो अच्छे हैं न ? ( ६—९ )

महा धर्मात्मा सोमदत्त, भूरिश्रवा, शल, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदिमहा धनुषधारी वीरलोग कुशलसे हैं न ? पृथ्वीमें सब धनुषधारी महा बुद्धिमान् सब शास्त्रोंके जाननेवा-

ले राजा और सेनाके जो प्रधान वीर हैं, वे विनायुद्ध कौरवोंके कल्याण की इच्छा तो करते हैं न ? और वे सब कुशलसे हैं न ? कहो ये सब राजासे उत्तम संमान पाते हैं न ? जिनके राज्य में महा धनुषधारी शीलवान् सुन्दर अश्वत्थामा रहते हैं, उन कौरवोंकी सभामें सब प्रधान आदरसे रहते हैं न ? ( १०—१२ )

कहो महा बुद्धिमान् वैश्यापुत्र युयुत्सु अच्छे हैं न ? कहो जिसने राजा दुर्योधनको अपने आधीन किया है, वह मन्त्री कर्ण तो अच्छे हैं ? हम लोगोंकी माता कौरवकुलकी बूढ़ी स्त्री रसोई बनानेवाली, दास दासी, बहू, बेटे,

वध्वः पुत्रा भागिनेया भगिन्यो द्रौहित्रा वा कच्चिदप्यन्यलीकाः ॥ १४ ॥  
 कच्चिद्राजा ब्राह्मणानां यथावत्प्रवर्तते पूर्ववत्तात वृत्तिम् ।  
 कच्चिद्वायान्मामकान्धार्तराष्ट्रो द्विजातीनां संजय नोपहन्ति ॥ १५ ॥  
 कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्र उपेक्षते ब्राह्मणातिक्रमान्वै ।  
 स्वर्गस्य कच्चिन्न तथा वर्त्मभूतामुपेक्षते तेषु सदैव वृत्तिम् ॥ १६ ॥  
 एनज्ज्योतिश्चोत्तमं जीवलोके शुक्लं प्रजानां विहितं विधात्रा ।  
 ते चेद्दोषं नियच्छन्ति मन्दाः कृत्स्नो नाशो भविता कौरवाणाम् ॥ १७ ॥  
 कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो बुभूषते वृत्तिममात्यवर्गे ।  
 कच्चिन्न भेदेन जिजीविषन्ति सुहृद्रूपा दुर्हृदश्चैकमन्यात् ॥ १८ ॥  
 कच्चिन्न पापं कथयन्ति तात ते पाण्डवानां कुरवः सर्व एव ।  
 द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च वीरो नास्मास्तु पापानि वदन्ति कचित् ॥ १९ ॥  
 कच्चिद्राज्ये धृतराष्ट्रं सपुत्रं समेत्याऽऽहुः कुरवः सर्व एव ।  
 कच्चिद् हृष्टा दस्युसंघान्समेतान्स्मरन्ति पार्थस्य युधां प्रणेतुः ॥ २० ॥  
 मौर्वीभुजाग्रप्रहितान्स्म तात दोधूयमानेन धनुर्धरेण ।  
 गाण्डीविनुन्नास्तनयित्नुघोषानजिह्वगान्कच्चिदनुस्मरन्ति ॥ २१ ॥

भान्जे, बहिन, पुत्री और पुत्रीके पुत्र  
 ये सब अच्छे हैं न ? कहो राजा दुर्यो-  
 धन ब्राह्मणोंको पहलेके समान मानते  
 हैं न ? कहो दुर्योधनने हमारे दिये हुए  
 गांव आदि ब्राह्मणोंसे छीन तो नहीं  
 लिये ? ( १३-१५ )

कहो पुत्रोंके सहित राजा धृतराष्ट्र  
 ब्राह्मणोंको दुःख करने वालोंको शासन  
 करते हैं ? वे अपने परलोक सुधारनेके  
 उपायभूत ब्राह्मणों की सेवा करते तो  
 हैं ? ब्रह्माने कहा है, कि ब्राह्मणोंको वृत्ति  
 देनाही स्वर्गसाधनका उपाय है, और इस  
 लोकमें यश बढानेवाला है। यदि कोई उन  
 की वृत्तिमें लोभ करे तो ब्राह्मण लोग क्रोध

करके सब कौरवोंका नाश कर सकते हैं।  
 कहो पुत्रोंके सहित राजा धृतराष्ट्र अपने  
 सेवकोंको योग्यकालमें वेतन देते हैं न ?  
 कहो उनके यहां कोई शत्रु मित्र होकर  
 तो नहीं है ? कहो, वे लोग पाण्डवोंके दोष  
 तो नहीं वर्णन करते ? द्रोणाचार्य, कृपा-  
 चार्य और वीर अश्वत्थामा हम लोगोंको  
 पापी तो नहीं बनाते ? ( १६-१९ )

कहो सब कौरव, राजा धृतराष्ट्रको  
 पुत्रोंके सहित मानते हैं न ? कहो डाकु-  
 ओंको देखकर वे लोग कभी पाण्डवोंका  
 स्मरण करते हैं ? कभी वे लोग गाण्डी-  
 व धनुषसे छूटे हुए बिजलीके समान  
 शब्दवाले अर्जुनके बाणोंको स्मरण करते

न चाऽपश्यं कंचिदहं पृथिव्यां योधं समं वाऽधिकमर्जुनेन ।  
यस्यैकषष्टिर्निशितास्तीक्ष्णधाराः सुवाससः संमतो हस्तवापः ॥ २२ ॥  
गदापाणिभीमसेनस्तरस्वी प्रवेपयञ्छत्रुसंघाननीके ।  
नागः प्रभिन्न इव नडवलेषु चक्रम्यते कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २३ ॥  
माद्रीपुत्रः सहदेवः कलिङ्गान्समागतानजयहंतकूरे ।  
वामेनाऽस्यन्दाक्षिणेनैव यो वै महाबलं कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २४ ॥  
पुरा जेतुं नकुलः प्रेषितोऽयं शिबींस्त्रिगर्तान्संजय पश्यतस्ते ।  
दिशं प्रतीचीं वशमानयन्मे माद्रीसुतं कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २५ ॥  
पराभवो द्वैतवने य आसीद्दुर्मित्रिते घोषयात्रागतानाम् ।  
यत्र मंदाञ्छत्रुवशं प्रयातानमोचयद्भीमसेनो जयश्च ॥ २६ ॥  
अहं पश्चादर्जुनमभ्यरक्षं माद्रीपुत्रौ भीमसेनोऽप्यरक्षत्  
गाण्डीवधन्वा शत्रुसंघानुदस्य स्वस्त्यागमत्कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २७ ॥  
न कर्मणा साधुनैकेन नूनं सुखं शक्यं वै भवतीह संजय ।

हैं ? मैंने आज पर्यन्त अर्जुनके समान योद्धा किसीको नहीं देखा, जो इक सठ तीक्ष्ण बाण एक समयही छोड़ सकता है । ( २०-२२ )

ऐसेही हमारे भाई भीमसेन इस प्रकार गदा लेकर शत्रुओंके समूहों को भय देते हुए युद्ध करते हैं, जैसे मतवाला हाथी घासयुक्त प्रदेशमें युद्ध करता है, इनसे कोई शत्रु जीता हुआ नहीं बच सकता । कहो कभी कौरव लोग भीमसेनका भी स्मरण करते हैं ? जिस हमारे छोटे भाई माद्रीपुत्र सहदेवने समरमें क्रोधसे भरकर बाणों और दहने हाथमें खड्ग धारण करके कलिङ्ग देशके वीरोंका नाश किया था, कहो कौरव लोग कभी उस वीर सहदेवका भी

स्मरण करते हैं ? हे संजय ! जिसको हमने शिबि और त्रिगर्त देशको जीतनेको भेजा था, जिसने तुम्हारे देखते देखते सब पश्चिम दिशाको जीत कर हमारे वशमें कर दिया था, उस वीर नकुलका भी कभी कौरवोंको स्मरण होता है ? ( २३-२५ )

जब घोषयात्रामें मूर्ख दुर्योधन शत्रुओंके वशमें होगया था, जहां उसका महानिरादर हुआ था, वहां भीमसेन और अर्जुननेही उन मूर्खोंको शत्रुओंसे लुड़ाया था । जहां मैंने पीछेसे अर्जुनकी रक्षाकी थी और जहां भीमने नकुल सहदेवकी रक्षा की थी, जिस युद्धमें अर्जुनने दुर्योधनके शत्रुओंको नाश करके उमे लुड़ाया था, कहो उस युद्धका भी कभी-

सर्वात्मना परिजेतुं वयं चेन्न शक्नुमो धृतराष्ट्रस्य पुत्रम् ॥ २८ ॥ [६९२]

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजयानपर्वणि युधिष्ठिरप्रश्ने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

संजय उवाच-यथाऽऽत्थ मे पाण्डव तत्तथैव कुरुन्कुरुश्रेष्ठ जनं च पृच्छसि ।

अनामयास्नात मनस्विनस्ते कुरुश्रेष्ठान्पृच्छसि पार्थ यांस्त्वम ॥ १ ॥

संत्येव वृद्धाः साधवो धार्तराष्ट्रे संत्येव पापाः पाण्डव तस्य विद्धि ।

दद्याद्रिपुभ्योऽपि हि धार्तराष्ट्रः कुतो दद्याल्लोपयेद्ब्राह्मणानाम् ॥ २ ॥

यद्युष्माकं वर्तते सौनधर्म्यमदुग्धेषु द्रग्धवत्तन्न साधु ।

मित्रधुक् स्यात्धृतराष्ट्रः सपुत्रो युष्मान्द्रिषन्साधुवृत्तानसाधुः ॥ ३ ॥

न चाऽनुजानाति भृशं च तप्यते शोचत्यंतः स्थविरोऽजातशत्रो ।

शृणोति हि ब्राह्मणानां समेत्य मित्रद्रोहः पातकेभ्यो गरीयान् ॥ ४ ॥

स्मरन्ति तुभ्यं नरदेव संयुगे युद्धे च जिष्णोश्च युधां प्रणेतुः ।

समुत्कृष्टे दुंदुभिशंखशब्दे गदापाणिं भीमसेनं स्मरन्ति ॥ ५ ॥

माद्रीसुनौ चापि रणाजिमध्ये सर्वा दिशः संपतंतौ स्मरन्ति ।

दुर्योधनको स्मरण आता है ? हे सूत ! हमने दण्डके सिवा और किसी उपायसे दुर्योधनको अपने वशमें होते नहीं देखा तब युद्धको उद्यत हुए हैं । ( २६-२८ )

उद्योगपर्वमें तेईस अध्याय समाप्त । ६९२ ]

उद्योगपर्वमें चौबीस अध्याय ।

संजय बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! आपने ओ कुछ कौरवोंके प्रति पूछा वे सब यशस्वी कौरव कुशलसे हैं। हे पाण्डव ! धृतराष्ट्रपुत्रके पास अच्छा वर्त्ताव करने वाले वृद्ध भी हैं, और उसके पास पापी भी रहते हैं; हां यह बात है कि उस धृतराष्ट्रपुत्रने शत्रुओंको भी जीविका देदी है फिर ब्राह्मणोंकी जीविका कैसे छीन सकता है? तुम द्रोह न करने वाले धृतराष्ट्रपुत्रसे क्रूरतासे द्वेष करते

हो, सो अच्छा नहीं । पुत्रोंके सहित पापी धृतराष्ट्र यदि साधु आचरणवाले तुम लोगोंके सङ्ग द्वेष करते हैं, तो वह मित्रद्रोहके पाप करते हैं । ( १-३ )

हे युधिष्ठिर ! वह धृतराष्ट्र संधि करना अच्छा नहीं जानता और सदा पुत्रनाश के भयसे तुम लोगोंसे जलता रहता है । सदा ब्राह्मणोंके समागममें सुना करता है, कि यह विश्वासघात महापातक है; हे युधिष्ठिर ! सब कौरव युद्धोंमें तुम्हारा स्मरण किया करते हैं, बाण चलानेके समय अर्जुनका स्मरण किया करते हैं, भीमसेनको शंख, भेरी और नगारोंके शब्दके सङ्ग स्मरण करते हैं और रणभूमिमें युद्धके समय चारों ओर युद्ध करते हुए माद्रीपुत्र नकुल

सेनां वर्षतो शरवर्षैरजस्रं महारथौ समरे दुष्प्रकंपौ ॥ ६ ॥

न त्वेवमन्ये पुरुषस्य राजन्ननागतं ज्ञायते यद्भविष्यम् ।

त्वं चेत्तथा सर्वधर्मोपपन्नः प्राप्तः क्लेशं पाण्डव कृच्छ्ररूपम् ।

त्वमेवैतत्कृच्छ्रगतश्च भूयः समीकुर्याः प्रज्ञयाऽजातशत्रो ॥ ७ ॥

न कामार्थं संत्यजेयुर्हि धर्मं पांडोः सुताः सर्व एवैद्रकल्पाः ।

त्वमेवैतत्प्रज्ञयाऽजातशत्रो समीकुर्या येन शर्माऽऽप्नुयुस्ते ॥ ८ ॥

धार्तराष्ट्राः पांडवाः संजयाश्च ये चाऽप्यन्ये संनिविष्टा नरेंद्राः ।

यन्मां ब्रवीद्धृतराष्ट्रो निशायामजातशत्रो वचनं पिता ते ॥ ९ ॥

सहामात्यः सहपुत्रश्च राजन्समत्य तां वाचमिमां निबोध ॥ १० ॥ [६७४]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि संजयवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर उवाच-समागताः पाण्डवाः संजयाश्च जनार्दनो युयुधानो विराटः

यत्ते वाक्यं धृतराष्ट्रानुशिष्टं गावल्गणे ब्रूहि तत्सूतपुत्र ॥ १ ॥

संजय उवाच-अजातशत्रुं च वृकोदरं च धनंजयं माद्रवतीसुतौ च ।

और सहदेवका स्मरण किया करते हैं, कौरव लोग कहा करते हैं कि बार बार शत्रुओंकी सेनाके ऊपर बाणोंसे वर्षा करने वाले नकुल और सहदेव महायोद्धा हैं और युद्धसे कभी नहीं हटते । (४-६)

हे राजन् ! हे पाण्डव ! जगत्में ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो प्रारब्धको जान सके । क्योंकि सब धर्म जानने-वाले आप भी दुःख भोगते हैं, इससे जानते हैं कि प्रारब्ध बड़ी बलवान है । हे पाण्डव ! आप इतने दुःख सह कर भी शान्ति चाहते हैं, इससे हम जानते हैं कि पाण्डपुत्र किसी काम और धनके लिये भी धर्मको नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि आप पांचों भाई इन्द्रके तुल्य हैं । हे अजातशत्रो ! आप अपनी बुद्धिसे

सान्धि कीजिये, जिसमें सब कुरुकुलका कल्याण हो । धृतराष्ट्रके पुत्र पाण्डव और सृञ्जय आदि राजा सुनै, हमसे जो कुछ तुम्हारे पिता धृतराष्ट्रने कहा है सो सुनो । हे राजन् ! महाराज धृतराष्ट्रने पुत्र, मन्त्री और बान्धवोंके सहित जो कहा है सो सुनो । (७-१०) [६७४]

उद्योगपर्वमें चौबीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें पचीस अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे गावल्गणपुत्र सृञ्जय ! पांचों पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकी और विराट आदि सब महात्मा समामें आगये हैं, अब जो कुछ राजा धृतराष्ट्रने तुमसे कहा है, सो तुम कहो । (१)

सृञ्जय बोले, महाराज युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण,

आमंत्रये वासुदेवं च शौरिं युयुधानं चेकितानं विराटम् ॥ २ ॥

पंचालानामधिपं चैव वृद्धं धृष्टद्युम्नं पार्षतं याज्ञसेनिम् ।

सर्वे वाचं शृणुनेमां मदीयां वक्ष्यामि यां भूतिमिच्छन्कुरूणाम् ॥ ३ ॥

शमं राजा धृतराष्ट्रोऽभिनन्दन्नयोजयन्चरमाणो रथं मे ।

सभ्रातृपुत्रस्वजनस्य राज्ञस्तद्रोचतां पाण्डवानां शमोऽस्तु ॥ ४ ॥

सर्वैर्धर्मैः समुपेतास्तु पार्थाः संस्थानेन मार्दवेनाऽऽर्जवेन ।

जानाः कुले ह्यनृशंसा वदान्या ऋषीनिषेवाः कर्मणां निश्चयज्ञाः ॥ ५ ॥

न युज्यते कर्म युष्मासु हीनं सत्त्वं हि वस्तादृशं भीमसेनाः ।

उद्भासने ह्यंजनबिंदुवत्तच्छुभ्रे वस्त्रे यद्भवेत्किल्बिषं वः ॥ ६ ॥

सर्वक्षयो दृश्यते यत्र कृत्स्नः पापोदयो निरयोऽभावसंस्थः ।

कस्तत्र कुर्याज्जातु कर्म प्रजानन्पराजयो यत्र समो जयश्च ॥ ७ ॥

ते वै धन्या यैः कृतं ज्ञानिकार्यं ते वै पुत्राः सुहृदो बांधवाश्च ।

उपकुष्टं जीवितं संत्यजेयुर्यतः कुरूणां नियतो वैभवः स्यात् ॥ ८ ॥

सात्यकी, चेकितान, पंचाल देशके स्वामी बूढ़े महाराज द्रुपद और महावीर धृष्टद्युम्न द्रौपदी आदि महात्मा मेरे उन वचनोंको सुनै जो मैं कौरवोंके कल्याण के लिये कहता हूँ। शमकी इच्छा करने-वाले महाराज धृतराष्ट्रने वेगवान रथ जोड़ कर मुझसे चलते समय भाई पुत्र और बांधवोंके सहित आपसे जो कुछ कहा है, सो मैं सहता हूँ। इससे पाण्डवोंको सुख और प्रसन्नता हो। (२-४)

उन्होंने कहा है कि पाण्डव लोग सब प्रकारसे सब धर्मोंसे भरे हैं, उनमें आकृति, सरलता और कोमलता निवास करती हैं, वे लोग उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए दयावान्, दानी, लज्जावान् और जगत्के निश्चयको जाननेवाले हैं।

महाराजने कहा है कि तुम लोगोंमें हीन कर्म होना योग्य नहीं है, तुम लोग महा पराक्रमी हो, और तुम्हारे पास सेना भी बहुत है, यदि कोई पाप तुम्हारी ओरसे हो जाय तो वह ऐसाही दीखने लगेगा जैसे सफेद वस्त्रपर स्याही। विरोधसे युद्धमें सब जगतके क्षत्रियों का नाश होगा और इस पापसे सबको नर्क होगा, इस युद्धके करनेकी किस बुद्धिमानको इच्छा होगी, जिसमें हार और जीत समान ही है। (५-७)

उनको धन्य है, जो जातिके लिये कल्याण करते हैं। और निन्दित जिवितको त्यागनेको तैयार होते हैं। वेही हमारे पुत्र, मित्र और बन्धु हैं, उन हीसे कुरुकुलका कल्याण है। यदि वे पाण्डव लोग निश्चय

ते चेत्कुरुननुशिष्याऽथ पार्था निर्णाय सर्वान्द्विषतो निगृह्य ।

समं वस्तज्जीवितं मृत्युना स्याद्यज्जीवध्वं ज्ञातिवधेन साधु ॥ ९ ॥

को ह्येव युष्मान्सह केशवेन सचेकितानान्पार्षतबाहुगुप्तान् ।

ससात्यकीन्विषहेत प्रजेतुं लब्ध्वाऽपि देवान्सचिवान्सहेंद्रान् ॥ १० ॥

को वा कुरुन्द्रोणभीष्माभिगुप्तानश्वत्थाम्ना शल्यकृपादिभिश्च ।

रणे विजेतुं विषहेत राजनराधेयगुप्तान्सह भूमिपालैः ॥ ११ ॥

महद्वलं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञः को वै शक्तो हंतुमक्षीयमाणः ।

सोऽहं जये चैव पराजये च निःश्रेयसं नाऽधिगच्छामि किञ्चित् ॥ १२ ॥

कथं हि नीचा इव दौष्कुलेया निर्धर्मार्थं कर्म कुर्युश्च पार्थाः ।

सोऽहं प्रसाद्य प्रणतो वासुदेवं पंचालानामधिपं चैव वृद्धम् ॥ १३ ॥

कृतांजलिः शरणं वः प्रपद्ये कथं स्वस्ति स्यात्कुरुसृंजयानाम् ।

न ह्येवमेवं वचनं वासुदेवो धनंजयो वा जातु किञ्चिन्न कुर्यात् ॥ १४ ॥

प्राणान्दद्याद्याचमानः कुतोऽन्यदेतद्विद्वन्साधनार्थं ब्रवीमि ।

एतद्राज्ञो भीष्मपुरोगमस्य मतं यद्वः शान्तिरिहोत्तमा स्यात् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि संजयवासपर्वणि संजयवाक्ये पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

करके कौरव और अपने शत्रुओंको मारेंगे तो वंश नाश करके मरना और जीना समानही है। महाराजने कहा है, कि हमको निश्चय है कि धृष्टद्युम्नसे रक्षित, कृष्ण, सात्यकी और चेकितानके सहित पांचों पाण्डवोंसे कोई युद्ध नहीं कर सकता; वे सब देवताओंके सहित साक्षात् इन्द्रको भी जीत सकते हैं। (८-१०)

और यह भी निश्चय है कि द्रोणाचार्य भीष्म, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा रक्षित राधापुत्र कर्ण आदि राजोंके सहित दुर्योधनकी महा सेनाको भी कोई नहीं जीत सकता। परन्तु हमको हार और जीत किसीमें कल्याण नहीं दीखता। ११-१२

हम जानते हैं कि पाण्डव नीच कुलमें उत्पन्न हुए अधर्मियोंके समान इस कुर्मको नहीं करेंगे, इस लिये हम हाथ जोड़कर सोमकवंश श्रेष्ठ बूढ़ महाराज द्रुपद और कृष्णके शरण हैं; उन दोनोंको ऐसा काम करना चाहिये, जिसमें सृञ्जय और कुरुकुलका कल्याण हो। कृष्ण और अर्जुन मेरे इस वचनको नहीं मानेंगे ऐसा नहीं। श्रीकृष्ण तो याचकोंके लिये प्राण देनेतक भी तैयार होते हैं यह मैं जानता हूं। हमने जो कुछ कहा है, सो सब शान्तिके लिये कहा है, डरसे नहीं। यह सब वचन महाराजने भीष्मकी संमतिसे कहे

युधिष्ठिर उवाच—कां नु वाचं संजय मे शृणोषि युद्धैषिणी येन युद्धाद्विभेषि ।

अयुद्धं वै तात युद्धाद्गरीयः कस्तल्लब्ध्वा जातु युद्धयेत सूत ॥ १ ॥

अकुर्वतश्चेत्पुरुषस्य संजय सिद्धयेत्संकल्पो मनसा यं यमिच्छेत् ।

न कर्म कुर्याद्विदितं समैतदन्यत्र युद्धाद्बहु यल्लघयिः ॥ २ ॥

कुतो युद्धं जातु नरोऽवगच्छेत्को देवशप्तो हि वृणीत युद्धम् ।

सुखैषिणः कर्म कुर्वति पार्था धर्मादहीनं यच्च लोकस्य पथ्यम् ॥ ३ ॥

धर्मोदयं सुखमाशंसमानाः कृच्छ्रोपायं तत्त्वतः कर्म दुःखम् ।

सुखं प्रेप्सुर्विजिघांसुश्च दुःखं य इन्द्रियाणां प्रीतिवशानुगामी ॥ ४ ॥

कामाभिध्या स्वशरीरं दुनोति यया प्रमुक्तो न करोति दुःखम् ।

यथेध्यमानस्य समिद्धतेजसो भूयो बलं वर्धते पावकस्य ॥ ५ ॥

हैं ! अन्तमें फिर महाराजने कहा, कि शान्ति होनी अच्छी है । (१३-१५) [८०९

उद्योगपर्वमें पचीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें छठवीस अध्याय ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे सूत ! हे सञ्जय ! तुमने हमारी कौनसी ऐसी वाणी सुनी जिससे तुमको यह निश्चय होगया कि युधिष्ठिर युद्ध करना चाहते हैं ? तुम मेरे कौनसे वचन सुनकर युद्धसे डरे ? मेरा सदासे सिद्धान्त है कि युद्धसे शान्ति अच्छी है । ऐसा कौन है जो सन्धि छोड़कर युद्ध करेगा ? हे सूत ! यदि बिना कार्यहीके मनकी इच्छानुसार कोई संकल्प सिद्ध हो, तो कर्म न करना चाहिये । यदि थोड़े कर्मसे कार्य सिद्ध होता हो तो बड़ा कर्म करना उचित नहीं, इस लिये मेरी बुद्धिमें युद्ध होना अच्छा नहीं है । (१-२)

ऐसा कौन प्रारब्धका मारा है, जो

शान्ति छोड़कर युद्धकी इच्छा करे ? जगत्में ऐसा कौन है जो वृथा युद्ध करना चाहै ? हां पाण्डव लोग सुखकी इच्छा करते हैं, परन्तु उस सुखको ऐसे कर्मसे प्राप्त करना चाहते हैं, जिसमें धर्मका त्याग न हो और सब लोकका कल्याण हो । पाण्डव धर्मसे सब काम करते हैं, और धर्महीसे अपना राज्य तथा सुख प्राप्त करना चाहते हैं । वे लोग बड़े मूर्ख हैं जो इन्द्रियोंके सुखके लिये दुःखोंको दूर करके सुख प्राप्त करना चाहते हैं, जिन कर्मोंका उपाय काठिन है वे सब दुःखदायकही हैं । (३-४)

जिस प्रकार दबी हुई थोड़ी अग्नि बढकर सबको जला देती है, ऐसेही विषयोंकी चिन्ता शरीरको भस्म कर देती है; उससे पुरुषकी सब शक्ति घट जाती है, अतः उसके त्यागनेसे दुःख प्राप्त नहीं होते। जैसे अग्निमें जितना घी डालो



कामार्थलाभेन तथैव भूयो न तृप्यते सर्पिषेवाऽग्निरिद्धः ।  
 संपश्येसं भोगचयं महान्तं सहास्माभिर्धृतराष्ट्रस्य राज्ञः ॥ ६ ॥  
 नाऽश्रेयानीश्वरो विग्रहाणां नाऽश्रेयान्वै गीतशङ्खं शृणोति ।  
 नाऽश्रेयान्वै सेवते माल्यगंधान्न चाप्यश्रेयाननुलेपनानि ॥ ७ ॥  
 नाऽश्रेयान्वै प्राचारान् संविवस्ते कथं त्वस्मान्संप्रणुदेत्कुरुभ्यः ।  
 अत्रैव स्यादबुधस्यैव कामः प्रायः शरीरे हृदयं दुनोति ॥ ८ ॥  
 स्वयं राजा विषमस्थः परेषु सामर्थ्यमन्विच्छति तन्न साधु ।  
 यथाऽऽत्मनः पश्यति वृत्तमेव तथा परेषामपि सोऽभ्युपैति ॥ ९ ॥  
 आसन्नमग्निं तु निदाघकाले गंभीरकक्षे गहने विसृज्य ।  
 यथा विवृद्धं वायुवशेन शोचेत्क्षेमं मुमुक्षुः शिशिरव्यपाये ॥ १० ॥  
 प्राप्तेऽश्वर्यो धृतराष्ट्रोऽथ राजा लालप्यते संजय कस्य हेतोः ।  
 प्रगृह्य दुर्बुद्धिमनार्जवे रतं पुत्रं मंदं मूढममंत्रिणं तु ॥ ११ ॥

उतनीही अग्नि बढ़ती जाती है, ऐसेही मनुष्यको जितना सुख मिले उतनीही इच्छा बढ़ती जाती है । देखो राजा धृतराष्ट्र ने अपने धनसे तृप्त न होकर हमारे धनको भी छीन लिया तब भी उनकी तृप्ति नहीं होती । (५-६)

हां हमें यह निश्चय है कि महाराज धृतराष्ट्र बड़े धर्मात्मा हैं क्योंकि पापी-को ऐसे सुख कहाँ होते हैं ? पापी युद्ध और सन्धि करानेका स्वामी नहीं होता । पापी अच्छे गीत नहीं सुनता, पापी-को उत्तम सुगन्धि माला और चन्द्रना-दिक नहीं मिलते, पापीको उत्तम वस्त्र नहीं मिलते । इसमें एक प्रमाण यही है कि यदि महाराज पापी होते तो हम लोगोंका राज्य क्यों छीन लेते ? क्यों-कि धर्मात्माही शत्रुओंको राज्यसे नि-

कालते हैं । परन्तु यह सब धर्म उनही मूर्ख दुर्योधनादिकोंके करने योग्य है हम लोगोंके नहीं । यही विचार कर हमारा हृदय दुःखसे जला करता है । ( ७-८ )

बड़े शोककी बात है कि राजा आ-पही संकटमें पड़कर कर्णादिकोंकी शक्ति बढ़ा रहे हैं, सो अच्छा नहीं है, वे जैसे अपनेको समझते हैं, क्या ऐसेही कर्णा-दिकोंको समझते हैं ? महाराजका ऐसा-ही विचार है जैसे कोई मनुष्य वनमें घासके बड़े ढेरमें गरमीके दोपहरके समय आग लगाये और वायुसे आग बढ़नेपर अपने दुःखके लिये आक्रोश करे और उस कष्टसे छूटनेका उपाय सोचे । ( ९-१० )

हे संजय ! राजा धृतराष्ट्र सब प्र-कारके सुखोंको पाकर अब किस लिये

अनामवच्चाऽऽप्तमस्य वाचः सुयोधनो विदुरस्याऽवमत्य ।  
 सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी संबुध्यमानो विशतेऽधर्ममेव ॥ १२ ॥  
 मेधाविनं ह्यर्थकामं कुरूणां बहुश्रुतं वाग्मिनं शीलवन्तम् ।  
 स तं राजा धृतराष्ट्रः कुरुभ्यो न सस्मार विदुरं पुत्रकाम्भात् ॥ १३ ॥  
 मानसस्याऽसौ मानकामस्य चेषोः संरन्निणश्चाऽर्थधर्मानिगस्य ।  
 दुर्भाषिणो मन्युवशानुगस्य काभात्मनो दौर्हृदैर्भाविनस्य ॥ १४ ॥  
 अनेयस्याऽश्रेयसो दीर्घमन्योर्भिन्नद्रुहः संजय पापबुद्धेः ।  
 सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी प्रपश्यमानः प्राजहाद्वर्मकामौ ॥ १५ ॥  
 तदैव मे संजय दीव्यतोऽभून्मतिः कुरूणामागतः स्यादभावः ।  
 कान्यां वाचं विदुरो भाषमाणो न विंदते यद्वार्तराष्ट्रान्प्रशंसाम् ॥ १६ ॥  
 क्षत्तुर्यदा नाऽन्ववर्त्तत बुद्धिं कृच्छ्रं कुरून्सूत तदाऽभ्याजगाम ।  
 यावत्प्रज्ञामन्ववर्त्तत तस्य तावत्तेषां राष्ट्रवृद्धिर्बभूव ॥ १७ ॥  
 तदर्थलुब्धस्य निबोध मेऽद्य ये मन्त्रिणो धार्तराष्ट्रस्य सूत ।  
 दुःशासनः शकुनिः सूतपुत्रो गावल्गणे पश्य संमोहमस्य ॥ १८ ॥

रोते हैं ? वे अपने मूर्ख और दुष्टकर्म करनेवाले पुत्र दुर्योधनको लिये बैठे रहें, मूर्ख दुर्योधनने महा बुद्धिमान विदुरके वचनको मूर्खके वचनके समान भी नहीं सुना । राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रको सुख देना चाहते हैं, इसलिये यह सब अधर्म उन्हींको होगा । ( ११-१२ )

महाबुद्धिमान, महापण्डित, महाशीलवान महावक्ता कौरवोंका सुख चाहनेवाले विदुरको भी महाराजने अपने पुत्रोंके लिये छोड़ दिया । हे सज्जय ! राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रके सुखके लिये अर्थ और धर्मको छोड़ दिया है; उनका पुत्र दुर्योधन सबके संमानका नाशक, मूर्ख, दूसरेकी उन्नतिको न स-

हनेवाला क्रोधी, अधर्मी, कठोरवादी, कामी, क्रोधके वशमें रहनेवाला, दुष्ट किसीकी बातको न माननेवाला और दुष्टबुद्धि है । ( १३-१५ )

हे सज्जय ! जुवा खेलनेके समय जब राजा धृतराष्ट्रने विदुरके वचन नहीं माने थे, तबही हमको निश्चय होगया था कि कुरुवंशके नाशका समय आगया है । हे सूत ! जिस समय राजा धृतराष्ट्र विदुरकी बुद्धिसे नहीं चले, तभी हमने जान लिया था कि कौरवोंके नाशका समय आगया । जबतक राजा धृतराष्ट्र विदुरकी बुद्धिसे चले तबतक उनका राज्य बढा । हे गावल्गणपुत्र ! अब मूर्ख दुर्योधनकी बुद्धि देखो, ।

सोऽहं न पश्यामि परीक्षमाणः कथं स्वस्ति स्यात्कुरुसृजयानाम् ।  
 आत्तैश्वर्यो धृतराष्ट्रः परेभ्यः प्रवाजिते विदुरे दीर्घदृष्टौ ॥ १९ ॥  
 आशंसते वै धृतराष्ट्रः सपुत्रो महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम् ।  
 तस्मिञ्शमः केवलं नोपलभ्यः सर्वं स्वकं मद्गते मन्यतेऽर्थम् ॥ २० ॥  
 यत्तत्कर्णो मन्यते पारणीयं युद्धे गृहीतायुधमर्जुनं वै ।  
 आसंश्च युद्धानि पुरा महान्ति कथं कर्णो नाऽभवद् द्वीपेषाम् ॥ २१ ॥  
 कर्णश्च जानाति सुयोधनश्च द्रोणश्च जानाति पितामहश्च ।  
 अन्ये च ये कुरवस्तत्र संति यथाऽर्जुनान्नाऽस्त्यपरो धनुर्धरः ॥ २२ ॥  
 जानंत्येतत्कुरवः सर्व एव ये चाऽप्यन्ये भूमिपालाः समेताः ।  
 दुर्योधने राज्यमिहाऽभवद्यथा अरिंदमे फाल्गुनेऽविद्यमाने ॥ २३ ॥  
 तेनाऽनुबंधं मन्यते धार्तराष्ट्रः शक्यं हर्तुं पांडवानां समत्वम् ।  
 किरीटिना तालमात्रायुधेन तद्वेदिना संयुगं तत्र गत्वा ॥ २४ ॥  
 गांडीवविस्फारितशब्दमाजावशृण्वाना धार्तराष्ट्रा ध्रियन्ते ।  
 क्रुद्धं न चेदीक्षते भीमसेनं सुयोधनो मन्यते सिद्धमर्थम् ॥ २५ ॥

उसने शकुनि दुःशासन और सूतपुत्र कर्ण  
 को अपना मन्त्री बनाया है; हमें कोई उ-  
 पाय अब ऐसा नहीं दीखता जिसमें सृञ्जय  
 और कौरवोंका कल्याण हो । (१६-१९)

जिस समय हम लोग वनको चले  
 गये थे और राजा धृतराष्ट्रने महा बु-  
 द्धिमान विदुरको निकाल दिया था ।  
 उसी समय राजा धृतराष्ट्रने पुत्रोंके सहित  
 समस्त पृथ्वीमें अपना निष्कण्टक राज्य  
 समझ लिया था; ऐसे लोभी राजासे  
 सन्धि किस प्रकार होसकती है, जो सब  
 धनको अपनाही समझता है । (१९-२०)

कर्ण जो जानता है कि मैं न जीतने  
 योग्य अर्जुनको युद्धमें जीत लूंगा, सो  
 केवल उसकी मूर्खताही है । क्या पहले

कोई घोर युद्ध नहीं हुआ ? उन युद्धोंमें  
 कर्णने कौरवोंका रक्षा क्यों न करी ? कर्ण,  
 दुर्योधन, द्रोणाचार्य और भीष्म आदि  
 सब कौरव जानते हैं कि अर्जुनके समान  
 कोई धनुषधारी नहीं हैं । ( २१-२२ )

सब कौरव और राजा लोग यह भी  
 जानते हैं कि शत्रुनाशन अर्जुनके न  
 रहते दुर्योधन राजा होगया है, इसी  
 लिये धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने यह जान  
 लिया है कि हम पाण्डवोंको जीत लेंगे  
 इसको वह उस समय जानेंगा जब ताड़के  
 समान धनुष लेकर अर्जुन युद्ध करेंगे ।  
 जबतक गाण्डीव धनुषके शब्दको नहीं  
 सुनते, तबहीतक धृतराष्ट्रके पुत्र अभिमान  
 करते हैं । ( २३-२५ )

इन्द्रोऽप्येतन्नोत्सहेत्तात हर्तुमैश्वर्यं नो जीवति भीमसेने ।

धनंजये नकुले चैव सूत तथा वीरे सहदेवे सहिष्णौ ॥ २६ ॥

स चेदेतां प्रतिपद्येत बुद्धिं वृद्धो राजा सह पुत्रेण सूत ।

एवं रणे पांडवकोपदग्धा न पश्येयुः संजय धार्तराष्ट्राः ॥ २७ ॥

जानासि त्वं क्लेशमस्मासु वृत्तं त्वां पूजयन्संजयाऽहं क्षमेयम् ।

यच्चाऽस्माकं कौरवैर्भूतपूर्वं या नो वृत्तिर्धार्तराष्ट्रे तदाऽऽसीत् ॥ २८ ॥

अद्यापि तत्तत्र तथैव वर्त्ततां ज्ञातिं गमिष्यामि यथा त्वमात्थ ।

इन्द्रप्रस्थे भवतु ममैव राज्यं सुयोधनो यच्छतु भारताग्न्यः ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि

संजययानपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

संजय उवाच-धर्मनित्या पांडव ते विचेष्टा लोके श्रुता दृश्यते चापि पार्थ ।

महाश्रावं जीवितं चाप्यनित्यं संपश्य त्वं पांडव मा व्यनीनशः ॥ १ ॥

न चेद्भागं कुरवोऽन्यत्र युद्धात्प्रयच्छेरंस्तुभ्यमजातशत्रो ।

भैक्षचर्यामंधकवृष्णिराज्ये श्रेयो मन्ये न तु युद्धेन राज्यम् ॥ २ ॥

अल्पकालं जीवितं यन्मनुष्ये महाश्रावं नित्यदुःखं चलं च ।

जयतक भीमसेन क्रोध करके युद्धमें नहीं जाते तबहीतक दुर्योधन अपनी सिद्धि देखता है । हे तात ! भीमसेनके जीते इन्द्र भी हमसे राज्य नहीं छीन सकता ? महावीर अर्जुन नकुल और सहदेवके जीते क्या कोई हमसे राज्य छीन सकता है ? हे सूत ! यदि राजा धृतराष्ट्र हमसे युद्ध करनेकी इच्छा करेंगे तो उनके सब पुत्र पाण्डवोंके क्रोधकी आग्निमें भस्म हों जायेंगे ! (२५-२७)

हे संजय ! तुम जानते हो कि उन्होंने हमको कैसे कैसे दुःख दिये हैं । हम तुम्हारे ऊपर कृपा करके क्षमा करते हैं, तुम्हें यह भी विदित है, कि हम दुर्योधनके

सङ्ग कैसा वर्ताव करते थे ? यदि तुम्हारे कहनेके अनुसार राजा धृतराष्ट्र वास्तव में सन्धि करना चाहते हैं, तो जाओ हमारी भी सन्धि करनेहीकी इच्छा है, और हम सब व्यवहार पहलेके समान करेंगे । इन्द्रप्रस्थमें हमारा राज्य और कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन हास्तिनापुरमें रहें । (२८-२९) [ ८३८ ]

उद्योगपर्वमें छब्बिस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें सताईस अध्याय ।

संजय बोले, हे पांडव ! हे कुन्तिनन्दन युधिष्ठिर ! यह देखनेमें आता है कि, नित्य आप के सब कर्म धर्म से हि होते हैं तथा आपकी कीर्ति जगतमें प्रसिद्ध है ।

भूयश्च तच्चशसो नाऽनुरूपं तस्मात्पापं पांडव मा कृथास्त्वम् ॥ ३ ॥

कामा मनुष्यं प्रसजन् एने धर्मस्य ये विघ्नमूलं नरेन्द्र ।

पूर्वं नरस्तान्मतिमान्प्राणिष्वल्लोके प्रशंसां लभन्तेऽनवद्याम् ॥ ४ ॥

निबन्धनी ह्यर्थतृष्णेह पार्थ तामिच्छतां बाध्यते धर्म एव ।

धर्मं तु यः प्रवृणोति स बुद्धः कामे गृध्रो हीयतेऽर्थानुरोधतः ॥ ५ ॥

धर्मं कृत्वा कर्मणां नात मुख्यं महाप्रतापः सवितेव भाति ।

हीनो हि धर्मेण महीमयीमां लब्ध्वा नरैः स्वीदति पापबुद्धिः ॥ ६ ॥

वेदोऽधीतश्चरितं ब्रह्मचर्यं यज्ञैरिष्टं ब्राह्मणेभ्यश्च दत्तम् ।

परं स्थानं मन्यमानेन भूय आत्मा दत्तो वर्षपूगं सुखेभ्यः ॥ ७ ॥

सुखाप्रिये सेवमानोऽतिवैलं योगाभ्यासे यो न करोति कर्म ।

कीर्तिको बढ़ाने वाले जीवित भी अनित्य हैं, इस सबका विचार कर धृतराष्ट्रके पुत्रोंका नाश मत कीजिये। हे युधिष्ठिर ! यदि कौरव लोग विना युद्धके आपको राज्य न दें तो आप भिक्षा मांग कर अन्धक और द्राणि देशमें रहिये, अथवा कोई और जीविकाका उपाय कर लीजिये, यह ही अच्छा है परन्तु युद्धसे राज्य प्राप्त करना अच्छा नहीं क्योंकि जीना अनित्य है और वह अत्यन्त चंचल तथा दुःखसे भरा है, और युद्ध करना आप ऐसे धर्मात्माओंका काम भी नहीं है, इस लिये आप इस पाप कर्मको न कीजिये। (१-३)

हे राजेन्द्र ! विषयोंकी कामनाएँ मनुष्योंको प्राप्त होकर धर्ममें विघ्नकरती हैं इसलिये बुद्धिमान मनुष्य इन विषय-कामनाओंकी सङ्गतिको छोड़कर महा कीर्तिको प्राप्त होते हैं। हे कुन्तीपुत्र !

धनकी तृष्णा बंधनमें डालती है और धन-तृष्णावाले मनुष्यके धर्मका नाश करती है, महात्मा ज्ञानी पुरुष धनतृष्णाको छोड़कर धर्मही का आश्रय करते हैं क्योंकि कामकी अभिलाषावाले पुरुषके अर्थका भी नाश होता है। (४-५)

हे प्यारे युधिष्ठिर ! उत्तम कर्म और धर्म करनेसे आपका प्रताप सूर्यके समान दीखता है, और पापी दुर्योधन सब पृथ्वीका राजा होनेपर भी अधर्मके कारण दुःख पा रहा है। आपने वेद पढ़ा, ब्रह्मचर्य किया, अनेक यज्ञ किये, ब्राह्मणोंको दान दिये और परलोक मानने वाले आपने परलोक सुखके लियेही तेरह वर्ष वनमें रहकर अनेक दुःख भोगे। आपने परलोकको सत्य जानकर अपना शरीरतक भी दे दिया। (६-७)

जो मूर्ख बहुत दिनतक सुख करके योगाभ्यास नहीं करता, वह धन नाश

वित्तक्षये हीनसुखोऽतिवेलं दुःखं शेते कामवेगप्रणुन्नः ॥ ८ ॥

एवं पुनर्ब्रह्मचर्याप्रसक्तो हित्वा धर्मं यः प्रकरोत्यधर्मम् ।

अश्रद्धधत्परलोकाय सूढो हित्वा देहं तप्यते प्रेत्य मंदः ॥ ९ ॥

न कर्मणां विप्रणाशोऽस्त्यमुत्र पुण्यानां वाऽप्यथवा पापकानाम् ।

पूर्वं कर्तुर्गच्छति पुण्यपापं पश्चात्त्वेनमनुयात्येव कर्ता ॥ १० ॥

न्यायोपेतं ब्राह्मणेभ्योऽथ दत्तं श्रद्धापूतं गंधरसोपपन्नम् ।

अन्वाहार्येषूत्तमदक्षिणेषु तथारूपं कर्म विख्यायते ते ॥ ११ ॥

इह क्षेत्रे क्रियते पार्थ कार्यं न वै किंचित्क्रियते प्रेत्य कार्यम् ।

कृतं त्वया पारलौक्यं च कर्म पुण्यं महत्सद्भिरतिप्रशस्तम् ॥ १२ ॥

जहाति मृत्युं च जरां भयं च न क्षुत्पिपासे मनसोऽप्रियाणि ।

न कर्तव्यं विद्यते तत्र किंचिदन्यत्र वै चंद्रियप्रीणनाद्भि ॥ १३ ॥

एवंरूपं कर्मफलं नरेन्द्र माऽत्रावहं हृदयस्य प्रियेण ।

स क्रोधजं पाण्डव हर्षजं च लोकाबुभौ मा प्रहासीश्विराय ॥ १४ ॥

होनेके पश्चात् अनेक चिन्ताओंसे व्याकुल और कामवेगसे पीडित होकर दुःख भोगता है। जो मूर्ख ब्रह्मचर्यको छोड़ धर्मका नाश कर अधर्म करता है, और परलोकको सत्य नहीं मानता, वह मरकर महा दुःख भोगता है। पाप या पुण्यका कोई कर्म परलोकमें भी नष्ट नहीं होता, परलोकमें पहले पुण्य वा पाप कर्म जाता है और पीछे करनेवाला जाता है। ( ८—१० )

आपने जो ब्राह्मणोंको न्याय और श्रद्धाके समेत पवित्र रस और सुगन्धसे भरे उत्तम अन्न दिये हैं, उससे और उत्तम दक्षिणा देनेसे आपकी कीर्ति जगतमें फैल रही है। हे युधिष्ठिर ! इसी लोक में सब कार्य किये जाते हैं, मरनेके

पीछे कोई काम नहीं होता। आपने परलोकके लिये महात्माओंके अत्यंत प्रशंसा करने योग्य अनेक धर्म किये हैं। जो धर्म करता है, वह जरा, मृत्यु, भय, भूख, प्यास, मनके विरुद्ध कर्म सबको जीत लेता है। परलोकमें जाकर कुछ करना शेष नहीं रहता है, केवल अपनी इन्द्रियोंको प्रसन्न करनाही शेष रहता है। ( ११—१३ )

हे पाण्डव ! विषय भोगकी इच्छासे किये हुए कर्मसे जो अदृष्ट फल उत्पन्न होता है उससे कर्मानुसार स्वर्ग या नरक प्राप्त होता है। वे उभय लोक शाश्वत न होनेके कारण शाश्वत मोक्षकी इच्छावाले पुरुष वैराग्य पूर्वक निष्काम कर्म करके दोनों लोकोंको छोड़ कर मोक्षको

अंतं गत्वा कर्मणां मा प्रजह्याः सत्यं द्रुमं चाऽऽर्जवमानृशंस्यम् ।  
 अश्वमेधं राजसूयं तथेज्याः पापस्यांस्तं कर्मणो मा पुनर्गाः ॥ १५ ॥  
 तच्चेदेवं द्वेषरूपेण पार्थाः करिष्यध्वं कर्म पापं चिराय ।  
 निवसध्वं वर्षपूगान्वनेषु दुःखं वासं पांडवा धर्म एव ॥ १६ ॥  
 अप्रव्रज्ये मा स्म हित्वा पुरस्तादात्माधीनं यद्वलं ह्येनदासीत् ।  
 नित्यं च वश्याः सचिवास्तवेमे जनार्दनो युयुधानश्च वीरः ॥ १७ ॥  
 मत्स्यो राजा रुक्मरथः सपुत्रः प्रहारिभिः सह पुत्रैर्विराटः ।  
 राजानश्च ये विजिताः पुरस्तात्त्वामेव ते संश्रयेयुः समस्ताः ॥ १८ ॥  
 महासहायः प्रतपन्बलस्थः पुरस्कृतो वासुदेवार्जुनाभ्याम् ।  
 वरान्हनिष्यन्द्विषतो रंगमध्ये व्यनेष्यथा धार्तराष्ट्रस्य दर्पम् ॥ १९ ॥  
 बलं कस्माद्वर्धयित्वा परस्य निजान्कस्मात्कर्शयित्वा सहायान् ।  
 निरुष्य कस्माद्वर्षपूगान्वनेषु युयुत्ससे पांडव हीनकालम् ॥ २० ॥  
 अप्राज्ञो वा पांडव युद्धयमानोऽधर्मज्ञो वा भूतिसंधोऽभ्युपैति ।

पाते हैं । इसलिये आपको भी बन्धुना-  
 शसे प्राप्त होने वाले राज्य की इच्छा  
 त्याग कर वैराग्य वृत्तिसे मोक्षका आश्रय  
 करना योग्य है । आप सब धर्मके पार  
 होकर अब सत्य, धर्म, कोमलता और  
 लज्जाको मत छोड़िये । राजसूय और  
 अश्वमेध आदि यज्ञ करके अब पापके  
 मार्गमें मत चलिये । ( १४-१५ )

हे कुन्तीनन्दन ! यदि आप इस वैर  
 रूपी पापको करना चाहते हैं तो इससे  
 सदा वनमें रहकर दुःख सहनाही अच्छा  
 है; आपके वशमें जितनी सेना है, सब-  
 का बिना नाश कराये ही आप वनको  
 चले जाइये, क्योंकि वन जानेके पहले  
 भी आपके मन्त्री, कृष्ण, महावीर सात्य-  
 की, राजा विराट, पुत्रोंके सहित राजा

रुक्मरथ और ये सब राजा तथा सब  
 सहायक आपके वशहीमें थे, परन्तु इन  
 सबको छोड़कर आप वनको चले गये थे;  
 वैसेही अब भी चले जाइये । ( १६-१८ )

आप बहुत सहायकोंके सहित कृष्ण  
 और अर्जुनको मन्त्री करके अपने बल-  
 वान शत्रुओंको मारकर दुर्योधनके अभि-  
 मानको नाश करेंगे, भला यह क्या  
 बुद्धिमानोंका काम है ? किन्तु दूसरोंके  
 बलको बढा कर अपने बलको घटाकर  
 अनेक वर्ष वनवास करके अब हीन कालमें  
 युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं ? अर्थात्  
 उसी समय युद्ध क्यों नहीं किया ? हे  
 पाण्डव ! उस समय क्या आप बुद्धिमान्  
 नहीं थे जो युद्ध न किया ? मूर्ख वा  
 धर्म न जानने वाला युद्ध करके,



प्रज्ञावान्वा बुद्ध्यमानोऽपि धर्मं संस्तंभाद्वा सोऽपि भूतेरपैति ॥ २१ ॥  
 नाऽधर्मे ते धीयते पार्थ बुद्धिर्न संरंभात्कर्म चकर्थ पापम् ।  
 आत्थ किं तत्कारणं यस्य हेतोः प्रज्ञाविरुद्धं कर्म चिकीर्षसीदम् ॥ २२ ॥  
 अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि यशोमुषं पापफलोदयं वा ।  
 सतां पेयं यत्र पिबंत्यमंतो मन्युं महाराज पिव प्रशाम्य ॥ २३ ॥  
 पापानुबंधं को नु तं कामयेत क्षमैव ते ज्यायसी नोत भोगाः ।  
 यत्र भीष्मः शान्तनवो हतः स्याच्चत्र द्रोणः सहपुत्रो हतः स्यात् ॥ २४ ॥  
 कृपः शल्यः सौमदत्तिर्विकर्णो विविंशतिः कर्णदुर्योधनौ च ।  
 एतान्हत्वा कीदृशं तत्सुखं स्याच्चद्विदेहास्तदनुब्रूहि पार्थ ॥ २५ ॥  
 लब्ध्वाऽपिमां पृथिवीं सागरांतां जरामृत्यू नैव हि त्वं प्रजह्याः ।  
 प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राजन्नेवं विद्वान्नैव युद्धं कुरु त्वम् ॥ २६ ॥  
 अमात्यानां यदि कामस्य हेतोरेवं युक्तं कर्म चिकीर्षसि त्वम् ।

ऐश्वर्यको प्राप्त होता है, परन्तु बुद्धिमान  
 वा धर्म जाननेवाला होकर भी जो  
 अभिमानसे युद्ध करता है वह कल्याण  
 को प्राप्त नहीं होता । ( १९-२१ )

हे कुन्तीपुत्र ! आपकी बुद्धि कभी  
 अधर्ममें नहीं जाती, इस लिये इस पाप  
 कर्म युद्धको मत कीजिये । युद्धमें किसी-  
 का कल्याण नहीं होता, आपने पहले  
 किसी कारणसे युद्ध नहीं किया था,  
 फिर अब इस बुद्धिविरोधी कर्मको क्यों  
 करते हैं? हे महाराज! विना रोगके वैर-  
 स्य और शिरमें पीडा करनेवाले क्रोध  
 को जीतिये और शान्त होइये । महात्मा  
 लोग इस क्रोधरूपी विषको नहीं  
 पीते हैं । ऐसा कौन बुद्धिमान होगा  
 जो पापकर्म युद्धको करेगा? आपको  
 भोगोंसे क्षमाही अच्छी लगती

है । ( २२-२४ )

हे युधिष्ठिर ! वह कौनसा उत्तम  
 भोग है जिसे आप शान्तनुपुत्र भीष्म  
 द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य,  
 भूरिश्रवा, विकर्ण, विविंशति, कर्ण और  
 दुर्योधनको मारकर भोगियेगा? आप  
 इस समुद्र पर्यन्त पृथ्वीको पाकरभी क्या  
 बुढापे, मृत्यु, प्रिय, अप्रिय, सुख और  
 दुःखको जीत सकियेगा? आप यह सब  
 जानते हैं, इस लिये आप सरीखे विद्वान्  
 को युद्ध करना योग्य नहीं । यदि  
 आप कहैं कि हम अपने मन्त्रियोंकी  
 इच्छा पूर्ण करनेके लिये ऐसा कर्म  
 करना चाहते हैं, यह भी आपके  
 समान महात्माओंको करने योग्य नहीं  
 है । आप अमात्योंको अपना सर्वस्व दे-  
 कर दूर हूजिये नहीं तो बांधवोंका बध-



अपक्रमेः स्वं प्रदायैव तेषां मागास्त्वं वै देवयानात्पथोऽद्य ॥ २७ ॥ [ ७४५ ]

इति श्रीमहाभारते ० वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि संजयवाक्ये सप्तविंशोऽध्यायः २७

युधिष्ठिर उवाच-असंशयं संजय सत्यमेतद्धर्मो वरः कर्मणां यत्त्वमात्थ ।

ज्ञात्वा तु मां संजय गर्हयेस्त्वं यदि धर्मं यद्यधर्मं चरेयम् ॥ १ ॥

यत्राऽधर्मो धर्मरूपाणि धत्ते धर्मः कृत्स्नो दृश्यतेऽधर्मरूपः ।

विभ्रद्धर्मो धर्मरूपं तथा च विद्वांसस्तं संपश्यन्ति बुद्ध्या ॥ २ ॥

एवं तथैवाऽऽपदि लिंगमेतद्धर्माधर्मौ नित्यवृत्ती भजेताम् ।

आद्यं लिंगं यस्य तस्य प्रमाणमापद्धर्मं संजय तं निबोध ॥ ३ ॥

लुप्तायां तु प्रकृतौ येन कर्म निष्पादयेत्तत्परीप्सेद्विहीनः ।

प्रकृतिस्थश्चाऽऽपदि वर्तमान उभौ गह्यौ भवतः संजयैतौ ॥ ४ ॥

अविनाशमिच्छतां ब्राह्मणानां प्रायश्चित्तं विहितं यद्विधात्रा ।

संपश्येथाः कर्मसु वर्तमानान्विकर्मस्थान्संजय गर्हयेस्त्वम् ॥ ५ ॥

होनेके कारण अर्चिरादिदेवमार्गसे अष्ट  
हो जायंगे । ( २४ २७ ) [ ७४५ ]

उद्योगपर्वमें सत्ताईस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें अठाईस अध्याय ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे संजय !  
तुमने जो कहा कि युद्धसे धर्म करना  
अच्छा है सो इसमें कुछ सन्देह नहीं  
है, हम भी ऐसाही मानते हैं । परन्तु  
तुमको हमारा धर्म और अधर्म विचार  
कर तब हमारी निन्दा करनी उचित थी।  
जहां धर्म अधर्मरूप और अधर्म धर्म  
रूपसे माना जाता है, वहां बुद्धिमान  
पण्डितलोग धर्मके रूपको बुद्धिसे पह-  
चान लेते हैं । ( १-२ )

हे संजय ! हमने जो धर्म और अधर्म  
कहे, यह धर्मके लक्षण जानो, धर्म और  
अधर्म सदाही जगत्में घूमा करते हैं ।

परन्तु जो जिसका पहला धर्म है, वही  
उसके लिये प्रमाण है; अर्थात् ब्राह्मण,  
क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंके जो धर्म कहे हैं  
वेही उनके लिये कल्याणदायक हैं, दूसरे-  
की वृत्ति करना अधर्म कहाता है। जिस  
समय मनुष्यकी अपनी वृत्ति नष्ट हो  
जाय, उस समय अत्यन्त दीन हो कर  
दूसरे वर्णकी वृत्ति करनी चाहिये । हे  
संजय ! जो निज वृत्तिके रहते दूसरे  
वर्णका काम करता है, और जो आपत्ति  
में पडकर हठसे अपना कर्म करना  
चाहता है, यह दोनोंही नीच कहाते  
हैं । ( ३-४ )

ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये प्रायश्चित्त  
कहे हैं, उस शास्त्रको देखकर तुम  
अच्छे कर्म करनेवालेकी प्रशंसा और  
बुरे कर्म करनेवालेकी निन्दा करो ।

मनीषिणां सत्त्वविच्छेदनाय विधीयते सत्सु वृत्तिः सदैव ।  
 अब्राह्मणाः संति तु ये न वैद्याः सर्वोत्संगं साधु मन्येत तेभ्यः ॥ ६ ॥  
 तदध्वानः पितरो ये च पूर्वं पितामहा ये च तेभ्यः परेऽन्ये ।  
 यज्ञैषिणौ ये च हि कर्म कुर्युर्नाऽन्यं ततो नास्तिकोऽस्मीति मन्ये ॥ ७ ॥  
 यत्किंचनेदं वित्तमस्यां पृथिव्यां यद्देवानां त्रिदशानां परं यत् ।  
 प्राजापत्यं त्रिदिवं ब्रह्मलोकं नाऽधर्मतः संजय कामयेयम् ॥ ८ ॥  
 धर्मेश्वरः कुशलो नीतिमांश्चाऽप्युपासिता ब्राह्मणानां मनीषी ।  
 नानाविधांश्चैव महाबलांश्च राजन्यभोजाननुशास्ति कृष्णः ॥ ९ ॥  
 यदि ह्यहं विसृजन्साम गह्वीं नियुद्धयमानो यदि जह्यां स्वधर्मम् ।  
 सहायशाः केशवस्तद्वीतु वासुदेवस्तूभयोरर्थकामः ॥ १० ॥  
 शौनेयोऽयं चेदयश्चांश्चकाश्च बाष्णेयभोजाः कुरुराः सृजयाश्च ।  
 उपासीना वासुदेवस्य बुद्धिं निगृह्य शत्रून्सुहृदो नन्दयन्ति ॥ ११ ॥  
 वृष्ण्यधका ह्यग्रसेनादयो वै कृष्णप्रणीताः सर्व एवेन्द्रकल्पाः ।  
 मनस्विनः सत्यपरायणाश्च महाबला यादवा भोगवन्तः ॥ १२ ॥

मनका लय और बुद्धिको आत्मासे अलग करनेके लिये अर्थात् आत्मतत्त्वकी खोज करनेके लिये संन्यासपूर्वक भिक्षावृत्ति बनाई है, वह भिक्षा वृत्ति ब्राह्मणोंकी है । अन्यवर्णवाले और ज्ञाननिष्ठामे रहित मनुष्योंकी नहीं है, इस लिये सबको अच्छी अवस्थामें अपना अपना धर्म करनाही उचित है । ५-६

जो कर्म हमारे पिता पितामह और उनसे पहले पुरुषोंने किया है, वही यज्ञादिक कर्म हमको भी करने चाहिये, क्योंकि उनके न करनेसे हम नास्तिक कहावेंगे। हे सञ्जय ! हम अधर्मसे पृथ्वी का और सब देवतोंका भी धन, प्रजापति का स्थान और ब्रह्माका लोक लेना नहीं

चाहते श्रीकृष्ण धर्मके स्वामी, नीतिके जाननेवाले, महा पाण्डित ब्राह्मणोंके उपासक और अनेक प्रकारके महाबलवान् राजों और भोजोंको शासन करते हैं । यदि मैं सन्धि तोड़कर युद्ध करने की इच्छा करता हूं, या युद्धमें भी अपने धर्मको छोड़ता हूं तो महा यशस्वी वसुदेवपुत्र कृष्णही कहें, क्योंकि ये हम दोनोंका कल्याण चाहते हैं । ७-१०

यह सात्यकी, चेदि देशके राजा, अन्धक, वृष्णिवंशी, भोजवंशी, कुरुरवंशी और सृजयवंशी क्षत्री सभामें बैठे हैं, ये सब कृष्णकी बुद्धिसे शत्रुओंका नाश करते हैं और मित्रोंको सुख देते हैं । यदुवंशी और अन्धकवंशी उग्रसेनादिक राजा

काश्यो बभ्रुः श्रियसुत्तमांगतो लब्ध्वा कृष्णं भ्रातरमीशितारम् ।

यस्मै कामान्वर्षति वासुदेवो ग्रहिमात्यये मेघ इव प्रजाभ्यः ॥ १३ ॥

ईदृशोऽयं केशवस्तात विद्वान्विद्वि ह्येनं कर्मणां निश्चयज्ञम् ।

प्रियश्च नः साधुतमश्च कृष्णो नाऽतिक्रामे वचनं केशवस्य ॥ १४ ॥ [ ७५९ ]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

वासुदेव उवाच-अविनाशं संजय पाण्डवानामिच्छाम्यहं भूतिमेषां प्रियं च ।

तथा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सूत समाशंसे बहुपुत्रस्य वृद्धिम् ॥ १ ॥

कामो हि मे संजय नित्यमेव नाऽन्यद् ब्रूयां तान्प्रतिशाम्यतेति ।

राज्ञश्च हि प्रियमेतच्छृणोमि मन्ये चैतत्पाण्डवानां समक्षम् ॥ २ ॥

सुदुष्करस्तत्र शमो हि नूनं प्रदर्शितः संजय पाण्डवेन ।

यस्मिन्गृद्धो धृतराष्ट्रः सपुत्रः कस्मादेषां कलहो नाऽवमूच्छेत् ॥ ३ ॥

न त्वं धर्मं विचरं संजयेह मत्तश्च जानासि युधिष्ठिराच ।

कृष्णके आश्रयसे इन्द्रके तुल्य होगये हैं, यह सब महात्मा, सत्यवादी और अनेक भोग भोगते हैं, काशीके बभ्रु नामक राजा कृष्णको भाई और स्वामी बनाकर परम लक्ष्मीको प्राप्त हुए हैं, हे सञ्जय ! श्रीकृष्ण इस प्रकार धन देते हैं, जैसे वर्षा कालमें मेघ प्रजाको जल देते हैं । हे सञ्जय ! श्रीकृष्ण महाविद्वान और कर्मोंके निश्चयको जाननेवाले हैं, कृष्ण हमारे बहुत प्यारे और महात्मा हैं । इस लिये जो ये कहेंगे सोई हम करेंगे । ( ११—१४ ) [ ७५९ ]

उद्योग पर्वमें अठारहवां अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें उनत्तीस अध्याय ।

श्रीकृष्ण बोले, हे सञ्जय ! हम पाण्डवोंका कल्याण और वृद्धिही चाहते हैं, उनके नाशकी कदापि इच्छा नहीं

करते । ऐसेही महाराज धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी भी उन्नतिही चाहते हैं । हे सञ्जय ! मेरे अन्तःकरणका यही अभिप्राय है कि कौरव और पाण्डवोंमें शान्ति हो । मैं सदा पाण्डवोंसे यही कहता रहता हूँ कि तुम लोग सान्धि कर लो; मेरी बुद्धिमें पाण्डव और राजा धृतराष्ट्रकी सान्धिसे कल्याण होगा । परन्तु यहभी निश्चय है, कि महाराज युधिष्ठिरके सङ्ग दुर्योधन की सान्धि होनी बहुत कठिन है, क्यों कि जहां राजा धृतराष्ट्र ऐसे लोभी पुत्रोंके सहित जीते हैं, तहां युद्ध क्यों न होगा ? ( १—३ )

हे सञ्जय ! तुम हमारे और युधिष्ठिर के चित्तसे धर्मको नहीं उठा सकोगे, इस लिये हम लोगोंको अधर्मी भी नहीं सिद्ध कर सकते हो ? तब धर्मपालक

अथो कस्मात्संजय पाण्डवस्य उत्साहिनः पूरयतः स्वकर्म ॥ ४ ॥  
 यथाख्यातमावसतः कुटुंबे पुरा कस्मात्साधुविलोपमात्थ ।  
 अस्मिन्विधौ वर्तमाने यथावदुच्चावचा मतयो ब्राह्मणानाम् ॥ ५ ॥  
 कर्मणाऽऽहुः सिद्धिमेके परत्र हित्वा कर्म विद्यया सिद्धिमेके ।  
 नाऽभुजानो भक्ष्यभोज्यस्य तृप्येद्विद्वानपीह विहितं ब्राह्मणानाम् ॥ ६ ॥  
 या वै विद्याः साधयंतीह कर्म तासां फलं विद्यते नेतरासाम् ।  
 तत्रेह वै दृष्टफलं तु कर्म पीत्वोदकं शाम्यति तृष्णयाऽऽर्तः ॥ ७ ॥  
 सोऽयं विधिर्विहितः कर्मणैव संवर्तते संजय तत्र कर्म ।  
 तत्र योऽन्यत्कर्मणः साधु मन्येन्मोघं तस्याऽऽलपितं दुर्बलस्य ॥ ८ ॥  
 कर्मणाऽग्नी भांति देवाः परत्र कर्मणैवेह प्लवते मातरिश्वा ।  
 अहोरात्रे विदधत्कर्मणैव अतंद्रितो नित्यमुदेति सूर्यः ॥ ९ ॥  
 मासार्धमासानथ नक्षत्रयोगानतंद्रितश्चंद्रमाश्चाऽभ्युपैति ।  
 अतंद्रितो दहते जातवेदाः समिद्धयमानः कर्म कुर्वन्प्रजाभ्यः ॥ १० ॥  
 अतंद्रिता भारमिभं सहांतं बिभर्ति देवी पृथिवी बलेन ।

उत्साह भरे युधिष्ठिरको उनके कर्मसे क्यों रोकते हो ? तुमने कुटुम्बमें शान्ति चाहनेवाले युधिष्ठिरको पापी कैसे कहा ? जब महाराज युधिष्ठिर अपना धर्म करते हैं, तब ब्राह्मण लोग उनको अनेक प्रकारकी वाणी सुनाते हैं; कोई महात्मा कहते हैं कि इस लोकके कर्मसे परलोक में सिद्धि होती है, कोई कर्म के बिनाही विद्यासे सिद्धि बतलाते हैं, परंतु चाहे कोई कैसाही विद्वान हो, वह भी बिना भोजन किये तृप्त नहीं होता, इस लिये कर्म करनाही प्रधान है। (४-६)

जो विद्या कर्मको सिद्ध करती हैं उन्हीका फल भी दीखता है, और जिस से कुछ कर्म सिद्ध नहीं होता उस विद्या

का फल भी नहीं दीखता। कर्मही करनेसे सिद्धि होती है। प्यासा पानी पीनेहीसे शान्त होता है, हे संजय ! यह सब कर्महीका फल है, इसमें जो कोई विकृष्ट कहेगा उसका कहना बृथा है, और कहनेवाला भी दुर्बल समझा जायगा। (७-८)

कर्महीसे देवता स्वर्गमें रहते हैं; कर्म हीसे वायु बहता है; कर्महीसे सूर्य आलस्य रहित होकर दिन और रातका विभाग करता है; कर्महीसे चंद्रमा महीने, पक्ष, नक्षत्र और योगोंको अलग अलग करते हैं; कर्महीसे भगवान् अग्नि प्रजाओंके लिये कर्म करते हुए सब वस्तुओं को जलाते हैं; कर्महीसे आलस्य रहित हो

अंतर्द्रिताः शीघ्रमपो वहन्ति संतर्पयन्त्यः सर्वभूतानि नद्यः ॥ ११ ॥  
 अंतर्द्रितो वर्षति भूरितेजाः सन्नादयन्नंतरिक्षं दिशश्च ।  
 अंतर्द्रितो ब्रह्मचर्यं चचार श्रेष्ठत्वमिच्छन्बलभिद्देवतानाम् ॥ १२ ॥  
 हित्वा सुखं मनसश्च प्रियाणि तेन शक्रः कर्मणा श्रेष्ठयमाप ।  
 सत्यं धर्मं पालयन्न प्रमत्तो दमं तितिक्षां समतां प्रियं च ॥ १३ ॥  
 एतानि सर्वाण्युपसेवमानः स देवराज्यं मघवान्प्राप मुख्यम् ।  
 बृहस्पतिर्ब्रह्मचर्यं चचार समाहितः संशितात्मा यथावत् ॥ १४ ॥  
 हित्वा सुखं प्रतिरुद्धयेंद्रियाणि तेन देवानामगमद्गौरवं सः ।  
 तथा नक्षत्राणि कर्मणाऽमुत्र भांति रुद्रादित्या वसवोऽथापि विश्वे ॥ १५ ॥  
 यमो राजा वैश्रवणः कुबेरो गन्धर्वयक्षाप्सरसश्च सून ।  
 ब्रह्मविद्यां ब्रह्मचर्यं क्रियां च निषेवमाणा ऋषयोऽमुत्र भांति ॥ १६ ॥  
 जानन्निसं सर्वलोकस्य धर्मं विप्रैर्द्राणां क्षत्रियाणां विशां च ।  
 स कस्मात्त्वं जानता ज्ञानवान्सन्वयायच्छसे संजय कौरवार्थे ॥ १७ ॥  
 आम्नायेषु नित्यसंयोगमस्य तथाऽश्वमेधे राजसूये च विद्धि ।

कर पृथ्वी सब जगतको धारण करती है,  
 आलसरहित जल शीघ्र बहता है; नदी  
 सबको तृप्त करती हैं; आलसरहित हो-  
 कर महातेजस्वी मेघ सब दिशा और  
 आकाशको अपने शब्दसे पूरित करके  
 जल वर्षाते हैं; आलसरहित इन्द्रने देव-  
 तोंमें उत्तम होनेके लिये ब्रह्मचर्य किया  
 था; इन्द्र अपने मनके प्यारे कर्म और  
 सुखको छोड़कर तथा सावधान होकर  
 सत्य, धर्म, त्याग और सबकी तुल्यता-  
 को धारण करके देवतोंसे श्रेष्ठ हुए हैं ।  
 इन सब कर्मोंके करनेसे देवराज इन्द्र  
 सब देवतोंमें मुख्य और देवतोंके राजा  
 बने हैं । ( ९—१४ )

बृहस्पतिने अपने प्यारे कर्मोंको

छोड़ इन्द्रियोंको अपने वशमें कर ब्रह्म-  
 चर्य ब्रत किया था; इसहीसे वे महात्मा  
 सब देवतोंके गुरु हुए । आकाशमें तारे  
 विश्वे देवता, सूर्य, रुद्र, यमराज; कुबेर,  
 गन्धर्व और अप्सरा, ये सब कर्महीसे  
 सिद्धिको प्राप्त करते हैं । ऋषि लोग  
 वेदविद्या पढ़कर तथा ब्रह्मचर्य और  
 उत्तम कर्म करके तेजस्वी बनते हैं । हे  
 संजय ! तुम विद्वान होकर तीनों लो-  
 कोंके ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्योंके धर्म  
 को जानकर भी कौरवोंका पक्ष लेकर  
 क्यों हठ करते हो ? ( १४—१७ )

महाराज युधिष्ठिरने समस्त वेदको  
 पढ़ा है उन्होंने अश्वमेध और राजसूय  
 आदि अनेक यज्ञ किये हैं, ऐसे मनुष्य

संयुज्यते धनुषा धर्मणा च हस्त्यश्वाद्यै रथशस्त्रैश्च भूयः ॥ १८ ॥  
 ते चेदिमे कौरवाणामुपायमवगच्छेयुरवधेनैव पार्थाः ।  
 धर्मत्राणं पुण्यमेवां कृतं स्यादार्थे वृत्ते भीमसेनं निगृह्य ॥ १९ ॥  
 ते चेत्पित्र्ये कर्मणि वर्तमाना आपद्यंरन्दिष्टवशेन मृत्युम् ।  
 यथाशक्त्या पूरयंतः स्वकर्म तदप्येषां निधनं स्यात्प्रशस्तम् ॥ २० ॥  
 उताऽहो त्वं मन्यसे शास्यमेव राज्ञां युद्धे वर्तते धर्मतंत्रम् ।  
 अयुद्धे वा वर्तते धर्मतंत्रं तथैव ते वाचमिमां शृणोमि ॥ २१ ॥  
 चातुर्वर्ण्यस्य प्रथमं संविभागमवेक्ष्य त्वं संजय स्वं च कर्म ।  
 निशम्याऽथो पांडवानां च कर्म प्रशंस वा निंद वा या मतिस्ते ॥ २२ ॥  
 अधीयीत ब्राह्मणो वै यजेत दद्यादीयात्तीर्थमुख्यानि चैव ।  
 अध्यापयेद्याजयेद्यापि याज्यान्प्रतिग्रहान्वा विहितान्प्रतीच्छेत् ॥ २३ ॥  
 तथा राजन्यो रक्षणं वै प्रजानां कृत्वा धर्मेणाऽप्रमत्तोऽथ दत्त्वा ।  
 यज्ञैरिष्ट्वा सर्ववेदानधीत्य दारान्कृत्वा पुण्यकृदावसेद्ग्रहान् ॥ २४ ॥  
 स धर्मात्मा धर्ममधीत्य पुण्यं यदिच्छया व्रजति ब्रह्मलोकम् ।

को शिक्षा देनी भूल नहीं तो क्या है ?  
 यह धनुष्य, कवच, हाथी, घोड़े, रथ  
 और शस्त्रोंसे अपनी वृद्धि करना चाह-  
 ते हैं, और यदि महाराज युधिष्ठिर भीम  
 सेनकं क्रोधको रोककर विना कौरवों-  
 के नाश किये कोई राज्य प्राप्ति का उपा-  
 य निकालें, तो बड़ेही धर्मात्मा गिने  
 जायें; परन्तु हमारी बुद्धिमें यदि ये लोग  
 अपने कुलधर्मसे अर्थात् युद्धमें प्रारब्ध  
 वशसे मारे भी जायें तो वह मृत्यु भी  
 प्रशंसा करनेके योग्य होगी । (१८-२०)

और यदि तुमने कोई सन्धिका उपाय  
 सोचा हो तो हमको सुनाओ, क्योंकि  
 तुम जानते हो कि युद्ध करनेसे धर्म  
 होता है या सन्धि करनेसे धर्म होता

है ? जैसा तुम कहोगे तैसाही हम करेंगे ।  
 परन्तु इस कहनेके पहले चारों वर्णोंके  
 विभाग और अपने कर्मको विचार लो;  
 इसके पश्चात् पांडवोंके वचन भी सुनलो;  
 तब अपनी बुद्धिके अनुसार चाहे इनकी  
 निन्दा करो, चाहे प्रशंसा करो । २१-२२  
 वेदमें लिखा है, कि ब्राह्मण पढ़े,  
 पढ़ावे, महात्माओंको दान दे, यजमानों  
 को यज्ञ करावे और उचित दानको  
 ग्रहण करे, यही ब्राह्मणके छः कर्म हैं ।  
 क्षत्री अपने धर्मके अनुसार सावधान होके  
 प्रजाका पालन करे, दान दे, वेद पढ़े,  
 यज्ञ करे और शर्दी करके घरमें रहे, यही  
 क्षत्रीके धर्म हैं । इन कर्मोंको करनेवाला  
 धर्मात्मा क्षत्री स्वर्गको जाता है । २३-२५

वैश्योऽधीत्य कृषिगौरक्षपण्यैर्वित्तं चिन्वन्पालयन्नप्रसक्तः ॥ २५ ॥  
 प्रियं कुर्वन्ब्राह्मणक्षत्रियाणां धर्मशीलः पुण्यकृदावसेदृहान् ।  
 परिचर्या वंदनं ब्राह्मणानां नाऽधीयीत प्रतिषिद्धोऽस्य यज्ञः ॥  
 नित्योत्थितो भूतयेऽतंद्रितः स्यादेवं स्मृतः शूद्रधर्मः पुराणः ॥ २६ ॥  
 एतान् राजा पालयन्नप्रसक्तो नियोजयन्सर्ववर्णान्स्वधर्मे ।  
 अकामात्मा समवृत्तिः प्रजासु नाऽधार्मिकाननुरुद्धयेत् कामात् ॥ २७ ॥  
 श्रेयांस्तस्माद्यदि विद्येत कश्चिदभिज्ञानः सर्वधर्मोपपन्नः ।  
 स तं द्रष्टुमनुशिष्यन्प्रजानां न चैतद्बुद्धयेदिति तस्मिन्नसाधुः ॥ २८ ॥  
 यदा गृह्येत्परभूतौ वृशंसौ विधिप्रकोपाद्वलमाददानः ।  
 ततो राज्ञामभवद्युद्धमेतत्तत्र जातं वर्म शस्त्रं धनुश्च ॥ २९ ॥  
 इन्द्रेणैतदस्युवधाय कर्म उत्पादितं वर्म शस्त्रं धनुश्च ॥ ३० ॥  
 तत्र पुण्यं दस्युवधेन लभ्यते सोऽयं दोषः कुरुभिस्तीव्ररूपः ।  
 अधर्मज्ञैर्धर्ममबुध्यमानैः प्रादुर्भूतः संजय साधु तत्र ॥ ३१ ॥

वैश्य वेद पढ़कर लेती करे, गाँओंकी रक्षा करे और सावधान होकर धनसे व्यापार करे। पुण्यात्मा वैश्यको उचित है कि ब्राह्मण और क्षत्रियोंका प्यारा कर्म करके घरमें बसे। शूद्र तीनों वर्णोंकी सेवा करे, और सदा आलस्यरहित होकर तीनों वर्णोंका कल्याण चाहे। शूद्रको वेद पढ़ने और यज्ञ करनेका अधिकार नहीं है। (२५-२६)

महाराज युधिष्ठिर सावधान होकर अपने धर्मका पालन करते हैं और सब वर्णोंको उचित धर्ममें चलाते हैं, ये कामी नहीं हैं, प्रजाको समान मानते हैं, और कभी अधर्ममें नहीं जाते। जो मनुष्य इनसे अधिक ज्ञानी और धर्मात्मा हो, वही इनको शिक्षा दे, वह शिक्षा

ऐसी होनी चाहिये जिसमें महाराजको राज्य भी मिले, और युद्ध भी न हो, ऐसे उपायको महाराज अवश्यही मानेंगे। हे संजय ! तुम जानते हो, जब कोई दुष्ट अपने बलके अभिमानमें आकर दूसरेके धनको छीनना चाहता है, तबही युद्ध होता है, उसी युद्धके लिये ब्रह्माने शस्त्र कवच और धनुष्य बनाये हैं। २७-२९

इन्द्रने डाकुओंके मारनेके लिये युद्ध बनाया है और इसी लिये शस्त्र, कवच और धनुष उत्पन्न हुए हैं। दुष्टोंके मारनेहीसे धर्म होता है, और यह दुष्टता दोष कौरवोंमें निवासही करता है। हे संजय ! यह छलरूपी दोष अधर्मों कौरवोंहीसे उत्पन्न हुआ है, सो अच्छा नहीं है। हमें निश्चय है कि पुत्रोंके सहित

तत्र राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो धर्म्यं हरेत्पाण्डवानामकस्मात् ।  
 नाऽवेक्षते राजधर्मं पुराणं तदन्वयाः कुरवः सर्व एव ॥ ३२ ॥  
 स्तेनो हरेद्यत्र धनं ह्यदृष्टः प्रसह्य वा यत्र हरेत् दृष्टः ।  
 उभौ गह्वौ भवतः संजयैतौ किं वै पृथक्त्वं धृतराष्ट्रस्य पुत्रे ॥ ३३ ॥  
 सोऽयं लोभान्मन्यते धर्ममेतं यमिच्छति क्रोधवशानुगामी ।  
 भागः पुनः पाण्डवानां निविष्टस्तं नः कस्मादाददीरन्परे वै ॥ ३४ ॥  
 अस्मिन्पदे युद्धयतां नो बधोऽपि श्लाघ्यः पित्र्यं परराज्याद्विशिष्टम् ।  
 एतान्धर्मान्कौरवाणां पुराणानाचक्षीथाः संजय राजमध्ये ॥ ३५ ॥  
 एते भदान्मृत्युवशाद्विपन्नाः समानीता धार्तराष्ट्रेण सूढाः ।  
 इदं पुनः कर्म पापीय एव सभामध्ये पश्य वृत्तं कुरूणाम् ॥ ३६ ॥  
 प्रियां भार्यां द्रौपदीं पाण्डवानां यशस्विनीं शीलवृत्तोपपन्नाम् ।  
 यदुपैक्षन्त कुरवो भीष्ममुख्याः कामानुगेनोपसृष्ट्वां ब्रजन्तीम् ॥ ३७ ॥  
 तं चेत्तदा ते सकुमारवृद्धा अवारयिष्यन्कुरवः सप्रेताः ।  
 समं प्रियं धृतराष्ट्रोऽकरिष्यत्पुत्राणां च कृतमस्याऽभविष्यत् ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्र राजा पाण्डवोंको धर्म से प्राप्त होने वाले राज्यको हरण करना चाहते हैं; उनके पास बैठनेवाले और उनके वंशके क्षत्री भी पुरातन राज धर्म को नहीं जानते । ( ३०-३२ )

हे सञ्जय ! जहां चोर बिना देखे धन चुराले वा कोई दृष्ट देखते हुए छलसे धन छीन ले यह दोनोंही चोर कहाते हैं और दोनोंहीकी निन्दा होती है । तब कहो क्या राजा दुर्योधन इन दोषोंसे बचे हैं ? वह लोभके वशमें होकर पाण्डवोंके धन लेनेहीको धर्म समझते हैं, परन्तु पाण्डव उस क्रोधीको अपना भाग क्यों देंगे ? हे सञ्जय ! इस विषयको तुम सब राजोंके आगे राजा

धृतराष्ट्रसे कहना कि चाहे युद्ध करो वा मत करो, पाण्डवोंको राज्य देनाही उत्तम है, क्योंकि दूसरेका राज्य लेनेसे मरना अच्छा है । ( ३३-३५ )

हे सञ्जय ! जो मूर्ख राजा लोग मृत्युके वशमें होकर दुर्योधनकी सहायताको आये हैं, उनसे पूछना कि यह धर्म है वा अधर्म ? भीष्मादिक धर्मात्मा कौरवोंसे पूछना कि कौरवोंकी सभाके बीचमें रजस्वला, धर्म करनेवाली यशस्विनी पतिव्रता द्रौपदीको लानाही धर्म है ? यदि राजा धृतराष्ट्र कुरु सभाके बीचमें दृष्ट दुःशासनको इस बुरे कर्मसे रोकते तो अवश्यही मैं उनसे प्रसन्न होता और उनको धर्मात्मा कहता और उनके पुत्रोंका



दुःशासनः प्रातिलोभ्यान्निनाय सभामध्ये श्वशुराणां च कृष्णाम् ।  
 सा तत्र नीता करुणं व्यपेक्ष्य नाऽन्यं क्षन्तुर्नाथमवाप किञ्चित् ॥ ३९ ॥  
 कार्पण्यादेव सहितास्तत्र भूषा नाऽशक्नुवन्प्रतिवक्तुं सभायाम् ।  
 एकः क्षत्ता धर्म्यमर्थं ब्रुवाणो धर्मबुद्ध्या प्रत्युवाचाऽल्पबुद्धिस् ॥ ४० ॥  
 अबुध्वा त्वं धर्ममेतं सभायामथेच्छसे पाण्डवस्योपदेष्टुम् ।  
 कृष्णा त्वेतत्कर्म चकार शुद्धं सुदुष्करं तत्र सभां समेत्य ॥ ४१ ॥  
 येन कृच्छ्रात्पाण्डवानुजहार तथाऽऽत्मानं नौरिव सागरौघात् ।  
 यत्राऽब्रवीत्सूनपुत्रः सभायां कृष्णां स्थितां श्वशुराणां समीपे ॥ ४२ ॥  
 न ते गतिर्विद्यते याज्ञसेनि प्रपद्य दासी धार्तराष्ट्रस्य वेश्म ।  
 पराजितास्ते पतयो न संति पतिं चाऽन्यं भाविनि त्वं वृणीष्व ॥ ४३ ॥  
 यो बीभत्सोर्हृदये प्रोत आसीदस्थि च्छिन्दन्मर्मघाती सुघोरः ।  
 कर्णच्छरो बाह्वयस्तिग्मतेजाः प्रातिष्ठितो हृदये कालगुणस्य ॥ ४४ ॥  
 कृष्णाजिनानि परिधित्समानान्दुःशासनः कटुकान्यभ्यभाषत ।  
 एते सर्वे षण्डातिला विनष्टा भयं गता जरकं दीर्घकालम् ॥ ४५ ॥

भी कल्याण होता । (३६-३८)

दुःशासनने अधर्मसे द्रौपदीको समु-  
 रोंके सामने सभामें खींचा था, जब द्रौप-  
 दी रोती हुई दुःखसे चारों ओर देखने  
 लगी, तब उस सभामें विदुरके सिवा  
 द्रौपदी की रक्षा करने वाला कोई नहीं  
 हुआ! उस सभामें अनेक राजाभी बैठे  
 थे, परन्तु भयसे कोई धर्मका वचन न कह  
 सका, केवल विदुरही धर्मके अनुसार  
 हीनबुद्धि दुर्योधनसे विवाद करते रहे ।  
 हे सञ्जय ! तुम विना धर्म जानेही इस  
 सभामें युधिष्ठिरको उपदेश करना चाहते  
 हो ? द्रौपदीने जो सभामें आकर कहा  
 था, सो बहुत उचित और पवित्र था,  
 द्रौपदीने उस समय पाण्डवोंका और

अपना इस प्रकार उद्धार किया था,  
 जैसे समुद्रमें डूबते हुए मनुष्यको नाव  
 बचाती है । (३९-४१)

उसी समय बूढ़ोंके आगे सूनपुत्र क-  
 र्णने कहा था, हे द्रौपदी ! हे भामिनी !  
 अब तुझे कहीं गति नहीं है, तू दुर्योधन  
 की दासी बनके रह, तेरे पति हार  
 गये । अब तू किसी दूसरेको पति बना ।  
 तुम जानते हो, कि कर्णके ये वचन  
 अर्जुनके हृदयमें तेज बाणके समान लगे  
 हैं, उस घोर बाणसे अर्जुनके मर्मस्थान  
 कटे जाते हैं, जिस समय पाण्डवोंने  
 वनको चलनेके लिये काले हरिणके च-  
 मड़े ओढ़े थे, उसी समय दुःशासनने  
 यह कठोर वचन कहे थे कि नपुंसक

गांधारराजः शकुनिर्निकृत्त्या यदब्रवीद् द्यूतकाले स पार्थम् ।  
 पराजितो नन्दनः किं तवाऽस्ति कृष्णया त्वं दीव्य वै याज्ञसेन्या ॥ ४६ ॥  
 जानासि त्वं संजय सर्वमेतद् द्यूते वाक्यं गह्यमेवं यथोक्तम् ।  
 स्वयं त्वहं प्रार्थये तत्र गंतुं समाधातुं कार्यमेतद्विपन्नम् ॥ ४७ ॥  
 अहापयित्वा यदि पांडवार्थं शयं कुरूणामपि चेच्छकेयम् ।  
 पुण्यं च मे स्याच्चरितं महोदयं सुचयेरंश्च कुरवो मृत्युपाशात् ॥ ४८ ॥  
 अपि मे वाचं भाषमाणस्य काव्यां धर्मारामार्थवतीमहिंस्त्राम् ।  
 अवेशेरन्धार्त्तराष्ट्राः समक्षं मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयुः ॥ ४९ ॥  
 अतोऽन्यथा रथिना कालगुणेन भीमेन चैवाऽऽहवदांशितेन ।  
 परासिक्तान्धार्त्तराष्ट्रांश्च विद्धि प्रदह्यमानान्कर्मणा स्वेन पापान् ॥ ५० ॥  
 पराजितान्पांडवेषांस्तु वाचो रौद्रा रुक्षा भाषते धार्त्तराष्ट्रः ।  
 गदाहस्तो भीमसेनोऽप्रमत्तो दुर्योधनं स्मारयिता हि काले ॥ ५१ ॥  
 सुयोधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कंधः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखा ।  
 दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी ॥ ५२ ॥

पापी पाण्डव बहुत कालके लिये घोर  
 नरकमें पड़े । (४१-४५)

गान्धार देशके राजा शकुनिने छल-  
 से जुआ खेलनेके समय युधिष्ठिरसे यह  
 कठोर वचन कहे थे, कि तेरे छोटे  
 भाइयोंको हमने जीत लिया अब द्रौपदी  
 को दाव पर लगाओ । हे सञ्जय ! तुम  
 तो इन सब बातोंको जानतेही हो, कि  
 जुएके समय पाण्डवोंको कौरवोंने कैसे  
 कैसे कठोर और निंद्य वचन कहे थे,  
 इन सब प्रश्नोंके समाधान करनेको स्वयम्  
 हमारीही इच्छा हस्तिनापुर जानेकी है ।  
 यदि तुम किसी उपायसे कौरव और  
 पाण्डवोंमें सन्धि करा दो तो हमारे  
 मनकी इच्छा पूरी हो, और हमारे पुण्यका

फल मिले, तथा कौरव भी मरनेसे बच  
 जायं । (४६-४८)

यदि मेरी धर्म भरी और नीतिसे भरी  
 तथा हिंसासे बचानेवाली वाणीको कौरव  
 लोग मानेंगे और वहां आनेसे मेरा आ-  
 दर करेंगे तो उनका कल्याण होगा और  
 जो मेरी द्वेष रहित वाणीको नहीं मानेंगे  
 तो तुम पापी धृतराष्ट्रके पुत्रोंको युद्ध करते  
 हुए अर्जुन और भीमके शरणोंसे मरा हुआ  
 जानो । धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने जो जुएमें  
 हार हुए पाण्डवोंको कठोर वचन कहे थे,  
 उनको सावधान भीमसेन हाथमें गदा  
 लेकर स्मरण करावेंगे । (४९-५१)

बुद्धिहीन राजा धृतराष्ट्र जड़, को  
 धी दुर्योधन वृक्ष, कर्ण बड़ी शाखा,

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कंधांर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा ।

माद्रीपुत्रौ पुष्पफले समृद्धे मूलं त्वहं ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ।

वनं राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो व्याघ्रास्ते वै संजय पांडुपुत्राः ॥ ५३ ॥

मा वनं छिंधि सव्याघ्रं मा व्याघ्राऽनीनशन्वनात् ॥ ५४ ॥

निर्वनो वध्यने व्याघ्रो निर्व्याघ्रं छिद्यते वनम् ।

तस्माद् व्याघ्रो वनं रक्षेद्वनं व्याघ्रं च पालयेत् ॥ ५५ ॥

लताधर्मा धार्तराष्ट्राः शालाः संजय पांडवाः ।

न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥ ५६ ॥

स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिंदमाः ।

यत्कृत्यं धृतराष्ट्रस्य तत्करोतु नराधिपः ॥ ५७ ॥

स्थिताः शमे महात्मानः पांडवा धर्मचारिणः ।

योधाः समर्थास्तद्विद्वन्नाचक्षीथा यथानथम् ॥ ५८ ॥ [ ८१७ ]

° इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि कृष्णवाक्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

संजय उवाच— आभंत्रये त्वां नरदेवदेव गच्छाम्यहं पांडव स्वस्ति तेऽस्तु ।

कचिन्न वाचा वृजिनं हि किञ्चिदुच्चारितं मे मनसोऽभिषंगात् ॥ १ ॥

शकुनि छोटी शाखा, तथा दुःशासन स-  
मृद्ध फल और फूल हैं । मैं ब्राह्मण और  
वेद जड, धर्मात्मा युधिष्ठिर बड़ा वृक्ष,  
अर्जुन गुद्धा, भीमसेन डाली, तथा न-  
कुल सहदेव समृद्ध फल और फूल हैं ।  
राजा धृतराष्ट्र पुत्रोंके सहित वन और  
पाण्डव सिंह हैं । हे संजय ! तुम वनको  
मत काटो और न सिंहको वनसे निकालो !  
बिना सिंहके वन और बिनावनके सिंह नष्ट  
होते हैं, इस लिये सिंह वनकी और  
वन सिंहकी रक्षा करे । ( ५२-५५ )

लताके समान धृतराष्ट्रके पुत्र हैं और  
पाण्डव वृक्ष हैं । बिनावृक्षके लता नहीं  
बढती इस लिये सन्धि करनी चाहिये ।

पाण्डव लोग युद्ध करनेको भी उपास्थित  
हैं, और सन्धि करनेको भी तैयार हैं,  
राजा दुर्योधनकी जो इच्छा हो सो करें,  
विशेष इतनाही है कि महात्मा धार्मिक  
पाण्डव सन्धिही करना चाहते हैं, और  
युद्ध करनेको भी समर्थ हुए हैं । तुम  
यह सब जाकर राजा धृतराष्ट्रसे यथा-  
योग्य कहना, उनकी जो इच्छा हो सो  
करें । ( ५६-५८ ) [ ८१७ ]

उद्योगपर्वमें उनत्तीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें तिस अध्याय ।

संजय बोले, हे महाराज युधिष्ठिर !  
हे राजराजा युधिष्ठिर ! आपका कल्याण  
हो, मैं हस्तिनापुर जानेकी आज्ञा मांगता

जनार्दनं भीमसेनार्जुनौ च माद्रीसुतौ सात्यकिं चोक्तिरानम ।

आमंत्र्य गच्छामि शिवं सुखं वः सौम्येन मां पश्यत चक्षुषा नृपाः ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच-अनुज्ञातः संजय स्वस्ति गच्छ न नः स्मरस्यप्रियं जातु विद्वन् ।

विद्वश्च त्वां ते च वयं च सर्वे शुद्धात्मानं मध्यगतं सभास्थम् ॥ ३ ॥

आप्तो दूतः संजय सुप्रियोऽसि कल्याणवाक् शीलवांस्तृप्तिमांश्च ।

न मुह्येस्त्वं संजय जातु मत्या न च क्रुद्धयेरुच्यमानो दुरुक्तैः ॥ ४ ॥

न मर्मणां जातु वक्ताऽसि रुक्षां नोपश्रुतिं कटुकां नोत मुक्ताम् ।

धर्मारामार्थवतीमहिंसाभेतां वाचं तव जानीम सून ॥ ५ ॥

त्वमेव नः प्रियतमोऽभि दूत इहाऽऽगच्छेद्विदुरो वा द्वितीयः ।

अभीक्ष्णदृष्टोऽसि पुरा हि नस्त्वं धनंजयस्याऽऽत्मसमः सन्वाऽसि ॥ ६ ॥

इतो गत्वा संजय क्षिप्रमेव उपातिष्ठेथा ब्राह्मणान्ये तदर्हाः ।

विशुद्धवीर्याश्चरणोपपन्नाः कुले जानाः सर्वधर्मोपपन्नाः ॥ ७ ॥

स्वाध्यायिनो ब्राह्मणा भिक्षवश्च तपास्विनो ये च नित्या वनेषु ।

अभिवाद्या वै मद्रचनेन वृद्धास्तथेतरेषां कुशलं वदेथाः ॥ ८ ॥

हैं। हमने जो कुछ अनुचित कहा हो, सो आप क्षमा कोजियेगा, मैंने जो कुछ कहा है, सो अपने मनकी इच्छासे कहा है। हे कृष्ण ! हे भीमसेन ! हे अर्जुन ! हे नकुल ! हे सहदेव ! हे सात्यके ! हे चेकि-तान ! आप सब लोगोंका कल्याण हो, मैं आप सब लोगोंसे विदा मांगता हूँ, आप सब प्रेमकी दृष्टिसे मुझे देखिये । ( १-२ )

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे पाण्डित सञ्जय ! हम तुम्हें जानेकी आज्ञा देते हैं, तुम कल्याण सहित हस्तिनापुरको जाओ; वहां जाकर हमारे कल्याणका विचार करना; सभामें बैठनेवाले तुम्हें हम और कोरवलोग पवित्रात्मा और अपना मित्र समझते हैं; तुम आप्त, उत्तम

दूत, मीठी वाणीवाले, शीलवान, मनुष्योंके प्यारे और सन्तुष्ट हो; तुम बात कहनेमें रुकते नहीं हो और कठोर बात सुन कर क्रोध नहीं करते, तुम कठोर रूपी और कड़वी बात नहीं कहते; तुम्हारी वाणी धर्म और अर्थसे भरी हिंसारहित और मीठी है । ( ३-५ )

हे सूत ! तुमही हमारे प्यारे दूत हो, तुम्हारे और विदुरके सिवा हमारे कल्याणकी वाणी और कौन कहेगा ? हमने तुम्हें बहुत दिनपर देखा है, तुम अर्जुन के प्यारे मित्र हो। हे सञ्जय ! तुम हस्तिनापुरमें जाकर प्रणाम करने योग्य ब्राह्मण महा वीर्यवान् ब्रह्मचारी रहकर अध्ययन करनेवाले और वनमें रहनेवाले वेद

पुरोहितं धृतराष्ट्रस्य राज्ञस्तथा चाऽऽर्यान्त्विजो ये च तस्य ।  
 तैश्च त्वं तात सहितैर्यथार्हं संगच्छेथाः कुशलं नैव सूत ॥ ९ ॥  
 अश्रोत्रिया ये च वसन्ति वृद्धा मनस्विनः शीलबलोपपन्नाः ।  
 आशंसन्तोऽस्माकमनुस्सरन्तो यथाशक्ति धर्ममात्रां चरन्तः ॥ १० ॥  
 श्लाघस्व मां कुशलिनं स्म तेभ्यो ह्यनामयं तात पृच्छेर्जघन्यम् ।  
 ये जीवन्ति व्यवहारेण राष्ट्रे ये पालयन्तो निवसन्ति राष्ट्रे ॥ ११ ॥  
 आचार्यं इष्टो नयगो विधेयो वेदानभीप्सन्ब्रह्मचर्यं चचार ।  
 योऽस्त्रं चतुष्पात्पुनरेव चक्रे द्रोणः प्रसन्नोऽभिवांयस्त्वयाऽसौ ॥ १२ ॥  
 अधीतविद्यश्चरणोपपन्नो योऽस्त्रं चतुष्पात्पुनरेव चक्रे ।  
 गन्धर्वपुत्रप्रतिभं तरस्विनं तमश्वत्थामानं कुशलं स्म पृच्छेः ॥ १३ ॥  
 शरद्व्रतस्याऽऽवसथं स्म गत्वा महारथस्याऽऽत्मविदां वरस्य ।  
 त्वं मामभीक्ष्णं परिकीर्तयन्वै कृपस्य पादौ संजय पाणिना स्पृशेः ॥ १४ ॥

जाननेवाले महात्मा ब्राह्मण और भिक्षु-  
 ओंको हमारी ओरसे प्रणाम कहना,  
 तथा और बूढ़ोंको भी हमारी ओरसे  
 प्रणाम कहना और सबसे हमारी कुशल  
 कहना । हे सूत ! राजा धृतराष्ट्रके पुरो-  
 हित, आचार्य, यज्ञ करनेवाले तथा और  
 भी सब महात्माओंको हमारा प्रणाम  
 कहके कुशल पूछना । ( ६-९ )

जो महा बलवान्, बूढ़े, यशस्वी, शी-  
 लवान्, त्रैवर्णिकों से भिन्न शूद्रादि  
 हास्तिनापुरमें हमारा स्मरण करते हैं, और  
 जो शक्तिके अनुसार धर्म करते हैं, उससे  
 स्तुति पूर्वक तुम कहना, कि महाराज  
 युधिष्ठिर कुशलसे हैं, और आप लोगोंसे  
 कुशल पूछते हैं, जो उस राज्यमें व्यव-  
 हार करके जीते हैं, सबसे कुशल पूछना  
 और जो राजा राज्यमें राज्यकी रक्षा

करते हैं, उनकी भी कुशल पूछना । सब  
 वेदोंके जाननेवाले हमारे गुरु द्रो-  
 णाचार्यसे हमारा बार बार प्रणाम  
 कहना । जिन द्रोणाचार्यने ब्रह्मचर्य  
 करके चारों चरणोंके सहित अस्त्र विद्या  
 सीखी हैं, जिन्होंने प्रसन्न होकर हमको  
 भी शस्त्रविद्या सिखाई है, उन द्रोणा-  
 चार्यको हमारी ओरसे प्रणाम कहना ।  
 जिसने समस्त विद्याओंको पढ़कर चार  
 चरणोंके सहित शस्त्र विद्याको पढ़ा है,  
 उन गन्धर्वपुत्रके समान प्रराक्रमी अश्व-  
 तथामासे हमारी ओरसे कुशल  
 पूछना । ( १०-१३ )

वेद विद्याओंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ  
 महारथ शरद्व्रतपुत्र कृपाचार्यके स्थानमें  
 जाकर हमारी ओरसे उनके चरण पकड़  
 लेना और कहना कि महाराज युधिष्ठिर

यस्मिन्शौर्यमान्शंस्यं तपश्च प्रज्ञा शीलं श्रुतिसत्त्वे धृतिश्च ।  
 पादौ गृहीत्वा कुरुसत्तमस्य भीष्मस्य मां तत्र निवेदयेथाः ॥ १५ ॥  
 प्रज्ञाचक्षुर्यः प्रणेता कुरूणां बहुश्रुतो वृद्धसेवी मनीषी ।  
 तस्मै राज्ञे स्थविरायाऽभिवाद्य आचक्षीथाः संजय मामरोगम् ॥ १६ ॥  
 ज्येष्ठः पुत्रो धृतराष्ट्रस्य मंदो मूर्खः शठः संजय पापशीलः ।  
 प्रशास्ता वै पृथिवी येन सर्वा सुयोधनं कुशलं तात पृच्छेः ॥ १७ ॥  
 भ्राता कनीयानपि तस्य मंदस्तथाशीलः संजय सोऽपि शश्वत् ।  
 महेष्वासः शूरतमः कुरूणां दुःशासनः कुशलं तात वाच्यः ॥ १८ ॥  
 यस्य कामो वर्तते नित्यमेव नाऽन्यच्छमाद्भारतानामिति स्म ।  
 स बाल्हिकानामृषभो मनीषी त्वयाऽभिवाद्यः संजय साधुशीलः ॥ १९ ॥  
 गुणैरनेकैः प्रवरैश्च युक्तो विज्ञानवान्नैव च निष्ठुरो यः ।  
 स्नेहादमर्ष सहते सहैव स सोमदत्तः पूजनीयो मतो मे ॥ २० ॥  
 अर्हत्तमः कुरुषु सौमदत्तिः स नो भ्राता संजय सत्सखा च ।  
 महेष्वासो रथिनामुत्तमोऽर्हः सहासात्यः कुशलं तस्य पृच्छेः ॥ २१ ॥

अपने भाइयोंके सहित बहुत कुशलसे हैं। इसके पश्चात् तेज, लज्जा, तप, बुद्धि शील, विद्या, पराक्रम और बुद्धिसे भरे हुए भीष्मके पास जाना और हमारी ओरसे उनके चरणोंमें प्रणाम करके हमारा कुशल निवेदन करना। हे संजय ! इसके पश्चात् हमारे पिता सब वीरवरोको आज्ञामें रखनेवाले, महाबुद्धिमान, अनेक बूढ़ोंके सेवक महात्मा धृतराष्ट्रके पास जाकर हमारी ओरसे प्रणाम कहना और कहना कि महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित रोगरहित हैं । १४-१६

इसके पश्चात् राजा धृतराष्ट्रके बड़े बेटे मूर्ख मन्दबुद्धि, दुष्ट, पापी दुर्योधनसे हमारी ओरसे कुशल पूछनी, उसने सब

पृथ्वीको अपने वशमें कर रक्खा है। इसके पश्चात् कौरवोंमें महावीर दुष्ट पापी दुःशासनसे कहना कि पाण्डव लोग बहुत आनन्दसे हैं। इसके पश्चात् कौरवोंकी शान्तिके सिवा जिसकी और कुछ इच्छा नहीं है, उस साधु, शीलवान, बाल्हिकके पास जाकर हमारी ओरसे प्रणाम कहना। इसके पश्चात् अनेक गुणोंसे भरे, न बहुत कठोर, प्रेमसे क्रोध सहनेवाले सोमदत्तको हमारी ओरसे प्रणाम करना । (१७-२०)

इसके पश्चात् पूजा पानेके योग्य महा धनुषधारी, महारथ अमात्योंके सहित सौमदत्तिसे हमारी ओरसे कुशल पूछना, क्योंकि वे हमारे भाई और मित्र हैं ।

ये चैवाऽन्ये कुरुमुख्या युवानः पुत्राः पौत्रा भ्रातरश्चैव ये नः ।  
 यं यमेषां मन्यसे येन योग्यं तत्तत्प्रोच्याऽनामयं सूत वाच्याः ॥२२॥  
 ये राजानः पाण्डवाद्योधनाय समानीता धार्तराष्ट्रेण केचित् ।  
 वशातयः शाल्वकाः केकयाश्च तथाऽवष्टा ये त्रिगर्ताश्च मुख्याः ॥२३॥  
 प्राच्योदीच्या दाक्षिणात्याश्च शूरास्तथा प्रतीच्याः पार्वतीयाश्च सर्वे ।  
 अमृशंसाः शीलवृत्तोपपन्नास्तेषां सर्वेषां कुशलं सूत पृच्छेः ॥ २४ ॥  
 हस्त्यारोहा रथिनः सादिनश्च पदानयश्चाऽऽर्यसंघा महान्तः ।  
 आख्याय मां कुशलिनं स नित्यमनामयं परिपृच्छेः समग्रान् ॥ २५ ॥  
 तथा राज्ञो ह्यर्थयुक्तानमात्यान्दौवारिकान्ये च सेनां नयन्ति ।  
 अयव्ययं ये गणयन्ति नित्यमर्थाश्च ये महतश्चिन्तयन्ति ॥ २६ ॥  
 वृन्दारकं कुरुमध्येष्वमृतं महाप्रज्ञं सर्वधर्मोपपन्नम् ।  
 न तस्य युद्धं रोचते वै कदाचिद्वैश्यापुत्रं कुशलं तात पृच्छेः ॥ २७ ॥  
 निकर्तने देवने योऽद्वितीयश्छन्नोपधः साधुदेवी मनाक्षः ।  
 यो दुर्जयो देवरथेन संख्ये स चित्रसेनः कुशलं तात वाच्यः ॥२८॥  
 गांधारराजः शकुनिः पार्वतीयो निकर्तनीयोऽद्वितीयोऽक्षदेवी ।

इसके पश्चात् कौरवोंमें मुख्य हमारे भाई,  
 बेटे, पोते और जो आदर पानेके योग्य  
 हों, उन सबसे यथायोग्य कुशल पूछना ।  
 हे सूत । इसके पश्चात् जो राजा दक्षिण,  
 पश्चिम और उत्तरसे पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध  
 करनेको आये हैं, उनसे हमारी ओरसे  
 कुशल पूछना । इसके पश्चात् शीलवान  
 लज्जावान उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए  
 वसाती, शाल्वक, केकय, अम्बष्ठ, पर्वत  
 और त्रिगर्त देशके मुख्य राजोंसे हमारी  
 ओरसे कुशल पूछना । (२१-२४)

इसके पश्चात् हाथी घोड़े और रथोंमें  
 चढ़नेवाले तथा पैदल सेनाके सामान्य  
 लोगोंसे हमारी ओरसे कुशल पूछना,

और सबसे कहना कि पाण्डव लोग  
 बहुत सुखी हैं । इसके पश्चात् राजाके  
 धन विभागके मन्त्री, द्वारपाल, सेनाके  
 प्रधान; लाभ और खर्चको गिननेवाले,  
 सदा धनकी चिन्ता करनेवाले, इन सबसे  
 कुशल पूछना । इसके पश्चात् जो कभी  
 युद्ध नहीं चाहते, जो सब कौरवोंमें श्रेष्ठ  
 और महा बुद्धिमान हैं, उन वैश्यापुत्र  
 युयुत्सुसे हमारी ओरसे कुशल पूछना ।  
 इसके पश्चात् जो सदा युद्धकी इच्छा  
 करता है जो देवतोंसे भी दुःखसे जीतने  
 योग्य है, जो सदा जुबको अच्छा समझता  
 है, जो छिपकर छल करता है, उस चित्रसे  
 नसे हमारी ओरसे कुशल पूछना ॥ २५-२८

मानं कुर्वन्धार्तराष्ट्रस्य सूत मिथ्याबुद्धेः कुशलं तात पृच्छेः ॥ २९ ॥  
 यः पाण्डवानेकरथेन वीरः समुत्सहस्यप्रधृष्यान्विजेतुम् ।  
 यो मुच्यतां मोहायिताऽद्वितीयो वैकर्त्तनः कुशलं तस्य पृच्छेः ॥ ३० ॥  
 स एव भक्तः स गुरुः स भर्ता स वै पिता स च माता सुहृच्च ।  
 अगाधबुद्धिर्विदुरो दीर्घदर्शी स नो जंत्री कुशलं तं स्म पृच्छेः ॥ ३१ ॥  
 वृद्धाः स्त्रियो याश्च गुणोपपन्ना ज्ञायन्ते नः संजय मातरस्ताः ।  
 नाभिः सर्वाभिः सहिताभिः समेत्य स्त्रीभिः सवृद्धाभिरभिवादं वदेथाः ३२  
 कच्चित्पुत्रा जीवपुत्राः सुसम्यग् वर्तन्ते वो वृत्तिमन्तृशंसरूपाः ।  
 इति स्मोक्त्वा संजय ब्रूहि पश्चादजातशत्रुः कुशली सपुत्रः ॥ ३३ ॥  
 या नो भार्याः संजय वेत्थ तत्र तासां सर्वासां कुशलं तात पृच्छेः ।  
 सुसंगुप्ताः सुरभयोऽनवद्याः कच्चिद्गृहानावसथाऽप्रमत्ताः ॥ ३४ ॥  
 कच्चिद्वृत्तिं श्वशुरेषु भद्राः कल्याणीं वर्तध्वमन्तृशंसरूपाम् ।  
 यथा च वः स्युः पतयोनूलास्तथावृत्तिमात्मनः स्थापयध्वम् ॥ ३५ ॥  
 या नः स्नुषाः संजय वेत्थ तत्र प्राप्ताः कुलेभ्यश्च गुणोपपन्नाः ।

इसके पश्चात् पर्वत देश तथा गान्धार देशके राजा, छली, दूसरेका धन छीनने वाला धूर्त, जुवे मैं आद्वितीय, दुष्ट बुद्धि दुर्योधनका मान करने वाले पाखण्डी, शकुनसे आदरके सहित कुशल पूछना जो महावीर एकरथपर चढ़ करके जीतने के अयोग्य पाण्डवोंको जीतनेका साहस करता है, जो भूलमें पड़े धृतराष्ट्रके पुत्रोंको अधिक भुलाना चाहता है, उस कर्ण से भी हमारी ओरसे कुशल पूछना । जो हमारे मन्त्री, भक्त, गुरु, स्वामी, माता पिता, और मित्र हैं, उन महाबुद्धिमान विदुरसे भी हमारी ओरसे कुशल पूछना । ( २९-३१ )

हे संजय ! जो गुणसे भरी हमारी

माताके समान बूढ़ी स्त्री हैं उनको हमारी ओरसे प्रणाम करना और पूछना कि तुम लोग अपने पुत्रोंसे प्रेम करती हो ? और आपके पुत्रभी आपसे आदर करते हैं, इस के पश्चात् उनसे कहना कि युधिष्ठिर अपने भाई और पुत्रोंके सहित कुशलसे हैं, जो धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी स्त्री हैं, उनसे भी हमारी ओरसे कुशल पूछना; वे सब सुरक्षित होकर अपने धर्मसे घरोंमें रहती हैं; फिर उनसे हमारी ओरसे कहना कि तुम सब अपने ससुरोंकी सुखसे सेवा करो, और जिसमें तुम्हारे पति तुम्हारे वशमें रहें ऐसे उपाय करो । ३२—३५

हे संजय ! वहां जो हमारे बेटोंकी बहू उत्तम गुणोंसे भरी और उत्तम



प्रजावत्यो ब्रूहि समेत्य ताश्च युधिष्ठिरो वोऽभ्यवदत्प्रसन्नः ॥ ३६ ॥

कन्याः स्वजेषु सदानेषु संजय अनामयं मद्रूचनेन पृष्ट्वा ।

कल्याणा वः संतु पतयोऽनुकूला यूयं पतीनां भवताऽनुकूलाः ॥ ३७ ॥

अलंकृता वस्त्रवत्यः सुगंधा अबीभत्साः सुखिता भोगवत्यः ।

लघु यासां दर्शनं वाक् च लघ्वी वेशस्त्रियः कुशलं तात पृच्छेः ॥ ३८ ॥

दास्यः स्युर्या ये च दासाः कुरुणां तदाश्रया बहवः कुञ्जग्वंजाः ।

आख्याय मां कुशालिनं स्म तेभ्योऽप्यनामयं परिपृच्छेर्जघन्यम् ॥ ३९ ॥

कच्चिद्वृत्तिं वर्तते वै पुराणीं कच्चिद्भोगान्धातराष्ट्रो ददाति ।

अंगहीनान्कृपणान्वामनान्वा यानानृशंस्यो धृतराष्ट्रो विभर्ति ॥ ४० ॥

अंघांश्च सर्वान्स्थविरांस्तथैव हस्त्याजीवा बहवो येऽत्र संति ।

आख्याय मां कुशालिनं स्म तेभ्योऽप्यनामयं परिपृच्छेर्जघन्यम् ॥ ४१ ॥

मा भैष्ट दुःखेन कुजीवितेन नूनं कृतं परलोकेषु पापम् ।

निगृह्य शत्रून्सुहृदोऽनुगृह्य वासोभिरन्नेन च वो भरिष्ये ॥ ४२ ॥

कुलोंमें उत्पन्न हुई हैं, अपत्ययुक्त उन सबसे कहना कि महाराज युधिष्ठिरने तुम्हारी कुशल पूछी है। उसके पश्चात् जो हमारी कन्या मिलें उन सबसे कुशल पूछकर कहना कि तुम्हारे पति तुम्हारे वशमें रहें, और तुम अपने पतियोंके वशमें रहो। इसके पश्चात् उत्तम आभूषण वस्त्र और सुगन्ध धारण किये सुन्दरी, सुख और भोगको भोगनेवाली तथा जिनके दर्शन और वचन चित्तको आकर्षण करनेवाले हैं ऐसी वैश्याओंसे हमारी ओरसे कुशल पूछना । ३६-३८

इसके पश्चात् कौरवोंके दास और दासियोंसे हमारी ओरसे कुशल पूछना । इसके पश्चात् अन्धे लंगड़े लूले और उन अनाथोंसे कुशल पूछना जिनका

पालन दयावान धृतराष्ट्र करते हैं। इसके पश्चात् जो हाथियोंसे अपनी अपनी आजीविका करते हैं, उनसे भी कुशल पूछना । इसके पश्चात् उनसे कहना कि महाराज युधिष्ठिर पूछते हैं कि महाराज धृतराष्ट्र तुम लोगोंको अच्छी प्रकार भोजन देते हैं वा नहीं? इसके पश्चात् अङ्गहीन, दरिद्री और बौने आदि मनुष्योंसे कुशल पूछना और उनसे यह भी कहना कि महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित कुशलसे हैं, और उनसे यह भी कहना कि तुम लोग थोड़ी जीविका पानेके कारण भय मत करो, यह पूर्व जन्मके पापोंका फल है, हम अपने शत्रुओंको मार कर और मित्रोंको प्रसन्न करके शीघ्र ही तुम लोगोंका पालन करेंगे । (३९-४२)

संत्येव मे ब्राह्मणेभ्यः कृतानि भावीन्यथो नो बत वर्त्तयन्ति ।  
 तान्पश्यामि युक्तरूपास्तथैव तामेव सिद्धिं श्रावयेथा नृपंतम् ॥ ४३ ॥  
 ये चाऽनाथा दुर्बलाः सर्वकालमात्मन्येव प्रयतन्तेऽथ मूढाः ।  
 तांश्चापि त्वं कृपणान्सर्वथैवाऽऽस्मद्राक्यान्कुशलं तात पृच्छेः ॥ ४४ ॥  
 ये चाप्यन्ये संश्रिता धार्तराष्ट्राद्यानादिग्भ्योऽभ्यागताः सूतपुत्र ।  
 दृष्ट्वा तांश्चैवाऽर्हतश्चापि सर्वान्संपृच्छेथाः कुशलं चाऽव्ययं च ॥ ४५ ॥  
 एवं सर्वानागताभ्यागतांश्च राज्ञो दूतान्सर्वदिग्भ्योऽभ्युपेतान् ।  
 पृष्ट्वा सर्वान्कुशलं तांश्च सूत पश्चादहं कुशली तेषु वाच्यः ॥ ४६ ॥  
 नहीदृशाः संत्यपरे पृथिव्यां ये धोधका धार्तराष्ट्रेण लब्धाः ।  
 धर्मस्तु नित्यो मम धर्म एव महाबलः शत्रुनिबर्हणाय ॥ ४७ ॥  
 इदं पुनर्वचनं धार्तराष्ट्रं सुयोधनं संजय श्रावयेथाः ।  
 यस्ते शरीरे हृदयं दुनोति कामः कुरुनसपत्नोऽनुशिष्याम् ॥ ४८ ॥  
 न विद्यते युक्तिरेतस्य काचिन्नैवंविधाः स्याम यथा प्रियं ते ।  
 ददस्व वा शक्रपुरीं अथैव युद्धयस्व वा भारतमुख्यवरि ॥ ४९ ॥ [ ८६६ ]  
 इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

राजा दुर्योधनसे यह कहना कि जैसे तुम्हारे अधिकारियोंने हमारी दी हुई ब्राह्मणोंकी वृत्ति नहीं लीनी ऐसही तुम्हारी दी हुई वृत्ति हमभी नहीं लीनेगे, ऐसा दूत द्वारा युधिष्ठिरका मत विदित कराआ। हे संजय ! इसके पश्चात् तुम अनाथ, दुर्बल असमर्थ मूर्ख और दरिद्रियोंसे हमारी ओर से कुशल पूछना। इसके पश्चात् राजा दुर्योधनके यहां उन सबसे भी हमारी ओरसे कुशल पूछना जो अनेक देशोंसे आये हैं। इस प्रकार जो आता, जाता, पाहुना वा दूत तुम्हें मिलते जायं, उन सबसे हमारी ओरसे कुशल पूछना, पीछे सबसे हमारा कुशल भी कह देना। हे सूतपुत्र ! हमें

यह खूब निश्चय है कि जैसे वीर दुर्योधन से मिले हैं, वैसे वीर और पृथ्वीमें नहीं हैं, परन्तु सझही यह भी निश्चय रखो कि धर्म नित्य है। और मैं शत्रुओंको मारने के लिये धर्महीको अपना बल समझता हूं। हे संजय ! इसके पश्चात् तुम राजा दुर्योधनसे हमारी ओरसे कहना कि जो इच्छा तुम्हारे मनमें सदा जागती है कि, "अकेला ही मैं सब निष्कंटक कुरुराज्यपर राज्य करूं," उसकी सिद्धिकी कोई आशा नहीं है; क्यों कि हम वैसा होने नहीं देंगे। इसलिये इन्द्रप्रस्थका राज्य हमें दे दो, अथवा युद्ध करो। (४७-४९) [८६६]

उद्योगपर्वमें तीस अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर उवाच—उत सन्तमसन्तं वा बालं वृद्धं च संजय ।

उताऽबलं बलीयांसं धाता प्रकुरुते वशे ॥ १ ॥

उत बालाय पांडित्यं पंडितायोत बालनाम् ।

ददाति सर्वभीशानः पुरस्ताच्छुक्रमुचरन् ॥ २ ॥

बलं जिज्ञासमानस्य आचक्षिथा यथातथम् ।

अथ मंत्रं मंत्रयित्वा याथातथ्येन हृष्टवत् ॥ ३ ॥

गावल्गणे कुरुन्गत्वा धृतराष्ट्रं महाबलम् ।

अभिवाद्योपसंगृह्य ततः पृच्छेरनामयम् ॥ ४ ॥

ब्रूयाश्चैनं त्वमासीनं कुरुभिः परिवारितम् ।

तवैव राजन्वीर्येण सुखं जीवन्ति पांडवाः ॥ ५ ॥

तव प्रसादाद्वालास्ते प्राप्ता राज्यमरिंदम ।

राज्ये तान्स्थापयित्वाऽग्रे नोपेक्षस्व विनश्यतः ॥ ६ ॥

सर्वमप्येतदेकस्य नाऽलं संजय कस्यचित् ।

तात संहत्य जीवामो द्विषतां मा वशं गमः ॥ ७ ॥

तथा भीष्मं शान्तनवं भारतानां पितामहम् ।

उद्योगपर्वमे एकतिस अध्याय ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे संजय !

बालक, बूढ़े, साधु, दुष्ट, बलवान, बलहीन, सब को ईश्वर अपने वशमें रखता है, ईश्वर प्रारब्धके अनुसार पण्डितको मूर्ख और मूर्खको पण्डित बना देता है। यदि कोई हमारे बलको जाननेकी इच्छा करे तो इससे जो सत्य है सो कहना। अब यदि कोई गुह्य विचार कहना चाहते हो, तो आनन्दसे कहो शंका मत करो। (१-३)

हे गावल्गणपुत्र ! कौरवोंके पास जाकर राजा धृतराष्ट्रसे प्रणाम करके मेरी ओर से कुशल पूछना और जिस समय धृतराष्ट्र कौरवोंकी मध्यामें कौरवों-

के बीचमें बैठे उस समय महा बलवान धृतराष्ट्रसे कहना कि हे महाराज ! आप-हीके पराक्रमसे पाण्डव लोग सुखसे आजतक जीते हैं; हे शत्रुनाशन ! आपहीकी कृपासे बालक पाण्डवोंको राज्य मिला था; आप उनको राज्यपर बिठला कर अब उनके नाशका समय न देखिये। हे संजय ! यदि सब ब्रह्माण्डभी किसीके हाथमें आया तो भी तृप्ति होना असंभव है, इस लिये हे तात ! हम सब एक होकर रहेंगे तो हम को शत्रुका भय न रहेगा। (४-७)

इसके पश्चात शान्तनु पुत्र हमारे पितामह भीष्मसे मेरा नाम कहकर

शिरसाऽभिवदेथास्त्वं मम नाम प्रकीर्तयन् ॥ ८ ॥  
 अभिवाद्य च वक्तव्यस्ततोऽस्माकं पितामहः ।  
 भवता शांतनोर्वंशो निमग्नः पुनरुद्धतः ॥ ९ ॥  
 स त्वं कुरु तथा तात स्वमतेन पितामह ।  
 यथा जीवन्ति ते पौत्राः प्रीतिमंत परस्परम् ॥ १० ॥  
 तथैव विदुरं ब्रूयाः कुरूणां मंत्रधारिणम् ।  
 अयुद्धं सौम्य भाषस्व हितकामो युधिष्ठिरे ॥ ११ ॥  
 अथ दुर्योधनं ब्रूया राजपुत्रममर्षणम् ।  
 मध्ये कुरूणामासीनमनुनीय पुनः पुनः ॥ १२ ॥  
 अपापां यदुपैक्षस्त्वं कृष्णामेतां सभागताम् ।  
 तद्दुःखमनितिक्षाम मा वधीष्म कुरूनिति ॥ १३ ॥  
 एवं पूर्वापरान्क्लेशाननितिक्षन्त पांडवाः ।  
 बलीयांसोऽपि संतो यत्तत्सर्वं कुरवो विदुः ॥ १४ ॥  
 यन्नः प्रव्राजयेः सौम्य अजिनैः प्रतिवासितान् ।  
 तद्दुःखमनितिक्षाम मा वधीष्म कुरूनिति ॥ १५ ॥  
 यत्कुन्तीं समतिक्रम्य कृष्णां केशोष्णवर्षयत् ।

प्रणाम करके कहना कि हे पितामह !  
 आपने नाश होते शांतनुके वंशका उ-  
 द्वार किया था, अब प्रायः ऐसा उपाय  
 फिर कीजिये, जिससे आपके पोते प्रेम-  
 के सहित जीते रहें । इसके पश्चात् कौ-  
 रवोंके मन्त्री विदुरसे कहना, कि हे  
 साधो ! आप युधिष्ठिरका कल्याण चा-  
 हते हैं, ऐसा उपाय कीजिये जिससे यु-  
 द्ध न हो । ( ८-११ )

इसके पश्चात् महा क्रोधी राजपुत्र  
 दुर्योधनसे कहना कि तुमने जो कौरवों-  
 के बीचमें बैठकर पापरहित द्रौपदीकी  
 ओर बारबार बुरी दृष्टिसे देखा था, सो

तुम्हारा अपराध मैंने क्षमा किया था इस  
 लिये कि हमारे हाथ से कौरवोंका नाश न  
 हो; तुमने जो काले हरिनका चमड़ा पह-  
 नाकर पाण्डवोंको वनको भेजा था, और  
 जो तुमने पहले पाण्डवोंको अनेक दुःख  
 दिये थे, जिनको सब कुरुवंशी जानते  
 हैं, पाण्डव लोग बलवान् और समर्थ  
 होकर भी उन सब अपराधोंको हमने  
 क्षमा किया इस लिये कि हमारे हाथसे  
 कौरवोंका नाश न हो । ( १२-१५ )

तुम्हारी आज्ञासे जो दुःशासनने  
 कुन्तीको अतिक्रमण करके द्रौपदीके बाल  
 खींचे थे सो सब हमने क्षमा किया ।

दुःशासनस्तेऽनुमने तच्चाऽस्माभिरुपेक्षितम् ॥ १६ ॥

अथोचितं स्वकं भागं लभेमहि परंतप ।

निवर्तय परद्रव्याद् बुद्धिं गृद्धां नरर्षभ ॥ १७ ॥

शांतिरेवं भवेद्वाजन्प्रीतिश्चैव परस्परम् ।

राज्यैकदेशमपि नः प्रयच्छ शममिच्छताम् ॥ १८ ॥

अविस्थलं वृकस्थलं माकंदीं वारणावतम् ।

अवसानं भवत्वत्र किंचिदेकं च पंचमम् ॥ १९ ॥

भ्रातृणां देहि पंचानां पंच ग्रामान्सुयोधन ।

शांतिर्नोऽस्तु महाप्राज्ञ ज्ञांतिभिः सह संजय ॥ २० ॥

भ्राता भ्रातरमन्वेतु पिता पुत्रेण युज्यताम् ।

स्वयमानाः समार्यांतु पांचालाः कुशभिः सह ॥ २१ ॥

अक्षतान्कुरुपांचालान्पश्येयमिति कामये ।

सर्वे सुमनसस्तात शम्याम भरतर्षभ ॥ २२ ॥

अलभेव शम्यायाऽस्मि तथा युद्धाय संजय ।

धर्मार्थयोरलं चाऽहं मृदवे दारुणाय च ॥ २३ ॥ [ ८८९ ]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि युधिष्ठिरसंदेशे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

हे शत्रुनाशन पुरुषसिंह ! तुम अब भी हमारा राज्य हमको दे दो, तुम अपनी बुद्धिको दूसरेके धनसे हटा लो और लोभ मत करो । हे राजेन्द्र ! ऐसा करनेसे शान्ति होगी और हमारा तुम्हारा प्रेम बना रहैगा । अथवा शान्ति चाहने वाले हमको राज्यका एकही भाग दे दो, अथवा पांचही गांव दे दो, परन्तु ये पांच गांव अविस्थल, वृकस्थल, माक-न्दी, और वारणावत और पांचवां जो तुम्हारी इच्छा हो सोही दे दो । १६-१९

हे दुर्योधन ! हम पांच भाईयोको पांच गांव दो, ऐसा करनेसे शान्ति होगी

और कुरुकुलका कल्याण होगा । भाई भाईमें मिल जायं, पिता पुत्रसे मिल जाय, पांचाल और कुरु प्रसन्न होकर प्रेममें रहें, हमारी यही इच्छा है, कि कौरव और पांचालों का नाश न हो । हे संजय ! हम सब प्रसन्नता पूर्वक शम करें हम शमके लिये तैयार हैं और युद्धको भी समर्थ हैं । मैं धर्म और अर्थको जानता हूं, शम सरीखे मुद्दु उपाय भी मुझे मान्य हैं, तथापि शम न हो तो युद्धको भी तैयार हूँ । (२०—२३) [ ८८९ ]

उद्योगपर्वमें इकतीस अध्याय समाप्त ।

वैशंपायन उवाच-अनुज्ञातः पांडवेन प्रययौ संजयस्तदा ।

शासनं धृतराष्ट्रस्य सर्वं कृत्वा महात्मनः ॥ १ ॥

संप्राप्य हास्तिनपुरं शीघ्रमेव प्रविश्य च ।

अंतःपुरं समास्थाय द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

आचक्ष्व धृतराष्ट्राय द्वाःस्थ मां समुपागतम् ।

सकाशात्पांडुपुत्राणां संजयं मा चिरं कृथाः ॥ ३ ॥

जागर्ति चेदभिवदेस्त्वं हि द्वाःस्थ प्रविश्यं विदितो भूमिपस्य ।

निवेद्यमत्राऽत्ययिकं हि मेऽस्ति द्वाःस्थोऽथ श्रुत्वा नृपतिं जगाद ॥ ४ ॥

द्वाःस्थ उवाच-संजयोऽयं भूमिपते नमस्ते दिदक्षया द्वारमुपागतस्ते ।

प्राप्तो दूतः पांडवानां सकाशात्प्रशाधि राजन्किमयं करोतु ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच-आचक्ष्व मां कुशलिनं कल्पमसौ प्रवेद्यतां स्वागतं संजयाय ।

न चाऽहमेतस्य भवाम्यकल्पः स मे कस्माद् द्वारि तिष्ठेच्च सक्तः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततः प्रविश्याऽनुमते नृपस्य महद्वेश्म प्राज्ञशूरार्यगुप्तम् ।

सिंहासनस्थं पार्थिवमाससाद् वैचित्रवीर्यं प्रांजलिः सूतपुत्रः ॥ ७ ॥

उद्योगपर्वमें वत्तीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञा ले और महाराज धृतराष्ट्रके वचन पूरे कर संजय हास्तिनापुरको चले । नगरमें जाकर संजय रनिवासके द्वारपर पहुंचे और द्वारपालसे बोले, हे द्वारपाल ! तुम जाकर महाराजसे कहो कि विराटनगरसे संजय लोट आये । हे द्वारपाल ! यदि महाराज जागते हों तो तुम हमारे आनेका समाचार कहना, हमको उनसे बहुत आवश्यक बात कहनी है, इस लिये तुम जलदी कहकर लौटा । ( १-४ )

संजयके वचन सुन द्वारपाल महाराजके पास जाकर कहने लगा, हे महाराज !

हे पृथ्वीनाथ ! द्वारपर खड़े संजय आपको प्रणाम करते हैं, वे अभी पांडवोंके पाससे लौटे हैं और महाराजका दर्शन करना चाहते हैं, मुझे जो आज्ञा हो सो करूं । महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे द्वारपाल ! तुम संजयसे हमारी कुशल कहो और सत्कार सहित उनको भीतर लाओ, मैं उनको कभी भी भीतर आनेसे रोकता नहीं, तब वे द्वारपर क्यों खड़े हैं ? ( ५-६ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! इसके पश्चात् संजय धृतराष्ट्रकी आज्ञासे महावीर अच्छे क्षत्रियोंसे रक्षित महाराजके स्थानमें गये । उन्होंने सिंहासनपर बैठे विचित्रवीर्यपुत्र महाराज

संजय उवाच-संजयोऽहं भूमिपते नमस्ते प्राप्तोऽस्मि गत्वा नरदेव पांडवान् ।  
 अभिवाद्य त्वां पांडुपुत्रो मनस्वी युधिष्ठिरः कुशलं चाऽन्वपृच्छत् ॥ ८ ॥  
 स ते पुत्रान्पृच्छति प्रियमाणः कश्चित्पुत्रैः प्रीयसे नमृभिश्च ।  
 तथा सुहृद्भिः सचिवैश्च राजन्ये चापि त्वालुपजीवंति तैश्च ॥ ९ ॥  
 धृतराष्ट्र उवाच-अभिनन्द्य त्वां तान् वदामि संजय अजातशत्रुं च सुखेन पार्थम् ।  
 कश्चित्स राजा कुशली सपुत्रः सहामात्यः सानुजः कौरवाणाम् ॥ १० ॥  
 संजय उवाच- सहामात्यः कुशली पांडुपुत्रो वुष्णते यच्च तेऽग्रेऽऽत्मनो भूत ।  
 निर्णिक्तधर्मार्थकरो मनस्वी बहुश्रुतो हृष्टिमाञ्शीलवांश्च ॥ ११ ॥  
 परो धर्मात्पांडवस्याऽनृशंसं धर्मः परो वित्तचयान्मतोऽस्य ।  
 सुखप्रिये धर्महीनेऽनपार्थेऽनुरुध्यते भारत तस्य बुद्धिः ॥ १२ ॥  
 परप्रयुक्तः पुरुषो विचेष्टते सूत्रप्रोक्ता दारुमयीव योषा ।  
 इमं हृष्ट्वा नियमं पांडवस्य मन्ये परं कर्म दैवं मनुष्यात् ॥ १३ ॥  
 इमं च हृष्ट्वा तव कर्मदोषं पापोदकं घोरमवर्णरूपम् ।

धृतराष्ट्रको देखा पश्चात् उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहने लगे, सञ्जय बोले, हे महाराज ! हे पृथ्वीनाथ ! मैं सञ्जय हूँ, आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ । मैं पाण्डवोंके पाससे लौट आया, हे पृथ्वीनाथ ! पाण्डवपुत्र युधिष्ठिरने आपको प्रणाम करके कुशल पूछी है । महाराज युधिष्ठिरने आपके पुत्र, पोते, मित्र, मन्त्री और नौकरोंको कुशल पूछा है । (७ ९)

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! हम तुमको प्रसन्न करके पूछते हैं, कहो कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिर पुत्र, मन्त्री और भाईयोंके सहित कुशलसे हैं ! १०

सञ्जय बोले, अमात्योंके सहित महाराज युधिष्ठिर कुशल हैं, वह अपने व्यूतके

पूर्वके राज्यके भागकी इच्छा करते हैं । महाराज युधिष्ठिर निर्दोष धर्मार्थोंके करने वाले, महात्मा, शीलवान, महा पाण्डित और बुद्धिमान हैं । हे भारत ! युधिष्ठिर धर्मसे दयाको और धन इकट्ठा करनेसे धर्मको अधिक समझते हैं । वे अपने प्यारे सुख अधर्म और प्रयोजन रहित कामोंको नहीं करते । वह जानते हैं कि जैसे सूतमें बंधी कठपुतली नचानेवालेके वशमें रहती है, ऐसे मनुष्य भी किसी दूसरेके वशमें रहता है । हमने युधिष्ठिरका ऐसा निश्चय देख जान लिया कि पौरुषसे प्रारब्ध बड़ा बलवान है । आपके कर्मके दोष और न सहने योग्य पापके उदयको देखकर हमें यह भी निश्चय हो गया है, कि जब तक वैर करनेवाले

यावत्परः कामयतेऽतिवेलं तावन्नरोऽयं लभते प्रशंसां ॥ १४ ॥  
 अजातशत्रुस्तु विहाय पापं जीर्णं त्वचं सर्प इवाऽसमर्थम् ।  
 विरोचतेऽहार्यवृत्तेन वीरो युधिष्ठिरस्त्वयि पापं विमृज्य ॥ १५ ॥  
 हंताऽत्मनः कर्म निबोध राजन्धर्मार्थयुक्तादार्थवृत्तादपेतम् ।  
 उपक्रोशं चेह गतोऽसि राजन्भूयश्च पापं प्रसजेदमुत्र ॥ १६ ॥  
 स त्वमर्थं संशयितं विना तैराशंशसे पुत्रवशानुगोऽस्य ।  
 अधर्मशब्दश्च महान्पृथिव्यां नेदं कर्म त्वत्समं भारताग्न्य ॥ १७ ॥  
 हीनप्रज्ञो दौष्कुलेयो नृशंशो दीर्घ वैरी क्षत्रविद्यास्वधीरः ।  
 एवं धर्मानापदः संशयेयुर्हीनवीर्यो यश्च भवेदक्षिप्तः ॥ १८ ॥  
 कुले जातो बलवान् यो यशस्वी बहुश्रुतः सुखजीवी यतात्मा ।  
 धर्माधर्मौ ग्रथितौ यो विभर्ति स ह्यस्य दिष्टस्य वशादुपैति ॥ १९ ॥  
 कथं हि मंत्राग्न्यधरो मनीषी धर्मार्थयोरापदि संप्रणेता ।  
 एवमुक्तः सर्वमंत्रैरहीनो नरो नृशंसं कर्म कुर्यादमूढः ॥ २० ॥  
 तव ह्यमी मंत्रविदः समेत्य समासते कर्मसु नित्ययुक्ताः ।

मनुष्यको शत्रु छोड़ता है, तभीतक उसकी प्रशंसा होती है । (११—१४)

वीर युधिष्ठिर अधर्मको सांपकी असमर्थ केंचुलिके समान छोड़कर, आपके स्वभाविक सदाचारसे शोभित होता है। उसने आपके पास पाप छोड़ दिया है। हे महाराज ! आप अपने कर्मों को सुनिये। आपका कर्म धर्म और अर्थसे बाहर है; इसको कोई उत्तम नहीं कह सकता है, आपने जो कर्म किया है, वह इस लोकमें निन्दा और परलोकमें दुःख देनेवाला है; आप अपने पुत्रोंके वशमें होकर पांडवोंके सङ्ग जो अन्याय करते हैं, सो महा अधर्म है; आप भरतकुलमें श्रेष्ठ हैं, इस लिये आपको यह कर्म

नहीं करना चाहिये । (१५—१७)

यह कर्म, मूर्ख, नीच कुलमें उत्पन्न हुए, दयारहित, वैरी, क्षत्रियोंके धर्मको-न जाननेवाले, मूढ़ और दुर्बलको करने योग्य है। क्योंकि ऐसेही मनुष्य आपत्तिमें पड़ने योग्य होते हैं। उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए, बलवान्, यशस्वी, पाण्डित, सुखसे जीनेवाले, जितेन्द्रिय धर्म और अधर्मको जाननेवाले महात्मा ऐसे कर्मको नहीं करते; प्रारब्धहीसे ईश्वरने यह सब गुण आपको दिये हैं; परन्तु न जाने आप ऐसा अधर्म क्यों करते हैं? आपके समान सब धर्मोंको जाननेवाले बुद्धिमान भीष्मादिक मंत्रियोंसे युक्त आप अपने मंत्रियोंकी सम्मतिके विरुद्ध अधर्म कैसे



तेषामयं बलवान्निश्चयश्च कुरुक्षये नियमेनोदपादि ॥ २१ ॥

अकालिकं कुरवो नाऽभविष्यन्पापे न चेत्पापमजातशत्रुः ।

इच्छेज्जातु त्वयि पापं विसृज्य निंदा च यं तव लोकेऽभविष्यत् ॥ २२ ॥

किमन्यत्र विषयादीश्वराणां यत्र पार्थः परलोकं स्म द्रष्टुम् ।

अत्यक्रामत्स तथा संमतः स्यान्न संशयो नास्ति मनुष्यकारः ॥ २३ ॥

एतान्गुणान्कर्मकृतानवेक्ष्य भावाभावौ वर्तमानावनित्यौ ।

बलिर्हि राजा पारमर्विदमानो नाऽन्यत्कालात्कारणं तत्र मेने ॥ २४ ॥

चक्षुः श्रोत्रे नासिका त्वक् च जिह्वा ज्ञानस्यैतान्यायतनानि जन्तोः ।

तानि प्रीतान्येव तृष्णाक्षयान्ते तान्यव्यथो दुःखहीनः प्रणुद्यात् ॥ २५ ॥

न त्वेव मन्ये पुरुषस्य कर्म संवर्तते सुप्रयुक्तं यथावत् ।

मातुः पितुः कर्मणाऽभिप्रसूतः संवर्धते विधिवद्भोजनेन ॥ २६ ॥

प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राजनिंदाप्रशंसे च भजंत एव ।

करते हैं? आपके सब मन्त्री सब विषयों के जाननेवाले हैं, वे आपको सदा सब कामोंमें उत्तम सम्मति देते हैं; उन्होंने यह निश्चय कर लिया है, कि पाण्डवोंको राज्य न देनेसे अवश्य कुरुकुलका नाश हो जायगा । ( १८-२१ )

यदि बिना समयमें युधिष्ठिर कौरवोंके नाशकी इच्छा करते तो यह पाप उन्हीं के शिर रहता; परन्तु उन्होंने यह सब दोष आपहीके शिर रख दिया है, इससे जगतमें आपकी बहुत निन्दा होगी । हे महाराज! अर्जुन इसी शरीरमें स्वर्गमें गया और फिर जगत्में लौट आया; इसमें प्रारब्धको छोड़कर और किसे बलवान कहेंगे? स्वर्गमें जानेहीसे सब लोग अर्जुनको मानते हैं, इससे जान पड़ता है कि प्रारब्ध बड़ा बलवान है; यही पाण्डवोंके

तेज और प्रारब्धके कर्मको देखके निश्चय होता है कि हानि और लाभ अनित्य हैं, राजा बलि अपनी प्रारब्धको किसी प्रकार नाश नहीं सके, ( अर्थात् सौ यज्ञ करनेपर भी उन्हे पातालमें जाना पड़ा, ) इससे हमको निश्चय होता है कि समय बड़ा बलवान है । ( २२-२४ )

जन्तुओंके आंख, कान, जीभ, नाक और खालही ज्ञानके स्थान हैं; इस लिये बुद्धिमानको उचित है कि लाभालाभमें समता धारणकरे और दुःखहीन होकर इन पांचों इन्द्रियोंको इनके विषयोंसे रोके, अर्थात् इनको किसी बुरे विषयोंमें न जाने दे । ऐसा जान पड़ता है कि केवल अपनाही कर्म अपनेको फलदायक नहीं होता, क्योंकि लडकईमें माता और पिताके दिये हुए अन्नसे लडका

परस्त्वेनं गर्हयतेऽपराधे प्रशंसते साधुवृत्तं तमेव ॥ २७ ॥

स त्वां गर्हे भारतानां विरोधादंतो नूनं भविताऽयं प्रजानाम् ।

नो चेदिदं तव कर्मापराधात्कुरुन्दहेतुकृष्णवर्त्मनो कक्षम् ॥ २८ ॥

त्वमेवैको जातु पुत्रस्य राजन्वशं गत्वा सर्वलोके नरेन्द्र ।

कामात्मनः श्लाघनो द्यूतकाले नागाः शमं पश्य विपाकमस्य ॥ २९ ॥

अनाप्तानां संग्रहान्त्वं नरेन्द्र तथाऽऽप्तानां निग्रहाच्चैव राजन् ।

भूमिं स्फीतां दुर्बलत्वादनन्तामशक्तस्त्वं रक्षितुं कौरवेय ॥ ३० ॥

अनुज्ञातो रथवेगावधूतः श्रान्तोऽभिपद्ये शयनं वृसिंह ।

प्रातः श्रोतारः कुरवः सभायामजातशत्रोर्वचनं समेताः ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच-अनुज्ञातोऽस्याऽऽवसथं परे हि प्रपद्यस्व शयनं सूतपुत्र ।

प्राप्तः श्रोतारः कुरवः सभायामजातशत्रोर्वचनं त्वयोक्तम् ॥ ३२ ॥ [९२१]

इति श्रीमहा० संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि धृतराष्ट्रसंजयसंवादेद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

समाप्तं चेदं संजययानपर्व ।

बढता है; वहां अपना कर्म जन्मका हेतु है । हे राजन् ! प्रिय, अप्रिय, सुख, दुःख, निन्दा और प्रशंसा मनुष्यको अपने कर्मसे प्राप्त होते हैं, जो इन्हें मानता है, उस उत्तम वृत्तिवालेकी प्रशंसा महात्मा करते हैं । यदि उससे कोई अपराध हो जाय तो उसीकी निन्दा होने लगती है; इस लिये हम आपकी निन्दा करते हैं; क्योंकि आपका किया हुआ विरोध कुरुवंशका नाश करेगा । यह विरोध आपहीके कर्मसे हुआ है, इस लिये कौरवोंको इसप्रकार भस्म करेगा ॥ २५ २८

हे राजन् ! आप अकेले ही ने अपने लोभी पुत्रके वशमें होकर जुएके समयमें शान्ति न करी । अब उसके फलको भोगिये । हे कुरुनन्दन ! हे कौरवेन्द्र !

आपने महात्माओंसे वैर और मूर्खोंसे प्रीति करी है, इस लिये और दुर्बल होनेके कारण इस समस्त पृथ्वीका राज्य आप नहीं कर सकते हैं । हे पुरुषसिंह ! मैं रथमें बैठके चलनेमें बहुत थक गया हूं, इस लिये मुझे घरमें जाकर सोनेकी आज्ञा दीजिये, प्रातःकाल जब सब कौरव सभामें बैठेंगे, तब महाराज युधिष्ठिरके वचन सुनाऊंगा । ( २९-३१ )

महाराज धृतराष्ट्र बोले ' हे सूतपुत्र हम तुम्हें घर जानेकी आज्ञा देते हैं, तुम घरमें जाकर सोओ; प्रातःकाल हम सब कौरवोंके सहित सभामें बैठकर युधिष्ठिरके वचन सुनेंगे । ( ३२ )

उद्योगपर्वमें बत्तीस अध्याय और

संजययानपर्व समाप्त । [९२१]

अथातः परं प्रजागरपर्व ।

वैशंपायन उवाच-द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः ।  
 विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहाऽऽनय मा चिरम् ॥ १ ॥  
 प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूतः क्षत्तारमब्रवीत् ।  
 ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षति ॥ २ ॥  
 एवमुक्तस्तु विदुरः प्राप्य राजनिवेशनम् ।  
 अब्रवीद्धृतराष्ट्राय द्वाःस्थं मां प्रतिवेदय ॥ ३ ॥  
 द्वाःस्थ उवाच—विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र तव शासनात् ।  
 द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम् ॥ ४ ॥  
 धृतराष्ट्र उवाच—प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुरं दीर्घदर्शिनम् ।  
 अहं हि विदुरस्याऽस्य नाऽकल्पो जातु दर्शने ॥ ५ ॥  
 द्वाःस्थ उवाच—प्रविशान्नःपुरं क्षत्तर्महाराजस्य धीमतः ।  
 नहि ते दर्शने कल्पो जातु राजाऽब्रवीद्वि माम् ॥ ६ ॥  
 वैशंपायन उवाच—ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रानिवेशनम् ।

उद्योगपर्वमें तैंतीस अध्याय ।

प्रजागर पर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! संजयके जानेके पश्चात् महाबुद्धिमान महाराज धृतराष्ट्रने द्वारपालसे कहा, हम विदुरको देखना चाहते हैं, तुम शीघ्र उनको बुला लाओ, देर मत करो । राजाके वचन सुनतेही द्वारपाल विदुरके पास गया और कहने लगा, हे महा पण्डित ! महाराजाधिराज आपको देखना चाहते हैं । ( १-२ )

द्वारपालके वचन सुन विदुर शीघ्रतासे राजाके द्वारपर पहुंचे और द्वारपालसे कहा कि महाराजसे हमारे आनेका निवेदन करो । द्वारपाल उनकी आज्ञा

सुन महाराजके पास गया और कहने लगा, हे राजेन्द्र ! आपकी आज्ञानुसार विदुर आये हैं, वह आपके चरणोंका दर्शन करना चाहते हैं, जैसी आज्ञा हो तैसा किया जाय । ( ३-४ )

महाराज बोले, तुम महा बुद्धिमान दूरदर्शी विदुरको शीघ्र हमारे पास ले आओ. क्योंकि हम उनके देखनेमें कुछ विलम्ब करना नहीं चाहते । ( ५ )

द्वारपाल विदुरके पास आकर बोले, आप बुद्धिमान महाराजकी रनिवासमें जाइये । महाराजने कहा है कि हम आपके दर्शनके लिये कुछ विलम्ब नहीं करना चाहते । ( ६ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, द्वारपालके

अब्रवीत्प्रांजलिर्वर्क्यं चिन्तयानं नराधिपम् ॥ ७ ॥  
 विदुरोऽहं महाप्राज्ञ संप्राप्तस्तव शासनात् ।  
 यदि किञ्चन कर्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम् ॥ ८ ॥  
 धृतराष्ट्र उवाच—संजयो विदुर प्राप्तो गर्हयित्वा च मां गतः ।  
 अजानशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति ॥ ९ ॥  
 तस्याऽद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया ।  
 तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत्प्रजागरम् ॥ १० ॥  
 जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपदयसि ।  
 तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तान धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥ ११ ॥  
 यतः प्राप्तः संजयः पाण्डवेश्यो न मे यथावन्मनसः प्रशान्तिः ।  
 सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि किं वक्ष्यतीत्येव मेऽद्य प्रचिन्ता ॥ १२ ॥  
 विदुर उवाच— अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम् ।  
 हतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ॥ १३ ॥  
 कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप ।  
 कच्चिच्च परवित्तेषु शृण्वन्न परितप्यसे ॥ १४ ॥

वचन सुन विदुर भीतर चले गये और चिन्ता सहित राजाको बैठे देख हाथ जोडकर बोले, हे महाराज ! मैं विदुर आपकी आज्ञासे आपके पास आया हूँ, जो मेरे योग्य काम हो, उसकी मुझे आज्ञा कीजिये । (७-८)

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! सञ्जय पाण्डवोंके पाससे लौट आया; वह मेरी निन्दा करके अभी अपने घरको गया है प्रातःकाल सभामें युधिष्ठिरके वचन सुनावेगा । मैंने अभीतक कुरुकुल श्रेष्ठ युधिष्ठिरके वचन नहीं सुने हैं; यही चिन्ता मेरे शरीरको जलाये देती है; इसीसे मुझे निद्रा भी नहीं आई; जाग-

नेसे भी हृदय जला जाता है, तुम धर्म और अर्थके जाननेवाले हो; इससे जो हमारे कल्याणकी बात हो सो कहो। जिस समयसे संजय पाण्डवोंके पाससे आया उसी समयसे मेरा मन शान्त नहीं होता । मेरी सब इट्टी नष्ट होगई है, और मुझे यह चिन्ता हो रही है कि न जाने प्रातःकाल सञ्जय क्या कहेगा ! ९-१२

विदुर बोले, बलवान शत्रुसे अभियुक्त दुर्बल, सामग्री रहित, लुटे हुए, कामी और चोरको निद्रा नहीं आती । हे महाराज ! कहिये आपने इन महा दोषोंमेंसे कोई दोष तो नहीं किया ? कहिये, आप किसी दूसरेका धन छीननेका

धृतराष्ट्र उवाच- श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः ।

अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसंमतः ॥ १५ ॥

विदुर उवाच— राजा लक्षणमंपन्नस्त्रैलोक्यस्याधिपो भवेत् ।

प्रेक्ष्यस्ते प्रेषितश्चैव धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

विपरीततरश्च त्वं भागधेये न संमतः ।

अर्चिषां प्रक्षयाच्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः ॥ २ ॥

आनृशंस्यादनुक्रोशाद्धर्मात्सत्यात्पराक्रमात् ।

गुरुत्वात्त्वयि संप्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्षते ॥ ३ ॥

दुर्योधने सौबले च कर्णे दुःशासने तथा ।

एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥ ४ ॥

आत्मज्ञानं समारंभस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।

यमर्थान्नापकर्षति स वै पंडित उच्यते ॥ ५ ॥

निषेवते प्रशस्तानि निंदितानि न सेवते ।

अनास्तिकः श्रद्धान एतत्पंडितलक्षणम् ॥ १६ ॥

लोभकर दुःख तो नहीं करते? १३-१४

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! तुम राजर्षिकुलमें बड़े बुद्धिमान और महाप्राज्ञ उत्पन्न हुए हो, इस लिये हम तुम्हारे अर्थ और कल्याणसे भरे, वचन सुनना चाहते हैं । ( १५ )

विदुर बोले, हे धृतराष्ट्र ! महाराज युधिष्ठिर सब राजलक्षणोंसे भरे और तीन लोकके स्वामी होनेके योग्य हैं, आपको उचित था कि सदा उनकी प्रार्थना करते रहें; परन्तु आपने उन्हें ही वनको निकाल दिया। आपने परम धर्मात्मा और सब शास्त्रोंके पंडित होकर भी राजलक्षणोंसे हीन, सर्वोंके द्वेष्य और अन्धे होनेके कारण राज्य नहीं पाया ।

हे राजेन्द्र ! महाराज युधिष्ठिर दयावान, साधु धर्मात्मा, सत्यवादि और महाबली होनेके कारण तथा आपको अपना पिता समझकर आपके सब अपराधोंको क्षमा कर रहे हैं। ( १-३ )

आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासनमें राज्याधिकार रखकर कैसे अपने कल्याणकी इच्छा करते हैं ? जिसको आत्मज्ञान, अच्छा उद्योग, सहिष्णुता और धर्मनिष्ठा ये गुण पुरुषार्थ करनेसे नहीं हटाते हैं उसे पंडित कहते हैं। ( ४-५ )

जो उत्तम कर्मोंको करे, नीच कर्मोंको त्यागे, ईश्वरको सत्य माने और सबमें श्रद्धा करे वही पण्डित कहा-

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ङ्हीस्नंभो मान्यमानिता ।  
 यमर्थान्नापकर्षति स वै पंडित उच्यते ॥ १७ ॥  
 यस्य कृत्यं न जानंति भ्रंशं वा भ्रंशितं परे ।  
 कृतमेवास्य जानंति स वै पंडित उच्यते ॥ १८ ॥  
 यस्य कृत्यं न विघ्नंति शीतमुष्णं भयं रतिः ।  
 समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पंडित उच्यते ॥ १९ ॥  
 यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते ।  
 कामादर्थं वृणीते यः स वै पंडित उच्यते ॥ २० ॥  
 यथाशक्ति चिकीर्षति यथाशक्ति च कुर्वते ।  
 न किञ्चिदवमन्यते नराः पंडितबुद्धयः ॥ २१ ॥  
 क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् ।  
 नासंपृष्टो व्युपयुक्ते परार्थे तत्प्रज्ञानं प्रथमं पंडितस्य ॥ २२ ॥  
 नाप्राप्यमभिवान्छंति नष्टं नेच्छंति शोचितुम् ।  
 आपत्सु च न मुह्यंति नराः पंडितबुद्धयः ॥ २३ ॥  
 निश्चित्य यः प्रक्रमते नांतर्वसति कर्मणः ।

ता है । जो क्रोध, आनन्द, आभेमान, लज्जा और अपनेको संमानयोग्य समझने की वृत्ति इनसे पुरुषार्थसे भ्रष्ट न हो वही पण्डित कहाता है । जिसके इच्छित कार्य, उपाय और सम्मतिको कोई न जान सके, सब कोई किये हुए कार्यहीको देखे वही पण्डित कहाता है । जिसके कार्य-को जाडा, गर्मी, डर, काम, धन और निर्धनता नाश न कर सके वही पण्डित कहाता है । (१६-१९)

जिसकी बुद्धि स्वभावतः चंचल होकर भी धर्म और अर्थसे भरी हो, जो काम-को छोडकर अर्थको स्वीकार करे वही पण्डित कहाता है । पण्डित लोग शक्ति-

के अनुसार कर्म करनेकी इच्छा करते हैं और करनेकी इच्छाके समान कार्य करके दिखा देते हैं, और किसीका निरादर नहीं करते । पण्डितोंकी यही पहचान है कि अर्थको शीघ्र समझ लें, विषयोंको बड़ी देरतक सुनते रहें, खूब समझकर कार्य करते रहें; वे कदापि काम और क्रोधसे कोई कार्य नहीं करते और विना पूछे दूसरेके विषयमें बोलते नहीं । (२०-२२)

पण्डित लोग प्राप्त न होने योग्य वस्तुकी इच्छा नहीं करते, नष्ट हुका सोच नहींकरते और आपत्तिमें भी नहीं घबडाते । जो निश्चय करके कार्यको

अवध्यकालो वश्यात्मा स वै पंडित उच्यते ॥ २४ ॥  
 आर्यकर्मणि रज्यंते भूतिकर्माणि कुर्वते ।  
 हितं च नाभ्यसूयंति पंडिता भरतर्षभ ॥ २५ ॥  
 न हृष्यत्यात्मसंमाने नावमानेन तप्यते ।  
 गांगो ऋद् इवाक्षोभ्यो यः स पंडित उच्यते ॥ २६ ॥  
 तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् ।  
 उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पंडित उच्यते ॥ २७ ॥  
 प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।  
 आशु ग्रंथस्य वक्ता च यः स पंडित उच्यते ॥ २८ ॥  
 श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।  
 असंभिन्नार्थमर्यादः पंडितारूपां लभेत सः ॥ २९ ॥  
 अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।  
 अर्थाश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मुह इत्युच्यते बुधैः ॥ ३० ॥  
 स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति ।

करता है, विना समाप्त किये कामको नहीं छोड़ता, जो किसी समय अपने कार्यसे नहीं रुकता; जो अपनी इन्द्रियों को अपने वशमें रखता है, वही पण्डित कहाता है। हे भरतकुलसिंह! पण्डित लोग अच्छे कर्म करते हैं, सदा ऐश्वर्य प्राप्ति का उपाय करते हैं, और अपने हितको नहीं छोड़ते। (२३-२५)

जो आदरसे प्रसन्न न हो और निरादरसे क्रोध न करे, जो गङ्गाहृदके समान गम्भीर हो वही पण्डित कहाता है! सर्वभूतोंका विनाशित्वादि तत्त्व जानने-वाला, सब कर्मोंकी रचना और उनकी साधन सामुग्री जो जानता है, वही मनुष्योंमें पण्डित कहाता है। जो कह-

नेमें न रुकै, उत्तम कथा जानता हो, तर्क वितर्क कर सकता हो जिसकी बुद्धि उसी समय अर्थोंको समझले, जो ग्रंथ देखतेही कह सके, उसे पण्डित कहते हैं। जिसकी बुद्धि विद्याके अनुसार और विद्या बुद्धिके अनुसार हो और जो किसी मर्यादाको न तोड़े, वही पण्डित पदवीको प्राप्त कर सकता है। (२६-२९)

जो विना पढ़ा, अभिमानी, और दरिद्र होकर ऊंची इच्छावाला हो, जो द्यूतादि नीच कर्मोंसे धन उत्पन्न करे, वही पंडितोंमें मूर्ख कहाता है। जो अपने प्रयोजनको छोड़ दूसरेके प्रयोजनको सिद्ध करता है, जो समर्थ होकर भी मित्रकी सहायता नहीं करता, और

मिथ्याचरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ॥ ३१ ॥

अकामान्कामयति यः कामयानान्परित्यजेत् ।

बलवंतं च यो द्वेष्टि तस्माहुर्मूढचेतसम् ॥ ३२ ॥

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च ।

कर्म चारभते दुष्टं तस्माहुर्मूढचेतसम् ॥ ३३ ॥

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते ।

चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ॥ ३४ ॥

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि न चार्चति ।

सुहृन्मित्रं न लभते तस्माहुर्मूढचेतसम् ॥ ३५ ॥

अनाहूतः प्रविशति अष्टौ बहु भाषते ।

अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥ ३६ ॥

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।

यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥ ३७ ॥

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम् ।

अलभ्यामिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते ॥ ३८ ॥

अशिष्यं शास्ति यो राजन्यश्च शून्यमुपासते ।

असमर्थ होकर सहायता करना चाहता है, वही मूर्ख कहाता है । जो प्रेम न करनेवालोंकी इच्छा करे, प्रेम करनेवालों को छोड़े, और जो बलवानसे शत्रुता करे, वही मूर्ख कहाता है । (३०-३२)

जो शत्रुको मित्र बनावे, मित्रका द्वेष कर और मित्रकी हानि करे और बुरे कर्म करे वही मूर्ख कहाता है । (३०-३३)

हे भरतकुलसिंह ! जो सेवकोंके द्वारा कार्य करे, सब में सन्देह करे और शीघ्र करने योग्य काममें देर करे, वही मूर्ख कहाता है । जो पितरोंका श्राद्ध न करे,

देवतोंकी पूजा न करे, और अच्छे मित्रसे प्रेम न करे, वही मूर्ख कहाता है । जो विना बुलाये जाय, विना बूझे बके और विश्वास न करने योग्य मनुष्यका विश्वास करे, वही नराधम मूर्ख कहाता है । जो दूसरेको दोष दे और आप वैसेही बुरे कर्म करे, और जो असमर्थ होकर ही क्रोध करे, वह महामूर्ख कहाता है । (३४-३७)

जो धर्म और अर्थसे रहित, अपने बलको न समझके न प्राप्त होने योग्य वस्तुकी इच्छा कुछ भी प्रयत्न न करके करे वह महामूर्ख कहाता है । जो अयो-



कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३९ ॥

अर्थ महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा ।

विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पंडित उच्यते ॥ ४० ॥

एकः संपन्नमश्नानि वस्ते वासश्च शोभनम् ।

योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ॥ ४१ ॥

एकः पापानि कुरुते फलं भुंक्ते महाजनः ।

भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥ ४२ ॥

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुमुक्तो धनुषमता ।

बुद्धिर्बुद्धिमनोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम् ॥ ४३ ॥

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु ।

पंच जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव ॥ ४४ ॥

एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते ।

सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मंत्रविह्वलः ॥ ४५ ॥

एकः स्वादु न भुंजीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् ।

ग्य शिष्यको पढावे, जो राजाके विना रनिवासमें जाय और जो कंजूसकी सेवा करै वह महामूर्ख कहाता है । जो बहुत धन, बहुत विद्या या ऐश्वर्यको प्राप्त करके अभिमानरहित होकर धूमता है, वही पण्डित कहाता है । (३८-४०)

हे राजन् ! जो सेवकोंको विना दिये भोजन कर ले, और अकेला ही सुन्दर वस्त्र पहन ले उसके समान दयारहित और कौन होगा ? अकेलाही पाप करता है, अकेलाही फल भोगता है, उसके सङ्गी सब छूट जाते हैं और कर्ताही दोषमें फँसता है । धनुषधारीका बाण एकहीको मारता है, कभी नहीं भी मारता है, परन्तु बुद्धिमानकी बुद्धि राजाके सहि

त राज्यका नाश कर देती है । (४१-४३)

हे राजन् ? आप अपनी एक बुद्धिसे मित्र और शत्रुओंका निश्चय कीजिये, साम दान, दण्ड और भेद इन चार यत्नोंमें मित्र उदासीन और शत्रुओंको जीतकर पंच इंद्रियोंको आधीनकर सन्धि, विग्रह, यान, आसन द्वेष और आश्रय इन राज्यके छः अङ्गोंको जानकर स्त्री, जुआ, आखेट, मद्यमान, कठोर वचन, महादण्ड, और प्रयोजन दूषण इन सात बुरे कामोंको छोड़कर सुखी होइये । धार विष एकहीका नाश करता है, शस्त्रसे एकही मनुष्य मरता है, परन्तु राजाकी गुप्त बात प्रगट होने से राज्यके समेत राजाका नाश करती है । एकला स्वादिष्ट भोजन न करे,

एको न गच्छेद्धवानं नैकः सुप्रेषु जागृयात् ॥ ४६ ॥

एकमेवाद्वितीयं तद्यद्राजन्नावबुध्यसे ।

सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥ ४७ ॥

एकः क्षमाचतां दोषां द्वितीयो नोपपद्यते ।

यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ ४८ ॥

सोऽस्य दोषो न संतप्यः क्षमा हि परमं बलम् ।

क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ॥ ४९ ॥

क्षमा वशीकृतिलोके क्षमया किं न साध्यते ।

शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ॥ ५० ॥

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ।

अक्षमावान्परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत् ॥ ५१ ॥

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।

विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥ ५२ ॥

द्वाविधौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव ।

राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥ ५३ ॥

एकला विषयोंको न विचारे, एकला मार्गमें न चले, और सबके सोने पर एकला न जागता रहै । ( ४४-४६ )

हे राजेन्द्र ? जैसे समुद्रसे पार करने वाली नौका है, ऐसे संसार से पार कर स्वर्गको देनेवाला एक सत्य ही है अन्य नहीं; परंतु आप उसको नहीं जानते । क्षमावान मनुष्यको सब कोई असमर्थ जान लेते हैं, यही क्षमावानमें एक दोष है, दूसरा नहीं । इस दोषसे क्षमावानका निरादर नहीं करना चाहिये, क्योंकि क्षमाही परम बल है, क्षमा असमर्थोंका गुण और समर्थ मनुष्योंका भूषण है । क्षमासे सबको वशमें

कर सकता है, ऐसा कर्म कोई नहीं जो क्षमासे न सिद्ध हो सके, जिसके हाथ में शान्ति रूपी खड्ग है, उसको दुष्ट मनुष्य क्या कर सकता है ? ( ४५-५० )

जहां तिनका नहीं है; वहां गिरी अग्नि आपही शान्त हो जाती है । क्रोधी मनुष्य अपने दोषोंसे आपही दुःखों में पड़ता है । अकेला धर्मही कल्याणदायक है, अकेला क्षमाही परम शान्ति है, अकेली विद्याही परम सन्तोष है और किसीकी हिंसा न करनाही परम सुख है । विरोध न करनेवाले राजाको और परदेश न जानेवाले ब्राह्मणको पृथ्वी इस प्रकार खा जाती है, जैसे

द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिँल्लोके विरोचते ।  
 अब्रुवन्पुरुषं किञ्चिदसतोऽनर्चयंस्तथा ॥ ५४ ॥  
 द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्ययकारिणौ ।  
 स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः ॥ ५५ ॥  
 द्वाविमौ कंटकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ ।  
 यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥ ५६ ॥  
 द्वावेव न विराजेते विपरीतेन कर्मणा ।  
 गृहस्थश्च निरारंभः कार्यवांचैव भिक्षुकः ॥ ५७ ॥  
 द्वाविमौ पुरुषौ राजन्स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।  
 प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥ ५८ ॥  
 न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।  
 अपात्रे प्रतिपात्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥ ५९ ॥  
 द्वावंभसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम् ।  
 धनवंतमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥ ६० ॥  
 द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ ।  
 परिव्राडयोगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ ६१ ॥

बिलमें निवास करनेवालोंको सर्प! ५१-५३

मनुष्य मीठा वाणी और दुष्टोंसे प्रेम न करना इनही दो कर्मोंके करनेसे इस लोक में प्रतिष्ठाको प्राप्त करता है । हे पुरुषव्याघ्र ! चाहे हुए मनुष्यको चाहनेवाली स्त्री, और पूजा किये हुए की पूजा करनेवाला मनुष्य यह दोनों बिना विचारे कर्म करनेवाले मूर्ख हैं । जो दरिद्र होकर प्राप्त न होने योग्य वस्तुकी इच्छा करे, और जो असमर्थ होकर क्रोध करे, ये दोनों शरीरनाशक तेज कांटे हैं । ५५-५६

जो गृहस्थ होकर कुछ कर्म न करे और जो संन्यासी होकर काम करे, इन

दोनों विरुद्ध कर्मोंको करनेवालोंकी प्रतिष्ठा नहीं होती । हे राजेन्द्र ! जो समर्थ होकर क्षमा करे और दरिद्र होकर दान करे, ये दोनों स्वर्गके ऊपर रहते हैं । न्यायसे आये हुए धनका दोही प्रकारसे नाश होता है, अर्थात् अयोग्यको देने और योग्यको न देनेसे । जो धनी होकर दान न करे और दरिद्र होकर तप न करे, इन दोनोंको गलेमें भारी शिला बंधवाकर पानीमें डुबा देना चाहिये । हे पुरुषव्याघ्र ! जो संन्यासी योग करे, और जो क्षत्री युद्धमें मरे, ये दोनों सूर्यमण्डल को भेदकर स्वर्गको जाते हैं । (५७-६१)

त्रयोपाया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ ।  
 कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः ॥ ६२ ॥  
 त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ।  
 नियोजयेद्यथावत्तां स्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥ ६३ ॥  
 तत्र एवाधना राजन्भार्या दासस्तथा सुतः ।  
 यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥ ६४ ॥  
 हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम् ।  
 सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥ ६५ ॥  
 त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।  
 कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ ६६ ॥  
 वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च भारत ।  
 शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात्त्रीणि चैकं च तत्समम् ॥ ६७ ॥  
 भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम् ।  
 त्रीनेताञ्छरणं प्राप्तान्विषमेषु न संत्यजेत् ॥ ६८ ॥

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात् ।  
 अल्पप्रज्ञैः सह संघं न कुर्यान्न दीर्घसूत्रैरभसैश्चारणैश्च ॥ ६९ ॥

हे राजन्! उत्तम, मध्यम और हीन  
 येही वेद जाननेवाले पण्डितोंने तीन प्रका-  
 रके उपाय कहे हैं। उत्तम मध्यम और  
 अधम यही तीन प्रकारके मनुष्य होते  
 हैं, इनको इनकी शक्तिके अनुसार उत्तम  
 मध्यम और अधम काम देने चाहियें।  
 हे राजन्! स्त्री, दास और पुत्र ये तीनों  
 निर्धन कहाते हैं, ये जो वस्तु प्राप्त करें  
 वह सब उनके स्वामीकी है। दूसरेका  
 धन छीन लेना, दूसरोंकी स्त्रियोंसे अधर्म  
 करना, अपने मित्रोंको छोड़ देना, इन  
 ही तीन दोषोंसे मनुष्योंका नाश होता  
 है। (६२-६५)

काम क्रोध और लोभ येही तीनों  
 नरकके द्वार हैं, और इन्हीं तीनोंसे म-  
 नुष्यका सर्वनाश होता है, इस लिये इन  
 तीनोंको छोड़ देना चाहिये। हे भारत!  
 वरदान पाना, राज्य पाना, पुत्रका जन्म  
 होना और शत्रुको दुःखसे छुड़ाना; यह  
 चारों सुख शरावरही हैं। भक्त, सेवक  
 और मैं आपहीका हूं ऐसा कहते हुए  
 मनुष्यको महादुःखके समय मेंभी नहीं  
 छोड़ना चाहिये। (६६-६८)

पण्डित और बलवान राजाने इन  
 चार त्याग करने योग्य बातोंको जानना  
 चाहिये, मूर्ख, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले,

चत्वारि ते तात गृहे वसंतु श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्य धर्मे ।  
 वृद्धो जातिरवसन्नः कुलीनः सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या ॥ ७० ॥  
 चत्वार्याह महाराज साचस्कानि बृहस्पतिः ।  
 पृच्छते त्रिदशेन्द्राय तानीमानि निबोध मे ॥ ७१ ॥  
 देवतानां च संकल्पमनुभावं च धीमताम् ।  
 विनयं कृतविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम् ॥ ७२ ॥  
 चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि भयं प्रयच्छंत्यथकूलानि ।  
 मानाग्निहोत्रश्रुतमानमौनं मानेनाधीतश्रुत मानयज्ञः ॥ ७३ ॥  
 पंचाग्रयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः ।  
 पिता माताऽग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥ ७४ ॥  
 पंचैव पूजयन्लोके यशः प्राप्नोति केवलम् ।  
 देवान्पितृन्मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपंचमान् ॥ ७५ ॥  
 पंच त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि ।  
 मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः ॥ ७६ ॥  
 पंचेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकछिद्रियम् ।

शीघ्र होनेवाले कार्यको देरसे करनेवाले  
 और स्तुति करनेवालोंसे कभी सम्मति  
 न करे । हे राजन् ! ये चारों आप  
 सरीखे सम्पन्न गृहस्थोंके घरमें सदा बसें ।  
 ज्ञानवृद्ध और बूढ़े जातिवाले, अभिमान  
 रहित अवसन्न कुलीन, निःसन्तान बहिन  
 और दरिद्र मित्र इन चारोंके रहनेसे  
 धर्म होता है । ( ६९—७३ )

हे राजेन्द्र । देवताओंके मनकी इच्छा  
 बुद्धिमानोंकी शक्ति, पण्डितोंकी विनय  
 करनी और पापियोंका नाश करना इन  
 चार कर्मोंको वृस्पतिने इन्द्रसे कहा था,  
 इनके करनेसे उसी समय फल मिलता  
 है । अग्निहोत्र, मौन, पढ़ना और यज्ञ

करना ये चारों कर्म सुखदायक हैं; पर-  
 न्तु अच्छी प्रकार न करनेसे इन चारों-  
 हीसे दुःख होता है । हे भरतकुलसिंह !  
 पिता, माता, अग्नि, अपनी आत्मा और  
 गुरु ये पांच अग्नि प्रसिद्ध हैं, इन पाचों  
 अग्नियोंकी सदाही मनुष्यको सेवा करनी  
 उचित है । ( ७१—७४ )

देवता, पितर, मनुष्य, भिक्षु और  
 अतिथि इन पाचोंकी पूजा करनेसे मनु-  
 ष्यको लोकमें यश मिलता है । मित्र,  
 शत्रु, मध्यस्थ, गुरु और सेवक, ये पाचों  
 जहां तुम जाओगे तहां तुम्हारे सङ्गही  
 जायेंगे । मनुष्यकी पाचों इन्द्रियोंमें छेद  
 हो तो उस छेदसे मनुष्यकी बुद्धि इस

ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा हनेः पात्रादिवोदकम् ॥ ७७ ॥

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।

निद्रा तंद्री भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥ ७८ ॥

षडिमान्पुरुषो जह्याद्विज्ञां नावमिवार्णवे ।

अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् ॥ ७९ ॥

अरक्षितारं राजानं भार्या चाप्रियवादिनीम् ।

ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम् ॥ ८० ॥

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन ।

सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ॥ ८१ ॥

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।

वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥ ८२ ॥

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति ।

न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः ॥ ८३ ॥

षडिमे षट्सु जीवंति सप्तमो नोपलभ्यते ।

चौराः प्रमत्ते जीवंति व्याधितेषु चिकित्सकाः ॥ ८४ ॥

प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः ।

प्रकार नष्ट होती है, जैसे फटी हुई मसक से जल । नींद, जमुहाई, डर, क्रोध, आलस्य, और दीर्घसूत्रता अर्थात् ढीला पन ये छः दोष हैं, इन्हें सदाही कल्याण की इच्छा करने वाले मनुष्यको छोड़ना चाहिये । ( ७९-७८ )

न कहनेवाले गुरु, मूर्ख पुरोहित, न रक्षा करनेवाले राजा, कडवी बात कहनेवाली स्त्री, गांवकी इच्छावाले गोपाल और वनकी इच्छा करनेवाले नाईको मनुष्य इस प्रकार छोड़ दे, जैसे समुद्रमें चलनेवाली टूटी नावको छोड़ देते हैं। सत्य, दान, निरालस्य, किसीका द्वेष

न करना, क्षमा और धारणा इन छः गुणोंको मनुष्य कभी न छोड़े। धनप्राप्ति, सदा रोगरहित रहना, प्यारी बात करनेवाली प्यारी स्त्री, वशमें रहनेवाला पुत्र और धन देनेवाली विद्या येही इस लोकके छः सुख हैं । ( ७९-८२ )

जो मनमें स्थित काम, क्रोध, शोक, मोह, मद, और मान इन छःहोंको सदा अपने वशमें रखता है उस जितेन्द्रियको सदा सुख होते हैं और वह कभी पापोंको नहीं करता। हे राजेन्द्र ! चोर असावधानोंसे, वैद्य रोगियोंसे, स्त्री कामियोंसे, पुरोहित यजमानोंसे, राजा कलह करने-

राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पंडिताः ॥ ८५ ॥

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्

गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसंगतिः ॥ ८६ ॥

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम् ।

आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम् ॥ ८७ ॥

नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम् ।

नावं निस्तीर्णकांतारा आतुराश्च चिकित्सकम् ॥ ८८ ॥

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह संप्रयोगः ।

स्वप्रत्ययावृत्तिरभीतवासः षट् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥ ८९ ॥

इर्षुर्घृणी न संतुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः ।

परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः ॥ ९० ॥

सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यमनोदयाः ।

प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः ॥ ९१ ॥

स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पंचमम् ।

महच्च दंडपारुष्यमर्थदूषणमेव च ॥ ९२ ॥

अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः ।

ब्राह्मणान्प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ॥ ९३ ॥

वालोंसे और पण्डित मूर्खोंसे जीविका पाते हैं। गौ, सेवा, खेती, स्त्री, विद्या, और शूद्रोंकी सङ्गति ये छहों थोड़ी देर भी ध्यान नहीं देनेसे नष्ट हो जाते हैं। ( ८३-८६ )

पढ़े हुए शिष्य गुरुको, विवाह किये हुए पुत्र माताको, कामसे रहित मनुष्य स्त्रीको, काम सिद्ध हुए मनुष्य नावको और निरोगी वैद्यको, ये छहों मनुष्य उपकारियोंको छोड़ देते हैं। हे राजन् ! रोगरहित रहना, किसीका ऋणी न होना, परदेशमें न जाना, पण्डितोंका

सङ्ग करना, अपनी वृत्तिसे जीविका करनी और निर्मय होकर रहना, इस लोकके ये ही छः सुख हैं। दूसरेके सुखके डाह करनेवाला, सदा दयावान, असन्तोषी, क्रोधी, सदा शङ्का करनेवाला और जो पराये भाग्यसे जीते हैं, ये छहों सदा दुःखी रहते हैं। ( ८७-९० )

स्त्री, जुआ, आखेट, मद्यपान, कठोर वचन, बहुत दण्ड देना और प्रयोजनोंका नाश करना इन आठ दोषोंको राजाको सदा छोड़ना चाहिये, इनसे बहुत दुःख होते हैं, और वंश सहित

ब्राह्मणस्त्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति ।  
 रमते निंदया चैषां प्रशंसां नाभिनंदति ॥ ९४ ॥  
 नैनान्स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति ।  
 एतान्दोषान्नरः प्राज्ञो बुध्येद् बुध्वा विसर्जयेत् ॥ ९५ ॥  
 अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत ।  
 वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव स्वसुखान्यपि ॥ ९६ ॥  
 समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः ।  
 पुत्रेण च परिष्वंगः सन्निपातश्च मैथुने ॥ ९७ ॥  
 समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः ।  
 अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि ॥ ९८ ॥  
 अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।  
 पराक्रमश्चावहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥ ९९ ॥  
 नवद्वारमिदं वेदम त्रिस्थूणं पंचसाक्षिकम् ।  
 क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः ॥ १०० ॥

राजाका नाशभी हो जाता है । ब्राह्म-  
 णोंका अनिष्ट चिन्तन करना, ब्राह्मणोंका  
 वैर, ब्राह्मणोंका धन लेना, ब्राह्मणोंके  
 नाशकी इच्छा करना, ब्राह्मणोंकी निन्दा  
 करनी, ब्राह्मणोंकी प्रशंसा न करनी,  
 यज्ञादिकोंमें ब्राह्मणोंको न बुलाना और  
 भिक्षाभोजन ब्राह्मणोंका निरादर करना,  
 नाश होनेवाले मनुष्यको पहले येही दोष  
 होते हैं, बुद्धिमानको उचित है, कि इन  
 आठोंको जान कर छोड़ दे । (९१-९५)

मित्रोंके साथ समागम, बहुत धनका  
 लाभ, पुत्रका आलिंगन, मैथुनमें स्त्री  
 पुरुषोंके एककालमें वीर्य पात, समयपर  
 मीठे वचन कहना, सजातीयोंमें श्रेष्ठत्व,  
 जिस वस्तुकी इच्छा हो उसको प्राप्त

करना और सभामें पूजा पाना, ये आठ  
 नवनीतके समान पुरुषकी प्रसन्नताके  
 हेतु हैं । ये आठ गुण मनुष्यको प्रका-  
 शित करते हैं, बुद्धि, उत्तम कुलमें जन्म,  
 इन्द्री जीतना, पराक्रम, विद्या, थोड़ा  
 वचन कहना, शक्तिके अनुसार दान  
 और उपकार करनेवालेको मानना । इस  
 शरीर-घरमें नाक, कान, आंख, जीभ,  
 चर्म, अहङ्कार बुद्धि, मन और स्थूल  
 शरीर येही नवद्वार हैं । अविद्या, काम,  
 और कर्म येही तीन खम्भे हैं । शब्द,  
 स्पर्श, रस, गन्ध और रूप येही पांचों  
 साक्षी हैं; जीव इसमें रहनेवाला है, जो  
 विद्वान् इसको जानता है, वही अच्छा  
 पाण्डित है । (९६-१००)



दश धर्म न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान् ।

मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥ १०१ ॥

त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।

तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥ १०२ ॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

पुत्रार्थमसुरेन्द्रेण गीनं चैव सुधन्वना ॥ १०३ ॥

यः काममन्यु प्रजहाति राजा पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च ।

विशेषविच्छ्रुतवानिक्षप्रकारी तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम् ॥ १०४ ॥

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम् ।

जानाति मात्रां च तथा क्षमां च तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा ॥ १०५ ॥

सुदुर्बलं नावजानाति कंचिद्युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम् ।

न विग्रहं रोचयते बलस्थैः काले च यो विक्रमते स धीरः ॥ १०६ ॥

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचिद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः ।

दुःखं च काले सहते महात्मा धुरंधरस्तस्य जिताः सपत्नाः ॥ १०७ ॥

हे धृतराष्ट्र ! मत्त, मद्य आदि पीने-  
वाला, अनेक कार्य करनेसे असावधान,  
पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, शीघ्रता  
करनेवाला, लोभी, डरपोक और कामी  
ये दस मनुष्य धर्मको नहीं जानते, इस  
लिये बुद्धिमान पण्डित इनकी सङ्गति  
नहीं करते हैं। इसी स्थानपर राक्षसराज  
सुधन्वाने जो कुछ पुत्रके निमित्त कहा  
सो कहने योग्य है। जो राजा काम और  
क्रोधको छोड़कर योग्य मनुष्यको धन  
देता है, जो सब विषयोंके विशेष अर्थको  
जानता है, और जो विद्यावान् है तथा  
अपने कामको शीघ्र करता है, उसको सब  
जगत प्रमाण मानता है। (१०१—१०४)

जो मनुष्योंको अपनेमें विश्वास रखने

वाले करनेको जानता है, जिनके दोष  
जाननेमें आते हैं उनको दण्ड देता है, जो  
अपराधके अनुसार दण्डके प्रमाण और  
क्षमा करना जानता है, उसी राजाको सम-  
स्त लक्ष्मी मिलती है। जो किसी दुर्बलका  
अभय नहीं करता, जो बुद्धि और छि-  
द्रान्वेषणके, सहित शत्रुकी भी सेवा करता  
है; जो बलवानसे वर नहीं करता, और जो  
समय पर अपना बल दिखाना है, वही  
पुरुष धीर कहाता है। जो संकटको प्राप्त  
होकर नहीं डरता, जो सावधान होकर  
उद्योग करता है, जो महात्मा समयपर  
दुःख सहता है; वही महात्मा कठिन  
कार्योंको भी सिद्ध कर सकता है और वही  
शत्रुओंको जीत सकता है। (१०५-१०७)

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः पापैः संधिं परदाराभिमर्शम् ।  
 दंभं सैन्यं पैशुनं मद्यपानं न सेवते यश्च सुखी सदैव ॥ १०८ ॥  
 न संरंभेणारभते त्रिवर्गमाकारितः शंसति तत्त्वमेव ।  
 न मित्रार्थे रोचयते विवादं नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः ॥ १०९ ॥  
 न योऽभ्यसूयत्यनुकंपते च न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति ।  
 नात्याह किञ्चित्क्षमते विवादं सर्वत्र तादृग्लभते प्रशंसाम् ॥ ११० ॥  
 यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं न पौरुषेणापि विकत्यतेऽन्यान् ।  
 न सूर्चिष्ठतः कटुकान्याह किञ्चित्प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि ॥ १११ ॥  
 न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति ।  
 न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥ ११२ ॥  
 न खे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः ।  
 दत्त्वा न पश्चात्कुरुते न तापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥ ११३ ॥  
 देशाचारान्समयान्जातिधर्मान्बुभूषते यः स परावरजः ।

जो निरर्थक मनुष्योंको घरसे नहीं निकालता, न पापियोंसे सान्धि करता, दूसरेकी स्त्रियोंसे अधर्म नहीं करता, छल, चोरी, चुगली और मद्य आदिकी सेवा नहीं करता, वह सदा सुखी रहता है। जो क्रोधसे धर्म, और कामको नहीं करता और पूछनेसे केवल तत्त्व ही कहता है, जो मित्रोंके संग विवाद नहीं करता और जो निरादर पाकर दुःखित नहीं होता, वही पांडित कहाता है। जो किसीकी उन्नतिसे डाह नहीं करता, जो कृपा करता है, जो दुर्बल होकर दूसरेके साथ विरोध नहीं करता, जो बहुत नहीं बोलता और जो विवादमें क्षमा करता है, जगत्में उसी मनुष्यकी प्रशंसा होती है। (१०८-११०)

जो कभी दुष्ट मनुष्यके वेषको न धारण करे, जो अपने पराक्रमके भरोंसे अन्योको तुच्छ न करे, किञ्चित् क्रोधमें कड़ेव वचन न करे, ऐसा मनुष्य सदा सबका प्यरा बना रहता है। जो कभी शान्त हुए वैर को न बढ़ावे, कभी अभिमान न करे, कभी नीचा न हो, हम कुछ नहीं हैं, ऐसा समझकर बुरे काम न करे, ऐसे मनुष्यको आर्य लोगभी आर्य कहते हैं। जो अपने सुखसे प्रसन्न नहीं होता, दूसरेके दुःखसे भी प्रसन्न नहीं होता, जो देकर पछताता नहीं उसी महात्माको आर्य लोग आर्य कहते हैं। (१११-११३)

जो देश के आचार, भाषाभेद और जातिके धर्मोंको जानता है, उनमें उत्त-

स यत्र तत्राभिगतः सदैव महाजनस्याधिपत्यं करोति ॥ ११४ ॥  
 दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम् ।  
 मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं यः प्रज्ञावान्वर्जयेत्स प्रधानः ॥ ११५ ॥  
 दानं होमं दैवतं मंगलानि प्रायश्चित्तान्विविधाँल्लोकवादान् ।  
 एतानि यः कुरुते नैत्यकानि तस्योत्थानं देवताराधयन्ति ॥ ११६ ॥  
 समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः समैः सख्यं व्यवहारं कथां च ।  
 गुणैर्विशिष्टाँश्च पुरो दधाति विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः ॥ ११७ ॥  
 मितं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा ।  
 ददात्यमित्रेष्वपि याचितः संस्तमात्मवन्तं प्रजहात्यनर्थः ॥ ११८ ॥  
 चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किञ्चित् ।  
 मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च नात्पोऽप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः ॥ ११९ ॥  
 यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः ।  
 अतीव स जायते ज्ञातिमध्ये महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः ॥ १२० ॥  
 य आत्मनाऽपत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत ।

माधम भेदभी जान सकता है; वह जहाँ जाकर बैठता है, वहीं महाजनों का स्वामी बनता है। दम्भ, भ्रम, मत्सर पापका कर्म, राजा का द्वेष, पिशुनता, बहुतों के साथ वैर, मतवाले और पागल से विवाद, इन सब कर्मों को पण्डित को छोड़ देना चाहिये। दान, होम, देवताओं की पूजा, मंगल के कार्य, प्रायश्चित्त, अनेक प्रकार के लोकविवाद, इन सब कर्मों को जो मनुष्य नित्य करता है, उसकी देवता भी प्रशंसा करते हैं। (११४-११६)

जो अपने तुल्य मनुष्य से विवाह प्रीति और वार्त्तालाप करता है, वही बुद्धिमान् कहाता है, जो अपने से अधिक गुणवाले पण्डित को सब कामों में अगाड़ी

रखता है, उसकी बुद्धि प्रशंसा करने योग्य है। जो अपने आश्रय में रहने वालों को बाँटकर प्रमाण से भोजन करता है, बहुत काम करने पर भी थोड़ा सोता है, और माँगने पर शत्रुओं को भी देता है, उसका सदा कल्याण होता है। जिसके मंत्र गुप्त रहने से और कार्य के अच्छी तरह से चलने से जिसके इच्छित कार्य सफल होते हैं और किसी के साथ कोई विरोध नहीं होता वह मनुष्य कभी अनर्थ में नहीं पड़ता। (११७—११९)

जो सदा सबका कल्याण चाहता है सत्य बोलता है, कोमलता से रहता है, दूसरों का सन्मान करता है, जिसके सब भाव शुद्ध हैं, वह अपनी जाति में बैठ-

अनंततेजाः सुमनाः समाहितः स तेजसा सूर्य इवावभासते ॥१२१॥

वने जाताः शापदग्धस्य राज्ञः पांडोः पुत्राः पंच पंचेद्रकल्पाः ।

त्वयैव बाला वर्धिताः शिक्षिताश्च तवादेशं पालयंत्यां विकेय ॥ १२२ ॥

प्रदायैषामुचितं तात राज्यं सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः ।

न देवानां नापि च मानुषाणां भविष्यसि त्वं तर्कणीयो नरेन्द्र ॥ १२३ ॥

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—जाग्रतो दह्यमानस्य यत्कार्यमनुपश्यसि ।

तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तान् धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥ १ ॥

त्वं मां यथावद्विदुर प्रशाधि प्रज्ञापूर्वं सर्वमजातशत्रोः ।

यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्त्व श्रेयस्करं ब्रूहि तद्वै कुरूणाम् ॥ २ ॥

पापाशंकी पापमेवानुपश्यन्पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाहम् ।

कवे तन्मे ब्रूहि सर्वं यथावन्मनीषितं सर्वमजातशत्रोः ॥ ३ ॥

विदुर उवाच—शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्ट्यं वा यदि वा प्रियम् ।

कर ऐसा प्रकाशित होता है, जैसे रत्नोंमें महामणि । जो अपने कर्मोंको देखकर आपही रुजित होता है, वही मनुष्य सब लोकोंका गुरु होने योग्य है । वही मनुष्य महा तेजस्वी अच्छे मनवाला सावधान होकर सूर्यके समान प्रकाशित होता है । हे राजन् ! शापसे जले हुए राजा पाण्डुने वनमें इन्द्रके समान पांच पुत्रोंको उत्पन्न किया, उनको आपहीने पाला और पढाया है, इस लिये वे भी आपको अपने पिताके समान जानकर आपकी आज्ञा मानते हैं । हे नरेश ! आप पाण्डवों का राज्य उनको देकर पुत्रोंके सहित आनन्दसे सुख भोगिये । पाण्डवोंको राज्य देनेसे देवता और मनुष्यभी आपको अधर्मी नहीं कह

सकेंगे । ( १२०-१२३ ) [ १०४४ ]

उद्योगपर्वमें तैत्तिरीय अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें चौतिस अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे प्यारे विदुर ! तुम धर्म और अर्थको जाननेवाले हो, इस लिये समय योग्य जो काम हो सो मुझसे कहो, जाग्रत् रहे हुए मेरा शरीर इस चिन्तासे भस्म हुआ जाता है । हे महा पराक्रमी विदुर ! तुम जो युधिष्ठिरके हितकर और कौरवोंके कल्याणका कार्य समझो, सो बुद्धिसे निश्चयकर जैसा हो तैसा हमसे कहो । हे विदुर ! मैं महापापी और सदा पापकी शङ्का रखता हूं, इस समय व्याकुल होकर तुमसे पूछता हूं, तुम युधिष्ठिरकी बुद्धिको विचार कर जो उचित हो सो कहो । ( १-२ )

अपृष्टस्तस्य तद्ब्रूयाद्यस्य नेच्छेत्पराभवम् ॥ ४ ॥  
 तस्माद्ब्रूयामि ते राजन् हितं यत्स्यात् कुरुन्प्रति ।  
 वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥ ५ ॥  
 मिथ्योपेतानि कर्माणि सिद्धयेयुर्यानि भारत ।  
 अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥ ६ ॥  
 तथैव योगविहितं यत्तु कर्म न सिद्धयति ।  
 उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः ॥ ७ ॥  
 अनुबन्धानपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु ।  
 संप्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत् ॥ ८ ॥  
 अनुबन्धं च संप्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम् ।  
 उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा ॥ ९ ॥  
 यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये ।  
 कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ॥ १० ॥  
 यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति ।  
 युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमाधिगच्छति ॥ ११ ॥  
 न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसांप्रतम् ।

विदुर बोले, मनुष्यको उचित है कि जिसका कल्याण चाहे, उससे शुभ, अशुभ, प्रिय और अप्रिय सब प्रकारके वचन कोहे, इस लिये मैं धर्म और यश-से भरे कौरवोंके कल्याण करनेवाले वचन आपसे कहता हूँ, आप सुनिये । हे भारत! जो मिथ्या ब्रूतादि करनेसे अथवा बुरे उपाय सिद्ध हो जाय उसके करनेकी इच्छा मनुष्यको कभी न करनी चाहिये । इसी प्रकार जो कर्म अनेक उपाय और यत्न करनेपर भी सिद्ध न हो उनमें भी मनको नहीं लगाना चाहिये । ( ४-७ )

जिन कामोंको करनेसे प्रयोजन सिद्ध

होते हैं, उनको पहले निश्चय करके सोच ले, काम करनेमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिये, कामका प्रयोजन, फल और अपनी शक्तिको देखकर काम करना चाहिये । अथवा न करना चाहिये जो मूर्ख वृद्धि और नाशके प्रमाणको नहीं जानता; जो धन, देश और दण्डको नहीं सोचता वह राजा होने योग्य नहीं है । जो कहे हुए विषयोंको भली भाँति समझता है, और जो धर्म और अर्थको जानता है, वही बुद्धिमान राजा होने योग्य है । ( ८-११ )

इस समय आपको राज्य पाकर अनु-

श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् ॥ १२ ॥  
 भक्ष्योत्तममतिच्छन्नं मस्त्यो बडिशमायसम् ।  
 लोभाभिपाती ग्रसते नानुबंधमवेक्षते ॥ १३ ॥  
 यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।  
 हितं च परिणामे यत्तदायं भूतिमिच्छता ॥ १४ ॥  
 वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः ।  
 स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥ १५ ॥  
 यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम् ।  
 फलाद्रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥ १६ ॥  
 यथा मधुसमादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।  
 तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविर्हिसया ॥ १७ ॥  
 पुष्पं पुष्पं विचिन्वीति मूलच्छेदं न कारयेत् ।  
 मालाकार इवारा मे न यथांगारकारकः ॥ १८ ॥  
 किन्तु मे स्यादिदं कृत्वा किन्तु मे स्यादकुर्वतः ।

चित व्यवहार नहीं करना चाहिये, क्यों-  
 कि अनीति राज्यको इस प्रकार नाश  
 कर देती है, जैसे सुन्दर रूपको बुढ़ापा ।  
 निश्चय न करके उत्तम खाने योग्य वस्तु-  
 में लिपटे हुए कांटेको खाकर मछली  
 अपना प्राण दे देती है, इसी प्रकार जो  
 विना विचारे कार्य करता है, उसका  
 नाश हो जाता है । जो खाने योग्य वस्तु  
 है, बुद्धिमान उसे ही खाय, परन्तु वह खाने  
 योग्य वस्तु पचन हो और अन्तमें सुख-  
 दायक हो तभी खानी चाहिये । १२-१४

जो मूल वृक्षसे विना पके फल तोड़  
 लेता है, उसे रस नहीं मिलता, और  
 बीजभी नाश होजाता है । जो समयपर  
 पके हुए फलको तोड़ता है, उसे फलका

रस प्राप्त होता है और बीज भी मिलता  
 है । उस बीजसे पुनः वृक्ष होता है और  
 वृक्षमें पुनः फल होता है । जैसे भौरा  
 फूलकी रक्षा करता है, पीछे उसका रस  
 पीता है, उसी प्रकार मनुष्यको भी  
 काम करना चाहिये । जैसे भौरा फूल-  
 फलका रस लेता है, और किसी वृक्षकी  
 जड़ नहीं काटता, ऐसाही मनुष्यको भी  
 करना चाहिये । जैसे माली वृक्षसे फूल  
 ले लेता है और वृक्षको काटता नहीं,  
 ऐसेही मनुष्यको काम करना चाहिये ।  
 परन्तु वृक्षको जड़से काटकर इन्धनरूप-  
 में जलानेवालेके समान करना उचित  
 नहीं । इस कामके करनेसे हमें क्या होगा,  
 और न करनेसे क्या होगा, यह सब

इति कर्माणि संचित्य कुर्याद्वा पुरुषो न वा ॥ १९ ॥  
 अनारभ्या भवंत्यर्थाः के चिन्नित्यं तथाऽगताः ।  
 कृतः पुरुषकारो हि भवेद्येषु निरर्थकः ॥ २० ॥  
 प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।  
 न तं भर्तारमिच्छन्ति षंडं पतिमिव स्त्रियः ॥ २१ ॥  
 कांश्चिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान् ।  
 क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान् ॥ २२ ॥  
 ऋजु पठयति यः सर्वं चक्षुषाऽनुपिबन्धिव ।  
 आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः ॥ २३ ॥  
 सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्यादुरारुहः ।  
 अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित् ॥ २४ ॥  
 चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।  
 प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥ २५ ॥  
 यस्मात्प्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याघ्रान्मृगा इव ।  
 सागरांतामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते ॥ २६ ॥  
 पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान्स्वेन कर्मणा ।

विचारकर मनुष्यको काम करना चाहिये  
 अथवा न करना चाहिये । (१५-१९)

बहुतसे काम सदा ऐसे रहते हैं, कि  
 बहुत यत्न करनेसे भी मिद्ध नहीं होते  
 ऐसे कार्यको आरंभ करना उचित नहीं ।  
 जिस मनुष्यकी प्रसन्नतासे कुछ लाभ  
 नहीं और जिसके क्रोधसे कुछ हानि नहीं  
 ऐसे राजाकी सेवा ऐसीही है जैसे स्त्रीको  
 नपुंसक पति । बुद्धिमान मनुष्य ऐसे  
 कामको शीघ्र आरम्भ करता है, जिसमें  
 परिश्रम कम और फल अधिक होते हैं;  
 क्योंकि ऐसे कामोंमें विघ्न नहीं होता  
 है । जो कोमल नेत्रसे सब किसीको

देखता है, जो बैठकर भी चुप रहता है,  
 उससे सब प्रजा प्रेम करती है । (२०-२३)

राजाको उचित है कि नेत्र और वच-  
 नसे कोमल होनेपर भी शीघ्र फल न  
 दे । फल देनेवाला होनेपर भी आप  
 सबसे कठोर बना रहै, विना सिद्ध हुए  
 बातको भी सिद्ध हुईके समान प्रकाशित  
 करे, अर्थात् दुर्बल होने परभी बलवानके  
 समान बना रहे । जो नेत्र, मन, वचन  
 और कर्मसे जगतको प्रसन्न करता है,  
 उसको भी सब जगत प्रसन्न करता है ।  
 जिससे प्रजा इस प्रकार डरती है, जैसे  
 व्याधसे हरिन, समुद्रपर्यन्त वह समस्त

वायुरध्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः ॥ २७ ॥  
 धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः ।  
 वसुधा वसुसंपूर्णा वर्धते भूतिवर्धनी ॥ २८ ॥  
 अथ संत्यजतो धर्ममधर्मं चालुतिष्ठतः ।  
 प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा ॥ २९ ॥  
 य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने ।  
 स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने ॥ ३० ॥  
 धर्मेण राज्यं विंदेत धर्मेण परिपालयेत् ।  
 धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥ ३१ ॥  
 अयुन्मत्तात्प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः ।  
 सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव कांचनम् ॥ ३२ ॥  
 सुव्याहतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः ।  
 मंचिन्वन् धीर आसीत् शिलाहारी शिलं यथा ॥ ३३ ॥  
 गंधेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः ।  
 चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥ ३४ ॥

पृथ्वीका राजा होकर भी दरिद्र हो जाता है । अधर्मी राजा बाप दादाका राज्य पाकर भी इस प्रकार नष्ट होजाता है जैसे वायु चलनेसे भेघ । (२४-२७)  
 जो राजा महात्माओंसे करने योग्य धर्मको करता है, वह धन सहित समस्त पृथ्वीका राज्य करता है । जो राजा धर्मको छोड़ अधर्म करता है, वह समस्त राज्यको इस प्रकार संकुचित करता है, जैसे अग्निमें डालनेसे चमड़ा संकुचित होता है । जैसा शत्रुको जीतनेको यत्न किया जाता है, वैसाही यत्न अपने राज्यके पालन करनेके लिये भी करना चाहिये । धर्मसे राज्य प्राप्त कर-

ना चाहिये, और धर्मसे उसकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि धर्मसे प्राप्त किया धन नष्ट नहीं होता और कमभी नहीं होता । ( २८-३१ )

जैसे पत्थरसे सोना निकाल दिया जाता है, ऐसेही मूर्ख और बालके वचनसे भी सारांश ले लेना चाहिये । बुद्धिमानको उचित है कि, जैसे कोई शिलवृत्तिसे जीने वाला मनुष्य खेतमें पड़े हुए धान्यके कण लेता है, ऐसेही मूर्खोंसे भी उत्तम वचन, उत्तम कर्म और उत्तम वृत्तिको सीख ले । गौ सुगन्धिसे, ब्राह्मण वेदोंसे और राजा दूतोंके द्वारा देखता है, और सब



भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा ।  
 अथ या सुदुहा राजन्नैव तां वितुदंत्यपि ॥ ३५ ॥  
 यद्वत्प्रं प्रणमति न तत्संतापयंत्यपि ।  
 यच्च स्वयं न तं दारु न तत्संतापयंत्यपि ॥ ३६ ॥  
 एतयोपमया धीरः सन्नमेत बलीयसे ।  
 इंद्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥ ३७ ॥  
 पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मांत्रिबांधवाः ।  
 पतयो बांधवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबांधवाः ॥ ३८ ॥  
 सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्यायोगेन रक्ष्यते ।  
 सृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥ ३९ ॥  
 मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः ।  
 अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचेततः ॥ ४० ॥  
 न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः ।  
 अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥ ४१ ॥  
 य ईर्षुः परचित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।  
 सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनंतकः ॥ ४२ ॥

आंखोंसे देखते हैं । जो गौ बहुत कष्टसे  
 दूध देती है, वह बहुत दुःख उठाती  
 है, और जो सहजसे दूध देती है, उसे  
 कोई मारता नहीं । ( ३२-३५ )

जो धातु वा काष्ठ आपहीसे मुड  
 जाय उसे तपानेका क्या काम है ?  
 इन्हीं दोनोंके समान बुद्धिमानकोभी  
 उचित है कि अपनेसे अधिक बलवानसे  
 नीचा हो जाय । जो बलवानको प्रणाम  
 करता है, वह प्रणाम इन्द्रको पहुंचता  
 है । पशु मेघोंसे जीते हैं, राजा मन्त्रि-  
 योंका मित्र है, पति स्त्रीका मित्र है,  
 और ब्राह्मणोंका वेद मित्र है । सत्यसे

धर्मकी, अभ्याससे विद्याकी, उपटनसे  
 रूपकी और चरित्रोंसे कुलकी रक्षा हो-  
 ती है । ( ३६-३९ )

प्रमाण करनेसे धानकी, धुमानसे  
 घोड़ोंकी, उपटनेसे गौओंकी और बुरे वस्त्र  
 से स्त्रियोंकी रक्षा होती है । हमारा यह  
 सिद्धान्त है, कि बुरे चरित्रवाले के  
 वंशका कुछ प्रमाण नहीं, जो नीच हो-  
 कर भी अच्छा कर्म करे, वह प्रशंसाके  
 योग्य है । जो दूसरेके धन, रूप, बल,  
 सुख, सुन्दरता और आदरको देखकर  
 जलता है, उसके रोगकी कुछ औषध  
 नहीं । जिसके मनमें विरुद्ध कार्य होने की

अकार्यकरणाद्भूतिः कार्याणां च विवर्जनात् ।  
 अकाले मंत्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत्पिबेत् ॥ ४३ ॥  
 विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः ।  
 मदा एतेऽवल्लिप्तानामेत एव सतां दम्भाः ॥ ४४ ॥  
 असंतोऽभ्यर्थिताः सद्भिः कचित्कार्ये कदाचन ।  
 तावन्न तस्य सुकृतं किञ्चित्कार्यं कदाचन ।  
 मन्यन्ते संतमात्मानमसंतमपि विश्रुतम् ॥ ४५ ॥  
 गतिरात्मवतां संतः संत एव सतां गतिः ।  
 असतां च गतिः संतो न त्वसंतः सतां गतिः ॥ ४६ ॥  
 जिता सभा वस्त्रवतामिष्टाशा गोमता जिता ।  
 अध्वा जितो धानवता सर्व शीलवता जितम् ॥ ४७ ॥  
 शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति ।  
 न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः ॥ ४८ ॥  
 आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम् ।  
 तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ ॥ ४९ ॥  
 संपन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुजन्ते सदा ।

वा कार्य न होनेकी, अथवा कार्य सिद्धि के पूर्वही गुप्त बात प्रगट होनेकीभीति रहति है, ऐसे मनुष्यको लोभ मोहादि का अश्रय नहीं करना चाहिये । (४०-४३)

मूर्खोंके लिये विद्या, धन और सहाय यही तीन बड़े मद हैं । परन्तु येही तीनों महात्माओंके लिये नम्रताके हेतु हैं । जिस समय कोई महात्मा किसी दुष्टके पास अपने कार्यकी सहायताके लिये जाय, तो वह दुष्ट उसके कार्यको पूर्ण न करता हुआही स्वयं दुष्टता में जगत में प्रसिद्ध होकर भी अपने को साधु मानने लगता है । महात्मा ज्ञानियोंके लिये गति देने-

वाले हैं, और महात्माही दुष्टोंको गति देते हैं; परन्तु दुष्ट साधुओंको गति नहीं देते । ( ४४-४६ )

वस्त्रधारी सभाको जीतता है, गोकुल दुग्धादि मीठे खानेकी आशाको जीतता है, वाहनवाला मार्गको जीतता है और शीलवान सबको जीत लेता है । पुरुषमें शीलही प्रधान गुण है, इसके नाश होने से जीवन, धन और बन्धु बान्धव सबका नाश हो जाता है । हे राजन् ! धनवाले को मांस, दरिद्रीको तेल और मध्यमको घीके सहित भोजन कराना चाहिये । दरिद्री सदा मीठा भोजन करता है,

क्षुत्खादुतां जनयति साचाह्येषु सुदुर्लभा ॥ ५० ॥  
 प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।  
 जीर्यत्यपि हि काष्ठाणि दरिद्राणां महीपते ॥ ५१ ॥  
 अवृत्तिर्भयमंत्यानां मध्यानां मरणाद्भयम् ।  
 उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात्परं भयम् ॥ ५२ ॥  
 ऐश्वर्यमदपापिष्ठा सदाः पानमदादयः ।  
 ऐश्वर्यमदमत्तो हि नाऽपतित्वा विबुध्यते ॥ ५३ ॥  
 इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः ।  
 तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव ॥ ५४ ॥  
 योजितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा ।  
 आपदस्तस्य वर्धते शुक्लपक्ष इवोदुराद् ॥ ५५ ॥  
 अविजित्य यथाऽऽत्मानममात्यान्विजिगीषते ।  
 अमित्रान्वाऽजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥ ५६ ॥  
 आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण योजयेत् ।  
 ततोऽमात्यान्मित्रांश्च न भोघं विजिगीषते ॥ ५७ ॥  
 वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदंडं विकारिषु ।

क्योंकि भूखमें सबही मीठा लगता है  
 और धनवानको भूख दुर्लभ है। ४६-५०

हे पृथ्वीनाथ ! जगत्में दीखता है  
 कि धनवान भोजन पचानेमें प्रायः  
 समर्थ नहीं होते और दरिद्र काठको भी  
 पचा जाता है। नीचको वृत्ति न मिलना,  
 मध्यमको मरना और उत्तम को अवमा-  
 न महा भय हैं। ऐश्वर्यका मद मद्यसे  
 भी अधिक है, क्योंकि धनका मतवाला  
 मनुष्य नष्ट होनेके पूर्व कुछ नहीं  
 जानता। जैसे सूर्यादि ग्रहोंसे नक्षत्र तप्त  
 होते हैं ऐसेही अपने अपने कामोंको  
 करती हुई परंतु बिना जीती हुई इन्द्रियोंसे

लोक दुःख पाते हैं। ( ५१-५४ )

जैसे शुक्ल पक्षमें चन्द्रमा बढता है,  
 तैसेही मनको वशमें करनेवाली, सङ्ग  
 उत्पन्न हुई पश्वों इन्द्रिय न जीतनेवाले  
 मनुष्योंके दुःख बढते हैं। जो मूर्ख अपने  
 मनको बिना वशमें किये अपने अमात्यों  
 को वशमें करना चाहे, और जो बिना  
 अमात्यों को वशमें किये शत्रुओंको  
 जीतना चाहे, वह सब प्रयोजनोंसे नष्ट हो  
 जाता है। जो पहले अपने मनको शत्रुके  
 समान जीतता है, फिर अमात्योंको वश-  
 में करता है, वही शत्रुओंको जीत सकता  
 है। इन्द्रियजित, मनको वशमें रखनेवाले,

परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥ ५८ ॥  
 रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः ।  
 तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दातैः सुखं याति रथीव धीरः ॥ ५९ ॥  
 एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम् ।  
 अविधेया इवादाता हयाः पथि कुसारथिम् ॥ ६० ॥  
 अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः ।  
 इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम् ॥ ६१ ॥  
 धर्माथौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः ।  
 श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥ ६२ ॥  
 अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः ।  
 इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद्भ्रश्यते हि सः ॥ ६३ ॥  
 आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः ।  
 आत्मा ह्येवात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ६४ ॥  
 बंधुरात्माऽत्मनस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना जितः ।  
 स एव नियतो बंधुः स एव नियतो रिपुः ॥ ६५ ॥  
 क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू ।  
 कामश्च राजन्क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुपनः ॥ ६६ ॥

दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, परीक्षा करके  
 कामको करनेवाले और परम धीर मनु-  
 ष्यको स्थिर लक्ष्मी प्राप्त होती  
 है । ( ५५—५८ )

हे राजन् ! शरीर रथ, इन्द्रिय परा-  
 क्रमी घोड़े और मन सारथी है; इस  
 रथमें सावधान बैठकर सावधान मनुष्य  
 सुखसे चलता है । जैसे दुष्ट घोड़े मार्ग  
 में सारथीको मार डालते हैं, तैसेही  
 बिना जीती हुई इन्द्री मनरूपी सारथी  
 का नाश कर देती हैं । बिना इन्द्रियोंको  
 वशमें किये मूर्ख दुःखको सुख, अर्थको

अनर्थ और अनर्थको अर्थ समझता है ।  
 जो धर्म और अर्थको छोड़कर इन्द्रियोंके  
 वशमें होजाता है, उसके धन, प्राण  
 और स्त्री सब नष्ट हो जाते हैं । जो  
 इन्द्रियोंको बिना जीते धनका स्वामी  
 बनता है, उसके सब ऐश्वर्य नष्ट हो  
 जाते हैं । ( ५९—६३ )

बुद्धिमान इन्द्रियोंको जीतकर बुद्धिसे  
 मनको अपने वशमें करे, बुद्धिही मन-  
 का मित्र और बुद्धिही मनका शत्रु है ।  
 जिसने अपनी बुद्धिसे मनको नहीं  
 जीता, उसके मनके लिये बुद्धि शत्रु है ।

समवेक्ष्येह धर्माथौ संभारान्योऽधिगच्छति ।

स वै संभृतसंभारः सततं सुखमेधते ॥ ६७ ॥

यः पंचाभ्यंतरान्शत्रून्विजित्य मनोमयान् ।

जिगीषति रिपून्न्यान्निपवोऽभि भवन्ति तम् ॥ ६८ ॥

दृश्यन्ते हि महात्मानो बध्यमानाः स्वकर्मभिः ।

इन्द्रियाणामनीशत्वाद्राजानो राज्यविभ्रमैः ॥ ६९ ॥

असंत्यागात्पापकृतामपापांस्तुल्यो दंडः स्पृशते मिश्रभावात् ।

शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात्तस्मात्पापैः सह संधिं न कुर्यात् ॥ ७० ॥

निजानुत्पततः शत्रून्पंच पंच प्रयोजनान् ।

यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद्रुसते नरम् ॥ ७१ ॥

अनसूयाऽऽर्जवं शौचं संतोषः प्रियवादिता ।

दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ॥ ७२ ॥

आत्मज्ञानमनायासस्तिक्ष्ण धर्मनित्यता ।

वाक्चैव गुप्ता दानं च नैतान्यंत्येषु भारत ॥ ७३ ॥

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसंत्यबुधा बुधान् ।

जैसे छेदवाले छोटे जालमें बड़ी मछली नहीं पकड़ी जाती, ऐसेही काम और क्रोध मनुष्यकी बुद्धिसे नहीं पकड़े जाते, ये दोनों बुद्धिका नाश कर देते हैं, जो, धर्म और अर्थको देखकर सामग्री इकट्ठी करता है, सो सामग्रीकी सहायतासे सदा-के लिये सुख भोगता है । ( ६४-६७ )

जो मनसे उत्पन्न हुए पांच शत्रुओं-को न जीतकर अन्य शत्रुओंको जीतना चाहता है, वही अन्य शत्रुओंसे जीता जाता है, इन्द्रियोंको न जीतनेसे जैसे राजा राज्यके कार्यमें फंसा रहता है, वैसेही अनेक महात्मा भी कर्मोंमें बंधे हुए रहते हैं । दुष्टोंको न त्यागनेसे

महात्माओंकोभी दण्ड मिलता है । देखो, जगत्में सूखेके सङ्ग गीलाभी जला जाता है, इस लिये दुष्टोंकी सङ्गतिही नहीं करनी चाहिये । ( ६८-७० )

जो मनुष्य बुरे मार्गसे जाने वाले पांच विषयोंके ग्राहक पांच इन्द्रिय रूपी अपने शत्रुओंको मोहसे वशमें नहीं करता, वह पीछे महा आपत्तिमें पड़ता है । दुष्टको शान्ति, सीधापन, पवित्रता, सन्तोष, मीठे वचन, इन्द्रियोंको जीतना, सत्यवाणी और स्थिरता नहीं होती । हे भारत । दुष्टको आत्म-ज्ञान, स्थिरता, सुख दुःखादि द्वन्द्वोंका सहना, धर्म, वचन की रक्षा और दान

वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ॥ ७४ ॥

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दंडविधिर्बलम् ।

शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ॥ ७५ ॥

वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः ।

अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहुभाषितुम् ॥ ७६ ॥

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक्सुभाषिता ।

सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ॥ ७७ ॥

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुनाहतम् ।

वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥ ७८ ॥

कर्णिनालीकनाराचाग्निर्हरति शरीरतः ।

वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥ ७९ ॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति राज्यहानि ।

परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान्पण्डितो नावसृजेत्परेभ्यः ॥ ८० ॥

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।

बुद्धिं तस्यापकर्षति सोऽवाचीनानि पश्यति ॥ ८१ ॥

नहीं होते । मूर्ख अपने बुरे और निन्दायुक्त वचनोंसे महात्माओंको दुःख देते हैं, कहने वाला पापी होता है, और क्षमावान् पापसे छुट जाता है । (७५-७८)

दुष्ट लोग हिंसाहीको अपना बल समझते हैं, राजोंका दण्डकरना ही बल है । पतिकी सेवा स्त्रियोंका बल है, और क्षमा पाण्डितोंका बल है । हे पृथ्वीनाथ ! वचनको बशमें रखना बहुत कठिन है तथा मनुष्य अर्थसे भरे विचित्र वचन बहुत नहीं कहसकते । हे राजन् ! मीठी वाणी कल्याणको बढ़ाती है, वही वाणी कड़वी होने पर अनर्थको बढ़ाती

है । कुल्हाड़ीसे कटा वृक्ष फिर बढ जाता है, बाणका घाव फिर घट जाता है, परन्तु वचनसे हुआ घाव कभी नहीं भरता । (७५-७८)

बाणकी फांसको शरीर निकाल सकता है, परन्तु वचनकी फांसको कोई नहीं निकाल सकता, क्योंकि वह हृदयमें लगी रहती है । मुखसे निकले हुए वचन रूपी बाण मर्म स्थानोंमें लगते हैं, उनके लगनेसे मनुष्य रात्रि दिन सोच करता है, इस लिये मनुष्य उन बाणोंको न चलावे । देव जिसको दुःख देना चाहते हैं, पहले उसकी बुद्धि नाशकर देते हैं । बुद्धि नाश होनेसे

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते ।

अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ८२ ॥

सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ ।

पाण्डवानां विरोधेन न चैनानवबुध्यसे ॥ ८३ ॥

राजा लक्षणसंपन्नश्चैलोक्यस्यापि यो भवेत् ।

शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥ ८४ ॥

अतीव सर्वान्पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः ।

तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित् ॥ ८५ ॥

अनुक्रोशादानृशंस्याद्योऽसौ धर्मभृतां वरः ।

गौरवात्तव राजेंद्र बहून्क्लेशांस्तितिक्षति ॥ ८६ ॥ [११३०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि

विदुरनीतिवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः ।

शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे ॥ १ ॥

विदुर उवाच— सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।

वह मनुष्य नीच कर्म करने लगता है, जब नाशका समय आता है, और बुद्धि नाश हो जाती है, तब हृदयसे अन्याय नहीं हटता । वह न्यायके समान ही दीखने लगता है । ( ७९-८० )

हे भरतकुलसिंह ! पाण्डवोंका विरोध करनेसे और पुत्रोंके वशमें होनेसे आपकी बुद्धि नाश हो गई है । क्या आप उसको नहीं देखते ? हे धृतराष्ट्र ! राजलक्षणोंसे भरे तीन लोकके स्वामी होने योग्य आपके आज्ञापालक महाराज युधिष्ठिर पृथ्वीके राजा हों । वे धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले आपके सब पुत्रोंसे तेज और बुद्धिमें अधिक

हैं, इस लिये वेही राजा होनेके योग्य हैं । हे राजन् ! धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर कृपा और साधुताके कारण तथा आपको बड़ा मान करही अनेक क्लेश सह रहे हैं । ( ८३-८६ ) ११३०

उद्योगपर्वमें चौतीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें पैंतीस अध्याय ।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे महाबुद्धिमान विदुर ! तुम्हारे वचन सुननेसे मुझे तृप्ति नहीं होती । तुम विचित्र वचन कहते हो, इस लिये धर्म और अर्थसे भरे वचन फिर कहो । ( १ )

विदुर बोले, हे पृथ्वीनाथ ! सब तीर्थोंमें स्नान करना एक ओर और

उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते ॥ २ ॥

आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो ।

इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ ३ ॥

यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोके प्रगीयते ।

तावत्स पुरुषन्याघ्र स्वर्गलोके महीयते ॥ ४ ॥

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ।

विरोचनस्य संवादं कोशिन्यर्थं सुधन्वना ॥ ५ ॥

स्वयं वरे स्थिता कन्या कोशिनी नाम नामतः ।

रूपेणाप्रतिमा राजन् विशिष्टपतिकाम्यया ॥ ६ ॥

विरोचनोऽथ दैत्यस्तदा तत्राजगाम ह ।

प्राप्तुमिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येन्द्रं प्राह कोशिनी ॥ ७ ॥

केशिन्युवाच— किं ब्राह्मणाः स्वच्छ्रेयांसो दितिजाः स्वद्विरोचन ।

अथ केन स्म पर्यंकं सुधन्वा नाधिरोहति ॥ ८ ॥

विरोचन उवाच— प्राजापत्यास्तु वै श्रेष्ठा वयं कोशिनि सत्तमाः ।

अस्माकं खल्विमे लोकाः के देवाः के द्विजातयः ॥ ९ ॥

केशिन्युवाच— इहैवावां प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन ।

सबको समान देखना एक ओर, इन दोनोंमें समान देखना अधिक है, इस लिये आप सब पुत्रोंको समान दृष्टिसे देखिये, ऐसा करनेसे इस लोकमें आपकी कीर्ति बढ़ेगी, मरनेके पश्चात् आपको स्वर्ग मिलेगा । हे पुरुषसिंह ! जबतक मनुष्यकी कीर्ति जगत्में रहती है, तब तक वह मनुष्य स्वर्गमें रहता है । ( २-४ )

इस स्थानपर केशिनीके लिये जो सुधन्वा और विरोचनका संवाद हुआ था, सो हम आपसे कहते हैं । यह इतिहास बहुत पुराना है । हे राजन् ! अत्यन्त रूपवती केशिनी नामकी कन्या

जब उत्तम पतिसे विवाह करनेके लिये स्वयम्बरमें आई, तब उससे विवाह करनेके लिये विरोचन नामक दैत्य स्वयम्बरमें आया । उससे केशिनी कहने लगी, हे विरोचन ! तुम कहो कि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, या दैत्य श्रेष्ठ हैं ? यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, तो मैं सुधन्वासे विवाह क्यों न करूं ! ( ५-८ )

विरोचन बोले, हे केशिनी ! हम प्रजापतिसे उत्पन्न हुए हैं, इस लिये हमही श्रेष्ठ तथा तीनों लोकोंके स्वामी हैं, ब्राह्मण और देवता हमारे आगे क्या वस्तु हैं ? ( ९ )



सुधन्वा प्रातरागता पश्येयं वां समागतौ ॥ १० ॥

विरोचन उवाच--तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे ।

सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टाऽसि संगतौ ॥ ११ ॥

विदुर उवाच-- अतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमंडले ।

अथाजगाम तं देशं सुधन्वा राजसत्तम ।

विरोचनो यत्र विभो कोशिन्या सहितः स्थितः ॥ १२ ॥

सुधन्वा च समागच्छत्प्राहादि कोशिनीं तथा ।

समागतं द्विजं दृष्ट्वा कोशिनी भरतर्षभ ।

प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घ्यं ददौ पुनः ॥ १३ ॥

सुधन्वोवाच-- अन्वालभे हिरण्मयं प्राहादे ते वरासनम् ।

एकत्वमुपसंपन्नो न त्वासेऽहं त्वया सह ॥ १४ ॥

विरोचन उवाच--तवार्हते तु फलकं कूर्चं वाऽप्यथवा वृत्ती ।

सुधन्वन्न त्वमर्होऽसि मया सह समासनम् ॥ १५ ॥

सुधन्वोवाच-- पिता पुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि ।

केशिनी बोली, हे विरोचन ! इसकी परीक्षा हो जायगी । प्रातःकाल सुधन्वा मुझे लेने आवेगा, तब मैं ब्राह्मण और दैत्यकी परीक्षा करूंगी । ( १० )

विरोचन बोले, हे कल्याणि ! हे भीरु ! तुम जो कहती हो, सो मैं करूंगा । प्रातः काल जब सुधन्वा आवेगा, तब तुम हम दोनोंको देखना । ( ११ )

विदुर बोले, जब रात्रि बीत गई और आकाशमें सूर्य उदय हुए, तब सुधन्वा स्वयम्बरमें आये । अनन्तर सुधन्वा वहां गये, जहां केशिनी और प्रह्लाद पुत्र विरोचन बैठे थे । सुधन्वाने प्रह्लादपुत्र विरोचन और केशिनीको देखा । हे भरत कुलसिंह ! जिस समय

केशिनीने सुधन्वा ब्राह्मणको आते देखा उसी समय उठकर आसन, अर्घ और पैर धोनेको जल दिया । ( तब विरोचनने कहा, हे सुधन्वा ! तुम हमारे सङ्ग बैठो । ) तब सुधन्वा बोले, हे प्रह्लादपुत्र ! मैं तुम्हारे सोनेके एक आसनपर नहीं बैठ सकता, क्योंकि तुम मेरे समान नहीं हो । ( १२-१४ )

विरोचन बोले, हे सुधन्वा ! तुमने जो कहा सो ठीक है, तुम हमारे सङ्ग सोनेके आसनपर नहीं बैठ सकते, क्यों कि तुम काठके पीठे वा कुशाकी चटाईपर बैठने योग्य हो । ( १५ )

सुधन्वा बोले, यह कारण नहीं है; यह नियम है कि पिता पुत्र, दो ब्राह्मण,

वृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतरम् ॥ १६ ॥

पिता हि ते समासीनमुपासीतैव मामधः ।

बालः सुखैधितो गेहे न त्वं किञ्चन बुध्यसे ॥ १७ ॥

विरोचन उवाच—हिरण्यं च गवाश्वं च यद्वित्तमसुरेषु नः ।

सुधन्वन्विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः ॥ १८ ॥

सुधन्वोवाच— हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन ।

प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः ॥ १९ ॥

विरोचन उवाच—आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते ।

न तु देवेष्वहं स्याता न मनुष्येषु कर्हिचित् ॥ २० ॥

सुधन्वोवाच— पितरं ते गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते ।

पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृतं वदेत् ॥ २१ ॥

विदुर उवाच— एवं कृतपणौ कुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा ।

विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति ॥ २२ ॥

प्रह्लाद उवाच— इमौ तौ संप्रहृश्येते याभ्यां न चरितं सह ।

आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गाविहागतौ ॥ २३ ॥

दो क्षत्री, दो बूढ़े, दो शूद्र एक आसनपर सङ्ग बैठ सकते हैं। मैं जब तुम्हारे पिता की समामें जाता था, तब वह नीचे बैठ कर मेरी सेवा करते थे, तुम उस समय बहुत बालक थे, और सुखसे घरमें रहते थे, इस लिये इस बातोंको नहीं जानते हो । ( १६-१७ )

विरोचन बोले, हे सुधन्वा! हम गाय, घोड़े और जो कुछ हमारा धन है, उस सबको लगा कर तुमसे वाद करते हैं, इस प्रश्नको किमी पाण्डितसे पूछना चाहिये । ( १८ )

सुधन्वा बोले, हे विरोचन ! तुम्हारे गाय और घोड़े तुम्हारे ही रहें, हम और

तुम अपने अपने प्राणोंको पण ( बाजी ) लगाकर यह प्रश्न किसी पण्डितसे बुझेंगे । विरोचन बोले, हम तुम्हारे वचनको स्वीकार करते हैं, परन्तु यह प्रश्न पूछनेको किसके पास चलोगे, क्योंकि मैं देवता और मनुष्यके पास कदापि नहीं जाऊंगा । ( २० )

सुधन्वा बोले, इस प्रश्नके पूछनेको हम तुम्हारे बापहीके पास चलेंगे, क्योंकि प्रह्लाद पुत्रके प्रेमसे कभी झूठ नहीं बोलेंगे । २१

विदुर बोले, हे राजन् ! ऐसी प्रतिज्ञा करके क्रोध में भरे विरोचन और सुधन्वा राजा प्रह्लादके पास गये । इनको देखकर प्रह्लाद बोले, ये दोनों

किं वै सहैवं चरथो न पुरा चरथः सह ।

विरोचनैतत् पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वना ॥ २४ ॥

विरोचन उवाच—न मे सुधन्वना सख्यं प्राणयोर्विपणावहे ।

प्रह्लाद तत्त्वं पृच्छामि मा प्रश्नमनृतं वदेः ॥ २५ ॥

प्रह्लाद उवाच—उदकं मधुपर्कं वाऽप्यानयंतु सुधन्वने ।

ब्रह्मन्नभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौः पीवरी कृता ॥ २६ ॥

सुधन्वोवाच—उदकं मधुपर्कं च पथिष्वेवार्पितं मम ।

प्रह्लाद त्वं तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि पृच्छतः ।

किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांस उताहो स्विद्विरोचनः ॥ २७ ॥

प्रह्लाद उवाच—पुत्र एको मम ब्रह्मंस्त्वं च साक्षादिहास्थितः ।

तयोर्विवदतोः प्रश्नं कथमस्माद्विधो वदेत् ॥ २८ ॥

सुधन्वोवाच—गां प्रदद्यात्स्त्वौरसाय यद्वाऽन्यत्स्यात्प्रियं धनम् ।

द्वयोर्विवदतोस्तथ्यं वाच्यं च मतिमंस्त्वया ॥ २९ ॥

प्रह्लाद उवाच—अथ यो नैव प्रब्रूयात्सत्यं वा यदि वाऽनृतम् ।

विषैले सांपके समान क्रोधमें भरे एक मार्गसे चले आते हैं, ये कभी पहले सङ्ग नहीं रहे, अब क्यों सङ्ग रहेंगे? २२-२३

इतनेमें विरोचन और सुधन्वा सभा-में पहुंच गये । तब प्रह्लाद अपने पुत्रसे बोले, हे विरोचन ! क्या सुधन्वा तुम्हारे मित्र हैं ? ( २४ )

विरोचन बोले, हे राजन् ! सुधन्वा मेरे मित्र नहीं हैं, हम दोनोंने प्राण देनेकी प्रतिज्ञा करके विवाद किया है, आप हमारे प्रश्नका उत्तर दीजिये, कदापि झूठ मत कहिये । ( २५ )

प्रह्लाद बोले, हे सुधन्वन् ! आप पूजा करने योग्य ब्राह्मण हैं, इस लिये मधुपर्क, पैर धोने योग्य जल और स-

फेद गौको ग्रहण कीजिये । ( २६ )

सुधन्वा बोले, मैंने मार्गहीमें आपका मधुपर्क, और जल ग्रहण कर लिया था, अब हम आपसे प्रश्न करते हैं, सत्य सत्य उत्तर दीजिये । हमारा प्रश्न यही है कि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या विरोचन । ( २७ )

प्रह्लाद बोले, हमको एकही पुत्र है और आप साक्षात् हमारे साथ प्रश्न करनेको आये हैं, ऐसी अवस्थामें हमारे समान मनुष्य क्या कह सकता है ? ( २८ )

सुधन्वा बोले, हे बुद्धिमान ! आप गौको अथवा और सब अपने प्रिय धनको पुत्रको दीजिये, परन्तु विवाद करनेवाले हमारे प्रश्नका ठीक उत्तर दीजिये । ( २९ )

एतत्सुधन्वन्पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत् ॥३०॥  
 सुधन्वोवाच— यां रात्रिमधिविज्ञा स्त्री यां चैवाक्षपराजितः ।  
 यां च भाराभितप्तांगो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत् ॥३१॥  
 नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिर्द्वारे बुभुक्षितः ।  
 अमित्रान्भूयसः पश्येद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ ३२ ॥  
 पंच पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।  
 शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ३३ ॥  
 हन्ति जातानजानांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।  
 सर्वं भूयनृते हन्ति मा स्म भूयनृतं वदेः ॥ ३४ ॥  
 प्रह्लाद उवाच— मत्तः श्रेयानंगिरा वै सुधन्वा त्वद्विरोचन ।  
 माताऽस्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्त्वं तेन वै जितः ॥३५॥  
 विरोचन सुधन्वाऽयं प्राणानामीश्वरस्तव ।  
 सुधन्वन्पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम् ॥ ३६ ॥

प्रह्लाद बोले, हे सुधन्वन् ! जो सत्य वा झूठ कुछ न कहे अथवा जो झूठही निश्चयसे कहने वाला हो उन दोनोंको कैसी गति प्राप्त होती है । ( ३० )

सुधन्वा बोले, जिस स्त्रीको सपत्नी है, जो हारा है और दिन भर भार लेकर जिसका शरीर पीड़ित हुआ है और उन सबको रात्रिमें जो दुःख होता है ऐसाही जो झूठ कहने वाला साक्षी हो उसको मिलता है। जो साक्षी होकर झूठ कहता है, वह नगर में रुद्ध होने वाले को, भूखसे पीड़ितको तथा द्वारके बाहिर अनेक शत्रुओंको देखने वालेको जो दुःख मिलता है, उसको प्राप्त होता है, सामान्य पशुओंके लिये झूठ बोलनेसे पांच, गौओंके लिये झूठ बोलनेसे दश,

घोडेके लिये सौ और मनुष्यके लिये झूठ बोलनेसे सहस्र पूर्व पुरुषोंका नाश करता है। सोनेके लिये झूठ बोलनेसे उत्पन्न हुए और न उत्पन्न हुए लोगोंके मारनेका पाप होता है। भूमि और स्त्रीके लिये झूठ बोलनेसे समस्त पृथ्वीके मनुष्योंके मारनेका पाप होता है, इस लिये तुम इस स्थान पर केशिनीके लिये झूठ मत कहो। ३१-३४

प्रह्लाद बोले, हे विरोचन ! सुधन्वाका पिता अङ्गिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं, सुधन्वाकी माता तेरी मातासे श्रेष्ठ है और तुझसे सुधन्वा अच्छे हैं, इस लिये तुझे सुधन्वाने जीत लिया। हे विरोचन ! सुधन्वा तुम्हारे प्राणोंका स्वामी है, चाहे मारे या छोड़े; हे सुधन्वन् । मैं तुमसे विरोचनको मांगता हूँ । ( ३५-३६ )

सुधन्वावाच— यद्धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादन्तं वदीः ।  
 पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात्प्रहाद दुर्लभम् ॥ ३७ ॥  
 एष प्रहाद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः ।  
 पादप्रक्षालनं कुर्यात्कुमार्याः सन्निधौ मम ॥ ३८ ॥  
 विदुर उवाच— तस्माद्राजेंद्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि ।  
 मागमः स सुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमनुवन् ॥ ३९ ॥  
 न देवा दंडमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।  
 यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम् ॥ ४० ॥  
 यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुने मनः ।  
 तथा तथाऽस्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः ॥ ४१ ॥

नैनं छंदांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम् ।  
 नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छंदांस्थेनं प्रजहत्यंतकाले ॥ ४२ ॥  
 मद्यपानं कलहं पूगवैरं भार्यापत्योरंतरं ज्ञातिभेदम् ।  
 राजाद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं वर्ज्यान्ग्राहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः ॥ ४३ ॥  
 सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं शलाकधूर्तं च चिकित्सकं च ।

सुधन्वा बोले, हे प्रह्लाद ! तुमने पुत्रके लिये भी झूठ न कहा, इस लिये इस दुर्लभ विरोचनको तुम्हें देते हैं, परन्तु यह उसी स्त्रीके आगे हमारे पैर धोवे । ( ३७—३८ )

विदुर बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! देखो, राजा प्रह्लादने अपने पुत्र के प्राणों को बचाने के लिये भी झूठ नहीं बोले, वैसेही आपभी राज्य के लिये झूठ मत बोलिये । मैं यह चाहता हूं कि पुत्रके लिये झूठ बोलनेसे पुत्र और मन्त्रियोंके सहित आपका नाश न हो, देवता लाठी लेकर पुशुओंके समान मनुष्योंकी रक्षा नहीं करते । वे जिसकी

रक्षा करना चाहते हैं, उसको उत्तम बुद्धि देते हैं, जैसे जैसे मनुष्यकी बुद्धि अच्छे कामोंमें जाती है, तैसे मनुष्यके कार्य निःसंशय सिद्ध होते हैं । ३९-४१

छल करनेवाले छली मनुष्यको वेद दुःखसे नहीं बचाते वरन वे इस प्रकार मनुष्यसे मरनेके समय छूट जाते हैं जैसे पंखवाले पक्षीसे घोसला ( अर्थात् कर्मही मनुष्योंको दुःखसे बचाता है । ) महात्मा लोग मद्य पीना, लडाई, वैर, पति और पत्नी में वियोग और जातिमें भेद, राजाकी शत्रुता, स्त्री और पुरुषोंसे विवाद, तथा और भी बुरेकाम करनेको मना करते हैं । बुद्धिमानको उचित है,

अरिं च मित्रं च कुशीलवं च नैतान्साक्ष्ये त्वभिकुर्वीत सप्त ॥ ४४ ॥

मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ।

एतानि चत्वार्यभयंकराणि भयं प्रयच्छंत्ययथाकृतानि ॥ ४५ ॥

अगारदाही गरदः कुंडाशी सोमविक्रयी ।

पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुकपारदारिकः ॥ ४६ ॥

भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात्पानपो द्विजः ।

अतिनीक्षणश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ४७ ॥

सुवप्रग्रहणो ब्रात्यः कानाशश्चात्मवानपि ।

रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात्सर्वे ब्रह्महाभिः समाः ॥ ४८ ॥

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः ।

शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः कृच्छ्रेष्वपत्सु सुहृदश्चारयश्च ॥ ४९ ॥

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया ।

कि हाथकी रेखा देखनेवाले, चोर बनि  
ये, धूर्तज्योतिषी, धूर्तवैद्य, शत्रु, मित्र  
और रण्डीके भडवेको साक्षी न  
बनावे । ( ४२—४४ )

हे राजन् ! जो आदरके लिये अग्नि-  
होत्र करता है, आदर के लिये ध्यान  
करता है, आदरके लिये यज्ञ करता है,  
उसका कल्याण नहीं होता । परन्तु जो  
विना इच्छाके इन सब कामोंको करता  
है उसको सुख होता है, घर जलाने  
वाला, जहर देनेवाला, कुण्डाशी (पतिके  
जीते हुए जो दूसरे मनुष्यके वीर्यसे पुत्र  
उत्पन्न होता है, उसे कुण्ड कहते हैं, जो उस  
कुण्डके यहां भोजन करता है उसे कुण्डा-  
शी कहते हैं,) सोम बेचनेवाला, शस्त्र ब-  
नानेवाला, नक्षत्रसूची अर्थात् थोड़ा पढ़ा  
ज्योतिषी, अथवा दूसरोंके दोष दर्शने-

वाला खल, मित्रद्रोही, दूसरेकी स्त्रियोंसे  
अधर्म करनेवाला; गर्भ गिरानेवाला,  
गुरुकी शय्यापर पैर रखनेवाला, मद्य  
पीने वाला ब्राह्मण, बहुत क्रोधी, कौवे-  
के समान वृत्ति करनेवाला, नास्तिक,  
वेदनिन्दक, वणिजोंसे धान्य दान लेने  
वाला, ब्रात्य अर्थात् जिसका जनेऊ  
समय बीतनेपर हुआ हो, दूसरेकी वस्तु  
को छीननेवाला, और जो समर्थ होते  
ही शरणागतकी रक्षा नहीं करे, ये सब  
ब्राह्मणको मारनेवाले पापीके तुल्य  
हैं । ( ४५—४८ )

धास की ज्वालासे अधिकारमें रूपवा-  
न् वस्तु, चरित्रसे धर्म, व्यवहारसे साधु-  
ता, युद्धसे शूरवीरता, कठिन कार्योंमें  
बुद्धिमान्नी और आपत्तीके समय मित्र  
और शत्रु जाने जाते हैं । बुढ़ापा रूप

क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा ण्हियं कामः सर्वमेवाभिमानः ॥ ५० ॥

श्रीर्मगलात्प्रभवति प्रागल्भ्यात्संप्रवर्धते ।

दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात्प्रतिनिष्ठति ॥ ५१ ॥

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।

पराक्रमश्चाऽबहुभाषिता च दानं यथाशक्तिकृतज्ञता च ॥ ५२ ॥

एतान् गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य ।

राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान् गुणानेष गुणो विभाति ॥ ५३ ॥

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि ।

चत्वार्येषामन्वेतानि सद्भिश्चत्वारि चैवामनुयांति संतः ॥ ५४ ॥

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः ।

दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं चत्वार्येतान्यनुयांति संतः ॥ ५५ ॥

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा ।

अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥ ५६ ॥

तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दंभार्थमपि सेव्यते ।

को; आशा धैर्यको, मृत्यु प्राणोंको, दुष्ट-  
ता धर्मको; क्रोध लक्ष्मीको, दुष्टोंकी  
सेवा शीलको, काम लज्जाको और अ-  
भिमान सबको नाश कर देता है । ल-  
क्ष्मी अच्छे कामोंसे प्राप्त होती है, गंभी-  
रतासे बढ़ती है, अच्छे कामोंमें निपुण  
होनेसे उनकी जड़ जमती है, और इ-  
न्द्रियोंको जीतनेसे स्थिर हो जाती  
है । ( ३९-५१ )

हे राजन् ! बुद्धि, उत्तम कुलमें जन्म,  
इन्द्रियोंका जीतना, विद्या, पराक्रम,  
परिमित बोलना, शक्तिके अनुसार दान  
और उपकार करनेवालेको मानना, ये  
आठों गुण मनुष्यको प्रासिद्ध करते हैं ।  
हे राजन् ! इन सब गुणोंसे राजकृपा यह

एक गुण अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि राजा से  
सत्कारित मनुष्य सब गुणोंसे युक्त प्रतीत  
होता है । हे राजन् ! ये आठ गुण  
मनुष्योंको स्वर्गमें पहुंचाते हैं, इनमें चार  
महात्माओंके सङ्ग रहते हैं, और चारोंके  
संग महात्मा रहते हैं, इन आठों गुणोंका  
आगे वर्णन करते हैं । यज्ञ, दान,  
विद्या और तप ये चारों गुण महा-  
त्माओंसे नित्य संबंध रखते हैं ।  
इन्द्रियोंको जीतना, सत्य, कोमलता  
और दयालुता, इन चारों गुणोंके संग  
महात्मा रहते हैं । ( ५२-५५ )

यज्ञ करना, विद्या पढ़ना, दान, तप  
सत्य, क्षमा, दया और लोभ न करना,  
येही आठ धर्मके मार्ग हैं । उनमेंसे पहले

उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ॥ ५७ ॥

न सा सभा यत्र न संति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् ।

नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥ ५८ ॥

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम् ।

शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशमे स्वर्गयोनयः ॥ ५९ ॥

पापं कुर्वन्पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम् ।

पुण्यं कुर्वन्पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते ॥ ६० ॥

तस्मात्पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः ।

पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥ ६१ ॥

नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः ।

पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥ ६२ ॥

वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः ।

पुण्यं कुर्वन्पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति ।

तस्मात्पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः ॥ ६३ ॥

असूयको दंढशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः ।

स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात्पापमाचरन् ॥ ६४ ॥

चार जो हैं, उनको पाखण्डी पाखण्डके लिये भी कर सकते हैं, परन्तु अन्तके चार जो धर्म हैं, उनको महात्माओंके सिवा कोई नहीं कर सकता। वह सभा नहीं है, जहां बूढ़े न हों; जो धर्मका वर्णन नहीं करते वह बूढ़े नहीं हैं; जिसमें सत्य नहीं वह धर्म नहीं है; और जिसमें कुछ छल है वह सत्य नहीं है। (५६-५८)

सत्य, रूप, गुण, विद्या, उत्तम कुलमें जन्म, शील, बल, धन, तेज, विचित्र कहना, येही स्वर्ग ले जानेके कारण हैं। जो पापी पाप करता है, उसको फल भी वैसाही मिलता है; धर्मा-

त्माको धर्म करनेसे अच्छा फल मिलता है। इस वास्ते धर्मात्मा मनुष्यको उचित है, कि पाप न करे; क्योंकि बार बार करनेसे बुद्धिका नाश हो जाता है, बुद्धि नाश होनेसे मनुष्य पापही करता है। पुण्य करनेसे बुद्धि बढ़ती है, बुद्धि बढ़नेसे मनुष्य सदा पुण्यही करता है; पुण्य करनेसे कीर्ति बढ़ती है, कीर्ति मानको स्वर्ग मिलता है; इस लिये मनुष्यको उचित है कि सदा धर्मही करे। (५९-६३)

डाही, दन्दसूक अर्थात् दूसरेके मर्मको भेद करनेवाला, कठोर वचन कहनेवाला,



अनसूयुः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन्सदा ।  
 न कृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते ॥ ६५ ॥  
 प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पंडितः ।  
 प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्माथौ शक्नोति सुखमेधितुम् ॥ ६६ ॥  
 दिवसेनैव तत्कुर्याद्येन रात्रौ सुखं वसेत् ।  
 अष्टमासेन तत्कुर्याद्येन वर्षाः सुखं वसेत् ॥ ६७ ॥  
 पूर्वं वयसि तत्कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत् ।  
 यावज्जीवेन तत्कुर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत् ॥ ६८ ॥  
 जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्या च गतयौवनाम् ।  
 शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम् ॥ ६९ ॥  
 धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते ।  
 असंवृतं तद्भवति ततोऽन्यदवदीर्यते ॥ ७० ॥  
 गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम् ।  
 अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ७१ ॥

सबसे वैर करनेवाला और दुष्ट मनुष्य  
 पाप करनेके कारण शीघ्रही नष्ट हो जाता  
 है । जो किसीकी वृद्धि देखकर दुःख  
 नहीं मानता और अपनी बुद्धिको ठीक  
 रखता है, वह उत्तम काम करनेके  
 कारण कदापि दुःखमें नहीं पड़ता और  
 सदा सुख पाता है । जो अपनी बुद्धिसे  
 विद्वानोंसे ज्ञानको बढ़ाता है, वही  
 पण्डित कहाता है, बुद्धिमान धर्म और  
 अर्थको प्राप्त करके ही सुख भोगता  
 है । ( ६४—६६ )

दिनमें ऐसा काम करना चाहिये,  
 जिससे रात्रिको सुखसे सोवे, आठ मही  
 नेमें ऐसा काम करना चाहिये जिससे  
 वर्षा कालमें सुखसे रहे । पहली अवस्था

में ऐसा काम करे, जिससे बुढ़ापेमें सुख  
 मिले। जीवन भरमें ऐसा काम करे जिससे  
 मरनेके पश्चात् सुख हो, जब अन्न पच  
 जाय, तब उसकी प्रशंसा करनी चाहिये,  
 शीलसे यौवन बितानेके पश्चात् स्त्रीकी  
 प्रशंसा करनी चाहिये, युद्ध जीतनेके  
 पश्चात् वीरकी प्रशंसा करनी चाहिये  
 और तपस्या पूर्ण होनेपर तपस्वीकी  
 प्रशंसा करनी चाहिये । ( ६५—६९ )

जो धन अधर्मसे प्राप्त होता है, उस  
 से यदि कुछ छिद्र आच्छादित किया, तो  
 वह छिद्र आच्छादित नहीं होता परंतु  
 वहां और भी छिद्र बढ़ताही जाता है ।  
 गुरु महात्माओंको शासन करते हैं,  
 राजा दुष्टों को दण्ड देता है, और छिप-

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम् ।  
 प्रभवो नाधिगंतव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ॥ ७२ ॥  
 द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी ।  
 क्षत्रियः शीलमाग्राजंश्चिरं पालयते महीम् ॥ ७३ ॥  
 सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ।  
 शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥ ७४ ॥  
 बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत ।  
 तानि जंघाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च ॥ ७५ ॥  
 दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा ।  
 कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥ ७६ ॥  
 सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षभ ।  
 पितृवत्त्वयि वर्तते तेषु वर्त्तस्व पुत्रवत् ॥ ७७ ॥

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरादितवाक्ये पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥  
 विदुर उवाच— अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ।  
 आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम् ॥ १ ॥

कर पाप करनेवालेको यमराज दण्ड देते हैं ! ऋषि, नदी, महात्माओंके वंश और स्त्रियोंके बुरे चरित्रोंके कोई पार नहीं जा सकता । हे राजन् ! जो क्षत्री ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, दान करता है और जातिमें शीलसे रहता है, वह बहुत दिन तक सुखसे राज्य करता है । ७०-७३  
 शूरवीर, विद्वान् और सेवा जाननेवाला सेवक, ये तीनों मनुष्य सुवर्णसे फूली हुई पृथ्वीका आनन्द भोगते हैं । हे भारत ! जो कर्म प्रत्यक्ष करके बुद्धिसे किये जाते हैं, वे श्रेष्ठ हैं, जो बाहुबलसे किये जाते हैं, सो मध्यम हैं और जो छिपकर कपटसे किये जाते हैं,

वे नीच हैं । जिस कर्मके सिद्ध होनेमें अपने शिरमें दुःखका भार पड़ता है वह अतिनीच कर्म है । तुम क्या दुर्योधन, शकुनि मूर्ख दुःशासन और कर्णको राजा बनाकर कल्याणकी इच्छा करते हो ? हे भरतकुलसिंह ! सब गुणोंसे भरे पाण्डव आपको पितातुल्य मानते हैं, आप भी उन्हें पुत्रके समान मानिये । ( ७४-७७ ) [ १३५७ ]

उद्योगपर्वमें पैंतसि अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें छतसि अध्याय ।

विदुर बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! इसी स्थानपर यह पुराना इतिहास करने योग्य है, इसमें आत्रेय और साध्य-

चरंतं हंसरूपेण महर्षिं संशितव्रतम् ।

साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा ॥ २ ॥

साध्या ऊचु—साध्या देवा वयमेते महर्षे हृद्वा भवन्तं न शक्नुमोऽनुमातुम् ।

श्रुतेन धीरो बुद्धिमांस्त्वं मतो नः काव्यां वाचं वक्तुमर्हस्युदाराम् ॥ ३ ॥

हंस उवाच—एतत्कार्यममराः संश्रुतं मे धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः ।

ग्रंथिं विनीय हृदयस्य सर्वं प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत ॥ ४ ॥

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः ।

आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विंदति ॥ ५ ॥

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी ।

न चाभिमानो न च हीनवृत्तो रूक्षां वाचं रुषतीं वर्जयति ॥ ६ ॥

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथाऽसून् रूक्षावाचो निर्दहन्तीह पुंसाम् ।

तस्माद्वाचमुषतीं रूक्षरूपां धर्मारामो नित्यशो वर्जयति ॥ ७ ॥

का इतिहास है, एक समय परमहंसका रूप बनाकर महा तपस्वी महा बुद्धिमान आत्रेय जगत्में घूम रहे थे, उसी समय साध्योंने आकर कहा । ( १-२ )

साध्य बोले, हे महामुने ! हम साध्य नामक देवता हैं, आपको देख कर आपके तपका अनुमान नहीं कर सकते, हमें जान पड़ता है कि आप विद्या, धीरता और बुद्धिसे भरे हैं, इस लिये आप हमसे कुछ कल्याणकी बात कहिये । ( ३ )

परम हंस बोले, हे साध्यसंज्ञक देवो ! मैं ने यही कर्तव्य सुना है, कि दुःखों के आघात होने पर भी अंतःकरणको विकल न बना देना चाहिये, इन्द्रियोंका जय करना चाहिये तथा ब्रह्मप्राप्तिके साधन ध्यान धारणा समाधि आदि धर्मोंको अविच्छिन्न करना चाहिये और

उनसे चित् जड अर्थात् आत्मा और अंतःकरणका ऐक्यरूप हृदयग्रंथिको दूर करके प्रिय और अप्रिय अर्थात् सुख दुःखादि जिसके धर्म हैं ऐसे अंतःकरणको आत्मामें लीन करना चाहिये । जो अपनेको बुरी बात कहै, उसका उत्तर नहीं देना, ऐसा करनेसे रुका हुआ क्रोध बुरी बात कहनेवालेका नाश कर देता है और क्षमा करनेवालेका कल्याण होता है । मनुष्य बुरी बात न कहे, किसीका निरादर न करे, नीचकी सेवा न करै, मित्रोंसे वैर न करे, छोटा काम न करे और रूखी और क्रोधयुक्त वाणी न बोले । क्योंकि बुरी बात मनुष्यके मर्म, हृदय, हड्डी और प्राणोंका भस्म कर देती है । मनुष्यको उचित है, कि रूखी वाणी कभी न कहे,

अरुंतुदं परुषं रूक्षवाचं वाक्कंटकैर्वितुदंतं मनुष्यान् ।  
 विद्यादलक्ष्मीकृतं जनानां सुखे निबद्धां निर्कृतिं वै वहंतम् ॥ ८ ॥  
 परश्चेदेनमभिविद्येत बाणैर्भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कदीप्तैः ।  
 स विद्वयमानोऽप्यतिदह्यमानो विद्यात्कविः सुकृतं मे दधाति ॥ ९ ॥  
 यदि संतं सेवति यद्यसंतं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव ।  
 वासो यथा रंगवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥ १० ॥  
 अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद्योऽनाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत् ।  
 हंतुं च यो नेच्छति पापकं वै तस्मै देवाः स्पृहयंत्यागताय ॥ ११ ॥  
 अन्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद्व्याहृतं तद्वितीयम् ।  
 प्रियं वदेद्व्याहृतं तत्तृतीयं धर्म्यं वदेद्व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ १२ ॥  
 याह्रौः सान्निविशते याह्रशांश्रोपसेवते ।  
 याह्रगिच्छेच्च भवितुं ताह्रभवति पूरुषः ॥ १३ ॥  
 यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते ।

क्योंकि उससे धर्मका नाश होता है। ४-७

दुःख देनेवाले, रूखी वाणी कहने वाले मनुष्यकी वाणी दूसरेके हृदयमें कांटके समान लगती है, रूखी वाणी कहनेवाला मनुष्य सब लोगोंमें अमंगल है, ऐसे मनुष्यके मुखमें रूखी वाणी दरिद्र और मृत्युरूप होकर बसती है। आग और सूर्यके समान तेजस्वी और विषमें बूझे तीक्ष्ण बाणोंके समान वचन ही दुष्ट लोग महात्माओंको कहते हैं, उनसे वे जलने लगते हैं और अत्यन्त पीडित होते हैं तथापि महात्मा दुःख नहीं मानते। चाहे साधूकी सेवा करो, चाहे दुष्टकी सेवा करो, चाहे तपस्वीकी सेवा करो और चाहे चौरकी सेवा करो, परन्तु मनुष्य स्वामीके वशमें इस प्रकार

हो जाता है, जैसे वस्त्र रङ्गके वशमें। ( ८-१० )

बहुत विवाद नहीं करना चाहिये, न वाद करना चाहिये। जो दूसरेसे मार खाकर उसे नहीं मारता, उससे देवता बहुत प्रसन्न रहते हैं, बहुत बोलनेसे न बोलना अच्छा है, बोलनेसे सत्य बोलना अच्छा है, सत्यमें प्यारा बोलना अच्छा है, और प्यारमेंभी धर्मके सहित बोलना बहुत अच्छा है, ये चार वचनके भेद हैं। जो मनुष्य जैसे मनुष्यके सङ्गमें रहता है, जैसे मनुष्योंके सङ्ग बैठता है और जैसा बनना चाहता है, वैसाही होता है। ( ११-१३ )

जहांसे मनुष्य अपने चित्तको लौटाना चाहता है, वह वहांसे लौट जाता है,

निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि ॥ १४ ॥

न जीयते चानुजिगीषतेऽन्यान्न वैरकृचाप्रतिघातकश्च ।

निंदा प्रशंसा सुसमस्वभावो न शोचते हृष्यति नैव चायम् ॥ १५ ॥

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः ।

सत्यवादी मृदुर्दातो यः स उत्तमपुरुषः ॥ १६ ॥

नानर्थकं सांत्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च ।

रघं परस्य जानाति यः स मध्यमपुरुषः ॥ १७ ॥

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशास्तो नावर्तते मन्युवशात्कृतघ्नः ।

न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा कलाश्रैता अधमस्येह पुंसः ॥ १८ ॥

न श्रद्धाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशंकितः ।

निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपुरुषः ॥ १९ ॥

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान् ।

अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ २० ॥

सब स्थानोंसे लौटनेसे मनुष्यको कुछ भी दुःख नहीं शेष रहेगा । जो सब दुःखोंसे रहित हो जाता है, वह किसीको जीतनेकी इच्छा नहीं करता, न किसीसे वैर करता है, न किसीको मारनेकी इच्छा करता है; वह दुःखरहित मनुष्य निन्दा और प्रशंसासे, प्रसन्न और अप्रसन्न नहीं होता, उसका स्वभाव समान हो जाता है, जो मनुष्य सबका कल्याण चाहता है, कभी भी किसीकी हानिमें उसका चित्त नहीं जाता; वह सत्यवादी, कोमल और इन्द्रियनिग्रही है, उसीको उत्तम पुरुष कहते हैं । (१४-१६)

जो बिना प्रयोजन वचन न कहै, जिस वस्तुको देनेकी प्रतिज्ञा करे, उसे दे दे, शत्रुके छिद्रको देखता रहै, वह

मध्यम कहाता है, आपका पुत्र दुःशासन है वह घोषयात्रादि प्रसंगोंमें गदासे ताड़ित और शस्त्रादिसे विच्छिन्न होकर ही उपकारको न माननेवाला और क्रोधके वशमें होकर दुष्ट मार्गसे वर्तन करता है, इसीसे वह नीच पुरुष है क्योंकि जो किसीका मित्र न हो और सदा दुष्टता करता रहै, वह नीच पुरुष है । जो किसीमें श्रद्धा न करे, अपने किये हुए काममें भी शङ्का करे और मित्रोंका निरादर करे, वह अधम पुरुष कहाता है । १७-१९

मनुष्यको उचित है कि सदा उत्तमही मनुष्योंकी सङ्गति करें और काम निकासनेके वास्ते मध्यम पुरुषके पास भी चला जाय, परन्तु कल्याण चाहनेवाला मनुष्य नीचके पास कदापि न जाय ।

प्राप्नोति वै वित्तमसद्वलेन नित्योत्थानात्प्रज्ञया पौरुषेण ।

न त्वेव सम्यगलभते प्रशंसां न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम् ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- महाकुलेभ्यः स्पृहयन्ति देवा धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च ।

पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं भवंति वै कानि महाकुलानि ॥ २२ ॥

विदुर उवाच-तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः पुण्या विवाहाः सततान्नदानम् ।

येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि ॥ २३ ॥

येषां न वृत्तं व्यथते न योनिश्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम् ।

ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि ॥ २४ ॥

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च ।

कुलान्यकुलतां यांति धर्मस्यातिक्रमेण च ॥ २५ ॥

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च

कुलान्यकुलतां यांति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ २६ ॥

ब्राह्मणानां परिभवात्परिवादाच्च भारत ।

मनुष्यको असत्य उपायके बलसे भी धन मिलना संभव है, परन्तु नित्य उद्योग, सद्बुद्धि और पौरुषके विना उसकी प्रशंसा कभी नहीं होती, और प्रशंसा नष्ट होनेसे कुलका गौरव भी नाश हो जाता है । (२०-२१)

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! हमने सुना है कि सदा धर्म और अर्थको करनेवाले महा पण्डित और देवता बड़े बड़े कुलोंकी प्रशंसा करते हैं, सो हम आपसे पूछते हैं, कि बड़े कुल कौनसे हैं ? (२२)

विदुर बोले, हे महाराज ! जिन कुलोंमें तप, इन्द्रिय जीतना, ब्राह्मणोंका वेदोंका अध्ययन और अध्यापन, यज्ञ, उत्तम विवाह, और सदा अन्नका दान होता है,

वेही बड़े कुल कहाते हैं, यही अच्छी तरह से चलनेवाले सात गुण बड़े कुलके लक्षण हैं । जिन कुलोंमें बुरे कर्म नहीं होते, जिनके पितर दुःख नहीं पाते, जहां प्रसन्न होकर धर्म किया जाता है, जिस कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्य झूठ नहीं बोलते और अपने कुलकी कीर्ति बढाना चाहते हैं, वेही बड़े कुल कहाते हैं, जिन बड़े कुलोंमें भी यज्ञ नहीं होता, उत्तम रीतिसे विवाह नहीं होता, वेद नहीं पढाये जाते, और धर्मका त्याग होता है, वे नीच कुल हो जाते हैं । (२३-२५)

जिन कुलोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य देवता और ब्राह्मणोंका धनछीनते हैं, तथा ब्राह्मणोंका निरादर करते हैं, वे उत्तम कुलके होते हुए भी नीच हो जाते हैं । हे भरतकुल

कुलान्यकुलतां यांति न्यासापहरणेन च ॥ २७ ॥  
 कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः ।  
 कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥ २८ ॥  
 वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि ।  
 कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षति च मह्यशः ॥ २९ ॥  
 वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेति च याति च ।  
 अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हनो हतः ॥ ३० ॥  
 गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया ।  
 कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥ ३१ ॥  
 मा नः कुले वैरकृत्काश्चिदस्तु राजाऽमात्यो मा परस्वापहारी ।  
 मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः ॥ ३२ ॥  
 यश्च नो ब्राह्मणान् हन्याद्यश्च नो ब्राह्मणान् द्विषेत् ।  
 न नः स सामितिं गच्छेद्यश्च नो निर्वपेत्कृषिम् ॥ ३३ ॥  
 तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूतता ।

श्रेष्ठ ! ब्राह्मणोंका निरादर, ब्राह्मणोंकी निन्दा वा ताडन और ब्राह्मणोंके धन छीननेसे उत्तम कुल नीचताको प्राप्त हो जाता है। जिन कुलोंमें गऊ, धन, और मनुष्य भरे हैं, परन्तु वंशमें उत्पन्न हुआओंके चरित्र अच्छे नहीं हैं, उनकी गिनती अच्छे कुलोंमें नहीं होती। (२६-२८)

जिन कुलोंमें धन थोड़ा है, परन्तु मनुष्योंके चरित्र अच्छे हैं, वेही महायशस्वी उत्तम कुल हैं। धन आता है और जाता है, इस लिये यत्न करके चरित्र-हीकी रक्षा करनी चाहिये। बहुत धन होनेपरभी बुरे चरित्रवाला मनुष्य हीन, और कम धन होनेपर भी उत्तम चरित्र-वाला मनुष्य उत्तम कहाता है। हे

धृतराष्ट्र ! गौ, पशु, घोड़े, बढी हुई खेती इन सबसे कुल उत्तम नहीं होते, परन्तु चाल चलन अच्छे होनेसे उत्तम होते हैं। (२९-३१)

हमारे कुलमें कोई वैर करनेवाला न हो, राजा वा मन्त्री कोई दूसरेका धन लेनेकी इच्छा न करे। हमारे कुलमें कोई ऐसा न हो जो मित्रद्रोही, कपटी, असत्य मार्गसे चलने वाला तथा पितर और देवतासे पहले भोजन करे। जो हमारे ब्राह्मणोंसे द्वेष करे, हमारे ब्राह्मणोंको मारे, ऐसा मनुष्य हमारे वंशमें और सभामें न हो। और जो खेतोंको न बुवावे ऐसा भी मनुष्य हमारे कुटुम्बमें कोई न हो। पण्डितोंके घरमें घास, भूमि



सतामेतानि गेहेषु नोच्छ्रियन्ते कदाचन ॥ ३४ ॥

श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम् ।

प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम् ॥ ३५ ॥

सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो वै शक्तो वोढुं न तथाऽन्ये महीजाः ।

एवं युक्ता भारसहा भवन्ति महाकुलीना न तथाऽन्ये मनुष्याः ॥ ३६ ॥

न तन्मित्रं यस्य कोपाद्विभेति यद्वाऽमित्रं शंकितेनोपचर्यम् ।

यस्मिन्मित्रे पितरीवाश्वसीत तद्वै मित्रं संगतानीतिराणि ॥ ३७ ॥

यः कश्चिदप्यसंबद्धो मित्रभावेन वर्तते ।

स एव बंधुस्तन्मित्रं सागतिस्तत्परायणम् ॥ ३८ ॥

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः ।

पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः ॥ ३९ ॥

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम् ।

अर्थाः समभिवर्तते हंसाः शुष्कं सरो यथा ॥ ४० ॥

जल और सचे वचन कभी नष्ट नहीं होते, अर्थात् सज्जन लोग अतिथिको बिछानेके वास्ते तृण, पीनेको जल और प्रेमसे मीठा वचन देते हैं । यदि सज्जनोंके पास और कुछभी न हो तो वह अतिथिका इससे ही सत्कार करते हैं येही चार लक्षण अच्छे कुटुम्बके हैं। ३२-३४

हे राजन् ! हे महाबुद्धिमान ! धर्म करनेवाले महात्मा परम श्रद्धासे इन चारों वस्तुओंको आदर सहित अपने घरमें रखते हैं । हे राजेन्द्र ! जैसे भारी भारको रथके योग्य लकड़ीके सिवाय और कोई नहीं ले चलता अर्थात् रथके योग्य लकड़ी लेचल सकती है, ऐसे ही उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्य चरित्र-रूपी भारको जितना उठा सकते हैं, उतना

सामान्य पुरुष नहीं । जिसके भयसे मनुष्य डरे, अथवा जिसके कर्मोंसे मित्रको शङ्का हो, वह मित्र नहीं है । जिस मित्रका मित्र पिताके समान विश्वास करे, वही मित्र है, शेष सम्बन्ध मात्र हैं । ( ३५-३७ )

जो कोई बिना सम्बन्धके मित्रता करे वही मित्र है, वही बन्धु है, और वही सेवा करने योग्य है । जिस मनुष्यका चित्त चञ्चल है, बूढ़ोंकी सेवा नहीं करता, जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं है, उसकी मित्रता भी स्थिर नहीं है । जिसके मन, चित्त और शरीर चञ्चल हैं, जो इन्द्रियोंके वशमें रहता है, उस मनुष्यको धर्म और अर्थ इस प्रकार छोड़ देते हैं, जैसे सूखे तलावको हंस । ३८-४०



अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः ।

शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा ॥ ४१ ॥

सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये ।

तान्मृतानपि कव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥ ४२ ॥

अर्चयेदेव मित्राणि सति वाऽसतिवा धने ।

नानर्थयन्प्रजानाति मित्राणां सारकल्गुताम् ॥ ४३ ॥

सन्तापाद्भ्रश्यते रूपं सन्तापाद् भ्रश्यते बलम् ।

सन्तापाद् भ्रश्यते ज्ञानं सन्तापाद्वाधिमृच्छति ॥ ४४ ॥

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते ।

अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ ४५ ॥

पुनर्नरो म्रियते जायते च पुनर्नरो हीयते वर्द्धते च ।

पुनर्नरो याचति याच्यते च पुनर्नरः शोचति शोच्यते च ॥ ४६ ॥

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च ।

पर्यायशः सर्वभेदे स्पृशन्ति तस्माद्धीरो न च हृष्येन्न शोचेत् ॥ ४७ ॥

जिसका चित्त मेघके समान चञ्चल हो, जो बिना कारणही क्रोध करे और बिना कारण प्रसन्न हो जाय, वह मूर्ख है। जो अत्यन्त सत्कार पाकर और कृतकृत्य होकर भी मित्रका काम न करे, मरनेके पश्चात् मांस खानेवाले पक्षी भी उस कृतघ्नका मांस नहीं खाते। बुद्धिमानको उचित है कि चाहे दरिद्री हो चाहे धनवान हो अपने मित्रोंकी सेवा करता रहै, क्योंकि मांगनेके सिवा मित्रकी उदारता वा हीनता समझने में नहीं आती। इष्टके वियोगके दुःखसे रूप नष्ट होजाता है, संतापसे बल नष्ट होता है, क्रोधके कारण ज्ञान नष्ट होता है, और क्रोध करनेसे अनेक रोग हो

जाते हैं। ( ४१-४४ )

हे राजन् ! मित्रके शोकसे शरीर जलता है और शत्रु प्रसन्न होते हैं, इस लिये आप अपने मनको शोककी ओर मत जाने दीजिये। मनुष्य बार बार उत्पन्न होता है, बार बार मरता है, बार बार मनुष्यकी उन्नति होती है, बार बार धन नाश होता है, बार बार भिक्षा मांगता है; बार बार दान करता है, कभी सोचता है, और कभी शत्रु ओंका शोक बढ़ाता है। सुख, दुःख, लाभ, हानि, मरना और जीना ये सब प्रायः हुआही करते हैं, इस लिये मनुष्यको उचित है कि उन सबसे सुख और दुःख न माने। पाँचों इन्दी और

चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि तेषां यच्चद्वर्द्धते यत्र यत्र ।

ततस्ततः स्रवते बुद्धिरस्य चिद्बोदकं भादिव नित्यमंभः ॥ ४८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया ।

मंदानां मम पुत्राणां युद्धेनांतं करिष्यति ॥ ४९ ॥

नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः ।

यत्तत्पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते ॥ ५० ॥

विदुर उवाच—नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।

नान्यत्र लोभसंत्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ ॥ ५१ ॥

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विंदते महत् ।

गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विंदति ॥ ५२ ॥

अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः

रागद्वेषविनिर्मुक्ता विचरन्तीह मोक्षिणः ॥ ५३ ॥

स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः ।

तपसश्च सुतप्तस्य तस्यांते सुखमेधते ॥ ५४ ॥

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते ।

छां मन ये चञ्चल हैं, जहां जहां इनकी अन्यथा वृद्धि होती है, तहां तहां मनुष्यकी बुद्धि इस प्रकार नष्ट होती है जैसे छेद युक्त घड़ेसे जल गिरता है । (४५-४८)

महाराज धृतराष्ट्र बोले, राजा युधिष्ठिर मेरे अन्यायसे इस प्रकार जल गये हैं, जैसे किसी कारणसे शरीरमें अग्नि रुक जाती है। अब वे युद्धमें हमारे मूर्ख पुत्रोंका अवश्य नाश करेंगे। है महाबुद्धिमान ! मेरा मन सदा घबड़ाता रहता है, इस लिये आप ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मेरा मन स्थिर हो । (४९-५०)

विदुर बोले, हे पापरहित महाराज ! विद्या, तप, इन्द्रिय जीतना, और लोभ-न करना, इनके सिवा आपकी शान्तिका उपाय सुझे और कुछ नहीं दीखता। बुद्धिसे भय नाश होता है, तपसे परम पद मिलता है, गुरुओंकी सेवासे ज्ञान होता है, और योगसे शान्ति प्राप्त होती है। जगत्में दान के पुण्यके फलको छोड़कर और वेद पढ़नेसे फलको छोड़कर, राग और द्वेषसे छूटे महात्मा जगत्में मोक्षकी इच्छासे घूमते हैं । (५१-५३)

उत्तम पढ़ने, उत्तम युद्ध, उत्तम किये हुए कर्म और उत्तम तप इन चारोंका फल करनेके अन्तमें मिलता है ।

न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः ॥ ५५ ॥  
 न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्म न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः ।  
 न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति ॥ ५६ ॥  
 न वै तेषां स्वदत्ते पथ्यमुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम् ।  
 भिन्नानां वै मनुजेंद्र परायणं न विद्यते किञ्चिदन्यद्विनाशात् ॥ ५७ ॥  
 संपन्नं गोषु संभाव्यं संभाव्यं ब्राह्मणे तपः ।  
 संभाव्यं चापलं स्त्रीषु संभाव्यं ज्ञातितो भयम् ॥ ५८ ॥  
 तंतवोऽऽप्यायिता नित्यं तनवो बहुलाः समाः ।  
 बहून्बहुत्वादायासान्सहन्तीत्युपमा सताम् ॥ ५९ ॥  
 धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च ।  
 धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥ ६० ॥  
 ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।  
 वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ॥ ६१ ॥

हे राजन् ! अनेक बन्दी भांटोंकी स्तुति सुननेपर भी और उत्तम शय्यापर सोनेसे भी ज्ञातियोंसे भिन्न हुए मनुष्यको सुख नहीं होता, और न ज्ञातियोंसे भिन्न मनुष्य स्त्रियोंसे भी प्रसन्न होता है । जातिमें भेद करनेवाले मनुष्य धर्म नहीं करते, सुख नहीं भोगते, जातिमें भेद करनेवालोंका आदर नहीं होता और न उनको शान्ति अच्छी लगती है। ५४-५६

हे मनुजेंद्र ! ज्ञातियोंमें भेद करनेवाले मनुष्योंको हित कारक वचन भी अच्छा नहीं लगता, उनका योग क्षेमभी अच्छी तरह से नहीं चलता, भेद वाले लोकोंका नाशके बिना दूसरा परिणाम नहीं होता । गौओंमें दूध आदि संपत्ति, ब्राह्मणोंमें तप, स्त्रियोंमें चञ्चलता और

मनुष्योंको जातिसे भय, यह होनेके योग्य ही है । आपने बालकपनमें पाण्डव रूपी तंतुओंको पाला था, अब वे वनमें इकट्ठे मिलकर अनेक कष्ट सहकर महात्माओंके दृष्टान्तरूप हो गये हैं, छोटे निर्बल धागे यदि इकट्ठे हो जाय, तो वे अपनी संघशक्तिके कारण बहुत शक्तिका कार्य करते हैं । हे भरतकुल सिंह धृतराष्ट्र ! अलग अलग रखे हुए काठोंमें आग लगानेसे केवल घुवां निकलता है और संग रखनेसे सब जल उठते हैं, ऐसेही जातिका भी प्रभाव है । ( ५७-६० )

जो दुरात्मा ब्राह्मण, स्त्री और गौ-ओंसे अपना प्रराक्रम दिखलाता है वह इस प्रकार गिरता है, जैसे पका हुआ

महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः ।

प्रसह्य एव वातेन सस्कंधो मर्दितुं क्षणात् ॥ ६२ ॥

अथ ये सहिता वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठिताः ।

ते हि शीघ्रतमान् वातान्सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात् ॥ ६३ ॥

एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम् ।

शक्यं द्विषंतो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥ ६४ ॥

अन्योन्यसमुपष्टंभादन्योन्यापाश्रयेण च ।

ज्ञातयः संप्रवर्द्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥ ६५ ॥

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः ।

येषां चान्नानि भुंजीत ये च स्युः शरणागताः ॥ ६६ ॥

न मनुष्ये गुणः कश्चिद्राजन्सधनतामृते ।

अनातुरत्वाद्भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः ॥ ६७ ॥

अन्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि पापानुबंधं परुषं तीक्ष्णमुष्णम् ।

सतां पेयं यत्र पिबन्त्यसंतो मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥ ६८ ॥

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम् ।

डंटलसे फल । जैसे अनेक शाखाओंसे युक्त फल और फूलोंसे भरा अकेला वृक्ष वायु लगनेसे गिर जाता है, ऐसेही अकेला मनुष्यभी शत्रुके हाथसे मारा जाता है । जिस वनमें पास पास अनेक वृक्ष लगे हों, तहां अत्यन्त वायु चलनेसे भी वृक्ष नहीं टूटते, क्योंकि वहां एक वृक्षको दूसरेका आश्रय होता है, ऐसेही अनेक गुण होनेपर भी अकेलेको शत्रु मार डालते हैं । ( ६१-६४ )

जैसे पास पास होनेके कारण तलावमें कमल बढते हैं, ऐसेही परस्पर प्रेम करनेसे एक दूसरेके आश्रयसे जाति बढती है । ब्राह्मण, जाति, बालक, स्त्री

जिसका अन्न खाया हो सो, और शरणमें आये मनुष्यको मारना नहीं चाहिये । हे राजन् ! आपका कल्याण हो; मनुष्यमें सधन होनेके सिवा और रोग रहित होनेके सिवा कोई गुण नहीं है; क्योंकि रोगी मनुष्य मरे हुएके तुल्य है । ( ६५-६७ )

हे महाराज ! आप रोगरहित और समर्थ हैं, इस लिये पाप बढानेवाले तेज, गर्म, कडवे, रोगरहित और पण्डितोंके पीने योग्य क्रोधको पीकर शान्त होइये । रोगी फलोंका कहीं आदर नहीं करता । रोगी सदा दुःखसे मरारहता है, इस लिये वह कुछ नहीं सम

दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव न बुध्यन्ते धनभोगान्न भौख्यम् ॥ ६९ ॥  
 पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं वचो मे द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन् ।  
 दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां कितवत्वं पांडिता वर्जयन्ति ॥ ७० ॥  
 न तद्वलं यन्मृदुना विरुध्यते सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः ।  
 प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥ ७१ ॥  
 धार्तराष्ट्राः पांडवान्पालयंतु पांडोः सुतास्तव पुत्रांश्च पांतु ।  
 एकारिमित्राः कुरवो ह्येककार्या जीवंतु राजन् सुखिनः समृद्धाः ॥ ७२ ॥  
 मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ ।  
 पार्थान्बालान्वनवासप्रतप्तान् गोपायस्व स्वं यशस्तात रक्षन् ॥ ७३ ॥  
 संधत्स्व त्वं कौरव पांडुपुत्रैर्मा तेऽन्तरं रिपवः प्रार्थयंतु ।  
 सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेंद्र ॥ ७४ ॥ [१२८३]  
 इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

झता और न सुखोंको भोग सकता है ।  
 हे महाराज ! मैंने जिस समय द्रौपदी-  
 को जुवेमें हारी हुई देखा था, उसी स-  
 मय आपसे कहा था, कि पाण्डव लोग  
 जुवेकी प्रशंसा नहीं करते; इस लिये  
 दुर्योधनको जुवेसे रोकिये । परन्तु आ-  
 पने मेरा वचन नहीं सुना था; इसीसे  
 यह दुःख प्राप्त हुआ है । ( ६८-७० )

हे राजेन्द्र ! जो क्षमावान मनुष्यसे  
 वैर करावे, वह बली नहीं है । मनुष्यको  
 उचित है कि सदा सूक्ष्म धर्म करे ।  
 अन्यायसे उत्पन्न हुई लक्ष्मी वंशका  
 नाश कर देती है, और न्यायसे उत्पन्न  
 हुई लक्ष्मी पुत्र तथा पोतोंतक रहती है ।  
 हे राजन् ! हमारी संमतिमें यह आता  
 है कि आपके पुत्र पाण्डवोंकी रक्षा करें,  
 और पाण्डुके पुत्र आपके पुत्रोंका पालन

करें; जो कौरवोंके शत्रु हों, सो पाण्ड-  
 वोंके भी शत्रु हों; और जो पाण्डवोंके  
 शत्रु हों सो कौरवोंकेभी शत्रु हों; ऐ-  
 सेही कौरव और पाण्डवोंके मित्रभी ए-  
 कही हों । ऐसा करनेसे दोनोंकी उन्न-  
 ति होगी और आप सब बहुत दिन तक  
 सुखसे जीवेंगे । ( ७१-७२ )

हे अजमीदवंशोत्पन्न प्यारे धृतराष्ट्र !  
 आप इस समय सब कुरुकुलके स्वाभी  
 हैं, यह समस्त वंश आपके अधीन है;  
 आपने बालकपनमें पाण्डवोंको पाला  
 था; अब वे वनवाससे दुःखी होगये  
 हैं; इस लिये उनकी रक्षा करके अपने  
 यशको बढ़ाइये । हे नरराज ! पाण्डव  
 धर्म करते हैं; इस लिये आप उनसे  
 सन्धि कीजिये; इससे आपके शत्रुभी  
 आपकी सेवा करेंगे । आप दुर्योधनको

विदुर उवाच—सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ।

वैचित्रवीर्यं पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥ १ ॥

दानवैर्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत् ।

अथो मरीचिनः पादानग्राह्यान् गृह्णतस्तथा ॥ २ ॥

यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्येद्यश्चातिवेलं भजते द्विषंतम् ।

स्त्रियश्च यो रक्षति भद्रमश्नुते यश्चायाच्यं याचते कथ्यते वा ॥ ३ ॥

यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी ।

अश्रद्धधानाय च यो ब्रवीति यश्चाकाम्यं कामयते नरेंद्र ॥ ४ ॥

वध्वाऽवहासं श्वशुरो मन्यते यो वध्वाऽवसन्नभयो मानकामः ।

परक्षेत्रे निर्वपति यश्च बीजं स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम् ॥ ५ ॥

यश्चापि लब्ध्वा न स्मरामीति वादी दत्त्वा च यः कथयति याच्यमानः ।

यश्चासतः सत्त्वमुपानयति एतान्नयति निरयं पाशहस्ताः ॥ ६ ॥

यस्मिन्यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिन्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।

मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥ ७ ॥

युद्ध मत करने दीजिये । ( ७३-७४ )

उद्योगपर्वमें छतीस अध्याय समाप्त । [ १२८३ ]

उद्योगपर्वमें सैतीस अध्याय

विदुर बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र !  
स्वयम्भु पुत्र मनुने इन सत्रह मनुष्योंको  
ऐसा कहा है जो कोई मुष्टीसे आकाश-  
को पीटे, जो आकाशमें उगी मेघेन्द्रकी  
धनुषको नवाना चाहे, जो न पकड़ने योग्य  
सूर्य और चन्द्रमाकी किरणको प-  
कड़ना चाहे, जो अदुष्टको शिक्षा दे, जो  
थोड़े लाभसे प्रसन्न हो, जो बहुत दि-  
नतक शत्रु की सेवा करे, जो स्त्रीकी  
रक्षा करके कल्याण चाहे, जो मांग-  
नेके अयोग्य वस्तुको मांगे, जो कुछ  
काम करके अपनी प्रशंसा करे, जो कु-

लीन होकर बुरा काम करे, जो निर्बल  
होकर बलवानसे वैर करे; जो श्रद्धाही-  
नसे बात करे, जो न करने योग्य  
कामनाको करे, जो अपने बेटेकी बहूसे  
हंसी करे, जो अपने बेटेकी बहूसे न  
डरे, जो दूसरेके खेतमें अपना बीज बो-  
वे, जो बहुत समयतक स्त्रियोंसे विवाद  
करे, जो बहुत लेकरभी देनेवाले मनु-  
ष्यसे कहे कि हमें स्मरण नहीं है; जो  
घरमें आये हुए भीख मांगनेवालेसे  
अपनी प्रशंसा करे और जो दुष्टको साधु  
बतानेका हठ करे,—इन सत्रह मनु-  
ष्योंको मरनेके समय फासा लेकर यम-  
दूत आते हैं। जो जैसा मनुष्य हो, उसके  
सङ्ग वैसाही वर्त्ताव करना चाहिये; दुष्टके

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया ।

कामो हियं वृत्तमनार्यमेवा क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—शतायुर्कृतः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा ।

नाप्नोत्यथ च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ ९ ॥

विदुर उवाच—अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यगो नराधिप ।

क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥ १० ॥

एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम् ।

एतानि मानवान् व्रंति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥ ११ ॥

विश्वस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः ।

वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत ॥ १२ ॥

आदेशकृद्वृत्तिहंता द्विजानां प्रेषकश्च यः ।

शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः ।

एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥ १३ ॥

गृहीतवाक्यो नयविद्वदान्यः शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च ।

सङ्ग दुष्टता और साधुके सङ्ग साधुता करनी चाहिये । बुढापा रूपको, आशा धैर्यको, मृत्यु प्राणोंको, डाह धर्मको, काम लज्जाको, दुष्टकी सेवा अच्छे चरित्रोंको; क्रोध लक्ष्मीको और अभिमान सबको नाश कर देता है । ( ७—८ )

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर! सब वेदोंमें मनुष्यकी अवस्था सौ वर्षकी लिखी है । परन्तु सब सौ वर्ष नहीं जीते; वह कौनसा कारण है जिससे आयु घट जाती है ? ( ९ )

विदुर बोले, हे राजेन्द्र ! अत्यन्त अभिमान, बहुत विवाद करना, किसीकी वस्तुको न देना, क्रोध, अपनाही पालन करनेकी इच्छा और मित्रोंसे वैर करना, येही छः तेज खड्ग मनुष्योंकी

आयुको काटते हैं । मनुष्यको मृत्यु नहीं मारती, येही छः वस्तु मारते हैं । हे भारत ! तेरा कल्याण हो, जो विश्वास किये हुए मनुष्यकी स्त्रीसे कुकर्म करे, जो गुरुकी शय्यामें आरोहण करे, जो ब्राह्मण होकर शूद्रीसे सङ्गम करे, वा मद्य पीवे, जो दुष्टोंकी आज्ञा पाले, जो ब्राह्मणोंकी वृत्ति नाश करे, जो ब्राह्मणोंको नौकर रखे, ये सब ब्राह्मणको मारनेवाले मनुष्यके समान पापी हैं; वेदमें यह भी लिखा है कि इनसे संबंधकरनेसे प्रायश्चित्त करना चाहिये । ( १०-१३ )

जो विद्वानोंके वचनोंको ग्रहण करे, नीतिको जानता हो, दान देता हो, पंचमहायज्ञोंसे बचे हुए अन्नको खाता

नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥१४॥

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।

अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ १५ ॥

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये ।

अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥ १६ ॥

त्यजेत्कुलार्थं पुरुषं ग्रामस्यार्थं कुलं त्यजेत् ।

ग्रामं जनपदस्यार्थं आत्मार्थं पृथिवीं त्यजेत् ॥ १७ ॥

आपदर्थं धनं रक्षेद्द्वारान् रक्षेद्द्वनैरपि ।

आत्मानं सततं रक्षेद्द्वारैरपि धनैरपि ॥ १८ ॥

द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम् ।

तस्मात् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ १९ ॥

उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राजन्नेदं युक्तं वचनं प्रातिपेय ।

तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य न रोचते तव वैचित्रवीर्य ॥ २० ॥

काकैरिभाश्चित्रवर्हान्मयूरान्पराजयेथाः पाण्डवान्धार्तराष्ट्रैः ।

हित्वा सिंहान् क्रोष्टुकान्गूहमानाः प्राप्ते काले शोचिता त्वं नरेन्द्र ॥२१॥

हो; किसीका द्वेष न करता हो; विना अनर्थ किये न घबड़ाय; उपकारको माने; सत्य बोले और सबके सङ्ग कोमलता करे, ऐसा विद्वान् स्वर्गको जाता है । हे राजन् ! सदा प्यारी बात कहनेवाले मनुष्य बहुत मिलते हैं; परन्तु अप्रिय और हितकारी वचन कहने और सुननेवाले बहुत कम हैं । (१४-१५)

जो राजाके प्रेम और क्रोधको छोड़कर हितकारी कड़वा वचन कहता है, वही राजाका सहायक है । कुटुम्बके लिये मनुष्यको छोड़ दे, गाँवके लिये कुटुम्बको छोड़ दे, नगरके वास्ते गाँवको छोड़ दे और अपने हितके लिये

सब जगतको छोड़ दे । आपदाके लिये धनकी रक्षा करे, धनसे कुटुम्बकी रक्षा करे अपनी रक्षा स्त्री और धनसे करे । हमने पहले समयमें भी यह देखा है कि, जुवा वैरका मूल है; इस लिये बुद्धिमानको उचित है कि हंसीके लिये भी जुवा न खेले । (१६-१९)

हे राजन् ! हे विचित्रवीर्यपुत्र ! मैंने जुवेके समय आपसे कहा था, कि हे राजन् ! यह जुवा खेलना अच्छा नहीं है; परन्तु आपको मेरे वे वचन ऐसे कड़वे लगे जैसे रोगीको पथ्य । आप क्या कौवेरूपी अपने पुत्रोंसे मीररूपी पाण्डवोंको हराना चाहते हैं ? हे पृथ्वीनाथ !



यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य ।  
तस्मिन्भृत्या भर्तारि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥ २२ ॥  
न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन राज्यं धनं संजिघृक्षेदपूर्वम् ।  
त्यजन्ति ह्येनं वंचिता वै विरुद्धाः स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः ॥ २३ ॥  
कृत्यानि पूर्व परिसंख्याय सर्वाण्यायव्यये चानुरूपां च वृत्तिम् ।  
संगृहीयादनुरूपान्सहायान् सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि ॥ २४ ॥  
अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतंद्री ।  
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकंप्यः ॥ २५ ॥  
वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः ।  
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः ॥ २६ ॥  
अस्नग्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः ।  
अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदंत्यष्टगुणोपपन्नम् ॥ २७ ॥

आप सिंहको छोड़कर सियारोंकी रक्षा करके समय आनेपर सोचेंगे । हे प्यारे घृतराष्ट्र ! जो अपने भक्त और हितमें तत्पर दासपर कभी क्रोध नहीं करता, सेवक उसी स्वामीसे प्रसन्न रहता है । और आपत्तिके समय उसे नहीं छोड़ता । (२०-२२)

बुद्धिमानको उचित है कि नौकरोंको वृत्ति न देकर धन और राज्यकी आशा न करे; क्योंकि अच्छे भोग न पानेसे और वंचित होनेसे, प्रेम करनेवाले अच्छे मन्त्री विरुद्ध होकर राजाको छोड़ देते हैं । राजाको उचित है कि सब कामोंको और आयव्ययको देखकर नौकरोंकी वृत्तिका निश्चय करे, पश्चात् सहाय करने योग्य मनुष्योंकी सहायता ले; क्योंकि कठिन काम विना सहायकोंके

सिद्ध नहीं होते । जो आलस रहित उत्तम सेवक स्वामीके अभिप्रायको जानकर काम करता है, स्वामीके कल्याणकी बात कहता है, अच्छे काम करता है, राजाकी शक्तिको जानता है, उस सेवकके ऊपर राजाको अपने कुटुम्बके समान कृपा करनी चाहिये । (२३-२५)

जो आज्ञा करने परभी अपने स्वामीके वचनोंका निरादर करे, प्रतिकूल बात कहे, बताये हुए कामको न करे, और जो अपनी बुद्धिका अभिमान करे, वह मूर्ख सेवक उसी समय निकाल देनेके योग्य है । जो गर्वयुक्त न हो, सामर्थ्य हीन न हो, जिसको दया हो और जो प्रेमयुक्त हो, जो सब काम शीघ्र करता हो, जिसको शत्रु न जीत सकता हो, जिसको कुछ रोग न हो, जिसका वचन

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले ।  
 न चत्वरे निशि तिष्ठेन्नृगूढो न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयति ॥ २८ ॥  
 न निह्वं मंत्रगतस्य गच्छेत्संसृष्टमंत्रस्य कुसंगतस्य ।  
 न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीति सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात् ॥ २९ ॥  
 घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा ।  
 सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते ॥ ३० ॥  
 अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुतं दमश्च ।  
 पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथा शक्तिकृतज्ञता च ॥ ३१ ॥  
 एतान्गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य ।  
 राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान्गुणानेष गुणो बिभर्ति ॥ ३२ ॥  
 गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः ।  
 स्पर्शश्च गंधश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥ ३३ ॥  
 गुणाश्च षण्मिमतभुक्तं भजन्ते आरोग्ययायुश्च बलं सुखंच ।

कठोर न हो, ऐसे मनुष्यको दूत बनाना चाहिये, शास्त्रोंमें दूतके येही आठ लक्षण लिखे हैं। बुद्धिमान दूतको उचित है कि सन्ध्या समय शत्रुके घरमें न जाय, रात्रिको चौराहेमें छिप कर न खड़ा हो, और जिस स्त्रीपर राजाका चित्त हो, उसपर अपना चित्त न चलावे। २६-२८

दुष्ट सङ्गति करनेवाले वा बुरे सम्मतिवाले राजाके पास जाकर उसकी संमतिके विरुद्ध न कहे। राजासे यह न कहे कि हम आपका विश्वास नहीं करते हैं, और कुछ बहाना करके उसके कामको न टाल दे। लज्जावान राजा, कुलटा स्त्री, राजाका नौकर, भाई, पुत्र, बालक, बेटेवाली विधवा, सेनाका नौकर और जिसका अधिकार छीना गया हो, इतने

मनुष्योंसे कुछ व्यवहार नहीं करना चाहिये। बुद्धि, उत्तम कुलमें जन्म, विद्या, इन्द्रिय जीतना, पराक्रम, थोड़ा बोलना और शक्तिके अनुसार दान देना, इन्हीं आठ गुणोंसे मनुष्यका प्रकाश होता है। ( २९-३८ )

हे प्यारे धृतराष्ट्र ! राजा जिसका आदर करे, वह मनुष्य इन सब गुणोंमें बढ जाता है; इस राजकृपासे आठों गुण प्राप्त होते हैं। हे राजेन्द्र ! बल, रूप, स्वर और वर्णकी शुद्धता, पवित्र वस्तुको छूना, पवित्र सुगन्धिको सूंघना, धन, को मलता और अच्छी स्त्री, ये आठों गुण नित्य स्नान करनेवाले महात्माको मिलते हैं। परिमित खानेवाले मनुष्यको रोग नहीं होता, उसके आयु, बल और सुख

अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ॥ ३४ ॥

अकर्मशालं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।

अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान्गृहे न प्रतिवासयेत ॥ ३५ ॥

कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम् ।

निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्नमेतान्भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ॥ ३६ ॥

संक्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं नित्यानृतं चाहृढभक्तिकं च ।

विसृष्टरागं पटुमानिनं चाप्येतान्न सेवेत नराधमान् षट् ॥ ३७ ॥

सहायबंधना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबंधनाः ।

अन्योन्यबंधनावेतौ विनान्योन्यं न सिद्ध्यतः ॥ ३८ ॥

उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय कांचित् ।

स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत् ॥ ३९ ॥

हितं यत्सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम् ।

तत्कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ॥ ४० ॥

बढ़ते हैं; उसका पुत्र बहुत चलवान् होता है; इसी लिये महात्मा लोग बहुत खानेवालेकी निन्दा करते हैं, ऐसी उस की निन्दा नहीं करते । ( ३१-३४ )

जो बुरा कर्म करे, बहुत खाय, लोकका वैर करे, बहुत छल करे, क्रूरता धारण करे, जो देश और कालको न समझे तथा बुरा वेश धारण करे, इन मनुष्योंको गृहसे निकाल देना चाहिये । जो दान करे, गाली दे, विद्या न पढ़े, सदा वनमें रहे, धूर्त हो, जो मानने योग्य मनुष्यका आदर न करे, जिसको दया न हो, जो सबसे वैर करे और जो उपकारको न माने, इन मनुष्योंसे अत्यन्त दुःख पडनेपर भी भिक्षा न मांगनी चाहिये । जो सदा बुरे काम करे, जो

सदा भूल करे, जो सदा झूठ बोले, जिसका प्रेम स्थिर न हो, जिसको कुछ प्रेम ही न हो, और जो अपने आपको बहुत चतुर माने, इन छः मनुष्योंसे प्रेम नहीं करना चाहिये । ( ३५-३७ )

धनसे सहायक मिलते हैं, और सहायकोंसे धन मिलता है; ये दोनों परस्पर ऐसा सम्बन्ध रखते हैं कि एकके बिना दूसरेकी सिद्धि नहीं होती । मनुष्यको उचित है कि पुत्रोंको उत्पन्न करके विद्या पढ़ावे, फिर उनको सब ऋणोंसे छुड़ा दे, पश्चात् किसी वृत्तिमें लगा दे और लडकियोंका अच्छे स्थानपर विवाह कर दे । इसके पश्चात् वनमें जाकर तपस्या करे । मनुष्यको उचित है कि जिसमें अपना और सब जगतका कल्या-

वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वसुत्थानमेव च ।

व्यवसायश्च यस्य स्यात्तस्याऽवृत्तिभयं कुतः ॥ ४१ ॥

पश्य दोषान्पाण्डवैर्विग्रहे त्वं यत्र व्यथेयुरपि देवाः सशक्राः ।

पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो यशः प्रणाशो द्विषतश्च हर्षः ॥ ४२ ॥

भीष्मस्य कोपस्तव चैवैकल्प द्रोणस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।

उत्सादयेल्लोकमिमं प्रवृद्धः श्वेतो ग्रहस्तिर्यग्निवापतन् खे ॥ ४३ ॥

तव पुत्रशतं चैव कर्णः पञ्च च पाण्डवाः ।

पृथिवीमनुशासेयुराखिलां सागरांबराम् ॥ ४४ ॥

धार्तराष्ट्र वनं राजन् व्याघ्राः पाण्डुसुता मताः ।

मा वनं छिंधि सव्याघ्रं मा व्याघ्रा नीनशन्वनात् ॥ ४५ ॥

न स्याद्वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा न स्युर्कृते वनम् ।

वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान् रक्षति काननम् ॥ ४६ ॥

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान् ।

ण हो ऐसा काम ईश्वरार्पण बुद्धिसे करे ।  
इससे सब प्रयोजन सिद्ध हो जाते  
हैं । (३८-४०)

जिस मनुष्यमें अपनी उन्नति करने-  
की शक्ति, शत्रुओंका पराजय करनेका  
शौर्य, सामर्थ्य, धर्म ज्ञान आदि, उद्योग  
और काम करनेका निश्चय, ये गुण हों  
उसे दरिद्रसे क्या भय है ? हे राजेन्द्र !  
जिन पाण्डवोंसे देवताओंके सहित इन्द्र  
कांपते हैं, उसके सङ्ग वैर करनेसे क्या  
क्या हानियां हैं, सो हम आपको दिखा-  
ते हैं, जबसे पाण्डव और आपके पुत्रोंसे  
वैर हुआ है, तभीसे आपका चित्त घबडा  
रहा है, यशका नाश हो रहा है और  
शत्रु प्रसन्न हो रहे हैं; जैसे धूमकेतु तारा  
आकाशमें उदय होकर जगतका नाश

करता है, तैसेही भीष्म, द्रोणाचार्य,  
महाराज युधिष्ठिर और आपका क्रोध  
जगतका नाश कर सकता है । (४१-४३)

हे इन्द्रतुल्य ! आपके सौ पुत्र, कर्ण,  
और पाचों पाण्डव मिलकर समस्त  
पृथ्वीका राज्य करें, यही हमारी सम्मति  
है । हे राजेन्द्र ! आपके पुत्र वन हैं,  
और पांचों पाण्डव सिंह हैं; आप वनको  
मत काटिये और सिंहोंको भी मत मारिये।  
हे राजेन्द्र ! वन सिंहकी और सिंह  
वनकी रक्षा करता है; बिना सिंहके  
वनका नाश हो जाता है और बिना  
वनके सिंहका नाश हो जाता है ! इस  
लिये आप वन और सिंह दोनोंहीकी रक्षा  
कीजिये । (४४-४६)

आपके पापी पुत्र पाण्डवोंका कल्या-

यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः ॥ ४७ ॥  
 अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत् ।  
 न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम् ॥ ४८ ॥  
 यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः ।  
 तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ॥ ४९ ॥  
 यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते ।  
 धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विंदति ॥ ५० ॥  
 सन्निगच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः ।  
 स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति ॥ ५१ ॥  
 बलं पंचविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे ।  
 यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते ॥ ५२ ॥  
 अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते ।  
 तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः ॥ ५३ ॥  
 यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम् ।  
 अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ॥ ५४ ॥  
 येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत ।

न नहीं चाहते और न उनके गुणोंकी ओर ध्यान देते हैं; ये केवल पाण्डवोंके दोषोंकी हूँदते हैं, मनुष्यको उचित है कि जब अपने अच्छी अर्थ सिद्धि की इच्छा करे, तब पहले धर्म करे, जैसे स्वर्गसे अमृतका नाश नहीं होता, ऐसेही धर्म को छोड़कर अर्थ दूर नहीं होता । जो सदा पाप से परावृत्त होता है, और अपने मनको कल्याण में लगाता है वही प्रकृति और कार्य भूत महदादि तत्त्वोंको जानता है । ४७-४९

जो मनुष्य समयके अनुसार धर्म, अर्थ और काम करता है, वह इन

तीनोंको इस लोक और परलोक में मोक्षको प्राप्त करता है । हे राजन् ! जो आपत्ति पड़नेपरभी नहीं डरता और जो क्रोध और आनन्दको रोकता है, वही संपत्तिका पात्र है । हे राजन् ! मनुष्योंके जो पांच प्रकारके बल हैं, उनका वर्णन हम आपसे करते हैं, उन पांचोंमें जो बाहुबल है, तो सबसे छोटा है । अच्छा मन्त्री मिलना, अपने पुरुषोंका बल मिलना, तिसको अभिजातबल (कुलका बल) कहते हैं । तथा बाहुबल येही चार बल हैं । हे भारत ! जो इन चारों बलोंका संग्रह करता है,

यद्वलानां बलं श्रेष्ठं तत्प्रज्ञाबलमुच्यते ॥ ५५ ॥

महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः ।

तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ॥ ५६ ॥

स्त्रीषु राजसु सुर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु ।

भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति ॥ ५७ ॥

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जंतोश्चिकित्सकाः संति न चौषधानि ।

न होममंत्रा न च मंगलानि नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः ॥ ५८ ॥

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत ।

नावज्ञेया मनुष्येण सर्वं ह्येतेऽतितेजसः ॥ ५९ ॥

अग्निस्तेजो महलोके गृह्णातिष्ठति दारुषु ।

न चोपयुक्ते तदारु यावन्नोदीप्यते परैः ॥ ६० ॥

स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते ।

तदारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा ॥ ६१ ॥

एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः ।

क्षमावंतो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ॥ ६२ ॥

उसको सब बलोंमें श्रेष्ठ बुद्धिबल प्राप्त होता है । ( ५०-५५ )

जो दूसरेकी बड़ी हानीका कारण हो, वह उसका वैरी होता है और उससे वैर करनेसे मनुष्य यह न समझे कि मैं अपने वैरीसे दूर हूं; ऐसा कौन पण्डित है जो स्त्री, राजा, सांप, पटा हुआ, ज्ञानी, स्वामी, शत्रु, भोग और आयुका विश्वास करे । हे राजन् ! जो अपनी बुद्धिरूपी बाणसे शत्रु का नाश करता है, उसकी कोई वैद्य चिकित्सा नहीं कर सकता, उसके लिये कोई औषधी, होम, मन्त्र, मङ्गल, अथर्ववेदके मन्त्र और विष नाशक अच्छी बनाई हुई औषधि

लाभदायक नहीं हैं । ( ५६-५८ )

हे राजेन्द्र ! सांप, अग्नि, सिंह और उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्यका निरादर नहीं करना चाहिये, क्योंकि ये सब महा तेजस्वी हैं। जगतमें अग्निका तेज बहुत माना जाता है, वह सब लकड़ीमें गुप्त रूपमें रहता है, परन्तु जब तक कोई मनुष्य उसे न जलावे, तब तक काष्ठको भी नहीं जला सकता है; परन्तु जब वही अग्नि लकड़ी घिसनेसे प्रकट होजती है, तब वह उस काष्ठ और सब वनको भस्म करदेती है। इसी प्रकार महातेजस्वी पाण्डव लोग इस वंश में अग्निके समान क्षमा कर रहे हैं। ५९-६०

लताधर्मा त्वं सपुत्रः शालाः पांडुसुता मताः ।

न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥ ६३ ॥

वनं राजंस्तव पुत्रोऽम्बिकेय सिंहान्वने पांडवांस्तात विद्धि ।

सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत्सिंहा विनश्येयुर्ह कृते वनेन ॥ ६४ ॥ १३४७

इति श्रीमहाभारते वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

विदुर उवाच— ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।

प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥ १ ॥

पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ ।

सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः ॥ २ ॥

यस्योदकं मधुपर्कं च गां च न मंत्रवित्प्रतिगृह्णाति गेहे ।

लोभाद्भयादथ कार्पण्यतो वा तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः ॥ ३ ॥

चिकित्सकः शल्यकर्ताऽवकीर्णी स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च ।

सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः ॥ ४ ॥

हे राजन्! आप और आपके पुत्र वेली के समान और पाण्डव बड़े शालवृक्षके समान हैं; विना वृक्षके आश्रय वेली नहीं बढ़ती, इस लिये आप पाण्डवोंका आश्रय लीजिये। हे अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र! आप वन और पाण्डव सिंह हैं, विना वनके सिंह और विना सिंहके वन नहीं रहता। इसलिये आप दोनोंहीकी रक्षा कीजिये। ६३-६४

उद्योगपर्वमें सैंतीस अध्याय समाप्त । १३४७

उद्योगपर्वमें अड़तीस अध्याय ।

विदुर बोले, हे महाराज धृतराष्ट्र ! जब कोई ( ज्ञानसे वा अवस्थासे ) बूढ़ा पुरुष घरमें आता है तब युवा मनुष्यका प्राणवायु ऊपरको जाता है, उसको उत्थान और प्रणाम करनेसे फिर घूमकर भीतर चला जाता है। जब कोई गृहस्थ

के घरमें आवे, तब उसे आसन दे, जल लाकर उसके पैर धोवे, पश्चात् उसका कुशल पूछ कर अपना कुशल कहे; फिर उत्तम अन्न खानेको दे। वेद जाननेवाला ब्राह्मण जिससे मधुपर्क, गौ और भोजन न पावे, महात्माओंने उसका जीवन वृथाही कहा है। लोभसे, भयसे या दुष्टतासे जिसके घरसे बिना खाये अतिथि लौट जाय, उसका जीवन वृथा है। ( १-३ )

वैद्य, बाण करनेवाला, भ्रष्ट ब्रह्मचारी, चोर, क्रोधी, मद्यपीनेवाला, गर्भगिराने वाला, सेनाका नौकर, वेद वेचने वाला अर्थात् जो धन लेकर वेद पढाता, इन मनुष्योंके पैर नहीं धोने चाहिये। अतिथि होकर अपने घरमें आनेसे उनको प्रेमसे आदर करना चाहिये। ( ४ )



अविक्रयं लवणं पक्कमन्नं दधि क्षीरं मधु तैलं घृतं च ।  
 तिला मांसं फलमूलानि शाकं रक्तं वासः सर्वगंधा गुडाश्च ॥ ५ ॥  
 अरोषणो यः समलोष्टाश्मकांचनः प्रहीणशोको गतसंधिविग्रहः ।  
 निंदाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ॥ ६ ॥  
 नीवारमूलैर्गुदशाकवृत्तिः सुसंयतात्माग्निकार्येषु चोद्यः ।  
 वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो धुरंधरः पुण्यकृदेष तापसः ॥ ७ ॥  
 अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।  
 दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसनि हिंसितः ॥ ८ ॥  
 न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वते नानिविश्वसेत् ।  
 विश्वासाद्भयमुत्पन्नं भूलान्यपि निकृंतति ॥ ९ ॥  
 अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः ।  
 श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत् ॥ १० ॥  
 पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।

नमक, पके हुए अन्न, दही, दूध, शदह, तेल, घी, तिल, मांस, फल, मूल, साग, लाल कपडा, फूल और गुड ये सब पदार्थ बेचने नहीं चाहिये । हे राजन् ! जिसको क्रोध न हो, जो अन्य द्रव्य और लोहेको समान समझे, जिसको कुछ शोक न हो, जो लड़ाई और खेल को कुछ न समझे, जिसको निन्दा और प्रशंसा समान हो, जो प्रिय और अप्रिय को कुछ न जाने; जो साधारण रूपसे घूमे उसीको भिक्षुक कहते हैं । जो मूल और साक खाता है, जो अपने मनको वशमें रखता है, और अग्नि कार्यमें सावधान हो, और जो वनमें रहता है, तथा दरिद्री होकर भी जो अतिथियोंका सावधानतासे सत्कार करता है वह श्रेष्ठ

और पुण्य करनेवाला है । ( ५-७ )

बुद्धिमानसे वैर करके मैं दूर हूं, ऐसा विश्वास नहीं रखना चाहिये; क्यों कि बुद्धिमानके बड़े लम्बे हाथ होते हैं, वह दूरहीसे अपने शत्रुओंका नाशकर देता है । विश्वास न करने योग्य मनुष्यका विश्वास नहीं करना चाहिये और विश्वास करने योग्य मनुष्यका भी विश्वास बहुत नहीं करना चाहिये, क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ भय जडसे नष्ट करता है । ( ८-९ )

मनुष्यको उचित है कि किसीका प्रहसन न करे, अपनी स्त्रियोंको वशमें रखे, किसीका भाग न छीने, मीठा वचन कहे, कोमलता रखे और स्त्रियोंसे प्यारी वाणी कहे, परन्तु स्त्रियोंके वशमें न हो जाय, महा भाग्यवती पुण्य करने-



मित्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्षया विशेषतः ॥ ११ ॥

पितुरंतःपुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम् ।

गोषु चात्मसमं दद्यात्स्वयमेव कृषिं व्रजेत् ॥ १२ ॥

भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान् ।

अद्वयोऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ १३ ॥

तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ।

नित्यं संतः कुले जाताः पावकोपमतेजसः ॥ १४ ॥

क्षमावंतो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ।

यस्य मंत्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यंतराश्च ये ॥ १५ ॥

स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते ।

करिष्यन्न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् ॥ १६ ॥

धर्मकामार्थकार्याणि तथा मंत्रो न भिद्यते ।

गिरिपृष्ठमुपावृणु प्रासादं वा रहोगतः ॥ १७ ॥

अरण्ये निःशलाके वा तत्र मंत्रोऽभिधीयते ।

वाली, स्त्री पूजा करनेके योग्य हैं। स्त्री घरका धन और घरकी शोभा है, इस लिये उसकी रक्षा सदा करनी चाहिये। मनुष्यको उचित है कि पिताको घरका स्वामी, माताको रसोईकी स्वामिनी, और अपने तुल्य मित्रको गौओंका अधिकार देकर आप खेतीका काम करे; नौकरोंके द्वारा व्यापार, पुत्रोंके द्वारा ब्राह्मणोंकी सेवा करे। ( १०-१३ )

जलसे अग्निकी उत्पत्ति हुई है, ब्राह्मणों से क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं, तथा पत्थरसे लोह उत्पन्न हुआ है। यद्यपि उनका तेज सर्वत्र जा सकता है तथापि आपके उत्पत्तिस्थानोंमें शान्त हो जाता है। सज्जन लोग बड़े कुलमें उत्पन्न हुए, अग्निके

समान तेजस्वी और क्षमावान् हैं। वे ऐसे रहते हैं, जैसे आकार रहित होकर काठके भीतर अग्नि। जिस राजाकी सम्मतिको भीतर और बाहरका कोई मनुष्य न जान सके, वही राजा सब वस्तुओंको देख सकता है, और बहुत दिनतक राज्य करता है। राजाको उचित है कि कार्यसिद्धि होनेके पहिले किसीसे न कहे, जब सिद्ध हो जाय, तब सबमें प्रगट कर दे। ( १३-१६ )

राजाको उचित है कि धर्म और राज्य के कार्योंको ऐसे स्थानपर बैठकर विचारें, जहां कोई न जा सके। सम्मति करनेके ये स्थान हैं, पर्वतका शिखर, एकान्त अटारी और विना तिनकेका जङ्गल।

नासुहृत्परमं मंत्रं भारताहति वेदितुम् ॥ १८ ॥  
 अपंडितो वाऽपि सुहृत् पंडितो वाऽप्यनात्मवान् ।  
 नापरीक्ष्य महीपालः कुर्यात्सचिवमात्मनः ॥ १९ ॥  
 अमात्यं ह्यर्थलिप्सा च मंत्ररक्षणमेव च ।  
 कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदुः ॥ २० ॥  
 धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः ।  
 गूढमंत्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥ २१ ॥  
 अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति ।  
 स तेषां विपरिश्रंशाद्भ्रश्यते जीवितादपि ॥ २२ ॥  
 कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम् ।  
 तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम् ॥ २३ ॥  
 अनधीत्य यथा वेदान्न विप्रः श्राद्धमर्हति ।  
 एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मंत्रं श्रोतुमर्हति ॥ २४ ॥  
 स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः ।  
 अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप ॥ २५ ॥

हे भारत ! अपनी सम्मति प्रेम न करने वाले से, तथा मूर्ख मित्रसे और पंडित होकर भी जिसका मन चंचल है ऐसे मनुष्यको नहीं कहनी चाहिये और न विना परीक्षा किये किसीको मन्त्री बनाना चाहिये । ( १७-१९ )

जिस राजाके धन की इच्छा पूर्ण करना और राज सम्बन्धी गुप्त कार्योंको केवल मन्त्रीही जानते हैं, वही राजा राजोंमें श्रेष्ठ कहाता है । जिस राजाके सिद्ध हुए धर्म, अर्थ और काम संबंधी बातों को सभासद जानें, जिसका मन्त्र गुप्त हो, उस राजाका प्रयोजन निःसन्देह सिद्ध होता है । जो

मूर्ख भूलसे भी बुरा काम करता है, वह उन कार्योंके नष्ट होतेही जीवितसे नष्ट हो जाता है । अच्छे कामोंके करनेसे सुख होता है और उन्हींके न करनेसे पछताना पडता है । ( २०-२३ )

जैसे विना वेद पढा ब्राह्मण श्राद्धमें योग्य नहीं हो सकता; ऐसेही राज्यके छःगुण विना जाने, राजा मन्त्रियोंके वचन सुनने योग्य नहीं होता । हे पृथ्वीनाथ ! जो हानि लाभको समझता है, जो स्थान वृद्धि और क्षयको जानता है, तथा राज्यके छः गुणोंको जानता है और जिसके शीलका सब जगत् आदर करता है, सब पृथ्वी उसीके वशमें

अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्वाऽन्ववेक्षिणः ।  
 आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुंधरा ॥ २६ ॥  
 नाममात्रेण तुष्येत छत्रेण च महीपतिः ।  
 भृत्येभ्यो विसृजेदर्थानैकः सर्वहरो भवेत् ॥ २७ ॥  
 ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं तथा ।  
 अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च ॥ २८ ॥  
 न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः ।  
 न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद्वले सती ॥  
 अहताद्धि भयं तस्माज्जायते न चिरादिव ॥ २९ ॥  
 दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च ।  
 नियंतव्यः सदा क्रोधो बृद्धबालातुरेषु च ॥ ३० ॥  
 निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम् ।  
 कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते ॥ ३१ ॥  
 प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।  
 न तं भर्तारमिच्छन्ति षंडं पतिमिव स्त्रियः ॥ ३२ ॥

रहती है। जो वृथा क्रोध नहीं करता  
 और न वृथा प्रसन्न होता है; जो कामों  
 को करके आप देखता है; जो अपने  
 धनको आप देखता रहता है; वही  
 राजा सुवर्णसे भरी हुई पृथ्वीका राज्य  
 करता है। ( २४-२६ )

जो नाम और छत्र मात्रसे सन्तोष  
 करता है अर्थात् भोगादिकोंसे सम्बन्ध  
 नहीं रखता, जो सब सेवकोंको सुख देता  
 है और किसीका कुछ नहीं छीनता, वही  
 राजा होने योग्य है। ब्राह्मण ब्राह्मणको,  
 पति स्त्रीको, राजा मन्त्रीको तथा दूसरे  
 राजाको जान सकता है। मारनेके योग्य  
 शत्रुको पकड़कर कभी नहीं छोड़ना

चाहिये; यदि बल नहीं है तो और बात  
 है, परन्तु बल रहनेपर अवश्य उसको  
 मारही डालना चाहिये। जीते हुए  
 शत्रुको छोड़नेसे पुनः थोड़े ही काल  
 में हानि होनेका भय रहता है। (२७-२९)

देवता, राजा, ब्राह्मण, बूढ़े, रोगी  
 और बालकोंपर कभी क्रोध नहीं करना  
 चाहिये। बुद्धिमानको उचित है कि  
 मूर्खोंके करने योग्य बिना प्रयोजनकी  
 लड़ाईको न करे, क्योंकि वैर न करने-  
 से अपकीर्ति नहीं होती और न कुछ  
 आपत्ति आती है। जिसकी प्रसन्नतासे  
 कुछ लाभ न हो और क्रोधसे कुछ हा-  
 नि न हो, सेवक ऐसे स्वामीको इस

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये ।  
 लोकपर्यायवृत्तांतं प्राज्ञो जानाति नेतरः ॥ ३३ ॥  
 विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत ।  
 धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते ॥ ३४ ॥  
 अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।  
 अनर्थाः क्षिप्रमायांति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ॥ ३५ ॥  
 अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः ।  
 आवर्त्तयन्ति भूतानि सम्यक् प्रणिहिता च वाक् ॥ ३६ ॥  
 अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः ।  
 अपि संक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम् ॥ ३७ ॥  
 धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।  
 मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः ॥ ३८ ॥  
 असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः ।  
 तादृक् नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप ॥ ३९ ॥  
 न च रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेदमनि ।

प्रकार छोड़ देते हैं, जैसे नपुंसक पति-  
को स्त्री छोड़ती है । ( ३०—३२ )

बुद्धिका फल धन लाभ नहीं है,  
और न मूर्खताका फल दरिद्रता है ।  
इस लोक और परलोकके व्यवहारोंको  
पण्डितही जान सकता है, मूर्ख नहीं ।  
विद्यावृद्ध, बुद्धिवृद्ध, जातिवृद्ध और  
धनवृद्धोंका मूर्ख लोग निरादर करते हैं ।  
बुरे चरित्रवाले मूर्ख, निन्दक, क्रोधी और  
अधर्मी पर आपत्ति पड़ती है । ( ३२-३५ )

किसीसे छल न करना, दान करना,  
समयकी मर्यादाको न तोड़ना और  
सबके कल्याणकी बात कहना, ये गुण  
शत्रुको भी मित्र बना लेते हैं ! किसी-

से छल नहीं करनेवाला सब कर्म कर-  
नेमें समर्थ, उपकारको माननेवाला  
और सीधा मनुष्य धन रहित हानेपर  
भी सबका मित्र बना रहता है । धारणा,  
मनको और इन्द्रियोंको वशमें रखना,  
पवित्रता, दया करना, कोमल वाणी  
और मित्रोंसे प्रेम करना; ये सात  
गुण लक्ष्मी को बढ़ानेवाले हैं । ३६-३८

जो पालन करने योग्य मनुष्योंको अन्न  
न दे, दुष्ट हो, उपकारको न माने और  
निर्लज्ज हो, ऐसे राजाको दूरहीसे छोड़ देना  
चाहिये । जो दोषरहित मनुष्यको क्रोध  
दिलाता है, और आपही दोषी होता है,  
वह सांपवाले घरमें सोनेके समान रात्रिको

यः कोपयति निर्दोषं स दोषोऽभ्यन्तरं जनम् ॥ ४० ॥

येषु दुष्टेषु दोषः स्याद्योगक्षेमस्य भारत ।

सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥ ४१ ॥

येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च ।

ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ॥ ४२ ॥

यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता ।

मज्जन्ति तेऽवशा राजन्नद्यामश्मप्लवा इव ॥ ४३ ॥

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत ।

तानहं पण्डितान्मन्ये विशेषा हि प्रसंगिनः ॥ ४४ ॥

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः ।

यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः ॥ ४५ ॥

हित्वा तान्परमेष्वसां पाण्डवानमितौजसः ।

आहितं भारतैश्वर्यं त्वया दुर्योधने महत् ॥ ४६ ॥

तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं तस्मात्त्वमचिरादिव ।

ऐश्वर्यमदसंमूढं बलिं लोकत्रयादिव ॥ ४७ ॥ [ १३९४ ]

इति श्रीमहाभारते ० वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

सुखसे नहीं सोता । हे भारत ! जिनके बिगडनेसे कुछ दोष हो, अर्थात् राज्य या धनमें हानि हो, ऐसे मनुष्यकी सदा देवताके समान पूजा करनी चाहिये । जो पदार्थ स्त्रियोंसे संबंधित हो, जो पागल और नीचोंसे संसर्ग रखते हों, और जो दुष्टोंके काबूमें गये हों, उन सबसे सदा सन्देह रखना चाहिये । ( ३९-४२ )

जिस घरमें स्त्री, छली अथवा बालक स्वामी हो, वह घर पराधीन होकर इस प्रकार डूब जाता है, जैसे नदीमें पत्थर की नाव । हे भारत ! जो केवल अपने

प्रयोजनहीको देखता है, और अधिकताकी इच्छा नहीं करता, हम उसीको पाण्डित मानते हैं, क्योंकि अधिकताही उपद्रवका मूल है । जिस मनुष्यको छली, भांट, और वेश्या प्रशंसा करें, उसका जीनाही क्या ? हे राजेन्द्र ! आपने परम धनुषधारी, महा तेजस्वी पाण्डवोंसे धन छीनकर दुर्योधनको दिया है, सो आप थोडेही दिनमें मूर्ख दुर्योधन को इस प्रकार राज्यसे नष्ट हुआ देखेंगे, जैसे धनका अभिमानी बलि राज्यसे नष्ट होगया था । ( ४३-४७ ) [ १३९४ ]

उद्योगपर्वमें अडतीस अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र उवाच-अनीश्वरोऽयं पुरुषो भवाभवे सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा ।

धात्रा तु दिष्टस्य वशे कृतोऽयं तस्माद्ब्रू त्वं श्रवणे धृतोऽहम् ॥ १ ॥

विदुर उवाच- अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ।

लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत ॥ २ ॥

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः ।

मंत्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः ॥ ३ ॥

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेघावी न पंडितः ।

प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह ॥ ४ ॥

उक्तं मया जातमात्रेऽपि राजन्दुर्योधनं त्यज पुत्रं त्वमेकम् ।

तस्य त्यागात्पुत्रशतस्य वृद्धिरस्यात्यागात्पुत्रशतस्य नाशः ॥ ५ ॥

न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत् ।

क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ॥ ६ ॥

न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ।

क्षयः स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत् ॥ ७ ॥

उद्योगपर्वमें उनतालीस अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! जैसे सूतमें बंधी कठपुतली नचानेवालेके वशमें रहती है, तैसेही मनुष्यभी प्रारब्धके वशमें रहता है; उसीसे मनुष्य अच्छा और बुरा काम करता है, इससे हमको निश्चय होता है कि मनुष्य पराधीन है ! तुम और कुछ कहो हम सुनना चाहते हैं । (१)

विदुर बोले, हे राजेन्द्र ! विना समयकी बात कहनेसे बृहस्पतिकी भी निन्दा होती है । हे भारत ! कोई मनुष्य दान देनेसे, कोई मीठी बात कहनेसे और कोई अच्छी सम्मति देनेसे जगतका प्यारा होता है । साधु, बुद्धिमान और

पण्डितका वैर नहीं करना चाहिये, अपने मित्रके लिये अच्छा काम करना चाहिये और शत्रुके लिये शत्रुताका काम करना चाहिये । (२-४)

हे राजेन्द्र ! जिस समय दुर्योधन उत्पन्न हुआ था, उसी समय मैंने आपसे कहा था, कि आप इस एक पुत्रको फेंक दीजिये, क्योंकि इस एकके फेंकनेसे सौ पुत्र जीवेंगे; और इसके रखनेसे सौ पुत्रोंका नाश हो जायगा । जिस बढतीसे नाश होनेका भय हो, उस उन्नतिको छोड़ देना चाहिये और जिस हानिसे बढतीकी आशा हो, उस हानिको भी स्वीकार करनी उचित है । हे राजेन्द्र ! जिस हानिसे पीछे बढती हो, वह हानि

समृद्धा गुणतः कोचिद्भवन्ति धनतोऽपरे ।

धनवृद्धान्गुणैर्हीनान्धृतराष्ट्रं विवर्जय ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम् ।

न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ९ ॥

विदुर उवाच—अतीविगुणसंपन्नो न जातु विनयान्वितः ।

सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते ॥ १० ॥

परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च ।

परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः ॥ ११ ॥

सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद्भयम् ।

अर्थादाने महान्दोषः प्रदाने च महद्भयम् ॥ १२ ॥

ये वै भेदनशीलास्तु सकाशा निस्त्रपाः शठाः ।

ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः ॥ १३ ॥

युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत् ।

निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नाचे प्रणश्यति ॥ १४ ॥

नहीं कहाती, हानि वही कहाती है जिससे कुछ उन्नति न हो । हे धृतराष्ट्र ! कोई मनुष्य गुणोंसे समृद्ध होते हैं और कोई धनसे समृद्ध होते हैं, आप गुणरहित धनवान लोगोंको छोड़ दीजिये । (५-८)

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर । तुम जो कहते हो सो सब ठीक है, पाण्डित्योंको ऐसाही कहना चाहिये, इसीसे उन्नति होती है; परन्तु हम क्या करें अपने पुत्रोंको नहीं छोड़ सकते; किन्तु यह जानते हैं कि जहां धर्म है, तहां विजय होगी । (९)

विदुर बोले, हे राजेन्द्र ! अत्यन्त गुणवान और विनयवान है वह लोगोंका थोड़ा भी नाश नहीं होने देता अर्थात् पुत्र प्रेमसे आपको कुलका नाश नहीं

करना चाहिये । दुष्ट लोग दूसरेकी निन्दा करते हैं, दूसरेके दुःखको अपना कल्याण समझते हैं, और रोज प्रातःकाल उठकर विरोधका उपाय सोचते हैं । जिनके दर्शनसे दोष लगता है, उनके सङ्ग रहनेसे बहुत भय होता है, उनसे धन लने और देने दोनोंहीमें भय है । (१०-१२)

जो परस्पर विरोध कराते हैं, उन पापी, अपना प्रयोजन सिद्ध करनेवाले, दुष्ट और निर्लज्जोंके सङ्ग नहीं रहना चाहिये; तथा और भी अनेक दोषयुक्त मनुष्योंको छोड़ना उचित है, क्योंकि जब प्रेम नष्ट हो जाता है, तब सब सुखोंका नाश हो जाता है, इस लिये नीचके सङ्ग पहलेहीसे प्रेम नहीं करना

या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत्सुखम् ।  
 यतन्ते चापवादाय यत्नमारभते क्षये ॥ १५ ॥  
 अल्पेऽप्यपकृते मोहाज्ज्ञांतिमधिगच्छति ।  
 तादृशैः संगतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ॥ १६ ॥  
 निशम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान्दूराद्विवर्जयेत् ।  
 यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम् ॥ १७ ॥  
 स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानत्यमश्नुते ।  
 ज्ञातयो वर्द्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम् ॥ १८ ॥  
 कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात्साधु समाचार ।  
 श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम् ॥ १९ ॥  
 विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ ।  
 किं पुनर्गुणवंतस्ते त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणः ॥ २० ॥  
 प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशांपते ।  
 दीयतां ग्रामकाः कोचित्तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर ॥ २१ ॥  
 एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप ।  
 वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम् ॥ २२ ॥

चाहिये । जो मित्रताका सुख और फल है, सो दुष्टके प्रेमसे नहीं होता है । दुष्ट मित्रकी अपकीर्त्तिका यत्न करता है, और उसकी हानिका उपाय करता है। (१३-१५)

थोड़ा दोष होनेपर भी दुष्ट मित्र शान्त नहीं होता । ऐसे मूर्ख, छली, निर्लज्ज, दुष्ट मित्रको विद्वान् बुद्धिसे विचार कर दूरसे छोड़ दें । जो जाति, दरिद्र, दीन और रागियोंके ऊपर कृपा करता है, वह पशु और पुत्रोंके सहित कल्याणको प्राप्त होता है, जो अपने कल्याणकी इच्छा करे, उसको उचित है कि पहले अपने जातिवालोंकी वृद्धि करे । ( १६-१८ )

हे राजेन्द्र ! इस लिये आप भी अपने कुलकी वृद्धि कीजिये, ऐसा करनेसे आपका बहुत कल्याण होगा । हे भरत कुलसिंह ! अपने वंशमें उत्पन्न हुए मूर्खकी भी रक्षा करनी चाहिये, फिर पाण्डव तो सब गुणोंसे भरे और आपकी कृपा चाहनेवाले हैं । हे पृथ्वीनाथ ! आप वीर पाण्डवोंके ऊपर कृपा कीजिये और उनके निर्वाहके लिये कुछ ग्राम दे दीजिये । ( १९-२१ )

हे नरनाथ ! ऐसा करनेसे लोकमें आपकी कीर्त्ति बढ़ेगी । आप कुलमें बूढ़े हैं, इस लिये आपहीको सब पुत्रोंका



मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्वितैषिणम् ।  
 ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभार्थिना ।  
 सुखानि सहभोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ ॥ २३ ॥  
 सम्भोजनं संकथनं संप्रीतिश्च परस्परम् ।  
 ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ॥ २४ ॥  
 ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च ।  
 सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ॥ २५ ॥  
 सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान्प्रति मानद ।  
 अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यासि ॥ २६ ॥  
 श्रीमंतं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ।  
 दिग्धहस्तं भृगु इव स एनस्तस्य विंदति ॥ २७ ॥  
 पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति ।  
 तान्वा हतान्सुतान्वाऽपि श्रुत्वा तदनुचितय ॥ २८ ॥  
 येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा ।  
 आदावेव न तत्कुर्यादध्रुवे जीविते सति ॥ २९ ॥

स्वामी होना चाहिये । हे राजेन्द्र !  
 मुझकोभी आप के कल्याणके वचन कहने  
 चाहिये, क्योंकि मैं आपका कल्याण  
 चाहता हूँ; हे तात ! यदि आप अपना क-  
 ल्याण चाहते हैं, तो पाण्डवोंसे लड़ाई मत  
 कीजिये। हे भरतकुलसिंह ! जातिके साथ  
 ही सुख भोगना उचित है और जाति-  
 के सङ्गमें बैठ कर खाना चाहिये और  
 उनसे विरोध न रखना चाहिये, जातिके  
 सङ्ग भोजन करना चाहिये, प्रीति करनी  
 चाहिये और अच्छी बात करनी चाहिये !  
 उनसे विरोध कदापि नहीं करना चाहिये;  
 क्योंकि जाति डुबा देती है और जातिही  
 पार करती है। दुष्ट डुबा देते हैं और

अच्छे उद्धार करते हैं। ( २२-२५ )

हे राजेन्द्र ! आप पाण्डवोंके सङ्ग  
 मित्रता कीजिये, ऐसा करनेसे आपको  
 कोई शत्रु नहीं जीत सकेगा । जैसे विष  
 में बुझे बाणवाले व्याधेको देखकर हरिण  
 घबडाते हैं, वैसे ही जिस लक्ष्मीवान  
 मनुष्यको देखकर जातिवाले घबडायें,  
 उसके समान पापी और कौन होगा ?  
 हे पुरुषश्रेष्ठ ! युद्धमें अपने पुत्र अथवा  
 पाण्डवोंको मरा हुआ सुन पीछेभी आप-  
 को दुःख होगा, इस लिये इसी समय  
 उसका विचार कर लीजिये। ( २६-२८ )

आप जानते हैं कि जीवन अनित्य  
 है, इस लिये पहिलेहीसे ऐसा कर्म नहीं

न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात् ।  
 शेषसंप्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्स्वेव तिष्ठति ॥ ३० ॥  
 दुर्योधनेन यद्येतत्पापं तेषु पुरा कृतम् ।  
 त्वया तत्कुलवृद्धेन प्रत्यानेयं नरेश्वर ॥ ३१ ॥  
 तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः ।  
 भविष्यासि नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम् ॥ ३२ ॥  
 सुव्याहतानि धीराणां फलतः परिचिंत्य यः ।  
 अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यथासि तिष्ठति ॥ ३३ ॥  
 असम्यगुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि ।  
 उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम् ॥ ३४ ॥  
 पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्द्धते ॥ ३५ ॥  
 यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते ॥ ३६ ॥  
 अगाधपंके दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते ।  
 मंत्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत् ॥ ३७ ॥

करना चाहिये जिससे बुढापेमें चारपाई  
 पर पडकर रोना पडे । शुक्रको छोड-  
 कर और कोई मनुष्य ऐसा नहीं है, जो  
 अनीति न करे, परन्तु बुद्धिमानको यह  
 विचारना चाहिये कि जो बीतगया  
 सो बीतगया अब आगेको अच्छाही कर्म  
 करेंगे । हे राजन् ! दुर्योधनने जो कुछ  
 दोष किया है, उस सबको आप पाण्डवों  
 से क्षमा कराइये, क्योंकि आप कुलमें  
 बूढे हैं । ( २९-३१ )

हे पुरुषश्रेष्ठ ! जब आप पाण्डवोंको  
 राज्य दे दीजियेगा, तब जगतके सब  
 महात्मा आपकी प्रशंसा करने लगेंगे  
 और आपके सब दुःखनाश हो जायेंगे ।  
 जो पाण्डितोंके उत्तम वचनोंको फलकी

दृष्टिसे स्मरण करके उनके वचनानुसार  
 काम करता है, वह बहुत दिनतक यश-  
 को भोगता है । वस्तुतः जाननेके योग्य  
 होकर भी जिसको कोई नहीं जानता  
 और जानकरभी जिसके अनुसार कोई  
 आचरण नहीं करता ऐसा ज्ञान कुशल  
 ज्ञानियोंसे कहा हुआ भी अच्छा नहीं  
 है ( क्योंकि उसका कोई फल नहीं  
 है ) । ( ३२-३४ )

जो ज्ञानी होकरभी मनुष्यके बुरे  
 वचनोंको ग्रहण करता है, और फिर  
 विना विचारेही उसके अनुसार काम भी  
 करता है, उसकी वृद्धि नहीं होती । जो  
 पहले पापको विना विचारेही करके पुनः  
 उसका ही अनुसरण करने लगता है,

अर्थसंततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः ।  
 मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसंभवम् ॥ ३८ ॥  
 दुष्टामात्येषु विश्रंभं दूताचाकुशलादपि ।  
 द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप ॥ ३९ ॥  
 त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति ।  
 न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा ॥ ४० ॥  
 धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि ।  
 नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति ॥ ४१ ॥  
 अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम् ।  
 मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या संपाद्य चासकृत् ॥ ४२ ॥  
 श्रुत्वा दृष्ट्वाऽथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्री समाचरेत् ।  
 अकीर्तिं विनयो हन्ति हंत्यनर्थं पराक्रमः ॥ ४३ ॥  
 हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हंत्यलक्षणम् ।  
 परिच्छेदेन क्षेत्रेण वेदमना परिचर्यया ॥ ४४ ॥  
 परीक्षेन कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च ।

उस मूर्ख की गति अगाध और विषम  
 ऐसे नरक में अवश्य होती है। हे राजेन्द्र  
 अविच्छिन्न धनकी इच्छा करने वाले  
 राजाने मंत्रभेद करनेवाले मद, निद्रा,  
 अज्ञान, नेत्र आदिमें क्रोधादिसे उत्पन्न  
 होनेवाले विकार, दुष्ट मंत्रियोंका विश्वास  
 और मूर्ख दूतका विश्वास इन द्वारोंको  
 जानकर उनको बन्द करना उचित  
 है । ( ६५-३९ )

जो राजा अर्थ, धर्म और कामका  
 आचरण करता है और वह शत्रुओंसे युद्ध  
 करता है, उसकी विजय होती है । विना  
 शास्त्र पढ़े और विना बूढ़ोंकी सेवा किये  
 धर्म और अर्थको बृहस्पतिके समान

बुद्धिवाले मन्त्रीभी नहीं समझ सकते हैं।  
 हे राजन् ! जो वस्तु समुद्रमें गिर गई,  
 वह नष्ट हो गई और जिस मन्त्रीका व-  
 चन राजाने न सुना वह भी नष्ट होगया।  
 मूर्खकी कही बात नष्ट होगई और राख  
 में की हुई होम नष्ट होगई । ( ४०-४२ )

बुद्धिमानको उचित है कि बुद्धिसे  
 निश्चय करके, देखकर बुद्धिमानोंसे  
 सुनकर अच्छे मनुष्यको अपना मित्र  
 बनावे । हे राजेन्द्र ! विनय अपकीर्ति-  
 का, पराक्रम अनर्थका, क्षमा क्रोधका  
 और उत्तम आचरण बुरे लक्षणोंका  
 नाश करते हैं । हे राजन् ! भोग्यवस्तु,  
 जन्मस्थान, घर, कर्म, भोजन और

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते ॥ ४५ ॥  
 अपि निर्मुक्तदेहस्य कामरक्तस्य किं पुनः ।  
 प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम् ॥ ४६ ॥  
 मित्रवंतं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ।  
 दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लंघयेत् ॥ ४७ ॥  
 धर्मापेक्षी मृदुर्द्विमान् स कुलीनशताद्वरः ।  
 ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा ॥ ४८ ॥  
 समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति ।  
 दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव ॥ ४९ ॥  
 विवर्जयेत् मेधावी तस्मिन्मैत्री प्रणश्यति ।  
 अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च ॥ ५० ॥  
 तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद् बुधः ।  
 कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं हृदभक्तिकम् ॥ ५१ ॥  
 जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेक्ष्यते ।  
 इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनाऽपि विशिष्यते ॥ ५२ ॥

वस्त्रादिकोंसे मनुष्यके कुलकी परीक्षा होती है । ( ४५-४५ )

भोग्य वस्तु समीप प्राप्त होनेसे उसका प्रतीकार जीवन्मुक्तको भी करना कठीन है, विषयासक्तकी तो क्या कथा है ? पण्डितकी सेवा करनेवाले, वैद्य, ज्ञानी, धार्मिक, सुन्दर, मित्रवान्, उत्तम वचन कहनेवाले अपने प्रेमीकी रक्षा सदा करनी चाहिये। चाहे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ हो, चाहे बुरे कुलमें उत्पन्न हुआ हो, जो धर्मकी मर्यादाको नहीं छोड़े तथा जितेन्द्रिय और बुद्धिमान हो, सो सौ कुलीनोंसे अच्छा है। (४५-४८)

जिनके चित्तसे चित्त मिले हों, जो

दोनोंके सुखसे सुख मानते हों, जिन दोनोंकी बुद्धि समान हो, उनका प्रेम कभी नष्ट नहीं होता । जो मूर्ख तिनकोंसे छिपे हुए कुएंके समान छलसे प्रेम करते हैं, वह मित्र दूरसे छोड़ने योग्य हैं; क्योंकि उनकी प्रीति बुद्धिमान से नहीं निबहती । मूर्ख, अभिमानी, कोधी, साहसी और अधर्मीसे प्रेम नहीं करना चाहिये । ( ४८-५१ )

उपकारको जाननेवाला, धर्मात्मा, सत्यवादी, गम्भीर, प्रेमी, जितेन्द्रिय, मर्यादाको न छोड़नेवाले और महात्मा मनुष्यसे प्रेम करना चाहिये । अपनी इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकना मृत्युसे भी

अत्यर्थं पुनस्तुसर्गः सादयेद्देवतानपि ।  
 मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः ॥ ५३ ॥  
 आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना ।  
 अपनीतिं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते ॥ ५४ ॥  
 मतिमास्थाय सुहृदां तदकापुरुषव्रतम् ।  
 आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः ॥ ५५ ॥  
 अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थेन प्रहीयते ।  
 कर्मणा मनसा वाचा यद्भीक्षणं निषेवते ॥ ५६ ॥  
 तदेवापहरत्येनं तस्मात्कल्याणमाचरेत् ।  
 मंगलालंभनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम् ॥ ५७ ॥  
 भूतिमेतानि कुर्वति सतां चाभीक्षणदर्शनम् ।  
 अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च ॥ ५८ ॥  
 महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानत्यमश्नुते ।  
 नातः श्रीमत्तरं किञ्चिदन्यत्पथ्यतमं मतम् ॥ ५९ ॥  
 प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा ।

काठिन है, क्योंकि इन्द्रियोंको बहुत विषयों में जाने देनेसे अत्यन्त बुद्धिमानकाभी नाश हो जाता है। मित्रको मानना, कोमलता, किसी प्राणीकी हानि न चाहना, क्षमा और धारणा को पण्डितोंने आयु बढ़ानेवाले कर्म कहे हैं। (५१-५४)

अन्यायसे नष्ट हुए अर्थको जो न्याय का अवलंबन कर पुनः निश्चयसे सुधरनेका प्रयत्न करता है वही बुद्धिमान कहाता है। जो भविष्य कालमें दुःख प्राप्त न होनेका उपाय जानता है, वर्तमान कालमें दुःख भोगनेसे तप्त नहीं होता, तथा गत कालके अनर्थमें शोक न करके शेष कार्यको जानता है, उसकी

हानि कभी नहीं होती। मनुष्य, मन, वचन और कर्मसे बुरा या भला जो काम करता है, उसके समान ही उसकी गति होती है। इस लिये अच्छे ही काम करना चाहिये। (५४-५७)

मंगल वस्तुओंको स्पर्श करना, सहाय करनेवाले मित्र आदिकोंको प्राप्त करना, विद्या, सरलता, उद्योग, सज्जनों का बार बार दर्शन ये सब ऐश्वर्यको बढ़ानेवाले हैं। सदा उद्योग करनाही लाभ, धन और शुभका मूल है, उद्योगी बड़ा होता है, और बहुत सुख प्राप्त करता है। हे राजन् ! उद्योगके समान धन देनेवाला और हित करनेवाला दूसरा

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात् ।  
 अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता ॥ ६० ॥  
 यत्सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते ।  
 कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥ ६१ ॥  
 दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च  
 न श्रीर्वसत्यदानेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥ ६२ ॥  
 आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात्सव्यपत्रपम् ।  
 अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥ ६३ ॥  
 अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।  
 प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥ ६४ ॥  
 न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यंतं निर्गुणेषु च ।  
 नैषा गुणान्कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते ।  
 उन्मत्ता गौरिवांधा श्रीः कचिदेवावतिष्ठते ॥ ६५ ॥

उत्तम कोई नहीं है। उन्नति चाहनेवाला मनुष्य सदा क्षमा करे, असमर्थ सभीके ऊपर क्षमा करता है, परन्तु जो समर्थ होकर क्षमा करे, वही धर्मात्मा कहाता है। जो लाभ और हानिको समान समझता है, वही सदा क्षमा कर सकता है। ( ५७—६० )

जिस सुखके भोगनेमें धर्म और अर्थ का नाश न हो, वही काम मनुष्यको करना चाहिये। कभी भूलकर भी मूर्खके समान अधर्मका काम करना उचित नहीं। हे राजेन्द्र ! दुःखसे पीडित मद्य पीनेवाले, नास्तिक और आलसियोंको धन नहीं मिलता। तथा जो मनुष्य इन्द्रियोंको अपने वशमें नहीं रखते और जिनको उत्साह नहीं है, वे

भी कभी धनवान नहीं होते। जो कोमलतासे रहता है, लज्जा करता है और सत्य बोलता है, मूर्ख लोग उसको असमर्थ कहा करते हैं और उसको पीडा देते हैं। ( ६१—६३ )

जो बहुत सरल है, बहुत दान करता है, युद्धसे कभी हटता नहीं, बहुत व्रत करता है, अपनी बुद्धिका अभिमान जिसको बहुत है ऐसे मनुष्यके पास भयसे सम्पत्ति नहीं रहती। अत्यन्त गुणवान और अत्यन्त निर्गुण इन दोनोंमें किसीके पास लक्ष्मी नहीं रहती है; क्योंकि लक्ष्मी अत्यन्त गुणोंकीभी इच्छा नहीं करती और निर्गुणसे तो प्रसन्नही नहीं होती। पागल और अंध गौ के समान लक्ष्मी कहींभी रहती है। ( ६४—६५ )

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम् ।  
 रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम् ॥ ६६ ॥  
 अधर्मोपार्जितैरर्थैः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।  
 न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागभात् ॥ ६७ ॥  
 कांतारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु संभ्रमे ।  
 उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम् ॥ ६८ ॥  
 उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः ।  
 समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु ॥ ६९ ॥  
 तपोबलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम् ।  
 हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ॥ ७० ॥  
 अष्टौ तान्यव्रतव्रतानि अपो मूलं फलं पयः ।  
 हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥ ७१ ॥  
 न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः ।  
 संग्रहेणैष धर्मः स्यात्कामादन्यः प्रवर्तते ॥ ७२ ॥  
 अक्रोधेन जयेत्क्रोधमसाधुं साधुना जयेत् ।  
 जयेत्कदर्यं दानेन जयेत्सत्येन चानृतम् ॥ ७३ ॥

वेदोंका फल यज्ञ है, विद्याका शील  
 और वृत्त, स्त्रीका रति और पुत्र और  
 धनका फल दान और भोग है। जो  
 अधर्मसे पैदा किये हुए धनसे पितरोंका  
 श्राद्ध करता है, उस श्राद्धका फल  
 पितरोंको नहीं पहुंचता, क्योंकि धन  
 दुष्ट मार्गसे पैदा किया है। वन, जल,  
 दुःखके स्थान, आपत्ति, भूल और  
 युद्धोंमें सत्त्ववानोंको भय नहीं होता।  
 अपनी उन्नति करना, इन्द्रियोंको जीतना  
 सब कर्मोंमें दक्षता करना, भूल न  
 करना, धारणा स्मरण, रखना और कामों  
 को विचारकर करना, येही उन्नतिके,

मूल हैं। (६६-६९)

तपस्वियोंका तप, वेद जाननेवालोंका  
 वेद, दुष्टोंकी हिंसा और महात्माओंका  
 क्षमाही बल है। जल, मूल, फल,  
 दूध, घी, ब्राह्मणोंकी आज्ञा और गुरु  
 का वचन इन सब वस्तुओंसे व्रत  
 का नाश नहीं होता। जो अपने  
 विरुद्ध कर्म हो उसे दूसरेके लिये कभी  
 नहीं करना चाहिये। यही धर्मका सार  
 है, इससे अन्य प्रवृत्ति विषयवासना-  
 मूलक है। क्षमासे क्रोधको, साधुतासे  
 दुष्टको, दानसे कदर्यको, सत्यसे झूठको  
 जीतना चाहिये। (७०-७३)

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चंडे पुरुषमानिनि ।  
 चौरै कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ॥ ७४ ॥  
 अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।  
 चत्वारि संप्रवर्धते कीर्तिरायुर्यशो बलम् ॥ ७५ ॥  
 अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा ।  
 अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥ ७६ ॥  
 अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम् ।  
 निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राज्यमराजकम् ॥ ७७ ॥  
 अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा ।  
 असंभोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा ॥ ७८ ॥  
 अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम् ।  
 मलं पृथिव्या बाल्हीकाः पुरुषस्यावृतं मलम् ॥ ७९ ॥  
 कौतूहलमला साध्वीविप्रवासमलाः स्त्रियः ॥ ८० ॥  
 सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु ।  
 ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम् ॥ ८१ ॥  
 न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत्स्त्रियः ।  
 नेन्धनेन जयेद्दग्निं न पानेन सुरां जयेत् ॥ ८२ ॥

स्त्री धूर्त, आलसी, डरपोक, क्रोधी,  
 अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिक  
 का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ।  
 जो सदा देवता और बूढ़ोंकी सेवा  
 करता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश  
 और बल बढ़ते हैं। जो धन बहुत क्लेश  
 अधर्म और शत्रुकी प्रार्थना करनेसे मिले,  
 उसकी कदापि इच्छा नहीं करनी  
 चाहिये। मूर्ख मनुष्य, विना सन्तानका,  
 मैथुन, निर्धन प्रजा और राजाके रहित  
 राज्यका सोच करना चाहिये। (७४-७७)  
 मार्ग मनुष्योंके लिये, जल पर्वतोंके

लिये, भोग न करना स्त्रियोंके लिये और  
 बुरा वचन मनके लिये बुढापा है ।  
 अनभ्यास वेदका मल, व्रत न करना  
 ब्राह्मण का मल, बाल्हीक देश पृथ्वी  
 का मल, झूठ बोलना मनुष्यका मल है ।  
 आश्चर्य कर्म करना पतिव्रता स्त्रीका  
 मल है, और प्रवास स्त्रियों का मल है  
 सुवर्णका चांदी, चांदीका रांगा, रांगे का  
 सीसा और सीसेका लोहा मल  
 है । (७८-८१)

सोनेसे निद्राको, कामसे स्त्रीको,  
 इन्धनसे अग्निको और पानेसे मद्यको



यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः ।

अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम् ॥ ८३ ॥

सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा ।

धृतराष्ट्र विमुंचेच्छां न कथंचिन्न जीव्यते ॥ ८४ ॥

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।

नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्नमुह्यति ॥ ८५ ॥

राजन्भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर ।

समता यदि ते राजन् स्वेषु पांडुसुतेषु वा ॥ ८६ ॥ [१४८०]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

विदुर उवाच—योऽभ्यर्चितः सद्भिरसज्जमानः करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा ॥

क्षिप्रं यशस्तं समुपैति संतमलं प्रसन्ना हि सुखाय संतः ॥ १ ॥

महांतमप्यर्थमधर्मयुक्तं यः संत्यजत्यनपाकृष्ट एव ।

सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य ॥ २ ॥

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम् ।

नहीं जीतना चाहिये । जो दानसे मित्रोंको युद्धसे शत्रुओंको और भोजन वस्त्रसे कुटुम्बको जीतते हैं, उनका जीना सफल है । जिनके सहस्र रुपये हैं वे भी जीते हैं और जिनके पास सौ हैं वेभी जीते हैं, इसलिये आप अपने राज्य बढ़ानेकी इच्छाको छोड़ दें, तब सुखसे जीवेंगे । ( ८२-८४ )

जगत्में जितना धान्य, धन, पशु और स्त्री हैं, यह सब एकको हि मिल जाय तोभी पर्याप्त नहीं होता । यही विचार वह कर आप अपनी इच्छाको रोक दें । हे राजन् ! हम फिरभी आपसे यही कहते हैं कि यदि आप अपने और पाण्डुके पुत्रोंको समान समझते हों, तो सबको

समान दृष्टिसे देखें । ( ८५-८६ )

उद्योगपर्वमें उनतालीस अध्याय समाप्त । [१४८०]

उद्योगपर्वमें चालीस अध्याय ।

विदुर बोले, जो साधुओंसे आदर पाकर अभिमानको छोड़कर अपनी शक्तिके अनुसार अच्छा काम करता है, वह शीघ्र सुखी होता है । एक महात्मा प्रसन्न होकर सब जगत्का उपकार कर सकते हैं । आपात्तिसे ग्रस्त होते ही जो धर्मको छोड़कर पापका आश्रय ले कर बड़े कामोंको भी नहीं करता, वह दुःखोंसे निकलकर इस प्रकार सुख भोगता है, जैसे सांप पुरानी केंचुली-को छोड़कर सुखी होता है । झूठसे लाभ करना, राजासे किसीकी चुगली

गुरोश्चालीकनिर्वधः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ३ ॥

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः ।

अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ॥ ४ ॥

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च ।

स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च ॥ ५ ॥

एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ।

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ।

सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥ ६ ॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।

नांतकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥ ७ ॥

आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमंतकः क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता ।

अपालनं हन्ति पशूंश्च राजन्नेकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम् ॥ ८ ॥

अजाश्च कांस्यं रजतं च नित्यं मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च ।

वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीन एतानि ते संतु गृहे सदैव ॥ ९ ॥

अजोक्षा चंदनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी ।

विषमौदुंबरं शंखः स्वर्णनाभोऽथ रोचना ॥ १० ॥

करनी और गुरुकी निन्दा करनी, ये ब्रह्महत्याके समान पाप हैं । ( १-३ )

मत्सर मृत्यु है, बहुत बोलना लक्ष्मीका नाश करता है । दुर्लक्ष्य करना, शीघ्रता करनी और आत्मश्लाघा ये तीन विद्याके शत्रु हैं । आलस्य, मद्यादिक पीना, भूल, चञ्चलता, बुरी गोष्ठी करनी, कठोरता अभिमान और न देना, ये सात विद्यार्थियोंमें दोष कहे जाते हैं । विद्यार्थीको सुख कहां और सुख चाहनेवाले को विद्या कहां ? इस लिये सुख चाहनेवाला विद्याको और विद्या चाहनेवाला सुखका छोड़ दे । ( ४-६ )

अग्नि काठसे, स्त्री पुरुषोंसे, समुद्र नदियोंसे और काल प्राणियोंसे तृप्त नहीं होता । हे राजन् ! आशा धारणा-को, काल उन्नतिको, क्रोध लक्ष्मीको, दुष्टता यशको, न पालना पशुओंको, और क्रोधी ब्राह्मण राज्यको नाश कर देते हैं । बकरी, कांसा, चांदी, शहत, विषादीका नाश करनेवाला, पक्षी, वेद जाननेवाले, बूढ़े जातिके मनुष्य और आपात्तिसे व्याप्त कुलीन मनुष्य आपके घरमें सदा बने रहें । स्वयम्भू मनुने कहा है बकरे, बैल, चन्दन, वीणा, शीशा, शहत, घी, लोहा, ताँबेका पात्र, शंख,

गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत् ।

देवब्राह्मणपूजार्थमतिथीनां च भारत ॥ ११ ॥

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम् ।

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ॥ १२ ॥

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ।

त्यक्त्वा नित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये संतुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः ॥ १३ ॥

महाबलान्पश्य महानुभावान् प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम् ।

राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान् गतान्नरेंद्रान् वशमंतकस्य ॥ १४ ॥

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति ।

तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति चित्तामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति ॥ १५ ॥

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुंक्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून् ।

द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः ॥ १६ ॥

उत्सृज्य विनिवर्तते ज्ञातयो सुहृदः सुताः ।

अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः ॥ १७ ॥

शालिग्राम और गोरोचन ये सब धर्मों रखने चाहिये, हे भारत ! इन सबको रखनेका प्रयोजन देव ब्राह्मण और अतिथियोंकी पूजाही है । (७-११)

हे तात ! अब हम सबसे उत्तम बात तुमसे कहते हैं, यह बात बहुत श्रेष्ठ और सबसे उत्तम है । मनुष्यको उचित है कि काम, भय, लोभ और जीनेके लोभसे भी धर्मको न छोड़े, क्योंकि धर्म नित्य और सुख दुःख अनित्य हैं; जीव नित्य है, परन्तु जगत्का कारण अर्थात् अविद्या अनित्य है; आप अनित्यको छोड़कर नित्यको ग्रहण कीजिये क्योंकि सन्तोषही परम लाभ है । हे राजेन्द्र ! आप विचारिये कि कैसे कैसे

बलवान महात्मा गुणवान धन और धान्यसे भरे हुए महाराज समस्त पृथ्वीका राज्य करके और फिर सब सुखोंको छोड़कर मर गये । (१२-१४)

हे राजेन्द्र ! मनुष्य अपने दुःखसे पुष्ट किये हुए प्यारे मरे हुए पुत्रको जङ्गलमें छोड़कर चला आता है, फिर मनुष्य उसे चितामें जला कर बाल खोलकर रोता है, परन्तु उसके सङ्ग कोई नहीं जाता । मरे हुए मनुष्यके धनको कोई दूसरा भोगता है, मनुष्यकी हड्डी रुधिर और मांसको अग्नि भस्म कर देती है, वा पक्षी भक्षण करते हैं । मनुष्यके सङ्ग केवल पुण्य और पाप दोही वस्तु जाती हैं । मरे हुए मनुष्यको

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयं कृतम् ।

तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद्धर्मं संचिनुयाच्छनैः ॥ १८ ॥

अस्माल्लोकाद्धर्ममुच्य चाधो महत्तमस्तिष्ठति ह्यंधकारम् ।

तद्वै महामोहनाभिर्द्रियाणां बुद्धयस्व सा त्वां प्रलभेत राजन् ॥ १९ ॥

इदं वचः शक्यसि चेद्यथावन्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव ।

यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति ॥ २० ॥

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदया धृतिकूला दयोर्मिः ।

तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव ॥ २१ ॥

कामक्रोधग्राहवर्ती पचेंद्रियजलां नदीम् ।

नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि संतर ॥ २२ ॥

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबंधुं विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम् ।

कार्याकार्यं पूजयित्वा प्रसाद्य यः संपृच्छेन्न स मुह्येत्कदाचित् ॥ २३ ॥

धृत्या शिश्रोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ।

जातिवाले मित्र और पुत्र ऐसे छोड़कर चले आते हैं, जैसे फूल फलरहित वृक्षको पक्षी छोड़ते हैं । ( १९-२० )

अग्निमें जलते हुए मनुष्यके सङ्ग केवल अपना किया हुआ कर्मही जाता है, इस लिये सबको उचित है कि यत्न करके धर्म करे । इस लोकके नीचे और ऊपर महा अन्धकार भरा है, परन्तु उस अन्धकारमें अधर्मी लोग जाते हैं, इस लिये आप अभीसे उसका विचार कीजिये तो वहां नहीं जाइयेगा, नहीं तो उसी अन्धकारमें पड़ियेगा । हे राजेन्द्र ! हमने जो वचन आपसे कहे, यदि उनके अनुसारही आप काम कीजियेगा, तो इस जीव लोकमें यश पाइयेगा । और इह-पर लोकमें आपको भय न रहेगा ॥ १८-२२

हे भारत ! आत्मा नदी है, उसमें धर्म ही तीर्थ है, परब्रह्मसे यह सत्य उत्पन्न हुई है, धारणाही उसके दोनों तट हैं, दया तरङ्ग हैं, इस नदीमें स्नान करनेवाले महात्माही सुख पाते हैं । लोभ-हीन जीवितही पुण्यप्रद है । पांचों इन्द्री जल भरा है, काम और क्रोध बड़े बड़े ग्राह घूम रहे हैं, हे राजेन्द्र ! आप धारणाकी नावपर बैठकर इस संसार नदीके पर होइये । जो बुद्धि, विद्या, धर्म, और अवस्थामें बूढ़े मनुष्य तथा अपने मित्रोंसे बूझकर करने और न करने योग्य कामोंको विचारता है, वह कभी भ्रममें नहीं पड़ता । ( २१-२३ )

जो धारणासे लिङ्ग और पेटकी, नेत्र से हाथ और पैरकी, मनसे नेत्र और

चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा ॥ २४ ॥  
 नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी ।  
 सत्यं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन् ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥ २५ ॥  
 अधीत्य वेदान्परिसंस्तीर्य चाग्नीनिष्ठा यज्ञैः पालयित्वा प्रजाश्च ।  
 गोब्राह्मणार्थं शस्त्रपूतांतरात्मा हतः संग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति ॥ २६ ॥  
 वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्च धनैः काले संविभज्याश्रितांश्च ।  
 त्रेतापूतं धूममाघ्राय पुण्यं प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुङ्क्ते ॥ २७ ॥  
 ब्रह्मक्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्रः क्रमेणैतान्न्यायतः पूजयानः ।  
 तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपापस्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुङ्क्ते ॥ २८ ॥  
 चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तथोक्तो हेतुं चानुब्रुवतो मे निबोध ।  
 क्षात्राद्धर्माद्धीयते पांडुपुत्रस्त्वं त्वं राजन् राजधर्मे नियुंक्ष्व ॥ २९ ॥  
 धृतराष्ट्र उवाच- एवमेतद्यथा त्वं मामनुशाससि नित्यदा ।  
 ममापि च मतिः सौम्य भवत्येवं यथाऽऽत्थ माम् ॥ ३० ॥  
 सा तु बुद्धिः कृताऽप्येवं पांडवान्प्रति मे सदा ।  
 दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते ॥ ३१ ॥  
 न दिष्टमभ्यतिक्रांतुं शक्यं भूतेन केनचित् ।

कानकी तथा कर्मसे मन और वचनकी  
 रक्षा करता है, वह कभी दुःख नहीं  
 पाता । जो ब्राह्मण रोज स्नान करे, रोज  
 जनेऊ पहने, रोज वेद पढ़े, पारित्तका  
 भोजन न करे, सत्य बोले और गुरुकी  
 सेवा करे, सो ब्राह्मण कभी अपने धर्मसे  
 नष्ट नहीं होता । जो क्षत्री वेदोंको पढ़े,  
 यज्ञ करे, प्रजाका पालन करे; गौ और  
 ब्राह्मणके लिये सम्मुख युद्धमें शस्त्रसे मरे,  
 वह स्वर्गमें जाता है । ( २४-२६ )

जो वैश्य वेदोंको पढ़े; समय पर  
 ब्राह्मण, क्षत्री और अपने सेवकोंको धन  
 दे और यज्ञके धूँके संघके पवित्र

हो, सो स्वर्गमें दिव्य सुख भोगता है ।  
 जो शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य इन  
 तीनों वर्णोंकी सेवा करे और उनको  
 प्रसन्न करे, वह मरकर स्वर्गमें जाता है ।  
 मैंने यह चारी वर्णोंका धर्म आपसे  
 कहा । हे राजन् ! इस समय पाण्डुके  
 पुत्र क्षत्रधर्मसे नष्ट होते हैं; आप उनकी  
 रक्षा कीजिये । ( २७-२९ )

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! जो तुम हमसे  
 कहते हो, हमारी बुद्धिभी वैसीही है, मैं  
 सदा पाण्डुओंके सङ्ग ऐसाही करना  
 चाहता हूँ, परन्तु दुर्योधनके देखतेही  
 मेरी बुद्धि नष्ट हो जाती है, इससे हमें

दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥ ३२ ॥ [ १५१२ ]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

समाप्तमिदं प्रजागरपर्वं ॥

अथ सनत्सुजातपर्वं ॥

धृतराष्ट्र उवाच— अनुक्तं यदि ते किञ्चिद्वाचा विदुर विद्यते ।  
तन्मे शुश्रूषतो ब्रूहि विचित्राणि हि भाषसे ॥ १ ॥  
विदुर उवाच— धृतराष्ट्र कुमारो वै यः पुराणः सनातनः ।  
सनत्सुजातः प्रोवाच मृत्युर्नास्तीति भारत ॥ २ ॥  
स ते गुह्यान्प्रकाशांश्च सर्वान् हृदयसंश्रयान् ।  
प्रवक्ष्यति महाराज सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ ३ ॥  
धृतराष्ट्र उवाच— किं त्वं न वेद तद्भूयो यन्मे ब्रूयात्सनातनः ।  
त्वमेव विदुर ब्रूहि प्रज्ञाशेषोऽस्ति चेत्तव ॥ ४ ॥  
विदुर उवाच— शूद्रयोनावहं जानो नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे ।  
कुमारस्य तु या बुद्धिर्वेद तां शाश्वतीमहम् ॥ ५ ॥  
ब्राह्मीं हि योनिमापन्नः सुगुह्यमपि यो वदेत् ।

निश्चय होता है कि प्रारब्धको कोई नहीं  
नांघ सकता ! प्रारब्धही बड़ा चलवान है  
पुरुषार्थको धिकार है । ( ३०-३२ )

उद्योग पर्वमें चालीस अध्याय और

प्रजागर पर्व समाप्त । [ १५१२ ]

उद्योगपर्वमें इकतालीस अध्याय और

सनत्सुजातपर्व ।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! तुम्हारे  
वचन बहुत विचित्र हैं; इस लिये यदि  
तुम्हें और कुछ कहना हो तो कह दो,  
हम बहुत श्रद्धासे सुनते हैं । ( १ )

विदुर बोले, हे धृतराष्ट्र ! सनत्सुजात  
नामक पुराने सनातन कुमारने कहा है  
कि जगतमें मृत्यु कुछ वस्तु नहीं है,

हे महाराज ! वेही सनत्सुजात आपसे  
गुप्त और प्रगट विषयोंका वर्णन करेंगे ।  
क्योंकि वे सब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ  
हैं । ( २-३ )

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! तुम उन  
विषयोंको नहीं जानते हो, जो हमसे  
सनत्सुजात कहेंगे ? यदि तुम जानते  
हो तो तुमही कहो । ( ४ )

विदुर, बोले, मैं शूद्रा स्त्रीके गर्भसे  
उत्पन्न हुआ हूं, इस लिये उन विषयों  
को नहीं कह सकता, परन्तु, महा बुद्धि-  
मान सनत्सुजात मुनिको मैं जानता हूं ।  
जो ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुआ है, वही  
सब गुप्त बातोंको कह सकता है । क्योंकि

न तेन गच्छीं देवानां तस्मादेतद्ब्रवीसि ते ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—ब्रवीहि विदुर त्वं मे पुराणं तं सनातनम् ।

कथमेतेन देहेन स्यादिहैव समागमः ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच—चिंतयामास विदुरस्तभृषिं शंसितव्रतम् ।

स च तर्चितितं ज्ञात्वा दर्शयामास भारत ॥ ८ ॥

स चैनं प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा ।

सुखोपविष्टं विश्रान्तमथैनं विदुरोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥

भगवन् संशयः कश्चिद्धृतराष्ट्रस्य मानसः ।

यो न शक्यो मया वक्तुं त्वमस्मै वक्तुमर्हसि ॥ १० ॥

यं श्रुत्वाऽयं मनुष्येन्द्रः सर्वदुःखातिगो भवेत् ।

लाभालाभौ प्रियद्वेष्यौ यथैनं न जरांनकौ ॥ ११ ॥

विषहेरन्भयामर्षौ क्षुत्पिपासे मदोद्भवौ ।

अरतिश्चैव तंद्री च कामक्रोधौ क्षयोदयौ ॥ १२ ॥ [१५२४]

इति श्रीमहा० वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरकृतसनत्सुजातप्रार्थने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१

वैशम्पायन उवाच—ततो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी संपूज्य वाक्यं विदुरेरितं तत् ।

देवता भी उनका सत्कार करते हैं । ५-६

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! तुम हमसे उस उपायका वर्णन करो जिसके करने से हम इसी शरीरसे सनत्सुजात मुनिको देखें । ( ७ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! उसी समय विदुरने व्रतधारी सनत्सुजात मुनिका ध्यान किया । उनके ध्यान करतेही सनत्सुजात मुनि वहां पहुंच गये, विदुरने उनको देखतेही शास्त्रविधिके अनुसार उनकी पूजा करी । जब मुनि शान्त होकर आसनपर बैठे, तब विदुरने हाथ जोड़कर कहा, हे भगवन् ! राजा धृतराष्ट्रके मनमें कुछ

सन्देह हुआ है, मैं उत्तर नहीं दे सकता, आप कहिये, उसके सुननेसे राजा धृतराष्ट्रके सब दुःख नष्ट हो जायेंगे, तब इनके लाभ, हानि, प्रिय, अप्रिय, राग, द्वेष, मृत्यु, और बुढ़ापा सब नष्ट हो जायेंगे; क्योंकि इस समय इनको भय, क्रोध, भूख, प्यास, अभिमान, अनिच्छा, आलस, काम, क्रोध, हानि और लाभ बहुत दुःख दे रहे हैं । ( ८-१२ )

उद्योगपर्वमें इकतालीस अध्याय समाप्त । [१५२४]

उद्योगपर्वमें बियालिस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! तब बुद्धिमान राजा धृतराष्ट्रने विदुरके वचनोंकी प्रशंसा करके

सनत्सुजातं रहिते महात्मा पप्रच्छ बुद्धिं परमां बुभूषन् ॥१॥  
 धृतराष्ट्र उवाच—सनत्सुजात यदिदं शृणोमि न मृत्युरस्तीति तव प्रवादम् ।  
 देवासुरा ह्याचरन्ब्रह्मचर्यममृत्यवे तत्कतरन्नु सत्यम् ॥ २ ॥  
 सनत्सुजात उवाच-अपृच्छः कर्मणा यच्च मृत्युर्नास्तीति चापरम् ।  
 शृणु मे ब्रुवतो राजन्यथैतन्माऽविशंकिथाः ॥ ३ ॥  
 उ मे सत्ये क्षात्रियैतस्य विद्धि मोहान्मृत्युः सम्मतोऽयं कवीनाम् ।  
 प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि तथाऽप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि ॥ ४ ॥  
 प्रमादाद्वै असुराः पराभवन्नप्रमादाद्ब्रह्मभूता भवन्ति ।  
 नैव मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जंतून् ह्यस्य रूपमुपलभ्यते हि ॥ ५ ॥  
 यमं त्वेके मृत्युमतोऽन्यमाहुरात्मा वसन्नममृतं ब्रह्मचर्यम् ।  
 पितृलोके राज्यमनुशास्ति देवः शिवः शिवानामशिवोऽशिवानाम् ॥ ६ ॥  
 अस्यादेशान्निःसरते नराणां क्रोधः प्रमादो लोभरूपश्च मृत्युः ।  
 अहं गतेनैव चरन्विमार्गान्न चात्मनो योगमुपैति कश्चित् ॥ ७ ॥

और अपनी बुद्धिको स्थिर करके एका-  
 न्तमें सनत्सुजात मुनिसे पूछा । ( १ )

धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात ! ह-  
 मने सुना है कि आप कहते हैं कि मृत्यु  
 कुछ वस्तु नहीं है, और यह भी सुना है  
 कि इन्द्रादिक देवताोंने मृत्युको दूर कर-  
 नेके लिये बहुत तपस्या करी, इन दो-  
 नोंमें कौनसी बात सत्य है ? ( २ )

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हे राजन् !  
 आपने जो ब्रह्मचर्यादि कर्मसे मृत्यु नष्ट  
 होती है, वा स्वरूपतः मृत्यु कोई नहीं है ?  
 ऐसे दो प्रश्न हमसे किये, हम उन दोनों  
 हीका उत्तर आपको देते हैं. शङ्का मत  
 कीजिये । हे क्षत्रिय ! ये दोनोंही पक्ष  
 सत्य हैं । पाण्डित लोगोंने कहा है कि  
 मोहसे मृत्यु होता है परंतु हम भूलको

मृत्यु और न भूलनेको अमृत कहते हैं;  
 भूलहीसे राक्षसोंका निरादार होता है;  
 भूल न करनेसे महात्माओंको मोक्ष  
 मिलता है । मृत्यु सिंहके समान आकर  
 किसीको नहीं खा जाती, क्योंकि मृत्युका  
 रूप आजतक किसीने नहीं देखा । ( ३-५ )

अनेक लोग यमको मृत्यु कहते हैं,  
 परन्तु यह सबही ठीक नहीं हैं, क्योंकि  
 अपने मनमें यमराजकी कल्पना इस  
 प्रकार कर ली जाती है, जैसे रसीमें  
 सांपकी । ब्रह्मचर्यही अमृत है । यमराज  
 पितर लोकमें रहकर पाप और पुण्यका  
 फल देते हैं; यमहीकी आज्ञासे क्रोध,  
 लोभ और भूलरूपी मृत्यु मनुष्यका  
 नाश करती है; जो अहङ्कारके वशमें  
 होकर बुरा काम करता है, उसकी आ-



ते मोहितास्तद्वशे वर्तमाना इतः प्रेतास्तत्र पुनः पतन्ति ।  
 ततस्तान्देवा अनुविष्टवन्ते अतो मृत्युर्मरणाख्यामुपैति ॥ ८ ॥  
 कर्मोदये कर्मफलानुरागास्तत्रानु ते यांति न तरन्ति मृत्युम् ।  
 सदर्थयोगानवगमात्समंतात्प्रवर्तते भोगयोगेन देही ॥ ९ ॥  
 तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणां मिथ्यार्थयोगस्य गतिर्हि नित्या ।  
 मिथ्यार्थयोगाभिहतांतरात्मा स्मरन्नुपास्ते विषयान्समन्तात् ॥ १० ॥  
 अभिध्या वै प्रथमं हन्ति लोकान् कामक्रोधावनुगृह्याशु पश्चात् ।  
 एते बालान्मृत्यवे प्रापयन्ति धीरास्तु धैर्येण तरन्ति मृत्युम् ॥ ११ ॥  
 सोऽभिध्यायन्नृपतितान्निहन्त्यादनादरेणाप्रतिबुद्धयमानः ।  
 नैनं मृत्युर्मृत्युरिवाप्ति भूत्वा एवं विद्वान्यो विनिहन्ति कामान् ॥ १२ ॥  
 कामानुसारी पुरुषः कामाननुविनश्यति ।  
 कामान् व्युदस्य धुनुते यत्किञ्चित्पुरुषो रजः ॥ १३ ॥

त्मासे योग कभी नहीं होता; मोहमें पड़ा हुआ मनुष्य उस लोभ और भूल-रूपी मृत्युके वशमें होकर इस लोकसे मरकर नरकोंमें पड़ता है, फिर वहाँसे भी इन्द्रियोंके वशमें होकर दूसरे जन्ममें जाता है; इसी कारणसे मृत्यु मरनेके नामसे प्रसिद्ध हुआ है । ( ८-९ )

कुछ कर्म शेष रहनेसे मनुष्यको फल भोगनेकी इच्छा होती है, उस फल भोगनेकी इच्छाके वशमें होकर मनुष्य पुनः जन्म लेता है; इसी प्रकारसे जन्म लेता है और मरता है, पुनः जन्म लेता है और मरता है। अष्टाङ्ग योग करने और अच्छे काम करनेसे जीवका फिर जन्म नहीं होता, परन्तु उस मार्गके न मिलनेके कारण कर्म भोगके लिये अनेक योनिमें जन्म लेता है । यही पहले कहा

कर्म सब इन्द्रियोंसे अपने वशमें कर लेता है, इससे जीव मिथ्या कर्मोंको करने लगता है; ऐसा होनेसे यह कर्मगति नित्य हुई । उलटे कर्म करनेसे आत्म-शक्तिका नाश होता है; तब जीव विषयोंका ध्यान करता है, वह ध्यान बुद्धिका नाश करता है; नष्ट हुई बुद्धि काम और क्रोधमें जाती है, काम और क्रोधही मूर्खोंके लिये मृत्यु रूप होजाते हैं । जो बुद्धिमान् मनुष्य है, वह इस मृत्युको जीत लेता है । ( ९-११ )

क्योंकि वह उस ध्यानहीके समय होनेवाले काम और क्रोधको निरादर बुद्धिसे नाश करते हैं; इसीसे उस विद्वानको अज्ञान रूपी मृत्यु दुःख नहीं देते, जो कामोंका इस रीतिसे नाश करता है । विषयोंका ध्यान करनेवाला मनुष्य

तमोऽप्रकाशो भूतानां नरकोऽयं प्रहृष्यते ।

सुहृन् इव धावन्ति गच्छन्तः श्वभ्रवत्सुखम् ॥ १४ ॥

अमूढवृत्तेः पुरुषस्येह कुर्यात्किं वै मृत्युस्तार्ण इवास्य व्याघ्रः ।

अमन्यमानः क्षत्रिय किञ्चिदन्यन्नाधीयीत निर्णुदन्निवास्य चायुः १५॥

सक्रोधलोभौ मोहवानन्तरात्मा स वै मृत्युस्त्वच्छरीरे य एषः ।

एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा ज्ञानेतिष्ठन्न बिभेतीह मृत्योः ।

विनश्यते विषये तस्य मृत्युर्मृत्योर्यथा विषयं प्राप्य मर्त्यः ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र उ०-यानेवाहुरिज्यया साधुलोकान् द्विजातीनां पुण्यतप्तान्सनातनात् ।

तेषां परार्थं कथयन्तीह वेदा एतद्विद्वान्नोपैति कथं नु कर्म ॥ १७ ॥

सनत्सुजात उवाच-एवं ह्यविद्वानुपयाति तत्र तत्रार्थजातं च वदन्ति वेदाः ।

अनीह आयाति परं परात्मा प्रयाति मार्गेण निहत्य मार्गान् ॥ १८ ॥

विषयोंमें पडकर नष्ट हो जाता है। मनुष्य विषयोंको छोडकर दुःखोंका नाश करे; क्योंकि विषयोंका कामही अन्धकार रूप है, क्योंकि इसमें विषयका विवेक रहता नहीं, और यह ही नरक है। कामी मनुष्य इस प्रकार गिरता है, जैसे कोई मतवाला गढेमें गिर पडता है। (१२-१४)

हे क्षत्रिय ! जैसे काठका बना सिंह मनुष्यको नहीं मार सकता, तैसेही बुद्धि मानको मृत्यु नाश नहीं कर सकती। इस लिये इस कामके जीवनभूत मूल आज्ञानके नाशके लिये स्त्री आदिक विषयोंको तुच्छ मानकर उनका स्मरण भी छोड देना चाहिये। हे धृतराष्ट्र ! वही क्रोध, लोभ और मोहरूपी मृत्यु तुम्हारे शरीरमें घुस रही है; तुम ज्ञानी होकर भी इस मृत्युका नाश नहीं करते हो ? मनुष्य ज्ञानहीसे इस मृत्युका नाश कर

सकता है; कर्मसे नहीं। इस लिये तुम ज्ञानहीका आश्रय लो। (१५-१६)

धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात ! हमने विद्वानोंके मुखसे सुना है, कि वेदोंमें लिखा है यज्ञ करनेसे मनुष्यको सनातन पावेत्र और ब्राह्मणोंके लोक मिलते हैं; और कर्मही परम पुरुषार्थ है, तब आप कैसे कहते हैं कि कर्मसे मृत्युका नाश नहीं होता ? (१७)

सनत्सुजात बोले, हे धृतराष्ट्र ! जो तुम कहते हो, इसमें तुम्हारा दोष नहीं है, क्योंकि सबही मूर्खतासे ऐसा कहा करते हैं, और मूर्खही लोग इस मार्गसे स्वर्गादिकोंको जाते हैं, और उसी स्वर्गादिके लिये कर्मोंका करना वेदमें लिखा है, मोक्षके लिये नहीं। कामना रहित ब्रह्म अविद्याके वशमें होकर शरीरको धारण करता है और उसे

धृतराष्ट्र उवाच—को सौ नियुक्ते तमजं पुराणं स चेदिदं सर्वमनुक्रमेण ।

किंवाऽस्य कार्यमथवा सुखं च तन्मे विद्वन्ब्रूहि सर्वं यथावत् ॥ १९ ॥

सनत्सुजात उवाच—दोषो महानत्र विभेदयोगे ह्यनादियोगेन भवन्ति नित्याः ।

तथाऽस्य नाधिक्यमपैति किञ्चिदनादियोगेन भवन्ति पुंसः ॥ २० ॥

य एतद्वा भगवान्स नित्यो विकारयोगेन करोति विश्वम् ।

तथा च तच्छक्तिरिति स्म मन्यते तथार्थयोगे च भवन्ति वेदाः ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—येऽस्मिन्धर्मान्नाचरन्तीह केचित्तथा धर्मान्केचिदिहाचरन्ति ।

धर्मः पापेन प्रतिहन्यते खिद्यताहो धर्मः प्रतिहन्ति पापम् ॥ २२ ॥

सनत्सुजात उवाच—उभयमेव तत्रोपयुज्यते फलं धर्मस्यैवेतरस्य च ॥ २३ ॥

अपना समझता है, फिर सब मार्गोंको छोड़कर एक ज्ञानरूपी मार्गसे जीव मोक्षको प्राप्त करता है । ( १८ )

धृतराष्ट्र बोले, हे महापण्डित ! तुमने जो कहा कि परमात्माही शरीर को धारण करते हैं; सो हमारी बुद्धिमें नहीं आता; सो तुम कहो कि परमात्मा-पर आज्ञा करनेवाला कौन है, जिसके आज्ञाके वशमें होकर ब्रह्मभी सुख और दुःखको भोगता है ? उसका क्या काम है, और क्या सुख है ? यह सब हमसे कहो । ( १९ )

सनत्सुजात बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! जीव और ब्रह्मको अलग माननेसे बड़ा भारी दोष होता है, वस्तुतः जीव और ईश्वर एकही है, परन्तु शरिरादि भोग्यवस्तुओंसे संबंध होनेसे नित्य जीव ईश्वरसे भिन्न दीखते हैं । जीवके दुःख सुख आदि विकार होनेसे ब्रह्मको कुछ विकार नहीं होता; क्योंकि अज्ञान

के वशमें होकर जीव बनते हैं । वेदोंमें लिखा है कि जो यह सब जगत् दीखता है, उस सबको मायाके वशमें होकर परमेश्वरही अपनी शक्तिसे बनाते हैं, इस लिये जगत् भी परमेश्वरसे भिन्न नहीं है, क्योंकि शक्ति और शक्तिमान में कुछ भेद नहीं होता, परन्तु जगत् अनित्य है । ( २०-२१ )

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात ! इस जगत् में कई लोग अग्नि-होत्रादि धर्मोंको करते हैं, और कई मोक्ष मार्गी संन्यासी लोग कर्मोंको नहीं करते जो कर्म नहीं करते उनका धर्म पापसे नष्ट होता है, वा धर्माचरण करनेवालों के धर्मसे पाप नष्ट हो जाता है; इस में क्या सत्य है ? ( २२ )

सनत्सुजात बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! मनुष्यको पाप और पुण्य दोनों हीका फल मिलता है; परन्तु मोक्ष होनेसे विद्वानको नित्य ज्ञान प्राप्त होनेके

तस्मिन्स्थितौ वाऽप्युभयं हि नित्यज्ञानेन विद्वान् प्रतिहन्ति सिद्धम् ।  
 तथाऽन्यथा पुण्यमुपैति देही तथागतं पापमुपैति सिद्धम् ॥ २४ ॥  
 गत्वोभयं कर्मणा युज्यते स्थिरं शुभस्य पापस्य स चापि कर्मणः ।  
 धर्मेण पापं प्रणुदतीह विद्वान् धर्मो बलीयानिति तस्य सिद्धिः ॥ २५ ॥  
 धृतराष्ट्र उ०-यानिहाहुः स्वस्य धर्मस्य लोकान्द्विजातीनां पुण्यकृतां सनातनान्  
 तेषां क्रमान्कथय ततोऽपि चान्यत्रैतद्विद्वन्वेत्तुमिच्छामि कर्म ॥ २६ ॥  
 मनत्सुजात उवाच-येषां व्रतेऽथ विस्पर्धा बले बलवतामिव ।  
 ते ब्राह्मणा इतः प्रेत्य ब्रह्मलोक प्रकाशकाः ॥ २७ ॥  
 येषां धर्मे च विस्पर्धा तेषां तज्ज्ञानसाधनम् ।  
 ते ब्राह्मणा इतो मुक्ताः स्वर्गं यांति त्रिविष्टपम् ॥ २८ ॥  
 तस्य सम्यक् समाचारमाहुर्वेदविदो जनाः ।  
 नैनं मन्येत भूयिष्ठं बाह्यमाभ्यन्तरं जनम् ॥ २९ ॥  
 यत्र मन्येत भूयिष्ठं प्रावृषीव तृणोलपम् ।

कारण दोनोंमेंसे एकका भी फल प्राप्त नहीं होता; परन्तु विना मोक्षके पापके समय पापका और पुण्यके समय पुण्यका फल होता है। विद्वान् धर्मसे पापका नाश करता है; क्योंकि पापसे धर्म बलवान् है। साधारण मनुष्य इस शरीरको छोड़कर पाप और पुण्य दोनोंका फल भोगता है। (२३-२४)

धृतराष्ट्र बोले, हे पण्डितश्रेष्ठ। जो धर्म करनेवाले ब्राह्मणोंके सनातन लोक हैं, उसका तथा मोक्षका वर्णन आप हमसे कीजिये, हम उनको सुनना चाहते हैं और दूसरे कर्मके सुननेकी इच्छा नहीं करते। (२५)

श्रीसनत्सुजात बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! जैसे बलवान् बलवानको देख-

कर युद्ध करनेकी इच्छा करता है, ऐसे ही जो ब्राह्मण यमनियमादि व्रतोंको देखकर उनको पूरा करनेकी इच्छा करते हैं; वे ब्राह्मण शरीरको छोड़कर और वहां पूज्य होते हैं। ब्रह्म लोकको जाते हैं; जो ब्राह्मण सदा स्पर्धासे यज्ञादि धर्मही करते हैं, सो इस देहसे छूट करके स्वर्गको जाते हैं। वेद ज्ञाननेवाले पण्डितोंने धर्मका प्रयोजन इस प्रकार लिखा है कि धर्मसे स्वर्ग वा इस लोकमें सुखकी इच्छा न करनी चाहिये। केवल कर्तव्य बुद्धिसे ही कर्म करना उचित है, ऐसे माननेवालोंको वह मान नहीं देना चाहिये, क्योंकि ये आत्माको वर्णाश्रमादि युक्त मानते हैं और कर्मोंको छोड़ते हैं, इस लिये ये बाह्यही हैं और

अन्नं पानं ब्राह्मणस्य तज्जीवेन्नानुसंज्वरेत् ॥ ३० ॥  
 यत्राकथयमानस्य प्रयच्छत्यशिवं भयम् ।  
 अतिरिक्तमिवाकुर्वन्स श्रेयाच्चेतरो जनः ॥ ३१ ॥  
 यो वा कथयमानस्य ह्यात्मानं नानुसंज्वरेत् ।  
 ब्रह्मस्वं नोपभुंजीत तदन्नं संमतं सताम् ॥ ३२ ॥  
 यथा स्वं वांतमश्नाति श्वा वै नित्यमभूतये ।  
 एवं ते वांतमश्नन्ति स्ववीर्यस्योपसेवनात् ॥ ३३ ॥  
 नित्यमज्ञातचर्या मे इति मन्येत ब्राह्मणः ।  
 ज्ञातीनां तु वसन्मध्ये नं विदुर्ब्राह्मणं बुधाः ॥ ३४ ॥  
 को ह्यनंतरमात्मानं ब्राह्मणो हंतुमर्हति ।  
 निर्लिङ्गमचलं शुद्धं सर्वद्वैतविवर्जितम् ॥ ३५ ॥  
 तस्माद्वि क्षत्रियस्यापि ब्रह्मा वसति पश्यति ॥ ३६ ॥  
 योऽन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।

कामत्यागनेसे आन्तरही हैं । अहिंसा करनेवाला योगी वा संन्यासी उन घरों-में भोजन करे, जहां, वर्षाकालके तिन कोंके समान अन्न और जल भरे हों, अर्थात् दरिद्रीके घरमें भोजन करने न जाय, क्योंकि उनको पीडा होनेका संभव है । ( २६-३० )

जहां अपने गुण प्रकाश किये बिना अत्यन्त भय हो अर्थात् जहां हम विद्वान हैं, हम महात्मा हैं, ऐसा बिना कहे सुख न मिलता हो, जो महात्मा उन्ही स्थानोंपर बिना अपने गुण प्रकाश किये रहता है, वही महात्मा मुक्त कहलाता है, वही महात्मा है, अन्य पुरुष नहीं । जो दूसरेकी प्रशंसा और अपनी निन्दा सुनकर अपने चित्तको

दुःख नहीं देता और महात्माओंको जो श्रद्धासे अन्न देता है ऐसे ब्राह्मणके यहां भोजन करना महात्माओंको संमत है । जो संन्यासी अपनी विद्या प्रकाश करके भिक्षा मांगकर खाता है, वह कुत्तेके समान वमन भोजन करता है । ३१-३३

जो महात्मा ब्राह्मण अपनी जातिके बीचमें रहकर भी अपनी जातिवालोंमें अपने महत्वका प्रकाश नहीं करता, अर्थात् अपनी घमंड नहीं करता; उसी ब्राह्मणको पाण्डितोंने ब्राह्मण कहा है । ऐसा कौन ब्राह्मण है, जो बिना आज्ञाके उपाधिरहित, निराकार, अद्वितीय एक ब्रह्म को जान सके । इसी प्रकार क्षत्रियादिक भी ज्ञानको प्राप्त करके आत्माको जान सकते हैं । ( ३४-३६ )

किं तेन न कृतं पापं चोरेणाऽऽत्मापहारिणा ॥ ३७ ॥  
 अश्रांतः स्यादनादाता संमतो निरुपद्रवः ।  
 शिष्टो न शिष्टवत्स स्याद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्कविः ॥ ३८ ॥  
 अनाढ्या मानुषे वित्ते आढ्या दैवे तथा क्रतौ ।  
 ते दुर्धर्षा दुष्प्रकंप्यास्तान्विद्याद्ब्रह्मणस्तनुम् ॥ ३९ ॥  
 सर्वान्स्विष्टकृतो देवान्विद्याद्य इह कश्चन ।  
 न समानो ब्राह्मणस्य तस्मिन्प्रयतने स्वयम् ॥ ४० ॥  
 यमप्रयतमानं तु मानयन्ति स मानितः ।  
 न मान्यमानो मन्येत न मान्यमाभिसंज्वरेत् ॥ ४१ ॥  
 लोकः स्वभाववृत्तिर्हि निमेषोन्मेषवत्सदा ।  
 विद्वांसो मानयन्तीह इति मन्येत मानितः ॥ ४२ ॥

जो अपने आत्माको उलटी आकार से प्रकाशित करता है अर्थात् आत्मरूप से भासमान देहादिसे भिन्न होकर भी आत्माको कर्ता भोक्ता आदि रूपसे मानता है उस आत्माको चुरानेवालेने क्या पाप नहीं किया? अर्थात् उसने सब पाप किया। जो कभी नहीं थकता, दान नहीं लेता, सब जिसको मानते हैं, जिसको कुछ उपद्रव नहीं रहते; जो अच्छा होनेपर भी अच्छे मनुष्योंके समान नहीं दीखता, वही ब्रह्मको जाननेवाला पण्डित ब्राह्मण है। जो मनुष्योंके धनकी दृष्टिसे दरिद्री रहते हैं। क्योंकि उनके पास ऐसा धन थोड़ा भी नहीं रहता, परंतु पारलौकिक धन धर्मादि तथा ईश्वरोपासनादि से संपन्न रहते हैं, ऐसे महात्मा, पराभव करनेके अयोग्य और निर्भय रहते हैं तथा वे साक्षात्

ब्रह्मकी शरीर हैं। ( ३७-३९ )

जो अश्वमेधांत सब यज्ञोंको करता है; और यज्ञोंसे देवतोंका प्रत्यक्ष दर्शन करता है वह सब वेद जाननेवाला ब्राह्मणभी ब्रह्म जाननेवाले ब्राह्मणके समान नहीं होता; क्योंकि वह यज्ञके फलकी प्राप्तिका यत्न करता है। जिस कुछ कर्म न करनेवाले मनुष्यको पण्डित लोग मानें, वही ब्रह्म जाननेवाला ब्राह्मण है। जो माननेवालोंका आदर नहीं करता और न माननेवालोंसे दुःख नहीं मानता, वही ब्राह्मण पण्डित और ब्रह्मको जानने वाला है। जो विद्वान् ऐसा जानता है कि आंखकी पलकके समान मानना जगतका स्वभाव ही है। स्वभावसे ही विद्वान् मुझे मानते हैं, मैं माननेके योग्य नहीं हूं; ऐसा माननेवाला ब्राह्मण ब्रह्म जाननेवाला कहाता है। ( ४०-४२ )

अधर्मनिपुणा मूढा लोके मायाविशारदाः ।

न मान्यं मानयिष्यन्ति मान्यानामवमानिनः ॥ ४३ ॥

न वै मानं च मौनं च सहितौ वसतः सदा ।

अयं हि लोको मानस्य असौ मौनस्य तद्विदुः ॥ ४४ ॥

श्रीः सुखस्येह संवासः सा चापि परिपंथिनी ।

ब्राह्मी सुदुर्लभा श्रीर्हि प्रज्ञाहीनेन क्षत्रिय ॥ ४५ ॥

द्वाराणि तस्येह वदन्ति सन्तो बहुप्रकाराणि दुराधराणि ।

सत्यार्जवे हीर्दमशौचविद्या यथा न मोहप्रतिबोधनानि ॥ ४६ ॥ [ १५७० ]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि द्विचत्वारिंशो अध्यायः ॥ ४२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच-कस्यैष मौनः कतरन्तु मौनं प्रब्रूहि विद्वन्निह मौनभावम् ।

मौनेन विद्वानुत यानि मौनं कथं मुने मौनमिहाऽऽचरन्ति ॥ १ ॥

सनत्सुजात उवाच- यतो न वेदा मनसा सहैनमनुप्रविशन्ति ततोऽथ मौनम् ।

यत्रोत्थितो वेदशब्दस्तथाऽयं स तन्मयत्वेन विभाति राजन् ॥ २ ॥

जो यह जाने कि अधर्मी, मूर्ख,  
छली लोग अपने स्वभावहीसे मानने  
योग्य मनुष्यको नहीं मानते, वही महा-  
त्मा है; अभिमान और मौन दोनों एक  
स्थानपर नहीं रहते; पण्डित कहते हैं,  
कि यह लोग मानका है, और परलोक  
मौनका है । हे क्षत्रिय ! धन सुखका  
स्थान है, और सुखही ब्रह्मज्ञानका शत्रु  
है, इसीसे मूर्खोंको ब्रह्मज्ञान दुर्लभ है ।  
सत्य बोलना, सबसे सीधे रहना, लज्जा  
करनी, इंद्रियोंको जीतना, अंतःशौच  
करना, और बहिः शौच करना, और विद्या  
यही मोहके नाशक और यही ब्रह्मज्ञानके  
द्वार हैं, परन्तु ये सब द्वार बहुत कठिन  
हैं । ( ४३-४६ ) [ १५७० ]

उद्योगपर्वमें विद्यालीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें त्रेतालीस अध्याय ।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पण्डित-  
श्रेष्ठ ! मौन क्या है ? क्यों किया जाता  
है ? आप मुझे मौनका स्वरूप बताइये । क्या  
विद्वान मौनहीसे मौनको प्राप्त करता है ?  
महात्मा किस प्रकार मौनका आचरण  
करते हैं, सो हमसे आप कहिये । ( १ )

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हे राजन्  
धृतराष्ट्र ! जहाँसे मनके सहित वाणी  
लौट आती है, अर्थात् जहाँ मन और  
वचन नहीं जासकता, उस ब्रह्मका ही  
नाम मौन है । हे राजन् ! जहाँसे वेद  
शब्द और यह लौकिक शब्द उत्पन्न होते  
हैं और जो शब्दसे ही प्रतीत होता है,  
उसकी प्राप्ति के यत्नको मौन कहते हैं, अ-  
र्थात् ओंकारके जपहीको मौन कहते हैं । २



धृतराष्ट्र उवाच—ऋचो यजूंषि यो वेद सामवेदं च वेद यः ।

पापानि कुर्वन्पापेन लिप्यते किं न लिप्यते ॥ ३ ॥

सनत्सुजात उवाच—नैनं सामान्यृचो वाऽपि न यजूंष्यविचक्षणम् ।

त्रायन्ते कर्मणः पापान्न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥ ४ ॥

न च्छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम् ।

नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—न चेद्वेदा विना धर्मं त्रातुं शक्ता विचक्षण ।

अथ कस्मात्प्रलापोऽयं ब्राह्मणानां सनातनः ॥ ६ ॥

सनत्सुजात उवाच—तस्यैव नामादिविशेषरूपैरिदं जगद्भाति महानुभाव ।

निर्दिश्य सम्यक्प्रवदन्ति वेदास्तद्विश्ववैरूप्यमुदाहरन्ति ॥ ७ ॥

तदर्थमुक्तं तप एतदिज्या ताभ्यामसौ पुण्यमुपैति विद्वान् ।

पुण्येन पापं विनिहत्य पश्चात्संजायते ज्ञानविदीपितात्मा ॥ ८ ॥

ज्ञानेन चाऽऽत्मानमुपैति विद्वानथाऽन्यथा वर्गफलानुकांक्षी ।

अस्मिन्कृतं तत्परिगृह्य सर्वममुत्र भुंक्ते पुनरेति मार्गम् ॥ ९ ॥

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पण्डित-  
श्रेष्ठ! जो ब्राह्मण ऋक्, यजु, और साम  
वेदको पढ़कर पाप करते हैं, कहिये उनको  
पापका फल होता है, वा नहीं? (३)

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हम तुम  
से सत्य कहते हैं कि ऋक्, यजु और  
सामवेद मन और वाणी का निग्रह करने  
में असमर्थ मनुष्यको कदापि पापोंसे नहीं  
बचा सकते, यह सब पापी और छली  
मनुष्यको अंतकालमें इस प्रकार छोड़-  
कर चले जाते हैं, जैसे पंखवाले पक्षी  
घोसलेको छोड़कर उड़ जाते हैं । ४-५

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पण्डित-  
श्रेष्ठ! यदि तुम्हारा यह कहना सत्य है  
कि वेद विना धर्मके मनुष्योंको पापसे

नहीं बचा सकते, तो क्या ब्राह्मणोंकी  
सनातन वाणी झूठी है? (६)

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हे महा-  
नुभाव! ब्राह्मणोंकी वाणी झूठी नहीं है,  
उसका प्रयोजन यह है कि ईश्वरहीके  
नाम और रूपसे सब जगत् प्रकाशित  
होता है; इसीसे ईश्वरका नाम विश्वरूप  
अर्थात् जगतरूप है। वेद उसी ईश्वरका  
उपदेश करने हैं, उसीकी प्राप्तिके लिये  
तप और यज्ञ रूपी कर्म बताते हैं।  
विद्वान मनुष्य तप और यज्ञमें पवित्र  
होकर पापका नाश करता है; पाप नाश  
होनेसे ज्ञान होता है; ज्ञान होनेसे ब्रह्म  
प्राप्ति होती है; ऐसा न करनेसे अर्थात्  
ज्ञान न होनेसे जब मनुष्यको यज्ञादि कर्म



अस्मिँल्लोके तपस्तप्तं फलमन्यत्र भुज्यते ।

ब्राह्मणानामिमे लोका धात्वे तपसि तिष्ठताम् ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र उवाच- कथं समृद्धमसमृद्धं तपो भवति केवलम् ।

सनत्सुजात तद् ब्रूहि यथा विद्याम तद्वयम् ॥ ११ ॥

सनत्सुजात उवाच- निष्कल्मषं तपस्त्वेतत्केवलं परिचक्षते ।

एतत्समृद्धमप्यृद्धं तपो भवति केवलम् ॥ १२ ॥

तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि क्षत्रिय ।

तपसा वेदविद्वांसः परं त्वमृतमामुयुः ॥ १३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- कल्मषं तपसो ब्रूहि श्रुतं निष्कल्मषं तपः ।

सनत्सुजात येनेदं विद्यां गुह्यं सनातनम् ॥ १४ ॥

सनत्सुजात उवाच- क्रोधादयो द्वादश यस्य दोषास्तथा नृशंसानि दशत्रि राजन् ।

धर्मादयो द्वादशैते पितॄणां शास्त्रे गुणा ये विदिता द्विजानाम् ॥ १५ ॥

क्रोधः कामो लोभमोहौ विधित्साऽकृपाऽसूये मानशोकौ स्पृहा च ।

करनेपर अर्थ धर्म और कामकी इच्छा बनी रहती है, तब इस लोकसे मरकर स्वर्गमें जाता है और वहां अनेक सुख भोग कर फिर इस लोकमें आता है, अवश्य कर्तव्य तप करनेवाले तपस्वी ब्राह्मणोंके लोक हमने आपसे कहे । ७-१०

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात मुने! एकही तप विद्वान और अविद्वानोंके करनेसे दो प्रकारका कैसे हो जाता है? सो आप हमसे कहिये । (११)

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हे क्षत्रिय जो सब कामनाओंको छोड़ कर किया जाय वह तप केवल और समृद्धके नामसे प्रसिद्ध होता है, और जो केवल पाखण्डके लिये किया जाता है, वह ऋद्ध और पापमय कहाता है । हे क्षत्रि-

य ! तुमने जो हमसे पूछा उस सबका तपही मूल है; तप करनेसे अनेक वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंकी मोक्ष हुई है । ( १२—१३ )

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात ! आपने जो हमसे कहा कि “ कल्मष रहित तप उत्तम है ” सो कल्मष क्या वस्तु है ? सो आप हमसे कहिये जिससे हम इस गुप्त विषयको जानें । ( १४ )

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, क्रोध आदिक बारह, निर्दयता आदिक तेरह दोष और धर्मादिक बारह गुण पाण्डित ब्राह्मणोंने शास्त्रोंमें लिखे हैं; सो हम तुमसे कहते हैं; क्रोध, काम, लोभ, मोह, असन्तोष, किसीपर कृपा न करनी,

ईर्ष्या जुगुप्सा च मनुष्यदोषा वज्याः सदा द्वादशैते नराणाम् ॥ १६ ॥

एकैकः पर्युपास्तेह मनुष्यान्मनुजर्षभ ।

लिप्समानोऽन्तरं तेषां सृगाणामिव लुब्धकः ॥ १७ ॥

विकत्थनः स्पृहयालुर्मनस्वी विभ्रत्कोपं चपलोऽरक्षणश्च ।

एतान्पापाः षण्णराः पापधर्मान्प्रकुर्वते नो असंतः सुदुर्गे ॥ १८ ॥

संभोगसंविद्विषमोऽतिमानी दत्तानुतापी कृपणो बलीयान् ।

वर्गप्रशंसी वनितासु द्वेष्टा एते परे सप्त नृशंसवर्गाः ॥ १९ ॥

धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च अमात्सर्यं हीतिस्तिक्षाऽनसूया ।

यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य ॥ २० ॥

यस्त्वेतेभ्यः प्रभवेद् द्वादशभ्यः सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात् ।

डाह, अभिमान, शोक, अधिक सुखकी इच्छा करनी, किसीकी उन्नतिको न सहना और दूसरेकी निन्दा करनी, ये मनुष्यके बारह दोष हैं, इनको सदा छोड़ना चाहिये। हे पुरुष-श्रेष्ठ ! जो मनुष्य इन बारहमेंसे एककी भी सेवा करता है, वह दूसरे दूसरेमें इस प्रकार फँस जाता है, जैसे एक हिरनके मारने से व्याध दूसरे हरिणके लोभमें पड़ता है । ( १५—१७ )

जो पाप करनेवाले पापी मनुष्य सङ्कटमें पड़ते हैं, परन्तु कुछ चिन्ता नहीं करते वे इन छः पापोंको करते हैं। अपनी प्रशंसा, बहुत यत्न करके दूसरे की स्त्री आदिके भोगनेकी इच्छा, अत्यंत अभिमान, क्रोध, चञ्चलता और किसीकी रक्षा न करना, यही छः दोष हैं। स्त्री आदि विषयोंका उपभोग लेना ही पुरुषार्थ है ऐसा मानकर बुरा व्यवहार कर-

ना, अत्यन्त मान, देकर पछताना, न देना, प्रजाओंसे अधिक कर लेना, पापकी प्रशंसा करनी, और परिणीत स्त्रियोंका वैर करना, ये सात और दोष हैं; सात ये और छः पहले कहे तेरह निर्दयतादि दोष हुए । ( १८—१९ )

धर्म अर्थात् अपना वर्ण और आश्रम के अनुसार कर्म करना, जिसमें किसीकी हानि न हो ऐसे सत्य वचन बोलना, इन्द्रियोंको वशमें रखना, तप करना, दूसरेकी उन्नतिको देख कर दुःख न मानना, लज्जा, क्रोध उत्पन्न होनेका कारण होनेपर भी उसको रोकना, दूसरे की निन्दा नहीं करनी, यज्ञ, दान, अत्यन्त आपत्ति पड़नेपर भी सत्यको नहीं छोड़ना, और अर्थसहित वेद पढ़ना, यही ब्राह्मणोंके बारह व्रत हैं। जो इन बारह व्रतोंको धारण करता है, वह समस्त पृथ्वीको अपने वशमें रख सकता है; जो

त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वाऽर्थितो यस्तस्य स्वमस्तीति स वेदितव्यः ॥ २१ ॥

दमस्त्यागोऽप्रमादश्च एतेष्वमृतमाहितम् ।

नानि सत्यमुत्त्वान्याहुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ॥ २२ ॥

दमो ह्यष्टादशगुणः प्रतिकूलं कृताकृते ।

अनृतं चाऽभ्यसूया च कामार्थौ च तथा स्पृहा ॥ २३ ॥

क्रोधः शोकस्तथा तृष्णा लोभः पैशुन्यमेव च ।

मत्सरश्च विहिंसा च परितापस्तथाऽरतिः ॥ २४ ॥

अपस्मारश्चाऽनिवादस्तथा संभावनाऽऽत्मनि ।

एतैर्विमुक्तो दोषैर्यः स दांतः सद्भिरुच्यते ॥ २५ ॥

मदोऽष्टादशदोषः स्यात्त्यागो भवति षड्विधः ।

विपर्ययाः स्मृता ये ते मददोषा उदाहृताः ॥ २६ ॥

श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागस्तृतीयो दुष्करो भवेत् ।

तेन दुःखं तरत्येव भिन्नं तस्मिन् जितं कृते ॥ २७ ॥

श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागः श्रियं प्राप्य न हृष्यति ।

इनमेंसे एक,तीन वा दोको धारण करता है, वह भी सब जगत्के सुखोंको भोगता है । ( २०—२१ )

इन्द्रियोंको जीतना, सब कर्म ईश्वर को अर्पण करना, और तत्त्वका अनुसंधान करना, इन्हीं तीनोंमें मुक्ति रहती है । बुद्धिमान ब्राह्मणोंने इन्हीं तीनोंको जिनमें सत्य मुख्य है ऐसे ये फल हैं ऐसा कहा है । इन्द्री जीतनेके ये अठारह लक्षण हैं,—आलस्य, अश्रद्धा, क्षुधा, जिह्वालौल्यादिको छोड़ना, सत्य बोलना, किसीसे डाह न करनी, काम और धनमें चित्तका न जाना, क्रोध, शोक, तृष्णा, लोभ, पिशुनता न करनी, क्षुद्रता न करनी, किसीकी हिंसा न कर-

नी, बहुत दुःख न करना, बुरे कामोंमें चित्तको न जाने देना, कर्तव्य कर्मको न भूलना, दूसरेसे प्रसन्न रहना, अभिमान न धरना, यह अठारह गुण जिसमें हों, उसीको पण्डित लोग इन्द्रीजित कहते हैं । ( २२—२५ )

इसी प्रकार अभिमानीमें कहे हुए गुणोंसे उलटे अठारह दोष रहते हैं । छः गुणोंसे युक्त त्याग, बहुत श्रेष्ठ वस्तु है, परंतु उसमें तीसरा करनेमें बहुत कठिन है । इस तृतीय त्याग करनेसे मनुष्य दुःखोंके पार हो जाता है । हे राजेन्द्र ! वे छः प्रकारके त्याग ये हैं,— धन पाकर प्रसन्न न होना, यह पहला लक्षण है, यज्ञयाग और वापी

इष्टापूतं द्वितीयं स्यान्नित्यवैराग्ययोगतः ॥ २८ ॥  
 कामत्यागश्च राजेन्द्र स तृतीय इति स्मृतः ।  
 अप्यवाच्यं वदंत्येतं स तृतीयो गुणः स्मृतः ॥ २९ ॥  
 त्यक्तैर्द्रव्यैर्यद्भवति नोपयुक्तैश्च कामतः ।  
 न च द्रव्यैस्तद्भवति नोपयुक्तैश्च कामतः ॥ ३० ॥  
 न च कर्मस्वसिद्धेषु दुःखं तेन च न गलपेत् ।  
 सर्वैरेव गुणैर्युक्तो द्रव्यवानपि यो भवेत् ॥ ३१ ॥  
 अप्रिये च समुत्पन्ने व्यथां जातु न गच्छति ।  
 इष्टान्पुत्रांश्च दारांश्च न याचेत कदाचन ॥ ३२ ॥  
 अर्हते याचमानाय प्रदेयं तच्छुभं भवेत् ।  
 अप्रमादी भवेदेतैः स चाऽप्यष्टगुणो भवेत् ॥ ३३ ॥  
 सत्यं ध्यानं समाधानं चोद्यं वैराग्यमेव च ।  
 अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च तथाऽसंग्रहमेव च ॥ ३४ ॥  
 एवं दोषा मदस्योक्तास्तान्दोषान्परिवर्जयेत् ।

आराम आदि करना वैराग्यके सहित  
 यह त्यागका दूसरा लक्षण है। (२८-२९)  
 हे राजेन्द्र ! कामको छोड़ना यह  
 त्यागका तीसरा लक्षण है, इस तीसरे  
 लक्षणसे जगत्में त्यागोंकी बहुत प्रशंसा  
 होने लगती है; यह त्याग जैसे बिना  
 भोगे छूटता है; वैसे भोगनेके पश्चात्  
 नहीं छूटता, क्योंकि कर्म उत्पत्तिके पह-  
 लेही उसको छोड़नेसे कुछ दुःख नहीं  
 होता, अन्यथा छोड़नेमें अनेक दुःख  
 होते हैं। दुःख होने पर दुःख न मानना  
 यह त्यागका चौथा लक्षण है, अपनी  
 प्यारी वस्तुको अर्थात् स्त्री पुत्रादिकोंको  
 ईश्वरसे न मांगना यह त्यागका पांचवां  
 लक्षण है, उचित मनुष्यके मांगनेपर

दान देना यह त्यागका छठां लक्षण है;  
 इन छहोंको करनेसे मनुष्य कभी भ्रममें  
 नहीं पड़ता। (२९-३३)

दानके आठ लक्षण और हैं,— सत्य  
 बोलना, ईश्वरका वा आत्माका ध्यान  
 करना, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात ना-  
 मक दो प्रकारकी समाधि करना, तर्क  
 करना, सबको छोड़नेकी इच्छा करना।  
 चोरी न करना, ब्रह्मचारी होकर रहना  
 और कुछ वस्तु इकट्ठी न करनी, इन  
 सबसे उलटे जो सब दोष हैं, वे अभिमा-  
 नीके शरीरमें वास करते हैं, इस लिये  
 उनको छोड़ना चाहिये। इसी प्रकार  
 त्याग और अभिमान न करना; इनमें  
 ये सब गुण उपजते हैं। प्रमादमें ये आठों

तथा त्यागोऽप्रमादश्च स चाऽप्यष्टगुणो मतः ॥ ३५ ॥

अष्टौ दोषाः प्रमादस्य तान्दोषान्परिवर्जयेत् ।

इन्द्रियेभ्यश्च पंचभ्यो मनसश्चैव भारत ।

अतीतानागतेभ्यश्च मुक्त्युपेतः सुखी भवेत् ॥ ३६ ॥

सत्यात्मा भव राजेन्द्र सत्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ।

तांस्तु सत्यमुखानाहुः सत्ये ह्यमृतमाहितम् ॥ ३७ ॥

निवृत्तेनैव दोषेण तपोव्रतमिहाऽऽचरेत् ।

एतद्धातुकृतं वृत्तं सत्यमेव सतां व्रतम् ॥ ३८ ॥

दोषैरेतैर्वियुक्तस्तु गुणैरेतैः समन्वितः ।

एतत्समृद्धमत्यर्थं तपो भवति केवलम् ॥ ३९ ॥

यन्मां पृच्छासि राजेन्द्र संक्षेपात्प्रब्रवीमि ते ।

एतत्पापहरं पुण्यं जन्ममृत्युजरापहम् ॥ ४० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—आख्यानपंचमैर्वेदैर्भूयिष्ठं कथ्यते जनः ।

तथा चाऽन्ये चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च तथा परे ॥ ४१ ॥

दोष रहते हैं; इस लिये उसको छोड़ देना चाहिये । ( ३४-३५ )

पाँचों इन्द्री और छठे मनसे सब प्रमादके आठ दोषोंको छोड़कर जीते हुए और आनेवाले दुःखोंसे छूटकर मोक्षको प्राप्त करे और सुखी हो । हे राजेन्द्र ! तुम अपने मनको सत्य में लगाओ, क्योंकि सत्यहीसे लोक स्थिर हैं, ऊपर कहे सब गुणोंमें सत्य प्रधान है, और सत्यहीमें अमृत बसता है । ब्रह्माने यह सत्य प्रतिज्ञा की है, कि बिना दोष छोड़े तप रूपी व्रत नहीं हो सकते और व्रतोंमें सत्यही श्रेष्ठ है । इन सब दोषोंसे अलग जो तप है, उसीका नाम केवल समृद्ध तप है । हे राजेन्द्र ! तुमने जो पूछा सो हमने सं-

क्षेपसे कहा, यह हमारा वचन परम पवित्र तथा जन्म, मरण और रोगोंका नाश करनेवाला है । ( ३६-४० )

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पाण्डितश्रेष्ठ सनत्सुजात ! कोई कहता है कि ईश्वर इस समस्त जगत्में स्थावर और जङ्गम-रूप होकर व्याप्त है; कोई कहता है कि बाह्यशरीर पुरुष, छन्द पुरुष, वेद पुरुष और महापुरुष ये ईश्वरके चार भेद हैं । कोई कहता है, —क्षर, अक्षर, और उत्तम पुरुष इन भेदोंसे ईश्वर तीन प्रकारके हैं । कोई कहता है, कि शब्द-ब्रह्म और परब्रह्मके भेदसे ईश्वर दो प्रकारके हैं । कोई कहता है, कि ईश्वर एक ही है, और कोई कहता है, कि ईश्वर

द्विवेदाश्चैकवेदाश्चाऽप्यनृचश्च तथा परे ।

तेषां तु कतरः स स्याद्यमहं वेद वै द्विजम् ॥ ४२ ॥

सनत्सुजात उवाच—एकस्य वेदस्याऽज्ञानाद्वेदास्ते बहवः कृताः ।

सत्यस्यैकस्य राजेन्द्र सत्ये कश्चिदवस्थितः ॥ ४३ ॥

एवं वेदमविज्ञाय प्राज्ञोऽहमिति मन्यते ।

दानमध्ययनं यज्ञो लोभादेतत्प्रवर्तते ॥ ४४ ॥

सत्यात्प्रच्यवमानानां संकल्पश्च तथा भवेत् ।

ततो यज्ञः प्रतायेत सत्यस्यैवाऽवधारणात् ॥ ४५ ॥

मनसाऽन्यस्य भवति वाचाऽन्यस्याऽथ कर्मणा ।

संकल्पसिद्धः पुरुषः संकल्पानधितिष्ठति ॥ ४६ ॥

अनैभृत्येन चैतस्य दीक्षितव्रतमाचरेत् ।

नामैतद्धातुनिर्वृत्तं सत्यमेव सतां परम् ॥ ४७ ॥

ज्ञानं वै नाम प्रत्यक्षं परोक्षं जायते तपः ।

और जगत अलग नहीं हैं । इन सबमें कौन सच्चा ब्राह्मण है सो आप हमसे कहिये । ( ४१-४२ )

श्रीसनत्सुजात मुनि बोल, हे राजेन्द्र ! तीनों कालमें रहनेवाले एक ईश्वर को न जाननेसे अज्ञानियोंने ये सब अनेक भेद बना लिये हैं । हे राजेन्द्र ! ईश्वर एकही है, और उसीको महात्मा लोग मानते हैं । इस प्रकार मूर्ख लोग वेदोंको बिना जाने यज्ञादिक अनेक कर्मोंको करने लगते हैं, परन्तु ये सब कर्म लोभके मूल हैं । जब सत्य नाश होता है, तब उस मनुष्यका संकल्प भी छोटे सुखोंकी ओर जाने लगता है; तब वेदोंके प्रमाणसे मनुष्य यज्ञादिक करने लगता है । ( ४३-४५ )

किसी मनुष्य का यज्ञ मनसे होता है, दूसरेका वचनसे और कईयोंका यज्ञ कर्मसे होता है । इस रीतिसे अनेक संकल्प सिद्ध होनेसे ब्रह्मादिलोकोंकी प्राप्ति होती है । संकल्प दृढ नहीं है, इस लिये वचन आदिकको अपने वशमें करके व्रत करे । इस व्रतको छोड़ना नहीं चाहिये; क्योंकि सत्यव्रतही पाण्डित्योंका परम धर्म है । ज्ञान प्रत्यक्ष है, क्योंकि उससे शोक और मोह आदिकनाश हो जाते हैं; जैसे पाण्डितका कर्म उसी समय फल देता है, वैसे ज्ञानभी उसी समय फल देता है । जैसे विद्यार्थीकी विद्या बहुत दिनमें फल देती है, वैसेही तपभी बहुत दिनमें फल देता है, अर्थात् ज्ञानका फल प्रत्यक्ष और तपका

विद्याद्बहु पठन्तं तु द्विजं वै बहुपाठिनम् ॥ ४८ ॥

तस्मात् क्षत्रिय मा मंस्था जल्पितेनैव वै द्विजम् ।

य एव सत्यान्नाऽपैति स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया ॥ ४९ ॥

छंदांसि नाम क्षत्रिय तान्यथर्वा पुरा जगौ महर्षिभ्य एषः ।

छंदोविदस्ते य उत नाऽधीतवेदा न वेदवेद्यस्य विदुर्हि तत्त्वम् ॥ ५० ॥

छंदांसि नाम द्विपदां वरिष्ठ स्वच्छंदयोगेन भवन्ति तत्र ।

छंदोविदस्तेन च तानधीत्य गता न वेद्यस्य न वेदमार्गाः ॥ ५१ ॥

न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति कश्चित्त्वैतान्बुद्ध्यते वापि राजन् ।

यो वेद वेदान्न स वेद वेद्यं सत्ये स्थितो यस्तु स वेद वेद्यम् ॥ ५२ ॥

न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति वेद्येन वेदं न विदुर्न वेद्यम् ।

यो वेद वेदं स च वेद वेद्यं यो वेद वेद्यं न स वेद सत्यम् ॥ ५३ ॥

यो वेद वेदान्स च वेद वेद्यं न तं विदुर्वेदविदो न वेदाः ।

तथापि वेदेन विदन्ति वेदं ये ब्राह्मणा वेदविदा भवन्ति ॥ ५४ ॥

फल अप्रत्यक्ष है । ( ४६-४८ )

हे क्षत्रिय ! इस लिये तुम बहुत बकनेवालेको ब्राह्मण मत समझो । जो कभी सत्यको न छोड़े उसीको ब्राह्मण जानो । हे क्षत्रिय ! पहले समयमें अथर्वा मुनिने अनेक मुनियोंके संघमें जो कहा था, उन्हींका नाम अब उपनिषत होगया है । जो अर्थके समेत उपनिषत सहित सब वेदोंको पढ़ते हैं, परंतु वेदवेद्य परपुरुषका तत्त्व नहीं जानते हम उनको भी वेदविद्याका जाननेवाला नहीं कह सकते । हे मनुष्यश्रेष्ठ ! वेद परमात्माके विषयमें स्वतन्त्र प्रमाण हैं, इसी लिये उनका नाम छन्द है; छन्दों के जाननेवाले भी उन वेदोंके अध्ययन करके परमात्म स्वरूप को प्राप्त हुए हैं,

वे पुनः प्रपंचको नहीं आते (४९-५१)

हे राजन् ! वेदोंका जाननेवाला कोई पण्डित नहीं है और बहुत चित्त शुद्ध होनेसे जो कोई जानता है भी वह ईश्वरको नहीं जानता; और जो ईश्वरको जानता है वही वेदका जाननेवाला है । अहङ्कारादिक जड वस्तुओंमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो जान सकता है । चित्त जड है इस लिये इससे आत्मा और इतर जडका ज्ञान नहीं होता । जो आत्मा को जानता है, वही इतर जडको जानता है और जो केवल जडको जानता है, वह सत्यब्रह्मको जान नहीं सकता । जो वेदोंको जानता है, वही प्रपंचको जान सकता है, तोभी वेद और वेदके जाननेवाले भी ईश्वरको नहीं जानते, तथापि

धामांश भागस्य तथा हि वेदा यथा च शाखा हि महीरुहस्य ।  
 संवेदने चैव यथाऽऽमनन्ति तस्मिन्नि सत्ये परमात्मनोऽर्थे ॥५५॥  
 अभिजानामि ब्राह्मणं व्याख्यातारं विचक्षणम् ।  
 यद्विद्वन्विचिकित्सः स व्याचष्टे सर्वसंशयान् ॥५६॥  
 नाऽस्य पर्येषणं गच्छेत्प्राचीनं नोत दक्षिणम् ।  
 नाऽर्वाचीनं कुतस्तिर्यङ् नाऽऽदिशंतु कथंचन ॥ ५७ ॥  
 तस्य पर्येषणं गच्छेत्प्रत्यर्थिषु कथंचन ।  
 अविचिन्वन्निमं वेदे तपः पश्यति तं प्रभुम् ॥ ५८ ॥  
 तूष्णींभूत उपासीत न चेष्टेन्मनसाऽपि च ।  
 उपावर्तस्व तद्वद्भ्य अंतरात्मानि विश्रुतम् ॥ ५९ ॥  
 मौनान्न स मुनिर्भवति नाऽरण्यवसनान्मुनिः ।  
 स्वलक्षणं तु यो वेद स मुनिः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ६० ॥  
 सर्वार्थानां व्याकरणाद्वैयाकरण उच्यते ।  
 तन्मूलतो व्याकरणं व्याकरोतीति तत्तथा ॥ ६१ ॥  
 प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः ।

वेद जाननेवाले ब्राह्मण वेदोंके प्रमाणसे ईश्वरको जानते हैं । ( ५२-५४ )

जैसे वृक्षकी शाखा आकाशमें चंद्रकी सूचक होती है ऐसेही वेदभी ईश्वर का सूचकही है; जैसे शाखाओंके आश्रयसे चंद्रका बोध होता है वैसे वेदके मननसे परमेश्वरका बोध होता है। हम उसीको ब्राह्मण कहते हैं, जो वेदोंके अर्थोंको कहे; और सन्देहोंको नाश करें। ईश्वरके ढूंढनेके लिये पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण किसी दिशामें भ्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है; ईश्वरके ढूंढनेके लिये केवल अपने आत्माहीको पूछना चाहिये। वेद पढ़ने और तप करनेसे

स्वयं ईश्वर मिल जाता है। मनुष्यको उचित है कि चुप होकर एकान्तमें बैठे और मनसेभी कुछ कर्म करनेकी इच्छा न करे; ऐसा करनेसे आत्माही में ईश्वर मिलता है। वन में रहने और मौनी होनेसे कोई मुनि नहीं होता, परंतु जो आत्माका लक्षण जानता है वह मुनियों से श्रेष्ठ है । ( ५५-६० )

सब विषयोंको व्युत्पत्तिद्वारा प्रकट करनेके कारण ज्ञानी वैयाकरण कहाता है, तथा सब जगत् की विशेष उत्पत्ति करने के कारण ईश्वर ही वैयाकरण है और आत्मज्ञानी भी वैयाकरण है। जो सत्यमें रहकर प्रत्यक्ष भावोंको देखता



सत्ये वै ब्राह्मणस्तिष्ठंस्तद्विद्वान्सर्वविद्ववेत् ॥ ६२ ॥

धर्मादिषु स्थितोऽप्येवं क्षत्रिय ब्रह्म पश्यति ।

वेदानां चाऽनुपूर्व्येण एतद् बुद्ध्या ब्रवीमि ते ॥ ६३ ॥ १६३३

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि  
सनत्सुजातवाक्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच-सनत्सुजात यामिमां परां त्वं ब्राह्मीं वाचं वदसे विश्वरूपाम् ।

परां हि कामेन सुदुर्लभां कथां प्रब्रूहि मे वाक्यमिदं कुमार ॥ १ ॥

सनत्सुजात उवाच-नैतद्ब्रह्म त्वरमाणेन लभ्यं यन्मां पृच्छन्नतिहृष्यस्यतीव ।

बुद्धौ विलीने मनसि प्रचिंत्याऽविद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र उवाच-अत्यंतविद्यामिति यत्सनातनीं ब्रवीषि त्वं ब्रह्मचर्येण सिद्धाम् ।

अनारभ्यां वसतीह कार्यकाले कथं ब्राह्मण्यममृतत्वं लभेत ॥ ३ ॥

सनत्सुजात-अव्यक्तविद्यामभिधास्ये पुराणीं बुद्ध्या च तेषां ब्रह्मचर्येण सिद्धाम् ।

है; सब विषयोंको जानता है; उसी विद्वानको ब्राह्मण कहना चाहिये । हे क्षत्रिय ! जो धर्मादि कर्मोंमें स्थिर रहता है तथा वेदोंके श्रवण मननको भी करता है वह ब्रह्म देखता है, यह साध्य करनेकी रीति अब मैं कहता हूं । ( ६१—६३ ) [ १६३३ ]

उद्योगपर्वमें त्रैतालीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें चत्वारिंश अध्याय ।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात ! आप जो हमसे यह सनातन ब्रह्मज्ञानका वर्णन करते हैं, सो ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ और सबसे श्रेष्ठ है आप हमसे वह सब ज्ञान बतलाइये । ( १ )

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हे क्षत्रिय ! यह ब्रह्म जो तुमको बड़ी प्यारी लगती है वह ऐसी छोटी वस्तु नहीं है,

जिसको शीघ्र प्राप्त कर लोगे । जब मन बुद्धिमें लीन होजाता है, तब विद्या प्राप्त होती है, परन्तु यह ब्रह्म-विद्या बिना ब्रह्मचर्यके नहीं प्राप्त होती । ( २ )

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे महामुने ! आप जिस सदा सिद्ध सनातन ब्रह्मविद्याका वर्णन करते हैं और यह भी कहते हैं कि यह ब्रह्मविद्या ब्रह्मचर्यसेही प्राप्त होती है और यहभी कहते हैं, कि यह ब्रह्मविद्या आत्माहीमें रहती है, तब उस ब्राह्मणोंके पाने योग्य ज्ञानरूपी अमृतको प्राप्त करनेकी क्या अवश्यकता है । क्योंकि जो वस्तु अपने आत्माहीमें हैं, उसको प्राप्त करना और न प्राप्त करना क्या ? ( ३ )

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हम तुमसे उस ब्रह्मविद्याका वर्णन करते हैं;

यां प्राप्यैनं मर्त्यलोकं त्यजन्ति या वै विद्या गुरुवृद्धेषु नित्या ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—ब्रह्मचर्येण या विद्या शक्या वेदितुमंजसा ।

तत्कथं ब्रह्मचर्यं स्यादेतद्ब्रह्मन्ब्रवीहि मे ॥ ५ ॥

सनत्सुजात उवाच—आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।

इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति प्रहाय देहं परमं यांति योगम् ॥ ६ ॥

अस्मिँल्लोके वै जयन्तीह कामान्ब्राह्मीं स्थितिं ह्यनुतितिक्षमाणाः ।

त आत्मानं निर्हरन्तीह देहान्मुंजादिषीकामिव सत्त्वसंस्थाः ॥ ७ ॥

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत ।

आचार्यशास्ता या जातिः सा पुण्या साऽजराऽमरा ॥ ८ ॥

यः प्रावृणोत्यवितथैन वर्णानृतं कुर्वन्नमृतं संप्रयच्छन् ।

तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत्कृतमस्य जानन् ॥ ९ ॥

गुरुं शिष्यो नित्यमभिवादयीत स्वाध्यायमिच्छेच्छुचिरप्रसक्तः ।

मानं न कुर्यान्नादधीत रोषमेष प्रथमो ब्रह्मचर्यस्य पादः ॥ १० ॥

इसको बूढ़े और गुरु लोगही जानते हैं  
इसको प्राप्त करके मनुष्य इस मृत्यु  
लोकको त्याग देता है । ( ४ )

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे ब्रह्मन् !  
जिस ब्रह्मचर्यके करनेसे ब्रह्मविद्या शीघ्र  
जानी जाती है, आप पहले उस ब्रह्म-  
चर्यहीका हमसे वर्णन कीजिये । ( ५ )

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, जब मनुष्य  
गुरुके घरमें जाकर निष्कपट होकर उनकी  
सेवा करता है, उसी समयके कर्मको  
ब्रह्मचर्य कहते हैं । जो उस व्रतको पूरा  
पालन करता है, वह इस लोकमें शास्त्रकार  
होता है और अन्तको मोक्ष प्राप्त करता  
है । जो ब्राह्मी स्थितिके प्राप्त करनेके  
उद्येश्यसे इस लोक में कामनाओंका जय  
करता है, वह अपने शरीरमें आत्माको

अलग करता है जैसे मुंजघाससे तिनका ।  
यह सत्त्व गुणको प्रधान मानकर आत्म-  
ज्ञानको प्राप्त करता है और वही ईश्वरको  
जान सकता है । हे भारत ! माता और  
पिता सबके शरीरको बनाते हैं; परन्तु  
जिस जातिको अच्छे गुरु निश्चित करते  
हैं, वही पवित्र, अजर और अमर है; जो  
आचार्य क्रमके अनुसार सत्यमे अमृतकी  
इच्छा करता हुआ वर्णोंको ब्रह्मविद्या  
पढ़ाते हैं, वेही माता और पिता हैं, उनका  
कभी द्वेष नहीं करना चाहिये । ( ६-९ )

शिष्य पवित्र तथा सावधान होकर  
सदा गुरुकी सेवा करे; गुरुको अभिवादन  
करे, और स्वाध्याय करे तथा अभिमान  
न करे और क्रोधभी न करे यह ब्रह्मचर्यका  
पहला लक्षण है । जो विद्यार्थी पवित्र

शिष्यवृत्तिक्रमेणैव विद्यामाप्नोति यः शुचिः ।

ब्रह्मचर्यव्रतस्याऽस्य प्रथमः पाद उच्यते ॥ ११ ॥

आचार्यस्य प्रियं कुर्यात्प्राणैरपि धनैरपि ।

कर्मणा मनसा वाचा द्वितीयः पाद उच्यते ॥ १२ ॥

समा गुरौ यथा वृत्तिर्गुरुपत्न्यां तथाऽऽचरेत् ।

तत्पुत्रे च तथा कुर्वन् द्वितीयः पाद उच्यते ॥ १३ ॥

आचार्येणाऽऽत्मकृतं विज्ञानञ्ज्ञात्वा चाऽर्थं भावितोऽस्मीत्यनेन ।

यन्मन्यते तं प्रतिहृष्टबुद्धिः स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः ॥ १४ ॥

नाऽचार्यस्याऽनपाकृत्य प्रवासं प्राज्ञः कुर्वीत नैतदहं करोमि ।

इतीव मन्येत न भाषयेत स वै चतुर्थो ब्रह्मचर्यस्य पादः ॥ १५ ॥

कालेन पादं लभते तथार्थं ततश्च पादं गुरुयोगतश्च ।

उत्साहयोगेन च पादमृच्छेच्छास्त्रेण पादं च ततोऽभियाति ॥ १६ ॥

धर्मादयो द्वादश यस्य रूपमन्यानि चांगानि तथा बलं च ।

आचार्ययोगे फलतीति चाऽऽहुर्ब्रह्मार्थयोगेन च ब्रह्मचर्यम् ॥ १७ ॥

एवं प्रवृत्तो यदुपालभेत वै धनमाचार्याय तदनु प्रयच्छेत् ।

रहकर गुरुकी सेवा करके विद्या पढता है, वही विद्या प्राप्त करनाही ब्रह्मचर्यव्रतका प्रथम चरण है। उसके पश्चात् मन, वचन, बुद्धि और प्राणोंसे गुरुका प्रिय करना ब्रह्मचर्यका द्वितीय चरण कहाता है। गुरुके समान गुरुकी स्त्री और गुरुपुत्रकी सेवा करना ब्रह्मचर्य का यह भी दूसरा चरण है। विद्या पढनेके पश्चात् जो कुछ आनन्द वा सुख प्राप्त हो, उस सबको यही जाने कि यह सब सुख गुरुकी कृपासे हुआ है, यह ब्रह्मचर्यका तृतीय चरण है; इस तृतीय चरणको प्रसन्न होकर करना चाहिये। गुरुको विना गुरुदक्षिणा दिये कहीं न

जाना और गुरुको दिये हुए धनको अपना दिया हुआ न जानना, यह ब्रह्मचर्यका चतुर्थ चरण है। ( १०-१५ )

विद्याका पहिला चरण गुरुके घरमें रहनेसे मिलता है, दूसरा गुरुकी सेवा से, तीसरा उत्साहसे और चौथा शास्त्रसे प्राप्त होता है। पहले कहे धर्मादिक बारह गुण ब्रह्मचर्यके रूप हैं, औरभी अच्छे कर्म तथा बल उसके अङ्ग हैं। यह ब्रह्मचर्यरूपी वृक्ष गुरुके यहां रहने और वेद पढनेसे फलता है। जो ऐसे अच्छे कर्म करनेसे धन मिले वह सब गुरुको दे देना पण्डितोंकी वृत्ति है। जो व्यवहार गुरुके संग करे, सोई गुरुके पुत्रके सङ्गभो

सतां वृत्तिं बहुगुणामेवमेति गुरोः पुत्रे भवति च वृत्तिरेषा ॥१८॥

एवं वसन्सर्वतो वर्धतीह बह्वृत्तान्लभते च प्रतिष्ठाम् ।

वर्षति चाऽस्मै प्रदिशो दिशश्च वसत्यस्मिन्ब्रह्मचर्ये जनाश्च ॥ १९ ॥

एतेन ब्रह्मचर्येण देवा देवत्वमाप्नुवन् ।

ऋषयश्च महाभागा ब्रह्मलोकं मनीषिणः ॥ २० ॥

गंधर्वाणामनेनैव रूपमप्सरसामभूत ।

एतेन ब्रह्मचर्येण सूर्योऽप्यहाय जायते ॥ २१ ॥

आकांक्षयाऽर्थस्य संयोगाद्रसभेदार्थिनामिव ।

एवं ह्येते समाज्ञाय तादृग्भावं गता इमे ॥ २२ ॥

य आश्रयेत्पावयेच्चापि राजन्सर्वं शरीरं तपसा तप्यमानः ।

एतेन वै बाल्यमभ्येति विद्वान्भृत्यं तथा स जयत्यंतकाले ॥ २३ ॥

अन्तवतः क्षत्रिय ते जयन्ति लोकाञ्जनाः कर्मणा निर्मलेन ।

ब्रह्मैव विद्वांस्तेन चाऽभ्येति सर्वं नाऽन्यः पन्था अघनाय विद्यते ॥२४॥

धृतराष्ट्र उवाच-आभाति शुक्लामिव लोहितामिवाऽथो कृष्णमथांजनं काद्रवं वा ।

सद्ब्रह्मणः पश्यति योऽत्र विद्वान्कथंरूपं तदस्मृतमक्षरं पदम् ॥ २५ ॥

करना चाहिये । ( १६-१८ )

इस प्रकार ब्रह्मचर्य धारण करके जो गुरुके घरमें रहता है, उसको प्रतिष्ठा और अनेक पुत्र प्राप्त होते हैं ! वह जिधर जाता है उधरही सुख पाता है और सब मनुष्य उसके व्रतकी प्रशंसा करते हैं । इस ब्रह्मचर्यके प्रतापसे मनुष्य देवता होता है, और बुद्धिमान मुनि ब्रह्मलोकमें जाता है । इसी ब्रह्मचर्यके प्रतापसे अप्सरा और गन्धर्वोंने सुन्दररूप पाया है, इसीके प्रतापसे सूर्य उदय होते हैं । जैसे पारदगुटिका इष्टसिद्धि कर देती है, ऐसेही इस ब्रह्मचर्यके प्रतापसे अनेक महात्मा परम पदको प्राप्त हो गये ।

हे राजन् ! जो इस ब्रह्मचर्यको करता है और शरीरसे तप करता है, सो पवित्र होता है; सदा बालभावमें रहता हुआ अकालमृत्यु को जीतता है । ( १९—२३ )

हे क्षत्रिय ! जो ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करते हैं; वे अत्यन्त उत्तम कर्म करनेसे मिलने योग्य लोकोंको जीत लेते हैं । इस ज्ञानसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, मोक्षके लिये और दूसरा कोई मार्ग नहीं है । २४

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पाण्डितश्रेष्ठ ! इस जगतमें सफेद, लाल और काले रङ्ग दिखाई देते हैं; सो आप कहिये कि ब्रह्म लाल है, काला है वा सफेद है ? अर्थात् किस रंगके आधार पर वह है ? ( २५ )

सनत्सुजात उवाच-आभाति शुक्लमिव लोहितमिवाऽथो कृष्णमायसमर्कवर्णम् ।  
न पृथिव्यां तिष्ठति नाऽन्तरिक्षे नैतत्समुद्रे सलिलं बिभर्ति ॥ २६ ॥  
न तारकासु न च विद्युदाश्रितं न चाऽभ्रेषु दृश्यते रूपमस्य ।  
न चापि वायौ न च देवतासु नैतच्छन्द्रे दृश्यते नोत् सूर्ये ॥ २७ ॥  
नैवर्धुं तन्न यजुषु नाऽथर्वसु न दृश्यते वै विमलेषु सामसु ।  
रथन्तरे बार्हद्रथे वाऽपि राजन्महाव्रते नैव दृश्येद् ध्रुवं तत् ॥ २८ ॥  
अपारणीयं तमसः परस्तात्तदन्तकोऽप्येति विनाशकाले ।  
अणीयो रूपं क्षुरधारया समं महच्च रूपं तद्वै पर्वतेभ्यः ॥ २९ ॥  
सा प्रतिष्ठा तदमृतं लोकास्तद्ब्रह्म तद्यशः ।  
भूतानि जज्ञिरे तस्मात्प्रलयं यांति तत्र हि ॥ ३० ॥  
अनामयं तन्महदुद्यतं यशो वाचो विकारं कवयो वदन्ति ।  
यस्मिन् जगत्सर्वमिदं प्रतिष्ठितं ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ३१ ॥ १६६४  
इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि सनत्सुजातवाक्ये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥  
सनत्सुजात उवाच-शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मानः परासुता ।  
ईर्ष्या मोहो विधित्सा च कृपाऽसूया जुगुप्सुता ॥ १ ॥

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हे क्षत्रिय !  
ब्रह्म लाल, सफेद, काला और सूर्यके  
समान वर्णवाला है, अर्थात् सब वर्ण  
उसीके हैं। वह पृथ्वी, आकाश, समुद्र,  
जल, तारे, बिजली, मेघ, वायु, देवता,  
चन्द्रमा, सूर्य, ऋक्, यजु, साम और  
अथर्व वेदमें नहीं रहता। हे राजन् !  
वह रथन्तर महाव्रत अथवा बड़ी बड़ी  
यज्ञोंमें भी निवास नहीं करता; वह अपार  
अन्धकारसे दूर है; कालभी उसीमें  
मिल जाता है अर्थात् वह कालके आ-  
धीन नहीं बरन कालही उसके आधीन  
है। ( २६-२९ )

वह परम छोटा रूपवाला क्षुर धाराके

समान सूक्ष्म और पर्वतोंसेभी बड़ा है।  
वही प्रतिष्ठा, अमृत, लोक, ब्रह्म, यश-  
रूप है, वही सब प्राणियोंको उत्पन्न  
करता है और वही नाश करता है,  
पाण्डित उसे रोगरहित, प्रकाशमान और  
अविकारी कहते हैं, उसीमें यह सब  
जगत् स्थित है; उसीके जाननेसे मोक्ष  
प्राप्त होती है। ( २९-३१ ) १६६४

उद्योगपर्वमें चत्वारिंश अध्याय समाप्त।

उद्योगपर्वमें पैंतालिस अध्याय ।

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, शोक,  
क्रोध, लोभ, काम, मान, मोह, बहुत  
सोना, करनेकी इच्छा, प्रेम, किसीकी  
उन्नतिको न सहना और नीच कर्म

द्वादशैते महादोषा मनुष्यप्राणनाशनाः ।

एकैकमेते राजेंद्र मनुष्यान्पर्युपासते ।

यैराविष्टो नरः पापं मूढसंज्ञो व्यवस्यति ॥ २ ॥

स्पृह्यालुरूपः परुषो वा वदान्यः क्रोधं विभ्रन्मनसा वै विकत्थी ।

नृशंसधर्माः षडिमे जना वै प्राप्याऽप्यर्थं नोत सभाजयन्ते ॥ ३ ॥

संभोगसंविद्विषमोऽतिमानी दत्वा विकत्थी कृपणो दुर्बलश्च ।

बहुप्रशंसी वनिताद्विद् सदैव सप्तैवोक्ताः पापशीला नृशंसाः ॥ ४ ॥

धर्मश्च सत्यं च तपो दमश्च अमात्सर्यं हीतिस्तिक्षाऽनसूया ।

दानं श्रुतं चैव धृतिः क्षमा च महाव्रता द्वादश ब्राह्मणस्य ॥ ५ ॥

यो नैतेभ्यः प्रच्यवेद् द्वादशभ्यः सर्वमपीमां पृथिवीं स शिष्यात् ।

त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वाऽर्थितो यो नाऽस्य स्वमस्तीति च वेदितव्यम् ॥ ६ ॥

दमस्त्यागोऽथाऽप्रमाद इत्येतेष्वमृतं स्थितम् ।

एतानि ब्रह्ममुख्यानां ब्राह्मणानां मनीषिणाम् ॥ ७ ॥

सद्वाऽसद्वा परीवादो ब्राह्मणस्य न शस्यते ।

नरकप्रतिष्ठास्ते स्युर्य एवं कुर्वते जनाः ॥ ८ ॥

करना, ये बारह महा दोष कहाते हैं, इनके करनेसे मनुष्यका नाश होजाता है; इन एक एकके करनेसेभी मनुष्य मूर्ख होकर अनेक पाप करने लगता है। लोभी, तेज स्वभाववाला, कठोर, अधिक बोलने वाला, क्रोधी, तर्क वितर्क करनेवाला और निर्लज्ज, ये छः मनुष्य उत्तम धनको प्राप्त करके भी उसका भोग नहीं कर सकते। (१-३)

भोग चाहनेवाला, चञ्चलबुद्धि, महा अभिमानी, देकर पछतानेवाला, कृपण, दुर्बल, अपनी प्रशंसा करनेवाला और स्त्रियोंका शत्रु; ये सात मनुष्य पापी और घातकी कहाते हैं। धर्म, सत्य, तप,

इन्द्रियोंको जीतना, किसीका बुरा न चाहना, लज्जा, त्याग, डाह न करना, दान, अच्छी बात सुनना, और क्षमा येही बारह ब्राह्मणके लिये महा व्रत हैं। जो इन बारह धर्मोंको करता है, वह इस समस्त पृथ्वीको अपने वशमें रख सकता है; जिसको इन बारहोंमेंसे एक वा दो वस्तु भी प्राप्त हुई हों, वह भी जगतके सुख भोगता है। (४-६)

इन्द्रिय जीतना, त्याग और भ्रम न करना, इन तीनोंमें अमृत वसता है; वेद पढे ब्राह्मणश्रेष्ठ इनही कर्मोंको करते हैं। चाहे अच्छा हो चाहे बुरा हो ब्राह्मणको दूसरेका दोष वर्णन करना अच्छा

मदोऽष्टादशदोषः स स्यात्पुरा योऽप्रकीर्तितः ।

लोकद्वेष्यं प्रातिकूल्यमभ्यसूया मृषा वचः ॥ ९ ॥

कामक्रोधौ पारतन्त्र्यं परिवादोऽथ पैशुनम् ।

अर्थहानिर्विवादश्च मात्सर्यं प्राणपीडनम् ॥ १० ॥

ईर्ष्या मोदोऽतिवादश्च संज्ञानाशोऽभ्यसूयिता ।

तस्मात्प्राज्ञो न माचेत सदा ह्येतद्विगर्हितम् ॥ ११ ॥

सौहृदे वै षड्गुणा वेदितव्याः प्रिये हृष्यन्त्यप्रिये च व्यथन्ते ।

स्यादात्मनः सुचिरं याचते यो ददात्ययाच्यमपि देयं खलु स्यात् ।

इष्टान्पुत्रान्विभवान्स्वांश्च दारानभ्यर्थितश्चाऽर्हति शुद्धभावः ॥ १२ ॥

त्यक्तद्रव्यः संवसेन्नेह कामाद्भुक्ते कर्म स्वाशिषं बाधते च ॥ १३ ॥

द्रव्यवान् गुणवानेवं त्यागी भवति सात्त्विकः ।

नहीं है, जो किसी दूसरेका दोष वर्णन करते हैं; वह मनुष्य अवश्य नरकमें जाते हैं। मदमें ये आठ दोष हैं, सो पहले कह चुके हैं; अब जो दोष नहीं कहे उनका वर्णन करते हैं, वैर, विरोध, डाह, झूठ, काम, क्रोध, दूसरेके वशमें रहना, दूसरेका दोष कहना, राजाके यहां दूसरेकी निन्दा करनी, प्रयोजन नाश, विवाद, मत्सर, दूसरेको पीडा देना, ईर्ष्या, घमंड, बडबड, अविचार, द्रोह करना, इत्यादि यह अठारह दोष हैं; इससे बुद्धिमान पुरुष कदापि उसमें उन्मत्त न होवे, क्योंकि मतवाला होना बहुतही निन्दनीय है ! (७-११)

मित्रतामें छः गुण जानना चाहिये। मित्रोंके प्यारे कार्योंसे सुहृद लोगोंमें प्रसन्नता होती है, और अप्रिय घटना अथवा मित्रोंके दुःखसे वह दुःखी होते

हैं, तीसरे वे अपनी अत्यन्त हितकारी वस्तुकोभी याचकोंका दान करते हैं और मांगनेके अयोग्य चीजोंको भी मित्रोंके निमित्त निःसन्देह देते हैं। जिसके हृदयके भाव अत्यन्त शुद्ध हैं, वह प्रार्थना करने और मांगनेपर अत्यन्त प्रिय ऐश्वर्य और प्रेमपात्र पुत्र कलत्रोंको भी दान कर सकते हैं। चौथे सुहृद पुरुष किसीको अपना सर्वस्व दान करके भी, मैंने इसका उपकार किया है यह विचारके उसके घरमें निवास नहीं करते। पांचवे वे मित्र आदिके ऊपर भार न देकर अपने उपार्जित धनकाही भोग करते हैं। छठवें मित्रके हितके निमित्त वे अपनी हानि सहनेमें भी विमुख नहीं होते। जो धनशाली गृहस्थ उक्त रीतिके अनुसार गुणवान, दानशील और सतोगुणी होते हैं, वे शब्द आदि

पंचभूतानि पंचभ्यो निवर्तयति तादृशः ॥ १४ ॥

एतत्समृद्धमप्यूर्ध्वं तपो भवति केवलम् ।

सत्वात्प्रच्यवमानानां संकल्पेन समाहितम् ॥ १५ ॥

यतो यज्ञाः प्रवर्धते सत्यस्यैवाऽवरोधनात् ।

मनसाऽन्यस्य भवति वाचाऽन्यस्याऽथ कर्मणा ॥ १६ ॥

संकल्पसिद्धं पुरुषमसंकल्पोऽधितिष्ठति ।

ब्राह्मणस्य विशेषेण किंचाऽन्यदपि मे शृणु ॥ १७ ॥

अध्यापयेन्महदेतद्यशस्यं वाचो विकाराः कवयो वदन्ति ।

अस्मिन्योगे सर्वमिदं प्रतिष्ठितं ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १८ ॥

न कर्मणा सुकृतेनैव राजन्सत्यं जयेज्जुहुयाद्वा यजेद्वा ।

पांच विषयोंसे पांचों इन्द्रियोंको रोक लेते हैं । (१२-१४)

अपने अपने विषयोंसे इन्द्रियोंको रोकते हैं, इस तपस्याके बढनेसे, ज्ञान योगके विनाही केवल उर्ध्वगति होती है, परन्तु ज्ञानकी भांति इसी लोकमें कृतकार्य नहीं हो सकते । जो लोग तीव्र रूपक वैराग्यके न होनेपर धैर्यसे भ्रष्ट होते हैं, उन लोगोंका “ब्रह्मलोकमें सब दिव्य सुखोंको भोगूंगा” इस प्रकारके सङ्कल्पहीसे वह तपस्या सञ्चित होती है । जिससे सब यज्ञोंकी बढती होती है, उसी सत्य सङ्कल्पके अनुरोधहीसे किसीको मनसे, किसीको वचनसे, और किसीको कर्मसे यज्ञ सिद्ध होता है, अर्थात् कोई ध्यान आदि यज्ञोंको करते हैं, कोई स्वाध्याय और जप आदि यज्ञ करते हैं, और कोई कोई ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं । (१५-१६)

राजा जिस प्रकारसे नौकरोंपर प्रभुता करता है, उसी भांतिसे संकल्प-रहित चिदात्मा सगुण ब्रह्मको जाननेवाला सत्य संकल्प करनेवाला पुरुषका स्वामी होता है । तुम और भी थोडा सा हमारे मतको सुनो । संकल्प रहित ईश्वर निर्गुण ब्रह्मके जाननेवाले ब्राह्मणके संकल्पमें विशेष रूपसे अधिष्ठान (निवास) करता है । अर्थात् सगुण उपासकोंसे निर्गुण उपासक ब्राह्मणोंमें सत्य संकल्प आदि अधिक उत्पन्न होते हैं । ब्रह्मप्राप्तिका निदान स्वरूप इस योगशास्त्रका शिष्यवर्गको अवश्य पढाना उचित है । पण्डित लोग कहते हैं, इसके अतिरिक्त और सब शास्त्र केवल वचनके विकार मात्र हैं । इस योग-शास्त्रमें सम्पूर्ण जगत्के प्रपञ्च कहे गये हैं, अर्थात् सब योगीके आधीन हैं; जो इसको जानते हैं, वे अमृत अर्थात् मुक्त होते हैं । १७-१८



नैतेन बालोऽमृत्युमभ्येति राजन् रतिं चाऽसौ न लभत्यंतकाले ॥१९॥

तूष्णीमेक उपासीत चेष्टेत मनसाऽपि न ।

तथा संस्तुतिर्निन्दाभ्यां प्रीतिरोषौ चिवर्जयेत् ॥ २० ॥

अत्रैव तिष्ठन् क्षत्रिय ब्रह्माऽऽविशति पश्यति ।

वेदेषु चाऽनुपूर्व्येण एतद्विद्वन्ब्रवीमि ते ॥ २१ ॥ [ १६८५ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि

सनत्सुजातवाक्ये पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

सनत्सुजात उवाच-यत्तच्छुक्रं महज्ज्योतिर्दीप्यमानं महद्यशः ।

तद्वै देवा उपासते तस्मात्सूर्यो विराजते ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ १ ॥

शुक्राद्ब्रह्म प्रभवति ब्रह्म शुक्रेण वर्द्धते ।

तच्छुक्रं ज्योतिषां मन्येऽतस्तं तपति तापनम् ॥

हे राजन् ! कर्मको पूर्ण रीतिसे अनुष्ठान करने पर भी उससे सत्यकी जय अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति नहीं हो सकेगी । हे क्षत्रिय ! अज्ञानी मनुष्य होम करे, चाहे यज्ञ करे, उससे कभी मुक्ति न पावेगा, और न अन्त समयहीमें उसकी मोक्ष हो सकती है । राग आदि बाह्य इन्द्रियोंके विषय रहित होकर अकेलाही उपासना करे, और मनमें भी किसी विषयका ध्यान करे, तथा प्रशंसा और निन्दामें भी प्रीति और क्रोध न करे । हे क्षत्रिय ! योगी पुरुष नौका पर चढ़े हुएकी भांति आरोपित, और मिश्रित अपवादके क्रमसे पहिले कहे हुए सब बातोंको जानकर दृष्टि भेदसे सब स्थानमें निवास करते हुए इसी लोकमें ब्रह्मका दर्शन करते हैं और

उसीमें लीन होजाते हैं । हे विद्वन् ! कर्मसे जो ब्रह्मविद्या श्रेष्ठ है, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया । (१९-२१)

उद्योग पर्वमें पैतालीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें छियालीस अध्याय । [ १६८५ ]

सनत्सुजात मुनि बोले, जो शुक्र पवित्र, महान् तेजस्वी सबका प्रकाशक महद्यश नाम ब्रह्म है, उसीकी इन्द्रियां उपासना करती हैं, और उसी मूल कारणसे सूर्य प्रकाशमान है । योगी लोग उसी सनातन परमात्माका दर्शन करते हैं, अर्थात् चित्तको वृत्तिके निरोधरूपी योगसेही सर्व ऐश्वर्ययुक्त अखण्ड एकरस परमेश्वरका दर्शन मिलता है । ब्रह्म अव्याकृत नित्य वस्तु होकर भी शुक्र अर्थात् आनन्द रूप चैतन्य-प्रतिबिम्बको पाकर जगत्के जन्म आदि

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् । ॥ २ ॥

अपोऽथ अद्भ्यः सलिलस्य मध्ये उभौ देवौ शिश्रियातेऽन्तरिक्षे ।

अतन्द्रितः सवितुर्विवस्वानुभौ बिभर्ति पृथिवीं दिवं च ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ ३ ॥

उभौ च देवौ पृथिवीं दिवं च दिशः शुक्रो भुवनं बिभर्ति ।

तस्मादिशः सरितश्च स्रवन्ति तस्मात्समुद्रा विहिता महांतः ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ ४ ॥

चक्रे रथस्य तिष्ठन्तोऽध्रुवस्याऽव्ययकर्मणः ।

केतुमन्तं वह्न्यश्वास्तं दिव्यमजरं दिवि ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ ५ ॥

कार्योंको करनेमें समर्थ होते हैं, और उसीसे बुद्धिको पाते हैं । तेजस्वी वस्तुओंको भी तेज देनेवाले, वह स्वयं ज्योतिस्वरूप हैं । सूर्यआदि तेजसे पदार्थों में रहकर सबको प्रकाशित करते हैं, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं । ( १-२ )

पृथ्वी आदि पांच तत्त्व जलकी भांति एक रस ब्रह्ममें स्थित हैं । चैतन्य रूपसे प्रकाशमान जीव और ईश्वर पञ्चतत्त्वसे उत्पन्न हुआ पञ्चभौतिक शरीरके हृदयाकाशमें विराजमान हैं । और वह परमात्मा तन्द्राहित हैं । वह सूर्यका भी सूर्य, निर्मल, निर्विकार स्वरूप है; नित्य प्रकाशमान और सबके ठहरनेका स्थान उस परमात्माने इस पृथ्वी और स्वर्गको धारण किया है । योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं । ( ३ )

परमात्माने जीव, ईश्वर, स्वर्ग आदि समस्त लोक तथा सारे ब्रह्माण्डको धारण कर रक्खा है । उसीसे सब दिशा और नदी प्रवाहित हो रही हैं, और उसीसे वह महा समुद्र बना है; योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं । शरीर रूपी रथमें इन्द्रिय रूपी घोड़ोंके सहित पूर्व कर्मोंके चक्रमें निवास करता हुआ, बुद्धिमान जीव हृदयाकाशमें उस दिव्य और अजर, अमर परमात्माके समीप जाता है, अर्थात् इन्द्रियोंके वशीभूत होनेसे जीव उन्हींके द्वारा परमात्माको पाता है, नहीं तो शरीरके नष्ट हो जानेपर उसके किये कर्मोंका नाश न होनेसे दूसरे शरीरको ग्रहण करना पड़ता है; योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं । ( ४-५ )

इस ( परमात्मा ) के रूपकी किसीके

न सादृश्ये तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम् ।  
मनीषयाऽथो मनसा हृदा च य एनं विदुरमृतास्ते भवंति ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ६ ॥

द्वादशपूर्णां सरितं पिबन्तो देवरक्षिताम् ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ७ ॥

तदर्धमासं पिबति संचित्य भ्रमरो मधु ।

ईशानः सर्वभूतेषु हविर्भूतमकल्पयत् ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ८ ॥

हिरण्यपर्णमश्वत्थमभिपद्य ह्यपक्षकाः ।

ते तत्र पक्षिणो भूत्वा प्रपतन्ति यथादिशम् ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ९ ॥

साथ, समता नहीं है अर्थात् वह अनु-  
पम स्वरूप है, कोई पुरुषभी उसे नेत्रोंसे  
नहीं देख सकता । जो लोग मनीषी  
(मनके निग्रहसे) सूक्ष्म मन और हृदयमें  
उसको जानते हैं, वे अमृत अर्थात् मुक्त  
होजाते हैं; योगी लोग उसी भगवान्  
परमात्माका दर्शन करते हैं; शुक्र नामक  
स्थानमें बहती हुई अविद्या नामकी नदी  
महाभय उत्पन्न करनेवाली है; वह चित्त,  
स्मरण, भ्रमण, दर्शन, वचन, शब्द,  
विषय, प्राण, अपान, संस्कार और  
सुकृत आदि बारह मार्गोंसे नित्यही  
बहती रहती है; मनुष्य लोग उसी अ-  
विद्या नदीके जल पान अर्थात् उसीसे  
उत्पन्न हुए पुत्र और पशु आदिकोंसे  
वृत्त होते हैं, अर्थात् उक्त पुत्र, पशु  
रूपी अनेक मधुर फलोंकी इच्छासे इसमें  
बार बार घूमा करते हैं । जीव लोग जिस

निवासके स्थानोंपर बार बार भ्रमण करते  
हैं, योगी लोग उसी सनातन भगवान्  
परमेश्वरका दर्शन करते हैं । ( ६-७ )

इधर उधर घूमनेवाला जीवरूप भ्रमर  
पूरी तरहसे चिन्ता करता हुआ, अर्द्ध-  
मास कर्मफलरूपी मधुपान करता है;  
ईशही अन्तर्यामी रूपसे सब प्राणियोंमें  
विराजमान है, और उसीने यज्ञोंकी  
कल्पना की है, योगी लोग उसी सना-  
तन भगवान् परमात्माका दर्शन करते  
हैं । ( ७-८ )

पक्षहीन चिदात्मारूप, पक्षियोंकी  
भांति एक स्थानसे दूसरे स्थानमें वास  
करनेवाला, संसार अविद्यारूपी विनश्वर  
वृक्ष और स्त्री पुत्ररूपी पत्रोंसे युक्त  
होकर उन्हींके आश्रयमें पक्षयुक्त होकर  
तथा वासनाके अनुरूप नाना दिशा-  
ओंमें अर्थात् अनेक योनियोंमें घूमता

पूर्णात्पूर्णान्युद्धरन्ति पूर्णात्पूर्णानि चक्रिरे ।  
 हरन्ति पूर्णात्पूर्णानि पूर्णमेवाऽवशिष्यते ।  
 योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ १० ॥  
 तस्माद्वै वायुरायातस्तस्मिंश्च प्रयतः सदा ।  
 तस्मादग्निश्च सोमश्च तस्मिंश्च प्राण आततः ॥ ११ ॥  
 सर्वमेव ततो विद्यात्तत्तद्वक्तुं न शक्नुमः ।  
 योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १२ ॥  
 अपानं गिरति प्राणः प्राणं गिरति चंद्रमाः ।  
 आदित्यो गिरते चंद्रमादित्यं गिरते परः ।  
 योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ १३ ॥  
 एकं पादं नोत्क्षिपति सलिलाद्वंस उच्चरन् ।

रहता है । योगी लोक उसी सनातन  
 भगवान परमेश्वरका दर्शन करते हैं ।  
 पूर्ण परमात्मासे पूर्ण सृष्ट पदार्थोंकी  
 उत्पत्ति होती है । पूर्णसेही पूर्ण उत्पन्न या  
 बनाया जाता है । ब्रह्ममें उन सबके लीन  
 होनेसे जब विचार पूर्वक ब्रह्मसे वे पृथक्  
 किये जाते हैं, तब संपूर्ण असद्भाव दूर हो  
 कर एक मात्र ब्रह्मही शेष रह जाता है;  
 योगी लोग उसी सनातन भगवान  
 परमेश्वरका दर्शन करते हैं । (९-१०)

उसीसे वायु आदि पञ्चभूत उत्पन्न  
 हुए हैं, और उसीमें लीन हो जायेंगे ।  
 उसीसे अग्नि, प्राण, और सोम अर्थात्  
 भोक्ता भोग्य और इन्द्रिय आदि शरीर  
 उत्पन्न होकर उसीमें ठहरे हुए हैं । यह  
 दृश्यमान सब भूत-प्रपञ्च उसीसे उत्पन्न  
 हुआ है; मैं उसके स्वरूपको वर्णन कर-  
 नेमें समर्थ नहीं हूँ; योगी लोग उसी

भगवान परमेश्वर परमात्माका दर्शन  
 करते हैं । (११—१२)

प्राण-वायुमें अपान वायु, मनमें  
 प्राणवायु, बुद्धिमें मन, और परमात्मा-  
 में बुद्धिकाभी लय हो जाता है, जिसमें  
 बुद्धि लीन होजाती है, योगी लोग  
 उसी सनातन भगवान परमात्मा-  
 का दर्शन करते हैं ! जिस प्रकारसे हंस  
 किसी किसी समयमें एक चरणको नहीं  
 प्रदर्शित करता, उसी भांतिसे जाग्रत  
 सुषुप्ति और स्वप्न और अनुपस्थित चारों  
 पादसे युक्त हंस ( परमात्मा ) अगाध  
 संसार सागरपर तीन चरणसे घूमते हैं,  
 और शेष एक चैतन्य भूतोंके आधार  
 चरणको प्रकाशित नहीं करते । संसार-  
 में तैजस और प्राज्ञ नाम उपरके लोकों  
 में, तीसरा चरण आने जानेमें व्याप्त है,  
 उस शेषके अनुपस्थित सब भूतोंके

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ १४ ॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा लिंगस्य योगेन स याति नित्यम् ।

तस्मींशमीड्यमनुकल्पमाद्यं पश्यन्ति मूढा न विराजमानम् ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ १५ ॥

असाधना वाऽपि ससाधना वा समानमेतद्दृश्यते मानुषेषु ।

समानमेतदमृतस्येतरस्य मुक्तास्तत्र भध्व उत्सं समापुः ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ १६ ॥

उभौ लोकौ विद्यया व्याप्य याति तदाहुतं चाऽऽहुतमग्निहोत्रम् ।

मा ते ब्राह्मी लघुतास्मादधीत प्रज्ञानं स्यान्नाम धीरा लभन्ते ।

आधार चौथे चरणको जो देखते हैं, उनका फिर मृत्यु वा जन्म नहीं होता, अर्थात् ज्ञान होनेसे, अज्ञानसे उत्पन्न हुए जन्म, मरणका नाश होजाता है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं । १३-१४

अंगुष्ठमात्र पूर्ण अन्तरात्मा प्राण, मन, बुद्धि, और दश इन्द्रियात्मक लिङ्ग शरीरके संयोगसे नित्यही इस लोक, परलोक, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंको प्राप्त होते हैं । उस सर्वनियन्ता स्तुति करने योग्य, उपाधिसे युक्त, सर्वकार्योंके करनेमें समर्थ, मूल कारण परमात्माको प्रत्येक स्थानोंमें चैतन्य रूपसे प्रकाशित रहनेपर भी मूढ पुरुष उसको देख नहीं सकते योगीही उसको देखते हैं । मनुष्योंमें कई लोक साधन करते हैं और कई नहीं करते हैं; परन्तु ब्रह्म तो सबके पक्षमें समान अर्थात् निर्विकार देखा

जाता है । मुक्त और बंधे हुए सबके लिये ब्रह्म एकही भांति है, परन्तु जो मुक्त हो गये हैं, वह ब्रह्मकी पराकाष्ठाको पहुँचे हैं; अर्थात् एक अवस्थामें जो दुःख रहता है, उस अवस्थाके पलट जानेपर वह देखा नहीं जाता । जो सब प्राणियोंमें इसी प्रकारसे एक रस और समान है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं । ( १५ १६ )

विद्वान पुरुष विद्यामें दोनों लोकोंको प्रकाशित करते घूमते हैं, उस समय उनका बिना किया हुआ अग्निहोत्र भी पूरा होजाता है, अर्थात् ज्ञानसे सब कर्मके फल सिद्ध होजाते हैं । इससे ब्रह्म विषयक वचन कभी तुम्हारी नीचताको न सिद्ध करें । ब्रह्मका नाम ही “प्रज्ञान” है, जो लोग धीर अर्थात् ध्यानसे युक्त हैं, वेही इसको पाते हैं । जिसका नाम प्रज्ञान है; योगी लोग

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ १७ ॥

एवंरूपो महात्मा स पावकं पुरुषो गिरन् ।

यो वै तं वेद पुरुषं तस्येहाऽर्थो न रिष्यते ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ १८ ॥

यः सहस्रं सहस्राणां पश्चान्संतत्य संपतेत् ।

मध्यमे मध्य आगच्छेदपि चेत्स्थान्मनोजवः ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ १९ ॥

न दर्शने तिष्ठति रूपमस्य पश्यन्ति चैनं सुविशुद्धसत्त्वाः ।

हितो मनीषी मनसा न तप्यते ये प्रव्रजेयुरमृतास्ते भवन्ति ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवंतं सनातनम् ॥ २० ॥

गृह्णन्ति सर्पा इव गह्वराणि स्वशिक्षया स्वेन वृत्तेन मर्त्याः ।

उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं । ( १७ )

वह वचन और मनसे जानने योग्य, जगतकी उत्पत्ति आदिका मूल कारण, निर्विकार योगसे जाननेके योग्य परमात्मा इसी प्रकारका है । वह भोक्ता जीवको अपनेहीमें लीन करता है । जो पुरुष उस परम पूज्य पूर्ण परमात्माको जानते हैं, इसी लोकमें उनको मोक्ष मिलती है । जिसके जाननेसे पुरुषार्थ की हानि नहीं होती, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं । जो सहस्रों पक्षके विस्तार पूर्वक दूर जाता है, वह मनके समान वेगवान होने पर भी शरीरमें स्थित परमात्माके निकट है, अर्थात् योगियोंके हृदयाकाशमें बहुत दूरकी वस्तु भी निकटही देख पड़ती है । जिसमें दूरकी

वस्तुभी समीपही रहती है; योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं । ( १८-१९ )

इसका स्वरूप नेत्र आदि इन्द्रियोंसे नहीं दीख पड़ता, शुद्धचित्तवाले पुरुषही चित्तशुद्धिसे इसका दर्शन कर सकते हैं । जब मनुष्य जगतकी मित्रता और मनके रोकनेमें समर्थ होता है और पुत्र आदिके नाश होने पर शोक नहीं करता, तबही उसकी चित्त शुद्धि हुई समझना चाहिये; जो लोग इस प्रकारसे चित्तकी शुद्धिको जान कर संन्यास अवलम्बन करते हैं, वेही अमृत अर्थात् मुक्त होते हैं; योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं । सर्प जिस प्रकारसे बिलमें घुसकर अपने शरीरको छिपाता है, वैसेही कुलाचारी मनुष्य उत्तम गुरु परम्पराके उपदेशसे मद्य मांस

तेषु प्रमुह्यन्ति जना विमूढा यथाऽध्वानं मोहयन्ते भयाय ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २१ ॥

नाऽहं सदाऽसत्कृतः स्यां न मृत्युर्न चाऽमृत्युरमृतं मे कुतः स्यात् ।

सत्यानृते सत्यसमानबंधे सतश्च योनिरसतश्चैक एव ॥

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २२ ॥

न साधुना नोत असाधुना वाऽसमानमेतद् दृश्यते मानुषेषु ।

समानमेतदमृतस्य विद्यादेवं युक्तो मधु तद्वै परिप्सेत् ।

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २३ ॥

परस्त्री-गमन आदि पापोंसे भागते तथा छिपते फिरते हैं । उन सत्पुरुषोंके प्रति नीच बुद्धिसे युक्त विमूढ पुरुष उन्हें भ्रष्ट करनेकी चेष्टा करते हैं अर्थात् वे वञ्चक लोग मद्य, मांस आदिके सेवन का उपदेश देकर उन सत्पुरुषोंको निन्दित करते हैं, इससे अच्छी प्रकारसे परीक्षा किये हुए मनुष्यके सङ्ग सहवास करना चाहिये; जिसको पानेके निमित्त साधुओंके सङ्ग रहनेका विधान किया गया है, योगी लोग उसी सनातन परमात्माका दर्शन करते हैं । (२०-२१)

जीवन्मुक्त पुरुषोंको इस प्रकार अनुभव होता रहता है कि देह आदि इन्द्रियां सब अमत् हैं, इससे वे मुझे कभीभी असत्कृत अर्थात् सुख, दुःख, बुढ़ापा, मृत्यु आदि धर्मसे युक्त नहीं कर सकतीं; जब हमारा जन्म, मरण, प्रवाहरूप मृत्युही नहीं है, तब देह वियोग भी नहीं है, और न जन्मही होता है । इससे जो सत्य और सब

स्थानमें समान भावसे स्थित है, जिसे किसी स्थानमें भी कोई बाधा नहीं है, जो हर समय सब स्थानोंमें एक रूपसे निवास करता है, जिसके आधीन सब जगत है, जो अकेलाही कार्य कारण दोनोंकी उत्पत्ति और प्रलयका स्थान हैं; योगी लोग उसी सनातन भगवान परमेश्वरका दर्शन करते हैं । (२२)

वह ब्रह्मज्ञरूप पुरुष उत्तम कर्मोंसे सुखी और अधम कर्मोंसे दुःखीभी नहीं होते, अभिमानी पुरुषोंमेंही कर्मका फल दीख पड़ता है; ब्रह्मज्ञानी पुरुषको कर्मके फलोंमें नहीं बंधना पड़ता । क्योंकि ब्रह्मज्ञानी पुरुषके कैवल्य-अवस्थामें जिस प्रकारसे पाप पुण्यका अभाव होजाता है, वैसेही ब्रह्मज्ञ पुरुषमें भी मानना चाहिये । इसी प्रकारके योगसे युक्त होकर सब भांतिसे उसी ब्रह्मकी प्राप्तिकी इच्छा करनी उचित है; योगी लोग उसी सनातन भगवान परमेश्वरका दर्शन करते हैं । (२३)

नाऽस्याऽतिवादा हृदयं तापयन्ति नाऽनधीन् नाऽऽहुतमग्निहोत्रम् ।

मनो ब्राह्मी लघुतामादधीन् प्रज्ञां चाऽस्मै नाम धीरा लभन्ते ॥

योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २४ ॥

एवं यः सर्वभूतेषु आत्मानमनुपश्यति ।

अन्यत्राऽन्यत्र युक्तेषु किं स शोचेत्ततः परम् ॥ २५ ॥

यथोदपाने महति सर्वतः संस्तुतोदके ।

एवं सर्वेषु वेदेषु आत्मानमनुजानतः ॥ २६ ॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो महात्मा न दृश्यतेऽसौ हृदि संनिविष्टः ।

अजश्चरो दिवा रात्रभतांद्रितश्च स तं भत्वा कविरास्ते प्रसन्नः ॥ २७ ॥

अहमेव स्मृतो माता पिता पुत्रोऽस्म्यहं पुनः ।

आत्माऽहमपि सर्वस्य यच्च नाऽस्ति यदस्ति च ॥ २८ ॥

निन्दायुक्त वचन भी उस ब्रह्मज्ञानी के हृदयको नहीं तपा सकती और “मैंने अध्ययन नहीं किया” “मैंने अग्निहोत्र नहीं किया है” ऐसी चिन्तासे भी उनके मनमें दुःख नहीं होता । ब्रह्म-विद्या उसको वही बुद्धि देती है, जिसको ध्यान-धारणा आदि कर्मोंके करनेवालेही पाते हैं। ब्रह्मविद्याके प्रभाव से शोक मोह और सर्वज्ञता मिलनेपर जिमकी प्राप्ति होती है; योगी लोग उसी सनातन भगवान परमेश्वरका दर्शन करते हैं । (२३-२४)

इसी प्रकारसे जो गुरुके उपदेशके अनन्तर ध्यानयोगसे आत्माको सब भूतोंमें देखते हैं; अलग अलग विषयोंमें फंसे हुए दूसरे मनुष्योंको देखकर उन्हें शोक नहीं करना पड़ता । सब ओर बड़े और गहरे जलके स्थानमें थोड़े

जलसेही प्यासे मनुष्यकी जिस प्रकारसे प्यास बुझ जाती है, उसी प्रकारसे सब वेदोंमेंसे आत्मज्ञानके उपयोगी सारभाग मात्रहीको, गुरुके उपदेशोंके द्वारा ग्रहण करनेसे, ध्यानसे युक्त आत्मजिज्ञासु पुरुषको इष्टसिद्धि मिलती है; हृदयमें विराजमान अंगुष्ठमात्र महात्मा पुरुष नेत्र आदिसे नहीं देखा जा सकता है । वह जन्म मरणसे रहित होनेपर भी रात दिन सब स्थानोंमें विराजमान है । आत्मजिज्ञासु पुरुष उसीको आत्मा जानकर कृतकृत्य और सब कर्मोंसे छूट जाता है; इससे उपाधिसे उत्पन्न हुए अज्ञानको त्यागकर निर्मल, शुद्ध, और पवित्र होजाता है । (२५-२७)

मैंही माता, और पिता, पुत्र और भूत भविष्य तथा वर्तमानमें जो सब प्राणी दीख रहे हैं, सबकी आत्मा हूं ।



पितामहोऽस्मि स्थविरः पिता पुत्रश्च भारत ।

समैव यूयमात्मस्था न मे यूयं न वो वयम् ॥ २९ ॥

आत्मैव स्थानं मम जन्म चाऽऽत्मा ओतप्रोतोऽहमजरप्रतिष्ठः ।

अजश्चरो दिवारात्रमतंद्रितोऽहं मां विज्ञाय कविरास्ते प्रसन्नः ॥ ३० ॥

अणोरणीयान्सुमनाः सर्वभूतेषु जाग्रति ।

पितरं सर्वभूतेषु पुष्करे निहितं विदुः ॥ ३१ ॥ [ १७१६ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि  
सनत्सुजातवाक्ये षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ समाप्तमिदं सनत्सुजातपर्व ॥

अथ यानसंधिपर्व ॥

वैशंपायन उवाच—एवं सनत्सुजातेन विदुरेण च धीमता ।

सार्धं कथयतो राज्ञः सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १ ॥

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां राजानः सर्व एव ते ।

सभामाविविशुर्हृष्टाः सूतस्योपदिदक्षया ॥ २ ॥

शूश्रूषमाणाः पार्थानां वाचो धर्मार्थसंहिताः ।

हे भारत ! मैं बृद्ध पितामह हूं, पिता और पुत्र तुम मेरीही आत्मा निवास करते हो; पर तुम मेरे नहीं और मैं तुम्हारा नहीं हूं। आत्माही हमारे निवास का स्थान और आत्माही मेरे जन्म आदिका कारण है। मैं इस कार्यरूपी जगतमें कपडेमें सूतकी भांति विद्यमान हूं; अजर हूं अर्थात् मेरा विनाश नहीं है। मैं जन्म आदिसे रहित होनेपर भी रात दिन सब स्थानोंमें आलससे रहित होकर घूमता रहता हूं। मुझको अच्छी प्रकारसे जानके अर्थात् सब प्राणियोंका अन्तरात्मा, सबका ईश्वर और सबका कर्त्ता समझकर परिणामदर्शी आत्म-जिज्ञासु पुरुष प्रसन्न होत हैं। सूक्ष्मसेभी

सूक्ष्म परमात्मा सब प्राणियोंमें अन्तर्यामी रूपसे स्थित है। ब्रह्मज्ञानी पुरुष स्थावर, जङ्गम और सब भूतोंमें उस परमपिताको सब शरीर तथा हृदय पुण्डरीकमें स्थित जानते हैं। (२८-२९)

उद्योग पर्व में छियालिस अध्याय और

सनत्सुजातपर्व समाप्त। [ १७१६ ]

उद्योग पर्वमें सैंतालिस अध्याय और

यानसन्धिपर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! विदुर और सनत्सुजातके सहित इसी प्रकारसे बात चीत करते हुए, राजा धृतराष्ट्रकी वह रात्रि व्यतीत हुई। रातके चितनेपर सबरे उठके सब राजा लोग सञ्जयको देखनेकी इच्छासे

धृतराष्ट्रमुखाः सर्वे ययू राजसभां शुभाम् ॥ ३ ॥  
 सुभावदातां विस्तीर्णां कनकाजिरभूषिताम् ।  
 चंद्रप्रभां सुरुचिरां सिक्तां चंदनवारिणा ॥ ४ ॥  
 रुचिरैरासनैः स्तीर्णां कांचनैर्दारवैरपि ।  
 अश्मसारमयैर्दान्तैः स्वास्तीर्णैः सोत्तरच्छदैः ॥ ५ ॥  
 भीष्मो द्रोणः कृपः शल्यः कृतवर्मा जयद्रथः ।  
 अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥ ६ ॥  
 विदुरश्च भद्राप्रज्ञो युयुत्सुश्च महारथः ।  
 सर्वे च सहिताः शूराः पार्थिवा भरतर्षभ ॥ ७ ॥  
 धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्तां सभां शुभाम् ।  
 दुःशासनश्चित्रसेनः शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ८ ॥  
 दुर्मुखो दुःसहः कर्ण उत्तकोऽथ विविशतिः ।  
 कुरुराजं पुरस्कृत्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ ९ ॥  
 विविशुस्तां सभां राजन्सुराः शक्रसदो यथा ।  
 आविशद्विस्तदा राजञ्शूरैः परिघबाहुभिः ॥ १० ॥  
 शुशुभे सा सभा राजन्सिंहैरिव गिरेर्गुहा ।

हर्षित होकर सभामें गये। पाण्डवोंके धर्म और अर्थसे भरी हुई वचनोंके सुननेके निमित्त उत्सुक होकर धृतराष्ट्र आदि सम्पूर्ण राजा सभाकी ओर चले। (१-३)

अत्यन्त उत्तम, सोनेसे खचित, चन्दन आदि सुगन्धित जलोंसे छिडकी हुई, बड़ी भारी, विशाल और रमणीय-सभा रत्न, सुवर्ण, हाथी-दांत और लकड़ीके आसनोसि पूरित, चन्द्रमाके समान निर्मल, प्रकाशमान, रुचिको आकर्षित करने-वाली अत्यन्त विशाल राजसभामें सब राजा लोगोंने गमन किया। (४-५)

हे भरतर्षभ ! वहांपर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, जयद्रथ, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लिक महा-बुद्धिमान विदुर, महारथ-युयुत्सु, और अन्य सब शूरवीर महाराज धृतराष्ट्रको सबके आगे सिंहासन पर बैठाकर उनके पीछे बैठ गये; और दुःशासन, चित्रसेन, सुबल-पुत्र-शकुनि, दुर्मुख, दुःसह, कर्ण, उत्तक, और विविशति ये सब दुर्योधनको आगे करके इन्द्रके पारिषदों तथा देवतांकी भांति उस सभामें जाकर बैठ गये। (६-१०)

हे महाराज ! परिघके समान भुजा-

ते प्रविश्य महेष्वासाः सभां सर्वे महौजसः ॥ ११ ॥

आसनानि विचित्राणि भेजिरे सूर्यवर्चसः ।

आसनस्थेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ॥ १२ ॥

द्वाःस्थो निवेदयामास सूतपुत्रमुपस्थितम् ।

अयं सरथ आयाति योऽयासीत्पांडवान्प्रति ॥ १३ ॥

दूतो नस्तूर्णमायातः सैन्यवैः साधुवाहिभिः ।

उपेयाय स तु क्षिप्रं रथात्प्रस्कन्ध कुण्डली ।

प्रविवेश सभां पूर्णां महीपालैर्महात्मभिः ॥ १४ ॥

संजय उवाच—

प्राप्तोऽस्मि पांडवान्गत्वा तं विजानीत कौरवाः ।

यथावयः कुरून्सर्वान् प्रतिनंदन्ति पांडवाः ॥ १५ ॥

अभिवादयन्ति वृद्धांश्च वयस्यांश्च वयस्यवत् ।

यूनश्चाऽभ्यवदन्पार्थाः प्रातिपूज्य यथावयः ॥ १६ ॥

यथाऽहं धृतराष्ट्रेण शिष्टः पूर्वमितो गतः ।

अब्रुवं पांडवान्गत्वा तन्निबोधत पार्थिवाः ॥ १७ ॥ [१७३३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि

संजयप्रत्यागमने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

वाले उन सब शूरवीरोंके इकट्ठे होनेसे वह मनको हरनेवाली राजसभा सिंहोंसे भरी हुई पर्वतकी विशाल-कन्दराके समान शोभायमान होने लगी । ये सब सूर्यके समान तेजस्वी राजा लोग उस सभामें जाकर यथा योग्य आसनों पर बैठ गये । ( १०-१२ )

हे भारत ! उन सब राजाओंके आसनों पर बैठनेके अनन्तर द्वारपालने “ सूत-पुत्र संजय जो पांडवोंके पास गये थे वह रथमें बैठकर आये हैं ” कहके निवेदन किया । अनन्तर संजय शीघ्रही रथसे उतरकर, महाबली राजा-

ओंसे भरी हुई उस राजसभाके बीचमें गये । ( १२-१४ )

संजय बोले, हे कौरव लोगो ! तुम सुनो, मैं पाण्डवोंके समीप गया था; और वहांसे अभी आया हूं । पाण्डवोंने यथायोग्य वृद्धोंको प्रणाम, समान-अवस्थावालोंको कुशल-क्षेम, प्रीति प्रेम और आदरके सहित पूजा कही है । हे राजा लोगो ! पहिले मैं महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञासे पाण्डवोंके समीप जाकर उनसे जो कुछ वचन कहा था, उसे आप लोग सुनें । ( १५-१७ ) १७३३

उद्योगपर्वमें तैत्तलिस अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र उवाच-पृच्छामि त्वां संजय राजमध्ये किमब्रवीद्वाक्यमदीनसत्त्वः ।

धनंजयस्तात युधां प्रणेता दुरात्मनां जीवितच्छिन्नमहात्मा ॥ १ ॥

संजय उवाच-दुर्योधनो वाचाभिमां शृणोतु यदब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानः ।

युधिष्ठिरस्याऽनुमते महात्मा धनंजयः शृण्वतः केशवस्य ॥ २ ॥

अन्वत्रस्तो बाहुवीर्यं विदान उपहरे वासुदेवस्य धीरः ।

अवोचन्मां योत्स्यमानः किरीटी मध्ये ब्रूया धार्तराष्ट्रं कुरूणाम् ॥ ३ ॥

संशृण्वतस्तस्य दुर्भाषिणो वै दुरात्मनः सूतपुत्रस्य सूत ।

यो योद्धुमाशंसति मां सदैव मंदप्रज्ञः कालपकोऽतिमूढः ॥ ४ ॥

ये वै राजानः पांडवा योधनाय समानीताः शृण्वतां चापि तेषाम् ।

यथा समग्रं वचनं भयोक्तं सहासात्यं श्रावयेथा नृपं तत् ॥ ५ ॥

यथा नूनं देवराजस्य देवाः शुश्रूषन्ते वज्रहस्तस्य सर्वे ।

तथाऽशृण्वन्पांडवाः संजयाश्च किरीटिना वाचमुक्तां समर्थाम् ॥ ६ ॥

इत्यब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानो गांडीविधन्वा लोहितपद्मनेत्रः ।

उद्योगपर्वमें अठ्ठाकिस अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे संजय ! मैं तुमसे राजाओंके बीचमें यह पूछता हूँ, कि दुष्टोंके जीवनको नाश करनेवाले अत्यन्त बल और विक्रमसे भरे हुए वीर प्रधान महात्मा अर्जुनने क्या कहा है ? (१)

संजय बोले, भावी युद्धकी इच्छा करने वाले महात्मा धनंजय अर्जुनने कृष्णके सामने युधिष्ठिरकी आज्ञा तथा अनुमतिसे जो कुछ कहा है, उसे दुर्योधन सुनें । भुज बल और पराक्रमसे युक्त, भयरहित वीरोंके अग्रगामी अर्जुनने श्रीकृष्णके निकट मुझसे यह वचन कहा है, कि “हे सूत ! सब कौरवोंके बीचमें, और हमारे सङ्ग जो सदाही

युद्ध करनेकी इच्छा करता है, उस मूढ़-बुद्धि, कालसे घिरे हुए दुष्टात्मा कठोरवचन कहनेवाले सूत पुत्र कर्णके सामने, और पाण्डव लोगोंसे युद्ध करनेके निमित्त जो सब राजा बुलाये गये हैं, उनके संमुखही धृतराष्ट्रपुत्रोंसे हमारे इस वचनको कहना; जिसमें वे मित्रोंके सहित मेरे कहे हुए सब वचनोंको सुन सकें, वही करना । (२-५)

हे महाराज ! जिस प्रकारसे देवता लोग वज्रधारी इन्द्रके वचनोंके सुननेकी इच्छा करते हैं, मुझे मालूम होता है, कि पाण्डव और संजयोंनेभी उसी भांतिसे अर्जुनके वचनोंको श्रवण किया । गांडीविधारी अर्जुन भावी-युद्धके निमित्त उत्सुक होकर क्रोध पूरित

न चेद्राज्यं मुंचति धार्तराष्ट्रो युधिष्ठिरस्याऽऽजमीढस्य राज्ञः ॥ ७ ॥  
 अस्ति नूनं कर्म कृतं पुरस्तादनिर्विष्टं पापकं धार्तराष्ट्रैः ।  
 येषां युद्धं भीमसेनार्जुनाभ्यां तथाऽश्विभ्यां वासुदेवेन चैव ॥ ८ ॥  
 शैनेयेन ध्रुवमात्तायुधेन धृष्टद्युम्नेनाऽथ शिखंडिना च ।  
 युधिष्ठिरेणेंद्रकल्पेन चैव योऽपध्यानाग्निर्दहेद्गां दिवं च ॥ ९ ॥  
 तैश्चेद्योद्धुं मन्यते धार्तराष्ट्रो निर्वृत्तोऽर्थः सकलः पांडवानाम् ।  
 मा तत्कार्षीः पांडवस्याऽर्थहेतोरुपैहि युद्धं यदि मन्यसे त्वम् ॥ १० ॥  
 यां तां वने दुःखशय्यामवात्सीत्प्रव्राजितः पांडवो धर्मचारी ।  
 आमोतु तां दुःखतरामनर्थामृत्यां शय्यां धार्तराष्ट्रः परासुः ॥ ११ ॥  
 हिया ज्ञानेन तपसा दमेन शौर्येणाऽथो धर्मगुप्त्या धनेन ।  
 अन्यायवृत्तिः कुरुपाण्डवेयानध्यातिष्ठद्धारतराष्ट्रो दुरान्मा ॥ १२ ॥  
 मायोपधः प्रणिपातार्जवाभ्यां तपोदमाभ्यां धर्मगुप्त्या बलेन ।

लाल नेत्र करके यह वचन बोले, “दु-  
 र्योधन यदि अजमीढवंशमें उत्पन्न हुए  
 राजा युधिष्ठिरके राज्यको नहीं लौटावें-  
 गे; तो निश्चयही धृतराष्ट्र पुत्रोंका विना  
 भोग किया हुआ, पूर्व जन्मका कोई  
 पापकर्म उदय हुआ है। शस्त्रधारी भी-  
 मसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकी,  
 धृष्टद्युम्न और शिखण्डी जिसके वीर  
 तथा जो दूसरी प्रकारसेभी योद्धा है,  
 पृथ्वी और स्वर्गको जलानेमें समर्थ हैं,  
 उस इन्द्रके समान युधिष्ठिरके सङ्ग  
 जिनकी युद्ध करनेकी इच्छा है, उनका  
 पाप-कर्मके अतिरिक्त और क्या दोष  
 कहा जा सकता है? दुर्योधन यदि इन्हीं  
 सब कर्मोंके सहित युद्धकी इच्छा  
 करते हैं, तो पाण्डवोंका सब प्रयोजन-  
 ही सिद्ध हुआ है। युधिष्ठिरके अर्थसिद्धि

के निमित्त तुम अब सन्धिका प्रस्ताव  
 मत करो, यदि इच्छा हो, तो युद्धही  
 करो। (६-१०)

धर्मात्मा-युधिष्ठिर जो इतने दिनतक  
 वनवासी होकर निरन्तर दुःखकी शय्या  
 पर सोते थे, इस समय दुर्योधन सरकार  
 अत्यन्त-दुःखदायिनी, अनर्थकरी अन्ति-  
 म शय्याको पावेगा, अन्याय-व्यवहारों  
 से दुष्टात्मा धृतराष्ट्रपुत्रने जो सबके  
 उपर प्रभुता की थी, उसकी मृत्यु इस  
 समय समीप है। तुम लज्जा, ज्ञान,  
 तपस्या, दम, वीरता, धर्मकी रक्षा और  
 बलसे भरे हुए युधिष्ठिरमें उन सब  
 दुर्योधनकी प्रजाको अनुरक्त करो !  
 हमारे विनययुक्त, सरल स्वभाव, बल,  
 और तपस्या, दम, धर्म और सत्यसे  
 भरे हुए महाराज युधिष्ठिर अनेक भांति

सत्यं ब्रुवन्प्रतिपन्नो नृपो नस्तिनिक्षमाणः क्लिश्यमानोऽतिबेलम् ॥ १३ ॥  
 यदा ज्येष्ठः पांडवः संशितात्मा क्रोधं यत्तं वर्षपूगान्सुघोरम् ।  
 अबस्रष्टा कुरुपूद्रुत्तचेतास्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १४ ॥  
 कृष्णवर्त्मैव ज्वालितः समिद्धो यथा दहेत्कक्षमग्निर्निदाघे ।  
 एवं दग्धा धार्तराष्ट्रस्य सेनां युधिष्ठिरः क्रोधदीप्तोऽन्ववेक्ष्य ॥ १५ ॥  
 यदा द्रष्टा भीमसेनं रथस्थं गदाहस्तं क्रोधविषं वमन्तम् ।  
 अमर्षणं पांडवं भीमवेगं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १६ ॥  
 सेनाग्रगं दंशितं भीमसेनं स्वालक्षणं वीरहणं परेषाम् ।  
 घ्नन्तं चस्मून्तकसन्निकाशं तदा स्मर्ता वचनस्याऽतिमानी ॥ १७ ॥  
 यदा द्रष्टा भीमसेनेन नागान् निपातितान् गिरिकूटप्रकाशान् ।  
 कुम्भैरिवाऽसृग्बमतो भिन्नकुम्भांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १८ ॥  
 महासिंहो गाव इव प्रविश्य गदापाणिर्धार्तराष्ट्रानुपेत्य ।  
 यदा भीमो भीमरूपो निहन्ता तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १९ ॥  
 महाभये वीतभयः कृतास्त्रः समागमे शत्रुबलावमर्दी ।

के कपटवाद और बहुत दुःखोंको पाकर भी सब क्लेशोंको सह रहे हैं । शुद्धात्मा जेष्ठ-भ्राता धर्मराज-युधिष्ठिर जिस समय अनमने होकर, अनेक वर्षोंसे रोके हुए अपने महाघोर रोषको छोड़ेंगे, उसी समय दुर्योधनको युद्धके निमित्त पछताना पड़ेगा । ( ११-१४ )

सन्ध्याके समय जिस भांति जलती हुई यज्ञकी आग्नि सखे काठोंको जला देती है; उसी भांतिसे धर्मराज युधिष्ठिर क्रोधसे प्रज्वलित होकर, दुर्योधनकी सेनाको भस्म कर देंगे; जिसको देखकर अवश्यही उसको पछताना पड़ेगा । जब रथमें गदा लिये हुए क्रोधी और अत्यन्त वेगशाली भीमसेनको क्रोधसे विष

उगलते हुए देखेगा, तभी दुर्योधन युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा । जिस समय सेनाके अग्रगामी, शस्त्रधारी गदा लिये हुए भीमसेनको दुर्योधन साक्षात् कालके समान सब वीरोंका संहार करता हुआ देखेगा, तभी हमारी बातोंको स्मरण करेगा । जब भीमसेनसे मोरे गये हाथियोंको पहाड़ोंके शिखरके समान लहू उगलते दुर्योधन देखेगा, तभी युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा । १५-१८

जैसे सिंह गौओंके बीचमें जाता है, वैसेही कुरुसेनामें गदा लेकर भीमसेन प्रवेश करके, जब धृतराष्ट्र पुत्रोंका वध करेंगे तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पछताना पड़ेगा । जब भीमसेन युद्धमें

सकृद्रथेनाऽप्रतिमान् रथौघान् पदातिसंघान् गदयाऽभिनिघ्नन् ॥ २० ॥  
 शैक्येन नागांस्तरसा विगृह्णन् यदा छेत्ता धार्तराष्ट्रस्य सैन्यम् ।  
 छिन्दन्वनं परशुनेव शूरस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २१ ॥  
 तृणप्रायं ज्वलनेनेव दग्धं ग्रामं यथा धार्तराष्ट्रान् समीक्ष्य ।  
 पक्वं सस्यं वैद्युतेनेव दग्धं परासिक्तं विपुलं स्वं बलौघम् ॥ २२ ॥  
 हतप्रवीरं विमुखं भयान्तं पराङ्मुखं प्रागशोऽधृष्टयोधम् ।  
 शस्त्रार्चिषा भीमसेनेन दग्धं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २३ ॥  
 उपासंगानाचरेदक्षिणेन वरांगानां नकुलश्चित्रयोधी ।  
 यदा रथाग्न्यो रथिनः प्रचेता तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २४ ॥  
 सुखोचितो दुःखशय्यां वनेषु दीर्घं कालं नकुलो यामशेत ।  
 आशीविषः क्रुद्ध इवोद्धमन्विषं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २५ ॥  
 त्यक्तात्मानः पार्थिवा योधनाय समादिष्टा धर्मराजेन सूत ।  
 रथैः शुभ्रैः सैन्यमभिद्रवन्तो दृष्ट्वा पश्चात्पश्यन्ते धार्तराष्ट्रः ॥ २६ ॥  
 शिशून्कृतास्त्रानशिशुप्रकाशान्यदा द्रष्टा कौरवः पंच शूरान् ।

शत्रुओंके दलको मर्दन करते हुए; अकेले ही रथों और पदातियोंको गदासे मारेंगे और हाथियोंको प्रास तथा फरसेसे वन काटनेकी भांति काटकर दुर्योधनकी सब सेनाको विक्षिप्त करेंगे; उसी समय वह युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा; जब अग्निके समान तृणके वरोंसे युक्त गांवकी भांति धृतराष्ट्र पुत्रोंको दुर्योधन भीमके बलसे भस्म होता देखेगा तभी उसको युद्धके निमित्त पछताना पड़ेगा । (१९-२३)

रथियोंमें श्रेष्ठ विचित्र शब्दोंको करने वाले नकुल, दाहिनी ओरके तूणीरसे सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए; रथियोंको एकबारगी मारके गिरावेंगे; तभी

दुर्योधनको युद्धके निमित्त पछताना पड़ेगा । सब दिन सुखोंको भोगनेवाले नकुलने वनमें बहुत दिनोंतक जिस दुःखशय्यामें शयन किया था, उसको स्मरण करके जब सर्पके समान अपने क्रोधरूपी विषको उगलेंगे, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करना पड़ेगा । हे सञ्जय ! जिस समय प्राणोंको त्यागनेवाले राजा लोग, युधिष्ठिरकी आज्ञासे शत्रुओं की सेनाकी ओर रथोंपर चढ़के दौड़ेंगे; तब उन्हें देखकर दुर्योधन अवश्यही पश्चात्ताप करेगा । (२४-२६)

बालक होकरभी जिस समय तरुणोंकी भांति सब शस्त्रके जाननेवाले, वीरतासे भरे हुए, प्रतिविन्ध्य आदि



त्यक्त्वा प्राणान् कौरवानाद्रवंतस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २७ ॥  
 यदा गतोद्वाहमकूजनाक्षं सुवर्णतारं रथमाततायी ।  
 दांतैर्युक्तं सहदेवोऽधिरूढः शिरांसि राज्ञां क्षेप्स्यते मार्गणौघैः ॥ २८ ॥  
 महाभये संप्रवृत्ते रथस्थं विवर्तमानं समरे कृतास्त्रम् ।  
 सर्वा दिशः संपतंतं समीक्ष्य तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २९ ॥  
 ह्रीनिषेवो निपुणः सत्यवादी महाबलः सर्वधर्मोपपन्नः ।  
 गांधारिमार्षस्तुमुले क्षिप्रकारी क्षेप्ता जनान् सहदेवस्तरस्वी ॥ ३० ॥  
 यदा द्रष्टा द्रौपदेयान्महेषून् शरान् कृतास्त्रान् रथयुद्धकोविदान् ।  
 आशीविषान्घोरविषानिवायतस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३१ ॥  
 यदाऽभिमन्युः परवीरघाती शरैः परान्मेघ इवाऽभिवर्षन् ।  
 विगाहिता कृष्णसमः कृतास्त्रस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३२ ॥  
 यदा द्रष्टा बालमबालवीर्यं द्विषच्चसू मृत्युमिवोत्पतंतम् ।

द्रौपदीके पांचों पुत्र अपने प्राणोंकी आशाको छोड़कर दुर्योधनकी सेनापर चढ़ धावेंगे, तभी उसको युद्धके निमित्त पछताना पड़ेगा । जब वधके निमित्त उद्यत सहदेव धीर-गति और निःसन्देह-चक्र, सुवर्णके तारोंके पुञ्जसे खचित, वायुके समान शीघ्र चलनेवाले घोड़ोंके रथपर चढ़कर, अपने बाणसे राजाओंके शिरको काटके पृथ्वीमें गिरावेंगे, महा भयङ्कर युद्ध-कौतुकके आरंभ होनेपर, सब शस्त्रोंके जाननेवाले उस नकुलकी दहिने, बायें तथा चारों ओर उपास्थित होते जब दुर्योधन देखेगा तभी युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा ॥ २७-२९

लज्जाशील, दक्ष, सत्यवादी, महाबलशाली, सब धर्मोंको जाननेवाले, क्षिप्रकारी, वेगवान सहदेव जिस समय

युद्धमें गान्धारराज शकुनिपर आक्रमण करके शत्रु-सेनाको विक्षिप्त करेंगे, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पछताना पड़ेगा । सब शस्त्रोंसे पूरित रथके युद्धको जाननेवाले द्रौपदी-पुत्रोंको महा विषधर विषैले सर्पकी भांति युद्धके निमित्त आते हुए देखकर, दुर्योधनको अवश्य युद्धके लिये पश्चात्ताप करना पड़ेगा । कृष्णके समान सब शस्त्रोंको जाननेवाला अभिमन्यु जिस समय अपने बाणोंको मेघकी भांति बरसावेगा, और सब शत्रुकी सेना का बल मर्दन करेगा तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पछताना पड़ेगा ॥ ३०-३२

बालक होकर भी युवाकी भांति जिस समय सुभद्रा-पुत्र अभिमन्युको, कालरूपके समान शत्रुसेनाके उपर गिरता हुआ दुर्योधन देखेगा, तभी



सौभद्रमिन्द्रप्रतिमं कृतास्त्रं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३३ ॥  
 प्रभद्रकाः शीघ्रतरा युवानो विशारदाः सिंहसमानवीर्याः ।  
 यदा क्षेप्तारो धार्तराष्ट्रान्सैन्यास्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३४ ॥  
 वृद्धौ विराटद्रुपदौ महारथौ पृथक्चसूभ्यामभिवर्तमानौ ।  
 यदा द्रष्टारौ धार्तराष्ट्रान्सैन्यास्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३५ ॥  
 यदा कृतास्त्रो द्रुपदः प्रचिन्वन् शिरांसि यूनां समरे रथस्थः ।  
 क्रुद्धः शरैश्छेत्स्यति चापमुक्तैस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३६ ॥  
 यदा विराटः परवीरघाती ममत्तरे शत्रुचमूं प्रवेष्टा ।  
 मत्स्यैः सार्धमनृशंसरूपैस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३७ ॥  
 ज्येष्ठं मात्स्यमनृशंसार्यरूपं विराटपुत्रं रथिनं पुरस्तात् ।  
 यदा द्रष्टा दंशितं पाण्डुवार्थं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३८ ॥  
 रणे हते कौरवाणां प्रवीरे शिखंडिना सत्तमे शान्तनूजे ।  
 न जातु नः शत्रवो धारयेयुरसंशयं सत्यमेतद्ब्रवीमि ॥ ३९ ॥

युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा । सिंहके समान बलवान, शीघ्रहस्त, युद्धके सब कर्मोंको जाननेवाले, प्रभद्रक, नामक वीर लोग जिस समय सेनाके सहित धृतराष्ट्र पुत्रोंको विक्षिप्त करेंगे, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पछताना पड़ेगा । जिस समय सेनाके सहित धृतराष्ट्रपुत्र, महारथ बूढ़े विराट और द्रुपदको पृथक् पृथक् सेनाको लिये हुए युद्धकी ओर आते देखेंगे, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पछताना होगा । (३३-३५)

शस्त्रधारी द्रुपदराज जब रथपर चढ़कर क्रोधपूर्वक सहजहीमें वीरोंके मस्तकको फूलके समान पृथ्वीमें गिराने लगेंगे तभी दुर्योधन युद्धके निमित्त

पश्चात्ताप करेगा । शत्रुपक्षके वीरोंको मारनेवाले, विराटराज जब भयानक संग्राममें मत्स्यदेशीय सेनाको लेकर शत्रुसेनामें प्रवेश करेंगे; तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करना होगा । मत्स्यराज विराटके जेठे पुत्र उत्तरको जिस समय पाण्डवोंके निमित्त संग्राम-भूमिमें शस्त्र धारण किये हुए दुर्योधन देखेगा, तभी युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा । ( ३६-३८ )

मैं यही संशयरहित सत्य वचन कहता हूं, कि कौरवोंमें मुख्य शान्तनुपुत्र भीष्मके शिखण्डीके हाथसे मारे जानेपर, फिर हमारे शत्रु लोग कदापि जीते न बचेंगे । सेनापति शिखण्डी जिस समय अच्छी प्रकारसे रक्षित-रथपर

यदा शिखंडी रथिनः प्रचिन्वन्भीष्मं रथेनाऽभियाता वरूथी ।  
 दिव्यैर्हयैरवसृद्रन् रथौघांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ४० ॥  
 यदा द्रष्टा संजयानामनीके धृष्टद्युम्नं प्रमुखे रोचमानम् ।  
 अस्त्रं यस्मै गुह्यमुवाच भीमान्द्रोणस्तदा तप्स्यति धार्तराष्ट्रः ॥ ४१ ॥  
 यदा स सेनापतिरप्रमेयाः परासृद्रन्निषुभिर्धार्तराष्ट्रान् ।  
 द्रोणं रणे शत्रुसहोऽभियाता तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ४२ ॥  
 हीमान्मनीषी बलवान्मनस्वी स लक्ष्मीवान्सोमकानां प्रवर्हः ।  
 न जातु तं शत्रवोऽन्ये सहेरन्येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिर्हिहः ॥ ४३ ॥  
 इदं च ब्रूयाद्भा वृष्णीष्वेति लोके युद्धेऽद्वितीयं सचिवं रथस्थम् ।  
 शिनेर्नष्टारं प्रवृणीम सात्यकिं महाबलं वीतभयं कृतास्त्रम् ॥ ४४ ॥  
 महोरस्को दीर्घबाहुः प्रसाथी युद्धेऽद्वितीयः परमास्त्रवेदी ।  
 शिनेर्नष्टा तालमात्रायुधोऽयं महारथो वीतभयः कृतास्त्रः ॥ ४५ ॥  
 यदा शिनीनामधिपो मयोक्तः शरैः परान्मेघ इव प्रवर्षन् ।

चढके रथी लोगोंको मारेंगे, और दिव्य रथपर आरूढ सब सेनाको मर्दन करते हुए जब भीष्मकी ओर दौड़ेंगे, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करना होगा। बुद्धिमान द्रोणाचार्यने जिसे सब गुप्त-अस्त्रोंका भेद बतलाया है, उस धृष्टद्युम्नको जब दुर्योधन सृज्योंकी सेनाके सम्मुख खड़ा देखेगा, तभी युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा। (३९-४१)

शत्रुओंके बाणोंको सहनेमें समर्थ जिस समय पराक्रमी सेनापति-धृष्टद्युम्न, अपने बाणोंसे धार्तराष्ट्रोंको मर्दन करके द्रोणाचार्यके समीप पहुंचेंगे; तभी दुर्योधन युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा। तेजस्वी बुद्धिमान, बलवान और लक्ष्मीवान

यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ वृष्णि सिंह सात्यकी जिस सेनाके अग्रणी हैं, उसको कौन शत्रु रोक सकेगा? यदि तुम लोग यह कहो, कि लोकमेंसे दूसरे किसी रथारूढ पुरुषको सहायरूपसे मत वरण करो, तो हम शिनिपौत्र सब शस्त्रोंके जाननेवाले महाबलसे युक्त अकेले सात्यकीहीको वरण करेंगे। यह सब शस्त्रोंको जाननेवाला महारथ सात्यकी युद्धमें अद्वितीय, कालके समान और भयसे रहित है। इसकी छाती बड़ी, भुजा लम्बी और धनुषका परिमाण चार हाथ है। शिनिवंशाधिपति सात्यकी जिस समय हमारी आज्ञासे शत्रु सेनामें प्रविष्ट होकर मुख्य मुख्य वीरोंको मेघोंके समान अपने बाणोंकी वर्षासे व्याकुल करेंगे, तभी

प्रच्छादयिष्यत्यरिहा योधमुख्यास्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥४६॥  
 यदा धृतिं कुरुते योत्स्यमानः स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा ।  
 सिंहस्येव गन्धमाघाय गावः संवेष्टंते शत्रवोऽस्माद्रणाग्रे ॥ ४७ ॥  
 स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा भिद्याद्विरीन्संहरेत्सर्वलोकान् ।  
 अस्त्रे कृती निपुणः क्षिप्रहस्तो दिवि स्थितः सूर्य इवाऽभिभाति ॥४८॥  
 चित्रः सूक्ष्मः सुकृतो यादवस्य अस्त्रे योगो वृष्णिर्सिंहस्य भूयान् ।  
 यथाविधं योगमाहुः प्रशस्तं सर्वैर्गुणैः सात्यकिस्तरुपेतः ॥ ४९ ॥  
 हिरण्मयं श्वेतहयैश्चतुर्भिर्यदा युक्तं स्यन्दनं भाधवस्य ।  
 द्रष्टा युद्धे सात्यकेर्धार्तराष्ट्रास्तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मंदः ॥ ५० ॥  
 यदा रथं हेममणिप्रकाशं श्वेताश्वयुक्तं वानरकेतुमुग्रम् ।  
 दृष्ट्वा ममाऽप्यास्थितं केशवेन तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मंदः ॥ ५१ ॥  
 यदा मौन्यास्तलनिष्पेषमुग्रं महाशब्दं वज्रनिष्पेषतुल्यम् ।  
 विधूयमानस्य महारणे मया स गांडिवस्य श्रोष्यति मंदबुद्धिः ॥५२॥  
 तदा सूढो धृतराष्ट्रस्य पुत्रस्तप्ता युद्धे दुर्मतिर्दुःसहायः ।

दुर्योधनको युद्धके निमित्त पश्चात्ताप  
करना पड़ेगा । ( ४२ - ४९ )

वह दृढ शरासनको धारण करनेवाला  
दीर्घबाहु महा-वीर सात्यकी, जब युद्धके  
निमित्त यत्न अवलम्बन करते हैं, तो  
शत्रु लोग इस प्रकारसे उनके आगेको  
भाग जाते हैं, जैसे सिंहको देखके गऊ  
भागती हैं । दीर्घबाहु, दृढधन्वा सब  
शस्त्रोंके जाननेवाले, शीघ्रहस्त वह महा-  
त्मा सात्यकी पर्वतोंको भी तोड़ सकते  
हैं, और सब लोकोंके संहार करनेमें भी  
समर्थ हैं, रणभूमिमें वह आकाशमें  
स्थित सूर्यकी भांति विराजमान होते  
हैं । अस्त्रोंके चलानेके विषयमें सात्यकीको  
विहित और दूसरी बहुत प्रकारकी

आश्चर्यप्रद शिक्षा मिली हुई है । अस्त्रों-  
के चलानेकी क्रियाको पण्डितोंने जिस  
भांतिसे कहा है, सात्यकी उन सब  
गुणोंसे पूर्ण हैं । ( ४७-४९ )

युद्ध-भूमिमें जब सात्यकीके सफेद-  
घोड़ोंसे युक्त सुवर्ण खचित रथको  
दुर्योधन देखेगा, तभी उसको युद्धके  
निमित्त पश्चात्ताप करना पड़ेगा । जिस  
समय सुवर्ण और मणियोंसे प्रकाशित  
सफेद घोड़ोंके सहित भयङ्कर कपिध्वजासे  
युक्त हमारे रथको रणभूमिमें चलता  
हुआ दुर्योधन देखेगा, तभी वह युद्धके  
निमित्त सन्तापित होगा । उस महायुद्धमें  
जब मैं गाण्डीव धनुषको चढाऊंगा, उस  
समय मेरे धनुषके वज्र-समान महा

दृष्ट्वा सैन्यं बालवर्षाधकारे प्रभज्यन्तं गोकुलवद्रणाग्रे ॥ ५३ ॥  
 बलाहकादुच्चरतः सुभीमान्विमुत्स्फुलिंगानिव घोररूपान् ।  
 सहस्रप्रान्द्विषतां संगरेषु अस्थिच्छिदो मर्मभिदः सुपुंगवान् ॥ ५४ ॥  
 यदा द्रष्टा ज्यामुखाद्वाणसंघान् गांडीवमुक्तानापततः शिताग्रान् ।  
 हयान्गजान्वर्मिणश्चाऽऽददानांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५५ ॥  
 यदा भंदः परबाणान्विमुक्तान्ममेषुभिर्हिंयमाणान्प्रतीपम् ।  
 तिर्यग्विध्यच्छिद्यमानान्पृषत्कैस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५६ ॥  
 यदा विपाठा मद्भुजविप्रमुक्ता द्विजाः फलानिव महीरुहाग्रात् ।  
 प्रचेतार उत्तमांगानि यूनां तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५७ ॥  
 यदा द्रष्टा पततः स्यन्दनेभ्यो महागजेभ्योऽश्वगतान्सुयोधनान् ।  
 शरैर्हतान्पातितांश्चैव रंगे तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५८ ॥  
 असंप्राप्तानस्त्रपथं परस्य यदा द्रष्टा नश्यतो धार्तराष्ट्रान् ।  
 अकुर्वतः कर्म युद्धे समन्तात्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५९ ॥  
 पदातिसंघान् रथसंघान्समन्ताद्ब्रूयात्ताननः काल इवाऽऽततेषु ।

शब्दको सुनकर अपनी सेनाको मेघोंसे  
 छूटती हुई विजलीके स्फुलिंगोंके समान  
 दीखनेवाले और एक कालमें सहस्रा-  
 वधि योद्धाओंको मारनेवाले मेरे बाणोंकी  
 वर्षाके आगे गौओंके समान भागती  
 हुई देखकर, वह दृढ़, सहायकरहित,  
 नीच-बुद्धि मूढ़ दुर्योधन युद्धके निमित्त  
 पछतावेगा । ( ५०-५४ )

जब मेरे गाण्डीव धनुषसे छूटकर  
 हाथी घोड़े और कवचधारी वीरोंको  
 नष्ट करते हुए तीक्ष्ण बाणोंको धृतराष्ट्र  
 पुत्र दुर्योधन देखेंगे तब उसको युद्धके  
 निमित्त पछताना होगा । शत्रुओंके छोड़े  
 हुए बाणोंको, जब मेरे बाणोंसे कटकर  
 पृथ्वीमें गिरता देखेगा तभी दुर्योधन

युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा । पक्षी  
 लोग जैसे वृक्षकी चोटीसे फलको तो-  
 डके खाते हैं, उसी प्रकारसे हमारे बाण  
 वीरोंके मस्तकोंको काटके ढेर लगा देंगे;  
 उसको देखकर दुर्योधनको युद्धके नि-  
 मित्त पछताना होगा । ( ५५-५७ )

युद्धमें जब मुख्य मुख्य रथी, गज-  
 पति, और घुड़सवारोंको हमारे बाणोंसे  
 मरकर पृथ्वीमें गिरते देखेगा, तभी  
 दुर्योधनको युद्धके निमित्त पछताना  
 पड़ेगा । जब अपने भाईयोंको शत्रुओंके  
 अस्त्रोंके मार्गमें न पहुंचतेही भागता  
 हुआ देखेगा, तभी दुर्योधन युद्धके नि-  
 मित्त पश्चात्ताप करेगा । मुख खोले हुए  
 कालके समान जिस समय मैं अपने

प्रणोत्स्यामि ज्वलितैर्बाणवर्षैः शत्रूस्तदा तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥ ६० ॥  
 सर्वा दिशः संपतता रथेन रजोध्वस्तं गांडिवेन प्रकृत्तम् ।  
 यदा द्रष्टा स्वबलं संप्रसूढं तदा पश्चात्तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥ ६१ ॥  
 कांदिग्भूतं छिन्नगात्रं विसंज्ञं दुर्योधनो द्रक्ष्यति सर्वसैन्यम् ।  
 हताश्ववीराग्न्यनरेंद्रनागं पिपासितं श्रांतपत्रं अयार्तम् ॥ ६२ ॥  
 आर्तस्वरं हन्यमानं हतं च विकीर्णकेशास्थिकपालसंघम् ।  
 प्रजापतेः कर्म यथार्थनिष्ठितं तदा दृष्ट्वा तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥ ६३ ॥  
 यदा रथे गांडिवं वासुदेवं दिव्यं शंखं पांचजन्यं हयांश्च ।  
 तूणावक्ष्य्यौ देवदत्तं च मां च दृष्ट्वा युद्धे धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ६४ ॥  
 उद्वर्त्तयन्दस्युसंघान्समेतान्प्रवर्तयन्युगमन्ययुगांते ।  
 यदा धक्ष्याम्यग्निवत्कौरवेयांस्तदा तप्ता धृतराष्ट्रः सपुत्रः ॥ ६५ ॥  
 सभ्राता वै सहसैन्यः सभृत्यो भ्रष्टैश्वर्यः क्रोधवशोऽल्पचेताः ।

गाण्डीव धनुष्यको लेकर मूसल-धार  
 मेघकी वर्षाकी भांति सब अग्निके समा-  
 न जलते हुए बाणोंको बरसाके पैदल  
 तथा रथी आदि सेनाका संहार करूंगा,  
 तब वह मन्दबुद्धि दुर्योधन युद्धके निमि-  
 त्त पश्चात्ताप करेगा । ( ५८—६० )

दुर्योधन जब अपनी सब सेनाको  
 मेरे बाणोंसे चारों ओर भागती, घायल,  
 चेतारहित, प्यासी, थके हुए वाहन  
 और भयसे व्याकुल देखेगा; तभी वह  
 युद्धके निमित्त पछतावेगा । जब देखेगा  
 कि पराक्रमशील मुख्य मुख्य राजा,  
 वीर, हाथी, घोड़े, सब मारे गये हैं,  
 बाकी सब आर्तनाद कर रहे हैं, कितने  
 ही मर गये, और कितनेही मर रहे हैं,  
 उनके केश, हड्डी और शिर इधर उधर  
 पड़े हैं, और वाजपेय यज्ञमें प्रजापतिके

लिये किये गये कर्मके समान सब  
 दीखते हैं, उसी समय वह मन्दबुद्धि  
 दुर्योधन सन्तापित होगा । ( ६१—६३ )  
 जब शैब्य-सुग्रीव आदि घोड़ोंके रथ  
 पर बैठे हुए कृष्णको, मुझको, गाण्डीव-  
 धनुष, दिव्य-शंख पाञ्चजन्य, दोनों  
 अक्षय तूणीर और देवदत्त शंखको देखे-  
 गा, तभी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन युद्धके  
 विषयमें पश्चात्ताप करेगा । जैसे युगोंके  
 अनन्तर अन्य युग उत्पन्न होता है, उसी  
 भांतिसे मैं कालरूपके समान उपस्थित  
 होकर, दुष्टोंके समूहको भगाते हुए जब  
 अपने अग्निके समान बाणोंसे कौरवोंको  
 जलाने लगूंगा, तभी धृतराष्ट्रपुत्र सहित  
 सन्तापित होगा । क्रोधके वशवर्ती मन्द  
 बुद्धि धृतराष्ट्रपुत्र बन्धु बान्धव और सेना  
 के सहित ऐश्वर्य-भ्रष्ट होनेसे अभिमान

दर्पस्यांस्ते निहतो वेषमानः पश्चान्मन्दस्नप्यति धार्तराष्ट्रः ॥ ६६ ॥  
 पूर्वाह्णे मां कृत्नजप्यं कदाचिद्विप्रः प्रोवाचोदकांते मनोज्ञम् ।  
 कर्तव्यं ते दुष्करं कर्म पार्थ योद्धव्यं ते शत्रुभिः सव्यसाचिन् ॥ ६७ ॥  
 इन्द्रो वा ते हरिवान्वज्रहस्तः पुरस्ताद्यातु समरेऽरीन्विनिघ्नन् ।  
 सुग्रीवयुक्तेन रथेन वा ते पश्चात्कृष्णो रक्षतु वासुदेवः ॥ ६८ ॥  
 वज्रे चाऽहं वज्रहस्तान्महेन्द्रादस्मिन्युद्धे वासुदेवं सहायम् ।  
 स मे लब्धो दस्युवधाय कृष्णो मन्ये चैतद्विहितं दैवतैर्मै ॥ ६९ ॥  
 अयुद्धयमानो मनसाऽपि यस्य जयं कृष्णः पुरुषस्याऽभिनन्देत् ।  
 एवं सर्वान्स व्यतीयादमित्रान्सैद्रान्देवान्मानुषे नास्ति चिन्ता ॥ ७० ॥  
 स बाहुभ्यां सागरमुत्तितीर्षेन्महोदधिं सलिलस्याऽप्रमेयम् ।  
 तेजस्विनं कृष्णमत्यंतशूरं युद्धेन यो वासुदेवं जिगीषेत् ॥ ७१ ॥  
 गिरिं य इच्छेत्तु तलेन भेत्तुं शिलोक्षयं श्वेतमतिप्रमाणम् ।  
 तस्यैव पाणिः सनखो विशीर्येन्न चापि किञ्चित्स गिरेस्तु कुर्यात् ॥ ७२ ॥

रहित, हतबुद्धि और शरीरसे कांपता हुआ अवश्यही पश्चात्ताप करेगा। ६४-६६  
 किसी दिन सवेरेही हमारी सन्ध्या वन्दना, स्नान आदि क्रियाओंके समाप्त होनेपर एक बूढ़े ब्राह्मणने आकर हमको यह प्यारा वचन कहा, “हे सव्यसाचिन् ! तुमको अत्यन्तही कठिन कर्म करना होगा और शत्रुओंके साथ युद्ध करनाही होगा। उस समय या तो करिवाहन इन्द्र वज्र लेकर तुम्हारे आगे आगे चलेंगे, अथवा वसुदेवनन्दन कृष्ण शैव्य सुग्रीवयुक्त रथपर चढके तुम्हारी पृष्ठरक्षा करेंगे ? ” ब्राह्मणके उस वचनको सुन कर मैंने वज्रधारी इन्द्रका तिरस्कार कर के इस युद्धमें कृष्णहीको सहायक रूपसे वरण किया है। उन्ही कृष्णको मैंने

दस्युओंके ( डाकुओंके ) वधके निमित्त प्राप्त किया है। मालूम होता है, देवता लोगोंने हमारे ऊपर प्रसन्न और अनुकूल होकरही ऐसे विधान किये हैं। ६७-६९  
 कृष्ण युद्धमें प्रवृत्त न होकरभी अन्तःकरणसे जिसके जयकी अभिलाषा करेंगे, उसके इन्द्र आदि भी शत्रु हो तो भी वह सबको जीत सकता है, मनुष्योंकी तो बातही क्या है ? जो पुरुष अत्यन्त वीरतासे युक्त महातेजस्वी वासुदेव कृष्णको युद्धमें जीतनेकी इच्छा करता है, वह बाहुसे अगाध समुद्रको तरनेके अभिलाषाके समान है। जो मूर्ख अपने हाथकी हथेलीसे कैलासपर्वतको तोड़नेकी इच्छा करता है, वह, पर्वतका कुछभी नहीं कर सकता, बल्कि उसकी हथेलीही

अग्निं समिद्धं शमयेद्भुजाभ्यां चंद्रं च सूर्यं च निवारयेत् ।  
 हरेद्देवानाममृतं प्रसह्य युद्धेन यो वासुदेवं जिगीषेत् ॥ ७३ ॥  
 यो रुक्मिणीमेकरथेन भोजानुत्साद्य राज्ञः समरे प्रसह्य ।  
 उवाह भार्या यशसा ज्वलन्ती यस्यां जज्ञे रौक्मिणेयो महात्मा ॥ ७४ ॥  
 अयं गांधारांस्तरसा संप्रमथ्य जित्वा पुत्रान्नग्नजितः समग्रान् ।  
 बद्धं मुमोच विनदन्तं प्रसह्य सुदर्शनं वै देवतानां ललामम् ॥ ७५ ॥  
 अयं कपाटेन जघान पांड्वं तथा कलिगान्दंतकूरे समर्द ।  
 अनेन जग्धा वर्षपूगान्विनाथा वाराणसी नगरी संबभूव ॥ ७६ ॥  
 अयं स्म युद्धे मन्यतेऽन्यैरजेयं तमेकलव्यं नाम निषादराजम् ।  
 वेगेनैव शैलमभिहत्य जंभः शोते कृष्णेन हतः परासुः ॥ ७७ ॥  
 तथोग्रसेनस्य सुतं सुदुष्टं वृष्णग्रन्थकानां मध्यगतं सभास्थम् ।  
 अपातयद्वलदेवद्वितीयो हत्वा ददौ चाग्रसेनाय राज्यम् ॥ ७८ ॥  
 अयं सौभं योधयामास स्वस्थं विभीषणं मायया शाल्वराजम् ।

नखोंके सहित फट जाती है । (७०-७२)

जिसके गर्भसे प्रद्युम्नका जन्म हुआ है उस यशस्विनी रुक्मिणीको जिन्होंने एकही रथपर युद्धमें भोजवंशीय राजाओंको जीतकर बलपूर्वक भार्या रूपसे ग्रहण किया था, उन कृष्णको जो युद्धमें जीतनेकी इच्छा करे, वह जलती हुई अग्निको भी हाथसे बुझा सकता है, चन्द्रमा और सूर्यके तेजको छीन सकेगा, और बलपूर्वक देवताओंका अमृतभी हर लानेमें समर्थ होगा । देवताओंके भूषण स्वरूप कृष्णने अपने बलसे गान्धार लोगोंके तेजको पूर्ण रीतिसे मथकर नग्न-जीत नृपातिके सब पुत्रोंको पराजित करके देवताओंको भी मानने योग्य सुदर्शन राजाको लुटाया था । (७४-७५)

इन्होंने वक्षस्थलकी चोटसे पाण्ड्य राजाको मारा और युद्धमें कलिङ्ग लोगोंको मर्दन किया था । इन्हींसे भस्म होकर वाराणसी (काशी) नगरी अनेक वर्षोंतक बिना राजाके सूनीही पड़ी रही । एकलव्य नामक प्रसिद्ध निषादराज जिसको ये युद्धमें दूसरेसे न जीतने योग्य समझते थे, वह पर्वतके ऊपर जंभा सुरकी भांति कृष्णके हाथहीसे मरकर मृत्युको पहुंचा । और भी इन्होंने बलदेवके मङ्ग मिलकर वृष्णि और अन्धक लोगोंकी सभाके बीचमें जाकर महादुष्ट उग्रसेनपुत्र कंसको मारा था, और उसको मारकर उग्रसेनको राज्य दिया था । (७३-७८)

इन्होंने मायावी, भयरहित, आकाशमें



सौभद्वारि प्रत्यगृह्णाच्छतघ्नीं दोभ्यां क एनं विषहेत मर्त्यः ॥ ७९ ॥

प्राग्ज्योतिषं नाम बभूव दुर्गं पुरं घोरमसुराणामसह्यम् ।

महाबलो नरकस्तत्र भौमो जहाराऽदित्या मणिकुण्डले शुभे ॥ ८० ॥

न तं देवाः सह शक्रेण शोकुः समागता युधि मृत्योरभीताः ।

दृष्ट्वा च तं विक्रमं केशवस्य बलं तथैवाऽस्त्रमचारणीयम् ॥ ८१ ॥

जानंतोऽस्य प्रकृतिं केशवस्य न्ययोजयन्दस्युवधाय कृष्णम् ।

स तत्कर्म प्रतिशुश्राव दुष्करमैश्वर्यवान्सिद्धिषु वासुदेवः ॥ ८२ ॥

निर्मोचने षट् सहस्राणि हत्वा संचिच्छ पाशान्सहसा क्षुरांतान् ।

मुरं हत्वा विनिहत्यौघरक्षो निर्मोचनं चापि जगाम वीरः ॥ ८३ ॥

तत्रैव तेनाऽस्य बभूव युद्धं महाबलेनाऽतिबलस्य विष्णोः ।

शेते स कृष्णेन हतः परासुर्वातेनेव मथितः कर्णिकारः ॥ ८४ ॥

आहत्य कृष्णो मणिकुण्डले ते हत्वा च भौमं नरकं मुरं च ।

श्रिया वृतो यशसा चैव विद्वान्प्रत्याजगामाऽप्रतिमप्रभावः ॥ ८५ ॥

स्थित शाल्वराजसे सौभके सहित युद्ध किया था, और सौभसे शतघ्नी शक्ति ले ली थी, तब कोईभी मरण-धर्मशील पुरुष इनके पराक्रमको सह सकता है ? असुरोंका प्राग्ज्योतिषपुर नामक एक नगर था; वहांपर भूमिपुत्र नरकासुरने अदितिके अत्यन्त सुन्दर दोनों मणिजटित कुण्डलोंको हरकर उसी स्थानमें रक्खा था। मृत्युके भयसे रहित इन्द्र समेत सब देवता लोगमी इकट्ठे होकर उसे युद्धमें नहीं हरा सके, अनन्तर कृष्णके प्रसिद्ध बल, विक्रम और अक्षय शस्त्रोंको देख, और दस्यु ( डाकुओं ) के संहार करनेका उनका मुख्य धर्म समझ, इन्हींको देवतोंने उसके वधके निमित्त नियुक्त किया था। देवतोंके समूहमें

पूजित श्रीकृष्णने इस कठिन कर्मको अङ्गीकार किया था। ( ७९-८२ )

इन्हीं महावीर कृष्णने उन्मोचन नगरमें छः हजार वीरोंको मारके और मुरासुर तथा अन्यान्य दूसरे राक्षसोंके कुण्डको संहार करके, मुरके बनाये हुए तीक्ष्णधार भयङ्कर पाशको तोड़ते हुए वहांसे आगे निकले। यहीं पर महाबल नरकासुरके साथ अति बलशील महात्मा कृष्णका युद्ध हुआ था। उससे वह वायुसे उड़ाये हुए तिनकेकी भांति मर कर पञ्चत्वको पहुंचा था। अमित प्रभावयुक्त विद्यावान् कृष्णने इस प्रकार से मुर और नरकासुरको मारा था; और मणिजटित कुण्डलको लेकर लक्ष्मी और यशके पुञ्जसे पूरित होकर लौट आये थे। ( ८३-८५ )



अस्मै वराण्यददंस्तत्र देवा दृष्ट्वा भीमं कर्म कृतं रणे तत् ।  
 श्रमश्च ते युद्धयमानस्य न स्यादाकाशे चाऽप्सु च ते क्रमः स्यात् ॥८६॥  
 शस्त्राणि गात्रे न च ते क्रमेरन्नित्येव कृष्णश्च ततः कृतार्थः ।  
 एवंप्रसूते वासुदेवेऽप्रमेये महाबले गुणसंपत्सदैव ॥ ८७ ॥  
 तमसह्यं विष्णुमनंतवीर्यमाशंसते धार्तराष्ट्रो विजेतुम् ।  
 सदा ह्येनं तर्कयते दुरात्मा तच्चाऽप्ययं सहतेऽस्मान्समीक्ष्य ॥ ८८ ॥  
 पर्यागतं मम कृष्णस्य चैव यो मन्यते कलहं संप्रसह्य ।  
 शक्यं हर्तुं पाण्डवानां ममत्वं तद्वेदिता संयुगं तत्र गत्वा ॥ ८९ ॥  
 नमस्कृत्वा शान्तनवाय राज्ञे द्रोणायाऽथो सहपुत्राय चैव ।  
 शारद्वतायाऽप्रतिद्वंद्विने च योत्स्याम्यहं राज्यमभीप्समानः ॥ ९० ॥  
 धर्मेणाऽऽप्तं निधनं तस्य मन्ये यो योत्स्यते पाण्डवैः पापबुद्धिः ।  
 मिथ्याग्लहे निर्जिता वै नृशंसैः संवत्सरान्वै द्वादश राजपुत्राः ॥ ९१ ॥  
 वासः कृच्छ्रो विहितश्चाऽप्यरण्ये दीर्घं कालं चैकमज्ञातवर्षम् ।

तब देवताओंने इनके इस कठिन कर्मको देखकर कहा, कि युद्धमें प्रवृत्त होनेसे तुम्हें कुछभी परिश्रम न होगा, आकाश और जल आदि सब स्थानोंमें तुम्हारी गति होगी, और कोई शस्त्र तुम्हारे शरीरमें नहीं प्रवेश कर सकेगा, इस प्रकार देवताओंने वर दिया था, उससे कृष्णभी कृतार्थ हुए थे। इस प्रकारके अमित-गुणसे भरे हुए अनन्त पराक्रमी महाबली वासुदेव कृष्णको दुर्योधन जीतनेकी इच्छा करता है; क्योंकि वह दुष्टात्मा सदा उनको बांधने का यत्न करता है; परन्तु ये हम लोगोंके शील और प्रेमसे सब सह रहे हैं। ८६-८८

दुर्योधन हमारे और कृष्णके बीचमें झगडा उत्पन्न करनेकी युक्ति और प्रा-

र्थना करता है; परन्तु पाण्डवोंमें कृष्णकी आत्मीयता और मित्रता तथा स्नेहको घटाना कैसा कठिन और असाध्य कार्य है, वह कुरुक्षेत्रके युद्धहीमें जाकर समझ सकेगा। मैं राज्यके पानेमें उत्सुक होकर शान्तनुपुत्र भीष्म; पुत्र सहित द्रोणाचार्य और कृपाचार्यको नमस्कार करके युद्धमें प्रवृत्त होऊंगा। जो पापबुद्धि पुरुष पाण्डवोंसे युद्ध करनेके निमित्त उत्साही होगा, उसकी मृत्यु धर्मसे खड़ी है; अर्थात् यदि धर्म है, तो अवश्यही उसकी मृत्यु होगी। उन पापियोंने केवल कपटजुएके खेलमें हम लोगोंको बारह वर्षके निमित्त जीता था। ८९-९१

हम लोगोंने राजपुत्र होकरभी इतने दिनोंतक महादुःखको सहकर वनवास

ते हि कस्माज्जीवितां पाण्डवानां नन्दिष्यन्ते धार्तराष्ट्राः पदस्थाः ॥ ९२ ॥

ते चेदस्मान्युद्धयमानाञ्जयेयुर्देवैर्महेन्द्रप्रमुखैः सहायैः ।

धर्मादधर्मश्चरितो गरीयांस्ततो ध्रुवं नास्ति कृतं च साधु ॥ ९३ ॥

न चेदिमं पुरुषं कर्मबद्धं न चेदस्मान्मन्यतेऽसौ विशिष्टान् ।

आशंसेऽहं वासुदेवद्वितीयो दुर्योधनं सानुबन्धं निहतुम् ॥ ९४ ॥

न चेदिदं कर्म नरेन्द्र बन्धं न चेद्भवेत्सुकृतं निष्फलं वा ।

इदं च तच्चाऽभिसमीक्ष्य नूनं पराजयो धार्तराष्ट्रस्य साधुः ॥ ९५ ॥

प्रत्यक्षं वः कुरवो यद्वीमि युध्यमाना धार्तराष्ट्रा न संति ।

अन्यत्र युद्धात्कुरवो यदि स्युर्न युद्धे वै शेष इहाऽस्ति कश्चित् ॥ ९६ ॥

हत्वा त्वहं धार्तराष्ट्रान्सकर्णात्राज्यं कुरूणामवजेता समग्रम् ।

यद्वः कार्यं तत्कुरुध्वं यथास्वमिष्टान्दारानात्मभोगान्भजध्वम् ॥ ९७ ॥

अप्येवं नो ब्राह्मणाः संति वृद्धा बहुश्रुता शलिवन्तः कुलीनाः ।

किया था, और एक वर्ष छिपकर भी निवास किया, इससे पाण्डवोंके जीते हुए उन लोगोंके राज्यपद पर बैठकर धार्तराष्ट्र लोग अब कैसे आनन्दित रह सकते हैं ? हम लोगोंके युद्धमें प्रवृत्त होनेपर यदि वह इन्द्र आदि देवतोंकी सहायतासे भी हमलोगोंको जीतनेमें समर्थ होजाय, तब यह बात अवश्य माननी होगी, कि धर्मसे अधर्म-आचरणही श्रेष्ठ है, और संसारमें कोईभी सत्कर्म विद्यमान नहीं है । दुर्योधन यदि इस जीवात्माको कर्मबद्ध और हम लोगोंको अपनेसे अधिक न समझेगा, तो कृष्णकी सहायतासे मैं निश्चयही उसको इष्ट मित्रोंके सहित मारनेकी इच्छा करता हूँ । ( ९२ — ९४ )

हे नरेन्द्र ! यदि दुर्योधनका हम

लोगोंके राज्यको हर लेनेका पाप निष्फल न होगा; और हम लोगोंका पुण्य कर्म जो हमने उसको गन्धर्वोंके हाथसे छुड़ानेमें किया था, वह भी यदि बृथा न होगा, तब इन दोनों पक्षोंको विचारकर देखनेसे दुर्योधनकी पराजयही होनी उचित है । हे कौरवो ! मैं जो वचन कह रहा हूँ, वह तुम लोग देखोगे, युद्धमें प्रवृत्त होकर धृतराष्ट्रपुत्र जीते न बचेंगे । युद्धके अतिरिक्त कुछ अन्य उपाय करनेसे कौरव लोग जीते बच सकते हैं, परन्तु युद्ध करनेसे वे लोग कभी भी न बचेंगे । मैं कर्णके सहित धार्तराष्ट्रोंको मारकर सब राज्यको ले लूंगा, इससे तुम लोगोंको जो कुछ करना हो, उसे इसी समय करो, अपनी अभिलाषित वस्तुओंको भोग लो । ९५-९७

सांवत्सरा ज्योतिषि चाऽभियुक्ता नक्षत्रयोगेषु च निश्चयज्ञाः ॥ ९८ ॥

उच्चावचं दैवयुक्तं रहस्यं दिव्याः प्रश्ना मृगचक्रा मुहूर्ताः ।

क्षयं महान्तं कुरुसृजयानां निवेदयन्ते पांडवानां जयं च ॥ ९९ ॥

यथा हि नो भन्यतेऽजातशत्रुः संसिद्धार्थो द्विषतां निग्रहाय ।

जनार्दनश्चाऽप्यपरोक्षविद्यो न संशयं पश्यति वृष्णिर्लिहः ॥ १०० ॥

अहं तथैवं खलु भावि रूपं पश्यामि बुद्ध्या स्वयमप्रमत्तः ।

दृष्टिश्च मे न व्यथते पुराणी संयुध्यमाना धार्तराष्ट्रा न सन्ति ॥ १०१ ॥

अनालब्धं जृम्भति गांडिवं धनुरनाहता कंपति मे धनुर्ज्या ।

बाणाश्च मे तूणमुखाद्विस्तृत्य मुहुर्मुहुर्गतुमुशन्ति चैव ॥ १०२ ॥

खड्गः कोशान्निःसरति प्रसन्नो हित्वेव जीर्णामुरगस्त्वचं स्वाम् ।

ध्वजे वाचो रौद्ररूपा भवन्ति कदा रथो योक्षते ते किरीटिन् ॥ १०३ ॥

वर्तमान और भविष्यकी बहुतसी दैवी घटनाओंसे कौरवोंका नाश और पाण्डवोंके विजयसूचक वृत्तान्त विदित होंगे । इसी प्रकार उत्तमरूपसे ज्योतिष-जाननेवाले, शीलवन्त, कुलीन संवत्सर के फलोंके जाननेवाले, सूर्य चन्द्रमाके ग्रहण आदि विज्ञानमें निपुण और नक्षत्रोंके संयोगकी निश्चय करनेवाले, दिव्यप्रश्नोंके लगानेवाले ( भविष्य घटनाओंके बतानेवाले, ) शृंगालोंके आगमनके फलोंको कहनेवाले, कौन नक्षत्र किस ग्रहसे वेधा गया है इत्यादि विषयोंके विचार करनेवाले, शुभ और अशुभ मुहूर्तको बतानेवाले वृद्ध-ब्राह्मणभी यदि उपस्थित न हों, तौभी प्रत्यक्ष देखनेवाले वृष्णि सिंह कृष्णभी ऐसे बहुतसे लक्षणोंको निःसन्देह देख रहे हैं, जिससे हम लोगोंके अजातशत्रु युधिष्ठिर शत्रु-

ओंको पराजयके निमित्त अपनेको कृत-कार्य समझ सकते हैं । ( ९८-१०० )

और मैं भी शान्त होकर उन सब होनेवाले वृत्तान्तोंको ज्योंका त्यों देख रहा हूं । मेरे योग प्रभाववाली प्राचीन दृष्टिमें कुछभी व्याघात ( रद बदल ) नहीं हुआ है । मैं निश्चयही जानता हूं, कि बुद्धमें प्रवृत्त होनेसे धृतराष्ट्रके पुत्र जीते न बचेंगे । मेरे गाण्डीव धनुषके रोदे विना चढायेही चढ जाते हैं, विना चोटकेही धनुष चढानेका स्थान कम्पित हो रहा है, बाण सब तूणीरमेंसे निकलकर चलनेको उद्यत होते हैं । अपनी पुरानी केचुलीको छोडकर जैसे सांप बाहर होता है, वैसेही मेरी यह तलवारभी प्रसन्न होकर मियानमेंसे निकल रही है; और ध्वजाके ऊपरसे भी "हे किरीटिन् ! कब तुम्हारा रथ जुते-

गोमायुसंघाश्च नदन्ति रात्रौ रक्षांस्यथो निष्पतन्त्यन्तरिक्षात् ।

मृगाः शृगालाः शितिकंठाश्च काका गृध्रा बकाश्चैव तरक्षवश्च ॥ १०४ ॥

सुवर्णपत्राश्च पतन्ति पश्चाद् हृष्टा रथं श्वेतहयप्रयुक्तम् ।

अहं ह्येकः पार्थिवान्सर्वयोषाञ्शरान्वर्षन्मृत्युलोकं नयेयम् ॥ १०५ ॥

समाददानः पृथगस्त्रमार्गान्यथाऽग्निरिन्द्रो गहनं निदाधे ।

स्थूणाकर्णं पाशुपतं महास्त्रं ब्राह्मं चाऽस्त्रं यच्च शक्रोऽप्यदान्मे ॥ १०६ ॥

वधे धृतो वेगवतः प्रमुचन्नाऽहं प्रजाः किञ्चिदिहाऽवशिष्ये ।

शांतिं लप्स्ये परमो ह्येष भावः स्थिरो मम ब्रूहि गावत्गणे तान् ॥ १०७ ॥

ये वै जय्याः समरे स्मृत लब्ध्वा देवानपीन्द्रप्रमुखान्समेतान् ।

तैर्मन्यते कलहं संप्रसह्य स धार्तराष्ट्रः पश्यत मोहमस्य ॥ १०८ ॥

वृद्धो भीष्मः शांतनवः कृपश्च द्रोणः सपुत्रो विदुरश्च धीमान् ।

एते सर्वे यद्वदन्ते तदस्तु आयुष्मन्तः कुरवः संतु सर्वे ॥ १०९ ॥ [१८४२]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि अर्जुनवाक्यनिवेदनेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

गा' इस प्रकारके भयंकर बहुतसे वचन सुन पड़ते हैं । ( १०१-१०३ )

रातको सियार बड़े जोरसे बोलते हैं, और आकाशमें राक्षसोंका समूह गिरता हुआ दीखता है । मेरे सफेद घोड़ोंसे-युक्त रथको देखकर हरिण, सियार, मोर, कौए, गिद्ध, बगुले और सोनेके पंखके समान पंखवाले पक्षी सब पिछा-डी गिरते हुए दीखते हैं, क्योंकि मैं अकेलाही बाणोंकी वर्षा करता हुआ योद्धाओंको यमपुरीमें पहुंचा सकता हूं । सन्ध्याके समय बहुत घने वनको जलानेवाली आगके समान मैं योद्धाओंके मारनेका दृढ़ निश्चय करके अलग अलग अस्त्र शस्त्रोंको लेकर महा शस्त्र स्थूणाकर्ण, पाशुपतास्त्र और ब्रह्मास्त्र तथा इन्द्रने

मुझको जो कुछ अस्त्र दिये हैं सबको चला कर शत्रुकी ओरके राजपुरुषों और राजाओंमेंसे किसीको भी बाकी न छोड़ूंगा । ( १०४—१०७ )

हे संजय ! तुम उन लोगोंसे कहना कि, ऐसाही करके मैं शान्त होऊंगा, क्योंकि यही मेरा मुख्य और स्थिर अभिप्राय है । हे स्मृत ! देखो ! दुर्योधनको कहांतक मोह उत्पन्न हुआ है, कि जिसको इन्द्र आदि देवताओंकी सहायता पाकर भी कोई युद्धमें नहीं जीत सकता, उनके सङ्गमें बलपूर्वक विरोध करना वह उत्तम समझता है । जो हो, सम्प्रति शान्तनुनन्दन बृद्ध भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और विदुर जो वचन कहते हैं,

वैशंपायन उवाच- समवेतेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ।

दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ १ ॥

बृहस्पतिश्चोशना च ब्रह्माणं पर्युपस्थितौ ।

मरुतश्च सहेंद्रेण वसवश्चाऽग्निना सह ॥ २ ॥

आदित्याश्चैव साध्याश्च ये च सप्तर्षयो दिवि ।

विश्वावसुश्च गंधर्वः शुभाश्चाऽप्सरसां गणाः ॥ ३ ॥

नमस्कृत्योपजग्मुस्ते लोकवृद्धं पितामहम् ।

परिवार्य च विश्वेशं पर्यासत दिवौकसः ॥ ४ ॥

तेषां मनश्च तेजश्चाऽप्याददानाविबौजसा ।

पूर्वदेवौ व्यतिकान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ५ ॥

बृहस्पतिस्तु पप्रच्छ ब्रह्माणं काविमाविति ।

भवन्तं नोपतिष्ठेते तौ नः शंस पितामह ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच— यावेतौ पृथिवीं द्यां च भासयन्तौ तपस्विनौ ।

ज्वलन्तौ रोचमानौ च व्याप्याऽतीतौ महाबलौ ॥ ७ ॥

नरनारायणावेतौ लोकाल्लोकं समास्थितौ ।

वही होवे; सब कौरव लोग आयुष्मान  
होवें । ( १०७-१०९ ) [ १८४२ ]

उद्योगपर्वमें अठतालिस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें उनचास अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्  
जनमेजय ! अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्म  
उन इकठ्ठे हुए सब राजाओंके बीचमें  
दुर्योधनसे यह वचन कहने लगे। पहिले  
समयमें एक बार बृहस्पति और शुक्रा-  
चार्य ब्रह्माके समीप गये थे, और इन्द्र-  
के सहित वसु, आदित्य, साध्य, आका-  
शमें रहनेवाले सप्तऋषि, गन्धर्व और  
अप्सर आदि सब स्वर्गवासी भी वहां  
जाकर लोकवृद्ध विश्वेश्वर पितामहको

नमस्कार करके अपने अपने समूहके  
सहित यथायोग्य स्थानमें बैठ गये। १-४

उसी समय प्राचीन देव नर और  
नारायण ऋषि अपने असीम तेज प्रभा-  
वसे उन सबके मन और तेजको ग्रहण  
करते हुए सबहीको नांघकर वहांसे  
चले। इससे बृहस्पतिने ब्रह्मासे पूछा  
कि, हे पितामह ! आपकी उपासना न  
करनेवाले ये दोनों कौन हैं ? इनका  
वृत्तान्त हम लोगोंसे कहिये । (५-६)

ब्रह्मा बोले, पृथ्वी और स्वर्गको प्रका-  
शित करनेवाले, तेजसे प्रज्वलित, महा-  
पराक्रमी और महाबलसे युक्त जो ये  
दोनों ऋषि सबको व्यापके तथा अति-

ऊर्जितौ स्वेन तपसा महासत्त्वपराक्रमौ ॥ ८ ॥  
 एतौ हि कर्मणा लोकं नन्दयामासतुर्ध्रुवम् ।  
 द्विधा भूतौ महाप्राज्ञौ विद्वि ब्रह्मन् परंतपौ ।  
 असुराणां विनाशाय देवगंधर्वपूजितौ ॥ ९ ॥  
 वैशम्पायन उवाच-जगाम शक्रस्नच्छ्रुत्वा यत्र तौ तेपतुस्तपः ।  
 सार्धं देवगणैः सर्वैर्वृहस्पतिपुरोगमैः ॥ १० ॥  
 तदा देवासुरे युद्धे भये जाते दिवौकसाम् ।  
 अथाचत महात्मानौ नरनारायणौ वरम् ॥ ११ ॥  
 तावन्नूतां वृणीष्वेति तदा भरतसत्तम ।  
 अथैतावन्नूतनीच्छक्रः साह्यं नः क्रियतामिति ॥ १२ ॥  
 ततस्तौ शक्रमन्नूतां करीष्यावो यदिच्छसि ।  
 ताभ्यां च सहितः शक्रो विजिग्ये दैत्यदानवान् ॥ १३ ॥  
 नर इन्द्रस्य संग्रामे हत्वा शत्रून्परंतपः ।  
 पौलोमान्कालखंजांश्च सहस्राणि शतानि च ॥ १४ ॥  
 एष भ्रान्ते रथे तिष्ठन् भलेनाऽपाहरच्छिरः ।

क्रम करके चले गये हैं, ये ही नरनारा-  
 यण हैं । अपनी तपस्यासे तेजस्वी होकर  
 ये मनुष्यलोकसे ब्रह्मलोकमें पहुंचे हैं ।  
 हे ब्रह्मन् ! इन्होंने कर्मसे सब लोकोंके  
 आनन्दको बढ़ाया है; महाबुद्धिमान  
 इन दोनों परम तेजस्वी महात्माओंमें  
 परस्पर अमेद होनेपरभी देवता और  
 गन्धर्वोंसे पूरित होकर राक्षसोंके विनाश  
 करनेके निमित्त दो शरीरको धारण  
 किये हैं । ( ७-९ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ब्रह्माके  
 उस वचनको सुनकर इन्द्र वृहस्पति  
 आदि देवताओंके सहित वहां गये, जहां  
 नर-नारायण तपस्या करते थे । वहां

जाकर उस समय जो देवता और असु-  
 रोंमें महायुद्ध हो रहा था, उस महाभय  
 से छूटनेके निमित्त वर मांगनेकी  
 प्रार्थना करी । हे भरतसत्तम ! तब उन्हों  
 ने कहा, कि “क्या प्रार्थना है, कहो ।”  
 ऐसा वचन सुनकर इन्द्र बोले, आप-  
 लोग मेरी सहायता कीजिये । अनन्तर  
 उन्होंने इन्द्रसे कहा, कि “तुम जो  
 इच्छा करते हो, वह पूरी होगी ।”  
 इन्द्रने उनके प्रतापसे शत्रुओंको जीता  
 था । ( १०-१३ )

महातेजस्वी नरदेवने युद्धमें पौलोम  
 और कालखञ्ज आदिक इन्द्रके सौ सौ  
 हजार शत्रुओंका संहार किया था ।

जंभस्य ग्रसमानस्य तदा ह्यर्जुन आहवे ॥ १५ ॥  
 एष पारे समुद्रस्य हिरण्यपुरमारुजत् ।  
 जित्वा षष्टिं सहस्राणि निवातकवचात्रणे ॥ १६ ॥  
 एष देवान्सहेंद्रेण जित्वा पुरपुरंजयः ।  
 अतर्पयन्महाबाहुरर्जुनोऽजातवेदसम् ॥ १७ ॥  
 नारायणस्तथैवाऽत्र भूयसोऽन्याञ्जघान ह ।  
 एवमेतौ महावीर्यौ तौ पश्यत समागतौ ॥ १८ ॥  
 वासुदेवार्जुनौ वीरौ समवेतौ महारथौ ।  
 नरनारायणौ देवौ पूर्वदेवाविति श्रुतिः ॥ १९ ॥  
 अजेयौ मानुषे लोके सेंद्रैरपि सुरासुरैः ।  
 एष नारायणः कृष्णः फाल्गुनश्च नरः स्मृतः ।  
 नारायणो नरश्चैव सत्त्वमेकं द्विधा कृतम् ॥ २० ॥  
 एतौ हि कर्मणा लोकानश्नुवातेऽक्षयान्ध्रुवान् ।  
 तत्र तत्रैव जायंते युद्धकाले पुनः पुनः ॥ २१ ॥  
 तस्मात्कर्मैव कर्तव्यमिति होवाच नारदः ।

लडाईके समय जंभासुर नरदेवको ग्रास करनेके निमित्त उद्यत हुआ था, तब इन्होंने घूमते हुए रथपर बैठकर भालेके सहारेसे उसका शिर काटा था। इन्होंने समुद्रके पारमें जाकर साठ हजार निवातकवच नामक राक्षसोंको जीतके हिरण्यपुर नगरको पीडित किया था। पराये देशोंके जीतनेवाले महाबाहु अर्जुनने इन्द्रके सहित सब देवताओंको भी पराजित करके अग्निको तृप्त किया था। (१४-१७)

इसी प्रकारसे नारायणने भी अनेक दैत्य दानवोंका वध किया था। ऐसे महाबली और बड़े पराक्रमी इन दोनों

पुरुषोंका एकत्र समागम देखो। सुनते हैं, कि वेही प्रथम देव नर और नारायणने वीरोंमें श्रेष्ठ वासुदेव और अर्जुन रूपसे अवतार लिया है। मनुष्य लोकमें इन्द्रके सहित सब देवता लोगभी इनको नहीं जीत सकते। कृष्णही नारायण और अर्जुन नरदेव जाने गये हैं। एकही आत्माने दो होकर नर नारायण रूपको धारण किया है। (१८-२०)

ये वीरताके कर्मोंसे अक्षय भ्रुव लोकमें व्याप्त हो रहे हैं, और जहांपर युद्ध करनेका समय पहुंचता है, वहांही बार बार अवतार लेते हैं। इसी निमित्त वेदके जाननेवाले नारदने यदुवंशियोंसे



एताद्वि सर्वमाचष्ट वृष्णिचक्रस्य वेदवित् ॥ २२ ॥

शंखचक्रगदाहस्तं यदा द्रक्ष्यसि केशवम् ।

पर्याददानं चाऽस्त्राणि भीमधन्वानमर्जुनम् ॥ २३ ॥

सनातनौ महात्मानौ कृष्णावेकरथे स्थितौ ।

दुर्योधन तदा तात स्मर्ताऽसि वचनं मम ॥ २४ ॥

नो चेदयमभावः स्यात् कुरूणां प्रत्युपस्थितः ।

अर्थाच्च तात धर्माच्च तव बुद्धिरुपहृता ॥ २५ ॥

न चेद्ब्रह्मीष्यसे वाक्यं श्रोताऽसि सुबहून्हतान् ।

तवैव हि मतं सर्वं कुरवः पर्युपासते ॥ २६ ॥

त्रयाणामेव च मतं तत्त्वमेकोऽनुमन्यसे ।

रामेण चैव शप्तस्य कर्णस्य भरतर्षभ ॥ २७ ॥

दुर्जातेः सूतपुत्रस्य शकुनेः सौबलस्य च ।

तथा क्षुद्रस्य पापस्य भ्रातुर्दुःशासनस्य च ॥ २८ ॥

कर्ण उवाच—

नैवमायुष्मता वाच्यं यन्मामात्थ पितामह ।

क्षत्रधर्मे स्थितो ह्यस्मि स्वधर्मादनपेयिवान् ॥ २९ ॥

किं चाऽन्यन्मयि दुर्वृत्तं येन मां परिगर्हसे ।

यह सब वृत्तान्त वर्णन करते हुए कहा था, कि युद्धही इनका कर्तव्य कर्म है । हे तात दुर्योधन ! जब सनातन महात्मा कृष्ण अर्जुनको तुम एकही रथ पर बैठे देखोगे; जब शङ्ख, चक्र, गदा हाथमें लिये हुए कृष्णको और गाण्डीव धनुषके सहित अर्जुनको अस्त्र शस्त्रोंसे युक्त देखोगे, तभी हमारी इन बातोंको स्मरण करोगे । ( २१-२४ )

यदि इस समय हमारी बातोंको न मानोगे, तो समझेंगे कि निश्चयही कौरवोंके नाशका समय उपस्थित हुआ है । हे तात ! धर्म और अर्थसे तुम्हारी

बुद्धि भ्रष्ट होगई है; तुम यदि मेरी बातोंको ग्रहण न करोगे, तो अनेक ज्ञाति-बन्धुओंको मरे हुए सुनोगे, सब कौरव लोग तुम्हारे ही मतके अनुवर्त्ती हैं, परन्तु तुम परशुरामजीके शापसे ग्रस्त, हीन सूत पुत्र कर्ण, सुबल-पुत्र शकुनि और अपने सहोदर भाई दुःशासनके मत और वचनोंको कल्याणकारी समझते हो । ( २५-२८ )

कर्ण बोले, हे पितामह ! तुमने मुझे जो कुछ वचन कहे, यह तुम्हारे कहने योग्य न थे, क्योंकि मैं निज धर्मसे पतित न होकर क्षात्रधर्ममें स्थित हूँ ।



न हि मे वृजिनं किञ्चिद्वार्तराष्ट्रा विदुः क्वचित् ॥ ३० ॥

नाऽचरं वृजिनं किञ्चिद्वार्तराष्ट्रस्य नित्यशः ।

अहं हि पाण्डवान्सर्वान्हनिष्यामि रणे स्थितान् ॥ ३१ ॥

प्राग्विरुद्धैः शमं सद्भिः कथं वा क्रियते पुनः ।

राज्ञो हि धृतराष्ट्रस्य सर्वं कार्यं प्रियं मया ।

तथा दुर्योधनस्यापि स हि राज्ये समाहितः ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच-कर्णस्य तु वचः श्रुत्वा भीष्मः शान्तनवः पुनः ।

धृतराष्ट्रं महाराज संभाष्येदं वचाऽब्रवीन् ॥ ३३ ॥

यद्यं कथ्यते नित्यं त्वं ताऽहं पाण्डवानिति ।

नाऽयं कलाऽपि संपूर्णा पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ३४ ॥

अनयो योऽयमागता पुत्राणां ते दुरात्मनाम् ।

तदस्य कर्म जानीहि सूतपुत्रस्य दुर्मतेः ॥ ३५ ॥

एतमाश्रित्य पुत्रस्ते मन्दबुद्धिः सुयोधनः ।

अवामन्यत तान्वीरान्देवपुत्रानारिदमान् ॥ ३६ ॥

विशेषतः मुझमें ऐसा कोई दुश्चरित्र भी नहीं है, कि जिससे तुम मेरी निन्दा करोगे । धृतराष्ट्रके पुत्र लोग किसी समयमें भी मेरे किञ्चित् मात्र पापको नहीं जानते; मैंने दुर्योधनके संग भी कभी बुरा आचरण नहीं किया, बल्कि यही कल्याण साधनका कार्य करूंगा, कि युद्धमें सब पाण्डवोंको मार डालूंगा । पहिले जिनके साथ विरोध हो चुका है, सज्जन लोग उनके सङ्ग फिर किस प्रकारसे सन्धि कर सकते हैं ? राजा धृतराष्ट्रके प्रियकार्योंको करना मेरा अत्यन्त कर्त्तव्य कर्म है और दुर्योधनके भी प्यारे कामोंको करना उचित है; क्योंकि येही राज्यपद पर प्रतिष्ठित हुए

हैं । ( २९-३२ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कर्णकी ऐसी बातोंको सुनकर शान्तनुपुत्र भीष्म महाराज धृतराष्ट्रसे बात करते हुए फिर यह वचन बोले, कि कर्ण “पाण्डवोंको मारूंगा” यह कहकर सदा अपनी बड़ाई किया करता है; परन्तु यह महात्मा पाण्डवोंके सोलहवें अंशका एक अंशभी नहीं है । तुम्हारे दुराचारी पुत्रोंको जो भारी अनर्थमें पडना होगा, वह इसी सूतपुत्रका कर्म जानना चाहिये । तुम्हारा पुत्र मन्दबुद्धि दुर्योधन इसीका सहारा लेकर महाबली, शत्रुओंके जीतनेवाले देवपुत्र पाण्डवोंको अपमानित किया करता है । ( ३३-३६ )

किं चाऽप्येतेन तत्कर्म कृतपूर्वं सुदुष्करम् ।  
 तैर्यथा पाण्डवैः सर्वैरेकैकेन कृतं पुरा ॥ ३७ ॥  
 दृष्ट्वा विराटनगरे भ्रातरं निहतं प्रियम् ।  
 धनंजयेन विक्रम्य किमनेन तदा कृतम् ॥ ३८ ॥  
 सहितान्हि कुरुन्सर्वानभियातो धनंजयः ।  
 प्रमथ्य चाऽच्छिनद्वासः किमयं प्रोषितस्तदा ॥ ३९ ॥  
 गन्धर्वैर्घोषयात्रायां ह्रियते यत्सुतस्तव ।  
 क तदा सूतपुत्रोऽभूद्य इदानीं वृषायते ॥ ४० ॥  
 ननु तत्रापि भीमेन पार्थेन च महात्मना ।  
 यमाभ्यामेव संगम्य गन्धर्वास्ते पराजिताः ॥ ४१ ॥  
 एतान्यस्य मृषोक्तानि बहूनि भरतर्षभ ।  
 विकत्थनस्य भद्रं ते सदा धर्मार्थलोपिनः ॥ ४२ ॥  
 भीष्मस्य तु वचः श्रुत्वा भारद्वाजो महात्मनाः ।  
 धृतराष्ट्रमुवाचेदं राजमध्येऽभिपूजयन् ॥ ४३ ॥

पाण्डवोंने अकेलेही जिन कठिन कर्मोंको किया है, क्या कर्ण कभी भी वैसे कर्मोंको करनेमें समर्थ हुआ है ? विराट नगरमें जब अर्जुनने अपने बल विक्रमको प्रकाश करके इसके प्यारे भाईको मारा था, उसे देखकर उस समय इसने क्या किया था ? अर्जुनने सब कौरवोंको जिन समय अकेलेही जीतकर अच्छी प्रकारसे सबको मोहित और मूर्च्छित करके सबके वस्त्रोंको बलपूर्वक ग्रहण किया था, तब क्या यह विदेशमें गया था ? वहां पर क्या यह उपास्थित नहीं था ? (३७-३९)

घोषयात्रामें जब गन्धर्वोंने तुम्हारे पुत्रोंको हरण किया था, तब यह सूतपुत्र

कहां था, जो इस समय बैलकी भांति आस्फालन कर रहा है। वहांपर भी महात्मा भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवनेही आकर उन गन्धर्वोंको जीतकर दुर्योधनको छुड़ाया था। हे भरतर्षभ ! इस व्यर्थ बड़ाई करनेवाले धर्म और अर्थके लोपक कर्णकी ऐसीही बहुत मिथ्या बातें सुनी जाती हैं; इससे तुम इन सब बातोंका विचार करके अपने मङ्गल कामनाके निमित्त कार्य करो। (४०-४२)

भीष्मकी बात सुन महात्मा भरद्वाज पुत्र सब राजाओंके बीचमें उनके वचनोंकी प्रशंसा करते हुए महाराज धृतराष्ट्रसे यह वचन बोले, कि अर्थ

यदाह भरतश्रेष्ठो भीष्मस्तत्क्रियतां नृप ।  
 न काममर्थलिप्सूनां वचनं कर्तुमर्हसि ॥ ४४ ॥  
 परा युद्धात्साधु मन्ये पांडवैः सह संगतम् ।  
 यद्वाक्यमर्जुनेनोक्तं संजयेन निवेदितम् ॥ ४५ ॥  
 सर्वं तदपि जानामि करिष्यति च पांडवः ।  
 न ह्यस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्ति धनुर्धरः ॥ ४६ ॥  
 अनादृत्य तु तद्वाक्यमर्थवद् द्रोणभीष्मयोः ।  
 ततः स संजयं राजा पर्यपृच्छत पांडवान् ॥ ४७ ॥  
 तदैव कुरुवः सर्वे निराशा जीवितेऽभवन् ।  
 भीष्मद्रौणौ यदा राजा न सम्यगनुभाषते ॥ ४८ ॥ [ १८९० ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि

भीष्मद्रोणवाक्ये ऊनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— किमसौ पांडवो राजा धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत ।  
 श्रुत्वेह बहुलाः सेनाः प्रीत्यर्थं नः समागताः ॥ १ ॥  
 किमसौ चेष्टते सूत योत्स्यमानो युधिष्ठिरः ।  
 के वाऽस्य भ्रातृपुत्राणां पश्यंत्याज्ञेप्सवो मुखम् ॥ २ ॥

लिप्सुओंके वचन अनुसार कार्य करना आपको उचित नहीं है । युद्धके पहिले पाण्डवोंसे मेल करनाही मैं कल्याणकारी समझता हूं । सञ्जयने अर्जुनकी कही हुई जिन सब वचनोंको सभामें सुनाया है; उन सबको ही मैं स्वीकार करता हूं; अर्जुन अवश्य उन वचनोंके अनुसार कार्यको पूरा करेगा, क्योंकि त्रिलोकमें उसके समान धनुर्धारी दूसरा कोईभी विद्यमान नहीं है । ( ४३-४६ )

महाराज धृतराष्ट्र द्रोण और भीष्मके अर्थसे भरे हुए वचनोंका अनादर करके सञ्जयसे पाण्डवोंकी बातोंको पूछने लगे।

उन्होंने जब भीष्म और द्रोणाचार्यकी बातोंका पूरा उत्तर न दिया उसी समय कौरव लोग अपने जीवनसे निराश होगये । ( ४७-४८ ) [ १८९० ]

उद्योगपर्वमें उनचास अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें पचास अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! हमारी प्रीतिके निमित्त जो सब सेना आकर इकट्ठी हुई है, उसको सुनकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने क्या कहा ? भावी युद्धके लिये वे कैसा बन्दोबस्त कर रहे हैं ? भाई और पुत्रोंमें कौन कौन उनकी आज्ञा पालनेके निमित्त मुंह जोह रहे हैं ?

केखिदेनं वारयन्ति युद्धाच्छाम्येति वा पुनः ।

निकृत्या कोपितं मंदैर्धर्मज्ञं धर्मचारिणम् ॥ ३ ॥

संजय उवाच— राज्ञो मुखमुदीक्षन्ते पांचालाः पाण्डवैः सह ।

युधिष्ठिरस्य भद्रं ते स सर्वाननुशास्ति च ॥ ४ ॥

पृथग्भूताः पाण्डवानां पांचालानां रथव्रजाः ।

आयांतमभिनंदन्ति कुंतीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५ ॥

नभः सूर्यमिवोद्यन्तं कौन्तेयं दीप्ततेजसम् ।

पांचालाः प्रतिनंदन्ति तेजोराशिमिवोदितम् ॥ ६ ॥

आगोपालाविपालाश्च नंदमाना युधिष्ठिरम् ।

पांचालाः केकया मत्स्याः प्रतिनंदन्ति पाण्डवम् ॥ ७ ॥

ब्राह्मण्यो राजपुत्र्यश्च विशां दुहितरश्च याः ।

क्रीडन्त्योऽभिसमायाति पार्थ सन्नद्धमीक्षितुम् ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— संजयाऽऽचक्ष्व ये नाऽस्मान्पाण्डवा अभ्ययुजत ।

घृष्टद्युम्नस्य सैन्येन सोमकानां बलेन च ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच— गावल्गणिस्तु तत् पृष्टः सभायां कुरुसंसदि ।

मेरे क्षुद्रबुद्धिवाले पुत्रोंके ठगने और अपमान करने पर कुपित हुए धर्मपुत्र धर्मचारी राजा युधिष्ठिरको “शान्ति अवलम्बन कीजिये” ऐसा वचन कहके युद्धसे कौन निवारण कर रहा है? (१-३)

संजय बोले, हे महाराज ! पाण्डवोंके सहित पाञ्चाल लोग राजा युधिष्ठिरका मुंह जोहते हुए ठहरे हैं और वे भी सब पर अनुशासन कर रहे हैं । पाण्डव और पाञ्चालोंका रथसमूह अलग अलग आकर राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न कर रहा है । उदय होते हुए प्रभात कालके सूर्यके समान पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा कुन्तीनन्दन महाराज युधिष्ठिरकी स्तुति

और प्रशंसा करते हैं; पांचाल, केकय, मत्स्यदेशके वीर और गोपाल आदि सबलोग राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करनेके लिये उनकी स्तुति करते हैं । ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंकी कुमारी कन्यायें युद्धके निमित्त उद्यत हुए युधिष्ठिरको देखनेके निमित्त आके इकट्ठी होती हैं । (४-८)

धृतराष्ट्र बोले, हे संजय ! पाण्डव लोग पाञ्चाल तथा दूसरे सोमक वंशियोंकी जिन जिन सेनाओंके सहारे हम लोगोंसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं, उसको तुम मुझसे वर्णन करो । (९)

वैशम्पायन मुनि बोले, कि संजय

निःश्वस्य सुभृशं दीर्घं मुहुः संचिंतयन्निव ॥ १० ॥

तत्राग्निमित्ततो दैवात्सूतं कश्मलमाविशत् ।

तदाऽऽचक्षे विदुरः सभायां राजसंसदि ॥ ११ ॥

संजयोऽयं महाराज मूर्च्छितः पतितो भुवि ।

वाचं न सृजते कांचिद्धीनप्रज्ञोऽल्पचेतनः ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— अपश्यत्संजयो नूनं कुन्तीपुत्रान्महारथान् ।

तैरस्य पुरुषव्याघ्रैर्भृशमुद्वेजितं मनः ॥ १३ ॥

वैशंपायन उवाच— संजयश्चेतनां लब्ध्वा प्रत्याश्वस्येदमब्रवीत् ।

धृतराष्ट्र महाराज सभायां कुरुसंसदि ॥ १४ ॥

संजय उवाच— दृष्टवानस्मि राजेन्द्र कुन्तीपुत्रान्महारथान् ।

मत्स्यराजगृहावासनिरोधेनाऽवकर्शितान् ॥ १५ ॥

शृणु यैर्हि महाराज पाण्डवा अभ्ययुंजत ।

धृष्टद्युम्नेन वीरेण युद्धे वस्तेऽभ्ययुंजत ॥ १६ ॥

यो नैव रोषान्न भयान्न लोभान्नाऽर्थकारणात् ।

न हेतुवादाद्धर्मात्मा सत्यं जह्यात्कदाचन ॥ १७ ॥

कौरवोंकी सभामें धृतराष्ट्रके प्रश्नोंको सुनकर, कुछ सोचकर बार बार कठि-  
नतासे लम्बी सांस लेते हुए दैवात् मू-  
र्च्छित हो गये ! तब सभाके बीच कौ-  
रवोंके समीप बैठे हुए महाराज धृतराष्ट्र  
से विदुरने कहा, कि हे महाराज !  
सञ्जय मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिरके  
बुद्धिहीन और चेतनारहित होनेसे कुछ  
बात नहीं कह सकते हैं । ( १०-१२ )

धृतराष्ट्र बोले, सञ्जयने महारथ कु-  
न्तीपुत्रोंसे भेट की थी । मालूम होता  
है, कि उन पुरुषव्याघ्रोंने इनके चित्तको  
बहुत उत्तेजित कर दिया है । ( १३ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सञ्जय

कौरवोंसे आश्वासित होकर सावधान  
हुए और उठकर सभामें कौरवोंके स-  
मीप महाराज धृतराष्ट्रसे कहने लगे ।  
हे राजेन्द्र ! मैंने महारथ पाण्डवोंको  
मत्स्यराजके मन्दिरमें अज्ञात रूपमें  
रहनेके समय क्लेश होने के कारण  
शरीरसे कृश अवलोकन किया है ।  
हे महाराज ! पाण्डवोंने जिन लोगोंके  
सहित आपसे युद्ध करनेका निश्चय  
किया है, उनका नाम सुनिये । वह  
बुद्धिमान धृष्टद्युम्नके सहित आपसे युद्ध  
करनेका निश्चय करते हैं । जो धर्मात्मा  
काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय और  
अर्थसे भी कभी सत्यको नहीं छोड़ते,

यः प्रमाणं महाराज धर्मं धर्मभृतां वरः ।  
 अजातशत्रुणा तेन पाण्डवा अभ्ययुंजत ॥ १८ ॥  
 यस्य बाहुबले तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।  
 यो वै सर्वान्महीपालान्वशे चक्रे धनुर्धरः ।  
 यः काशीनङ्गमगधान्कलिङ्गांश्च युधाऽजयत् ॥ १९ ॥  
 तेन वो भीमसेनेन पाण्डवा अभ्ययुंजत ।  
 यस्य वीर्येण सहसा चत्वारो भुवि पाण्डवाः ॥ २० ॥  
 निःसृत्य जतुगेहाद्वै हिडिंवात्पुरुषादकात् ।  
 यश्चैषामभवद् द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ २१ ॥  
 याज्ञसेनीमथो यत्र सिंधुराजोऽपकृष्टवान् ।  
 तत्रैषामभवद् द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ २२ ॥  
 यश्च तान्संगतान्सर्वान्पाण्डवान्वारणावते ।  
 दह्यतो मोचयामास तेन वस्तेऽभ्ययुंजत ॥ २३ ॥  
 कृष्णायां चरता प्रीतिं येन क्रोधवशा हताः ।  
 प्रविश्य विषमं घोरं पर्वतं गन्धमादनम् ॥ २४ ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महात्मा जो धर्म विषयमें प्रमाण स्वरूप हैं, उन अजात-शत्रु युधिष्ठिरके वशमें पाण्डव लोगोंने आपसे युद्ध करनेका निश्चय किया है। ( १४-१८ )

जिसके बाहुबलके समान पृथ्वीमें कोई भी वीर विद्यमान नहीं है, जिस धनुर्धारीने सब राजाओंको अपने वशमें किया था, जिन्होंने काशी, मगध, अङ्ग और कलिङ्ग देशवासियोंको युद्धमें जीता था, उसी भीमसेनके सहित पाण्डव लोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं। जिसके बलवीर्यके प्रभावसे युधिष्ठिरादि चार मुख्य मनुष्य-श्रेष्ठ वीर

जतुगृहसे सहसा भूमिके रास्ते निकाले गये थे, जिन्होंने मनुष्य-भक्षी हिडम्ब राक्षससे उन लोगोंको बचाया था, उसी भीमसेनके सहित पाण्डव तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं। ( १९-२१ )

सिंधुराज जयद्रथने जब द्रौपदीको हरण किया था, उस समय जिस कुन्ती पुत्र वृकोदरने उसे छुड़ाया था, और जिन्होंने वारणावत नगरमेंसे प्रायः जलते हुए सब पाण्डवोंको मुक्त किया था, पाण्डव लोग उसी भीमसेनके सहारे तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं। द्रौपदीकी प्रीतिको पूरी करनेके निमित्त जिन्होंने महा भयङ्कर गन्धमादन

यस्य नागायुतैर्वीर्यं भुजयोः सारमर्पितम् ।  
 तेन वो भीमसेनेन पांडवा अभ्ययुंजत ॥ २५ ॥  
 कृष्णद्वितीयो विक्रम्य तुष्ट्यर्थं जातवेदसः ।  
 अजयद्यः पुरा वीरो युद्धयमानं पुरंदरम् ॥ २६ ॥  
 यः स साक्षान्महादेवं गिरिशं शूलपाणिनम् ।  
 तोषयामास युद्धेन देवदेवमुमापतिम् ॥ २७ ॥  
 यश्च सर्वान्वशे चक्रे लोकपालान्धनुर्धरः ।  
 तेन वो विजयेनाऽऽजौ पांडवा अभ्ययुंजत ॥ २८ ॥  
 यः प्रतीचीं दिशं चक्रे वशे म्लेच्छगणायुताम् ।  
 स तत्र नकुलो योद्धा चित्रयोधी व्यवस्थितः ॥ २९ ॥  
 तेन वो दर्शनीयेन वीरेणाऽतिधनुर्भृता ।  
 माद्रीपुत्रेण कौरव्य पांडवा अभ्ययुंजत ॥ ३० ॥  
 यः काशीनङ्गमगधान्कालिंगांश्च युधाऽजयत् ।  
 तेन वः सहदेवेन पांडवा अभ्ययुंजत ॥ ३१ ॥  
 यस्य वीर्येण सहशाश्चत्वारो भुवि मानवाः ।

दोनों पर्वतके शिखर पर जाकर क्रोधवश  
 नामक राक्षसोंको मारा था, जिसकी  
 भुजाओंमें दश-हजार हाथियोंका बल  
 है, उसी भीमसेनके सङ्ग पाण्डवोंने  
 तुमसे युद्ध करनेका निश्चय किया  
 है । ( २२-२५ )

जिस वीरने पहिले आग्रीको तृप्त  
 करनेके निमित्त कृष्णकी सहायतासे  
 इन्द्रको जीत लिया था; जिसने साक्षात्  
 शूलधारी उमापति महादेवको युद्धसे  
 प्रसन्न किया था, जिस धनुषधारीने  
 सब राजाओंको वशीभूत किया था,  
 उसी अर्जुनको सङ्ग लेकर पाण्डव  
 लोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते

हैं । ( २६ - २८ )

जिन्होंने म्लेच्छोंसे भरे हुए पश्चिम  
 दिशाको जीत कर उन्हें अपने वशवर्त्ती  
 किया था, वे ही विचित्र-वीर नकुल  
 वहांपर योद्धारूपसे निश्चित किये गये  
 हैं । हे कुरु-श्रेष्ठ ! पाण्डवोंने उसी धनु-  
 र्द्वारी वीरवर सुकुमार और सुन्दर माद्री  
 पुत्र नकुलके सहित तुमसे युद्ध करनेका  
 निश्चय किया है । जिन्होंने काशी,  
 मगध, अङ्ग और कलिङ्ग देशोंको पहिले  
 युद्धमें जीता था, उसी सहदेवके सहित  
 पाण्डव लोग तुमसे युद्ध करनेका नि-  
 श्चय करते हैं । ( २९-३१ )

हे राजन् ! पृथ्वीमें अश्वत्थामा,

अश्वत्थामा धृष्टकेतू रुक्मी प्रद्युम्न एव च ॥ ३२ ॥  
 तेन वः सहदेवेन युद्धं राजन्महात्ययम् ।  
 यवीयसा नृवीरेण माद्रीनन्दिकरेण च ॥ ३३ ॥  
 तपश्चचार या घोरं काशिकन्या पुरा सती ।  
 भीष्मस्य वधमिच्छन्ती प्रेत्याऽपि भरतर्षभ ॥ ३४ ॥  
 पांचालस्य सुता जज्ञे दैवाच्च स पुनः पुमान् ।  
 स्त्रीपुंसोः पुरुषव्याघ्र यः स वेद गुणागुणान् ॥ ३५ ॥  
 यः कलिगान्समापेदे पांचाल्यो युद्धदुर्मदः ।  
 शिखण्डिना वः कुरुवः कृतास्त्रेणाऽभ्ययुजत ॥ ३६ ॥  
 यं यक्षः पुरुषं चक्रे भीष्मस्य निधनेच्छया ।  
 महेष्वासेन रौद्रेण पाण्डवा अभ्ययुजत ॥ ३७ ॥  
 महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पंच केकयाः ।  
 आमुक्तकवचाः शूरास्तैश्च वस्तेऽभ्ययुजत ॥ ३८ ॥  
 यो दीर्घबाहुः क्षिप्रास्त्रो धृतिमान्सत्यविक्रमः ।  
 तेन वो वृष्णिवीरेण युयुधानेन संगरः ॥ ३९ ॥

धृष्टकेतु, रुक्म और प्रद्युम्न जिनके बल  
 के समान हैं, माद्रीके आनन्दवर्द्धन  
 उसी पाण्डवोंके छोटे भ्राता सहदेवके  
 सङ्ग तुम्हे महा भयङ्कर युद्ध करना हो-  
 गा । हे भरतर्षभ ! जिसने पहिले काशी-  
 राजकी कन्या होकर मरण पर्यन्त भीष्म  
 के वधकी इच्छा करके कठिन तपस्या  
 की थी, अनन्तर पांचाल राजाके  
 मन्दिरमें कन्या रूपसे जन्म लेकर दै-  
 वात् पुरुषत्वको पाया है, जो स्त्री और  
 पुरुषोंके सब गुण और अवगुणोंको  
 भली भाँति जानते हैं, युद्धदुर्मद जो  
 पाञ्चालपुत्र कलिङ्गराजको युद्धके निमित्त  
 मिले थे, उसी महाधनुषधारी उग्रमूर्ति

शिखण्डीके सहित पाण्डव लोग तुमसे  
 युद्ध करनेका निश्चय करते हैं । (३२-३६)  
 भीष्मके मारनेके निमित्त वनके  
 यक्षने जिसको स्त्रीसे पुरुष बनाया है,  
 उसी कालके समान शिखण्डीके सङ्ग  
 पाण्डव लोग तुमसे युद्ध करनेका नि-  
 श्चय करते हैं । केकय देशीय महा  
 धनुर्द्वारी और वर्मसे युक्त शरवीर जो  
 पांच भाई हैं, उनके सङ्ग भी पाण्डव-  
 लोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते  
 हैं । जो लम्बी भुजावाले, शीघ्र अस्त्र  
 चलानेमें निपुण, धैर्यवन्त और सत्य  
 विक्रमी हैं, उस वृष्णिवीर युयुधानके  
 सहित पाण्डव लोग तुमसे युद्ध करनेका



य आसीच्छरणं काले पांडवानां महात्मनाम् ।  
 रणे तेन विराटेन भविता वः समागमः ॥ ४० ॥  
 यः स काशिपती राजा वाराणस्यां महारथः ।  
 स तेषामभवद्योद्धा तेन वस्तेऽभ्ययुंजत ॥ ४१ ॥  
 शिशुभिर्दुर्जयैः संख्ये द्रौपदेयैर्महात्मभिः ।  
 आशीविषसमस्पर्शैः पांडवा अभ्ययुंजत ॥ ४२ ॥  
 यः कृष्णसदृशो वीर्ये युधिष्ठिरसमो दमे ।  
 तेनाऽभिमन्युना संख्ये पांडवा अभ्ययुंजत ॥ ४३ ॥  
 यश्चैवाऽप्रतिमो वीर्ये धृष्टकेतुर्महायशाः ।  
 दुःसहः समरे क्रुद्धः शैशुपालिर्महारथः ॥ ४४ ॥  
 तेन वञ्चेदिराजेन पांडवा अभ्ययुंजत ।  
 अक्षौहिण्या परिधृतः पांडवान्योऽभिसंश्रितः ॥ ४५ ॥  
 यः संश्रयः पांडवानां देवानामिव वासवः ।  
 तेन वो वासुदेवेन पांडवा अभ्ययुंजत ॥ ४६ ॥  
 तथा चेदिपतेभ्राता शरभो भरतर्षभ ।

निश्चय करते हैं । ( ३७-३९ )

अज्ञात-वासमें जिन्होंने पाण्डवोंकी रक्षा की थी, उसी महात्मा विराटके सङ्ग तुमको युद्ध करना होगा । काशी-पति महारथ राजा वाराणसी धाममें प्रतिष्ठित हैं, वे भी पाण्डवोंके योद्धा हुए हैं; पाण्डवोंने उन्हीं काशीराजके सङ्ग आपसे युद्ध करनेका निश्चय किया है। बालक होकर भी युद्धमें दुर्जय विषैले सर्पकी तरह भयङ्कर मूर्तिको धारण करनेवाले द्रौपदीपुत्रोंके सहित पाण्डव-लोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं । जो बल वीर्यमें कृष्णके समान और इन्द्रियनिग्रहमें युधिष्ठिरके तुल्य हैं,

उसी अभिमन्युके सहित पाण्डवोंने तुमसे युद्ध करनेका निश्चय किया है । ४०-४३

महायशस्वी महावीर्यवान, महारथ, शिशुपालपुत्र धृष्टकेतु युद्ध होनेसे संग्राममें कालस्वरूप होजाते हैं, जिन्होंने एक अक्षौहिणी सेनाके सहित युधिष्ठिरको सहारा दिया है, उन्हीं चेदीराजके संग पाण्डव लोग तुमसे युद्धमें मिलनेका निश्चय करते हैं । देवताओंमें इन्द्रके समान जिन्होंने पाण्डवोंको सहारा दिया है, पाण्डवलोग उन्हीं कृष्णके संग आपसे युद्धमें मिलनेका निश्चय करते हैं । ( ४४-४६ )

हे भरतर्षभ ! उन्हीं चेदिपतिके

करकर्षेण सहितस्ताभ्यां वस्तेऽभ्ययुजत ॥ ४७ ॥

जारासंधिः सहदेवो जयत्सेनश्च तावुभौ ।

युद्धे प्रतिरथे वीरौ पांडवार्थे व्यवस्थितौ ॥ ४८ ॥

द्रुपदश्च महातेजा बलेन महता वृतः ।

त्यक्तात्मा पांडवार्थाय योत्स्यमानो व्यवस्थितः ॥ ४९ ॥

एते चाऽन्ये च बहवः प्राच्योदीच्या महीक्षितः ।

शतशो यानुपाश्रित्य धर्मराजो व्यवस्थितः ॥ ५० ॥ [१९४०]

इति श्रीमहाभारते संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयवाक्येपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—सर्व एते महोत्साहा ये त्वया परिकीर्तिताः ।

एकतस्त्वेव ते सर्वे समेता भीम एकतः ॥ १ ॥

भीमसेनाद्वि मे भूयो भयं संजायते महत् ।

क्रुद्धादमर्षणात्तात व्याघ्रादिव महारुरोः ॥ २ ॥

जागर्मि रात्रयः सर्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वसन् ।

भीतो वृकोदरात्तात सिंहात्पशुरिवाऽपरः ॥ ३ ॥

न हि तस्य महाबाहोः शक्रप्रतिमतेजसः ।

भ्राता शरभ और करकर्षके सहित भी आपसे युद्ध करनेका निश्चय किया है । जरासन्धके पुत्र सहदेव और जयत्सेन पाण्डवोंके युद्धकार्यके निमित्त निश्चित हुए हैं । ( ४७ — ४८ )

अत्यन्त बलसमूहसे घिरे हुए महा तेजस्वी द्रुपदराज भी पाण्डवोंके निमित्त अपने प्राणको समर्पण करके युद्धके निमित्त तैयार हैं । इनको छोड़कर और भी पूरव तथा उत्तर देशके दूसरे बहुतते राजाओंका सहारा लेकर धर्मराज युधिष्ठिर संग्रामके निमित्त तैयार हैं । ( ४९-५० ) [ १९४० ]

उद्योगपर्वमें पचास अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकावन अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे संजय ! तुमने जिन लोगोंका नाम बतलाया है, वे सब ही महाउत्साहसे भरे हैं; परन्तु वे सब लोग मिलके एक तरफ रहें; और भीम उन सब लोगोंके समान अकेलाही एक ओर रह सकता है । हे तात ! जैसे व्याघ्रसे, महा-रुरुको भय लगता है; वैसेही भीमसेनसे मुझे अत्यन्त भय लगता है । सिंहसे जैसे पशुओंको डर लगता है, उसी भांति वृकोदरसे भय-भीत होकर लम्बी और गर्म सांस लेते हुए मुझे सारी रात नींद नहीं आती । ( १-३ )

उस इन्द्रके समान तेजस्वी महाबाहु

सैन्येऽस्मिन्प्रतिपश्यामि य एनं विषहेद्युधि ॥ ४ ॥  
 अमर्षणश्च कौन्तेयो दृढवैरश्च पांडवः ।  
 अनर्महासी सोन्मादस्तिर्यक्प्रेक्षी महास्वनः ॥ ५ ॥  
 महावेगो महोत्साहो महाबाहुर्महाबलः ।  
 मंदानां मम पुत्राणां युद्धेनाऽतं करिष्यति ॥ ६ ॥  
 उरुग्राहगृहीतानां गदां विभ्रद्रुकोदरः ।  
 क्रूरुणामृषभो युद्धे दंडपाणिरिवाऽतकः ॥ ७ ॥  
 अष्टास्त्रिमायसीं घोरां गदां कांचनभूषणाम् ।  
 मनसाऽहं प्रपश्यामि ब्रह्मदंडमिवोद्यतम् ॥ ८ ॥  
 यथा मृगाणां यूथेषु सिंहो जातबलश्चरेत् ।  
 मामकेषु तथा भीमो बलेषु विचरिष्यति ॥ ९ ॥  
 सर्वेषां मम पुत्राणां स एकः क्रूरविक्रमः ।  
 बह्वाशी विप्रतीपश्च बाल्येऽपि रभसः सदा ॥ १० ॥  
 उद्वेपते मे हृदयं ये मे दुर्योधनादयः ।  
 बाल्येऽपि तेन युद्धयंतो वारणेनेव मर्दिताः ॥ ११ ॥  
 तस्य वीर्येण संक्लिष्टा नित्यमेव सुता मम ।

भूमिके सङ्ग युद्धमें उसके बलको सह  
 सके, ऐसा वीर मैं इस सेनाके बीचमें  
 किसीको नहीं देखता। वह अमर्षण,  
 दृढ वैर, टेढ़ा स्वभाव, बहुदर्शी, महाश-  
 द्र, महावेग, महा-उत्साह, महाबाहु और  
 महाबलसे युक्त कुन्तीपुत्र कुरुश्रेष्ठ भीम-  
 सेन युद्धमें दण्डधारी यमराजके समान  
 गदा धारण करके अत्यन्त मोहग्रस्त  
 मेरे पुत्रोंको नाश कर देगा। (४—७)

मैं अपने अन्तःकरणसे ब्रह्मदण्डके  
 समान उसकी लोहमयी अष्टकोनसे युक्त  
 सोनेके तारोंसे खिंची हुई भयंकर गदा  
 को देख रहा हूं। युवा अवस्थाका बल

पाकर जैसे सिंह मृगोंके झुण्डमें घूमता  
 है, वैसेही भीमसेनभी मेरी सेना में  
 घूमेगा। वह बहुत भोजन करने वाला  
 भीमसेन, अकेलाही बाल्य-अवस्था में  
 भी मेरे पुत्रोंके ऊपर कठिन पराक्रम  
 प्रकाश करता था। बाल अवस्था में  
 भी वह युद्धमें प्रवृत्त होकर मतवाले  
 हाथीके समान दुर्योधन आदि मेरे पुत्रों  
 को मर्दन करता था, उसको स्मरण  
 करनेसे अबभी मेरा हृदय कांपता  
 है। (८—११)

हमारे पुत्र सदाही उसके बलको  
 देखकर दुःखी रहते थे, इससे वही महा

स एव हेतुर्भेदस्य भीमो भीमपराक्रमः ॥ १२ ॥  
 ग्रसमानमनीकानि नरवारणवाजिनाम् ।  
 पश्यामीवाऽग्रतो भीमं क्रोधसूर्च्छितमाहवे ॥ १३ ॥  
 अस्त्रे द्रोणार्जुनसमं वायुवेगसमं जवे ।  
 महेश्वरसमं क्रोधे को हन्याद्भीममाहवे ॥ १४ ॥  
 संजयाऽऽचक्ष्व मे शूरं भीमसेनममर्षणम् ।  
 अतिलाभं तु मन्येऽहं यत्तेन रिपुघातिना ॥ १५ ॥  
 तदैव न हताः सर्वे पुत्रा मम मनस्विना ।  
 येन भीमबला यक्षा राक्षसाश्च पुरा हताः ॥ १६ ॥  
 कथं तस्य रणे वंगं मालुषः प्रसहिष्यति ।  
 न स जातु वशे तस्यौ यम बाल्येऽपि संजय ॥ १७ ॥  
 किं पुनर्मम दुष्पुत्रैः क्लिष्टः संप्रति पांडवः ।  
 निष्ठुरो राक्षणोऽत्यर्थं भज्येताऽपि न संनमेत् ॥  
 निर्यक्प्रेक्षी संहतभ्रूः कथं शाम्येद्वृकोदरः ॥ १८ ॥  
 शूरस्तथाऽप्रतिबलो गौरस्ताल इवोन्नतः ।

पराक्रमी भीमसेन इस विनाशका का-  
 रण हुआ है । मुझे ऐसा दीखता है कि  
 भीम क्रोधसे सूर्च्छित होकर युद्धमें मनु-  
 ष्य, हाथी, घोड़े और सम्पूर्ण सेनाको  
 ग्रास कर रहा है । हे सञ्जय ! अस्त्रोंके  
 चलानेमें द्रोणाचार्य और अर्जुनके समा-  
 न, शीघ्र चलनेमें वायुके समान; और  
 क्रोधमें रुद्रके समान युद्ध दुर्मद शूरवीर  
 भीमसेनको कौन मनुष्य संग्राममें मार  
 सकता है ? ( १२—१४ )

हे सञ्जय ! उस शत्रुसंहारकारी भीम  
 ने उसी समयमें मेरे पुत्रोंको नहीं  
 मार डाला, इसीको मैं अपना परम  
 लाभ समझता हूं । जिस भीमने पहिले

महा पराक्रमी यक्ष और राक्षसोंका वध  
 किया है, उसके बल और वेगको मनु-  
 ष्य कैसे सह सकेंगे ? हे सञ्जय ! वह  
 बालक अवस्थामें भी मेरे वशमें नहीं  
 हुआ था, तब इस समय मेरे कुमार्गी  
 पुत्रोंसे क्लेश पाकर अब कैसे मेरे वशमें  
 होगा ? वह अत्यन्त निष्ठुर और महा-  
 क्रोधी है । यदि वह माराभी जायगा, तोभी  
 कभी न नमेश, जो भीम क्रोधसे भरा  
 हुआ सर्वदा टेढ़ी चालसे देखता रहता है,  
 और जिसकी दोनों भौंहोंका मध्यभाग  
 सिकुड़ा रहता है, वह किस प्रकारसे शांति  
 अवलम्बन कर सकता है ? ( १५—१८ )

भीमका जैसा बल, वीर्य और रूप

प्रमाणतो भीमसेनः प्रादेशेनाऽधिकोऽर्जुनात् ॥ १९ ॥  
 जवेन वाजिनोऽत्येति बलेनाऽत्येति कुंजरान् ।  
 अव्यक्तजल्पी मध्वक्षो मध्यमः पांडवो बली ॥ २० ॥  
 इति बाल्ये श्रुतः पूर्वं मया व्यासमुखात्पुरा ।  
 रूपतो वीर्यतश्चैव याथातथ्येन पांडवः ॥ २१ ॥  
 आयसेन स दंडेन रथान्नागान्नरान्हयान् ।  
 हनिष्यति रणे क्रुद्धो रौद्रः क्रूरपराक्रमः ॥ २२ ॥  
 अमर्षी नित्यसंरब्धो भीमः प्रहरतां वरः ।  
 मया तात प्रतीपानि कुर्वन्पूर्वं विमानितः ॥ २३ ॥  
 निष्कर्णामायसीं स्थूलां सुपार्श्वां कांचनीं गदाम् ।  
 शतघ्नीं शतनिर्हार्दां कथं शक्यंति मे सुताः ॥ २४ ॥  
 अपारमष्टवागाधं समुद्रं शरवेधनम् ।  
 भीमसेनमयं दुर्गं तात मंदास्तितीर्षिवः ॥ २५ ॥  
 क्रोशतां मे न शृण्वन्ति बालाः पंडितमानिनः ।  
 विषमं नहि मन्यन्ते प्रपातं मधुदर्शिनः ॥ २६ ॥

है, उसे मैंने पहिलेही उसको बालक  
 अवस्थामें व्यासजीके मुखसे यथार्थ  
 और दृढनिश्चय पूर्वक सुना था, कि  
 “भीम अत्यन्त पराक्रमी, महाबली,  
 गौरवर्ण, शालवृक्षके समान ऊंचा, वेगमें  
 घोड़ोंसे और बलमें हाथियोंसे भी अधिक  
 है। बहुत धीमे स्वरसे बोलने वाला और  
 मधुवर्णके समान उसके नेत्र हैं। वह  
 प्रचण्ड-मूर्ति महा पराक्रमी भीमसेनयुद्ध  
 में क्रोधित होकर लोहमयी गदा लेकर  
 रथ, हाथी, घोड़े और मनुष्योंको मारेगा,  
 इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। (१९-२२)  
 हे तात ! पहिले मैंने उसके प्रतिकूल  
 आचरण करके उस महाक्रोधी प्रहार

करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीमका अपमान किया  
 है, इस समय मेरे पुत्र लोग उसकी  
 सोनेसे खिची हुई लोहमयी अठकोनी  
 महाभयङ्करी गदाके प्रहारको कैसे सह  
 सकेंगे ? हे तात ! मेरे पुत्र लोग महा-  
 भयङ्कर असंख्य बाणोंसे वेगवान भीम-  
 सेन रूपी महासमुद्रसे कैसे पार  
 होंगे ? ( २३—२५ )

मैं बार बार अपने पुत्रोंको निवारण  
 करता हूं, परन्तु वे अभिमानी महामूढ़  
 निर्बुद्धि लोग कुछभी नहीं मानते। वे  
 लोग केवल मधुहीको देखते हैं, किन्तु  
 उसके निकटहीमें जो महा भयंकी  
 सम्भावना है उसको कुछभी नहीं विचारते

संयुगं ये गमिष्यन्ति नररूपेण सृत्युना ।  
 नियतं चोदिता धात्रा सिंहेनेव महाशृगाः ॥ २७ ॥  
 शैक्यां तात चतुष्किष्कुं षडस्त्रिमभितौजसम् ।  
 प्रहितां दुःखसंस्पर्शा कथं शक्ष्यन्ति मे सुताः ॥ २८ ॥  
 गदां भ्रामयतस्तस्य भिदतो हस्तिमस्तकान् ।  
 सृक्किणी लेलिहानस्य बाष्पमुत्सृजतो मुहुः ॥ २९ ॥  
 उद्दिश्य नागान्पततः कुर्वतो भैरवान्नवान् ।  
 प्रतीपं पततो मत्तान्कुंजरान्प्रतिगर्जतः ॥ ३० ॥  
 विगाह्य रथमार्गेषु वरानुद्दिश्य निघ्नतः ।  
 अग्नेः प्रज्वालितस्येव अपि मुच्येत मे प्रजा ॥ ३१ ॥  
 वीथीं कुर्वन्महाबाहुर्द्रावयन्मम वाहिनीम् ।  
 नृत्यन्निव गदापाणिर्युगांतं दर्शयिष्यति ॥ ३२ ॥  
 प्रभिन्न इव मातंगः प्रभञ्जनपुष्पितान्द्रुमान् ।  
 प्रवेक्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मे वृकोदरः ॥ ३३ ॥  
 कुर्वन्स्थान्विपुरुषान्विसारथिहयध्वजान् ।  
 आरुजन्पुरुषव्याघ्रो रथिनः सादिनस्तथा ॥ ३४ ॥

हैं। जो लोग उस नररूपी यमराजसे युद्ध करनेको जायंगे, वे लोग भीमसे ऐसे मारे जायंगे जैसे सिंहसे हरिणोंका समूह मारा जाता है। हे तात ! सोनेके तारोंसे खिची हुई, चार हाथ लम्बी, छकोनेसे युक्त, बहुत तेजसे भरी हुई, दुःखको उत्पन्न करनेवाली गदाके चलनेपर मेरे पुत्र उसके वेगको कैसे सह सकेंगे ? (२६-२८)

जिस समय भीम गदा लेकर हाथियोंके मस्तकको तोड़ेगा, और भयङ्कर शब्द करता हुआ हाथियोंकी ओर दौड़ेगा, तथा रथके मार्गको रोकके

मुख्य मुख्य वीरोंको मारेगा, उस समय जलती हुई अग्निके समान उसके समीप से क्या कोई मनुष्य छुटकारा पावेगा ? महाबाहु भीम मेरी सेनाको भगाकर मार्ग बनावेगा और गदा हाथमें लेकर नाचता हुआ प्रलयकालके समान दिखलावेगा । (२९-३२)

हे सञ्जय ! फूले हुए वृक्षोंके तोड़नेवाले मतवारे हाथीकी भांति भीमसेन संग्राममें मेरे पुत्रोंकी सेनामें प्रवेश करेगा, रथोंको रथी और सारथीसे खना कर देगा; घोड़े, हाथी और रथकी ध्वजाओंको काटेगा, तथा रथी और

गंगावेग इवाऽनूपांस्तीरजान्विविधान्द्रुमान् ।  
 प्रभंक्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मम संजय ॥ ३५ ॥  
 दिशो नूनं गमिष्यन्ति भीमसेनभयार्दिताः ।  
 मम पुत्राश्च भृत्याश्च राजानश्चैव संजय ॥ ३६ ॥  
 येन राजा महावीर्यः प्रविश्याऽन्तःपुरं पुरा ।  
 वासुदेवसहायेन जरासंधो निपातितः ॥ ३७ ॥  
 कृत्स्नेयं पृथिवी देवी जरासंधेन धीमता ।  
 मागधेन्द्रेण बलिना वशे कृत्वा प्रतापिता ॥ ३८ ॥  
 भीष्मप्रतापात्कुरवो न येनाऽधकवृष्णयः ।  
 यन्न तस्य वशे जग्मुः केवलं दैवमेव तत् ॥ ३९ ॥  
 स गत्वा पांडुपुत्रेण तरसा बाहुशालिना ।  
 अनायुधेन वीरेण निहतः किं तनोऽधिकम् ॥ ४० ॥  
 दीर्घकालसमासक्तं विषमाशीविषो यथा ।  
 स मोक्ष्यति रणे तेजः पुत्रेषु मम संजय ॥ ४१ ॥  
 महेन्द्र इव वज्रेण दानवान्देवसत्तमः ।

गजारोहियोंको पूरी तरहसे पीड़ित करेगा; वह हमारी सेनाको इस प्रकारसे भगा देगा, जैसे गङ्गाके बड़े हुए प्रवाह में किनारेके सब वृक्ष टूट टूटके बह जाते हैं । (३३-३५)

जिस वीर भीमसेनने कृष्णकी सहायतासे जरासन्धके अन्तःपुरमें जाकर उसको मारा था; उस भीमके डरसे भयभीत होकर हमारे पुत्र, नौकर और दूसरे राजा लोग अवश्यही इधर उधर भाग जायेंगे । हे सञ्जय ! मगधराज बलवानोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् जरासन्धने सब पृथ्वीके राजाओंको अपने वशमें करके उन्हें पीड़ित किया था । भीष्म-

के प्रतापसे कौरव, नीतिज्ञ अन्धक और वृष्णी लोग जो उसके वशवर्त्ती नहीं हुए, यह केवल दैवकी कृपाही समझनी चाहिये । (३६-३९)

महाबाहु भीमसेनने इस प्रकारके महावीरके स्थानमें जाकर, बिना कुछ शस्त्र ग्रहण कियेही केवल बाहुबलके सहारेसे उसे मारा था, इससे बढके दूसरी और कौनसी बात होगी ? भीम से कौन अधिक बलवान हो सकता है ? हे सञ्जय ! युद्धके समयमें वह महाविषैले सर्पकी भांति विष उगलता हुआ बहुत दिनसे रुके हुए अपने बल और तेजपुज्जको मेरे पुत्रोंके ऊपर अवश्य



भीमसेनो गदापाणिः सूदयिष्यति मे सुतान् ॥ ४२ ॥  
 अविषह्यमनावार्य तीव्रवेगपराक्रमम् ।  
 पश्यामीवाऽतिताम्राक्षमापतंतं वृकोदरम् ॥ ४३ ॥  
 अगदस्याऽप्यधनुषो विरथस्य विवर्मणः ।  
 बाहुभ्यां युद्धयमानस्य कस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ॥ ४४ ॥  
 भीष्मो द्रोणश्च विप्रोऽयं कृपः शारद्वतस्तथा ।  
 जानंत्येते यथैवाऽहं वीर्यज्ञस्तस्य धीमतः ॥ ४५ ॥  
 आर्यव्रतं तु जानंतः संगरांतं विधित्सवः ।  
 सेनामुखेषु स्थास्यंति मामकानां नरर्षभाः ॥ ४६ ॥  
 बलीयः सर्वतो दिष्टं पुरुषस्य विशेषतः ।  
 पश्यन्नपि जयं तेषां न नियच्छामि यत्सुतान् ॥ ४७ ॥  
 ते पुराणं महेष्वासा मार्गमैन्द्रं समास्थिताः ।  
 त्यक्ष्यंति तुमुले प्राणान् रक्षंतः पार्थिवं यशः ॥ ४८ ॥

त्याग करेगा। जैसे देवतोंके राजा  
 इन्द्र वज्र लेकर दानवोंकी सेनाका नाश  
 करते हैं, वैसेही भीमसेनभी गदा लेकर  
 मेरे पुत्रोंको नाश कर देगा। (४०-४२)  
 न सहने योग्य, रोकनेसे न रुकने-  
 वाला, टेढा-स्वभाव, वेगवान, महापरा-  
 क्रमी, लालनेत्रवाले भीमसेनको, जैसे  
 मैं अपने सम्मुख आया हुआ देखता  
 हूँ! वह वृकोदर गदा, धनुष, रथ, क-  
 वचसे रहित होनेपरभी, यदि अपने  
 दोनों भुजाओंके बलसेही युद्धमें प्रवृत्त  
 हो, तौभी कोई बलवान पुरुष उसके  
 अगाडी नहीं ठहर सकेगा। भीष्म,  
 द्रोण और ब्राह्मणश्रेष्ठ कृपाचार्यभी मेरी  
 भांति बुद्धिसे युक्त भीमके बलको जानते  
 हैं। (४३-४५)

ये मनुष्योंमें श्रेष्ठ महावीर पुरुष  
 युद्धमें मरनेसे श्रेष्ठ व्रत समझते हैं, इस  
 निमित्त युद्धकी तैयारी करके मेरी सेना-  
 के अगाडी खड़े होंगे। हे सज्जय! प्रा-  
 रब्ध सब ठौर सबकोही कम, समान  
 अथवा अधिक बलवान है, विशेष कर-  
 के पुरुषोंके लिये तो मुख्यही है। क्यों-  
 कि मैं इस बातको जानता हूँ; की युद्धमें  
 निश्चयसे पाण्डवोंकी जय होगी, तौभी  
 अपने पुत्रोंको नहीं रोक सकता हूँ।  
 भीष्म आदि ये सब महाधनुर्द्वारी वीर  
 लोग इन्द्रसे प्रगट हुए पुराने मार्ग अर्थात्  
 युद्धकर्मको करके राजाओंके योग्य यश  
 और कीर्तिकी रक्षा करते हुए, होने  
 वाले संग्राममें अपने प्राणोंको छोड़ें  
 गे। (४६-४८)



यथैष मामकास्तात तथैषां पाण्डवा अपि ।  
 पौत्रा भीष्मस्य शिष्याश्च द्रोणस्य च कृपस्य च ॥ ४९ ॥  
 ये त्वस्मदाश्रयं किञ्चिदत्तमिष्टं च संजय ।  
 तस्याऽपचितिमार्यत्वात्कर्तारः स्थविरास्त्रयः ॥ ५० ॥  
 आददानस्य शस्त्रं हि क्षत्रधर्मं परीप्सतः ।  
 निधनं क्षत्रियस्याऽऽजौ वरमेवाऽऽहुरुत्तमम् ॥ ५१ ॥  
 स वै शोचामि सर्वान्वै ये युयुत्संति पाण्डवैः ।  
 विकुष्टं विदुरेणाऽऽदौ तदेतद्भयमागतम् ॥ ५२ ॥  
 न तु मन्ये विघाताय ज्ञानं दुःखस्य संजय ।  
 भवत्यति बलं ह्येतज्ज्ञानस्याऽप्युपघातकम् ॥ ५३ ॥  
 ऋषयो ह्यपि निर्मुक्ताः पश्यन्तो लोकसंग्रहान् ।  
 सुखैर्भवन्ति सुखिनस्तथा दुःखेन दुःखिताः ॥ ५४ ॥  
 किं पुनर्मोहमासक्तस्तत्र तत्र सहस्रधा ।  
 पुत्रेषु राज्यदारेषु पौत्रेष्वपि च बंधुषु ॥ ५५ ॥

हे तात ! इन लोगोंके समीप जैसे मेरे पुत्र हैं, वैसेही पाण्डव लोगभी हैं, ये सब लोग भीष्मके पौत्र ( नाती ) और द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्यके शिष्य हैं; तब ये तीनों बूढ़े भद्रात्मा पुरुष मेरे यहांसे जो कुछ अपनी अभिलषित वस्तु पाते वा पाचुके हैं, उसके निमित्त अपनी स्वाभाविक उदारतासे युद्धमें अवश्यही प्रत्युपकार करनेके निमित्त पुरुषार्थ करेंगे । क्योंकि पण्डित लोग कहते हैं, कि क्षत्रियधर्मको ग्रहण करनेवाले शस्त्रधारी क्षत्रियोंको युद्धमें मरनाही सबसे उत्तम है । ( ४९-५१ )

इससे हे संजय ! जो सब लोग पाण्डवोंसे युद्ध करनेकी इच्छा करते

हैं, उनकेही निमित्त मैं शोक करता हूं । अहो ! विदुरने मुक्तकण्ठसे कहकर जिस भयकी सूचना दी थी, वह भय आकर उपास्थित हुआ है । हे तात ! दुःखको नाश करनेवाला ज्ञान है, यह मेरे विचारसे सिद्ध नहीं होता है; क्योंकि यह आनेवाला भावी दुःख ज्ञानकोभी मात करता है । लौकिक वृत्तान्तोंको जाननेवाले जीवन्मुक्त ऋषि लोग भी जब सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होते हैं, तब पुत्र, कलत्र, पौत्र, राज्य और बन्धुबान्धवोंसे युक्त और नाना विषयोंमें सहस्रों भांतिसे आसक्त रहकर मैं जो दुखोंमें दुःखी होऊंगा इसमें कौनसी विचित्रता है ? ( ५२-५५ )

संशये तु महत्यस्मिन्किं नु मे क्षममुत्तरम् ।  
 विनाशं ह्येव पश्यामि कुरूणामनुचिंतयन् ॥ ५६ ॥  
 द्यूतप्रमुखमाभाति कुरूणां न्यसनं महत् ।  
 मन्दैश्वर्यकामेन लोभात्पापमिदं कृतम् ॥ ५७ ॥  
 मन्ये पर्यायधर्मोऽयं कालस्याऽत्यंतगामिनः ।  
 चक्रे प्रधिरिवाऽऽसक्तो नाऽस्य शक्यं पलायितुम् ॥ ५८ ॥  
 किं नु कुर्यां कथं कुर्यां क नु गच्छामि संजय ।  
 एते नश्यन्ति कुरवो मंदाः कालवशं गताः ॥ ५९ ॥  
 अवशोऽहं तदा तात पुत्राणां निहते शते ।  
 श्रोष्यामि निनदं स्त्रीणां कथं मां मरणं स्पृशेत् ॥ ६० ॥

यथा निदाघे ज्वलनः समिद्धो दहेत्कक्षं वायुना चोद्यमानः ।  
 गदाहस्तः पांडवो वै तथैव हंता मदीयान्सहितोऽर्जुनेन ॥ ६१ ॥ [२००१]

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- यस्य वै नाऽनृता वाचः कदाचिदनुशुश्रुम ।

यह जो बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हो रहा है, उसमें क्या मेरा कल्याण होगा ? मैं पूरी रीतिसे अनुसन्धान करके भी केवल अन्तमें कौरवोंका विनाश ही देखता हूं । जुवेका खेलनाही कौरवोंके लिये महाविपदमें पडनेका कारण मालूम होता है । ऐश्वर्य चाहनेवाला, मन्दबुद्धि दुर्योधनने केवल लोभहीके वशमें होकर इस पाप कर्मको कराया था । मुझे मालूम होता है, यह शीघ्र अदल बदल होनेवाले कालचक्रका घूमनाही परिणाम है । इस कालचक्रमें मैं ऐसा फंस रहा हूं कि उससे छुटकारा नहीं पा सकता । (५६-५८)  
 हे सञ्जय ! इस समयमैं कहां जाऊं,

क्या करूं ? किस प्रकारके कार्योंको करूं ? ये मन्दबुद्धि कौरव लोग शीघ्रही कालके वशमें होकर नष्ट होजायेंगे । हे तात ! जब मेरे सौ पुत्र मारे जायेंगे, तब मैं परवश होकर कैसे स्त्रियोंके रोदन को सुनूंगा ? हा ! किस प्रकारसे मेरी मृत्यु होगी ? मन्ध्या कालमें वायुकी सहायतासे बढी हुई अग्नि जिस प्रकारसे सूखी हुई तृण और लकड़ियोंको भस्म कर देती है, वैसेभी भीमसेन अर्जुनके साथ मिलकर मेरे पुत्रोंको मार डालेगा । (५९-६१) [ २००१ ]

उद्योगपर्वमें एकावन अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें १० अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले । सकी झूठी बात

त्रैलोक्यमपि तस्य स्याद्योद्धा यस्य धनंजयः ॥ १ ॥  
 तस्यैव च न पश्यामि युधि गांडीवधन्वनः ।  
 अनिशं चिंतयानोऽपि यः प्रतीयाद्रथेन तम् ॥ २ ॥  
 अस्यतः कर्णिनालीकान्मार्गणान्हृदयच्छिदः ।  
 प्रत्येता न समः कश्चियुधि गांडीवधन्वनः ॥ ३ ॥  
 द्रोणकर्णौ प्रतीयातां यदि वरिणौ नरर्षभौ ।  
 कृतास्त्रौ बलिनां श्रेष्ठौ समरेष्वपराजितौ ॥ ४ ॥  
 महान्स्यात्संशयो लोके न त्वस्ति विजयो मम ।  
 घृणी कर्णः प्रमादी च आचार्यः स्थविरो गुरुः ॥ ५ ॥  
 समर्थो बलवान्पार्थो दृढधन्वा जितक्लमः ।  
 भवेत्सुतमुलं युद्धं सर्वशोऽप्यपराजयः ॥ ६ ॥  
 सर्वे ह्यस्त्रविदः शूराः सर्वे प्राप्ता महद्यशः ।  
 अपि सर्वाभरैश्वर्यं त्यजेयुर्न पुनर्जयम् ॥ ७ ॥  
 वधे नूनं भवेच्छान्तिस्तयोर्वा फाल्गुनस्य च ।

कभीभी सुननेमें नहीं आती, और अर्जुन  
 ऐसे जिसके वीर योद्धा हैं, उस युधिष्ठिर  
 को तीनों भुवनके राज्यकी भी प्राप्ति  
 हो सकती है। मैं ऐसे किसी मनुष्यकोभी  
 नहीं देखता जो गाण्डीवधारी अर्जुनके  
 विरुद्ध अस्त्र धारण करके उसका सामना  
 करनेमें समर्थ हो। जिस समय अर्जुन गा-  
 ण्डीव धनुषको लेकर प्रकाशमान, हृदयको  
 छेदनेवाले सब बाणोंको छोड़ने लगेगा,  
 उस समय कोईभी उसके समान बलवान  
 होकर उसे नहीं रोक सकेगा। (१-३)

सब शस्त्रोंके जाननेवाले बलवानोंमें  
 श्रेष्ठ, युद्धमें कभी पीछे न हटनेवाले,  
 बल और वीर्यसे भरे हुए, पुरुषोंमें श्रेष्ठ  
 द्रोणाचार्य और कर्ण यदि उसके सन्मुख

संग्राममें गमन करें, तो जगत्में हमारी  
 सेनाके जीतनेका कदाचित् संभव होगा;  
 पर यथार्थमें हमारी विजय न होगी;  
 क्योंकि कर्ण बहुतही दयालु, शापग्रस्त,  
 और असावधान है, और द्रोणाचार्य  
 बूढ़े तथा दोनों ओरके गुरु हैं। इधर  
 अर्जुन महाबलवान, दृढ़ धनुषधारी  
 और सावधान चित्त हैं। ये सब लोग  
 शूरवीर और सब शस्त्रोंके जाननेवाले,  
 तथा बहुतही यश और बढाईको पाये  
 हुए हैं। इससे इन लोगोंका बहुतही  
 कठिन युद्ध होगा, और ये कभी भी  
 पीछे न हट सकेंगे। ये लोग देवता-  
 ओंके ऐश्वर्यकोभी त्याग सकते हैं, पर  
 विजयको नहीं छोड़ सकते। (४-७)

न तु हंताऽर्जुनस्याऽस्ति जेता चाऽस्य न विद्यते ॥८॥  
 मनुस्तस्य कथं शाम्येन्मंदान्प्रति य उत्थितः ।  
 अन्येऽप्यस्त्राणि जानन्ति जीयन्ते च जयन्ति च ॥ ९ ॥  
 एकांतविजयस्त्वेव श्रूयते फाल्गुनस्य ह ।  
 त्रयस्त्रिंशत्समाऽऽहूय खांडवेऽग्निमतर्पयत् ॥ १० ॥  
 जिगाय च सुरान्सर्वान्नाऽस्य विद्यः पराजयम् ।  
 यस्य यन्ता हृषीकेशः शीलवृत्तसमो युधि ॥ ११ ॥  
 ध्रुवस्तस्य जयस्तात यथेन्द्रस्य जयस्तथा ।  
 कृष्णावेकरथे यत्तावधिज्यं गांडिवं धनुः ॥ १२ ॥  
 युगपत्त्रीणि तेजांसि समेतान्यनुशुश्रुम् ।  
 नैवाऽस्ति नो धनुस्तादृक् न योद्धा न च सारथिः ॥ १३ ॥  
 तच्च मंदा न जानन्ति दुर्योधनवशानुगाः ।  
 शेषयेदशनिर्दीप्तो विषतन्मूर्ध्नि संजय ॥ १४ ॥

इससे द्रोण, कर्ण, अथवा अर्जुनके मारे जानेसे युद्धमें शान्ति होनी सम्भव है, पर अर्जुनको मारनेवाला तथा जीतनेवाला कोईभी विद्यमान नहीं है। जो मनुष्य मेरे मन्दबुद्धि पुत्रोंके निमित्त अपने सब उद्योग और सेनाकी सहायतासे युद्ध करनेके निमित्त तैयार है, उसके क्रोधकी शान्ति इस समय कैसे हो सकती है? और दूसरे बहुतसे मनुष्य अस्त्र विद्याको जानते हैं, सबको जीतते हैं, और विजयी कहलाते हैं; पर अर्जुनहीकी अकेली (इकसर) विजय सुननेमें आती है। हे सूत! तैंतीस वर्ष बीता होगा, कि अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निको तृप्त किया था, और उसी समयमें सब देवतोंकोभी जीता था;

अधिक क्या कहूं, मैंने कहीं भी उसकी हार नहीं सुनी। (८-११)

हे तात ! समान शील और उत्तम चरित्रसे भरे हुए कृष्ण जिसके युद्धमें सारथी बनेंगे, इन्द्रके विजयकी तरह उसकी अवश्यही जय होगी। सुनता हूं, कि अर्जुन रथी, कृष्ण उसके रथपर सारथी और रोदेसे चढ़ा हुआ गाण्डीव धनुष यह तीनों तेजसे भरे हुए पदार्थ एकही स्थानपर मिले हैं। हम लोगोंमें वैसा धनुषभी नहीं है; और योद्धाभी नहीं है। परन्तु दुर्योधनके वशवर्त्ती भाग्यहीन लोग इन बातोंको नहीं जानते हैं। हे सञ्जय ! शिरपर गिरनेसे जलती हुई बिजलीभी चाकी छोड़ती है, पर अर्जुनके धनुषसे छूटे

न तु शेषं शरास्तात कुर्युरस्ताः किरीटिना ।  
 अपि चाऽस्यान्निवाऽऽभाति निघ्नन्निव धनंजयः ॥ १५ ॥  
 उद्धरन्निव कायेभ्यः शिरांसि शरवृष्टिभिः ।  
 अपि बाणमयं तेजः प्रदीप्तमिव सर्वतः ॥ १६ ॥  
 गांडीवोत्थं दहेताऽऽजौ पुत्राणां मम वाहिनीम् ।  
 अपि सा रथघोषेण भयार्ता सव्यसाचिनः ॥ १७ ॥  
 वित्रस्ता बहुधा सेना भारती प्रतिभाति मे ।  
 यथा कक्षं महानग्निः प्रदहेत्सर्वतश्चरन् ।  
 महार्चिरनिलोद्भूतस्तद्वद्वक्ष्यति मामकान् ॥ १८ ॥  
 यदोद्धमन्निशितान्बाणसंघास्तानाततायी समरे किरीटी ।  
 सृष्टोऽन्तकः सर्वहरो विधात्रा यथा भवेत्तद्वदपारणीयः ॥ १९ ॥  
 यदा ह्यभीक्ष्णं सुबहून्प्रकाराञ्छ्रोताऽस्मि तानावसथे कुरूणाम् ।  
 तेषां समंताच्च तथा रणाग्रे क्षयः किलाऽयं भरतानुपैति ॥ २० ॥ [ २०२१ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि

धृतराष्ट्रवाक्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- यथैव पांडवाः सर्वे पराक्रान्ता जिगीषवः ।

हुए कुछ भी शेष नहीं रहने देते । (१२-१५)  
 मुझको प्रत्यक्ष ही ऐसा दीखता है कि  
 अर्जुन अपने बाणोंको छोड़ता हुआ  
 हमारी सेनाका वध कर रहा है, और  
 बाणोंकी अत्यन्त वर्षा करके देहसे  
 शिरको काट गिरा रहा है; गाण्डीव  
 धनुषसे छुटे हुए अग्निके समान सब  
 बाण तेजसे भरे हुए मेरी सेनाको जला  
 रहे हैं; और अर्जुनके रथके शब्दको  
 सुनकर हमारी सेना मारे डरके व्याकुल  
 होकर सब दिशाओंमें इधर उधर भाग  
 रही है । जिस प्रकारसे प्रचण्ड अग्नि  
 जलती हुई बड़े वेगसे तृण आदिको

जला देती है, वैसेही अर्जुनके अस्त्रोंकी  
 अग्निभी मेरे पुत्रोंको जला देगी । १५-१८  
 हे तात ! आतताई अर्जुन जब अनेक  
 चोखे और उत्तम पानीसे बुझे हुए बा-  
 णोंको छोड़ता हुआ विधाताके भेजे  
 हुए सबके नाश करनेवाले कालके  
 समान न सहने योग्य होजायगा, तब  
 सुननेमें आवेगा कि कौरवोंके घर,  
 युद्धके आगे और उनके चारों ओर  
 अशुभ फल देनेवाली घटनायें हो रही  
 हैं, तभी कौरवोंके विध्वंसका समय आ-  
 वेगा । (१९-२०) [ २०२१ ]

उद्योगपर्वमें बावन अध्याय समाप्त ।

तथैवाऽभिसरास्तेषां त्यक्तात्मानो जये धृताः ॥ १ ॥

त्वमेव हि पराक्रांतानाचक्षीथाः परान्मम ।

पंचालान्केकयान्मत्स्यान्मागधान्वत्सभूमिपान् ॥ २ ॥

यश्च सेन्द्रानिमांल्लोकानिच्छन्कुर्याद्वशे बली ।

स स्रष्टा जगतः कृष्णः पांडवानां जये धृतः ॥ ३ ॥

समस्तामर्जुनाद्वियां सात्यकिः क्षिप्रमाप्तवान् ।

शैनेयः समरे स्थाता बीजवत्प्रवपञ्शरान् ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नश्च पांचाल्यः क्रूरकर्मा महारथः ।

मामकेषु रणं कर्ता बलेषु परमास्त्रवित् ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरस्य च क्रोधादर्जुनस्य च विक्रमात् ।

यमाभ्यां भीमसेनाच्च भयं मे तात जायते ॥ ६ ॥

अमानुषं मनुष्येन्द्रैर्जीलं विततमंतरा ।

न मे सैन्यास्तरिष्यन्ति ततः क्रोशामि संजय ॥ ७ ॥

दर्शनीयो मनस्वी च लक्ष्मीवान्ब्रह्मवर्चसी ।

उद्योगपर्वमें तिरपन अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, बलवान पाण्डव लोग जैसे सब कार्योंमें निपुण हैं, वैसेही उनके सहायक लोगभी अपने प्राणोंको अर्पण करके युद्ध करनेको तैयार हैं । हे तात ! शत्रुओंकी ओरके पाञ्चाल, केकय, मत्स्य, मगध आदि देशोंके बलवान राजाओंका वृत्तान्त तुमने अभी वर्णन किया है, तथा जो इच्छा करनेसे इन्द्र समेत इस पृथ्वीको अपने वशमें कर सकते हैं; वह जगत्को उत्पन्न करनेवाला पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण उनके विजयके निमित्त निश्चय करते हुए वहांपर विराजमान हैं । (१—३)

जिन्होंने थोड़ेही समयमें अर्जुनके

समीपमें सब शस्त्र विद्याओंको पढा था, वही शिनिवंशी सात्यकी बाणोंको बीजकी भांति युद्धमें बोवेंगे । पाञ्चालराज-पुत्र, कठिन कर्मोंको करनेवाला धृष्टद्युम्न भी मेरी सेनासे युद्ध करेगा । युधिष्ठिरके क्रोध और अर्जुनके पराक्रम तथा भीम, नकुल और सहदेवसेभी मुझे बहुतही डर लगता है । हे सञ्जय ! वे मनुष्येन्द्र जिस समय अमानुषी कर्मोंको करते हुए सरजालका विस्तार करेंगे, उस समय मेरी सेना किसी प्रकारसे भी उससे नहीं निस्तार पा सकेगी । इसी निमित्त मैं इतना आक्षेप कर रहा हूं । (४-७)

पुरुषश्रेष्ठ पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर देखने के योग्य; मनस्वी लक्ष्मीवान, ब्रह्मतेजसे

मेधावी सुकृतप्रज्ञो धर्मात्मा पांडुनंदनः ॥ ८ ॥  
 मित्रामात्यैः सुसंपन्नः सपन्नो युद्धयोजकैः ।  
 भ्रातृभिः श्वशुरैर्वीरैरुपपन्नो महारथैः ॥ ९ ॥  
 धृत्या च पुरुषव्याघ्रो नैभृत्येन च पांडवः ।  
 अनृशंसो वदान्यश्च हीमान्सत्यपराक्रमः ॥ १० ॥  
 बहुश्रुतः कृतात्मा च वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।  
 तं सर्वगुणसंपन्नं समिद्धमिव पावकम् ॥ ११ ॥  
 तपंतमग्निं को मंदः पतिष्यति पतंगवत् ।  
 पांडवाग्निमनावार्यं सुसूर्पुर्नष्टचेतनः ॥ १२ ॥  
 तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया ।  
 मंदानां मम पुत्राणां युद्धेनांस्तं कारिष्यति ॥ १३ ॥  
 तैरयुद्धं साधु मन्ये कुरवस्तन्निबोधत ।  
 युद्धे विनाशः कृत्स्नस्य कुलस्य भविता ध्रुवम् ॥ १४ ॥  
 एषा मे परमा बुद्धिर्यया शाम्यति मे मनः ।  
 यदि त्वयुद्धमिष्टं वो वयं शान्त्यै यतामहे ॥ १५ ॥

युक्त, मेधावी, सुकृतबुद्धि, धर्मात्मा, मित्र, नौकर, युद्ध करने योग्य वीरोंसे युक्त, महारथ, महावीर सहोदर भाइयों और ससुर वर्गसे युक्त, धृष्टद्युम्न आदिक समेत धैर्यशाली, सरल स्वभाव, विनय सम्पन्न, लज्जावान, सत्यपराक्रमी, बहुत शास्त्रोंको जाननेवाले, कृतात्मा, वृद्धसेवी और जितेन्द्रिय हैं। उस सब गुणसे पूर्ण जलते हुए प्रचण्ड अग्निके समान पाण्डवरूपी अग्निमें कौन बुद्धिहीन और चेतनरहित पुरुष पतझकी भांति गिर सकता है ? (८-१२)

जलनेवाली वस्तुओंके मिलनेसे जैसे थोड़ी अग्निभी प्रबल होजाती है, वैसे-

ही तपस्यासे कृश होनेपर भी ऊंचे स्वभाववाले राजा युधिष्ठिरको मैंने कपट व्यवहारोंसे ठगा है; इस लिये वे युद्धसे मेरे बुद्धिहीन पुत्रोंका नाश कर देंगे। हे कौरवगण! उन लोगोंके संग युद्ध न करनाही मैं कल्याणदायक समझता हूं, इस समय तुम लोगभी अच्छी प्रकारसे मालूम कर लो। युद्धमें सम्पूर्ण कुलका नाश हो जायगा, इससे यदि युद्ध न करना तुम लोगोंको उत्तम जंचता हो, तो मैं शान्तिके निमित्त यत्न करूं। यही मेरी बुद्धिकी सीमा और अन्त है, और इसीसे मेरे मनमें शान्ति हो सकती है। मुझको दुःख पाता हुआ



न तु नः क्षिद्यमानानामुपेक्षेत युधिष्ठिरः ।

जुगुप्सति ह्यधर्मेण मामेवोद्दिश्य कारणम् ॥ १६ ॥ [२०३७]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

संजय उवाच— एवमेतन्महाराज यथा वदसि भारत ।

युद्धे विनाशः क्षत्रस्य गांडीवेन प्रदृश्यते ॥ १ ॥

इदं तु नाऽभिजानामि तव धीरस्य नित्यशः ।

यत्पुत्रवशमागच्छेस्तत्त्वज्ञः सव्यसाचिनः ॥ २ ॥

नैष कालो महाराज तव शश्वत्कृतागसः ।

त्वया ह्येवाऽऽदितः पार्था निकृता भरतर्षभ ॥ ३ ॥

पिता श्रेष्ठः सुहृद्यश्च सम्यक्प्रणिहितात्मवान् ।

आस्थेयं हि हितं तेन न द्रोग्धा गुरुरुच्यते ॥ ४ ॥

इदं जितमिदं लब्धमिति श्रुत्वा पराजितान् ।

द्युतकाले महाराज स्वयसे स्म कुमारवत् ॥ ५ ॥

परुषाण्युच्यमानांश्च पुरा पार्थानुपेक्षसे ।

देखकर युधिष्ठिर कभी भी उपेक्षा न करेंगे; क्योंकि वह जब अधर्मसे कलह उत्पन्न होनेके विषयमें मुझे ही कारण कहके निन्दा करते हैं, तब प्रार्थना करनेसे कभी झगड़में प्रवृत्त न होंगे । ( १३-१६ ) [ २०३७ ]

उद्योगपर्वमें तिरपन्न अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें चौवन अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे महाराज ! आपने जो कुछ कहा वह सबही सत्य है । युद्ध होनेसे गाण्डीव धनुषसे जो क्षत्रियोंका नाश होगा, वह प्रत्यक्षही दीख पड़ता है; परन्तु सब दिन धीर स्वभावसे रह कर और अर्जुनके सब तत्त्वोंको जानकर भी, जो आप पुत्रोंके वशमें होकर

चलते हैं, इसेही मैं नहीं समझ सकता हूँ । हे भरतर्षभ ! आप पहिलेहीसे पाण्डवोंको ठगते चले आते हैं, इससे सब दिन अपराध करके अब यह समय आपके विलाप करनेका नहीं है । ( १-३ )

हे महाराज ! जो ज्येष्ठ तात, श्रेष्ठ सुहृद और पूर्ण रीतिसे सावधान चित्त हैं, उनका हित-साधन करनाही सब भांतिसे कर्त्तव्य कर्म है । बुरा करनेवाला मनुष्य कभीभी गुरु नहीं कहा जाता । जुएके समयमें आपके पाण्डवोंको हारा हुआ सुनकर “यह जीता गया, यह मिला” कहकर बालककी भांति हंसी की थी, और उन लोगोंको बहुत-सी कड़वी बातोंसे तिरस्कार होते सुन-



कृत्स्नं राज्यं जयंतीति प्रपातं नाऽनुपश्यसि ॥ ६ ॥  
 पित्र्यं राज्यं महाराज कुरवस्ते सजांगलाः ।  
 अथ वीरैर्जितासुर्वीमखिलां प्रत्यपचथाः ॥ ७ ॥  
 बाहुवीर्यार्जिता भूमिस्तव पार्थैर्निवेदिता ।  
 मयेदं कृतमित्येव मन्यसे राजसत्तम ॥ ८ ॥  
 ग्रस्तान्गन्धर्वराजेन मज्जतो ह्यप्लवेऽम्भसि ।  
 आनिनाय पुनः पार्थः पुत्रांस्ते राजसत्तम ॥ ९ ॥  
 कुमारवच्च स्मयसे द्यूते विनिकृतेषु यत् ।  
 पाण्डवेषु वने राजन्प्रव्रजत्सु पुनः पुनः ॥ १० ॥  
 प्रवर्षतः शरव्रातानर्जुनस्याऽशितान्वहन् ।  
 अप्यर्णवा विशुष्येयुः किं पुनर्मांसयोनयः ॥ ११ ॥  
 अस्यतां फाल्गुनः श्रेष्ठो गाण्डीवं धनुषां वरम् ।  
 केशवः सर्वभूतानामायुधानां सुदर्शनम् ॥ १२ ॥  
 वानरो रोचमानश्च केतुः केतुमतां वरः ।  
 एवमेतानि सरथो बहूञ्श्वेतहयो रणे ॥ १३ ॥

करभी आपने उपेक्षा की थी, आपने समझा था, कि मेरे पुत्रोंने सम्पूर्ण राज्यको जीत लिया, परन्तु थोड़ेही दिनोंमें कुलका नाश होगा, इसे आपने न विचारा । ( ४-६ )

हे महाराज ! जङ्गलोंसे युक्त कुरुराज्य आपका पैतृक राज्य है, उसके अतिरिक्त आपने वीरोंसे उपार्जित समस्त पृथ्वीका राज्य पाया है; पाण्डवोंने अपने बाहुबलसे पृथ्वी उपार्जन करके आपको समर्पण कियाथा, परन्तु आप अपने मनसे समझते हैं कि मैंने स्वयं यह सब राज्य प्राप्त किया है । आपके पुत्रोंको गन्धर्वराजके हाथमें पडा हुआ तथा महा विपत्समुद्रमें

डूबाहुआ देखकर अर्जुनने गन्धर्वोंसे युद्ध करके दुर्योधनको लुडाया था । हे राजेन्द्र ! पाण्डव जुवेसे हारकर वनको जानेके निमित्त तैयार हुए, तब आपने बालककी भांति बारबार हंसी की थी । ( ७-१० )

हे राजन् ! अर्जुनके बाणोंकी वर्षासे समुद्रभी सूख सकता है, और मनुष्योंकी तो बातही क्या है ? हे महाराज ! बाण चलानेवालोंमें अर्जुन, धनुषोंमें गाण्डीव, सम्पूर्ण लोगोंमें कृष्ण, आयुधोंमें सुदर्शन और ध्वजाओंमें अर्जुनके रथमें इन्दर-वाली ध्वजा श्रेष्ठ है । वह ध्वजाधारियों में मुख्य, मफेद घोड़ोंसे युक्त, कपिध्वजा से युक्त, रथके सहित, कई एक तेजोंके

क्षपयिष्यति नो राजन्कालचक्रमिवोद्यतम् ।  
 तस्याऽद्य वसुधा राजन्निखिला भरतर्षभ ॥ १४ ॥  
 यस्य भीमार्जुनौ योधौ स राजा राजसत्तम ।  
 तथा भीमहतप्रायां मज्जंतीं तव वाहिनीम् ॥ १५ ॥  
 दुर्योधनमुखा दृष्ट्वा क्षयं यास्यंति कौरवाः ।  
 न भीमार्जुनयोर्भीता लप्स्यंते विजयं विभो ॥ १६ ॥  
 तव पुत्रा महाराज राजानश्चाऽनुसारिणः ।  
 मत्स्यास्त्वामद्य नाऽर्चन्ति पंचालाश्च सकेकयाः ॥ १७ ॥  
 शाल्वेयाः शूरसेनाश्च सर्वे त्वामवजानते ।  
 पार्थ ह्येते गताः सर्वे वीर्यज्ञास्तस्य धीमनः ॥ १८ ॥  
 भक्त्या ह्यस्य विरुद्धयंते तव पुत्रैः सदैव ते ।  
 अनर्हानिव तु वधे धर्मयुक्तान्विकर्मणा ॥ १९ ॥  
 योऽक्लेशयत्पांडुपुत्रान्यो विद्वेष्टयधुनाऽपि वै ।  
 सर्वोपायैर्नियंतव्यः सानुगः पापपूरुषः ॥ २० ॥  
 तव पुत्रो महाराज नाऽनुशोचितुमर्हसि ।

सङ्ग उद्यत होके कालचक्रके समान हम लोगोंको निःसन्देह मारेगा । (११-१४)

हे भरतर्षभ! भीम अर्जुन जिसके मुख्य वीर योद्धा हैं, वहीं इस सम्पूर्ण पृथ्वीका सबसे मुख्य राजा है, और उसीकी यह समस्त पृथ्वी है, हे राजन्! तुम्हारी सेनाको भीमसेनके हाथसे घायल होकर भागती हुई देखके दुर्योधन आदि कौरव अवश्य ही नाशको प्राप्त होंगे । हे राजेन्द्र! तुम्हारे पुत्र और उनके अनुयायी सब राजा लोग भीम अर्जुनके भयसे डरकर कभी युद्धमें विजय न कर सकेंगे । मत्स्य, पांचाल केकय, शाल्व, शूरसेन आदि आपके अनुयायी इस समय आपके पीछे

नहीं हैं। अब वे आपके विरुद्ध हैं, क्योंकि वे लोग युधिष्ठिरकी ओर हैं, और उनकी उपासना करते हैं । तथा उनके ऊपर उन सब लोगोंकी भक्ति है, इसी कारणसे सदाही आपके पुत्रोंके विरुद्ध आचरण करते हैं । ( १५-१९ )

हे महाराज ! सब प्रकारसे धर्मात्मा, मारनेके अयोग्य पाण्डवोंको जिस पुरुषने बुरे कर्मोंसे दुःख और क्लेश दिया है, और इस समय भी उनके सङ्ग शत्रुता कर रहा है, उसी आपके पुत्र पापबुद्धि दुर्योधनको अनुचरोंके सहित सब भांतिसे वशीभूत करनाही मुख्य कर्त्तव्य कार्य है; और उनके निमित्त शोक करना

वृत्तकाले मया चोक्तं विदुरेण च धीमता ॥ २१ ॥

यदिदं ते विलपितं पाण्डवान्प्रति भारत ।

अनीशेनेव राजेंद्र सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥ २२ ॥ [२०५९]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयवाक्ये चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

दुर्योधन उवाच- न भेतव्यं महाराज न शोच्या भवता वयम् ।

समर्थाः स्म पराञ्जेतुं बलिनः समरे विभो ॥ १ ॥

वने प्रवाजितान्पार्थान्यदाऽऽयान्मधुसूदनः ।

महता बलचक्रेण परराष्ट्रावमर्दिना ॥ २ ॥

केकया धृष्टकेतुश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।

राजानश्चाऽन्वयुः पार्थान्वहवोऽन्येऽनुयायिनः ॥ ३ ॥

इन्द्रप्रस्थस्य चाऽदूरात्समाजग्मुर्महारथाः ।

व्यगर्हयंश्च संगम्य भवन्तं कुरुभिः सह ॥ ४ ॥

ते युधिष्ठिरमासीनमजिनैः प्रतिवासितम् ।

कृष्णप्रधानाः संहत्य पर्युपासन्त भारत ॥ ५ ॥

प्रत्यादानं च राज्यस्य कार्यसूचुर्नराधिपाः ।

भवतः सानुबन्धस्य समुच्छेदं चिकीर्षवः ॥ ६ ॥

आपको उचित नहीं है । पासा खेलनेके समय भी बुद्धिमान विदुर और मैंने आपसे यही वचन कहा था । हे राजेन्द्र ! आप जो असमर्थकी भांति पाण्डवोंके प्रति इस प्रकारका विलाप करते हैं, यह सबही व्यर्थ है । (१९-२२) [२०५९]

उद्योगपर्वमें चौवन अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें पचपन अध्याय ।

दुर्योधन बोले, हे महाराज ! आप कुछभी भय न कीजिये, और हम लोगोंके निमित्त शोकभी मत कीजिये । हे प्रजानाथ ! हम लोग शत्रुओंके जीतनेमें खूबही समर्थ हैं । हे भरतर्ष-

भ ! जिस समय पराये राज्यको जीतने-वाले मधुसूदन कृष्ण महाबल चक्रसे युक्त होकर वनवासी पाण्डवोंके निकट गये थे; और उनके पीछे केकय, धृष्टकेतु, द्रुपद, धृष्टद्युम्न तथा, अन्य राजा लोग भी जाकर इकट्ठे हुए थे; जब कृष्णके सङ्ग सब राजालोगोंने इन्द्रप्रस्थ के समीप इकट्ठे होकर सब कौरवोंके सहित आपकी निन्दा करी थी, और काले हरिणके चमड़ेको पहरनेवाले युधिष्ठिरकी उपासना करते हुए इष्ट मित्रोंके सहित आपके मूलच्छेदके अभिलाषी हुए थे; और उनको " फिरभी राज्यको देना

श्रुत्वा चैवं मयोक्तास्तु भीष्मद्रोणकृपास्तदा ।  
 ज्ञातिक्षयभयाद्राजन्भीतेन भरतर्षभ ॥ ७ ॥  
 ततः स्थास्यन्ति समये पाण्डवा इति मे भनिः ।  
 समुच्छेदं हि नः कृत्स्नं वासुदेवश्चिकीर्षति ॥ ८ ॥  
 ऋते च विदुरात्सर्वे यूयं वध्या मता मम ।  
 धृतराष्ट्रस्तु धर्मज्ञो न वध्यः कुरुसत्तमः ॥ ९ ॥  
 समुच्छेदं च कृत्स्नं नः कृत्वा तात जनार्दनः ।  
 एकराज्यं कुरूणां स्म चिकीर्षति युधिष्ठिरे ॥ १० ॥  
 तत्र किं प्राप्तकालं नः प्रणिपातः पलायनम् ।  
 प्राणान्वा संपरित्यज्य प्रतियुद्धधामहे परान् ॥ ११ ॥  
 प्रतियुद्धे तु निश्चितः स्यादस्माकं पराजयः ।  
 युधिष्ठिरस्य सर्वे हि पार्थिवा वशवर्तिनः ॥ १२ ॥  
 विरक्तराष्ट्राश्च वयं मित्राणि कुपितानि नः ।  
 धिक्कृताः पार्थिवैः सर्वैः स्वजनेन च सर्वशः ॥ १३ ॥  
 प्रणिपाते न दोषोऽस्ति संधिर्नः शाश्वतीः समाः ।

उचित है ” ऐसी राय दी थी। (१-६)

तब उस वृत्तान्तको सुनकर मैंने कौरवोंके नाशसे भय-भीत होकर भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे यह सब वृत्तान्त कहा था, कि हे महात्मन् ! मुझे मालूम होता है, कि पाण्डव लोग अपनी प्रतिज्ञामें स्थित रहेंगे, क्योंकि श्रीकृष्ण हम लोगों को जड़ सहित नाश करनेकी इच्छा करते हैं; मेरे विचारमें विदुरको छोड़कर और आप लोगोंके सहित सब कौरव मारे जायेंगे; कुरुसत्तम धर्मात्मा धृतराष्ट्र भी कदाचित् न मारे जायेंगे । ( ७-९ )

श्रीकृष्ण हमलोगोंका मूल सहित नाश करके यह सम्पूर्ण कुरुराज्य यु-

धिष्ठिरको देनेकी अभिलाषा करते हैं ।

इस विषयमें हम लोगोंको क्या करना उचित है ? क्या हम अधीनताई स्वीकार करें, अथवा पलायन करें, या प्राणकी आशाको छोड़के शत्रुके सङ्ग युद्ध करेंगे ? शत्रुओंसे युद्ध करनेसे निश्चयही मेरी हार होगी, क्योंकि सब राजा लोग युधिष्ठिरके वशमें हैं, विशेष करके राष्ट्रके सब पुरुष हम लोगोंपर विरक्त हुए हैं; मित्रलोग भी कुपित हो गये हैं, राजालोग तथा अपने मनुष्य भी सब तरहसे मुझे धिक्कार दे रहे हैं । ( १०-१३ )

ऐसी अवस्थामें नम्रता स्वीकार कर लेनेमें भी कुछ दोष नहीं है, क्योंकि

पितरं त्वेव शोचामि प्रज्ञानेन जनाधिपम् ॥ १४ ॥

मत्कृते दुःखमापन्नं क्लेशं प्राप्तमनंतकम् ।

कृतं हि तव पुत्रैश्च परेषामवरोधनम् ।

सत्प्रियार्थं पुरैवैतद्विदितं ते नरोत्तम ॥ १५ ॥

ते राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सामात्यस्य महारथाः ।

वैरं प्रति करिष्यन्ति कुलोच्छेदेन पांडवाः ॥ १६ ॥

ततो द्रोणोऽब्रवीद्भीष्मः कृपो द्रौणिश्च भारत ।

मत्वा मां महर्तुं चिन्तामास्थितं व्यथितेन्द्रियम् ॥ १७ ॥

अभिद्रुग्धाः परे चेन्नो न भेतव्यं परंतप ।

असमर्थाः परे जेतुमस्मान्युधि समास्थितान् ॥ १८ ॥

एकैकशः समर्थाः स्मो विजेतुं सर्वपार्थिवान् ।

आगच्छंतु विनेष्यामो दर्पमेषां शितैः शरैः ॥ १९ ॥

पुरैकेन हि भीष्मणेन विजिताः सर्वपार्थिवाः ।

मृते पितर्यतिक्रुद्धो रथेनैकेन भारत ॥ २० ॥

जघान सुबह्वंस्तेषां संरब्धः कुरुसत्तमः ।

सन्धि करना, सब दिनसे हम लोगोंमें प्रचलित है; यह सब मुझे पसंद है, परंतु एक बात है कि जो प्रज्ञाचक्षु महाराज धृतराष्ट्र मेरे निमित्त महाक्लेश पावेंगे; उसी निमित्त मैं शोक कर रहा हूं। हे प्रजानाथ! आपके और सब पुत्र भी मेरे सङ्ग शत्रुओंके अवरोध करनेमें तत्पर हुए थे, सो बातभी आपको पहिलेहीसे मालूम है, इसीसे वे महारथ पाण्डवलोग इष्ट मित्र और बन्धुबान्धवोंके सहित धृतराष्ट्रके कुलका नाश करके अपने वैरको समाप्त करेंगे। (१४-१६)

हे तात! अनन्तर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा मुझे बड़ी भारी

चिन्तामें मग्न हुए देखकर बोले, हे परन्तप! यदि शत्रु लोग हम लोगोंसे विद्रोह करें, तो उसके निमित्त तुम कुछभी भय और शङ्का मत करो। युद्धमें खड़े होनेसे शत्रु लोग कभी भी हम लोगोंको पराजित नहीं कर सकेंगे। हम लोग अकेलेही सब राजाओंको जीतनेमें समर्थ हैं। सब लोक आवें, हम एक एकभी अपने तक्षिण बाणोंसे उसके घमण्ड तोड़ देंगे। (१७-१९)

हे भारत! पहिले कुलश्रेष्ठ भीष्मने पिताके मरनेपर अत्यन्त क्रोध करके एकरथसे अकेलेही समस्त पृथ्वीके राजाओंको जीत लिया था। और महा

ततस्ते शरणं जग्मुर्देवव्रतमिमं भयात् ॥ २१ ॥  
 स भीष्मः सुसमर्थोऽयमस्माभिः सहितो रणे ।  
 परान्विजेतुं तस्मात्ते व्येतु भीर्भरतर्षभ ॥ २२ ॥  
 इत्येषां निश्चयो ह्यासीत्तत्कालेऽमिततेजसाम् ।  
 पुरा परेषां पृथिवी वर्तते भरतर्षभ ॥ २३ ॥  
 अस्मान्पुनरमी नाऽद्य समर्था जेतुमाहवे ।  
 छिन्नपक्षाः परे ह्यद्य वीर्यहीनाश्च पांडवाः ॥ २४ ॥  
 अस्मत्संस्था च पृथिवी वर्तते भरतर्षभ ।  
 एकार्थाः सुखदुःखेषु समानीताश्च पार्थिवाः ॥ २५ ॥  
 अप्यग्निं प्रविशेयुस्ते समुद्रं वा परंतप ।  
 मदर्थं पार्थिवाः सर्वे तद्विद्धि कुरुसत्तम ॥ २६ ॥  
 उन्मत्तमिव चापि त्वां प्रहसंतीह दुःखितम् ।  
 विलपंतं बहुविधं भीतं परविकत्थने ॥ २७ ॥  
 एषां ह्येकैकशो राज्ञां समर्थः पांडवान्प्रति ।  
 आत्मानं मन्यते सर्वो व्येतु ते भयमागतम् ॥ २८ ॥

क्रोधसे भरकर कितनेही भूपालोंका संहार किया था; इससे सब लोग डरकर भीष्मके शरणमें आये थे। वह यही भीष्म है; यह हम लोगोंके संग मिलकर शत्रुओंको अवश्यही जीतनेमें समर्थ होंगे; इससे तुम अपने भयको दूर करो। (२८-२२)

इन महातेजस्वी महारथ पुरुषोंके बलका उस समय मुझको निश्चय हुआ था। हे राजेन्द्र ! समस्त पृथ्वी उस समय शत्रुओंके वशमें थी, यह ठीक है; परन्तु अब वे लोग हमको जीत न सकेंगे। हे भरतर्षभ ! शत्रुरूप पाण्डव इस समय सहायता रहित और बलहीन हुए हैं; और पृथ्वी इस समय मुझमें प्रतिष्ठित

है। हे परन्तप ! मैंने सब राजाओंको सन्मान और आदरसे अपनी ओर कर लिया है, वे लोग सुख दुःख तथा सब कार्योंमें मेरे अनुगामी हैं। (२३-२५)

यह आप निश्चय जानिये कि मेरे निमित्त ये सब राजा लोग अग्निमें भी प्रवेश कर सकते हैं; और समुद्रमें भी डूब सकते हैं; आपको भयसे दुःखी और दूमेरेकी बडाई करते देखकर ये सब आपको पागल समझके हंसी करते हैं। हे कुरुसत्तम ! इन भूपालोंमें हर एक वीर पाण्डवोंकी गतिको रोकनेसे समर्थ हैं। विचारपूर्वक देखिये; आपको सब कोई बड़ा समझते हैं; इससे आप अपने भावी

जेतुं समग्रां सेनां मे वासवोऽपि न शक्नुयात् ।  
 हंतुमक्षय्यरूपेयं ब्रह्मणोऽपि स्वयंभुवः ॥ २९ ॥  
 युधिष्ठिरः पुरं हित्वा पंच ग्रामान्स याचति ।  
 भीतो हि मामकात्सैन्यात्प्रभावाच्चैव मे विभो ॥ ३० ॥  
 समर्थं मन्यसे यच्च कुंतीपुत्रं वृकोदरम् ।  
 तन्मिथ्या नहि मे कृत्स्नं प्रभावं वेत्सि भारत ॥ ३१ ॥  
 मत्समो हि गदायुद्धे पृथिव्यां नाऽस्ति कश्चन ।  
 नासीत्कश्चिदतिक्रांतो भविता न च कश्चन ॥ ३२ ॥  
 युक्तो दुःखोषितश्चाऽहं विद्यापारगतस्तथा ।  
 तस्मान्न भीमान्नाऽन्येभ्यो भयं मे विद्यते क्वचित् ॥ ३३ ॥  
 दुर्योधनसमो नाऽस्ति गदायामिति निश्चयः ।  
 संकर्षणस्य भद्रं ते यत्तदेनमुपावसम् ॥ ३४ ॥  
 युद्धे संकर्षणसमो बलेनाऽभ्यधिको भुवि ।  
 गदाप्रहारं भीमो मे न जातु विषहेद्युधि ॥ ३५ ॥  
 एकं प्रहारं यं दद्यां भीमाय रुषितो नृप ।

भयको दूर कीजिये । ( २६-२८ )  
 मेरी समस्त सेनाको इन्द्रभी नहीं जीत  
 सकते, वरन ब्रह्माभी यदि मेरी सेनाका  
 नाश किया चाहें, तौभी हमारी सेनाको  
 नाश न कर सकेंगे । हे प्रजानाथ! युधि-  
 स्थिरने हमारी सेना और हमारे प्रतापसे  
 भयभीत होकरही नगरकी आशा छोड-  
 कर केवल पांच गांव मांगे हैं । हे भारत !  
 आप जो भीमको बड़ा सामर्थी समझ  
 रहे हैं, वह भी वृथा है, मेरे सम्पूर्ण  
 प्रभावको आप नहीं जानते हैं, इसीसे  
 ऐसा समझते हैं । गदायुद्धमें इस सारी  
 पृथ्वी पर कोई भी मनुष्य मेरी समान  
 नहीं है । गदायुद्धमें मुझे कोईभी आज-

तक नहीं हरा सका, और भविष्यमें भी  
 नहीं जीत सकेगा । ( २९-३२ )  
 मैंने स्थिरचित्तसे गुरुके घरमें रहकर  
 अत्यन्त क्लेशोंको सहके सब युद्धविद्या  
 सीखी है; इससे क्या भीम क्या दूसरे मनु-  
 ष्य, मुझे किसीसे भी भय नहीं है। मैं जब  
 शिष्य होकर बलदेवजीकी उपासना  
 करता था, उस समय उनको यह निश्चय  
 हुआ था, कि “गदायुद्धमें दुर्योधनके  
 समान दूसरा कोईभी नहीं है ।” सम्प्रति  
 मैं युद्ध करनेमें हलधारी बलदेवके समान  
 हूं, और बलमें मुझसे अधिक कोईभी  
 नहीं है । भीम युद्धमें मेरी गदाकी चोटको  
 कभीभी नहीं सह करता । ( ३३-३५ )

स एवैनं नयेद्धोरः क्षिप्रं वैवस्वतक्षयम् ॥ ३६ ॥  
 इच्छेयं च गदाहस्तं राजन्द्रष्टुं वृकोदरम् ।  
 सुचिरं प्रार्थितो ह्येष भूमनित्यं मनोरथः ॥ ३७ ॥  
 गदया निहतो ह्याजौ मया पार्थो वृकोदरः ।  
 विशीर्णगात्रः पृथिवीं परासुः प्रपतिष्यति ॥ ३८ ॥  
 गदाप्रहाराभिहतो हिमवानपि पर्वतः ।  
 सकृन्मया विदीर्येत गिरिः शतसहस्रधा ॥ ३९ ॥  
 स चाऽप्येतद्विजानाति वासुदेवार्जुनौ तथा ।  
 दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः ॥ ४० ॥  
 तत्ते वृकोदरमयं भयं व्येतु महाहवे ।  
 व्यपनेष्याम्यहं ह्येनं मा राजन्विमना भव ॥ ४१ ॥  
 तस्मिन्मया हते क्षिप्रमर्जुनं बहवो रथाः ।  
 तुल्यरूपा विशिष्टाश्च क्षेप्यन्ति भरतर्षभ ॥ ४२ ॥  
 भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः कर्णो भूरिश्रवास्तथा ।

हे पृथ्वीनाथ ! यदि मैं क्रोधित  
 होकर एकबारभी भीमके ऊपर अपनी  
 गदाका प्रहार करूं, तो उसी प्रहारसे  
 उसे यमपुरीमें पहुंचा सकता हूं । हे  
 राजेन्द्र ! भीमसे भयकी बात तो दूर  
 है, मैं सदाहीसे उनको गदा लिये हुए,  
 देखनेकी इच्छा करता रहता हूं । क्योंकि  
 यही मेरी सब दिनकी मनोकामना  
 और मनोरथ है । युद्धमें मेरी गदाकी  
 चोटसे कुन्ती पुत्र वृकोदर भीम अवश्य  
 ही भग्नगात्र होनेसे मरकर पृथ्वीमें  
 गिर पड़ेगा । मेरी गदाकी चोट एक-  
 बार पूरी रीतिसे बैठनेपर, पर्वतोंके  
 सहित हिमाचलभी सहस्र टुकड़े हो  
 सकता है । (३६-३९)

“गदा युद्धमें दुर्योधनके समान  
 कोई नहीं है” इस बातको भीमभी  
 अच्छी प्रकारसे जानता है, और कृष्ण  
 अर्जुनभी सब समझते हैं । इससे हे  
 राजन् ! आप भीमसे उत्पन्न हुए भयको  
 दूर कीजिये, महायुद्ध जब उपास्थित होगा  
 तब उसे मैं अवश्य मारूंगा; आप  
 कुछभी दुःखी न होइये । हे भरतर्षभ !  
 भीमके मेरे हाथसे मरनेपर, समान  
 धनुर्द्वारी अथवा कुछ उससेभी बाण  
 और शस्त्रविद्यामें श्रेष्ठ पुरुष, अपने  
 बाणोंकी वर्षासे अर्जुनको विक्षिप्त कर  
 देंगे । (४०-४२)

हे महाराज ! भीष्म, द्रोण, कृपाचा-  
 र्य, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, प्राग्-



प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्यः सिंधुराजो जयद्रथः ॥ ४३ ॥  
 एकैक एषां शक्तस्तु हंतुं भारत पांडवान् ।  
 समेतास्तु क्षणेनैतां ध्वंयंति यमसादनम् ।  
 समग्रा पार्थिवी सेना पार्थमेकं धनंजयम् ॥ ४४ ॥  
 कस्मादशक्ता निर्जेतुमिति हेतुर्न विद्यते ।  
 शरव्रातैस्तु भीष्मेण शतशो निचितोऽवशः ॥ ४५ ॥  
 द्रोणद्रौणिकृपैश्चैव गंता पार्थो यमक्षयम् ।  
 पितामहोऽपि गांगेयः शांतनोरधि भारत ॥ ४६ ॥  
 ब्रह्मर्षिसदृशो जज्ञे देवैरपि सुदुःसहः ।  
 न हंता विद्यते चापि राजन्भीष्मस्य कश्चन ॥ ४७ ॥  
 पित्रा ह्युक्तः प्रसन्नेन नाऽकामस्त्वं मरिष्यसि ।  
 ब्रह्मर्षेश्च भरद्वाजाद् द्रोणो द्रोण्यामजायत ॥ ४८ ॥  
 द्रोणाजज्ञे महाराज द्रौणिश्च परमास्त्रवित् ।  
 कृपश्चाऽऽचार्यमुख्योऽयं महर्षेर्गौतमादपि ॥ ४९ ॥  
 शरस्तंबोद्भवः श्रीमानवध्य इति मे मतिः ।

ज्योतिषपुरके महाराज, शल्य और सि-  
 न्धुराज जयद्रथ; इनमेंसे एक एक पुरुष  
 भी सब पाण्डवोंको मारनेमें समर्थ हैं,  
 और ये सब मिलके उन लोगोंको क्ष-  
 णभर में यमपुरीको पहुंचावेंगे। सब  
 राजाओंकी सेना अकेले अर्जुनको क्यों  
 न जीत सकेगी, इस में कोई भी कारण  
 नहीं दीख पड़ता। ( ४३-४५ )

भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और  
 अश्वत्थामाके असंख्य बाणोंसे सै-  
 कड़ों बार विकल होकर अर्जुन छिप  
 जायगा और परवश होकर अवश्य ही  
 यमपुरीमें गमन करेगा। ( ४६-४९ )

हे भारत ! गङ्गानन्दन पितामह

भीष्म शान्तनुसेर्भी अधिक, ब्रह्मर्षिके स-  
 मान और देवताओंसे भी अजेय होकर  
 उत्पन्न हुए हैं। कोई मनुष्यभी भीष्म  
 को मारने वाला नहीं है, क्योंकि इनके  
 पिताने प्रसन्न होकर इन्हें वरदान दिया  
 है, कि, “ जबतक तुम मरनेकी इच्छा  
 न करोगे, तबतक तुम्हारी मृत्यु न  
 होगी। ” हे महाराज ! द्रोणाचार्य भी  
 महर्षिभरद्वाजके वीर्यसे द्रोणी ( दोनी )  
 से पैदा हुए हैं, परम अस्त्रको जानने-  
 वाले अश्वत्थामा उन्हीं द्रोणाचार्यके  
 वीर्यसे उत्पन्न हुए हैं, और आचार्यश्रेष्ठ  
 श्रीमान कृपाचार्य महर्षि गौतमके वीर्य  
 से सरस्तम्बसे उत्पन्न हुए हैं। मुझे

अयोनिजास्त्रयो ह्येते पिता माता च मातुलः ॥ ५० ॥  
 अश्वत्थाम्नो महाराज स च शूरः स्थितो मम ।  
 सर्व एते महाराज देवकल्पा महारथाः ॥ ५१ ॥  
 शक्रस्याऽपि व्यथां कुर्युः संयुगे भरतर्षभ ।  
 नैतेषामर्जुनः शक्त एकैकं प्रतिवीक्षितुम् ॥ ५२ ॥  
 सहितास्तु नरव्याघ्रा हनिष्यन्ति धनंजयम् ।  
 भीष्मद्रोणकृपाणां च तुल्यः कर्णो मतो मम ॥ ५३ ॥  
 अनुज्ञातश्च रामेण मत्समोऽसीति भारत ।  
 कुण्डले रुचिरे चाऽऽस्तां कर्णस्य सहजे शुभे ॥ ५४ ॥  
 ते शच्यर्थं महेंद्रेण याचितः स परंतपः ।  
 अमोघया महाराज शक्त्या परमभीमया ॥ ५५ ॥  
 तस्य शक्त्योपगूढस्य कस्माज्जीवेद्धनंजयः ।  
 विजयो मे ध्रुवं राजन्फलं पाणाविवाऽऽहितम् ॥ ५६ ॥  
 अभिव्यक्तः परेषां च कृत्स्नो भुवि पराजयः ।

यह ठीक निश्चय है, कि कोईभी इनको नहीं मार सकता । ( ४६-५० )

हे महाराज ! अश्वत्थामाके पिता, माता और मामा तीनों अयोनिसे उत्पन्न हुए हैं; वह महापराक्रमी अश्वत्थामाभी हमारे पक्षमें हैं । ये सब महारथ वीर देवताओंके समान हैं; युद्धमें ये इन्द्रको भी भयसे पीड़ितकर सकते हैं । हे भरतर्षभ ! अर्जुन इन महारथोंमेंसे एक एककी ओरभी नहीं देख सकता; ये सब मिलकर तो अवश्य अर्जुनका वध करेंगे, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । हे राजेन्द्र ! मेरी समझ में कर्णभी भीष्म द्रोण और कृपाचार्य के समान हैं ! ( ५०-५३ )

परशुरामजीने स्वयं इनको कहा था, कि तुम मेरी समान हुए ! और भी इनका स्वभाविक गर्भसे उत्पन्न हुआ कवच और शुभ कुण्डल थे, उसको इन्द्रने अपनी प्यारी स्त्री शचीके निमित्त इनसे ब्राह्मणका वेश बनाकर मांगा और उसे पाकर कर्णको अपनी महा भयंकर अमोघ-शक्ति दी है । तब इस प्रकारकी शक्तिसे रक्षित होकर इस शत्रुओंके जलाने वाले महावीर कर्णसे अर्जुन कैसे जीता बचेगा ? ( ५३-५६ )

हे राजन् ! हाथमें पड़े हुए फलकी भांति, अवश्यही हम लोगोंकी विजय होगी, और शत्रुओंकी इस भूमण्डल पृथ्वी भरमें निःसन्देह पराजय होगी । हे

अह्ना ह्येकेन भीष्मोऽयं प्रयुतं हन्ति भारत ॥ ५७ ॥  
 तत्समाश्रमहेष्वासा द्रोणद्रौणिकृपा अपि ।  
 संशप्तकानां वृन्दानि क्षत्रियाणां परंतप ॥ ५८ ॥  
 अर्जुनं वयमस्मान्वा निहन्यात्कपिकेतनः ।  
 न चाऽलमिति मन्यन्ते सव्यसाचिवधे धृताः ॥ ५९ ॥  
 पार्थिवाः स भवांस्तेभ्यो ह्यकस्माद्व्यथते कथम् ।  
 भीमसेने च निहते कोऽन्यो युध्येत भारत ॥ ६० ॥  
 परेषां तन्ममाऽऽचक्ष्व यदि वेत्थ परंतप ।  
 पंच ते भ्रातरः सर्वे धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः ॥ ६१ ॥  
 परेषां सप्त ये राजन्योधाः सारं बलं मतम् ।  
 अस्माकं तु विशिष्टा ये भीष्मद्रोणकृपादयः ॥ ६२ ॥  
 द्रौणिर्विकर्तनः कर्णः सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः ।  
 प्रागज्योतिषाधिपः शल्य आवंत्यौ च जयद्रथः ॥ ६३ ॥  
 दुःशासनो दुर्मुखश्च दुःसहश्च विशांपते ।  
 श्रुतायुश्चित्रसेनश्च पुरुमित्रो विविंशतिः ॥ ६४ ॥

भारत ! यह पराक्रमी भीष्म एक दिनमें दश हजार शत्रुओंकी सेनाके योद्धाओं को मार सकते हैं, और द्रोण, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामाभी उन्हीके समान नाश कर सकते हैं । संशप्तक क्षत्रिय लोग कहते हैं, कि या तो हमही अर्जुनको मारेंगे, अथवा अर्जुनही हम लोगोंको मारेगा । इस प्रकारसे उन्होंने स्थिर और दृढ़ प्रतिज्ञा की है । दूसरेभी अर्जुनको मारनेके निमित्त बहुतसे राजालोग निश्चय करके बैठे हैं, और उसको असमर्थ समझते हैं । इतने परभी आप पाण्डवोंमें ऐसे भयभीत क्यों हो रहे हैं ? ( ५६-६० )

हे परन्तप ! भीमके मारे जाने पर शत्रुओंमेंसे कौन हम लोगोंके सङ्ग युद्ध कर सकेगा ? यदि आप जानते हैं, तो मुझसे कहिये । हे राजन् ! वे लोग पाँचों भाई, धृष्टद्युम्न और सात्यकी; यही जो सात योद्धा हैं, वेही शत्रुओंके श्रेष्ठ बल हैं; परन्तु हम लोगोंकी ओरका उत्तम बल भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, सोमदत्त, बाह्लिक प्रागज्योतिषाधिपति, शल्य, अवन्तीपति विन्द और अनुविन्द, जयद्रथ और आपके पुत्र दुःशासन, दुःसह, दुर्मुख, श्रुतायु, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल, भूरिश्रवा और विकर्ण, ये सब

शलो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ।  
 अक्षौहिण्यो हि मे राजन्दशैका च समाहृताः ॥६५॥  
 न्यूनाः परेषां सप्तैव कस्मान्मे स्यात्पराजयः ।  
 बलं त्रिगुणतो हीनं योध्यं प्राह बृहस्पतिः ।  
 परेभ्यस्त्रिगुणा चेयं मम राजन्ननीकिनी ॥ ६६ ॥  
 गुणहीनं परेषां च बहु पश्यामि भारत ।  
 गुणोदयं बहुगुणमात्मनश्च विशांपते ॥ ६७ ॥  
 एतत्सर्वं समाज्ञाय बलाग्न्यं मम भारत ।  
 न्यूनतां पाण्डवानां च न मोहं गंतुमर्हसि ॥ ६८ ॥  
 इत्युक्त्वा संजयं भूयः पर्यपृच्छत भारत ।  
 विवित्सुः प्राप्तकालानि ज्ञात्वा परपुरंजयः ॥ ६९ ॥ [२१२८]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि दुर्योधनवाक्ये पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

दुर्योधन उवाच—अक्षौहिणीः सप्त लब्ध्वा राजभिः सह संजय ।  
 किंस्विदिच्छति कौन्तेयो युद्धप्रेप्सुर्युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

मुख्य सेनापति हैं । ( ६०-६५ )

हे महाराज ! मैंने ग्यारह अक्षौहिणी सेना संग्रह करी है, और शत्रुओंके यहां केवल सात अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हुई है; इससे हमारी सेनासे भी शत्रुओंकी कम सेना है; तब आप किस प्रकारसे निश्चय करते हैं कि मेरी पराजय होगी? हे राजेन्द्र ! बृहस्पति कहते हैं, कि शत्रुओंकी सेना, अपनी सेनासे तृतीयांश कम होने पर उसके सङ्ग युद्ध करना उचित है । हमारी यह सेनाभी शत्रुओंसे तृतीयांश अधिक है । (६५-६६)

फिर मैं शत्रुओंकी सेनाको अनेक गुणोंसे हीन देखता हूं, और अपनी सेनाको अनेक गुणोंसे गुणी देखता हूं,

हे भारत ! इससे हमारे बलकी अधिकता और पाण्डवोंकी अल्पता आदि सब वृत्तान्तोंको जानकर भी आपको मोहमें पड़कर शोक करना उचित नहीं है । पराये देशको जीतनेवाले दुर्योधनने धृतराष्ट्रसे यह सब वचन कहकर, शत्रुओंके ओरकी सब बातोंको जाननेके अनन्तर इन कार्योंको करना उचित है, ऐसी इच्छा करते हुए सञ्जयसे फिर पूछने लगे । ( ६६-६९ ) [ २१२८ ]

उद्योगपर्वमें पचपन अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें छप्पन अध्याय ।

दुर्योधन बोले, हे सञ्जय ! कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर सात-अक्षौहिणी सेनाको पाकर युद्धकी कामनासे राजाओंके सङ्ग कैसी

संजय उवाच— अतीव मुदितो राजन्युद्धप्रेप्सुर्युधिष्ठिरः ।  
 भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमावपि न बिभ्यतः ॥ २ ॥  
 रथं तु दिव्यं कौन्तेयः सर्वा विभ्राजयन्दिशः ।  
 मंत्रं जिज्ञासमानः सन्वीभत्सुः समयोजयत् ॥ ३ ॥  
 तमपश्याम सन्नद्धं मेघं विद्युद्युतं यथा ।  
 समंतात्समभिधाय हृष्यमाणोऽभ्यभाषत ॥ ४ ॥  
 पूर्वरूपमिदं पश्य वयं जेष्याम संजय ।  
 वीभत्सुर्मा यथोवाच तथाऽवैम्यहमप्युत ॥ ५ ॥  
 दुर्योधन उवाच— प्रशंसस्यभिनन्दंस्तान्पार्थानक्षपराजितान् ।  
 अर्जुनस्य रथे ब्रूहि कथमश्वाः कथं ध्वजाः ॥ ६ ॥  
 संजय उवाच— भौमनः सह शक्रेण बहुचित्रं विशांपते ।  
 रूपाणि कल्पयामास त्वष्टा धाता सदा विभो ॥ ७ ॥  
 ध्वजे हि तस्मिन् रूपाणि चक्रुस्ते देवमायया ।  
 महाधनानि दिव्यानि महान्ति च लघूनि च ॥ ८ ॥  
 भीमसेनानुरोधाय हनूमान्मारुतात्मजः ।

इच्छा करते हैं । (१)

सञ्जय बोले, हे राजन् ! युधिष्ठिर युद्ध होनेके निमित्त अत्यन्तही प्रसन्न हैं; भीम और अर्जुन ये दोनों भी आनन्दित हो रहे हैं और नकुल सहदेव भी किंचित् मात्र भय नहीं करते हैं। कुन्ती-पुत्र अर्जुनने अस्त्रप्रयोजन, मन्त्र परीक्षा करनेके निमित्त अभिलाषी होकर सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए, अपने दिव्य रथको जुतवाया था। हे महाराज ! मैंने अर्जुन के रथको बिजलीसे युक्त बादलकी भांति देखा था। उन्होंने सब तरहसे सोच विचारकर मुझसे यह वचन कहा है, कि “हे सञ्जय! मैं जो कौरवोंको

जीतूंगा, उसका यह पहिला लक्षण देखो। यथार्थमें अर्जुनने मुझसे जो कुछ कहा, मैंभी वही समझता हूँ। (२-५)

दुर्योधन बोले, कि तुम जुएमें हारे हुए पाण्डवोंका पक्ष करके उनकी प्रशंसा करते हो; जो हो, सम्प्रति अर्जुनके रथके घोड़े और ध्वजा किस प्रकारके हैं; उसका वर्णन करो। (६)

सञ्जय बोले, हे पृथ्वीनाथ ! त्वष्टा विश्वकर्माने इन्द्र और ब्रह्माके सङ्ग मिलकर अर्जुन के रथमें अति विचित्र रूपके चित्रोंको बनाया है। देव-मायाकी सहायतासे विश्वकर्माने उसकी ध्वजापर छोटी और बड़ी बड़ी बहुत मूल्य

आत्मप्रतिकृतिं तस्मिन्ध्वज आरोपयिष्यति ॥ ९ ॥

सर्वा दिशो योजनमात्रमंतरं स तिर्यगूर्ध्वं च रुरोध वै ध्वजः ।  
न संसज्जत्यसौ तरुभिः संवृतोऽपि तथा हि माया विहिता भौमनेन १० ॥  
यथाऽऽकाशे शक्रधनुः प्रकाशते न चैकवर्णं न च वेद्मि किंनु तत् ।  
तथा ध्वजो विहितो भौमनेन बह्वाकारं दृश्यते रूपमस्य ॥ ११ ॥  
यथाग्निधूमो दिवमेति रुद्ध्वा वर्णान्विभ्रतैजसांश्चित्ररूपान् ।  
तथा ध्वजो विहितो भौमनेन न चेद्भारो भविता नोत रोधः ॥ १२ ॥  
श्वेतास्तस्मिन्वातवेगाः सदश्वा दिव्या युक्ताश्चित्ररथेन दत्ताः ।  
मुव्यंतरिक्षे दिवि वा नरेन्द्र येषां गतिर्हीयते नाऽत्र सर्वा ॥  
शतं यत्तत्पूर्यते नित्यकालं हतं हतं दत्तवरं पुरस्तात् ॥ १३ ॥  
तथा राज्ञो दंतवर्णा वृहंतो रथे युक्ता भांति तद्वीर्यतुल्याः ।  
ऋक्षप्रख्या भीमसेनस्य बाहा रथे वायोस्तुल्यवेगा बभूवुः ॥ १४ ॥  
कल्माषांगास्तित्तिरिचित्रपृष्ठा भ्रात्रा दत्ताः प्रीयता फाल्गुनेन ।

वान मूर्तियोंको बनाया है। और भी भीमसेनकी प्रार्थनासे पवनपुत्र हनुमान अपनी निज मूर्तिको उस ध्वजापर रक्खेंगे। विश्वकर्माने उस रथमें ऐसी माया रची है, कि वह सब ओरसे तिरछा और एक योजन ऊपर तक व्याप्त रहता है, तौभी वृक्ष आदिसे उसकी गति नहीं रुक सकती। (७-१०)

आकाश-मण्डलमें जैसे इन्द्र-धनुष नानावर्णोंसे युक्त होकर शोभायमान तथा प्रकाशित होता है, और यह नहीं मालूम पड़ता, कि यह क्या वस्तु है, तैसेही विश्वकर्माने भी उस ध्वजाको बनाया है; उसमें अनेक प्रकारके रूप दीख पड़ते हैं। अग्निसे उत्पन्न हुआ धुआं जैसे अनेक प्रकारका रूप धारण

करता हुआ आकाशकी ओर जाता है वैसेही विश्वकर्माकी बनाई वह ध्वजा भी ऊपरको उठा है; उसका बोझा और रुकावट कुछभी नहीं होती। (११-१२)

हे राजेन्द्र ! उस कपिध्वजासे युक्त रथमें, गन्धर्वराज चित्ररथके दिये हुए वायुके समान चलनेवाले सौ घोड़े जुते हैं। पहिले उनको ऐसा वर मिला हुआ है, कि बार बार मारे जानेपर भी उन घोड़ोंकी संख्या कभी कम न होगी। राजा युधिष्ठिरके रथमें भी अर्जुनके घोड़ोंके समान बलवान और हार्थादातके समान सफेद और बड़े बड़े घोड़े जुते हैं। भीमसेनके रथमें वायुके समान शीघ्र चलनेवाले और सप्त ऋषिके समान तेजस्वी घोड़े जुते हुए हैं। १३-१४

भ्रातुर्वीरस्य स्वैस्तुरंगैर्विशिष्टा मुदा युक्ताः सहदेवं वहन्ति ॥ १५ ॥

माद्रीपुत्रं नकुलं त्वाजमीढ महेन्द्रदत्ता हरयो वाजिमुख्याः ।

समा वायोर्बलवंतस्तरस्विनो वहन्ति वीरं वृत्रशत्रुं यथेन्द्रम् ॥ १६ ॥

तुल्यांश्चैभिर्वयसा विक्रमेण महाजवाश्चित्ररूपाः सदश्वाः ।

सौभद्रादीन्द्रौपदेयान्कुमारान्वहंत्यश्वा देवदत्ता बृहन्तः ॥ १७ ॥ [२१४५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि

संजयवाक्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— कांस्तत्र संजयाऽपश्यः प्रीत्यर्थेन समागतान् ।

ये योत्स्यन्ते पांडवार्थे पुत्रस्य मम वाहिनीम् ॥ १ ॥

संजय उवाच— मुख्यमंधकवृष्णीनामपश्यं कृष्णमागतम् ।

चेकितानं च तत्रैव युयुधानं च सात्यकिम् ॥ २ ॥

पृथगक्षौहिणीभ्यां तु पांडवानभिसंश्रितौ ।

महारथौ समाख्याताबुभौ पुरुषमानिनौ ॥ ३ ॥

अक्षौहिण्याऽथ पांचाल्यो दशभिस्तनयैर्वृतः ।

सत्यजित्प्रमुखैर्वीरैर्धृष्टद्युम्नपुरोगमैः ॥ ४ ॥

द्रुपदो वर्धयन्मानं शिखंडिपरिपालितः ।

काले शरीर वाले तीतरपक्षीके समान चित्रित हृष्टपुष्ट घोड़े सहदेवके रथमें जुते हैं; उनके भ्राता अर्जुनने प्रसन्न होकर उन्हें प्रदान किया था; वीरवर अर्जुनके घोड़ोंसे भी ये घोड़े उत्तम हैं। वायुके समान बली और वेगवान् इन्द्रके दिये हुए पीले रङ्गके घोड़े नकुलके रथमें लगे हैं; और उन्हींके समान अवस्था, बल, पराक्रम तथा वायुके तुल्य वेगवान् घोड़े अभिमन्यु आदि कुमारोंके रथमें लगे हैं । ( १५-१७ )

उद्योगपर्वमें छपन्न अध्याय समाप्त । [२१४५]

उद्योगपर्वमें सत्तावन अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! पाण्डवोंकी प्रीतिके निमित्त, दुर्योधनकी सेनासे युद्ध करनेके वास्ते किन लोंगोंको तुमने आया हुआ देखा है ? ( १ )

सञ्जय बोले, हे महाराज ! अन्धक और वृष्णिवंशमें श्रेष्ठ कृष्णको, और चेकितान युयुधान सात्यकीको मैंने वहांपर उपस्थित देखा। ये लोग एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवोंकी सहायताके निमित्त वहांपर आये हैं। वे दोनों ही पुरुष श्रेष्ठ महारथ हैं। पाञ्चाल-राज द्रुपद वीर्यवान्, धृष्टद्युम्न आदि पुत्रोंसे युक्त और शिखण्डीसे

उपायात्सर्वसैन्यानां प्रतिच्छाद्य तदा वपुः ॥ ५ ॥  
 विराटः सह पुत्राभ्यां शंखेनैवोत्तरेण च ।  
 सूर्यदत्तादिभिर्वीरैर्मदिराक्षपुरोगमैः ॥ ६ ॥  
 सहितः पृथिवीपालो धातृभिस्तनयैस्तथा ।  
 अक्षौहिण्यैव सैन्यानां वृतः पार्थ समाश्रितः ॥ ७ ॥  
 जारासंधिर्मागधश्च धृष्टकेतुश्च चेदिराट् ।  
 पृथक्पृथगनुप्राप्तौ पृथगक्षौहिणीवृतौ ॥ ८ ॥  
 कैकया भ्रातरः पंच सर्वे लोहितकध्वजाः ।  
 अक्षौहिणीपरिवृताः पांडवानभिसंश्रिताः ॥ ९ ॥  
 एतानेतावतस्तत्र तानपश्यं समागतान् ।  
 ये पांडवार्थं योत्स्यन्ति धार्तराष्ट्रस्य वाहिनिम् ॥ १० ॥  
 यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गांधर्वमासुरम् ।  
 स तत्र सेनाप्रमुखे धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ११ ॥  
 भीष्मः शान्तनवो राजन्भागः कल्पितः शिखंडिनः ।  
 तं विराटोऽनुसंयाता सार्धं मत्स्यैः प्रहारिभिः ॥ १२ ॥  
 ज्येष्ठस्य पांडुपुत्रस्य भागो मद्राधिपो बली ।

रक्षित होकर एक अक्षौहिणी सेनाके सहित आये हैं । ( २-५ )

राजा विराट, बलवान् सूर्यदत्त और मदिराक्ष आदि भाईयों तथा पुत्रोंके सहित अक्षौहिणी सेनाको लेकर, शंख और उत्तर नामक पुत्रोंसे रक्षित होकर पाण्डवोंकी सहायताको आये हैं । जरासन्धके पुत्र मगधराज सहदेव और चेदिराज धृष्टकेतु, ये दोनों भी एक अक्षौहिणी सेना लेकर वहांपर आये हैं । लाल ध्वजाओंसे युक्त कैकय राजपुत्र पांचों भाई एक अक्षौहिणी सेनाके सहित दुर्योधनसे युद्ध करनेके निमित्त वहां

पर उपस्थित हुए हैं । जो लोग पाण्डवोंके निमित्त दुर्योधनकी सेनासे युद्ध करनेके लिये वहांपर आये हैं, उन सबको मैंने यहांही तक देखा है । ( ६-१० )

जो मनुष्य, देवता, गन्धर्व और आसुरी व्यूहकी रचनाको जानते हैं, वही महावीर धृष्टद्युम्न वहांपर सेनापति बनाये जायंगे । हे राजन् ! शान्तनु-पुत्र भीष्म शिखण्डिके हिस्से में कल्पित हुए हैं, विराट राज मत्स्यदेशीय वीरोंके सहित शिखण्डिके पृष्ठ-रक्षक बनेंगे । मद्र राज बलवान् शल्य युधिष्ठिरके हिस्से में चुन गये हैं; उसमें कोई कोई कहते



तौ तु तत्राऽब्रुवन्केचिद्विषमौ नो मताविति ॥ १३ ॥

दुर्योधनः सहसुतः सार्धं भ्रातृशतेन च ।

प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च भीमसेनस्य भारत ॥ १४ ॥

अर्जुनस्य तु भागेन कर्णो वैकर्तनो मनः ।

अश्वत्थामा विकर्णश्च सैधवश्च जयद्रथः ॥ १५ ॥

अशक्याश्चैव ये केचित्पृथिव्यां शूरमानिनः ।

सर्वास्तानर्जुनः पार्थः कल्पयामास भागतः ॥ १६ ॥

महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पंच केकयाः ।

केकयानेव भागेन कृत्वा योत्स्यन्ति संयुगे ॥ १७ ॥

तेषामेव कृतो भागो मालवाः शाल्वकास्तथा ।

त्रिगर्तानां चैव मुख्यौ यौ तौ संशप्तकाविति ॥ १८ ॥

दुर्योधनसुताः सर्वे तथा दुःशासनस्य च ।

सौभद्रेण कृतो भागो राजा चैव बृहद्वलः ॥ १९ ॥

द्रौपदेया महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।

धृष्टद्युम्नमुखा द्रोणमभियास्यन्ति भारत ॥ २० ॥

चेकितानः सोमदत्तं द्वैरथे योद्धुमिच्छति ।

भोजं तु कृतवर्माणं युयुधानो युयुत्सति ॥ २१ ॥

हैं, कि हम लोगोंके मतमें ये दोनों वीर समान नहीं हैं। सौ भाई और पुत्रोंके सहित दुर्योधन तथा पूर्व, पश्चिमके औरभी बहुतसे राजा लोक भीमसेनके हिस्सेमें चुने गये हैं। और अर्जुनके हिस्से में सूर्यपुत्र कर्ण, अश्वत्थामा, विकर्ण और सिन्धुराज जयद्रथ आदि कई वीर चुने गये हैं। ( ११-१५ )

इनके अतिरिक्त जो लोग पृथ्वी भर में असाधारण और महावीर हैं उन्हें भी अर्जुनने अपनेही हिस्सेमें रक्खा है। महा धनुर्धारी केकयराराजपुत्र पांचों भाई-

योंने केकय देशीय वीरोंकोही अपने भागमें निश्चित किया है, और केवल केकय देशियोंकोही नहीं; बरन मालव, शाल्व तथा त्रिगर्तोंके मुख्य और प्रसिद्ध दोनों संशप्तक वीरभी इन्हीके हिस्सेमें निश्चित किये गये हैं। सुभद्रानन्दन अभिमन्युने दुर्योधन और दुःशासनके पुत्रोंको तथा बृहद्वल राजाको अपने हिस्से में निश्चित किया है। ( १५-१९ )

हे भारत ! सेनाकी ध्वजाओंसे युक्त राजा द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न आदि द्रोणाचार्यसे युद्ध करेंगे। चेकितान सोमदत्तके

सहदेवस्तु माद्रेयः शूरः संकंदनो युधि ।  
 स्वमंशं कल्पयामास ह्यालं ते सुबलात्मजम् ॥ २२ ॥  
 उलूकं चैव कैतव्यं ये च सारस्वता गणाः ।  
 नकुलः कल्पयामास भागं माद्रवतीसुतः ॥ २३ ॥  
 ये चाऽन्ये पार्थिवा राजन्प्रत्युद्यास्यन्ति संगरे ।  
 समाह्वानेन तांश्चापि पांडुपुत्रा अकल्पयन् ॥ २४ ॥  
 एवमेषामनीकानि प्रविभक्तानि भागशः ।  
 यत्ते कार्यं सपुत्रस्य क्रियतां तदकालिकम् ॥ २५ ॥  
 धृतराष्ट्र उवाच— न संति सर्वे पुत्रा मे भूढा दुर्द्युतदेविनः ।  
 येषां युद्धं बलवता भीमेन रणसूर्धनि ॥ २६ ॥  
 राजानः पार्थिवाः सर्वे प्रोक्षिताः कालधर्मणा ।  
 गांडीवाग्निं प्रवेक्ष्यन्ति पतंगा इव पावकम् ॥ २७ ॥  
 विद्रुतां वाहिनीं मन्ये कृतवैरैर्महात्मभिः ।  
 तां रणे केऽनुयास्यन्ति प्रभग्नां पांडवैर्युधि ॥ २८ ॥

सङ्ग द्वन्द्वयुद्ध करनेकी इच्छा करते हैं; और युयुधान भोजराजा कृतवर्माके संग द्वन्द्व करनेकी अभिलाषा करते हैं। युद्ध में महाघोर शब्दको करने वाले माद्रीपुत्र सहदेवने तुम्हारे सारे सुबलपुत्र शकुनि को अपने हिस्सेमें निश्चित किया है और इस धूर्तके पुत्र उलूक और सारस्वतोंको नकुलने अपने हिस्सेमें चुना है। २०-२३  
 हे राजन् ! इससे आतिरिक्त और दूसरे राजा लोग जो युद्ध करनेको आये हैं, पाण्डवोंने उन सबकोभी अपने अपने नामके अनुसार सबका विभाग करके अलग अलग हिस्सेमें चुन लिया है। इसी प्रकारसे उनकी सब सेना यथायोग्य अलग अलग हिस्सेमें बांटी गई है। इस

समय पुत्रोंके सहित आपको जो कुछ करना हो, उसको शीघ्रही कीजिये। २४-२५  
 धृतराष्ट्र बोले हे सञ्जय ! काल प्रेरित मेरे पुत्र लोग जीवित रहना नहीं चाहते हैं; युद्धमें महा बलवान भीमसेन के साथ जिसका युद्ध होगा, उसके जीनेकी आशा कैसे की जा सकती है ? पृथ्वीके सब राजा मृत्युके वशमें होकर यज्ञके पशु तथा अग्निकी ज्योतिमें पति-झोंकी भांति गाण्डीव धनुषकी अग्निमें प्रवेश करेंगे। शत्रुता करनेवाले महात्मा पाण्डव लोग, युद्धमें मेरी सेनाको अवश्य तितर बितर करके भगा देंगे, इसे मैं अपने मनमें खूबही जानता हूँ। कौन मनुष्य पाण्डवोंके युद्धसे भागती हुई मेरी

सर्वे ह्यतिरथाः शूराः कीर्तिमंतः प्रतापिनः ।  
 सूर्यपावकयोस्तुल्यास्तेजसा समितिंजयाः ॥ २९ ॥  
 येषां युधिष्ठिरो नेता गोप्ता च मधुसूदनः ।  
 योधौ च पांडवौ वीरौ सव्यसाचिवृकोदरौ ॥ ३० ॥  
 नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।  
 सात्यकिर्द्रुपदश्चैव धृष्टकेतुश्च सानुजः ॥ ३१ ॥  
 उत्तमौजाश्च पांचालयो युधामन्युश्च दुर्जयः ।  
 शिखंडी क्षत्रदेवश्च तथा वैराटिरुत्तरः ॥ ३२ ॥  
 काशयश्चेदयश्चैव मत्स्याः सर्वे च सृजयाः ।  
 विराटपुत्रो बभ्रुश्च पांचालाश्च प्रभद्रकाः ॥ ३३ ॥  
 येषामिंद्रोऽप्यकामानां न हरेत्पृथिवीमिमाम् ।  
 वीराणां रणधीराणां ये भिद्युः पर्वतानपि ॥ ३४ ॥  
 तान्सर्वगुणसंपन्नानमनुष्यप्रतापिनः ।  
 क्रोशतो मम दुष्पुत्रो योद्धुमिच्छति संजय ॥ ३५ ॥  
 दुर्योधन उवाच- उभौ स्व एकजातीयौ तथोभौ भूमिगोचरौ ।  
 अथ कस्मात्पांडवानामेकतो मन्यसे जयम् ॥ ३६ ॥  
 पितामहं च द्रोणं च कृपं कर्णं च दुर्जयम् ।

सेनाको आसरा देनेवाला होगा? २६-२८  
 पाण्डव लोग सबही अत्यन्त शूरवीर  
 कीर्त्तिमान, प्रतापी, सूर्य और अग्निके  
 समान तेजस्वी तथा युद्धको जीतनेवाले  
 हैं। हे सञ्जय ! जिस सेनाके युधिष्ठिर  
 नायक, कृष्ण रक्षक, और अर्जुन, भीम,  
 नकुल, सहदेव, सात्यकी, द्रुपद, धृष्ट-  
 द्युम्न, उत्तमौजा, युधामन्यु, शिखण्डी,  
 क्षत्रदेव, विराटपुत्र उत्तर, काशी, चेदी,  
 मत्स्य और पांचालदेशीय संपूर्ण सृञ्जय  
 और प्रभद्रक आदि वीर योद्धा हैं; जिन  
 की इच्छाके बिना इन्द्रभी बलसे यह

पृथ्वी नहीं ले सकते हैं; जो लोग  
 पर्वतोंकोभी तोड़नेमें समर्थ हैं, उन्हीं  
 अलौकिक प्रतापशाली सब गुणोंसे भरे  
 हुए रण धीर वीरोंके सङ्ग हमारा यह  
 दुष्टपुत्र युद्ध करनेकी इच्छा करता है।  
 मेरे बहुत विलाप करनेपरभी वह कुछ  
 नहीं सुनता है। ( २९-३५ )

दुर्योधन बोले, हे राजेन्द्र ! हम दोनों  
 एकही जाति और सब पृथ्वीके राजा हैं;  
 तब आप किस निमित्त केवल पाण्डवोंके  
 जयकी संभावना करते हैं। हे नरनाथ !  
 पाण्डवोंकी तो बातही क्या है, साक्षात्

जयद्रथं सोमदत्तमश्वत्थामानमेव च ॥ ३७ ॥

सुतेजसो महेष्वासानिन्द्रोऽपि सहितोऽमरैः ।

अशक्तः समरे जेतुं किं पुनस्तात पांडवाः ॥ ३८ ॥

सर्वे च पृथिवीपाला मदर्थं तात पांडवान् ।

आर्याः शस्त्रभृतः शूराः समर्थाः प्रतिवाधितुम् ॥ ३९ ॥

न मामकान्पांडवास्ते समर्थाः प्रतिवीक्षितुम् ।

पराक्रांतो ह्यहं पांडून्सपुत्रान्योद्धुमाहवे ॥ ४० ॥

मत्प्रियं पार्थिवाः सर्वे ये चिकीर्षन्ति भारत ।

ते तानावारयिष्यन्ति ऐणेयानिव तंतुना ॥ ४१ ॥

महता रथवंशेन शरजालैश्च मामकैः ।

अभिद्रुता भविष्यन्ति पांचालाः पांडवैः सह ॥ ४२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—उन्मत्त इव मे पुत्रो विलपत्येष संजय ।

न हि शक्तो रणे जेतुं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ४३ ॥

जानाति हि यथा भीष्मः पांडवानां यशस्विनाम् ।

बलवत्तां स पुत्राणां धर्मज्ञानां महात्मनाम् ॥ ४४ ॥

शचीपति इन्द्र देवताओंके सहित भी इन अत्यन्त तेजस्वी महा धनुर्द्वारी भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, जयद्रथ और अश्वत्थामाको युद्धमें नहीं जीत सकते हैं । शस्त्रधारी वीर योद्धा और अत्यन्त पराक्रमी राजा मेरी सहायताको आये हैं, वे सबही मेरे निमित्त प्राणोंको त्याग करके भी पाण्डवोंसे युद्ध करेंगे । ये सब लोग पाण्डवोंकी सेनाको जीतने में समर्थ हैं । (३५-३९)

पाण्डव लोग मेरी सेनाकी ओर देखभी न सकेंगे । पुत्रोंके सहित पाण्डवोंसे युद्ध करनेमें मैं सब प्रकारसे समर्थ हूं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । हे

पिता ! जो सब राजा हमारी प्रीतिके निमित्त यहां आये हैं, वे पाण्डवोंको अपने बाणोंके जालसे ऐसे बांध लेंगे, जैसे व्याधा तांतके फांससे हरिनको पकड़ता है । पाण्डव और पाञ्चाल लोग हमारे बहुतसे महावीर रथियोंके बाणोंसे पीड़ित होकर अवश्यही भागनेमें तत्पर होंगे । ( ४०-४२ )

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! मेरा यह पुत्र उन्मत्तकी भांति व्यर्थ प्रलाप कर रहा है; धर्मराज युधिष्ठिरकी यह कभीभी पराजय करनेमें समर्थ न होगा । उन यशस्वी धर्मके जाननेवाले महात्मा पाण्डवों और मेरे पुत्रोंमें जितना बल है, उसको

यतो नाऽरोचयद्यं विग्रहं तैर्महात्मभिः ।

किंतु संजय मे ब्रूहि पुनस्तेषां विचेष्टितम् ॥ ४५ ॥

वास्तांस्तरस्त्रिनो भूयः संदीपयति पांडवान् ।

अर्चिष्मतो महेष्वासान्हविषा पावकानिव ॥ ४६ ॥

संजय उवाच— धृष्टद्युम्नः सदैवैतान्संदीपयति भारत ।

युद्धयध्वामिति मा भैष्ट युद्धाद्भरतसत्तमाः ॥ ४७ ॥

ये कोचित्पार्थिवास्तत्र धार्तराष्ट्रेण संवृताः ।

युद्धे समागमिष्यन्ति तुमुले शस्त्रसंकुले ॥ ४८ ॥

तान्सर्वानाहवे क्रुद्धान्सानुबंधान्समागतान् ।

अहमेकः समादास्ये तिमिर्मत्स्यानिबोदकात् ॥ ४९ ॥

भीष्मं द्रोणं कृपं कर्णं द्रौणिं शल्यं सुयोधनम् ।

एतांश्चापि निरोत्स्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ५० ॥

तथा ब्रुवंतं धर्मात्मा प्राह राजा युधिष्ठिरः ।

तव धैर्यं च वीर्यं च पांचालाः पांडवैः सह ॥ ५१ ॥

सर्वे समधिरूढाः स्म संग्रामान्नः समुद्धर ।

जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ॥ ५२ ॥

भीष्मही जानते हैं: क्योंकि ये उन महात्माओंसे युद्ध करने के निमित्त इच्छा नहीं करते हैं। परन्तु तुम फिरभी मेरे निकट पाण्डवोंकी चेष्टाका वर्णन करो। कौन मनुष्य उन तेजसे जलते हुए, महा तेजस्वी महाधनुर्द्वारी पाण्डवोंको घृतसे अग्निकी भाँति अधिक उत्तेजित कर रहा है। ( ४३-४६ )

सञ्जय बोले, हे भारत ! धृष्टद्युम्न सदाही उन लोगोंको यह कहके उत्तेजित कर रहे हैं, कि “ हे भरत सत्तमगण ! युद्धमें प्रवृत्त होइये, युद्धसे कभीभी न डरिये। युद्धमें दुर्योधनकी ओरसे जो

कोई राजा क्रोधके वश होकर युद्ध करनेको आवेंगे उनको अकेलाही मैं इस प्रकारसे पकड़ लूंगा, जैसे व्याधा जलसे मछलियोंको पकड़ता है। और जैसे तट समुद्रके वेगको रोकता है, वैसेही मैं भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य और दुर्योधनको रोकूंगा। ” ( ४७-५० )

धृष्टद्युम्नके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर उनसे बोले, हे महाबाहो! पाण्डवोंके सहित पाञ्चाल लोग तुम्हारेही धैर्य और बलके आसरे ठहरे हैं; इससे तुम हम लोगोंका युद्धसे उद्धार करो।

समर्थमेकं पर्याप्तं कौरवाणां विनिग्रहे ।

पुरस्तादुपयातानां कौरवाणां युयुत्सताम् ॥ ५३ ॥

भवता यद्विधानव्यं तन्नः श्रेयः परन्तप ।

संग्रामादुपयातानां भग्नानां शरणैषिणाम् ॥ ५४ ॥

पौरुषं दर्शयन्शूरो यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ।

क्रीणीयात्तं सहस्रेण इति नीतिमतां मतम् ॥ ५५ ॥

स त्वं शूरश्च वीरश्च विकांतश्च नरर्षभ ।

भयार्तानां परित्राता संयुगेषु न संशयः ॥ ५६ ॥

एवं ब्रुवति कौन्तेये धर्मात्मनि युधिष्ठिरे ।

धृष्टद्युम्न उवाचेदं मां वचो गतसाध्वसम् ।

सर्वाङ्गनपदान्सूत योधा दुर्योधनस्य ये ॥ ५७ ॥

सबाह्लिकान्कुरुन्ब्रूयाः प्रातिपेयाञ्शरद्वतः ।

सूतपुत्रं तथा द्रोणं सहपुत्रं जयद्रथम् ॥ ५८ ॥

दुःशासनं विकर्णं च तथा दुर्योधनं नृपम् ।

भीष्मं च ब्रूहि गत्वा त्वमाशु गच्छ च मा चिरम् ॥ ५९ ॥

युधिष्ठिरः साधुनैवाऽभ्युपेयो मा वोऽवधीदर्जुनो देवगुप्तः ।

मैं तुम्हें क्षत्रियधर्ममें विशेष रूपसे स्थित और अकेलेही कौरवोंसे युद्ध करनेमें विलक्षण समर्थ समझता हूं। हे परन्तप! जब कौरव लोग युद्धकी कामनासे रण-भूमिमें संमुख आवेंगे, तब आप जिस रीतिसे युद्धकी तैयारी करेंगे, वह सबही हम लोगोंका कल्याणकारी होगा॥ ५१-५४

बुद्धिमानोंका यह मत है, कि जो शूरवीर अपने पुरुषार्थको दिखलाता हुआ युद्धसे भागनेवालों तथा शत्रुको शरण जानेको तैयार हुआँके अगाडी खड़ा होकर उन्हें उत्साह देकर युद्धके लिये योग्य बनाता है उसे हजार मनुष्योंको त्यागकर भी अपने

पास रखना चाहिये। हे परन्तप! आप शूर, वीर और महा पराक्रमी हैं, इससे युद्धमें भय से दुःखी लोगोंको आप अवश्यही उबारियेगा, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है॥ ५४-५६

कुन्तीनन्दन धर्मात्मा युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर, धृष्टद्युम्न मुझसे भयसे रहित होकर यह वचन बोले, कि “ हे सूत ! तुम शीघ्रही जाकर दुर्योधनकी ओरके बाह्लिक और उत्तमवंशधर तथा अल्पायु कौरव और भीष्म, द्रोण, विकर्ण और दुर्योधनसे यह वचन कहो, कि जिसमें देवताँसे रक्षित अर्जुन तुम लोगोंका वध न करें, इस निमित्त इस

राज्यं ददुध्वं धर्मराजस्य तूर्णं याचध्वं वै पांडवं लोकवीरम् ॥ ६० ॥

नैतादृशो हि योधोऽस्ति पृथिव्यामिह कश्चन ।

यथाविधः सव्यसाची पांडवः सत्यविक्रमः ॥ ६१ ॥

देवैर्हि संभृतो दिव्यो रथो गांडीवधन्वनः ।

न स जेयो मनुष्येण मा स्म कृदुध्वं मनो युधि ६२॥ २२०७

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयवाक्ये सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- क्षत्रतेजा ब्रह्मचारी कौमारादपि पांडवः ।

तेन संयुगमेष्यन्ति मंदा विलपतो मम ॥ १ ॥

दुर्योधन निवर्त्तस्व युद्धाद्भरतसत्तम ।

नहि युद्धं प्रशंसन्ति सर्वावस्थभरिन्दम ॥ २ ॥

अलमर्थं पृथिव्यास्ते सहाभ्रात्यस्य जीवितुम् ।

प्रयच्छ पांडुपुत्राणां यथोचितभरिन्दम ॥ ३ ॥

एतद्वि कुरवः सर्वे मन्यन्ते धर्मसंहितम् ।

यत्त्वं प्रशान्तिं मन्येथाः पांडुपुत्रैर्महात्मभिः ॥ ४ ॥

समय उपायसेही युधिष्ठिरको वशमें कर लेना तुम लोगोंका कर्तव्य कर्म है । इससे तुम लोग धर्मराजके राज्यको शीघ्र देकर लोकमें विख्यात, वीर पाण्डवोंसे प्रार्थना करो । ( ५७-६० )

सत्य-पराक्रमी अर्जुन और भीम जैसे वीर योद्धा हैं, पृथ्वी भरमें वैसा कोईभी वीर नहीं है । क्योंकि देवता लोग उस अर्जुनके गाण्डीव धनुष और दिव्य रथकी रक्षा करते हैं, इस लिये मनुष्योंसे वह कभी भी पराजित नहीं हो सकते । इससे तुम युद्धमें कभी भी उन लोगोंके चित्तको आकर्षित मत करना । ( ६१-५२ ) [ २२०७ ]

उद्योगपर्वमें सत्तावन अध्याय समाप्त

उद्योगपर्वमें अठावन अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, मैं विलाप कर रहा हूं, तौभी मेरी बातोंको न मानकर यह मन्दबुद्धि मेरा पुत्र कुमार अवस्थाहीसे ब्रह्मचारी, क्षत्रिय तेजसे युक्त, युधिष्ठिरके सङ्ग युद्ध करेगा ? हे भरतसत्तम दुर्योधन ! तुम युद्धसे निवृत्त होजाओ । हे शत्रुनाशन ! पण्डित लोग किसी अवस्थामेंभी युद्धकी प्रशंसा नहीं करते । अपने मित्रोंके सहित आधी पृथ्वीका राज्यही तुम्हारी जीविकाके निमित्त बहुत है । हे परन्तप ! इससे पाण्डवोंको यथा उचित आधा हिस्सा दे दो । १-३

तुम महात्मा पाण्डवोंके संग सन्धि कर लो, इसको सब कौरव लोग धर्म और

अंगेमां समवेक्षस्व पुत्र स्वाभेव वाहिनीम् ।  
 जात एष तवाऽभावस्त्वं तु मोहान्न युद्धयसे ॥ ५ ॥  
 न त्वहं युद्धमिच्छामि नैतदिच्छति बाह्लिकः ।  
 न च भीष्मो न च द्रोणो नाऽश्वत्थामा न संजयः ॥ ६ ॥  
 न सोमदत्तो न शलो न कृपो युद्धमिच्छति ।  
 सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवास्तथा ॥ ७ ॥  
 येषु संप्रतितिष्ठेयुः कुरवः पीडिताः परैः ।  
 ते युद्धं नाऽभिनन्दन्ति तत्तुभ्यं तात रात्रताम् ॥ ८ ॥  
 न त्वं करोषि कामेन कर्णः कारयिता तव ।  
 दुःशासनश्च पापात्मा शकुनिश्चापि सौवलः ॥ ९ ॥  
 दुर्योधन उवाच— नाऽहं भवति न द्रोणे नाऽश्वत्थामा न संजये ।  
 न भीष्मे न च कांबोजे न कृपे न च बाह्लिके ॥ १० ॥  
 सत्यव्रते पुरुमित्रे भूरिश्रवसि वा पुनः ।  
 अन्येषु वा तावकेषु भारं कृत्वा समाह्वयम् ॥ ११ ॥  
 अहं च तात कर्णश्च रणयज्ञं वितत्य वै ।  
 युधिष्ठिरं पशुं कृत्वा दीक्षितौ भरतर्षभ ॥ १२ ॥

उत्तम समझते हैं। हे पुत्र ! तुम अपनी  
 सेनाकी ओर पूरी रीतिसे ध्यान देकर  
 देखो; यह तुम्हारे विनाशकी कारण हुई  
 है, पर तुम मोहमें पड़कर इस बातको  
 नहीं समझ सकते हो। ध्यानसे देखो—  
 कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा,  
 बाह्लिक, सञ्जय, सोमदत्त, शल्य, पुरु-  
 मित्र, जय, भूरिश्रवा और हम कोई भी  
 युद्धकी इच्छा नहीं करते हैं। (४-७)  
 हे तात ! शत्रुओंसे पीडित होकर  
 कौरव लोग जिसके बलसे ठहरेंगे वे  
 लोग युद्ध करनेके निमित्त उत्साही नहीं  
 हैं, तुम इन भीष्मादिकोंके मतानुसार

वर्तन करो। तुम जो केवल अपनीही  
 इच्छासे ऐसा करते हो, वह बात भी  
 नहीं है; कर्ण, पापी-दुःशासन और  
 सुवल पुत्र शकुनि येही सब मिलके  
 तुमको युद्धमें प्रवृत्त कर रहे हैं। (८-९)

दुर्योधन बोले, आप, भीष्म, द्रोण,  
 कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सञ्जय, काम्बोज,  
 बाह्लिक, सत्यव्रत, पुरुमित्र, भूरिश्रवा  
 और किसी सम्बन्धीय लोकोंके आसरे-  
 पर मैं युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करता  
 हूँ। हे तात ! केवल मैं और कर्ण येही दो  
 पुरुष युधिष्ठिरको पशुकी भांति मारकर  
 युद्धरूपी यज्ञको पूर्ण करेंगे ! उसमें मेरा



रथो वेदी सुवः खड्गो गदा सुक्वचं सदः ।  
 चातुर्होत्रं च धुर्या मे शरा दर्भा हविर्यशः ॥ १३ ॥  
 आत्मयज्ञेन नृपते इष्ट्वा वैवस्वतं रणे ।  
 विजित्य च समेष्ट्यावो हतामित्रौ श्रिया वृतौ ॥ १४ ॥  
 अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे  
 एते वयं हनिष्यावः पांडवान्समरे त्रयः ॥ १५ ॥  
 अहं हि पांडवान्हत्वा प्रशास्ता पृथिवीमिमाम् ।  
 मां वा हत्वा पांडुपुत्रा भोक्तारः पृथिवीमिमाम् ॥ १६ ॥  
 त्यक्तं मे जीवितं राज्यं धनं सर्वं च पार्थिव ।  
 न जातु पांडवैः सार्धं वसेयमहमच्युत ॥ १७ ॥  
 यावद्वि सूच्यास्नीक्षणाया विध्येदग्रेण मारिष ।  
 तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पांडवान्प्रति ॥ १८ ॥  
 धृतराष्ट्र उवाच- सर्वान्वस्नात शोचामि त्यक्तो दुर्योधनो मया ।  
 ये मंदमनुयास्यध्वं यातं वैवस्वतक्षयम् ॥ १९ ॥  
 रुरुणामिव यूथेषु व्याघ्राः प्रहरतां वराः ।

रथही वेदी होगी, कवच सभा होगी,  
 तरवार और गदा ही सुवा और सुक्  
 होंगे, चारों घोड़ेही चातुर्होत्र होंगे,  
 बाण सब कुशका कार्य करेंगे और  
 यशही घृतस्वरूप होगा । (१०-१२)

हे महाराज ! इस प्रकारमे आत्मरूपी  
 यज्ञ करके, युद्धमें यमराजकी उपासना  
 करत हुए, शत्रुओंको मारके, लक्ष्मीसे  
 युक्त होकर, लौटूंगा । हे तात ! मैं,  
 कर्ण और मेरा भाई दुःशासन, येही  
 तीन पुरुष युद्धमें सब पाण्डवोंका वध  
 करेंगे । या तो पाण्डवोंको मारकर  
 हमही पृथ्वीका राज्य करेंगे, अथवा  
 हमको मारके पाण्डवही सम्पूर्ण पृथ्वीका

राज्य लेंगे । हे महापराक्रमी तेजस्वी  
 पृथ्वीनाथ ! हमारा राज्य, धन और  
 जीव सब चला जाय, पर मैं पाण्डवोंके  
 सङ्ग एकत्र वास नहीं कर सकूंगा । हे  
 महाराज ! तीक्ष्ण सुईकी नाकसे जितनी  
 भूमि विद्ध हो सकती है, उतनी भूमिभी  
 पाण्डवोंको मैं नहीं दूंगा । (१४-१८)

दुर्योधनकी ऐसी बातोंको सुनकर  
 महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे भूपालवृन्द !  
 मैंने दुर्योधनको तो परित्याग किया,  
 पर अब तुम लोगोंके निमित्त शोक  
 करता हूं, क्योंकि तुम लोग यमपुरीमें  
 जानेकी इच्छासे मन्दबुद्धि दुर्योधनके  
 अनुगामी बनोगे । जैसे हरिनोंके झुण्ड-

वरान्वरान्हनिष्यन्ति समेता युधि पांडवाः ॥ २० ॥  
 प्रतीपमिव मे भाति युयुधानेन भारती ।  
 व्यस्ता सीमन्तिनी ग्रस्ता प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ॥ २१ ॥  
 संपूर्ण पूरयन्भूयो धनं पार्थस्य माधवः ।  
 शैनेयः समरे स्थाता बीजवत्प्रवपञ्शरान् ॥ २२ ॥  
 सेनामुखे प्रयुद्धानां भीमसेनो भविष्यति ।  
 तं सर्वे संश्रयिष्यन्ति प्राकारमकुतोभयम् ॥ २३ ॥  
 यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुंजरान्विनिपातितान् ।  
 विशीर्णदंतान्गिर्याभान्भिन्नकुंभान्सशोणितान् ॥ २४ ॥  
 तानभिप्रेक्ष्य संग्रामे विशीर्णानिव पर्वतान् ।  
 भीतो भीमस्य संस्पर्शात्स्मर्ताऽसि वचनस्य मे ॥ २५ ॥  
 निर्दग्धं भीमसेनेन सैन्यं रथहयद्विपम् ।  
 गतिमग्रेरिव प्रेक्ष्य स्मर्ताऽसि वचनस्य मे ॥ २६ ॥  
 महद्वो भयभागामि न चेच्छाम्यथ पांडवैः ।  
 गदया भीमसेनेन हताः शममुपेक्ष्यथ ॥ २७ ॥

मैं सिंह प्रवेश करता है, वैसेही शस्त्र-धारियोंमें श्रेष्ठ पाण्डवलोग सिंहकी भांति तुम्हारी सेनामें आकर मुख्य मुख्य वीरोंको मारेंगे। मुझे बोध होता है, कि लम्बी भुजावाला सात्यकी कामिनीकी भांति कौरवी सेनाको अपने वशमें करके उसे विक्षिप्त कर रहा है। ( १९—२१ )

यथार्थमें मधुवंशधर सात्यकी, युधिष्ठिरके सम्पूर्ण बलको और भी परिपूर्ण करता हुआ, जैसे किसान खेतोंमें बीज बोते हैं, वैसेही अपने बाणोंको चलाकर कौरवी सेनाको विकल कर देगा। भीमसेन युद्धमें प्रवृत्त हुई सेनाके आगे खड़ा रहेगा, और सैनिक

पुरुष उसको दुर्गकी भांति संहारा समझके निर्भय होके युद्ध करेंगे। जब तुम लोग भीमको हाथियोंके मस्तक, स्रंड, हृदय, और योद्धोंको पर्वतके समूहकी भांति गदासे तोड़ते हुए देखोगे, और भीमके स्पर्शसे भीत होंगे तभी मेरे वचनोंको स्मरण करोगे। ( २२—२५ )

जब रथ, हाथी, घोड़े और सेनाके वीरोंको अग्निकी भांति भीमसेनसे जलते हुए देखोगे, तबही तुम लोग मेरी इन बातोंको स्मरण करोगे। तुम लोग यदि पाण्डवोंसे सन्धि न करोगे, तो तुम लोगोंके निमित्त महा भय उपास्थित होगा ! भीमसेनकी गदाकी चोटसे

महावनमिव च्छिन्नं यदा द्रक्ष्यसि पातितत् ।

बलं कुरूणां भीमेन तदा स्मर्ताऽसि मे वचः ॥ २८ ॥

वैशम्पायन उवाच-एतावदुक्त्वा राजा तु सर्वास्तान्पृथिवीपतीन् ।

अनुभाष्य महाराज पुनः प्रपच्छ संजयम् ॥ २९ ॥ [२२३६]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्व० धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—यदब्रूतां महात्मानौ वासुदेवधनंजयौ ।

तन्मे ब्रूहि महाप्राज्ञ शुश्रूषे वचनं तव ॥ १ ॥

संजय उवाच—शृणु राजन्यथादृष्टौ मया कृष्णधनंजयौ ।

ऊचतुश्चापि यद्वीरौ तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ २ ॥

पादांगुलीरभिप्रेक्षन्प्रयतोऽहं कृतांजलिः ।

शुद्धान्तं प्राविशं राजन्नाख्यातुं नरदेवयोः ॥ ३ ॥

नैवाऽभिमन्युर्न यमौ तं देशमभियान्ति वै ।

यत्र कृष्णौ च कृष्णा च सत्यभामा च भामिनी ॥ ४ ॥

उभौ मध्वासवक्षीबावुभौ चन्दनरूपितौ ।

सखिणौ वरवस्त्रौ तौ दिव्याभरणभूषितौ ॥ ५ ॥

भरकरही तुम लोग शान्ति लाभ करोगे ।  
जब कौरवोंके इस महाबलसे युक्त सेना-  
को भीमसेनके बलसे मरती हुई देखोगे  
तब तुम लोग मेरे वचनोंको स्मरण  
करोगे । (२६-२८)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्  
जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र ऐसा कह कर  
फिर सञ्जयसे पूछने लगे । (२९) २२३६

उद्योगपर्वमें अठारव अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें उनसठ अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! महात्मा  
कृष्ण और अर्जुनने जो कुछ वचन कहे  
हैं, वह मुझसे कहाँ तुम्हारे वचनोंको  
सुननेकी मुझे बहुतही इच्छा है । (१)

सञ्जय बोले, हे राजन् ! मैंने कृष्ण  
अर्जुनको जिस प्रकारसे देखा, उसे  
आप सुनिये । उन दोनोंने जो कुछ  
कहा है, वह भी आपसे कहूंगा । उन  
दोनों पुरुषोंसे बातचीत करनेके निमि-  
त्त मैंने सावधान होकर और हाथ जो-  
ड कर विनीत भावसे अपने चरणकी  
ओर देखता हुआ अन्तःपुरमें प्रवेश  
किया । हे राजेन्द्र ! जहाँपर कृष्ण  
अर्जुन और भामिनी द्रौपदी तथा सत्य-  
भामा रहती हैं, उस स्थानपर अभिमन्यु  
और नकुल सहदेवभी नहीं जाने पाते।  
उसी स्थानपर वे दोनों शत्रुनाशन  
साध्वी मधु पी करके चन्दनचर्चित

नैकरत्नविचित्रं तु कांचनं महदासनम् ।  
 विविधास्तरणाकीर्णं यत्राऽऽसातामरिंदमौ ॥ ६ ॥  
 अर्जुनोत्संगौ पादौ केशवस्योपलक्ष्ये ।  
 अर्जुनस्य च कृष्णायां सत्यायां च महात्मनः ॥ ७ ॥  
 कांचनं पादपीठं तु पार्थो मे प्रादिशत्तदा ।  
 तदहं पाणिना स्पृष्ट्वा ततो भूमावुपाविशम् ॥ ८ ॥  
 ऊर्ध्वरेखातलौ पादौ पार्थस्य शुभलक्षणौ ।  
 पादपीठादपहतौ तत्राऽपश्यमहं शुभौ ॥ ९ ॥  
 श्यामौ वृहतौ तरुणौ शालस्कंधाविवोद्धतौ ।  
 एकासनगतौ दृष्ट्वा भयं मां महदाविशत् ॥ १० ॥  
 इंद्रविष्णू समावेतौ मंदात्मानावबुध्यते ।  
 संश्रयाद् द्रोणभीष्माभ्यां कर्णस्य च विकत्थनात् ॥ ११ ॥  
 निदेशस्याविमौ यस्य मानसस्तस्य संत्स्यते ।  
 संकल्पो धर्मराजस्य निश्चयो मे तदाऽभवत् ॥ १२ ॥  
 सत्कृतश्चाऽन्नपानाभ्यामासीनो लब्धसत्क्रियः ।

और उत्तम वस्त्र तथा आभूषणोंसे भूषित होकर रत्नजटित सोनेके महामूल्य आसनोंपर बैठे थे । (२-६)

मैंने देखा कि अर्जुनकी गोदमें कृष्ण और द्रौपदी तथा सत्यभामाकी गोदमें अर्जुनके दोनों दोनों पांव हैं । अनन्तर अर्जुनने अपने पांवके नीचेका सोनेका पीठा मेरे बैठनेके निमित्त प्रदान किया, परन्तु मैं उसे हाथसे छूकर पृथ्वीहीपर बैठ गया । अर्जुनने जब पैरके नीचे रहनेवाले सोनेसे भूषित पीठसे अपने दोनों पैरको ऊपर उठाया, तब मैंने देखा, कि उनका पांव बहुतही शुभ लक्षणोंसे युक्त है और उनके,

पांवके तलवेमें उर्ध्वरेखा है । हे महाराज ! श्यामवर्ण, विशालमूर्ति, युवा अवस्था, शालके वृक्षकी भांति ऊंचे कृष्ण अर्जुन को एकही आसनपर बैठे हुए देखकर मैं महाभयसे पूरित होगया । (७-१०)

वे दोनों इन्द्र और साक्षात् विष्णुके समान हैं; इस बातको मन्दबुद्धि दुर्योधन भीष्म, द्रोणके बल और कर्णकी बढाईसे कुछभी नहीं समझ सकता है । ऐसे नरदेव पुरुषसिंह जिस युधिष्ठिरके आज्ञाकारी हैं, उस धर्मराज महात्मा युधिष्ठिरका मानसिक सङ्कल्प जो पूरा होगा, इसको मैंने उसी समय निश्चय कर लिया । मैं अन्न, जल, वस्त्र और

अंजलिं मूर्ध्नि संधाय तौ संदेशमचोदयम् ॥ १३ ॥

धनुर्गुणकिणांकेन पाणिना शुभलक्षणम् ।

पादमानमयन्पार्थः केशवं समचोदयत् ॥ १४ ॥

इंद्रकेतुरिवोत्थाय सर्वाभरणभूषितः ।

इंद्रवीर्योपमः कृष्णः संविष्टो माऽभ्यभाषत ॥ १५ ॥

वाचं स वदतां श्रेष्ठो ह्लादिनीं वचनक्षमाम् ।

त्रासिनीं धार्तराष्ट्राणां मृदुपूर्वा सुदारुणाम् ॥ १६ ॥

वाचं तां वचनार्हस्य शिक्षाक्षरसमन्विताम् ।

अश्रौषमहमिष्टार्था पश्चाद्बुद्धयहारिणीम् ॥ १७ ॥

वासुदेव उवाच- संजयेदं वचो ब्रूया धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।

कुरुमुख्यस्य भीष्मस्य द्रोणस्यापि च शृण्वतः ॥ १८ ॥

आवयोर्वचनात्सूत ज्येष्ठानप्यभिवादयन् ।

यवीयसश्च कुशलं पश्चात्पृष्ट्वैवमुत्तरम् ॥ १९ ॥

यजध्वं विविधैर्यज्ञैर्विप्रेभ्यो दत्तदक्षिणाः ।

पुत्रैर्दारैश्च मोदध्वं महद्भो भयमागतम् ॥ २० ॥

आभूषणोंसे सत्कार पाके मीठी बात-  
चीतसे संमानित होकर अपने दोनों  
हाथोंको जोड़के आपका कहा हुआ  
वचन और सन्देशको निवेदन किया ।  
तब अर्जुनने अपने धनुषसे शोभित हाथ-  
से कृष्णके शुभ लक्षणयुक्त चरणको  
पलोटते हुए मेरे वचनोंके उत्तर देनेके  
निमित्त उन्हें उपस्थित किया । ११-१४

सब भूषणोंसे भूषित, इंद्रके समान  
तेजस्वी, बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ; श्रीकृष्ण  
इंद्रकेतुकी भांति उठके आसनपर बैठे  
और मुझसे कहने योग्य, आनन्द देने-  
वाली, धार्तराष्ट्रोंको भय उत्पन्न करने-  
वाली, पहिले मीठी अन्तमें कठोर

वाणीसे बातचीत करने लगे । पीछे मैंने  
बोलनेवाले कृष्णके उपदेशके अक्षरोंसे  
भरे हुए, अर्थयुक्त, हृदयको सुखानेवाले  
वचनको सुना । (१५-१७)

श्रीकृष्ण बोले, “हे सज्जय ! तुम  
मेरे वचनके अनुसार श्रेष्ठ पुरुषोंको  
प्रणाम और छोटोंकी कुशल क्षेम पूछने-  
के अनन्तर कुरु-श्रेष्ठ भीष्म और द्रो-  
णाचार्यके समीप मनीषी धृतराष्ट्रसे यह  
वचन कहना, कि तुम लोगोंके निमित्त  
महाभय आकर उपस्थित हुआ है ।  
तुम लोग इसी समय ब्राह्मणोंको दान  
दक्षिणा देकर और विविध यज्ञोंको  
करके अपने कर्त्तव्य कर्मोंको पूरा कर

अर्थास्त्यजत पात्रेभ्यः सुतान्प्राप्तुत कामजान् ।  
 प्रियं प्रियेभ्यश्चरत राजा हि त्वरते जये ॥ २१ ॥  
 ऋणमेतत्प्रवृद्धं मे हृदयान्नाऽपसर्पति ।  
 यद्गोविंदेति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम् ॥ २२ ॥  
 तेजोमयं दुराधर्षं गांडीवं यस्य कार्मुकम् ।  
 मद्द्वितीयेन तेनेह वैरं वः सव्यसाचिना ॥ २३ ॥  
 मद्द्वितीयं पुनः पार्थ कः प्रार्थयितुमिच्छति ।  
 यो न कालपरीतो वाऽप्यपि साक्षात्पुरंदरः ॥ २४ ॥  
 बाहुभ्यामुद्रहेडूमिं दहेत्कुद्ध इमाः प्रजाः ।  
 पातयेत्त्रिदिवा देवान्योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥ २५ ॥  
 देवासुरमनुष्येषु यक्षगन्धर्वभोगिषु ।  
 न तं पश्याम्यहं युद्धे पांडवं योऽभ्ययाद्रणे ॥ २६ ॥  
 यत्तद्विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम् ।  
 एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ २७ ॥

लो। पुत्र कलत्रोंके सङ्ग भोग विलासकर लो; सत्पात्रोंको दान देदो; उत्तम पुत्रों को उत्पन्न कर लो और अपने प्रिय लोगोंकी प्रीतिके निमित्त प्रिय आचरण करलो, क्योंकि राजा युधिष्ठिर विजयके निमित्त शीघ्रता कर रहे हैं। १८-२१

मेरे दूर रहनेपर द्रौपदीने “गोविन्द ! गोविन्द !” कहके मुझे पुकारा था, वह बहुत दिनका ऋण अभीतक मेरे हृदयसे बाहर नहीं हुआ है। तेजसे भरी प्रचण्ड गाण्डीव जिसका धनुष है, मेरे सहित उस अर्जुनसे तुम्हारी शत्रुता हुई है। बिना कालके वशमें हुए कौन पुरुष मेरे समान अद्वितीय अर्जुनसे युद्ध करनेकी इच्छा करेगा ? और पुरुषोंकी बात तो

दूर रहे। साक्षात् इन्द्रभी अर्जुनको नहीं जीत सकते। जो मनुष्य अर्जुनको युद्ध में जीतनेमें समर्थ होगा, वह अपनी दोनों भुजाओंसे पृथ्वीकोभी उठा सकेगा; क्रोधित होनेसे समस्त प्राणियोंको भस्म कर सकेगा, और स्वर्गसे देवताओंकोभी भगा देनेमें समर्थ होगा। ( २२-२५ )

मैं देवता, गन्धर्व, असुर, यक्ष और मनुष्य तथा नागोंमेंभी ऐसा कोई पुरुष नहीं देखता हूं, जो युद्धमें अर्जुनके सम्मुख हो सके। विराट नगरमें इकट्ठे हुए असंख्य योद्धाओंके बीचमें जो अर्जुनकी वीरताकी अद्भुत बात सुनी जाती है, वही इसमें पूरा प्रमाण है। विराट नगरमें तुम लोग अकेले धनञ्जयसे

एकेन पांडुपुत्रेण विराटनगरे यदा ।

भग्नाः पलायत दिशः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ २८ ॥

बलं वीर्यं च तेजश्च शीघ्रता लघुहस्तता ।

अविषादश्च धैर्यं च पार्थान्नाऽन्यत्र विद्यते ॥ २९ ॥

इत्यब्रवीदृषीकेशः पार्थमुद्धर्षयन्गिरा ।

गर्जन्समयवर्षाव गगने पाकशासनः ॥ ३० ॥

केशवस्य वचः श्रुत्वा किरीटी श्वेतवाहनः ।

अर्जुनस्तन्महद्वाक्यमब्रवीद्रोमहर्षणम् ॥ ३१ ॥ [ २२६७ ]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयेन श्रीकृष्णवाक्यकथने एकोनषष्टितमोऽध्यायः॥५९॥

वैशम्पायन उवाच-संजयस्य वचः श्रुत्वा प्रज्ञाचक्षुर्जनेश्वरः ।

ततः संख्यातुमारेभे तद्वचो गुणदोषतः ॥ १ ॥

प्रसंख्याय च सूक्ष्मेण गुणदोषान्विचक्षणः ।

यथावन्मतितत्त्वेन जयकामः सुतान्प्रति ॥ २ ॥

बलाबलं विनिश्चित्य यथातथ्येन बुद्धिमान् ।

शक्तिं संख्यातुमारेभे तदा वै मनुजाधिपः ॥ ३ ॥

देवमानुषयोः शक्त्या तेजसा चैव पांडवान् ।

हारके भागे थे, यही इसमें यथेष्ट प्रमाण है । बल, वीर्य, शीघ्रता, लघुहस्तता, निर्भयता और धैर्य ये सब गुण अर्जुनके अतिरिक्त और किसी दूसरे पुरुषमें एकत्र विद्यमान नहीं हैं । (२६-२९)

हे महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्रने अपने वचनोंसे अर्जुनको आनन्दित करते हुए, यथा समयमें वर्षनेवाले आषाढके बादल की भांति गर्जते हुए इन सब वचनोंको कहा । श्वेतवाहन अर्जुनने भी उन्हीं रोंवा-खडा करनेवाले वचनोंका उल्लेख किया था । (३०-३१) [ २२६७ ]

उद्योगपर्वमें उचसठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें साठ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर प्रज्ञानेत्र धृतराष्ट्र सञ्जयकी बातोंको सुनकर उसके गुण दोषके विचारमें प्रवृत्त हुए । पुत्रोंके विजयकी आकांक्षा करनेवाले, विचक्षण, बुद्धिमान्, महाराज धृतराष्ट्रने अपनी बुद्धिके अनुसार अत्यन्त सूक्ष्मतासे गुण और दोषोंको विचारकर तथा दोनों ओरके बलको निश्चय करके, प्रभाव, उत्साह और मन्त्रशक्तिको यथार्थ रूपसे विचारना आरम्भ किया । (१-३)

अनन्तर पाण्डवोंको देव और मनुष्य सम्बन्धी तेजोंसे युक्त और शक्तिसम्पन्न

कुरुञ्जक्त्याऽल्पतरया दुर्योधनमथाऽब्रवीत् ॥ ४ ॥  
 दुर्योधनेयं चिन्ता मे शश्वन्न व्युपशाम्यति ।  
 सत्यं ह्येतदहं मन्ये प्रत्यक्षं नाऽनुमानतः ॥ ५ ॥  
 आत्मजेषु परं स्नेहं सर्वभूतानि कुर्वते ।  
 प्रियाणि चैषां कुर्वति यथाशक्ति हितानि च ॥ ६ ॥  
 एवमेवोपकर्तॄणां प्रायशो लक्षयामहे ।  
 इच्छन्ति बहुलं संतः प्रतिकर्तुं महत्प्रियम् ॥ ७ ॥  
 अग्निः साचिव्यकर्ता स्यात्खाण्डवे तत्कृतं स्मरन् ।  
 अर्जुनस्यापि भीमेऽस्मिन्कुरुपांडुसमागमे ॥ ८ ॥  
 जातिगृह्याभिपन्नाश्च पांडवानामनेकशः ।  
 धर्मादयः समेष्ट्यन्ति समाहूता दिवौकसः ॥ ९ ॥  
 भीष्मद्रोणकृपादीनां भयादशनिसन्निभम् ।  
 रिरक्षिषन्तः संरंभं गमिष्यन्तीति मे मतिः ॥ १० ॥  
 ते देवैः सहिताः पार्था न शक्याः प्रतिवीक्षितुम् ।  
 मानुषेण नरव्याघ्रा वीर्यवन्तोऽस्त्रपारगाः ॥ ११ ॥

तथा कौरवोंको थोड़ी शक्तिसे युक्त  
 निश्चय करके दुर्योधनसे कहने लगे, हे  
 दुर्योधन ! मुझे हर घड़ी यही चिन्ता  
 लगी रहती है, किसी बातसेभी इसकी  
 निवृत्ति नहीं होती है । केवल अनुमान  
 से ही नहीं, मैं इसे प्रत्यक्षही मालूम  
 करता हूं । पुत्रोंके ऊपर सबही प्रेम  
 करते हैं, और अपनी शक्तिके अनुसार  
 उनके प्रिय कार्य और हितका अनुष्ठान  
 करते हैं । ( ४-६ )

जो लोग उपकार करते हैं, उनके  
 विषयमेंभी इसी प्रकारकी बात जानी  
 जाती है । उत्तम पुरुष उपकारी लोगोंके  
 निमित्त बहुतसे उत्तम और प्रिय कार्य-

को करके उनका प्रत्युपकार करनेकी  
 इच्छा करते हैं; इस लिये अग्निभी खा-  
 ण्डव वनमें अर्जुनके किये हुए उपकार  
 को स्मरण करके, इस भयङ्कर कुरुपाण्ड-  
 वोंके संग्राममें अर्जुनकी सहायता करेंगे;  
 और पूरी रीतिपर बुलानेसे धर्म आदि  
 देवताभी पुत्र प्रेमसे पाण्डवोंपर अनुकूल  
 होकर उनकी सहायताको आवेंगे । मुझे  
 निश्चय बोध होता है, कि भीष्म द्रोण  
 और कृपाचार्यके क्रोधसे उनकी रक्षा  
 करनेके निमित्त वे अवश्यही अभिलाषी  
 होंगे । इससे देवताओंकी सहायतासे  
 युक्त पाण्डवोंकी ओरको कोई पुरुष  
 युद्धमें देखभी न सकेगा । ( ७-११ )



दुरासदं यस्य दिव्यं गांडीवं धनुरुत्तमम् ।  
 दारुणौ चाऽक्षयौ दिव्यौ शरपूर्णौ महेषुधी ॥ १२ ॥  
 वानरश्च ध्वजे दिव्यो निःसंगो धूमवद्गतिः ।  
 रथश्च चतुरंतायां यस्य नास्ति समः क्षितौ ॥ १३ ॥  
 महामेघनिभश्चापि निर्घोषः श्रूयते जनैः ।  
 महाशनिसमः शब्दः शात्रवाणां भयंकरः ॥ १४ ॥  
 यं चातिमानुषं वीर्यं कृत्स्नो लोको व्यवस्यति ।  
 देवानामपि जेतारं यं विदुः पार्थिवारणे ॥ १५ ॥  
 शतानि पंच चैवेषून्धो गृह्णन्वैव दृश्यते ।  
 निमेषान्तरमात्रेण सुचन्दूरं च पातयन् ॥ १६ ॥  
 यमाह भीष्मो द्रोणश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च ।  
 मद्रराजस्तथा शल्यो मध्यस्था ये च मानवाः ॥ १७ ॥  
 युद्धायाऽवास्थितं पार्थ पार्थिवैरतिमानुषैः ।  
 अशक्यं नरशार्दूलं पराजितुमरिदमम् ॥ १८ ॥  
 क्षिपत्येकेन वेगेन पंच बाणशतानि यः ।  
 सहस्रं बाहुवीर्येण कार्तवीर्यस्य पांडवम् ॥ १९ ॥

जिसके देव-लोकके बने प्रसिद्ध गा-  
 ण्डीव धनुष और वरुण तथा अग्निके  
 दिये हुए अक्षय तूणीर हैं, जिसके रथके  
 ध्वजाकी गति अग्निके धुएँकी भांति  
 कहीं भी नहीं रुक सकती; जिसका दिव्य  
 महारथ संपूर्ण पृथ्वीभरमें अतुल्य  
 है; जिसका शत्रुओंको महाभय  
 देनेवाला वज्रके समान महाघोर नाद  
 सब लोगोंको सुन पड़ता है; सब कोई  
 जिसको महावीर्य और महापराक्रमी  
 जानते हैं, तथा भूपालवृन्द जिसको  
 देवताओंसे भी युद्धमें अजेय समझते हैं;  
 जो एकही बार पांच सौ बाणोंको लेकर

क्षण मात्रमें बहुत दूरतक चला सकता  
 है, और कोईभी उस शीघ्रताको नहीं  
 देख सकता है, जो बाहुबलमें स्वामी  
 कार्तिकके समान होकर युद्धमें स्थिर  
 रहता है, रथिश्रेष्ठ जिस अर्जुनको भीष्म,  
 द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और मद्र-  
 राज शल्य तथा और भी महावीर पुरुष  
 लोग अलौकिकवीर्य और बलसे युक्त,  
 तथा भूपालोंसे भी न जीतने योग्य कहके  
 प्रशंसा किया करते हैं । ( १२-१८ )

जो एक सङ्ग पांच सौ बाणोंको  
 चलाते हैं, उसी महापराक्रमी, कार्तवीर्य  
 अर्जुन के समान बाहुवीर्यसे संपन्न,

तमर्जुनं महेष्वासं महेन्द्रोपेन्द्रविक्रमम् ।  
 निघ्नंतमिव पश्यामि विमर्देऽस्मिन्महाहवे ॥ २० ॥  
 इत्येवं चिंतयन्कृत्स्नमहोरात्राणि भारत ।  
 अनिद्रो निःसुप्तश्चाऽस्मि कुरूणां शमचिंतया ॥ २१ ॥  
 क्षयोदयोऽयं सुमहान्कुरूणां प्रत्युपस्थितः ।  
 अस्य चेत्कलहस्यांस्तः शमादन्यो न विद्यते ॥ २२ ॥  
 शमो मे रोचते नित्यं पार्थैस्तात न विग्रहः ।  
 कुरुभ्यो हि सदा मन्ये पांडवाञ्शक्तिमत्तरान् ॥ २३ ॥ [२२९०]

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि धृतराष्ट्रविवेचने षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

वैशम्पायन उवाच-पितुरेतद्वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यभर्षणः ।  
 आधाय विपुलं क्रोधं पुनरेवेदमब्रवीत् ॥ १ ॥  
 अशक्या देवसचिवाः पार्थाः स्युरिति यद्ववान् ।  
 मन्यते तद्वयं व्येतु भवतो राजसत्तम ॥ २ ॥  
 अकामद्वेषसंयोगालाभाद् द्रोहाच्च भारत ।  
 उपेक्षया च भावानां देवा देवत्वमाप्नुवन् ॥ ३ ॥

इन्द्रके समान बलवान् अर्जुनको मैं अपने  
 अन्तःकरणसे ऐसा देखता हूं, कि जैसे  
 वह महा भयङ्कर युद्धमें कौरवी सेनाका  
 संहार कर रहा है। हे भारत ! मैं रात  
 दिन इसी प्रकारकी चिन्ता करता रहता  
 हूं, कि किस प्रकारसे कौरवोंमें शान्ति  
 होगी ! इसी सोच चिन्तामें डूबकर मैं  
 निद्रा और सुखसे रहित होगया हूं।  
 हे तात ! कौरवोंकी क्षय होनेका यह  
 महा-भयङ्कर समय उपस्थित हुआ है।  
 शान्तिके निमित्त यदि इस झगडेको शेष  
 करनेका कोई उपाय न हो, तो पाण्ड-  
 वोंके सङ्ग सन्धि करनेकी मेरी इच्छा है,  
 किन्तु विग्रह नहीं, क्योंकि मैं पाण्डवोंको

कौरवोंसे अधिक शक्तिसंपन्न और बल-  
 वान समझता हूं। १९-२३ [२२९०]

उद्योगपर्वमें साठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें इकसठ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अत्यन्त  
 हठी, ( अर्थात् किसीके वचनको न  
 सुननेवाले ) धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन पिताकी  
 बातको सुनके बहुतही क्रोधसे पूरित  
 होकर यह वचन बोले, हे राजसत्तम !  
 आप जो देवतोंसे रक्षित पाण्डवोंको  
 अपराजित समझते हैं, सो भय त्याग  
 दीजिये। हे भारत ! पहिले, द्वैपायन  
 व्यासदेव और महा तपस्वी नारद तथा  
 जमदग्नि के पुत्र परशुरामजीने मुझसे

इति द्वैपायनो व्यासो नारदश्च महातपाः ।

जामदग्न्यश्च रामो नः कथामकथयत्पुरा ॥ ४ ॥

नैव मानुषवद्देवाः प्रवर्तन्ते कदाचन ।

कामात्क्रोधात्तथा लोभाद् द्वेषाच्च भरतर्षभ ॥ ५ ॥

यदा ह्यग्निश्च वायुश्च धर्म इन्द्रोऽश्विनावपि ।

कामयोगात्प्रवर्त्तेरन्न पार्था दुःखमाप्नुयुः ॥ ६ ॥

तस्मान्न भवता चिन्ता कार्यैषा स्यात्कथंचन ।

दैवेष्वपेक्षका ह्येते शश्वद्भावेषु भारत ॥ ७ ॥

अथ चेत्कामसंयोगाद्द्वेषो लोभश्च लक्ष्यते ।

देवेषु दैवप्राभाण्यान्नैषां तद्विक्रमिष्यति ॥ ८ ॥

मयाभिमन्त्रितः शश्वज्जातवेदाः प्रशाम्यति ।

दिधक्षुः सकललोकान्परिक्षिप्य समन्ततः ॥ ९ ॥

यद्वा परमकं तेजो येन युक्ता दिवौकसः ।

ममाऽप्यनुपमं भूयो देवेभ्यो विद्धि भारत ॥ १० ॥

विदीर्यमाणां वसुधां गिरीणां शिखराणि च ।

लोकस्य पश्यतो राजन्स्थापयाम्यभिमन्त्रणात् ॥ ११ ॥

यह वचन कहा था, कि काम, द्वेषके संयोगसे रहित, लोभ, द्रोहशून्य और विषयोंको वृथा समझ करही देवता लोग देवत्व पदको प्राप्त हुए हैं। ( १-२ )

हे भरतर्षभ ! देवता मनुष्यकी भांति काम, क्रोध, लोभ, दया और द्वेषसे किसी कार्यमें प्रवृत्त नहीं होते ! पाण्डवोंके दुःखी होनेसे यह बात सिद्ध होती है, कि अग्नि, इन्द्र, अश्विनीकुमार, वायु और धर्म इनकी इच्छासे सहाय्य नहीं करते हैं। हे भारत ! आप कभी ऐसी चिन्ता न किया कीजिये; क्योंकि ये देवता लोग शम दम आदि देव-भावोंपर

सब समय आरूढ रहते हैं। तब यदि कामके संयोगसे इन लोगोंमें द्वेष और लोभ मालूम हो, तो देवोंके प्रमाणके अनुसार वे कभी पराक्रमको नहीं प्रकाशित कर सकेंगे। ( ५-८ )

अग्नि यदि सब ओर व्याप्त होके सब लोगोंको जलानेकी इच्छा करेगी, तो मेरे मन्त्रके प्रभावसे उसी समय बुझ सकती है। हे भारत ! देवता लोग परम तेजस्वी हैं, यह बात ठीक है, पर उन देवताओंसेभी मेरे तेजको आप अधिक समाझिये। हे राजेन्द्र ! पृथ्वी तथा पर्वत भी टुकड़े टुकड़े हो जायं, तौभी मैं

चेतनाचेतनस्याऽस्य जंगमस्थावरस्य च ।  
 विनाशाय समुत्पन्नमहं घोरं महास्वनम् ॥ १२ ॥  
 अश्मवर्षं च वायुं च शमयामीह नित्यशः ।  
 जगतः पश्यतोऽभीक्ष्णं भूतानामनुकंपया ॥ १३ ॥  
 स्तंभितास्वप्सु गच्छन्ति मया रथपदातयः ।  
 देवासुराणां भावानामहमेकः प्रवर्तिता ॥ १४ ॥  
 अक्षौहिणीभिर्यान्देशान्यामि कार्येण केनचित् ।  
 तत्राऽश्वा मे प्रवर्तते यत्र यत्राऽभिकामये ॥ १५ ॥  
 भयानकानि विषये व्यालादीनि न संति मे ।  
 मंत्रगुप्तानि भूतानि न हिंसन्ति भयंकराः ॥ १६ ॥  
 निकामवर्षी पर्जन्यो राजन्विषयवासिनाम् ।  
 धर्मिष्ठाश्च प्रजाः सर्वा इतयश्च न संति मे ॥ १७ ॥  
 अश्विनावथ वाय्वग्नी भरुद्भिः सह वृत्रहा ।  
 धर्मश्चैव मया द्विष्टान्नात्सहन्तेऽभिरक्षितुम् ॥ १८ ॥

सब लोगोंके सम्मुख मन्त्रसे उन्हें फिर ज्यों का त्यों करके जिस स्थानमें थे, उसी स्थानमें स्थापित कर सकता हूं । ( ९-११ )

इस जड़ और चेतन जगत्के नाशके निमित्त, यदि शिला बरसे और प्रचण्ड वायु चले; तौभी मैं भूतोंकी रक्षाके निमित्त सबके संमुखही उसे बारबार निवारण कर सकता हूं । मैं जलको स्तंभित कर दूं, तो उस परसे रथ, हाथी, घोड़े और पदाति सेनाभी जा सकती है, इससे मैं अकेलाही सब सुर और असुरों के प्रभावको उत्पन्न करके जगतका चलानेवाला हूं । ( १२-१४ )

किसी कार्यके निमित्त मैं अक्षौहिणी

सेनासे युक्त होकर जब यात्रा करता हूं, तब जिस जिस स्थानमें इच्छा करता हूं, वहांही मेरे रथ और घोड़ोंकी गति होती है । हे राजेन्द्र ! मेरे अधिकारमें सर्प-आदि भयानक हिंसक जन्तुभी प्राणियोंके मन्त्रबलसे रक्षित होनेपर हिंसक लोग उनको नहीं मार सकते । हे राजेन्द्र ! जलको वर्षानेवाले बादल मेरी इच्छाके अनुसार यथेष्ट वर्षा कर सकते हैं । मेरी सब प्रजा धर्मिष्ठ है, इससे मेरे राज्यमें अति-वृष्टि और अनावृष्टि आदि होनेकीभी संभावना नहीं । ( १५-१७ )

इससे मेरे द्वेषी शत्रुकी रक्षा करनेके निमित्त अश्विनी कुमार, अग्नि, देवताओंके सहित इन्द्र और धर्म कोईभी उत्साहित

यदि ह्येते समर्थाः स्युर्मद्विषस्त्रातुमंजसा ।  
 न स्म त्रयोदश समाः पार्था दुःखमवाप्नुयुः ॥ १९ ॥  
 नैव देवा न गन्धर्वा नाऽसुरा न च राक्षसाः ।  
 शक्तास्त्रातुं मया द्विष्टं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २० ॥  
 यदभिध्याम्यहं शश्वच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् ।  
 नैतद्विपन्नपूर्वं मे मित्रेष्वरिषु चोभयोः ॥ २१ ॥  
 भविष्यतीदमिति वा यद्ब्रवीमि परंतप ।  
 नाऽन्यथा भूतपूर्वं च सत्यवागिति मां विदुः ॥ २२ ॥  
 लोकसाक्षिकमेतन्मे माहात्म्यं दिक्षु विश्रुतम् ।  
 आश्वासनार्थं भवतः प्रोक्तं न श्लाघया नृप ॥ २३ ॥  
 न ह्यहं श्लाघनो राजन्भूतपूर्वं कदाचन ।  
 असदाचरितं ह्येतद्यदात्मानं प्रशंसति ॥ २४ ॥  
 पाण्डवांश्चैव मत्स्यांश्च पांचालान्केकयैः सह ।  
 सात्यकिं वासुदेवं च श्रोताऽसि विजितान्मया ॥ २५ ॥  
 सरितः सागरं प्राप्य यथा नश्यन्ति सर्वशः ।  
 तथैव ते विनश्यन्ति मामासाद्य सहान्वयाः ॥ २६ ॥

न होंगे ! ये लोग यथार्थमें यदि  
 पाण्डवोंकी रक्षा कर सकते, तो वह लोग  
 कभी तेरह वर्ष तक वनमें इतना दुःख  
 न पाते । मैं आपसे सत्य कहता हूं, कि  
 मेरे द्वेषी शत्रुकी रक्षा करनेके निमित्त  
 देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस कोईभी  
 समर्थ नहीं है । ( १८-२० )

हे परन्तप ! मित्र वा शत्रु दोनोंके  
 विषयमें मैंने पहिले जो कुछ शुभ अथ-  
 वा अशुभ विचार किया था, वह कभी  
 भी निष्फल नहीं हुआ । अथवा किसी  
 विषयमें “ यह होगा ” ऐसी यदि मैंने  
 पहिले कभी बात कही थी, तो वह अ-

न्यथा नहीं हुई । इसीसे सब लोग मेरे  
 वचनोंको सत्य समझते हैं । हे राजेन्द्र !  
 सब संसार मात्र मेरे इस जगत-विख्यात  
 माहात्म्यके साक्षी हैं । आपको धैर्य देने  
 हीके निमित्त मैंने इन वचनोंको कहा  
 है, अपनी बड़ाई नहीं करी है । २१-२३  
 हे राजेन्द्र ! मैंने पहिले कभी अपनी  
 बड़ाई नहीं करी थी; क्योंकि आपके  
 निकट अपनी प्रशंसा करना असत  
 आचरण कहलाता है । आप पाण्डव,  
 मत्स्य, पाञ्चाल और केकय, सात्यकी  
 तथा कृष्णकोभी मुझसे हारे हुए सुनेंगे  
 जैसे नदी समुद्रमें जाकर लुप्त हो जाती

परा बुद्धिः परं तेजो वीर्यं च परमं मम ।

परा विद्या परो योगो मम तेभ्यो विशिष्यते ॥२७॥

पितामहश्च द्रोणश्च कृपः शल्यः शलस्तथा ।

अस्त्रेषु यत्प्रजानंति सर्वं तन्मयि विद्यते ॥ २८ ॥

इत्युक्त्वा संजयं भूयः पर्यपृच्छत भारत ।

ज्ञात्वा युयुत्सोः कार्याणि प्राप्तकालमरिन्दमः ॥२९॥[२३१९]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि दुर्योधनवाक्य एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

वैशम्पायन उवाच—तथा तु पृच्छंतमनीव पार्थ वैचित्रवीर्यं तमर्चिन्तयित्वा ।

उवाच कर्णो धृतराष्ट्रपुत्रं प्रहर्षयन्संसदि कौरवाणाम् ॥ १ ॥

मिथ्या प्रतिज्ञाय मया यदस्त्रं रामात्कृतं ब्रह्ममयं पुरस्तात् ।

विज्ञायते नाऽस्मि तदैवमुक्तस्तेनाऽतकाले प्रतिभाऽस्यतीति ॥ २ ॥

महापराधे ह्यपि यन्न तेन महर्षिणाऽहं गुरुणा च शप्तः ।

शक्तः प्रदग्धुं ह्यपि तिग्मतेजाः ससागरामप्यवनिं महर्षिः ॥ ३ ॥

है, वैसेही मेरे समीप आनेसे वे सब लोग अपने अनुचरों समेत मारे जायंगे। उन लोगोंसे मेरी बुद्धि तेज, वीर्य, विद्या और उपाय सबही अधिक श्रेष्ठ तथा उत्तम हैं। शस्त्रके विषयमें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शल्य और शल जो कुछ जानते हैं, वह सब मुझमें भी विद्यमान है। ( २४—२८ )

हे भारत ! शत्रुनाशन दुर्योधन ऐसे वचन कहके, शत्रुपक्षके सब कार्योंके वृत्तान्तको जानकर, युद्ध करनेकी इच्छा करतेहुए, समयके अनुसार जाननेके योग्य विषयोंको सञ्जयसे फिर पूछने लगे। (२९)

उद्योगपर्वमें इकसठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें बासठ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, दुर्योधन

सञ्जयसे इसी प्रकार सब विषयोंको पूछ रहे थे, उसी समयमें कर्ण अत्यन्त पराक्रमी और महाबली अर्जुनकी कुछभी चिन्ता न करके कौरवोंकी सभामें धृतराष्ट्र-पुत्रोंको हर्षित और आनन्दित करते हुए बोले, कि पहिले मैंने झूठ कहके अर्थात् “ मैं ब्राह्मणका पुत्र हूँ ” यह कहकर परशुरामजीसे ब्रह्मास्त्र ग्रहण किया था; उस समय गुरुदेव परशुरामजीने मेरे इस महा अपराधको जान कर मुझे यह शाप दिया था, कि तुम्हारी मृत्युके समय इस ब्रह्मअस्त्रकी प्रतिभा बिलकुल न रहेगी, इस अस्त्रको तुम भूल जाओगे ( १-३ )

वह महातेजस्वी महर्षि क्रोधित होनेसे इस समस्त पृथ्वीको भस्म कर सकते थे,

प्रसादितं ह्यस्य मया मनोऽभूच्छ्रूषया स्वेन च पौरुषेण ।  
 तदस्ति चास्त्रं मम सावशेषं तस्मात्समर्थोऽस्मि ममैष भारः ॥ ४ ॥  
 निमेषमात्रात्तमृषेः प्रसादमवाप्य पांचालकरूपमत्स्यान् ।  
 निहत्य पार्थान्सह पुत्रपौत्रैर्लोकानहं शस्त्रजितान्प्रपत्स्ये ॥ ५ ॥  
 पितामहस्तिष्ठतु ते समीपे द्रोणश्च सर्वे च नरेंद्रमुखाः ।  
 यथा प्रधानेन बलेन गत्वा पार्थान्हनिष्यामि ममैष भारः ॥ ६ ॥  
 एवं ब्रुवंतं तमुवाच भीष्मः किं कथ्यसे कालपरीतबुद्धे ।  
 न कर्ण जानासि यथा प्रधाने हते हताः स्युर्धृतराष्ट्रपुत्राः ॥ ७ ॥  
 यत्खाण्डवं दाहयता कृतं हि कृष्णद्वितीयेन धनंजयेन ।  
 श्रुत्वैव तत्कर्म नियंतुमात्मा युक्तस्त्वया वै सह बांधवेन ॥ ८ ॥  
 यां चापि शक्तिं त्रिदशाधिपस्ते ददौ महात्मा भगवान्महेंद्रः ।  
 भस्मीकृतां तां समरे विशीर्णां चक्राहतां द्रक्ष्यसि केशवेन ॥ ९ ॥  
 यस्ते शरः सर्पमुखो विभाति सदाऽग्न्यमात्यैर्महितः प्रयत्नात् ।

परन्तु मैंने अपनी सेवा और पुरुषार्थसे उनके चित्तको प्रसन्न कर लिया था । वह अस्त्रभी अभीतक विद्यमान है और मेरी आयुभी समाप्त नहीं हुई है इससे अर्जुनको जीतनेका मैंही भार लेता हूँ; मैं इस विषयमें पूर्ण समर्थ हूँ । ( ३-४ )

ऋषिके उस परम अस्त्रको पाकर अब मैं पाञ्चाल, करुष, मत्स्य और पुत्र पौत्रके सहित पाण्डवोंको क्षण मात्रमें जीत सकता हूँ; और उनको मारकर अपने शस्त्रके प्रतापसे सब राज्य को ले लूंगा । भीष्म, द्रोण तथा और भी मुख्यमुख्य रौजा लोग आपके समीप बैठे रहें, मैं अकेलेही अपने बलके प्रभावसे युद्धमें जाकर पाण्डवोंको मारूंगा; यह

भार मेरेही ऊपर है । ( ५-६ )

कर्ण ऐसेही वचनोंको कह रहे थे, उसी समयमें भीष्म उनसे बोले, हे कर्ण ! कालके वशमें होकर तुम्हारी बुद्धि नाश होगई है । तुम व्यर्थ अपनी बड़ाई क्यों करते हो ? यह क्या तुम नहीं जानते हो, कि प्रधान लोगोंके मरनेहीसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी मृत्यु होगी ? अर्जुनने कृष्णके सङ्ग मिलकर खाण्डव वनको भस्म किया था, उस बातको समझ कर तुमको बन्धु-बान्धवोंके सहित चुप रहनाही उचित था । देवलोकके स्वामी महात्मा इन्द्रने तुमको जो शक्ति दी है, उसे तुम कृष्णके चक्रके प्रहारसे टुकड़े टुकड़े होकर जलती हुई देखोगे । ७-९

हे कर्ण ! सर्पमुखी बाण जो तुम्हारे

स पांडुपुत्राभिहतः शरौघैः सह त्वया यास्यति कर्ण नाशम् ॥ १० ॥

बाणस्य भीमस्य च कर्णं हन्ता किरीटिनं रक्षति वासुदेवः ।

यस्त्वादृशानां च वरीयसां च हन्ता रिपूणां तुमुले प्रगाढे ॥ ११ ॥

कर्ण उवाच- असंशयं वृष्णिपतिर्यथोक्तस्तथा च भूयांश्च ततो महात्मा ।

अहं यदुक्तः परुषं तु किंचित्पितामहस्तस्य फलं शृणोतु ॥ १२ ॥

न्यस्यामि शस्त्राणि न जातु संख्ये पितामहो द्रक्ष्यति मां सभायाम् ।

त्वयि प्रशान्तिं तु मम प्रभावं द्रक्ष्यन्ति सर्वे भुवि भूमिपालाः ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच-इत्येवमुक्त्वा स महाधनुष्मान्हित्वा सभां स्वं भवनं जगाम ।

भीष्मस्तु दुर्योधनमेव राजन्मध्ये कुरूणां प्रहसन्नुवाच ॥ १४ ॥

सत्यप्रतिज्ञः किल सूतपुत्रस्तथा स भारं विषहेत कस्मात् ।

व्यूहं प्रतिव्यूह्य शिरांसि भित्त्वा लोकक्षयं पश्यत भीमसेनात् ॥ १५ ॥

आवंत्यकालिंगजयद्रथेषु चेदिध्वजे तिष्ठति बाह्निके च ।

अहं हनिष्यामि सदा परेषां सहस्रशश्चाऽयुतशश्च योधान् ॥ १६ ॥

पास शोभित है, और जिसकी तुम फूलोंकी मालासे सदा पूजा किया करते हो; वहभी अर्जुनके बाणोंसे खाण्डित होकर तुम्हारे सहित मृत्युको प्राप्त होगा, हे कर्ण ! जिन्होंने महायुद्धमें तुम्हारे समान वरन तुमसेभी श्रेष्ठ शत्रुओंको मारा है, वही ( बाणासुर तथा नरकासुरको पराजित करनेवाले ) कृष्ण अर्जुनकी रक्षा करते हैं । ( १०-११ )

कर्ण बोले, महात्मा कृष्ण जिस प्रकारसे वर्णन किये गये, वैसेही हैं, वरन उससेभी कुछ श्रेष्ठ हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु पितामहने जो मुझको थोड़ेसे कठोर वचन कहे, उसका फल सुनिये । मैंने इन सम्पूर्ण शस्त्रोंको त्याग दिया; पितामह अब मुझे

कभी युद्धमें न देखेंगे; केवल सभाहीमें देखेंगे । हे पितामह ! तुम्हारे मरनेके अनन्तर सब राजा लोग मेरे प्रभाव और पराक्रमको देखेंगे । ( १२-१३ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! वह महा धनुर्द्वारी कर्ण ऐसा कहके सभासे उठकर अपने घरको चले गये । तब भीष्म हंसते हंसते दुर्योधनसे बोले, कि सूतपुत्र कर्ण सत्यप्रतिज्ञ कहके प्रसिद्ध है । परन्तु उसने जो यह कहा; “ कि कलिङ्गराज, चेदीपति बाह्नीक, जयद्रथ आदिके बैठे रहनेपर भी मैं अकेलाही सौ सौ हजार वीरोंको नित्य मारूंगा ” सो वह इस भारको कैसे पूरा कर सकेगा ? यह देखो, भीमसेन व्यूहके विरुद्ध व्यूह बनाकर सबके



यदैव रामे भगवत्यर्निचे ब्रह्म ब्रुवाणः कृतवांस्तदस्त्रम् ।

तदैव धर्मश्च तपश्च नष्टं वैकर्तनस्याऽधमपूरुषस्य ॥ १७ ॥

वैशंपायन उवाच-तथोक्तवाक्ये नृपतींद्र भीष्मे निक्षिप्य शस्त्राणि गते च कर्णे ।

वैचित्रवीर्यस्य सुतोऽल्पबुद्धिर्दुर्योधनः शान्तनवं बभाषे ॥ १८ ॥ [२३३७]

इति श्रीमहाभारते संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि कर्णभीष्मवाक्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

दुर्योधन उवाच- सदृशानां मनुष्येषु सर्वेषां तुल्यजन्मनाम् ।

कथमेकांततस्तेषां पार्थानां मन्यसे जयम् ॥ १ ॥

वयं च तेऽपि तुल्या वै वीर्येण च पराक्रमैः ।

समेन वयसा चैव प्रातिभेन श्रुतेन च ॥ २ ॥

अस्त्रेण योधयुग्या च शीघ्रत्वे कौशले तथा ।

सर्वे स्म समजातीयाः सर्वे मानुषयोनयः ॥ ३ ॥

पितामह विजानीषे पार्थेषु विजयं कथम् ।

नाऽहं भवति न द्रोणे न कृपे न च बाह्निके ॥ ४ ॥

अन्येषु च नरेन्द्रेषु पराक्रम्य समारभे ।

शिरको तोडकर प्राणियोंके संहार करने में प्रवृत्त होता है । पुरुषोंमें अधम वैकर्तनने जब निन्दारहित परशुराम-जीके यहां “ मैं ब्राह्मणका पुत्र हूं ” कहके अस्त्र ग्रहण किया, तभी उसका धर्म और तप नष्ट होगया । (१४-१७)

हे राजेन्द्र ! भीष्मके ऐसे कहने और कर्णके शस्त्रोंको परित्याग करके चले जानेपर धृतराष्ट्रपुत्र नीचबुद्धि दुर्योधन शान्तनुनन्दन भीष्मसे कहने लगे । १८

उद्योगपर्वमें बासठ अध्याय समाप्त । [२३३७]

उद्योगपर्वमें तिरसठ अध्याय ।

दुर्योधन बोले, हे पितामह ! पाण्ड-वोंका मनुष्योंकी भांति रूप है और मनुष्यों ही की भांति उत्पन्न भये हैं,

तप उन लोगोंहीकी विजय होगी, इस बातको आप कैसे स्थिर करते हैं ? देखिये वीर्य, पराक्रम, बुद्धि, अवस्था, शास्त्रज्ञान, अस्त्रोंकी शिक्षा, युद्धका अभ्यास, शीघ्रता और कौशलमें वह और हम लोग सबही समान हैं; सब कोई एक जाति हैं और सबही मनुष्य-योनिसे उत्पन्न हुए हैं; तब उन्हीं लोगों की जीत होगी, इस बातको आप किस प्रकारसे जानते हैं ? हे राजन् ! मैं आपके ऊपर वा द्रोणाचार्य, कृपा-चार्य, बाह्नीक तथा अन्य भूपालोंके ऊपरभी युद्धके कार्यको निर्भर नहीं करता हूं, मैं, अपने पराक्रमहीसे युद्धकी तैयारी करता हूं । ( १-५ )

अहं वैकर्तनः कर्णो भ्राता दुःशासनश्च मे ॥ ५ ॥

पाण्डवान्समरे पंच हनिष्यामः शितैः शरैः ।

ततो राजन्महायज्ञैर्विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥ ६ ॥

ब्राह्मणांस्तर्पयिष्यामि गोभिरश्वैर्धनेन च ।

यदा परिकरिष्यन्ति ऐणेयानि च तंतुना ॥

अतरित्रानि च जले बाहुभिर्मामका रणे ॥ ७ ॥

पश्यन्तस्ते परांस्तत्र रथनागसमाकुलान् ।

तदा दर्पं विमोक्ष्यन्ति पाण्डवाः स च केशवः ॥ ८ ॥

विदुर उवाच— इह निःश्रेयसं प्राहुर्वृद्धा निश्चितदर्शिनः ।

ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः ॥ ९ ॥

तस्य दानं क्षमा सिद्धिर्यथावदुपपद्यते ।

दमो दानं तपो ज्ञानमधीतं चाऽनुवर्तते ॥ १० ॥

दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं दम उत्तमम् ।

विपाप्मा वृद्धतेजास्तु पुरुषो विंदते महत् ॥ ११ ॥

कन्याद्वय इव भूतानामदांतिभ्यः सदा भयम् ।

येषां च प्रतिषेधार्थं क्षत्रं सृष्टं स्वयंभुवा ॥ १२ ॥

मैं कर्ण और मेरा भाई दुःशासन, ये ही तीन मनुष्य अपने चोखे बाणोंसे पांचों पाण्डवोंको मारेंगे; फिर उसके अनन्तर बहुत दक्षिणासे युक्त बहुतसे महायज्ञ करके और गौ, घोड़े तथा धन दानसे मैं ब्राह्मणोंको तृप्त करूंगा। मेरे सेनापति लोग जब फाँसेसे पकड़े हुए हरिणोंकी भांति शत्रुओंको रथ, हाथी और घोड़ोंके सहित व्याकुल देख कर उन्हें घेर लेंगे, उसी समय पाण्डव और कृष्णका गर्व छूट जायगा। ( ५-८ )

विदुर बोले, यथार्थ बातोंके जानने-वाले पण्डित लोग इस संसारमें दमहीको

उत्तम साधन कहते हैं; विशेष करके ब्राह्मणोंके निमित्त दम सनातन धर्म है। दमशाली मनुष्यको दान, क्षमा और सिद्धि स्वाभाविकही उत्पन्न होती है। दम, दान, तप, ज्ञान, विद्या और तेज बढ़ाता है; दमही उत्तम और पवित्र वस्तु है। दमके प्रभावसे मनुष्य सब पापोंसे छूटकर तथा सब तेजसे युक्त होके परम-पदको पाते हैं ( ९-११ )

राक्षसोंसे जैसे सबको भय उत्पन्न होता है, वैसेही दुष्ट पुरुषोंसेभी लोगोंको सदा भय हुआ करता है। दुष्ट अधर्मियोंके मारनेहीके निमित्त ब्रह्माने क्षत्रियोंको

आश्रमेषु चतुर्ष्वर्हुर्ममेवोत्तमं व्रतम् ।  
 तस्य लिंगं प्रवक्ष्यामि येषां समुदयो दमः ॥ १३ ॥  
 क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम् ।  
 इन्द्रियाभिजयो धैर्यं मार्दवं हीरचापलम् ॥ १४ ॥  
 अकार्पण्यमसंरंभः संतोषः श्रद्धाधानता ।  
 एतानि यस्य राजेन्द्र स दांतः पुरुषः स्मृतः ॥ १५ ॥  
 कामो लोभश्च दर्पश्च मन्युर्निद्रा विकत्थनम् ।  
 मान ईर्ष्या च शोकश्च नैतद्दान्तो निषेवते ।  
 अजिह्वमशठं शुद्धमेतद्दांतस्य लक्षणम् ॥ १६ ॥  
 अलोलुपस्तथाऽल्पेप्सुः कामानामविचिंतिता ।  
 समुद्रकल्पः पुरुषः स दांतः परिकीर्तितः ॥ १७ ॥  
 सुवृत्तः शीलसंपन्नः प्रसन्नात्माऽऽत्मविद् बुधः ।  
 प्राप्येह लोके संमानं सुगतिं प्रेत्य गच्छति ॥ १८ ॥  
 अभयं यस्य भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः ।  
 स वै परिणतप्रज्ञः प्रख्यातो मनुजोत्तमः ॥ १९ ॥

उत्पन्न किया है। पण्डितोंने चारों आ-  
 श्रमोंमें दमको उत्तम कहा है। दम सब  
 गुणोंकी उत्पत्तिका स्थान है; उन सब  
 गुणोंको दमका लक्षण कहना चाहिये।  
 हे राजेन्द्र ! जिसमें क्षमा, धृति, अहिं-  
 सा, समता, सत्य, सरलता, इन्द्रिय-  
 निग्रह, धीरज, प्यारा वचन, बुरे कर्मों  
 से चिन्तका रोकना-स्थिरता; कृपणता  
 न करनी, क्रोधका न होना, संतोष और  
 श्रद्धा आदिक गुण रहते हैं, उन्हें दमन  
 शील कहते हैं। ( १२-१५ )

सत्पुरुषोंमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या,  
 अभिमान, क्रोध, निद्रा, अपनी बढाई  
 और शोक आदिकी विशेषता नहीं रहती।

सरलता, उत्तम शील, और मानसिक  
 पवित्रता यही सत्पुरुषोंके लक्षण हैं।  
 जो पुरुष लोभसे रहित थोड़ी प्राप्तिमें  
 संतोषी, काम, चिन्ता में न पडनेवाले  
 और समुद्रकी भांति गम्भीर होते हैं,  
 वेही सत्पुरुष कहाते हैं। उत्तम चरित्र  
 वाले, शीलसे युक्त, सदा प्रसन्न रहने-  
 वाले आत्मतत्त्वको जाननेवाले, ज्ञानी  
 पुरुष इस लोकमें मान और प्रतिष्ठाको  
 पाकर अन्तमें उत्तम गतिको पाते  
 हैं। ( १६-१८ )

प्राणी मात्रसे जिसे कुछ भय उत्पन्न  
 नहीं होता, और जिससे सब जीवोंकोभी  
 किञ्चित डर नहीं रहता; तथा जो सब

सर्वभूतहितो मैत्रस्तस्मान्नोद्विजते जनः ।  
 समुद्र इव गंभीरः प्रज्ञातृप्तः प्रशाम्यति ॥ २० ॥  
 कर्मणाऽऽचरितं पूर्वं सद्भिराचरितं च यत् ।  
 तदेवाऽऽस्थाय मोदन्ते दांताः शमपरायणाः ॥ २१ ॥  
 नैष्कर्म्यं वा समास्थाय ज्ञानतृप्तो जितेंद्रियः ।  
 कालाकांक्षी चरंल्लोके ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २२ ॥  
 शकुनीनामिवाऽऽकाशे पदं नैवोपलभ्यते ।  
 एवं प्रज्ञानतृप्तस्य मुनेर्वर्त्म न दृश्यते ॥ २३ ॥  
 उत्सृज्यैव गृहान्यस्तु मोक्षमेवाऽभिमन्यते ।  
 लोकास्तेजोमयास्तस्य कल्पन्ते शाश्वता दिवि ॥ २४ ॥ [२३६१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि  
 विदुरवाक्ये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

विदुर उवाच— शकुनीनामिहाऽर्थाय पाशं भूमावयोजयत् ।  
 कश्चिच्छाकुनिकस्तात पूर्वेषामिति शुश्रुम ॥ १ ॥  
 तस्मिंस्तौ शकुनौ बद्धौ युगपत्सहचारिणौ ।

जीवोंके हितकारी बन्धु हैं; ऐसेही पुरुष ज्ञानी और पुरुषोत्तम कहाते हैं; जिनसे किसी मनुष्यको कुछभी दुःख नहीं होता; बुद्धि और ज्ञानसे तृप्त होकर वह समुद्रकी भांति एकही रूपसे निरन्तर शान्त रहते हैं । पहिले श्रेष्ठ पुरुषोंने यज्ञ आदि जिन कार्योंके अनुष्ठान किये हैं तथा वर्त्तमानमें साधु पुरुष जिन कार्योंका आचरण करते हैं; उन्हीं कर्मोंको करके सत्पुरुष लोग आनन्दित होते हैं । ( १९-२१ )

अथवा ज्ञानसे तृप्त होकर जो मनुष्य वासना-रहित कर्मोंको करते हुए संसारमें निवास करते हैं, वह परम पद पानेके योग्य हैं । आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंके

मार्गको जैसे कोई नहीं प्राप्त कर सकता, उसी भांतिसे मुनियोंका निवास स्थानभी साधारण पुरुषोंकी दृष्टिमें नहीं आता । अथवा जो गृहको त्यागके संन्यास आश्रमहीमें निवास करते हैं, उनके रहने के निमित्त स्वर्गमें प्रकाशमान लोक तैयार रहते हैं । ( २२-२४ ) [२३६१]

उद्योगपर्वमें तिरसठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें चौसठ अध्याय ।

विदुर बोले, हे तात ! पुराने लोगोंमें यह कथा प्रसिद्ध है, कि किसी व्याधने पक्षी पकड़नेके निमित्त पृथ्वीमें अपनी जालको बिछाया था, उसमें एक सङ्ग रहनेवाले दो बूढ़े पक्षी गिरे, और दोनों

तावुपादाय तं पाशं जग्मुतुः खचरावुभौ ॥ २ ॥

तौ विहायसमाक्रांतौ दृष्ट्वा शाकुनिकस्तदा ।

अन्वधावदनिर्विण्णो येन येन स्म गच्छतः ॥ ३ ॥

तथा तमनुधावंतं मृगयुं शकुनार्थिनम् ।

आश्रमस्थो मुनिः कश्चिद्दर्शाऽथ कृताहिकः ॥ ४ ॥

तावंतरिक्षगौ शीघ्रमनुयांतं महीचरम् ।

श्लोकेनाऽनेन कौरव्य पप्रच्छ स मुनिस्तदा ॥ ५ ॥

विचित्रमिदमाश्चर्यं मृगहन्प्रतिभाति मे ।

प्लवमानौ हि खचरौ पदातिरनुधावन्ति ॥ ६ ॥

शाकुनिक उवाच—पाशमेकमुभावेतौ सहितौ हरतौ मम ।

यत्र वै विवदिष्येते तत्र मे वशमेष्यतः ॥ ७ ॥

विदुर उवाच— तौ विवादनुप्राप्तौ शकुनौ मृत्युसंधितौ ।

विगृह्य च सुदुर्बुद्धी पृथिव्यां संनिपेततुः ॥ ८ ॥

तौ युद्धयमानौ संरब्धौ मृत्युपाशवशानुगौ ।

उपसृत्याऽपरिज्ञातो जग्राह मृगहा तदा ॥ ९ ॥

मिलकर जाल समेत आकाश मार्गमें उड़ गये। तब व्याधा उन दोनोंको जाल सहित आकाशमें उड़ता हुआ देखकरभी दुःखी नहीं हुआ, और उनके पीछे पीछे वहभी दौड़ने लगा। पक्षियोंके पीछा करनेवाला व्याधा इसी भांतिसे दौड़ा हुआ आता था। उसी अवसरमें सन्ध्या आदि कर्मको पूरा करके आश्रममें रहनेवाले किसी मुनिने उसे देखा। (१-४)

हे भारत ! तब उस मुनिने इस पृथ्वीपर चलनेवाले व्याधको आकाशमें उड़नेवाले पक्षियोंके पीछे शीघ्रतासे दौड़ते हुए देखकर उसको एक श्लोकेसे

यह पूछा, कि “हे व्याध ! तुम पैरोंसे चलनेवाले होकर जो पक्षियोंका पीछा करते हो, यह देखकर मुझे बहुतही आश्चर्य होता है।” व्याध बोला, “ये दोनों पक्षी मिलकर मेरे जालको लिये हुए उड़े जाते हैं, परन्तु जब ये आपसमें झगडा करेंगे, तबही मेरे वशमें हो जायेंगे।” (५-७)

विदुर बोले, अनन्तर वे कालग्रस्त बुद्धिहीन दोनों पक्षी आपसमें झगडने लगे, और दोनों लड़कर पृथ्वीमें गिरे। तब व्याधने उन दोनों पक्षियोंको जाल में फंसे हुए, क्रोधसे भरे और लड़ते हुए देख, धीरे धीरे उनके निकट जाकर

एवं ये ज्ञातयोऽर्थेषु मिथो गच्छन्ति विग्रहम् ।  
 तेऽमित्रवशमायांति शकुनाविव विग्रहम् ॥ १० ॥  
 संभोजनं संकथनं संप्रश्नोऽथ समागमः ।  
 एतानि ज्ञातिकार्याणि न विरोधः कदाचन ॥ ११ ॥  
 ये स्म काले सुमनसः सर्वे वृद्धानुपासते ।  
 सिंहशुभ्रमिवाऽरण्यमप्रधृष्या भवन्ति ते ॥ १२ ॥  
 येऽर्थं संततमासाद्य दीना इव समासते ।  
 श्रियं ते संप्रयच्छन्ति द्विषद्भ्यो भरतर्षभ ॥ १३ ॥  
 धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च ।  
 घृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥ १४ ॥  
 इदमन्यत्प्रवक्ष्यामि यथा दृष्टं गिरौ मया ।  
 श्रुत्वा तदपि कौरव्य यथा श्रेयस्तथा कुरु ॥ १५ ॥  
 वयं किरातैः सहिता गच्छामो गिरिमुत्तरम् ।  
 ब्राह्मणैर्देवकल्पैश्च विद्याजंभकवार्तिकैः ॥ १६ ॥  
 कुंजभूतं गिरिं सर्वमभितो गंधमादनम् ।

दोनोंको पकड़ लिया। इसी प्रकारसे जो मनुष्य अपनी जातिके सङ्ग झगडा तथा लड़ाई करते हैं, वे ऊपर कहे हुए दोनों पक्षियोंकी भांति शत्रुके वशमें होजाते हैं। एकत्र होकर खाना, पीना, बात चीत, काम काजका पूछना और आपसमें मेल रखना, येही सब जातिके कार्य हैं। अपनी जातिसे विरोध करना कभी उचित नहीं है। (८-११)

जो सब जाति एक मत और अच्छी बुद्धिसे युक्त होकर बूढ़ोंकी उपासना करती हैं, वे सिंहसे रक्षित वनकी भांति विद्यमान रहती हैं। हे भरतर्षभ ! जो मनुष्य बहुतसा धन उपार्जन करके

भी मदा दरिद्रोंकी भांति निवास करते हैं, वे शत्रुओंके हाथमें लक्ष्मीको देते हैं। हे घृतराष्ट्र ! जातिके मनुष्य अलग अलग रहनेसे जलती हुई लकड़ीकी तरह बुझ जाते हैं, एकट्ठे रहनेसे ही प्रज्वलित तथा प्रकाशित होते रहते हैं। (१२-१४)

हे कुरुनन्दन ! मैंने पर्वतके ऊपर एक विषयको अवलोकन किया था, उसको भी सुन लीजिये, तब जैसा उचित हो, वैसा कीजिये। किसी समयमें मैंने किरात और मन्त्र विद्या, धनुर्विद्या तथा और भी बहुतसी विद्याओंको जानने वाले देवकल्प ब्राह्मणोंके सहित सिद्ध

दीप्यमानौषधिगणं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ १७ ॥  
 तत्राऽपश्याम वै सर्वे मधु पीतकमाक्षिकम् ।  
 मरुप्रपाते विषमे निविष्टं कुंभसंमितम् ॥ १८ ॥  
 आशीविषै रक्ष्यमाणं कुबेरदयितं भृशम् ।  
 यत्प्राप्य पुरुषो मर्त्योऽप्यमरत्वं निश्छति ॥ १९ ॥  
 अचक्षुर्लभते चक्षुर्वृद्धो भवति वै युवा ।  
 इति ते कथयन्ति स्म ब्राह्मणा जंभसाधकाः ॥ २० ॥  
 ततः किरातास्तद्वृद्धा प्रार्थयन्तो महीपते ।  
 विनेशुर्विषमे तस्मिन्सर्पे गिरिगह्वरे ॥ २१ ॥  
 तथैव तव पुत्रोऽयं पृथिवीमेक इच्छति ।  
 मधु पश्यति संमोहात्प्रपातं नाऽनुपश्यति ॥ २२ ॥  
 दुर्योधनो योद्धुमनाः समरे सव्यसाचिना ।  
 न च पश्यामि तेजोऽस्य विक्रमं वा तथाविधम् ॥ २३ ॥  
 एकेन रथमास्थाय पृथिवी येन निर्जिता ।

तथा गन्धर्वोंसे सेवित दिव्य औषधि-  
 योंसे प्रकाशित, कुञ्जकी भांति शोभाय-  
 मान गन्धमादन पर्वतपर गमन किया  
 था । (१५-१७)

वहाँपर जाकर देखा कि पर्वतके  
 ऊपर वालुकामय स्थानमें घड़ेके बराबर  
 गहरा पीतवर्ण सुवर्णमाक्षिक नामक  
 धातु और मधु अर्थात् अमृत रहता है ।  
 यह मधु कुबेरको अत्यन्तही प्रिय है,  
 इस निमित्त महा विषधर सर्प उसकी  
 रक्षा करते हैं । हमारे सङ्गमें रहनेवाले  
 पदार्थविद्याके जाननेवाले ब्राह्मणोंने क-  
 हा, कि इस मधुको खानेसे मनुष्य अ-  
 मर होते हैं, अन्ध लोचन पाते हैं और  
 बूढ़े युवा हो जाते हैं । (१८-२०)

अनन्तर किरातोंने उस मधुको देखके  
 उसको ग्रहण करनेकी इच्छा करी । इस-  
 से वे लोग वहाँ पर सर्पोंसे भरी हुई उस  
 भयानक पर्वत की कन्दरामें सापोंके  
 विषसे मरकर मृत्युको पहुंचे । हे महारा-  
 ज ! तुम्हारे पुत्रभी उसी भांतिसे अकेले-  
 ही सब पृथ्वीको लेनेकी इच्छा करते  
 हैं । ये लोग मोहमें पड़कर केवल मधुही  
 देखते हैं, परन्तु पीछे जो मृत्युकी  
 शंका है, उसे नहीं देखते हैं । दुर्योधन  
 अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छा करता  
 है, पर मैं इसका अर्जुनके समान तेज वा  
 पराक्रम कुछभी नहीं देखता हूँ । (२१-२३)

अर्जुनने अकेलेही एक रथसे पृथ्वी-  
 को जीता था, और विराटनगरमें बहुतसी

भीष्मद्रोणप्रभृतयः संत्रस्ताः साधुयायिनः ॥ २४ ॥

विराटनगरे भग्नाः किं तत्र तव हृदयताम् ।

प्रतीक्षमाणो यो वीरः क्षमते वीक्षितं तव ॥ २५ ॥

द्रुपदो मत्स्यराजश्च संकुदश्च धनंजयः ।

न शेषयेयुः समरे वायुयुक्ता इवाऽग्नयः ॥ २६ ॥

अंके कुरुष्व राजानं धृतराष्ट्र युधिष्ठिरम् ।

युध्यतोर्हि द्वयोर्युद्धे नैकांतेन भवेज्जयः ॥ २७ ॥ [ २३८८ ]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि विदुरवाक्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—दुर्योधन विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।

उत्पथं मन्यसे मार्गमनभिज्ञ इवाऽध्वगः ॥ १ ॥

पंचानां पांडुपुत्राणां यत्तेजः प्रजिहीर्षसि ।

पंचानामिव भूतानां महतां लोकधारिणाम् ॥ २ ॥

युधिष्ठिरं हि कौंतेय परं धर्ममिहाऽऽस्थितम् ।

परां गतिमसंप्रेत्य न त्वं जेतुमिहाऽर्हसि ॥ ३ ॥

सेना आदिके सहित युद्धके निमित्त यात्रा करनेवाले भीष्म, द्रोण, आदि महावीरोंको अकेलेनेही भय-भीत और पराजित किया था। उस स्थानपर दुर्योधनकी वीरता कहां गयी थी? देखिये, वह महावीर पुरुष केवल आपहीका मुंह देखकर क्षमा कर रहे हैं; परन्तु पूर्ण-रीतिसे क्रोधित होने पर, जब महाबलवान अर्जुन, पाञ्चाल द्रुपद, मत्स्यराज विराट, युद्धमें वायुकी सहायतासे अग्निकी भांति प्रज्वलित होंगे, तब आपका कुछभी बाकी न छोड़ेंगे। इससे हे धृतराष्ट्र! युधिष्ठिरको अपनी गोदके भीतर करलो, क्योंकि युद्धमें प्रवृत्त होनेसे दोनों ओर वालोंकी सम्पूर्णरूपसे जीत

नहीं होती। ( २४—२७ ) [ २३८८ ]

उद्योगपर्वमें चौसठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें पैंसठ अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र दुर्योधन! मैं तुमसे जो वचन कहता हूं, उसे उत्तम प्रकारसे अपने हृदयमें धारण करो। अजान बटोहीकी भांति तुम कुपथहीको उत्तम मार्ग समझते हो, क्योंकि सब लोकोंके धारण करनेवाले पञ्च महाभूतोंकी तरह पांचों पाण्डवोंके तेजको हरनेकी अभिलाषा करते हो। तुम परम गति अर्थात् मृत्युकी विना प्रतीक्षा किये, इस लोकमें परम धर्मात्मा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको कभी भी नहीं जीत सकते। ( १-३ )



भीमसेनं च कौतेयं यस्य नास्ति समो बले ।  
 रणांतकं तर्जयसे महाबातमिव दुमः ॥ ४ ॥  
 सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं मेरुं शिखरिणामिव ।  
 युधि गांडीवधन्वानं को नु युद्धयेत बुद्धिमान् ॥ ५ ॥  
 धृष्टद्युम्नश्च पांचाल्यः कमिवाऽद्य न शातयेत् ।  
 शत्रुमध्ये शरान्मुंचन्देवराडशानीमिव ॥ ६ ॥  
 सात्यकिश्चापि दुर्धर्षः संमतोऽन्धकवृष्णिषु ।  
 ध्वंसयिष्यति ते सेनां पांडवेयहिते रतः ॥ ७ ॥  
 यः पुनः प्रतिमानेन त्रींलोकानतिरिच्यते ।  
 तं कृष्णं पुंडरीकाक्षं को नु युद्धयेत बुद्धिमान् ॥ ८ ॥  
 एकतो ह्यस्य दाराश्च ज्ञातयश्च सर्वांधवाः ।  
 आत्मा च पृथिवी च यमेकतश्च धनंजयः ॥ ९ ॥  
 वासुदेवोऽपि दुर्धर्षो यतात्मा यत्र पांडवः ।  
 अविषह्यं पृथिव्याऽपि तद्वलं यत्र केशवः ॥ १० ॥  
 तिष्ठ तात सतां वाक्ये सुहृदामर्थवादिनाम् ।

जैसे वृक्ष प्रचण्ड वायुको परास्त करनेकी इच्छा करता है, वैसेही तुम भी महाबलवान और युद्धमें सब शत्रुओंके नाश करनेवाले भीमसेनको जीतनेकी इच्छा करते हो । पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरु पर्वतकी भांति सब शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके संग कौन बुद्धिमान मनुष्य युद्ध करनेके निमित्त प्रवृत्त होगा ? पाञ्चालराज-पुत्र धृष्टद्युम्नही आज वज्र चलानेवाले इन्द्रके समान अपने चौखे बाणोंको बरषा करके किस पुरुषको न मार सकेंगे? ४-६

अन्धक और वृष्णिवंशमें सन्मानित महाधनुर्धर सात्यकीभी तुम्हारी सेनाका नाश करेंगे । गौरव और तेज तथा

पराक्रममें जो तीनों लोकको जीतनेमें समर्थ हैं; उन पुण्डरीकाक्ष कृष्णके सङ्ग कौन बुद्धिमान मनुष्य युद्ध करनेको उत्साह करेगा ? उसके स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धव, तथा उसकी आत्मा और पृथ्वी का राज्य एक ओर रहे तौभी अकेला अर्जुन एक ओर रह सकता है । अर्जुन ने जिसके साथ मित्रता करी है, वह कृष्णभी अजेय हैं; और जिस सेनामें निवास करते हैं, वह सेनाभी पृथ्वी भरमें महाबलवान है । ( ७-१० )

इसमें हे तात ! हित करनेवाले सुहृद तथा साधु पुरुषोंके वचनमें विश्वास करो । शान्तनुपुत्र बूढ़े पितामह भीष्म-

वृद्धं शान्तनवं भीष्मं तिनिक्षस्व पितामहम् ॥ ११ ॥  
 मां च ब्रुवाणं शुश्रूष कुरूणामर्थदर्शिनम् ।  
 द्रोणं कृपं विकर्णं च महाराजं च बाह्लिकम् ॥ १२ ॥  
 एते ह्यपि यथैवाऽहं संतुमर्हसि तांस्तथा ।  
 सर्वे भर्मविदो ह्येते तुल्यस्नेहाश्च भारत ॥ १३ ॥  
 यत्तद्विराटनगरे सहभ्रातृभिरग्रतः ।  
 उत्सृज्य गाः सुसंभ्रतं बलं ते समशीर्यत ॥ १४ ॥  
 यच्चैव नगरे तस्मिञ्श्रूयते महदद्भुतम् ।  
 एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १५ ॥  
 अर्जुनस्तत्तथाऽकार्षीत्किं पुनः सर्व एव ते ।  
 स भ्रातृनभिजानीहि वृत्त्या तं प्रतिपादय ॥ १६ ॥ [२४०४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि

धृतराष्ट्रवाक्ये पंचपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

वैशम्पायन उवाच-एवमुक्त्वा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रः सुयोधनम् ।

पुनरेव महाभाग संजयं पर्यपृच्छत ॥ १ ॥

के वचनोंको ग्रहण करो । मैं जो कहता हूँ तथा कौरवोंके हितको चाहनेवाले द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विकर्ण और महाराज बाह्लिक जो वचन कहते हैं, उसेभी ध्यान देकर सुनो । हे भारत ! ये भी मेरेही समान हैं ! तुम जैसे मुझे मानते हो, वैसेही इन्हेंभी समझो; क्योंकि ये सबही धर्मात्मा और मेरे समान तुमसे स्नेह करते हैं । (११-१३)

विराट नगरमें जब तुम्हारे भाइयोंके सहित सब सेना अर्जुनके डरसे व्याकुल होकर गौओंको छोड़के तुम्हारे संमुखही भाग गई थी; और वहाँपर जो अनेक वीरोंके सङ्ग अकेले अर्जुनका

आश्चर्य युद्ध सुना जाता है, वही इसमें यथेष्ट प्रमाण है । अर्जुनने जब अकेलेही तुम्हारी सब सेनाको पराजित किया था, तब इस समय सब पाण्डव और अन्य वीरोंके सङ्ग मिलकर जो कौरवोंका नाश करेगा, इसमें क्या सन्देह है ? इससे तुम पाण्डवोंके सङ्ग यथार्थ भ्रातृभावको ग्रहण करो और प्रेमपूर्वक उनकी आज्ञाका पालन करो । १४-१६

उद्योगपर्वमें पैंसठ अध्याय समाप्त । [ २४०४ ]

उद्योगपर्वमें छासठ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाबुद्धिमान महात्मा धृतराष्ट्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कहकर फिर सज्जसे पूछने

ब्रूहि संजय यच्छेषं वासुदेवादनंतरम् ।

यदर्जुन उवाच त्वां परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥

संजय उवाच— वासुदेववचः श्रुत्वा कुंतीपुत्रो धनंजयः ।

उवाच काले दुर्धर्षो वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ३ ॥

पितामहं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च संजय ।

द्रोणं कृपं च कर्णं च महाराजं च बाह्लिकम् ॥ ४ ॥

द्रौणिं च सोमदत्तं च शकुनिं चापि सौबलम् ।

दुःशासनं शलं चैव पुरुमित्रं विविंशतिम् ॥ ५ ॥

विकर्णं चित्रसेनं च जयत्सेनं च पार्थिवम् ।

विंदानुविंदाबावन्त्यौ दुर्मुखं चापि कौरवम् ॥ ६ ॥

सैन्धवं दुःसहं चैव भूरिश्रवसमेव च ।

भगदत्तं च राजानं जलसंधं च पार्थिवम् ॥ ७ ॥

ये चाप्यन्ये पार्थिवास्तत्र योद्धुं समागताः कौरवाणां प्रियार्थम् ।

सुमूर्षवः पांडवाग्नौ प्रदीप्ते समानीता धार्तराष्ट्रेण होतुम् ॥ ८ ॥

यथान्यायं कौशलं वंदनं च समागता मद्वचनेन वाच्याः ।

इदं ब्रूयाः संजय राजमध्ये सुयोधनं पापकृतां निधानम् ॥ ९ ॥

अमर्षणं दुर्मतिं राजपुत्रं पापात्मानं धार्तराष्ट्रं सुलुब्धम् ।

लगे, हे संजय ! कृष्णके अनन्तर अर्जुनने जो कुछ वचन कहे हैं वह तुम मुझसे कहो; क्योंकि उन वचनोंके सुननेकी मुझे बहुतही इच्छा है । ( १-२ )

संजय बोले, महात्मा अर्जुन श्रीकृष्णकी बातोंको सुनकर उनके संमुखही मुझसे कहने लगे, हे संजय ! तुम पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, कर्ण, महाराज बाह्लिक, अश्वत्थामा, सोमदत्त, सुबलपुत्र शकुनि, दुःशासन, शल्य, पुरुमित्र, विविंशति, विकर्ण, चित्रसेन, जयत्सेन, अवन्तिपति विन्द

और अनुविन्द, कौरववंशीय जयद्रथ, दुर्मुख, भूरिश्रवा, दुःसह, भगदत्त, जलसन्ध और पाण्डवरूपी अग्निमें होमके निमित्त जो सब महात्मा राजा लोग दुर्योधनके आमन्त्रणसे कौरवोंके प्रिय कार्यको करनेके निमित्त युद्धके वास्ते आकर इकठे हुए हैं, उन सबसे मेरे वचनके अनुसार कुशल क्षेम पूछना; इसके अनन्तर पापियोंके अग्रगामी दुर्योधनसे राजाओंके बीचमें यह वचन कहना । ( ३-९ )

हे संजय ! वह क्रोधी, नीचबुद्धि, पापी महालोभी राजपुत्र दुर्योधन जिस

सर्वं ममैतद्वचनं समग्रं सहामात्यं संजय श्रावयेथाः ॥ १० ॥  
 एवं प्रतिष्ठाप्य धनंजयो मां ततोऽर्थवद्धर्मवचापि वाक्यम् ।  
 प्रोवाचेदं वासुदेवं समीक्ष्य पार्थो धीमाल्लोहितांतायताक्षः ॥ ११ ॥  
 यथाश्रुतं ते वदतो महात्मनो मधुप्रवीरस्य वचः समाहितम् ।  
 तथैव वाच्यं भवता हि मद्रवः समागतेषु क्षितिपेषु सर्वशः ॥ १२ ॥  
 शराग्निधूमे रथनेमिनादिते धनुःसुवेणाऽस्त्रबलप्रसारिणा ।  
 यथा न होमः क्रियते महामृधे समेत्य सर्वे प्रयतध्वमाहताः ॥ १३ ॥  
 न चेत्प्रयच्छध्वममित्रघातिनो युधिष्ठिरस्यांशमभीप्सितं स्वकम् ।  
 नयामि वः साश्वपदातिकुंजराब्दिशं पितृणामशिवां शितैः शरैः ॥ १४ ॥  
 ततोऽहमामंत्र्य तदा धनंजयं चतुर्भुजं चैव नमस्य सत्वरः ।  
 जवेन संप्राप्त इहाऽमरच्युते तवांऽतिकं प्रापयितुं वचो महत् ॥ १५ ॥ २४१९

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि

संजयवाक्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

प्रकारसे दुष्ट मित्रों तथा अनुयायियोंके सहित मेरे वचनोंको सुन सके, तुम वैसाही उपाय करना । रक्तवर्ण बड़ी आंख और विशाल-भुज अर्जुनने मुझे इस प्रकारसे वचनबद्ध करके, अन्तमें कृष्णके मुंहकी ओर देखके धर्म और अर्थसे भरे वचनोंको कहना आरम्भ किया कि “तुमने यदुकुलश्रेष्ठ, बोलने वालोंमें उत्तम महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके समाधानयुक्त वचनोंको जैसे सुना है, कौरवोंकी सभामें सब राजाओंके बीच मेरे वचनकोभी उसी भांतिसे कहना” । ( १०—१३ )

उसमेंसे यही एक बात विशेषरूपसे कहना कि हे राजा लोग ! जिससे संग्राम-भूमिमें शस्त्ररूपी घृत, धनुषरूपी

स्रुवा, रथरूपी वायुसे युक्त महाबाणरूपी अग्निमें होमका कार्य समाप्त न करना पड़े, तुम सब लोग इकट्ठे होकर उस विषयमें विशेष यत्नवान होना । यदि तुम लोग शत्रुनाशन युधिष्ठिरको उनके मांगनेके अनुसार राज्यका अंश न प्रदान करोगे, तो मैं अपने तेज बाणोंकी सहायतासे रथ, घोड़े, हाथी और पैदल समेत तुम लोगोंको यमपुरीमें पहुंचा दूंगा । हे महाराज ! अनन्तर मैं यथा उचित बातचीत तथा कृष्ण और अर्जुन को नमस्कार करके आपके निकट उन उदार वचनोंको कहनेके निमित्त शीघ्रता सहित यहां पर आके उपस्थित हुआ हूं । ( १३—१५ ) [ २४१९ ]

उद्योगपर्वमें छःसठ अध्याय समाप्त ।

वैशंपायन उवाच-दुर्योधने धार्तराष्ट्रे तद्वचो नाऽभिनन्दति ।

तूष्णींभूतेषु सर्वेषु समुत्तस्थुर्नरर्षभाः ॥ १ ॥

उत्थितेषु महाराज पृथिव्यां सर्वराजसु ।

रहिते संजयं राजा परिप्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ २ ॥

आशंसमानो विजयं तेषां पुत्रवशानुगः ।

आत्मनश्च परेषां च पाण्डवानां च निश्चयम् ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच-गावल्गणे ब्रूहि नः सारफल्गु स्वसेनायां यावदिहाऽस्ति किञ्चित्

त्वं पाण्डवानां निपुणं वेत्थ सर्वं किमेषां ज्यायः किमु तेषां कनीयः ॥ ४ ॥

त्वमेतयोः सारवित्सर्वदर्शी धर्मार्थयोर्निपुणो निश्चयज्ञः ।

स मे पृष्टः संजय ब्रूहि सर्वं युध्यमानाः कतरेऽस्मिन्न संति ॥ ५ ॥

संजय उवाच-न त्वां ब्रूयां रहिते जातु किञ्चिदसूयाहित्वां प्रविशेत् राजन्

आनयस्व पितरं महाव्रतं गांधारीं च महिषीमाजमीढ ॥ ६ ॥

तौ तेऽसूयां विनयेतां नरेन्द्र धर्मज्ञौ तौ निपुणौ निश्चयज्ञौ ।

उद्योगपर्वमें सदसठ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने सञ्जयके वचनोंका अनादर किया, और सबने मौनव्रत धारण किया । अनन्तर सभासे सब राजालोग उठके अपने अपने स्थानपर गये । हे महाराज ! पृथ्वीके सब राजाओंके सभासे चले जानेपर पुत्रके वशवर्त्ती राजा धृतराष्ट्र पुत्रोंके विजयकी इच्छा करते हुए अपना पाण्डवोंका और दूसरे लोगोंका इस विषयमें किस प्रकारका निश्चय है; इस विषयको सञ्जयसे एकान्तमें पूछने लगे ! ( १-३ )

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! मेरी अपनी सेनामें जो कुछ सार विषय है, उसे तुम वर्णन करो । और तुम पाण्डवोंके समस्त

वृत्तान्तोंको भी जानते हो, इससे उन लोगोंमें जो कुछ उत्तम वा निकृष्ट विषय हो, उसे भी ज्योंका त्यों वर्णन करो । तुम दोनों पक्षके सार विषयको जाननेवाले, सर्वदर्शी, धर्म और अर्थके विषयमें भी निपुण तथा सब कार्योंके निश्चय करनेवाले हो; मैं इसी निमित्त तुमसे पूछता हूं, तुम सब बातोंको प्रकाशित करके मुझसे कहो, युद्धमें प्रवृत्त होनेसे कौन पक्ष नष्ट होगा ? ४-५

सञ्जय बोले, हे राजन् ! मैं निर्जन स्थानमें आपसे कभी कुछ वचन न कहूंगा, क्योंकि इससे आप पापग्रस्त होंगे, इस निमित्त महाव्रत करनेवाले पिता व्यासदेव और माता गान्धारीको बुलाइये वे लोग धर्मको जाननेवाले,

तयोस्तु त्वां सन्निधौ तद्वदेयं कृत्स्नं मतं केशवपार्थयोर्यत् ॥ ७ ॥  
 वैशंपायन उवाच- इत्युक्तेन च गान्धारी व्यासश्चाऽत्राऽऽजगाम ह ।  
 आनीतौ विदुरेणेह सभां शीघ्रं प्रवेशितौ ॥ ८ ॥  
 ततस्तन्मतमाज्ञाय संजयस्याऽऽत्मजस्य च ।  
 अभ्युपेत्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥  
 व्यास उवाच— संपृच्छते धृतराष्ट्राय संजय आचक्ष्व सर्वं यावदेषोऽनुयुक्ते ।  
 सर्वं यावद्वेत्य तस्मिन्यथावद्याथातथ्यं वासुदेवेऽर्जुनस्य ॥ १० ॥ [२४२९]  
 इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि व्यासगान्धार्यागमने सप्तषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥  
 संजय उवाच— अर्जुनो वासुदेवश्च धन्विनौ परमार्चितौ ।  
 कामादन्यत्र संभूतौ सर्वभावाय संमितौ ॥ १ ॥  
 व्यामांतरं समास्थाय यथामुक्तं मनस्विनः ।  
 चक्रं तद्वासुदेवस्य मायया वर्तते विभो ॥ २ ॥  
 सापह्वं कौरवेषु पांडवानां सुसंमतम् ।  
 सारासारबलं ज्ञातुं तेजःपुंजावभासितम् ॥ ३ ॥

सब कार्योंमें निपुण और निश्चय करने-  
 वाले हैं, वे आपको इस वचनरूपी चोरी  
 के पापसे मुक्त कर सकेंगी। हे राजेन्द्र !  
 उन्हींके सम्मुखमें मैं कृष्ण और अर्जुनके  
 सम्पूर्ण अभिप्राय को प्रकाशित करके  
 कहूंगा। (६-७)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ऐसे वचन  
 को सुनकर राजा धृतराष्ट्रने विदुरके  
 द्वारा गान्धारी और व्यासदेवको वहां-  
 पर बुलवाया और उन लोगोंने भी  
 शीघ्रही आकर सभामें प्रवेश किया।  
 अनन्तर महाबुद्धिमान कृष्णद्वैपायन  
 संजय और अपने पुत्र धृतराष्ट्रके मन-  
 के अभिप्रायको जानकर, उसे अनुमोदन  
 करके संजयसे कहा, ये तुमसे जो वचन

पूछते हैं,—तुम कृष्ण और अर्जुनके  
 विषयमें जो कुछ बात जानते हो, उसे  
 इस जिज्ञासू धृतराष्ट्रके निकट ज्योंका  
 त्यों वर्णन करो। (८-१०) [२४२९]

उद्योगपर्वमें सदसठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें अदसठ अध्याय ।

संजय बोले, परम-पूजित धनुर्दारी  
 कृष्ण और अर्जुन सबके संहार करनेके  
 निमित्त सम्मत होकर बदरिकाश्रमसे  
 भारतवर्षमें उत्पन्न हुए हैं। हे महाराज !  
 महात्मा श्रीकृष्णका काल रूपी चक्र  
 पांच हाथके परिमाण स्थानमें व्याप्त हो  
 रहा है। तेज पुञ्जसे प्रकाशित वह चक्र  
 अज्ञातरूपसे कौरवोंके निमित्त विराज-  
 मान है; पाण्डवोंके सार और असार

नरकं शंबरं चैव कंसं चैवं च माधवः ।  
 जितवान्धोरसंकाशान्क्रीडन्निव महाबलः ॥ ४ ॥  
 पृथिवीं चांस्तारिक्षं च द्यां चैव पुरुषोत्तमः ।  
 मनसैव विशिष्टात्मा नयत्यात्मवशं वशी ॥ ५ ॥  
 भूयो भूयो हि यद्राजन्पृच्छसे पांडवान्प्रति ।  
 सारासारबलं ज्ञातुं तत्समासेन मे शृणु ॥ ६ ॥  
 एकतो वा जगत्कृत्स्नमेकतो वा जनार्दनः ।  
 सारतो जगतः कृत्स्नादतिरिक्तो जनार्दनः ॥ ७ ॥  
 भस्म कुर्याज्जगदिदं मनसैव जनार्दनः ।  
 न तु कृत्स्नं जगच्छक्तं भस्म कर्तुं जनार्दनम् ॥ ८ ॥  
 यतः सत्यं यतो धर्मो यतो हीरार्जवं यतः ।  
 ततो भवति गोविंदो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ ९ ॥  
 पृथिवीं चांस्तारिक्षं च दिवं च पुरुषोत्तमः ।  
 विचेष्टयति भूतात्मा क्रीडन्निव जनार्दनः ॥ १० ॥  
 स कृत्वा पांडवान्सत्रं लोकं संमोहयन्निव ।

बलको जाननेके निमित्त वही एक उत्तम  
 प्रमाण है । महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रने  
 क्रीडा करते करते नरकासुर, कंस और  
 चेदीपति शिशुपालका नाश किया  
 था । ( १-४ )

ऐश्वर्यवान् महात्मा कृष्ण इच्छा  
 मात्रसे पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्गको  
 अपने वशमें कर सकते हैं । हे राजन् !  
 आप जो सार और असार विषयोंको  
 जाननेके निमित्त बार बार पाण्डवोंकी  
 बातको पूछते हैं, उसे संक्षेपमें सुनिये ।  
 यदि सब संसार एक ओर और जनार्दन  
 कृष्ण एक तरफ रहें, तौभी कृष्णही  
 सम्पूर्ण जगतसे अधिक हो सकते हैं ।

वे अपनी इच्छा मात्रसे सब संसारको  
 भस्म कर सकते हैं, परन्तु उन्हें भस्म क-  
 रनेके निमित्त यह सारा संसार भी समर्थ  
 नहीं है । ( ५-८ )

जहांपर सत्य, धर्म, लज्जा और  
 कोमलता रहती है, उसी स्थानपर  
 गोविन्द कृष्ण निवास करते हैं । जिसकी  
 ओर कृष्ण रहते हैं, उसकीही जय होती  
 है । प्राणियोंकी आत्मामें जनार्दन  
 श्रीकृष्ण लीला करते विराजते हैं और  
 पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्गको नियत  
 सीमापर चलाते हैं । मुझे मालूम होता  
 है, कि वे सब लोगोंको मोह उत्पन्न  
 करनेकी अभिलाषासे पाण्डवोंको नाम

अधर्मनिरतान्मूढान्दग्धुमिच्छति ते सुतान् ॥ ११ ॥

कालचक्रं जगच्चक्रं युगचक्रं च केशवः ।

आत्मयोगेन भगवान्परिवर्तयतेऽनिशम् ॥ १२ ॥

कालस्य च हि मृत्योश्च जंगमस्थावरस्य च ।

ईशते भगवानेकः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥

ईशन्नपि महायोगी सर्वस्य जगतो हरिः ।

कर्माण्यारभते कर्तुं कीनाश इव वर्धनः ॥ १४ ॥

तेन वंचयते लोकान्मायायोगेन केशवः ।

ये तमेव प्रपद्यन्ते न ते मुह्यन्ति मानवाः ॥ १५ ॥ [ २४४४ ]

इति श्रीमहाभारते ० उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयवाक्येऽष्टषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— कथं त्वं माधवं वेत्थ सर्वलोकमहेश्वरम् ।

कथमेनं न वेदाऽहं तन्ममाऽऽचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

संजय उवाच— शृणु राजन्न ते विद्या मम विद्या न हीयते ।

विद्याहीनस्तपोध्वस्तो नाऽभिजानाति केशवम् ॥ २ ॥

मात्रका अगुवा बनाके आपके अधर्ममें रत पुत्रोंको नाश करनेकी इच्छा करते हैं । ( ९-११ )

भगवान् कृष्ण चैतन्यता तथा अपनी योग मायासे कालचक्र, जगत्-चक्र और कर्मचक्रोंको सदाही परिवर्तित ( उलट पलट ) किया करते हैं । मैं आपसे यह सत्य कहता हूँ, कि वही एक मात्र भगवान् कृष्ण काल, मृत्यु स्थावर और जंगम सम्पूर्ण जगतके ऊपर अपनी प्रभुता कर रहे हैं । महायोगी हरि जगतके स्वामी होकरभी दुर्बल दरिद्रकी भांति कर्म करना आरम्भ करते हैं; और उस माया योगसे सब लोकोंको वञ्चित करते हैं । जो मनुष्य उनके यथार्थ

रूपको ग्रहण करते हैं; वे कभी मोहमें नहीं पड़ते । ( १२-१५ ) [ २४४४ ]

उद्योगपर्वमें अठसठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें उत्तर अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे संजय ! तुमने कृष्ण को किस प्रकारसे सब लोकोंका ईश्वर जाना ? और मैं क्यों नहीं उनको जान सकता हूँ, यह तुम मुझसे कहो । ( १ )

संजय बोले, हे राजन् ! इसका कारण सुनिये । आपको विद्या नहीं है; परन्तु मेरी विद्या नष्ट नहीं हुई है। जो जो मनुष्य विद्याहीन और तमोगुणसे युक्त रहता है, वह ब्रह्म-प्रतिपादक वाक्योंके तात्पर्यको ग्रहण नहीं कर सकता निर्विषयानन्द मात्र अपने आत्मस्वरूपसे



विद्यया तात जानामि त्रियुगं मधुसूदनम् ।

कर्तारमकृतं देवं भूतानां प्रभवान्ययम् ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- गावल्गणेऽत्र का भक्तिर्या ते नित्या जनार्दने ।

यया त्वमभिजानासि त्रियुगं मधुसूदनम् ॥ ४ ॥

संजय उवाच- मायां न सेवे भद्रं ते न वृथा धर्ममाचरे ।

शुद्धभावं गतो भक्त्या शास्त्राद्वेद्धि जनार्दनम् ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- दुर्योधन हृषीकेशं प्रपद्यस्व जनार्दनम् ।

आप्तो नः संजयस्तात शरणं गच्छ केशवम् ॥ ६ ॥

दुर्योधन उवाच- भगवान्देवकीपुत्रो लोकांश्चेन्निहनिष्यति ।

प्रवदन्नर्जुने सख्यं नाऽहं गच्छेऽद्य केशवम् ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- अवाग्गांधारि पुत्रस्ते गच्छत्येष सुदुर्मतिः ।

ईर्षुर्दुरात्मा मानी च श्रेयसां वचनातिगः ॥ ८ ॥

भ्रष्ट हो जाता है, इसी कारणसे वह श्रीकृष्ण भगवानको नहीं जान सकता है । हे तात ! मैं विद्याके प्रभावसे उन महात्मा कृष्णको त्रियुग ( स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरसे युक्त ) कर्त्ता और कुछभी न करनेवाला, लीला करनेवाला सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और नाशका हेतु समझता हूं । ( २-३ )

धृतराष्ट्र बोले, हे संजय ! जनार्दन कृष्ण में जो तुम्हारी सब दिनसे इस प्रकारकी भक्ति है, वह कैसे हुई, जिससे तुम उनको त्रियुग ( स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरसे युक्त ) जानते हो ? ( ४ )

संजय बोले, हे राजन् ! आपका कल्याण हो ; मैं स्त्री पुत्र आदिके मोहमें पड़कर अविद्याका सेवन नहीं करता हूं; और ईश्वरको विना समर्पण

किये वृथा धर्मके आचरणमें भी मेरी प्रवृत्ति नहीं होती । केवल भक्ति-योग और शुद्धभावसे जनार्दन कृष्णको जानता हूं । ( ५ )

धृतराष्ट्र बोले, हे दुर्योधन ! तुम हृषीकेश कृष्णकी उपासना करो । हे तात ! संजय हम लोगोंके अत्यन्तही विश्वासपात्र हैं, इससे इनके वचनोंको मानकर तुम श्रीकृष्णकी शरणमें चले जाओ । ( ६ )

दुर्योधन बोले, हे राजन् ! देवकीपुत्र कृष्ण यदि अर्जुनके सङ्ग मिलकर सब लोकोंके संहार करनेपर उद्यत होंगे, तौभी मैं इस समय उनकी शरणमें न जाऊंगा । ( ७ )

धृतराष्ट्र बोले, हे गान्धारी ! यह ईर्षक दुरात्मा, अभिमानी, हित चाहनेवालों-

गांधार्युवाच— ऐश्वर्यकाम दुष्टात्मन्वृद्धानां शासनातिग ।  
 ऐश्वर्यजीविते हित्वा पितरं मां च बालिश ॥ ९ ॥  
 वर्धयन्नुर्हदां प्रीतिं मां च शोकेन वर्धयन् ।  
 निहतो भीमसेनेन स्मर्ताऽसि वचनं पितुः ॥ १० ॥  
 व्यास उवाच— प्रियोऽसि राजन्कृष्णस्य धृतराष्ट्र निबोध मे ।  
 यस्य ते संजयो दूतो यस्त्वां श्रेयासि योक्ष्यते ॥ ११ ॥  
 जानात्येष हृषीकेशं पुराणं यच्च वै परम् ।  
 शुश्रूषमाणमैकाग्र्यं योक्ष्यते महतो भयात् ॥ १२ ॥  
 वैचित्रवीर्यं पुरुषाः क्रोधहर्षसमावृताः ।  
 सिता बहुविधैः पाशैर्येन तुष्टाः स्वकैर्धनैः ॥ १३ ॥  
 यमस्य वशमायांति काममूढाः पुनः पुनः ।  
 अंधनेत्रा यथैवांश्वा नीयमानाः स्वकर्मभिः ॥ १४ ॥  
 एष एकायनः पंथा येन यांति मनीषिणः ।  
 तं हृष्टा मृत्युमत्येति महांस्तत्र न सज्जति ॥ १५ ॥

की बातोंको न माननेवाला, नीचबुद्धि,  
 तुम्हारा पुत्र केवल कालके वशमें होकर  
 पतित होना चाहता है । ( ८ )

गान्धारी बोली, ऐश्वर्यकामी दुरात्मा!  
 अरे मूर्ख! तू बूढ़ोंके वचनोंको न मानकर,  
 पिताको तथा मुझे भी त्यागके और ऐश्वर्य  
 जीवन और सुखकी आशाको छोड़कर,  
 शत्रुओंके आनन्द और हम लोगोंके  
 शोकको बढ़ाता हुआ, जब भीमसेनके  
 हाथसे मारा जायगा, तभी पिताके  
 वचनोंको स्मरण करेगा ( ९-१० )

श्रीव्यासदेवजी बोले, हे राजन्  
 धृतराष्ट्र! मैं तुमसे जो वचन कहता हूँ,  
 उसे तुम सुनो । तुम कृष्णके प्रियपात्र  
 हो; सज्जन जब तुम्हारे दूत हुए हैं,

तब ये तुम्हारे कल्याणके निमित्त अ-  
 वश्य यत्न करेंगे । ये सनातन भगवान  
 हृषीकेशको पूर्ण रूपसे जानते हैं; इससे  
 यदि तुम एकाग्र चित्तसे सुननेकी इच्छा  
 करोगे, तो ये तुमको महाभयसे मुक्त  
 कर देंगे । हे धृतराष्ट्र! मनुष्य लोग  
 क्रोध और हर्षसे युक्त होकर अनेक  
 बन्धनोंसे बंधे हुए हैं; जो अपने उपा-  
 र्जित धन आदिसे सन्तुष्ट नहीं होता, वह  
 अन्धके पीछे चलनेवाले अन्धकी भांति  
 अपने कर्मोंसे बार बार मृत्युके वशमें  
 पड़ता है । जिस मार्गसे बुद्धिमान म-  
 हात्मा साधु पुरुष चलते हैं, वही ब्रह्म-  
 के प्राप्त करनेका एक मात्र सुगम मार्ग  
 है । बुद्धिमान पुरुष उसी मार्गको जान-

धृतराष्ट्र उवाच— अंग संजय मे शंस पंथानमकुतोभयम् ।  
 येन गत्वा हृषीकेशं प्राप्नुयां सिद्धिमुत्तमाम् ॥ १६ ॥  
 संजय उवाच— नाऽकृतात्मा कृतात्मानं जातु विद्याज्जनार्दनम् ।  
 आत्मनस्तु क्रियोपायो नाऽन्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ॥ १७ ॥  
 इन्द्रियाणामुदीर्णानां कामत्यागोऽप्रमादतः ।  
 अप्रमादोऽविहिंसा च ज्ञानयोनिरसंशयम् ॥ १८ ॥  
 इन्द्रियाणां यमे यत्तो भव राजन्नतंद्रितः ।  
 बुद्धिश्च ते मा च्यवतु नियच्छैनां यतस्ततः ॥ १९ ॥  
 एतज्ज्ञानं विदुर्विप्रा ध्रुवमिन्द्रियधारणम् ।  
 एतज्ज्ञानं च पंथाश्च येन यांति मनीषिणः ॥ २० ॥  
 अप्राप्यः केशवो राजन्निन्द्रियैरजितैर्नृभिः ।  
 आगमाधिगमाद्योगाद्ब्रूही तत्त्वे प्रसीदति ॥ २१ ॥ [२४६५]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयवाक्ये ऊनसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६९ ॥

कर जन्ममरणके क्लेशोंसे छूट जाते हैं । ( ११-१५ )

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! जिस मार्गमें कुछभी भयकी संभावना नहीं है, जिसके द्वारा मैं जनार्दन कृष्णको जानकर उत्तम सिद्धिको प्राप्त करूं, उसी मार्गका तुम मुझसे वर्णन करो । ( १६ )

सञ्जय बोले, हे महाराज ! आत्मतत्त्वको न जाननेवाले पुरुष जैसे कृतात्मा जनार्दनको नहीं जान सकता है, वैसेही आत्मक्रियाका उपायभी बिना इन्द्रिय निग्रहके नहीं हो सकता । विषयोंमें लगी हुई इन्द्रियोंकी विषयकार्योंसे निवृत्ति केवल अप्रमादहीसे होती है । अप्रमाद और हिंसाका त्याग येही ज्ञानकी उत्पत्तिके स्थान हैं, इसमें

कुछभी सन्देह नहीं है । हे राजन् ! इससे आप आलसको छोड़कर इन्द्रिय-निग्रहके निमित्त यत्नवान होइये । आपकी बुद्धि जिसमें तत्त्वमार्गसे भ्रष्ट न हो जाय, इस निमित्त आप उसे सब विषयों से खींचके निवृत्त करें । ब्राह्मण लोग इन्द्रिय-संयमकोही निश्चल ज्ञान कहते हैं । यही ज्ञान है; और बुद्धिमान् महात्मा उत्तम पुरुष जिस पथसे गमन करते हैं, वही मार्ग है । हे राजन् ! इन्द्रियोंको न जीतनेवाले पुरुष, भगवान् केशवको नहीं जान सकते; इन्द्रियोंके जीतनेवाले पुरुषही प्राप्त हुए योगप्रभावसे उनके तत्त्वज्ञानको पाते हैं । ( १७-२१ ) [२४६५]

उद्योगपर्वमें उनत्तर अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र उवाच— भूयो मे पुण्डरीकाक्षं संजयाऽऽचक्ष्व पृच्छतः ।  
 नामकर्माथवित्तात् प्राप्नुयां पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥  
 संजय उवाच— श्रुतं मे वासुदेवस्य नामनिर्वचनं शुभम्  
 यावत्तत्राऽभिजानेऽहमप्रमेयो हि केशवः ॥ २ ॥  
 वसनात्सर्वभूतानां वसुत्वादेवयोनितः ।  
 वासुदेवस्ततो वेद्यो बृहत्वाद्विष्णुरुच्यते ॥ ३ ॥  
 मौनाद्व्यानाच्च योगाच्च विद्धि भारत माधवम् ।  
 सर्वतत्त्वमयत्वाच्च मधुहा मधुसूदनः ॥ ४ ॥  
 कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।  
 विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति सात्वतः ॥ ५ ॥  
 पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षयमव्ययम् ।  
 तद्भावात्पुण्डरीकाक्षो दस्युत्रासाज्जनार्दनः ॥ ६ ॥  
 यतः सत्त्वान्न च्यवते यच्च सत्त्वान्न हीयते ।

उद्योगपर्वमें सत्तर अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे संजय ! मैं तुमसे फिर पूछता हूँ, इससे तुम मुझसे पुनर्वार पुण्डरीकाक्षका वर्णन करो। हे तात ! मैं उनके नाम और कर्मके अर्थोंको जाननेसेही उन्हें प्राप्त कर सकूंगा। (१)

संजय बोले मैं जितना स्मरण कर सकता हूँ, उतनेही परिमाणसे श्रीकृष्ण-चन्द्रके शुभ नामोंको सुना है, क्योंकि केशवके नाम और कर्मोंकी गिनती नहीं हो सकती। सब प्राणियोंके वसन अर्थात् मायासे आवरण करनेके कारण वसुत्व अर्थात् तेजमय तथा देवताओंकेभी कारण होनेसे उनका नाम वासुदेव है; और व्यापक होनेसे विष्णु शब्दसे पुकारे जाते हैं। हे भारत ! वह मुनियोंके क-

र्मतत्त्वकी आलोचना, निश्चित तत्त्वोंमें चित्तको लगाने और निरोध करनेसे माधव कहाते हैं। मधु नामक दैत्य और मधु शब्दसे कहे पृथ्वी आदि चौबीस तत्त्वोंके संहार करनेसे उनका मधुसूदन नाम है। (२-४)

कृषि शब्द भूसत्त्वका बोधक है, और ण शब्द सुखवाचक है, इन दोनों शब्दोंके भावार्थके अनुसार यदुकुलमें उत्पन्न होनेसे कृष्ण नाम हुआ है। पुण्डरीक शब्दसे उनका परम धाम तथा स्वरूप का बोध होता है; यह धाम नित्य, अक्षय और अव्यय है; अक्षय पुण्डरीक के कारणसे वह पुण्डरीकाक्ष कहे जाते हैं। दुष्टों को भय देने तथा संहार करनेसे उनका नाम जनार्दन

सत्वतः सात्वतस्तस्मादार्षमादृषभेक्षणः ॥ ७ ॥

न जायते जनित्राऽयमजस्तस्मादनीकजित् ।

देवानां स्वप्रकाशत्वादमादामोदरो विभुः ॥ ८ ॥

हर्षात्सुखात्सुखैश्वर्याद्दृषीकेशत्वमश्रुते ।

बाहुभ्यां रोदसी विभ्रन्महाबाहुरिति स्मृतः ॥ ९ ॥

अधो न क्षीयते जातु यस्मात्तस्मादधोक्षजः ।

नराणामयनाच्चापि ततो नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥

पूरणात्सदनाच्चापि ततोऽसौ पुरुषोत्तमः ।

असतश्च सतश्चैव सर्वस्य प्रभवाप्यघात् ॥ ११ ॥

सर्वस्य च सदा ज्ञानात्सर्वमेतं प्रचक्षते ।

हुआ है। उनसे कभी सतोगुण पृथक् नहीं होता, और वहभी सतोगुणसे भ्रष्ट नहीं होते; इसी निमित्त उनका नाम सात्वत है। वृष शब्दसे ज्योतिका अर्थ होता है; धर्मकी ज्योति अर्थात् वेद जिससे उत्पन्न होते हैं, वेही वेद जिसके जाननेके निमित्त ईक्षण अर्थात् चक्षुस्वरूप हैं; कृष्ण वेदके जाननेवाले पुरुष हैं, इसीसे उनका नाम वृषभेक्षण है। (५—७)

युद्धको जीतनेवाले केशवको कोई उत्पन्न करनेवाला तथा जन्मदाता नहीं है, इसीसे उनका अज नाम हुआ है। दाम शब्दसे दमशाली और उदरसे उत्तम रूपसे प्रकाशितका बोध होता है। सर्वव्यापक मधुसूदन दमशाली और इन्द्रियोंके बीच स्वयं प्रकाशित होकर दामोदर नामको धारण किये हैं, जिससे हर्ष प्राप्त होता है, उसी अर्थसे हृषीकेश शब्द बना है,

इसका अर्थ स्वरूपानन्द और ईष शब्द का ऐश्वर्यवान अर्थ है; कृष्णका हर्ष, सुख और ऐश्वर्य है, इसीसे उनका नाम हृषीकेश हुआ है। उन्होंने अपने भुजाओंसे पृथ्वी और स्वर्गको धारण किया है, इसीसे उनका नाम महाबाहु विख्यात हुआ है। (८—९)

अधः प्रदेशमें उनका कभी क्षय नहीं होता अर्थात् वे संसार धर्ममें कभी लिप्त नहीं होते; इससे उनका नाम अधोक्षज है। और मनुष्योंके अयन अर्थात् आश्रय के स्थानके कारणसे उनका नाम नारायण विख्यात हुआ है। जो पूरण करते हैं, उन्हें “पुरु” और जिसमें समाप्ति होती है, उसे “ष” कहते हैं; इन दोनों शब्दोंके योगसे पुरुष शब्द बनता है; कृष्ण संसारकी सृष्टि करके संहार करते हैं; इसीसे वे पुरुषोंमें उत्तम पुरुष भये हैं; इसी कारणसे उनका नाम

सत्ये प्रतिष्ठितः कृष्णः सत्यमत्र प्रतिष्ठितम् ॥ १२ ॥

सत्यात्सत्यं तु गोविंदस्तस्मात्सत्योऽपि नामतः ।

विष्णुर्विक्रमणाद्देवो जयनाजिष्णुरुच्यते ॥ १३ ॥

शाश्वतत्वादनंतश्च गोविंदो वेदनाद्भवाम् ।

अतत्त्वं कुरुते तत्त्वं तेन मोहयते प्रजाः ॥ १४ ॥

एवंविधो धर्मनित्यो भगवान्मधुसूदनः ।

आगता हि महाबाहुरानृशंस्यार्थमच्युतः ॥ १५ ॥ [२४८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि

संजयवाक्ये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—चक्षुष्मतां वै स्पृहयामि संजय द्रक्ष्यंति ये वासुदेवं समीपे ।

विभ्राजमानं वपुषा परेण प्रकाशयंतं प्रदिशो दिशश्च ॥ १ ॥

ईरयंतं भारतीं भारतानामभ्यर्चनीयां शंकरीं सृजयानाम् ।

बुभूषद्भिर्ग्रहणीयामर्निद्यां परासूनामग्रहणीयरूपाम् ॥ २ ॥

पुरुषोत्तम हुआ है । ( १०—११ )

वह समस्त कार्य और कारणकी उत्पत्ति और विनाशके मूल हैं, और सदा ही सब विषयोंको जानते रहते हैं; इसीसे पाण्डित लोग उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं। कृष्ण सत्यसे प्रतिष्ठित हैं, और सत्य कृष्णमें प्रतिष्ठित है; गोविन्दका सत्यसेभी सत्य नाम है, इससे सत्यभी उनका नाम है। वह विक्रमके कारणसे विष्णु और जयसे जिष्णु, नित्यतासे अनन्त और गो अर्थात् गद्य-पद्य वाक्योंके जाननेसे गोविन्द कहे जाते हैं। वह मिथ्याभूत जगतके प्रपञ्चको अपने तेजसे प्रकाशित करके सत्यकी भांति प्रतीयमान ( बोधित ) करके उससे सब प्राणियोंको मोहित करते रहते हैं। इसी

प्रकारसे धर्मनित्य महाबाहु भगवान् मधुसूदन अच्युत कौरवोंके कल्याणके निमित्त यहां आगमन करेंगे । ११-१५

उद्योगपर्वमें सत्तर अध्याय समाप्त । [२४८०]

उद्योगपर्वमें इकत्तर अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे संजय ! परम देह से प्रकाशमान और सब दिशाओंमें प्रकाशित वासुदेवको जो अपने समीप-हीमें देखेंगे, उन नेत्रसे युक्त सब मनुष्यों के भाग्यको मैं धन्य समझता हूं। कौरव लोग भरतवंशीय पांडवोंके पूजनीय, सृजयोंके कल्याणको करनेवाले, ऐश्वर्य-कामी मनुष्योंको ग्रहण करनेके योग्य और मृत्युसे ग्रस्त हुए पुरुषोंको जो ग्रहण करनेके योग्य नहीं हैं ऐसे निन्दा रहित वचनोंको श्रीकृष्ण मेरी सभामें आकर

समुद्यंतं सात्वतमेकवीरं प्रणेतारमृषमं यादवानाम् ।  
 निहंतारं क्षोभणं शात्रवाणां मुंचंतं च द्विषतां वै यशांसि ॥ ३ ॥  
 द्रष्टारो हि कुरवस्तं समेता महात्मानं शत्रुहणं वरेण्यम् ।  
 ब्रुवंतं वाचमनृशंसरूपां वृष्णिश्रेष्ठं मोहयंतं मदीयान् ॥ ४ ॥  
 ऋषिं सनातनतमं विपश्चितं वाचः समुद्रं कलशं यतीनाम् ।  
 अरिष्टनेमिं गरुडं सुपर्णं हरिं प्रजानां भुवनस्य धाम ॥ ५ ॥  
 सहस्रशीर्षं पुरुषं पुराणप्रनादिमध्यांतमनंतकीर्तिम् ।  
 शुक्रस्य धातारमजं च नित्यं परं परेषां शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥  
 त्रैलोक्यनिर्माणकरं जनित्रं देवासुराणामथ नागरक्षसाम् ।  
 नराधिपानां विदुषां प्रधानमिंद्रानुजं तं शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥ [ २४८७ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि  
 धृतराष्ट्रवाक्ये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ समाप्तं च यानसंधिपर्वः ।

अथ भगवद्गीतापर्वः ।

वैशम्पायन उवाच—संजये प्रतियाते तु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।  
 अभ्यभाषत दाशार्हमृषमं सर्वसात्वताम् ॥ १ ॥

कहेंगे । तथा अपने वचनमृतके प्रभाव-  
 से सबको मोहित करनेवाले, उद्यमशाली,  
 यदुवंशियों में श्रेष्ठ, अद्वितीय वृष्णि-  
 वीर श्रीकृष्णभी अपने उदार वचनोंसे  
 मेरी सभाके सब लोगोंको मोहित करेंगे,  
 ऐसे श्रीकृष्णको आप मेरी सभामें  
 देखेंगे । ( १—४ )

उन सनातन आत्मतत्त्वज्ञ ऋषि,  
 वचनके समुद्र, योगियोंके कलस अर्थात्  
 अनायासही प्राप्त होनेवाले, शोभायमान  
 पक्षयुक्त अरिष्टनेमि नामक गरुड, प्रा-  
 णियोंके संहार करनेवाले, जगतके दी-  
 पक, विश्वयोनि, अज, नित्य श्रेष्ठ,  
 आदि मध्य आदि सीमासे रहित, अ-

नन्तर्कीर्त्तिमान और सहस्र-शीर्षक  
 पुरुषको मैं अपना रक्षक रूपसे जानूंगा,  
 तथा उनकी आशा करूंगा । वह तीनों  
 लोकोंके बनानेवाले देवता, असुर,  
 नाग, राक्षस आदि प्राणियोंके उत्पन्न  
 करनेवाले, विद्यासे युक्त राजाओंमें  
 श्रेष्ठ परात्पर हैं, मैं उनका शरणागत  
 होऊंगा । ( ५—७ ) [ २४८७ ]

उद्योगपर्वमें इत्तर अध्याय और  
 यानसन्धिपर्व समाप्त ।

उद्योगपर्वमें बाह्य अध्याय और  
 भगवद्गीतापर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्  
 जनमेजय ! सञ्जयके हस्तिनापुर जानेके

अयं स कालः संप्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।

न च त्वदन्यं पश्यामि यो न आपत्सु तारयेत् ॥ २ ॥

त्वां हि माधवमाश्रित्य निर्भया मोघदर्पितम् ।

धार्तराष्ट्रं सहामात्यं स्वयं समनुयुक्ष्महे ॥ ३ ॥

यथा हि सर्वास्वापत्सु पाप्मि वृष्णीनरिंदम ।

तथा ते पांडवा रक्ष्याः पाह्यस्मान्महतो भयात् ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच— अयमस्मि महाबाहो ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ।

करिष्यामि हि तत्सर्वं यत्त्वं वक्ष्यसि भारत ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच— श्रुतं ते धार्तराष्ट्रस्य सपुत्रस्य चिकीर्षितम् ।

एतद्वि सकलं कृष्ण संजयो मां यदब्रवीत् ॥ ६ ॥

तन्मतं धृतराष्ट्रस्य सोऽस्याऽऽत्मा विवृतांतरः ।

यथोक्तं दूत आचष्टे वध्यः स्यादन्यथा ब्रुवन् ॥ ७ ॥

अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने यदुकुलश्रेष्ठ कृष्णसे कहा, हे मित्रवत्सल ! मित्रगण-को मित्रता दिखानेके निमित्त यही एक यथार्थ समय उपस्थित हुआ है; तुम्हारे अतिरिक्त मैं और किसी पुरुष-कोभी ऐसा नहीं देखता हूँ, कि जो हम लोगों को इस उपस्थित विपदसे मुक्त कर सके। तुम्हारेही भरोसे हम निर्भय-ता पूर्वक वृथा अभिमानी दुर्योधनके समीप अपने राज्यप्राप्तिके अंशके निमित्त अभियोग कर सकेंगे। हे शत्रुनाशन ! सब प्रकारकी आपदाँसे जैसे तुम यदु-वंशियों का उद्धार करते रहते हो; इस समय पाण्डव लोगभी उसी प्रकारसे तुम्हारी रक्षा करनेके योग्य हैं; तुम इस महा भयसे हम लोगों की रक्षा करो। (१-४)

श्रीभगवान् बोले, हे महाबाहो! यही मैं उपस्थित हूँ, जो कुछ कहना हो, उसे कहिये। हे भारत ! आप मुझे जो कुछ आज्ञा करेंगे, मैं निःसन्देह उसको पूर्ण करूँगा। (५)

युधिष्ठिर बोले, धृतराष्ट्र और उनके पुत्रकी जो कुछ अभिलाषा है, वह सब तुमने सुना है। सञ्जयने आकर जो कुछ वचन कहे, वे धृतराष्ट्रकी संमतिसे अतिरिक्त कुछभी नहीं हैं। संजयको धृतराष्ट्रकी आत्माही कहनी चाहिये, उसमें केवल मूर्तिभेद मात्र है। विशेषतः दूत लोग अपने स्वामीके कहे हुए वचनों ही को ज्यों का त्यों कहा करते हैं। ऐसा न करनेसे वे अन्यथा वचनों के कहनेवाले होकर वध किये जानेके योग्य होते हैं। राजा धृतराष्ट्र मेरी



अप्रदानेन राज्यस्य शान्तिमस्मासु मार्गति ।  
 लुब्धः पापेन मनसा चरन्नसममात्मनः ॥ ८ ॥  
 यत्तद् द्वादश वर्षाणि वनेषु ह्युषिता वयम् ।  
 छद्मना शरदं चैकां धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ९ ॥  
 स्थाता नः समये तस्मिन्धृतराष्ट्र इति प्रभो ।  
 नाऽहास्म समयं कृष्ण ताद्वि नो ब्राह्मणा विदुः ॥ १० ॥  
 गृद्धो राजा धृतराष्ट्रः स्वधर्मं नाऽनुपश्यति ।  
 वश्यत्वात्पुत्रगृद्धित्वान्मन्दस्याऽन्वेति शासनम् ॥ ११ ॥  
 सुयोधनमते तिष्ठन् राजाऽस्मासु जनार्दन ।  
 मिथ्या चरति लुब्धः सन् चरन्हि प्रियमात्मनः ॥ १२ ॥  
 इतो दुःखतरं किं नु यदहं मातरं ततः ।  
 संविधातुं न शक्नोमि मित्राणां वा जनार्दन ॥ १३ ॥  
 काशिभिश्चेदिपांचालैर्मस्त्यैश्च मधुसूदन ।  
 भवता चैव नाथेन पंच ग्रामा वृता मया ॥ १४ ॥  
 अविस्थलं वृकस्थलं माकंदी वारणावतम् ।

समझमें पाप और लोभसे युक्त होकर हम लोगों को राज्य बिना दियेही शान्ति स्थापन करनेकी इच्छा करते हैं। ६-८

हे प्रभाव सम्पन्न कृष्ण ! धृतराष्ट्र हम लोगोंकी उसी प्रतिज्ञामें दृढ़ रहे ऐसाही समझकर मैंने उनकी आज्ञाके अनुसार बारह वर्ष वन वास और एक वर्ष छिपकरभी निवास किया, हम लोगोंने किसी प्रकारसे उस प्रतिज्ञाको न तोड़ा उसको हमारे सङ्ग रहनेवाले ब्राह्मण लोगही जानते हैं। इस समय बूढ़े राजा दुष्टोंके शासनके वशवर्ती होकर पुत्रके स्नेहमें पड़कर, अपने धर्मकी ओर दृष्टि नहीं करते हैं। हे जनार्दन-

न ! वह दुर्योधनके वशमें होकर; लोभमें पड़के, हम लोगोंके सङ्ग बहुतही मिथ्या आचरण कर रहे हैं। (९-१२)

मैं जो अपनी जननी और मित्रोंके निमित्त कोई मङ्गल कार्य करनेमें असमर्थ होता हूं, इससे बढ़के और दूसरा दुःख मुझे क्या होगा ? हे मधुसूदन ! काशी राज, चेदीपति, पाञ्चालराज और मत्स्य राज, तथा तुम मेरी सहायता करनेके निमित्त उपस्थित हो, तोभी मैंने केवल पांच गांवहीके निमित्त अन्धे राजा धृतराष्ट्रके समीप इस प्रकारसे निवेदन किया था, कि “ हे तात ! अविस्थल, वृकस्थल, माकंदी, वारणावत और दूसरा

अवसानं च गोविंद किंचिदेवाऽत्र पंचमम् ॥ १५ ॥  
 पंच नस्तात दीयंतां ग्रामा वा नगराणि वा ।  
 वसेम सहिता येषु मा च नो भरता नशान् ॥ १६ ॥  
 न च तानपि दुष्टात्मा धार्तराष्ट्रोऽनुमन्यते ।  
 स्वाभ्यमात्मनि मत्वाऽसावतो दुःखतरं नु किम् ॥ १७ ॥  
 कुले जातस्य वृद्धस्य परवित्तेषु गृह्यतः ।  
 लोभः प्रज्ञानमाहंति प्रज्ञा हंति हता हियम् ॥ १८ ॥  
 हीर्हता बाधते धर्मं धर्मो हंति हतः श्रियम् ।  
 श्रीर्हता पुरुषं हंति पुरुषस्याऽधनं वधः ॥ १९ ॥  
 अधनाद्धि निवर्तते ज्ञातयः सुहृदो द्विजाः ।  
 अपुष्पादफलाद्वृक्षाद्यथा कृष्ण पतत्रिणः ॥ २० ॥  
 एतच्च मरणं तात यन्मत्तः पतितादिव ।  
 ज्ञातयो विनिवर्तन्ते प्रेतसत्त्वादिवाऽसवः ॥ २१ ॥  
 नाऽतः पापीयसीं कांचिदवस्थां शंबरोऽब्रवीत् ।

कोई एक गांव, येही पांच गांव वा  
 नगर मुझे दे दीजिये, हम पाचों भाई  
 मिलकर उन्हीं स्थानोंमें निवास करेंगे;  
 भरतवंशका नाश हो, यह किसी प्रकार  
 से मेरे मतसे युक्त नहीं है।” परंतु दुष्टा-  
 त्मा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन स्वयं प्रभु बन  
 कर पांच गांवभी देनेमें सम्मत नहीं  
 होता है; इससे अधिक दुःखका विषय  
 और क्या हो सकता है ? ( १३-१७ )

हे कृष्ण ! जो मनुष्य उत्तम कुलमें  
 उत्पन्न और विद्या, ज्ञान तथा उत्तम  
 शिक्षासे बढकर, पराये धनको लेनेके  
 वास्ते लोभ करते हैं, उनका वह लोभ  
 ही उनकी बुद्धिका नाश करनेका कारण  
 होता है, बुद्धिके नाश होनेसे लज्जा छूट

जाती है; लज्जा छूटनेसे धर्मका नाश हो-  
 जाता है; धर्म नाश होनेसे श्रीको तेज-  
 हीन करता है; श्रीसे अष्ट होनेसेही  
 पुरुषका नाश होजाता है; क्योंकि दरि-  
 द्रताही पुरुषकी मृत्यु है। जैसे पक्षी  
 लोग सब ओर फल और पुष्पसे हीन  
 वृक्षको छोड़ कर चले जाते हैं, वैसेही  
 निर्द्धन मनुष्यको इष्ट-मित्र, जातिके  
 लोग तथा ब्राह्मण लोगभी त्याग देते  
 हैं। हे तात ! प्राणवायु जैसे मृतक  
 पुरुषको छोड़कर चल देती है, वैसेही  
 जातिके लोग निर्द्धन समझके पतितकी  
 भांति मुझे परित्याग करेंगे वही मेरी  
 मृत्यु होगी। ( १७-२१ )

शम्बरने कहा था कि “जिस अवस्था

यत्र नैवाऽय न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ २२ ॥  
 धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम् ।  
 जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः ॥ २३ ॥  
 ये धनादपकर्षन्ति नरं स्वबलमास्थिताः ।  
 ते धर्ममर्थं कामं च प्रमथन्ति नरं च तम् ॥ २४ ॥  
 एतामवस्थां प्राप्यैके मरणं वव्रिरे जनाः ।  
 ग्रामायैके वनायैके नाशायैके प्रवव्रजुः ॥ २५ ॥  
 उन्मादमेके पुष्यन्ति थांल्यन्ये द्विषतां वशम् ।  
 दास्यमेके च गच्छन्ति परेषामर्थहेतुना ॥ २६ ॥  
 आपदेवाऽस्य मरणात्पुरुषस्य गरीयसी ।  
 श्रियो विनाशस्तद्व्यस्य निमित्तं धर्मकामयोः ॥ २७ ॥  
 यदस्य धर्म्यं मरणं शाश्वतं लोकवर्त्म तत् ।  
 समन्तात्सर्वभूतानां न तदत्येति कश्चन ॥ २८ ॥

में आज घरमें अब नहीं है, कल  
 क्या होगा, सदा ऐसीही चिन्ता लगी  
 रहती है, उससे बढके पापोंकी और क्या  
 दशा हो सकती है ? संसारके तत्त्वको  
 जानने वाले पण्डितोंने धनको परम धर्म  
 कहा है, क्योंकि धनही सबका मूलधार  
 है । इस संसारमें धनवान मनुष्यही  
 यथार्थमें जीवित रहते हैं, जो लोग  
 निर्द्धन हैं, वे जीते रहनेपरभी मरे  
 हुएके समान हैं । जो लोग अपने बलसे  
 दूसरेके धनको हर लेते हैं; वे लोग  
 केवल उसकाही नाश करते हैं, सो नहीं;  
 बरन वे लोग धर्म, अर्थ, काम सबहीका  
 नाश कर देते हैं । (२२—२४)

दरिद्रताको पानेसे कितनेही मनुष्य  
 मरनेकी इच्छा करते हैं; कितनेही नगर

को छोडके गावोंमें जाकर वास करते  
 हैं; कितनेही परिव्राजक धर्म तथा संन्या-  
 सको अवलम्बन करके वनवासी होजाते  
 हैं; कितनेही मनुष्योंकी लीलाको शेष  
 करके मृत्युकी शरणमें चले जाते हैं ।  
 धनके निमित्त कितनेही पागल होजाते  
 हैं; और कितनेही मनुष्य दूसरेकी दास-  
 वृत्ति तथा सेवाकोही स्वीकार कर लेते  
 हैं । पुरुषको धननाशरूपी जो विपद  
 होती है, वह मृत्युसे भी बढके है,  
 क्योंकि धनही उनके धर्म और कामका  
 एकमात्र साधन है । (२५—२७)

उसकी धर्मके अनुसार जो मृत्यु है,  
 वह तो सब कालही लोकमें उपस्थित  
 रहती है, उनको कोई भी अतिक्रम  
 नहीं कर सकता । और जो मनुष्य

न तथा बाध्यते कृष्ण प्रकृत्या निर्धनो जनः ।

यथा भद्रां श्रियं प्राप्य तथा हीनः सुखैधितः ॥ २९ ॥

स तदाऽऽत्मापराधेन संप्राप्तो व्यसनं महत् ।

सेंद्राङ्गर्ह्यते देवान्नाऽऽत्मानं च कथंचन ॥ ३० ॥

न चाऽस्य सर्वशास्त्राणि प्रभवन्ति निवर्हणे ।

सोऽभिक्रुध्यति भृत्यानां सुहृदश्चाऽभ्यसूयति ॥ ३१ ॥

तत्तदा मन्युरेवैति स भूयः संप्रमुह्यति ।

स मोहवशमापन्नः क्रूरं कर्म निषेवते ॥ ३२ ॥

पापकर्मतया चैव संकरं तेन पुष्यति ।

संकरो नरकायैव सा काष्ठा पापकर्मणाम् ॥ ३३ ॥

न चेत्प्रबुध्यते कृष्ण नरकायैव गच्छति ।

तस्य प्रबोधः प्रज्ञैव प्रज्ञाचक्षुस्तरिष्यति ॥ ३४ ॥

प्रज्ञालाभे हि पुरुषः शास्त्राण्येवाऽन्ववेक्षते ।

बहुत धन तथा सम्पत्तिको पाकर सदा सुख आदिको भोगता रहता है, अन्तमें धनहीन होजाता है; उनको जैसा दुःख और क्लेश होता है, वैसा स्वाभाविक दरिद्र पुरुषको नहीं होता । अपने अपराधसे धनसे हीन होनेपर उस समय मनुष्य इन्द्र आदि देवताओंके ऊपर दोषारोप करने लगता है; अपनी निन्दा किसी प्रकार से नहीं करता । ( २८—३० )

उस समय सम्पूर्ण शास्त्रकी शिक्षा भी उसके दुःखको नाश करनेमें समर्थ नहीं होती । वह कभी भृत्य-वर्गों ( नौकरों ) पर अपने क्रोधको प्रकाशित करता है, कभी ईर्ष्याके वशमें होकर सुहृद लोगोंको दोषी कहा करता है । इसी प्रकारसे क्रोधके वशमें होके मोहसे

कठोर और क्रूरकर्मोंका अनुष्ठान करता है; और पापमें आसक्त होकर जातिको नाश करनेका कारण होता है । जातिको नाश करनेवाले, जो पापियोंके अग्रगामी और नरक प्राप्तिके कारण होते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । ( ३१—३३ )

हे कृष्ण ! पाप करनेवाला मनुष्य यदि किसी प्रकारसे शान्त न हो सके, तो उसे अवश्य नरकमें जाना पडता है । एकमात्र विवेकके अतिरिक्त उसकी शान्तिका और दूसरा कुछ भी उपाय नहीं है । ज्ञानके नेत्रको प्राप्त करनेसे, वह पाप-कर्मसे किञ्चित् पार हो सकता है । ज्ञानके पानेसे ही मनुष्य सब शास्त्रकी बातोंको जान सकता है; और

शास्त्रनिष्ठः पुनर्धर्मं तस्य हीरंगमुत्तमम् ॥ ३५ ॥  
 हीमान्नि पापं प्रद्वेष्टि तस्य श्रीरभिवर्धते ।  
 श्रीमान्स यावद्भवति तावद्भवति पूरुषः ॥ ३६ ॥  
 धर्मनित्यः प्रशांतात्मा कार्ययोगवहः सदा ।  
 नाऽधर्मे कुरुते बुद्धिं न च पापे प्रवर्तते ॥ ३७ ॥  
 अहीको वा विसूढो वा नैव स्त्री न पुनः पुमान् ।  
 नाऽस्याऽधिकारो धर्मेऽस्ति यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ ३८ ॥  
 हीमानवति देवांश्च पितृनात्मानमेव च ।  
 तेनाऽमृतत्वं व्रजति सा काष्ठा पुण्यकर्मणाम् ॥ ३९ ॥  
 तदिदं मयि ते दृष्टं प्रत्यक्षं मधुसूदन ।  
 यथा राज्यात्परिश्रष्टो वसामि वसतीरिमाः ॥ ४० ॥  
 ते वयं न श्रियं हातुमलं न्यायेन केनचित् ।  
 अत्र नो यतमानानां बधश्चेदपि साधु तत् ॥ ४१ ॥  
 तत्र नः प्रथमः कल्पो यद्वयं ते च माधव ।

शास्त्रमें निष्ठावान् होके धर्मका अनुष्ठान करनेमें प्रवृत्त होता है । उस समय लज्जा उसकी मुख्य अङ्ग होजाती है; जिसको लज्जा रहती है, उसीकी श्री और समृद्धि बढ़ती है । जबतक पुरुष लक्ष्मीवान रहता है, तभीतक उसको यथार्थ पुरुष मानते हैं ! ( ३४-३६ )

जो सदाही धर्मकार्योंके करनेवाले और शान्त-स्वभावके पुरुष होते हैं, वे सदा विचार-पूर्वक कार्य करते हैं । उनकी बुद्धि कभी अधर्म कर्मोंके करने में नहीं जाती और न वह पापमें प्रवृत्त होते हैं । लज्जा रहित व्यक्ति न स्त्री है और पुरुष भी नहीं है, उसका धर्ममें अधिकार नहीं रहता; वह शूद्रकी भांति

निकृष्ट मनुष्योंमें गिना जाता है । लज्जावान् पुरुष देवता, पितर और आत्माकी प्रीतिके निमित्त उत्तम कार्योंको करते हैं; और उससे मुक्तिको पाते हैं । मुक्तिही पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्योंकी अन्तिम सीमा है । ( ३७-३९ )

हे मधुसूदन ! मैंने जो वचन कहे उन्हें मुझीमें तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो; हम लोग राज्यसे भ्रष्ट होकर जिस प्रकारसे कई वर्षोंको बिताते हुए निवास कर रहे हैं, वह भी तुमसे छिपा नहीं है; इससे अब वर्तमान समयमें हम किसी न्यायके अनुसारभी लक्ष्मीको परित्याग नहीं कर सकते । अपने राज्यको लेनेके निमित्त यत्न करनेमें यदि हम लोगोंकी

प्रशान्ताः शमभूताश्च श्रियं तामश्नुवीमहि ॥ ४२ ॥  
 तत्रैषा परमा काष्ठा रौद्रकर्मक्षयोदया ।  
 यद्वयं कौरवान्हत्वा तानि राष्ट्राण्यवाप्नुमः ॥ ४३ ॥  
 ये पुनः स्युरसंबद्धा अनार्याः कृष्ण शत्रवः ।  
 तेषामप्यवधः कार्यः किं पुनर्मे स्युरीदृशाः ॥ ४४ ॥  
 ज्ञातयश्चैव भूयिष्ठाः सहाया गुरवश्च नः ।  
 तेषां वधोऽतिपापीयान्किं नु युद्धेऽस्ति शोभनम् ॥ ४५ ॥  
 पापः क्षत्रियधर्मोऽयं वयं च क्षत्रबंधवः ।  
 स नः स्वधर्मोऽधर्मो वा वृत्तिरन्या विगर्हिता ॥ ४६ ॥  
 शूद्रः करोति शुश्रूषां वैश्या वै पण्यजीविकाः ।  
 वयं वधेन जीवामः कपालं ब्राह्मणैर्वृतम् ॥ ४७ ॥

मृत्यु होजाय, तो वह भी उत्तम है। हे माधव ! उस विषयमें हम लोगोंका पहिला विचार यही है, कि हम सब आपसमें सन्धि करके संपूर्ण राज्यको बराबर हिस्सोंमें बांटके शान्तिपूर्वक भोग करें। ( ४०-४२ )

यदि किसी प्रकारसेभी यह कार्य न हो, तो मेरी इच्छा न रहनेपरभी कौरवोंका वध करके अपने राज्य जिसको कि उन लोगोंने हर लिया है, उसको फिर भी लेना पड़ेगा। परन्तु युद्धमें प्रवृत्त होकर महा-भयङ्कर संहार कर्मको करना बहुतही निकृष्ट और निन्दनीय है। हे कृष्ण ! जो सब शत्रु अत्यन्तही नीच-वृत्ति और अपनी प्रतिकूलताको करते रहते हैं, जिनके सङ्ग कुछभी सम्बन्ध नहीं रहता, उनकाभी वध करना अनुचित कार्य है। परन्तु

जिनके साथ इस प्रकारका अत्यन्त निकट सम्बन्ध है, उन कौरवोंकी बात-को मैं क्या कहूंगा। ( ४३-४४ )

अनगिनत जातिके लोगों तथा गुरुजनोंके वध करनेसे जो महापापका कर्म होगा, उसमें और क्या सन्देह है ? इस युद्ध करनेसे किसी भांतिसे मङ्गल तथा कल्याणकी सम्भावना नहीं दीख पडती है। परन्तु यह पापमय कर्मही क्षत्रियोंका धर्म होरहा है। और हम लोगोंनेभी इसी क्षत्रियकुलमें जन्म ग्रहण किया है; इससे धर्म हो अथवा अधर्म हो, युद्धके अतिरिक्त अन्य कर्म हम लोगोंके पक्षमें निन्दनीय है। शूद्र लोग सेवा करते हैं, वैश्य लोग वाणि-ज्य करते हैं; हम लोग हिंसा कर्मको करते हैं; और ब्राह्मण लोग भिक्षावृत्तिसे अपना निर्वाह करते हैं ? यही सनातन

क्षत्रियः क्षत्रियं हन्ति मत्स्यो मत्स्येन जीवति ।  
 श्वा श्वानं हन्ति दाशार्हं पश्य धर्मो यथागतः ॥ ४८ ॥  
 युद्धे कृष्ण कलिर्नित्यं प्राणाः सीदन्ति संयुगे ।  
 बलं तु नीतिमाधाय युद्धये जयपराजयौ ॥ ४९ ॥  
 नाऽऽत्मच्छन्देन भूतानां जीवितं मरणं तथा ।  
 नाऽप्यकाले सुखं प्राप्यं दुःखं वापि यदूत्तम ॥ ५० ॥  
 एको ह्यपि बहून्हन्ति घ्नन्त्येकं बहवोऽप्युत ।  
 शूरं कापुरुषो हन्ति अयशस्वी यशस्विनम् ॥ ५१ ॥  
 जयौ नैवोभयोर्दृष्टो नोभयोश्च पराजयः ।  
 तथैवाऽपचयो दृष्टो व्यपयाने क्षयव्ययौ ॥ ५२ ॥  
 सर्वथा वृजिनं युद्धं को घ्नन्न प्रतिहन्यते ।  
 हतस्य च हृषीकेश समौ जयपराजयौ ॥ ५३ ॥

धर्म है । ( ४५-४७ )

हे कृष्ण ! जिसका जैसा धर्म है, उसीके अनुकूल कार्य करनेमें वह प्रवृत्त होता है । देखिये जैसे मछरी मछरीयों-से अपने जीवनको धारण करती हैं, और कुत्ते कुत्तोंकी हिंसा करते हैं; उसी भांतिसे क्षत्रिय लोगभी क्षत्रियोंका वध किया करते हैं । हे कृष्ण ! युद्ध स्थान-में कलियुग सदाही समीप रहता है, क्योंकि युद्धमें बड़े बड़े महात्मा अनायासही मारे जाते हैं । हे कृष्ण ! नीतिही मेरा बल है और इसके आधार परही हम लोग युद्धके लिये तैयार हैं, यह ठीक है; परन्तु जीतना और हरना तथा प्राणियोंका जीना और मरना इच्छानुसार नहीं होता, और बिना समय पहुंचे कोई सुख तथा दुःखका अधिकारीभी

नहीं होता । ( ४८-५० )

एक पुरुषभी अनगिनत मनुष्योंके प्राणका संहार कर सकता है, और बहुतसे मनुष्य मिलकरभी एक पुरुषको नहीं मार सकते हैं; पुरुषार्थसे रहित निर्बल मनुष्यभी शूरवीर पुरुषका वध कर सकता है, और यशहीनभी यशस्वी पुरुषके नाशको करनेमें समर्थ हो जाता है । यह ठीक है, कि दोनों पक्षकी जय और पराजय नहीं दीख पडती; परन्तु प्रायः समानही क्षति दोनों पक्षोंकी देखी जाती है; जो हार जाते हैं, उनकी सेनाका नाश और धनका व्यय दोनोंही होता है । एक मनुष्यको घायल करके कौन पुरुष आप घायल नहीं होता ? घायल पुरुषोंकी हार जीत दोनोंही समान हैं । ( ५१-५३ )

पराजयश्च मरणान्मन्ये नैव विशिष्यते ।  
 यस्य स्याद्विजयः कृष्ण तस्याऽप्यपचयो ध्रुवम् ॥ ५४ ॥  
 अंततो दयितं घ्नन्ति केचिदप्यपरे जनाः ।  
 तस्यांगबलहीनस्य पुत्रान्भ्रातृनपश्यतः ॥ ५५ ॥  
 निर्वेदो जीविते कृष्ण सर्वतश्चोपजायते ।  
 ये ह्येव धीरा धीमंत आर्याः करुणवेदिनः ॥ ५६ ॥  
 त एव युद्धे हन्यन्ते यवीयान्मुच्यते जनः ।  
 हत्वाप्यनुशयो नित्यं परानपि जनार्दन ॥ ५७ ॥  
 अनुबंधश्च पापोऽत्र शेषश्चाप्यवशिष्यते ।  
 शेषो हि बलमासाद्य न शेषमनुशेषयेत् ॥ ५८ ॥  
 सर्वोच्छेदे च यतते वैरस्याऽतविधित्सया ।  
 जयो वैरं प्रसजति दुःखमास्ते पराजितः ॥ ५९ ॥  
 सुखं प्रशांतः स्वपिति हित्वा जयपराजयौ ।

मेरे विचारमें मरने और हार जानेमें कुछ विशेष अन्तर नहीं है ? जिसकी जीत होती है, उसेभी बहुतसी क्षति उठानी पड़ती है । चाहे शत्रु लोग उसे न मार सकें, परन्तु उसके प्यारे तथा प्रेमपात्र किसी न किसी पुरुषको तो मारतेही हैं इससे एक तो वह पहिलेसेही बलसे हीन ही रहता है, दूसरे पुत्र, सहोदर तथा अन्य प्रियजनोंको न देखनेसे अवश्यही उसको जीवनके निमित्त वैराग्य उत्पन्न होजाता है । जो लोग धीर, लज्जाशील और कारुणिक तथा दयावान होते हैं, वेही संग्राममें मारे जाते हैं, और निकृष्ट मनुष्य प्रायः बच जाते हैं । (५४-५७)

हे केशव ! उत्तम शत्रुओंको मारकर

भी उसे सब दिनके लिये पश्चात्ताप करना पड़ता है, विशेषतः यदि मारने-वालोंमेंसे बचा हुआ कोई शत्रुभी बाकी रहता है, तो शत्रुताके विषयमें उसकी पापमयी आसक्तिभी बनी रहती है; यही पुरुष क्रमसे बलवान होकर विजयी पुरुषोंके मरनेसे बचे हुए मनुष्योंका सर्वनाश कर देता है, अर्थात् उनका कुछभी बाकी नहीं छोड़ता; शत्रुताको शेष करनेकी अभिलाषासे वह सबका संहार करनेमें यत्नवान होता है । इस प्रकारसे जीत शत्रुताकी सृष्टि करती है, और जिस मनुष्यकी हार होती है, वह दुःखसे अपने दिनोंको बिताता है । (५७-५९)

जिसकी किसीके सङ्ग शत्रुता नहीं



जातवैरश्च पुरुषो दुःखं स्वपिति नित्यदा ॥ ६० ॥

अनिर्वृत्तेन मनसा ससर्प इव वेदमनि ।

उत्सादयति यः सर्वं यशसा स विमुच्यते ॥ ६१ ॥

अकीर्तिं सर्वभूतेषु शाश्वतीं स नियच्छति ।

नहि वैराणि शाम्यन्ति दीर्घकालधृतान्यपि ॥ ६२ ॥

आख्यातारश्च विच्यन्ते पुमांश्चेद्विच्यते कुले ।

न चापि वैरं वैरेण केशव व्युपशाम्यति ॥ ६३ ॥

हविषाऽग्निर्यथा कृष्ण भूय एवाऽभिवर्धते ।

अतोऽन्यथा नास्ति शान्तिर्नित्यमंतरमंतरतः ॥ ६४ ॥

अंतरं लिप्समानानामयं दोषो निरंतरः ।

पौरुषे यो हि बलवानाधिर्हृदयबाधनः ॥

तस्य त्यागेन वा शान्तिर्मरणेनापि वा भवेत् ॥ ६५ ॥

है, उसे हार जीतका भय नहीं होता; इससे वह शान्तचित्त होकर सुखकी नींद सोता है; परन्तु शत्रुता करनेवाले पुरुषों को सदाही दुःख है; सर्पसे युक्त स्थानमें वास करनेसे मनमें जैसी चिन्ता तथा घबराहट लगी रहती है, उसकोभी वैसेही चिन्तामें दुःखी रहना होता है । जो मनुष्य सबका नाश करनेवाला होता है, वह कभी यशका पात्र नहीं हो सकता; सहस्रों यशके कर्म रहने परभी वह उससे पतित हो जाता है, और सब लोकके बीचमें सदा रहनेवाली अकीर्तिको सञ्चय करता है । बहुत कालतक प्रज्वालित रहनेपरभी शत्रुरूपी अग्नि नहीं बुझती । (६०—६२)

शत्रु के कुलमें यदि कोई पुरुष विद्यमान रहता है, तो उससे पहिले पुरुषोंके

किये हुए वैर वृत्तान्तको कहनेके निमित्त बहुतसे मनुष्यभी उपस्थित रहते हैं । हे केशव ! वैरसे कभी शत्रुताका नाश नहीं होता, बल्कि अग्निमें घी पड़नेकी भांतिसे औरभी बढ़ता रहता है । इससे जब छिद्र सदाही बना रहता है किमी भांतिसे उसका शेष नहीं होता, तब एक पक्षको पूर्ण रूपसे नष्ट किये बिना कभी शान्ति नहीं हो सकती । जो लोग छिद्रको खोजनेकी इच्छा करते हैं, उनमें यही एक दोष सदा लगा रहता है । पुरुषार्थका कार्य जो सदाही एक प्रबल मानसिक ताप उत्पन्न करके अन्तर्दाह किया करता है, या तो उसका शेष होजाय अथवा अपनी मृत्युही होवे इन्हीं दोनोंमेंसे एकके होनेसे शान्ति हो सकती है । (६३—६५)

अथवा मूलघातेन द्विषतां मधुसूदन ।  
 फलनिर्वृत्तिरिद्धा स्यान्न नृशंसतरं भवेत् ॥ ६६ ॥  
 या तु त्यागेन शान्तिः स्यात्तद्वत्ते वध एव सः ।  
 संशयाच्च समुच्छेदाद् द्विषतामात्मनस्तथा ॥ ६७ ॥  
 न च त्यक्तुं तदिच्छामो न चेच्छामः कुलक्षयम् ।  
 अत्र या प्रणिपातेन शान्तिः सैव गरीयसी ॥ ६८ ॥  
 सर्वथा यतमानानामयुद्धमभिकांक्षताम् ।  
 सांत्वे प्रतिहते युद्धं प्रसिद्धं नाऽपराक्रमः ॥ ६९ ॥  
 प्रतिघातेन सांत्वस्य दारुणं संप्रवर्तते ।  
 तच्छुनामिव संपाते पण्डितैरुपलक्षितम् ॥ ७० ॥  
 लांगूलचालनं क्ष्वेडा प्रतिवाचो विवर्तनम् ।  
 दंतदर्शनमारावस्ततो युद्धं प्रवर्तते ॥ ७१ ॥  
 तत्र यो बलवान्कृष्ण जित्वा सोऽस्ति तदामिषम् ।

हे मधुसूदन ! शत्रुओंको मूल सहित  
 नाश करनेसेभी बहुत कुछ फल मिल  
 सकता है, परन्तु शत्रुओंको मूल समेत  
 नाश कर देना अत्यन्तही निष्ठुर मनुष्य-  
 का कार्य है । राज्यको त्यागनेसे जो  
 शान्ति हो सकती है; राज्यके निमित्त  
 प्राणियोंका वध करनेके सहित उसमें  
 कुछभी विशेषता नहीं रहती । क्योंकि  
 उसमें शत्रुके पक्षकी शङ्का और अपने  
 पक्षके नाशकी सम्भावना बनी रहती  
 है । इससे राज्यको छोड़नेकीभी मेरी  
 इच्छा नहीं है और कुलके नाश करने-  
 कीभी मेरी अभिलाषा नहीं है । इस वि-  
 षयमें जिससे किसी भांतिसे युद्ध न कर-  
 ना पड़े वैसाही प्रयत्न सब प्रकारसे क-  
 रना चाहिये । यह नम्रता स्वीकार

करनेसे शान्तिकी रक्षा हो सके, तो  
 सबसे उत्तम है; क्योंकि इसी प्रकारकी  
 शान्ति श्रेष्ठ मानी गई है । (६६-६८)

यदि साम-वादसे कोईभी फल न  
 दीख पड़े, तब युद्ध तो प्रसिद्धही है,  
 उस समय पराक्रमसे भी विलम्ब  
 करना उचित नहीं है । परन्तु सामवाद-  
 के निष्फल होनेपर अवश्यही महा घोर  
 कर्म अर्थात् युद्ध करना पड़ता है, कु-  
 त्तोंकी लड़ाईके समयमें पण्डित लोग  
 उसकी पूरी उपमाको दृष्टिगोचर करते  
 हैं । कुत्ते पहिले पूंछ हिलाते और चि-  
 ह्छाते, और प्रत्युत्तर देते तथा चक्रकी  
 भांति चारों ओर घूमते और दांत दि-  
 खाते हैं; फिर बड़े जोरसे चीत्कार रहते  
 हुए युद्धमें प्रवृत्त होते हैं । हे कृष्ण !

एवमेव मनुष्येषु विशेषो नास्ति कश्चन ॥ ७२ ॥

सर्वथा त्वेतदुचितं दुर्बलेषु बलीयसाम् ।

अनादरो विरोधश्च प्रणिपाती हि दुर्बलः ॥ ७३ ॥

पिता राजा च वृद्धश्च सर्वथा मानमर्हति ।

तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च धृतराष्ट्रो जनार्दन ॥ ७४ ॥

पुत्रस्नेहश्च बलवान्धृतराष्ट्रस्य माधव ।

स पुत्रवशमापन्नः प्रणिपातं प्रहास्यति ॥ ७५ ॥

तत्र किं मन्यसे कृष्ण प्राप्तकालमनंतरम् ।

कथमर्थाच्च धर्माच्च न हीयेमहि माधव ॥ ७६ ॥

ईदृशोऽत्यर्थकृच्छ्रेऽस्मिन्कमन्यं मधुसूदन ।

उपसंप्रष्टुमर्हामि त्वामृते पुरुषोत्तम ॥ ७७ ॥

प्रियश्च प्रियकामश्च गतिज्ञः सर्वकर्मणाम् ।

को हि कृष्णाऽस्ति नस्त्वाह्वसर्वनिश्चयवित्सुहृत् ॥ ७८ ॥

वैशम्पायन उवाच- एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजं जनार्दनः ।

उनमें जो बलवान होता है, वह दूसरे-को हराके उसका मांस खाता है। विचार करके देखनेसे मनुष्योंमें भी यही दशा है, विशेषता कुछ भी नहीं है। (६९-७२)

परन्तु निर्बल मनुष्योंपर अपने बलको दिखलाना, और उनसे विरोध करना बलवानको कभीभी उचित नहीं है; क्योंकि निर्बल मनुष्य सहजहीमें अवनति तथा अधीनताको स्वीकार कर लेता है। हे जनार्दन ! धृतराष्ट्र हम लोगोंके जेठे पिता, राजा वृद्ध और माननीय हैं; इससे उनके संमुख संमान, पूजा और अवनति दिखलाना हम लोगोंका जो कर्त्तव्य कर्म है, उसमें कौन सन्देह कर सकता है ? परन्तु हे

कृष्ण ! धृतराष्ट्रको पुत्रस्नेह बहुत प्रबल है; पुत्रोंके वशमें होकर वह हम लोगोंकी विनतीको अस्वीकार करेंगे। ७३-७५

उसके अनन्तर तुम किस कर्त्तव्य कर्मको उत्तम समझते हो ? किस प्रकार से मैं धर्म और अर्थसे विमुख न होऊंगा ? हे मधुसूदन ! हे पुरुषोत्तम कृष्ण ! ऐसे महाघोर अर्थ-सङ्कटमें मैं तुम्हारे अतिरिक्त और किस मनुष्यके निकट परामर्श करूंगा ? तुम्हारे समान हितैषी, प्यारा, सब विषयोंके यथार्थ सिद्धान्तको निश्चय करनेवाला और सुहृद् मेरा दूसरा कौन है ? (७६-७८)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्मराजकी इन सब बातोंको सुनकर जनार्दन कृष्णने

उभयोरेव वामर्धे यास्यामि कुरुसंसदम् ॥ ७९ ॥

शमं तत्र लभेयं चेदुष्मदर्थमहापयन् ।

पुण्यं मे सुमहद्राजंश्चरितं स्यान्महाफलम् ॥ ८० ॥

मोचयेयं मृत्युपाशात्संरब्धान्कुरुसृजयान् ।

पाण्डवान्धार्तराष्ट्रांश्च सर्वा च पृथिवीमिमाम् ॥ ८१ ॥

युधिष्ठिर उवाच- न ममैतन्मतं कृष्ण यत्त्वं यायाः कुरुन्प्रति ।

सुयोधनः सूक्तमपि न करिष्यति ते वचः ॥ ८२ ॥

समेतं पार्थिवं क्षत्रं दुर्योधनवशानुगम् ।

तेषां मध्यावतरणं तव कृष्ण न रोचये ॥ ८३ ॥

न हि नः प्रीणयेद् द्रव्यं न देवत्वं कुतः सुखम् ।

न च सर्वामरैश्वर्यं तव द्रोहेण माधव ॥ ८४ ॥

श्रीभगवानुवाच- जानाम्येतां महाराज धार्तराष्ट्रस्य पापताम् ।

अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्वलोके महीक्षिताम् ॥ ८५ ॥

कहा, महाराज ! मैं आपके दोनों प्रयोजनोंको सिद्ध करनेके निमित्त कौरवोंकी सभामें जाऊंगा, वहांपर आपके अभिलषित विषयको स्थिर रखके यदि शान्ति स्थापित कर सकूंगा, तो मेरा महा फलसे युक्त, बहुत बड़ा पुण्य-कर्मका अनुष्ठान सिद्ध होगा। सन्धि करनेसे कौरव, सुजय, पाण्डवों तथा धृतराष्ट्रके पुत्र और समस्त पृथ्वीके राजा तथा मनुष्योंको मृत्युके मुंहसे मुक्त करूंगा। (७९—८१)

युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण ! कौरवोंकी सभामें जाओगे, यह मुझे किसी अवस्थामेंभी ठीक नहीं जंचता है। तुम उत्तम युक्ति तथा परामर्श दोगे, तौभी तुम्हारी बातोंको दुर्योधन न

मानेगा। हे कृष्ण ! दुर्योधन के वशवर्त्ती अनेक राजोंके बीचमें तुम्हारा प्रवेश करना किसी प्रकारसे भी मेरे मतमें उत्तम तथा कल्याणकारी नहीं मालूम होता है। हे माधव ! यदि तुम्हारे उपर कोई बुरा आचरण करेगा तो हमारे राज्य धन और सुखकी बात तो दूर रही, स्वर्गकाभी ऐश्वर्य और देवत्व पदार्थभी मुझे प्यारा न होगा। (८२—८४)

श्रीभगवान् बोले, हे महाराज ! दुर्योधन जैसा पाप बुद्धिवाला पुरुष है; वह मुझसे छिपा नहीं है; तौ भी निकट जानेसे हम लोग पृथ्वीके सब राजाओंके समीप सब भांतिसे निन्दा-रहित रहेंगे। मेरे क्रुद्ध होनेपर कौरवोंकी

न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः ।

क्रुद्धस्य संयुगे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ ८६ ॥

अथ चेत्ते प्रवर्तेत मयि किञ्चिदसांप्रतम् ।

निर्दहेयं कुरुन्सर्वानिति मे धीयते मतिः ॥ ८७ ॥

न जातु गमनं पार्थ भवेत्तत्र निरर्थकम् ।

अर्थप्राप्तिः कदाचित्स्यादंततो वाऽप्यवाच्यता ॥ ८८ ॥

युधिष्ठिर उवाच— यत्तुभ्यं रोचते कृष्ण स्वस्ति प्राप्नुहि कौरवान् ।

कृतार्थं स्वस्तिमंतं त्वां द्रक्ष्यामि पुनरागतम् ॥ ८९ ॥

विष्वक्सेन कुरुन्गत्वा भरताञ्जलमयन्प्रभो ।

यथा सर्वे सुमनसः सह स्याम सुचेतसः ॥ ९० ॥

भ्राता चामि सखा चासि वीभत्सोर्मम च प्रियः ।

सौहृदेनाऽविशङ्क्योऽसि स्वस्ति प्राप्नुहि भूतये ॥ ९१ ॥

अस्मान्वेतथ परान्वेतथ वेत्थाऽर्थान्वेतथ भाषितुम् ।

सभामें सब राजा लोग वैसेही न ठहर सकेंगे जैसे सिंहके संमुख साधारण पशु लोग नहीं खड़े रह सकते । यदि वे लोग मेरे सङ्ग किसी अयुक्त व्यवहारके करनेमें प्रवृत्त होंगे तो मैं सम्पूर्ण कुरुकुलको भस्म कर दूंगा, मुझे ऐसाही निश्चय है । हे पार्थ ! उस स्थानपर मेरा जाना कभी व्यर्थ न होगा; यदि प्रयोजन सिद्ध न होगा तो अन्तमें हम लोगोंको अपवादसे ग्रस्त नहीं होना पड़ेगा । (८५-८८)

युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसेही करो । सब प्रकारसे कुशल पूर्वक कौरवोंके समीप जाकर, उन लोगोंको इस प्रकारसे शान्त करो जिससे हम लोग सान्धिके सूत्रमें

बढ़ होकर प्रीति पूर्वक अपने समयको बिता सकें । इस समय यही प्रार्थना है, कि लौटनेके समय जिसमें तुम्हें कृतकार्य और कल्याणयुक्त देख सकूं । हे जनार्दन ! तुम हम लोगोंके भाई और मित्र हो; तुम मेरे और अर्जुनके समान रूपसे प्यारे हो, तुम्हारे सङ्ग हम लोगों की ऐसी सुहृदता उत्पन्न हुई है, कि किसी विषयमें भी तुमसे शंकाकी सम्भावना नहीं है; इससे हम लोगोंके मङ्गलकार्यको साधन करनेके निमित्त तुम अपनी शुभयात्राको करो । हे कृष्ण ! तुम हम लोगोंको भी जानते हो और शत्रुओंको भी खूब जानते हो; जो कुछ प्रयोजन है, वह भी तुमसे छिपा नहीं है; जिस प्रकारका प्रस्ताव करना उचित

यद्यदस्मद्वितं कृष्ण तत्तद्वाच्यः सुयोधनः ॥ ९२ ॥

यद्यधर्मेण संयुक्तमुपपद्येद्वितं वचः ।

तत्तत्केशव भाषेथाः सांत्वं वा यदि वेतरत् ॥ ९३ ॥ [२५८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्दानपर्वणि

युधिष्ठिरकृष्णप्रेरणे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

श्रीभगवानुवाच- संजयस्य श्रुतं वाक्यं भवतश्च श्रुतं मया ।

सर्वं जानाम्यभिप्रायं तेषां च भवतश्च यः ॥ १ ॥

तव धर्माश्रिता बुद्धिस्तेषां वैराश्रया मतिः ।

यद्युद्धेन लभ्येत तत्ते बहुमतं भवेत् ॥ २ ॥

नचैवं नैष्टिकं कर्म क्षत्रियस्य विशांपते ।

आहुराश्रमिणः सर्वे न भैक्षं क्षत्रियश्चरेत् ॥ ३ ॥

जयो वधो वा संग्रामे धात्रा दिष्टः सनातनः ।

स्वधर्मः क्षत्रियस्यैष कार्पण्यं न प्रशस्यते ॥ ४ ॥

नहि कार्पण्यमास्थाय शक्या वृत्तिर्युधिष्ठिर ।

है, वह भी तुमको अविदित नहीं है। हे केशव ! इससे सन्धि हो, अथवा युद्धही का प्रसङ्ग हो, जो हम लोगोंके हित-कारी और धर्मके अनुयायी विषय हों, तुम वह दुर्योधनके निकट कहना। ( ८९—९३ ) [२५८०]

उद्योगपर्वमें बाहत्तर अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें तिहत्तर अध्याय ।

युधिष्ठिरकी बात समाप्त होनेपर कृष्ण बोले, मैंने सञ्जयकी बात सुनी है और आपका भी वचन सुना है। शत्रु लोगों के और आपके जो कुछ अभिप्राय हैं, वह भी मुझसे छिपे नहीं हैं। आपकी बुद्धि धर्मके अनुसार कार्य करना चाहती है, और उन लोगोंकी बुद्धि केवल

शत्रुताके आचरणहीमें रत है। युद्धके विना कियेही जो कुछ मिले वही आपके मतमें उत्तम समझा जाता है। परंतु हे महाराज ! सब आश्रमवाले कहते हैं, कि क्षत्रिय भिक्षाजीवी न हों भिक्षावृत्तिसे रहना कभी भी क्षत्रियोंके पक्षमें कल्याणकारी नहीं है। विधाताने युद्धमें जीत और हारका जो कुछ विधान किया है, वही क्षत्रियोंका सनातन धर्म है; कृष्ण-ताको प्रकाशित करना क्षत्रियोंके पक्षमें कभी भी प्रशंसाका विषय नहीं हो सकता। ( १-४ )

हे महाबाहो युधिष्ठिर ! दीनभावको ग्रहण करनेसे क्षत्रियोंको जीविका निर्वाह करना बहुतही कठिन हो जाता है।

विक्रमस्व महाबाहो जहि शत्रून्परंतप ॥ ५ ॥  
 अतिगृद्धाः कृतस्नेहा दीर्घकालं सहोषिताः ।  
 कृतमित्राः कृतबला धार्तराष्ट्राः परंतप ॥ ६ ॥  
 न पर्यायोऽस्ति यत्साम्यं त्वयि कुर्युर्विशांपते ।  
 बलवत्तां हि मन्यन्ते भीष्मद्रोणकृपादिभिः ॥ ७ ॥  
 यावच्च मार्दवेनैताज्जाज्ञपचरिष्यसि ।  
 तावदेते हरिष्यन्ति तव राज्यमरिंदम ॥ ८ ॥  
 नाऽनुक्रोशान्न कार्पण्यान्न च धर्मार्थकारणात् ।  
 अलंकर्तुं धार्तराष्ट्रास्तव काममरिंदम ॥ ९ ॥  
 एतदेव निमित्तं ते पांडवाऽस्तु यथा त्वयि ।  
 नाऽन्वतप्यन्त कौपीनं तावत्कृत्वाऽपि दुष्करम् ॥ १० ॥  
 पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य च धीमतः ।  
 ब्राह्मणानां च साधूनां राज्ञश्च नगरस्य च ॥ ११ ॥  
 पश्यतां कुरुमुख्यानां सर्वेषामेव तत्त्वतः ।

हे परन्तप ! इससे पूर्ण बलको प्रकाश करके शत्रुओंका नाश कीजिये । धृतराष्ट्रके पुत्र लोग अत्यन्त लोभके वशमें होगये हैं, उन लोगोंने बहुत दिनोंतक अनेक वीरोंके सङ्ग स्नेह और मित्रता करके पूर्ण बल संचय किया है, इससे वे लोग किसी प्रकारसेभी आपके संग सन्धि न करेंगे । हे नरनाथ ! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदिकी सहायता पाकर वे अपनेको अत्यन्त बलवान् समझ रहे हैं, इससे जबतक आप कोमलभावको ग्रहण करके उन लोगोंके समीप नम्रता प्रकाश किया करेंगे, तबतक वे आपको अवश्यही राजभोगसे वाञ्छित रखेंगे, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । (५-८)

हे शत्रुनाशन ! धृतराष्ट्रके पुत्र लोग न करुणा, न दीनता और न अर्थ तथा धर्मके ज्ञान आदि किसी विषयसेभी आपके मनोरथको पूरा करनेमें समर्थ होंगे । हे पाण्डव ! जब वे लोग उस भांतिके रुवां खड़े करनेवाले कौपीनको आपको पहरा करके तनिकभी दुःखी और सन्तापित नहीं हुए थे, तबहीसे सन्धि न करनेका निमित्त अर्थात् कारण समझ लीजिये । ( ९—१० )

हे राजन् ! आप ऐसे धर्म परायण, मृदुस्वभाव युक्त दानशील और व्रतके करनेवाले होनेपर भी, जिस पुरुषने भीष्म, द्रोण, बुद्धिमान् विदुर; महात्मा ब्राह्मणों, तथा राजा धृतराष्ट्र और

दानशीलं मृदुं दातं धर्मशीलमनुव्रतम् ॥ १२ ॥  
 यत्त्वामुपधिना राजन्व्यूते वंचितवांस्तदा ।  
 न चाऽपन्नपते तेन नृशंसः स्वेन कर्मणा ॥ १३ ॥  
 तथाशीलसमाचारे राजन्मा प्रणयं कृथाः ।  
 वध्यास्ते सर्वलोकस्य किं पुनस्तव भारत ॥ १४ ॥  
 वाग्भिस्त्वप्रतिरूपाभिरतुदत्त्वां सहानुजम् ।  
 श्लाघमानः प्रहृष्टः सन्भ्रातृभिः सह भाषते ॥ १५ ॥  
 एतावत्पाण्डवानां हि नास्ति किञ्चिदिह स्वकम् ।  
 नामधेयं च गोत्रं च तदप्येषां न शिष्यते ॥ १६ ॥  
 कालेन महता चैषां भविष्यति पराभवः ।  
 प्रकृतिं ते भजिष्यन्ति नष्टप्रकृतयो मयि ॥ १७ ॥  
 दुःशासनेन पापेन तदा व्यूते प्रवर्तिते ।  
 अनाथवत्तदा देवी द्रौपदी सुदुरात्मना ॥ १८ ॥  
 आकृष्य केशे रुदती सभायां राजसंसदि ।  
 भीष्मद्रोणप्रमुखतो गौरिति व्याहृता मुहुः ॥ १९ ॥

मुख्य मुख्य कौरव और नगर निवासि-  
 योंके सन्मुखही आपको कपटके जुवेकी  
 खेलमें जीतकर, अपने किये हुए बुरे  
 कर्मके निमित्त तनिकभी लज्जा नहीं  
 करी, उस शील रहित, दुराचारी और  
 क्रूरबुद्धि दुर्योधनके ऊपर आप कदापि  
 स्नेह न कीजिये । हे भारत ! आपकी  
 बात तो दूर है, वह सब लोगोंसे मारे  
 जानेके योग्य हैं । ( ११—१४ )

एक बार ध्यान देकर देखिये तो  
 सही, दुर्योधनने भाइयोंके सङ्ग मिलकर  
 अत्यन्त आनन्दित होके, अपनी बड़ाई  
 करता हुआ, बहुतसे न कहने योग्य  
 वचनोंसे आपको तथा आपके भाइयोंको

किस भांतिसे मर्म-पीडा पहुंचायी थी ?  
 उसने मुक्तकण्ठसे कहा था, कि “ इस  
 पृथ्वीके बीचमें पाण्डवोंकी कोईभी वस्तु  
 ऐसी नहीं है, जिसे वह अपनी कहे;  
 ऐसा क्या इन लोगोंका नाम और गोत्र  
 पर्यन्तभी लुप्त हुआ; महाकालके सङ्ग  
 इन लोगोंकी अवश्यही पराभव होगी ।  
 इनका राज्य इस समय मेरे अधिकारमें  
 हुआ है; इससे ये लोग अपनी जीविका  
 के निमित्त प्रजाकी सहायताको अव-  
 लम्बन करेंगे । ” ( १५—१७ )

और भी देखिये जुएके खेलके समय  
 पापबुद्धि दुरात्मा दुःशासनने केशमें पक-  
 ड कर रोती हुई द्रौपदी को राजसभामें



भवता वारिताः सर्वे भ्रातरो भीमविक्रमाः ।

धर्मपाशानिवद्धाश्च न किञ्चित्प्रतिपेदिरे ॥ २० ॥

एताश्चाऽन्याश्च परुषा वाचः स समुदीरयन् ।

श्लाघते ज्ञातिमध्ये स्म त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥ २१ ॥

ये तत्राऽऽसन्समानीतास्ते दृष्ट्वा त्वामनागसम् ।

अश्रुकंठा रुदन्तश्च सभायामासते सदा ॥ २२ ॥

न चैनमभ्यनन्दस्ते राजानो ब्राह्मणैः सह ।

सर्वे दुर्योधनं तत्र निन्दन्ति स्म सभासदः ॥ २३ ॥

कुलीनस्य च या निन्दा बधो वाऽमित्रकर्शन ।

महागुणो बधो राजन्न तु निन्दा कुजीविका ॥ २४ ॥

तदैव निहतो राजन्यदैव निरपत्रपः ।

निन्दितश्च महाराज पृथिव्यां सर्वराजभिः ॥ २५ ॥

ईषत्कार्यो बधस्तस्य यस्य चारित्र्यमीदृशम् ।

प्रस्कृन्देन प्रतिस्तब्धश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ २६ ॥

बध्यः सर्प इवाऽनार्थः सर्वलोकस्य दुर्मतिः ।

लाकर भीष्म, द्रोण, आदिके सन्मुख वारंवार गौ गौ कहके हंसी करी थी। उस समय आपने महाबलवान अपने भाइयोंको निवारण कर दिया, वे लोग धर्मपाशमें बंध कर कुछभी प्रतिकार न कर सके। आपके वनमें चले जाने परभी दुर्योधनने जातियोंके बीच पहिले की भांति तथा दूसरी भांतिसेभी अनेक कठोर वाक्योंको कहकर अपनी बड़ाई करी थी। ( १८—२१ )

जो सब उस स्थानपर उत्तम स्वभाव से युक्त पुरुष उपस्थित थे, वे सब आपको निरपराधी समझकर आंसू बहाते हुए सभामें बैठे थे। ब्राह्मण तथा राजा लोग

कोई भी उसकी बातोंसे आनन्दित नहीं हुए थे, बल्कि सब सभासदोंने उसकी निन्दा करी थी। हे शत्रुतापन महाराज ! कुलीन पुरुषोंके निमित्त निन्दाही बध है; बल्कि निन्दायुक्त जीनेसे एक बार मर जानाही सौ गुणा उत्तम है। पृथ्वी मात्रके राजाओंमें निन्दित होकर भी जब उसने कुछभी लज्जा नहीं करी, तब उसके मरनेमें अब बाकीही क्या है ? ( २२—२५ )

जिसके कर्म ऐसे बुरे और निन्दनीय हैं, उसको मारना एक साधारण कार्य है। जैसे वृक्षकी सब जड़ कट जाती है, केवल बीचकी जड़ही शेष रहती है,

जह्येनं त्वममित्रघ्न मा राजन्विचिकित्सिथाः ॥ २७ ॥  
 सर्वथा त्वत्क्षमं चैतद्रोचते च ममाऽनघ ।  
 यत्त्वं पितरि भीष्मे च प्रणिपातं समाचरेः ॥ २८ ॥  
 अहं तु सर्वलोकस्य गत्वा छेत्स्यामि संशयम् ।  
 येषामस्ति द्विधा भावो राजन्दुर्योधनं प्रति ॥ २९ ॥  
 मध्ये राज्ञामहं तत्र प्रातिपौरुषिकान्गुणान् ।  
 तव संकीर्तयिष्यामि ये च तस्य व्यतिक्रमाः ॥ ३० ॥  
 ब्रुवतस्तत्र मे वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।  
 निशम्य पार्थिवाः सर्वे नानाजनपदेश्वराः ॥ ३१ ॥  
 त्वयि संप्रतिपत्स्यन्ते धर्मात्मा सत्यवागिति ।  
 तस्मिंश्चाऽधिगमिष्यन्ति यथा लोभादवर्तत ॥ ३२ ॥  
 गर्हयिष्यामि चैवैनं पौरजानपदेष्वपि ।  
 वृद्धबालानुपादाय चातुर्वर्ण्ये समागते ॥ ३३ ॥  
 शमं वै याचमानस्त्वं नाऽधर्मं तत्र लप्स्यसे ।

इसी प्रकारके वृक्षकी भांति तथा भय  
 देनेवाले, सर्पकी भांति; वह क्षुद्राशय  
 नीचबुद्धि दुर्योधन सब लोगोंसे मारे  
 जानेके योग्य है । हे शत्रुनाशन !  
 इससे आप उसका वध कीजिये; इसमें  
 किंचित् मात्रभी सन्देह और शङ्का न  
 कीजिये । हे पाप रहित ! धृतराष्ट्र तथा  
 भीष्मके निकट आप जो सदाही विनी-  
 तभाव स्वीकार करते हैं, यह सब  
 प्रकारसे आपके योग्य है और मुझेभी  
 स्वीकार है । (२६-२८)

हे राजन् ! इससे मैं वहांपर जाकर  
 दुर्योधनके ऊपर जिस लोगोंका द्विधा-  
 भाव है, उन सबके संशयको दूर करूंगा ।  
 इकट्ठी हुई राजाओंकी मण्डलीके बीच

सब लोग आपके गुणों और दुर्योधनके  
 दोषोंको गावेंगे । नाना देशोंके आये  
 हुए राजा लोग, मेरे धर्म और अर्थसे  
 भरे हुए वचनोंको सुनकर, अवश्यही  
 आपको धर्मात्मा और सत्यवादी कहके  
 विश्वास करेंगे ? और दुर्योधन लोभके  
 वशमें होकर जिस प्रकारके नीच कर्मोंको  
 कर रहा है, उसेभी सब लोग खूब  
 समझ लेंगे । केवल राजमण्डलीही क्यों  
 सुनेगी, वहांपर आये हुए ब्राह्मण आदि  
 चारों वर्ण, वनवासी, नगरके रहनेवाले  
 बालक, बूढ़े सबके संमुखही मैं दुर्योधनकी  
 निन्दा करना आरम्भ करूंगा । २९-३३

आप जब शान्तिके निमित्त प्रार्थना  
 करते हैं, तब आपको कौन अधार्मिक

कुरुन्विगर्हयिष्यन्ति धृतराष्ट्रं च पार्थिवाः ॥ ३४ ॥

तस्मिन्लोकपरित्यक्ते किं कार्यमवाशिष्यते ।

हते दुर्योधने राजन्यदन्यत्क्रियतामिति ॥ ३५ ॥

यात्वा चाऽहं कुरुन्सर्वान्युष्मदर्थमहापयन् ।

यतिष्ये प्रशमं कर्तुं लक्षयिष्ये च चेष्टितम् ॥ ३६ ॥

कौरवाणां प्रवृत्तिं च गत्वा युद्धाधिकारिकाम् ।

निशम्य विनिवर्तिष्ये जयाय तव भारत ॥ ३७ ॥

सर्वथा युद्धमेवाऽहमाशंसामि परैः सह ।

निमित्तानि हि सर्वाणि तथा प्रादुर्भवन्ति मे ॥ ३८ ॥

मृगाः शकुन्ताश्च वदन्ति घोरं हस्त्यश्वमुख्येषु निशामुखेषु ।

घोराणि रूपाणि तथैव चाऽग्निर्वर्णान्वह्न्युष्यति घोररूपान् ॥ ३९ ॥

मनुष्यलोकक्षयकृत्सुघोरो नो चेदनुप्राप्त इहांऽतकः स्यात् ।

शस्त्राणि यन्त्रं कवचा रथाश्च नागान्हयाश्च प्रतिपादायित्वा ॥ ४० ॥

योधाश्च सर्वे कृतनिश्चयास्ते भवन्तु हस्त्यश्वरथेषु यत्ताः ।

कहेगा ? परन्तु मनुष्य मात्रही कौरवोंकी, विशेष करके धृतराष्ट्रकी अनेक प्रकारसे निन्दा करेंगे; इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । हे राजन् ! वह जब सब लोगोंसे रहित पापी दुर्योधन निन्दासे मृततुल्य होजायगा तब आपके कर्त्तव्य कर्ममें बाकीही क्या रहेगा ! इससे मैं कौरवोंकी सभामें जाकर, आपकी अर्थकी हानि न करके, सब प्रकारसे सन्धिही करनेके निमित्त यत्नवान होऊंगा; और उन लोगोंकी युद्ध-निश्चयकी प्रवृत्ति और सब चेष्टाओंको देखकर शीघ्रही आपके जयकी निमित्त लौट आऊंगा । (३४-३७)

हे भारत ! बुरे सगुनोंको जिस प्र-

कारसे मैं देख रहा हूं, उससे शत्रु-ओंके सङ्ग युद्ध करना होगा; यह सब प्रकारसे मालूम हो रहा है । देखिये सन्ध्या समय हरिण और पक्षी भयंकर शब्द करते हैं; और हाथियों और अश्वोंका भयङ्कर रूप दीख पड़ता है; और अग्नि बहुत प्रकारके विकट वर्णको धारण कर रही है । हे नरेन्द्र ! मनुष्योंको नाश करनेवाले महा विकराल समयके बिना आये कभीभी ऐसी घटना नहीं होती । इससे इसी समयसे आपके योद्धा लोग अस्त्र, कवच, यन्त्र, रथ, घोड़े और हाथी आदि सब युद्धकी सामग्रियोंको संचित करके रथ, घोड़े और हाथियोंको फेरनेमें नियुक्त होजावें ।

सांग्रामिकं ते यदुपार्जनयिं सर्वं समग्रं कुरु तन्नरेन्द्र ॥ ४१ ॥

दुर्योधनो न ह्यलमद्य दातुं जीविंस्त्वैतन्नृपते कथंचित् ।

यत्ते पुरस्तादभवत्समृद्धं द्यूते हतं पाण्डवमुख्य राज्यम् ॥ ४२ ॥ [२६२२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतपर्वणि

कृष्णवाक्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

भीम उवाच— यथा यथैव शान्तिः स्यात्कुरूणां मधुसूदन ।

तथा तथैव भाषेथा मा स्म युद्धेन भीषयेः ॥ १ ॥

अमर्षी जातसंरंभः श्रेयोद्वेषी महामनाः ।

नोग्रं दुर्योधनो वाच्यः साम्रैवैनं समाचरेः ॥ २ ॥

प्रकृत्या पापसत्त्वश्च तुल्यचेतास्तु दस्युभिः ।

ऐश्वर्यमदमत्तश्च कृतवैरश्च पाण्डवैः ॥ ३ ॥

अदीर्घदर्शी निष्ठूरी क्षेप्ता क्रूरपराक्रमः ।

दीर्घमन्युरनेयश्च पापात्मा निकृतिप्रियः ॥ ४ ॥

अप्येतापि न भज्येत नैव जह्यात्स्वकं मतम् ।

हे राजेन्द्र ! युद्धके निमित्त जिन वस्तु-  
ओंका संग्रह करना होता है, आप सब  
चीजोंको इकट्ठी कर रखिये । हे पाण्ड-  
वराज ! दुर्योधनने पहिले जुएसे आपकी  
समस्त राजलक्ष्मी तथा राज्यको हर  
लिया था; इस समयमें जीते जी वह  
कभी आपका उस धन और राज्यको  
लौटानेमें समर्थ न होगा । (३८-४२  
उद्योगपर्वमें तिहत्तर अध्याय समाप्त । [२६२२]

उद्योगपर्वमें चौहत्तर अध्याय ।

भीम बोले, हे मधुसूदन ! जिस  
प्रकारसे कौरवोंके बीच शान्ति स्थापित  
होवे, तुम उसी प्रकारसे प्रस्ताव करना ।  
युद्धके प्रसंगसे तुम कभी उन लोगोंको  
भय न दिखाना । महाक्रोधी, उत्साहयुक्त,

कल्याणका विरोधी, और महा अभिमानी  
दुर्योधनको किसी प्रकारका कठोर वचन  
कहना उत्तम न होगा, इस निमित्त साम  
वादसेही उस को शान्त कीजियेगा । १-२

हे कृष्ण ! जो मनुष्य स्वाभाविक  
पापी, दस्युके समान चित्तवाला, ऐश्व-  
र्यसे मतवाला, पाण्डवोंके संग सदा  
वैर करनेवाला, अदूरदर्शी, निष्ठुर, साधु-  
ओंका अपमान करने वाला, क्रूर पराक्र-  
म, सदा क्रोधमें रहनेवाला, विनय- र-  
हित, पाप बुद्धि और वञ्चना-प्रिय है;  
जो मूढबुद्धि बरन प्राण देना स्वीकार  
करता है, परन्तु अपने मतको त्यागकर  
अपनी इच्छाको भङ्ग करनेमें कभी  
संमत नहीं होता; ऐसे पामर के सङ्ग

तादृशेन शमः कृष्ण मन्ये परमदुष्करः ॥ ५ ॥  
 सुहृदामप्यवाचीनस्त्यक्तधर्मा प्रियानृतः ।  
 प्रतिहंत्येव सुहृदां वाचश्रैव मनांसि च ॥ ६ ॥  
 स मन्युवशभापन्नः स्वभावं दुष्टमास्थितः ।  
 स्वभावात्पापमभ्येति तृणैश्छन्न इवोरगः ॥ ७ ॥  
 दुर्योधनो हि यत्सेनः सर्वथा विदितस्तव ।  
 यच्छीलो यत्स्वभावश्च यद्दलो यत्पराक्रमः ॥ ८ ॥  
 पुरा प्रसन्नाः कुरवः सहपुत्रास्तथा वयम् ।  
 इंद्रज्येष्ठा इवाऽभूम मोदमानाः सर्वांधवाः ॥ ९ ॥  
 दुर्योधनस्य क्रोधेन भरता मधुसूदन ।  
 धक्ष्यन्ते शिशिरापाये वनानीव हुताशनैः ॥ १० ॥  
 अष्टादशमे राजानः प्रख्याता मधुसूदन ।  
 ये समुचिच्छिदुर्ज्ञातीन्सुहृदश्च सर्वांधवान् ॥ ११ ॥  
 असुराणां समृद्धानां ज्वलतामिव तेजसा ।

सन्धि करनी बहुतही कठिन कार्य हैं । ( ३-५ )

वह स्वयं भी धर्मके मर्मको नहीं समझ सकता और सुहृद लोगोंकी बातोंके भी वशमें नहीं होता; इसीसे धर्मत्यागी और मिथ्याप्रिय होकर सुहृद लोगोंकी बात और अपने मनकी बातों पर केवल आघात मात्र करता है । तृण आदिसे छिपा हुआ सर्प जिस प्रकारसे अपनी स्वाभाविक खलता प्रकाशित करता है; वहभी उसी प्रकारसे अपने स्वाभाविक दुष्टता अनुसार क्रोधके वशमें होकर पाप कर्मोंको किया करता है । ( ६-७ )

हे केशव ! दुर्योधनकी जितनी सेना,

जैसा शील, बल, और पराक्रम है; वह सबही आपको विदित है । देखिये पहिले कौरव लोग पुत्रोंके सहित सदा प्रसन्न चित्तसे रहते थे; और हम लोग भी इंद्रके समान भाइयों समेत आनन्द और सुखसे काल यापन करते थे; परन्तु हे मधुसूदन ! बांससे बांस रगड़ खानेसे जैसे अग्नि प्रगट होकर समस्त बांसको भस्म कर देती है, वैसेही दुर्योधन-के क्रोधरूपी अग्निसे इस समय भरतवंश भी भस्मीभूत होजायगा । ( ८-१० )

हे कृष्ण ! जिन्होंने ज्ञाति, कुटुम्ब और बन्धु बान्धवोंका नाश किया था, नीचे कहे हुए वह अठारह राजा लोग विख्यात हैं । धर्मके परिवर्तन कालके

पर्यायकाले धर्मस्य प्राप्ते कलिरजायत ॥ १२ ॥  
 हैहयानामुदावर्त्तो नीपानां जनमेजयः।  
 बहुलस्तालजंघानां कृष्णीणामुद्धतो वसुः ॥ १३ ॥  
 अजबिंदुः सुवीराणां सुराष्ट्राणां रुषर्द्धिकः ।  
 अर्कजश्च बलीहानां चीनानां धौतमूलकः ॥ १४ ॥  
 हयग्रीवो विदेहानां वरयुश्च महौजसाम् ।  
 बाहुः सुंदरवंशानां दीप्ताक्षाणां पुरुरवाः ॥ १५ ॥  
 सहजश्चेदिमत्स्यानां प्रवीराणां वृषध्वजः ।  
 धारणश्चंद्रवत्सानां मुकुटानां विगाहनः ॥ १६ ॥  
 शमश्च नन्दिवेगानामित्येते कुलपांसनाः ।  
 युगांते कृष्ण संभूताः कुले कुरुपुरुषाधमाः ॥ १७ ॥  
 अप्ययं नः कुरूणां स्याद्युगांते कालसंभृतः ।  
 दुर्योधनः कुलांगारो जघन्यः पापपूरुषः ॥ १८ ॥  
 तस्मान्मृदु शनैर्ब्रूया धर्मार्थसहितं हितम् ।  
 कामानुबद्धं बहुलं नोग्रमुग्रपराक्रम ॥ १९ ॥  
 अपि दुर्योधनं कृष्ण सर्वे वयमधश्चराः ।

आने पर जैसे तेजपुंजसे प्रज्वलित असु-  
 रोंके कुलमें कलियुगकी उत्पत्ति हुई थी,  
 वैसेही हैहयवंशमें दुष्टस्वभावसे युक्त  
 उदावर्त्त, नीपवंशमें जनमेजय, तालजङ्घ  
 वंशमें बहुल, कृष्णवंशमें वसु, सुवीरवं-  
 शमें अजविन्द, सुराष्ट्र वंशमें रुषर्द्धिक,  
 बलीह वंशमें अर्कज, चीनवंशमें धौतमू-  
 लक, विदेहवंशमें हयग्रीव, महौजस्  
 वंशमें वरयू, सुन्दर वंशमें बाहु, दीप्ताक्ष  
 वंशमें पुरुरवा, चेदि-मत्स्य वंशमें सहज,  
 प्रवीर वंशमें वृषध्वज, चन्द्रवत्सवंशमें  
 धारण, मुकुट वंशमें विगाहन और  
 नन्दिवेग वंशमें शम राजा उत्पन्न हुए थे ।

युगके अन्तमें जैसे ये सब कुलके नाश  
 करनेवाले पुरुषोंमें अधम राजालोग उक्त  
 कुलोंमें जन्मे थे, वैसेही इस वर्तमान युगके  
 अन्तमें काल-प्रेरित कुलको नाश करनेवा-  
 ले दुर्योधनने भी साक्षात् पापकी मूर्ति हो  
 कर कुरुकुलमें जन्म लिया है । ( ११-१८ )

हे उग्र पराक्रम ! इससे आप उग्रता  
 को त्यागहीके उसके समीप मीठे वचनों  
 से जिसमें उसका चित्त आकर्षित हो,  
 उसी भांतिसे उसके अभिलषित विषयों-  
 से युक्त, धर्म और अर्थसे भरे हुए हित  
 कारी वचनोंको कहियेगा । हे कृष्ण !  
 हम लोग नम्रभावको ग्रहण करके वरन

नीचैर्भूत्वाऽनुयास्यामो मा स्म नो भरतानशन् ॥ २० ॥

अप्युदासीनवृत्तिः स्याद्यथा नः कुरुभिः सह ।

वासुदेव तथा कार्यं न कुरुननयः स्पृशेत् ॥ २१ ॥

वाच्यः पितामहो वृद्धो ये च कृष्ण सभासदः ।

भ्रातृणामस्तु सौभ्रात्रं धार्तराष्ट्रः प्रशाम्यताम् ॥ २२ ॥

अहमेतद्भवीम्येवं राजा चैव प्रशंसति ।

अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयाऽर्जुने ॥ २३ ॥ [ २६४५ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

भूमिवाक्ये चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

वैशम्पायन उवाच—एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः केशवः प्रहसन्निव ।

अभूतपूर्वं भीमस्य मार्दवोपहितं वचः ॥ १ ॥

गिरेरिव लघुत्वं तच्छीतत्वमिव पावके ।

मत्वा रामानुजः शौरिः शार्ङ्गधन्वा वृकोदरम् ॥ २ ॥

सन्तेजयंस्तदा वाग्भिर्मानरिष्वेव पावकम् ।

दुर्योधन के अनुगामी होकर चलेंगे, तौभी ऐसा नहीं चाहते जिससे हम लोगोंका भरतवंश नष्ट होने पावे । १९-२०

हे कृष्ण ! जिसमें कौरवोंके संग किसी विषयका संसर्ग न रहनेसे हम लोगोंका आपसमें उदासीन ( विरक्त ) की भांति व्यवहार न हो, आपको उसहीकी चेष्टा करनी होगी । उसकी नीच-बुद्धिके कारण जिसमें किसी भांति कुरुकुलके नाश होनेमें, हम लोगोंको किसी प्रकारके दोषोंका स्पर्श न होने पावे । हे कृष्ण ! बुद्धिमान पितामह और दूसरे उस सभासदों से कहना, कि वे लोग यत्नवान होकर दुर्योधनको शान्त करें; भाइयोंके बीच सुहृदता स्थापित होवे । शान्तिके विषय

में मैं ऐसाही कहता हूं, और राजा युधिष्ठिरभी इसी वचनकी प्रशंसा करते हैं; अर्जुनभी युद्धकी इच्छा नहीं करते हैं; क्यों कि उस वीरमें बहुत ही दया है । ( २१-२३ ) [ २६४५ ]

उद्योगपर्वमें चौदहत्तर अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें पचत्तर अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पर्वतकी निचाई और अग्निकी शीतलताई जिस प्रकार असंभव है, वैसे ही यह कृपासे युक्त, पहिले कभी भी न सुनी गई, क्षमा सहित वचनोंको सुनकर, शूर नन्दन शार्ङ्ग धनुषको ग्रहण करनेवाले, बलदेवके भाई महाबाहु कृष्ण उनकी हंसी करनेके उद्देश्य और वायुकी सहायतासे

उवाच भीममासीनं कृपयाऽभिपरिहृतम् ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच- त्वमन्यदा भीमसेन युद्धमेव प्रशंससि ।

वधाभिनन्दिनः क्रूरान्धार्तराष्ट्रान्मिमर्दिषुः ॥ ४ ॥

न च स्वपिषि जागर्षि न्युब्जः शेषे परंतप ।

घोरामशांतां रुषर्तां सदा वाचं प्रभाषसे ॥ ५ ॥

निःश्वसन्नश्रिवत्तेन संतप्तः स्वेन मन्युना ।

अप्रशान्तमना भीम सधूम इव पावकः ॥ ६ ॥

एकांते निःश्वसन्शेषे भारार्तं इव दुर्बलः ।

अपि त्वां केचिदुन्मत्तं मन्यन्ते तद्विदो जनाः ॥ ७ ॥

आरुज्य वृक्षान्निर्मूलान्गजः परिरुजन्निव ।

निघ्नन्पद्भिः क्षितिं भीम निष्ठनन्परिधावसि ॥ ८ ॥

नाऽस्मिञ्जनेन रमसे रहः क्षिपसि पाण्डव ।

नाऽन्यं निशि दिवा चापि कदाचिदभिनन्दसि ॥ ९ ॥

अग्निकी भांति, अपने वचनोंसे भीमको उत्तेजित करनेकी इच्छासे कहने लगे, हे वृकोदर ! दूसरे समयोंमें तो तुम हिंसा प्रिय, क्रूर-स्वभावसे युक्त धृतराष्ट्रपुत्रों-को मारनेकी अभिलाषासे युद्धहीकी प्रशंसा करते हो । (१-४)

हे परन्तप ! इसी चिन्तामें तुम्हें रात्रिको नींदभी नहीं आती; तुम नीचे झुंह करके शयन करते हुए सारी रात जागतेही बिताते हो, सब समय शान्तिका विरोधी रूखा वचनहीका प्रयोग किया करते हो, और अपने क्रोधरूपी अग्निसे रात दिन सन्तप्त होकर धूम सहित अग्निकी भांति व्याकुलचित्तसे लम्बी सांस लेते हुए दुर्बल पुरुषकी भांति निर्जन स्थान में अकेले शयन करते हो । जो तुम्हारे

यथार्थ भावोंको नहीं जानते वह इन सब अद्भुत आचरणको देखके तुमको उन्मत्त कहके स्थिर करेंगे । (५-७)

जैसे कोई कोई हाथी वृक्षोंको तोड़कर अपने पांवोंको पटकते मतवाला हुए सब वृक्षोंके नाश करनेमें प्रवृत्त होकर शब्द करता है, तुमभी उसी भांतिसे कभी कभी घोर शब्द करते हुए वैसेही दौडते हो । हे पाण्डव ! मनुष्योंके सङ्ग संसर्ग और बातचीत करनेकी तुम्हारी इच्छा नहीं होती; केवल निर्जन स्थानमें निवास करनाही तुम्हें उत्तम मालूम होता है । क्या रात्रि क्या दिन, सब समय निर्जनमें वास करनेके अतिरिक्त और कुछभी तुमको प्यारा नहीं लगता । हे भीम ! तुम एकान्त



अकस्मात्समयमानश्च रहस्यास्से रुदन्निव ।  
 जान्वोर्भूधानमाधाय चिरमास्से प्रमीलितः ॥ १० ॥  
 भृकुटिं च पुनः कुर्वन्नोष्ठौ च विदशन्निव ।  
 अभीक्ष्णं दृश्यसे भीम सर्वतन्मन्युकारितम् ॥ ११ ॥  
 यथा पुरस्तात्सविता दृश्यते शुक्रमुचरन् ।  
 यथा च पश्चान्निर्मुक्तो ध्रुवं पर्येति रश्मिवान् ॥ १२ ॥  
 तथा सत्यं ब्रवीम्येतन्नास्ति तस्य व्यतिक्रमः ।  
 हंताऽहं गदयाऽभ्येत्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ १३ ॥  
 इति स्म मध्ये भ्रातृणां सत्येनाऽऽलभसे गदाम् ।  
 तस्य ते प्रशमे बुद्धिर्धियतेऽद्य परंतप ॥ १४ ॥  
 अहो युद्धाभिकांक्षाणां युद्धकाल उपस्थिते ।  
 चेतांसि विप्रतीपानि यत्त्वां भीभीम विंदति ॥ १५ ॥  
 अहो पार्थ निमित्तानि विपरीतानि पश्यसि ।  
 स्वप्नान्ते जागरान्ते च तस्मात्प्रशममिच्छसि ॥ १६ ॥

स्थानमें बैठकर अकस्मात् कभी कभी  
 रोते तथा हंसते हुए दोनों केहुनीके  
 ऊपर शिर टेककर तथा आंख मूंदके  
 बहुत समयतक चुप चाप बैठे रहते हो,  
 फिर सहसा भृकुटीको टेढ़ी करके होठों  
 को काटते हुए टेढ़े भावसे बार बार इधर  
 उधर दृष्टि करते हो। यह सब कर्म केवल  
 क्रोधको सूचित करनेवाले हैं। (८-११)

हे परन्तप ! पहिले भाइयोंके बीचमें  
 तुमने गदाको ग्रहण करके यह प्रतिज्ञा  
 करी थी, कि “ सूर्य जैसे अपने तेजपु-  
 ञ्जसे पूर्व दिशामें उदय होते हैं, और  
 सुमेरु पर्वतको प्रदक्षिणा करते हुए पश्चिम  
 दिशामें अस्त होते हैं, किसी कालमेंभी  
 उनके नियममें रद्द बदल नहीं होता;

मैं उसी प्रकारसे सत्यप्रतिज्ञा करके  
 कहता हूं, कि क्रोधी दुर्योधनके समीप  
 जाकर युद्धमें अपनी गदासे उसे अवश्य  
 मारुंगा, कभी मेरी यह प्रतिज्ञा व्यर्थ  
 न होगी। ” परन्तु क्याही आश्चर्यका  
 विषय है, कि तुम्हारी बुद्धि आज शा-  
 न्तिके निमित्त दौड़ रही है, तो यह  
 मुझे निश्चय बोध होता है, कि युद्धका  
 समय आ पडनेसे युद्धकी अभिलाषा  
 करनेवाले पुरुषोंके मनका भाव सम्पूर्ण  
 बदल जाता है, क्योंकि हे भीम ! आप  
 भीतिसे ग्रस्त हुए हैं। ( १२-१५ )

हे पार्थ ! तुम सोते जागते सब  
 अवस्थाओंमें विपरीत निमित्त सब देखते  
 रहते हो; इसीसे बोध होता है, कि

अहो नाऽऽशंससे किञ्चित्पुंस्त्वं क्लीब इवाऽऽत्मनि ।  
 कश्मलेनाऽभिपन्नोऽसि तेन ते विकृतं मनः ॥ १७ ॥  
 उद्वेपते ते हृदयं मनस्ते प्रतिसिदति ।  
 ऊरुस्तंभगृहीतोऽसि तस्मात्प्रशममिच्छसि ॥ १८ ॥  
 अनित्यं किल मर्त्यस्य पार्थ चित्तं चलाचलम् ।  
 वातवेगप्रचलिता अष्टीला शाल्मलेरिव ॥ १९ ॥  
 तवैषा विकृता बुद्धिर्गवां वागिव मानुषी ।  
 मनांसि पांडुपुत्राणां भज्यत्यप्लवानिव ॥ २० ॥  
 इदं मे महदाश्चर्यं पर्वतस्येव सर्पणम् ।  
 यदीदृशं प्रभाषेथा भीमसेनाऽसमं वचः ॥ २१ ॥  
 स दृष्ट्वा स्वानि कर्माणि कुले जन्म च भारत ।  
 उत्तिष्ठस्व विषादं मा कृथा वीर स्थिरो भव ॥ २२ ॥  
 न चैतदनुरूपं ते यत्ते ग्लानिररिंदम ।

तुमको शान्तिकी इच्छा हुई है । अहो ! तुम क्लीबकी भांति अपने शरीरसे कुछ भी पुरुषार्थकी आशा नहीं करते हो ? तुम मोहमें पड़ गये हो, इसीसे तुम्हारा मन ऐसे विपरीत भावको ग्रहण कर रहा है इसमें किञ्चित् मात्रभी सन्देह नहीं है, तुम्हारा चित्त विषाद-युक्त हो रहा है; तुम हृदयसे दुःखी हो रहे हो, इसीसे शान्तिकी इच्छा करते हो । हे पार्थ ! मनुष्यके चित्तकी कुछभी स्थिरता नहीं रहती । हवाके झंकोरसे शाल्मली वृक्षकी भांति कभी वह चंचलाचित्त हो जाता है और कभी स्थिर होता है । ( १६-१९ )

गौओंके मनुष्योंके वचन बोलनेकी भांति तुम्हारी यह असम्भव निन्दा-

योग्य बुद्धिको देखकर पाण्डवपुत्र सब व्याकुल हो रहे हैं; उनका चित्त विषादरूपी समुद्रमें डूब रहा है । हे भीमसेन ! तुम्हारे इस कहने अयोग्य वचनोंको सुनकर मुझको अत्यन्तही आश्चर्य होता है । जैसे पर्वतोंका चलना असम्भव है, वैसेही तुम्हारे मुंहसे ऐसे वचनका निकलना भी आश्चर्यजनक है । हे भारत ! इससे तुम जिस कुलमें उत्पन्न हुए हो और जिन सब अलौकिक कर्मोंका अनुष्ठान तुमने किया है, उन सबको विचारके उत्साहसे युक्त होओ । हे वीर ! विषाद को त्यागके चित्तको स्थिर करो । हे शत्रुनाशन ! तुम्हारे समान महावीर पुरुषको ग्लानियुक्त होना कभी उचित नहीं है । क्षत्रिय लोग अपने बाहुबलसे

यदोजसा न लभते क्षत्रियो न तदश्नुते ॥ २३ ॥ [ २६६८ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

भीमोत्तेजकश्रीकृष्णवाक्ये पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

वैशंपायन उवाच—तथोक्तो वासुदेवेन नित्यमन्युरमर्षणः ।

सदश्वत्समाधावद्भाषे तदनंतरम् ॥ १ ॥

भीमसेन उवाच—अन्यथा मां चिकीर्षितमन्यथा मन्यसेऽच्युत ।

प्रणीतभावमत्यर्थं युधि सत्यपराक्रमम् ॥ २ ॥

वेत्सि दाशार्हं सत्यं मे दीर्घकालं सहोषितः ।

उत वा मां न जानासि प्लवन्हृद् इवाऽप्लवे ॥ ३ ॥

तस्मादनभिरूपाभिर्वाग्भिर्मां त्वं समर्क्षसि ।

कथं हि भीमसेनं मां जानन्कश्चन माधव ॥ ४ ॥

ब्रूयादप्रतिरूपाणि यथा मां वक्तुमर्हसि ।

तस्मादिदं प्रवक्ष्यामि वचनं वृष्णिनन्दन ॥ ५ ॥

आत्मनः पौरुषं चैव बलं च न समं परैः ।

जिस विषयको नहीं उपाज्जन कर सकते,  
वह उनके भोग करनेका विषय नहीं  
होता । ( २०-२३ ) [ २६६८ ]

उद्योगपर्वमें पचत्तर अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें छिहत्तर अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सदा क्रोधी,  
किसीकी बातको भी न सहनेवाले भीम-  
सेन, श्रीकृष्णकी बातोंको सुनकर उत्तम  
घोड़ेकी भांति उसी समय उत्तेजित हुए  
और उत्तर देनेके निमित्त शीघ्रता करके  
बोले, हे अच्युत ! मैं और प्रकारसे  
कार्योंका अनुष्ठान कर रहा हूँ, और तुम  
उसे दूसरी प्रकारसे समझते हो । युद्धमें  
मेरी सदाहीसे प्रीति है, और मेरा परा-  
क्रमभी किसी समय निष्फल नहीं होता।

बहुत दिनोंसे सङ्गमें रहनेसे तुम हमारे  
उस पराक्रमको जानते भी होंगे; परन्तु  
क्याही आश्चर्यका विषय है, कि सब कुछ  
जान बूझकर भी तुम अजानकी भांति  
बातें कर रहे हो—जैसे तैरना न जान-  
कर कोई जल भरे तालाबमें डूब रहा  
हो । इसी निमित्त ऐसी अनुचित और  
अयोग्य बातें कहकर मेरी निन्दा करते  
हो । ( १-४ )

हे माधव ! भीमसेनके यथार्थ बल  
और पराक्रमको जानकर भी कौन मनुष्य  
तुम्हारी भांति इस प्रकारके अयोग्य  
वचनोंका प्रयोग कर सकता है ? तुम  
जो हमारे यथार्थ रूपको नहीं जानते  
हो, इसी निमित्त मुझको अपने पौरुष

सर्वथाऽनार्यकर्मैतत्प्रशंसा स्वयमात्मनः ॥ ६ ॥  
 अतिवादापविद्धस्तु वक्ष्यामि बलमात्मनः ।  
 पश्येमे रोदसी कृष्ण ययोरासन्निमाः प्रजाः ॥ ७ ॥  
 अचले चाऽप्रतिष्ठे चाप्यनन्ते सर्वमातरौ ।  
 यदीमे सहसा क्रुद्धे समेयातां शिले इव ॥ ८ ॥  
 अहमेते निगृह्णीयां बाहुभ्यां सचराचरे ।  
 पश्यैतदन्तरं बाहोर्महापरिघयोरिव ॥ ९ ॥  
 य एतत्प्राप्य मुच्येत न तं पश्यामि पूरुषम् ।  
 हिमवांश्च समुद्रश्च वज्री वा बलभित्स्वयम् ॥ १० ॥  
 मयाऽभिपन्नं त्रायेरन्वलमास्थाय न त्रयः ।  
 युद्धार्हान्क्षत्रियान्सर्वान्पाण्डवेष्वतातयिनः ॥ ११ ॥  
 अधःपादतलेनैतानधिष्ठास्यामि भूतले ।  
 नहि त्वं नाभिजानासि मम विक्रममच्युत ॥ १२ ॥  
 यथा मया विनिर्जित्य राजानो वशगाः कृताः ।

और पराक्रमकी बात सुनानी पड़ी ।  
 अपने मुंहसे अपनी प्रशंसा करनी अत्य-  
 न्तही निन्दनीय है, इसमें कुछभी  
 सन्देह नहीं है । परन्तु क्या करें तुम्हारी  
 निन्दायुक्त वचनोंको सुनके हमसे रहा  
 नहीं जाता, इसीसे मैंने अपने आत्म-  
 बलको तुमसे वर्णन किया । हे कृष्ण !  
 अखिल प्रजापुञ्जका आधार और उत्प-  
 त्तिका स्थान यह जो अचल और असी-  
 म भूलोक और उर्ध्वलोक दीख पड़ते  
 हैं; यदि दोनों क्रुद्ध होकर दो शिलाकी  
 भांति आपसमें सहसा मिल जावें, तौभी  
 मैं अपनी दोनों भुजाओंसे सब प्राणि-  
 योंके सहित, दोनों लोकोंको रोक सकता  
 हूँ । (४—९)

प्रचण्ड परिघके समान मेरी इन  
 दोनों भुजाओंके बीचके स्थानको एक  
 बार अच्छी प्रकारसे दृष्टिपूर्वक देखो;  
 इसमें गिरके फिर निकल जावे, ऐसा  
 मनुष्य मैं इस सम्पूर्ण भूमण्डलमें नहीं  
 देखता हूँ । यदि मैं किसी पुरुषको  
 बलपूर्वक आक्रमण करूँ, तो साक्षात्  
 गिरिराज हिमालय, अपार जलनिधि  
 तथा वज्रधारी इन्द्रभी अपने बलको  
 प्रकाश करके, मेरे हाथसे उसे नहीं  
 छुड़ा सकते । हे अच्युत ! पाण्डवोंके  
 प्रति जो आतताई और युद्ध करनेके  
 योग्य क्षत्रिय हैं, उन्हें मैं पृथ्वीमें गिरा-  
 के सहजहीमें अपने पांवसे पीसता रहूंगा ।  
 हे जनार्दन ! पहिले मैंने सब राजाओंको

अथ चेन्मां न जानासि सूर्यस्येवोद्यतः प्रभाम् ॥१३॥

विगाढे युधि संवाधे वेत्स्यसे मां जनार्दन ।

परुषैराक्षिपसि किं व्रणं पूतिमिवोन्नयन् ॥ १४ ॥

यथामति ब्रवीम्येतद्विद्धि मामधिकं ततः ।

द्रष्टाऽसि युधि संवाधे प्रवृत्ते वैशसेऽहनि ॥ १५ ॥

मया प्रणुन्नान्मातङ्गात्रयिनः सादिनस्तथा ।

तथा नरानाभिकुट्टं निघ्नतं क्षत्रियर्षभान् ॥ १६ ॥

द्रष्टा मां त्वं च लोकश्च विकर्षतं वरान्वरान् ।

न मे सीदन्ति मज्जानो न ममोद्वेपते मनः ॥ १७ ॥

सर्वलोकादभिकुट्टान्न भयं विद्यते मम ।

किं तु सौहृदमेवैतत्कृपया मधुसूदन ॥

सर्वास्तितिक्षे संक्लेशान्मा स्म नो भरतानशन् ॥१८॥ [२६८६]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि भीमसेनवाक्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

पराजित करके जिस प्रकारसे उन्हें वशी भूत किया था, वह कुछभी तुमसे छिपा नहीं है। उसीसे तुम मेरे पराक्रमको बहुत कुछ परिचय पा चुके हो। ९-१३

अथवा यदि प्रातःकालके समान प्रकाशित होनेवाले सूर्यकी भांति, मेरे प्रचण्ड प्रभावको तुम नहीं जानते हो, तो उस महा घोर भयङ्कर युद्धमें अच्छी प्रकारसे समझ लोगे। दुर्गन्धसे भरे हुए घावके स्थानको खोलनेकी भांति तुम मुझे ऐसा कर्कश वचन कहते हो। परन्तु मैंने जो कुछ अपना वर्णन किया है, तुम उससेभी मुझे श्रेष्ठ समझना। जिस दिन वह सब लोकोंके नाश करने वाला सङ्कटयुक्त संग्राम उपस्थित होगा, उसी दिन तुम मेरे पुरुषार्थको पूर्ण रीतिसे

देख सकोगे। केवल तुमही नहीं, सब लोग देखेंगे। मैं कभी रथी, घुडसवार और गजपतियोंको दूर फेंकता रहूंगा, कभी क्रोधमें भरकर बड़े बड़े वीर क्षत्रिय योद्धाओंके संहार करनेमें उद्यत होऊंगा; और कभी कभी मुख्य मुख्य सेनापतियोंको व्याकुल करता रहूंगा। ( १३—१७ )

हे मधुसूदन! मेरे शरीरसे मज्जा आदि सार पदार्थकाभी कभी नाश नहीं हुआ है, और न मेरा चित्तही कभी युद्धसे विचलित हुआ है; यदि सम्पूर्ण लोक क्रुद्ध होकर मेरे विरुद्ध आगमन करें, तौभी मुझको कुछभी भय न होगा। तब कृपासे युक्त होनेका तात्पर्य और कुछ नहीं है, केवल सुहृदताको प्रकाश करना मात्र है। जिससे हम लोगोंके

श्रीभगवानुवाच- भावं जिज्ञासमानोऽहं प्रणयादिदमब्रुवम् ।

न चाऽऽक्षेपान्न पाण्डित्यान्न क्रोधान्न विवक्षया ॥ १ ॥

वेदाऽहं तव माहात्म्यमुत ते वेद यद्वलम् ।

उत ते वेद कर्माणि न त्वां परिभवाभ्यहम् ॥ २ ॥

यथा चाऽऽत्मनि कल्याणं संभावयांसि पाण्डव ।

सहस्रगुणमप्येतत्त्वयि संभावयाभ्यहम् ॥ ३ ॥

यादृशे च कुले जन्म सर्वराजाभिपूजिते ।

बन्धुभिश्च सुहृद्भिश्च भीम त्वमसि तादृशः ॥ ४ ॥

जिज्ञासंतो हि धर्मस्य संदिग्धस्य वृकोदर ।

पर्यायं नाऽध्यवस्यन्ति देवमानुषयोर्जनाः ॥ ५ ॥

स एव हेतुर्भूत्वा हि पुरुषस्यार्थसिद्धिषु ।

विनाशोऽपि स एवाऽस्य संदिग्धं कर्म पौरुषम् ॥ ६ ॥

अन्यथा परिदृष्टानि कविभिर्दोषदार्शिभिः ।

भरतवंशका नाश न होवे, इसी निमित्त कृपा करके मैं इन सब कुशोंको सह रहा हूँ । (१७-१८) [२६८६]

उद्योगपर्वमें छिहत्तर अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें सत्तर अध्याय ।

श्रीभगवान् बोले, तुम्हारे अभिप्राय को जाननेके निमित्तही मैंने प्रीति पूर्वक इन वचनोंको कहा था, नहीं तो निन्दा, पाण्डित्य, क्रोध तथा दूसरे कारणसे कुछ नहीं कहा है । तुम्हारा जैसा माहात्म्य, पराक्रम और कर्म है, वह सबही मुझे मालूम हैं । इससे उसके लिये तुम्हारा तिरस्कार नहीं करता हूँ । हे पाण्डव ! तुम अपने शरीरसे जिस प्रकारके कल्याणकी सम्भावना करते हो, मैं उससेभी सहस्र-गुण अधिक मङ्गलकी

आशा करता हूँ । (१-३)

हे भीम ! सब राजाओंसे पूजित जिस ऊँचे वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है; तुम बन्धुबान्धव और सुहृदोंके सहित सब प्रकारसे उस वंशके योग्य हो; इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । परन्तु हे वृकोदर ! देव और मनुष्य सम्बन्धी धर्मोंको निरूपण करनेकी अभिलाषा करके पुरुष एकही भांतिके निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होता; क्योंकि जो विषय पुरुषकी अर्थसिद्धिका कारण रहता है, वही दूसरे समयमें उसके विनाशका हेतु हो जाता है । इससे पुरुषके कार्य सब प्रकारके सन्देह से भरे हुए हैं । दोषोंको जाननेवाले बुद्धिमान पण्डित कर्मकी गतिको एक

अन्यथा परिवर्तते वेगा इव नभस्वतः ॥ ७ ॥  
 सुमंत्रितं सुनीतं च न्यायतश्चोपपादितम् ।  
 कृतं मानुष्यकं कर्म दैवेनाऽपि विरुद्धयते ॥ ८ ॥  
 दैवमप्यकृतं कर्म पौरुषेण विहन्यते ।  
 शीतमुष्णं तथा वर्षं क्षुत्पिपासे च भारत ॥ ९ ॥  
 यदन्यद्दिष्टभावस्य पुरुषस्य स्वयं कृतम् ।  
 तस्मादनुपरोधश्च विद्यते तत्र लक्षणम् ॥ १० ॥  
 लोकस्य नाऽन्यतो वृत्तिः पाण्डवाऽन्यत्र कर्मणः ।  
 एवं बुद्धिः प्रवर्तते फलं स्यादुभयान्वये ॥ ११ ॥  
 य एवं कृतबुद्धिः स कर्मस्वेव प्रवर्तते ।  
 नाऽसिद्धौ व्यथते तस्य न सिद्धौ हर्षमश्नुते ॥ १२ ॥  
 तत्रेयमनुमात्रा मे भीमसेन विवक्षिता ।  
 नैकांतसिद्धिर्वक्तव्या शत्रुभिः सह संयुगे ॥ १३ ॥  
 नाऽतिप्रहीणरश्मिः स्यात्तथा भावविपर्यये ।

तरहसे स्थिर करते हैं; परन्तु वायुकी गतिके अनुसार वह दूसरे प्रकारकी होजाती है । ( ४-७ )

मनुष्योंका किया हुआ कर्म सब भाँतिसे न्याययुक्त, अच्छी प्रकारसे विचारा हुआ और सुन्दर नीतिसे पूरित रहने परभी दैवके द्वारा नष्ट हो जाता है, तथा सर्दी गर्मी, वर्षा, भूख, प्यास आदि अननुष्ठित दैवकर्म भी पुरुषार्थके सहित निष्फल हो जाते हैं । जो कर्मफल भोग करनेके निमित्त निश्चित हुआ है, उस प्रारब्ध कर्मसे भिन्न पुरुष स्वयं जिन कर्मोंका अनुष्ठान करता है, उसमें भी उसको बंधना नहीं पड़ता क्योंकि उससे ज्ञान वा प्राय-

श्रित होनेसे संचित पापोंका नाश होता है, इसमें प्रमाण लक्षण है । ( ८-१० )

इससे हे पाण्डव ! विना कर्म किये इस संसारमें निर्वाह करनेको और दूसरी गति नहीं है । परन्तु दैव कर्म और पुरुषार्थ दोनोंके मिलनेसेही फल सिद्ध होता है, ऐसाही विचार कर कर्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते हैं, उनके कार्यके न सिद्ध होनेमें भी कोई बाधा नहीं और सिद्ध होनेमें भी कोई हर्षकी बात नहीं है । हे भीमसेन ! उस विषयमें मेरा ऐसाही निश्चय था, शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करनेसेही अर्थ सिद्ध होगी यह मेरे कहनेका प्रयोजन नहीं था । और भी मानसिक भावोंके रद बदल होनेसे

विषादमर्ज्जुद् ग्लानिं वाऽप्येतमर्थं ब्रवीमि ते ॥ १४ ॥  
 श्वोभूते धृतराष्ट्रस्य समीपं प्राप्य पांडव ।  
 यतिष्ये प्रशमं कर्तुं युष्मदर्थमहापयन् ॥ १५ ॥  
 शमं चेत्ते करिष्यन्ति ततोऽनन्तं यशो मम ।  
 भवतां च कृतः कामस्तेषां च श्रेय उत्तमम् ॥ १६ ॥  
 ते चेदभिनिवेक्ष्यन्ते नाऽभ्युपेक्ष्यन्ति मे वचः ।  
 कुरवो युद्धमेवाऽत्र घोरं कर्म भविष्यति ॥ १७ ॥  
 अस्मिन् युद्धे भीमसेन त्वयि भारः समाहितः ।  
 धूर्जुनेन धार्या स्याद्बोद्धव्य इतरो जनः ॥ १८ ॥  
 अहं हि यन्ता बीभत्सोर्भविता संयुगे सति ।  
 धनंजयस्यैष कामो नहि युद्धं न कामये ॥ १९ ॥  
 तस्मादाशंकमानोऽहं वृकोदर मतिं तव ।  
 गदतः क्लीबया वाचा तेजस्ते समदीदिपम् ॥ २० ॥ [२७०६]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्वाचनपर्वणि कृष्णवाक्ये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

एकवारगी दुःखी और ग्लानियुक्त होना उचित नहीं है; इसी निमित्त मैंने तुम्हें यह सब वचन कहे हैं । (११-१४)

हे पाण्डव ! कल मैं राजा धृतराष्ट्रके समीप जाकर आप लोगोंकी अर्थ हानि न करके सन्धिस्थापनके निमित्त ही सब प्रकारसे यत्नवान होऊंगा । यदि वे लोग सन्धि करेंगे, तो मेरी भी अनन्त-कीर्त्ति और आप लोगोंका भी अभीष्ट सिद्ध होगा; तथा उन लोगोंका भी बहुतही मङ्गल और कल्याण होगा । परन्तु यदि कौरव लोग मेरी बातोंको न मानकर अपने मतके अनुसारही कार्य करनेमें प्रवृत्त होंगे, तब अवश्यही महाघोर युद्धके कार्यका अनुष्ठान होगा,

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । (१५-१७)

हे भीमसेन ! इस युद्धका सम्पूर्ण भार तुम्हारेही ऊपर है । तुम और अर्जुन दोनोंही इस भारको ग्रहण करके दूसरे सम्पूर्ण वीर योद्धाओंको इस महान युद्धकार्यमें नियुक्त करोगे; और युद्धके शुरू होनेपर मुझको अर्जुनका सारथी बनना होगा, यही अर्जुनकी अभिलाषा है । नहीं तो मेरी युद्ध करने की इच्छा नहीं है, यह वचन कौन कह सकेगा ? हे वृकोदर ! इससे तुमको क्लीबके समान वचन कहते हुए देख, तुम्हारी बुद्धिके ऊपर शङ्का करके, मैंने तुम्हारे तेजको फिर प्रकाशित कर दिया । (१८-२०)

उद्योगपर्वमें सप्ततत्त अध्याय समाप्त । [२७०६]



अर्जुन उवाच— उक्तं युधिष्ठिरेणैव यावद्वाच्यं जनार्दन ।  
 तव वाक्यं तु मे श्रुत्वा प्रतिभाति परंतप ॥ १ ॥  
 नैव प्रशममत्र त्वं मन्यसे सुकरं प्रभो ।  
 लोभाद्वा धृतराष्ट्रस्य दैन्याद्वा समुपस्थितात् ॥ २ ॥  
 अफलं मन्यसे वापि पुरुषस्य पराक्रमम् ।  
 न चाऽतरेण कर्माणि पौरुषेण बलोदयः ॥ ३ ॥  
 तदिदं भाषितं वाक्यं तथा च न तथैव तत् ।  
 न चैतदेवं द्रष्टव्यमसाध्यमपि किंचन ॥ ४ ॥  
 किंचैतन्मन्यसे कृच्छ्रमस्माकमवसादकम् ।  
 कुर्वति तेषां कर्माणि येषां नास्ति फलोदयः ॥ ५ ॥  
 संपाद्यमानं सम्यक्च स्यात्कर्म सफलं प्रभो ।  
 स तथा कृष्ण वर्तस्व यथा शर्म भवेत्परैः ॥ ६ ॥

उद्योगपर्वमें अठत्तर अध्याय ।

अर्जुन बोले, हे जनार्दन ! मेरा जो कुछ वक्तव्य था, उसे धर्मराजजीने कह दिया है, परन्तु तुम्हारी बातोंसे बोध होता है, कि तुम धृतराष्ट्रके लोभवशके कारण अथवा हम लोगोंके उपास्थित दीनता-हीके कारणसे, शान्तिका होना कदापि सुन्दर रूपसे होने योग्य नहीं समझते हो । तुम यह भी मानते हो, कि बिना पराक्रमके प्रकाशित किये पुरुषके सब कार्य निष्फल होते हैं; पुरुषार्थके बिना कोई कर्म नहीं हो सकता; और बिना कर्म किये कोई फल भी नहीं प्राप्त हो सकता । यही समझके तुमने जो इन सब वचनोंको कहा है, वह यथार्थही होंगे उसमें कौनसी शङ्का है ? परन्तु सब निश्चय ज्योंके त्योंही हुआ करते

हैं, यह किसी प्रकारसे भी स्वीकार नहीं किया जा सकता । किसी वस्तुको भी सब समयमें असाध्य न समझना चाहिये । ( १-४ )

हे केशव ! तुम हम लोगोंके इस घोर क्लेशको देखके सन्धि-बन्धन होना कठिन कार्य समझते हो, यह तुम्हारा समझना ठीक है; परन्तु हमलोगोंके कष्टसे जिन लोगोंको कोई भी फल नहीं हो सकता, उन्हीं शकुनि, दुःशासन और कर्ण आदि नीच-बुद्धि पुरुषों-हीके कर्मसे हम लोगोंको वह कष्ट सहना पड़ता है; इससे उत्तम प्रकारसे सान्धिका प्रस्ताव होनेसे कार्य सफल हो सकता है । हे कृष्ण ! इससे जैसे शत्रुओंके सङ्ग सान्धि बन्धन हो सके, सब भाँतिसे उसीका यत्न करना । हे

पाण्डवानां कुरूणां च भवान्नः प्रथमः सुहृत् ।  
 सुराणामसुराणां च यथा वीर प्रजापतिः ॥ ७ ॥  
 कुरूणां पाण्डवानां च प्रतिपत्स्व निरामयम् ।  
 अस्माद्वितमनुष्ठानं मन्ये तव न दुष्करम् ॥ ८ ॥  
 एवं च कार्यतामेति कार्यं तव जनार्दन ।  
 गमनादेवमेव त्वं करिष्यसि जनार्दन ॥ ९ ॥  
 चिकीर्षितमथाऽन्यत्ते तस्मिन्वीर दुरात्मनि ।  
 भविष्यति च तत्सर्वं यथा तव चिकीर्षितम् ॥ १० ॥  
 शर्म तैः सह वा नोऽस्तु तव वा यच्चिकीर्षितम् ।  
 विचार्यमाणो यः कामस्तव कृष्ण स नो गुरुः ॥  
 न स नाऽर्हति दुष्टात्मा वधं ससुतबांधवः ॥ ११ ॥  
 येन धर्मसुते दृष्टा न सा श्रीरूपमर्षिता ।  
 यच्चाऽप्यपश्यतोपायं धर्मिष्ठं मधुसूदन ॥ १२ ॥  
 उपायेन नृशंसेन हता दुर्द्युतदेविना ।

जनार्दन ! प्रजापति ब्रह्मा जैसे सुर और असुरोंके शुभचिन्तक हैं, वैसेही तुमभी पाण्डव और कौरवोंके बीचमें हम लोगोंके मुख्य सुहृद हो । हे मधुसूदन ! इससे कुरु, पाण्डवोंके मनके मेलको दूर करके उनमें शान्ति और सुखको स्थापन करो । मुझे मालूम होता है, कि हम लोगोंके हितका अनुष्ठान करनेमें तुम्हें कुछभी कठिनता न जान पड़ेगी । ( ५-८ )

यदि तुम चेष्टा करोगे, तो अवश्यही कार्य सिद्ध होगा उसमें कोशिशही क्या करनी है ? एक बार जाकरही तुम अपने कर्तव्य कार्यको पूरा कर सकोगे । हे वीर ! दुर्योधनके विषयमें

यदि अन्य प्रकारके आचरणको करनाही तुम्हारा अभिप्राय होगा, तो तुम्हारा इच्छाके अनुसारही वह सिद्ध होगा । उससे उसके सङ्गमें हम लोगोंकी सान्धिही होवे वा तुम्हारे अभिप्रायके अनुसार युद्धही करना पड़े, अच्छी प्रकारसे विचारकर तुम जैसा अभिप्राय प्रकाश करोगे, वही हम लोगोंके लिये उत्तम और माननीय होगा । हे मधुसूदन ! जब यह दुष्टात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिरका सुख और ऐश्वर्य न सह सका, तब किसी धर्मके अनुकूल उपायको न देखकर कपट-पाशके सदृश निष्ठुर उपायोंको अवलम्बन करके उनके सम्पूर्ण राज्य, धन आदि सब वस्तुओं-

कथं हि पुरुषो जातः क्षत्रियेषु धनुर्धरः ॥ १३ ॥

समाहूतो निवर्तेत प्राणत्यागेऽप्युपास्थिते ।

अधर्मेण जितान्द्वेषा वने प्रव्रजितांस्तथा ॥ १४ ॥

वध्यतां मम वाष्पेय निर्गतोऽसौ सुयोधनः ।

क्रिया कथं च मुख्या स्यान्मृदुना चेतरेण वा ॥ १५ ॥

अथवा मन्यसे ज्यायान्वधस्तेषामनंतरम् ।

तदेव क्रियतामाशु न विचार्यमतस्त्वया ॥ १६ ॥

जानासि हि यथैतेन द्रौपदी पापबुद्धिना ।

परिक्षिप्ता सभामध्ये तच्च तस्योपमर्षितम् ॥ १७ ॥

स नाम सम्यग्वर्तेत पाण्डवेष्विति माधव ।

न मे संजायते बुद्धिर्बीजमुष्णमिवोषरे ॥ १८ ॥

तस्माद्यन्मन्यसे युक्तं पाण्डवानां हितं च यत् ।

को हर लिया है; तब उसे पुत्र और वन्धु बान्धवोंके सहित भी मारनेमें दोष नहीं हो सकता । (९-१३)

क्षत्रिय कुलमें क्या कोई धनुर्धारी पुरुषभी ऐसा उत्पन्न हुआ है, जो शत्रुओंसे युद्धके निमित्त उपस्थित होके अपने प्राणोंके भयसे भी पीठ दिखावेगा ? हे कृष्ण ! दुर्योधनने जब हम लोगोंको अधर्मसे पराजित किया और वनमें भेजा तबही वह हम लोगोंके हाथसे मारे जानेके योग्य हो चुका । हे कृष्ण ! इससे तुम मित्रोंके निमित्त जो कुछ विधान करते हो, वह अनुचित नहीं है । बहुतही विनीतभाव तथा अत्यन्त कठोरता प्रकाश करनेसेही उत्तम कार्य नहीं हो सकता । अथवा यदि तुम्हारे मतसे उन लोगोंका इसी समयमेंही वध

करना कल्याणकारी होवे, तो तुम शीघ्रही उसको पूरा करो; उसमें कुछ भी विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है । (१३-१६)

हे माधव ! पापी दुर्योधनने द्रौपदी को राजसभामें बुलवाके जिस प्रकारसे क्लेश दिया था, वहभी तुम्हें पूरी रीतिसे विदित है; और उसका वह अत्याचारभी जिस प्रकारसे सहा गया था, वहभी तुम्हें मालूम है । हे माधव ! वह जो पूर्ण रीतिसे इस समय पाण्डवोंके सङ्ग न्यायके अनुसार वर्त्ताव करेगा; यह मेरी बुद्धिमें किसी प्रकारसेभी ठीक नहीं जंचता है; बल्कि यही बोध होता है, कि ऊसर भूमिमें बीज बोनेकी भांति यह शान्तिके निमित्त सन्धिका कार्य समस्त निष्फल होगा । इससे हे वृष्णि-नन्दन ! सम्प्रति पाण्डवोंके हित साधन

तथाऽऽशु कुरु वाष्पेय यन्नः कार्यमनंतरम् ॥१९॥ [२७२५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यं संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्दानपर्वणि

कृष्णवाक्येऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

श्रीभगवानुवाच-एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पांडव ।

पाण्डवानां कुरूणां च प्रतिपत्स्ये निराश्रयम् ॥ १ ॥

सर्वं त्विदं ममाऽऽयत्तं बीभत्सो कर्मणोर्द्वयोः ।

क्षेत्रं हि रसवच्छुद्धं कर्मणैवोपपादितम् ॥ २ ॥

ऋते वर्षान्न कौन्तेय जातु निर्वर्तयेत्फलम् ।

तत्र वै पौरुषं ब्रूयुरासेकं यत्र कारितम् ॥ ३ ॥

तत्र चापि ध्रुवं पश्येच्छोषणं दैवकारितम् ।

नदिदं निश्चितं बुद्ध्या पूर्वैरपि महात्मभिः ॥ ४ ॥

दैवे च मानुषे चैव संयुक्तं लोककारणम् ।

अहं हि तत्करिष्यामि परं पुरुषकारतः ॥ ५ ॥

दैवं तु न मया शक्यं कर्म कर्तुं कथंचन ।

और इसके अनन्तर कर्त्तव्यके विषयमें जो कुछ तुम्हें युक्तियुक्त कार्य जान पड़े शीघ्रही उसका अनुष्ठान करना उचित है । (१७-१९) [ २७२५ ]

उद्योगपर्वमें अठसर अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें उनासी अध्याय ।

श्रीकृष्ण बोले, हे महाबाहो ! हे पाण्डव ! तुम जो कहते हो, वही होगा; मैं कौरव और पाण्डव दोनोंहीके कल्याण करनेके निमित्त यत्नवान् होऊंगा । हे अर्जुन ! मैं दूत हूं, इससे युद्ध होना वा दोनोंमें सन्धि होना यह सब मेरे आधीन है, तथापि इस विषयमें दैवकी अनुकूलता इष्ट है, यह मुझे निश्चय है। देखिये कर्मकी सहायतासे खेतको शोधते और बोते

हैं, परन्तु बिना दैवके पानी बरसाये उन सबमें कभी कोई फल नहीं उत्पन्न होता । इस विषयमें कोई कोई यत्नवान् पुरुष यत्न और पुरुषार्थसे जल सींचनेकी बातभी कह सकते हैं; परन्तु जलके सींचने परभी बहुतसे स्थानोंमें दैवकी इच्छासे खेती सखती हुई दीख पड़ती है । इससे इन्हींको विचारकर महात्मा पाण्डित लोग 'दैवकर्म और मनुष्य काम दोनोंसेही लोकोंके हितका कार्य संयुक्त है' ऐसा वर्णन करते हैं । (१-५)

मैं भी पुरुषार्थसे जहां तक हो सकेगा वहांतक उद्योग करूंगा परन्तु दैवकृत कर्मका खण्डन किसी प्रकारसे भी न कर सकूंगा । हे पार्थ ! वह पापी

स हि धर्मं च लोकं च त्यक्त्वा चरति दुर्मतिः॥ ६ ॥

नहि संतप्यते तेन तथारूपेण कर्मणा ।

तथापि बुद्धिं पापिष्ठां वर्धयंत्यस्य मंत्रिणः ॥ ७ ॥

शकुनिः सूतपुत्रश्च भ्राता दुःशासनस्तथा ।

स हि त्यागेन राज्यस्य न शमं समुपैष्यति ॥ ८ ॥

अंतरेण वधं पार्थ सानुबन्धः सुयोधनः ।

न चापि प्रणिपातेन त्यक्तुमिच्छति धर्मराट् ॥

याच्यमानश्च राज्यं स न प्रदास्यति दुर्मतिः ॥ ९ ॥

न तु मन्ये स तद्वाच्यो यद्युधिष्ठिरशासनम् ।

उक्तं प्रयोजनं यत्तु धर्मराजेन भारत ॥ १० ॥

तथा पापस्तु तत्सर्वं न करिष्यति कौरवः ।

तस्मिंश्चाऽक्रियमाणेऽसौ लोके वध्यो भविष्यति॥ ११ ॥

मम चापि स वध्यो हि जगतश्चापि भारत ।

येन कौमारके यूयं सर्वे विप्रकृताः सदा ॥ १२ ॥

विप्रलुप्तं च वो राज्यं नृशंसेन दुरात्मना ।

दुर्योधन पहिले तो धर्म और लोकके भयको त्यागके इच्छाके अनुसार उस प्रकारके पाप कर्मोंमें प्रवृत्त होकरभी किञ्चित् मात्र दुःखी और लज्जित नहीं होता; उस पर भी शकुनि, कर्ण और दुःशासन आदि दुष्टमन्त्री लोग नित्यही उसकी पापमयी बुद्धिको औरभी बढ़ाते रहते हैं, इससे विना बन्धुबान्धव और इष्ट-मित्रोंके सहित मरनेसे, वह राज्यको छोड़के शान्तिके निमित्त सन्धि करनेके विधानमें सहमत न होगा; मुझे इसका किसी प्रकार बोध नहीं होता है । धर्मराज युधिष्ठिरभी अवनति स्वीकार करके राज्य त्याग करनेकी इच्छा नहीं

करते हैं; और नीचबुद्धि दुर्योधनभी याचना करनेसे उस राज्यको कभी नहीं लौटावेगा । ( ५—९ )

इससे उसके निकट धर्मराजके कहे हुए वचनोंका कहना मुझे अनुचित मालूम होता है । हे भारत ! धर्मराजने जिन प्रयोजन-सिद्ध वचनोंको कहा है, पापी दुर्योधन उन वचनोंको कभी पूर्ण न करेगा । परन्तु उसे पूर्ण न करनेहीसे वह सब लोगोंके हाथसे मारे जानेके योग्य होगा; इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । हे भारत ! उस दुष्टात्माने जब बालक अवस्थाहीमें सब दिनसे अनिष्ट चेष्टा करी है, और उसके अनन्तरभी

नचोपशाम्यते पापः श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥ १३ ॥  
 असकृच्चाऽप्यहं तेन त्वत्कृते पार्थ भेदितः ।  
 न मया तद्गृहीतं च पापं तस्य चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥  
 जानासि हि महाबाहो त्वमप्यस्य परं मतम् ।  
 प्रियं चिकीर्षमाणं च धर्मराजस्य मामपि ॥ १५ ॥  
 संजानंस्तस्य चाऽऽत्मानं मम चैव परं मतम् ।  
 अजानन्निव मां कस्मादर्जुनाऽद्याऽभिशंक्से ॥ १६ ॥  
 यच्चापि परमं दिव्यं तच्चाऽप्यनुगतं त्वया ।  
 विधानं विहितं पार्थ कथं शर्म भवेत्परैः ॥ १७ ॥  
 यत्तु वाचा मया शक्यं कर्मणा वापि पांडव ।  
 करिष्ये तदहं पार्थ न त्वाशंसे शमं परैः ॥ १८ ॥  
 कथं गोहरणे ह्युक्तो नैतच्छर्म तथा हितम् ।  
 याच्यमानो हि भीष्मेण संवत्सरगतेऽध्वनि ॥ १९ ॥

युधिष्ठिरके ऐश्वर्यको देखके उससे सहा  
 न गया, इससे उसने निष्ठुरता और  
 कष्ट उपायसे उनके राज्यको हर लिया,  
 तब हम लोगोंके हाथसे तो निश्चय  
 मारनेके योग्य हो रहा है, परन्तु वर्त्त-  
 मानमें औरभी पापोंके आचरण करनेसे  
 वह पृथ्वीके सब मनुष्योंके हाथसे मारे  
 जानेके योग्य हो जायगा ॥ (१०—१३)

हे कुन्तीनन्दन ! जिसमें तुम लोगोंसे  
 मेरी जुदाई हो जावे, इस निमित्त दुर्यो-  
 धनने बहुत कुछ यत्न किये थे, किन्तु  
 उसके उस दुष्ट अभिप्रायको मैंने कभी  
 ग्रहण नहीं किया । हे महाबाहो !  
 उसका जैसा मत है, उसेभी तुम जानते  
 हो, और मैं जो धर्मराजके प्रिय कार्यों-  
 के साधन कहनेहीके निमित्त यत्नवान

हो रहा हूं, वह भी तुमको विदित ही  
 है । इससे उसको नीचबुद्धि और  
 अपने अभिप्रायको भली भांतिसे जान  
 सुन कर भी, तुम क्यों इस समय अजान  
 की तरह हमारे ऊपर शङ्का करते हो ?  
 विशेष करके पृथ्वीके भारको उतारनेके  
 निमित्त स्वर्गसे देवताओंके अवतार  
 लेनेका जो दिव्य विधान है, वह भी  
 तुमसे छिपा नहीं है । (१४—१७)

हे पार्थ ! इससे शत्रुओंके सङ्गमें  
 विधिपूर्वक सन्धि किस प्रकारसे हो  
 सकती है ? तब मुझसे वचन और  
 कर्मसे जो कुछ हो सकेगा, उसको मैं  
 अवश्यही पूर्ण करूंगा । परन्तु उसके  
 साथ जो सन्धि करनेमें समर्थ होऊंगा,  
 ऐसी आशा नहीं कर सकता हूं । गये

तदैव ते पराभूता यदा संकल्पितास्त्वया ।

लवशः क्षणशश्चापि न च तुष्टः सुयोधनः ॥ २० ॥

सर्वथा तु मया कार्यं धर्मराजस्य शासनम् ।

विभाव्यं तस्य भूयश्च कर्म पापं दुरात्मनः ॥ २१ ॥ [२७४६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

श्रीकृष्णवाक्ये उनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

नकुल उवाच— उक्तं बहुविधं वाक्यं धर्मराजेन माधव ।

धर्मज्ञेन वदान्येन श्रुतं चैव हि तत्त्वया ॥ १ ॥

मतमाज्ञाय राज्ञश्च भीमसेनेन माधव ।

संशमो बाहुवीर्यं च ख्यापितं माधवाऽऽत्मनः ॥ २ ॥

तथैव फाल्गुनेनाऽपि यदुक्तं तत्त्वया श्रुतम् ।

आत्मनश्च मतं वीर कथितं भवताऽसकृत् ॥ ३ ॥

सर्वमेतदतिक्रम्य श्रुत्वा परमतं भवान् ।

यत्प्राप्तकालं मन्येथास्तत्कुर्याः पुरुषोत्तम ॥ ४ ॥

वर्षमें जब वह अत्यन्त पीडित हुआ था, तब मार्गमें भीष्मने क्या उसे इस शान्तिके निमित्त वचन नहीं कहे थे ? उन्होंने यांचा भी था, तोभी वह नीच बुद्धि उनके वचनमें संमत न हुआ। जो हो, तुमने उसको जब मारनेके योग्य निश्चय कर लिया है, तभीसे वह पराजित हो चुका है। चाहे दुर्योधन एक क्षण भरके निमित्तभी सन्तुष्ट न होवे, तौभी धर्मराजकी आज्ञा मुझे सब प्रकार सेही माननी पड़ेगी। उस दुष्टात्माके पापकर्मकोभी फिरसे आलोचना करी जावेगी ! ( १८-२१ )  
उद्योगपर्वमें उनासी अध्याय समाप्त । [२७४६]

उद्योगपर्वमें अस्सी अध्याय ।

नकुल बोले, हे माधव ! धर्मात्मा

धर्मराज युधिष्ठिरने अपने स्वाभाविक दया आदि गुणोंके अनुसार जो सब अनेक प्रकारके वचनोंको कहा है, उसेभी आपने सुना है; और भीमसेन तथा अर्जुननेभी महाराजके मतके अनुकूल जिस प्रकारके शान्ति और बाहुबल दोनों प्रसङ्गोंका उल्लेख किया, वहभी आपने सुना; अनन्तर अपने मतकोभी आपने बार बार प्रकाशित किया है । ( १ - ३ )

हे मधुसूदन ! मेरे मतके अनुसार पहिले तुम शत्रुओंकी बातोंको सुनकर पीछे इन सब बातोंको छोडके, समयके अनुसार जो कहना उचित बोध होगा, वही कहियेगा । ( ४ )

तस्मिंस्तस्मिन्निमित्ते हि मतं भवति केशव ।  
 प्राप्तकालं मनुष्येण क्षमं कार्यमरिंदम ॥ ५ ॥  
 अन्यथा चिंतितो ह्यर्थः पुनर्भवति सोऽन्यथा ।  
 अनित्यमतयो लोके नराः पुरुषसत्तम ॥ ६ ॥  
 अन्यथा बुद्धयो ह्यासन्नस्मासु वनवासिषु ।  
 अदृश्येष्वन्यथा कृष्ण दृश्येषु पुनरन्यथा ॥ ७ ॥  
 अस्माकमपि वाष्पेय वने विचरतां तदा ।  
 न तथा प्रणयो राज्ये यथा संप्रति वर्तते ॥ ८ ॥  
 निवृत्तवनवासान्नः श्रुत्वा वीर समागताः ।  
 अक्षौहिण्यो हि सप्तेमास्त्वत्प्रसादाजनार्दन ॥ ९ ॥  
 इमान्हि पुरुषव्याघ्रानचित्यबलपौरुषान् ।  
 आत्तशस्त्रानरणे दृष्ट्वा न व्यथेदिह कः पुमान् ॥ १० ॥  
 स भवान्कुरुमध्ये तं सांत्वपूर्वं भयोत्तरम् ।  
 ब्रूयाद्वाक्यं यथा मंदो न व्यथेत सुयोधनः ॥ ११ ॥

हे शत्रुनाशन केशव ! विशेष विशेष  
 कार्योंके निमित्त मत स्थिर करना पड़ता  
 है; और उसके करनेहीसे मनुष्य  
 उचित कार्योंका निर्वाह कर सकता है;  
 परन्तु एक समयमें कोई विषयको एक  
 प्रकारसे निश्चित करते हैं, और दूसरी  
 अवस्थामें वह औरका और हो जाता  
 है । इससे पृथ्वीके सम्पूर्ण मनुष्योंहीकी  
 बुद्धि अनित्य है, सब दिन निश्चित  
 बुद्धिके अनुसार कार्यको कर सके ऐसे  
 मनुष्य इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध नहीं हैं ।  
 हे कृष्ण ! देखिये जबतक हम लोग  
 वनवासमें छिपकर रहते थे, तबतक एक  
 प्रकारकी बुद्धि थी; परन्तु इस समय प्रगट  
 होनेपर उस बुद्धिके विपरीत भाव उदय

हुआ है । राज्यके निमित्त अब हमलो-  
 गोंका जैसा आदर हो रहा है, वनवासके  
 समय कभी वैसा नहीं हुआ था । ५-८  
 हे जनार्दन ! हमलोग वनसे लौट  
 आये हैं, यह सुनकर सात अक्षौहिणी  
 सेना आपके प्रसादसे इकट्ठी होगई हैं ।  
 अत्यन्त बल और पराक्रमसे भरे इन  
 पुरुषसिंहोंको संग्रामभूमिमें देखकर कौन  
 मनुष्य भयसे पीड़ित न होगा ? हे पुरु-  
 षसत्तम ! इससे आप पहले कौरवोंकी  
 सभामें जाकर शान्तिपूर्वक प्रस्ताव की-  
 जियेगा; पीछे भय दिखाते हुए इस  
 प्रकारके वचनोंका प्रयोग कीजियेगा,  
 जिसमें वह नीच बुद्धि दुर्योधन भयसे  
 विचलित न होजावे । (९-११)



युधिष्ठिरं भीमसेनं वीभत्सुं चाऽपराजितम् ।  
 सहदेवं च मां चैव त्वां च रामं च केशव ॥ १२ ॥  
 सात्यकिं च महावीर्यं विराटं च सहात्मजम् ।  
 द्रुपदं च सहामात्यं धृष्टद्युम्नं च माधव ॥ १३ ॥  
 काशिराजं च विक्रान्तं धृष्टकेतुं च चेदिपम् ।  
 मांसशोणितभृन्मर्त्यः प्रतियुद्धयेत को युधि ॥ १४ ॥  
 स भवान्गमनादेव साधयिष्यत्यसंशयम् ।  
 इष्टमर्थं महाबाहो धर्मराजस्य केवलम् ॥ १५ ॥  
 विदुरश्चैव भीष्मश्च द्रोणश्च सहबाह्लिकः ।  
 श्रेयः समर्था विज्ञातुमुच्यमानास्त्वयाऽनघ ॥ १६ ॥  
 ते चैनमनुनेष्यन्ति धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।  
 तं च पापसमाचारं सहामात्यं सुयोधनम् ॥ १७ ॥  
 श्रोता चाऽर्थस्य विदुरस्त्वं च वक्ता जनार्दन ।  
 कामिवार्थं निवर्तन्तं स्थापयेतां न वर्तमनि ॥ १८ ॥ [२७६४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि  
 नकुलवाक्येऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

हे कृष्ण ! देखिये युधिष्ठिर, भीमसेन,  
 अपराजित अर्जुन, सहदेव, मैं, आप,  
 बलदेव, सात्यकी, पुत्रोंके सहित मत्स्य-  
 राज विराट, सम्पूर्ण सेनाके सहित पा-  
 श्वालराज द्रुपद, धृष्टद्युम्न, काशिराज,  
 चेदीपति धृष्टकेतु आदि महा पराक्रम-  
 शाली वीरोंके युद्धमें प्रवृत्त होनेपर  
 कौन मांस और रक्तके शरीरको धारण  
 करनेवाला पुरुष हम लोगोंके विरुद्ध  
 युद्ध कर सकेगा ? (१२-१४)

हे महाबाहो ! इससे आप वहां जाकर  
 धर्मराजके अभिलषित विषयोंको पूरी  
 रीतिसे सिद्ध कीजियेगा, इसमें कुछभी

सन्देह नहीं है । हे पापरहित ! आपकी  
 उन हितसे भरे हुए वचनोंको सुनकर  
 और मनुष्य चाहे समझे वा न समझे,  
 परन्तु विदुर, भीष्म, द्रोण और बाह्लिक  
 ये लोग हृदयङ्गम करनेमें समर्थ होंगे;  
 और आपके वचनोंके अनुसारही अत्यन्त  
 प्रार्थना और विनयसे राजा धृतराष्ट्रको  
 तथा इष्ट मित्रोंके सहित दुराचारी दुर्यो-  
 धनकोभी समझा सकेंगे । हे जनार्दन !  
 आप वक्ता और विदुर श्रोता होनेपर  
 किस कठिन विषयको आप लोग सरल  
 नहीं कर सकेंगे ? (१५-१८) [२७६४]

उद्योगपर्वमें अस्सी अध्याय समाप्त ।

सहदेव उवाच— यदेतत्कथितं राज्ञा धर्म एष सनातनः ।

यथा च युद्धमेव स्यात्तथा कार्यमरिंदम ॥ १ ॥

यदि प्रशममिच्छेयुः कुरवः पांडवैः सह ।

तथापि युद्धं दाशार्हं योजयेथाः सहैव तैः ॥ २ ॥

कथं नु दृष्ट्वा पांचालीं तथा कृष्ण सभागताम् ।

अवधेन प्रशाम्येत मम मन्युः सुयोधने ॥ ३ ॥

यदि भीमार्जुनौ कृष्ण धर्मराजश्च धार्मिकः ।

धर्मसुत्सृज्य तेनाऽहं योद्धुमिच्छामि संयुगे ॥ ४ ॥

सात्याकिरुवाच— सत्यमाह महाबाहो सहदेवो महामतिः ।

दुर्योधनवधे शान्तिस्तस्य कोपस्य मे भवेत् ॥ ५ ॥

न जानासि यथा दृष्ट्वा चीराजिनधरान्वने ।

तवापि मन्युरुद्धूतो दुःखितान्प्रेक्ष्य पांडवान् ॥ ६ ॥

तस्मान्माद्रीसुतः शूरो यदाह रणकर्कशः ।

वचनं सर्वयोधानां तन्मतं पुरुषोत्तम ॥ ७ ॥

उद्योगपर्वमें एकासी अध्याय ।

सहदेव बोले, हे शत्रुनाशन कृष्ण ! धर्मराजने जो कुछ वचन कहे हैं, यद्यपि यह धर्मके अनुकूलही हैं, तौभी जिसमें युद्ध हो, वही उद्योग आपको करना होगा । हे दाशार्ह ! यदि कौरव लोग स्वयंही पाण्डवोंके सङ्ग शान्ति स्थापनके निमित्त सन्धि करनेकी इच्छा करेंगे, तौभी उन लोगोंको आपको हमारे सङ्ग युद्धके निमित्त खडा करना होगा । हे कृष्ण ! द्रुपदपुत्री द्रौपदीको उस प्रकारसे राज सभामें लाञ्छित हुई देखकर अब विना दुर्योधनके संहार किये किस प्रकारसे उसके विषयमें हम लोगोंको शान्ति मिल सकती है ? भीम,

अर्जुन और धर्मराज धर्मके अनुसार चलना चाहते हैं; परन्तु मैं उस धर्मको परित्याग करके संग्रामभूमिमें उसके संग केवल युद्धही करनेका आग्रह करता हूं । (१-४)

सात्यकी बोले, हे महाबाहो ! बुद्धिमान् सहदेवने यथार्थही कहा है; दुर्योधन के ऊपर मेरा भी जो पहिलेसे क्रोध बना हुआ है, वह विना उसके वध किये कदापि शान्त नहीं हो सकता । वनमें पाण्डवोंको मृगचर्म धारण किये हुए देखके आपके शरीरमें भी जिस प्रकारसे महाक्रोधका उदय हुआ था, वह क्या आपको स्मरण नहीं है ? हे पुरुषोत्तम ! इससे युद्धमें पराक्रमको

वैशंपायन उवाच—एवं वदति वाक्यं तु युयुधाने महामतौ ।

सुभीमः सिंहनादोऽभूद्योधानां तत्र सर्वशः ॥ ८ ॥

सर्वे हि सर्वशो वीरास्तद्वचः प्रत्यपूजयन् ।

साधु साध्विति शैनेयं हर्षयंतो युयुत्सवः ॥ ९ ॥ [ २७७३ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

सहदेवसात्यकिवाक्ये एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

वैशंपायन उवाच—राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं हितम् ।

कृष्णा दाशार्हमासीनमब्रवीच्छोककर्षिता ॥ १ ॥

सुता द्रुपदराजस्य स्वसितायतमूर्धजा ।

संपूज्य सहदेवं च सात्यकिं च महारथम् ॥ २ ॥

भीमसेनं च संशान्तं दृष्ट्वा परमदुर्मनाः ।

अश्रुपूर्णेक्षणा वाक्यमुवाचेदं मनस्विनी ॥ ३ ॥

विदितं ते महाबाहो धर्मज्ञ मधुसूदन ।

यथा निकृतिमास्थाय भ्रंशिताः पांडवाः सुखात् ॥ ४ ॥

दिखानेवाले माद्रीपुत्र वीर सहदेवने जो बातें कहीं, उनमें सब योद्धाओंकी भी सम्मति है । (५—७)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाबुद्धिमान सात्यकी ऐसे वचन कहकर चुप होगये; उसके अनन्तर सब ओरसे सैनिक वीर योद्धाओंके महाघोर सिंहनाद होने लगे; सबने उनको “धन्य धन्य” कहकर हर तरहसे सात्यकीकी प्रशंसा करी और सबहीने युद्धके निमित्त अपने उत्साह और इच्छाको प्रकाशित करके उनको आनन्दित किया । (८—९) [ २७७३ ]

उद्योगपर्वमें एकासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें बियासी अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अत्यन्त-

कृष्णवर्ण; बड़े बड़े लम्बे और घने तथा सुन्दर केशोंको धारण करनेवाली द्रुपदपुत्री यशस्विनी द्रौपदीने महारथ सहदेव और सात्यकीके वनचोंकी अत्यन्तही प्रशंसा करी; परन्तु धर्मराजका प्रस्ताव किया हुआ धर्मयुक्त और हितकर वचनको सुनकर, विशेष करके भीमसेनको शान्तिके निमित्त उत्सुक देखके अन्यन्तही दुःखित और शोकित होकर आँसू भरे हुए नेत्रोंसे रोती हुई कहने लगी । (१—३)

हे महाबाहो ! हे धर्मके जाननेवाले मधुसूदन जनार्दन ! धृतराष्ट्रके पुत्रोंने ठगपना करके पाण्डवोंके सुखको जिस प्रकारसे लोप किया है, वहभी तुम्हें

धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सामात्येन जनार्दन ।  
 यथा च संजयो राज्ञा मंत्रं रहसि श्रावितः ॥ ५ ॥  
 युधिष्ठिरस्य दाशार्हं तच्चापि विदितं तव ।  
 यथोक्तः संजयश्चैव तच्च सर्वं श्रुतं त्वया ॥ ६ ॥  
 पंच नस्तात दीयतां ग्रामा इति महायुने ।  
 अविस्थलं वृकस्थलं माकंदीं वारणावतम् ॥ ७ ॥  
 अवसानं महाबाहो कंचिदेकं च पंचमम् ।  
 इति दुर्योधनो वाच्यः सुहृदश्चाऽस्य केशव ॥ ८ ॥  
 न चापि ह्यकरोद्वाक्यं श्रुत्वा कृष्ण सुयोधनः ।  
 युधिष्ठिरस्य दाशार्हं श्रीमतः संधिमिच्छतः ॥ ९ ॥  
 अप्रदानेन राज्यस्य यदि कृष्ण सुयोधनः ।  
 संधिमिच्छेन्न कर्तव्यं तत्र गत्वा कथंचन ॥ १० ॥  
 शक्षयंति हि महाबाहो पांडवाः संजयैः सह ।  
 धार्तराष्ट्रबलं घोरं क्रुद्धं प्रतिसमासितुम् ॥ ११ ॥  
 नहि साम्ना न दानेन शक्योऽर्थस्तेषु कश्चन ।

मालूम है, और सञ्जयके यहांपर आने-  
 के अनन्तर महाराज युधिष्ठिरने उन्हें  
 एकान्त स्थानमें ले जाकर पहिले जिस  
 भांतिसे अपने विचारको प्रकाशित कि-  
 या था, तथा उनके बिदा होनेके सम-  
 यमें जो कुछ वचन कहे थे, वहभी  
 तुम्हें भली भांति मालूम है । (४-६)

हे महातेजस्वी केशव ! उन्होंने दुर्यो-  
 धन और उसके दुष्ट-मित्रोंसे कहनेके  
 निमित्त इन्हीं वचनोंको कहा था, कि  
 हम लोगोंको अविस्थल, वृकस्थल,  
 माकन्दी, वारणावत और एक दूसरा  
 कोई गांव यह पांचही गांव दे दीजि-  
 ये । परन्तु हे कृष्ण ! दुर्योधनने प्रार्थ-

ना करनेवाले तेजस्वी धर्मराज युधिष्ठि-  
 रके उस वचनकोभी नहीं ग्रहण  
 किया । (७-९)

हे जनार्दन कृष्ण ! इससे यदि बि-  
 ना राज्यको दियेही दुर्योधन सन्धि  
 करनेकी इच्छा करे, तो वहांपर जाकर  
 किसी प्रकारसेभी उसके वचनोंको  
 स्वीकार करना उचित नहीं है । हे  
 महाबाहो ! पाण्डव लोग सृञ्जयोंके  
 सङ्ग मिलकर उस क्रोधसे भरी हुई कौ-  
 रवी सेनाके विरुद्ध अवश्य खड़े होंगे ।  
 जब साम अथवा दानसे उसके निकट-  
 में कोईभी अर्थ सिद्ध होनेकी संभावना  
 नहीं है, तब फिर उसके ऊपर कृपा

तस्मात्तेषु न कर्तव्या कृपा ते मधुसूदन ॥ १२ ॥  
 साम्ना दानेन वा कृष्ण ये न शस्यन्ति शत्रवः ।  
 योक्तव्यस्तेषु दंडः स्याज्जीवितं परिरक्षता ॥ १३ ॥  
 तस्मात्तेषु महादंडः क्षेप्तव्यः क्षिप्रमच्युत ।  
 त्वया चैव महाबाहो पांडवैः सह सृजयैः ॥ १४ ॥  
 एतत्समर्थं पार्थानां तव चैव यशस्करम् ।  
 क्रियमाणं भवेत्कृष्ण क्षत्रस्य च सुखावहम् ॥ १५ ॥  
 क्षत्रियेण हि हंतव्यः क्षत्रियो लोभमास्थितः ।  
 अक्षत्रियो वा दाशार्हं स्वधर्ममनुतिष्ठता ॥ १६ ॥  
 अन्यत्र ब्राह्मणात्तात सर्वपापेष्ववस्थितात् ।  
 गुरुर्हि सर्ववर्णानां ब्राह्मणः प्रसृताग्रभुक् ॥ १७ ॥  
 यथाऽवध्ये वध्यमाने भवेद्दोषो जनार्दन ।  
 स वध्यस्याऽवधे दृष्ट इति धर्मविदो विदुः ॥ १८ ॥  
 यथा त्वां न स्पृशेदेष दोषः कृष्ण तथा कुरु ।

करनी तुम्हें उचित नहीं है। (१०-१२)

जो लोग साम और दानसे भी शान्त नहीं होते, उन सब शत्रुओंके निमित्त जीविका चाहनेवाले पुरुषों को दण्डही का प्रयोग करना चाहिये। हे महाबाहो अच्युत ! इससे सेनाके सहित पाण्डवोंके सङ्ग मिलकर शीघ्रही कौरवोंके ऊपर महादण्डका प्रयोग करना तुम्हारा भी कर्तव्य कार्य है। हे कृष्ण ! यह कर्म पाण्डुपुत्रोंके योग्य है, और तुम्हें भी यशदायक होगा; विशेष करके इसे पूरा करनेपर क्षत्रियोंके पक्षमें यह कर्म बहुत-ही सुखका देनेवाला होगा। १३-१५

क्योंकि क्षत्रिय होवे, अथवा ब्राह्मणको छोड़कर दुसरीही जाति होवे,

लोभी होनेसे उसका बध करना निज धर्मके अनुष्ठानको करनेवाले क्षत्रियोंका कर्तव्य कर्मही है। परन्तु ब्राह्मण सब पापोंके करने परभी किसी प्रकार मारने योग्य नहीं हैं; क्योंकि वह सब वर्णोंके गुरु और दान दी हुई वस्तुओंका सबसे पहिले ग्रहण करनेवाले हैं। हे जनार्दन कृष्ण ! अवध्यके बध करने से जिस प्रकारसे पापोंकी संभावना होती है, वैसेही वध्यको भी न मारनेसे दोषका भागी होना पड़ता है; इस बातको धर्मके जाननेवाले पण्डितोंने स्पष्ट रूपसे वर्णन किया है। १६-१८

इस निमित्त जिसमें वह दोष तुम्हें स्पर्श न कर सके, पाण्डव और सृजयों

पाण्डवैः सह दाशार्हैः खंजयैश्च ससैनिकैः ॥ १९ ॥  
 पुनरुक्तं च वक्ष्यामि विश्रंभेण जनार्दन ।  
 का तु सीमंतिनी माहूक् पृथिव्यामस्ति केशव ॥ २० ॥  
 सुता द्रुपदराजस्य वेदिमध्यात्समुत्थिता ।  
 धृष्टद्युम्नस्य भगिनी तव कृष्ण प्रिया सखी ॥ २१ ॥  
 आजमीढकुलं प्राप्ता स्नुषा पाण्डोर्महात्मनः ।  
 महिषी पाण्डुपुत्राणां पंचेन्द्रसमवर्चसाम् ॥ २२ ॥  
 सुता मे पंचभिर्दीरैः पंच जाता महारथाः ।  
 अभिमन्युर्यथा कृष्ण तथा ते तव धर्मतः ॥ २३ ॥  
 साऽहं केशग्रहं प्राप्ता परिक्लिष्टा सभां गता ।  
 पश्यतां पाण्डुपुत्राणां त्वयि जीवति केशव ॥ २४ ॥  
 जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु पंचालेष्वथ वृष्णिषु ।  
 दासीभूनाऽस्मि पापानां सभामध्ये व्यवस्थिता ॥ २५ ॥  
 निरमर्षेष्वचेष्टेषु प्रेक्षमाणेषु पाण्डुषु ।

की सेनाके सङ्गमें मिलकर तुम उसके  
 वधहीका विधान करो । हे कृष्ण !  
 तुम्हारे समीपमें कोई विषयभी छिपाने  
 योग्य नहीं है, जब जो कुछ कहनेकी इच्छा  
 हुई है, उसे मैंने उसी समय कहा है ।  
 इस समय पुनरुक्ति दोष होनेपर भी  
 मैं कई एक बातें कहती हूं, उसे तुम  
 सुनो । विचारकर देखो तो सही, इस  
 पृथ्वीमें मेरे समान भाग्यहीन राजपुत्री  
 और कौन है ? हे कृष्ण ! मैं द्रुपदराजा  
 की पुत्री, वेदीसे उत्पन्न हुई हूं; मैं  
 धृष्टद्युम्नकी प्यारी बहिन और तुम्हारी  
 प्रिय सखी हूं । आजमीढ वंशमें व्याह  
 होनेसे मैं पाण्डुराजकी पुत्रवधू और  
 इन्द्रके समान तेजस्वी पांचों पाण्डुपुत्रों-

की भार्या हुई हूं ( १९-२२ )

इन पांचों वीरोंके वीर्यसे मेरे पांच  
 महारथ पुत्र उत्पन्न हुए हैं । हे कृष्ण !  
 अभिमन्यु जिस प्रकारसे तुम्हें प्यारे हैं,  
 मेरे पुत्रभी धर्मके अनुसार वैसही तुम्हारे  
 प्रीतिके पात्र हैं । हे केशव ! इस भांतिके  
 सौभाग्यलक्षण रहते हुए तुम्हारे जीतेही  
 और पाण्डुपुत्रोंके सम्मुखही मैं राजसभामें  
 बुलाई गई थी, और बाल खींचने आदि न  
 सहने योग्य कुंश मुझे मिले थे । पाण्डव,  
 पाञ्चाल और वृष्णिवंशियोंके जीवित  
 रहतेही, मैं सभाके बीचमें रहकर दुष्टबुद्धि  
 पापियोंकी दासी कही गई थी । ( २३-२५ )

उसे देखकर भी जब पाण्डुपुत्र लोग  
 क्रोध शून्य और चेष्टा-रहित होगये, तब

पाहि मामिति गोविन्द मनसा चिंतितोऽसि मे ॥ २६ ॥

यत्र मां भगवान्राजा श्वशुरो वाक्यमब्रवीत् ।

वरं वृणीष्व पांचालि वरार्हाऽसि मता मम ॥ २७ ॥

अदासाः पांडवाः संतु सरथाः सायुधा इति ।

मयोक्ते यत्र निर्मुक्ता वनवासाय केशव ॥ २८ ॥

एवंविधानां दुःखानामभिज्ञोऽसि जनार्दन ।

त्रायस्व पुंडरीकाक्ष सभर्तृज्ञातिबांधवान् ॥ २९ ॥

नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ।

स्नुषा भवामि धर्मेण साऽहं दासी कृता बलात् ॥ ३० ॥

धिकपार्थस्य धनुष्मत्तां भीमसेनस्य धिग्वलम् ।

यत्र दुर्योधनः कृष्ण मुहूर्तमपि जीवति ॥ ३१ ॥

यदि तेऽहमनुग्राह्या यदि तेऽस्ति कृपा मयि ।

धार्तराष्ट्रेषु वै कोपः सर्वः कृष्ण विधीयताम् ॥ ३२ ॥

वैशंपायन उवाच-इत्युक्त्वा मृदुसंहारं वृजिनाग्रं सुदर्शनम् ।

मैंने 'हे गोविन्द ! मेरी रक्षा करो' यही कहके मनमें केवल तुम्हारा ध्यान किया । हे केशव ! अनन्तर उसी समयमें मेरे ससुर अन्धराज धृतराष्ट्र मुझसे बोले, "हे द्रौपदी ! तू मेरी पुत्रवधू और वरदान पानेके योग्य है; इससे तू वर मांग" तब मैंने " पाण्डवोंका दासपना छूट जावे, और वे लोग अपने शोभायमान रथ तथा शस्त्रोंको फिर पावें यही मेरी प्रार्थना है" इस वचनके कहनेसे, ये सब लोग दासपनेसे छूटकर वनवासको चले आये थे । (२६-२८)

हे पुण्डरीकाक्ष जनार्दन ! इससे तुम इस प्रकारके मेरे दुःख और क्लेशोंको अच्छी प्रकारसे जानते हो; इस समय

पति, जाति और बन्धु बान्धवों सहित मेरा परित्याग करो । हे कृष्ण ! मैं धर्म-पूर्वक भीष्म और धृतराष्ट्र दोनों पुरुषोंकी पुत्रवधू हूँ; उन लोगोंके संमुखहीमें दुष्टात्मा दुर्योधनने मुझे बलपूर्वक दासी किया था । इससे जब वह पुरुषाधम, इस कठिन तथा रूवोंको खडे करने वाले निन्दित कार्य करके क्षण मात्र भी जीवित है, तब अर्जुनके धनुषबाण और भीमसेनके पराक्रमको भी अधिकार है । हे कृष्ण ! यदि मैं तुम्हारे अनुग्रह की पात्री होऊँ और मेरे ऊपर तुम्हारी कृपा हो, तौ तुम धृतराष्ट्रपुत्रोंके विषयमें सम्पूर्णरूपसे क्रोध की योजना करना । ( २९-३२ )

सुनीलमसितापांगी सर्वगंधाधिवासितम् ॥ ३३ ॥

सर्वलक्षणसंपन्नं महाभुजगवर्चसम् ।

केशपक्षं वरारोहा गृह्य वामेन पाणिना ॥ ३४ ॥

पद्माक्षी पुंडरीकाक्षमुपेत्य गजगामिनी ।

अश्रुपूर्णक्षणा कृष्णा कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

अयं ते पुंडरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धतः ।

स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां संधिमिच्छता ॥ ३६ ॥

यदि भीमार्जुनौ कृष्ण कृपणौ संधिकासुका ।

पिता मे योत्स्यते वृद्धः सह पुत्रैर्महारथैः ॥ ३७ ॥

पंच चैव महावीर्याः पुत्रा मे मधुसूदन ।

अभिमन्युं पुरस्कृत्य योत्स्यन्ते कुरुभिः सह ॥ ३८ ॥

दुःशासनभुजं श्यामं संछिन्नं पांसुगुंठितम् ।

यद्यहं तु न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ३९ ॥

त्रयोदश हि वर्षाणि प्रतीक्षन्त्या गतानि मे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उत्तम शरीरवाली, कमलनयनी, गजगामिनी, यशस्विनी द्रौपदी दुःख पूर्वक ऐसे वचनोंको कहकर बहुत सुन्दर अग्रभाग में टेढ़े, काले, नेत्रोंको आनन्द देने-वाले, सब सुगन्धियोंसे वासित, सब, लक्षणोंसे युक्त, महा काले सर्पके समान अपने केशोंको बायें हाथसे पकड़के, कमलनेत्र श्रीकृष्णके समीपमें आकर आंखोंमें आंसू भरके फिर यह वचन कहने लगी । हे पुंडरीकाक्ष ! तुम शत्रुओंके सङ्ग सान्धि करनेकी इच्छा करते हो, वह ठीक है; परन्तु सब कार्योंके समय दुःशासनके हाथोंसे खींचे हुए मेरे इन खुले केशोंकी बात जिसमें

तुम्हें स्मरण रहे । ( ३३-३६ )

हे कृष्ण ! भीमसेन और अर्जुन इकवारगीही सान्धिके निमित्त अभिलाषा करेंगे; तौभी मेरे वृद्धपिता महाराज द्रुपद अपने महारथ पुत्रोंके सहित शत्रुओंके संग युद्ध करेंगे । मेरे महा बलवान पांचों पुत्र भी अभिमन्युको अगाड़ी करके शत्रुओंसे अवश्य युद्ध करेंगे । हे कृष्ण ! यदि मैं दुःशासनके उस काले हाथको टूटा और धूलिसे लिपटा हुआ न देखूंगी, तो मुझे इस शोकसे शान्ति न होगी । ( ३७-३९ )

मैंने जलती हुई अग्निके समान इस प्रचण्ड शोकरूपी आगको हृदयमें रखके किसी भांतिसे अपने समयकी



विधाय हृदये मनुं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥ ४० ॥  
 विदीर्यते मे हृदयं भीमवाक्शल्यपीडितम् ।  
 योऽयमद्य महाबाहुर्धर्ममेवाऽनुपश्यति ॥ ४१ ॥  
 इत्युक्त्वा बाष्परुद्धेन कंठेनाऽऽयतलोचना ।  
 रुरोद कृष्णा सोत्कंपं सस्वरं बाष्पगद्गदम् ॥ ४२ ॥  
 स्तनौ पीनायतश्रोणी सहितावभिवर्षति ।  
 द्रवीभूतमिवाऽत्युष्णं मुचती वारि नेत्रजम् ॥ ४३ ॥  
 तामुवाच महाबाहुः केशवः परिसांत्वयन् ।  
 अचिराद् द्रक्ष्यसे कृष्णे रुदतीर्भरतस्त्रियः ॥ ४४ ॥  
 एवं ता भीरु रोत्स्यन्ति निहतज्ञातिबांधवाः ।  
 हतमित्रा हतबला येषां क्रुद्धाऽसि भामिनी ॥ ४५ ॥  
 अहं च तत्करिष्यामि भीमार्जुनयमैः सह ।  
 युधिष्ठिरनियोगेन दैवाच्च विधिनिर्मितात् ॥ ४६ ॥  
 धार्तराष्ट्राः कालपक्वा न चेच्छृण्वन्ति मे वचः ।

वाट जोहती हुई तेरह वर्ष बिताया है;  
 परन्तु इस समय भीमसेनके वचनोंसे  
 पीडित होकर मेरा वह हृदय टुकड़े टुकड़े  
 हो रहा है। हा ! इतने दिनके अनन्तर  
 आज इन महाबाहु भीमसेनकी धर्मकी  
 ओर दृष्टि गई है ! ( ४०—४१ )

सुन्दर नितम्ब और विशाल लोच-  
 नवाली द्रौपदी इस प्रकारसे अनेक वचन  
 कहती हुई, लम्बी सांस लेती हुई, गद्गद  
 होकर कांपती हुई मुक्तकण्ठसे रोने  
 लगी। उस समय ऐसा बोध होने लगा  
 जैसे दुःखरूपी अग्निके तेजसे शरीरके  
 सब धातु जलकर, जलरूपसे दोनों कुचों-  
 के ऊपर बरसती हुई, उसके वक्षस्थल  
 (छाती) को बहाया चाहते हैं। ( ४२-४३ )

अनन्तर श्रीकृष्ण उसको शान्त  
 करनेकी इच्छासे कहने लगे, हे द्रौपदी!  
 तुम जिस प्रकारसे इस समय रो रही हो,  
 शीघ्रही भरतवंशकी सब स्त्रियोंकोभी  
 इसी भांतिसे रोती हुई देखोगी। हे भीरु !  
 जाति और बान्धवोंके नाश होनेपर उन  
 लोगोंकोभी तुम्हारीही भांति रोना होगा।  
 हे भामिनी! तुम जिसके ऊपर कुपित हुई  
 हो, वह मित्रोंके सहित अवश्यही मारा  
 जायगा; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।  
 मैं भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि-  
 के संग मिलकर युधिष्ठिरकी आज्ञा और  
 विधाताके बनाये हुए प्रारब्धके संयोग-  
 से अवश्यही उस कार्य को पूर्ण  
 करूंगा। ( ४४-४६ )

शेष्यन्ते निहता भूमौ श्वसृगालादनीकृताः ॥ ४७ ॥

चलेद्वि हिमवाञ्छैलो मेदिनी शतधा फलेत् ।

द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा न मे मोघं वचो भवेत् ॥ ४८ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णे वाष्पो निगृह्यताम् ।

हतमित्राञ्छ्रियायुक्ता चिराद् द्रक्ष्यसे पतीन् ॥ ४९ ॥ [२८२२]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि द्रौपदीकृष्णसंवादे द्रव्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

अर्जुन उवाच— कुरूणामद्य सर्वेषां भवान्सुहृदनुत्तमः ।

संबन्धी दयितो नित्यमुभयोः पक्षयोरपि ॥ १ ॥

पाण्डवैर्धार्तराष्ट्राणां प्रतिपाद्यमनामयम् ।

समर्थः प्रशमं चैव कर्तुमर्हसि केशव ॥ २ ॥

त्वमितः पुण्डरीकाक्ष सुयोधनममर्षणम् ।

शांत्यर्थं भ्रातरं ब्रूया यत्तद्वाच्यममित्रहन् ॥ ३ ॥

त्वया धर्मार्थयुक्तं चेदुक्तं शिवमनामयम् ।

हितं नाऽऽदास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति ॥ ४ ॥

कालके वशमें हुए धृतराष्ट्र-पुत्र यदि मेरा वचन न मानेंगे, तो निःसन्देह मरके पृथ्वीमें सोवेंगे और कुत्ते तथा सियारोंके भक्ष्य होंगे । हे द्रौपदी ! यदि हिमालय पहाडभी अपने स्थानसे हट जावे; पृथ्वी सौ टुकड़े हो जाय और नक्षत्रोंके सहित स्वर्गके लोकभी गिर पड़ें; तौभी मेरा यह वचन वृथा न होगा । मैं यह तुम्हारे समीप सत्य शीघ्रही कहता हूं, कि तुम अपने पतियोंको शत्रु रहित और लक्ष्मीसे युक्त देखोगी, इससे रोना छोडकर धीरज धरो । (४७-४९)

उद्योगपर्वमें बियासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें तिरासी अध्याय ।

अर्जुन बोले, हे केशव ! तुमही इस

समय कुरुवंशियोंके अत्यन्त हितकारी सुहृद मित्र हो । तुम दोनों ओरके समान सम्बन्धि और प्रीति पात्र हो; और दोनों पक्षके निमित्त सन्धि करनेमें समर्थ हो । इससे जब कौरव और पाण्डवोंके कुशलके निमित्त यत्न करनाही तुम्हारा कार्य है, तब दूसरी बुद्धि न करके पहिले उसीके अनुष्ठानका यत्न करो । ( १—२ )

हे शत्रुनाशन पुण्डरीकाक्ष ! तुम किसीकी बात न सहनेवाले भाई दुर्योधनके निकट जाकर शान्तिके निमित्त जो कुछ कहना उचित हो उसे कहना, उससे भी यदि वह मूर्ख तुम्हारे धर्म और अर्थसे भरे हुए हितकारी वचनोंको

श्रीभगवानुवाच - धर्म्यमस्मद्वितं चैव कुरूणां यदनामयम् ।

एष यास्यामि राजानं धृतराष्ट्रमभीप्सया ॥ ५ ॥

वैशंपायन उवाच - ततो व्यपेततमासि सूर्ये विमलवद्गते ।

सैत्रे मुहूर्ते संप्राप्ते मृद्वर्चिषि दिवाकरे ॥ ६ ॥

कौमुदे मासि रेवत्यां शरदंते हिमागमे ।

स्फीतसस्यसुखे काले कल्पः सत्त्ववतां वरः ॥ ७ ॥

मंगल्याः पुण्यनिर्घोषा वाचः शृण्वंश्च सूनृताः ।

ब्राह्मणानां प्रतीतानामृषीणामिव वासवः ॥ ८ ॥

कृत्वा पौर्वाहिकं कृत्यं स्नातः शुचिरलंकृतः ।

उपतस्थे विचस्वंतं पावकं च जनार्दनः ॥ ९ ॥

ऋषभं पृष्ठ आलभ्य ब्राह्मणानभिवाद्य च ।

अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा पश्यन्कल्याणमग्रतः ॥ १० ॥

तत्प्रतिज्ञाय वचनं पांडवस्य जनार्दनः ।

शिनेर्नश्वरमासीनमभ्यभाषत सात्यकिम् ॥ ११ ॥

न मानेगा, तो वह अत्यन्तही कालके वशमें होजायगा । (३-४)

श्रीकृष्ण बोले, हां जो धर्मके अनुसार हम लोगोंका हितकर और कौरवों-काभी कल्याण करनेवाला कार्य होगा, उसीको पूरा करनेकी इच्छासे मैं महाराज धृतराष्ट्रके समीप जाऊंगा । ( ५ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, शरद् ऋतुके बीततेही और हेमन्त ऋतुके आरम्भ होतेही सब शस्त्रसम्पत्ति उत्पन्न होती हैं; उसी कार्तिकके महीनेमें रेवती नक्षत्रसे युक्त एक दिन द्वात्रिके बीतनेपर, निर्मल और कोमल किरणोंके सहित सूर्यके उदय होतेही, मित्रदैवत मुहूर्तके आनेपर, स्वास्थ्य और सुखके युक्त

वीरोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र जी, ऋषियोंकी स्तुतिपाठ सुनकर जैसे इन्द्र निद्रासे उठते हैं वैसेही अनेक मङ्गल पाठोंसे युक्त ब्राह्मणोंके वचनोंको सुनते हुए निद्रासे उठकर शौच आदिसे पवित्र हुए । प्रातः कालके कार्योंको समाप्त करके सब अलङ्कारोंसे भूषित होकर सूर्य और अग्निकी उपासना करी; पीछे वृषभकी पीठको स्पर्श और ब्राह्मणोंको नमस्कार किया, फिर अग्निकी प्रदक्षिणा करी और सम्मुखमें माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन किया । (६-१०)

अनन्तर युधिष्ठिरके कहे हुए वचनों को स्मरण करके शिनिपुत्र सात्यकीसे बोले, कि शंख चक्र, गदा, तूणीर,

रथ आरोप्यतां शंखश्चक्रं च गदया सह ।  
 उपासंगाश्च शक्त्यश्च सर्वप्रहरणानि च ॥ १२ ॥  
 दुर्योधनश्च दुष्टात्मा कर्णश्च सहसौबलः ।  
 न च शत्रुवज्रेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा ॥ १३ ॥  
 ततस्तन्मतमाज्ञाय केशवस्य पुरःसराः ।  
 प्रससुर्योजयिष्यंतो रथं चक्रगदाभृतः ॥ १४ ॥  
 तं दीप्तमिव कालाग्निमाकाशगमिवाऽऽशुगम् ।  
 सूर्यचंद्रप्रकाशाभ्यां चक्राभ्यां समलंकृतम् ॥ १५ ॥  
 अर्धचन्द्रैश्च चन्द्रैश्च मत्स्यैः समृगपक्षिभिः ।  
 पुष्पैश्च विविधैश्चित्रं मणिरत्नैश्च सर्वशः ॥ १६ ॥  
 तरुणादित्यसंकाशं बृहंतं चारुदर्शनम् ।  
 मणिहेमविचित्रांगं सुध्वजं सुपताकिनम् ॥ १७ ॥  
 सूपस्करमनाधृष्यं वैयाघ्रपरिवारणम् ।  
 यशोग्रं प्रत्यमित्राणां यदूनां नंदिवर्धनम् ॥ १८ ॥  
 वाजिभिः शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ।

शक्ति और दूसरे सब उत्तम शस्त्रोंको  
 रथमें स्थापित करो; क्योंकि दुर्योधन  
 शकुनि और कर्ण आदि सबही दुष्टात्मा  
 हैं; शत्रुको निर्बल देखकर बलवान  
 मनुष्यको कभी असावधानीसे रहना  
 उचित नहीं है । (११-१३)

अनन्तर गदा, चक्रके धारण करने-  
 वाले, श्रीकृष्णके वचनोंको सुनकर सेव-  
 क लोग उनके रथको सज्जित करानेके  
 निमित्त आगे बढ़े, और वह जलती  
 हुई प्रज्वलित अग्निके समान पृथ्वी  
 पर चलने वाला होकर भी आकाशमें  
 चलनेवालोंकी भांति शीघ्र चलनेवाला,  
 सूर्य और चन्द्रमाके समान दोनों चक्रों-

से विचित्ररूपसे भूषित, अर्द्धचन्द्र, पूर्ण-  
 चन्द्र, मछली, मृग और विविध भांति-  
 के पक्षियोंकी आकृतियोंसे शोभित ना-  
 नाप्रकारके पुष्प, मणि, और रत्नोंसे  
 शोभायमान, निर्मल सूर्यके समान  
 प्रकाशमान, बहुत बड़ी और देखनेमें  
 मनोहर, सब स्थानोंमें मणि और सुवर्ण  
 खचित्त शोभायमान ध्वजापताकासे  
 युक्त, सब सामग्रीओंसे सजा हुआ,  
 बाघके चमड़ेसे चारों ओर घिरा हुआ,  
 शत्रुओंको भय देनेवाला तथा उनके  
 यशका लोप करनेवाला, यदुवंशियोंके  
 आनन्दको बढ़ानेवाला, उत्तम रथको  
 सबप्रकारसे भूषित करके उसके अनन्तर

स्नातैः संपादयाभासुः संपन्नैः सर्वसंपदा ॥ १९ ॥

महिमानं तु कृष्णस्य भूय एवाऽभिवर्धयन् ।

सुघोषः पतंगेन्द्रेण ध्वजेन युयुजे रथः ॥ २० ॥

तं मेरुशिखरप्रख्यं मेघदुन्दुभिनिःस्वनम् ।

आरुरोह रथं शौरिर्विमानमिव कामगम् ॥ २१ ॥

ततः सात्यकिमारोप्य प्रययौ पुरुषोत्तमः ।

पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च रथघोषेण नादयन् ॥ २२ ॥

व्यपोढाभ्रस्ततः कालः क्षणेन समपद्यत ।

शिवश्चाऽनुववौ वायुः प्रशान्तमभवद्रजः ॥ २३ ॥

प्रदक्षिणानुलोमाश्च मंगल्या मृगपक्षिणः ।

प्रयाणे वासुदेवस्य बभूवुरनुयायिनः ॥ २४ ॥

मंगल्यार्थप्रदैः शब्दैरन्ववर्तत सर्वशः ।

सारसाः शतपत्राश्च हंसाश्च मधुसूदनम् ॥ २५ ॥

मंत्राहुतिमहाहोमैर्हूयमानश्च पावकः ।

प्रदक्षिणमुखो भूत्वा विधूमः समपद्यत ॥ २६ ॥

वसिष्ठो वामदेवश्च भूरिद्युम्नो गयः क्रथः ।

शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामके सब गुणोंके पूरे सुन्दर और प्रसिद्ध घोड़ोंको स्नान और सब भूषणोंसे भूषित करके उस रथमें जुतवाया । अनन्तर पक्षियोंके राजा गरुड आकर कृष्णकी असीम महिमाको बढ़ाते हुए उस रथकी ध्वजापर बैठ गये । ( १४-२० )

तब पुरुषोत्तम कृष्ण सात्यकीके सहित मेरु पर्वतके शिखरके समान शोभित, मेघ और दुन्दुभिके समान शब्द करनेवाला तथा आकाशगामी विमानकी भांति मनोहर, और परम रमणीय रथपर चढ़के, उसके शुभ शब्दसे पृथ्वी

और आकाशको पूरित करते हुए अपनी शुभयात्रा करी । ( २१-२२ )

उस समय आकाश बादलोंसे रहित होगया । शुभ सूचना देनेवाली सुन्दर वायु चलने लगी । धूलि उड़नेसे शान्त हो गई, मङ्गल सगुन होने लगे, हरिण और शुभ सगुनेके जनानेवाले सुन्दर पक्षी श्रीकृष्णके दहिनी ओर चलने लगे । हंस सारस आदि पक्षी चारों ओर दीखने लगे ! मन्त्रपूर्वक होममें आहुति देनेके समय अग्निकी दहिनी शिखा प्रज्वलित होने लगी और धुएँसे रहित होगई । ( २३-२६ )

शुक्रनारदवाल्मीका मरुतः कुशिको भृगुः ॥ २७ ॥

देवब्रह्मर्षयश्चैव कृष्णं यदुसुखावहम् ।

प्रदक्षिणमवर्तत सहिता वासवानुजम् ॥ २८ ॥

एवमेतैर्महाभागैर्महर्षिगणसाधुभिः ।

पूजितः प्रययौ कृष्णः कुरूणां सदनं प्रति ॥ २९ ॥

तं प्रयांतमनुप्रायात्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।

भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रीपुत्रौ च पांडवौ ॥ ३० ॥

चेकितानश्च विक्रांतो धृष्टकेतुश्च चेदिपः ।

द्रुपदः काशिराजश्च शिखंडी च महारथः ॥ ३१ ॥

धृष्टद्युम्नः सपुत्रश्च विराटः केकयैः सह ।

संसाधनार्थं प्रययुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ ३२ ॥

ततोऽनुव्रज्य गोविंदं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

राज्ञां सकाशे द्युतिमानुवाचेदं वचस्तदा ॥ ३३ ॥

यो वै न कामान्न भयान्न लोभान्नाऽर्थकारणात् ।

अन्यायमनुवर्तत स्थिरबुद्धिरलोलुपः ॥ ३४ ॥

धर्मज्ञो द्युतिमान्प्राज्ञः सर्वभूनेषु केशवः ।

ईश्वरः सर्वभूतानां देवदेवः सनातनः ॥ ३५ ॥

वसिष्ठ, वामदेव, भूरिद्युम्न, जय, क्रथ, शुक्र, नारद, वाल्मीक, मरुत, काशिक और भृगु आदि ब्रह्मर्षिलोग देवर्षियोंके सहित श्रीकृष्णको आनन्दित करते हुए उनकी दहिनी ओर खड़े हो गये। इन सम्पूर्ण महात्मा साधु महर्षियोंसे पूजित होकर श्रीकृष्णचन्द्रने कौरवोंकी समाहस्तिनापुरके निमित्त प्रस्थान किया। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, माद्रीपुत्र नकुल, सहदेव और पराक्रमी चेकितान, चेदीपति धृष्टद्युम्न, केकय और पुत्रोंके सहित राजा विराट आदि

क्षत्रिय राजाओंने कुछ दूर तक श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे गमन किया। ( २७-३२ )

अनन्तर तेजस्वी धर्मराज थोड़ी देर तक श्रीकृष्णके संग चलके, राजाओंके समीप यह वचन बोले, जो काम, क्रोध, भय, लोभ अथवा किसी प्रकारके प्रयोजनकी सिद्धिके निमित्त भी कभी अन्याय कार्य नहीं करते; जो स्थिर बुद्धि, लोभ रहित, धर्मके जाननेवाले, बुद्धिमान, सब जीवोंके अन्तर्यामी और सब प्राणियोंके ईश्वर हैं; उन्हीं सब गुणोंसे पूरे श्रीवत्ससे शोभित, प्रतापवान्

तं सर्वगुणसंपन्नं श्रीवत्सकृतलक्षणम् ।

संपरिष्वज्य कौन्तेयः संद्रेष्टुमुपचक्रमे ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिर उवाच- या सा बाल्यात्प्रभृत्यस्मान्पर्यवर्धयताञ्चला ।

उपवासतपःशीला सदा स्वस्त्ययने रता ॥ ३७ ॥

देवतातिथिपूजासु गुरुशुश्रूषणे रता ।

वत्सला प्रियपुत्रा च प्रियाऽस्माकं जनार्दन ॥ ३८ ॥

सुयोधनभयाद्या नोऽत्रायताऽमित्रकर्शन ।

महतो मृत्युसंवाधादुद्धरेन्नौरिवाऽर्णवात् ॥ ३९ ॥

अस्मत्कृते च सततं यया दुःखानि माधव ।

अनुभूतान्यदुःखार्हा तां स्म पृच्छेरनामयम् ॥ ४० ॥

भृशमाश्वासयेश्चैनां पुत्रशोकपरिप्लुताम् ।

अभिवाद्य स्वजेथास्त्वं पांडवान्परिकीर्तयन् ॥ ४१ ॥

ऊढात्प्रभृति दुःखानि श्वशुराणामरिंदम ।

निकारानतदर्हा च पश्यन्ती दुःखमश्रुते ॥ ४२ ॥

देवोंके देव श्रीकृष्णचन्द्रको आलिङ्गन करके कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर इस प्रकारसे कहने लगे । ( ३३-३६ )

युधिष्ठिर बोले, हे जनार्दन ! जिस यशस्विनी कुन्ती माताने हम लोगोंको बालक अवस्थासे पालन पोषण करके बड़ा किया है; जो उपवास, तपस्या, स्वस्त्ययन, देवतोंकी पूजा, अतिथियोंका सत्कार और गुरुजनोंकी सेवामें नित्यही यत्नवान रहती है; जिसकी पुत्रोंके ऊपर प्रीति और वत्सलता की सीमा नहीं है; जिसके संग विना प्रीति और प्रेमके किये हम लोगोंको कोईभी गति नहीं है; नौका जैसे ( मगर, मच्छ, घड़ियाल आदि भयङ्कर जलजन्तुओंसे पूरित ) साक्षात् काल

स्वरूप महासमुद्रसे उद्धार करती है, वैसेही जिसने दुर्योधनके दिये हुए महाभयोंसे हम लोगोंकी बार बार रक्षा करी है, और हम लोगोंके निमित्त अत्यन्तही दुःख और क्लेश उठाया है; दुखोंके न सहने योग्य उन कुन्तीदेवीकी कुशल वार्त्ता पूछना । ( ३७-४० )

हे शत्रु नाशन माधव ! पुत्रोंके कष्ट को देखके वह महा दुःखी होरही हैं, इससे बार बार धीरज देकर हम लोगोंके नामको सुनाकर उनको प्रणाम और आलिङ्गन करना । हे शत्रु नाशन ! किसी प्रकारसे भी क्लेश और दुःख पानेके योग्य न होकर भी विवाहके समयसेही वह दुःख और क्लेशोंका अनुभव करती हुई

अपि जातु स कालः स्यात्कृष्ण दुःखविपर्ययः ।  
यदहं मातरं क्लिष्टां सुखं दद्यामरिदम ॥ ४३ ॥  
प्रव्रजंतोऽनुधावन्तीं कृपणां पुत्रगृद्धिनीम् ।  
रुदतीमुपहायैनामगच्छाम वयं वनम् ॥ ४४ ॥  
न नूनं म्रियते दुःखैः सा चेज्जीवति केशव ।  
तथा पुत्राधिभिर्गाढमार्त्ता ह्यानर्त्तसत्कृत ॥ ४५ ॥  
अभिवाद्याऽथ सा कृष्ण त्वया मद्रचनाद्विभो ।  
धृतराष्ट्रश्च कौरव्यो राजानश्च वयोधिकाः ॥ ४६ ॥  
भीष्मं द्रोणं कृपं चैव महाराजं च बाह्लिकम् ।  
द्रौणिं च सोमदत्तं च सर्वाश्च भरतान्प्रति ॥ ४७ ॥  
विदुरं च महाप्राज्ञं कुरूणां मंत्रधारिणम् ।  
अगाधबुद्धिं मर्मज्ञं स्वजेथा मधुसूदन ॥ ४८ ॥  
इत्युक्त्वा केशवं तत्र राजमध्ये युधिष्ठिरः ।  
अनुज्ञातो निववृते कृष्णं कृत्वा प्रदाक्षिणम् ॥ ४९ ॥

केवल दुःखही भोग रही हैं। हे कृष्ण ! हमारे सुखका समय क्या कभी ऐसा भी आवेगा, कि जिस समय हम लोग अपनी जननीको तृप्त कर सकेंगे ? (४१-४३)

अहो ! वनमें गमन करनेके समय वह पुत्रोंकी सङ्गति छूटनेपर हम लोगों-के सङ्ग चलनेकी इच्छासे कातर होके रोती हुई पीछे दौड़ी थीं; परन्तु हम लोग उन्हें वहांही छोड़कर वनको चले गये थे। हे केशव ! दुःखमें पड़नेहीसे जो मनुष्योंकी मृत्यु होती है, इसका भी ठीक निश्चय नहीं है। हम लोगों-की माता कुन्तीदेवी पुत्रोंके क्लेशको देख कर अत्यन्त पीडित है, विशेष करके यदुवंशीय उनका यथा योग्य आदर्श

और सत्कार करते हैं; इससे इतने दिनों तक जीवित भी रह सकती हैं; यदि जीती हों, तो मेरे वचनसे तुम उन्हें प्रणाम कहना। (४४-४६)

अनन्तर कौरवोंमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्र, अवस्थामें बड़े राजा लोग, और भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, बाह्लिक, सोमदत्त और भरतवंशीय सम्मान पानेवाले पुरुषोंको तथा कुरुवंशियोंके मन्त्री, अपार बुद्धि और शक्तिसे पूरित सब धर्मोंके जाननेवाले महाबुद्धिमान विदुरसे हमारा प्रणाम और भेंट कहना। (४६-४८)

राजा युधिष्ठिर सब राजाओंके संमुख मधुसूदन कृष्णसे ऐसे वचन कहकर उनकी आज्ञाको ग्रहण करके उनके रथकी



ब्रजन्नेव तु बीभत्सुः सखायं पुरुषर्षभम् ।

अब्रवीत्परवीरघ्नं दाशार्हमपराजितम् ॥ ५० ॥

यदस्माकं विभो वृत्तं पुरा वै मन्त्रनिश्चये ।

अर्धराज्यस्य गोविन्द विदितं सर्वराजसु ॥ ५१ ॥

तच्चेदद्यादसंगेन सत्कृत्याऽनवमन्य च ।

प्रियं मे स्यान्महाबाहो मुच्येरन्महतो भयात् ॥ ५२ ॥

अतश्चेदन्यथा कर्ता भार्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ।

अंतं नूनं करिष्यामि क्षत्रियाणां जनार्दन ॥ ५३ ॥

वैशंपायन उवाच- एवमुक्ते पांडवेन सप्तहृष्यद्रुकोदरः ।

मुहुर्मुहुः क्रोधवशात्प्रावेपत च पांडवः ॥ ५४ ॥

वेपमानश्च कौन्तेयः प्राक्रोशन्महतो रवान् ।

धनंजयवचः श्रुत्वा हर्षोत्सिक्तमना भृशम् ॥ ५५ ॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा संप्रावेपंत धन्विनः ।

वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रे प्रसुसुवुः ॥ ५६ ॥

इत्युक्त्वा केशवं तत्र तथा चोक्त्वा विनिश्चयम् ।

प्रदक्षिणा करके वहांसे लौट आये; परन्तु अर्जुन उस समय नहीं लौटे और उनके सङ्ग चलते हुए निज सखा, शत्रु नाशन अपराजित कृष्णसे बोले, कि हे विभो गोविन्द ! पहिले जब मन्त्रणा स्थिर हुई थी, तब हम लोगोंको आधा राज्य देनाही निश्चय हुआ था; वह सब राजाओंको विदित है । हे महाबाहो जनार्दन ! यदि दुर्योधन किसी प्रकारसे अबमानना न करके कपटको त्यागके प्रीतिपूर्वक उसे देगा, तो हम लोगोंकी भी उसके ऊपर प्रीति होगी और वह महा भयसे छूट जायगा । यदि वह इस प्रकारसे सान्धि करनेमें सम्मत होगा,

तो उत्तमही है और इसे न करके कोई दूसरे दुष्ट उपायमें प्रवृत्त होगा, तो निश्चयही इष्ट मित्रोंके सहित मैं उस पुरुषाधमके नाश करनेका विधान करूंगा । ( ४९—५३ )

अर्जुनके ऐसे वचनके कहनेपर भीमसेनके आनन्दकी सीमा न रही; वह हर्ष और क्रोधसे युक्त होकर बार बार ऐसे भयंकर शब्दको कहने लगे, कि वहांपर उपास्थित सब धनुर्द्वारी उनके उम विकट शब्दको सुनकर बहुतही कांपने लगे; और हाथी, घोड़े आदि सब वाहन मल मूत्र त्याग करने लगे । अनन्तर धनञ्जय अर्जुनने श्रीकृष्णचन्द्र

अनुज्ञातो निववृत्ते परिष्वज्य जनार्दनम् ॥ ५७ ॥

तेषु राजसु सर्वेषु निवृत्तेषु जनार्दनः ।

तूर्णमभ्यगमदृष्टः शैव्यसुग्रीववाहनः ॥ ५८ ॥

ते हया वासुदेवस्य दारुकेण प्रचोदिताः ।

पंथानमाचेमुरिव प्रसमाना इवांस्वरम् ॥ ५९ ॥

अथाऽपश्यन्महाबाहुर्कृष्णिध्वनि केशवः ।

ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानान्स्थितानुभयतः पथि ॥ ६० ॥

सोऽवतीर्य रथान्तूर्णमभिवाच्य जनार्दनः ।

यथावृत्तानृष्निं सर्वानभ्यभाषत पूजयन् ॥ ६१ ॥

कच्चिल्लोकेषु कुशलं कच्चिद्धर्मः स्वनुष्ठितः ।

ब्राह्मणानां त्रयो वर्णाः कच्चित्तिष्ठन्ति शासने ॥ ६२ ॥

तेभ्यः प्रयुज्य तां पूजां प्रोवाच मधुसूदनः ।

भगवंतः क संसिद्धाः का वीथी भवतामिह ॥ ६३ ॥

किं वा कार्यं भगवतामहं किं करवाणि वः ।

केनार्थेनोपसंप्राप्ता भगवंतो महीतलम् ॥ ६४ ॥

से यह वचन कहकर उनकी आज्ञा ले और उन्हें आलिङ्गन करके वहांसे लौट गये । ( ५४-५७ )

सब राजाओंके लौट जाने पर श्री-कृष्णचन्द्रजी शैव्य, सुग्रीव आदि चारों घोड़ोंसे युक्त रथपर चढ़के शीघ्रतासे हस्तिनापुरकी ओर चलने लगे । दारुक सारथीने उन घोड़ोंको इतनी शीघ्रतासे चलाया, कि वे घोड़े आकाशको खाते हुए मार्गको काटने लगे । ( ५८-५९ )

थोड़ी दूर जानेके अनन्तर महाबाहु कृष्णने मार्गमें कई एक महा ऋषियोंका दर्शन किया । वे लोग ब्रह्मतेजसे प्रकाशित होकर मार्गके उभय किनारे-

पर खड़े थे । जनार्दन श्रीकृष्णने रथसे शीघ्रही उतरकर उन महा तेजस्वी देव-र्षियोंको प्रणाम किया; और विधिके अनुसार उनकी पूजा करके बोले, कि हे देवर्षि लोग ! सम्पूर्ण लोकोंमें सब प्राणी कुशलसे तो हैं ? धर्मका अनुष्ठान उत्तम प्रकारसे होता तो है ? क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण ब्राह्मणोंके शासनके अनुसार कार्य करते तो हैं ? देवऋषियोंकी इस प्रकारसे पूजा करके श्रीकृष्ण चन्द्रने उनसे फिर पूछा, आप लोग कहाँसे आते हैं ? किस मार्गसे कहाँको जायेंगे ? आप लोगोंके मर्त्य लोकमें आनेका क्या कार्य उपास्थित हुआ है ?

तमब्रवीज्जामदग्न्य उपेत्य मधुसूदनम् ।  
 परिष्वज्य च गोविन्दं सुरासुरपतेः सखा ॥ ६५ ॥  
 देवर्षयः पुण्यकृतो ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ।  
 राजर्षयश्च दाशार्हं मानयन्तस्तपास्विनः ।  
 देवासुरस्य द्रष्टारः पुराणस्य महामते ॥ ६६ ॥  
 समेतं पार्थिवं क्षत्रं दिदृक्षन्तश्च सर्वतः ।  
 सभासदश्च राजानस्त्वां च सत्यं जनार्दनम् ॥ ६७ ॥  
 एतन्महत्प्रेक्षणीयं द्रष्टुं गच्छाम केशव ।  
 धर्मार्थसहिता वाचः श्रोतुमिच्छाम माधव ॥ ६८ ॥  
 त्वयोच्यमानाः कुरुषु राजमध्ये परन्तप ।  
 भीष्मद्रोणादयश्चैव विदुरश्च महामतिः ॥ ६९ ॥  
 त्वं च यादवशादूल सभायां वै समेक्ष्यथ ।  
 तव वाक्यानि दिव्यानि तथा तेषां च माधव ॥ ७० ॥

आप लोगोंका कौन सा कार्य मुझे पूरा  
 करना होगा, सो सब कहिये । ६०-६४  
 देवता और असुरोंके स्वामी पितामह  
 ब्रह्माके सखा परशुराम ऋषि, मधुसूदन  
 कृष्णकी इन बातोंको सुन कर उनके  
 समीप जा उन्हें आलिङ्गन करके बोले,  
 कि हे महातेजस्वी दशार्ह केशव ! प्राचीन  
 देव और असुरोंके सब वृत्तान्तोंको जा-  
 ननेवाले सम्पूर्ण पुण्यकर्मोंको करनेवाले  
 देवर्षि लोग, बहुत बातोंके जानने-  
 वाले ब्राह्मण लोग, महा तपस्वी  
 आदरके पात्र राजऋषि और सब दिशा-  
 ओंसे आके इकट्ठे हुए ब्राह्मण लोग  
 क्षत्रियोंके दर्शन करनेके निमित्त हस्ति-  
 नापुरको जा रहे हैं । हे कृष्ण ! जिस  
 सभामें अनेक बुद्धिमान सभासद बहुत

राजा लोग और सत्य स्वरूप तुम वि-  
 द्यमान रहोगे, वह जो उस समयमें  
 अत्यन्तही मनोहर तथा देखनेके योग्य  
 होगी, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है,  
 इससे हम सब लोग उसी देखने योग्य  
 सभाके निमित्त चले जाते हैं । (६५-६८)  
 हे परन्तप ! हे माधव ! इकट्ठी हुई  
 कौरवोंकी सभामें तुम धर्म और अर्थसे  
 भरे हुए जिन वचनोंको कहोगे, उसीको  
 सुननेकी इच्छासे हम लोग वहां जाते हैं।  
 भीष्म, द्रोण आदि साधु पुरुष, महाबुद्धि  
 मान विदुर और यदुवंशियोंके शिरोमणि  
 तुम, तथा सब लोक तुम्हारे सहित उस  
 सभामें उपस्थित रहेंगे । हे गोविन्द !  
 इससे तुम्हारी और उन लोगोंकी कही हुई  
 सत्य, हितकारी और सुन्दर वचनोंको

श्रोतुमिच्छाम गोविन्द सत्यानि च हितानि च ।

आपृष्टोऽसि महाबाहो पुनर्द्रक्ष्यामहे वयम् ॥ ७१ ॥

याह्यविघ्नेन वै वीर द्रक्ष्यामस्त्वां स भागतम् ।

आसीनमासने दिव्ये बलतेजःसमाहितम् ॥ ७२ ॥ [२८९४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतपर्वणि

श्रीकृष्णप्रस्थाने व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

वैशंपायन उवाच- प्रयातं देवकीपुत्रं परवीररुजो दश ।

महारथा महाबाहुमन्वयुः शस्त्रपाणयः ॥ १ ॥

पदातीनां सहस्रं च सादिनां च परंतप ।

भोज्यं च विपुलं राजन्प्रेष्याश्च शतशोऽपरे ॥ २ ॥

जनमेजय उवाच- कथं प्रयातो दाशार्हो महात्मा मधुसूदनः ।

कानि वा व्रजतस्तस्य निमित्तानि महौजसः ॥ ३ ॥

वैशंपायन उवाच- तस्य प्रयाणे यान्यासन्निमित्तानि महात्मनः ।

तानि मे शृणु सर्वाणि दैवान्यौत्पातिकानि च ॥ ४ ॥

अनभ्रेऽशनिनिर्घोषः सविद्युत्समजायत ।

सुननेकी हम लोगोंकी इच्छा है । हे महाबाहो ! जब तुम इस कार्यके निमित्त सभामें बुलाये जाओगे, तब हम लोग तुमसे फिर मिलेंगे । हे कृष्ण ! इस समय तुम विघ्नसे रहित होकर प्रस्थान करो; पीछे हम लोग भी जाकर तुम्हें सभामें असीम बल और प्रतापके सहित सुन्दर और दिव्य आसनके ऊपर बैठे हुए देखेंगे । ( ६८—७२ ) [ २८९४ ]

उद्योगपर्वमें तिरासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें चौरासी अध्याय ।

श्रीवैशंपायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय ! महाबाहु देवकीपुत्र श्रीकृष्ण-चन्द्रके जानेके समयमें दश महारथ एक

हजार सवार और बहुतसे पैदल तथा बहुतेरी खाने पीनेकी वस्तुओंको लेकर सैकड़ों सेवक उनके पीछे चलेथे । (१-२)

महाराज जनमेजय बोले, यदुकुल शिरोमणि महात्मा श्रीकृष्ण किस प्रकारसे गये ? किस प्रकारसे और कैसे सगुन तथा असगुनोंकी उस समयमें उत्पत्ति हुई थी ? (३)

श्रीवैशंपायन मुनि बोले, हे राजन् ! मैं इन सब वृत्तान्तोंको वर्णन करता हूं, आप सुनें । हे राजन् ! ( श्रीकृष्णचन्द्र जिस मार्गसे गये थे, उसे छोड़कर और सब स्थानोंमें ) आकाश बादलोंसे रहित होने पर भी बिजलीका चमकना और

अन्वगेव च पर्जन्यः प्रावर्षाद्विघने भृशम् ॥ ५ ॥

प्रत्यगृह्णन्महानद्यः प्राङ्मुखाः सिन्धुसप्तमाः ।

विपरीता दिशः सर्वा न प्राज्ञायत किंचन ॥ ६ ॥

प्राज्वलन्नग्रयो राजन्पृथिवी समकंपत ।

उदपानाश्च कुम्भाश्च प्राप्तिचञ्चलशो जलम् ॥ ७ ॥

तमःसंवृतमप्यासीत्सर्वं जगदिदं तथा ।

न दिशो नाऽदिशो राजन्प्रज्ञायन्ते स्म रेणुना ॥ ८ ॥

प्रादुरासीन्महाज्ज्वदः खे शरीरं न दृश्यते ।

सर्वेषु राजन्देशेषु तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ९ ॥

प्रामश्नाद्वास्तिनपुरं वातो दक्षिणपश्चिमः ।

आरुजन्गणशो वृक्षान्परुषोऽशनिनिःस्वनः ॥ १० ॥

यत्र यत्र च वाष्पेयो वर्तते पथि भारत ।

तत्र तत्र सुखो वायुः सर्वं चाऽऽसीत्प्रदक्षिणम् ॥ ११ ॥

ववर्ष पुष्पवर्षं च कमलानि च भूरिशः ।

समश्च पन्था निःदुःखो व्यपेतकुशकंटकः ॥ १२ ॥

बादलोंका गरजना सुनाई पडा था । मेघसे छूने आकाशमेंसे बिना बादलके ही अत्यन्त वर्षा होने लगी । सिन्धु आदि सप्त महा नदियां पूर्वसे पश्चिमकी ओर बहने लगीं । सब दिशाओंमें उलटे विषय दीखने लगे । उस समय कुछ भी मालूम न होता था । सब दिशाएं अधिक तेजसे भस्म होने लगीं और सब स्थानोंमें भूकम्प होने लगा । कुआं और बर्तन अकस्मात् मुहां मुंह भरकर कितने स्थानों पर जल गिराने लगे । ( ४-७ )

हे राजन् ! यह सब पृथ्वी उस समय धूलिसे पूरित होकर अन्धकारमें छिप गई थी; इससे किसी ओरके मार्गका

भी बोध नहीं होता था । सबही देशोंमें एक न एक आश्चर्यका विषय दीख पड़ने पर भी आकाशसे एक न एक भयंकर शब्द सुनाई देने लगा था । हस्तिनापुरके दक्षिण और पश्चिम ओर वायुने बड़े प्रचण्ड रूपसे चलकर सैकड़ों वृक्षोंको जड़से उखाड़ उखाड़ फेंक दिया और कितने स्थानोंको कंपा दिया । ८-१०

हे भारत ! श्रीकृष्णचन्द्रने जिन जिन स्थानोंमें मार्गमें निवास किया था, उन उन स्थानोंपर सब वस्तु उनके अनुकूल होगई थीं । शीतल, मन्द और सुगन्धसे भरी वायु चलने लगी, और आकाशसे कमल आदि फूलोंकी वर्षा

संस्तुनो ब्राह्मणैर्गीर्भिस्तत्र तत्र सहस्रशः ।  
 अर्च्यते मधुपर्कैश्च वसुभिश्च वसुप्रदः ॥ १३ ॥  
 तं किरंति महात्मानं वन्यैः पुष्पैः सुगंधिभिः ।  
 स्त्रियः पथि समागम्य सर्वभूतहिते रतम् ॥ १४ ॥  
 स शालिभवनं रम्यं सर्वसस्यसमाचितम् ।  
 सुखं परमधर्मिष्ठमभ्यगाद्भरतर्षभ ॥ १५ ॥  
 पश्यन्बहुपशून्ग्रामान् रम्यान् हृदयतोषणान् ।  
 पुराणि च व्यतिक्रामन्नाष्ट्राणि विविधानि च ॥ १६ ॥  
 नित्यं हृष्टाः सुमनसो भारतैरभिरक्षिताः ।  
 नोद्विग्नाः परचक्राणां व्यसनानामकोचिदाः ॥ १७ ॥  
 उपप्लव्यादथाऽऽगम्य जनाः पुरनिवासिनः ।  
 पथ्यतिष्ठन्त सहिता विष्वक्सेनदिदक्षया ॥ १८ ॥  
 ते तु सर्वे समायान्तमग्निमिद्धमिव प्रभुम् ।  
 अर्चयामासुरर्चां देशातिथिमुपस्थितम् ॥ १९ ॥

हुई थी। जिन मार्गोंसे श्रीकृष्णचन्द्रने  
 प्रस्थान किया था, वे सुन्दर पवित्र  
 और सुखसे भरे थे। उस मार्गमें कुश,  
 कांटे और कोई विघ्नकारी पदार्थ नहीं  
 थे। सब स्थानोंमें हजारों ब्राह्मण इकट्ठे  
 होकर धन देनेवाले कृष्णको अनेक  
 प्रकारके आशीर्वाद देकर उन्हें आन-  
 न्दित करते थे; और क्षत्रिय तथा वैश्य  
 लोग धन आदिकी भेंट देकर उनकी  
 यथा उचित पूजा और सम्मान करते  
 थे। (११-१३)

किसी किसी स्थानपर स्त्रियां झुण्ड-  
 की झुण्ड इकट्ठी होकर उन प्राणियोंके  
 हित करनेवाले भगवान् कृष्णके ऊपर  
 सुगंधसे भरी वन्य फूलोंकी वर्षा करती

थीं। हे भरतर्षभ ! श्रीकृष्णचन्द्र मार्गमें  
 हृदयको आनन्द देनेवाले अनेक हृष्टपुष्ट  
 पशुपक्षी और गांवों को देखते हुए  
 अनेक नगर और राज्योंको लांघकर, सब  
 सुखोंसे भरे और मनोहर शालिभवन नाम  
 स्थानमें आकर उपस्थित हुए। (१४-१६)

उनको देखनेकी इच्छासे आनन्दसे  
 युक्त, प्रसन्न चित्तवाले, भारतीयोंसे रक्षित  
 होनेसे जिनको कभी उद्वेग प्राप्त नहीं होता  
 और परचक्रके कारण प्राप्त होनेवाले  
 दुःखोंको जो जानते ही नहीं ऐसे अने-  
 क पुत्रवामी उपप्लव्य नगरसे आकर इक-  
 ट्ठे हुए थे। इस अवसरपर महा तेजस्वी  
 कृष्णको जलती हुई अग्निके समान  
 आया हुआ देखकर, उन लोगोंने विधि

वृकस्थलं समासाद्य केशवः परवीरहा ।  
 प्रकीर्णरठमावादित्ये व्योम्नि वै लोहितायति ॥ २० ॥  
 अवतीर्य रथात्तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि ।  
 रथमोचनमादिश्य संध्यामुपविवेश ह ॥ २१ ॥  
 दारुकोऽपि हयान्मुक्त्वा परिचर्य च शास्त्रतः ।  
 सुमोच सर्वयोक्त्रादि मुक्त्वा चैतानवासृजत् ॥ २२ ॥  
 अभ्यतीत्य तु तत्सर्वमुवाच मधुसूदनः ।  
 युधिष्ठिरस्य कार्यार्थमिह वत्स्यामहे क्षपाम् ॥ २३ ॥  
 तस्य तन्मतमाज्ञाय चक्रुरावसथं नराः ।  
 क्षणेन चाऽन्नपानानि गुणवंति समार्जयन् ॥ २४ ॥  
 तस्मिन्ग्रामे प्रधानास्तु य आमन्त्राह्वणा नृप ।  
 आर्याः कुलीना हीमंतो ब्राह्मी वृत्तिमनुष्ठिताः ॥ २५ ॥  
 तेऽभिगम्य महात्मानं हृषीकेशमरिंदमम् ।  
 पूजां चक्रुर्यथान्यायमाशीर्मंगलसंयुताम् ॥ २६ ॥  
 ते पूजयित्वा दाशार्हं सर्वलोकेषु पूजितम् ।

पूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रका अतिथि सत्कार  
 तथा पूजा की । अनन्तर सूर्यके अस्त  
 होनेके समय आकाशमें अरुणाई छाने-  
 पर श्रीकृष्णचंद्र वृकस्थलमें पहुंचकर  
 रथसे उतरे, और सारथीको रथसे घो-  
 डों को खोलनेकी आज्ञा देकर शौच  
 आदि कार्योंको समाप्त करके सन्ध्या  
 वन्दन किया । (१७-२१)

दारुक सारथीने भी रथसे घोडोंको  
 खोलकर शास्त्रविधिके अनुसार उनकी  
 परिचर्या की; और उनके अनन्तर घो-  
 डोंको पीठ परसे सब साजोंको उतार  
 दिया । सब कर्त्तव्य कर्मोंके समाप्त  
 होनेपर मधुसूदन कृष्ण बोले, कि युधि-

धिरके कार्यके निमित्त आज इसी स्थान  
 पर हम लोगोंको रात्रि बितानी होगी ।  
 सेवकोंने उनकी आज्ञाके अनुसार वहीं-  
 रप उनके बैठने योग्य सब वस्त्रोंको  
 बिछाकर क्षण भरमें सब गुणोंसे युक्त  
 अन्न और पान सम्पूर्ण रूपसे बनाकर  
 तैयार कर दिया । (२२-२४)

हे राजन् ! इस गांवमें जो सब  
 ब्राह्मण श्रेष्ठ, कुलीन, शीलसे युक्त और  
 यथार्थ ब्राह्मण वर्णके धर्मोंको करनेवाले  
 थे, उन सबोंने आकर श्रीकृष्णचन्द्रको  
 आशीर्वाद दिये, तथा मंगल सूचक  
 वचन कहते हुए उनकी पूजा की । वे लोग  
 सम्पूर्ण लोकोंमें पूजित यदुकुलभूषण

न्यवेदयंत वेदमानि रत्नवंति महात्मने ॥ २७ ॥

तान्प्रभुः कृतमित्युक्त्वा सत्कृत्य च यथार्हतः ।

अभ्येत्य चैषां वेदमानि पुनरायात्सहैव तैः ॥ २८ ॥

सुमृष्टं भोजयित्वा च ब्राह्मणांस्तत्र केशवः ।

भुक्त्वा च सह तैः सर्वैरवसत्तां क्षपां सुखम् ॥ २९ ॥ [२९२३]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्दानपर्वणि श्रीकृष्णप्रयाणे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

वैशंपायन उवाच—तथा दूतैः समाज्ञाय प्रयातं मधुसूदनम् ।

धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्भीष्ममर्चयित्वा महाभुजम् ॥ १ ॥

द्रोणं च संजयं चैव विदुरं च महामतिम् ।

दुर्योधनं सहाभात्यं हृष्टरोमाऽब्रवीदिदम् ॥ २ ॥

अद्भुतं महदाश्चर्यं श्रूयते कुरुनन्दन ।

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च कथयन्ति गृहे गृहे ॥ ३ ॥

सत्कृत्याऽऽचक्षते चाऽन्ये तथैवाऽन्ये समागताः ।

श्रीकृष्णचन्द्र की पूजा ही करके शान्त नहीं हुए, किन्तु अनेक रत्न और सुखोंसे भरे हुए अपने स्थानोंपर पधारनेके निमित्त श्रीकृष्णचन्द्रसे अत्यन्त प्रार्थना की । भक्तवत्सल श्रीकृष्णचन्द्रजी उनकी रुचि देख उन लोगोंके वचनमें प्रीतिपूर्वक सहमत हो उनके स्थानोंको गये; और उन लोगोंका सम्मान रखके उनके सहित फिर अपने निवासके स्थानपर लौट आये । अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र ने सुन्दर और उत्तम स्वादसे पूरित भोजन उन ब्राह्मणोंको अच्छी प्रकारसे जिमाया और उनके संग आप भी भोजन किया; और सबके सहित परम सुखसे सारी रात्रि बितायी । (२५-२९) २९, २३

उद्योगपर्वमें चौरासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें पचासी अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इधर राजा धृतराष्ट्र दूतोंके मुंहसे श्रीकृष्णचन्द्रके आगमनकी बात सुन गद्गद होकर महाभुज भीष्म, द्रोण, संजय और महा बुद्धिमान् विदुरसे आदरके सहित बात चीत करते हुए इष्ट मित्रोंके सहित दुर्योधनसे बोले, हे कुरुनन्दन ! सब ओर एक महा आश्चर्यका विषय सुनाई पड़ता है । हर एक घरमें स्त्री, बूढ़े और बालक यह कहते हैं, “महा पराक्रमी यदुपति श्रीकृष्ण पाण्डवोंके कार्य साधन के निमित्त इस स्थानपर आवेंगे ।” निज नगरवासी और आये हुए विदेशी पुरुष सबही अत्यन्त आदरके सहित इस वचनका अनुमोदन करते हैं; हाट,



पृथग्वादाश्च वर्तन्ते चत्वरेषु सभासु च ॥ ४ ॥

उपायास्यति दाशार्हः पांडवार्थे पराक्रमी ।

स नो मान्यश्च पूज्यश्च सर्वथा मधुसूदनः ॥ ५ ॥

तस्मिन्नि यात्रा लोकस्य भूतानामीश्वरो हि सः ।

तस्मिन्धृतिश्च वीर्यं च प्रज्ञा चौजश्च माधवे ॥ ६ ॥

स मान्यतां नरश्रेष्ठः स हि धर्मः सनातनः ।

पूजितो हि सुखाय स्यादसुखः स्यादपूजितः ॥ ७ ॥

स चेत्तुष्यति दाशार्ह उपचारैररिंदम ।

कृष्णात्सर्वानभिप्रायान्प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥ ८ ॥

तस्य पूजार्थमद्यैव संविधत्स्व परंतप ।

सभाः पथि विधीयन्तां सर्वकामसमन्विताः ॥ ९ ॥

यथा प्रीतिर्महाबाहो त्वयि जायेत तस्य वै ।

तथा कुरुष्व गांधारे कथं वा भीष्म मन्यसे ॥ १० ॥

ततो भीष्मादयः सर्वे धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।

बाट, चौराहे और सभाओंमें उनके विषयमें वादानुवाद हो रहा है । (१-४)

पांडवोंके कार्य साधनके लिये यहां आनेवाले मधुसूदन कृष्ण जो हम लोगों के सब प्रकारसे माननीय और पूजा करनेके योग्य हैं, इसमें किञ्चित मात्र भी सन्देह नहीं है । वह सब जीवोंके ईश्वर धृति, क्षमा, वीर्य और बुद्धिके आधार स्थान हैं । उनसे यह सारा संसार और लोक यात्रा प्रतिष्ठित है । इससे उन्हीं पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके निमित्त सम्मान दिखाओ क्यों कि उन्हींमें सनातन धर्म विराजमान है । वह पूजित होनेपर जैसे सुखके देनेवाले होते हैं, वैसे ही पूजा न पानेपर भी दुःखके

कारण हो जाते हैं । हे शत्रुनाशन ! याद-वेन्द्र कृष्ण यदि विधिपूर्वक सेवासे हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न होंगे, तो सब राजाओंके बीचमें सम्पूर्ण रूपसे मेरे सब कार्योंकी सिद्धि होगी । (५-८)

हे परन्तप ! इससे तुम आजही उनकी पूजाके योग्य सब वस्तु इकट्ठी करो । मागोंके बीचमें सब प्रकारसे उत्तम सामग्रियोंसे युक्त सभाएं बनवा दो । हे महाबाहो दुर्योधन ! जिसमें तुम्हारे ऊपर उनकी प्रीति उत्पन्न हो, तुम वैसेही कार्योंका अनुष्ठान करो । हे भीष्म ! इसमें आप लोगोंकी क्या सम्मति है ? (९-१०)

अनन्तर भीष्म आदि सब राजाओंने

ऊचुः परममित्येवं पूजयंतोऽस्य तद्वचः ॥ ११ ॥  
 तेषामनुमतं ज्ञात्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।  
 सभावास्तूनि रम्याणि प्रदेष्टुमुपचक्रमे ॥ १२ ॥  
 ततो देशेषु देशेषु रमणीयेषु भागशः ।  
 सर्वरत्नसमाकीर्णाः सभाश्चकुरनेकशः ॥ १३ ॥  
 आसनानि विचित्राणि युतानि विविधैर्गुणैः ।  
 स्त्रियो गंधानलंकारान्सूक्ष्माणि वसनानि च ॥ १४ ॥  
 गुणवंत्यन्नपानानि भोज्यानि विविधानि च ।  
 माल्यानि च सुगंधीनि तानि राजा ददौ ततः ॥ १५ ॥  
 विशेषतश्च वासार्थं सभां ग्रामे वृकस्थले ।  
 विदधे कौरवो राजा बहुरत्नां मनोरमाम् ॥ १६ ॥  
 एतद्विधाय वै सर्वं देवार्हमतिमानुषम् ।  
 आचख्यौ धृतराष्ट्राय राजा दुर्योधनस्तदा ॥ १७ ॥  
 ताः सभाः केशवः सर्वा रत्नानि विविधानि च ।

धृतराष्ट्रके इस वचनकी प्रशंसा करके कहा, “ यह अत्यन्त कर्तव्य कर्म है”। तब दुर्योधनने उन सब लोगोंका अभिप्राय अच्छी प्रकारसे जानकर यथा उचित मार्गके स्थानोंमें रमणीय और सुन्दर सभा बनानेकी आज्ञा दे दी। आज्ञा पातेही नौकरोंने सब मार्गके मनोहर स्थानोंमें विभागके क्रमसे सब रत्नोंसे युक्त अनेक सभाएं बना कर तैयार कर दीं। ( ११-१३ )

राजा दुर्योधनने उन सबकी शोभा बढ़ानेके निमित्त हर एक प्रकारके उत्तम और मनोहर आसन, नेत्रोंको आनन्द देनेवाली बहुतसी प्रमदा स्त्रियां, अच्छी अच्छी सुगन्धित वस्तु, उत्तम प्रकारके

गहने, महीन और सुन्दर वस्तुएं, सुगन्धसे युक्त उत्तम फूलोंकी माला, रससे युक्त अन्न पान और दूसरी अनेक प्रकार की भोजनकी उत्तम वस्तुएं प्रदान की। यद्यपि कौरवराज दुर्योधनने जगह जगह इसी प्रकारकी अनेक सभाएं तैयार करवाई थीं; तौभी कृष्णके निवासके निमित्त अच्छी प्रकारसे विशेष यत्नपूर्वक वृकस्थल गांवमें अनेक रत्नोंसे युक्त एक बहुत ही सुन्दर और रमणीय सभा तैयार करवाई थी। ( १४-१६ )

राजा दुर्योधनने यह सब अमानुष और देवभोग्य सभाएं और समस्त कार्योंको पूर्ण करके महाराज धृतराष्ट्रको संवाद दिया। दाशार्ह श्रीकृष्णचन्द्र

असमीक्ष्यैव दाशार्ह उपायात्कुरुसद्य तत् ॥ १८ ॥ [ २९४१ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

मार्गे सभानिर्माणे पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- उपप्लव्यादिह क्षत्तरूपायातो जनार्दनः ।

वृकस्थले निवसति स च प्रातरिहैष्यति ॥ १ ॥

आहुकानामधिपतिः पुरोगः सर्वसात्वताम् ।

महामना महावीर्यो महासत्वो जनार्दनः ॥ २ ॥

स्फीतस्य वृष्णिराष्ट्रस्य भर्ता गोप्ता च माधवः ।

त्रयाणामपि लोकानां भगवान्प्रपितामहः ॥ ३ ॥

वृष्ण्यंधकाः सुमनसो यस्य प्रज्ञासुपासते ।

आदित्या वसवो रुद्रा यथा बुद्धिं बृहस्पतेः ॥ ४ ॥

तस्मै पूजां प्रयोक्ष्यामि दाशार्हाय महात्मने ।

प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तां मे कथयतः शूण ॥ ५ ॥

एकवर्णैः सुकलृपांगैर्बाह्विजातैर्हयोत्तमैः ।

जो उन सब सभा और विविध रत्नगठित वस्तुओंकी ओर आंखसे भी न देखकर कौरवोंके स्थान हस्तिनापुरके समीप आ पहुंचे । ( १७—१८ ) [ २९४१ ]

उद्योगपर्वमें पंचासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें छियासी अध्याय ।

इधर राजा धृतराष्ट्र विदुरको सम्बोधन करके कहने लगे, इस समय वासुदेव कृष्ण विराट नगरसे इस स्थानको आ रहे हैं, आज वृकस्थलमें निवास कर रहे हैं, और कल यहांपर आकर उपस्थित होंगे । वह आहुकवंशीय सम्पूर्ण यदुवंशीयोंके स्वामी, महा बुद्धिमान् महावीर्य, और तेज तथा पराक्रमसे पूरित हैं । इतने बड़े यदुवंशीयोंके राज्यके वही

एक मात्र स्वामी और उन लोगोंकी रक्षा करनेवाले हैं । केवल यदुवंशीयोंके राज्यका ही क्यों ? वह भगवान् कृष्ण इस समस्त पृथ्वी तथा तीनों लोकके ही प्रतिपालक हैं । आदित्य, वसु और रुद्र लोग जिस प्रकारसे बृहस्पतिकी बुद्धि अवलम्बन करते हैं, वैसेही यदुवंशी और अन्धकवंशी सब लोग कृष्णकी बुद्धिकी उपासना करते हुए सब कार्य करते हैं । ( १-४ )

हे धर्मके जाननेवाले ! इसलिए जिस भांति उनकी पूजा करनी होगी, वह मैं तुमसे कहता हूं, उसे सुनो । मैं उनको ब्राह्मिक देशके उत्पन्न हुए अच्छी प्रकारके साजोंसे सजाये हुए एकही

चतुर्युक्तान् रथांस्तस्मै रौक्मान् दास्यामि षोडश ॥ ६ ॥

नित्यप्रभिन्नान् भातंगानीषादन्तान् प्रहारिणः ।

अष्टानुचरमेकैकमष्टौ दास्यामि कौरव ॥ ७ ॥

दासीनामप्रजातानां शुभानां रुक्मवर्चसाम् ।

शतमस्मै प्रदास्यामि दासानामपि तावताम् ॥ ८ ॥

आविकं च सुखस्पर्शं पार्वतीयैरूपाहनम् ।

तदप्यस्मै प्रदास्यामि सहस्राणि दशाष्ट्र च ॥ ९ ॥

अजिनानां सहस्राणि चीनदेशोद्भवानि च ।

तान्यप्यस्मै प्रदास्यामि यावदर्हति केशवः ॥ १० ॥

दिवा रात्रौ च भात्येष सुतेजा विमलो मणिः ।

तमप्यस्मै प्रदास्यामि तमर्हति हि केशवः ॥ ११ ॥

एकेनाऽभिपतत्यहा योजनानि चतुर्दश ।

यानमश्वतरीयुक्तं दास्ये तस्मै तदप्यहम् ॥ १२ ॥

यावन्ति वाहनान्यस्य यावन्तः पुरुषाश्च ते ।

ततोऽष्टगुणमप्यस्मै भोज्यं दास्याम्यहं सदा ॥ १३ ॥

मम पुत्राश्च पौत्राश्च सर्वे दुर्योधनादृते ।

वर्णके चार चार घोडोंसे युक्त सुवर्ण-  
मय सोलह रथ, सुन्दर सफेद दांतोंसे  
युक्त मतवाले और प्रहार करनेमें बलवान  
आठ हाथी, उन एक एक हाथियोंके  
सङ्ग आठ आठ सेवक, सुवर्णके समान  
वर्ण, सुन्दर नेत्र और जिनको संतान  
उत्पन्न नहीं हुई ऐसी एक सौ दासी  
और अनेक दास दूंगा । ( ६-८ )

इसके आतिरिक्त पहाड़ी लोगोंके  
बनाये हुए अठारह हजार अच्छे कोमल  
और चित्रित कम्बल दूंगा; और चीन  
देशकी उत्पन्न हुई एक हजार मृगछाला  
तथा दूसरी वस्तुएं जो उन्हें प्रिय

होंगी, प्रदान करूंगा । मेरे भण्डारमें  
जो उत्तम प्रभासे पूरित एक बहुत  
सुन्दर और स्वच्छ मणि है, वह भी  
उन्हींके उपहार स्वरूप प्रदान करूंगा ।  
क्योंकि वे ही उसके निमित्त यथार्थ  
तथा योग्य पात्र हैं । ( ९-११ )

और भी अश्वतरीसे युक्त जो रथ  
एक दिनमें चौदह योजन तक जा सक-  
ता है, मैं उसे भी उन्हींके समर्पण  
करूंगा; उनके सङ्गमें जितने वाहन  
और सेवक हैं, उनके आठगुणी परिमा-  
णसे खाने पीनेकी वस्तु तैयार करा  
दूंगा । केवल दुर्योधनको छोड़कर मेरे

प्रत्युद्यास्यन्ति दाशार्हं रथैर्मृष्टैः स्वलंकृताः ॥ १४ ॥  
 स्वलंकृताश्च कल्याण्यः पादैरेव सहस्रशः ।  
 वारमुख्या महाभागं प्रत्युद्यास्यन्ति केशवम् ॥ १५ ॥  
 नगरादपि याः काश्चिद्गमिष्यन्ति जनार्दनम् ।  
 द्रष्टुं कन्याश्च कल्याण्यस्ताश्च यास्यन्त्यनावृताः ॥ १६ ॥  
 सस्त्रीपुरुषबालं च नगरं मधुसूदनम् ।  
 उदीक्षतां महात्मानं आनुमन्तमिव प्रजाः ॥ १७ ॥  
 महाध्वजपताकाश्च क्रियन्तां सर्वतोदिशः ।  
 जलावसिक्तो विरजाः पन्थास्तस्येति चाऽन्वशात् ॥ १८ ॥  
 दुःशासनस्य च गृहं दुर्योधनगृहाद्वरम् ।  
 तदद्य क्रियतां क्षिप्रं सुसंमृष्टमलंकृतम् ॥ १९ ॥  
 एतद्धि रुचिराकारैः प्रासादैरुपशोभितम् ।  
 शिवं च रमणीयं च सर्वतु सुमहाधनम् ॥ २० ॥  
 सर्वमस्मिन्गृहे रत्नं मम दुर्योधनस्य च ।

सब पुत्र पौत्र लोग उत्तम वस्त्र तथा  
 भूषणोंसे भूषित होकर सुन्दर और  
 मनोहर रथोंपर बैठके यदुपति कृष्णकी  
 अगवानीके निमित्त जायेंगे । १२-१४

सब प्रकारके अलङ्कारोंसे शोभित  
 हजारों वाराङ्गनाएं पैदल ही जाकर  
 श्रीकृष्णकी अगवानी करेंगी । नगरसे  
 भी जो सब कल्याणकी देनेवाली  
 कन्याएं कृष्णको देखनेके निमित्त जायं-  
 गी, वे सब विना आवरणके ही गमन  
 करेंगी । अधिक और क्या कहूं, प्रजा  
 लोग जैसे प्रातः काल के उगे हुए सूर्य-  
 को आनन्दित होके देखते हैं; वैसेही  
 यदुपति कृष्णको भी स्त्री, पुरुष, बालक  
 बालिका और सम्पूर्ण लोग आनन्दित

तथा हर्षसे युक्त होकर अच्छी प्रकारसे  
 देखें । ( १५-१७ )

सेवक लोग हमारी आज्ञाके अनु-  
 सार मार्गोंको ध्वजा और पताकाओंसे  
 पूरित करें; और जिस मार्गसे श्रीकृष्ण-  
 चन्द्र आवेंगे, उसे जल छिडकके धूलिसे  
 रहित करें । दुर्योधनके घरसे दुःशासन  
 का भवन बहुतही प्रशंसाके योग्य है,  
 इससे शीघ्रही वह साफ करके उत्तम  
 भूषणोंसे भूषित कराया जावे । यह  
 बहुत बड़ा स्थान अत्यन्त रुचिकर  
 और सुन्दर, शोभायमान, सब समयमें  
 ही शुभ लक्षणोंसे युक्त और रमणीय  
 है ? इसी घरमें मेरे और दुर्योधनके  
 सब रत्न हैं; उनमें जो जो श्रीकृष्णचन्द्र

यद्यदर्हति वाष्ण्यस्तत्तद्देयमसंशयम् ॥ २१ ॥ [ २९६२ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्वाक्ये

धृतराष्ट्रवाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

विदुर उवाच — राजन्बहुमतश्चाऽसि त्रैलोक्यस्याऽपि सत्तम ।

संभावितश्च लोकस्य संमतश्चाऽसि भारत ॥ १ ॥

यत्त्वमेवंगते ब्रूयाः पश्चिमे वयसि स्थितः ।

शास्त्राद्वा सुप्रनर्काद्वा सुस्थिरः स्थविरो ह्यसि ॥ २ ॥

लेखा शशिनि भाः सूर्ये महोर्मिरिव सागरे ।

धर्मस्त्वयि तथा राजन्निति व्यवसिताः प्रजाः ॥ ३ ॥

सदैव भावितो लोको गुणौघैस्तव पार्थिव ।

गुणानां रक्षणे नित्यं प्रयतस्व सबान्धवः ॥ ४ ॥

आर्जवं प्रतिपद्यस्व मा बाल्याद्बहु नीनशः ।

राजन्पुत्रांश्च पौत्रांश्च गृहदश्चैव सुप्रियान् ॥ ५ ॥

यत्त्वमिच्छसि कृष्णाय राजन्नतिथये बहु ।

के देने योग्य होंगे, उन सबको निःसन्देह  
उन्हें प्रदान करना होगा । ( १८-२१ )

उद्योगपर्वमें छियासी अध्याय । [ २९६२ ]

उद्योगपर्वमें सतासी अध्याय ।

विदुर बोले, हे राजन् ! हमारी बात  
दूर रहे, आप तीनों लोकमें भी बुद्धिमान  
प्रसिद्ध हैं । बहुत ही सत्कार्यों के करनेसे  
आप सब लोकों के सम्मान करनेवाले  
तथा प्रीतिके पात्र हैं । ऐसी अवस्थामें  
आप बड़ी हुई दशामें स्थित रहकर जो  
कुछ वचन कहते हैं, वह शास्त्र और सब  
विचारसे युक्त होगा, यही सम्भव होता  
है; क्योंकि आप स्थिरबुद्धि और बूढ़े  
हैं । हे राजन् ! प्रजाओं के बीचमें सब  
लोगोंने इस बातको निश्चय कर रक्खा

है, कि चन्द्रकी रेखा, सूर्यकी रोशनी,  
समुद्रकी तरङ्ग जैसे सदाही विद्यमान  
रहती है; आपमें धर्म भी वैसेही सदा  
विद्यमान रहता है । ( १-३ )

हे राजेन्द्र ! आपके गुणोंसे मनुष्य  
लोग बढ़ते चले आते हैं; इससे बन्धुवा-  
न्धवोंसे सहित आप इन गुणोंकी रक्षा  
करनेमें यत्नवान रहिये । हे महाराज !  
आप सरलताको अवलम्बन कीजिये,  
और अज्ञानमें फंसकर पुत्र तथा पौत्रों-  
को नष्ट न कराइये । हे राजेन्द्र ! आप  
अभ्यागत कृष्णको जो यह सब बहुतसे  
धनोंको प्रदान करनेकी अभिलाषा कर-  
ते हैं, वह बात तो दूर रहे, उसके अ-  
तिरिक्त इस सम्पूर्ण पृथ्वी को भी देने-

एतदन्यच्च दाशार्हः पृथिवीमपि चाऽर्हति ॥ ६ ॥  
 न तु त्वं धर्ममुद्दिश्य तस्य वा प्रियकारणात् ।  
 एतदित्ससि कृष्णाय सत्येनाऽऽत्मानमालभे ॥ ७ ॥  
 मायैषा सत्यमेवैतच्छब्दौतडूरिदक्षिण ।  
 जानामि त्वन्मतं राजन्गूढं बाह्येन कर्मणा ॥ ८ ॥  
 पञ्च पञ्चैव लिप्स्यन्ति ग्रामकान्पाण्डवा नृप ।  
 न च दित्ससि तेभ्यस्तांस्तच्छमं न करिष्यसि ॥ ९ ॥  
 अर्थेन तु महाबाहुं वाष्ण्यं त्वं जिहीर्षसि ।  
 अनेन चाप्युपायेन पाण्डवेभ्यो विभेत्स्यसि ॥ १० ॥  
 न च वित्तेन शक्योऽसौ नोद्यमेन न गर्हया ।  
 अन्यो धनञ्जयात्कर्तुमेतत्तत्त्वं ब्रवीमि ते ॥ ११ ॥  
 वेद कृष्णस्य माहात्म्यं वेदाऽस्य दृढभक्तिताम् ।  
 अत्याज्यमस्य जानामि प्राणैस्तुल्यं धनञ्जयम् ॥ १२ ॥

के वह पात्र हैं । (४-६)

मैं शरीरको स्पर्श करके यह सत्य वचन कहता हूँ, कि केवल धर्मके उद्देश्य अथवा श्रीकृष्णकी प्रीतिको साधन करनेके निमित्त आपको ऐसा इच्छा नहीं हुई है। हे बहुतसी वस्तुओंके देनेवाले ! इस प्रकारकी बहुतसी वस्तुओंके दान करनेके सङ्कल्पसे केवल छल, असत्य और कपटका ही प्रकाश होता है। इन बाहरी कर्मोंको देखकर ही मैं आपके भीतरके गूढ अभिप्रायको मालूम कर रहा हूँ। हे राजन् ! पाण्डव लोग पाँचों भाई केवल पाँच गाँव पानेहीकी अभिलाषा करते हैं, परन्तु उन लोगोंको आप वह पाँच गाँव भी देनेकी इच्छा नहीं करते हैं, तब फिर

कौन शान्तिको स्थापित कर सकता है ? (७-९)

आप धनसे श्रीकृष्णको अपनी ओर किया चाहते हैं; और इसी उपायसे उनको आप पाण्डवोंसे पृथक् किया चाहते हैं, यही आपकी इच्छा है, परन्तु मैं आपसे यही एक सार वचन कहता हूँ, कि वह धन, रत्न और पूजा आदि किसी उपायसे भी अर्जुनसे पृथक् नहीं हो सकते हैं। कृष्णकी कृपा-परायणता और अर्जुनकी उन पर दृढ-भक्ति मुझे अच्छी प्रकारसे मालूम है, इस निमित्त प्राणके समान प्रिय अर्जुनको जो कृष्ण कभी भी परित्याग नहीं कर सकते, यह मुझे विशेष रूपसे मालूम है । (१०-१२)

अन्यत्कुम्भादपां पूर्णादन्यत्पादावसेचनात् ।

अन्यत्कुशलसम्प्रश्नान्नैवेक्ष्यति जनार्दनः ॥ १३ ॥

यत्त्वस्य प्रियमातिथ्यं मानार्हस्य महात्मनः ।

तदस्मै कियतां राजन्मानार्होऽसौ जनार्दनः ॥ १४ ॥

आशंसमानः कल्याणं कुरुनभ्येति केशवः ।

येनैव राजन्नर्थेन तदेवाऽस्मा उपाकुरु ॥ १५ ॥

शममिच्छति दाशार्हस्तव दुर्योधनस्य च ।

पाण्डवानां च राजेन्द्र तदस्य वचनं कुरु ॥ १६ ॥

पिताऽसि राजन्पुत्रास्ते वृद्धस्त्वं शिशवः परे ।

वर्तस्व पितृवत्तेषु वर्तन्ते ते हि पुत्रवत् ॥ १७ ॥ [ २९७९ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्गीतानपर्वणि  
विदुरवाक्ये सप्तशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

दुर्योधन उवाच- यदाह विदुरः कृष्णे सर्वं तत्सत्यमच्युते ।

अनुरक्तो ह्यसंहार्यः पार्थान्प्रति जनार्दनः ॥ १ ॥

हे राजेन्द्र ! आपके सहस्र प्रकारसे उद्योग करने पर भी जनार्दन कृष्ण केवल जलसे भरे हुए पात्र, पैर धोने और कुशल क्षेम पूछनेके अतिरिक्त किसी वस्तुके लिये न प्रार्थना करेंगे और न स्वीकार ही करेंगे । हे राजन् ! इससे उस मानके पात्र महात्मा श्रीकृष्णको जिस प्रकारका अतिथि-सत्कार प्यारा है, वही तुम पूरा करो वह सम्मान करनेके योग्य पात्र हैं । हे राजसत्तम ! श्रीकृष्ण-चन्द्र कौरवोंके कल्याणकी इच्छासे जिस कार्यके निमित्त कौरवोंके समीप आवेंगे; वही उनको प्रदान कीजिये । (१३-१५)

कृष्णकी यही इच्छा है, कि आपके दुर्योधन और पाण्डवोंके बीचमें सन्धि

स्थापित हो । हे राजन् ! इससे आप पाण्डवोंके पिता हैं, वे लोग तुम्हारे पुत्र हैं; आप बूढ़े और वे लोग बालक हैं, इससे जब वे लोग आपके सङ्ग पुत्रोंके समान सम्पूर्ण आचरणोंको करनेमें प्रवृत्त हैं, तब आपभी उन लोगोंके सङ्ग पिताके समान ही व्यवहार कीजिये । (१६-१७) [ २९७९ ]

उद्योगपर्वमें सत्तासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें अठासी अध्याय ।

दुर्योधन बोले, विदुरने कृष्णके विषयमें जो सब वचन कहे, वे सब ही सत्य हैं । जनार्दन कृष्ण पाण्डवों पर जैसे अनुरक्त हैं, उससे पाण्डवोंके सङ्ग उनका भेद कराना बहुतही कठिन



यत्तत्सत्कारसंयुक्तं देयं वसु जनार्दने ।

अनेकरूपं राजेन्द्र न तदेयं कदाचन ॥ २ ॥

देशः कालस्तथाऽयुक्तो नहि नाऽर्हति केशवः ।

संस्यत्यधोक्षजो राजन्भयादर्चति मामिति ॥ ३ ॥

अवमानश्च यत्र स्यात्क्षत्रियस्य विशाम्पते ।

न तत्कुर्याद् बुधः कार्यमिति मे निश्चिता मतिः ॥ ४ ॥

स हि पूज्यतमो लोके कृष्णः पृथुलोचनः ।

त्रयाणामपि लोकानां विदितं मम सर्वथा ॥ ५ ॥

न तु तस्मै प्रदेयं स्यात्तथा कार्यगतिः प्रभो ।

विग्रहः समुपारब्धो न हि शाम्यत्यविग्रहात् ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मः कुरुपितामहः ।

वैचित्रवीर्यं राजानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

सत्कृतोऽसत्कृतो वाऽपि न क्रुद्धयेत जनार्दनः ।

नाऽलमेनमवज्ञातुं नाऽवज्ञेयो हि केशवः ॥ ८ ॥

कार्य है। हे राजेन्द्र ! इससे आप जो उनके सत्कार और सम्मानके निमित्त, नाना प्रकारके धनको देनेका सङ्कल्प कर रहे हैं, वह कभी देनेके योग्य नहीं है। श्रीकृष्ण अवश्यही इन सब वस्तुओंके देनेके पात्र हैं, यह ठीक है, परन्तु वह कार्य इस समय देश और कालके अनुसार अयोग्य है। हे राजन् ! कृष्ण समझेंगे, कि “ये लोग भयभीत होकर यह सब वस्तु मुझे प्रदान कर रहे हैं।” (१—३)

हे पृथ्वीनाथ ! मेरा इस प्रकार निश्चय है, कि जिस कार्यमें अवमानकी सम्भावना हो, वह बुद्धिमान् क्षत्रियोंको कभी करना उचित नहीं है। सब लो-

कोंमें श्रेष्ठ वह विशालनयन श्रीकृष्ण तीनों लोकमें पूजा पानेके योग्य हैं, यह मुझे सदासे ही मालूम है। परन्तु हे नरनाथ ! कार्यकी गतिके अनुसार उनको इस समय कोई भी उपहार नहीं दिया जा सकता। जब युद्धका सामान किया जा रहा है, तब बिना युद्धके वह कैसे निवारण हो सकता है ? (४-६)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कौरवोंके पितामह भीष्म दुर्योधनके इस वचनको सुनकर विचित्रवीर्यके पुत्र धृतराष्ट्रसे यह वचन बोले, कि तुम लोग जनार्दन कृष्णका सत्कार करो, चाहे सत्कार न करो; इससे वह तनिक भी क्रुद्ध न होंगे; परन्तु किसी प्रकारसे भी तुम

यत्तु कार्यं महाबाहो मनसा कार्यतां गतम् ।  
 सर्वोपायैर्न तच्छक्यं केनचित्कर्तुमन्यथा ॥ ९ ॥  
 स यद् ब्रूयान्महाबाहुस्तत्कार्यमविशङ्कया ।  
 वासुदेवेन तीर्थेन क्षिप्रं संशाम्य पाण्डवैः ॥ १० ॥  
 धर्म्यमर्थ्यं च धर्मात्मा ध्रुवं वक्ता जनार्दनः ।  
 तस्मिन्वाच्याः प्रिया वाचो भवता बान्धवैः सह ॥ ११ ॥  
 दुर्योधन उवाच- न पर्यायोऽस्ति यद्राजजिभ्रयं निष्केवलामहम् ।  
 तैः सहेमामुपाश्रियां यावज्जीवं पितामह ॥ १२ ॥  
 इदं तु सुमहत्कार्यं शृणु मे यत्समर्थितम् ।  
 परायणं पाण्डवानां नियच्छामि जनार्दनम् ॥ १३ ॥  
 तस्मिन्बद्धे भविष्यन्ति वृष्णयः पृथिवी तथा ।  
 पाण्डवाश्च विधेया मे स च प्रातरिहैष्यति ॥ १४ ॥  
 अत्रोपायान्यथा सम्यङ् न बुद्ध्येत जनार्दनः ।

लोग उनकी विरुद्धता नहीं कर सकोगे; श्रीकृष्ण अवमानको सहनेके पात्र नहीं हैं। हे महाबाहो ! उन्होंने अपने मनमें जिस कार्यको करनेका निश्चय किया है, सब भांतिसे उपाय करने पर भी कोई पुरुष उनकी बुद्धिको विचलित नहीं कर सकता। इससे वह वीरश्रेष्ठ कृष्ण जो कुछ वचन कहें, उसीको संशयसे रहित होकर पूजा करो, श्रीकृष्णके सच्चे और हितकर उपदेशोंको मानकर पाण्डवोंके साथ सन्धि करनेके निमित्त यत्न करो। हे राजन् ! महात्मा जनार्दन जो कुछ वचन कहेंगे, वह निश्चय ही धर्म और अर्थसे युक्त होगा, इससे तुम लोगोंका सबसे उत्तम कर्त्तव्य कार्य यही है, कि सब कोई मिलकर उनके निकट उनके

प्रिय वचन ही कहना। ( ७-११ )

दुर्योधन बोले, हे पितामह ! मैं यह सम्पूर्ण राजलक्ष्मी पाण्डवोंके सङ्ग बांटकर जन्म भर सम्भोग करूँ, यह किसी प्रकारसे भी युक्त नहीं हो सकता। इस निमित्त युक्तिसे अपने मनमें एक बहुत भारी कार्यका मैंने निश्चय किया है, उसे सुनिये। मैंने अपने मनमें यह निश्चय किया है, कि पाण्डवोंकी परम गति कृष्णको यहांपर कैद कर रखूंगा। कृष्णके कैद होनेपर सम्पूर्ण यदुवंशी, पाण्डव लोग, तथा समस्त पृथ्वीके मनुष्य और राजा लोग भी मेरे वशमें हो जायेंगे। इससे आप मुझे कोई ऐसी युक्ति बतलाईये जिससे जनार्दन कृष्ण सेवरे यहां पर आकर निश्चित किये हुए

न चाऽपायो भवेत्कश्चित्तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ १५ ॥  
 वैशम्पायन उवाच-तस्य तद्वचनं श्रुत्वा घोरं कृष्णाभिसंहितम् ।  
 धृतराष्ट्रः सहामात्यो व्यथितो विमनाऽभवत् ॥ १६ ॥  
 ततो दुर्योधनमिमं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्वचः ।  
 मैवं वोचः प्रजापाल नैष धर्मः सनातनः ॥ १७ ॥  
 दूतश्च हि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्च नः ।  
 अपापः कौरवेयेषु स कथं बन्धमर्हति ॥ १८ ॥  
 भीष्म उवाच- परीतस्तव पुत्रोऽयं धृतराष्ट्र सुमन्दधीः ।  
 वृणोत्यनर्थं नैवासर्थं याच्यमानः सुहृज्जनैः ॥ १९ ॥  
 इममुत्पथि वर्तन्तं पापं पापानुबन्धनम् ।  
 वाक्यानि सुहृदां हित्वा त्वमप्यस्याऽनुवर्तसे ॥ २० ॥  
 कृष्णमक्लिष्टकर्माणमासाद्याऽयं सुदुर्मतिः ।  
 तव पुत्रः सहामात्यः क्षणेन न भविष्यति ॥ २१ ॥

इस मेरे कैद करनेके उपायको किसी प्रकारसे जान न सकें; और उस कार्यके करनेमें हम लोगोंका कोई नुकसान भी न होने पावे । (१२-१५)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले कृष्णको बांधनेके विषयमें दुर्योधनके ऐसे महा घोर और कठोर वचनको सुनकर राजा धृतराष्ट्र इष्ट-मित्रोंके सहित अत्यन्त ही पीडित और दुःखित हुए । अनन्तर उन्होंने उससे यह वचन कहा, हे प्रजापालक ! तुम कभी ऐसे वचनोंको मत कहना; यह सनातन धर्मके अनुकूल नहीं है । श्रीकृष्णचन्द्र एक तो दूत होकर आ रहे हैं, दूसरे हम लोगोंके सम्बन्धी और सदासे प्रीतिके पात्र हैं; विशेष करके उन्होंने कभी कौरवोंके

सङ्ग कोई बुरा आचरण नहीं किया है । इसलिए किस प्रकार वह बन्धनके योग्य हो सकते हैं ? (१६-१८)

भीष्म बोले, हे धृतराष्ट्र ! तुम्हारा यह मन्दबुद्धि पुत्र अत्यन्त ही कालके वशमें हुआ है । सुहृदलोग इसके हितकी इच्छा करते हैं; परन्तु यह केवल अहितकीही इच्छा करता रहता है । आश्चर्यका विषय तो यह है, कि तुम भी उसके सुहृद लोगोंको डालकर केवल कुमार्गी, पापोंको करनेवाले इस दुष्टात्माका अनुसरण करते हो । यह नीचबुद्धि दुर्योधन यदि सब कठिन कर्म सहजहीमें करनेवाले, महात्मा कृष्णके प्रति इस प्रकार बुरा आचरण करनेमें प्रवृत्त होगा, तो क्षण भरमें बन्धु, बान्धव

पापस्याऽस्य नृशंसस्य त्यक्तधर्मस्य दुर्मतेः ।

नोत्सहेऽनर्थसंयुक्ताः श्रोतुं वाचः कथञ्चन ॥ २२ ॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो वृद्धः परममन्युमान् ।

उत्थाय तस्मात्प्रातिष्ठद्भीष्मः सत्यपराक्रमः ॥ २३ ॥ [३००२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्दानपर्वणि

दुर्योधनवाक्ये अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

वैशम्पायन उवाच-प्रातरुत्थाय कृष्णस्तु कृतवान्सर्वमाह्निकम्

ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रययौ नगरं प्रति ॥ १ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुमनुज्ञाप्य महाबलम् ।

पर्यवर्तन्त ते सर्वे वृकस्थलनिवासिनः ॥ २ ॥

धार्तराष्ट्रास्तमायान्तं प्रत्युज्जग्मुः खलंकृताः ।

दुर्योधनादृते सर्वे भीष्मद्रोणकृपादयः ॥ ३ ॥

पौराश्च बहुला राजन्हृषीकेशं दिदृक्षवः ।

यानैर्बहुविधैरन्यैः पद्भिरेव तथा परे ॥ ४ ॥

स वै पथि समागम्य भीष्मेणाऽक्लिष्टकर्मणा ।

सेना और इष्ट मित्रोंके सहित मरकर पृथ्वीमें सोवेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इस धर्मके छोड़नेवाले, मूढ़, पापीके अनर्थ युक्त और अयोग्य वचनों के सुननेमें मुझे किसी प्रकारसे भी उत्साह नहीं होता। ऐसा कहकर सत्य पराक्रमी भरतश्रेष्ठ भीष्म अत्यन्त ही क्रोधसे भरकर सभासे उठकर शीघ्र ही घर चले गये । (१९-२३) [ ३००२ ]

उद्योगपर्वमें अठासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें नवासी अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इधर श्रीकृष्णचन्द्र प्रातः काल उठकर शौच आदिसे निवृत्त होकर सन्ध्या आदि

करनेके अनन्तर ब्राह्मणोंसे विदा होके हस्तिनापुरको चले। उस समय वृकस्थल वासी मुख्य पुरुष महाबलसे युक्त महाबाहु हृषीकेश कृष्णकी आज्ञासे विदा होकर अपने अपने घरको गये। उधर दुर्योधनको छोड़कर धृतराष्ट्रके और सब पुत्र तथा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि सब सज्जन पुरुष आये हुए श्रीकृष्णचन्द्रकी अगवानी करके आगेसे लिवा लानेके निमित्त गये। इसके अतिरिक्त और भी अगणित पुरवासी लोग श्रीकृष्णको देखनेकी अभिलाषासे कोई सवारी पर और कोई पैदलही उठ धाये । (१-४)

द्रोणेन धार्तराष्ट्रैश्च तैर्वृतो नगरं ययौ ॥ ५ ॥  
 कृष्णसंमाननार्थं च नगरं समलंकृतम् ।  
 बभूव राजमार्गश्च बहुरत्नसमाचितः ॥ ६ ॥  
 न च कश्चिद्गृहे राजस्तदाऽऽसीद्भरतर्षभ ।  
 न स्त्री न वृद्धो न शिशुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥ ७ ॥  
 राजमार्गे नरास्तस्मिन्संस्तुवन्त्यवनिं गताः ।  
 तस्मिन्काले महाराज हृषीकेशप्रवेशने ॥ ८ ॥  
 आवृतानि वरस्त्रीभिर्गृहाणि सुमहान्त्यपि ।  
 प्रचलन्तीव भारेण दृश्यन्ते स्म भहीतले ॥ ९ ॥  
 तथा च गतिमन्तस्ते वासुदेवस्य वाजिनः ।  
 प्रनष्टगतयोऽभूवन् राजमार्गे नरैर्वृते ॥ १० ॥  
 स गृहं धृतराष्ट्रस्य प्राविशच्छत्रुकर्शनः ।  
 पाण्डुरं पुण्डरीकाक्षः प्रासादैरुपशोभितम् ॥ ११ ॥  
 तिस्रः कक्ष्या व्यतिक्रम्य केशवो राजवेदमनः ।  
 वैचित्रवीर्यं राजानमभ्यगच्छदरिन्दमः ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र मार्गमें महा पराक्रमी भीष्म, द्रोण तथा धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे मिलकर उन लोगोंके सहित नगरमें आपहुंचे । हे राजन्! श्रीकृष्णके सम्मान के निमित्त नगर और राजमार्ग उत्तम प्रकारसे अनेक रत्न और पुष्पोंसे सजाया था । हे भरतर्षभ ! श्रीकृष्णचन्द्रने जिस समय नगरमें प्रवेश किया, उस समय स्त्री, पुरुष, बूढ़े और बालक कोईभी घरमें न रहे; सबही उनके दर्शनकी लालसा से राजमार्गपर आके खड़े हुए थे; उन्हें देखते ही शिर झुकाकर स्तुति और प्रशंसा करने लगे । हे महाराज ! उत्तम अट्टालिकाओं (अटारी) के ऊपर

वरवर्णिनी इतनी कामिनीएं झुण्डकी झुण्ड आकर इकट्ठी हुई थीं, कि उससे यह बोध होता था, कि उनके-भारसे उन सब घरोंकी अटारियां पृथ्वीमें मिला चाहती हैं ! ( ५-९ )

श्रीकृष्णके चार घोड़े स्वभावहीसे अत्यन्त जलदी चलनेवाले थे, परन्तु अत्यन्त भीड़से राजमार्गके भर जानेके कारण वे बहुत धीरे धीरे चलने लगे । शत्रुनाशन श्रीकृष्णचन्द्र इसी प्रकारसे थोड़ी दूर तक राजपथको लांघकर अन्तमें राजमन्दिरोंसे शोभित धृतराष्ट्र-के मन्दिरमें प्रविष्ट हुए । उन्होंने राज-मन्दिरके तीन खण्डको लांघकर चौथे

अभ्यागच्छति दाशार्हं प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः ।  
 सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः ॥ १३ ॥  
 कृपश्च सोमदत्तश्च महाराजश्च बाह्लिकः ।  
 आसनेभ्योऽवलम्ब्यै पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ १४ ॥  
 ततो राजानमासाद्य धृतराष्ट्रं यशस्विनम् ।  
 स भीष्मं पूजयामास बाष्पेण्यो वाग्भिरञ्जसा ॥ १५ ॥  
 तेषु धर्मानुपूर्वीं तां प्रयुज्य मधुसूदनः ।  
 यथावयः समीपाय राजभिः सह माधवः ॥ १६ ॥  
 अथ द्रोणं सबाह्लीकं सपुत्रं च यशस्विनम् ।  
 कृपं च सोमदत्तं च समीपाय जनार्दनः ॥ १७ ॥  
 तत्राऽऽसीदूर्जितं सृष्टं काञ्चनं महदासनम् ।  
 शासनाद्वृतराष्ट्रस्य तत्रोपाविशदच्युतः ॥ १८ ॥  
 अथ गां मधुपर्कं चाऽप्युदकं च जनार्दने ।  
 उपजन्तुर्यथान्यायं धृतराष्ट्रपुरोहिताः ॥ १९ ॥  
 कृतातिथ्यस्तु गोविन्दः सर्वान्परिहसन्कुरुन् ।  
 आस्ते साम्बान्धिकं कुर्वन्कुरुभिः परिवारितः ॥ २० ॥

खण्डमें विचित्रवीर्यके पुत्र महाराज  
 धृतराष्ट्रको देखा। श्रीकृष्णचन्द्रके स-  
 मीप आतेही प्रज्ञाचक्षु महा यशस्वी राजा  
 धृतराष्ट्र भीष्म और द्रोणाचार्यके  
 सहित उठ खड़े हुए। उनके उठतेही  
 कृपाचार्य, सोमदत्त, महाराज बाह्लिक  
 आदि सब राजा लोग श्रीकृष्ण की  
 संमानरक्षाके निमित्त उठके खड़े  
 होगये। (१०-१४)

अनन्तर वृष्णिनन्दन मधुसूदन राजा  
 धृतराष्ट्रके समीप आकर यथा उचित  
 वचनोंसे उनकी और भीष्मकी पूजा  
 की। उनके सङ्ग इस प्रकारकी पूजा

और सम्मान दिखाके श्रीकृष्णचन्द्र  
 यथा योग्य अवस्थाके अनुसार सबहीसे  
 मिले। इसके अनन्तर द्रोण, कृपाचार्य,  
 अश्वत्थामा, यशस्वी बाह्लिक और  
 सोमदत्तकी भी विशेष रूपसे पूजा की।  
 वहांपर अत्यन्त स्वच्छ महामूल्य सुवर्ण  
 का आसन बिछा हुआ था, जनार्दन  
 कृष्ण उसीपर राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे  
 जा विराजे। (१५-१८)

अनन्तर पुरोहितोंने गरु, मधुपर्क  
 और जल लाकर उन्हें प्रदान किया।  
 अतिथिसत्कार होजाने पर श्रीकृष्णचन्द्र  
 कौरवोंसे घिरकर सब लोगोंके सङ्ग

सोऽर्चितो धृतराष्ट्रेण पूजितश्च महायशः ।

राजानं समनुज्ञाप्य निरक्रामदरिन्दमः ॥ २१ ॥

तैः समेत्य यथान्यायं कुरुभिः कुरुसंसदि ।

विदुरावसथं रम्यमुपातिष्ठत माधवः ॥ २२ ॥

विदुरः सर्वकल्याणैराभिगम्य जनार्दनम् ।

अर्चयामास दाशार्हं सर्वकामैरुपस्थितम् ॥ २३ ॥

या मे प्रीतिः पुष्कराक्ष त्वद्दर्शनसमुद्भवा ।

सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्माऽसि देहिनाम् ॥ २४ ॥

कृतातिथ्यं तु गोविन्दं विदुरः सर्वधर्मवित् ।

कुशलं पाण्डुपुत्राणामपृच्छन्मधुसूदनम् ॥ २५ ॥

प्रीयमाणस्य सुहृदो विदुरो बुद्धिसत्तमः ।

धर्मार्थनित्यस्य सतो गतरोषस्य धीमतः ॥ २६ ॥

तस्य सर्वं सविस्तारं पाण्डवानां विचेष्टितम् ।

सम्बन्धके अनुसार बात चीत और हंसी ठठे करते हुए वहाँपर बहुत समय-तक बैठे रहे । शत्रुनाशन महा यशस्वी श्रीकृष्णचन्द्र कौरवोंकी सभामें राजा धृतराष्ट्र आदि सब कौरवोंसे यथायोग्य मिलकर, और राजा धृतराष्ट्रसे सत्कार और पूजा पाकर, अन्तमें उनकी आज्ञाको लेकर वहाँसे उठकर विदुरके रमणीय निवास-स्थानमें आकर उपस्थित हुए । (१९-२२)

विदुरने सुन्दर और पवित्र वस्तुओंसे श्रीकृष्ण की भक्तिपूर्वक पूजा करके कहा, हे पुण्डरीकाक्ष ! आपके दर्शनसे मेरे हृदयमें जैसी प्रीति उत्पन्न हुई है, उसे मैं किस प्रकारसे वर्णन करूँ ? आप सब प्राणियोंकी आत्मा,

सबके अन्तर्यामी हैं । सब धर्मोंके जानने वाले, महाबुद्धिमान् विदुरने इस प्रकार से बातचीत करके उनका अतिथि सत्कार किया । इसके अनन्तर पाण्डवों का कुशल क्षेम पूछने लगे, सब बातों को जाननेवाले भगवान् कृष्णने पाण्डवोंके सम्पूर्ण वृत्तान्तको उनसे विस्तार पूर्वक कह सुनाया । वह अच्छी प्रकारसे जानते थे, कि विदुर पाण्डवोंके अत्यन्त मित्र हैं, उन लोगोंके ऊपर उनके क्रोधकी बात तो दूर रहे, वरन प्रीतिही उत्तम भांति और बहुत प्रकारसे है । विशेष करके वह उत्तम बुद्धिसे युक्त, ज्ञानवान्, और धर्म अर्थके जाननेवाले हैं; इससे उनके निकट पाण्डवोंकी सब चेष्टाओंको वर्णन करने

क्षत्तुराचष्ट दाशार्हः सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ २७ ॥ [३०२९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रगृहप्रवेशपूर्वकं  
श्रीकृष्णस्य विदुरगृहप्रवेशे एकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

वैशम्पायन उवाच-अथोपगम्य विदुरमपराह्णे जनार्दनः ।

पितृष्वसारं स पृथामभ्यगच्छदरिन्दमः ॥ १ ॥

सा दृष्ट्वा कृष्णमायान्तं प्रसन्नादित्यवर्चसम् ।

कण्ठे गृहीत्वा प्राक्रोशत्स्मरन्ती तनयान्पृथा ॥ २ ॥

तेषां सत्ववतां मध्ये गोविन्दं सहचारिणम् ।

चिरस्य दृष्ट्वा बाष्पण्यं बाष्पमाहारयत्पृथा ॥ ३ ॥

साऽब्रवीत्कृष्णमासीनं कृतातिथ्यं युधां पतिम् ।

बाष्पगद्गदपूर्णं मुखेन परिशुष्यता ॥ ४ ॥

ये ते बाल्यात्प्रभृत्येव गुरुशुश्रूषणे रताः ।

परस्परस्य सुहृदः सम्मताः समचेतसः ॥

निकृत्या भ्रंशिता राज्याज्जनार्हा निर्जनं गताः ॥ ५ ॥

विनीतक्रोधहर्षाश्च ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ।

मैं कुछभी सङ्कोच नहीं है । (२३-२७)

उद्योगपर्वमें नवासी अध्याय समाप्त । [३०२९]

उद्योगपर्वमें नव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, शत्रुनाश-  
न जनार्दन विदुरके सङ्ग मिलकर दिन-  
के शेष भागमें पिताकी चहिन अपनी  
बुवा (फूफी) कुन्तीदेवीके निकट गये।  
कुन्ती प्रसन्न सूर्यके समान कृष्णको  
आया हुआ देखकर, उन्हें कण्ठसे  
लगाकर अपने पुत्रोंको स्मरण करती  
हुई रोने लगी। उन महाबलवान वीर  
पुरुषोंके सदाके मित्र श्रीकृष्णचन्द्रको  
बहुत दिनोंके अनन्तर देखकर उनके  
आँसुका बहना बन्द नहीं हुआ । (१-३)

वीरोंमें मुख्य श्रीकृष्णचन्द्रके अ-  
तिथि सत्कार करनेके अनन्तर, जब वह  
आसन पर शोभित हुए, तब कुन्ती  
देवी दुःख तथा प्रेमसे गद्गद होकर  
कहने लगीं, हे तात ! हे कृष्ण ! जो  
लोग बालक अवस्थाहीसे गुरुकी  
सेवामें लगे रहते थे, जिनमें आपसमें  
अत्यन्त सुहृदता है, जो प्रीतिके पात्र,  
शान्त-अन्तःकरण, क्रोधके जाननेवाले  
और ब्राह्मणोंमें निष्ठावान, सत्यवादी  
और धर्मात्मा हैं; जो सदा ही बहुत  
लोगोंसे युक्त राज्य करनेके योग्य हैं;  
वही लोग अधर्मी तथा ठगोंके फन्देमें  
पडकर राज्यसे भ्रष्ट होके वनमें निवास



त्यक्त्वा प्रियसुखे पार्था रुदतीमपहाय माम् ॥ ६ ॥

अहार्षुश्च वनं यान्तः समूलं हृदयं भम ।

अतदर्हा महात्मानः कथं केशव पाण्डवाः ॥ ७ ॥

ऊर्षुर्महावने तात सिंहव्याघ्रगजाकुले ।

बाला विहीनाः पित्रा ते मया सततलालिताः ॥ ८ ॥

अपश्यन्तश्च पितरौ कथमूषुर्महावने ।

शङ्खदुन्दुभिनिघोषैर्मृदङ्गैर्वेणुनिःस्वनैः ॥ ९ ॥

पाण्डवाः समबोध्यन्त बाल्यात्प्रभृति केशव ।

ये स्म वारणशब्देन हयानां हेषितेन च ॥ १० ॥

रथनेमिनिनादैश्च व्यबोध्यन्त तदा गृहे ।

शङ्खभेरीनिनादेन वेणुवीणानुनादिना ॥ ११ ॥

पुण्याहघोषमिश्रेण पूज्यमाना द्विजातिभिः ।

वस्त्रै रत्नैरलङ्कारैः पूजयन्तो द्विजन्मनः ॥ १२ ॥

गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिर्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।

अर्चितैरर्चनाहैश्च स्तुवद्भिरभिनन्दिताः ॥ १३ ॥

प्रासादाग्रेष्वबोध्यन्त राङ्गवाजिनशायिनः ।

करते थे; मैं अत्यन्त दुःख और कातर-  
तासे रो रही थी, उस समय मुझको  
और सम्पूर्ण सुखकी वस्तुओंको परित्या-  
ग करके भी वनको चले गये थे; वे  
मेरे अत्यन्त प्यारे पाँचों पुत्र वनवासके  
अयोग्य होकर भी किस प्रकारसे सिंह,  
व्याघ्र और मतवाले हाथियोंसे भरे  
वनमें निवास करते थे ? (४-८)

बालक अवस्थामें जब उन लोगोंके  
पिताकी मृत्यु हो गई थी, तब मैंने  
ही उनका पालन पोषण किया था;  
अब इस वनवासके समयमें उन लोगोंने  
पिता और माता दोनोंको विना देखे

कैसे निवास किया ? हे केशव ! पाण्डव  
लोग शंख, भेरी, मृदङ्ग और बांसुरीके  
शब्दोंसे प्रति दिन पूजित होते थे। भोरके  
समयमें घोड़े, हाथी, रथ, शंख, भेरी,  
मृदङ्ग और बांसुरीके शब्दको सुनकर  
निद्रासे जागते थे; तथा ब्राह्मणोंके  
पुण्याह-वाचन और स्वस्तिवाचन से  
जागकर अनेक प्रकारके वस्त्र, रत्न, और  
भूषण ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें दान  
देते थे; और ब्राह्मण लोग भी पूजित  
होकर स्वस्तिवाचनसे उन्हें आनन्दित  
और प्रसन्न करते थे। (८-१३)

राजमन्दिरमें सुन्दर तथा कोमल

क्रूरं च निनदं श्रुत्वा श्वापदानां महावने ॥ १४ ॥  
 न स्तोपयान्ति निद्रां ते न तदर्हा जनार्दन ।  
 भेरीभृदङ्गनिनदैः शङ्खवैणवनिःस्वनैः ॥ १५ ॥  
 स्त्रीणां गीतानिनादैश्च मधुरैर्मधुसूदन ।  
 बन्दिमागधसूतैश्च स्तुवाङ्घ्रिबोधिताः कथम् ॥ १६ ॥  
 महावनेष्वबोध्यन्त श्वापदानां रुतेन च ।  
 हीमान्सत्यधृतिर्दान्तो भूतानामनुकम्पिता ॥ १७ ॥  
 कामद्वेषौ वशे कृत्वा सतां वर्त्मानुवर्तते ।  
 अम्बरीषस्य मान्धातुर्ययातेर्नहुषस्य च ॥ १८ ॥  
 भरतस्य दिलीपस्य शिवेरौशीनरस्य च ।  
 राजर्षीणां पुराणानां धुरं धत्ते दुरुद्धहाम् ॥ १९ ॥  
 शीलवृत्तोपसम्पन्नो धर्मज्ञः सत्यसङ्गरः ।  
 राजा सर्वगुणोपेतस्त्रैलोक्यस्याऽपि यो भवेत् ॥ २० ॥  
 अजातशत्रुर्धर्मात्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ।  
 श्रेष्ठः कुरुषु सर्वेषु धर्मतः श्रुतवृत्ततः ॥

मृगचर्मसे युक्त शय्यापर सोते थे,  
 वे महाविपदके स्थान निर्जन वनमें  
 सिंह व्याघ्र, हाथी आदि वनके पशुओं-  
 के शब्दको सुनकर किस प्रकारसे सोते  
 रहे होंगे, यह किसी प्रकारसे भी मेरी  
 समझमें नहीं आता है। हे मधुसूदन !  
 जिन लोगोंको शंख, भेरी, मृदङ्ग,  
 बांसुरी तथा कामिनीयोंके कोमल क-  
 ण्ठसे गाए गीतों और सूत मागध  
 बन्दियोंकी स्तुतिको सुनकर नींदसे  
 उठनेका अभ्यास था; वे लोग वनके  
 बीचमें हिंसक जन्तुओंके चीत्कार शब्द  
 को सुनकर कैसे सोते रहे  
 होंगे ? ( १४-१५ )

हे कृष्ण ! जो बालकपनमें निष्ठा-  
 वान, तेजस्वी, धर्मात्मा, सब प्राणियों-  
 के ऊपर दया करनेवाले थे, जिन्होंने  
 काम, क्रोध आदिको वशमें किया था;  
 जो सदाही उत्तम मार्गसे चलते हुए  
 अम्बरीष, मान्धाता, ययाति, नहुष,  
 भरत, दिलीप, शिवि, उशीनर आदि  
 पुराने राजाओंके उत्तम गुणोंको  
 धारण करते थे, जो सब गुणोंसे विभू-  
 षित होनेसे तीनों लोकके राज्यके स्वामी  
 होनेके योग्य थे, धर्म शास्त्र तथा व्यव-  
 हार सब विषयोंमें जो कौरवोंमें श्रेष्ठ थे;  
 वही सुन्दर स्वच्छ सुवर्णके समान तेज-  
 स्वी, देखनेमें सुन्दर, शीलवान् सदा-

प्रियदर्शो दीर्घभुजः कथं कृष्ण युधिष्ठिरः ॥ २१ ॥

यः स नागायुतप्राणो वातरंहा महाबलः ।

सामर्षः पाण्डवो नित्यं प्रियो भ्रातुः प्रियङ्करः ॥ २२ ॥

कीचकस्य तु सजातेर्यो हन्ता मधुसूदन ।

शूरः क्रोधवशानां च हिडिम्बस्य बकस्य च ॥ २३ ॥

पराक्रमे शक्रसमो मातरिश्वसमो बले ।

महेश्वरसमः क्रोधे भीमः प्रहरतां वरः ॥ २४ ॥

क्रोधं बलममर्षं च यो निधाय परन्तपः ।

जितात्मा पाण्डवोऽमर्षी भ्रातुस्तिष्ठति शासने ॥ २५ ॥

तेजोराशिं महात्मानं वरिष्ठममितौजसम् ।

भीमं प्रदर्शनेनापि भीमसेनं जनार्दन ॥ २६ ॥

तं ममाऽऽचक्ष्व वाष्णेय कथमद्य वृकोदरः ।

आस्ते परिघबाहुः स मध्यमः पाण्डवो बली ॥ २७ ॥

अर्जुनेनाऽर्जुनो यः स कृष्ण बाहुसहस्रिणा ।

द्विबाहुः स्पर्धते नित्यमतीतेनाऽपि केशव ॥ २८ ॥

क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्चबाणशतानि यः ।

इष्वस्त्रे सदृशो राज्ञः कार्तवीर्यस्य पाण्डवः ॥ २९ ॥

चारी, धर्मके जाननेवाले, सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले, अजात-शत्रु धर्मात्मा महा-बाहु युधिष्ठिर कैसे हैं ? ( १७-२१ )

हे मधुसूदन ! जो भीमसेन सदा क्रोधी, वायुके समान वेगवान महा बलसे युक्त, दस हजार हाथियोंके बलको धारण करनेवाला है; जो सदाही प्रिय कार्य करके भाइयोंकी प्रीति तथा प्रेम-का पात्र हुए हैं, जिसके प्रचण्ड वीर-तारूपी अग्निमें भाइयोंके सहित कीचक, क्रोधवश, हिडिम्ब और बकासुर भस्म होगये थे; जो शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ,

शत्रु नाशन महावीर पराक्रममें इन्द्र, बलमें वायु और क्रोधमें महेश्वरके समान होकर भी क्रोध, बल और अस-हनशीलताको रोककर अपने सहोदर भाईकी आज्ञामें रत हैं; उस तेजस्वी महा पराक्रमी, महात्मा भीमसेनकी कुशलवार्त्ता मुझसे कहो । ( २२-२७ )

हे कृष्ण ! वह परिघके समान भुजा-वाले जो महात्मा अर्जुन दोही भुजाओंके सहारे सहस्र भुजावाले मृत अर्जुनके संग युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं; जो महावीर पुरुष इकबारगी पांच सौ

तेजसाऽऽदित्यसहशो महर्षिसहशो दमे ।  
 क्षमया पृथिवीतुल्यो महेन्द्रसमविक्रमः ॥ ३० ॥  
 आधिराज्यं महद्दीप्तं प्रथितं मधुसूदन ।  
 आहृतं येन वीर्येण कुरूणां सर्वराजसु ॥ ३१ ॥  
 यस्य बाहुबलं सर्वे पाण्डवाः पर्युपासते ।  
 स सर्वरथिनां श्रेष्ठः पाण्डवः सत्यविक्रमः ॥ ३२ ॥  
 यं गत्वाऽभिमुखः संख्ये न जीवन्कश्चिदाव्रजेत् ।  
 यो जेता सर्वभूतानामजेयो जिष्णुरच्युत ॥ ३३ ॥  
 योऽपाश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः ।  
 स ते भ्राता सखा चैव कथमद्य धनञ्जयः ॥ ३४ ॥  
 दयावान्सर्वभूतेषु हीनिषेवो महास्त्रवित् ।  
 मृदुश्च सुकुमारश्च धार्मिकश्च प्रियश्च मे ॥ ३५ ॥  
 सहदेवो महेष्वासः शूरः समितिशोभनः ।  
 भ्रातृणां कृष्ण शुश्रूषुर्धर्मार्थकुशलो युवा ॥ ३६ ॥  
 सदैव सहदेवस्य भ्रातरो मधुसूदन ।  
 वृत्तं कल्याणवृत्तस्य पूजयन्ति महात्मनः ॥ ३७ ॥

बाणोंको चला सकते हैं; जिसकी शस्त्र  
 विद्याकी शिक्षामें कार्त्तवीर्य, प्रतापमें  
 सूर्य, इन्द्रिय निग्रहमें महा ऋषि, क्षमामें  
 पृथ्वी और वीरतामें इन्द्रके संग उपमा  
 दी जासकती है, जिसके महाबल और  
 पराक्रमसे इस समस्त पृथ्वीके राजाओंके  
 बीच कौरवोंका तेज प्रताप, और प्रभुता  
 प्रकाशित हुई है और पाण्डव लोग आज  
 तक जिसके बाहुबलकी सदा उपासना  
 करते हैं, युद्धमें जिनके सन्मुख होकर  
 कोई पुरुष भी निस्तार नहीं पाता, जो  
 वीर पुरुष सब प्राणियोंको जीतनेवाला,  
 किसी समयमें किसीके सम्मुखसे पराजि-

त नहीं होता है; देवताओंके राजा इन्द्र  
 जैसे देवताओंका आशा देनेवाले हैं,  
 वैसेही रथियोंमें श्रेष्ठ, सत्य पराक्रमी  
 अर्जुन भी एक मात्र पाण्डवोंको अवलम्ब  
 है; वह अर्जुन तुम्हारा भाई और मित्र इस  
 समय किस प्रकारसे है ? ( २७-३४ )

हे मधुसूदन ! सब प्राणियोंके ऊपर  
 दया करनेवाला, लज्जावान, सुकुमार,  
 धर्मात्मा सब शस्त्रोंको जाननेवाला; महा  
 धनुर्दारी, महा बलवान, युद्धके कार्योंको  
 जाननेवाला सहदेव मुझे बहुतही प्यारा  
 है । हे कृष्ण ! धर्म और अर्थको जान-  
 नेवाला महात्मा सहदेव सदाही भाइयोंकी

ज्येष्ठोपचायिनं वीरं सहदेवं युधामपतिम् ।  
 शुश्रूषुं मम वाष्णेय माद्रीपुत्रं प्रचक्ष्व मे ॥ ३८ ॥  
 सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।  
 भ्रातृणां चैव सर्वेषां प्रियः प्राणो बहिश्चरः ॥ ३९ ॥  
 चित्रयोधी च नकुलो महेष्वासो महाबलः ।  
 कच्चित्स कुशली कृष्ण वत्सो मम सुखैधितः ॥ ४० ॥  
 सुखोचितमदुःखार्हं सुकुमारं महारथम् ।  
 अपि जातु महाबाहो पश्येयं नकुलं पुनः ॥ ४१ ॥  
 पक्षमसम्पातजे काले नकुलेन विनाकृता ।  
 न लभामि धृतिं वीर साऽद्य जीवामि पश्य माम् ४२ ॥  
 सर्वैः पुत्रैः प्रियतरा द्रौपदी मे जनार्दन ।  
 कुलीना रूपसम्पन्ना सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ ४३ ॥  
 पुत्रलोकात्पतिलोकं वृण्वाना सत्यवादिनी ।  
 प्रियान्पुत्रान्परित्यज्य पाण्डवाननुरुध्यते ॥ ४४ ॥  
 महाभिजनसम्पन्ना सर्वकामैः सुपूजिता ।  
 ईश्वरी सर्वकल्याणी द्रौपदी कथमच्युत ॥ ४५ ॥

सेवा टहलमें लगा रहता है, और भाई लोग भी उसके उत्तम चरित्रोंकी सदा प्रशंसा किया करते हैं। हे यदुनन्दन ! बड़े भाइयोंकी प्रीतिको बढ़ानेवाला और मेरी सेवामें सदा लगा रहनेवाला वीरोंमें श्रेष्ठ माद्रीपुत्र सहदेव कैसे है ? ३५-३८  
 हे कृष्ण ! जो वीरतासे युक्त, देखने में सुन्दर सुकुमार तथा भाइयोंका अत्यन्त प्यारा है; जो युधिष्ठिर आदि-का प्राण स्वरूप कहा जा सकता है; दुःखको न सहने योग्य सुकुमारपुत्रको मैंने सदा सुखमें रक्खा था, वह महा पराक्रमी बलवान नकुल कुशलसे तो

है ? हे महाबाहो ! सदा सुखोंको भोगने योग्य महारथ नकुलको क्या मैं फिर देख सकूंगी ? देखो, जिसको न देखने से मैं क्षण भर भी नहीं रह सकती थी, उस नकुलके ऐसे कठिन वियोग होने पर भी अब तक जीती हूँ। (३९-४२)

हे जनार्दन ! सब गुणोंसे युक्त, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई महास्वरूपवती द्रौपदी मुझे पुत्रोंसे भी अधिक प्यारी है। जिस पतिव्रता सत्यवादिनी द्रौपदीने पतियोंके सङ्ग जानेकी इच्छासे सङ्गमें रहनेवाले पुत्रोंको भी अनादरपूर्वक त्याग दिया; और पतियोंके सङ्ग वनको

पतिभिः पंचभिः शूरैर्मनिकल्पैः प्रहारिभिः ।  
 उपपन्ना महेष्वासैद्रौपदी दुःखभागिनी ॥ ४६ ॥  
 चतुर्दशमिदं वर्षं यन्नाऽपश्यमरिन्दम ।  
 पुत्रादिभिः परिचूनां द्रौपदीं सत्यवादिनीम् ॥ ४७ ॥  
 न नूनं कर्माभिः पुण्यैरभुते पुरुषः सुखम् ।  
 द्रौपदी चेत्तथावृत्ता नाऽश्नुते सुखमव्ययम् ॥ ४८ ॥  
 न प्रियो मम कृष्णाया बीभत्सुर्न युधिष्ठिरः ।  
 भीमसेनो यमौ वापि यदपश्यं सभागताम् ॥ ४९ ॥  
 न मे दुःखतरं किञ्चिद्भूतपूर्वं ततोऽधिकम् ।  
 स्त्रीधर्मिणीं द्रौपदीं यच्छूवशुराणां समीपगाम् ॥ ५० ॥  
 आनायितामनार्येण क्रोधलोभानुवर्तिना ।  
 सर्वे प्रैक्षन्त कुरव एकवस्त्रां सभागताम् ॥ ५१ ॥  
 तत्रैव धृतराष्ट्रश्च महाराजश्च बाह्लिकः ।

चली गयी; सब गुण, लक्षण, मङ्गल  
 और रूपसे भरी हुई वह द्रौपदी किस  
 प्रकारसे हैं ? हाय ! साक्षात् अग्निके  
 समान तेजस्वी महा धनुर्धर शूर वीर  
 पांच पतियोंकी अनुगामिनी होकर भी  
 द्रौपदी इस प्रकारके दुःख और क्लेश पा  
 रही है ! ( ४३-४६ )

हे शत्रुनाशन ! आज चौदह वर्षका  
 समय हुआ, कि मैंने अभीतक उसका  
 चन्द्रमुख नहीं देखा । हा ! बालकोंके  
 बिना देखे वह अपने मनमें कितना  
 दुःख पाती होगी, उसे मैं नहीं कह  
 सकती हूं । द्रुपदनान्दिनी द्रौपदी जब  
 ऐसे शुद्ध और पवित्र चरित्रसे युक्त  
 होनेपर भी सुखको भोगनेकी अधिका-  
 रिणी नहीं हुई, तब मुझे यही बोध

होता है कि इस लोकमें केवल पुण्य-  
 कर्महीसे सुख नहीं मिल सकता । सभा-  
 में बुलाई गई द्रौपदीकी मैंने जो कुछ  
 दुर्दशा देखी थी, उसको स्मरण करनेसे  
 अजुन, युधिष्ठिर, भीम, नकुल और  
 सहदेव किसीपर भी मेरी प्रीति नहीं  
 होती है । ( ४७-४९ )

मुझे इससे अधिक दुःख इससे पूर्व  
 कभी नहीं हुआ । जब क्रोध और लोभके  
 वशमें होकर नीच दुर्योधनने उस द्रौप-  
 दीको स्त्रीधर्मसे युक्त, और एक वस्त्रको  
 पहने हुए रहनेपर भी राजसभामें बुल-  
 वाकर ससुर आदि सब कौरवोंके संमुख  
 सभामें जो खडी कर दी थी और उन  
 लोगोंने उसे ऐसी अवस्थामें देखा था;  
 उससे बढ़कर और दूसरा दुःख मैंने

कृपश्च सोमदत्तश्च निर्विण्णाः कुरवस्तथा ॥ ५२ ॥

तस्यां संसदि सर्वेषां क्षत्तारं पूजयाम्यहम् ।

वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया ॥ ५३ ॥

तस्य कृष्ण महाबुद्धेर्गम्भीरस्य महात्मनः ।

क्षत्तुः शीलमलङ्कारो लोकान्विष्टभ्य तिष्ठति ॥ ५४ ॥

वैशम्पायन उवाच-सा शोकार्ता च हृष्टा च हृष्टा गोविन्दमागतम् ।

नानाविधानि दुःखानि सर्वाण्येवाऽन्वकीर्तयत् ॥ ५५ ॥

पूर्वैराचरितं यत्तत्कुराजभिररिन्दम ।

अक्षयूतं मृगवधः कच्चिदेषां सुखावहम् ॥ ५६ ॥

तन्मां दहति यत्कृष्णा सभायां कुरुसन्निधौ ।

धार्तराष्ट्रैः परिक्लिष्टा यथा न कुशलं तथा ॥ ५७ ॥

निर्वासनं च नगरात्प्रव्रज्या च परन्तप ।

नानाविधानां दुःखानामभिज्ञाऽस्मि जनार्दन ॥ ५८ ॥

अज्ञातचर्या बालानामवरोधश्च माधव ।

कभी नहीं सहा था । उस समय राजा धृतराष्ट्र, महाराज बाह्लिक, कृपाचार्य और भी कई एक सज्जन पुरुष दुःखित और शोकित हुए थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; परन्तु सब सभासदों-में मैं विदुरहीकी अधिक प्रशंसा करती हूँ । उत्तम चरित्र होनेहीसे मनुष्य लोकमें पूजनीय और मान पानेका पात्र हो सकता है; केवल विद्या तथा धनसे कोई भी बड़ाई पानेका अधिकारी नहीं होता । हे कृष्ण ! उन महा बुद्धिमान्, गम्भीर प्रकृति, महात्मा विदुरका उत्तम शील रूपी प्रकाशमान भूषण सब लोकोंमें अपने तेजसे प्रकाशित हो रहा है । ( ५०-५४ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्ण-चन्द्रको देखकर कुन्ती हर्ष और शोकसे कातर होकर नाना भांतिके दुःखोंको सुनाकर फिर कहने लगी, हे शत्रुनाशन ! पहिले समयके बुरे राजाओंके चलाये हुए जुए, शिकार आदि व्यसन क्या कभी पाण्डवोंको सुखदायक हो सकते हैं ? इस पापरूपी अशुभ जुएको खेलने हीसे नीचबुद्धि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने द्रौपदीको बहुत ही कठिन मृत्युके समान दुःख देकर मेरे हृदयको नित्य ही जलाया है । हे परन्तप जनार्दन ! मैंने नगर से वनको गये हुए पुत्रोंके अनेक प्रकार के दुःखकी बात सुनी है । हे माधव ! दूसरेके घरमें छिपाकर जो मेरे पुत्रोंको

न मे क्लेशतमं तत्स्यात्पुत्रैः सह परन्तप ॥ ५९ ॥  
 दुर्योधनेन निकृता वर्षमद्य चतुर्दश ।  
 दुःखादपि सुखं नः स्याद्यदि पुण्यफलक्षयः ॥ ६० ॥  
 न मे विशेषो जात्वासीद्वार्तराष्ट्रेषु पाण्डवैः ।  
 तेन सत्येन कृष्ण त्वां हतामित्रं श्रिया वृतम् ॥  
 अस्माद्विमुक्तं संग्रामात्पश्येयं पाण्डवैः सह ॥ ६१ ॥  
 नैव शक्याः पराजेतुं सर्वं ह्येषां तथाविधम् ।  
 पितरं त्वेव गर्हेयं नाऽऽत्मानं न सुयोधनम् ॥ ६२ ॥  
 येनाऽहं कुन्तिभोजाय धनं वृत्तैरिवाऽर्पिता ।  
 बालां मामार्यकस्तुभ्यं क्रीडन्तीं कन्दुहस्तिकाम् ॥ ६३ ॥  
 अदात्तु कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने ।  
 साऽहं पित्रा च निकृता श्वशुरैश्च परन्तप ॥

अज्ञातवास करना पडा था, इससे बढकर दुःख तथा क्लेश मुझे और मेरे पुत्रों को कभी नहीं मिला । ( ५५-५९ )

आज चौदह वर्ष हो गये, अभी तक दुर्योधन मेरे पुत्रोंको प्रवासी ही बनाये हुए हैं; यदि पुण्यके फलका नाश सुख भोगनेसे होता है और दुःख भोगनेसे पापके फलकाही नाश होता है तो दुःख भोगनेमें इतने दिनके व्रतनेपर अब मुझको सुख भी मिलेगा । हे कृष्ण ! मैंने धृतराष्ट्रके पुत्रोंको कभी पाण्डवोंसे कम नहीं समझा, पुत्रहीके समान उन्हें भी देखा है; इस सत्यके ऊपर मैं यह निश्चय करके कह सकती हूँ, कि अवश्यही पाण्डवोंके सहित तुमको इस उपास्थित संग्रामसे विजयी और मुक्त, शत्रुओंको मरे हुए और पाण्डवोंको

फिर राज्य पाये हुए देखूंगी । पाण्डवोंने धर्मके धनसे जिस प्रकारसे सत्यव्रतका पालन किया है, उससे शत्रुलोक कभी उन्हें युद्धमें नहीं जीत सकेंगे । ६०-६२

जो हो, इस उपस्थित दुःखको भोग करनेमें अपना तिरस्कार भी नहीं कर सकती हूँ, और दुर्योधनहीको दोष नहीं देसकती हूँ, केवल पिताको ही इस नहीं विषयमें दोषी कहना होगा । दान देनेमें विख्यात हुए पुरुष जैसे क्लेशके बिना धनको देते हैं, वैसेही मुझको उन्होंने कुन्तिभोज राजाके हाथमें समर्पण किया था । मैं गेद हाथमें लेकर बालक अवस्थामें खेल रही थी, उसी समय तुम्हारे पितामह ( दादा ) ने मुझे अपने मित्र पुत्रहीन कुन्तीभोज राजाके हाथमें समर्पित किया था । हे कृष्ण !



अत्यन्तदुःखिता कृष्ण किं जीवितफलं मम ॥ ६४ ॥  
 यन्मां वागब्रवीन्नक्तं सूतके सव्यसाचिनः ।  
 पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चाऽस्य दिवं स्पृशेत् ॥ ६५ ॥  
 हन्वा कुरून्महाजन्ये राज्यं प्राप्य धनञ्जयः ।  
 भ्रातृभिः सह कौन्तेयस्त्रीन्मेधानाहरिष्यति ॥ ६६ ॥  
 नाऽहं तामभ्यसूयामि नमो धर्माय वेधसे ।  
 कृष्णाय महते नित्यं धर्मो धारयति प्रजाः ॥ ६७ ॥  
 धर्मश्चेदस्ति वाष्णेय यथा वागभ्यभाषत ।  
 त्वं चापि तत्तथा कृष्ण सर्वं सत्पादायिष्यसि ॥ ६८ ॥  
 न मां माधव वैधव्यं नाऽर्थनाशो न वैरता ।  
 तथा शोकाय दहति यथा पुत्रैर्विना भवः ॥ ६९ ॥  
 याऽहं गाण्डीवधन्वानं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।  
 धनञ्जयं न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥  
 इतश्चतुर्दशं वर्षं यन्नाऽपश्यं युधिष्ठिरम् ॥ ७० ॥  
 धनञ्जयं च गोविन्द यमौ तं च वृकोदरम् ।

इससे मैं अत्यन्त दुःखित होकर पिता  
 और ससुर लोग सबकेही वञ्चना की  
 पात्री हूँ, ऐसे मेरे दुःखमय जीनेका क्या  
 फल है ! (६२—६४)

अर्जुनके जन्मके समयमें यह आका-  
 शवाणी हुई थी, कि तुम्हारा यह पुत्र  
 जगत विजयी होगा; इसका यश स्वर्ग  
 तक फैलेगा; यह महा संग्राममें कौरवों-  
 को मारकर तीन महायज्ञ भाइयोंके  
 सहित पूर्ण करेगा । मैं इस देववाणीके  
 ऊपर भी किसी प्रकारका दोषारोप नहीं  
 कर सकती हूँ । सर्वव्यापक धर्मरूपी  
 नारायण विधाताको सब प्रकारसे नम-  
 स्कार है । धर्मही सब प्रजाओंको सदासे

धारण करता चला आता है । हे यदुन-  
 न्दन कृष्ण ! यदि धर्म पृथ्वीपर रहेगा,  
 तो जैसी देववाणी हुई है, उसे तुम  
 अवश्यही पूरी करेंगे । (६५—६८)

हे माधव ! पुत्रोंके विरहसे जीती  
 हुई मैं जिस प्रकारके शोकरूपी अग्निसे  
 जली जाती हूँ; वैसा दुःख मुझे न  
 विधवा होनेसे, न अर्थनाशसे, न शत्रु-  
 तासे, न और किसी प्रकारसे कभी  
 अनुभव हुआ है । मैं जब तक उस सब  
 शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गाण्डीव धनुर्धारी  
 अर्जुनको नहीं देख सकती हूँ; तबतक  
 मेरे हृदयमें शान्ति कहाँ है ? हे कृष्ण !  
 आज चौदह वर्षतक मैं युधिष्ठिर, भीम,

जीवनाशं प्रनष्टानां श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः ॥ ७१ ॥

अर्थतस्ते मम सृतास्तेषां चाऽहं जनार्दन ।

ब्रूया माधव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ७२ ॥

भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रकं वृथा कृथा ।

पराश्रया वासुदेव या जीवति धिगस्तु ताम् ॥ ७३ ॥

वृत्तेः कार्पण्यलब्धाया अप्रतिष्ठैव ज्यायसी ।

अथो धनञ्जयं ब्रूया नित्योद्युक्तं वृकोदरम् ॥ ७४ ॥

यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।

अस्मिंश्चेदागते काले मिथ्या चाऽतिक्रमिष्यति ॥ ७५ ॥

लोकसम्भाविताः सन्तः सुदृशंसं करिष्यथ ।

दृशंसेन च वो युक्तांस्यजेयं शाश्वतीः समाः ॥ ७६ ॥

काले हि समनुप्राप्ते त्यक्तव्यमपि जीवनम् ।

अर्जुन, नकुल और सहदेवको न देख कर जीवन्मृत होगई हूं । ( ६९-७१ )

हे जनार्दन ! जो लोग सब दिनके निमित्त बिदा हो जाते हैं; उनके निमित्त उनके पुत्र और जातिके लोग मरना निश्चय करके श्राद्ध आदि कर्म करके शान्ति प्राप्त करते हैं, परन्तु मेरे पक्षमें पुत्र लोग जीवित दशामें रहकर भी मेरे हुएके समान गिने जाते हैं, और मैं भी उन लोगोंके निकट मरी हुई बाध होती हूं । हे कृष्ण! तुम मेरे वचनके अनुसार धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरसे यह कहना, कि “हे पुत्र ! तुम्हारे धर्मकी अत्यन्त हानि हुई है; इससे जिसमें धर्म नष्ट न होवे वही कार्य तुम करो ।” ( ७१—७३ )

हे जनार्दन ! जो स्त्री दुसरेके भरोंसे अपने जीवनको बिताती है, उसके

जीनेको अधिकार है; मांगकर जीविका प्राप्त करनेकी अपेक्षा मर जाना सौगुना उत्तम है । हे वासुदेव ! तुम अर्जुन और उद्यमशाली भीमसेनसे भी हमारे इस वचनको कहना, कि “क्षत्रियोंकी माता जिस निमित्त पुत्रको उत्पन्न करती है, उसके योग्य यही समय आकर उपास्थित हुआ है, इससे इस उपास्थित समय को यदि आप कुछ न करके व्यतीत करेंगे और लोगोंके मानके पात्र होकर भी निन्दित और घृणित कार्योंको करेंगे, तो तुम लोगोंको निन्दित और घृणित कार्योंको करते हुए देखकर मैं भी तुम्हें सब दिनके निमित्त परित्याग करूंगी, क्योंकि योग्य समयके आनेपर अत्यंत प्यारे जीवनका भी परित्याग किया जासकता है ।” ( ७३—७७ )

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतौ सदा ॥ ७७ ॥  
 विक्रमेणाऽर्जितान्भोगान्वृणीतं जीवितादपि ।  
 विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः ॥ ७८ ॥  
 मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम ।  
 गत्वा ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ७९ ॥  
 अर्जुनं पाण्डवं वीरं द्रौपद्याः पदवीं चर ।  
 विदितौ हि तवाऽत्यन्तं क्रुद्धौ तौ तु यथाऽन्तकौ ॥ ८० ॥  
 भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम् ।  
 तयोश्चैतदवज्ञानं यत्सा कृष्णा सभां गता ॥ ८१ ॥  
 दुःशासनश्च कर्णश्च परुषाण्यभ्यभाषताम् ।  
 दुर्योधनो भीमसेनसभ्यगच्छन्मनस्विनम् ॥ ८२ ॥  
 पश्यतां कुरुमुख्यानां नस्य द्रक्ष्यति यत्फलम् ।  
 नहि वैरं समासाद्य प्रशाम्यति वृकोदरः ॥ ८३ ॥  
 सुचिरादपि भीमस्य नहि वैरं प्रशाम्यति ।

हे पुरुषोत्तव ! तुम सदा क्षत्रियोंके धर्ममें स्थित दोनों माद्रीपुत्रोंसे कहना कि 'हे पुत्रो ! तुम लोग प्राणपण करके भी अपने पराक्रमसे उपार्जित भोगोंकी प्रार्थना करो । क्यों कि अपने पराक्रम से प्राप्त हुआ धनही क्षत्रियोंके लिये प्रिय होता है ।' हे महाबाहो ! वहाँ पर जाकर हर एकसे इसी प्रकारके वचन कहकर मेरे पुत्र अर्जुनसे विशेष करके यह वचन कहना, कि जिसमें वह द्रौपदी के बताये हुए मार्गहीसे सब प्रकारसे चले, उसकी प्रीतिको पूरी करनेमें किसी प्रकारसे शिथिलता न करे । (७७-८०)

हे कृष्ण ! इन बातोंको तुम खूब जानते हो, कि भीम और अर्जुन क्रुद्ध

होनेपर साक्षात् काल मूर्त्तिको धारण करके देवताओंको भी विनष्ट कर सकते हैं; परन्तु ऐसे बलवान होनेपर भी जो उनकी प्यारी स्त्री सभामें बुलाई गई थी, और दुःशासन तथा कर्णने उसके ऊपर जिन रूखे और कठोर वचनोंका प्रयोग किया था; इससे बढ़कर और अपमानका विषय दूसरा क्या हो सकता है ? नीचबुद्धि दुर्योधनने मुख्य मुख्य कौरवोंके सन्मुख महात्मा भीमसेनका जो अपमान किया था, अवश्यही उसका पूरा फल वह पावेगा; क्योंकि शत्रुताका सूत्र पानेहीसे भीमसेन बिना उसको समाप्त किये शान्त होनेवाले नहीं हैं । (८०-८३)

यावदन्तं न नयति शात्रवाञ्छत्रुकर्शनः ॥ ८४ ॥

न दुःखं राज्यहरणं न च ब्रूते पराजयः ।

प्रव्राजनं तु पुत्राणां न मे तद् दुःखकारणम् ॥ ८५ ॥

यत्तु सा बृहती श्यामा एकवस्त्रा सभां गता ।

अशृणोत्पुरुषा वाचः किं नु दुःखतरं ततः ॥ ८६ ॥

स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा ।

नाऽभ्यगच्छत्तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती ॥ ८७ ॥

यस्या मम सपुत्रायास्त्वं नाथो मधुसूदन ।

रामश्च बलिनां श्रेष्ठः प्रद्युम्नश्च महारथः ॥ ८८ ॥

साऽहमेवंविधं दुःखं सहेयं पुरुषोत्तम ।

भीमे जीवति दुर्धर्षे विजये चाऽपलायिनि ॥ ८९ ॥

वैशम्पायन उवाच-तत आश्वासयामास पुत्राधिभिरभिष्टुताम् ।

पितृष्वसारं शोचन्तीं गौरिः पार्थसखः पृथाम् ॥ ९० ॥

वासुदेव उवाच- का तु सीमन्तिनी त्वाहग्लोकेष्वस्ति पितृष्वसः ।

विशेष करके थोड़े ही समयमें उनकी शत्रुताकी शान्ति नहीं होती । वह जब-तक शत्रुओंका संहार नहीं करते हैं, तबतक सुखी भी नहीं होते । हे कृष्ण ! मैं पुत्रोंको जुएमें हारने, राज्यके हरे जाने तथा उन लोगोंके वनवाससे भी उतनी दुःखी नहीं हूँ, जितनी उस एक-वस्त्रधारिणी पतिव्रता द्रौपदी को सभामें नीचबुद्धियोंके कठोर वचनोंके सुनाने से दुःखी हुई हूँ; यही मुझे सबसे अधिक दुःख है उससे बढके मेरे दुःखका और कोई भी विषय नहीं है । ( ८४-८६ )

हाय ! क्षत्रिय-धर्ममें सदा ही रत, स्त्रीधर्मसे युक्त, यशस्विनी द्रौपदी ऐसे ऐसे असामान्य वीर पुरुषोंकी भार्या

होकर भी, उस समय अनाथिनी हुई थी । हे पुरुषोत्तम मधुसूदन ! बलवानों-में श्रेष्ठ बलराम, तुम और प्रद्युम्न मेरे तथा मेरे पुत्रोंके सहायक रहनेपर भी तथा पराक्रमी भीमसेन और अजेय अर्जुनके जीते ही मुझे इस प्रकारका कठिन दुःख सहना पडा, यही एक बडा भारी आश्चर्य है ( ८७-८९ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर अर्जुनके मित्र श्रीकृष्णचन्द्र पुत्रोंके दुःखसे अत्यन्त दुःखित और कातर तथा शोकित कुन्ती-देवीको धीरज देने लगे । ( ९० )

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे महाबुद्धि मती ! इस पृथ्वीके बीचमें तुम्हारे

शूरस्य राज्ञो दुहिता आजमीढकुलं गता ॥ ९१ ॥

महाकुलीना भवती हृदाद्भविवाऽऽगता ।

ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥ ९२ ॥

वीरसूवीरपत्नी त्वं सर्वैः समुदिता गुणैः ।

सुखदुःखे महाप्राज्ञे त्वादृशी सोढुमर्हति ॥ ९३ ॥

निद्रातन्द्रे क्रोधहर्षौ क्षुत्पिपासे हिमातपौ ।

एतानि पार्था निर्जित्य नित्यं वीरसुखे रताः ॥ ९४ ॥

त्यक्तग्राम्यसुखाः पार्था नित्यं वीरसुखप्रियाः ।

न तु स्वल्पेन तुष्येयुर्महोत्साहा महाबलाः ॥ ९५ ॥

अन्तं धीरा निषेवन्ते मध्यं ग्राम्यसुखप्रियाः ।

समान सौभाग्यवती यशस्विनी रानी दूसरी कौन है? तुम शूरसेन भूपतिकी दुहिता और आजमीढ वंशमें ब्याही गयी हो। तुम्हारा उत्तम कुलमें जन्म हुआ और उत्तम कुलमें विवाह होनेसे एक तालावसे दूसरे तालावमें आई हुईके समान हो। तुम अत्यन्त ऐश्वर्यशालिनी सबका कल्याण करनेवाली, और स्वामीकी अत्यन्तही सेवा करनेवाली पतिके आदरकी पात्री थी। वीरपत्नी होकर तुम महावीरपुरुषोंकी जननी हुई हो; इससे स्त्रियोंमें जो सब गुण होने उचित हैं, उनमें एक भी तुममें चाकी नहीं है; तुम सबही गुणोंसे भूषित हुई हो। इससे तुम्हारे समान महाभाग्यवती स्त्रीको सुख और दुःख दोनोंही अनुभव करना योग्य है। (९१-९३)

हे देवी! तुम्हारे पुत्र लोग निद्रा,

आलस्य, क्रोध, हर्ष, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, आदि सब दुःख-दायी विषयोंको जीतकर, उन्हें अपने वशमें करके, वीरोंके योग्य सुखहीमें सदा लगे रहते हैं। अत्यन्त उत्साही और महाबलसे युक्त पाण्डवलोगोंको साधारण मनुष्योंके प्रार्थनीय ग्रामविहार आदि किसी विषयमें भी रुचि नहीं है; वीरसुख ही उन लोगोंको प्यारा है, थोड़ेसे अर्थात् स्वल्प विषयसे वे कभी सन्तुष्ट होने वाले नहीं हैं! धीरज धारण करने वाले पाण्डित लोग किसी वस्तुकी अन्तिम सीमाको ही भोग करते हैं। वे लोग या तो मनुष्योंके योग्य महा क्लेशोंको सहते हैं, और नहीं तो उत्तम भोग और सुखोंके एक शेष फलको अनुभव करते हैं; परन्तु ग्रामप्रिय मनुष्य लोग केवल मध्यम अवस्थाकी प्रार्थना करते हैं; बहुत दुःख

उत्तमांश्च परिक्लेशान्भोगांश्चाऽतीव मानुषान् ॥ ९६ ॥

अन्तेषु रेमिरे धीरा न ते मध्येषु रेमिरे ।

अन्तप्राप्तिं सुखामाहुर्दुःखमन्तरमेतयोः ॥ ९७ ॥

अभिवादयन्ति भवतीं पाण्डवाः सह कृष्णया ।

आत्मानं च कुशलिनं निवेद्याऽऽहुरनामयम् ॥ ९८ ॥

अरोगान्सर्वसिद्धार्थान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि पाण्डवान् ।

ईश्वरान्सर्वलोकस्य हताभिचाञ्छ्रिया वृतान् ॥ ९९ ॥

एवमाश्वासिता कुन्ती प्रत्युवाच जनार्दनम् ।

पुत्राधिभिरभिध्वस्ता निगृह्याऽबुद्धिजं तमः ॥ १०० ॥

कुन्त्युवाच — यद्यत्तेषां महाबाहो पथ्यं स्यान्मधुसूदन ।

यथा यथा त्वं मन्येथाः कुर्याः कृष्ण तथा तथा ॥ १०१ ॥

अविलोपेन धर्मस्य अनिकृत्या परन्तप ।

प्रभावज्ञाऽस्मि ते कृष्ण सत्यस्याऽभिजनस्य च ॥ १०२ ॥

व्यवस्थायां च मित्रेषु बुद्धिविक्रमयोस्तथा ।

अथवा अत्यन्त सुखके निमित्त वह इच्छा नहीं करते । इसीसे धीर पाण्डव लोग एक शेषकी अवस्थाहीमें रत हैं; मध्यम अवस्थामें जानेके निमित्त कभी उन लोगोंकी प्रवृत्ति नहीं है । विषयोंकी दोनों सीमाकी प्राप्तिही सुखको देनेवाली है और इन दोनोंका मध्यभाग दुःखका हेतु है, इसे बुद्धिमान् पाण्डितोंने भी स्पष्ट रूपसे कहा है । ( ९४-९७ )

हे माता ! पाण्डव लोगोंने तथा द्रौपदीने तुम्हे प्रणाम करके अपने आत्म कुशलको निवेदन करनेके अनन्तर तुम्हारा कुशल वृत्तान्त पूछा है । तुम पुत्रोंको शीघ्र ही कृतकार्य, नीरोग, सब लोकोंके स्वामी, शत्रुरहित और लक्ष्मीसे युक्त देखो

गी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । ९८-९९

पुत्रोंके दुःखसे दुःखित कुन्ती देवी इस प्रकारसे धीरज पाकर, अज्ञानसे उत्पन्न हुए मोहको रोककर जनार्दन कृष्णसे बोली, हे महाबाहो मधुसूदन कृष्ण ! तुम्हारे विचारमें जो कुछ कार्य पाण्डवोंके निमित्त सत्य और हितकारी हो, धर्मके अनुसार निष्कपट रूपसे तुम उसीका अनुष्ठान करो । हे परन्तप ! तुम्हारी सत्यनिष्ठता और वंश मर्यादाका जैसा प्रभाव है, उसे मैं विशेष रूपसे जानती हूं । मित्र लोगों के कार्यके विषयमें तुम जैसी बुद्धि और पराक्रम प्रकाशित करते हो, वह भी मुझे विदित है । अधिक और क्या

त्वमेव नः कुले धर्मस्त्वं सत्यं त्वं तपो महत् ॥ १०३ ॥

त्वं त्राता त्वं महद्ब्रह्म त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।

यथैवाऽऽस्थ तथैवैतत्त्वयि सत्यं भविष्यति ॥ १०४ ॥

वैशम्पायन उवाच-तामामन्त्र्य च गोविन्दः कृत्वा चाऽभिप्रदक्षिणम् ।

प्रातिष्ठत महाबाहुर्दुर्योधनगृहान्प्रति ॥ १०५ ॥ [ ३१३४ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

कृष्णकुन्तीसंवादे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

वैशम्पायन उवाच-पृथामामन्त्र्य गोविन्दः कृत्वा चाऽभिप्रदक्षिणम् ।

दुर्योधनगृहं शौरिरभ्यगच्छदरिन्दमः ॥ १ ॥

लक्ष्म्या परमया युक्तं पुरन्दरगृहोपमम् ।

विचित्रैरासनैर्युक्तं प्रविवेश जनार्दनः ॥ २ ॥

तस्य कक्ष्या व्यतिक्रम्य तिस्रो द्वाःस्थैरवारितः ।

ततोऽभ्रघनसङ्काशं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् ॥ ३ ॥

श्रिया ज्वलन्तं प्रासादमारुरोह महायशाः ।

कहूंगी मेरे कुलमें तुम ही धर्म, सत्य और बड़ी कठिन तपस्या हो; तुम पाण्ड-वाँके भ्राता और तुम ही परमेश्वर हो; यह सारा ब्रह्माण्ड तुममें ही विराजमान है । तुमने जो कुछ वचन कहे, वे अवश्यही सत्य होंगे; कभी वे अन्यथा न होंगे । ( १००—१०४ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्र कुन्तीदेवीके सङ्ग इस प्रकारसे बातचीत करके उनकी अनुमति ग्रहण करके तथा उनकी प्रदक्षिणा करके दुर्योधनके राज मन्दिरकी ओर चले १०५

उद्योगपर्वमें नव्वे अध्याय समाप्त । [ ३१३४ ]

उद्योगपर्वमें एकानव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महा

यशस्वी जनार्दन कृष्णने, कुन्ती देवीकी अनुमति पाने पर, उन्हे प्रदक्षिणा करके वहाँसे चलकर, अनेक प्रकारके आसनोंसे युक्त, परम शोभासे पूरित साक्षात् इन्द्र भवनके समान दुर्योधनके राजमन्दिरमें आकर प्रवेश किया । ( १-२ )

राजमन्दिरके दर्वाजेपर अनेक द्वारपाल खड़े थे; परन्तु कोई भी उन्हें भीतर जानेसे रोक न सका । वह बिना बाधाके तीन खण्डको लांघ करके जलसे युक्त बादलके समान विशाल, पर्वतके शिखरके समान उंचे, अत्यन्त शोभासे शोभित, प्रकाशमान मन्दिरके ऊपर जा पहुँचे, वहाँ पहुँचके देखा, कि महाबाहु दुर्योधन

तत्र राजसहस्रैश्च कुरुभिश्चाऽभिसंवृतम् ॥ ४ ॥  
 धार्तराष्ट्रं महाबाहुं ददर्शाऽऽसीनमासने ।  
 दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि सौबलम् ॥ ५ ॥  
 दुर्योधनसमीपे तानासनस्थान्ददर्श सः ।  
 अभ्यागच्छति दाशार्हे धार्तराष्ट्रो महायशाः ॥ ६ ॥  
 उदतिष्ठत्सहामात्यः पूजयन्मधुसूदनम् ।  
 समेत्य धार्तराष्ट्रेण सहामात्येन केशवः ॥ ७ ॥  
 राजभिस्तत्र वाष्पेयः समागच्छद्यथावयः ।  
 तत्र जाम्बूनदमयं पर्यङ्कं सुपरिष्कृतम् ॥ ८ ॥  
 विविधास्तरणास्तीर्णमभ्युपाविशदच्युतः ।  
 तस्मिन्गां मधुपर्कं चाऽप्युदकं च जनार्दने ॥ ९ ॥  
 निवेदयामास तदा गृहान्राज्यं च कौरवः ।  
 तत्र गोविन्दमासीनं प्रसन्नादित्यवर्चसम् ॥ १० ॥  
 उपासाश्चक्रिरे सर्वे कुरवो राजभिः सह ।  
 ततो दुर्योधनो राजा वाष्पेयं जयतां वरम् ॥ ११ ॥  
 न्यमन्त्रयद्भोजनेन नाऽभ्यनन्दच्च केशवः ।  
 ततो दुर्योधनः कृष्णमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ १२ ॥

अनेक राजा और कौरवोंके सहित राजसिंहासनपर बैठे हैं। उसके समीप ही दुःशासन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि अपने अपने आसनोंपर बैठे थे । (३-६)

यदुनन्दन कृष्णको अभ्यागत रूपसे आया हुआ देखकर महा यशस्वी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन उनके सम्मानके निमित्त सब लोगोंके सहित आसनपरसे उठ खड़े हुए । श्रीकृष्ण पहिले उससे अनन्तर उसके इष्ट मित्रोंसे, और उनके बाद वहांपर बैठे हुए सब राजाओंसे यथा योग्य अवस्थाके अनुसार मिले ।

अनन्तर अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे युक्त सुन्दर स्वच्छ सुवर्णमय पलङ्ग पर बैठ गये । तब कुरुराजने उनके सत्कारके निमित्त गऊ, मधुपर्क, जल, घर, राज्य, सबही निवेदन किया । कौरव लोग तथा दूसरे सब राजा लोग प्रसन्न, सूर्यके समान तेजस्वी और उत्तम पलङ्गके ऊपर बैठे हुए श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासना करने लगे । (६-११)

अनन्तर राजा दुर्योधनने विजयी श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रको भोजनके निमित्त निमन्त्रण दिया; परन्तु उन्होंने उसे



मृदुपूर्वं शठोदकं कर्णमाभाष्य कौरवः ।

कस्मादन्नानि पानानि वासांसि शयनानि च ॥ १३ ॥

त्वदर्थमुपनीतानि नाऽग्रहीस्त्वं जनार्दन ।

उभयोश्च ददत्साद्यमुभयोश्च हिते रतः ॥ १४ ॥

सम्बन्धी दयितश्चासि धृतराष्ट्रस्य माधव ।

त्वं हि गोविन्द धर्मार्थौ वेत्थ तत्त्वेन सर्वशः ॥

तत्र कारणमिच्छामि श्रोतुं चक्रगदाधर ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच—स एवमुक्तो गोविन्दः प्रत्युवाच महामनाः ।

उच्यन्मेघस्वनः काले प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥ १६ ॥

अलघूकृतमग्रस्तम्भनिरस्तमसंकुलम् ।

राजीवनेत्रो राजानं हेतुमद्वाक्यमुत्तमम् ॥ १७ ॥

कृतार्था भुञ्जते दूताः पूजां गृह्णन्ति चैव ह ।

कृतार्थं मां सहाभात्यं समर्चिष्यसि भारत ॥ १८ ॥

स्वीकार नहीं किया । इससे कुरुराज दुर्योधनने कर्णको सम्बोधन करके उनके द्वारा यदुपति कृष्णको देखनेमें विनीतभावसेयुक्त परंतु जिसका पर्यवसान शठतामें है, ऐसा वचन कहा । हे जनार्दन ! आपके निमित्त अन्न, पान, वसन, शयन, आदिके योग्य सब वस्तुएं तैयार हुई हैं, परन्तु आपने उनमेंसे कुछ भी ग्रहण नहीं किया, इसका कारण क्या है ? हे माधव ! आपने कुरु पाण्डव दोनों पक्षको सहायता दी है; तथा दोनोंहीके हितके अनुष्ठानमें लगे हुए हैं; आप धृतराष्ट्रके मुख्य सम्बन्धी और प्रीतिके पात्र हैं; धर्म और अर्थके सम्पूर्ण तत्त्व आपको विदित हैं; इससे हे चक्र और गदाके धारण करने वाले गोविन्द !

सब प्रकारसे योग्य पात्र होकर भी आपने जो मेरी समर्पण की हुई वस्तुओंको नहीं ग्रहण किया, इसका कारण क्या है ? हम लोग इसको सुननेकी इच्छा करते हैं । (११-१५)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजीवलोचन कृष्ण उनके इस वचनको सुन कर अपनी विशाल दहिनी भुजाको उठाकर वर्षाकालके मेघके समान गम्भीर स्वरसे युक्त सुन्दर हेतु और उत्तम फलको देनेवाले वचनसे प्रत्युत्तर किया, कि हे भारत ! दूत लोग अपने कार्यको पूरा करनेपरही, जिसके निकट जाते हैं उनकी पूजा ग्रहण करते तथा उनके अन्न आदि वस्तुओंको भी भोजन करते हैं । इनसे जब मैं कृतकार्य होऊंगा, तब

एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रो जनार्दनम् ।  
 न युक्तं भवताऽस्मासु प्रतिपत्तुमसाम्प्रतम् ॥ १९ ॥  
 कृतार्थं वाऽकृतार्थं च त्वां वयं मधुसूदन ।  
 यतामहे पूजयितुं दाशार्हं न च शक्नुमः ॥ २० ॥  
 न च तत्कारणं विद्मो यस्मिन्नो मधुसूदन ।  
 पूजां कृतां प्रीयमाणैर्नाऽमंस्थाः पुरुषोत्तम ॥ २१ ॥  
 वैरं नो नास्ति भवता गोविन्द न च विग्रहः ।  
 स भवान्प्रसमीक्ष्यैतन्नेदृशं वक्तुमर्हति ॥ २२ ॥  
 वैशम्पायन उवाच-एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रं जनार्दनः ।  
 अभिवीक्ष्य सहामात्यं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ २३ ॥  
 नाऽहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नाऽर्थकारणात् ।  
 न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथञ्चन ॥ २४ ॥  
 सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः ।

आप मेरे तथा मेरे साथियोंका इच्छा-  
नुसार सत्कार कीजियेगा । ( १६—१८ )

श्रीकृष्णके इस वचनको सुनकर, दुर्योधन फिर उनसे बोले; कि हम लोगों के सङ्ग आपको इस प्रकारका व्यवहार करना युक्तिसे पूरित नहीं है; आप चाहे कृतकार्य हों, अथवा न हों; उसको हम लोग नहीं मानते हैं; केवल यदुकुल के सम्बन्धसेही मैं पूजा करनेका यत्न कर रहा हूं, परन्तु यत्न करनेपर भी कुछ नहीं कर सकता हूं । हे मधुसूदन! हम लोग प्रीतिके सहित आपकी पूजा करनेके निमित्त उत्सुक हैं, परन्तु आप न जाने किस कारणसे उसे स्वीकार नहीं करते हैं; इसे हम लोग कुछ भी नहीं समझ सकते हैं । हे गोविन्द !

आपके सङ्ग हम लोगोंकी कुछ शत्रुता भी नहीं है, और कभी युद्धका विवाद भी नहीं हुआ है; इससे विचार कर देखनेसे आपका यह वचन किसी प्रकारसे युक्ति-सङ्गत नहीं मालूम होता है । ( १९—२२ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रजी दुर्योधनके प्रति बहुत हंसकर बोले, मैं काम, क्रोध, अर्थ, लोभ, द्वेष और हेतुवाद आदि किसी प्रकारसे भी धर्मको नहीं छोड़ सकता हूं । हे राजन् ! जिसके ऊपर किसीकी प्रीति रहती है, वह उसीका अन्न भोजन करता है; अथवा जो विपद्ग्रस्त होता है, वह भी दूसरेका दिया हुआ अन्न भोजन करता है; परन्तु आपने

न च सम्प्रीयसे राजन्न चैवाऽऽपद्गता वयम् ॥ २५ ॥  
 अकस्माद् द्वेष्टि वै राजञ्जन्मप्रभृति पाण्डवान् ।  
 प्रियानुवर्तिनो भ्रातृन्सर्वैः समुदितान्गुणैः ॥ २६ ॥  
 अकस्माच्चैव पार्थानां द्वेषणं नोपपद्यते ।  
 धर्मे स्थिताः पाण्डवेयाः कस्तान्किं वक्तुमर्हति ॥ २७ ॥  
 यस्तान्द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु ।  
 ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ २८ ॥  
 कामक्रोधानुवर्ती हि यो मोहाद्विरुह्यते ।  
 गुणवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ २९ ॥  
 यः कल्याणगुणाज्जातीन्मोहाल्लोभादिदृक्षते ।  
 सोऽजितात्माऽजितक्रोधो न चिरं तिष्ठति श्रियम् ॥ ३० ॥  
 अथ यो गुणसम्पन्नान् हृदयस्याऽप्रियानपि ।  
 प्रियेण कुरुते वश्यांश्चिरं यशसि तिष्ठति ॥ ३१ ॥

भी मेरी प्रीतिका कोई कार्य नहीं किया है, और मैं भी आपद्-ग्रस्त नहीं हुआ हूँ; तब मैं कैसे आपका अन्न ग्रहण कर सकता हूँ ? (२३-२५)

हे राजन्! आप विना कारण ही अपने प्रिय कार्यों को करनेवाले, सब गुणों से युक्त, निज भ्राता पाण्डवों के सङ्ग जन्मसे वैर करते चले आते हैं। विना कारण उनके सङ्ग शत्रुता करना किसी प्रकार से उचित नहीं है। पाण्डव लोग सब दिनों से आपके अनुकूल हैं; उन्हें कोई क्या कुछ कह सकता है? जो पुरुष उन लोगों से वैर करता है, वह हमारा भी शत्रु है, जो उन लोगों के अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल ही है; धर्म करनेवाले पाण्डवों से मैं पृथक्

नहीं हूँ। (२६-२८)

काम, क्रोध, आदि विषयों के वश में होकर जो मूढ़-बुद्धि पुरुष अत्यन्त मोह में फँसकर गुणवान् मनुष्यों के संग विरोध करता है, उसको पण्डितों ने पुरुषों में अधम पुरुष कहा है। इन्द्रियों के वश में रहनेवाला जो अधम पुरुष क्रोध और लोभ में फँसकर उत्तम गुणों से युक्त जाति वालों को सदा ही लोभ की दृष्टि से देखता है, वह कभी बहुत दिन तक सुख सम्पत्तिके पद पर प्रतिष्ठित नहीं रह सकता। परन्तु जो बुद्धिमान मनुष्य अपने हृदय के अप्रिय होने पर भी गुणवान् मनुष्यों को प्रिय कार्यों से अपने वश में कर सकता है, वह सब दिन यश के उत्तम मार्ग से गमन

सर्वमेतन्न भोक्तव्यमन्नं दुष्टाभिसंहितम् ।  
 क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मतिः ॥ ३२ ॥  
 एवमुक्त्वा महाबाहुर्दुर्योधनममर्षणम् ।  
 निश्चक्राम ततः शुभ्राद्द्वार्तराष्ट्रनिवेशनात् ॥ ३३ ॥  
 निर्याय च महाबाहुर्वासुदेवो महामनाः ।  
 निवेशाय ययौ वेदम विदुरस्य महात्मनः ॥ ३४ ॥  
 तमभ्यगच्छद् द्रोणश्च कृपो भीष्मोऽथ बाह्लिकः ।  
 कुरवश्च महाबाहुं विदुरस्य गृहे स्थितम् ॥ ३५ ॥  
 त ऊचुर्माधवं वीरं कुरवो मधुसूदनम् ।  
 निवेदयामो वाष्पेय सरत्नांस्ते गृहान्वयम् ॥ ३६ ॥  
 तानुवाच महातेजाः कौरवान्मधुसूदनः ।  
 सर्वे भवन्तो गच्छन्तु सर्वा मेऽपचितिः कृता ॥ ३७ ॥  
 यातेषु कुरुषु क्षत्ता दाशार्हमपराजितम् ।  
 अभ्यर्चयामास तदा सर्वकामैः प्रयत्नवान् ॥ ३८ ॥  
 ततः क्षत्ताऽन्नपानानि शुचीनि गुणवन्ति च ।  
 उपाहरदनेकानि केशवाय महात्मने ॥ ३९ ॥

करता है। इससे इन सब बातोंका विचार करके देखनेसे आपका यह दुष्ट भावोंसे पूरित अशुभ-अन्न कभी ग्रहण तथा भोजन करनेके योग्य नहीं है, मैं एक मात्र विदुरके घर भोजन करूंगा यही मेरा निश्चय है। (२९-३२)

महा बुद्धिमान महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्र, किसीके वचनको न सहनेवाले दुर्योधनसे ऐसा कह कर, मणिरत्नोंसे प्रकाशित उनके राजभवनसे निकलकर निवास करनेके लिये विदुरके घर चले गये। कृष्णके वहाँपर पहुँच जानेपर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, बाह्लिक आदि

कौरवोंने उनके निकट गमन किया। उन कौरवोंने बल और पराक्रमसे युक्त कृष्णसे कहा, हे मधुसूदन ! हम लोग अनेक मणिरत्नोंसे पूरित घर सब आपके समर्पण करते हैं। (३३-३६)

परन्तु महा तेजस्वी कृष्ण उन लोगोंसे यही वचन बोले, कि आप लोगोंके यहां पर आगमन करनेहीसे मेरी पूरी पूजा हो चुकी; अब आप लोग अपने अपने स्थानको जाइये। कौरवोंके लौट जानेपर विदुरने परम यत्नवान होकर भक्तिपूर्वक मधुसूदन कृष्ण भगवानकी पूजा की। अनन्तर उन्होंने महात्मा कृष्णको

तैस्तर्पयित्वा प्रथमं ब्राह्मणान्मधुसूदनः ।

वेदविद्भ्यो ददौ कृष्णः प्रथमं द्रविणान्यपि ॥ ४० ॥

ततोऽनुयायिभिः सार्धं मरुद्भिरिव वासवः ।

विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च ॥ ४१ ॥ [३१७५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

दुर्योधनसंवादे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

वैशम्पायन उवाच—तं भुक्तवन्तमाश्वस्तं निशायां विदुरोऽब्रवीत् ।

नेदं सम्यग्व्यवसितं केशवाऽऽगमनं तव ॥ १ ॥

अर्थधर्मातिगो मन्दः संरम्भी च जनार्दन ।

मानघ्नो मानकामश्च वृद्धानां शासनानिगः ॥ २ ॥

धर्मशास्त्रातिगो मूढो दुरात्मा प्रग्रहं गतः ।

अनेयः श्रेयसां मन्दो धार्तराष्ट्रो जनार्दन ॥ ३ ॥

कामात्मा प्राज्ञमानी च मित्रधुकसर्वशङ्किता ।

अनेक गुणोंसे युक्त भोजन योग्य बहुतसा पवित्र अन्न जल निवेदन किया । मधुसूदन कृष्ण पहिले उन सब भोजनोंके सङ्ग बहुतसा धन दान देकर वेदके जानने वाले ब्राह्मणोंको उत्तम प्रकारसे तृप्त किया; अनन्तर मरुत् देवताओंमें बैठे हुए इन्द्रकी भांति अपने साथियोंके सङ्ग मिलकर बचे हुए अन्न आदिको भोजन किया । ( ३७-४१ ) [ ३१७५ ]

उद्योगपर्वमें एकनव्वे अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें बानव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्णके भोजनकर चुकनेपर, विरामके अनन्तर रातके समय विदुर उनसे कहने लगे, हे जनार्दन कृष्ण ! आपका यहाँपर आना पूरी बुद्धिमानीका कार्य

नहीं हुआ है; क्योंकि दुर्योधन बड़ा नीचबुद्धि, धर्म-अर्थका विरोधी और महा क्रोधी है । अपने मानकी इच्छासे वह अनायास ही माननीय लोगोंके मानको नष्ट करता है, वृद्धोंके शासनमें नहीं चलता, धर्मशास्त्रकी आज्ञाको लांघ करके कार्य करता है । हे कृष्ण ! उसकी मूढता और नीचताकी बात क्या कहूं । वह ऐसा मूर्ख और हठी है, कि हित चाहनेवाले लोगोंकी भी बातको नहीं मानता है । कोई कुछ उपकार करे, उसका पलटा देना तो दूर रहा; वह उलटे अपकारहीकी चेष्टा किया करता है । वह महा कृतघ्न, कामप्रिय, मिथ्यावादी, धर्मको त्यागनेवाला, पाण्डितोंसे अभिमानी, मित्रद्रोही

अकर्ता चाऽकृतज्ञश्च त्यक्तधर्मा प्रियानृतः ॥ ४ ॥

मूढश्चाऽकृतबुद्धिश्च इन्द्रियाणामनीश्वरः ।

कामानुसारी कृत्येषु सर्वेष्वकृतनिश्चयः ॥ ५ ॥

ऐतैश्चाऽन्यैश्च बहुभिर्दोषैरेव समन्वितः ।

त्वयोच्यमानः श्रेयोऽपि संरम्भान्न ग्रहीष्यति ॥ ६ ॥

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे द्रोणपुत्रे जयद्रथे ।

भूयसीं वर्तते वृत्तिं न शमे कुरुने मनः ॥ ७ ॥

निश्चितं धार्तराष्ट्राणां सकर्णानां जनार्दन ।

भीष्मद्रोणमुखान्पार्थानशक्ताः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ८ ॥

सेनासमुदयं कृत्वा पार्थिवं मधुसूदन ।

कृतार्थं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः ॥ ९ ॥

एकः कर्णः पराञ्जेतुं समर्थ इति निश्चितम् ।

धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः स शमं नोपयास्यति ॥ १० ॥

संविच्च धार्तराष्ट्राणां सर्वेषामेव केशव ।

सबके निकट सदा शङ्कित रहनेवाला मूढ, नीच बुद्धि, इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाला स्वेच्छाचारी और सब कार्योंमें चञ्चल चित्तका पुरुष है । (१-५)

मैंने जो इन सब दोषोंका वर्णन किया है; इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे दोष दुर्योधनमें विद्यमान हैं । इससे यदि आप मङ्गलदायक तथा हितकारी वचन कहेंगे तौ भी वह क्रोधके वशमें होकर कदापि उसको स्वीकार न करेगा । भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा; जयद्रथ आदि वीरोंसे उसे विजयकी बहुत ही आशा है; इससे वह शान्ति स्थापनके निमित्त इच्छा नहीं करता । हे जनार्दन ! धृतराष्ट्रके

पुत्रों तथा कर्ण आदिक दुष्ट पुरुषोंका इस प्रकार निश्चय है, कि भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि वीरों के विरुद्ध युद्ध करना तो दूर रहे पाण्डव लोग उनकी ओर भी न देख सकेंगे । हे मधुसूदन ! अविचारी मूर्ख दुर्योधन राजाओंकी सेनाओंको बटोरकर अपनेको कृतार्थ समझ रहा है । उसकी नीच बुद्धि और दुराशाकी बात मैं कहां तक कहूं, उसे यह निश्चय है, कि अकेला कर्ण ही पाण्डवोंको जीत लेगा; इससे शान्ति स्थापनके निमित्त उसकी कभी प्रवृत्ति न होगी । (६-१०)

हे कृष्ण ! आप कौरव और पाण्डवोंके बीच सन्धि स्थापन करनेकी इच्छा

शमे प्रयतमानस्य तव सौभ्रात्रकाङ्क्षिणः ॥ ११ ॥  
 न पाण्डवानामस्माभिः प्रतिदेयं यथोचितम् ।  
 इति व्यवसितास्तेषु वचनं स्यान्निरर्थकम् ॥ १२ ॥  
 यत्र सूक्तं दुरुक्तं च समं स्यान्मधुसूदन ।  
 न तत्र प्रलपेत्प्राज्ञो बधिरेष्विव गायनः ॥ १३ ॥  
 अविजानत्सु मूढेषु निर्मर्यादेषु माधव ।  
 न त्वं वाक्यं ब्रुवन्मुक्तश्चाण्डालेषु द्विजो यथा ॥ १४ ॥  
 सोऽयं बलस्थो मूढश्च न करिष्यति ते वचः ।  
 तस्मिन्निरर्थकं वाक्यमुक्तं सम्पत्स्यते तव ॥ १५ ॥  
 तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां पापचेतसाम् ।  
 तव मध्यावतरणं मम कृष्ण न रोचते ॥ १६ ॥  
 दुर्बुद्धीनामशिष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम् ।  
 प्रतीपं वचनं मध्ये तव कृष्ण न रोचते ॥ १७ ॥  
 अनुपासितवृद्धत्वाच्छ्रियो दर्पाच्च मोहितः ।

करते हैं, सो उचित है; परन्तु धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंकी यह प्रतिज्ञा है, कि पाण्डवोंको हम लोग कोई वस्तु भी उचित रीतिसे प्रदान न करेंगे। इससे जो लोग ऐसा निश्चय किये हुए हैं, उनके निमित्त कोई हितकारी वचनका प्रयोग करनेसे भी अवश्य निष्फल होगा इसमें सन्देह ही क्या है? हे मधुसूदन! जहाँपर भली बुरी सब बात एक ही समान हैं, उस स्थानपर बुद्धिमान पुरुषको बाधिरके समीप गीत गानेकी भांति वृथा वाक्योंका व्यय करना उचित नहीं है। ११-१२

हे माधव! चण्डालके निकट ब्राह्मण की भांति उन मर्यादा रहित मूर्खोंकी मण्डलीके बीच आपको वाक्यव्यय

करना किसी प्रकारसे युक्तिसङ्गत न होगा। दुर्योधन अपने बलके घमण्डमें चूर है, इससे वह आपका वचन कभी स्वीकार न करेगा, आप उसके समीप जो कुछ वचन कहेंगे, वे सब ही निरर्थक होंगे। हे कृष्ण! वे सब नीचबुद्धि दुष्ट और पापी लोग जब एक स्थानपर बैठे रहेंगे, उस समय उनके बीचमें आपका जाना तथा उन लोगोंके विरुद्ध बातोंका कहना मेरे मतमें उत्तम नहीं है। कभी बुद्धिमान् पुरुषोंकी उपासना न करनी, अत्यन्त बड़े ऐश्वर्यकी प्रभुता पाना, अहंकारसे भरे रहना, युवा अवस्था और क्रूर-स्वभाव तथा किसीकी बातोंको न सहना इत्यादि कारणों-

वयोदर्पादिमर्षाच्च न ते श्रेयो ग्रहीष्यति ॥ १८ ॥

बलं बलवदप्यस्य यदि वक्ष्यसि माधव ।

त्वय्यस्य महती शङ्का न करिष्यति ते वचः ॥ १९ ॥

नेदमद्य युधा शक्यामिन्द्रेणापि सहाऽमरैः ।

इति व्यवसिताः सर्वे धार्तराष्ट्रा जनार्दन ॥ २० ॥

तेष्वेवमुपपन्नेषु कामक्रोधानुवर्तिषु ।

समर्थमपि ते वाक्यमसमर्थं भविष्यति ॥ २१ ॥

मध्ये तिष्ठन्हस्त्यनीकस्य मन्दो रथाश्वयुक्तस्य बलस्य मूढः ।

दुर्योधनो मन्यते वीतभीतिः कृत्स्ना मयेयं पृथिवी जितेति ॥ २२ ॥

आशंसते वै धृतराष्ट्रस्य पुत्रो महाराज्यमसप्तनं पृथिव्याम् ।

तस्मिञ्शमः केवलो नोपलभ्यो बद्धं सन्तं मन्यते लब्धमर्थम् ॥ २३ ॥

पर्यस्तेयं पृथिवी कालपका दुर्योधनार्थं पाण्डवान्योद्धुकामाः ।

समागताः सर्वयोधाः पृथिव्यां राजानश्च क्षितिपालैः समेताः ॥ २४ ॥

से दुर्योधन आपकी हितकारी बातोंको न मानेगा । (१६-१८)

हे कृष्ण ! उसकी सेना भी अत्यन्त बलवान है, और तुम्हारे ऊपर वह बहुत शङ्कित रहता है; इसीसे आपकी बातोंको कभी न ग्रहण करेगा । हे जनार्दन ! धृतराष्ट्रके पुत्रोंका ऐसा निश्चय है, कि सब देवताओंके सहित साक्षात् इन्द्र भी आवें तौ भी मेरी सेनाके बलको नाश नहीं कर सकेंगे । इस लिये ऐसी आशा करनेवाले; काम क्रोधके वशवर्ती दुर्योधनके निकट तुम जिन बातोंका प्रसङ्ग करोगे; वे यथार्थमें अर्थयुक्त होने पर भी निरर्थक हो जावेंगी । (१९-२१)

नीच बुद्धि, मूढ, दुर्योधन हाथी,

घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त महासेनामें निवास करनेपर भयसे रहित होकर अब यह समझता है, कि सम्पूर्ण पृथ्वी मेरी मुट्ठीके भीतर है; और यही समझकर वह इस अखिल भूमण्डलपर निष्कण्टक राज्य करनेकी आकांक्षा करता है; इससे बिना युद्धके उसके समीप शान्ति स्थापित करना किसी प्रकारसे संभव नहीं होता । जो धन उसे एकवार मिल गया है, वह सदा ही उसके निकट उपास्थित रहेगा; कभी उसके हाथसे बाहर न होगा, ऐसा ही उसे ध्रुव-निश्चय है । हा ! इस मूर्ख दुर्योधनके निमित्त बोध होता है, कि समस्त पृथ्वीके वीरोंका नाश होगा; क्योंकि उसकी सहायताके वास्ते सम्पूर्ण



सर्वे चैते कृतवैराः पुरस्ताच्चया राजानो हतसाराश्च कृष्ण ।  
 तवोद्वेगात्संश्रिता धार्तराष्ट्रान्सुसंहताः सह कर्णेन वीराः ॥ २५ ॥  
 त्यक्तात्मानः सह दुर्योधनेन हृष्टा योद्धुं पाण्डवान्सर्वयोधाः ।  
 तेषां मध्ये प्रविशेथा यदि त्वं न तन्मतं मम दाशार्हवीर ॥ २६ ॥  
 तेषां समुपविष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम् ।  
 कथं मध्यं प्रपद्येथाः शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥ २७ ॥  
 सर्वथा त्वं महाबाहो देवैरपि दुरुत्सहः ।  
 प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जानामि तव शत्रुहन् ॥ २८ ॥  
 या मे प्रीतिः पाण्डवेषु भूयः सा त्वयि माधव ।  
 प्रेम्णा च बहुमानाच्च सौहृदाच्च ब्रवीम्यहम् ॥ २९ ॥  
 या मे प्रीतिः पुष्कराक्ष त्वद्दर्शनसमुद्भवा ।  
 सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्माऽसि देहिनाम् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्गीतानुपर्वणि

श्रीकृष्णविदुरसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ [ ३२०५ ]

दुष्ट-क्षत्रिय और राजा लोग कालसे प्रेरित होकर पाण्डवोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे सब ओरसे आकर इकट्ठे हुए हैं । ( २२-२४ )

ये राजालोग पहिले आपके संग शत्रुता करके श्रीभ्रष्ट हुए थे, वे ही सब आप के भयसे दुःखी होकर अब इस समय कर्णके संग मिल कर दुर्योधनके भरोसे हैं और उसका कार्य सिद्ध करनेके निमित्त अपना प्राण पर्यंत देकर पाण्डवोंसे युद्ध करनेके निमित्त बहुतही आनन्दित हैं । हे यदुकुलभूषण कृष्ण ! इससे उन लोगोंके बीचमें आपका प्रवेश करना मेरे मतसे किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होता है । हे शत्रुओंके जीतनेवाले ! उन

दुष्टबुद्धि अनगिनत शत्रुओंके बीच आप कैसे गमन करेंगे । ( २५-२७ )

हे शत्रुनाशन महाबाहो ! आप देव-तोंसे भी अजेय हैं, इससे आपको सब कुछ सम्भव हो सकता है, आपका प्रभाव बल, कुछ भी मुझसे छिपा नहीं है । हे कृष्ण ! पाण्डवोंके ऊपर मेरी जैसी प्रीति है मैं तुमसे प्रेम, और सुहृदताके कारण से ही ये सब वचन कहता हूं । हे पुण्डरीकाक्ष ! तुम्हें देखनेसे मेरे अंतःकरण में जैसी प्रीति उत्पन्न हुई है, उसे मैं क्या वर्णन करूं, तुम सब प्राणियोंके अन्तर्यामी हो, इससे सबके मनकी बात जानते हो । ( २८-३० ) [ ३२०५ ]

उद्योगपर्वमें बानव्हे अध्याय समाप्त ।

श्रीभगवानुवाच-- यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयाद्विचक्षणः ।

यथा वाच्यस्त्वद्विधेन भवता मद्भिः सुहृत् ॥ १ ॥

धर्मार्थयुक्तं तथ्यं च यथा त्वय्युपपद्यते ।

तथा वचनमुक्तोऽस्मि त्वयैतत्पितृमातृवत् ॥ २ ॥

सत्यं प्राप्तं च युक्तं वाऽप्येवमेव यथात्थ माम् ।

शृणुष्वागमने हेतुं विदुराऽवहितो भव ॥ ३ ॥

दौरात्म्यं धार्तराष्ट्रस्य क्षत्रियाणां च वैरताम् ।

सर्वमेतदहं जानन्क्षत्तः प्राप्तोऽद्य कौरवान् ॥ ४ ॥

पर्यस्तां पृथिवीं सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम् ।

यो मोचयेन्मृत्युपाशात्प्राप्नुयाद्धर्ममुत्तमम् ॥ ५ ॥

धर्मकार्यं यतञ्शक्त्या नो चेत्प्राप्नोति मानवः ।

प्राप्तो भवति तत्पुण्यमत्र मे नास्ति संशयः ॥ ६ ॥

मनसा चिन्तयन्पापं कर्मणा नाऽतिरोचयन् ।

न प्राप्नोति फलं तस्येत्येवं धर्मविदो विदुः ॥ ७ ॥

उद्योगपर्वमें तिरानवे अध्याय ।

श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे विदुर ! महाबुद्धिमान् पण्डित लोग जैसा कहते हैं; और मेरे समान सुहृद् मित्रके लिये तुम्हारे समान सुहृद् पुरुषको जैसा कहना योग्य है, और तुमको जैसे धर्म तथा अर्थसे युक्त वचनोंके कहनेका अभ्यास है, तुमने पिता माताकी भांति मुझसे वैसे ही वचन कहे । तुम्हारे ये सब वचन सब प्रकारसे युक्ति-सङ्गत, सत्य और उत्तम पुरुषोंके अनुकूल हैं, इस में कुछ भी सन्देह नहीं है; तौभी एकवार चित्त लगाकर मेरे यहांपर आनेका कारण सुनो । ( १-३ )

हे विदुर ! मैं दुर्योधनकी नीचता

और सब क्षत्रियोंकी शत्रुताको खूब ही जानता हूं; इन सब बातोंको जानकर भी आज मैं कौरवोंकी मण्डलीके बीच उपस्थित हुआ हूं । जो पुरुष हाथी, घोड़े, रथ आदिसे युक्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीको मृत्युके मुंहसे छुड़ाने में समर्थ है, अवश्य ही सबसे उत्तम धर्मका लाभ कर सकता है । मैं इस बातको निःसन्देह कह सकता हूं, कि मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार कोई धर्मके कार्यका अनुष्ठान करके यदि उसे पूरा न कर सके, तौ भी उसके पुण्यका फल पाता है । और मनके भीतर कोई पाप कर्मका विचार करके यदि उसका अनुष्ठान न करे, तो उसके

सोऽहं यतिष्ये प्रशमं क्षत्तः कर्तुममायया ।  
 कुरूणां सृञ्जयानां च संग्रामे विनशिष्यताम् ॥ ८ ॥  
 सेयमापन्नमहाघोरा कुरूष्वेव समुत्थिता ।  
 कर्णदुर्योधनकृता सर्वे ह्येते तदन्वयाः ॥ ९ ॥  
 व्यसने क्लिश्यमानं हि यो मित्रं नाऽभिपद्यते ।  
 अनर्थाय यथाशक्ति तन्नृशंसं विदुर्बुधाः ॥ १० ॥  
 आकेशग्रहणान्मित्रमकार्यात्सन्निवर्त्तयन् ।  
 अवाच्यः कस्यचिद्भवति कृतयत्नो यथाबलम् ॥ ११ ॥  
 तत्समर्थं शुभं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।  
 धार्तराष्ट्रः सहामात्यो ग्रहीतुं विदुराऽर्हति ॥ १२ ॥  
 हितं हि धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां तथैव च ।  
 पृथिव्यां क्षत्रियाणां च यतिष्येऽहममायया ॥ १३ ॥  
 हिते प्रयतमानं मां शङ्केद् दुर्योधनो यदि ।

फलके भोगनेका अधिकारी भी नहीं होता । मैंने तुमसे जो कुछ वचन कहे, धर्मको जाननेवाले पण्डितोंने भी उसी को माना है । ( ४-७ )

हे पापरहित विदुर ! संग्रामके निमित्त उपस्थित हुए कौरव और सृञ्जयोंमें शान्ति स्थापनके वास्ते छल और कपटसे रहितही होकर मैं यत्न करूंगा । यह उपस्थित महा घोर आपद् कौरवों से उत्पन्न हुई है; क्योंकि कर्ण और दुर्योधन इसके चलानेवाले और ये इकट्ठे हुए सब क्षत्रिय तथा राजा लोग इनके अनुयायी हैं । विपदमें फंसे हुए और क्लेशित मित्रको जो पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार विनयपूर्वक उस विपदसे छुड़ानेकी चेष्टा नहीं करता, पाण्डितलोग उसे

नीच पुरुष कहते हैं । ( ८-१० )

मित्र अपनी शक्तिके अनुसार यत्न करके चाहे जिस उपायसे हो सके, निज मित्रको बुरे कार्यसे रोके, उसमें वह निन्दनीय नहीं हो सकता । हे विदुर ! इससे दुर्योधन तथा उसके अनुगामी लोगोंको मेरे कहे हुए, कार्य साधन करनेवाले धर्म और अर्थसे भरे, शुभ दायक तथा हितकर वचनोंको ग्रहण करना उचित है । केवल धृतराष्ट्र के पुत्रोंके वास्ते ही नहीं, किन्तु मैं पाण्डव, सृञ्जय और सम्पूर्ण पृथ्वीके क्षत्रिय वीरोंके हित साधनके निमित्त निष्कपट चित्तसे यज्ञ करूंगा । ११-१३

मेरे हितके अनुष्ठानमें तत्पर होनेपर, यदि दुर्योधन मेरे ऊपर कोई शङ्का

हृदयस्य च मे प्रीतिरानृण्यं च भविष्यति ॥ १४ ॥

ज्ञातीनां हि मिथो भेदे यन्मित्रं नाऽभिपद्यते ।

सर्वयत्नेन माध्यस्थं न तन्मित्रं विदुर्बुधाः ॥ १५ ॥

न मां ब्रूयुरधर्मिष्ठा मूढा ह्यसुहृदस्तथा ।

शक्तो नाऽवारयत्कृष्णः संरन्धान्कुरुपाण्डवान् ॥ १६ ॥

उभयोः साधयन्नर्थमहमागत इत्युत ।

तत्र यत्नमहं कृत्वा गच्छेयं नृष्ववाच्यताम् ॥ १७ ॥

मम धर्मार्थयुक्तं हि श्रुत्वा वाक्यमनामयम् ।

न चेदादास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति ॥ १८ ॥

अहापयन्पाण्डवार्थं यथावच्छमं कुरूणां यदि चाऽऽचरेयम् ।

पुण्यं च मे स्याच्चरितं महात्मन्मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात् ॥ १९ ॥

अपि वाचं भाषमाणस्य काव्यां धर्मारामार्थवतीमहिंसाम् ।

अवेक्षेरन्धार्तराष्ट्राः शमार्थं मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयुः ॥ २० ॥

करेगा, तौ भी मैं मित्रके कर्तव्य कार्योंको पूरा कर लूंगा। इससे मेरा चित्त अत्यंत प्रसन्न होगा। जातिके बीचमें जब आपस में फूट होती है, उस समय जो मित्र सब प्रकारसे यत्न करके उनकी मध्यस्थता स्वीकार नहीं करता, पण्डित लोग उसे मित्र ही नहीं कहते। सन्धिके निमित्त यत्न करनेका और भी एक कारण यह है कि जिसमें धर्महीन कुमित्र और मूढ लोग यह न कह सकें; कि कृष्ण समर्थ होनेपर भी क्रोधके वशवर्ती कौरव और पाण्डवोंको युद्धसे न रोक सके। (१४—१६)

मैं कौरव और पाण्डव दोनोंका कार्य सिद्ध करनेके निमित्त यहांपर आया हूं, इससे उस विषयमें यत्न करनेसे किसीकी

निन्दाका पात न होऊंगा। मूर्ख दुर्योधन यदि मेरे धर्म और अर्थसे भरे वचनोंको सुनकर उन्हें न ग्रहण करेगा तो वह सम्पूर्ण रूपसे कालके वशमें समझा जायगा और जो पाण्डवोंकी अर्थ हानि न करके मैं कौरवोंके बीच शान्ति स्थापन करनेमें समर्थ होऊंगा, तौ भी मेरा महाफल देनेवाला एक पुण्य कर्म सिद्ध होगा; और कौरव लोग भी मृत्युके फांसेसे छूट जायेंगे। (१७-१९)

इससे मैं बुद्धिमानोंके योग्य, धर्म और अर्थसे युक्त हिंसा रहित, जिन शुभ वचनोंका प्रसङ्ग करूंगा, यदि उन वचनोंको धृतराष्ट्रके पुत्र लोग अच्छी प्रकारसे विचारपूर्वक देखेंगे, तो अवश्य ही मेरा सम्मान करेंगे, तथा शान्तिके

न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः ।

क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच-इत्येवमुक्त्वा वचनं वृष्णीनामृषभस्तदा ।

शयने सुखसंस्पर्शं शिश्ये यदुसुखावहः ॥ २२ ॥ [ ३२२७ ]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच- तथा कथयतोरेव तयोर्वुद्धिमतोस्तदा ।

शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १ ॥

धर्मार्थकामयुक्ताश्च विचित्रार्थपदाक्षराः ।

श्रृण्वतो विविधा वाचो विदुरस्य महात्मनः ॥ २ ॥

कथाभिरनुरूपाभिः कृष्णस्याऽमिततेजसः ।

अकामस्येव कृष्णस्य सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ ३ ॥

ततस्तु स्वरसम्पन्ना बहवः सूतमागधाः ।

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः केशवं प्रत्यबोधयन् ॥ ४ ॥

निमित्त जो मेरा आगमन हुआ है, उसमें भी सहमत हो सकेंगे। मेरे ऊपर कोई बुरा आचरण करनेमें प्रवृत्त होंगे, तो उससे मुझको कौनसा भय है? मेरे क्रुद्ध होने-पर जैसे सिंहके सम्मुख साधारण पशु तथा जीवजन्तु नहीं ठहर सकते हैं, वैसेही सब कौरवोंके सहित ये सम्पूर्ण पृथ्वीके राजा लोग मेरेसंमुख न खड़े हो सकेंगे। ( २०-२१ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, यदुकुल-को सुख देनेवाले वृष्णिवंशियोंके स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रने विदुरके सङ्ग इस प्रकार से बातचीत करके अन्तमें परम सुख देनेवाली उत्तम और अत्यन्त कोमल शय्याके ऊपर शयन किया। ( २२ )

उद्योगपर्वमें तिरानव्वे अध्याय समाप्त [ ३२२७ ]

उद्योगपर्वमें चौरानव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमान विदुर और श्रीकृष्णचन्द्रकी ऊपर कही हुई रीतिके अनुसार बातचीत करते हुए वह उत्तम नक्षत्रोंसे युक्त शुभ रात्रि अत्यन्त सुखसे बीती। महा प्रतापी कृष्णके धर्म और अर्थके युक्त, पद और पदार्थके सहित मनोहर वचनोंको सुनकर विदुर तथा कृष्ण भी उचित वचनोंका प्रसङ्ग करने वाले विदुरके वचनोंसे तृप्त नहीं होते थे, उन दोनों महात्माओंकी अनिच्छाहीसे रात्रि बीत गयी। ( १-३ )

दूसरे दिन भोरके समय बहुतसे सूत, मागध और चान्दियोंने उत्तम और मीठे स्वर और शंख तथा नगाडोंके शब्द से श्रीकृष्णको जगाना आरम्भ किया।

तत उत्थाय दाशार्हं ऋषभः सर्वसात्वताम् ।  
 सर्वमावश्यकं चक्रे प्रातःकार्यं जनार्दनः ॥ ५ ॥  
 कृतोदकानुजप्यः स हुताग्निः समलंकृतः ।  
 ततश्चाऽऽदित्यमुच्यन्तमुपातिष्ठत माधवः ॥ ६ ॥  
 अथ दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।  
 सन्ध्यां तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हमपराजितम् ॥ ७ ॥  
 आचक्षेतां तु कृष्णस्य धृतराष्ट्रं सभागतम् ।  
 कुरुंश्च भीष्मप्रमुखान् राज्ञः सर्वाश्च पार्थिवान् ॥ ८ ॥  
 त्वामर्थयन्ते गोविन्द दिवि शक्रमिवाऽभराः ।  
 तावभ्यनन्दद्गोविन्दः साम्ना परमवल्गुना ॥ ९ ॥  
 ततो विमल आदित्ये ब्राह्मणेभ्यो जनार्दनः ।  
 ददौ हिरण्यं वासांसि गाश्चाऽश्वान् च परन्तपः ॥ १० ॥  
 विसृज्य बहुरत्नानि दाशार्हमपराजितम् ।  
 तिष्ठन्तमुपसङ्गम्य ववन्दे सारथिस्तदा ॥ ११ ॥  
 ततो रथेन शुभ्रेण सहता किङ्किणीकिना ।

यदुवांशियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रने उठ-  
 कर प्रातः कालके सब आवश्यक कार्यों-  
 को समाप्त किया; अनन्तर स्नान करके  
 जप और होमको पूरी रीतिसे समाप्त करके  
 सब प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत होकर  
 सूर्यकी उपासना करने लगे । ( ४-६ )

श्रीकृष्णचन्द्र इसी प्रकारसे सन्ध्या  
 वन्दन कर रहेथे, उसी अवसरमें दुर्यो-  
 धन और सुवलपुत्र शकुनि उनके समी-  
 प आकर कहने लगे, हे गोविन्द !  
 महाराज धृतराष्ट्र और भीष्म आदि  
 कौरव तथा पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा लोग  
 सभा मण्डपमें आकर, तुम्हारे आगमन-  
 की बाट देख रहे हैं जैसे देवता इन्द्रकी

प्रार्थना करते हैं । इस वचनको सुनकर  
 शत्रुनाशन जनार्दन कृष्णने उन  
 लोगोंका यथा रीतिसे संमान किया;  
 अनन्तर यह शुभ समय जानकर ब्राह्म-  
 णोंको सुवर्ण, वस्त्र, गऊ और घोड़े  
 आदि वस्तुओंका दान देने  
 लगे । ( ७-१० )

इस प्रकारसे जब वह बहुत सा धन  
 दान करके आसनपर बैठे तब उनके  
 दारुक सारथीने उन्हें प्रणाम किया,  
 और अत्यन्त शीघ्रतासे उत्तम घोड़ोंसे  
 युक्त सब प्रकारसे रत्नोंसे भूषित,  
 किङ्किणीयुक्त महामेघके समान गंभीर  
 शब्द करनेवाले शुभ्रवर्ण, बहुत बड़े

हयोत्तमयुजा शीघ्रमुपातिष्ठत दारुकः ॥ १२ ॥  
 तमुपस्थितमाज्ञाय रथं दिव्यं महामनाः ।  
 महाभ्रघननिर्घोषं सर्वरत्नविभूषितम् ॥ १३ ॥  
 अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा ब्राह्मणांश्च जनार्दनः ।  
 कौस्तुभं मणिमामुच्य श्रिया परमया ज्वलन् ॥ १४ ॥  
 कुरुभिः संवृतः कृष्णो वृष्णिभिश्चाऽभिरक्षितः ।  
 आतिष्ठत रथं शौरिः सर्वयादवनन्दनः ॥ १५ ॥  
 अन्वारुरोह दाशार्हं विदुरः सर्वधर्मवित् ।  
 सर्वप्राणभृतां श्रेष्ठं सर्वबुद्धिमतां वरम् ॥ १६ ॥  
 ततो दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।  
 द्वितीयेन रथेनैनमन्वयातां परन्तपम् ॥ १७ ॥  
 सात्यकिः कृतवर्मा च वृष्णीनां चाऽपरे रथाः ।  
 पृष्ठतोऽनुययुः कृष्णं गजैरश्वै रथैरपि ॥ १८ ॥  
 तेषां हेमपरिष्कारैर्युक्ताः परमवाजिभिः ।  
 गच्छतां घोषिणश्चित्ररथा राजन्विरेजिरे ॥ १९ ॥  
 सम्मृष्टसंसिक्तरजः प्रतिपेदे महापथम् ।

दिव्य रथको लेकर वहांपर उपस्थित हुआ । तब यदुवंशियोंके नेत्रको आनन्द देनेवाले महायशस्वी श्रीकृष्ण-चन्द्र अपने गलेमें कौस्तुभ मणि पहार, परम शोभासे प्रकाशमान होकर, अग्नि और ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करके उस रथपर चढ़े । (११-१४)

यद्यपि उस समय वह बहुतसे कौरव पक्षीय अनुचरोंसे युक्त थे, तौ भी वृष्णिवंशके बहुतसे लोग उनकी शरीर रक्षाके निमित्त वहांपर उपस्थित थे । सब लोगोंमें श्रेष्ठ, बुद्धिमान कृष्णके रथपर चढ़नेके अनन्तर सब धर्मके

तत्त्वको जाननेवाले बुद्धिमान विदुर उनके पीछे रथपर चढ़े । दुर्योधन और शकुनि उनके पश्चात् दूसरे रथपर चढ़के शत्रुनाशन श्रीकृष्णके अनुगामी हुए । सात्यकी, कृतवर्मा आदि वृष्णिवंशीय महारथ लोग भी कोई रथ, गज और कोई घोड़ेपर चढ़के उनके पीछे पीछे चलने लगे । (१५-१८)

हे महाराज वहांसे प्रस्थान करनेपर उन सब वीरोंके सुवर्णसे भूषित रथ और घोड़ोंका शब्द अत्यन्त मनोहर होता था; और वे सब रथ परम शोभा से शोभित हो रहे थे । महा तेजस्वी

राजर्षिचारितं काले कृष्णो धीमाञ्श्रिया ज्वलन् ॥ २० ॥  
 ततः प्रयाते दाशार्हं प्रावाद्यैकपुष्कराः ।  
 शङ्खाश्च दधिमरे तत्र वाद्यान्यन्यानि यानि च ॥ २१ ॥  
 प्रवीराः सर्वलोकस्य युवानः सिंहविक्रमाः ।  
 परिवार्य रथं शौरैरगच्छन्त परन्तपाः ॥ २२ ॥  
 ततोऽन्ये बहुसाहस्रा विचित्राद्भुतवाससः ।  
 असिप्रासायुधधराः कृष्णस्याऽऽसन्पुरःसराः ॥ २३ ॥  
 गजाः पञ्चशतास्तत्र रथाश्चाऽऽसन्सहस्रशः ।  
 प्रयान्तमन्वयुर्वीरं दाशार्हमपराजितम् ॥ २४ ॥  
 पुरं कुरूणां संवृत्तं द्रष्टुकामं जनार्दनम् ।  
 सवालवृद्धं सस्त्रीकं रथ्यागतमरिन्दम ॥ २५ ॥  
 वेदिकामाश्रिताभिश्च समाक्रान्तान्यनेकशः ।  
 प्रचलन्तीव भारेण योषिद्भिर्भवनान्युत ॥ २६ ॥  
 स पूज्यमानः कुरुभिः संशृण्वन्मधुराः कथाः ।  
 यथार्हं प्रतिसत्कुर्वन्प्रेक्षमाणः शनैर्ययौ ॥ २७ ॥

बुद्धिमान कृष्ण यथा समयमें राजर्षि-  
 योंके गमन करने योग्य मार्गपर पहुँचे।  
 दुर्योधनने पहिले ही उन मार्गको साफ  
 सुथरा और जल छिडकवाकर ठीक कर  
 रक्खा था। अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्रके  
 प्रस्थान करनेपर शङ्ख, भेरी आदि अनेक  
 भांतिके बाजे बजने लगे । ( १९-२१ )

सब लोगोंमें विख्यात शत्रुओं को  
 जीतनेवाले, सिंहके समान विक्रमी  
 अनगणित वीर योद्धा श्रीकृष्णके रथ-  
 को आगे-पीछे तथा चारों ओरसे घेरके  
 चले । उत्तम वेषोंसे भूषित कई सहस्र  
 सैनिक पुरुष तलवार, प्रास तथा सब  
 शस्त्रोंको हाथ में लेकर उनके आगे

आगे दौड़े । इसके अतिरिक्त पांच  
 सौ गजपति और सहस्र सहस्र रथी  
 श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे चलने लगे ।  
 हस्तिनापुरके रहनेवाले स्त्री, बालक,  
 बूढ़े और युवा लोग शत्रुनाशन श्रीकृष्ण  
 के दर्शनकी इच्छासे मार्गके किनारे  
 पर आकर खड़े हो गये । अटारियोंके  
 ऊपर स्त्रियाँ इतनी आकर इकट्ठी हुई  
 थीं, कि बोध होता था, उनके बोझसे  
 मन्दिर सहित वह अटारी पृथ्वीसे मिला  
 चाहती है । ( २२-२६ )

मधुसूदन कृष्ण कौरवोंकी पूजा ग्रह-  
 ण और उनके सङ्ग मधुर शब्दोंसे बात  
 चीत करते और सबकी ओर देखते तथा



ततः सभां समासाद्य केशवस्याऽनुयायिनः ।  
 सशङ्खैर्वेणुनिर्घोषैर्दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥ २८ ॥  
 ततः सा समितिः सर्वा राज्ञाममिततेजसाम् ।  
 सम्प्राकम्पत हर्षेण कृष्णागमनकाक्षया ॥ २९ ॥  
 ततोऽभ्याशगते कृष्णे समहृष्यन्नराधिपाः ।  
 श्रुत्वा तं रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३० ॥  
 आसाद्य तु सभाद्वारमृषभः सर्वसात्वताम् ।  
 अवतीर्य रथाच्छौरिः कैलासशिखरोपमात् ॥ ३१ ॥  
 नवमेघप्रतीकाशां ज्वलन्तीमिव तेजसा ।  
 महेन्द्रसदनप्रख्यां प्रविवेश सभां ततः ॥ ३२ ॥  
 पाणौ गृहीत्वा विदुरं सात्यकिं च महायशाः ।  
 ज्योतीष्यादित्यवद्राजन्कुरून्प्राच्छादयन्श्रिया ॥ ३३ ॥  
 अग्रतो वासुदेवस्य कर्णदुर्योधनावुभौ ।  
 वृष्णयः कृतवर्मा चाऽप्यासन्कृष्णस्य पृष्ठतः ॥ ३४ ॥  
 धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य भीष्मद्रोणादयस्ततः ।

परस्पर सत्कार करते हुए धीरे धीरे चलने लगे। अनन्तर कौरवोंकी सभाके समीप जानेपर उनके अनुयायियोंने शङ्ख भेरी और मृदंग आदिके शब्दोंसे सब दिशाओंको पूरित कर दिया। तब सभाके सब उत्तम स्वभावसे युक्त राजा लोग श्रीकृष्णका आगमन जानकर हर्ष और आनन्दसे भर गये; विशेष करके जल सहित बादलके समान उनके रथके शब्दको सुनकर उन सब लोगोंके रोएं खड़े होगये। ( २७—३० )

यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र सभाके द्वारपर पहुंचकर, कैलासपर्वतके शिखर के समान सुन्दर रथसे उतरे और

सात्यकी तथा विदुरका हाथ धरके सब ओर अपनी कौस्तुभ-मणिके मनोहर प्रकाशसे दूसरे सूर्यके समान प्रकाशित होते हुए, इन्द्रकी सभाके समान कौरवी सभाके बीचमें गये; और सूर्य जैसे अपनी किरण तथा तेजसे दूसरे तेजस्वी पदार्थोंके तेजको हीन कर देता है; वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्रने अपने तेजसे सम्पूर्ण कौरवोंको आच्छादित कर दिया। कर्ण और दुर्योधन कृष्णके संमुख और कृतवर्मा सात्यकी तथा वृष्णिवंशीय लोग उनके पीछे खड़े हुए। ३१-३४

भीष्म, द्रोण आदि सज्जन पुरुष महाराज धृतराष्ट्रको आगे करके,

आसनेभ्योऽचलन्सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ ३५ ॥  
 अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः ।  
 सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः ॥ ३६ ॥  
 उत्तिष्ठति महाराजे धृतराष्ट्रे जनेश्वरे ।  
 तानि राजसहस्राणि समुत्तस्थुः समन्ततः ॥ ३७ ॥  
 आसनं सर्वतोभद्रं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।  
 कृष्णार्थं कल्पितं तत्र धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ३८ ॥  
 सम्यमानस्तु राजानं भीष्मद्रोणौ च साधवः ।  
 अभ्यभाषत धर्मात्मा राज्ञश्चाऽन्यान्यथावयः ॥ ३९ ॥  
 तत्र केशवमानर्चुः सम्यगभ्यागतं सभाम् ।  
 राजानः पार्थिवाः सर्वे कुरवश्च जनार्दनम् ॥ ४० ॥  
 तत्र तिष्ठन्स दाशार्हो राजमध्ये परन्तपः ।  
 ततस्तानभिसम्प्रेक्ष्य नारदप्रमुखानृषीन् ॥ ४१ ॥  
 अभ्यभाषत दाशार्हो भीष्मं शान्तनवं शनैः ।  
 पार्थिवीं समितिं द्रष्टुमृषयोऽभ्यागता नृप ॥ ४२ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके संमानके निमित्त अपने  
 अपने आसनोंसे उठ खड़े हुए । उनके  
 सभामें आतेही प्रज्ञाचक्षु महा यशस्वी  
 राजा धृतराष्ट्र; भीष्म, द्रोण आदि सब  
 कौरवोंके सहित उसी समय अपने आस-  
 नोंसे उठ खड़े हुए । नरनाथ महाराज  
 धृतराष्ट्रके खड़े होनेपर वहांपर बैठे हुए  
 सहस्रों राजा उसी समय उठके खड़े  
 हुए । ( ३५—३७ )

अनन्तर राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञाके  
 अनुसार श्रीकृष्णके वास्ते सुवर्णयुक्त  
 रत्नोंसे जटित सर्वभद्र नामक आसन  
 रखा गया । इसी अवसरमें श्रीकृष्णचन्द्र  
 हंसते हंसते धृतराष्ट्र भीष्म, द्रोण और

दूमरे राजाओंसे सम्बन्ध और अवस्थाके  
 अनुसार यथा योग्य वन्दना और बात  
 चीत करने लगे; पृथ्वीके सब राजा  
 तथा कौरव लोगभी उनकी यथा विधिसे  
 पूजा और सम्मान करने लगे। (३८-४०)

पराये देशको जीतनेवाले श्रीकृष्ण  
 चन्द्रने सभामें राजाओंके बीचमें बैठकर  
 देखा कि पहिले मार्गमें जिन सब मह-  
 षियोंके सङ्ग में हुई थी; वे सब अभ्या-  
 गत रूपसे आपहुंचे हैं । नारद आदि  
 उन सबको देखतेही उन्होंने शान्तनुनन्दन  
 भीष्मको सींठे वचनोंसे यह कहा, हे  
 राजेन्द्र ! यह देखिये पवित्र आत्मा मुनि  
 लोग मर्त्य लोककी सभाको देखनेकी

निमन्त्र्यन्तामासनैश्च सत्कारेण च भूयसा ।  
 नैतेष्वनुपविष्टेषु शक्यं केनचिदासितुम् ॥ ४३ ॥  
 पूजा प्रयुज्यतामाशु मुनीनां भावितात्मनाम् ।  
 ऋषीञ्छान्तनवो दृष्ट्वा सभाद्वारमुपस्थितान् ॥ ४४ ॥  
 त्वरमाणस्ततो भृत्यानासनानीत्यचोदयत् ।  
 आसनान्यथ सृष्टानि महान्ति विपुलानि च ॥ ४५ ॥  
 मणिकाञ्चनचित्राणि समाजन्हुस्ततस्ततः ।  
 तेषु तत्रोपविष्टेषु गृहीतार्घेषु भारत ॥ ४६ ॥  
 निषसादाऽऽसने कृष्णो राजानश्च यथासनम् ।  
 दुःशासनः सात्यक्ये ददावासनमुत्तमम् ॥ ४७ ॥  
 विविंशतिर्ददौ पीठं काञ्चनं कृतवर्मणे ।  
 अविदूरे तु कृष्णस्य कर्णदुर्योधनावुभौ ॥ ४८ ॥  
 एकासने महात्मानौ निषीदतुरमर्षणौ ।  
 गान्धारराजः शकुनिर्गान्धारैरभिरक्षितः ॥ ४९ ॥  
 निषसादाऽऽसने राजा सहपुत्रो विशाम्पते ।  
 विदुरो मणिपीठे तु शुक्लस्पृर्ध्याजिनोत्तरे ॥ ५० ॥

इच्छासे यहांपर आये हैं; इन लोगोंके  
 निमित्त आसन, पाद्य, अर्घ आदि सब  
 सामग्री शीघ्र मंगवाइये और अत्यन्त  
 सत्कार करके इन सब मुनियोंको आसन  
 पर बैठाइये। जब तक ये लोग आसनपर  
 न बैठेंगे, तब तक किसीकी सामर्थ्य बैठने  
 को नहीं है इससे बहुत शीघ्र इन लोगोंकी  
 पूजाका विधान कीजिये। ( ४१-४४ )

भीष्मने सभाके द्वारपर देवर्षियोंको  
 आता हुआ देखकर उसी समय आतुर  
 होके सेवकोंको आज्ञा दी कि शीघ्र  
 आसन ले आओ। सेवकोंने उसी समय  
 मणि और सुवर्ण युक्त सुन्दर स्वच्छ

और पवित्र बड़े बड़े महामूल्य आसनों  
 को लाकर उपस्थित किया। हे महाराज !  
 मुनियोंके अर्घ पाद्य ग्रहण करने तथा  
 आसनपर बैठनेपर श्रीकृष्ण और सब  
 राजा लोग अपने अपने आसनोंपर बैठ  
 गये। दुःशासनने सात्यकीको एक उत्तम  
 सोनेका पीठा प्रदान किया। ४४-४८

सदा ही किसीकी बातोंको न सहने  
 वाले कर्ण और दुर्योधन श्रीकृष्णसे थोड़ी  
 ही दूरपर एक ही आसनपर बैठ गये।  
 गान्धारराज शकुनि गान्धार वीरोंसे युक्त  
 होकर पुत्र सहित आसनपर बैठे। महा-  
 बुद्धिमान विदुर कृष्णके निकट ही सफेद

संस्पृशन्नासनं शौरेर्महामतिरुपाविशत् ।  
 चिरस्य दृष्ट्वा दाशार्हं राजानः सर्व एव ते ॥ ५१ ॥  
 अमृतस्येव नाऽतृप्यन्प्रेक्षमाणा जनार्दनम् ।  
 अतसीपुष्पसङ्काशः पीतवासा जनार्दनः ॥ ५२ ॥  
 व्यभ्राजत सभामध्ये हेम्नीवोपहितो मणिः ॥ ५३ ॥  
 ततस्तूष्णीं सर्वमासीद्गोविन्दगतमानसम् ।  
 न तत्र कश्चित्किञ्चिद्वा व्याजहार पुमान्कचित् ॥ ५४ ॥ [३२८१]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्धानपर्वणि कृष्णसभाप्रवेशे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच-तेष्वासीनेषु सर्वेषु तूष्णींभूतेषु राजसु ।  
 वाक्यमभ्याददे कृष्णः सुदंष्ट्रो दुन्दुभिस्वनः ॥ १ ॥  
 जीमूत इव घर्मान्ते सर्वा संश्रावयन्सभाम् ।  
 धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य समभाषत माधवः ॥ २ ॥  
 श्रीभगवानुवाच-कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत ।  
 अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागतः ॥ ३ ॥

हरिणके मृगछालसे युक्त मणि गठित  
 पीठेपर बैठ गये । ( ४८-५० )

हे महाराज ! जैसे अमृतके चखनेसे  
 चित्तकी तृप्ति नहीं होती, वैसे ही उस  
 सभामें बैठे सम्पूर्ण राजा लोग बहुत  
 दिनके अनन्तर कृष्णको देख तृप्त नहीं  
 होते थे । पीले पुष्पके समान शोभाय-  
 मान पीताम्बर पहरे हुए श्रीकृष्णचन्द्र  
 ऐसे दीख पड़ते थे, जैसे सुवर्णके बीचमें  
 नीलमणि ( नीलम ) की शोभा होती  
 है । कृष्णके सभामें बैठनेके अनन्तर  
 सब लोगोंमें सन्नाटा छा गया । किसीने  
 कहीं पर कोई विषयका प्रसङ्ग तथा  
 उल्लेख न किया । ( ५१-५४ ) [३२८१]

उद्योगपर्वमें चारानव्वे अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें पञ्चानव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस सभा-  
 मण्डपमें सब राजाओंके आसनपर बैठने  
 के अनन्तर जब सन्नाटा छा गया; उस  
 समय दुन्दभीकी भांति गम्भीर शब्दसे  
 अच्छे दांतवाले श्रीकृष्ण चन्द्रने कथाका  
 प्रसङ्ग चलाया । धृतराष्ट्रकी ओर दृष्टि  
 करके जिसमें सब कोई सुन सके, वैसे ही वह  
 वर्षाकालके नवीन मेघकी भांति गम्भीर  
 स्वरसे वचन कहने लगे । ( १-२ )

श्रीभगवान् बोले, हे भारत ! वीर  
 योद्धाओंके विना प्राणनाश हुए जिसमें  
 कौरव और पाण्डवोंके बीच शान्ति  
 स्थापित होवे, उसी निमित्त यहांपर  
 मेरा आगमन हुआ है; इसके अतिरिक्त

राजन्नाऽन्यत्प्रवक्तव्यं तव नैःश्रेयसं वचः ।  
 विदितं ह्येव ते सर्वं वेदितव्यमरिन्दम ॥ ४ ॥  
 इदं ह्यद्य कुलं श्रेष्ठं सर्वराजसु पार्थिव ।  
 श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं सर्वैः समुदितं गुणैः ॥ ५ ॥  
 कृपाऽनुकम्पा कारुण्यमानुशंस्यं च भारत ।  
 तथाऽऽर्जवं क्षमा सत्यं कुरुष्वेतद्विशिष्यते ॥ ६ ॥  
 तस्मिन्नेवंविधे राजन्कुले महति तिष्ठति ।  
 त्वन्निमित्तं विशेषेण नेह युक्तमसाम्प्रतम् ॥ ७ ॥  
 त्वं हि धारयिता श्रेष्ठः कुरूणां कुरुसत्तम ।  
 मिथ्या प्रचरतां तात बाह्येष्वाम्यन्तरेषु च ॥ ८ ॥  
 ते पुत्रास्तव कौरव्य दुर्योधनपुरोगमाः ।  
 धर्माथौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरन्ति नृशंसवत् ॥ ९ ॥  
 अशिष्टा गतमर्यादा लोभेन हृतचेतसः ।  
 स्वेषु बन्धुषु सुख्येषु तद्वेत्थ पुरुषर्षभ ॥ १० ॥

और कोई भी हितका वचन कहनेकी मेरी इच्छा नहीं है। हे शत्रुनाशन महाराज! इस लोकमें जो कुछ जानना उचित है, सब विषय आप लोगोंने जान लिया है, इससे आप लोगोंके निमित्त और कुछ मङ्गल वचन क्या सुनाऊं ? (३-४)

हे राजन् ! आप लोगोंका यह कुल शास्त्रके ज्ञान और सदाचारसे युक्त है, और सब गुणोंसे भूषित होनेसे इस समय सब राजाओंके बीच श्रेष्ठ कहके गिना जाता है। हे भारत ! सब लोगोंमें अनेक गुण हैं, यह वचन ठीक है; परन्तु कौरवोंमें कृपा, विनय, क्षमा, करुणा, उत्तम स्वभाव और सरलता आदि कई गुण सबसे बढके हैं; इन्हीं

गुणोंने आपको सबसे श्रेष्ठ बनाया है। हे राजेन्द्र ! इस प्रकारके उत्तम प्रतिष्ठाके पात्र महाकुलमें कोई निन्दनीय तथा अयुक्त आचरणका होना बहुत ही अनुचित है; विशेष करके यदि वह आप-हीके कारणसे सङ्गाठित होवे तो और भी महा अनुचित कहा जावेगा। ५-७

क्योंकि बाहरी और भीतरी कपट आचार और नीच मार्गसे गमन करनेवाले कौरवोंके आपही एक मात्र अवलंब स्वरूप हैं। हे कुरुसत्तम ! दुर्योधन आदि आपके मूर्ख पुत्र लोग धर्म और अर्थसे अलग होकर, लोभसे खींचे हुए चित्तसे मर्यादा रहित होकर सबसे श्रेष्ठ आत्मीय और भाई बन्धुओंके सङ्ग अत्यन्त

सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता ।  
 उपेक्ष्यमाणा कौरव्य पृथिवीं घातयिष्यति ॥ ११ ॥  
 शक्या चेयं शमयितुं न चेद्वित्ससि भारत ।  
 न दुष्करो ह्यत्र शमो मतो मे भरतर्षभ ॥ १२ ॥  
 त्वय्यधीनः शमो राजन्मयि चैव विशांपते ।  
 पुत्रान्स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान् ॥ १३ ॥  
 आज्ञा तव हि राजेन्द्र कार्या पुत्रैः सहाऽन्वयैः ।  
 हितं बलवदप्येषां निष्ठतां तव शासने ॥ १४ ॥  
 तव चैव हितं राजन्पाण्डवानामथो हितम् ।  
 शमे प्रयतमानस्य मम शासनकाङ्क्षिणः ॥ १५ ॥  
 स्वयं निष्फलमालक्ष्य संविधत्स्व विशांपते ।  
 सहायभूता भरतास्तवैव स्युर्जनेश्वर ॥ १६ ॥  
 धर्मार्थयोस्तिष्ठ राजन्पाण्डवैरभिरक्षितः ।

ही अनुचित और दुष्ट व्यवहार कर रहे हैं, तौभी आप इन सब बातोंको जानकर अज्ञान हुए जाते हैं; हे पुरुषर्षभ ! यह महा घोर आपद् कौरवोंके बीचसे प्रकट हुई है; परन्तु आपके ध्यान न देनेसे समस्त संसारके विनाशका मूल अर्थात् कारण हो जावेगी । ( ८-११ )

हे भारत ! यदि तुम्हारी इच्छा कुलका नाश न हो ऐसी है, तो इस समय भी शान्ति हो सकती है । मेरी समझमें शान्तिका स्थापित होना कुछ भी कठिन नहीं है; यह आपके और मेरे दोनोंहीके अधिकारमें है। हे राजन् ! आप अपने पुत्रको शान्त कीजिये और मैं पाण्डवोंको शान्त करूंगा । हे भरत-र्षभ ! सेनाके सहित आपके पुत्र लोग

अवश्य ही आपकी आज्ञा पालन करेंगे; आपके शासनमें निवास करनेकी अपेक्षा उन लोगोंके निमित्त और अधिक हितकारी विषय क्या होगा ? हे कौरवराज ! आप यदि शासन प्रचारके अभिलाषी होकर शान्ति स्थापनके निमित्त यत्न करेंगे, तो ऐसा होनेसे आपके और पाण्डवोंके दोनोंके पक्षमें मङ्गल होगा । ( १२-१५ )

हे राजेन्द्र ! इससे आप कष्ट रहित होकर विचारपूर्वक इस कार्यका पूर्ण विधान कीजिये, पाण्डव लोग आपके सहायक बनें और उन लोगोंकी सहायतासे रक्षित ही आप स्थिर और शान्त होकर धर्म और अर्थका अनुष्ठान कीजिये । हे प्रजानाथ ! अनेक प्रकारसे

नहि शक्यास्तथाभूता यत्नादपि नराधिप ॥ १७ ॥  
 नहि त्वां पाण्डवैर्जेतुं रक्ष्यमाणं महात्माभिः ।  
 इन्द्रोऽपि देवैः सहितः प्रसहेत कुतो नृपाः ॥ १८ ॥  
 यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णो विविंशतिः ।  
 अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः ॥ १९ ॥  
 सैन्धवैश्च कलिङ्गश्च काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।  
 युधिष्ठिरो भीमसेनः सन्ध्यासाची यमौ तथा ॥ २० ॥  
 सात्यकिश्च महातेजा युयुत्सुश्च महारथः ।  
 को नु तान्विपरीतात्मा युद्धयेत भरतर्षभ ॥ २१ ॥  
 लोकस्येश्वरतां भूयः शत्रुभिश्चाऽप्यधृष्यताम् ।  
 प्राप्स्यासि त्वममित्रत्र सहितः कुरुपाण्डवैः ॥ २२ ॥  
 तस्य ते पृथिवीपालास्त्वत्समाः पृथिवीपते ।  
 श्रेयांसश्चैव राजानः सन्धास्यन्ते परन्तप ॥ २३ ॥  
 स त्वं पुत्रैश्च पौत्रैश्च पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।  
 सुहृद्भिः सर्वतो गुप्तः सुखं शक्यसि जीवितुम् ॥ २४ ॥

यत्न करनेपर भी वैसी असाधारण सहा-  
 यता पाना बहुतही कठिन कार्य है ।  
 यदि महात्मा पाण्डव लोग आपकी रक्षा  
 करें, तो और राजाओंकी बात तो दूर  
 रहे; साक्षात् इन्द्र सब देवताओंको सङ्ग  
 लेकर भी आपको पराजित करनेमें  
 समर्थ न होंगे । ( १६-१८ )

हे भरतर्षभ ! जिस स्थानपर भीष्म  
 द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, विविंशति,  
 अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लिक,  
 जयद्रथ, कलिङ्गपति, काम्बोजराज  
 सुदक्षिण, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन,  
 नकुल, सहदेव, सात्यकी और युयुत्सु  
 आदि महावीर योद्धा लोग मिलकर एक

होकर एक ही स्थानपर इकट्ठे होंगे;  
 वहां पर कौन विपरीत बुद्धिवाला पुरुष  
 उन लोगोंके विरुद्ध युद्ध करनेके निमित्त  
 आगे बढेगा ? हे शत्रुनाशन ! कौरव  
 और पाण्डवोंके मिलनेसे सम्पूर्ण लोकमें  
 आप अत्यन्त प्रभुता पावेंगे; कोई शत्रु  
 आपको पराजित करनेमें समर्थ न  
 होगा । ( १९-२२ )

जो सब राजा आपके समान हैं,  
 और जो आपसे श्रेष्ठ हैं, सबही आपके  
 संग सन्धि करेंगे । इससे आप सब भांति-  
 से रक्षित होकर पुत्र, पौत्र, पिता,  
 भ्राता तथा इष्ट मित्रोंके संग परम  
 सुखसे जीवनका समय व्यतीत कर

एतानेव पुरोधाय सत्कृत्य च यथा पुरा ।  
 अखिलां भोक्ष्यसे सर्वां पृथिवीं पृथिवीपते ॥ २५ ॥  
 एतैर्हि सहितः सर्वैः पाण्डवैः स्वैश्च भारत ।  
 अन्यान्विजेद्यसे शत्रूनेष स्वार्थस्तवाऽखिलः ॥ २६ ॥  
 तैरेवोपार्जितां भूमिं भोक्ष्यसे च परन्तप ।  
 यदि सम्पत्स्यसे पुत्रैः सहाऽमात्यैर्नराधिप ॥ २७ ॥  
 संयुगे वै महाराज दृश्यते सुमहान्क्षयः ।  
 क्षये चोभयतो राजन्कं धर्ममनुपश्यासि ॥ २८ ॥  
 पाण्डवैर्निहतैः संख्ये पुत्रैर्वाऽपि महाबलैः ।  
 यद्विन्देथाः सुखं राजन्स्तद् ब्रूहि भरतर्षभ ॥ २९ ॥  
 शूराश्च हि कृतास्त्राश्च सर्वे युद्धाभिकांक्षिणः ।  
 पाण्डवास्तावकाश्चैव तान्नक्ष महतो भयात् ॥ ३० ॥  
 न पश्येम कुरून्सर्वान्पाण्डवांश्चैव संयुगे ।

सकेंगे । हे महाराज ! दूसरेके निकट आपको सहायता लेनेहीका क्या प्रयोजन है ? केवल पाण्डवों को पहिलेकी भांति सत्कार दिखाके, उन्हें आगे करके आप इस सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलके चक्रवर्ती राज्यका सुख भोगेंगे । हे भारत ! किसी प्रकारसे स्वार्थसिद्ध होना चाहिये यही आपकी इच्छा है; पाण्डव और कौरवोंके परस्पर मिलनेपर आप सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतकर उनकी भुजासे उपाजित सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यका सुख भोग करेंगे; इससे बढके आपके निमित्त बड़ा स्वार्थ दूसरा और कौनसा है ? (२३—२७)

हे महाराज ! यदि ! आप ऐसे स्वार्थको त्याग कर युद्ध कार्यमें प्रवृत्त

होइयेगा, तो केवल महा अनर्थकी सम्भावना ही होगी । हे राजेन्द्र ! संग्राम में महामारिके अतिरिक्त और कुछभी नहीं दीख पडता; तब दोनों पक्षोंके नाश होनेसे ही आपका कौन धर्म प्रकाशित होगा ? हे राजन् ! भला कहिये तो सही पाण्डव लोग अथवा आपके पुत्रही युद्धमें मरें; तब इन दोनों पक्षोंमेंसे एक पक्षके नाश होनेसे आपको कौनसा सुख मिल जायगा ? हे भरतर्षभ ! ये दोनों ओरके लोग अत्यन्त वीरतासे युक्त, सब शस्त्रोंको जाननेवाले हैं, और दोनोंही युद्धके निमित्त उपास्थित हो रहे हैं; इससे आप इस वर्तमान महाभयसे उन लोगोंकी रक्षा कीजिये । जिससे महारथ शूर वीर कौरव और पाण्डवोंको



क्षीणानुभयतः शूरान्नथिनो रथिभिर्हतान् ॥ ३१ ॥

समवेताः पृथिव्यां हि राजानो राजसत्तम ।

अमर्षवशमापन्ना नाशयेयुरिमाः प्रजाः ॥ ३२ ॥

त्राहि राजन्निमं लोकं न नश्येयुरिमाः प्रजाः ।

त्वयि प्रकृतिमापन्ने शेषः स्यात्कुरुनन्दन ॥ ३३ ॥

शुक्ला वदान्या हीमन्त आर्याः पुण्याभिजातयः ।

अन्योन्यसचिवा राजंस्तान्पाहि महतो भयात् ॥ ३४ ॥

शिवेनेमे भूमिपालाः समागम्य परस्परम् ।

सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथागृहम् ॥ ३५ ॥

सुवाससः स्रग्विणश्च सत्कृता भरतर्षभ ।

अमर्षं च निराकृत्य वैराणि च परन्तप ॥ ३६ ॥

हार्दं यत्पाण्डवेष्वासीत्प्राप्तेऽस्मिन्नायुषः क्षये ।

तदेव ते भवत्वद्य सन्धत्स्व भरतर्षभ ॥ ३७ ॥

युद्धमें परस्पर घायल होना और मरना न पड़े, आप वैसे ही उपायका विधान कीजिये । (२८-३१)

हे नृपसत्तम ! पृथ्वीके सब राजा लोग एकही स्थानपर मिल गये हैं; ये लोग क्रोधके वशमें होकर इन सम्पूर्ण प्रजा समूहका भी संहार कर सकते हैं । हे राजेन्द्र ! इससे आप दया करके सम्पूर्ण लोगोंकी रक्षा कीजिये । आपके विद्यमान रहते जिसमें सम्पूर्ण पृथ्वीके प्रजाओंका समूह नष्ट न होजाय । हे कुरुनन्दन ! जब आप सत्त्वगुणको धारण करेंगे, तभी प्रजाओंका शेष रह सकता है; नहीं तो सब ही प्रजा नष्ट होजायंगी । हे राजेन्द्र ! पवित्र वंशोंमें उत्पन्न भये, माननीय, पूजाके योग्य,

महातेजस्वी, श्रीमान् और आपसमें एक दूसरेकी सहायता करनेवाले, इन सब राजाओंको आप महा भयसे छुड़ानेका यत्न कीजिये । (३२-३४)

हे शत्रुनाशन भरतर्षभ ! ये सब लोग क्रोध और वैरको त्यागके कुशल पूर्वक आपसमें मिलें और एकत्र भोजन पान करनेके अनन्तर सब भूषणोंसे भूषित होकर, शोभायमान उत्तम माला और सुगन्धको धारण करके तथा उत्तम प्रकार सत्कार पाकर अपने अपने स्थानोंपर चले जावें । हे भरतर्षभ । पाण्डवोंके ऊपर आपकी जैसे पहिले समयमें प्रीति थी; इस समयमें इस युद्धके समागममें आप वैसी ही प्रीतिको प्रकाश करके उन लोगोंके सङ्ग सन्धि कर लीजिये ।

बाला विहीनाः पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिताः ।  
 तान्पालय यथान्यायं पुत्रांश्च भरतर्षभ ॥ ३८ ॥  
 भवतैव हि रक्ष्यास्ते व्यसनेषु विशेषतः ।  
 मा ते धर्मस्तथैवाऽर्थो नश्येत् भरतर्षभ ॥ ३९ ॥  
 आहुस्त्वां पाण्डवा राजन्नभिवाच प्रसाद्य च ।  
 भवतः शासनाद् दुःखमनुभूतं सहाऽनुगैः ॥ ४० ॥  
 द्वादशेमानि वर्षाणि बने निव्युषितानि नः ।  
 त्रयोदशं तथाऽज्ञातैः सजने परिवत्सरम् ॥ ४१ ॥  
 स्थाता नः समये तस्मिन्पितेति कृतानिश्चयाः ।  
 नाऽहास्म समयं तात तच्च नो ब्राह्मणा विदुः ॥ ४२ ॥  
 तस्मिन्नः समये तिष्ठ स्थितानां भरतर्षभ ।  
 नित्यं संक्लेशिता राजन्स्वराज्यांशं लभेमहि ॥ ४३ ॥

हे नरनाथ ! बालकपनमें जब वे पिता  
 रहित हुए थे, उस समयसे आपने ही उन  
 लोगोंको पुत्रकी भांति समझकर पालन  
 पोषण करके बड़ा किया था; इससे इस  
 समयमें भी पुत्रकी भांति न्यायपूर्वक उन  
 लोगोंका पालन कीजिये । ( ३५-३८ )

विचार करके देखनेसे सब समयमें  
 विशेष करके इस व्यसनके समयमें  
 आपको उन लोगोंकी रक्षा करना योग्य है  
 ऐसा करनेसे आपके धर्म और अर्थ दोनों  
 हीकी रक्षा हो सकती है। हे भरतर्षभ !  
 इस लिये जिसमें धर्म और अर्थ दोनों  
 बने रहें; आप वही उपाय कीजिये । हे  
 राजन् ! पाण्डवोंने आपको नमस्कार  
 करके प्रेम पूर्वक वह वचन कहा है, कि  
 “ हे तात ! आपकी आज्ञा अनुसार  
 हम लोगोंने बहुत दुःख और क्लेश सहा

है । निर्जन वनमें बारह वर्ष और मनु-  
 ष्योंके बीच छिपकर एक वर्षवास किया  
 है । हे तात ! हम लोगोंके बीच  
 जिस प्रकारका नियम हुआ है, उसको  
 अवश्य ही ज्येष्ठ पिता पालन करेंगे;  
 ऐसा ही निश्चय करके हम लोगोंने  
 किसी प्रकारसे उस नियमका उल्लंघन  
 नहीं किया है, हम लोगोंके सङ्ग रहने-  
 वाले ब्राह्मण लोग उस बातको खूबही  
 जानते हैं ” । ( ३९-४२ )

“ हे भरतर्षभ ! हम लोगोंने नियमके  
 अनुसार कार्य किया है; इससे आप भी  
 उसी नियमके अनुसार चलिये । हे  
 राजेन्द्र ! हम लोगोंने अब बहुत दिन-  
 तक दुःख भोग कर जिसमें अब अपना  
 आधा राज्य पावें; उसीका आप पूर्ण  
 विधान कीजिये । आप धर्म और अर्थ-

त्वं धर्ममर्थं सञ्ज्ञानन्सम्यङ् नस्त्रातुमर्हसि ।  
 गुरुत्वं भवति प्रेक्ष्य बहून्केशांस्तितिक्षमहे ॥ ४४ ॥  
 स भवान्मातृपितृवदस्मासु प्रतिपद्यताम् ।  
 गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत ॥ ४५ ॥  
 वर्तामहे त्वयि च तां त्वं च वर्तस्व नस्तथा ।  
 पित्रा स्थापयितव्या हि वयमुत्पथमास्थिताः ॥ ४६ ॥  
 संस्थापय पथिष्वस्मांस्तिष्ठ धर्मे सुवर्त्मनि ।  
 आहुश्चेमां परिषदं पुत्रास्ते भरतर्षभ ॥ ४७ ॥  
 धर्मज्ञेषु सभासत्सु नेह युक्तमसाम्प्रतम् ।  
 यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्राऽनृतेन च ॥ ४८ ॥  
 हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ।  
 विद्वो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्र प्रपद्यते ॥ ४९ ॥  
 न चाऽस्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ।

के मर्मको जानकर हम लोगोंका सब  
 भांतिसे परित्राण कीजिये । आप पिता  
 हैं, आप जो कुछ आज्ञा करेंगे, वही  
 हम लोगोंको स्वीकार करना पड़ेगा ।  
 यही विचारकर हम लोगोंने अनेक  
 प्रकारके दुःख बहुत सहे हैं; इससे आप  
 भी इस समय पिता माताकी भांति प्रेम  
 प्रकाशित कीजिये । हे भारत ! गुरुके  
 समीप शिष्यका जैसा व्यवहार करना  
 उचित है, हम लोगोंने भी आपके सङ्ग  
 वैसा ही व्यवहार किया है । इससे  
 आप भी हम लोगोंके ऊपर गुरुकी  
 भांति वात्सल्य भाव दिखाइये । पुत्रके  
 नीच मार्ग अवलम्बन करनेपर पिताका  
 कर्त्तव्य कार्य यही है, कि उसे फिर  
 भी अच्छे मार्गपर चलावे; इस समय हम

लोग भी राज्यके नाश होनेके कारण  
 मार्गसे भ्रष्ट हुए हैं, आप इस समयमें स्वयं  
 धर्मके मार्गमें चलकर हम लोगोंको  
 उसी मार्गमें स्थित रखिये ” । ४३-४७  
 हे महाराज ! आपके उन तेजस्वी  
 पुत्रोंने यहांपर रहनेवाले सभासद लोगोंके  
 निमित्त भी यह वचन कहा है, “सभाके  
 बीच धर्मके जाननेवाले सभासदों  
 के विद्यमान रहनेपर भी न्यायके  
 विरुद्ध कार्यका होना बहुत ही अनुचित  
 है । बुद्धिमान सभासद और दर्शकवृन्द  
 के उपस्थित रहनेपर, जिस स्थानमें अधर्म  
 से धर्म और मिथ्यासे सत्य छिप जात,  
 है; वहांपरके सब सभासद ही मरे हुएके  
 समान हैं । जिस समय धर्म अधर्मसे  
 पीड़ित होकर सभाकी शरणमें आता है,

धर्म एतानारुजति यथा नद्यनुकूलजान् । ॥ ५० ॥  
 ये धर्ममनुपश्यन्तस्तूष्णीं ध्यायन्त आसते ।  
 ते सत्यमाहुर्धर्म्यं च न्याय्यं च भरतर्षभ ॥ ५१ ॥  
 शक्यं किमन्यद्भक्तुं ते दानादन्यज्जनेश्वर ।  
 ब्रुवन्तु ते महीपालाः सभायां ये समासते ॥ ५२ ॥  
 धर्माथौ सम्प्रधायैव यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् ।  
 प्रमुञ्चेमान्मृत्युपाशात्क्षत्रियान्पुरुषर्षभ ॥ ५३ ॥  
 प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा मन्युवशमन्वगाः ।  
 पित्र्यं तेभ्यः प्रदायांऽशं पाण्डवेभ्यो यथोचितम् ॥ ५४ ॥  
 ततः सपुत्रः सिद्धार्थो भुङ्क्व भोगान्परन्तप ।  
 अजातशत्रुं जानीषे स्थितं धर्मे सतां सदा ॥ ५५ ॥  
 सपुत्रे त्वयि वृत्तिं च वर्तते यां नराधिप ।

उस समय यदि उस धर्मकी पीडा न्याय-  
 पूर्वक सभासद लोग न दूर करें, तो वे  
 लोग आप ही उस पापसे पीड़ित  
 होजाते हैं । जैसे नदी अपने तटपर  
 रहनेवाले वृक्षोंको उखाड़के गिरा देती  
 है, वैसेही अधर्म भी उन लोगोंको पीड़ित  
 करता है ।” ( ४७—५० )

हे भरतर्षभ ! इस समय विचारकर  
 देखिये कि पाण्डव लोग धर्महीका मुंह  
 देख कर तथा धर्महीकी आशा करके  
 अभी तक चुप चाप बैठे हुए हैं, उन  
 लोगोंने सत्य, धर्म और न्यायके अनु-  
 सार ही वचन कहे हैं । इससे आप उन  
 लोगोंको राज्य प्रदान करनेके अति-  
 रिक्त क्या और कोई विषयका प्रसङ्ग  
 कर सकते हैं ? इस सभामें जो सब राजा  
 लोग बैठे हुए हैं, ये लोगभी क्या कुछ

दूसरी बात कह सकते हैं । हे पुरुषर्षभ !  
 मैं धर्म और अर्थकी निश्चय करके जो  
 कुछ वचन कह रहा हूं, यदि आप इसे  
 सत्य समझेंगे, तो निःसन्देह इन सब  
 क्षत्रिय और राजाओंको मृत्युके मुंहसे  
 बचा लेंगे । ( ५१—५३ )

हे भरतश्रेष्ठ ! आप शान्त होइये;  
 क्रोधसे वशीभूत दुर्योधनके अनुगामी  
 न बनिये । हे परन्तप ! पाण्डवोंको  
 यथा उचित पैतृक-राज्य देकर आप  
 पुत्रोंके सहित आनन्दित होकर उत्तम  
 प्रकारसे सब सुखोंको भोग कीजिये ।  
 हे प्रजानाथ ! आप सब दिनसे अजात-  
 शत्रु युधिष्ठिरको साधु पुरुषोंके धर्ममें  
 स्थित जानते हैं, और वह आपके तथा  
 आपके पुत्रोंके सङ्ग जिस प्रकार से धर्म-  
 पूर्वक व्यवहार करते हैं; वह भी आपको

दाहितश्च निरस्तश्च त्वामेवोपाश्रितः पुनः ॥ ५६ ॥  
 इन्द्रप्रस्थं त्वयैवाऽसौ सपुत्रेण विवासितः ।  
 स तत्र निवसन्सर्वान्वशमानीय पार्थिवान् ॥ ५७ ॥  
 त्वन्मुखानकरोद्राजन्न च त्वामत्यवर्तत ।  
 तस्यैवं वर्तमानस्य सौबलेन जिहीर्षिता ॥ ५८ ॥  
 राष्ट्राणि धनधान्यं च प्रयुक्तः परमोपधिः ।  
 स तामवस्थां सम्प्राप्य कृष्णां प्रेक्ष्य सभां गताम् ५९ ॥  
 क्षत्रधर्मादमेयात्मा नाऽकम्पत युधिष्ठिरः ।  
 अहं तु तव तेषां च श्रेय इच्छामि भारत ॥ ६० ॥  
 धर्मादर्थान्मुखाच्चैव मा राजन्नीनशः प्रजाः ।  
 अनर्थमर्थं मन्वानोऽप्यर्थं चाऽनर्थमात्मनः ॥ ६१ ॥  
 लोभेऽतिप्रसृतान्पुत्रान्निगृह्णीष्व विशाम्पते ।  
 स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिन्दमाः ६२ ॥

विदित है। देखिये आपने उन्हें जतु-  
 गृहमें जलाया और देशसे निकाल भी  
 दिया, तौभी फिर उन लोगोंने आपका  
 शरण ग्रहण किया था। उसके अनन्तर  
 अपने पुत्रोंके सङ्ग विचार करके, जब उन  
 लोगोंको इन्द्रप्रस्थमें बसाया था, उस  
 समयभी उन लोगोंने वहाँपर निवास करते  
 हुए अपने बाहुबल तथा पराक्रमसे सब  
 राजाओंको जीतकर आपहीके निकट  
 उपस्थित किया था, किसी प्रकारसे भी  
 आपके शासनका उन्होंने उल्लंघन नहीं  
 किया। ( ५४—५८ )

हे महाराज ! इस भांतिसे नम्रता-  
 पूर्वक वे निवास करते थे, तौ भी सुब-  
 लपुत्र शकुनिने उनके राज्य और धन  
 आदिको हरनेकी इच्छा करके, पासेके

खेलमें अत्यन्त कपटका प्रयोग किया  
 था। धर्मात्मा युधिष्ठिर वैसी बुरी अव-  
 स्थामें पड़के प्राणके समान प्यारी  
 द्रौपदीको सभामें बुलाई हुई देख कर  
 भी क्षत्रिय धर्मसे तनिक भी विचलित न  
 हुए थे। हे भारत ! मैं आप और पाण्डव  
 दोनोंहीकी मङ्गल कामना करता हूँ;  
 इससे आप धर्म अर्थ और सुखके निमित्त  
 शान्ति स्थापित कीजिये। प्रजाओंका  
 व्यर्थ नाश न कीजिये। ( ५८—६१ )

हे नरनाथ ! जिसको आप अनर्थ  
 समझ रहे हैं, उसीको अर्थ और जिसे  
 अर्थ समझ रहे हैं, उसको अनर्थ जान-  
 कर लोभके मार्गमें गमन करनेवाले  
 पुत्रोंको कुपथसे रोकिये। हे पृथ्वीनाथ !  
 शत्रुनाशन पाण्डव लोग आपकी सेवा

यत्ते पथ्यतसं राजस्तस्मिंस्तिष्ठ परन्तप।

वैशम्पायन उवाच- तद्वाक्यं पार्थिवाः सर्वे हृदयैः समपूजयन् ।

न तत्र कश्चिद्वक्तुं हि वाचं प्राकामदग्रतः ॥ ६३ ॥ [३३४४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामारण्यके पर्वणि भगवद्वाचनपर्वणि

श्रीकृष्णवाक्ये पंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

वैशम्पायन उवाच- तस्मिन्नभिहिते वाक्ये केशवेन महात्मना ।

स्तिमिता हृष्टरोमाण आसन्सर्वे सभासदः ॥ १ ॥

कश्चिदुत्तरमेतेषां वक्तुं नोत्सहते पुमान् ।

इति सर्वे मनोभिस्ते चिन्तयन्ति स्म पार्थिवाः ॥ २ ॥

तथा तेषु च सर्वेषु तूष्णींभूतेषु राजसु ।

जामदग्न्य इदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ ३ ॥

इमां मे सोपमां वाचं शृणु सत्यामशङ्कितः ।

तां श्रुत्वा श्रेय आदत्स्व यदि साधिवति मन्यसे ॥ ४ ॥

राजा दम्भोद्भवो नाम सार्वभौमः पुराऽभवत् ।

तथा युद्ध दोनोंही करनेके निमित्त  
तैयार हैं, उसमेंसे जो आपको उत्तम  
और हितकारी बोध हो आप उसीका  
अनुष्ठान कीजिये । ( ६१-६२ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले उस सभा-  
में जितने राजा लोग उपस्थित थे, वे  
सब श्रीकृष्णके कहे हुए वचनोंकी  
अपने मनही मन अत्यन्त प्रशंसा करते  
थे; परन्तु दुर्योधनके संमुख किसीने  
कुछ कहनेका साहस न किया । ( ६३ )

उद्योगपर्वमें पञ्चानव्वे अध्याय समाप्त । ३३४४

उद्योगपर्वमें छानव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महात्मा  
कृष्णके ऊपर कहे हुए वचनोंको सुनकर  
सब सभासदोंके रोंए खड़े हो गये,

सब लोगोंने मौनव्रत धारण कर लिया।  
सब राजा लोग, अपने मनमें यह  
सोचने लगे, कि कोई पुरुष इन वच-  
नोंका उत्तर देनेका साहस नहीं कर  
सकता। जब सब राजाओंमें सन्नाटा खींच  
लिया, तब महातेजस्वी महर्षि परशुरा-  
मजीने कौरवोंकी सभामें कहना आरम्भ  
किया, कि हे राजन् ! मैं उप-  
माके सङ्ग एक कथाका प्रसंग कहता  
हूं, इस यथार्थ विषयपर कोई शङ्का न  
करके इसको सुनो और यदि यह उत्तम  
मालुम हो, तो सुनकर अपने कल्याणके  
निमित्त यत्न करो । ( १-४ )

मैंने सुना है, पहिले समयमें दम्भो-  
द्भव नाम सार्वभौम राजा हुए थे;

अखिलां बुभुजे सर्वा पृथिवीमिति नः श्रुतम् ॥ ५ ॥  
 स स्म नित्यं निशापाये प्रातरुत्थाय वीर्यवान् ।  
 ब्राह्मणान्क्षत्रियांश्चैव पृच्छन्नास्ते महारथः ॥ ६ ॥  
 अस्ति कश्चिद्विशिष्टो वा मद्विधो वा भवेद्यधि ।  
 शूद्रो वैश्यः क्षत्रियो वा ब्राह्मणो वाऽपि शस्त्रभृत् ॥  
 इति ब्रुवन्नन्वचरत्स राजा पृथिवीमिमाम् ।  
 दर्पेण महता मत्तः कश्चिदन्यमचिन्तयन् ॥ ८ ॥  
 तं च वैद्या अकृपणा ब्राह्मणाः सर्वतोऽभयाः ।  
 प्रत्यषेधन्त राजानं श्लाघमानं पुनः पुनः ॥ ९ ॥  
 निषिध्यमानोऽप्यसकृत्पृच्छत्येव स वै द्विजान् ।  
 अतिमानं श्रिया मत्तं तमूचुर्ब्राह्मणास्तदा ॥ १० ॥  
 तपस्विनो महात्मानो वेदप्रत्ययदर्शिनः ।  
 उदीर्यमाणं राजानं क्रोधदीप्ता द्विजातयः ॥ ११ ॥  
 अनेकजयिनौ संख्ये यौ वै पुरुषसत्तमौ ।  
 तयोस्त्वं न समो राजन्भाविताऽसि कदाचन ॥ १२ ॥

उन्होंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर चक्रवर्ती  
 होकर राज्य किया था । वह महारथ  
 और पराक्रमी राजा नित्य ही रात्रिके  
 बीतनेपर सवेरे उठकर ब्राह्मण और  
 क्षत्रियोंसे यह कहा करते थे, कि “इस  
 पृथ्वीमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और  
 शूद्रोंके बीच क्या कोई ऐसा पुरुष भी  
 विद्यमान है, जो युद्धमें मुझसे श्रेष्ठ  
 अथवा मेरे समान हो सके ? सारी  
 पृथ्वीमें मेरे समान वीर कोई नहीं है”  
 ऐसा विचार करते हुए वह राजा अभि-  
 मानसे उन्मत्त होकर सब स्थानोंमें  
 ऐसा ही वचन कहते हुए घूमा करते  
 थे । ( ५-८ )

एकबार कई एक महातेजस्वी वेदके  
 जाननेवाले ब्राह्मणोंने उन्हे चार बार  
 अपनी बड़ाई करते हुए देखकर निषेध  
 किया, परन्तु धन और बलके मदसे भरे  
 हुए अभिमानी मूढ़ राजा बार बार निषेध  
 किये जानेपर भी उन वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे  
 नित्य ही इसी प्रकारका प्रश्न करते थे ।  
 तब वह वेदके जाननेवाले तपस्वी महात्मा  
 ब्राह्मण लोग उस राजाके ऐसे दुष्ट  
 भावको देखकर क्रोधित होके बोले, हे  
 राजन् ! इस पृथ्वीपर अनेक युद्धोंको  
 जीतनेवाले दो श्रेष्ठ पुरुष विद्यमान हैं;  
 तुम कभी उनके समान नहीं हो  
 सकते । ( ९-१२ )

एवमुक्तः स राजा तु पुनः पप्रच्छ तान्द्विजान् ।  
 क तौ वीरौ कजन्मानौ किंकर्माणौ च कौ च तौ १३॥  
 ब्राह्मणा ऊचुः— नरो नारायणश्चैव तापसाविति नः श्रुतम् ।  
 आयातौ मानुषे लोके ताभ्यां युद्धयस्व पार्थिव ॥१४॥  
 श्रूयेते तौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ ।  
 तपो घोरमनिर्देश्यं तप्यते गन्धमादने ॥ १५ ॥  
 स राजा महतीं सेनां योजयित्वा षडङ्गिनीम् ।  
 अमृष्यमाणः सम्प्रायाद्यत्र तावपराजितौ ॥ १६ ॥  
 स गत्वा विषमं घोरं पर्वतं गन्धमादनम् ।  
 मृगयाणोऽन्वगच्छतौ तापसौ वनमाश्रितौ ॥ १७ ॥  
 तौ दृष्ट्वा क्षुत्पिपासाभ्यां कृशौ धमनिसन्तौ ।  
 शतिवातातपैश्चैव कर्षितौ पुरुषोत्तमौ ॥ १८ ॥  
 अभिगम्योपसंगृह्य पर्यपृच्छदनामयम् ।  
 तमर्चित्वा मूलफलैरासनेनोदकेन च ॥ १९ ॥

इस वचनको सुनते ही राजा दम्भो-  
 ङ्गवने फिर उन ब्राह्मणोंसे पूछा, कि  
 आप लोग कौनसे वीरोंकी कथा कहते  
 हैं ? वे दोनों कहाँपर उत्पन्न हुए हैं,  
 किस स्थानमें रहते हैं और कौन कार्य  
 करते हैं ? हे भारत ! राजाके ऐसे पूछ-  
 नेपर ब्राह्मणोंने कहा, हम लोगोंने सुना  
 है, कि महात्मा नर और नारायण  
 तपस्या करनेके निमित्त इस मनुष्य  
 लोकमें आकर गन्धमादन पर्वतके किसी  
 स्थानमें घोर तपस्या कर रहे हैं; तुम  
 उन्हीं दोनों वीरोंके संग युद्ध  
 करो । ( १३—१५ )

राजा दम्भोङ्गव इस वचनको सुनते  
 ही आतुर होके अपनी षडङ्गिणी महा-

सेना सजाकर, युद्धमें न पराजित होने-  
 वाले महात्मा नर और नारायणसे युद्ध  
 करनेके निमित्त चले; और महा भयङ्कर  
 गन्धमादन पर्वतके शिखरपर जा पहुँच।  
 वहाँ पहुँचके उन वनवासी दोनों तप-  
 स्त्रियोंको खोजने लगे; अन्तमें उन दोनों  
 महात्माओंका पता पाकर देखा, कि वे  
 दोनों तपस्वी भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी,  
 सहकर अत्यन्त ही क्लेशित और तनुक्षीण  
 हो रहे हैं, और उनके शरीरमें सब धमनियाँ  
 व्यक्त हुई हैं । ( १६—१८ )

इस प्रकारसे उन महात्माओंको  
 देखकर राजाने उनके निकट जाकर  
 प्रणाम करके कुशल क्षेमकी बात पूछी;  
 उन्होंने भी आसन, जल और फल मूल



न्यमन्त्रयेतां राजानं किं कार्यं क्रियतामिति ।

ततस्तामानुपूर्वीं स पुनरेवाऽन्वकीर्तयत् ॥ २० ॥

बाहुभ्यां मे जीता भूमिर्निहताः सर्वशत्रवः ।

भवद्भ्यां युद्धमाकांक्षन्नुपयानोऽस्मि पर्वतम् ॥ २१ ॥

आतिथ्यं दीयतामेतत्कांक्षितं मे चिरं प्रति ।

नरनारायणावूचतुः-अपेतक्रोधलोभोऽयमाश्रमो राजसत्तम ॥ २२ ॥

न ह्यस्मिन्नाश्रमे युद्धं कुतः शस्त्रं कुतोऽनृजुः ।

अन्यत्र युद्धमाकांक्ष बहवः क्षत्रियाः क्षितौ ॥ २३ ॥

राम उवाच- उच्यमानस्तथाऽपि स्म भूय एवाऽभ्यभाषत ।

पुनः पुनः क्षम्यमाणः सान्त्व्यमानश्च भारत ॥ २४ ॥

दम्भोद्भवो युद्धमिच्छन्नाह्वयत्येव तापसौ ।

ततो नरस्त्विषीकाणां मुष्टिमादाय भारत ॥ २५ ॥

अब्रवीदेहि युद्धयस्व युद्धकामुक क्षत्रिय ।

सर्वशस्त्राणि चाऽऽदत्स्व योजयस्व च बाहिनीम् ॥ २६ ॥

आदिसे उनका अतिथि सत्कार करके कहा, “तुम्हारा कौनसा कार्य पूरा करना होगा ?” इस वचनको सुनकर राजा दम्भोद्भव जैसा ब्राह्मणोंके समीप कहा करते थे, उसीको विस्तार पूर्वक कहने लगे, कि मैंने अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण पृथ्वीके राजाओंको मारा है; इस समय आपसे युद्ध करनेकी इच्छासे इस पर्वत के ऊपर आया हूं; इससे आप कृपा करके हमारी इस सब दिनकी अभिलाषा को पूर्ण कीजिये । ( १९-२२ )

नरनारायण बोले, हे राजसत्तम ! यह तप करनेका आश्रम है, इस स्थानमें क्रोध, लोभ लेशमात्र भी नहीं है । युद्ध तथा अस्त्र शस्त्रकी बात तो दूर रहे,

यहांपर कुटील स्वभावके मनुष्य भी नहीं रह सकते, इससे तुम इस स्थानको छोड़कर दूसरी जगहमें युद्ध करनेकी इच्छा करो; पृथ्वीके बीच बहुतसे क्षत्रिय लोग विद्यमान हैं । ( २२-२३ )

परशुराम बोले, हे भारत ! उन दोनों तपस्वियोंके बराबर क्षमा प्रार्थना और शान्त करनेपर भी, राजा दम्भोद्भवने अपना हठ न छोड़ा और युद्ध करनेकी अभिलाषासे बारबार उन दोनों तपस्वियोंको आवाहन करने लगे । तब नर ऋषिने एक मुट्ठी काश तृणको हाथमें लेकर क्रोधसे भरकर कहा, कि रे युद्धकी अभिलाषा करनेवाले क्षत्रिय ! आके युद्ध कर ले; सेनाको साजकर तेरा जो

अहं हि ते विनेष्यामि युद्धश्रद्धामितः परम् ।

दम्भोजव उवाच- यद्येतदस्त्रमस्मासु युक्तं तापस मन्यसे ॥ २७ ॥

एतेनापि त्वया योत्स्ये युद्धार्थी ह्यहमागतः ।

राम उवाच- इत्युक्त्वा शरवर्षेण सर्वतः समवाकिरत् ॥ २८ ॥

दम्भोजवस्तापसं तं जिघांसुः सहसैनिकः ।

तस्य तानस्यतो घोरानिष्पन्नपरतनुच्छिदः ॥ २९ ॥

कदर्थीकृत्य स मुनिरिषीकाभिः समार्पयत् ।

ततोऽस्मै प्रासृजद्वोरमैषीकमपराजितः ॥ ३० ॥

अस्त्रमप्रतिसन्धेयं तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

तेषामक्षीणि कर्णाश्च नासिकाश्चैव मायया ॥ ३१ ॥

निमित्तवेधी स मुनिरिषीकाभिः समार्पयत् ।

स हृष्टा श्वेतमाकाशमिषीकाभिः समाचितम् ॥ ३२ ॥

पादयोर्न्यपतद्राजा स्वस्ति मेऽस्तिवति चाऽब्रवीत् ।

तमब्रवीन्नरो राजञ्जशरण्यः शरणैषिणाम् ॥ ३३ ॥

कुछ अस्त्र शस्त्र है सब ग्रहण करके चला ओ; तब मैं तेरी युद्धकी अभिलाषा पूरी करदूंगा । ( २४—२७ )

राजा दम्भोजव बोले, हे तपस्वी ! यदि इस अस्त्रको मेरे ऊपर चलाना ही तुमको ठीक मालूम होता है, तो मैं इसीके सङ्ग तुमसे युद्ध करूंगा; क्योंकि युद्ध करनेहीके निमित्त मेरा यहांपर आगमन हुआ है । ( २७—२८ )

श्रीपरशुरामजी बोले, ऐसा कहकर राजा दम्भोजवने सेनाके सहित तपस्वीको मारनेके लिये उनके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त खड़े होकर अपने बाणों की वर्षासे दशों दिशाओंको पूर्ण कर दिया । तब लक्ष्यको वेधनेवाले नर

ऋषिने काशके सींकके अस्त्रसे राजा दम्भोजवके सब अस्त्रोंको निष्फल कर दिया और उसके ऊपर इस प्रकारसे काशके सीकोंको चलाया, कि उससे राजा दम्भोजव मृतप्राय हो गये । उन्होंने ने मायाके बलसे केवल काशके सींक के अस्त्रसे सब सेनाके नाक, कान आदिको काटना आरम्भ किया । सब दिशाओंमें काश पुञ्जके पूर्ण होनेसे आकाश श्वेतवर्ण होगया; इस अद्भुत कर्मको देखकर राजा दम्भोजव उनके दोनों चरणोंपर गिरे और अपने कल्याण के निमित्त “ मेरा मङ्गल हो ” ऐसी प्रार्थना करने लगे । ( २८—३३ )

जब राजा दम्भोजव बार बार ऐसा कह-

ब्रह्मण्यो भव धर्मात्मा मा च स्वैवं पुनः कृथाः ।  
 नैतादृक्पुरुषो राजन्क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ ३४ ॥  
 मनसा नृपशार्दूल भवेत्परपुरञ्जयः  
 मा च दर्पसमाविष्टः क्षेप्सीः कांश्चित्कथञ्चन ॥ ३५ ॥  
 अल्पीयांसं विशिष्टं वा तत्ते राजन्समाहितम् ।  
 कृतप्रज्ञो वीतलोभो निरहङ्कार आत्मवान् ॥ ३६ ॥  
 दान्तः क्षान्तो मृदुः सौम्य प्रजाः पालय पार्थिव ।  
 मा स्म भूयः क्षिपेः कश्चिद्विदित्वा बलाबलम् ३७ ॥  
 अनुज्ञातः स्वस्ति गच्छ मैवं भूयः समाचरेः ।  
 कुशलं ब्राह्मणान्पृच्छेरावयोर्वचनाद्भृशम् ॥ ३८ ॥  
 ततो राजा तयोः पादावभिवाच्य महात्मनोः ।  
 प्रत्याजगाम स्वपुरं धर्मं चैवाऽचरद्भृशम् ॥ ३९ ॥  
 ससुहचापि तत्कर्म यञ्जरेण कृतं पुरा ।

लगे, तब शरणागतकी रक्षा करनेवाले  
 दयालु नर ऋषिने उनसे कहा, हे राजन्!  
 तुम आजसे धर्मात्मा और ब्राह्मणोंमें  
 निष्ठावान् बनो; फिर कभी ऐसा अहंकार  
 न करना । हे नरेन्द्र ! पराये देशके  
 जीतनेवाले क्षत्रिय पुरुष अपने धर्ममें  
 निवास करते हुए कभी ऐसी नीच  
 अभिलाषा नहीं करते। हे राजन् ! इससे  
 चाहे कोई पुरुष तुमसे बुरा हो अथवा  
 भला हो, तुम अभिमानके वशमें होकर  
 कभी उसका अपमान न करना, किसी  
 पुरुषको अवमानित तथा दुःखित न करना  
 ही तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य है। (३४-३६)

हे राजेन्द्र ! तुम निश्चित बुद्धि,  
 लोभ रहित, अहङ्कार-शून्य, जितेन्द्रिय,  
 शान्त, कोमल और धीरताको अवलम्बन

करके प्रजाका पालन करो । बलाबलको  
 विना जाने फिर कभी किसीका अपमान  
 न करना; इस समय मैं तुम्हें आज्ञा  
 देता हूँ, कि कुशलपूर्वक अपने स्थानपर  
 जाओ; परन्तु फिर कभी ऐसे बुरे आ-  
 चरण न करना । हमारे वचनके अनु-  
 सार तुम सदा ब्राह्मणोंसे अपना आत्म  
 कुशल पूछते रहना । (३६-३८)

श्रीपरशुरामजी बोले, इस प्रकारके  
 उपदेश सुनकर राजा दम्भोद्धव उन  
 दोनों महा तपस्वियोंके चरणोंपर गिर-  
 कर उन्हें प्रणाम किया । अनन्तर वहाँसे  
 लौटके जब अपने नगरमें आये, तबसे  
 अत्यन्त धर्मके आचरण करने लगे । इस  
 समय विचार करके देखो, पहिले समयमें  
 नर ऋषिने जो ऐसे कर्म किये थे, उसे

ततो गुणैः सुबहुभिः श्रेष्ठो नारायणोऽभवत् ॥ ४० ॥

तस्माद्यावद्धनुःश्रेष्ठे गाण्डीवेऽस्त्रं न युज्यते ।

तावत्त्वं मानमुत्सृज्य गच्छ राजन्धनञ्जयम् ॥ ४१ ॥

काकुदीकं शुक्रं नाकमक्षिसन्तर्जनं तथा ।

सन्तानं नर्तकं घोरमास्यमोदकमष्टमम् ॥ ४२ ॥

एतैर्विद्धाः सर्व एव मरणं यान्ति मानवाः ।

कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमानौ तथैव च ॥ ४३ ॥

मात्सर्याहंकृती चैव क्रमादेत उदाहृताः ।

उन्मत्ताश्च विचेष्टन्ते नष्टसंज्ञा विचेतसः ॥ ४४ ॥

स्वपन्ति च प्लवन्ते च च्छर्दयन्ति च मानवाः ।

मूत्रयन्ते च सततं रुदन्ति च हसन्ति च ॥ ४५ ॥

निर्माता सर्वलोकानामीश्वरः सर्वकर्मवित् ।

यस्य नारायणो बन्धुरर्जुनो दुःसहो युधि ॥ ४६ ॥

कस्तमुत्सहते जेतुं त्रिषु लोकेषु भारत ।

बहुत बड़ा तथा कठिन कार्य कहना चाहिये । नारायण उनसे भी कई एक गुणोंमें श्रेष्ठ थे । हे राजन् ! इसीसे जबतक धनुषोंमें श्रेष्ठ गाण्डीव धनुषपर काकुदीक (प्रस्वापन अस्त्र), शुक्र ( मोहन अस्त्र), नाक (उन्मादन अस्त्र), अक्षिसन्तर्जन ( त्रासन अस्त्र ), सन्तान ( इन्द्रादि दिव्य अस्त्र) नर्तक, (नाचनेवाला पैशाच अस्त्र), घोर ( महाभारीको उत्पन्न करने-वाला अर्थात् राक्षस अस्त्र), और आस्य-मोदक ( जिसके लगनेसे मनुष्य मुंहपर पत्थर रखके मरनेको उद्यत होते हैं; अर्थात् याम्य अस्त्र ), नहीं चढाये जाते हैं, तबतक तुम अभिमानको छोडकर अर्जुनके अनुगामी बनो । (३९-४२)

इन ऊपर कहे हुए अस्त्रोंके लगनेसे सब मनुष्य मृत्युको प्राप्त होते हैं, कई मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य अहङ्कार आदिसे व्याप्त होते हैं । सब मनुष्य उन्मत्त और विह्वलाचित्त होकर कार्य करने लगते हैं; कितने ही वमन, और मूत्रत्याग करते, मूर्च्छा खाते, रोते और हंसते रहते हैं । हे भारत ! तब लोगोंके सृष्टिकर्त्ता सकल कर्म और धर्मको जाननेवाले जगतके गुरु नारायण जिसके मित्र हैं, उस अर्जुनका प्रताप रूपी अग्नि जो युद्धमें महाभयङ्कर होजा-वेगा इसमें क्या सन्देह है ? (४३-४६)

संग्राममें जिसके समान और कोईभी नहीं है, उस कपिध्वज महावीर अर्जुन

वीरं कपिध्वजं जिष्णुं यस्य नास्ति समो युधि ॥४७॥

असंख्येया गुणाः पार्थे तद्विशिष्टो जनार्दनः ।

त्वमेव भूयो जानासि कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ४८ ॥

नरनारायणौ यौ तौ तावेवाऽर्जुनकेशवौ ।

विजानीहि महाराज प्रवीरौ पुरुषोत्तमौ ॥ ४९ ॥

यद्येतदेवं जानासि न च मामभिशाङ्कसे ।

आर्या मतिं समास्थाय शाम्य भारत पाण्डवैः ॥५०॥

अथ चेन्मन्यसे श्रेयो न मे भेदो भवेदिति ।

प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा च युद्धे मनः कृथाः ॥ ५१ ॥

भवतां च कुरुश्रेष्ठ कुलं बहुमतं भुवि ।

तत्तथैवाऽस्तु भद्रं ते स्वार्थमवोपचिन्तय ॥ ५२ ॥ [ ३३९६ ]

इति श्रीमहाभारते ० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि द्वांशोऽर्जुनोपाख्याने षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

वैशम्पायन उवाच-जामदग्न्यवचः श्रुत्वा कण्वोऽपि भगवानृषिः ।

को जीतनेके निमित्त इस तीनों भुवन में कौन पुरुष साहस कर सकता है ? इसके अतिरिक्त अर्जुनमें कितने प्रकारके गुण हैं, उनकी संख्या करना बहुत ही कठिन है । जनार्दन कृष्ण उनसे भी कई एक अंश तथा गुणोंमें श्रेष्ठ हैं । हे महाराज ! तुम अर्जुनको केवल कुन्तीका पुत्र ही समझते हो; परन्तु महातेज तथा वीर्यसे युक्त वह जो पुरुषोंमें श्रेष्ठ नर और नारायण ऋषि हैं; उन्होंने ही अर्जुन और कृष्ण रूपसे इस पृथ्वीपर अवतार लिया है; तुम इस बातको अच्छी प्रकारसे अपने हृदयमें समझलो । ( ४७-४९ )

हे भारत ! यदि इसमें तुम्हें निश्चय हो, और मेरे वचनमें कोई शङ्का न हो, तो तुम शुद्ध-बुद्धि अवलम्बन करके

पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लो । और यदि आपसमें फूटका न होना तुम उत्तम समझते हो, तौभी तुम्हें शान्ति स्थापनके निमित्त यत्न करना चाहिये; युद्धके निमित्त इच्छा करनी कभी उचित नहीं है । हे भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारा यह कुल पृथ्वी भरमें श्रेष्ठ और सब जगत्में प्रतिष्ठित है; इस समय अपने कल्याणके निमित्त तुम इस कुलको इसी प्रकार स्थित रहने दो; जो यथार्थ स्वार्थ है, उसीमें अपने चित्तको लगाओ । ( ५०-५२ ) [ ३३९६ ]

उद्योगपर्वमें छानव्वे अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें सप्तानव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, परशुरामके वचन सुनकर भगवान् कण्व ऋषि भी

दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ १ ॥  
 कण्व उवाच— अक्षयश्चाऽन्यथैव ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
 तथैव भगवन्तौ तौ नरनारायणावृषी ॥ २ ॥  
 आदित्यानां हि सर्वेषां विष्णुरेकः सनातनः ।  
 अजयश्चाऽन्यथैव शाश्वतः प्रभुरीश्वरः ॥ ३ ॥  
 निमित्तमरणाश्चाऽन्ये चन्द्रसूर्यौ मही जलम् ।  
 वायुरग्निस्तथाऽऽकाशं ग्रहास्तारागणास्तथा ॥ ४ ॥  
 ते च क्षयान्ते जगतो हित्वा लोकत्रयं सदा ।  
 क्षयं गच्छन्ति वै सर्वे सृज्यन्ते च पुनः पुनः ॥ ५ ॥  
 सुहृत्तमरणास्त्वन्ये मानुषा मृगपक्षिणः ।  
 तैर्यग्योन्यश्च ये चाऽन्ये जीवलोकचरास्तथा ॥ ६ ॥  
 भूयिष्ठेन तु राजानः श्रियं भुक्त्वाऽऽयुषः क्षये ।  
 तरुणाः प्रतिपद्यन्ते भोक्तुं सुकृतदुष्कृते ॥ ७ ॥  
 स भवान्धर्मपुत्रेण शयं कर्तुमिहाऽर्हति ।  
 पाण्डवाः कुरवश्चैव पालयन्तु वसुन्धराम् ॥ ८ ॥  
 बलवानहमित्येव न मन्तव्यं सुयोधन ।

कौरवोंकी सभामें दुर्योधनको सम्बोधन करके यह वचन कहने लगे ( १ )

कण्व बोले, सब लोकोंके पितामह ब्रह्मा जैसे अक्षय और नाश-रहित हैं, नर-नारायण ऋषि भी वैसे ही हैं । सब आदित्योंके बीच विष्णु ही एक मात्र सनातन, न जीतने योग्य, नाश रहित नित्य स्वरूप और सबके ईश्वर हैं; इसके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ग्रह और ताराओंके पुञ्ज सब प्रलय-कालमें विनष्ट होजाते हैं । संसारके नाश होनेके साथ ही सब वस्तुएं तीनों लोकसे गिरकर नष्ट

हो जाती हैं; और फिर भी उनकी सृष्टि होती है; मनुष्य, मृग, पक्षी और तिर्यक् योनिसे उत्पन्न हुए सब जीव क्षण मात्रमें मर जाते हैं । ( २-५ )

महा प्रतापी राजा लोग राजलक्ष्मी-को भोगकर आयुके शेष होनेपर अपने पाप पुण्यके अनुसार नया शरीर पाते हैं । इससे इन सब बातोंको विचार करके, तुम धर्मपुत्र युधिष्ठिरके सङ्गमें सन्धि कर लो । कौरव और पाण्डव लोग आपसमें मिलकर पृथ्वी भरकी प्रजाका पालन करें । हे भरतर्षभ दुर्योधन ! मैं बलवान् हूं, ऐसा अभिमान करना

बलवन्तो बलिभ्यो हि दृश्यन्ते पुरुषर्षभ ॥ ९ ॥  
 न बलं बलिनां मध्ये बलं भवति कौरव ।  
 बलवन्तो हि ते सर्वे पाण्डवा देवविक्रमाः ॥ १० ॥  
 अत्राऽप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 मातलेर्दातुकामस्य कन्यां मृगयतो वरम् ॥ ११ ॥  
 मतस्त्रिलोकराजस्य मातलिर्नाम सारथिः ।  
 तस्यैकैव कुले कन्या रूपतो लोकविश्रुता ॥ १२ ॥  
 गुणकेशीति विख्याता नाम्ना सा देवरूपिणी ।  
 श्रिया च वपुषा चैव स्त्रियोऽन्याः साऽतिरिच्यते ॥ १३ ॥  
 तस्याः प्रदानसमयं मातलिः सह भार्यया ।  
 ज्ञात्वा विममृशे राजंस्तत्परः परिचिन्तयन् ॥ १४ ॥  
 धिक्स्वत्वलघुशीलानामुच्छ्रितानां यशस्विनाम् ।  
 नराणां मृदुसत्त्वानां कुले कन्याप्ररोहणम् ॥ १५ ॥  
 मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते ।  
 कुलत्रयं संशयितं कुरुते कन्यका सताम् ॥ १६ ॥  
 देवमानुषलोकौ द्वौ मानुषेणैव चक्षुषा ।

कभी उचित नहीं है, क्योंकि बलवानों से भी अधिक बलवाले पुरुष दीख पड़ते हैं । ( ७-९ )

हे कुरुनन्दन ! देवताओं के समान पराक्रमी पाँचों पाण्डव अलौकिक बलसे युक्त हैं; प्रकृत बलशाली पुरुषों के निकट सेनाका बल, बल नहीं गिना जाता । कन्या प्रदान करनेवाले मातलिके वर खोजनेका यह पुराना इतिहास पण्डित लोगों ने इसके उदाहरण देनेके योग्य वर्णन किया है । ( १०-११ )

तीनों लोक तथा देवताओं के स्वामी इन्द्र के जो मातलि नामक सारथी हैं,

उनके एक गुणकेशी नामकी कन्या थी, सुन्दरता और शरीरकी सुधराईमें वह सब लोगोंकी स्त्रियोंसे बढ गई थी । उसके व्याह करनेका समय आया हुआ जानकर मातलि अपनी भार्याके सहित अत्यन्त शोक और चिन्तासे दुःखित होकर कहने लगे । ( १२-१४ )

अहो ! उदारचरित, यशस्वी, ऊँचे और नम्रतासे युक्त स्वभाववाले पुरुषोंके कुलमें कन्याका जन्म होना क्या ही दुःखका विषय है ! सज्जन पुरुषोंके पक्षमें कन्या मातृकुल, पिताका कुल और जिस कुलमें प्रदान की जाती है, इन तीनों

अवगाह्यैव विचितौ न च मे रोचते वरः ॥ १७ ॥  
 कण्व उवाच— न देवान्नैव दितिजान्न गन्धर्वान्न मानुषान् ।  
 अरोचयद्वरकृते तथैव बहुलानृषीन् ॥ १८ ॥  
 भार्ययाऽनु स सम्मन्य सह रात्रौ सुधर्मया ।  
 मातलिर्नागलोकाय चकार गमने मतिम् ॥ १९ ॥  
 न मे देवमनुष्येषु गुणकेश्याः समो वरः ।  
 रूपतो दृश्यते कश्चिन्नागेषु भविता ध्रुवम् ॥ २० ॥  
 इत्यामन्य सुधर्मा स कृत्वा चाऽभिप्रदक्षिणम् ।  
 कन्यां शिरस्युपाधाय प्रविवेश महीतलम् ॥ २१ ॥ [३४१७]

इति श्रीमहाभारते० भगवद्गीतापर्वणि मातलिवरान्वेषणे सप्तमवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

कण्व उवाच— मातलिस्तु व्रजन्मार्गे नारदेन महर्षिणा ।  
 वरुणं गच्छता द्रष्टुं समागच्छद्यहच्छया ॥ १ ॥  
 नारदोऽथाऽब्रवीदेनं क भवान्गन्तुमुद्यतः ।  
 स्वेन वा सूत कार्येण शासनाद्वा शतक्रतोः ॥ २ ॥

कुलोंको संशयमें डालती है। मैंने बुद्धिके अनुसार देव और मनुष्य लोकोंको मानुष दृष्टिसे भली भाँति खोज लिया तौ भी किसी स्थानपर मेरे योग्य उत्तम पात्र नहीं मिला । ( १५-१७ )

कण्व मुनि बोले, देवता, गन्धर्व, दैत्य, दानव, मनुष्य और ऋषियोंके समूहमें भी कोई मातलिके कन्याके समान योग्य पात्र नहीं मिला तब उन्होंने सुधर्मा नामकी अपनी स्त्रीके सङ्ग रातके समय परामर्श करके नाग लोकमें जानेका सङ्कल्प किया, और दूसरे दिन सवेरे ही “ यद्यपि देव और मनुष्य लोकमें गुणकेशीके रूप और गुणके समान कोई पात्र नहीं मिल सका,

तौ भी नागलोकमें अवश्य कोई न कोई मिल जायगा” सुधर्मासे ऐसा कहके मातलिने उसकी प्रदक्षिणा की, और कन्याका मस्तक स्रृण्वके पृथ्वीतलमें प्रवेश किया । ( १८—२१ ) ३४१४

उद्योगपर्वमें सप्तमव्वे अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें अठानव्वे अध्याय ।

कण्वमुनि बोले, मातलि मार्गमें चले जाते थे; उसी समय महर्षि नारदके सङ्ग उनकी भेंट होगई । नारद वरुणसे मिलनेको जाते थे, दैव संयोगसे मातलि को देखकर बोले, हे इन्द्रके साराधि श्रेष्ठ मातलि ! कहां जानेके निमित्त उद्यत हुए हो ? अपने कार्यके निमित्त अथवा इन्द्रके कार्य साधनके लिये



मातलिनारदेनैवं सम्पृष्टः पथि गच्छता ।

यथावत्सर्वमाचष्ट स्वकार्यं नारदं प्रति ॥ ३ ॥

तमुवाचाऽथ स मुनिर्गच्छावः सहिताविति ।

सलिलेशदिदृक्षार्थमहमप्युद्यतो दिवः ॥ ४ ॥

अहं ते सर्वमाख्यास्ये दर्शयन्वसुधातलम् ।

दृष्ट्वा तत्र वरं कञ्चिद्रोचयिष्याव मातले ॥ ५ ॥

अवगाह्य तु तौ भूमिभूमौ मातलिनारदौ ।

ददृशाते महात्मानौ लोकपालमपां पतिम् ॥ ६ ॥

तत्र देवर्षिसदृशीं पूजां स प्राप नारदः ।

महेन्द्रसदृशीं चैव मातलिः प्रत्यपद्यत ॥ ७ ॥

तावुभौ प्रीतमनसौ कार्यवन्तौ निवेद्य ह ।

वरुणेनाऽभ्यनुज्ञातौ नागलोकं विचेरतुः ॥ ८ ॥

नारदः सर्वभूतानामन्तर्भूमिनिवासिनाम् ।

जानंश्चकार व्याख्यानं यन्तुः सर्वमशेषतः ॥ ९ ॥

नारद उवाच— दृष्टस्ते वरुणः सूत पुत्रपौत्रसमावृतः ।

जारहे हो ? नारद मुनिसे ऐसा पूछे जानेपर मातलिने नारदमुनिके पास अपने कार्यका सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तार पूर्वक कह सुनाया । (१-३)

अनन्तर देवर्षि नारद बोले, तब चलो हम लोग दोनों एकही सङ्ग चलेंगे, मैं भी जलके स्वामी वरुणके दर्शन करनेके निमित्त स्वर्गसे चला आता हूं । हे मातलि ! पृथ्वीतलको देखकर मैं उसका सम्पूर्ण विवरण तुमको सुनाऊंगा; और अच्छी प्रकारसे देख सुनकर वहींपर तुम्हारी कन्याके योग्य कोई सुन्दर वर ठहरा दूंगा । (४-५)

अनन्तर महात्मा मातलि और नार-

दने पातालपुरीमें पहुंचकर, जलके स्वामी लोकपाल वरुणका दर्शन किया । वहांपर देवर्षि नारद मुनिने और मातलिने इन्द्रके समान पूजा तथा सत्कार पाया । इस प्रकारसे मान और आदर पाकर नारद और मातलिने अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर अपने अपने आनेका कारण कह सुनाया; अनन्तर वरुणकी आज्ञा लेकर वे दोनों नाग लोकमें घूमने लगे । नारद रसातलके निवासी सब जीवोंका वृत्तान्त अच्छी प्रकारसे जानते थे; इससे वह मातलिसे सबके वृत्तान्त विशेष रूपसे कहने लगे । (६-९)

श्रीनारद मुनि बोले, हे सूत ! तुमने

पश्योदकपतेः स्थानं सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ॥ १० ॥

एष पुत्रो महाप्रज्ञो वरुणस्येह गोपतेः ।

एष वै शीलवृत्तेन शौचेन च विशिष्यते ॥ ११ ॥

एषोऽस्य पुत्रोऽभिमतः पुष्करः पुष्करेक्षणः ।

रूपवान्दर्शनीयश्च सोमपुत्र्या वृतः पतिः ॥ १२ ॥

ज्योत्स्नाकालीति यासाहुर्द्वितीयां रूपतः श्रियम् ।

अदित्याश्चैव यः पुत्रो ज्येष्ठः श्रेष्ठः कृतः स्मृतः ॥ १३ ॥

भवनं पश्य वारुण्यं यदेतत्सर्वकाञ्चनम् ।

यत्प्राप्य सुरतां प्राप्ताः सुराः सुरपतेः सखे ॥ १४ ॥

एतानि हतराज्यानां दैतेयानां स मातले ।

दीप्यमानानि दृश्यन्ते सर्वप्रहरणान्युत ॥ १५ ॥

अक्षयाणि किलैतानि विवर्तन्ते स मातले ।

अनुभावप्रयुक्तानि सुरैरवजितानि ह ॥ १६ ॥

अत्र राक्षसजात्यश्च दैत्यजात्यश्च मातले ।

पुत्र तथा पौत्रसे युक्त जलके स्वामी वरुणका दर्शन किया; अब तुम उनका सब प्रकार शुभदायक बहुतसी सम्पत्तिसे युक्त स्थान अच्छी प्रकारसे देखो। पुष्कर नामक उनके अत्यन्त रूपवान् और देखने योग्य पुत्रको जो तुमने देखा है; वह सुशील, उत्तम चरित्रवालोंमें शुद्ध आचार, सबसे श्रेष्ठ, महा बुद्धिमान् और पिताके अत्यन्त ही प्रिय हैं। रूप और सुघराईमें दूसरी लक्ष्मी के समान ज्योत्स्नाकाली नामी सोमकन्याने उन्हें अपना पति बनाया है। अदितिके बड़े पुत्र सूर्य भी इस ज्योत्स्नाकालीके श्रेष्ठ पति रूपसे चुने गये थे; यह बात प्रसिद्ध है। १०-१३

हे इन्द्रके मित्र! जिसको पान करने-

से देवताओंने मृत्युको जीता है; जो सब स्थानोंमें सुवर्णसे भूषित है; वही वारुणी सुरा भवन है, उसको देखो। हे मातले! यह देखो राज्यसे दूर किये गये दैत्य लोगोंके प्रज्वलित अस्त्र शस्त्र सब दीख पड़ते हैं। कहा जाता है, कि किसी समयमें इन अस्त्रोंका नाश नहीं होता। बार बार विद्ध होनेपर भी ये अस्त्र अपने अधिकारियोंके हाथमें लौट जाते हैं। इन अस्त्रोंको चलानेके निमित्त भी महा अनुभव अर्थात् अत्यन्त ही मानसिक बलकी आवश्यकता होती है। इन सम्पूर्ण अस्त्रों को इस समय देवताओंने दैत्योंको जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया है। (१४-१६)

दिव्यप्रहरणाश्चाऽऽसन्पूर्वदैवतनिर्मिताः ॥ १७ ॥  
 अग्निरेष महार्चिष्मान्जागर्ति वारुणे हृदे ।  
 वैष्णवं चक्रमाविद्धं विधूमेन हविष्मता ॥ १८ ॥  
 एष गाण्डीमयश्चापो लोकसंहारसम्भृतः ।  
 रक्ष्यते दैवतैर्नित्यं यतस्तद्गाण्डिवं धनुः ॥ १९ ॥  
 एष कृत्ये समुत्पन्ने तत्तद्वारयते बलम् ।  
 सहस्रशतसंख्येन प्राणेन सततं ध्रुवः ॥ २० ॥  
 अशास्यानपि शास्त्येष रक्षोबन्धुषु राजसु ।  
 सृष्टः प्रथमतश्चण्डो ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना ॥ २१ ॥  
 एतच्छस्त्रं नरेन्द्राणां महचक्रेण भासितम् ।  
 पुत्राः सलिलराजस्य धारयन्ति महोदयम् ॥ २२ ॥  
 एतत्सलिलराजस्य च्छत्रं छत्रगृहे स्थितम् ।  
 सर्वतः सलिलं शीतं जीमूत इव वर्षति ॥ २३ ॥  
 एतच्छत्रात्परिभ्रष्टं सलिलं सोमनिर्मलम् ।  
 तमसा सूर्चितं भाति येन नाऽऽर्छति दर्शनम् ॥ २४ ॥

इस स्थानमें पहले देवताओंसे निर्माण  
 किये हुए दिव्य अस्त्रोंके चलानेवाले  
 राक्षस और दैत्योंका निवास था ।  
 इसी वारुणहृदमें बड़ी भारी शिखासे  
 युक्त वडवानल है; धूँवसे रहित अग्निसे  
 युक्त अर्थात् प्रचण्ड ज्वालाके सहित  
 सुदर्शन चक्र और लोक संहारके निमि-  
 त्त भली भाँतिसे रक्षित यह गाण्डीमय  
 धनुषकी देवता लोग नित्य ही रक्षा  
 करते हैं । इसीसे उस प्रसिद्ध गाण्डीव-  
 धनुषका नाम करण हुआ है । १७-१९

लाख धनुषके समान इसमें बल है  
 और अचल रूपसे रहनेपर भी युद्धकार्य  
 के समयमें यह कितने बल और तेजको

धारण करता है, उसका वर्णन करना बहुत  
 ही कठिन है । यह राक्षस और राजाओं  
 से शासन न कियेजाने योग्य पुरुषोंको  
 भी शासित करता है । ब्रह्माने पहिले  
 ही यह प्रचण्ड धनुष बनाया था ।  
 राजाओंके निमित्त यह धनुष चक्रसे भी  
 परम शस्त्र है । जलके स्वामी वरुणके  
 पुत्र इस महाधनुषको धारण किया  
 करते हैं । (२०-२२)

और भी देखो, छत्रगृहके बीच जल-  
 राजका जो आतपत्र रहता है, वह बाद-  
 लोंकी भाँति सब ओर शीतल जलकी  
 वर्षा किया करता है । छत्रसे निकला  
 हुआ वह विचित्र जल चन्द्रमाके समान

बहून्यद्भुतरूपाणि द्रष्टव्यानीह मातले ।

तव कार्यावरोधस्तु तस्माद्रच्छाव मा चिरम् ॥ २५ ॥ ३४४२

इति श्रीमहाभारते० शतसाहस्र्यां० उद्योगपर्वणि भगवद्भानुपर्वणि मातलिवरान्वेषणेऽष्टनवतितमोऽध्यायः ९८॥

नारद उवाच— एतत्तु नागलोकस्य नाभिस्थाने स्थितं पुरम् ।

पातालमिति विख्यातं दैत्यदानवसेवितम् ॥ १ ॥

इदमद्भिः समं प्राप्ता ये केचिद्भुवि जङ्गमाः ।

प्रविशन्तो महानादं नदन्ति भयपीडिताः ॥ २ ॥

अत्राऽऽसुरोऽग्निः सततं दीप्यते वारिभोजनः ।

व्यापारेण धृतात्मानं निबद्धं समबुध्यत ॥ ३ ॥

अत्राऽमृतं सुरैः पीत्वा निहितं निहतारिभिः ।

अतः सोमस्य हानिश्च वृद्धिश्चैव प्रहृश्यते ॥ ४ ॥

अत्राऽऽदित्यो हयशिराः काले पर्वणि पर्वणि ।

उत्तिष्ठति सुवर्णारुखं वाग्भिरापूरयज्जगत् ॥ ५ ॥

निर्मल होनेपर भी महा घोर अन्धकार से इस भांति छिपा रहता है, कि किसीको दीख नहीं पड़ता । हे मातलि ! इस स्थानमें इसी भांतिके बहुतसे पदार्थ दीख पड़ते हैं; परन्तु सबको देखसेने तुम्हारे कार्यकी हानि होगी; इससे अब बहुत विलम्ब न करके चलो शीघ्रतासे हम लोग गमन करें । ( २३-२५ ) [ ३४४२ ]

उद्योगपर्वमें अठानव्वे अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें निनानव्वे अध्याय ।

श्रीनारदमुनि बोले, नाग लोकके बीचमें जो यह पुरी दीख पड़ती है; इसका नाम पाताल है । जंगम जीवोंमें से कोई इस पातालपुरीमें जलके वेगके सङ्ग आजाता है; वह इस पुरीमें प्रवेश करनेके समय भयसे पीडित होकर महा

घोर शब्द किया करता है । जलको भस्म करनेवाला वाडवानल इस स्थानमें नित्य ही प्रज्वलित रहता है । वह देवताओंकी इच्छाके अनुसार अपना यह कर्तव्य कार्य जानता है, इसीसे मर्यादाको न लांघकर यत्नके साथ स्थिर भावसे रहता है । १-३

देवता लोग शत्रुओंका संहार करने के अनन्तर अमृत पीके इसी स्थानपर सञ्चित करके रख छोड़ते हैं, इसी कारण यहांपर चन्द्रमाकी कलाका नाश और वृद्धि दीखती है । इसी स्थानपर अदिति के पुत्र हयग्रीवरूपी विष्णु, वेद पढ़ने वाले ब्राह्मणोंकी वेदध्वनिको वादित करनेके निमित्त वेदवाक्यसे सुवर्ण नामक जगतको परिपूर्ण करते हुए प्रति पर्वके दिवस उपास्थित करते हैं । चन्द्रमा

यस्मादलं समस्तास्ताः पतन्ति जलमूर्तयः ।

तस्मात्पातालमित्येव ख्यायते पुरमुत्तमम् ॥ ६ ॥

ऐरावणोऽस्मात्सलिलं गृहीत्वा जगतो हितः ।

मेघेष्वामुञ्चते शीतं यन्महेन्द्रः प्रवर्षति ॥ ७ ॥

अत्र नानाविधाकारास्तिमयो नैकरूपिणः ।

अप्सु सोमप्रभां पीत्वा वसन्ति जलचारिणः ॥ ८ ॥

अत्र सूर्याशुभिर्भिन्नाः पातालतलमाश्रिताः ।

मृता हि दिवसे सूत पुनर्जीवन्ति वै निशि ॥ ९ ॥

उदयन्नित्यशश्चाऽत्र चन्द्रमा रश्मिबाहुभिः ।

अमृतं स्पृश्य संस्पर्शात्सञ्जीवयति देहिनः ॥ १० ॥

अत्र ते धर्मनिरता बद्धाः कालेन पीडिताः ।

दैतेया निवसन्ति स्म वासवेन हताश्रियः ॥ ११ ॥

अत्र भूतपतिर्नाम सर्वभूतमहेश्वरः ।

भूतये सर्वभूतानामचरत्तप उत्तमम् ॥ १२ ॥

अत्र गोव्रतिनो विप्राः स्वाध्यायान्नायकर्षिताः ।

आदि सम्पूर्ण जलकी मूर्तियां इसी स्थानपर पतित होती हैं अर्थात् जलको पातन करती हैं। इसी कारण यह उत्तम लोक “ पतञ्जल ” के संक्षेपसे पाताल कहके विख्यात हुआ है। जगत्के हित करनेवाले हाथियोंके राजा ऐरावत इसी स्थानसे सुन्दर तथा शीतल जल ग्रहण करके सब मेघोंके बीच चलाया करते हैं; जिसको देवताओंके राजा इन्द्र पृथ्वीके ऊपर वर्षाया करते हैं। इस स्थानमें नाना प्रकारके जलजन्तु जलके बीच चन्द्रमाके प्रकाशका पान करके निवास करते हैं। ( ४—८ )

हे सूत ! इस पातालतलके आसरेमें

ऐसे बहुतसे जीव हैं, जो दिनमें सूर्यके तेजसे मृत प्राय हो जाते हैं, और रात्रिके समय फिर जीवित होते हैं। उसका कारण यह है, कि यहाँपर चन्द्रमा प्रति रात्रिको उदित होकर अपने किरणरूपी हाथोंसे अमृत स्पर्श कराके उन को फिर जिला देते हैं। इन्द्रके हाथसे सर्वस्व हरे जानेपर कालसे पीडित होकर अपने धर्ममें सदा स्थित रहनेवाले प्रसिद्ध दैत्य लोग यहींपर इच्छाके अनुसार निवास करते हैं। ( ९—११ )

सब प्राणियोंके महेश्वर उमापति महादेवने इसी स्थानपर सब लोकोंके कल्याणकी इच्छासे उत्तम तपका अनु-

त्यक्तप्राणा जितस्वर्गा निवसन्ति महर्षयः ॥ १३ ॥  
 यत्र तत्र शयो नित्यं येन केनचिदाशितः ।  
 येन केनचिदाच्छन्नः स गोव्रत इहोच्यते ॥ १४ ॥  
 ऐरावणो नागराजो वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।  
 प्रसूताः सुप्रतीकस्य वंशे वारणसत्तमाः ॥ १५ ॥  
 पश्य यद्यत्र ते कश्चिद्रोचते गुणतो वरः ।  
 वरयिष्यामि तं गत्वा यत्नमास्थाय मातले ॥ १६ ॥  
 अण्डमेतज्जले न्यस्तं दीप्यमानमिव श्रिया ।  
 आप्रजानां निसर्गाद्वै नोद्भिद्यति न सर्पति ॥ १७ ॥  
 नाऽस्य जातिं निसर्गं वा कथ्यमानं शृणोमि वै ।  
 पितरं मातरं चापि नाऽस्य जानाति कश्चन ॥ १८ ॥  
 अतः किल महानग्निरन्तकाले समुत्थितः ।  
 धक्ष्यते मातले सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १९ ॥  
 मातलिस्त्वब्रवीच्छ्रुत्वा नारदस्याऽथ भाषितम् ।

ग्ञान किया था । सदा वेदको पढ़ने और  
 स्वर्गको जीतनेवाले गोव्रतधारी महा  
 ऋषि लोग प्राणवायुका संयम करके  
 इसी स्थानमें बसते हैं । जहां तहां कोई  
 स्थानमें सो रहना, जो कुछ भोजन  
 मिले उसीसे तृप्त होना; और जो कुछ  
 वस्त्र मिले उसीको धारण करना; इसी-  
 को गोव्रत कहते हैं । इसी पुरमें सुप्र-  
 तीक नाम नागके वंशमें नागराज ऐरा-  
 वण, वामन, कुमुद, अञ्जन आदि मुख्य  
 मुख्य नागोंका जन्म हुआ है । १२-१४  
 हे मातालि ! इससे तुम यहांपर  
 अच्छी भांतिसे खोजकर देखो यदि कोई  
 वर तुम्हारी इच्छाके अनुसार ठीक जंचे,  
 तो उसके समीप चलकर यत्नपूर्वक

तुम्हारी कन्याके पाणिग्रहणके निमित्त  
 उससे प्रार्थना की जाय । जलके बीच  
 यह जो अण्डा अपने तेजसे प्रकाशित  
 हो रहा है, यह सम्पूर्ण प्राणियोंको  
 सृष्टिके समयसे कभी न फटा; न यहांसे  
 हटा । मैं कभी किसी पुरुषको इसका जन्म  
 तथा स्वभाव वर्णन करते नहीं सुना है ।  
 इसके पिता माता कौन हैं ? इस बातको  
 कोई नहीं जानता । हे मातालि ! यह  
 वचन प्रासिद्ध है, कि संसारके नाश  
 होनेके समय इसमेंहीसे प्रलयकी अग्नि  
 निकलकर सब चर और अचर प्राणियों  
 के सहित तीनों लोकको भस्म कर देती  
 है । ( १५-१९ )

नारदमुनिकी इन बातोंको सुनकर

न मेऽत्र रोचते कश्चिदन्यतो ब्रज मा चिरम् ॥ २० ॥ [ ३४६२ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

मातलिवरान्वेषणे ऊनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

नारद उवाच— हिरण्यपुरमित्येतत्ख्यातं पुरवरं महत् ।

दैत्यानां दानवानां च मायाशतविचारिणाम् ॥ १ ॥

अनल्पेन प्रयत्नेन निर्मितं विश्वकर्मणा ।

मयेन मनसा सृष्टं पातालतलमाश्रितम् ॥ २ ॥

अत्र मायासहस्राणि विकुर्वाणा महौजसः ।

दानवा निवसन्ति स्म शूरा दत्तवराः पुरा ॥ ३ ॥

नैते शक्रेण नाऽन्येन यमेन वरुणेन वा ।

शक्यन्ते वशमानेतुं तथैव धनदेन च ॥ ४ ॥

असुराः कालखज्राश्च तथा विष्णुपदोद्भवाः ।

नैर्ऋता यातुधानाश्च ब्रह्मपादोद्भवाश्च ये ॥ ५ ॥

दंष्ट्रिणो भीमवेगाश्च वातवेगपराक्रमाः ।

मायावीर्योपसम्पन्ना निवसन्त्यत्र मातले ॥ ६ ॥

मातलिने और कहा कि इस स्थान पर मेरी इच्छा के अनुसार कोई पात्र नहीं जंचता; इससे अब आप दूसरे स्थान पर शीघ्र ही चलिए । ( २० ) [ ३४६२ ]

उद्योगपर्वमें निनानव्वे अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ अध्याय ।

श्रीनारद मुनि बोले, अत्यन्त मायावी दैत्य दानवों का पाताल के तल पर यह उत्तम महानगर हिरण्यपुर नाम से विख्यात है । इस नगर को मय-दानव ने अपने मन से कल्पना की थी और विश्वकर्माने इसको महा परिश्रम और यत्न के साथ बनाया है । सहस्रों माया-ओं के रचनेवाले महा तेजस्वी शूर वीर

दानव लोग पहिले से वरदान पाकर इसी स्थान में निवास करते हैं । उन लोगों को इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर तथा दूसरा कोई भी अपने वश में नहीं कर सकता । ( १-४ )

हे मातलि ! विष्णु के चरण से उत्पन्न हुए कालखज्र नामक असुर और ब्रह्मा के चरण से उत्पन्न भये नैर्ऋत, और यातुधान नामक राक्षस लोग भी इसी स्थान में निवास करते हैं। वे सब बड़े बड़े देवतों से युक्त, भयङ्कर-वेगशाली और वायु के समान पराक्रमी तथा मायाबल से पूर्ण हैं । इसके अतिरिक्त इस स्थान में और भी निवातकवच नामक कितने ही

निवातकवचा नाम दानवा युद्धदुर्मदाः ।  
 जानासि च यथा शक्रो नैताञ्शक्रोति बाधितुम् ॥७॥  
 बहुशो मातले त्वं च तव पुत्रश्च गोमुखः ।  
 निर्भग्नो देवराजश्च सहपुत्रः शचीपतिः ॥ ८ ॥  
 पश्य वेश्मानि रौक्मानि मातले राजतानि च ।  
 कर्मणा विधियुक्तेन युक्तान्युपगतानि च ॥ ९ ॥  
 वैदूर्यमणिचित्राणि प्रवालरुचिराणि च ।  
 अर्कस्फटिकशुभ्राणि वज्रसारोज्ज्वलानि च ॥ १० ॥  
 पार्थिवानीव चाऽऽभान्ति पद्मरागमयानि च ।  
 शैलानीव च दृश्यन्ते दारवाणीव चाऽप्युत ॥ ११ ॥  
 सूर्यरूपाणि चाऽऽभान्ति दीप्ताग्निसदृशानि च ।  
 मणिजालविचित्राणि प्रांशूनि निविडानि च ॥ १२ ॥  
 नैतानि शक्यं निर्देष्टुं रूपतो द्रव्यतस्तथा ।  
 गुणतश्चैव सिद्धानि प्रमाणगुणवन्ति च ॥ १३ ॥  
 आक्रीडान्पश्य दैत्यानां तथैव शयनान्युत ।  
 रत्नवन्ति महार्हाणि भाजनान्यासनानि च ॥ १४ ॥  
 जलदाभांस्तथा शैलांस्तोयप्रस्रवणानि च ।

दानवोंका निवास है। इन्द्र भी उन  
 लोगोंके बल और पराक्रमको जाननेमें  
 समर्थ नहीं होते; सो बात तुमसे छिपी  
 नहीं है। ( ५—७ )

एकबार ध्यान देकर देखो, तुम और  
 तुम्हारा पुत्र गोमुख और पुत्रोंके सहित  
 देवताओंके राजा इन्द्र कई बार उन  
 लोगोंके सम्मुखसे युद्धमें भाग गये हैं।  
 हे मातलि ! दैत्य लोगोंके सोने, चांदी,  
 पद्मराग मणि तथा विविध शिल्पोंसे  
 युक्त यथायोग्य रूप और मनोहर  
 घरोंको देखो; यह सब वैदूर्य और दूसरी

मणियोंसे बली भांति चित्रित, अधिके  
 समान हीरेसे जगमगा रहे हैं; तथा  
 स्फटिकके समान श्वेत, सुन्दर और  
 बहुत ऊंचे हैं। ये सब मन्दिर मट्टी,  
 शिला और काठसे बने हुए, सूर्यके तेज  
 के समान प्रकाशित हो रहे हैं। ८—१२

इन मन्दिरोंके बहुत प्रकारके द्रव्य  
 और शिल्पोंकी संख्या करनी बहुतही  
 कठिन है; गुणोंसे ही इन सब मन्दिरोंकी  
 सिद्धि होती है। और भी इस मनोहर  
 क्रीडाकानन, रत्नोंसे युक्त पात्र, महा-  
 मूल्यवान् आसन, सुन्दर शय्या, बादल



कामपुष्पफलांश्चापि पादपान्कामचारिणः ॥ १५ ॥

मातले कश्चिदत्रापि रुचिरस्ते वरो भवेत् ।

अथवाऽन्यां दिशं भूमेर्गच्छाव यदि मन्यसे ॥ १६ ॥

मातलिस्त्वब्रवीदेनं आषमाणं तथाविधम् ।

देवर्षे नैव मे कार्यं विप्रियं त्रिदिवौकसाम् ॥ १७ ॥

नित्यानुषक्तवैरा हि आतरो देवदानवाः ।

परपक्षेण सम्बन्धं रोचयिष्याम्यहं कथम् ॥ १८ ॥

अन्यत्र साधु गच्छाव द्रष्टुं नाऽर्हामि दानवान् ।

जानामि तव चाऽऽत्मानं हिंसात्मकमनं तथा ॥ १९ ॥ ३४८१

इति श्रीमहाभारते वैद्यासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि मातलिवरान्वेषणे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

नारद उवाच— अयं लोकः सुपर्णानां पक्षिणां पन्नगाशिनाम् ।

विक्रमे गमने भारे नैषामस्ति परिश्रमः ॥ १ ॥

वैनतेयसुतैः सूत षड्भिस्ततमिदं कुलम् ।

सुमुखेन सुनाम्ना च सुनेत्रेण सुवर्चसा ॥ २ ॥

के समान पर्वत, सुन्दर फुहारे और अभिलाषाके अनुसार फूल फलसे युक्त सब वृक्षोंको देखो । हे मातलि ! यदि इस स्थानमें तुम्हारे मनके अनुसार कोई पात्र ठीक हो, तो उसे तुम देखो, और नहीं तो चलो हम दोनों दूसरे स्थापर चलें । ( १३-१६ )

मातलि ऐसे वचन कहनेवाले नारद से बोले, हे देवर्षि ! देवताओंके अप्रिय कार्य करना मुझे किसी प्रकारसे भी उचित नहीं है; देवता और दानव दोनोंमें सदासे वैर चला आता है; इससे शत्रु पक्षके सङ्गमें कैसे अपना सम्बन्ध कर सकता हूँ ? सम्बन्ध करनेकी बात तो दूर रही, दानवोंके सङ्ग भेंट भी करना

मेरे निमित्त बहुत ही अनुचित है । इससे चलिये हम लोग शीघ्र ही दूसरे स्थानपर गमन करें आपको अत्यंत हिंसा करनेवाले दैत्य मानते हैं, वह मुझे भली भाँतिसे विदित है । १७-१९ उद्योगपर्वमें एकसौ अध्याय समाप्त । [ ३४८१ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ एक अध्याय ।

श्रीनारदमुनि बोले, यह लोक साँपोंको भक्षण करनेवाले गरुड वंशीय पक्षियोंके अधिकार में है । पराक्रमका प्रकाश करने, शीघ्र चलने और बोझा उठानेमें इन पक्षियोंको कुछभी परिश्रम नहीं जान पड़ता । विनतापुत्र गरुडके सुमुख, सुनाम, सुनेत्र, सुवर्चा, सुरूप और सुबल इन्हीं छः पुत्रोंसे इस कुलका

सुरुचा पक्षिराजेन सुबलेन च मातले ।  
 वर्धितानि प्रसृत्या वै विनताकुलकर्तृभिः ॥ ३ ॥  
 पक्षिराजाभिजात्यानां सहस्राणि शतानि च ।  
 कश्यपस्य ततो वंशे जातैर्भूतिविवर्धनैः ॥ ४ ॥  
 सर्वे ह्येते श्रिया युक्ताः सर्वे श्रीवत्सलक्षणाः ।  
 सर्वे श्रियमभीप्सन्तो धारयन्ति बलान्युत ॥ ५ ॥  
 कर्मणा क्षत्रियाश्चैते निर्घृणा भोगिभोजिनः ।  
 ज्ञातिसंक्षयकर्तृत्वाद्ब्राह्मण्यं न लभन्ति वै ॥ ६ ॥  
 नामानि चैषां वक्ष्यामि यथाप्राधान्यतः शृणु ।  
 मातले श्लाघ्यमेतद्धि कुलं विष्णुपरिग्रहम् ॥ ७ ॥  
 दैवतं विष्णुरेतेषां विष्णुरेव परायणम् ।  
 हृदि चैषां सदा विष्णुर्विष्णुरेव सदा गतिः ॥ ८ ॥  
 सुवर्णचूडो नागाशी दारुणश्चण्डतुण्डकः ।  
 अनिलश्चाऽनलश्चैव विशालाक्षोऽथ कुण्डली ॥ ९ ॥  
 पङ्कजिद्वज्रविष्कम्भो वैनतेयोऽथ वामनः ।  
 वातवेगो दिशाचक्षुर्निमेषोऽनिमिषस्तथा ॥ १० ॥

विस्तार हुआ है । कश्यपके वंशमें उत्पन्न हुए विनताके कुलको बढ़ानेवाले मुख्य मुख्य पक्षियोंने अपनी सन्तान परम्पराके अनुसार सैकड़ों हजार कुल परिवर्तित और अच्छी प्रकारसे वर्द्धित किया है । (१-४)

इन सब कुलोंमें उत्पन्न हुए पक्षी लक्ष्मीसे युक्त बहुतसी सम्पत्तिके स्वामी और महा बलवान हैं। कर्मसे ये क्षत्रिय कहे जा सकते हैं; परन्तु साँपोंका भक्षण करके ये सब बहुत ही निठुर होगये हैं। जातिके नाश करनेसे ब्राह्मणत्व नहीं पा सकते । हे मातलि ! मैं उनमेंसे मुख्य

मुख्य पक्षियोंके नाम कहता हूँ, तुम सुनो । विष्णुका वाहन होनेसे यह कुल अत्यन्त ही प्रशंसाका पात्र हुआ है; विष्णुही इन सबके पूजनीय देवता हैं; ये सब उनकी पूजा किया करते हैं। इनके हृदयमें विष्णु सदा विराजमान रहते हैं, और इन सबके सदाही गति स्वरूप हैं । (५-८)

उनके नाम ये हैं, सुवर्णचूड, नागाशी, दारुण, चण्डतुण्डक, अनिल, अनल, विशालाक्ष, कुण्डली, पङ्कजित्, वज्रनिष्कम्भ, वैनतेय, वामन, वातवेग, दिशाचक्षु, निमेष, अनिमिष, त्रिराव,

त्रिरावः सप्तरावश्च वाल्मीकिर्दीपकस्तथा ।

दैत्यद्वीपः सरिद्वीपः सारसः पद्मकेतनः ॥ ११ ॥

सुमुखश्चित्रकेतुश्च चित्रवर्हस्तथाऽनघः ।

मेषहृत्कुमुदो दक्षः सर्पान्तः सोमभोजनः ॥ १२ ॥

गुरुभारः कपोतश्च सूर्यनेत्रश्चिरान्तकः ।

विष्णुधर्मा कुमारश्च परिवर्हो हरिस्तथा ॥ १३ ॥

सुस्वरो मधुपर्कश्च हेमवर्णस्तथैव च ।

मालायो मातरिश्वा च निशाकरदिवाकरौ ॥ १४ ॥

एते प्रदेशमात्रेण मयोक्ता गरुडात्मजाः ।

प्राधान्यतस्ते यशसा कीर्तिताः प्राणिनश्च ये ॥ १५ ॥

यद्यत्र न रुचिः काचिदेहि गच्छाव मातले ।

तं नयिष्यामि देशं त्वां वरं यत्रोपलप्स्यसे ॥ १६ ॥ [३४९७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां धैर्यासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

मातलिवरान्वेषणे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

नारद उवाच— इदं रसातलं नाम सप्तमं पृथिवीतलम् ।

यत्राऽऽस्ते सुरभिर्माता गवामभृतसम्भवा ॥ १ ॥

सप्तवार, वाल्मीकी, दीपक, दैत्यद्वीप, सरिद्वीप, सारस, पद्मकेतन, सुमुख, चित्रकेतु, चित्रवर्ह, अनघ, मेषहृत्, कुमुद, दक्ष, सर्पान्त, सोमभोजन, गुरुभार, कपोत, सूर्यनेत्र, चिरान्तक, विष्णुधर्मा, कुमार, परिवर्ह, हरि, सुस्वर, मधुपर्क, हेमवर्ण, मालाय, मातरिश्वा, निशाकर और दिवाकर । (९-१४)

गरुडवंशी अनगिनत पक्षियोंके बीच से मैंने केवल कई एक मुख्य मुख्य पक्षियोंके नाम मात्र कहे हैं । जो सब यश, कीर्ति और प्रधानता पाये हुए हैं, इस स्थानमें उन्हींका नाम वर्णन किया

गया है । हे मातलि ! यदि इस स्थान में तुम्हारी रुचि न होवे, तो चलो दूसरी ओर चलें; जहाँपर तुम अपने मनके अनुसार योग्य पात्र पाओगे, मैं उसी स्थानपर तुमको ले चलूँगा (१५-१६) उद्योगपर्वमें एकसौ एक अध्याय समाप्त । ३४९७

उद्योगपर्वमें एकसौ दोन अध्याय ।

श्रीनारद मुनि बोले, अब हम लोग जिस नगरमें आकर उपस्थित हुए हैं, इसका नाम रसातल है । यह पृथ्वीके सातवें तलेपर विराजमान है । इसी स्थानपर अमृतसे उत्पन्न भई गोमाता सुरभी सदा विद्यमान रहती है; यह नित्यही

क्षरन्ती सततं क्षीरं पृथिवीसारसम्भवम् ।  
 षण्णां रसानां सारेण रसमेकमनुत्तमम् ॥ २ ॥  
 अमृतेनाऽभितृप्तस्य सारमुद्गिरतः पुरा ।  
 पितामहस्य वदनाद्बुदतिष्ठदनिन्दिता ॥ ३ ॥  
 यस्याः क्षीरस्य धाराया निपतन्त्या महीतले ।  
 हृदः कृतः क्षीरनिधिः पवित्रं परमुच्यते ॥ ४ ॥  
 पुष्पितस्येव फेनेन पर्यन्तमनुवेष्टितम् ।  
 पिबन्तो निवसन्त्यत्र फेनपा मुनिसत्तमाः ॥ ५ ॥  
 फेनपा नाम ते ख्याताः फेनाहाराश्च मातले ।  
 उग्रे तपसि वर्तन्ते येषां बिभ्यति देवताः ॥ ६ ॥  
 अस्याश्चतस्रो धेन्वोऽन्या दिक्षु सर्वासु मातले ।  
 निवसन्ति दिशां पाल्यो धारयन्त्यो दिशः स ताः ॥ ७ ॥  
 पूर्वा दिशं धारयते सुरूपा नाम सौरभी ।  
 दक्षिणां हंसिका नाम धारयत्यपरां दिशम् ॥ ८ ॥  
 पश्चिमा वारुणी दिक्च धार्यते वै सुभद्रया ।  
 महानुभावया नित्यं मातले विश्वरूपया ॥ ९ ॥

पृथ्वीके सारांशसे उत्पन्न छः रसोंके सार-  
 भाग उत्तम और पवित्र अद्वितीय रसके  
 भागसे युक्त दूधकी वर्षा किया करती  
 हैं। यह अनिन्दिता गोमाता पहले समयमें  
 अमृतके पीनेसे तृप्त हुए, सारवस्तुको  
 वमन करनेवाले, सब लोकोंके पितामह  
 ब्रह्माके मुंहसे उत्पन्न हुई थीं। इनके दूधकी  
 धारा पृथ्वीपर गिरनेसे महाहृदस्वरूप  
 परम पवित्र क्षीरके समुद्रकी उत्पत्ति  
 हुई है। ( १ - ४ )

इस क्षीर सागरके सम्पूर्ण स्थान  
 फेनके पुञ्जसे युक्त रहनेसे ऐसा बोध होता  
 है, जैसे फूल फूला हुआ है। उस सब

फेनको पान करनेके निमित्त फेनप नामक  
 मुनि इन स्थानमें वास करते हैं। केवल  
 फेनके पान करनेहीसे उनका फेनप नाम  
 हुआ है। हे मातलि ! वह इस प्रकार  
 की कठोर तपस्यामें लगे हैं, कि देवता  
 लोग भी उनसे डरते रहते हैं। सुरभीके  
 गर्भसे उत्पन्न हुई और चार गऊ पूरव  
 आदि चारों दिशाओंमें निवास करती हैं।  
 दिशाओंके धारण करनेसे उनका नाम  
 दिक्पाली प्रसिद्ध है; जो पूर्व दिशाकी  
 रक्षा करती हैं उनका नाम सुरूपा है;  
 जो दक्षिण दिशाको धारण कर रही हैं,  
 उनका नाम हंसिका है, जो विश्वरूपिणी

सर्वकामदुघा नाम धेनुर्धारयते दिशम् ।  
 उत्तरां मातले धर्म्या तथैलविलसंजिताम् ॥ १० ॥  
 आसां तु पयसा मिश्रं पयो निर्मथ्य सागरे ।  
 मन्थानं मन्दरं कृत्वा देवैरसुरसंहितैः ॥ ११ ॥  
 उद्धृता वारुणी लक्ष्मीरमृतं चापि मातले ।  
 उच्चैःश्रवाश्चाऽश्वराजो मणिरत्नं च कौस्तुभम् ॥ १२ ॥  
 सुधाहारेषु च सुधां स्वधाभोजिषु च स्वधाम् ।  
 अमृतं चाऽमृताशेषु सुरभी क्षरते पयः ॥ १३ ॥  
 अत्र गाथा पुरा गीता रसातलनिवासिभिः ।  
 पौराणी श्रूयते लोके गीयते या मनीषिभिः ॥ १४ ॥  
 न नागलोके न स्वर्गे न विमाने त्रिविष्टपे ।  
 परिवासः सुखस्तादृशसातलतले यथा ॥ १५ ॥ [३५१२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

मातलिवरान्वेषणे अधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

नारद उवाच— इयं भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता ।

यादृशी देवराजस्य पुरी वर्याऽमरावती ॥ १ ॥

गऊ वरुण देवकी पश्चिम दिशाको धारण करती हैं, उनका नाम सुभद्रा है; और जो उत्तर दिशाको धारण करती हैं, उनका नाम सर्वकामदुघा है । ( ५—१० )

देव और असुरोंने मन्दरगिरिको मथानी बनाकर इसी के दूधसे मिले हुए समुद्रको मथकर वारुणी सुरा, लक्ष्मी, उच्चैःश्रवा नामक घोडा और रत्नोंमें श्रेष्ठ कौस्तुभ मणि आदि निकाला था । हे मातलि ! सुरभीके अनन्त गुणोंकी कथा मैं क्या कहूँ, वह जो महा पवित्र उत्तम दूध देती है वह नागोंको सुधा, पितरोंको स्वधा और देवोंके पक्षमें अमृतरूप

होता है । “ रसातलमें वास करनेसे जैसा सुख मिलता है, वैसा सुख नाग-लोक, देव लोक, स्वर्ग और विमानमें भी नहीं मिल सकता है । ” रसातलके निवासी लोगोंने पहिले समयमें यह पुरानी कथा कही थी, वही आज पर्यन्त लोकोंके बीच पाण्डितोंके मुंहसे सुनी जाती हैं । ( ११—१५ ) [३५१२]

उद्योगपर्वमें एकसौ दोन अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ तीन अध्याय ।

श्रीनारद मुनि बोले, इन्द्रकी अमरावती पुरीकी भांति यह जो उत्तम नगरी दीख पड़ती है, इसका नाम

एष शेषः स्थितो नागो येनेयं धार्यते सदा ।  
 तपसा लोकमुख्येन प्रभावसहिता मही ॥ २ ॥  
 श्वेताचलनिभाकारो दिव्याभरणभूषितः ।  
 सहस्रं धारयन्मूर्धा ज्वालाजिह्वो महाबलः ॥ ३ ॥  
 इह नानाविधाकारा नानाविधविभूषणाः ।  
 सुरसायाः सुता नागा निवसन्ति गतव्यथाः ॥ ४ ॥  
 मणिस्वस्तिकचक्राङ्गाः कमण्डलुकलक्षणाः ।  
 सहस्रसंख्या बलिनः सर्वे रौद्राः स्वभावतः ॥ ५ ॥  
 सहस्रशिरसः केचित्केचित्पञ्चशताननाः ।  
 शतशीर्षास्तथा केचित्केचित्त्रिशिरसोऽपि च ॥ ६ ॥  
 द्विपञ्चशिरसः केचित्केचित्सप्तमुखास्तथा ।  
 महाभोगा महाकायाः पर्वताभोगभोगिनः ॥ ७ ॥  
 बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।  
 नागानामेकवंशानां यथाश्रेष्ठं तु मे शृणु ॥ ८ ॥  
 वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ।

भोगवती है । यह नागोंके राजा वासुकी नागके अधिकारमें है । अपने प्रभावसे वह सम्पूर्ण पृथ्वीको सदासे धारण किये हुए हैं; तपके बलसे वह अग्रगामी पर्वतके समान उज्ज्वल शरीर, दिव्य आभूषणोंसे भूषित, सहस्र मस्तक और प्रज्वलित जिह्वाओंसे युक्त महाबली तेजस्वी शेषनाग इसी स्थानमें विराजमान हैं । इसी स्थानमें नागोंकी माता सुरसाके सहस्रों पुत्र पीडा रहित होकर स्वच्छन्दतापूर्वक वास करते हैं । १-४

वे सब नाना भांतिके आकारसे युक्त अनेक भूषणोंसे भूषित, मणि, स्वस्तिक, चक्र और कमण्डलुके चिह्नसे युक्त महा-

बली और स्वभावसे ही भयङ्कर हैं । उनमेंसे कोई कोई सहस्र, कोई पांच सौ, कोई सौ, तथा कोई दश शिरवाले और कोई सात, पांच, तीन तथा दो शिरके सर्प हैं; इन सबोंका बड़ा विशाल शरीर है, ये पर्वतके समान दीखते हैं; और इनके निवास स्थान भी बहुत बड़े हैं । हे मातालि ! इस स्थानमें एक ही वंशमें कितने सहस्र, लाख तथा कितने अर्बुद नागोंका वास है; उसको कौन कह सकता है । ( ५-८ )

उनमें मुख्य मुख्य कई एक श्रेष्ठ नागोंका मैं तुमको नाम बतलाता हूं इसे तुम सुनो; वासुकि, तक्षक, कर्कोटक,

कालीयो नहुषश्चैव कम्बलाश्वतरावुभौ ॥ ९ ॥

बाह्यकुण्डो मणिर्नागस्तथैवाऽऽपूरणः खगः ।

वामनश्चैलपत्रश्च कुरुरः कुकुणस्तथा ॥ १० ॥

आर्यको नन्दकश्चैव तथा कलशपोतकौ ।

कैलासकः पिञ्जरको नागश्चैरावतस्तथा ॥ ११ ॥

सुमनोमुखो दधिमुखः शङ्खो नन्दोपनन्दकौ ।

आप्तः कोटरकश्चैव शिखी निष्ठूरिकस्तथा ॥ १२ ॥

तित्तिरिर्हस्तिभद्रश्च कुमुदो माल्यपिण्डकः ।

द्वौ पद्मौ पुण्डरीकश्च पुष्पो मुद्गरपर्णकः ॥ १३ ॥

करवीरः पीठरकः संवृत्तो वृत्त एव च ।

पिण्डारो बिल्वपत्रश्च सूषिकादः शिरीषकः ॥ १४ ॥

दिलीपः शङ्खशीर्षश्च ज्योतिष्कोऽथाऽपराजितः ।

कौरव्यो धृतराष्ट्रश्च कुहुरः कृशकस्तथा ॥ १५ ॥

विरजा धारणश्चैव सुबाहुर्मुखरो जयः ।

बधिरान्धौ विशुण्डिश्च विरसः सुरसस्तथा ॥ १६ ॥

एते चाऽन्ये च बहवः कश्यपस्याऽऽत्मजाः स्मृताः ।

मातले पश्य यद्यत्र कश्चित्ते रोचते वरः ॥ १७ ॥

कण्व उवाच — मातलिस्त्वेकमव्यग्रः सततं सन्निरीक्ष्य वै ।

धनञ्जय, कालीय, नहुष, कम्बल, अश्वतर, बाह्यकुण्ड, मणि, आपूरण, खग, वामन, ऐलपत्र, कुरुर, कुकुण, आर्यक, नन्दक, कलश, पोतक, कैलासक, पिञ्जरक, ऐरावत, सुमनोमुख, दधिमुख, शङ्ख, नन्द, उपनन्द, आप्त, कोटरक, शिखी, निष्ठूरिक, तित्तिरि, हास्तिभद्र, कुमुद, माल्यपिण्डक, दो पद्म, पुण्डरीक, पुष्प, मुद्गरपर्णक, करवीर, पीठरक, संवृत्त, वृत्त, पिण्डार, बिल्वपत्र, सूषिकाद, शिरीषक, दिलीप,

शङ्खशीर्ष, ज्योतिष्क, अपराजित, कौरव्य, धृतराष्ट्र, कुहुर, कृशक, विरजा, धारण, सुबाहु, मुखर; जय, बधिर, अन्ध, विशुण्डि, विरस और सुरस कश्यपके ये सब और कई सौ पुत्र जो सब पुरोंमें विद्यमान हैं, उनकी संख्या करनी बहुत ही कठिन है। इससे यदि इस स्थानमें कोई तुम्हारे मनके अनुसार पात्र मिले तो देखो । ( ९—१७ )

श्रीकण्व मुनि बोले, मातली स्थिर चित्त होके एक सुन्दर युवक को देखके

पप्रच्छ नारदं तत्र प्रीतिमानिव चाऽभवत् ॥ १८ ॥  
 मातलिरुवाच— स्थितो य एष पुरतः कौरव्यस्याऽऽर्यकस्य तु ।  
 द्युतिमान्दर्शनीयश्च कस्यैष कुलनन्दनः ॥ १९ ॥  
 कः पिता जननी चाऽस्य कतमस्यैष भोगिनः ।  
 वंशस्य कस्यैष महान्केतुभूत इव स्थितः ॥ २० ॥  
 प्रणिधानेन धैर्येण रूपेण वयसा च मे ।  
 मनःप्रविष्टो देवर्षे गुणकेश्याः पतिर्वरः ॥ २१ ॥  
 कण्व उवाच— मातलिं प्रीतमनसं दृष्ट्वा सुमुखदर्शनात् ।  
 निवेदयामास तदा माहात्म्यं जन्म कर्म च ॥ २२ ॥  
 नारद उवाच— ऐरावतकुले जातः सुमुखो नाम नागराट् ।  
 आर्यकस्य मतः पौत्रो दौहित्रो वामनस्य च ॥ २३ ॥  
 एतस्य हि पिता नागश्चिकुरो नाम मातले ।  
 न चिराद्वैनतेयेन पञ्चत्वमुपपादितः ॥ २४ ॥  
 ततोऽब्रवीत्प्रीतमना मातलिर्नारदं वचः ।  
 एष मे रुचितस्तात जामाता भुजगोत्तमः ॥ २५ ॥  
 क्रियतामत्र यत्नो वै प्रीतिमानस्म्यनेन वै ।

हर्षित हुए और नारदसे उसका वृन्तात् पूछने लगे । मातलि बोले, हे देवर्षि ! कौरव्य आर्यकके सन्मुखमें यह जो तेजस्वी देखने योग्य युवा पुरुष बैठा है; यह किस कुलमें उत्पन्न हुआ है? इसके पिता माता कौन हैं? किस भाग्यवानके वंशकी यह ध्वजा होकर जन्मा है? विद्या, विनय, रूप और गुण तथा अवस्थाके क्रमके अनुसार यह पुरुष श्रेष्ठ गुणकेशी का वर मेरे मनमें जंचता है । १८-२१

कण्व मुनि बोले, जब सुमुख नामक नागराजको देखके मातलि प्रसन्न हुए, तब नारद मुनि उसके जन्म कर्म और

महात्म्यका वर्णन करने लगे । २१-२२

नारद बोले, यह नागराज ऐरावत वंशमें उत्पन्न हुआ है; इसका नाम सुमुख है; यह आर्यकका प्यारा पौत्र और वामनका दौहित्र है । हे मातलि ! चिकुर नागराज इसके पिता थे; थोड़ा ही समय बीता होगा, कि वह गरुडके हाथसे पञ्चत्वको प्राप्त होगये । २३-२४

यह सब बातें सुनकर मातलि अत्यन्त प्रसन्न होके नारदसे बोले, हे तात ! यह नागोंमें श्रेष्ठ सुमुख ही मेरे मनमें जामाता ( दामाद ) हुए; इनके ऊपर मेरा बहुत ही प्रेम उत्पन्न



अस्मै नागाय वै दातुं प्रियां दुहितरं मुने ॥ २६ ॥ [३५३८]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि मातलिवरान्वेषणे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

नारद उवाच — सूतोऽयं मातलिर्नाम शक्रस्य दयितः सुहृत् ।

शुचिः शीलगुणोपेतस्तेजस्वी वीर्यवान्वली ॥ १ ॥

शक्रस्याऽयं सखा चैव मन्त्री सारथिरेव च ।

अल्पान्तरप्रभावश्च वासवेन रणे रणे ॥ २ ॥

अयं हरिसहस्रेण युक्तं जैत्रं रथोत्तमम् ।

देवासुरेषु युद्धेषु मनसैव नियच्छति ॥ ३ ॥

अनेन विजितानश्वैर्दोभ्यां जयति वासवः ।

अनेन बलभित्पूर्वं प्रहृते प्रहरत्युत ॥ ४ ॥

अस्य कन्या वरारोहा रूपेणाऽसदृशी भुवि ।

सत्यशीलगुणोपेता गुणकेशीति विश्रुता ॥ ५ ॥

तस्याऽस्य यत्नाचरतस्त्रैलोक्यमभरव्युते ।

हुआ है। हे मुनिश्रेष्ठ! इससे अब इसी नाग-  
राजके हाथमें मेरी प्यारी पुत्रीको प्रदान  
करानेके निमित्त यत्न कीजिये। (२५-२६)

उद्योगपर्वमें एकसौ तीन अध्याय समाप्त। ३५३८

उद्योगपर्वमें एकसौ चार अध्याय ।

कण्व मुनि बोले, मातलिकी प्रार्थ-  
नासे नारद मुनि आर्यकके समीप  
जाकर बोले, हे भुजगसत्तम ! यह हमारे  
साथी महात्मा पुरुष इन्द्रके सारथी और  
प्रिय मित्र हैं; इनका नाम मातलि है ।  
ये पवित्रता, आचार, शील गुणोंसे भरे  
हुए, तेजस्वी, पराक्रमी तथा महाबलवान्  
हैं। ये केवल इन्द्रके सारथी ही नहीं हैं;  
यह उनके प्राणके समान प्यारे मित्र और  
मन्त्री भी हैं। हर एक युद्धके स्थानमें  
इन्द्रके सहित इनका पराक्रम थोड़ा कम

दीख पड़ता है। देव और असुरोंके युद्धके  
समय इन्होंने इन्द्रका सहस्र घोड़ोंसे  
युक्त जयशील रथ लेकर ऐसी शीघ्रतासे  
रणभूमिमें उपस्थित किया, कि बोध होता  
था, जैसे मन ही मनसे रथको चला रहे  
हैं। इनके प्रभावकी बात मैं कहां तक वर्णन  
करूं, यह घोड़ोंके चलानेके कौशलहीसे  
शत्रुओंको पराजित किया करते हैं;  
पीछे इन्द्र अपनी दोनों भुजाओंकी  
सहायतासे विजय पाते हैं। इनके विना  
पहिले प्रहार किये, इन्द्र कभी दिव्य  
अस्त्रोंको नहीं चलाते। (१-४)

इसके घरमें गुणकेशी नामकी अनेक  
गुणोंसे भरी एक सत्यशीला सुन्दरी  
कन्या है। पृथ्वी भरमें वैसी रूपवती  
स्त्री और कहीं नहीं है। उसके योग्य

सुमुखो भवतः पौत्रो रोचते दुहितुः पतिः ॥ ६ ॥

यदि हे रोचते सम्पद्भुजगोत्तम मा चिरम् ।

क्रियतामार्थक क्षिप्रं बुद्धिः कन्यापरिग्रहे ॥ ७ ॥

यथा विष्णुकुले लक्ष्मीर्यथा स्वाहा विभावसोः ।

कुले तव तथैवास्तु गुणकेशी सुमध्यमा ॥ ८ ॥

पौत्रस्यास्य भवांस्तस्माद्गुणकेशीं प्रतीच्छतु ।

सदृशीं प्रतिरूपस्य वासवस्य शचीमिव ॥ ९ ॥

पितृहीनमपि ह्येनं गुणतो वरयामहे ।

बहुमानाच्च भवतस्तथैवैरावतस्य च ॥ १० ॥

सुमुखश्च गुणैश्चैव शीलशौचदमादिभिः ।

अभिगम्य स्वयं कन्यामयं दातुं समुद्यतः ॥ ११ ॥

मातलिस्तस्य सम्मानं कर्तुमर्हो भवानपि ।

कण्व उवाच— स तु दीनः प्रहृष्टश्च प्राह नारदमार्थकः ॥ १२ ॥

त्रियमाणे तथा पौत्रे पुत्रे च निधनं गते ।

कथमिच्छामि देवर्षे गुणकेशीं स्नुषां प्रति ॥ १३ ॥

वर दूढ़नेके निमित्त ये तीनों लोकमें घूम रहे हैं, सम्प्रति सुमुख नामक तुम्हारे पौत्रको उन्होंने योग्य पात्र स्थिर किया है । इससे हे देवोंके तुल्य आर्यक ! यह बात तुम्हे उत्तम जंचे तो कन्या-रत्नके पाणिग्रहण करानेके निमित्त यत्न करो । जैसे विष्णुके सङ्ग लक्ष्मी और अग्निके सङ्ग स्वाहा हैं, वैसेही सुन्दरी गुणकेशी भी तुम्हारे कुलकी लक्ष्मी होवे । इन्द्रकी शचीकी भांति गुणकेशी सुमुखके योग्य उत्तम पात्री है और सुमुख भी गुणकेशीके योग्य है । इससे तुम पौत्रके सङ्ग उस महा-सुन्दरी कन्याका व्याह करो । (५-९)

सुमुख पितासे हीन हैं, तो भी हम

लोग उसके गुण मात्रको देख करके उसके सङ्ग गुणकेशीका व्याह किया चाहते हैं । तुम्हारे ऐरावत कुलका मान, प्रतिष्ठा, सुमुखकी पवित्रता, शील, दम आदि अनेक गुणोंको देख करके मातलि आपही इस स्थानपर आकर सुमुखके संग अपनी कन्याका व्याह करनेके निमित्त तैयार हैं, अब इस समयमें तुमको भी इनका पूर्ण रीतिसे सम्मान करना उचित है । (१०-१२)

कण्व मुनि बोले, आर्यक पुत्रके मरने और पौत्र (नाती) को किसी प्रकारसे जीवित देखनेके कारण नारद मुनिके वचनसे हर्ष और विषादसे युक्त होकर

आर्यक उवाच— न मे नैतद्बहुमतं महर्षे वचनं तव ।

सखा शक्रस्य संयुक्तः कस्याऽयं नेप्सितो भवेत् ॥ १४ ॥

कारणस्य तु दौर्बल्याच्चिन्तयामि महामुने ।

अस्य देहकरस्तात मम पुत्रो महायुते ॥ १५ ॥

भक्षितो वैनतेयेन दुःखार्त्तास्तेन वै वयम् ।

पुनरेव च तेनोक्तं वैनतेयेन गच्छता ॥

मासेनाऽन्येन सुमुखं भक्षयिष्य इति प्रभो ॥ १६ ॥

ध्रुवं तथा तद्भविता जानीमस्तस्य निश्चयम् ।

तेन हर्षः प्रनष्टो मे सुपर्णवचनेन वै ॥ १७ ॥

कण्व उवाच— मातलिस्त्वब्रवीदेनं बुद्धिरत्र कृता मया ।

जामातृभावेन वृतः सुमुखस्तव पुत्रजः ॥ १८ ॥

सोऽयं मया च सहितो नारदेन च पन्नगः ।

त्रिलोकेशं सुरपतिं गत्वा पश्यतु वासवम् ॥ १९ ॥

शेषेणैवाऽस्य कार्येण प्रज्ञास्याम्यहमायुषः ।

सुपर्णस्य विघाते च प्रयतिष्यामि सत्तम ॥ २० ॥

बोले, हे देवर्षि ! आपके वचनका मुझे किसी भांतिसे अस्वीकार नहीं हो सकता, जो इन्द्रके मित्र है, उनके सङ्ग सम्बन्ध करनेकी किसे इच्छा न होगी ? परन्तु हे महामुनि ! जिस प्रकारसे यह सम्बन्ध हो सकेगा, उसीके निमित्त मुझे चिन्ता हो रही है । हे तात ! पहिले तो सुमुख का पिता जो मेरा पुत्र था, वह विनता-पुत्र गरुडके कराल हाथोंसे मारा गया; उसी शोकसे हम लोग दुःखित हैं; उसपर भी वह निठुर पक्षी जानेके समयमें यह कह गया है, कि “अगले महीनेमें सुमुखको भी भक्षण करूंगा ।” तब किस प्रकारसे मुझे हर्ष होसकता है ?

मैं यह निश्चय जानता हूं, कि गरुड जो कुछ कह गया है, उसे वह अवश्य पूरा करेगा । इससे इन सब बातोंको स्मरण करके हमारे सम्पूर्ण हर्षका नाश हो गया है । (१२-१७)

कण्व मुनि बोले, आर्यककी इन सब बातोंको सुनकर मातलि उनसे बोले, मैंने इस विषयमें एक युक्ति स्थिर की है; आपके पौत्र सुमुखको मैंने अपनी कन्याका मानसिक पति ठहरा लिया है; इससे अब यह नागराज मेरे संग चलके तीनों लोकके राजा इन्द्रके संग साक्षात् (मुलाकात) करें । गरुडका नाश करनेके निमित्त मैं सब भांतिसे यत्न

सुमुखश्च मया सार्धं देवेशमभिगच्छतु ।  
 कार्यसंसाधनार्थाय स्वस्ति तेऽस्तु भुजङ्गम् ॥ २१ ॥  
 ततस्ते सुमुखं गृह्य सर्व एव महौजसः ।  
 ददृशुः शक्रमासीनं देवराजं महाद्युतिम् ॥ २२ ॥  
 सङ्गत्या तत्र भगवान्विष्णुरासीच्चतुर्भुजः ।  
 ततस्तत्सर्वभाचरुयौ नारदो मातलिं प्रति ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततः पुरन्दरं विष्णुरुवाच भुवनेश्वरम् ।  
 अमृतं दीयतामस्मै क्रियताममरैः सप्तः ॥ २४ ॥  
 मातलिर्नारदश्चैव सुमुखश्चैव वासव ।  
 लभन्तां भवतः कामात्काममेतं यथेप्सितम् ॥ २५ ॥  
 पुरन्दरोऽथ सञ्चिन्त्य वैनतेयपराक्रमम् ।  
 विष्णुमेवाऽब्रवीदेनं भवानेव ददात्विति ॥ २६ ॥  
 विष्णुरुवाच— ईशस्त्वं सर्वलोकानां चराणामचराश्च ये ।  
 त्वया दत्तमदत्तं कः कर्तुमुत्सहते विभो ॥ २७ ॥

करुंगा; अनन्तर शेष कार्यसे इनके पर-  
 मायुका विषय जान सकूंगा । हे भुजङ्ग-  
 सत्तम ! आपका कल्याण हो, आप  
 आज्ञा दीजिये । सुमुख हम लोगोंके संग  
 इन्द्रके समीप गमन करें । ( १८-२१ )

कण्व मुनि बोले, अनन्तर उस महा  
 तेजस्वी मातलिने नारद और आर्यकके  
 सहित सुमुखको संग लेकर इन्द्रपुरीमें  
 आकर देखा, कि देवताओंके राजा महा  
 तेजस्वी इन्द्र अपने सिंहासनपर बैठे  
 हुए हैं और सब देवता तथा चार  
 भुजको धारण करनेवाले भगवान् विष्णु  
 भी वहाँपर उपस्थित हैं । तब नारद  
 मुनिने उन सबके बीचमें मातलिके वि-  
 षयका सम्पूर्ण वृत्तान्त आदिसे अन्त-

तक वर्णन कर दिया । ( २२-२३ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर  
 विष्णु तीनों लोकके स्वामी इन्द्रसे बोले,  
 हे इन्द्र ! तुम इस नागराजको अमृत  
 दान करके देवताओंके समान कर दो;  
 तुम्हारी इच्छासे मातलि, नारद और  
 सुमुख सब कोई अपनी इच्छा पूर्ण करें ।  
 विष्णुके इस वचनको सुनकर इन्द्र बहुत  
 समयतक अपने मनही मन गरुडके  
 पराक्रमको विचारकर अन्तमें बोले, कि  
 आप मुझे जो आज्ञा देते हैं, उसे आपही  
 सिद्ध कीजिये, सुमुखको आप स्वयं अमृत  
 दान करिये । ( २३-२६ )

विष्णु बोले, हे इन्द्र ! तुम इस  
 सम्पूर्ण लोकके स्वामी हो; इससे तुम

प्रादाच्छक्रस्ततस्तस्मै पन्नगायाऽऽयुरुत्तमम् ।

न त्वेनममृतप्राशं चकार बलवृत्रहा ॥ २८ ॥

लब्ध्वा वरं तु सुमुखः सुमुखः सम्बभूव ह ।

कृतदारो यथाकामं जगाम च गृहान्प्रति ॥ २९ ॥

नारदश्चाऽऽर्यकश्चैव कृतकार्यौ मुदा युतौ ।

अभिजग्मतुरभ्यर्च्य देवराजं महाद्युतिम् ॥ ३० ॥ [३५६८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

मातलिवरान्वेषणे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

कण्व उवाच— गरुडस्तत्र शुश्राव यथावृत्तं महाबलः ।

आयुःप्रदानं शक्रेण कृतं नागस्य भारत ॥ १ ॥

पक्षवातेन महता रुद्ध्वा त्रिभुवनं खगः ।

सुपर्णः परमक्रुद्धो वासवं ससुपाद्रवत् ॥ २ ॥

गरुड उवाच— भगवान्किमवज्ञानाद्ब्रुतिः प्रतिहता मम ।

कामकारवरं दत्त्वा पुनश्चलितवानसि ॥ ३ ॥

जिसे जो कुछ प्रदान करोगे, उसे कौन अन्यथा कर सकेगा ? यह वचन सुनकर वृत्रासुरके मारनेवाले इन्द्रने उस नागराजको उत्तम आयु प्रदान की; परन्तु अमृत पान नहीं कराया । सुमुख वर पाकर यथार्थमें सुमुख होगये; अर्थात् उनके मुखमण्डलपर उस समयमें प्रसन्नताका चिह्न स्पष्ट प्रकाशित होने लगा । यथा समयमें अभिलाषाके अनुसार गुणकेशीके संग व्याह करके वह अपने स्थानको गये, और नारद तथा आर्यक भी कृतकार्य होकर इन्द्रकी पूजा करके आनंदसे युक्त होकर अपने अपने स्थानोंपर चले गये । (२७-३०) ३५६८

उद्योगपर्वमें एकसौ चार अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ पांच अध्याय ।

कण्व मुनि बोले इधर महाबली गरुडने जब इन्द्रपुरीका यह सब वृत्तान्त सुना, कि देवताओंके राजा इन्द्रने सर्पको आयु प्रदान किया है, तब उनके क्रोधकी सीमा न रही । वह उसी समय अपने महाविकराल बड़े बड़े दोनों पंखोंको पसार कर, तीनों लोकको अपने पक्षोंसे रुद्ध करते हुए, अत्यन्त वेगसे दौड़े; और इन्द्रके समीप पहुँचकर बोले, हे भगवन् ! तुम अवज्ञा करके मेरी वृत्ति लोप करनेमें क्यों प्रवृत्त हुए हो ? पहिले तुमने अपनी इच्छासे मुझे वर दिया था, अब उससे क्यों हटते हो ? ( १—३ )

निसर्गात्सर्वभूतानां सर्वभूतेश्वरेण मे ।  
 आहारो विहितो धात्रा किमर्थं वार्यते त्वया ॥ ४ ॥  
 वृतश्चैष मया नागः स्थापितः समयश्च मे ।  
 अनेन च मया देव भर्तव्यः प्रसवो महान् ॥ ५ ॥  
 एतस्मिंस्तु तथाभूते नाऽन्यं हिंसितुमुत्सहे ।  
 क्रीडसे कामकारेण देवराज यथेच्छकम् ॥ ६ ॥  
 सोऽहं प्राणान्विमोक्षयामि तथा परिजनो मम ।  
 ये च भृत्या मम गृहे प्रीतिमान्भव वासव ॥ ७ ॥  
 एतच्चैवाऽहमर्हामि भूयश्च बलवृत्रहन् ।  
 त्रैलोक्यस्येश्वरो योऽहं परभृत्यत्वमागतः ॥ ८ ॥  
 त्वयि तिष्ठति देवेश न विष्णुः कारणं मम ।  
 त्रैलोक्यराजराज्यं हि त्वयि वासव शाश्वतम् ॥ ९ ॥  
 ममाऽपि दक्षस्य सुता जननी कश्यपः पिता ।  
 अहमप्युत्सहे लोकान्समन्ताद्बोद्धुमञ्जसा ॥ १० ॥

सब सृष्टिको रचनेवाले ब्रह्माने मेरा  
 जो कुछ आहार बना दिया है, तुम  
 उसको क्यों रोकते हो ? हे देवराज !  
 सुमुखके मांससे हमारी बहुतसी सन्तानोंका  
 भोजन होगा, यही मनमें स्थिर  
 करके मैंने इस महानागको मारनेका  
 समय ठीककर रक्खा था । इस समय  
 वह वर पानेसे अवध्य होगया; तो अब  
 मैं दूसरे किसीकी हिंसा करनेमें कैसे  
 उत्साही हो सकूंगा ? तुमने इसको  
 जैसे वरदान दिया है, दूसरेपर भी वैसे  
 ही अनुग्रह करनेमें कौन कठिनाई है ?  
 हे इन्द्र ! तुम्हारे इस प्रकारके खेल  
 करनेसे मुझको कुटुम्ब तथा सेवकोंके  
 सहित अवश्य ही प्राण त्याग करना

पडेगा; ऐसा होनेसे तुम भली भांति  
 सन्तुष्ट होओगे । ( ४-७ )

हे इन्द्र ! तीनों लोकके ईश्वर होकर  
 भी मैंने जब दूसरेकी सेवा स्वीकार की  
 है; तब हमारे पक्षमें ऐसी घटना होना  
 ही उचित है, केवल ऐसा ही क्यों ?  
 मैं इससे भी अधिक क्लेश पानेका पात्र  
 हूँ । हे तीनों लोकोंके राजा इन्द्र ! तुममें  
 मुझसे कोई अधिकता न होनेपर भी  
 जब तुमको तीनों लोकोंका राज्य मिला  
 है; तब विष्णु ही अकेले हमारी महिमा  
 को नष्ट करनेके कारण नहीं है । देखो  
 दक्षहीकी पुत्री मेरी माता और कश्यप  
 ही मेरे पिता हैं; मैं भी लीलाके क्रमसे  
 सब लोकोंके भारको उठा सकता हूँ;

असह्यं सर्वभूतानां ममपि विपुलं बलम् ।  
 मयापि सुमहत्कर्म कृतं दैतेयविग्रहे ॥ ११ ॥  
 श्रुतश्रीः श्रुतसेनश्च विवस्वान्रोचनामुखः ।  
 प्रस्रुतः कालकाक्षश्च मयापि दितिजा हताः ॥ १२ ॥  
 यत्तु ध्वजस्थानगतो यत्नात्परिचराम्यहम् ।  
 वहामि चैवाऽनुजं ते तेन मामवमन्यसे ॥ १३ ॥  
 कोऽन्यो भारसहो ह्यस्ति कोऽन्योऽस्ति बलवत्तरः ।  
 मया योऽहं विशिष्टः सन्वहामीमं सबान्धवम् ॥ १४ ॥  
 अवज्ञाय तु यत्तेऽहं भोजनाद्वपरोपितः ।  
 तेन मे गौरवं नष्टं त्वत्तश्चाऽस्माच्च वासव ॥ १५ ॥  
 अदित्यां य इमे जाता बलविक्रमशालिनः ।  
 त्वमेषां किल सर्वेषां बलेन बलवत्तरः ॥ १६ ॥  
 सोऽहं पक्षैकदेशेन वहामि त्वां गतक्लमः ।  
 विमृश त्वं शनैस्तात को न्वत्र बलवानिति ॥ १७ ॥

कण्व उवाच— स तस्य वचनं श्रुत्वा खगस्योदकेदारुणम् ।

मेरी भी यह प्रचण्ड बल सब प्राणियोंसे न सहने योग्य है; दैत्योंकी लडाईमें मैंने भी बड़े बड़े कर्म पूर्ण किये हैं, श्रुतश्री, श्रुतसेन, विवस्वान्, रोचनामुख, प्रस्रुत, और कालकाक्ष आदि दैत्योंको मैंने भी मारा है । ( ८—१२ )

तब जो मैं तुम्हारे भाईका सेवक होकर यत्नपूर्वक रथकी ध्वजाकी रक्षा करता हूँ; और अनेक समयमें उन्हें पीठ-पर चढाके ले चलता हूँ; इसीसे तुम मेरी अवज्ञा करते हो । हे इन्द्र ! सम्पूर्ण जगतमें मेरे समान भार उठानेवाला तथा मुझसे अधिक बलवान् और दूसरा कौन है ? मैं सब प्रकारसे श्रेष्ठ होकर

भी बन्धुबान्धवोंके सहित इनका भार उठाता हूँ । सम्प्रति तुमने जो मेरी अवज्ञा की और मुझको भोजनसे वञ्चित किया, इसमें तुमसे और इनसे दोनोंहीसे मेरा गौरव नष्ट होगया । हे विष्णु ! अदिति के गर्भसे ये इन्द्र आदि जितने बल और पराक्रमसे युक्त शूरवीरोंका जन्म हुआ है; उन सबमें तुम ही सबसे अधिक बलवान् हो, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । परन्तु मैं तुमको अपने पङ्क्तके थोड़ेसे स्थानपर उठाकर बिना क्लेशके फिरा करता हूँ, इससे हे भ्राता ! तुम स्थिर चित्तसे विचार करके देखो, कि हम लोगोंमें अधिक बलवान् कौन है ॥ १३-१७

अक्षोभ्यं क्षोभयस्ताक्ष्यमुवाच रथचक्रभृत् ॥ १८ ॥  
 गरुत्मन्मन्यसेऽऽत्मानं बलवन्तं सुदुर्बलम् ।  
 अलमस्मत्समक्षं ते स्तोतुमात्मानमण्डज ॥ १९ ॥  
 त्रैलोक्यमपि मे कृत्स्नमशक्तं देहधारणे ।  
 अहमेवाऽऽत्मानाऽऽत्मानं वहामि त्वां च धारये ॥ २० ॥  
 इमं तावन्ममैकं त्वं बाहुं सव्येतरं वह ।  
 यद्येनं धारयस्येकं सफलं ते विकत्थितम् ॥ २१ ॥  
 ततः स भगवांस्तस्य स्कन्धे बाहुं समासजत् ।  
 निपपात स भारातो विहलो नष्टचेतनः ॥ २२ ॥  
 यावान्हि भारः कृत्स्नायाः पृथिव्याः पर्वतैः सह ।  
 एकस्या देहशाखायास्तावद्भारमन्यत ॥ २३ ॥  
 न त्वेनं पीडयामास बलेन बलवत्तरः ।  
 ततो हि जीवितं तस्य न व्यनीनशदच्युतः ॥ २४ ॥  
 व्यात्तास्यः सस्तकायश्च विचेता विहलः खगः ।  
 मुमोच पत्राणि तदा गुरुभारप्रपीडितः ॥ २५ ॥

कण्व मुनि बोले, चक्रधारी भगवान्  
 विष्णु गरुडके अभिमानसे मेरे दारुण  
 वचनोंको सुनकर उन्हें भयभीत करते  
 हुए गम्भीर भावसे बोले । हे गरुड !  
 तुम अत्यन्त निर्बल होकर भी अपनेको  
 बलवान समझते हो; मेरे सन्मुख तुम्हें  
 इस प्रकारसे अपनी बड़ाई करनी उचित  
 नहीं है । हे अण्डज ! तुम्हारी तो बात ही  
 क्या है, यह सम्पूर्ण तीनों लोक भी मेरे  
 भारको उठानेमें असमर्थ हैं, मैं खुद  
 अपने शरीरको आप धरता रहता हूँ,  
 और तुमको भी धारण किये हुए चलता  
 हूँ। तुम इस बातकी सचाईके निमित्त यही  
 मेरी एक भुजा उठा करके देखो, यदि

तुम मेरे इस एक हाथके भारको धारण  
 कर सको, तौ भी तुम्हारा यह सम्पूर्ण  
 गर्व सार्थक हो सकता है । (१८-२१)  
 विष्णुने ऐसा कहके गरुडके कन्धेपर  
 ज्यों ही अपने उस हाथको रखा, त्योंही  
 वह महाभारसे विकल चेतनारहित हो  
 गये । पर्वतोंके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीका  
 जितना भार होता है, उतना ही भार  
 विष्णुके एक हाथ मात्रका प्रतीत हुआ ।  
 महा बलवान दयालु भगवान् विष्णुने  
 बलसे पीडित करते हुए यद्यपि गरुडका  
 प्राण नाश नहीं किया; तौ भी उस महा  
 भारसे पीडित होकर गरुड वमन करने  
 और अपने दोनों पङ्खोंको फटकारने लगे;



स विष्णुं शिरसा पक्षी प्रणम्य विनतासुतः ।

विचेता विहलो दीनः किञ्चिद्वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥

भगवँल्लोकसारस्य सदृशेन वपुष्मता ।

भुजेन स्वैरमुक्तेन निष्पिष्टोऽस्मि महीतले ॥ २७ ॥

क्षन्तुमर्हसि मे देव विह्वलस्याऽल्पचेतसः ।

बलदाहविदग्धस्य पक्षिणो ध्वजवासिनः ॥ २८ ॥

न हि ज्ञातं बलं देव भया ते परमं विभो ।

तेन मन्याम्यहं वीर्यमात्मनो न समं परैः ॥ २९ ॥

ततश्चक्रे स भगवान्प्रसादं वै गरुत्मतः ।

सैवं भूय इति स्नेहात्तदा चैनमुवाच ह ॥ ३० ॥

पादांगुष्ठेन चिक्षेप सुमुखं गरुडोरसि ।

ततः प्रभृति राजेन्द्र सह सर्पेण वर्तते ॥ ३१ ॥

एवं विष्णुबलाक्रान्तो गर्वनाशमुपागतः ।

गरुडो बलवान्राजन्वैनतेयो महायशः ॥ ३२ ॥

और दीन तथा विह्वल होकर मस्तकसे उन्हें प्रणाम कर कातर होके बोले । ( २२-२६ )

हे भगवन् ! हे विश्वमूर्ते ! तुम्हारे इस शरीरके बीच जब सब लोकोंमें उत्पन्न हुई सम्पूर्ण वस्तु उपस्थित हैं; तब इच्छा के अनुसार अपने भुजाको पसारकर मुझको विकल करना कौनसी विचित्र बात है; हे देवोंके देव ! अब इस समय कृपा करके निज ध्वजापर वास करने वाले बलके घमण्डमें मतवाले अल्पबुद्धि विह्वल पक्षीके ऊपर क्षमा करो । हे सर्व शक्तिमान् ! मैं पहिले कभी तुम्हारे बल के महात्म्यको नहीं जान सका था; इसी से मैंने अपने मनमें समझ लिया था,

कि मेरे समान बलवान् और कोई नहीं है । ( २७-२९ )

हे राजेन्द्र ! गरुडके इस प्रकारके कातर वचन सुनकर भगवान् विष्णु प्रसन्न होके प्रीतिपूर्वक बोले, कि “ फिर कभी ऐसा अभिमान न करना । ” ऐसा कहके अपने पैरके अंगूठेसे सुमुख सर्प को उनकी छातीके ऊपर फेंक दिया । तभीसे पक्षिराज गरुड उस नागराज सुमुखके सङ्ग प्रीतिपूर्वक एकत्र वास करने लगे । हे गान्धारीनन्दन ! विष्णुके बलसे विकल होनेसे अत्यन्त बलशाली महायशस्वी विनतानन्दन गरुडका गर्व इसी प्रकारसे दूर हुआ था । ( ३०-३२ )

कण्व उवाच- तथा त्वमपि गान्धारे यावत्पाण्डुसुतात्रणे ।  
 नाऽऽसादयसि तान्वीरांस्तावज्जीवसि पुत्रक ॥ ३३ ॥  
 भीमः प्रहरतां श्रेष्ठो वायुपुत्रो महाबलः ।  
 धनञ्जयश्चेन्द्रसुतो न हन्यातां तु कं रणे ॥ ३४ ॥  
 विष्णुर्वायुश्च शक्रश्च धर्मस्तौ चाऽश्विनावुभौ ।  
 एते देवास्त्वया केन हेतुना वीक्षितुं क्षमाः ॥ ३५ ॥  
 तदलं ते विरोधेन शमं गच्छ नृपात्मज ।  
 वासुदेवेन तीर्थेन कुलं राक्षितुमर्हसि ॥ ३६ ॥  
 प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य नारदोऽयं महातपाः ।  
 माहात्म्यस्य तदा विष्णोः सोऽयं चक्रगदाधरः ३७ ॥  
 वैशम्पायन उवाच-दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा निःश्वसन्भ्रुकुटीमुखः ।  
 राधेयमभिसम्प्रेक्ष्य जहास स्वनवत्तदा ॥ ३८ ॥  
 कदर्थीकृत्य तद्वाक्यमृषेः कण्वस्य दुर्मतिः ।  
 ऊहं गजकराकारं ताडयन्निदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

कण्व बोले, हे तात ! उसी प्रकारसे  
 तुम भी जबतक संग्रामभूमिमें पाण्डवोंके  
 संमुख नहीं होते हो; तभी तक जीवित  
 रह सकते हो। प्रहार करनेमें श्रेष्ठ पवन-  
 नन्दन भीमसेन और लोकोंमें महा प्रताप  
 से युक्त इन्द्रतनय अर्जुन रणभूमिमें  
 किस पुरुषको नहीं मार सकते हैं ?  
 हे दुर्योधन ! स्वयं विष्णु, वायु, इन्द्र,  
 धर्म और दोनों अश्विनीकुमारोंके संग  
 युद्ध करनेकी बात तो दूर रहै तुम  
 उनकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हो-  
 ओगे। हे नृपनन्दन ! इससे विरोध  
 करनेका कुछभी प्रयोजन नहीं है; गुरु  
 स्वरूप कृष्णके द्वारा शान्ति स्थापन  
 करके कुलकी रक्षा करो। इन्हीं महा

तपस्वी नारद मुनिने विष्णुके ऊपर  
 कहे हुए सब माहात्म्यको अपनी आ-  
 खोंसे उस समय प्रत्यक्ष किया था।  
 वही चक्र और गदाको धारण करनेवाले  
 भगवान् तुम्हारी सभामें उपस्थित  
 हैं। ( ३३-३७ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कण्व  
 मुनिने ऐसा उपदेश दिया, यह ठीक  
 है, परन्तु नीचबुद्धि दुर्योधन भौंहें टेढ़ी  
 करके लम्बी सांस लेता हुआ कर्णके  
 मुखकी ओर देखकर, ऊंचे स्वरसे ठठा-  
 कर हसने लगा; और कण्व ऋषिके ऐसे  
 हितकारी वचनोंका अनादर करते हुए,  
 हस्तीके समान अपने उरु देश ( जंघों )  
 को ठोंक कर, यह उत्तर दिया। हे महर्षि !

यथैवेश्वरसृष्टोऽस्मि यद्भावि या च मे गतिः ।

तथा महर्षे वर्तामि किं प्रलापः करिष्यति ॥ ४० ॥ [ ३६०८ ]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि मातलिवरान्वेषणे पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

जनमेजय उवाच-अनर्थं जातनिबन्धम् परार्थं लोभमोहितम् ।

अनार्यकेष्वभिरतं मरणे कृतनिश्चयम् ॥ १ ॥

ज्ञातीनां दुःखकर्तारं बन्धूनां शोकवर्धनम् ।

सुहृदां क्लेशदातारं द्विषतां हर्षवर्धनम् ॥ २ ॥

कथं नैनं विमार्गस्थं वारयन्तीह बान्धवाः ।

सौहृदाद्वा सुहृत्स्निग्धो भगवान्वा पितामहः ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच-उक्तं भगवता वाक्यमुक्तं भीष्मेण यत्क्षमम् ।

उक्तं बहुविधं चैव नारदेनाऽपि तच्छृणु ॥ ४ ॥

नारद उवाच- दुर्लभो वै सुहृद्गोता दुर्लभश्च हितः सुहृत् ।

तिष्ठते हि सुहृद्यत्र न बन्धुस्तत्र तिष्ठते ॥ ५ ॥

मेरी जैसी अवस्था है, तथा मेरी जैसी गति होगी; ईश्वरने मुझको उसी निमित्त उत्पन्न किया है; और मैं भी उसीके अनुसार चलता हूँ; इससे प्रलाप करनेसे अधिक आप लोगोंको क्या फल हो सकता है ? ( ३८-४० ) [ ३६०८ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ पांच अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ छः अध्याय ।

राजा जनमेजयने पूछा; अनर्थकी सृष्टि करनेवाले, पराये धनके लोभमें मोहित, नीचोंकी सङ्गतिमें रत ! मरनेके निमित्त उद्यत, ज्ञातिको दुःख देनेवाले, बन्धुओंके शोकको बढ़ानेवाले, मित्रोंको क्लेश देनेवाले, शत्रुओंका हर्ष बढ़ानेवाले और बुरे मार्गसे चलनेवाले दुर्योधनको उसके बन्धुबान्धवाने क्यों नहीं निवारण

किया ? प्रीति करनेवाले परम मित्र भगवान् कृष्ण और पितामह भीष्म आदि अपने अच्छे उपदेशोंसे उसे उत्तम मार्गमें क्यों नहीं चला सके ? ( १-३ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भगवान् कृष्ण और पितामह भीष्मको जैसा हितके निमित्त उपदेश वचन कहना उचित था; उन लोगोंने वैसा ही कहा था; उसके अतिरिक्त महर्षि नारदने भी जो विस्तारपूर्वक अनेक प्रकारके वचन कहे थे; आप उन्हें सुनिये । ( ४ )

नारद मुनि बोले, मित्रोंकी बातोंको सुने ऐसा पुरुष दुर्लभ है; और हितकी बातोंका उपदेश करे ऐसे मित्रका मिलना भी बहुत कठिन है । क्योंकि हितका वचन कहनेवाला वक्ता जिस कार्यको

श्रोतव्यमपि पश्यामि सुहृदां कुरुनन्दन ।  
 न कर्तव्यश्च निर्वन्धो निर्वन्धो हि सुदारुणः ॥ ६ ॥  
 अत्राऽप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 यथा निर्वन्धतः प्राप्तो गालवेन पराजयः ॥ ७ ॥  
 विश्वामित्रं तपस्यन्तं धर्मो जिज्ञासया पुरा ।  
 अभ्यगच्छत्स्वयं भूत्वा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ८ ॥  
 सप्तर्षीणामन्यतमं वेषमास्थाय भारत ।  
 बुभुक्षुः क्षुधितो राजन्नाश्रमं कौशिकस्य तु ॥ ९ ॥  
 विश्वामित्रोऽथ सम्भ्रान्तः अपयामास वै चरुम् ।  
 परमान्नस्य यत्नेन न च तं प्रत्यपालयत् ॥ १० ॥  
 अन्नं तेन यदा भुक्तमन्यैर्दत्तं तपस्विभिः ।  
 अथ गृह्याऽन्नमत्युष्णं विश्वामित्रोऽप्युपागमत् ॥ ११ ॥  
 भुक्तं मे तिष्ठ तावत्त्वामित्युक्त्वा भगवान्ययौ ।  
 विश्वामित्रस्ततो राजन्स्थित एव महाद्युतिः ॥ १२ ॥

करना निश्चित करता है, श्रोता उस बातमें स्थित नहीं रहता। परन्तु हे कुरुनन्दन ! मेरे विचारमें हितकारी मित्रोंकी बातें सुनना अत्यन्त ही कर्त्तव्य कार्य है। हठके वशमें होना किसी प्रकार से उचित नहीं है; क्योंकि हठ क्लेशका मूल है, हठके वशमें पड़कर गालव मुनि का जिस प्रकारसे पराभव हुआ था; वही पुराना इतिहास इसमें उदाहरण है। ४-८

हे भारत ! पहिले समयमें तपस्यामें लगे हुए विश्वामित्रके धर्मको जाननेके निमित्त भगवान् धर्म स्वयं वसिष्ठकी मूर्ति धारण करके उनके समीप गये थे। हे राजन् ! धर्मने सप्तर्षियोंमें एक वसिष्ठ मुनिका वेष धारण कर क्षुधासे पीड़ित

और भोजन करनेकी इच्छासे विश्वामित्र मुनिके आश्रममें आकर उपस्थित हुए। विश्वामित्र उसी समय आतुर होके उत्तम अन्नका पाक करने लगे, परन्तु कपटवेशी धर्मने उनकी प्रतीक्षा न करके दूसरे तपस्वियोंके दिये हुए अन्न भोजन करके अपने भूखकी शान्ति की। उनके भोजनके शेष होनेपर विश्वामित्रने भी वह गर्म अन्न ला करके उपस्थित किया। (८-११)

तब भगवान् धर्मने कहा “हमने भोजन कर लिया है, तुम यहाँपर निवास करो।” ऐसा कहकर वहाँसे चले गये। प्रशंसनीय व्रतसे अनुष्ठान करनेवाले महातेसस्वी विश्वामित्र भी उनके वचनके

भक्तं प्रगृह्य मूर्ध्ना वै बाहुभ्यां संशितव्रतः ।  
 स्थितः स्थाणुरिवाऽभ्याशो निश्चेष्टो भारुताशनः ॥ १३ ॥  
 तस्य शुश्रूषणे यत्नमकरोद्भालवो मुनिः ।  
 गौरवाद्बहुमानाच्च हार्देन प्रियकाम्यया ॥ १४ ॥  
 अथ वर्षशते पूर्णे धर्मः पुनरुपागमत् ।  
 वासिष्ठं वेषमास्थाय कौशिकं भोजनेप्सया ॥ १५ ॥  
 स दृष्ट्वा शिरसा भक्तं प्रियमाणं महर्षिणा ।  
 तिष्ठता वायुभक्षेण विश्वामित्रेण धीमता ॥ १६ ॥  
 प्रतिगृह्य ततो धर्मस्तथैवोष्णं तथा नवम् ।  
 भुक्त्वा प्रीतोऽस्मि विप्रर्षे तमुक्त्वा स मुनिर्गतः १७ ॥  
 क्षत्रभावादपगतो ब्राह्मणत्वमुपागतः ।  
 धर्मस्य वचनात्प्रीतो विश्वामित्रस्तथाऽभवत् ॥ १८ ॥  
 विश्वामित्रस्तु शिष्यस्य गालवस्य तपस्विनः ।  
 शुश्रूषया च भक्त्या च प्रीतिमानित्युवाच ह ॥ १९ ॥  
 अनुज्ञातो मया वत्स यथेष्टं गच्छ गालव ।

अनुसार उसी स्थानपर खड़े रहे । अपने दोनों हाथोंसे उस पात्रको शिरपर रखके वह वायु भक्षण करते हुए अचल रूपसे आश्रमके समीप स्तम्भके समान खड़े रहे । उनके प्यारे शिष्य गालव मुनि गौरव और मान पानेके निमित्त प्रीतिके वशमें होकर यत्न पूर्वक उनकी सेवा टहल करने गले । (१२-१४)

इसी प्रकारसे सौ वर्ष बीत गये, धर्मराज फिर वासिष्ठका वेष धारण करके भोजन करनेकी इच्छासे विश्वामित्रके समीप आये । उन्होंने देखा, कि वह बुद्धिमान महर्षि शिरपर अन्नके पात्रको धारण करके उसी प्रकारसे वायु भक्षण

करते हुए खड़े हैं; और अन्न भी वैसा ही गर्म तथा ताजा है । यह देखकर उन्होंने वह अन्न लेकर भोजन किया और बोले, “हे विप्रर्षि ! मैं पूर्ण रीतिसे सन्तुष्ट हुआ हूँ ।” ऐसा कहकर चले गये । (१५-१७)

विश्वामित्र धर्मके वचनसे क्षत्रिय भावसे छूटकर ब्राह्मणत्वको पाकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए । अनन्तर उन्होंने उस तपस्वी गालव नामक शिष्यकी सेवा टहलसे प्रसन्न होकर उससे बोले, हे पुत्र गालव ! मैं अब तुम्हें आज्ञा देता हूँ, कि जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ जाओ । (१८-२०)

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गालवो मुनिसत्तमम् ॥ २० ॥  
 प्रीतो मधुरया वाचा विश्वामित्रं महाद्युतिम् ।  
 दक्षिणाः काः प्रयच्छामि भवते गुरुकर्मणि ॥ २१ ॥  
 दक्षिणाभिरुपेतं हि कर्म सिद्धयति मानद ।  
 दक्षिणानां हि दाता वै अपवर्गेण युज्यते ॥ २२ ॥  
 स्वर्गे क्रतुफलं तद्धि दक्षिणा शान्तिरुच्यते ।  
 किमाहरामि गुर्वर्थं ब्रवीतु भगवानिति ॥ २३ ॥  
 जानानस्तेन भगवाञ्जितः शुश्रूषणेन वै ।  
 विश्वामित्रस्तमसकृद्गच्छ गच्छेत्यचोदयत् ॥ २४ ॥  
 असकृद्गच्छगच्छेति विश्वामित्रेण भाषितः ।  
 किं ददानीति बहुशो गालवः प्रत्यभाषत ॥ २५ ॥  
 निर्वन्धतस्तु बहुशो गालवस्य तपस्विनः ।  
 किञ्चिदागतसंरम्भो विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २६ ॥  
 एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।  
 अष्टौ शतानि मे देहि गच्छ गालव मा चिरम् ॥ २७ ॥ ३६३५

इति श्रीमहाभारते० भगवद्गीतापर्वणि गालवचरिते षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

मुनिसत्तम महातेजस्वी विश्वामित्रकी  
 इस बातको सुनकर गालव मुनि  
 अत्यन्त प्रसन्न होके मीठे वचनसे  
 उनसे बोले, हे गुरु । गुरुदक्षिणामें आ-  
 पको क्या दान दूं ? दक्षिणा-युक्त होने-  
 ही से मनुष्यका कर्म सिद्ध होता है ।  
 बिना दक्षिणा दिये कोई कर्मका फल  
 नहीं प्राप्त कर सकता । उत्तम यज्ञके  
 करनेवाले पुरुष दक्षिणासे ही स्वर्ग  
 लोकमें यज्ञका फल पाते हैं । इससे  
 गुरुदक्षिणाके योग्य कौन वस्तु आपको  
 दान करनी होगी, उसके निमित्त आप  
 आज्ञा दीजिये । (२१-२३)

भगवान विश्वामित्र गालवकी  
 सेवाहीसे यथेष्ट दक्षिणा पा चुके थे;  
 यही समझ कर उन्होंने और दक्षिणा  
 ग्रहण करनेकी अभिलाषा नहीं की ।  
 इसीसे उसको "तुम गमन करो" बार  
 बार ऐसे ही वचन कहने लगे; परन्तु  
 गालव मुनि बारबार ऐसे वचनसुन-  
 कर भी हठपूर्वक क्या दक्षिणा दूं, क्या  
 दूं ? ऐसी बात बारबार कहने लगे ।  
 तब विश्वामित्र उसके इस प्रकार महा  
 हठको देखकर कुछ रोषमें भरकर यह  
 वचन बोले । हे गालव ! चन्द्रमाके  
 समान सफेद और एक ओर श्याम

नारद उवाच— एवमुक्तस्तदा तेन विश्वामित्रेण धीमता ।  
 नाऽऽस्ते न शेते नाऽऽहारं कुरुते गालवस्तदा ॥ १ ॥  
 त्वगस्थिभूतो हरिणश्चिन्ताशोकपरायणः ।  
 शोचमानोऽतिमात्रं स दह्यमानश्च मन्युना ॥  
 गालवो दुःखितो दुःखाद्विललाप सुयोधन ॥ २ ॥  
 कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थाः सश्रयः कुतः ।  
 हयानां चन्द्रशुभ्राणां शतान्यष्टौ कुतो मम ॥ ३ ॥  
 कुतो मे भोजने श्रद्धा सुखश्रद्धा कुतश्च मे ।  
 श्रद्धा मे जीवितस्यापि छिन्ना किं जीवितेन मे ॥ ४ ॥  
 अहं पारे समुद्रस्य पृथिव्या वा परं परात् ।  
 गत्वाऽऽत्मानं विमुञ्चामि किं फलं जीवितेन मे ॥ ५ ॥  
 अधनस्याऽकृतार्थस्य त्यक्तस्य विविधैः फलैः ।  
 ऋणं धारयन्नाणस्य कुतः सुखमनीहया ॥ ६ ॥

कर्णसे युक्त ऐसे आठ सौ घोड़े लाकर  
 मुझे दान करो; जाओ अब देरी मत  
 करो । (२४-२७) [ ३६३५ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ छः अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ सात अध्याय ।

नारद मुनि बोले, बुद्धिमान् विश्वामित्रके ऐसी आज्ञा देनेपर गालव मुनि  
 इकवारगी चिन्तारूपी समुद्रमें डूब गये ।  
 उनका सोना, बैठना, खाना, पीना सब  
 छूट गया । अत्यन्तही सोच और चिन्ता  
 से सदा जलते हुए वह पाण्डुवर्ण  
 और सुखकर हड़डी मात्र रह गये ।  
 अत्यन्त दुःखसे पीडित होकर मनही  
 मन ऐसा विलाप करने लगे, कि “हाय !  
 मैं दीन हीन तपस्वी होकर चन्द्रमाके  
 समान सफेद श्यामकर्णके आठ सौ

घोड़े कहां पाऊंगा ? मेरा ऐसा धनवान्  
 कौन मित्र है, जिससे मैं मांग लूंगा ।  
 मुझे धन कहां है, सश्रय ही मैंने कब  
 किया है ? हा ! अब मुझे खाने पीने  
 आदि विषयोंमें किस प्रकारसे श्रद्धा हो  
 सकती है ? दूसरी बात तो दूर है, मेरे  
 जीनेकी भी अब आशा नहीं है । मेरे  
 जीनेहीसे अब क्या प्रयोजन है ? व्यर्थ  
 जीवनके भारको ढोनेकी अपेक्षा मैं समु-  
 द्रके पार अथवा पृथ्वीकी अन्तिम  
 सीमापर जाकर अपने प्राणको त्याग  
 दूंगा । ” (१-५)

निर्धन मनुष्य बहुतसे उत्तम फलके  
 लाभ करनेसे वंचित रहते हैं; ऋणी  
 पुरुषको यत्न और चेष्टाके अतिरिक्त  
 सुख पानेका और कौन उपाय है ? जो

सुहृदां हि धनं भुक्त्वा कृत्वा प्रणयमीप्सितम् ।  
 प्रतिकर्तुमशक्तस्य जीवितान्मरणं वरम् ॥ ७ ॥  
 प्रतिश्रुत्य करिष्येति कर्तव्यं तदकुर्वतः ।  
 मिथ्यावचनदग्धस्य इष्टापूर्तं प्रणश्यति ॥ ८ ॥  
 न रूपमनृतस्याऽस्ति नाऽनृतस्याऽस्ति सन्ततिः ।  
 नाऽनृतस्याऽऽधिपत्यं च कुत एव गतिः शुभा ॥ ९ ॥  
 कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम् ।  
 अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नाऽस्ति निष्कृतिः ॥ १० ॥  
 न जीवत्यधनः पापः कुतः पापस्य तन्त्रणम् ।  
 पापो ध्रुवमवाप्नोति विनाशं नाशयन्कृतम् ॥ ११ ॥  
 सोऽहं पापः कृतघ्नश्च कृपणश्चाऽनृतोऽपि च ।  
 गुरोर्यः कृतकार्यः संस्तत्करोमि न भाषितम् ॥ १२ ॥  
 सोऽहं प्राणान्विमोक्ष्यामि कृत्वा यत्नमनुत्तमम् ।  
 अर्थिता न मया काचित्कृतपूर्वा दिवौकसाम् ॥ १३ ॥

मनुष्य प्रीतिके बन्धनमें बंधके मित्रोंके  
 धनको भोग करते हैं और अन्तमें उनके  
 अभीष्ट कर्मोंके सिद्ध तथा प्रत्युपकार  
 करनेमें असमर्थ हो जाते हैं; उनके जीनेसे  
 मरनाही उत्तम है। मैं इस कार्यको नहीं  
 करूंगा ऐसा कहकर जो अधम पुरुष उस  
 कर्मको नहीं करता उसके समान मिथ्या-  
 वादी और कौन हो सकता है? उसके जप,  
 यज्ञ आदि सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं।  
 मिथ्याप्रिय अधम पुरुषोंकी सन्तति,  
 शरीरशोभा, प्रभुता कुछ भी नहीं रह  
 सकती। उसको उत्तम गति मिलनेकी  
 सम्भावना कैसे हो सकती है? कृतघ्न  
 पुरुषको यश, स्थान और सुख कहाँ  
 है? कृतघ्न किसी समयमें श्रद्धा करनेके

योग्य नहीं हो सकता; और न किसी  
 कालमें उसका निस्तार होता है। (६-१०)  
 धनहीन पापी पुरुषका जीना मरना  
 दोनोंही समान है। पापी मनुष्य अपनी  
 प्रतिज्ञाका पालन करनेमें कैसे समर्थ  
 होसकता है? वह कृतघ्न होकर अवश्य  
 ही मृत्युको प्राप्त होता है। इससे मैं भी  
 वही पापी, कृतघ्न, कृपण और मिथ्या  
 वादी हुआ हूँ। गुरुके निकट कृतकार्य  
 होकर, जब उनकी आज्ञाका पालन  
 करनेमें असमर्थ हुआ हूँ, तब सब  
 बातही भ्रममें सम्भव हो सकती हैं।  
 इससे अब मेरे जीनेसे क्या फल होगा?  
 मैं गुरुके वचनका पालन करनेमें अपनी  
 सामर्थ्य भर यत्न करके अन्तमें अपने



मानयन्ति च मां सर्वे त्रिदशा यज्ञसंस्तरे ।  
 अहं तु विबुधश्रेष्ठं देवं त्रिभुवनेश्वरम् ॥  
 विष्णुं गच्छाम्यहं कृष्णं गतिं गतिप्रतां वरम् ॥ १४ ॥  
 भोगा यस्मात्प्रतिष्ठन्ते व्याप्य सर्वान्सुरासुरान् ।  
 प्रणतो द्रष्टुमिच्छामि कृष्णं योगिनमव्ययम् ॥ १५ ॥  
 एवमुक्ते सखा तस्य गरुडो विनतात्मजः ।  
 दर्शयामास तं प्राह संहृष्टः प्रियकाम्यया ॥ १६ ॥  
 सुहृद्भवान्मम मतः सुहृदां च मतः सुहृत् ।  
 ईप्सितेनाऽभिलाषेण योक्तव्यो विभवे सति ॥ १७ ॥  
 विभवश्चाऽस्ति मे विप्र वासवावरजो द्विज ।  
 पूर्वमुक्तस्त्वदर्थं च कृतः कामश्च तेन मे ॥ १८ ॥  
 स भवानेतु गच्छाव नयिष्ये त्वां यथासुखम् ।  
 देशं पारं पृथिव्या वा गच्छ गालव मा चिरम् ॥ १९ ॥ [ ३३५४ ]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि गालवचरिते सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

प्राणको त्याग दूंगा। यज्ञके स्थानमें सब देवता लोग मेरा सम्मान किया करते हैं, परन्तु पहिले कभी मैंने उन लोगोंसे कुछ नहीं मांगा है। इससे सब देवोंमें श्रेष्ठ, अगतिके गति स्वरूप, विश्वव्यापक विष्णुका शरणागत होऊंगा। जिससे सुर, असुर, नर और किन्नर सम्पूर्ण प्राणियोंका भोग और सब प्रकारका सुख प्रतिष्ठित है; उन्हीं योगियोंमें श्रेष्ठ अविनाशी विष्णुके दर्शन करनेकी मैं इच्छा करता हूं। (११-१५)

गालव मुनिके यह वचन कहते ही अकस्मात् उनके मित्र विनतापुत्र गरुडने आकर उन्हें दर्शन दिया; और अत्यन्त प्रसन्नतासे उनकी प्रिय कामना

सिद्ध करनेके निमित्त यह वचन बोले। हे प्रिय सखा! तुम्हारे सङ्ग मेरी पूर्ण मित्रता है; मित्रोंका कर्तव्य कर्म यही है, कि धन तथा पराक्रमसे अपने प्यारे मित्रोंके कार्य सिद्ध करनेके निमित्त यत्न करें। हे ब्राह्मण! इससे मेरे परम सम्पत्ति स्वरूप भगवान् विष्णुसे मैंने पहिले ही तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध करनेके निमित्त आवेदन किया था; और उन्होंने ने भी मेरी यह इच्छा पूर्ण की है; इससे चलो तुम्हें सुख पूर्वक हम ले चलेंगे; समुद्रके पार अथवा पृथ्वीकी अन्तिम सीमापर जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चलो, विलम्ब मत करो। ( १६—१९ ) [ ३३५४ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ सात अध्याय समाप्त ।

सुपर्ण उवाच— अनुशिष्टोऽसि देवेन गालव ज्ञानयोनिना ।  
 ब्रूहि कामं तु कां यामि द्रष्टुं प्रथमतो दिशम् ॥ १ ॥  
 पूर्वा वा दक्षिणां वाऽहमथवा पश्चिमां दिशम् ।  
 उत्तरां वा द्विजश्रेष्ठ कुतो गच्छामि गालव ॥ २ ॥  
 यस्यामुदयते पूर्वं सर्वलोकप्रभावनः ।  
 सविता यत्र सन्ध्यायां साध्यानां वर्तते तपः ॥ ३ ॥  
 यस्यां पूर्वं मतिर्याता यथा व्याप्तमिदं जगत् ।  
 चक्षुषी यत्र धर्मस्य यंत्रे वै सुप्रतिष्ठिते ॥ ४ ॥  
 कृतं यतो हुतं हव्यं सर्पते सर्वतो दिशम् ।  
 एतद् द्वारं द्विजश्रेष्ठ दिवसस्य तथाऽध्वनः ॥ ५ ॥  
 अत्र पूर्वं प्रसूता वै दाक्षायण्यः प्रजाः स्त्रियः ।  
 यस्यां दिशि प्रवृद्धाश्च कश्यपस्याऽऽत्मसम्भवाः ॥ ६ ॥  
 अतो मूलं सुराणां श्रीर्यत्र शक्रोऽभ्यषिच्यत ।  
 सुरराज्येन विप्रर्षे देवैश्चाऽत्र तपश्चितम् ॥ ७ ॥

उद्योगपर्वमें एकसौ आठ अध्याय ।

गरुड बोले, हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ गालव !  
 अज और अविनाशी चक्रधारी भगवान्  
 विष्णुकी आज्ञाके अनुसार मैं तुमसे यह  
 पूछता हूँ, कि पहिले कौन दिशाके  
 दर्शनके निमित्त तुम्हे ले चलूँ: सो तुम  
 कहो । पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण  
 इनमेंसे पहिले किस दिशामें जानेकी  
 तुम्हें अभिलाषा है ? (१-२)

जिस स्थानसे सब लोकोंके प्रकाशक  
 सूर्यका उदय होता है, और सन्ध्याके  
 समयमें जहाँपर साध्य नामक गणदे-  
 वता लोग तपस्या करते हैं; जिस  
 जगह जगत् व्यापिनी बुद्धिको लोग  
 प्रथम प्राप्त कर सकते हैं, धर्मके दोनों

नेत्र स्वरूप सूर्य और चन्द्रमा और स्व-  
 यं धर्म जिस दिशामें प्रतिष्ठित हैं; जिस  
 दिशामें यज्ञके सम्पूर्ण हव्य पदार्थ होम  
 होकर सब दिशाओंको शुद्ध करते हैं,  
 जो दिशा दिवस और देवयान पितृ  
 यान मार्गका द्वार स्वरूप है । (३-५)

पहिले दक्ष-प्रजापतिकी कन्याओंने  
 जहाँपर सब प्रजाओंको उत्पन्न किया  
 था, कश्यप ऋषिके पुत्र लोग जिस  
 दिशामें बढे थे; वही पूर्वदिशा देवताओं  
 के सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी जड है; क्योंकि  
 इसी दिशामें शचीपति देवताओंके  
 स्वामी इन्द्रका अभिषेक हुआ था,  
 और सब देवताओंने इसी स्थानमें  
 पहिले तपस्या की थी । हे ब्राह्मण श्रेष्ठ!

एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मन्पूर्वत्येषा दिगुच्यते ।  
 यस्मात्पूर्वतरे काले पूर्वमेवाऽऽवृता सुरैः ॥ ८ ॥  
 अत एव च सर्वेषां पूर्वमाशां प्रचक्षते ।  
 पूर्व सर्वाणि कार्याणि दैवानि सुखमीप्सता ॥ ९ ॥  
 अत्र वेदाङ्गगौ पूर्व भगवाँल्लोकभावनः ।  
 अत्रैवोक्ता सवित्राऽऽसीत्सावित्री ब्रह्मवादिषु ॥ १० ॥  
 अत्र दत्तानि सूर्येण यजूंषि द्विजसत्तम ।  
 अत्र लब्धवरः सोमः सुरैः क्रतुषु पीयते ॥ ११ ॥  
 अत्र तृप्ता हुतवहाः स्वां योनिमुपभुञ्जते ।  
 अत्र पातालमाश्रित्य वरुणः श्रियमाप च ॥ १२ ॥  
 अत्र पूर्व वसिष्ठस्य पौराणस्य द्विजर्षभ ।  
 सूतिश्चैव प्रतिष्ठा च निधनं च प्रकाशते ॥ १३ ॥  
 ओंकारस्थाऽत्र जायन्ते सृतयो दशतीर्दश ।  
 पिवन्ति सुनयो यत्र हविर्धूमं स्म धूमपाः ॥ १४ ॥  
 प्रोक्षिता यत्र बहवो वराहाद्या मृगा वने ।

इसी कारण उसका नाम पूर्व दिशा हुआ है । (६-८)

इन्द्रको स्वर्गके राज्यपर अभिषिक्त होनेके बहुत दिन पहिलेसे भी देवता लोग इस स्थानमें निवास करते थे, इसी कारण पुराने लोगोंने उसका “पूर्व” नाम रक्खा है । सुखकी अभिलाषा करनेवाले देवताओंका सम्पूर्ण कार्य इसी दिशामें सिद्ध हुआ था । (६-९)

लोकभावन भगवान् पितामह ने पहिले इसी स्थानपर वेद गान किया था । सूर्यदेवने भी इसी स्थानमें पहिले ब्राह्मणोंको गायत्रीका उपदेश और याज्ञवल्क्य ऋषिको यजुर्वेद अध्ययन कराया

था । हे द्विजसत्तम ! इसी स्थानपर वरको प्राप्त होनेसे यज्ञके स्थानमें सोम देवताओंसे प्राशन किया जाता है । वस्तुओंको भक्षण करनेवाले अग्नि सदा तृप्त होकर दूध आदि भक्षण किया करते हैं । जलके स्वामी वरुणने इसी ओरसे पातालके तल भागपर जा करके राज्य लक्ष्मीको प्राप्त किया है । (९-१२)

पहिले मित्रवरुणके यज्ञके समयमें पुराने वसिष्ठ ऋषिकी इसी स्थानमें उत्पात्ति, निवास और विनाश प्रकाशित हुआ था । प्रणवका जो सहस्र प्रकारका मार्ग है, वह इसी दिशामें कहा जाता है । ध्रुवां पीनेवाले मुनि लोग इसी

शक्रेण यज्ञभागार्थं दैवतेषु प्रकल्पिताः ॥ १५ ॥

अत्राऽऽहिताः कृतघ्नाश्च मानुषाश्चाऽसुराश्च ये ।

उदयंस्तान्हि सर्वान्वै क्रोधाद्वन्ति विभावसुः ॥ १६ ॥

एतद् द्वारं त्रिलोकस्य स्वर्गस्य च सुखस्य च ।

एष पूर्वो दिशां भागो विद्यावोऽत्र यदीच्छसि ॥ १७ ॥

प्रियं कार्यं हि मे तस्य यस्याऽस्मि वचने स्थितः ।

ब्रूहि गालव यास्यामि शृणु चाऽप्यपरां दिशम् ॥ १८ ॥ ३६७२

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैशाखिकायां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

गालवचरिते अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

सुपर्ण उवाच— इयं विवस्वता पूर्व श्रौतेन विधिना किल ।

गुरवे दक्षिणा दत्ता दक्षिणेत्युच्यते च दिक् ॥ १ ॥

अत्र लोकत्रयस्याऽस्य पितृपक्षः प्रतिष्ठितः ।

अत्रोष्मपाणां देवानां निवासः श्रूयते द्विज ॥ २ ॥

स्थानमें होमका धुवां पीते थे, और देव-  
ताओंके यज्ञभाग निमित्त शचीपति  
इन्द्र वराह; मृग आदि सब वस्तु उनको  
दान देते थे । ( १३-१५ )

तेज और किरण धारण करने वाले  
भगवान् सूर्य इसी दिशामें उदय होकर,  
क्रोधके वशमें अहित कर्म करनेवाले  
कृतघ्न मनुष्य और असुरोंके प्राणका  
नाश करते हैं । मैं अधिक कहांतक  
वर्णन करूं, यह दिशा तीनों लोककी  
द्वार स्वरूप है, स्वर्ग और सुख लाभके  
निमित्त यही उत्तम मार्ग है । इससे  
यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो इसी पूर्व  
दिशाकी ओर प्रवेश करें । हे गालव !  
मैं जिसका आज्ञाकारी हूं, उसका  
प्रिय कार्य पूर्ण करना मेरा अत्यन्तही

कर्तव्य-कर्म है । इससे अब किस दिशा  
की ओर चलें सो तुम कहो, यदि पूर्व  
दिशा देखनेकी इच्छा न हो, तो और  
एक दिशाका वृत्तान्त कहता हूं, सो  
सुनो । ( १६-१८ ) [ ३६७२ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ आठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ नौ अध्याय ।

गरुड बोले, यह दक्षिणा दिशा है ।  
पहिले सूर्यने देवयज्ञके अनुष्ठानमें यह  
दिशा श्रौतविधिसे गुरु कश्यपको दक्षि-  
णामें दान किया था; इसीसे यह दक्षि-  
णा दिशाके नामसे प्रसिद्ध हुई है । हे  
विप्र ! इसी दिशामें तीनों लोकका पितृ-  
पक्ष प्रतिष्ठित है । सुना जाता है, धुवां  
पीनेवाले देवता लोगभी इसी दिशामें  
निवास करते हैं । विश्वेदेव नामका जो

अत्र विश्वे सदा देवाः पितृभिः सार्धमासते ।  
 इज्यमानाः स लोकेषु सम्प्राप्तास्तुल्यभागताम् ॥ ३ ॥  
 एतद् द्वितीयं वेदस्य द्वारमाचक्षते द्विज ।  
 बुद्धिर्लो लवशाश्चापि गण्यते कालनिश्चयः ॥ ४ ॥  
 अत्र देवर्षयो नित्यं पितृलोकर्षयस्तथा ।  
 तथा राजर्षयः सर्वे निवसन्ति गतव्यथाः ॥ ५ ॥  
 अत्र धर्मश्च सत्यं च कर्म चाऽत्र निगद्यते ।  
 गतिरेषा द्विजश्रेष्ठ कर्मणामवसायिनाम् ॥ ६ ॥  
 एषा दिक्सा द्विजश्रेष्ठ यां सर्वः प्रतिपद्यते ।  
 वृता त्वनवबोधेन सुखं तेन न गम्यते ॥ ७ ॥  
 नैर्ऋतानां सहस्राणि बहून्यत्र द्विजर्षभ ।  
 सृष्टानि प्रतिकूलानि द्रष्टव्यान्यकृतात्मभिः ॥ ८ ॥  
 अत्र मन्दरकुञ्जेषु विप्रर्षिसदनेषु च ।  
 गायन्ति गाथा गन्धर्वाश्चित्तबुद्धिहरा द्विज ॥ ९ ॥

तेरह गणदेवता हैं वे लोगके बीच  
 पितरोंके समान पूज्य और समान भाग  
 पाकर उन लोगोंके सङ्ग सदा एकत्र  
 होकर इसी दिशामें वास करते  
 हैं । ( १—३ )

हे द्विजसत्तम ! पण्डित लोग इस  
 दिशाको धर्मका दूसरा द्वार स्वरूप कहके  
 वर्णित करते हैं; क्योंकि इसी स्थानमें  
 सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म सब लोकोंकी परम  
 आयुका निर्णय होता है; विशेष करके इसी  
 दिशामें देवर्षि पितर लोग ऋषि और  
 राजर्षि लोग सदा परम सुखसे निवास  
 करते हैं । हे ब्राह्मण ! लोगोंका सत्य,  
 धर्म और पुण्य, पाप रूप सब कर्म इस  
 दिशामें चित्रगुप्तके पास विद्यमान हैं; जो

पुरुष कर्मसे आत्माको स्थिर करता है,  
 इसी दिशामें मृतपुरुषोंके कर्मोंकी गति  
 होती है । ( ४—६ )

एक बार सबको इस दिशामें आना  
 पडता है; परन्तु यह अज्ञानरूपी अन्ध-  
 कारसे ढकी रहती है, इससे सहजहीमें  
 नहीं प्राप्त हो सकती । हे द्विजश्रेष्ठ !  
 पुण्यकर्म न करनेवाले अधम मनुष्योंकी  
 विरुद्धता करनेके निमित्त इस दिशामें  
 कई सहस्र महा विकट आकारके राक्ष-  
 सोंकी सृष्टि हुई है । हे ब्राह्मण ! मीठे  
 स्वरसे युक्त गन्धर्व लोग मन्दर पर्वत  
 और विप्रर्षि लोकोंके आश्रमोंपर अच्छे  
 मधुर गीत गाकर सब लोगोंके चित्त  
 और बुद्धि हर लेते हैं । ( ७—९ )

अत्र सामानि गाथाभिः श्रुत्वा गीतानि रैवतः ।  
 गतदारो गतामात्यो गतराज्यो वनं गतः ॥ १० ॥  
 अत्र सावर्णिना चैव यवक्रीतात्मजेन च ।  
 मर्यादा स्थापिता ब्रह्मन्यां सूर्यो नाऽतिवर्तते ॥ ११ ॥  
 अत्र राक्षसराजेन पौलस्त्येन महात्मना ।  
 रावणेन तपश्चीत्वा सुरेभ्योऽमरता वृता ॥ १२ ॥  
 अत्र वृत्तेन वृत्रोऽपि शक्रशत्रुत्वमीयिवान् ।  
 अत्र सर्वासवः प्राप्ताः पुनर्गच्छन्ति पञ्चधा ॥ १३ ॥  
 अत्र दुष्कृतकर्माणो नराः पच्यन्ति गालव ।  
 अत्र वैतरणी नाम नदी वितरणैर्वृता ॥ १४ ॥  
 अत्र गत्वा सुखस्याऽन्तं दुःखस्याऽन्तं प्रपद्यते ।  
 अत्र वृत्तो दिनकरः सुरसं क्षरते पयः ॥ १५ ॥  
 काष्ठां चाऽऽस्ताव वासिष्ठीं हिमसुत्सृजने पुनः ।  
 अत्राऽहं गालव पुरा क्षुधातः पारिचिन्तयन् ॥ १६ ॥

रैवत नामक दैत्यराज इसी स्थानपर गायी गयी सोमकी गाथाओंको सुनकर पुत्र, पौत्र, स्त्री, राज्य और सेवक आदि सम्पूर्ण वस्तुओंको त्याग कर वनवासी होगये थे । हे ब्राह्मण ! मनु और यव-क्रीत-तनयने इस दिशामें जो नियम स्थापित किया है, सूर्यदेव किसी समय में उसका उल्लंघन नहीं कर सकते । पुलस्त्यवंशमें उत्पन्न हुए राक्षसोंके राजा महात्मा रावणने इसी दिशामें तपस्या करके देवताओंके समीप अमर होनेका वरदान मांगा था । (१०-१२)

वृत्रासुरने भी असत् कर्म से इसी स्थानमें इन्द्रके साथ शत्रुता की थी । हे गालव ! इसी दक्षिण दिशामें सबका

प्राण मिलित होके फिर प्राण और अपान भेदसे पृथक् पृथक् होजाता है । बुरे कर्म करनेवाले अधम पुरुष इसी दिशामें बुरे कर्मके फलरूपी नरकमें पडकर सड़ते रहते हैं । इसी दिशामें नरक समुद्रमें मिलनेवाली, पापी पुरुषोंसे भरी हुई महाभयङ्कर वैतरणी नदी बह रही है । यहांपर आनेसे लोगोंको स्वर्ग और नरक दोनोंके सुख मिलते हैं । किरणधारी सूर्य इस दिशामें घिरकर उत्तम प्रकारसे जल बरसाते रहते हैं; और फिर वसिष्ठ सम्बन्धिनी उदीची दिशामें जानेसे, हिमसे मुक्त होते हैं । (१३-१६)

हे गालव ! पहिले मैं एक दिन क्षुधासे पीडित होके आहारके निमित्त

लब्धवान्युद्धमानौ द्वौ बृहन्तौ गजकच्छपौ ।  
 अत्र चक्रधनुर्नाम सूर्याज्ञातो महानृषिः ॥ १७ ॥  
 विदुर्य कपिलं देवं येनाऽऽर्ताः सगरात्मजाः ।  
 अत्र सिद्धाः शिवा नाम ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १८ ॥  
 अधीत्य सकलान्वेदाँल्लेभिरे मोक्षमक्षयम् ।  
 अत्र भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता ॥ १९ ॥  
 तक्षकेण च नागेन तथैवैरावतेन च ।  
 अत्र निर्याणकालेऽपि तमः सम्प्राप्यते महत् ॥ २० ॥  
 अभैद्यं भास्करेणाऽपि स्वयं वा कृष्णवर्त्मना ।  
 एष तस्याऽपि ते मार्गः परिचार्यस्य गालव ॥  
 ब्रूहि मे यदि गन्तव्यं प्रतीचीं शृणु चाऽपराम् ॥ २१ ॥ [३६९३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

गालवचरिते नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

सुपर्ण उवाच— इयं दिग्दयिता राज्ञो वरुणस्य तु गोपतेः ।

सदा सलिलराजस्य प्रतिष्ठा चाऽऽदिरेव च ॥ १ ॥

चिन्ता कर रहा था, तब युद्धमें प्रवृत्त हुए इस दिशामें बड़े शरीरवाले दो हाथी और कच्छपको पाया था । जो लोकके बीच कपिल देव कहके विख्यात हैं, जिनके प्रभावसे सगरके वंशका नाश हुआ था, वही चक्रधनु नामक महर्षि इस दिशामें सूर्यदेवसे उत्पन्न हुए थे । इसी दिशामें वेदको जाननेवाले शिव नामक प्रसिद्ध ब्राह्मणोंने सब वेदोंको पढ़कर अविनाशी मोक्षको पाया था । ( १६—१९ )

इसी स्थानमें नागराज वासुकी, तक्षक और ऐरावत आदि नागकुलोंसे सहित भोगवती नामक नगरी विराजमान है ।

मरनेके समय लोगोंको इसी प्रकार महाघोर अन्धकार मिलता है । सूर्य और अग्नि भी इस अन्धकारको दूर नहीं कर सकते । हे गालव ! तुम चलनेकी इच्छा करो, तो इस दिशामें गमन करें; इससे यदि तुम्हें इस दिशामें चलना हो तो मुझे कहो; नहीं तो-दूसरी-पश्चिम-दिशा की कथा मुझसे सुनो । ( १९—२१ )  
 उद्योगपर्वमें एकसौ नौ अध्याय समाप्त । ३६९३

उद्योगपर्वमें एकसौ दस अध्याय ।

गरुड बोले, हे द्विजसत्तम ! यह दिशा जलके स्वामी वरुणदेवको अत्यन्त ही प्यारी है ! क्योंकि इसी स्थानमें उनकी उत्पत्ति और प्रतिष्ठा हुई है । भगवान् सूर्य

अत्र पश्चादहः सूर्यो विसर्जयति गाः स्वयम् ।  
 पश्चिमेत्यभिविरुयाता दिगियं द्विजसत्तम ॥ २ ॥  
 यादसामत्र राज्येन सलिलस्य च गुप्तये ।  
 कश्यपो भगवान्देवो वरुणं स्माभ्यषेचयत् ॥ ३ ॥  
 अत्र पित्वा समस्तान्वै वरुणस्य रसांस्तु षट् ।  
 जायते तरुणः सोमः शुक्लस्याऽऽदौ तमिस्रहा ॥ ४ ॥  
 अत्र पश्चात्कृता दैत्या वायुना संयतास्तदा ।  
 निःश्वसन्तो महावातैरर्चिताः सुषुपुर्द्विज ॥ ५ ॥  
 अत्र सूर्यं प्रणयिनं प्रतिगृह्णाति पर्वतः ।  
 अस्तो नाम यतः सन्ध्या पश्चिमा प्रतिसर्पति ॥ ६ ॥  
 अतो रात्रिश्च निद्रा च निर्गता दिवसक्षये ।  
 जायते जीवलोकस्य हर्तुमर्धमिवाऽऽयुषः ॥ ७ ॥  
 अत्र देवीं दितिं सुप्तमात्मप्रसवधारिणीम् ।  
 विगर्भाभिकरोच्छक्रो यत्र जातो मरुद्गणः ॥ ८ ॥  
 अत्र मूलं हिमवतो मन्दरं याति शाश्वतम् ।

दिनके अन्त भागमें अपनी किरण और प्रकाशका विसर्जन करते हैं, इसी कारण से वह पश्चिम दिशाके नामसे प्रसिद्ध हुई है। इस दिशामें जलजन्तुओंके ऊपर प्रभुता और जलकी रक्षा करनेके निमित्त भगवान् कश्यपने वरुणदेवको सब अधिकार दे रखा है। ( १-३ )

अन्धकारका नाश करनेवाले चन्द्रमा इसी स्थानमें जलदेवके सम्पूर्ण छः रस पीके पूर्णमासीको फिर पूर्णरूपसे उदित होते हैं। हे ब्राह्मण ! पहिले समयमें दैत्य लोगोंने इसी स्थानमें वायुके वेगसे दुःखित और पराजित होकर लम्बी सांस लेते हुए मृत्यु की शय्यापर शयन

किया था। जिससे पश्चिम सन्ध्याकी उत्पत्ति होती है, वही अस्ताचल गिरि इस स्थानमें प्रदक्षिण करनेवाले सूर्यको प्रतिदिन संमानित करते हैं। ( ४-६ )

दिनके बीत जानेपर इसी स्थानसे निद्रा निकलकर जीवन कालका आधा भाग हरनेके निमित्त मानों सब जीव मात्रको आक्रमण करती है। देवताओंके राजा इन्द्रने अपनी सौतेली माता तेजस्विनी दिति-देवीको इसी स्थानमें सोई हुई देखकर, ईर्ष्युक्त होकर उसका गर्भ काटके उनचास टुकड़े कर दिये थे, और उसीसे मरुद्गणोंकी उत्पत्ति हुई थी। पर्वतोंके राजा



अपि वर्षसहस्रेण न चाऽस्याऽन्तोऽधिगम्यते ॥ ९ ॥

अत्र काञ्चनशैलस्य काञ्चनाम्बुरुहस्य च ।

उदधेस्तीरमासाद्य सुरभिः क्षरते पयः ॥ १० ॥

अत्र मध्ये समुद्रस्य कबन्धः प्रतिदृश्यते ।

खर्भानोः सूर्यकल्पस्य सोमसूर्यौ जिघांसतः ॥ ११ ॥

सुवर्णशिरसोऽप्यत्र हरिरोम्णः प्रगायतः ।

अदृश्यस्याऽप्रमेयस्य श्रूयते विपुलो ध्वनिः ॥ १२ ॥

अत्र ध्वजवती नाम कुमारी हरिमेधसः ।

आकाशे तिष्ठ तिष्ठेति तस्थौ सूर्यस्य शासनात् १३ ॥

अत्र वायुस्तथा वह्निरापः खं चापि गालव ।

आह्निकं चैव नैशं च दुःखं स्पर्शं विमुञ्चति ॥ १४ ॥

अतः प्रभृति सूर्यस्य तिर्यगावर्त्तते गतिः ।

अत्र ज्योतींषि सर्वाणि विशन्त्यादित्यमण्डलम् ॥ १५ ॥

अष्टाविंशतिरात्रं च चक्रम्य सह भानुना ।

हिमालयकी बहुतसी जड़ मन्दर-पर्वतसे लगी हुई हैं; हजार वर्षतक भ्रमण करनेपर भी उसकी सीमा नहीं मिल सकती । (७-९)

गोमाता सुरभी इसी स्थानपर सुवर्णके शैल और सुवर्णके कमलसे युक्त सरोवरके तटपर खड़ी होके दूधकी धारा बहाती हैं । चन्द्रमा और सूर्यकी हिंसा करनेकी अभिलाषा करनेवाला शिरसे रहित राहु नामक दैत्यका शरीर यहांपर समुद्रके बीच सदा दीख पड़ता है । (१०-११)

अदृश्य और महातेजसे युक्त हरिलोमा अर्थात् सदा यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए सुवर्ण शिर नाम मुनि जो इस

स्थानमें वेदका पाठ करते हैं, उनका बहुतसा शब्द यहांपर भी सुनाई पड़ता है । (१२)

हरिमेधा मुनिकी कन्या ध्वजवती सूर्यदेवके “खड़ी रह ! खड़ी रह !” इस प्रकारके शासनसे आकाश मार्गमें खड़ी थी; हे गालव ! इस दिशामें क्या दिन क्या रात्रि सब समयमें वायु, अग्नि, जल और आकाश दुःख देनेवाले स्पर्शको त्याग देते हैं । सूर्यकी गति इसी स्थानमें टेढ़ी चालसे लौटती है, और इसी दिशामें सब ज्योतिके पदार्थ सूर्यमण्डलमें प्रवेश करते हैं । बारह राशि, सत्ताइस नक्षत्र और अभिजित् ये सब एक एक करके अठाइस रात्रि पर्यन्त

निष्पतन्ति पुनः सूर्यात्सोमसंयोगयोगतः ॥ १६ ॥

अत्र नित्यं स्रवन्तीनां प्रभवः सागरोदयः ।

अत्र लोकत्रयस्याऽऽपस्तिष्ठन्ति वरुणालये ॥ १७ ॥

अत्र पन्नगराजस्याऽप्यनन्तस्य निवेशनम् ।

अनादिनिधनस्याऽत्र विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥ १८ ॥

अत्राऽनलस्रवस्याऽपि पवनस्य निवेशनम् ।

महर्षेः कश्यपस्याऽत्र मारीचस्य निवेशनम् ॥ १९ ॥

एष ते पश्चिमो मार्गो दिग्द्वारेण प्रकीर्तितः ।

ब्रूहि गालव गच्छावो बुद्धिः का द्विजसत्तम ॥ २० ॥ [३७१३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्दानपर्वणि

गालवचरिते दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

सुपर्ण उवाच— यस्मादुत्तार्यते पापाद्यस्मान्निःश्रेयसोऽश्नुते ।

अस्मादुत्तारणबलादुत्तरेत्युच्यते द्विज ॥ १ ॥

उत्तरस्य हिरण्यस्य परिवापश्च गालव ।

मार्गः पश्चिमपूर्वाभ्यां दिग्भ्यां वै मध्यमः स्मृतः ॥ २ ॥

सूर्यके संग भ्रमण करके चन्द्रमाके सङ्ग संयोग होनेपर, फिर क्रमसे निकल जाते हैं । (१३-१६)

जिससे सब समुद्रोंकी उत्पत्ति हुई है; वही सब नदियोंका उत्पत्ति स्थान इस पश्चिम दिशामें सदासे विराजमान है । तीनों भुवनका जितना जल है सो यहांपर वरुण देवके स्थानपर उपास्थित है । यहींपर नागोंके राजा शेषनागका निवास है । अनादि और अविनाशी भगवान् विष्णुदेवका यहीं उत्तम शय्या-रूपी निवास स्थान है । अग्निके मित्र वायु, और मरीचिपुत्र कश्यपकी भी यही निवास-भूमि है । हे गालव! संक्षेप

से यह पश्चिम दिशाका वृत्तान्त तुमसे कहा गया । हे द्विजसत्तम ! इस समय तुम्हारी क्या इच्छा है ? कहो किस दिशाकी ओर चलें ? (१७-२०) [३७१३]

उद्योगपर्वमें एकसौ दस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ ग्यारह अध्याय ।

गरुड बोले, हे द्विजसत्तम गालव ! यह उत्तर दिशा है । इस दिशामें सब लोग उत्तीर्ण होके पापोंसे छूटकर मुक्ति पद पाते हैं । इसी उत्तारण शक्ति होने ही के कारण इसका नाम उत्तर दिशा हुआ है । इस उत्तर दिशाके सेवनीय जल समुद्रके मार्ग पूर्व और पश्चिम दिशा पर्यन्त व्याप्त होनेसे वह मध्यम

अस्यां दिशि वरिष्ठायासुत्तरायां द्विजर्षभ ।  
 नाऽसौम्यो नाऽविधेयात्मा नाऽधर्मा वसते जनः ॥ ३ ॥  
 अत्र नारायणः कृष्णो जिष्णुश्चैव नरोत्तमः ।  
 बदर्यामाश्रमपदे तथा ब्रह्मा च शाश्वतः ॥ ४ ॥  
 अत्र वै हिमवत्पृष्ठे नित्यमास्ते महेश्वरः ।  
 प्रकृत्या पुरुषः सार्धं युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ५ ॥  
 न स दृश्यो मुनिगणैस्तथा देवैः सवासवैः ।  
 गन्धर्वयक्षसिद्धैर्वा नरनारायणादृते ॥ ६ ॥  
 अत्र विष्णुः सहस्राक्षः सहस्रचरणोऽव्ययः ।  
 सहस्रशिरसः श्रीमानेकः पश्यति मायया ॥ ७ ॥  
 अत्र राज्येन विप्राणां चन्द्रमाश्चाऽभ्यषिच्यत ।  
 अत्र गङ्गां महादेवः पतन्तीं गगनाच्च्युताम् ॥ ८ ॥  
 प्रतिगृह्य ददौ लोके मानुषे ब्रह्मवित्तम ।  
 अत्र देव्या तपस्तप्तं महेश्वरपरीप्सया ॥ ९ ॥  
 अत्र कामश्च रोषश्च शैलश्चोमा च सम्बभूवुः ।

बोध होता है । इस श्रेष्ठ दिशामें विनय  
 रहित, इन्द्रियोंको न जीतनेवाले, और  
 अधर्मी लोग कभी नहीं निवास कर  
 सकते । यहाँपर बदरिकाश्रममें नारायण  
 कृष्ण, पुरुषोंमें श्रेष्ठ विष्णु और पितामह  
 ब्रह्मा विराजमान हैं । (१-४)

यहींपर प्रलयकालकी अग्निके  
 समान, भगवान् महादेव हिमालय पर्वत-  
 के ऊपर प्रकृति पार्वतीके सङ्ग सदा  
 विहार करते रहते हैं । वह मायासे  
 युक्त होनेसे भी केवल नरनारायणके  
 अतिरिक्त और किसीको नहीं दीख  
 पड़ते हैं, मुनि, इन्द्र आदि देवता,  
 गन्धर्व, यक्ष और सिद्ध आदि कोई भी

उनका दर्शन नहीं कर सकते । इसी  
 स्थानपर सहस्र शिर, नेत्र, और चरणसे  
 युक्त श्रीमान् विष्णुदेव मायासे युक्त  
 महादेवके दर्शन करते हैं । (५-७)

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! द्विजोंके राजा चन्द्र-  
 माका अभिषेक इसी स्थानपर हुवा था  
 और महादेवने स्वर्गसे गिरी हुई गंगाको  
 मस्तकपर धारण करके मनुष्य लोकमें  
 उपस्थित किया था । गिरिराजकुमारी  
 पार्वतीने जो महादेवको वर बनानेके  
 निमित्त कठिन तपस्या की थी, वह अनु-  
 घ्ठान भी इसी स्थानमें हुआ था, । एक  
 समय यहाँ पर गिरिराज, उमा, काम-  
 देव और महादेवकी क्रोधरूपी अग्नि

अत्र राक्षसयक्षाणां गन्धर्वाणां च गालव ॥ १० ॥  
 आधिपत्येन कैलासे धनदोऽप्यभिषेचितः ।  
 अत्र चैत्ररथं रम्यमत्र वैखानसाश्रमः ॥ ११ ॥  
 अत्र मन्दाकिनी चैव मन्दरश्च द्विजर्षभ ।  
 अत्र सौगन्धिकवनं नैर्ऋतैरभिरक्ष्यते ॥ १२ ॥  
 शाद्वलं कदलीस्कन्धमत्र सन्तानका नगाः ।  
 अत्र संयमनित्यानां सिद्धानां स्वैरचारिणाम् ॥ १३ ॥  
 विमानान्यनुरूपाणि कामभोग्यानि गालव ।  
 अत्र ते ऋषयः सप्त देवी चाऽरुन्धती तथा ॥ १४ ॥  
 अत्र तिष्ठति वै स्वातिरत्राऽस्या उदयः स्मृतः ।  
 अत्र यज्ञं समासाद्य ध्रुवं स्थाता पितामहः ॥ १५ ॥  
 ज्योतींषि चन्द्रसूर्यौ च परिवर्तन्ति नित्यशः ।  
 अत्र गङ्गामहाद्वारं रक्षन्ति द्विजसत्तम ॥ १६ ॥  
 धामा नाम महात्मानो मुनयः सत्यवादिना ।  
 न तेषां ज्ञायते सूर्तिर्नाऽऽकृतिर्न तपश्चित्तम् ॥ १७ ॥

अत्यन्त शोभित हुई थी। हे द्विजसत्तम! धनके स्वामी कुबेर यहीं कैलास पर्वतपर राक्षस यक्ष और गन्धर्वोंके राजा बनाये गये थे । ( ८—११ )

चैत्ररथ नामक उनका मनोहर बगीचा, वैखानस मुनियोंका आश्रम, मन्दाकिनी और मन्दर यहांपर सदासे शोभित हैं। राक्षसोंसे भली भांति रक्षित सौगन्धिक वन, श्यामल शाद्वल, नवतृण-भूयिष्ठ-देश, कदली कानन, कल्पतरु-वीथिका, और सदा संयमशाली इच्छानुसार विहार करने वाले सिद्ध लोगोंकी अभिलाषाके योग्य सम्पूर्ण विमान यहां पर बहुत ही शोभा और सुघराई प्रका-

शित कर रहे हैं। अच्छी प्रकारसे प्रसिद्ध सप्त-ऋषियोंका मण्डल और देवी अरुन्धती इसी स्थानपर विराजमान हैं । ( ११—१४ )

स्वाती नक्षत्रका भी यहींपर उदय और निवास होता है। सब लोगोंके गुरु पितामह ब्रह्मा यज्ञके निमित्त इस स्थानमें सदा वास करते हैं। सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्र इसी दिशासे सदा भ्रमण किया करते हैं। हे द्विजसत्तम ! सत्यवादी महात्मा धामा नाम मुनि लोग इसी स्थानमें इधर उधर भ्रमण करते हुए गंगा द्वार नाम लोककी अन्तिम सीमाकी रक्षा करते हैं; उन लोगोंकी

परिवर्तः सहस्राणि कामभोज्यानि गालव ।  
 यथा यथा प्रविशति तस्मात्परतरं नरः ॥ १८ ॥  
 तथा तथा द्विजश्रेष्ठ प्रविलीयति गालव ।  
 नैतत्केनचिदन्येन गतपूर्वं द्विजर्षभ ॥ १९ ॥  
 ऋते नारायणं देवं नरं वा जिष्णुमव्ययम् ।  
 अत्र कैलासमित्युक्तं स्थानमैलविलस्य तत् ॥ २० ॥  
 अत्र विद्युत्प्रभा नाम जज्ञिरेऽप्सरसो दश ।  
 अत्र विष्णुपदं नाम ऋमता विष्णुना कृतम् ॥ २१ ॥  
 त्रिलोकविक्रमे ब्रह्मनुत्तरां दिशमाश्रितम् ।  
 अत्र राज्ञा मरुतेन यज्ञेनेष्टं द्विजोत्तम ॥ २२ ॥  
 उशीरबीजे विप्रर्षे यत्र जाम्बूनदं सरः ।  
 जम्बूतस्याऽत्र विप्रर्षेरुपतस्थे महात्मनः ॥ २३ ॥  
 साक्षाद्दैमवतः पुण्यो विमलः कनकाकरः ।  
 ब्राह्मणेषु च यत्कृत्स्नं खं तं कृत्वा धनं महत् ॥ २४ ॥

आकृति, मूर्ति, और तपस्या कुछ भी नहीं मालूम होती है। वे लोग अपनी इच्छाके अनुसार सहस्रों प्रकारका परिवर्तन भोग करते हैं। जो मनुष्य उन लोगोंकी रक्षित इस गंगाद्वारको लांघकर किसी मार्गसे प्रवेश करता है, वह वहीं-पर मर जाता है। (१५-१९)

अविनाशी नारायणदेव और विष्णु-के अतिरिक्त और कोई किसी समयमें वहांपर जानेमें समर्थ नहीं होता। हे गालव ! इसी दिशामें धनके स्वामी कुबेरके अधिकारमें उंचा कैलासपर्वतका शिखर विराजमान है। इसी स्थानमें विद्युत्प्रभा नाम दश अप्सराओंका जन्म हुआ था। वामन अवतारमें जब भग-

वान् विष्णुने अपने तीन चरणसे तीनों लोकोंको नाप लिया था, उस समय इस उत्तर दिशामें एक पद रखनेसे वहांपर विष्णु पदके नामसे एक महा उत्तम तीर्थकी उत्पत्ति हुई है। १९-२२

मरुत् नाम किसी राजाने इस उत्तर दिशामें, जिस स्थानपर जाम्बूनद सुवर्ण सरोवर है वहांपर उशीरबीजाख्य स्थानमें एक महायज्ञ किया था। यहीं-पर जीमूत नामक महात्मा विप्रर्षिके सम्मुख हिमालय पर्वतका निर्मल और शुद्ध सुवर्णका स्थान प्रकाशित हुआ था। उस महर्षिने सम्पूर्ण धन ब्राह्मणों-को दान करके उनसे अपना नाम विख्यात करानेके निमित्त प्रार्थना की

वत्रे धनं महर्षिः स जैमूतं तद्धनं ततः ।  
 अत्र नित्यं दिशां पालाः सायंप्रातर्द्विजर्षभ ॥ २५ ॥  
 कस्य कार्यं किमिति वै परिक्रोशन्ति गालव ।  
 एवमेषा द्विजश्रेष्ठ गुणैरन्यैर्दिगुत्तरा ॥ २६ ॥  
 उत्तरेति परिख्याता सर्वकर्मसु चोत्तरा ।  
 एता विस्तरशस्तात तव सङ्कीर्तिता दिशः ॥ २७ ॥  
 चतस्रः क्रमयोगेन कामाशां गन्तुमिच्छसि ।  
 उद्यतोऽहं द्विजश्रेष्ठ तव दर्शयितुं दिशः ।  
 पृथिवीं चाऽखिलां ब्रह्मस्तस्मादारोह मां द्विज ॥ २८ ॥ [३७४१]

इति श्रीमहाभारते • उद्योगपर्वणि भगवद्गीतानपर्वणि गालवचरिते एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

गालव उवाच— गरुत्मन्भुजगेन्द्रारे सुपर्ण विनतात्मज ।  
 नय मां तार्क्ष्य पूर्वेण यत्र धर्मस्य चक्षुषी ॥ १ ॥  
 पूर्वमेतां दिशं गच्छ या पूर्वं परिकीर्तिता ।  
 देवतानां हि सान्निध्यमत्र कीर्तितवानसि ॥ २ ॥  
 अत्र सत्यं च धर्मश्च त्वया सम्यक्प्रकीर्तितः ।

थी; इससे वह धन जैमूत कहके प्रसिद्ध हुआ है । हे गालव ! दिक्पाल लोग इसी स्थानपर दोनों सन्ध्याके समय "किसका क्या कार्य है? कहो" ऐसा कहके ऊंचे स्वरसे पुकारा करते हैं। २२-२६ हे द्विजश्रेष्ठ ! यह उत्तर दिशा उक्त रूप तथा दूसरे बहुतसे गुणोंमें सब दिशाओंसे श्रेष्ठ है । सब विषयोंमें मुख्य होनेसे इसका नाम उत्तर प्रसिद्ध हुआ है । हे भ्राता ! चारों दिशाओंके सम्पूर्ण वृत्तान्तोंका मैंने तुम्हारे समीप क्रमसे वर्णन किया, इस समय तुम कौन दिशामें गमन करनेकी इच्छा करते हो ? तुमको सब दिशा और समस्त पृथ्वीके

दर्शन करानेके निमित्त मैं अत्यन्त ही आतुर हो रहा हूँ; इससे तुम हमारी पीठपर शीघ्र ही चढो । (२६-२८) ३७४१ उद्योगपर्वमें एकसौ ग्यारह अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ बारह अध्याय ।

गालव मुनि बोले, हे गरुड ! हे विनताके आनन्द बढानेवाले ! हे सपोंके शत्रु पक्षीराज ! जहाँपर धर्मके दोनों नेत्र खुले हैं, उसी पूर्व दिशामें मुझे ले चलो । तुमने सबसे पहिले जिसका वर्णन किया, और "देवता लोग उसी स्थानपर विराजमान हैं" कहकर जिसका गुण कहा है, उसी दिशामें चलो । "जहाँपर सत्य और धर्मका पूर्ण निवास

इच्छेयं तु समागन्तुं समस्तैर्देवतैरहम् ।  
 भूयश्च तान्सुरान्द्रष्टुमिच्छेयमरुणानुज ॥ ३ ॥

नारद उवाच— तस्माह विनतासूनुरारोहस्वेति वै द्विजम् ।  
 आरुरोहाऽथ स मुनिर्गरुडं गालवस्तदा ॥ ४ ॥

गालव उवाच— क्रममाणस्य ते रूपं दृश्यते पन्नगाशन ।  
 भास्करस्येव पूर्वाह्णे सहस्रांशोर्विष्वतः ॥ ५ ॥

पक्षवातप्रणुन्नानां वृक्षाणामनुगामिनाम् ।  
 प्रस्थितानामिव स्रवं पश्यामीह गतिं खग ॥ ६ ॥

ससागरवनामुर्वी सशैलवनकाननाम् ।  
 आकर्षन्निव चाऽऽभासि पक्षवातेन खेचर ॥ ७ ॥

सञ्जीननागनक्रं च खमिवाऽऽरोप्यते जलम् ।  
 वायुना चैव महता पक्षवातेन चाऽनिशम् ॥ ८ ॥

तुल्यरूपाननान्मत्स्यांस्तथा तिमितिमिङ्गिलान् ।  
 नागाश्वनरवक्त्रांश्च पश्याम्युन्मथितानिव ॥ ९ ॥

महार्णवस्य च रवैः श्रोत्रे मे बधिरे कृते ।

है, "यह तुमने स्पष्टरूपमें कहा है और सब देवताओंके सङ्ग मिलनेकी भी मेरी इच्छा है। हे गरुड ! इससे देवताओंके दर्शन करनेकी मेरी इच्छा तुम पूर्ण करो । ( १-३ )

नारद मुनि बोले, विनतापुत्र गरुड उस ब्राह्मणसे बोले, "मेरी पीठपर चढो" ऐसा कहनेपर गालव मुनि उसी समय उनके उपर चढे और चलते चलते कहने लगे। हे सापोंके शत्रु ! प्रातःकाल सहस्र किरणको धारण करनेवाले सूर्यका जैसा रूप दीख पडता है; प्रस्थान करनेके समय तुम्हाराभी उसी प्रकार रूप दीखता है। हे पक्षियोंके राजा ! तुम्हारे चलनेका वेग ऐसा मालूम होता है, कि महा

प्रबल पङ्क्तोंके वायुसे प्रेरित होकर ये सब वृक्ष हमारे अनुगामी होके साथही साथ चले जाते हैं। केवल वृक्षही क्यों, समुद्रके सम्पूर्ण जल, पर्वत, वन और बगीचोंसे युक्त जैसे समस्त पृथ्वीको तुम अपने पंखोंके वायुसे आकर्षित किये चलते हो । ( ४-७ )

तुम्हारे पक्षोंकी वायुके झकीरेसे मगरमच्छसे युक्त समुद्रका जल जैसे आकाशतक चला जाता हो। बहुतसे मच्छ, मगर और मनुष्यके मुखके आकारके समान नाग आदि सब जलजन्तु मानो मथित हो रहे हैं। हे पक्षिराज ! समुद्रके तरङ्गोंका भयङ्कर शब्द सुनकर



न शृणोमि न पश्यामि नाऽऽत्मनो वेद्मि कारणम् ॥ १० ॥  
 शनैः स तु भवान्यातु ब्रह्मबध्यामनुस्मरन् ।  
 न दृश्यते रविस्तात न दिशो न च खं खग ॥ ११ ॥  
 तम एव तु पश्यामि शरीरं ते न लक्षये ।  
 मणी व जात्यौ पश्यामि चक्षुषी तेऽहमण्डज ॥ १२ ॥  
 शरीरं तु न पश्यामि तव चैवाऽऽत्मनश्च ह ।  
 पदे पदे तु पश्यामि शरीरादग्निसुत्थितम् ॥ १३ ॥  
 स मे निर्वाप्य सहसा चक्षुषी शाम्यते पुनः ।  
 तन्निघच्छ महावेगं गमने विनतात्मज ॥ १४ ॥  
 न मे प्रयोजनं किञ्चिद्गमने पन्नगाशन ।  
 सन्निवर्त महाभाग न वेगं विषहामि ते ॥ १५ ॥  
 गुरवे संश्रुतानीह शतान्यष्टौ हि बाजिनाम् ।  
 एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां चन्द्रवर्चसाम् ॥ १६ ॥  
 तेषां चैवाऽपवर्गाय मार्गं पश्यामि नाऽण्डज ।

मेरे कान बधिर हुए जाते हैं; न मैं सुनता, न देखता और न अपने प्रयोजनको निश्चित कर सकता हूँ। मेरी इन्द्रियां शिथिल हुई जाती हैं। इससे हे भ्राता! ब्रह्महत्या न होवे, ऐसा विचार कर धीरे धीरे गमन करो। (८-११)

तुमसे अधिक क्या कहूँगा, सूर्य तथा आकाश-मण्डलकी ओर भी मुझसे नहीं देखा जाता है; मुझको सब दिशाओंमें केवल अन्धकार ही दीख पड़ता है। ऐसा क्या? तुम्हारा यह शरीर भी मुझे नहीं दीख पड़ता है; केवल उत्तम माणिकी भांति यह दोनों नेत्र दीख पड़ते हैं। तुम्हारे शरीरकी बात तो दूर है, मैं अपना शरीर भी नहीं

देख सकता हूँ। मेरे शरीरसे अग्नि निकल रही है पदपद पर यही देख रहा हूँ। इससे हे विनतानन्दन! शीघ्र ही अपनी दोनों आखें मूंदकर मेरे शरीरकी अग्नि बुझाओ। तुम अपना यह वेग रोकके मेरा निस्तार करो। (११-१४)

हे पन्नगनाशन! मुझे चलनेकी अब कुछ भी इच्छा नहीं है, तुम शीघ्र ही निवृत्त होजाओ; तुम्हारा यह वेग अब किसी प्रकारसे नहीं सहा जाता है। मैंने चन्द्रमाके समान सफेद और एक ओर श्याम कर्णसे युक्त ऐसे आठ सौ घोड़ोंके प्रदान करनेकी प्रतिज्ञा की थी; उससे निस्तार पानेका अब कोई मार्ग नहीं देखता हूँ। केवल



ततोऽयं जीवितत्यागे दृष्टो मार्गो मयाऽऽत्मनः ॥ १७ ॥

नैव मेऽस्ति धनं किञ्चिन्न धनेनाऽन्वितः सुहृत् ।

न चाऽर्थेनाऽपि महता शक्यमेतद्व्यपोहितुम् ॥ १८ ॥

नारद उवाच— एवं बहु च दीनं च ब्रुवाणं गालवं तदा ।

प्रत्युवाच ब्रजन्नेव प्रहसन्विनतात्मजः ॥ १९ ॥

नाऽतिप्रज्ञोऽसि विप्रर्षे योऽऽत्मानं त्यक्तुमिच्छसि ।

न चापि कृत्रिमः कालः कालो हि परमेश्वरः ॥ २० ॥

किमहं पूर्वमेवेह भवता नाऽभिचोदितः ।

उपायोऽत्र महानस्ति येनैतदुपपद्यते ॥ २१ ॥

तदेष ऋषभो नाम पर्वतः सागरान्तिके ।

अत्र विश्रम्य भुक्त्वा च निवर्तिष्याव गालव ॥ २२ ॥ [३७६३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्भानुपर्वणि

गालवचरिते द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

नारद उवाच— ऋषभस्य ततः शृङ्गं निपत्य द्विजपक्षिणौ ।

शाण्डिलीं ब्राह्मणीं तत्र ददृशाते तपोन्विताम् ॥ १ ॥

प्राणको त्याग करना ही एक मात्र उसका उपाय दीख पड़ता है; क्योंकि मेरे कुछ धन भी नहीं और कोई धनवान पुरुष मेरा मित्र भी नहीं है; बहुतसा धन होनेपर भी उस प्रतिज्ञासे निस्तार पाना बहुत कठिन है । (१९-२८)

नारद मुनि बोले, विनतानन्दन गरुड गालवके ऐसे कातर वचनोंको सुनकर भी चलनेसे न रुके; और हंस कर उनसे कहने लगे, हे विप्रर्षि ! तुम जब अपने प्राणोंके त्यागनेकी अभिलाषा करते हो, तब तुम अच्छे बुद्धिमान नहीं मालूम होते हो; क्योंकि मृत्यु कभी इच्छाके अनुसार नहीं होती;

मृत्यु साक्षात् परमेश्वरका रूप है । तुम यदि ऐसे ही कातर होनेवाले थे, तो पहिले मुझको क्यों न निषेध किया ? जो हो, तुम्हारे प्रयोजनके सिद्ध होनेका एक बहुत बड़ा उपाय यह है, कि समुद्रके निकटहींमें ऋषभ नामक यह जो पर्वत है; यहांपर विश्राम और भोजन करके निवृत्त होजाओ । (१९-२२)

उद्योगपर्वमें एकसौ बारह अध्याय समाप्त ॥ ३७६३

उद्योगपर्वमें एकसौ तेरह अध्याय ।

नारद मुनि बोले, इसके अनन्तर गालव मुनि और पक्षिराज गरुड दोनोंने ऋषभ पर्वतपर पहुंचकर देखा, कि वहांपर शाण्डिली नाम्नी ब्राह्मणी तपस्या

अभिवाद्य सुपर्णस्तु गालवश्चाऽभिपूज्य ताम् ।

तथा च स्वागतेनोक्तौ विष्टरे सन्निषीदतुः ॥ २ ॥

सिद्धमन्नं तथा दत्तं बलिमन्त्रोपवृंहितम् ।

भुक्त्वा तृप्तावुभौ भूमौ सुप्तौ तावन्मोहितौ ॥ ३ ॥

मुहूर्त्तात्प्रतिबुद्धस्तु सुपर्णो गमनेप्सया ।

अथ भ्रष्टतनूजाङ्गमात्मानं ददृशे खगः ॥ ४ ॥

मांसपिण्डोपमोऽभूत्स मुखपादान्वितः खगः ।

गालवस्तं तथा दृष्ट्वा विमनाः पर्यपृच्छत ॥ ५ ॥

किमिदं भवता प्राप्तमिहाऽऽगमनजं फलम् ।

वासोऽयमिह कालं तु कियन्तं नौ भविष्यति ॥ ६ ॥

किं नु ते मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम् ।

न ह्ययं भवतः खलपो व्यभिचारो भविष्यति ॥ ७ ॥

सुपर्णोऽथाऽब्रवीद्विप्रं प्रध्यातं वै मया द्विज ।

इमां सिद्धामितो नेतुं तत्र यत्र प्रजापतिः ॥ ८ ॥

कर रही हैं। देखते ही गरुडने उसे प्रणाम किया और गालवने यथा उचित पूजा की। उनने भी इन लोगोंकी कुशल वार्त्ता पूछकर अतिथि सत्कारके अनुसार आसन आदि प्रदान किया। इस प्रकारसे सत्कार पाकर दोनों अतिथियोंके आसनपर बैठनेके अनन्तर, शाण्डिलीने उन लोगोंके निमित्त उत्तम भोजनको तैयार कर दिया उसे भोजन करते ही दोनोंने तृप्त होके, जैसे पृथ्वीके ऊपर शयन किया, वैसे ही अत्यन्तही निद्राके वशमें होगये। (१-३)

बहुत शीघ्रतासे गमन करनेवाले गरुड मुहूर्त्त भरमें निद्रा रहित होगये; परन्तु देखा कि अपने दोनों पङ्ख गिर

पडे हैं; और पांव मुखके सङ्ग लग जाने से वह मांसके पिण्डकी भांति दीखने लगे। गालव मुनि उन्हें उस अवस्थामें देखकर अत्यन्त दुःखित हो बोले, तुम्हें इस स्थानपर आनेसे क्या यही फल मिला है? इस तरहसे रहनेपर मुझको कितने दिनोंतक यहां निवास करना होगा, उसे मैं नहीं कह सकता, तुमने क्या अपने मनमें कुछ अधर्म तथा अशुभ विषयकी चिन्ता की थी? तुम्हारा अवश्यही कोई बड़ा पाप हुआ होगा; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। (४-७)

गालव मुनिके इस वचनको सुनकर गरुड बोले, हे ब्राह्मण! मेरा मानसिक पाप कर्म यही है, कि जिस स्थानपर

यत्र देवो महादेवो यत्र विष्णुः सनातनः ।  
 यत्र धर्मश्च यज्ञश्च तत्रेयं निवसेदिति ॥ ९ ॥  
 सोऽहं भगवतीं याचे प्रणतः प्रियकाम्यया ।  
 मयैतन्नाम प्रध्यातं मनसा शोचता किल ॥ १० ॥  
 तदेवं बहुमानात्ते मयेहाऽनीप्सितं कृतम् ।  
 सुकृतं दुष्कृतं वा त्वं माहात्म्यात्क्षन्तुमर्हसि ॥ ११ ॥  
 सा तौ तदाऽब्रवीत्पुष्टा पतगेन्द्रद्विजर्षभौ ।  
 न भेतव्यं सुपर्णोऽसि सुपर्णं त्यज सम्भ्रमम् ॥ १२ ॥  
 निन्दिताऽस्मि त्वया वत्स न च निन्दां क्षमाम्यहम् ।  
 लोकेभ्यः सपदि भ्रष्टेभ्यो मां निन्देत पापकृत् ॥ १३ ॥  
 हीनपाऽलक्षणैः सर्वैस्तथाऽनिन्दितया मया ।  
 आचारं प्रतिगृह्णन्त्या सिद्धिः प्राप्तेयमुत्तमा ॥ १४ ॥  
 आचारः फलते धर्ममाचारः फलते धनम् ।

प्रजापति ब्रह्मा, देवोंके देव महादेव और  
 सनातन विष्णु विराजमान हैं जहांपर  
 धर्म और यज्ञ सदा उपस्थित रहते हैं;  
 उसी पवित्र धाममें ये वास करें, यह  
 विचार कर मैंने इस सिद्धा ब्राह्मणीको  
 वहांपर ले जानेका सङ्कल्प किया था ।  
 जो हो, प्रियकामनाके निमित्त विनीत  
 भावसे भगवतीके समीप प्रार्थना करता  
 हूं । हे महाभागो ! मैंने अज्ञानके कारणसे  
 तुम्हारे यहांपर निवास करनेको अनुचित  
 समझा था; और शोकित होकर  
 तुम्हारे अत्यन्त मानके निमित्त ही जो  
 मैंने इस विषयका विचार किया था, वह  
 पुण्य हो, वा पाप; तुम उसे अपने माहात्म्य  
 के गुणके अनुसार क्षमा करो । ( ८-११ )

इस प्रकारकी विनतीको सुनकर

ब्राह्मणी पक्षिराज गरुड और द्विजवर  
 गालवके ऊपर बहुत प्रसन्न होकर उनसे  
 यह वचन बोली, हे गरुड ! तुम मत  
 डरो, तुम शोभायमान पक्ष युक्त हुए,  
 इससे सब शोक और चिन्ताको त्याग  
 दो । हे पुत्र ! तुमने मेरी निन्दा की  
 थी, इसीसे मैं किञ्चित् तुम पर रुष्ट हुई  
 थी; क्योंकि मैं निन्दा सहनकी पात्री  
 नहीं हूं । जो पापी मेरी निन्दा करता  
 है, वह सब लोकोंसे भ्रष्ट हो जाता है ।  
 मैंने सब अलक्षणोंसे रहित और  
 अनिन्दिता होनेसे तथा शुद्ध और पवित्र  
 आचारको करनेहीसे इस प्रकारकी उत्तम  
 सिद्धिको प्राप्त की है । ( १२-१४ )

सदाचाररूपी वृक्षमें धर्म और धन  
 दोनों ही फल लगते हैं शुद्ध आचार

आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १५ ॥  
 तदायुष्मन्स्वगपते यथेष्टं गम्यतामितः ।  
 न च ते गर्हणीयाऽहं गर्हितव्याः स्त्रियः क्वचित् ॥ १६ ॥  
 भावितासि यथा पूर्वं बलवीर्यसमन्वितः ।  
 बभूवतुस्ततस्तस्य पक्षौ द्रविणवत्तरौ ॥ १७ ॥  
 अनुज्ञातस्तु शाण्डिल्या यथागतमुपागमत् ।  
 नैव चाऽऽसादयायास यथारूपांस्तुरङ्गमान् ॥ १८ ॥  
 विश्वामित्रोऽथ तं दृष्ट्वा गालवं चाऽध्वनि स्थितः ।  
 उवाच वदतां श्रेष्ठो वैनतेयस्य सन्निधौ ॥ १९ ॥  
 यस्त्वया स्वयमेवाऽर्थः प्रतिज्ञातो मम द्विज ।  
 तस्य कालोऽपवर्गस्य यथा वा मन्यते भवान् ॥ २० ॥  
 प्रतीक्षिष्याम्यहं कालमेतावन्तं तथा परम् ।  
 यथा संसिद्ध्यते विप्र समार्गस्तु निशम्यताम् ॥ २१ ॥  
 सुपर्णोऽथाऽब्रवीद्दीनं गालवं श्रुशुभ्रितम् ।

के करनेसे मनुष्य अवश्य ही लक्ष्मीका  
 लाभ उठा सकते हैं । मैं अधिक बात  
 क्या कहूँगी, सदाचार बुरे लक्षणोंको-  
 नष्ट कर देता है । हे पाक्षिराज गरुड !  
 अब तुम्हारी जहाँ इच्छा होवे, वहाँ  
 जाओ; परन्तु सावधान रहना; कभी  
 निन्दा करने योग्य स्त्रियोंकी भी निन्दा  
 न करना । मेरी कृपासे तुम पहिलेसे  
 अधिक बल और पराक्रमसे युक्त होओ-  
 गे । शाण्डिलीके ऐसा कहनेपर गरुडके  
 पहिले समयसे भी अधिक बलसे युक्त  
 दोनों पक्ष निकल आये । अनन्तर  
 उसकी आज्ञासे गरुडने वहाँसे प्रस्थान  
 किया; परन्तु गालव मुनिकी प्रार्थनाके  
 अनुसार घोड़ोंको न पाया । ( १५-१८ )

बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्र मुनिने  
 मार्गमें गालवको देखकर, गरुडके  
 सम्मुख ही उनसे यह पूछा, हे ब्रह्मन् !  
 तुमने मुझको अर्थ प्रदान करनेकी जो  
 स्वयं प्रतिज्ञा की थी, मेरे विचारमें उस-  
 को पूर्ण करनेका तो यही समय उपस्थि-  
 त हुआ है; इस समय तुम्हारे विचारमें  
 क्या है, मैं नहीं कह सकता हूँ । मैं  
 इतने दिनोंमें तुम्हारी आशा देख रहा  
 हूँ, और भी कुछ समयतक देखूँगा  
 इससे जिस प्रकारसे वह सिद्ध हो, तुम  
 उसीका मार्ग ढूँढो । ( १९-२१ )

इस वचनको सुनकर गालव मुनि  
 अत्यन्त ही दुःखित और कातर हुए,  
 उन्हें इस प्रकारसे देखकर गरुड बोले,

प्रत्यक्षं खल्विदानीं मे विश्वामित्रो यदुक्तवान् ॥२२॥

तदागच्छ द्विजश्रेष्ठ मन्त्रयिष्याव गालव ।

नाऽदत्त्वा गुरवे शक्यं कृत्स्नमर्थं त्वयाऽऽसितुम् २३ ॥ [३७८६]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि गालवचरिते त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

नारद उवाच — अथाऽऽह गालवं दीनं सुपर्णः पततां वरः ।

निर्मितं वह्निना भूमौ वायुना शोधितं तथा ।

यस्माद्विरण्मयं सर्वं हिरण्यं तेन चोच्यते ॥ १ ॥

धत्ते धारयते चेदमेतस्मात्कारणाद्धनम् ।

तदेतत्त्रिषु लोकेषु धनं तिष्ठति शाश्वतम् ॥ २ ॥

नित्यं प्रोष्ठपदाभ्यां च शुक्रे धनपतौ तथा ।

मनुष्येभ्यः समादत्ते शुक्रश्चित्तार्जितं धनम् ॥ ३ ॥

अजैकपादहिरुध्न्यै रक्ष्यते धनदेन च ।

एवं न शक्यते लब्धुमलब्धयं द्विजर्षभ ।

ऋते च धनमश्वानां नाऽवाप्तिर्विद्यते तव ॥ ४ ॥

हे द्विजसत्तम गालव ! विश्वामित्रने तुम्हें पहिले जो वचन कहा था, वह इस समय में मुझको प्रत्यक्ष दीख पड़ा, इससे आओ इस विषयमें एक उत्तम विचार करें; गुरु को विना दाक्षिणा दिये तुम्हारी बैठनेकी भी शक्ति नहीं है । (२२-२३) [३७८६]

उद्योगपर्वमें एकसौ तेरह अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ चौदह अध्याय ।

नारद मुनि बोले, पक्षिराज गरुड दुःखित गालव मुनिसे कहने लगे । हे द्विज श्रेष्ठ ! धन हिरण्यरेता अग्निसे पृथ्वीमें उत्पन्न होकर वायुसे बढ़ता रहता है, इसीसे सम्पूर्ण जगत् हिरण्य प्रधान धनको “ हिरण्य ” शब्दसे पुकारता है । धनसे सब जगत्का

पालन, पोषण और जीवनधारण होता है; इसी कारणसे उसे “ धन ” कहते हैं । इससे संसारके सब कार्योंको नि-  
बाहनेके वास्ते वह धन सदा तीनों लोकके बीच विद्यमान है । पूर्व भाद्रप-  
द और उत्तर-भाद्रपद नक्षत्रोंसे युक्त शुक्रवारके दिन अग्नि देवता इच्छाके अनुसार अपने उपार्जित धन मनुष्योंको दान करते हैं; परन्तु उस धनकी अजै-  
कपात्, अहिरुध्न्य, कुबेर आदि देवता रक्षा करते हैं, इसलिये दुःखसे प्राप्त होनेवाले धनको पाना बहुत ही कठिन है । परन्तु विना धनके घोड़ोंका पाना भी किसी प्रकारसे सम्भव नहीं होता है । ( १—४ )

स त्वं याचाऽत्र राजानं कश्चिद्राजर्षिवंशजम् ।  
 अपीडय राजा पौरान्हि यो नौ कुर्यात्कृतार्थिनौ ॥५॥  
 अस्ति सोमान्ववाये मे जातः कश्चिन्नृपः सखा ।  
 अभिगच्छावहे तं वै तस्याऽस्ति विभवो भुवि ॥ ६ ॥  
 ययातिर्नाम राजर्षिर्नाहुषः सत्यविक्रमः ।  
 स दास्यति मया चोक्तो भवता चाऽर्थितः स्वयम् ॥७॥  
 विभवश्चाऽस्य सुमहानासीद्धनपतेरिव ।  
 एवं गुरुधनं विद्वन्दानेनैव विशोधय ॥ ८ ॥  
 तथा तौ कथयन्तौ च चिन्तयन्तौ च यत्क्षमम् ।  
 प्रतिष्ठाने नरपतिं ययातिं प्रत्युपास्थितौ ॥ ९ ॥  
 प्रतिगृह्य च सत्कारैरर्घ्यपाद्यादिकं वरम् ।  
 पृष्टश्चाऽऽगमने हेतुमुवाच विनतासुतः ॥ १० ॥  
 अयं मे नाहुष सखा गालवस्तपसो निधिः ।  
 विश्वामित्रस्य शिष्योऽभूद्रर्षाण्ययुतशो नृप ॥ ११ ॥  
 सोऽयं तेनाऽभ्यनुज्ञात उपकारेप्सया द्विजः ।

हे ब्रह्मन् ! जो तुम्हारे कार्यको सिद्ध  
 कर सके, ऐसे किसी धर्मात्मा राजाके  
 पास जाकर तुम गुरुको देनेके निमित्त  
 धन मांगो । चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुए एक  
 धर्मात्मा राजा मेरे मित्र हैं, चलो उन्हीं-  
 के पास अधिक धन है । वह राजर्षि  
 नहुषके पुत्र हैं, और उनका नाम  
 ययाति है, साक्षात् धनके स्वामी कुबेरके  
 समान उनके ऐश्वर्यकी सीमा नहीं है ।  
 मेरे अनुरोध और तुम्हारी प्रार्थनासे वह  
 अवश्य ही तुम्हारी इच्छाके अनुसार  
 धन देंगे । हे विद्वन् ! उसे देकर ही  
 तुम गुरुके ऋणसे मुक्त हो सकोगे । ५-८  
 गरुड और गालव मुनि आपसमें

ऐसा विचार करके प्रतिष्ठानपुरमें राजा  
 ययातिके समीप आके उपस्थित हुए । रा-  
 जा ययातिने उन लोगोंको देखकर पाद्य,  
 अर्घ्य और आसन प्रदान करके उनके  
 आनेका कारण पूछा । गरुडने उनसे  
 सत्कार पाकर यह वचन कहा । हे मित्र  
 ययाति ! यह तपस्वी ब्राह्मण मेरे प्राण-  
 के समान मित्र हैं, उनका नाम गालव  
 मुनि है । दस हजार वर्षतक यह विश्वा-  
 मित्रके शिष्य थे । ( ९-११ )

उस महा तपस्वी महर्षिने जब इन्हें  
 घर जानेके निमित्त आज्ञा दी, तब  
 गुरुके उपकार करनेकी इच्छासे इन्होंने  
 उनसे यह वचन कहा; “ हे भगवन् !

तस्माद् भगवान्काले ददानि गुरुदक्षिणाम् ॥ १२ ॥

असकृत्तेन चोक्तेन किञ्चिदागतमन्युना ।

अयमुक्तः प्रयच्छेति जानता विभवं लघु ॥ १३ ॥

एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां शुद्धजन्मनाम् ।

अष्टौ शतानि मे देहि हयानां चन्द्रवर्चसाम् ॥ १४ ॥

गुर्वर्धो दीयतामेष यदि गालव मन्यसे ।

इत्येवमाह सक्रोधो विश्वामित्रस्तपोधनः ॥ १५ ॥

सोऽयं शोकेन महता तप्यमानो द्विजर्षभः ।

अशक्तः प्रतिकर्तुं तद्भवन्तं शरणं गतः ॥ १६ ॥

प्रतिगृह्य नरव्याघ्र त्वत्तो भिक्षां गतव्यथः ।

कृत्वाऽपवर्गं गुरवे चरिष्यति महत्तपः ॥ १७ ॥

तपसः संविभागेन भवन्तमपि योक्ष्यते ।

स्वेन राजर्षितपसा पूर्णं त्वां पूरयिष्यति ॥ १८ ॥

यावन्ति रोमाणि हये भवन्तीह नरेश्वर ।

तावन्तो वाजिनो लोकान्प्राप्नुवन्ति महीपते ॥ १९ ॥

पात्रं प्रतिग्रहस्याऽयं दातुं पात्रं तथा भवान् ।

यदि आपकी आज्ञा हो, तो कुछ गुरु-दक्षिणा प्रदान करूं। इसके बहुत थोड़ा धन है, इस बातको विश्वामित्र जानते थे। इससे इन्होंने बार बार गुरुदक्षिणा देनेको कहा, तब कुछ क्रोधमें भरकर बोले, कि “मुझको चन्द्रमाके समान सफेद और श्यामकर्ण आठ सौ घोड़े दो। हे गालव! यदि गुरुदक्षिणा देनेकी इच्छा है, तो यही धन दान करो।” (१२-१५)

तपस्वी विश्वामित्रने जब क्रोधमें भरकर ऐसी आज्ञा की, तब गालव मुनि बहुत ही शोकित और दुःखित होकर चिन्ता करने लगे; उसको पूर्ण

करनेमें सब प्रकारसे शक्तिहीन होकर इस समय तुम्हारी शरणमें आये हैं। हे नर-व्याघ्र। इनकी यही अभिलाषा है, कि तुम्हारे निकटमें भिक्षा मांगकर, गुरु-दक्षिणा देके, शोकसे रहित होकर स्थिर चित्तसे तपका अनुष्ठान करें। हे प्रजानाथ! तुम राजर्षि हो, निज तपस्यासे पूर्ण होनेपर भी गालव मुनि अपनी-तपस्याका अंश देकर तुम्हें और भी अधिक पूर्ण करेंगे। सुना जाता है, कि घोड़ेके शरीर पर जितने रोंएं रहते हैं; घोड़ेको दान करनेवाले मनुष्य उतनी ही संख्याके लोकोंको पाते हैं। हे पृथ्वी-

शङ्खे क्षीरमिवाऽऽसक्तं भवत्वेतत्तथोपमम् ॥ २० ॥ [३८०६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि

गालवचरिते चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

नारद उवाच— एवमुक्तः सुपर्णेन तथ्यं वचनमुत्तमम् ।  
 विमृश्याऽवहितो राजा निश्चिन्त्य च पुनः पुनः ॥ १ ॥  
 यष्टा क्रतुसहस्राणां दाता दानपतिः प्रभुः ।  
 ययातिः सर्वकाशीश इदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥  
 दृष्ट्वा प्रियसखं तार्क्ष्यं गालवं च द्विजर्षभम् ।  
 निदर्शनं च तपसो भिक्षां श्लाघ्यां च कीर्तिताम् ॥ ३ ॥  
 अतीत्य च नृपानन्यानादित्यकुलसम्भवान् ।  
 मत्सकाशमनुप्राप्तावेतां बुद्धिमवेक्ष्य च ॥ ४ ॥  
 अद्य मे सफलं जन्म तारितं चाऽद्य मे कुलम् ।  
 अद्याऽयं तारितो देशो मम तार्क्ष्यं त्वयाऽनघ ॥ ५ ॥  
 वक्तुमिच्छामि तु सखे यथा जानासि मां पुरा ।  
 न तथा वित्तवानस्मि क्षीणं वित्तं च मे सखे ॥ ६ ॥

नाथ ! यह भी दान लेनेके योग्य पात्र हैं  
 और तुम भी दान करनेके योग्य हो इससे  
 तुम्हारे इस दान शंखमें रखे हुए क्षीर की  
 उपमाके समान होगी । ( १६-२० )

उद्योगपर्वमें एकसौ चौदह अध्याय समाप्त । ३८०६

उद्योगपर्वमें एकसौ पन्द्रह अध्याय ।

नारद मुनि बोले, हजार यज्ञको  
 करनेवाले, महादानी, सब प्रकारके तेजसे  
 युक्त, राजाओंमें अग्रगामी, महापरा-  
 क्रमी राजा ययातिने, गरुडके इस उत्तम  
 वचनको सुनकर बहुत समयतक अपने  
 मनमें विचार और निश्चय किया, विशेष  
 करके अपने प्यारे मित्र गरुड और  
 द्विजश्रेष्ठ गालव मुनिको देख और

उनके तपस्याके वृत्तान्त तथा सराहने  
 योग्य भिक्षाका समाचार सुनकर यह  
 निश्चय किया, “सूर्यवंशीय दूसरे  
 राजाओंको त्याग कर ये लोग जो मेरे  
 ही निकटमें आये हैं, यह कुछ मेरे कम  
 भाग्यका विषय नहीं है ।” ऐसा विचार  
 कर राजा ययाति बोले, हे पक्षिराज !  
 आज मेरा जन्म सफल हुआ; हे पाप-  
 रहित ! तुमने आज मेरे कुल और  
 देशको पवित्र किया है । ( १—५ )

हे मित्र ! इस समय मैं तुमसे अपना  
 वृत्तान्त कहनेकी इच्छा करता हूँ; पहिले  
 तुम मुझे जैसा धनवान् समझते थे,  
 अब वह बात नहीं है । मेरा खजाना इस



न च शक्तोऽस्मि ते कर्तुं मोघमागमनं खग ।  
 न चाऽऽशामस्य विप्रर्षेर्वितथीकर्तुमुत्सहे ॥ ७ ॥  
 तत्तु दास्यामि यत्कार्यमिदं सम्पादयिष्यति ।  
 अभिगम्य हताशो हि निवृत्तो दहते कुलम् ॥ ८ ॥  
 नाऽतः परं वैनतेय किञ्चित्पापिष्ठमुच्यते ।  
 यथाऽऽशानाशनाल्लोके देहि नाऽस्तीति वा वचः ॥ ९ ॥  
 हताशो ह्यकृतार्थः सन्हतः सम्भावितो नरः ।  
 हिनस्ति तस्य पुत्रांश्च पौत्रांश्चाऽकुर्वतो हितम् ॥ १० ॥  
 तस्माच्चतुर्णां वंशानां स्थापयित्री सुता मम ।  
 इयं सुरसुतप्रख्या सर्वधर्मोपचायिनी ॥ ११ ॥  
 सदा देवमनुष्याणामसुराणां च गालव ।  
 कांक्षिता रूपतो बाला सुता मे प्रतिगृह्यताम् ॥ १२ ॥  
 अस्याः शुल्कं प्रदास्यन्ति नृपा राज्यमपि ध्रुवम् ।  
 किं पुनः श्यामकर्णानां हयानां द्वे चतुःशते ॥ १३ ॥

समय खाली होगया है; तौ भी मैं तुम्हारे आगमनको व्यर्थ नहीं कर सकता हूँ; विशेष करके इस तपस्वी ब्राह्मणकी आशाको निष्फल करनेमें मुझे किसी प्रकारसे भी उत्साह नहीं होता है; इस से जिसमें इनका कार्य सिद्ध होगा, उसे मैं अवश्य ही करूंगा। विचार कर देखो, यदि अतिथि ब्राह्मण याचना करने पर आशाहीन होकर लौट जाता है, तो निश्चय ही कुल भरको भस्म कर देता है। (६-८)

हे गरुड ! कोई पुरुष “ दीजिये ” ऐसा कहकर जब भीख मांगता है; तब उसकी आशाको नाश करनेके निमित्त “ नहीं है ” इस वचनको कहनेकी

अपेक्षा दूसरा बड़ा पाप कर्म और नहीं है। वह उपायसे रहित याचक अपनी प्रार्थना के नाश होनेपर आशा रहित होकर, प्रार्थना पूरी न करनेवाले पुरुषके पुत्र, पौत्र आदि सबको नष्ट कर देता है। (९-१०)

हे गालव मुनि ! इससे आप चार वंशको स्थापन करनेवाली, सब धर्मोंको जाननेवाली, देवकन्याके समान मेरी इस कुमारी कन्याको ग्रहण कीजिये ! इसके असाधारण रूपको देखकर देवता मनुष्य और असुर आदि सदा ही इसके पानेकी इच्छा करते हैं। आठ सौ श्याम-कर्ण घोड़ोंकी क्या बात है, इसके सङ्ग विवाह करनेके निमित्त राजा लोग अपने राज्य पर्यन्तको दे सकते हैं;

स भवान्प्रतिगृह्णातु समैतां माधवीं सुताम् ।

अहं दौहित्रवान्स्यां वै वर एष मम प्रभो ॥ १४ ॥

प्रतिगृह्य च तां कन्यां गालवः सह पक्षिणा ।

पुनर्द्रक्ष्याव इत्युक्त्वा प्रतस्थे सह कन्यया ॥ १५ ॥

उपलब्धमिदं द्वारमश्वानामिति चाऽण्डजः ।

उक्त्वा गालवमावृच्छय जगाम भवनं स्वकम् ॥ १६ ॥

गते पतगराजे तु गालवः सह कन्यया ।

चिन्तयानः क्षमं दाने राज्ञां वै शुत्कतोऽगमत् ॥ १७ ॥

सोऽगच्छन्मनसेक्ष्वाकुं हर्यश्वं राजसत्तमम् ।

अयोध्यायां महावीर्यं चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ १८ ॥

कोशधान्यबलोपेतं प्रियपौरं द्विजप्रियम् ।

प्रजाभिकामं शाम्यन्तं कुर्वाणं तप उत्तमम् ॥ १९ ॥

तमुपागम्य विप्रः स हर्यश्वं गालवोऽब्रवीत् ।

कन्येयं सध्व राजेन्द्र प्रसवैः कुलवर्धिनी ॥ २० ॥

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे द्विज-सत्तम ! इससे तुम मेरी इस माधवी नाम्नी कन्याको ग्रहण करो। मैं भी दौहित्रवान् होऊँ, यही मेरी इच्छा है। (११-१४)

राजा ययातिके वचनको सुनकर गालव मुनिने उनकी कन्याको ग्रहण करके कहा, कि “मैं फिर आपसे मिलूँगा” ऐसा कहकर पक्षिराज गरुड और गालव कन्याके सहित वहाँसे चले। गरुड भी “अब तो तुम्हारे घोड़ोंको पानेका उपाय प्राप्त हुआ है।” ऐसा कहकर अपने स्थानपर चले गए। अनन्तर गालव मुनि कन्याके सहित दान देने योग्य राज्योंमें भ्रमण

करने लगे। (१५-१७)

पहिले उन्होंने इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए राजसत्तम हर्यश्वके समीपमें जाने-का निश्चय किया। महाबल, पराक्रम, चतुरङ्गिणी सेना, और धन धान्यसे युक्त प्रजावत्सल महाराज हर्यश्व अयोध्याके राजा थे। ब्राह्मणोंकी इच्छाको पूरी करनेवाले राजा हर्यश्व शान्ति अवलम्बन करके पुत्रकी कामनासे सदा उत्तम तपस्यामें लगे हुए थे। ब्राह्मण श्रेष्ठ गालव मुनिने उनके समीपमें जाकर कहा, हे राजेन्द्र ! अनेक पुत्रोंको प्रसव करने तथा कुलको बढाने वाली हमारी इस उत्तम लक्ष्णोंसे युक्त कन्याको धनके पलट्टेमें लेकर अपनी

इयं शुल्केन भार्यार्थं हर्यश्वं प्रतिगृह्यताम् ।

शुल्कं ते कीर्तयिष्यामि तच्छ्रुत्वा सम्प्रधार्यताम् २१ [३८२७]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि गालवचरिते पंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

नारद उवाच— हर्यश्वस्त्वब्रवीद्राजा विचिन्त्य बहुधा ततः ।

दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य प्रजाहेतोर्नृपोत्तमः ॥ १ ॥

उन्नतेषून्नता षट्सु सूक्ष्मा सूक्ष्मेषु सप्तसु ।

गम्भीरा त्रिषु गम्भीरेष्वियं रक्ता च पञ्चसु ॥ २ ॥

बहुदेवासुरालोका बहुगन्धर्वदर्शना ।

बहुलक्षणसम्पन्ना बहुप्रसवधारिणी ॥ ३ ॥

समर्थेयं जनायितुं चक्रवर्तिनमात्मजम् ।

ब्रूहि शुल्कं द्विजश्रेष्ठ समीक्ष्य विश्वं मम ॥ ४ ॥

गालव उवाच— एकतः श्यामकर्णानां शतान्यष्टौ प्रयच्छ मे ।

भार्या कीजिए । हे हर्यश्व ! जिस प्रकारका धन देना होगा, वह मैं तुमसे कहता हूँ; उसे सुनकर जैसा करना तुम्हें उचित हो, उसका निश्चय करो ॥ (१८—२१)

उद्योगपर्वमें एकसौ पन्द्रह अध्याय समाप्त ॥ ३८२७

उद्योगपर्वमें एकसौ सोलह अध्याय ।

नारद मुनि बोले, राजाओंमें श्रेष्ठ हर्यश्व गालवमुनिके ऊपर कहे हुए वचनको सुनकर पुत्रके निमित्त लम्बी और गर्म सांस लेते हुए अनेक प्रकार सोच विचारकर यह वचन बोले, तुम्हारी यह कन्या सब लक्षणोंसे युक्त है; अंगूठे, हथेली, पांवके तलवे, नितम्ब, स्तन और पांवके नख इन जो छः स्थानोंके ऊंचे होनेका शास्त्रमें विधान है; इसके यह सब स्थान ठीक वैसे ही हैं; दोनों हाथ, पांव, नख,

केश, और त्वचा यह सात सूक्ष्म होनेके स्थान सूक्ष्म भी हैं । नाभि, बुद्धि और वचन यह तीनों गम्भीर होनेवाले पदार्थ गम्भीर भी हैं । दोनों पांवोंके तलवे, दोनों हथेलियां और शरीर इसके ये पांचों स्थान लालवर्णके भी हैं । अनेक लक्षणोंसे युक्त होनेसे ऐसा बोध होता है, कि यह अनेक देव तथा असुरोंके भी दर्शन करनेके योग्य नहीं है; संगीत आदि गन्धर्व विद्यामें निपुण और अनेक पुत्रोंको प्रसव करनेवाली होगी; ऐसा क्या चक्रवर्ती पुत्रभी इच्छा करनेसे उत्पन्न कर सकेगी, इससे हे द्विजवर ! मेरी शक्ति तथा धनका विचार करके कदिये क्या धन लीजियेगा ? (१-४)

गालव मुनि बोले, प्रसिद्ध देश और

हयानां चन्द्रशुभ्राणां देशजानां वपुष्मताम् ॥ ५ ॥  
 ततस्तव भवित्रीयं पुत्राणां जननी शुभा ।  
 अरणीव हुताशानां योनिरायतलोचना ॥ ६ ॥  
 नारद उवाच— एतच्छ्रुत्वा वचो राजा हर्यश्वः काममोहितः ।  
 उवाच गालवं दीनो राजर्षिर्ऋषिसत्तमम् ॥ ७ ॥  
 द्वे मे शते संनिहिते हयानां यद्विधास्तव ।  
 एष्टन्याः शतशस्त्वन्ये चरन्ति मम वाजिनः ॥ ८ ॥  
 सोऽहमेकमपत्यं वै जनयिष्यामि गालव ।  
 अस्यामेतं भवान्कामं सम्पादयतु मे वरम् ॥ ९ ॥  
 एतच्छ्रुत्वा तु सा कन्या गालवं वाक्यमब्रवीत् ।  
 मम दत्तो वरः कश्चित्केनचिद्ब्रह्मवादिना ॥ १० ॥  
 प्रसूत्यन्ते प्रसूत्यन्ते कन्येव त्वं भविष्यसि ।  
 स त्वं ददस्व मां राज्ञे प्रतिगृह्य हयोत्तमां ॥ ११ ॥  
 नृपेभ्यो हि चतुर्भ्यस्ते पूर्णान्यष्टौ शतानि मे ।  
 भविष्यन्ति तथा पुत्रा मम चत्वार एव च ॥ १२ ॥

उत्तम जातिके उत्पन्न हुए, चन्द्रमाके  
 समान सफेद आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ों  
 को देकर इस कन्याको ग्रहण कीजिये ।  
 ऐसा होनेहीसे यह उत्तम नेत्र और  
 सुन्दर अङ्गवाली कन्या अग्निको उत्पन्न  
 करनेवाली अरणीकी भांति तुम्हारे  
 पुत्रोंको प्रसव करनेवाली होगी । (५-६)

नारद मुनि बोले, काम-मोहित  
 राजर्षि हर्यश्व इस वचनको सुनकर  
 दीन भावसे गालव मुनिसे बोले, हम-  
 रे यहां दूसरी भांतिके सैंकड़ों घोड़े हैं,  
 यह ठीक है; परन्तु जैसे घोड़े तुम  
 चाहते हो, वैसे घोड़े केवल दो सौ मात्र  
 मेरे घुडशालमें उपास्थित हैं । हे गालव !

इससे मैं तुम्हारी कन्यासे केवल एक  
 ही पुत्र उत्पन्न करूंगा, तुम कृपा कर-  
 के मेरी इस कामनाको पूरी  
 करो । (७-९)

हर्यश्वका यह वचन सुनकर वह  
 कन्या गालव मुनिसे बोली, किसी  
 ब्रह्मवादी ऋषिने मुझे यह वरदान दि-  
 या है, कि तुम प्रसव करनेके अनन्तर  
 कन्या ही बनी रहोगी । हे विप्र ! इस-  
 से तुम उत्तम घोड़ोंको ले निःसन्देह  
 मुझे राजाके हाथमें समर्पण करो । इसी  
 प्रकारसे चार राजाओंके यहांसे तुमको  
 आठ सौ घोड़े मिल जायेंगे और मेरे भी  
 चार पुत्र उत्पन्न होंगे । हे द्विजसत्तम !

क्रियतामुपसंहारो गुर्वर्थं द्विजसत्तम ।

एषा तावन्मम प्रज्ञा यथा वा मन्यसे द्विज ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु स मुनिः कन्यया गालवस्तदा ।

हर्यश्वं पृथिवीपालमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

इयं कन्या नरश्रेष्ठ हर्यश्वं प्रतिगृह्यताम् ।

चतुर्भागेन गुल्कस्य जनयस्वेकमात्मजम् ॥ १५ ॥

प्रतिगृह्य स तां कन्यां गालवं प्रतिनन्द्य च ।

समये देशकाले च लब्धवान्सुतमीप्सितम् ॥ १६ ॥

ततो वसुमना नाम वसुभ्यो वसुमत्तरः ।

वसुप्रख्यो नरपतिः स बभूव वसुप्रदः ॥ १७ ॥

अथ काले पुनर्धीमान्गालवः प्रत्युपस्थितः ।

उपसङ्गम्य चोवाच हर्यश्वं प्रीतिमानसम् ॥ १८ ॥

जातो नृप सुतस्तेऽयं बालो भास्करसन्निभः ।

कालो गन्तुं नरश्रेष्ठ भिक्षार्थमपरं नृपम् ॥ १९ ॥

हर्यश्वः सत्यवचने स्थितः स्थित्वा च पौरुषे ।

दुर्लभत्वाद्दयानां च प्रददौ माधवीं पुनः ॥ २० ॥

मेरे विचारमें इसी प्रकारसे तुम गुरुदक्षिणासे उत्तीर्ण हो सकोगे; इस लिए अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा ही कहो। (१०-१३)

कन्याकी ऐसी बात सुनकर गालव मुनि राजा हर्यश्वसे बोले, हे राजसत्तम हर्यश्व ! मेरे मांगे हुए धनका चौथा भाग देकर तुम इस कन्याके संग व्याह करके एक पुत्र उत्पन्न कर लो । ऐसी आज्ञा पाकर राजा हर्यश्वने प्रीतियुक्त प्रसन्न चित्तसे गालव मुनिको आनन्दित करके कन्याको ग्रहण किया । और देश, काल तथा समयके अनुकूल इच्छाके

अनुसार पुत्र प्राप्त किया । सूर्यके समान तेजस्वी राजकुमार पीछे धनवान् राजाओंसे भी अधिक धनशाली और महादानी होकर वसुमना नामके एक प्रसिद्ध राजा हुए थे । ( १४—१७ )

बुद्धिमान् गालव प्रसन्न चित्तसे राजा हर्यश्वके पास फिर उपास्थित होकर यह वचन बोले, हे राजेन्द्र ! तुम्हारे तो यह प्रातःकालके सूर्यके समान मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ है । इससे अब कोई दूसरे राजाके समीपमें भिक्षाके निमित्त मुझे जाना पड़ेगा । राजा हर्यश्व अपनी सत्य प्रतिज्ञामें दृढ़ थे; इससे उन्होंने इस समय

माधवी च पुनर्दीप्तां परित्यज्य नृपश्रियम् ।

कुमारी कामतो भूत्वा गालवं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥ २१ ॥

त्वय्येष तावत्तिष्ठन्तु हया इत्युक्तवान्द्विजः ।

प्रययौ कन्यया सार्धं दिवोदासं प्रजेश्वरम् ॥ २२ ॥ [३८४९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

गालवचरिते षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

गालव उवाच— महावीर्यो महीपालः काशीनामीश्वरः प्रभुः ।

दिवोदास इति ख्यातो भैमसेनिर्नराधिपः ॥ १ ॥

तत्र गच्छावहे भद्रे शनैरागच्छ मा शुचः ।

धार्मिकः संयमे युक्तः सत्ये चैव जनेश्वरः ॥ २ ॥

नारद उवाच— तमुपागम्य स मुनिर्न्यायतस्तेन सत्कृतः ।

गालवः प्रसवस्याऽर्थं तं नृपं प्रत्यचोदयत् ॥ ३ ॥

दिवोदास उवाच— श्रुतमेतन्मया पूर्वं किमुक्त्वा विस्तरं द्विज ।

काङ्क्षितो हि मयैषोऽर्थः श्रुत्वैव द्विजसत्तम ॥ ४ ॥

मैं भी शेष छः सौ घोड़ोंके देनेमें अशक्य होकर उस माधवी नाम्नी कन्या को फिर गालव मुनिके हाथमें समर्पण किया । माधवी भी उस लक्ष्मीसे प्रकाशित राजभवनको त्याग कर अपनी इच्छाके अनुसार फिर कन्या होकर गालव मुनिके पीछे पीछे चली। तब गालव मुनिने हर्यश्वसे कहा “घोड़े अभी तुम्हारे ही यहां रहें।” ऐसा कहके दिवोदास नामक राजा के यहां गये । ( १८-२२ ) [३८४९]

उद्योगपर्वमें एकसौ सोलह अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ सतरह अध्याय ।

मार्गमें माधवीको कुछ दुःखित देखकर गालव मुनि उससे बोले, हे भद्रे ! काशीके राजा भीमसेनके पुत्र दिवोदास

नामक विख्यात महाबल और पराक्रमी राजा परम धार्मिक तथा सत्यव्रतमें स्थित हैं; जब मैं ऐसे शुद्ध आचारवाले नरनाथ राजाके यहां जा रहा हूं; तब तुम्हें शोक करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं है; तुम धीरे धीरे चलो । ( १-२ )

नारद मुनि बोले, अनन्तर गालव मुनि राजा दिवोदासके समीपमें पहुंचकर यथा उचित पूजित होके, अपने प्रयोजनको कहनेके अनन्तर उन्हें पुत्र उत्पन्न करनेके निमित्त अनुरोध किया। ३

राजा दिवोदास बोले, हे द्विजवर ! तुम्हें अधिक कहनेकी अब कोई अवश्यकता नहीं है । मैंने पहिलेहीसे इस बातको सुना था, और सुननेहीसे यह

एतच्च मे बहुमतं यदुत्सृज्य नराधिपान् ।  
 मामेवमुपयातोऽसि भावि चैतदसंशयम् ॥ ५ ॥  
 स एव विभवोऽस्माकमश्वानामपि गालव ।  
 अहमप्येकमेवाऽस्यां जनयिष्यामि पार्थिवम् ॥ ६ ॥  
 तथेत्युक्त्वा द्विजश्रेष्ठः प्रादात्कन्यां महीपते ।  
 विधिपूर्वां च तां राजा कन्यां प्रतिगृहीतवान् ॥ ७ ॥  
 रेमे स तस्यां राजर्षिः प्रभावत्यां यथा रविः ।  
 स्वाहायां च यथा वह्निर्यथा शच्यां च वासवः ॥ ८ ॥  
 यथा चन्द्रश्च रोहिण्यां यथा धूमोर्णया यमः ।  
 वरुणश्च यथा गौर्यां यथा चर्ध्यां धनेश्वरः ॥ ९ ॥  
 यथा नारायणो लक्ष्म्यां जाह्नव्यां च यथोदधिः ।  
 यथा रुद्रश्च रुद्राण्यां यथा वेद्यां पितामहः ॥ १० ॥  
 अदृश्यन्त्यां च वासिष्ठो वसिष्ठश्चाक्षमालया ।  
 च्यवनश्च सुकन्यायां पुलस्त्यः सन्ध्यया यथा ॥ ११ ॥  
 अगस्त्यश्चापि वैदर्भ्यां सावित्र्यां सत्यवान्यथा ।  
 यथा भृगुः पुलोमायामदित्यां कश्यपो यथा ॥ १२ ॥  
 रेणुकायां यथाऽऽर्चाको हैमवत्यां च कौशिकः ।

विषय मुझे स्वीकार हुआ है । तुम और  
 राजाओंको छोड़कर जो मेरे ही समीप  
 आये हो; यही मेरा धन्य भाग्य है ।  
 तुम्हारी प्रार्थना भी कुछ पूरी होगी;  
 इसमें कुछ सन्देह नहीं है । हे गालव !  
 तुम्हारी इच्छाके अनुसार घोंडोके विष-  
 यमें जैसा हर्यश्वाका विभव है; वैसा ही  
 मेरा भी है; इससे मैं भी तुम्हारी कन्यासे  
 एक राजपुत्र उत्पन्न करूंगा । ( ४-६ )

द्विजश्रेष्ठ गालव मुनि बोले, “ऐसा  
 ही होवे” यह कहकर राजा दिवोदासके  
 हाथ में उस कन्या को समर्पण किया ।

उन्होंने भी विधिपूर्वक उस कन्याके संग  
 विवाह किया । जैसे प्रभावतीसे सूर्य,  
 स्वाहासे अग्नि, शचीसे इन्द्र, रोहिणीसे  
 चन्द्रमा, धूमोर्णासे यमराज, गौरीसे  
 वरुण, क्रद्विसे कुबेर, लक्ष्मीसे नारायण,  
 गंगासे समुद्र, रुद्राणीसे रुद्र, वेदीसे  
 ब्रह्मा, अदृश्यन्ती से शक्ति, अक्षमालासे  
 वसिष्ठ, सुकन्यासे च्यवन, संध्यासे  
 पुलस्त्य, लोपामुद्रासे अगस्त्य, सावित्रीसे  
 सत्यवान्, पुलोमासे भृगु, अदितिसे क-  
 श्यप, रेणुकासे जमदग्नि, हेमवतीसे विश्वा-  
 मित्र, तारासे बृहस्पति, शतपर्वासे शुक्र,

बृहस्पतिश्च तारायां शुक्रश्च शतपर्वणा ॥ १३ ॥  
 यथा भूम्यां भूमिपतिरुर्वद्यां च पुरुरवाः ।  
 ऋचीकः सत्यवत्यां च सरस्वत्यां यथा मनुः ॥ १४ ॥  
 शकुन्तलायां दुष्यन्तो धृत्यां धर्मश्च शाश्वतः ।  
 दमयन्त्यां नलश्चैव सत्यवत्यां च नारदः ॥ १५ ॥  
 जरत्कारुर्जरत्कार्वा पुलस्त्यश्च प्रतीच्यया ।  
 मेनकायां यथोर्णायुस्तुम्बुरुश्चैव रम्भया ॥ १६ ॥  
 वासुकिः शतशीर्षायां कुमारी च धनञ्जयः ।  
 वैदेह्यां च यथा रामो रुक्मिण्यां च जनार्दनः ॥ १७ ॥  
 तथा तु रममाणस्य दिवोदासस्य भूपतेः ।  
 माधवी जनयामास पुत्रमेकं प्रतर्दनम् ॥ १८ ॥  
 अथाऽऽजगाम भगवान्दिवोदासं स गालवः ।  
 समये समनुप्राप्ते वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥  
 निर्यातयतु मे कन्यां भवांस्तिष्ठन्तु वाजिनः ।  
 यावदन्यत्र गच्छामि शुल्कार्थं पृथिवीपते ॥ २० ॥  
 दिवोदासोऽथ धर्मात्मा समये गालवस्य ताम् ।  
 कन्यां निर्यातयामास स्थितः सत्ये महीपतिः ॥ २१ ॥ [३८७०]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतानपर्वणि गालवचरिते सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

भूमिसे भूमिपति, उर्वशीसे पुरुरवा, सत्य-  
 वतीसे ऋचीक, सरस्वतीसे मनु, शकु-  
 न्तलासे दुष्यन्त, धृतिसे नित्य धर्म; दम-  
 यन्तीसे नल, सत्यवतीसे नारद, जरत्का-  
 रुसे जरत्कारु, प्रतीच्यासे पुलस्त्य,  
 मेनकासे उर्णायु, रम्भासे तुम्बुरु, शत-  
 शीर्षासे वासुकि, कुमारीसे धनञ्जय,  
 सीतासे राम और रुक्मिणीसे कृष्णने  
 रमण किया था, उसी प्रकारसे राजर्षि  
 दिवोदास भी माधवीके संग रमण करने  
 लगे । इसी प्रकारसे कुछ दिनतक परम

सुखसे विहार करके माधवीने प्रतर्दन  
 नाम पुत्रको उत्पन्न किया । (७-१८)

अनन्तर समयके पूरा होजानेपर  
 भगवान गालव मुनिने दिवोदासके  
 समीप आकर कहा, हे राजन् ! आप  
 मेरी कन्याको लौटा दीजिये; घोड़े  
 अभी तुम्हारेही पास रहेंगे, अब धनके  
 निमित्त मैं दूसरे स्थानमें जाऊंगा ।  
 सत्यवादी धर्मात्मा दिवोदासने समय-  
 को पूरा हुआ जानकर उसी समयमें  
 उस कन्याको गालव मुनिके हाथमें



नारद उवाच— तथैव तां श्रियं त्यक्त्वा कन्या भूत्वा यशस्विनी ।  
 माधवी गालवं विप्रमभ्ययात्सत्यसङ्गरा ॥ १ ॥  
 गालवो विमृशन्नेव स्वकार्यगतमानसः ।  
 जगाम भोजनगरं द्रष्टुमौशनिरं नृपम् ॥ २ ॥  
 तमुवाचाऽथ गत्वा स नृपतिं सत्यविक्रमम् ।  
 इयं कन्या सुतौ द्वौ ते जनयिष्यति पार्थिवौ ॥ ३ ॥  
 अस्यां भवानवाप्तार्थो भविता प्रेत्य चेह च ।  
 सोमार्कप्रतिसङ्काशौ जनयित्वा सुतौ नृप ॥ ४ ॥  
 शुल्कं तु सर्वधर्मज्ञ हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।  
 एकतः श्यामकर्णानां देयं मद्यं चतुःशतम् ॥ ५ ॥  
 गुर्वर्थोऽयं समारम्भो न ह्यैः कृत्यमस्ति मे ।  
 यदि शक्यं महाराज क्रियतामविचारितम् ॥ ६ ॥  
 अनपत्योऽसि राजर्षे पुत्रौ जनय पार्थिव ।  
 पितृन्पुत्रप्लवेन त्वमात्मानं चैव तारय ॥ ७ ॥

समर्पित किया । (१९-२१) [३८७०]

उद्योगपर्वमें एकसौ सतरह अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ अठरह अध्याय ।

नारद मुनि बोले, सत्य प्रतिज्ञा करनेवाली यशस्विनी माधवी पाहिलेकी भाँति उस राजलक्ष्मी को त्यागकर फिर कुमारी होके गालव मुनिकी अनु-  
 गामिनी हुई । तब गालव मुनि अपने कार्य साधनके निमित्त स्थिरचित्तसे विचार पूर्वक उशीनर राजासे मिलनेके निमित्त भोजनगरकी ओर चले । वहाँपर पहुँचकर उन्होंने सत्य पराक्रमी उस राजासे कहा, हे सब धर्मोंको जानने-  
 वाले ! मेरी यह कन्या तुम्हारे दो राज पुत्रोंकी माता होगी । इसके गर्भसे

सूर्य और चन्द्रमाके समान दो मनोहर पुत्रोंको उत्पन्न करके तुम इस लोक और परलोक दोनोंमें कृतार्थ होओगे; परन्तु कन्याके विवाहके निमित्त चार सौ चन्द्रमाके समान सफेद और एक ओर श्यामकर्ण घोड़े पलट्टेमें देने पड़ेंगे । १-५

हे महाराज ! केवल गुरुदक्षिणाके निमित्त ही मुझे यह यत्न करना पड़ता है; नहीं तो घोड़ोंसे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है । इससे यदि इस प्रकार से घोड़ों को देनेमें तुम्हारी शक्ति हो, तो फिर कुछ विचार न करके शीघ्र ही इस कर्मको पूर्ण करो । हे राजर्षि ! तुम पुत्र रहित हो; इस समय दो पुत्रोंको उत्पन्न करो । पुत्ररूपी प्लवसे पितर

न पुत्रफलभोक्ता हि राजर्षे पात्यते दिवः ।  
 न याति नरकं घोरं यथा गच्छन्त्यनात्मजाः ॥ ८ ॥  
 एतच्चाऽन्यच्च विविधं श्रुत्वा गालवभाषितम् ।  
 उशीनरः प्रतिवचो ददौ तस्य नराधिपः ॥ ९ ॥  
 श्रुतवानस्मि ते वाक्यं यथा वदसि गालव ।  
 विधिस्तु बलवान्ब्रह्मन्प्रवणं हि मनो मम ॥ १० ॥  
 शते द्वे तु ममाऽश्वानामीदृशानां द्विजोत्तम ।  
 इतरेषां सहस्राणि सुबहूनि चरन्ति मे ॥ ११ ॥  
 अहमप्येकमेवाऽस्यां जनयिष्यामि गालव ।  
 पुत्रं द्विज गतं मार्गं गमिष्यामि परैरहम् ॥ १२ ॥  
 मूल्येनाऽपि समं कुर्यां तवाऽहं द्विजसत्तम ।  
 पौरजानपदार्थं तु ममाऽर्थो नाऽऽत्मभोगतः ॥ १३ ॥  
 कामतो हि धनं राजा पारक्यं यः प्रयच्छति ।  
 न स धर्मेण धर्मात्मन्युज्यते यशसा न च ॥ १४ ॥  
 सोऽहं प्रतिग्रहीष्यामि ददात्वेतां भवान्मम ।

तथा अपना उद्धार करो । हे राजर्षि !  
 पुत्रोंके फलको भोगने वाले पुण्यात्मा  
 मनुष्य कभी स्वर्ग लोकसे नहीं पतित  
 होते; और पुत्रहीन मनुष्योंकी भांति  
 कभी नरकमें नहीं गिरते । ( ६-८ )

गालवके इसी प्रकारके बहुतसे वच-  
 नोंको सुनकर राजा उशीनर उनसे  
 बोले, हे गालव मुनि ! आपने जो कुछ  
 वचन कहे मैंने सब सुने और भेषा चि-  
 त्त भी पुत्रको उत्पन्न करनेके निमित्त  
 उत्सुक है; परन्तु क्या करें, दैव सबसे  
 बलवान है । हे ब्राह्मण । हमारी घुड-  
 शालमें दूसरी भांतिके घोड़ोंके सहस्रों  
 समूह हैं; परन्तु जिन घोड़ोंको तुम

चाहते हो, वैसे घोड़ेकेवल दो सौ हमारे  
 घुडशालमें उपस्थित हैं । इससे और  
 दूसरे दोनों राजा लोग जिस मार्गसे  
 चले हैं, मैं भी उसी मार्गसे चलूंगा,  
 अर्थात् तुम्हारी कन्यासे केवल एक ही  
 पुत्र उत्पन्न करूंगा और उन लोगोंने  
 जैसा मूल्य प्रदान किया है, मैं भी  
 वैसा मूल्य प्रदान करूंगा । मेरे जो कुछ  
 धन है वह प्रजा और अभ्यागत लोगों-  
 हीके निमित्त है; अपने भोगके वास्ते  
 नहीं है । ( ९-१३ )

हे धर्मात्मन् ! जो राजा लोग कामके  
 वशमें होकर दूसरोंका धन और लोगों-  
 को देते हैं, वह कभी धर्म और यशसे

कुमारीं देवगर्भाभासकपुत्रभवाय मे ॥ १५ ॥

तथा तु बहुधा कन्यामुक्तवन्तं नराधिपम् ।

उशीनरं द्विजश्रेष्ठो गालवः प्रत्यपूजयत् ॥ १६ ॥

उशीनरं प्रतिग्राह्य गालवः प्रययौ वनम् ।

रेमे स तां समासाद्य कृतपुण्य इव श्रियम् ॥ १७ ॥

कन्दरेषु च शैलानां नदीनां निर्झरेषु च ।

उद्यानेषु विचित्रेषु वनेषूपवनेषु च ॥ १८ ॥

हर्म्येषु रमणीयेषु प्रासादशिखरेषु च ।

वातायनविमानेषु तथा गर्भगृहेषु च ॥ १९ ॥

ततोऽस्य समये जज्ञे पुत्रो बालरविप्रभः ।

शिविर्नाम्नाऽभिविख्यातो यः स पार्थिवसत्तमः २० ॥

उपस्थाय स तं विप्रो गालवः प्रतिगृह्य च ।

कन्यां प्रयातस्तां राजन्हृष्टवान्विनतात्मजम् ॥ २१ ॥ [३८९१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

गालवचरिते अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

युक्त नहीं हो सकते । इससे हे द्विजस-  
त्तम ! देवकन्याके समान इस कुमारीको  
तुम एक पुत्र उत्पन्न करनेके निमित्त  
मुझे अर्पण करो; मैं निःसन्देह इसके  
सङ्ग विहार करूँगा । ( १४-१५ )

राजा उशीनरके इस प्रकारके कल्याण  
युक्त बहुतसे वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ  
गालव मुनिने उनकी अत्यन्त प्रशंसा  
की और कन्या उनके हाथमें समर्पण  
करके वनको चले गये । पुण्यात्मा राजा  
उशीनरने भी साक्षात् लक्ष्मीके समान  
उस कन्याको पाकर पर्वत, कन्दरा,  
नदी, झरना, विमान, बगीचा, वन,  
उपवन, अटारी, राजमन्दिर, रनिवास

आदि सब स्थानोंमें जहाँ इच्छा हुई वहाँ  
ही परम सुखसे उसके सङ्ग इच्छाके अनु-  
सार विहार करने लगे । ( १६-१९ )

कुछ दिनोंके अनन्तर नवीन सूर्यके  
समान तेजस्वी एक सुन्दर तथा मनोहर  
पुत्र उत्पन्न हुआ । पृथ्वीमें विख्यात  
सब राजाओंके शिरोमणि शिवि नामक  
जो राजा थे, वही राजा उशीनरके पुत्र  
हैं । हे राजन् ! पुत्रके उत्पन्न होनेपर  
गालव मुनिने राजा उशीनरके समीप  
जाकर कन्याको ग्रहण करके वहाँसे  
चलकर मार्गमें विनतानन्दन गरुडके  
सङ्ग भेंट की । ( २०-२१ ) [३८९१]

उद्योगपर्वमें एकसौ अठारह अध्याय समाप्त ।

नारद उवाच- गालवं वैनतेयोऽथ प्रहसन्निदमब्रवीत् ।  
 दिष्टया कृतार्थं पश्यामि भवन्तमिह वै द्विज ॥ १ ॥  
 गालवस्तु वचः श्रुत्वा वैनतेयेन भाषितम् ।  
 चतुर्भागावशिष्टं तदाचरुयौ कार्यमस्य हि ॥ २ ॥  
 सुपर्णस्त्वब्रवीदेनं गालवं वदतां वरः ।  
 प्रयत्नस्ते न कर्तव्यो नैष सम्पत्स्यते तव ॥ ३ ॥  
 पुरा हि कान्यकुब्जे वै गाधेः सत्यवतीं सुताम् ।  
 भार्यायैऽवरयत्कन्यामृचीकस्तेन भाषितः ॥ ४ ॥  
 एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।  
 भगवन्दीयतां मह्यं सहस्रमिति गालव ॥ ५ ॥  
 ऋचीकस्तु तथेत्युक्त्वा वरुणस्याऽऽलयं गतः ।  
 अश्वतीर्थे हयैर्लब्ध्वा दत्तवान्पार्थिवाय वै ॥ ६ ॥  
 इष्ट्वा ते पुण्डरीकेण दत्ता राज्ञा द्विजातिषु ।  
 तेभ्यो द्वे द्वे शते क्रीत्वा प्राप्ते तैः पार्थिवैस्तदा ॥ ७ ॥  
 अपराण्यपि चत्वारि शतानि द्विजसत्तम ।

उद्योगपर्वमें एकसौ उन्नसि अध्याय ।

नारद मुनि बोले, गरुड गालवको देखकर हंसते हुए बोले, हे विप्र ! प्रारब्धसे तुमको मैंने कृतकार्य हुआ देखा । गरुडकी बात सुनकर गालव मुनि बोले, मैं अभी कैसे कृतार्थ हो सकता हूँ, मेरे कार्यका इस समय भी चौथा भाग बाकी है । ( १-२ )

तब बोलनेवालों में श्रेष्ठ गरुड बोले, हे गालव ! उस विषयमें अब यत्न करनेकी तुम्हें कुछ भी आवश्यकता नहीं है, वह किसी प्रकारसे भी सिद्ध नहीं हो सकेगा । पहिले समयमें भगवान् ऋचीकने जब कान्यकुब्ज देशीय गाधि

नामक राजाके निकट उनको सत्यवती नामकी कन्याको अपनी भार्या बनानेके वास्ते मांगा था, तब गाधिराजने उनसे कहा था, हे भगवन् ! मुझे चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णके हजार श्यामकर्ण घोड़े दीजिये । ऋचीकने कहा “वही होगा” ऐसा कहकर वरुणके स्थानमें जाकर अश्वतीर्थमें घोड़े पाकर राजाको दिया । ( ३-६ )

गाधिराजने पुण्डरीक नामका एक यज्ञ करके ब्राह्मणोंकी दक्षिणामें इन्हीं घोड़ोंको दिया था । उन्हीं लोगोंसे राजा हर्यश्व दिवोदास और उशीनरने दो दो सौ घोड़े मोल लिये थे । बाकी

नीयमानानि सन्तारे हृतान्यासन्वितस्तथा ॥ ८ ॥  
 एवं न शक्यमप्राप्यं प्राप्तुं गालव कर्हिचित् ।  
 इमामश्वशताभ्यां वै द्वाभ्यां तस्मै निवेदय ॥ ९ ॥  
 विश्वामित्राय धर्मात्मन्षडभिरश्वशतैः सह ।  
 ततोऽसि गतसम्मोहः कृतकृत्यो द्विजोत्तम ॥ १० ॥  
 गालवस्तं तथेत्युक्त्वा सुपर्णसहितस्ततः ।  
 आदायाऽश्वांश्च कन्यां च विश्वामित्रमुपागमत् ॥ ११ ॥  
 अश्वानां कांक्षितार्थानां षडिमानि शतानि वै ।  
 शतद्वयेन कन्येयं भवता प्रतिगृह्यताम् ॥ १२ ॥  
 अस्यां राजर्षिभिः पुत्रा जाता वै धार्मिकासत्रयः ।  
 चतुर्थं जनयत्वेकं भवानपि नरोत्तमम् ॥ १३ ॥  
 पूर्णान्येवं शतान्यष्टौ तुरगाणां भवन्तु ते ।  
 भवतो ह्यनृणो भूत्वा तपः कुर्या यथासुखम् ॥ १४ ॥  
 विश्वामित्रस्तु तं दृष्ट्वा गालवं सह पक्षिणा ।  
 कन्यां च तां वरारोहामिदमित्यब्रवीद्वचः ॥ १५ ॥

चार सौ घोड़े भी बेचनेके वास्ते मार्गमें  
 चले जाते थे दैवी-संयोगसे मार्गहीमें  
 हरण किये गये । इससे हे ब्रह्मन् !  
 प्राप्त न होने योग्य वस्तु किसी कालमें  
 भी नहीं मिल सकती । इससे तुम बाकी  
 दो सौ घोड़ोंके पलट्टेमें इस कन्याको ही  
 छः सौ घोड़ोंके सहित गुरुके स्थानपर  
 जाकर उन्हें समर्पण करो । हे द्विजस-  
 त्तम गालव ! ऐसा करनेहीसे तुम  
 मोह रहित होकर अपना कार्य पूर्ण  
 कर सकोगे । ( ७-१० )

गरुडकी यह उत्तम युक्ति सुनकर  
 गालव मुनि बोले, “ ऐसा ही होगा ”  
 यह कहके कन्या और घोड़ोंको लेकर

विश्वामित्रके समीप आकर उनसे बोले,  
 हे गुरुदेव ! आपने जिस प्रकारके घोड़े  
 मांगे थे, वैसे छः सौ घोड़े उपास्थित हैं;  
 शेष दो सौ घोड़ोंके पलट्टेमें इस कन्या-  
 का पाणिग्रहण कीजिये । इसके गर्भसे  
 तीन राजऋषियोंके धर्मसे युक्त तीन  
 पुत्र उत्पन्न हुए हैं; इससे आप भी  
 मनुष्योंमें श्रेष्ठ एक पुत्र उत्पन्न करें इसी  
 प्रकारसे आपके आठ सौ घोड़े पूर्ण  
 होवें और मैं भी जाकर तपस्या  
 करूं । ( ११-१४ )

विश्वामित्र मुनि पक्षिराज गरुड  
 और उस सुन्दरी कन्याके सङ्ग गालव  
 मुनिको देखकर बोले, हे गालव !

किमियं पूर्वमेवेह न दत्ता मम गालव ।  
 पुत्रा ममैव चत्वारो भवेयुः कुलभावनाः ॥ १६ ॥  
 प्रतिगृह्णामि ते कन्यामेकपुत्रफलाय वै ।  
 अश्वाश्चाऽऽश्रममासाद्य चरन्तु मम सर्वशः ॥ १७ ॥  
 स तथा रममाणोऽथ विश्वामित्रो महाद्युतिः ।  
 आत्मजं जनयामास माधवीपुत्रमष्टकम् ॥ १८ ॥  
 जातमात्रं सुतं तं च विश्वामित्रो महामुनिः ।  
 संयोज्याऽथैस्तथा धर्मैरश्वैस्तैः समयोजयत् ॥ १९ ॥  
 अथाऽष्टकः पुरं प्रायात्तदा सोमपुरप्रभम् ।  
 निर्यात्य कन्यां शिष्याय कौशिकोऽपि वनं ययौ ॥ २० ॥  
 गालवोऽपि सुपर्णेन सह निर्यात्य दक्षिणाम् ।  
 मनसाऽतिप्रतीतेन कन्यामिदमुवाच ह ॥ २१ ॥  
 जातो दानपतिः पुत्रस्त्वया शूरस्तथाऽपरः ।  
 सत्यधर्मरतश्चाऽन्यो यज्वा चापि तथाऽपरः ॥ २२ ॥

तुमने पहिले ही इस कन्यारूपी अमूल्य  
 रत्नको मुझे क्यों न प्रदान किया? ऐसा  
 होनेसे मैं ही कुल पवित्र करनेवाले चार-  
 पुत्रोंको उत्पन्न करता । जो हो, इस  
 समय एक ही पुत्र उत्पन्न करनेके  
 निमित्त तुम्हारी कन्याके सङ्ग विवाह  
 करता हूँ; घोड़े भी हमारे आश्रममें रह-  
 कर सब स्थानोंमें भ्रमण करेंगे । १५-१७

इसके अनन्तर विश्वामित्रने माधवी-  
 के सङ्ग सुखपूर्वक विहार करके यथा  
 समयमें उसके गर्भसे अष्टक नाम एक  
 पुत्र उत्पन्न किया; और उत्पन्न होते ही  
 उसको धर्म और अर्थसे युक्त करके वे  
 सम्पूर्ण घोड़े उसी पुत्रको समर्पण किये ।  
 अष्टकने धर्म और अर्थसे युक्त होके

प्रसन्न चित्तसे चन्द्रलोकके समान  
 प्रकाशमान किसी नगरमें जाकर प्रवेश  
 किया; और विश्वामित्र भी शिष्यको  
 कन्या लौटा कर तप करनेके निमित्त  
 वनको चले गये । (१८-२०)

गालव मुनि गरुडके संग मिलकर  
 इस प्रकारसे गुरु-दक्षिणा देके प्रीतिसे  
 प्रफुल्लित होकर माधवीसे बोले, हे वरा-  
 रोहे ! तुमने जो वसुमना आदि चार  
 पुत्र प्रसव किये हैं, उनमेंसे एक अद्वि-  
 तीय दानी, दूसरा अत्यन्त पराक्रमी  
 महावीर है, तीसरा सत्य धर्ममें सदा  
 ही रत रहता है, और चौथा पुत्र अ-  
 साधारण यज्ञ कर्मों का करनेवाला है ।  
 इस प्रकारके गुणोंसे युक्त चार पुत्रोंको

तदागच्छ वरारोहे तारितस्ते पिता सुतैः ।

चत्वारश्चैव राजानस्तथा चाऽहं सुमध्यमे ॥ २३ ॥

गालवस्त्वभ्यनुज्ञाय सुपर्णं पन्नगाशनम् ।

पितुर्निर्यात्य तां कन्यां प्रययौ वनमेव ह ॥ २४ ॥ [ ३९१५ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

गालवचरिते एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

नारद उवाच— स तु राजा पुनस्तस्याः कर्तुकामः स्वयंवरम् ।

उपगम्याऽऽश्रमपदं गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ १ ॥

गृहीतभाल्यदामां तां रथमारोप्य माधवीम् ।

पूरुर्यदुश्च भगिनीमाश्रमे पर्यधावताम् ॥ २ ॥

नागयक्षमनुष्याणां गन्धर्वमृगपक्षिणाम् ।

शैलद्रुमवनौकानामासीत्तत्र समागमः ॥ ३ ॥

नानापुरुषदेश्यानामीश्वरैश्च समाकुलम् ।

ऋषिभिर्ब्रह्मकल्पैश्च समन्तादावृतं वनम् ॥ ४ ॥

निर्दिश्यमानेषु तु सा वरेषु वरवर्णिनी ।

वरानुत्क्रम्य सर्वास्तान्वरं वृतवती वनम् ॥ ५ ॥

उत्पन्न कर तुमने केवल अपने पिता ही को नहीं वरन चार राजर्षि और मुक्षको भी तार दिया है। हे भद्रे ! इससे तुम अब चलो, द्विजश्रेष्ठ गालव कन्यासे ऐसा कहकर उस कन्याको पिताके समीप पहुँचाकर साँपोंके भोजन करने वाले गरुडकी अनुमतिसे वनको चले गये। (२१-२४) [ ३९१५ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ उन्नीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ वीस अध्याय ।

नारद मुनि बोले, राजा ययातिके निज कन्या माधवीके वास्ते फिरसे स्वयंवर करनेके निमित्त अभिलाषी होने-

पर उनके दो पुत्र पूरु और यदु अपनी बहिनको रथपर बैठाकर प्रयागमें जाकर आश्रमोंमें भ्रमण करने लगे। वहाँपर नाग, मनुष्य, देवता, गन्धर्व, मृग, पक्षी, पर्वत और वृक्ष तथा वनके रहनेवाले सब जीव जन्तुओंका समागम हुआ। वहाँपर वह बहुत बड़ा वन नाना देशोंके राजा तथा ब्रह्म ऋषियोंसे पूर्ण होगया। (१-४)

इस प्रकारसे जब अनेक लोग इकट्ठे हुए तब वरकी खोज होने लगी। उस समय यशस्विनी ययाति-नन्दिनीने दूसरे सब वरोंको त्यागकर अरण्यको ही

अवतीर्य रथात्कन्या नमस्कृत्य च बन्धुषु ।  
 उपगम्य वनं पुण्यं तपस्तेपे ययातिजा ॥ ६ ॥  
 उपवासैश्च विविधैर्दीक्षाभिर्नियमैस्तथा ।  
 आत्मनो लघुतां कृत्वा बभूव मृगचारिणी ॥ ७ ॥  
 वैदूर्याकुरकल्पानि मृदूनि हरितानि च ।  
 चरन्ती श्लक्ष्णशष्पाणि तित्कानि मधुराणि च ॥ ८ ॥  
 स्रवन्तीनां च पुण्यानां सुरसानि शुचीनि च ।  
 पिबन्ती वारिमुख्यानि शीतानि विमलानि च ॥ ९ ॥  
 वनेषु मृगराजेषु व्याघ्रविप्रोषितेषु च ।  
 दावाग्निविप्रयुक्तेषु शून्येषु गहनेषु च ॥ १० ॥  
 चरन्ती हरिणैः सार्धं मृगीव वनचारिणी ।  
 चचार विपुलं धर्मं ब्रह्मचर्येण संवृतम् ॥ ११ ॥  
 ययातिरपि पूर्वेषां राज्ञां वृत्तमनुष्ठितः ।  
 बहुवर्षसहस्रायुर्युज्ये कालधर्मणा ॥ १२ ॥  
 पूर्यदुश्च द्रौ वंशे वर्धमानौ नरोत्तमौ ।  
 ताभ्यां प्रतिष्ठितो लोके परलोके च नाहुषः ॥ १३ ॥

अपना वर निश्चित करके उसे वरण किया । अर्थात् रथसे उतरकर बान्धवोंको प्रणाम करके पुण्य-भूमि वनमें अपना आश्रम बनाके तपस्या करने लगी । इसी प्रकारसे वनको वरनेवाली माधवी विविध भांतिसे उपवास, उपदेश, नियम, प्राणायाम आदिसे आत्माकी सूक्ष्मता प्राप्त करके क्रोध, मोह, लोभ आदिसे रहित हो हरिणकी भांति वनवृत्ति अवलम्बन कर स्वच्छन्दतासे वनमें निवास करने लगी । (५-७)

ब्रह्मचर्यसे युक्त होकर कोमल, तोते और मधुर शाकोंका भोजन करके पवित्र

झरने और नदियोंका शीतल जल पीती हुई, व्याघ्र आदि हिंसक जीवोंसे रहित निर्जन वनमें हरिणोंके समूहके मङ्ग मृगीकी भांति घूमती हुई शुद्ध तथा पवित्र धर्म उपार्जन किया । (८-११)

इधर राजा ययातिने कई हजार वर्षतक अपनी आयुको भोगकर अन्तमें पूर्व राजाओंकी भांति वनमें जाकर शरीरको त्याग दिया । पूरु और यदु नामक उनके दोनों पुत्रोंका वंश बढने लगा । इन्हीं दोनों वंशोंसे नहुष पुत्रने इस लोक और परलोकमें अत्यन्त मान और प्रतिष्ठा पाई थी । सब सुखसे युक्त



महीपते नरपतिर्ययातिः स्वर्गमास्थितः ।

महर्षिकल्पो नृपतिः स्वर्गाग्न्यफलभुग्विभुः ॥ १४ ॥

बहुवर्षसहस्राख्ये काले बहुगुणे गते ।

राजर्षिषु निषण्णेषु महीयःसु महर्षिषु ॥ १५ ॥

अवमेने नरान्सर्वान्देवानृषिगणांस्तथा ।

ययातिर्मूढविज्ञानो विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १६ ॥

ततस्तं बुबुधे देवः शक्रो बलनिषूदनः ।

ते च राजर्षयः सर्वे धिग्धिगित्येवमब्रुवन् ॥ १७ ॥

विचारश्च समुत्पन्नो निरीक्ष्य नहुषात्मजम् ।

को न्वयं कस्य वा राज्ञः कथं वा स्वर्गमागतः ॥ १८ ॥

कर्मणा केन सिद्धोऽयं क वाऽनेन तपाश्चितम् ।

कथं वा ज्ञायते स्वर्गे केन वा ज्ञायतेऽप्युत ॥ १९ ॥

एवं विचारयन्तस्ते राजानं स्वर्गवासिनः ।

दृष्ट्वा पप्रच्छुरन्योन्यं ययातिं नृपतिं प्रति ॥ २० ॥

विमानपालाः शतशः स्वर्गद्वाराभिरक्षिणः ।

पृष्ट्वा आसनपालाश्च न जानीमेत्यथाऽब्रुवन् ॥ २१ ॥

राजर्षि ययाति कई सहस्र वर्षोंतक स्वर्गलोकमें स्थित और पूजित होकर उत्तम स्वर्गके सुखका भोग किया; परन्तु अन्तको मोहमें पडकर अभिमानसे मतवारे होके अपने सङ्गमें रहनेवाले पुण्यात्मा राजर्षि और महाऋषियों के स्थानमें सब मनुष्य, ऋषि और देवताओंका मन ही मन अवमानना करने लगे । ( १२-१६ )

शत्रुनाशन इन्द्रने उनके हृदयके उस भावको उसी समय जान लिया और सब राजर्षि लोग भी उन्हें धिक्कार देने लगे । अनन्तर उनकी ओर देखकर सब लोग यह तर्क करने लगे, कि यह पुरुष कौ-

न है ? किस राजाका पुत्र है ? किस प्रकारसे इस स्थानपर स्वयं उपास्थित हुआ है ? किस कर्मसे सिद्ध हुआ है ? इसने कहाँपर तपस्या की है ? कैसे इसने स्वर्गलोक पाया है ? कौन पुरुष इसको जानता है ? ( १७-१९ )

स्वर्गवासी राजर्षि लोग राजा ययातिके विषयमें इसी प्रकारसे तर्क वितर्क करके एक दूसरेसे पूछने लगे । इन्द्रके मन्दिरके सैकड़ों द्वार-रक्षक, विमान-रक्षक, और आसनोंकी रक्षा करनेवालोंसे भी यही बात पूछी गई; परन्तु पूछने से सबने यही उत्तर दिया, कि नहीं,

सर्वे ते ह्यावृतज्ञाना नाऽभ्यजानन्त तं नृपम् ।

स मुहूर्तादथ नृपो हतौजाश्चाऽभवत्तदा ॥ २२ ॥ [३९३७]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि गालवचरिते ययातिमोहे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२०॥

नारद उवाच— अथ प्रचलितः स्थानादासनाच्च परिच्युतः ।

कम्पितेनेव मनसा धर्षितः शोकवह्निना ॥ १ ॥

स्नानस्वप्नभ्रष्टविज्ञानः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ।

विधूर्णन्स्वस्तसर्वाङ्गः प्रभ्रष्टाभरणाम्बरः ॥ २ ॥

अहृद्यमानस्तान्पश्यन्नपश्यंश्च पुनः पुनः ।

शून्यः शून्येन मनसा प्रपतिष्यन्महीतलम् ॥ ३ ॥

किं मया मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम् ।

येनाऽहं चलितः स्थानादिति राजा व्यचिन्तयत् ॥ ४ ॥

ते तु तत्रैव राजानः सिद्धाश्चाऽप्सरसस्तथा ।

अपश्यन्त निरालम्बं तं ययातिं परिच्युतम् ॥ ५ ॥

अथैत्य पुरुषः कश्चित्क्षीणपुण्यनिपातकः ।

हम लोग कोई भी इसको नहीं जानते ।

इसी प्रकारसे सबका ज्ञान छिप जानेसे

कोई भी उन्हें न जान सका; इससे वह

क्षणमात्रमें तेजरहित होगये । (२०-२२)

उद्योगपर्वमें एकसौ वीस अध्याय समाप्त । ३९३७

उद्योगपर्वमें एकसौ इकीस अध्याय ।

नारद मुनि बोले, अनन्तर राजा

ययातिका चित्त घूमने लगा, वह आ-

सनसे भ्रष्ट होकर अपने स्थानसे च्युत

होकर स्वर्गसे गिरे । अत्यन्त शोक और

दुःखसे पीड़ित होनेसे उनका ज्ञान नष्ट

हुआ और उज्ज्वल माला मलिन होगई ।

शिरके मुकुट, भूषण और विचित्र वस्त्र

संपूर्ण गिर गये; शरीरके समस्त अङ्ग

शिथिल होके घूमने लगे । उनको उस

समय कोई भी नहीं जानता था, परन्तु

वह सबको ही बार बार देखने लगे;

कभी कभी उन सबको भी नहीं देख

सकते थे । इसी भांति सब विषयोंसे

रहित होकर वह पृथ्वीमें गिरनेके पहिले

ही अपने मनमें यह चिन्ता करने लगे,

कि हाय ! मैंने ऐसा कौनसा अधर्म तथा

अशुभ कार्य किया है, जिससे निज

स्थानसे भ्रष्ट हुआ हूँ ? (१-४)

इसी प्रकारसे चिन्ता करते हुए

आसन और अवलम्ब रहित राजा यया-

तिको वहांपर रहनेवाले राजा, सिद्ध,

और अप्सरा, गन्धर्व आदि सब कौतुक

की भांति देखने लगे । हे राजन् !

अनन्तर पुण्यसे हीन मनुष्योंको स्वर्गसे

ययातिमब्रवीद्राजन्देवराजस्य शासनात् ॥ ६ ॥  
 अतीव मदमत्तस्त्वं न कश्चिन्नाऽवमन्यसे ।  
 मानेन भ्रष्टः स्वर्गस्ते नाऽर्हस्त्वं पार्थिवात्मज ॥ ७ ॥  
 न च प्रज्ञायसे गच्छ पतस्वेति तमब्रवीत् ।  
 पतेयं सत्स्विति वचस्त्रिरुक्त्वा नहुषात्मजः ॥ ८ ॥  
 पतिष्यंश्चिन्तयामास गतिं गतिमतां वरः ।  
 एतास्मिन्नेव काले तु नैमिषे पार्थिवर्षभान् ॥ ९ ॥  
 चतुरोऽपश्यत नृपस्तेषां मध्ये पपात ह ।  
 प्रतर्दनो वसुमनाः शिविरौशानरोऽष्टकः ॥ १० ॥  
 वाजपेयेन यज्ञेन तर्पयन्ति सुरेश्वरम् ।  
 तेषामध्वरजं धूमं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ११ ॥  
 ययातिरुपजिघ्रन्वै निपपात महीं प्रति ।  
 भूमौ स्वर्गे च सम्बद्धां नदीं धूममयीमिव ।  
 गङ्गां गामिव गच्छन्तीमालम्ब्य जगतीपतिः ॥ १२ ॥  
 श्रीमत्स्ववभृताग्नेषु चतुर्षु प्रतिबन्धुषु ।  
 मध्ये निपतितो राजा लोकपालोपमेषु सः ॥ १३ ॥

गिरानेवाले एक पुरुषने इन्द्रकी आज्ञा-  
 से राजा ययातिके समीप आकर कहा,  
 कि हे राजपुत्र ! तुमने अभिमानसे  
 मतवारे होकर सबकी अवमानना की  
 है; तुम अभिमानके कारणही स्वर्गलो-  
 कसे गिराये गये हो; तुम्हें कोई नहीं  
 जान सकता है; इससे जाओ जल्दी  
 गिरो । ( ५-८ )

यह वचन सुनकर उत्तम गतिको  
 पाने वाले पुरुषोंके अग्रगामी नहुषपुत्र  
 ययातिने कहा “साधुओंके बीच गिरू-  
 गा ” तीन बार ऐसा ही कहकर कहां  
 गिरेंगे इस बातको सोचने लगे । उसी

समयमें प्रतर्दन, वसुमना, शिवि और  
 अष्टक नामक चारों राजा नैमिषारण्यमें  
 वाजपेय यज्ञसे इन्द्रको तृप्त कर रहे थे;  
 उसे देखकर वह उन्हीं लोगोंके बीचमें  
 पतित हुए । उन लोगोंके यज्ञका धुआं  
 स्वर्गद्वार पर्यन्त ऐसा दीख पड़ता था,  
 जैसे स्वर्गतक कोई उत्तम नदी दीख रही  
 हो । पृथ्वीपति ययाति उसी धूँसे  
 युक्त नदीको अवलम्बन करके पृथ्वीपर  
 आगये । ( ८-१२ )

पुण्यके नाश होनेपर वह अपने दौ-  
 हित्र, सब शोभासे युक्त, यज्ञमें निष्ठा  
 करनेवाले, लोकपाल और अग्निके

चतुर्षु हुतकल्पेषु राजसिंहमहाग्निषु ।  
 पपात मध्ये राजर्षिर्ययातिः पुण्यसंक्षये ॥ १४ ॥  
 तमाहुः पार्थिवाः सर्वे दीप्यमानमिव श्रिया ।  
 को भवान्कस्य वा बन्धुर्देशस्य नगरस्य वा ॥ १५ ॥  
 यक्षो वाऽप्यथवा देवो गन्धर्वो राक्षसोऽपि वा ।  
 नहि मानुषरूपोऽसि को वाऽर्थः कांक्ष्यते त्वया ॥ १६ ॥  
 ययातिरुवाच— ययातिरस्मि राजर्षिः क्षीणपुण्यश्च्युतो दिवः ।  
 पतेयं सत्स्विति ध्यायन्भवत्सु पतितस्ततः ॥ १७ ॥  
 राजान ऊचुः— सत्यमेतद्भवतु ते कांक्षितं पुरुषर्षभ ।  
 सर्वेषां नः क्रतुफलं धर्मश्च प्रतिगृह्यताम् ॥ १८ ॥  
 ययातिरुवाच— नाऽहं प्रतिग्रहधनो ब्राह्मणः क्षत्रियो ह्यहम् ।  
 न च मे प्रवणा बुद्धिः परपुण्यविनाशने ॥ १९ ॥  
 नारद उवाच— एतास्मिन्नेव काले तु सृगचर्याक्रमागताम् ।  
 माधवीं प्रेक्ष्य राजानस्तेऽभिवाचेदमब्रुवन् ॥ २० ॥

समान तेजस्वी चार राजसिंहोंके बीचमें पतित हुए । उनको शोभासे प्रकाशित देखके उन राजपुत्रोंने पूछा, कि आप कौन ? कौनसे देश तथा किस नगर-के बन्धु हैं ? आप देवता, गन्धर्व, यक्ष अथवा राक्षस हैं ? किस कारणसे आप यहां पर आये हैं और क्या चाहते हैं ? आपका आकार देखनेसे मालूम होता है, कि आप मनुष्य नहीं हैं । ( १३-१६ )

राजा ययाति बोले, मैं राजर्षि ययाति हूं, पुण्यके नाश होजानेसे स्वर्गलोकसे पृथ्वीमें पतित हुआ हूं; साधु पुरुषोंके बीच गिरूंगा, ऐसी मैंने इच्छा की थी; इससे आप लोगोंके

बीचमें गिरा हूं । ( १७ )

राजा लोग बोले, हे पुरुषर्षभ ! आपकी वह अभिलाषा सार्थक होवे; आप हम लोगोंके यज्ञ और धर्मका फल ग्रहण करें । राजा ययाति बोले, मैं क्षत्रिय हूं, दान लेनेवाला ब्राह्मण नहीं हूं; विशेष करके दूसरेके पुण्यका क्षय करनेके निमित्त मेरी प्रवृत्ति नहीं होती है । ( १८-१९ )

नारद मुनि बोले, राजा ययाति यह वचन कह रहे थे, उसी समयमें ब्रह्मचर्य परायणा वनवासिनी माधवी उसी स्थान पर आके उपस्थित हुई । उसको देखते ही उन चारों पुत्रोंने प्रणाम करके यह विनती की, कि हे तपोधने !

किमागमनकृत्यं ते किं कुर्मः शासनं तव ।

आज्ञाप्या हि वयं सर्वे तव पुत्रास्तपोधने ॥ २१ ॥

तेषां तद्भाषितं श्रुत्वा माधवी परया मुदा ।

पितरं समुपागच्छद्ययातिं सा ववन्द च ॥ २२ ॥

स्पृष्ट्वा सूर्यनि तान्पुत्रांस्तापसी वाक्यमब्रवीत् ।

दौहित्रास्तव राजेन्द्र मम पुत्रा न ते पराः ॥ २३ ॥

इमे त्वां तारयिष्यन्ति दृष्टमेतत्पुरातने ।

अहं ते दुहिता राजन्माधवी मृगचारिणी ॥ २४ ॥

मयाऽप्युपाचितो धर्मस्ततोऽर्धं प्रतिगृह्यताम् ।

यस्माद्राजन्नराः सर्वे अपत्यफलभागिनः ॥ २५ ॥

तस्मादिच्छन्ति दौहित्रान्यथा त्वं वसुधाधिप ।

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे शिरसा जननीं तदा ॥ २६ ॥

अभिवाद्य नमस्कृत्य मातामहमथाऽब्रुवन् ।

उच्चैरनुपमैः स्निग्धैः स्वरैरापूर्य मेदिनीम् ॥ २७ ॥

तुम इस स्थानपर क्यों आई हो और तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? हम लोग सब तुम्हारे पुत्र हैं, इससे कहो तुम्हारी कौनसी आज्ञा पालन करें ? (२०-२१)

उन लोगोंकी बात सुनकर तपस्विनी माधवीने हर्षसे अत्यन्त ही गद्गद होकर पिताके समीप जाकर उनके चरणोंकी वन्दना की और पुत्रोंके मस्तकको स्पर्श करके बोली, हे राजेन्द्र ! ये पुत्र तुमसे पृथक् नहीं हैं, ये सब तुम्हारे दौहित्र हैं, इससे ये ही लोग तुम्हारा उद्धार करेंगे । यह बात कुछ नई नहीं है, पहिले समयमें सैकड़ों घटनाएं ऐसी देखी गई हैं । हे राजन् ! मैं तुम्हारी पुत्री वनवासिनी माधवी हूं; इससे मेरा

भी जो कुछ धर्म सञ्चय हुआ है, उसका आधा भाग तुम ग्रहण करो । विचार कर देखो, संसारमें सब पुत्र और पौत्रके किये हुए कर्मोंके फलका भाग पाते हैं; इसी निमित्त दौहित्रकी इच्छा करते हैं; मुझको गालव मुनिके हाथमें समर्पण करते समय तुमने जो दौहित्रकी इच्छा की थी, उसका भी यही प्रयोजन है । (२२-२३)

अनन्तर प्रतर्दन आदि चारों पुत्रोंने माताके चरणपर सिर झुकाके प्रणाम किया और स्वर्गसे पतित हुए मातामह ( नाना ) के परित्राण करनेके निमित्त जो वचन पहिले बोले थे, इस समय नमस्कार करके, शब्दसे भूमिको नादित

मातामहं नृपतयस्तारयन्तो दिवश्च्युतम् ।

अथ तस्मादुपगतो गालवोऽप्याह पार्थिवम् ॥

तपसो मेऽष्टभागेन स्वर्गमारोहतां भवान् ॥ २८ ॥ [३९६५]

इति श्रीमहाभारते० भगवद्गीतापर्वणि गालवचरिते ययातिस्वर्गभ्रंशे एकविंशधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

नारद उवाच— प्रत्यभिज्ञातमात्रोऽथ सद्भिस्तैर्नरपुङ्गवः ।

समारुरोह नृपतिरस्पृशन्वसुधातलम् ॥

ययातिर्दिव्यसंस्थानो बभूव विगतज्वरः ॥ १ ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ।

दिव्यगन्धशुणोपेतो न पृथ्वीमस्पृशत्पदा ॥ २ ॥

ततो वसुमनाः पूर्वमुच्चैरुच्चारयन्वचः ।

ख्यातो दानपतिर्लोके व्याजहार नृपं तदा ॥ ३ ॥

प्राप्तवानस्मि यल्लोके सर्ववर्णेष्वगर्हया ।

तदप्यथ च दास्यामि तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ४ ॥

यत्फलं दानशीलस्य क्षमाशीलस्य यत्फलम् ।

यच्च मे फलमाधाने तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ५ ॥

ततः प्रतर्दनोऽप्याह वाक्यं क्षत्रियपुङ्गवः ।

करते हुए गम्भीर भावसे वही फिर कहने लगे । उन लोगोंकी बातके शेष होनेपर गालव मुनि भी वनसे आकर राजा ययातिसे बोले, हे राजन् ! मेरी तपस्याके आठवें भागसे तुम फिर स्वर्गको चले जाओ । ( २६-२८ ) [ ३९६५ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ इक्कीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ बाईस अध्याय ।

नारद मुनि बोले, राजाओंमें श्रेष्ठ महाराज ययाति प्रतर्दन आदि समस्त साधु पुरुषोंको जानकर उनकी बातोंको सुनते ही मोह, शोकसे रहित होके दिव्य शरीर, दिव्य माला और दिव्य भूष-

णोंको धारण करके पृथ्वीपर पांव न रखके फिर स्वर्गकी ओर चले । १-२

इसी अवसरमें संसारमें उदार और महादानी कहके प्रसिद्ध वसुमनाने सबसे पहिले ऊंचे स्तरसे कहा, हे राजन् ! मैंने पृथ्वीमें रहनेवाले किसी प्राणीके द्वेष, निन्दा और अपमान न करनेसे जो फल प्राप्त किया है, वह मैंने तुमको समर्पण किया आप उसके अधिकारी होइये । और भी मैंने दान, क्षमा और यज्ञसे जो फल प्राप्त किया है, वह भी आपको देता हूं । ( ३-५ )

अनन्तर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ प्रतर्दन

यथा धर्मरतिर्नित्यं नित्यं युद्धपरायणः ॥ ६ ॥  
 प्राप्तवानस्मि यल्लोके क्षत्रवंशोद्भवं यशः ।  
 वीरशब्दफलं चैव तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ७ ॥  
 शिबिरौशनिरौ धीमानुवाच मधुरां गिरम् ।  
 यथा बालेषु नारीषु वैहार्येषु तथैव च ॥ ८ ॥  
 सङ्गरेषु निपातेषु तथा तद्व्यसनेषु च ।  
 अनृतं नोक्तपूर्वं मे तेन सत्येन खं व्रज ॥ ९ ॥  
 यथा प्राणांश्च राज्यं च राजन्कामसुखानि च ।  
 त्यजेयं न पुनः सत्यं तेन सत्येन खं व्रज ॥ १० ॥  
 यथा सत्येन मे धर्मो यथा सत्येन पावकः ।  
 प्रीतिः शतक्रतुश्चैव तेन सत्येन खं व्रज ॥ ११ ॥  
 अष्टकस्त्वथ राजर्षिः कौशिको माधवीसुतः ।  
 अनेकशतयज्वानं नाहुषं प्राप्य धर्मवित् ॥ १२ ॥  
 शतशः पुण्डरीका मे गोसवाश्चरिताः प्रभो ।  
 क्रतवो वाजपेयाश्च तेषां फलमवामुहि ॥ १३ ॥  
 न मे रत्नानि न धनं न तथाऽन्ये परिच्छदाः ।

मातामहसे बोले, हे महाराज ! सदा धर्ममें रत और युद्ध-कर्ममें युक्त रहनेसे क्षत्रियवंशके योग्य वीर शब्दके अनुसार मैंने जो कुछ पुण्य उपार्जन किया है, इस समय तुम उसको ग्रहण करो। ( ६-७ )

इसके अनन्तर उशीनरपुत्र शिबि मधुर वचनोंमें बोले, हे राजन् ! मैंने बालक और स्त्रियोंके समीपमें भी कभी मिथ्या वचन नहीं कहा है, हंसी, युद्ध, जीत, हार, आपत्काल, जुएका खेल और व्यसनके समयमें भी कभी मैंने झूठ वचन नहीं कहा है; उसी सत्यके प्रभावसे तुम स्वर्गको जाओ। जिस

सत्यके निमित्त मैं राज्य, कर्म, सुख और प्राण भी त्याग सकता हूँ; उसी सत्यके प्रभावसे तुम स्वर्ग लोकमें जाओ। जिस सत्यके प्रभावसे धर्म, अग्नि और इन्द्र मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं; उसी सत्यके सहित तुम स्वर्गको जाओ। ८-११

अनन्तर कौशिकवंशमें उत्पन्न हुए, माधवीपुत्र अष्टक, बहुत यज्ञ करनेवाले राजा ययातिसे बोले, —हे राजेन्द्र ! मैंने पुण्डरीक, गोमेध और वाजपेय आदि अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया है, तुम उन सबके फल भागी बनो। यज्ञके कार्य पूर्ण करनेके निमित्त मैंने जो धन,

क्रतुष्वनुपयुक्तानि तेन सत्येन खं व्रज ॥ १४ ॥

यथा यथा हि जल्पन्ति दौहित्रास्तं नराधिपम् ।

तथा तथा वसुमतीं त्यक्त्वा राजा दिवं ययौ ॥ १५ ॥

एवं सर्वे समस्तैस्ते राजानः सुकृतैस्तदा ।

ययातिं स्वर्गतो भ्रष्टं तारयामासुरञ्जसा ॥ १६ ॥

दौहित्राः स्वेन धर्मेण यज्ञदानकृतेन वै ।

चतुर्षु राजवंशेषु सम्भूताः कुलबर्धनाः ।

मातामहं महाप्राज्ञं दिवमारोपयन्त ते ॥ १७ ॥

राजान ऊचुः— राजधर्मगुणोपेताः सर्वधर्मगुणान्विताः ।

दौहित्रास्ते वयं राजन्दिवमारोह पार्थिव ॥ १८ ॥ [ ३९८३ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्दानपर्वणि

गालवचरिते ययातिस्वर्गारोहणे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

नारद उवाच— सद्भिरारोपितः स्वर्गं पार्थिवैर्भूरिदक्षिणैः ।

अभ्यनुज्ञाय दौहित्रान्ययातिर्दिवमास्थितः ॥ १ ॥

रत्न तथा दूसरी वस्तुओंको भी शेष नहीं रहने दिया; उसी सत्य निष्ठाके प्रभावसे आप स्वर्गको जाइये। (१२-१४)

इसी प्रकारसे दौहित्ररूपी उन चारों राजाओंने अपने अपने पुण्य और धर्मकी सहायतासे स्वर्गसे भ्रष्ट हुए राजा ययातिका उसी समय उद्धार कर दिया। वे लोग ऊपर कही हुई रीतिसे जैसे जैसे कहने लगे; राजा ययाति भी उसी प्रकारसे पृथ्वीकी सीमाको त्यागकर स्वर्गकी ओर जाने लगे, इससे यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा, कि शुद्ध राजवंशमें उत्पन्न हुए कुलको पवित्र करनेवाले उन चारों राजसिंहोंने ही महा बुद्धिमान् मातामह को फिर भी

स्वर्ग लोकमें भेज दिया। वे सब अपने अपने पुण्यके फलको प्रदान करके अन्तमें बोले, हे राजेन्द्र ! हम सब लोग तुम्हारे दौहित्र और सब गुणोंसे युक्त हैं। इससे हम लोगोंके धर्मकी सहायतासे तुम सब विघ्नोंसे रहित होकर स्वर्गको जाओ। (१५-१८) [ ३९८३ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ बाईस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ तेईस अध्याय ।

नारद मुनि बोले, राजा ययाति अनेक दक्षिणाओंके देनेवाले साधुचरित्रसे युक्त अपने दौहित्रोंके ऐसे कहनेपर उन लोगोंसे विदा होके फिर भी स्वर्गको गये और वहींपर निवास करने लगे। अपने सुकृत कर्मोंसे वर्द्धित होनेपर



अभिवृष्टश्च वर्षेण नानापुष्पसुगन्धिना ।  
 परिष्वक्तश्च पुण्येन वायुना पुण्यगन्धिना ॥ २ ॥  
 अचलं स्थानमासाद्य दौहित्रफलनिर्जितम् ।  
 कर्मभिः स्वैरुपचितो जज्वाल परया श्रिया ॥ ३ ॥  
 उपगीतोपवृत्तश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।  
 प्रीत्या प्रतिगृहीतश्च स्वर्गे दुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ४ ॥  
 अभिष्टुतश्च विविधैर्देवराजार्षिचारणैः ।  
 अर्चितश्चोत्तमार्धेण दैवतैरभिनन्दितः ॥ ५ ॥  
 प्राप्तः स्वर्गफलं चैव तमुवाच पितामहः ।  
 निर्वृतं शान्तमनसं वचोभिस्तर्पयन्निव ॥ ६ ॥  
 चतुष्पादस्त्वया धर्मश्चितो लोक्येन कर्मणा ।  
 अक्षयस्तव लोकोऽयं कीर्तिश्चैवाऽक्षया दिवि ॥ ७ ॥  
 पुनस्त्वयैव राजर्षे सुकृतेन विघातितम् ।  
 आवृतं तमसा चेतः सर्वेषां स्वर्गवासिनाम् ॥ ८ ॥  
 येन त्वां नाऽभिजानन्ति ततोऽज्ञातोऽसि पातितः ।

भी वह दौहित्रोंके पुण्य फलसे निश्चल  
 स्थानको पाकर अनेक सुगन्धित पुष्पोंसे  
 युक्त शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु  
 सेवन करते हुए परम शोभासे प्रकाशित  
 होने लगे । (१-३)

अप्सरा और गन्धर्व लोग अत्यन्त  
 ही प्रीतिके साथ उनके संमुख नृत्य  
 करने और गीत गाने लगे । देवताओं  
 के सेवक लोग नगाड़ेके शब्दसे  
 उन्हें आनन्दित करने लगे । अनेक  
 देवर्षि, राजर्षि, सिद्ध, चारण उनकी  
 स्तुति करने लगे और देवताओंने  
 उत्तम अर्घ्य प्रदान करके उनकी पूजा  
 की; तथा यथा उचित उनका सम्मान

किया । (४-५)

महा बुद्धिमान राजा ययातिके इस  
 प्रकारसे स्वर्गलोक पानेसे पितामह  
 ब्रह्माने अपने मीठे वचनोंसे उन्हें वृत्त  
 करते हुए यह कहा, कि हे राजर्षि !  
 तुमने लोक हितकर सब पुण्यके कर्मों-  
 को कर चतुष्पाद धर्म सञ्चय करके  
 स्वर्ग लोक पाया था; और इस स्थानमें  
 तुम्हारी कीर्तिका स्तम्भभी अक्षय था  
 परन्तु तुमने अपने अविचारके दोषसे  
 सम्पूर्ण स्वर्ग वासियोंके अन्तःकरणको  
 अज्ञानसे ऐसा ढांप दिया था, कि उस  
 समय कोई भी तुमको जान न सका;  
 इससे सबने जब तुम्हें नहीं जाना,

प्रतिलैव चाऽसि दौहित्रैस्तारितस्त्वमिहाऽऽगतः ॥ ९ ॥

स्थानं च प्रतिपन्नोऽसि कर्मणा स्वेन निर्जितम् ।

अचलं शाश्वतं पुण्यमुत्तमं ध्रुवमव्ययम् ॥ १० ॥

ययातिरुवाच- भगवन्संशयो मेऽस्ति कश्चित्तं छेत्तुमर्हसि ।

न ह्यन्यमहमर्हामि प्रष्टुं लोकपितामह ॥ ११ ॥

बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्धितम् ।

अनेकक्रतुदानौघैरर्जितं मे महत्फलम् ॥ १२ ॥

कथं तदल्पकालेन क्षीणं येनाऽस्मि पातितः ।

भगवन्वेत्थ लोकांश्च शाश्वतान्मम निर्मितान् ।

कथं नु मम तत्सर्वं विप्रनष्टं महाद्युते ॥ १३ ॥

पितामह उवाच- बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्धितम् ।

अनेकक्रतुदानौघैर्यत्त्वयोपार्जितं फलम् ॥ १४ ॥

तदनेनैव दोषेण क्षीणं येनाऽसि पातितः ।

अभिमानेन राजेन्द्र धिक्कृतः स्वर्गवासिभिः ॥ १५ ॥

नाऽयं मानेन राजर्षे न बलेन न हिंसया ।

तभी तुम स्वर्गसे गिराये गये । अनन्तर अपने दौहित्रोंके प्रतापसे फिर परित्राण पाकर स्वर्गमें आये हो और तुमने निजकर्मसे उपार्जित पुराने सब लोकोंको फिर प्राप्त करके अक्षय पदको पाया है । ( ६-१० )

राजा ययाति बोले, हे पितामह ! मुझे एक बड़ी भारी शङ्का उपास्थित हुई है; आप कृपा करके उसको मिटा दीजिए; आपके विद्यमान रहते दूसरेसे पूछना मुझे उचित नहीं है । वह शङ्का यही है, कि कई सहस्र वर्षतक मैंने प्रजापालन, दान और यज्ञ करके जो अनेक प्रकारसे पुण्य सञ्चय किया था,

वह थोड़े ही समयमें क्यों क्षीण होगया ? किस अपराधसे मैं स्वर्गसे गिराया गया ? हे महातेजस्विन् ! मेरे निमित्त जो सब शाश्वत लोक तैयार हुए थे; वह कुछ भी आपसे नहीं छिपे हैं; तब किस कारणसे वह सब नष्ट होगये ? ( ११-१३ )

ब्रह्मा बोले, हे राजेन्द्र ! तुमने दान यज्ञ आदि कर्मोंको करके जो बहुतसे पुण्य सञ्चित किये थे, उन सब पुण्योंके फलोंका केवल एक मात्र अभिमानके दोषसे ही क्षय हुआ था, और इसी निमित्त तुम स्वर्गवासी लोगोंसे धिक्कार पाकर स्वर्गसे गिराये गये थे । हे राजर्षि ! यह स्वर्ग लोक है; बल, अभिमान,

न शाख्येन न भाषाभिलोको भवति शाश्वतः ॥ १६ ॥

नाऽवमान्यास्त्वया राजन्नधमोत्कृष्टमध्यमाः ।

नहि मानप्रदग्धानां कश्चिदस्ति शमः क्वचित् ॥ १७ ॥

पतनारोहणमिदं कथयिष्यन्ति ये नराः ।

विषमाण्यपि ते प्राप्तास्तरिष्यन्ति न संशयः ॥ १८ ॥

नारद उवाच- एष दोषोऽभिमानेन पुरा प्राप्तो ययातिना ।

निर्वधताऽतिमात्रं च गालवेन महीपते ॥ १९ ॥

श्रोतव्यं हितकामानां सुहृदां हितमिच्छताम् ।

न कर्तव्यो हि निर्वन्धो निर्वन्धो हि क्षयोदयः ॥ २० ॥

तस्मात्त्वमपि गान्धारे मानं क्रोधं च वर्जय ।

सन्धत्स्व पाण्डवैर्वीर संरम्भं त्यज पार्थिव ॥ २१ ॥

ददाति यत्पार्थिव यत्करोति यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति ।

न तस्य नाशोऽस्ति न चाऽपकर्षो नाऽन्यस्तदश्नाति स एव कर्ता ॥ २२ ॥

हिंसा और शठतासे कभी कोई पुरुष  
यहां निवास नहीं कर सकता। इसलिए  
अबसे तुम उत्तम मध्यम और अधम  
पुरुषोंमें किसीकी की अवमानना मत  
करना। तुम्हें अधिक क्या कहूं, जो  
लोग अभिमानकी अग्निसे जलते हैं,  
उनके समान पापी यहां कहीं भी नहीं  
दीख पड़ते। हे राजन् ! जो मनुष्य  
तुम्हारे इस स्वर्गसे गिरने और फिर  
स्वर्गपर चढ़नेके विषयको कहेंगे और  
सुनेंगे, वह महा घोर आपदसे भी  
अनायास ही पार हो सकेंगे। इसमें  
कुछ भी सन्देह नहीं है। ( १४-१८ )

नारद मुनि बोले, हे नरनाथ ! पहिले  
समयमें राजा ययाति अभिमानसे और  
गालव मुनिने हठसे इतने दुःख और

क्लेश पाये थे। हितकी इच्छा करनेवाले  
पुरुषोंको सुहृद् लोगोंकी बातें अवश्य  
ही सुनना उचित है; हठके वशमें होना  
किसी प्रकारसे भी उचित नहीं है;  
क्योंकि हठ करनेसे केवल नाश होने,  
हीकी सम्भावना होती है। इससे हे  
गान्धारीनन्दन ! तुम भी अभिमान  
और क्रोध त्याग दो। हे वीर ! युद्धका  
आडम्बर छोड़कर पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि  
करो। ( १९-२१ )

हे राजन् ! मनुष्य जो कुछ दान  
और तपस्या आदि कर्म करते हैं; कभी  
उसका अनायास ही नाश नहीं होता  
और कर्मके करनेवाले के अतिरिक्त दूसरा  
कोई भी उस कर्मफलका भागी नहीं  
हो सकता। इस लोकमें जो मनुष्य राग,

इदं महाख्यानमनुत्तमं हितं बहुश्रुतानां गतरौषरागिणाम् । [ ४००६ ]

समीक्ष्य लोके बहुधा प्रधारितं त्रिवर्गदृष्टिः पृथिवीमुपादनुते ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि गालवचरिते त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- भगवन्नेवमेवैतद्यथा वदसि नारद ।

इच्छामि चाऽहमप्येवं न त्वीशो भगवन्नहम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच-एवमुक्त्वा ततः कृष्णमभ्यभाषत कौरवः ।

स्वर्ग्यं लोक्यं च मामात्थ धर्म्यं न्याय्यं च केशव ॥ २ ॥

न त्वहं स्ववशस्तात क्रियमाणं न मे प्रियम् ।

अङ्ग दुर्योधनं कृष्ण मन्दं शास्त्रातिगं मम ॥ ३ ॥

अनुनेतुं महाबाहो यतस्व पुरुषोत्तम ।

न शृणोति महाबाहो वचनं साधुभाषितम् ॥ ४ ॥

गान्धारीश्च हृषीकेश विदुरस्य च धीमतः ।

अन्येषां चैव सुहृदां भीष्मादीनां हितैषिणाम् ॥ ५ ॥

स त्वं पापमतिं कूरं पापचित्तमचेतनम् ।

द्वेष छोडकर अनेक शास्त्रके ज्ञान तथा युक्तिसे निश्चय किये हुए इस उपाख्यानको अपने हृदय में धारण करता है; वह धर्म, अर्थ और कामको प्राप्त करके पृथ्वीके राज्यको भोग कर सकता है । ( २२-२३ )

उद्योगपर्वमें एकसौ तेईस अध्याय समाप्त । ४००६

उद्योगपर्वमें एकसौ चौबीस अध्याय ।

नारद मुनिकी बात समाप्त होनेपर राजा धृतराष्ट्र बोले, हे भगवन् ! आपने जो कुछ वचन कहे, यह सब ही यथार्थ हैं । मेरी भी ऐसी ही इच्छा है; परन्तु क्या करूं, इच्छा रहनेपर भी मेरी कुछ भी प्रभुता नहीं है । ( १ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र नारदसे ऐसे वचन कह-

कर श्रीकृष्णचन्द्रको सम्बोधन करके बोले, हे कृष्ण ! तुमने हम लोगोंके निमित्त हितकारी, स्वर्गको साधन करनेवाले, धर्म और न्यायसे युक्त वचन कही हैं । परन्तु हे तात ! मैं स्वयं दूसरेके वशमें हो रहा हूं; नीचबुद्धि दुर्योधन मेरे प्यारे कार्य करनेमें प्रवृत्त नहीं होता है । हे महाबाहो पुरुषोत्तम ! इससे मेरी आज्ञा न माननेवाले इस मूर्ख दुष्टात्माको तुम ही सन्मार्गपर लानेके निमित्त यत्न करो । यह पापी; बुद्धिमान् विदुर, गान्धारी, भीष्म आदि सुहृद पुरुषोंकी बात नहीं सुनता । हे कृष्ण ! इससे तुम ही पापी और मूर्ख दुर्योधनको शासित करो; ऐसा करनेहीसे

अनुशाधि दुरात्मानं स्वयं दुर्योधनं नृपम् ॥ ६ ॥  
 सुहृत्कार्यं तु सुमहत्कृतं ते स्याज्जनार्दन ।  
 ततोऽभ्यवृत्त्य वाष्णेयो दुर्योधनममर्षणम् ॥ ७ ॥  
 अब्रवीन्मधुरां वाचं सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ।  
 दुर्योधन निबोधेदं मद्राक्ष्यं कुरुसत्तम ॥ ८ ॥  
 शमार्थं ते विशेषेण स्नानुबन्धस्य भारत ।  
 महाप्रज्ञकुले जातः साध्वेनत्कर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥  
 श्रुतवृत्तोपसम्पन्नः सर्वैः समुदितो गुणैः ।  
 दौष्कुलेया दुरात्मानो नृशंसा निरपन्नपाः ॥ १० ॥  
 त एतद्दीदृशं कुर्युर्यथा त्वं तात मन्यसे ।  
 धर्मार्थयुक्ता लोकेऽस्मिन्प्रवृत्तिर्लक्ष्यते सताम् ॥ ११ ॥  
 असतां विपरीता तु लक्ष्यते भरतर्षभ ।  
 विपरीता त्वियं वृत्तिरसकृल्लक्ष्यते त्वयि ॥ १२ ॥

तुम्हारा मित्रोंके निमित्त बहुत ही उचित और बड़ा भारी कार्य सिद्ध होगा । (२-६)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर सब धर्म जाननेवाले श्रीकृष्ण क्रोधी दुर्योधनके समीप जाकर इस प्रकारसे मधुर वचन कहने लगे । हे कुरुसत्तम दुर्योधन ! तुम युद्ध करनेके वास्ते अत्यन्त ही हठ करते हो; इससे तुम्हारी शान्तिके निमित्त मैं जो कहता हूँ, तुम अच्छी भाँतिसे चित्त लगाकर सुनो । हे भारत ! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो, तुम शास्त्र-ज्ञान, सदाचार और ऐश्वर्य आदि सब गुणोंसे युक्त हो; इससे मेरे वचनके अनुसार तुमको उत्तम व्यवहार अवश्य ही करना उचित है ।

हे तात ! तुम्हारे विचारसे जो कर्म करनेके योग्य निश्चित हो रहा है, वह नीच कुलमें उत्पन्न हुए दुष्टात्मा अधर्मी और लज्जाहीन पुरुष लोग ही किया करते हैं । (६-११)

हे भरतर्षभ ! इस सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच साधु स्वभावसे युक्त पुरुषोंकी ही प्रवृत्ति धर्म, अर्थसे युक्त देखी जाती है । नीच पुरुषोंके विषयमें यह सब बातें उलटी होती हैं; अर्थात् वह लोग जिस कार्यमें प्रवृत्त होते हैं; वह प्रायः अधर्म और अनर्थसे पूर्ण होता है । सम्प्रति तुम्हारे भी कार्यमें वही उलटी प्रवृत्ति बार बार होती देखते हैं । इस प्रकारकी प्रवृत्ति रखके जो तुम बहुत ही हठ करते हो, वह हठ अधर्मका मूल, भयका उत्पन्न

अधर्मश्चाऽनुबन्धोऽत्र घोरः प्राणहरो महान् ।  
 अनिष्टश्चाऽनिमित्तश्च न च शक्यश्च भारत ॥ १३ ॥  
 तमनर्थं परिहरन्नात्मश्रेयः करिष्यसि ।  
 भ्रातृणामथ भृत्यानां मित्राणां च परन्तप ॥ १४ ॥  
 अधर्म्यादयशस्याच्च कर्मणस्त्वं प्रमोक्ष्यसे ।  
 प्राज्ञैः शूरैर्महोत्साहैरात्मवद्भिर्बहुश्रुतैः ॥ १५ ॥  
 सन्धत्स्व पुरुषव्याघ्र पाण्डवैर्भरतर्षभ ।  
 तद्धितं च प्रियं चैव धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १६ ॥  
 पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य महामतेः ।  
 कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः ॥ १७ ॥  
 अश्वत्थाम्नो विकर्णस्य सञ्जयस्य विविंशतेः ।  
 ज्ञातीनां चैव भूयिष्ठं मित्राणां च परन्तप ॥ १८ ॥  
 शमे शर्म भवेत्तात सर्वस्य जगतस्तथा ।  
 हीमानसि कुले जातः श्रुतवाननृशंसवान् ॥  
 तिष्ठ तात पितुः शास्त्रे मातुश्च भरतर्षभ ॥ १९ ॥

करने वाला और महा अनर्थका कारण है; ऐसा क्या वह प्राण पर्यन्त नाश कर सकता है। इस प्रकारका निरर्थक हठ करनेका कोई कारण भी नहीं दीख पड़ता है, विशेष करके उसकी रक्षा भी तुम नहीं कर सकोगे। हे परन्तप ! इससे यदि तुम्हें वह अनर्थ त्याग कर अपने कल्याणके साधन करनेकी इच्छा होवे; यदि भाई सेवक और मित्रोंको इस अधर्मसे युक्त यशरहित कर्मसे निस्तार करनेकी अभिलाषा होवे; तो अत्यन्त पराक्रमी, महा बुद्धिमान्, महा उत्साहसे युक्त, शास्त्रोंके जाननेवाले, पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करो; ऐसा ही करनेसे उक्त अभि-

लाषा पूर्ण हो सकती है। ( ११-१६ )

सन्धिके करनेसे केवल तुम्हारा ही उपकार होगा, यह बात नहीं है; उससे राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य, सोमदत्त, बाह्लिक, अश्वत्थामा, विकर्ण, सञ्जय, विविंशति आदि सब साधु पुरुष, मित्र और ज्ञातिके लोगोंका भी बहुत ही हित साधन और प्रीतिकी वृद्धि होगी। हे तात ! तुम्हारी शान्तिसे सम्पूर्ण जगतके मङ्गलकी सम्भावना है। हे भरतर्षभ ! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो, शास्त्रज्ञ तेजस्वी और दयालु हो; इससे माता पिताकी आज्ञा पालन करना तुम्हें बहुत ही उचित है। ( १६-१९ )

एतच्छ्रेयो हि मन्यन्ते पिता यच्छास्ति भारत ।  
 उत्तमापद्गतः सर्वः पितुः स्मरति शासनम् ॥ २० ॥  
 रोचते ते पितुस्तात पाण्डवैः सह सङ्गमः ।  
 सामात्यस्य कुरुश्रेष्ठ तत्तुभ्यं तात रोचताम् ॥ २१ ॥  
 श्रुत्वा यः सुहृदां शास्त्रं मर्त्यो न प्रतिपद्यते ।  
 विपाकान्ते दहत्येनं किम्पाकमिव भक्षितम् ॥ २२ ॥  
 यस्तु निःश्रेयसं वाक्यं मोहान्न प्रतिपद्यते ।  
 स दीर्घसूत्रो हीनार्थः पश्चात्तापेन युज्यते ॥ २३ ॥  
 यस्तु निःश्रेयसं श्रुत्वा प्राक्तदेवाऽभिपद्यते ।  
 आत्मनो मतमुत्सृज्य स लोके सुखमेधते ॥ २४ ॥  
 योऽर्थकामस्य वचनं प्रातिकूलयान्न शृण्वते ।  
 शृणोति प्रतिकूलानि द्विषतां वशमेति सः ॥ २५ ॥  
 सतां मतमतिक्रम्य योऽसतां वर्तते मते ।  
 शोचन्ते व्यसने तस्य सुहृदो न चिरादिव ॥ २६ ॥

हे भरतर्षभ ! पिता जिस प्रकारसे  
 शासन करें, अच्छे पुत्र लोग उसीको  
 उत्तम समझते हैं। भारी विपदमें पड़ने-  
 पर भी मनुष्य पिताके शासनमें स्थित  
 रहते हैं। जब तुम्हारे पिताकी यही  
 इच्छा है, कि पाण्डवोंके सङ्ग मेल  
 होवे, तब तुमको भी सेवकोंके सहित  
 उसी कार्यकी इच्छा करनी योग्य है।  
 जो पुरुष सुहृद् लोगोंका वचन सुनकर  
 उसको नहीं ग्रहण करता, उसके कर्मोंके  
 फलके शेष होनेपर अवश्य वह महा  
 कालके मुखमें पड़के जलता रहता है।  
 मोहमें फँसकर जो पुरुष हितका वचन  
 नहीं कहता, वह अवश्य ही आलसी  
 और असमर्थ होकर पश्चात्ताप करता

रहता है। ( २०-२३ )

परन्तु जो बुद्धिमान् पुरुष अपना  
 मत त्याग कर हित चाहनेवाले मित्रोंकी  
 बात पहिले ही मान लेते हैं, वे इस  
 लोकमें परम सुखसे आनन्दित रहते हैं।  
 जो पुरुष हितैषी मित्रोंकी बात अपने  
 प्रतिकूल जानकर उसे ग्रहण नहीं कर-  
 ता; और नीच पुरुषोंके यथार्थ प्रति-  
 कूल वचन सुनता है; वह अवश्य ही  
 शत्रुओंके वशमें होजाता है। जो नीच-  
 बुद्धि उत्तम चरित्रवाले साधु पुरुषोंकी  
 बातको न मानकर दुष्ट पुरुषोंके मतके  
 अनुसार चलता है, उसके मित्र लोग  
 थोड़े ही समयमें उसे विपदमें पड़े हुए  
 देखकर शोक करते हैं। जो मूर्ख राजा

मुख्यानमात्यानुत्सृज्य यो निहीनान्निषेवते ।  
 स घोरापदं प्राप्य नोत्तारमधिगच्छति ॥ २७ ॥  
 योऽसत्सेवी वृथाचारो न श्रोता सुहृदां सताम् ।  
 परान्वृणीते स्वान्द्वेष्टि तं गौस्त्यजति भारत ॥ २८ ॥  
 स त्वं विरुद्धय तैर्वीरैरन्येभ्यस्त्राणमिच्छसि ।  
 अशिष्टेभ्योऽसमर्थेभ्यो मूढेभ्यो भरतर्षभ ॥ २९ ॥  
 को हि शक्रसमाज्ज्ञातीनतिक्रम्य महारथान् ।  
 अन्येभ्यस्त्राणमाशंसेत्त्वदन्यो भुवि मानवः ॥ ३० ॥  
 जन्मप्रभृति कौन्तेया नित्यं विनिकृतास्त्वया ।  
 न च ते जातु कुप्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥ ३१ ॥  
 मिथ्योपचरितास्तात जन्मप्रभृति बान्धवाः ।  
 त्वयि सम्यङ्महाबाहो प्रतिपन्ना यशस्विनः ॥ ३२ ॥  
 त्वयाऽपि प्रतिपत्तव्यं तथैव भरतर्षभ ।  
 स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु मा मन्युवशमन्वगाः ॥ ३३ ॥

गुणवान् तथा मुख्य सेवकोंको त्याग  
 करके अधम तथा दुष्ट मन्त्रियोंका आदर  
 करता है, वह महा घोर विपदरूपी  
 समुद्रमें गिरकर कभी उसके पार नहीं  
 जा सकता । ( २४—२७ )

हे भारत ! जो अनर्थ करनेवाला मूढ  
 राजा उत्तम स्वभावसे युक्त मित्रोंके  
 कल्याणकारी वचन न सुनके यथार्थ  
 मित्रोंसे द्वेष और दूसरे पुरुषोंका गौरव  
 करता है, उनको उत्तम पुरुषके वशमें  
 रहनेवाली पृथ्वी अवश्य ही परित्याग  
 करती है। हे भरतर्षभ ! तुम भी महावीर  
 पाण्डवोंके सङ्ग विरोध करके दुष्ट, अस-  
 मर्थ और मूढ लोगोंसे परित्राण पानेकी  
 आशा कर रहे हो । इस पृथ्वीमें तुम्हें

छोडकर और कौनसा मनुष्य इन्द्रके  
 समान महारथ ज्ञातिके लोगोंको त्याग-  
 कर दूसरे पुरुषोंसे परित्राण पाने की  
 इच्छा करेगा ? ( २८—३० )

तुम जन्मसे कुन्तीपुत्रोंको दुःख देते  
 चले आते हो; परन्तु धर्मात्मा पाण्डव  
 लोग तब भी तुम्हारे ऊपर क्रोध नहीं  
 करते हैं । हे महाबाहो ! तुम्हारे सदासे  
 कपट व्यवहार करने पर भी वे महा  
 यशस्वी परम स्नेह रखनेवाले मुख्य  
 बन्धु लोग जैसे तुम्हारे सङ्ग सदासे  
 उत्तम-आचार करते आते हैं, वैसा ही  
 व्यवहार तुमको भी करना उचित है; कि  
 क्रोधके वशमें न होकर इस समयसे भी  
 उन लोगोंके सङ्ग तुम उत्तम व्यवहार



त्रिवर्गयुक्तः प्राज्ञानामारम्भो भरतर्षभ ।  
 धर्मार्थावनुरुद्धयन्ते त्रिवर्गासम्भवे नराः ॥ ३४ ॥  
 पृथक्च विनिविष्टानां धर्मं धीरोऽनुरुद्धयते ।  
 मध्यमोऽर्थं कलिं बालः काममेवाऽनुरुद्धयते ॥ ३५ ॥  
 इन्द्रियैः प्राकृतो लोभाद्धर्मं विप्रजहाति यः ।  
 कामार्थावनुपायेन लिप्समानो विनश्यति ॥ ३६ ॥  
 कामार्थौ लिप्समानस्तु धर्ममेवाऽऽदितश्चरेत् ।  
 नहि धर्मादपैत्यर्थः कामो वाऽपि कदाचन ॥ ३७ ॥  
 उपायं धर्ममेवाऽऽहुस्त्रिवर्गस्य विशाम्पते ।  
 लिप्यमानो हि तेनाऽऽशु कक्षेऽग्निरिव वर्धते ॥ ३८ ॥  
 स त्वं ताताऽनुपायेन लिप्ससे भरतर्षभ ।  
 आधिराज्यं महदीपं प्रथितं सर्वराजसु ॥ ३९ ॥

करो । (३१-३३)

हे भरतर्षभ ! बुद्धिमान् पुरुष जिस कार्यको आरंभ करते हैं, वह धर्म, अर्थ और कामसे युक्त होता है । एक ही समयमें त्रिवर्ग कामोंका होना असम्भव मालूम होनेसे वे धर्म और अर्थ से युक्त कार्य करते हैं । यदि धर्म, अर्थ और काम एक एक करके प्राप्त करनेकी इच्छा होती है, तो उत्तम प्रकृतिके पण्डित लोग पहिले धर्महीके कार्यमें प्रवृत्त होते हैं; मध्यम प्रकृतिके लोग कलह हेतु अर्थ सिद्ध करते हैं । नीच प्रकृतिसे युक्त अधम पुरुष केवल काम ही में प्रवृत्त होते हैं । इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाला जो मूढ़ पुरुष धर्म और अर्थका त्याग करके नीच उपायसे केवल कामके सिद्ध करनेकी इच्छा करता

है; उसका शीघ्र ही नाश होता है । (३४-३६)

जो पुरुष काम और अर्थके सिद्ध करनेकी अभिलाषा करेगा, वह पहिले अधर्म आचरण अवश्य करेगा; क्योंकि अर्थ और काम कभी धर्मसे पृथक् नहीं रहते, अर्थात् धर्मके अनुसार सिद्ध न होनेपर अर्थ और काम सार्थक नहीं होते । हे राजेन्द्र ! पण्डितोंने धर्महीको त्रिवर्ग प्राप्त करनेका उपाय कहा है । क्योंकि जो बुद्धिमान् पुरुष धर्मको अवलम्बन करके त्रिवर्गके प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, वे सूखी लकड़ीकी अग्निकी भांति सदाही बढते रहते हैं । (३७-३८)

हे भरतर्षभ ! तुम केवल दुष्ट उपायसे ही सब राजाओंके बीच विख्यात होने

आत्मानं तक्षति ह्येष वनं परशुना यथा ।  
 यः सम्यग्वर्तमानेषु मिथ्या राजन्प्रवर्तते ।  
 न तस्य हि मतिं छिन्याद्यस्य नेच्छेत्पराभवम् ॥४०॥  
 अविच्छिन्नमतेरस्य कल्याणे धीयते मतिः ।  
 आत्मवान्नाऽवमन्येत त्रिषु लोकेषु भारत ॥ ४१ ॥  
 अप्यन्यं प्राकृतं किञ्चित्किमु तान्पाण्डवर्षभान् ।  
 अमर्षवशमापन्नो न किञ्चिद् बुद्ध्यते जनः ॥ ४२ ॥  
 छिद्यते ह्याततं सर्वं प्रमाणं पश्य भारत ।  
 श्रेयस्ते दुर्जनात्तात पाण्डवैः सह सङ्गतम् ॥ ४३ ॥  
 तैर्हि सम्प्रीयमाणस्त्वं सर्वान्कामानवाप्स्यसि ।  
 पाण्डवैर्निर्मितां भूमिं भुञ्जानो राजसत्तम ॥ ४४ ॥  
 पाण्डवान्पृष्ठतः कृत्वा त्राणमाशंससेऽन्यतः ।  
 दुःशासने दुर्विषहे कर्णे चापि ससौबले ॥ ४५ ॥

तथा सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको लेनेकी  
 अभिलाषा करते हो । हे राजन् ! जो  
 पुरुष सम्पूर्ण प्रकारसे सत्यव्यवहारमें  
 लगे हुए उत्तम स्वभावसे युक्त मनुष्यों  
 के सङ्ग कपट व्यवहार करता है, वह  
 कुठारसे वनको काटनेकी भांति अवश्य  
 ही अपना नाश करता है । जो किसीके  
 पराभव की इच्छा नहीं करता, उसकी  
 बुद्धि कभी नष्ट न होनेसे उस पुरुषका  
 चित्त कल्याणकारी विषयोंमें प्रवृत्त  
 रहता है, हे भारत ! अपनी आत्माके  
 कल्याणकी इच्छा करनेवाले जितेन्द्रिय  
 पुरुष-पाण्डवोंकी बात तो दूर रहे, इस  
 पृथ्वीके बीच साधारण मनुष्योंका भी  
 अपमान नहीं करते । जो पुरुष क्रोधके  
 वशमें होता है, उसको भले बुरेका कुछ

भी ज्ञान नहीं रहता; देखो लोक और  
 वेदमें प्रसिद्ध बड़े बड़े प्रमाण उसके  
 सम्मुख तुच्छ होते हैं । (३९-४३)

हे भारत ! दुष्ट पुरुषोंके सङ्गको  
 त्यागकर पाण्डवोंके सङ्ग सान्धि करनी  
 तुम्हारे निमित्त बहुत ही उत्तम है;  
 क्योंकि यदि वे लोग तुम्हारी प्रीति  
 पूर्ण करनेके निमित्त इच्छा करेंगे, तो  
 तुम्हारी सब अभिलाषा पूर्ण हो सकती  
 है । एक बार विचार करके देखो तो  
 सही, तुम पाण्डवोंके पराक्रमसे जीती  
 हुई इस समस्त पृथ्वीके राज्यका भोग  
 कर रहे हो; पाण्डवोंको छोड़कर अब  
 दूसरोंसे परित्राण पानेकी इच्छा करते  
 हो; दुर्विषह, दुःशासन, कर्ण और शकुनि  
 आदि कुमन्त्रियोंसे ऐश्वर्य लाभ करनेके

एतेष्वैश्वर्यमाधाय भूतिमिच्छासि भारत ।  
 न चैते तव पर्याप्ता ज्ञाने धर्मार्थयोस्तथा ॥ ४६ ॥  
 विक्रमे चाऽप्यपर्याप्ताः पाण्डवान्प्रति भारत ।  
 न हीमे सर्वराजानः पर्याप्ताः सहितास्त्वया ॥ ४७ ॥  
 क्रुद्धस्य भीमसेनस्य प्रेक्षितुं सुखमाहवे ।  
 इदं सन्निहितं तात समग्रं पार्थिवं बलम् ॥ ४८ ॥  
 अयं भीष्मस्तथा द्रोणः कर्णश्चाऽयं तथा कृपः ।  
 भूरिश्रवाः सौमदत्तिरश्वत्थामा जयद्रथः ॥ ४९ ॥  
 अशक्ताः सर्व एवैते प्रतियोद्धुं धनञ्जयम् ।  
 अजेयो ह्यर्जुनः संख्ये सर्वैरपि सुरासुरैः ॥  
 मानुषैरपि गन्धर्वैर्मा युद्धे चेत् आधिथाः ॥ ५० ॥  
 दृश्यतां वा पुमान्कश्चित्समग्रे पार्थिवे बले ।  
 योऽर्जुनं समरे प्राप्य स्वस्तिमानाव्रजेद्गृहान् ॥ ५१ ॥  
 किं ते जनक्षयेणेह कृतेन भरतर्षभ ।  
 यस्मिञ्जितं जितं तत्स्यात्पुमानेकः स दृश्यताम् ॥ ५२ ॥  
 यः सदेवान्सगन्धर्वान्सयक्षासुरपन्नगान् ।

निमित्त उन्मादी हो रहे हो । परन्तु पाण्डवोंके सङ्ग ये लोग ज्ञान, धर्म और पराक्रम किसीमें भी समान नहीं हैं । (४३-४७)

केवल येही लोग क्यों, उपास्थित सब राजा लोग ही युद्धके समयमें क्रोधसे पूर्ण तेजस्वी भीमसेनके मुखकी ओर न देख सकेंगे । हे महाबाहो ! भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, सोमदत्त, अश्वत्थामा और जयद्रथ आदि महावीर पुरुष तुम्हारे सहाय हैं; परन्तु अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें ये सबही असमर्थ हैं । इन लोगोंकी तो

बात ही क्या है ? देवता, असुर, गन्धर्व और मनुष्योंके सहित सब लोकके पुरुष भी इकट्ठे होकर युद्धमें अर्जुनको नहीं जीत सकते । (४७-५०)

हे तात ! इससे तुम युद्ध करनेमें कभी चित्त मत लगाओ; और तुम अपनी सेनाके बीचसे ऐसा कोई पुरुष बाहर तो करो, जो युद्धभूमिमें अर्जुनके हाथमें पड़कर शरीरसे कुशलपूर्वक बचके घर लौट सके ? जिसके जीतनेसे तुम्हारा विजय होवे, पाहिले ऐसे किसी पुरुषको खड़ा करो, नहीं तो व्यर्थ मनुष्योंके नाश करनेसे क्या प्रयोजन

अजयत्खाण्डवप्रस्थे कस्तं युद्धयेत मानवः ॥ ५३ ॥  
 तथा विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम् ।  
 एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ५४ ॥  
 युद्धे येन महादेवः साक्षात्सन्तोषितः शिवः ।  
 तमजेयमनाधृष्यं विजेतुं जिष्णुमच्युतम् ॥  
 आशंससीह समरे वीरमर्जुनमूर्जितम् ॥ ५५ ॥  
 मद्द्वितीयं पुनः पार्थ कः प्रार्थयितुमर्हति ।  
 युद्धे प्रतीपनायान्तमपि साक्षात्पुरन्दरः ॥ ५६ ॥  
 बाहुभ्यामुद्धहेद्भूमिं दहेत्कुद्ध इमाः प्रजाः ।  
 पातयेत्त्रिदिवादैवान्योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥ ५७ ॥  
 पश्य पुत्रांस्तथा भ्रातृज्ज्ञातीन्सम्बन्धिनस्तथा ।  
 त्वत्कृते न विनश्येयुरिमे भरतसत्तमाः ॥ ५८ ॥

है ? जिन्होंने खाण्डव वनमें अग्निको  
 तृप्त करते समय यक्ष, गन्धर्व, असुर  
 और नागोंके सहित सम्पूर्ण देवताओं-  
 को जीता था; उस अलौकिक वीरतासे  
 युक्त अर्जुनके सङ्ग कौन पुरुष युद्ध कर  
 सकता है ? विराट देशकी जो बड़ी  
 अद्भुत बात सुनी जाती है, अकेले अ-  
 र्जुनके साथ बहुतसी संख्यासे युक्त  
 मनुष्योंके संग्राममें यही एक अन्तिम  
 प्रमाण है । (५१-५४)

दूसरेकी तो बात ही क्या है, त्रिपु-  
 रासुरको विजय करने वाले साक्षात्  
 महादेव उसके युद्धसे प्रसन्न हुए हैं ।  
 उस असाधारण बल और पराक्रमसे युक्त  
 देवताओंमें अग्रगामी, प्रतापशाली जि-  
 ण्णुको तुम जीतनेकी अभिलाषा करते  
 हो इससे तुम्हारी कितनी मूर्खता

और दुराशा प्रकाशित हो रही है;  
 उनको मैं क्या कहूंगा ? संग्रामभूमिमें  
 विरुद्ध खड़े होनेवाले मेरे सहित अर्जुन-  
 को युद्ध के निमित्त आवाहन करनेमें  
 कौन पुरुष साहस कर सकता है ?  
 मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, साक्षात्  
 इन्द्र भी युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो  
 सकते । जो पुरुष युद्धमें अर्जुनको जीत  
 सकेगा, वह अपनी दोनों भुजाओंके  
 बलसे पृथ्वीको भी उड़ा सकेगा, क्रोध  
 करनेसे सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म कर  
 सकेगा और देवताओंको भी स्वर्गसे  
 भगानेमें समर्थ होगा । (५५-५७)

हे भरतर्षभ ! इससे तुम एक बार  
 पुत्र, पौत्र, भाई, जाति तथा दूसरे  
 सम्बन्धी आंख खोलकर देखो, भरत-  
 वंशमें उत्पन्न हुए सब उत्तम उत्तम

अस्तु शेषं कौरवाणां मा पराभूदिदं कुलम् ।  
 कुलग्न इति नोच्येथा नष्टकीर्तिर्नराधिप ॥ ५९ ॥  
 त्वामेव स्थापयिष्यन्ति यौवराज्ये महारथाः ।  
 महाराज्येऽपि पितरं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ६० ॥  
 मा तात श्रियमायान्तीमवसंस्थाः समुद्यताम् ।  
 अर्थं प्रदाय पार्थैभ्यो महतीं श्रियमाप्नुहि ॥ ६१ ॥  
 पाण्डवैः संशमं कृत्वा कृत्वा च सुहृदां वचः ।  
 सम्प्रीयमाणो मित्रैश्च चिरं भद्राण्यवाप्स्यसि ॥ ६२ ॥ [ ४०६८ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

भगवद्वाक्ये चतुर्विंशधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततः शान्तनवो भीष्मो दुर्योधनममर्षणम् ।  
 केशवस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच भरतर्षभ ॥ १ ॥  
 कृष्णेन वाक्यमुक्तोऽसि सुहृदां शममिच्छता ।  
 अन्वपद्यस्व तत्तात मा मन्युवशमन्वगाः ॥ २ ॥  
 अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः ।

महावीर पुरुष जिसमें तुम्हारे निमित्त नाश न हो जावे; कौरवोंका यह प्रतिष्ठित कुल इकबारगी शेष न हो जावे; और लोकमें “कीर्ति और कुलको नाश करनेवाला” कहके सब लोग जिसमें तुम्हारी निन्दा न करें, तुम वही कार्य करो। सन्धि करनेसे महारथ पाण्डव लोग तुमको ही युवराज और राजा धृतराष्ट्रको महाराज बनावेंगे। हे तात ! इससे सन्धिके निमित्त उद्यत हुई राजलक्ष्मीकी अवमानना न करो। पाण्डवोंको आधा राज्य देकर तुम इस पृथ्वीकी लक्ष्मीका लाभ उठाओगे। तुम मित्रोंके वचन मानकर यदि

पाण्डवोंके सङ्ग मेल करोगे, तो मित्रोंकी प्रीतिके पात्र होकर स्थिरतासे अपना कल्याण सिद्ध करनेमें समर्थ होओगे। ( ५८-६२ ) [ ४०६८ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ चौबीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ पच्चीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्ण चन्द्रकी बातोंको सुनकर शान्तनुपुत्र भीष्म क्रोधी दुर्योधनसे कहने लगे। हे तात ! मित्रोंकी शान्तिकी इच्छासे महात्मा कृष्णने तुमसे जो कुछ वचन कहे हैं, तुम क्रोध छोड़कर सब प्रकारसे उसी मार्गके अनुगामी होओ। महाबुद्धिमान कृष्णके इन उत्तम उपदेशोंसे भरे

श्रेयो न जातु न सुखं न कल्याणमवाप्स्यसि ॥ ३ ॥  
 धर्म्यमर्थं महाबाहुराह त्वां तात केशवः ।  
 तदर्थमभिपद्यस्व मा राज्ञीनशः प्रजाः ॥ ४ ॥  
 ज्वलितां त्वमिमां लक्ष्मीं भारतीं सर्वराजसु ।  
 जीवितां धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्याङ्गशयिष्यसि ॥ ५ ॥  
 आत्मानं च सहामात्यं सपुत्रभ्रातृबान्धवम् ।  
 अहमित्यनया बुद्ध्या जीविताङ्गशयिष्यसि ॥ ६ ॥  
 अतिक्रामन्केशवस्य तथ्यं वचनमर्थवत् ।  
 पितुश्च भारतश्रेष्ठ विदुरस्य च धीमतः ॥ ७ ॥  
 मा कुलघ्नः कुपुरुषो दुर्मतिः कापथं गमः ।  
 मातरं पितरं चैव मा मज्जीः शोकसागरे ॥ ८ ॥  
 अथ द्रोणोऽब्रवीत्तत्र दुर्योधनमिदं वचः ।  
 अमर्षवशमापन्नं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ॥ ९ ॥  
 धर्मार्थयुक्तं वचनमाह त्वां तात केशवः ।

वचन न माननेसे किसी भांतिसे तुम्हारा  
 कल्याण न होगा, तुम किसी कालमें  
 भी यथार्थ सुख और कल्याणका  
 दर्शन न कर सकोगे । हे राजन् !  
 महाबाहु कृष्णने धर्म, अर्थसे भरे हुए  
 इष्टसाधक उत्तम ही वचन तुम्हारे नि-  
 मित्त कहे हैं; इससे तुम एकाग्र चित्तसे  
 उन बातोंको स्वीकार कर लो; निरर्थक  
 सब प्रजाका नाश मत करो । (१-४)

हे भरतश्रेष्ठ ! महा बुद्धिमान् कृष्ण,  
 बूढ़े प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र और विदुर, इन  
 लोगोंके अर्थसे युक्त यथार्थ वचन न  
 माननेसे तुम अन्धे राजा धृतराष्ट्रके  
 जीवित रहते ही अपनी दुष्टता और  
 नीचताके कारण सब राजाओंके बीच

बहुत बड़ी और प्रज्वलित इस राज  
 लक्ष्मीके नाश करनेका विधान करोगे  
 और अभिमानसे मतवाले होकर पुत्र,  
 पौत्र, भाई, सेवक और सम्बन्धियोंके  
 सहित अपने प्राण और धनका भी  
 निःसन्देह नाश करोगे । हे तात ! इस-  
 से मैं तुम्हें फिर भी बार बार निषेध  
 करता हूँ, कि तुम कुलघाती, कापुरुष,  
 दुष्टबुद्धि और कुमार्गगामी होकर माता  
 पिताको शोकरूपी महा समुद्रमें मत  
 डुबाओ । (५-८)

भीष्मके ऐसा कहके चुप होनेके  
 अनन्तर, द्रोणाचार्य लम्बी सांस लेते  
 हुए क्रोधी दुर्योधनसे यह वचन बोले,  
 हे तात ! श्रीकृष्ण और शान्तनुपुत्र

तथा भीष्मः शान्तनवस्तज्जुषस्व नराधिप ॥ १० ॥

प्राज्ञौ मेधाविनौ दान्तावर्थकामौ बहुश्रुतौ ।

आहतुस्त्वां हितं वाक्यं तज्जुषस्व नराधिप ॥ ११ ॥

अनुतिष्ठ महाप्राज्ञ कृष्णभीष्मौ यदूचतुः ।

माधवं बुद्धिमोहेन माऽवमंस्थाः परन्तप ॥ १२ ॥

ये त्वां प्रोत्साहयन्त्येते नैते कृत्याय कर्हिचित् ।

वैरं परेषां ग्रीवायां प्रतिमोक्षयन्ति संयुगे ॥ १३ ॥

मा जीघनः प्रजाः सर्वाः पुत्रान्भ्रातृस्तथैव च ।

वासुदेवार्जुनौ यत्र विद्वयजेयानलं हि तान् ॥ १४ ॥

एतच्चैव मतं सत्यं सुहृदोः कृष्णभीष्मयोः ।

यदि नाऽऽदास्यसे तात पश्चात्तप्स्यसि भारत ॥ १५ ॥

यथोक्तं जामदग्न्येन भूयानेष ततोऽर्जुनः ।

भीष्मने तुमसे जो कुछ धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहे हैं; तुम सब शङ्का त्यागकर उन्हीं वचनोंके अनुसार चलो । हे राजेन्द्र ! ये लोग महाबुद्धिमान्, तेजस्वी, धर्मात्मा और शास्त्रोंको जाननेवाले हैं; विशेष करके दोनों ही तुम्हारे परम हितैषी हैं; इससे इस लोगोंने तुम्हारे हितहीके वचन कहे हैं; अब तुम भी सब संशय और शङ्का छोड़कर इनका वचन मान लो । ( ९-११ )

हे महाबुद्धिमन् ! हे परन्तप ! कृष्ण और भीष्मने जो बातें कही हैं, तुम उन्हींका अनुष्ठान करो, बुद्धिके मोहमें पड़कर किसी प्रकारसे भी कृष्णकी अवज्ञा मत करो । यह कर्ण आदि कुमन्त्री लोग जो सदाही बुरे परामर्शसे तुम्हें उत्साहित कर रहे हैं, ये लोग कभी

तुम्हारा विजय साधन करनेमें समर्थ न हो सकेंगे । युद्धके समयमें ये लोग दूसरेके ऊपर वैरको अर्पण करके निश्चित हो जायेंगे । हे राजेन्द्र ! इससे तुम समस्त प्रजा और पुत्र, भाई तथा इष्ट मित्रोंका व्यर्थ नाश मत करो । तुम इस बातको निश्चय पूर्वक जान रखो, कि जिस सेनामें कृष्ण और अर्जुन निवास करते हैं, वह बहुत ही अजेय है । ( १२-१४ )

हे तात ! हे भारत ! मित्रोंमें श्रेष्ठ कृष्ण और भीष्मने जो कुछ वचन कहे हैं, यदि तुम उन सत्य वचनोंको न मानोगे, तो अवश्यही तुम्हें पश्चात्ताप करना पड़ेगा । अर्जुनके विषयमें ऋषि-श्रेष्ठ परशुरामजीने जो कुछ कहा है, वह उससे भी सहस्र गुण श्रेष्ठ है । देवकी-

कृष्णो हि देवकीपुत्रो देवैरपि सुदुःसहः ।

किं ते सुखप्रियेणेह प्रोक्तेन भरतर्षभ ॥ १६ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यथेच्छसि तथा कुरु ।

नहि त्वासुत्सहे वक्तुं भूयो भरतसत्तम ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच-तस्मिन्वाक्यान्तरे वाक्यं क्षत्ताऽपि विदुरोऽब्रवीत् ।

दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रममर्षणम् ॥ १८ ॥

दुर्योधन न शोचामि त्वामहं भरतर्षभ ।

इमौ तु वृद्धौ शोचामि गान्धारीं पितरं च ते ॥ १९ ॥

यावनाथौ चरिष्येते त्वया नाथेन दुर्हृदा ।

हतमित्रौ हतामात्यौ लूनपक्षाविवाऽण्डजौ ॥ २० ॥

भिक्षुकौ विचरिष्येते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम् ।

कुलघ्नमीदृशं पापं जनयित्वा कुपूरुषम् ॥ २१ ॥

अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ।

आसीनं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥ २२ ॥

दुर्योधन निबोधेदं शौरिणोक्तं महात्मना ।

पुत्र श्रीकृष्णकी बात मैं क्या कहूंगा; देवता लोग भी इनका प्रताप नहीं सह सकते । हे भरतर्षभ ! तुम्हारे समीप प्यारे और सुख उत्पन्न करनेवाले वचन कहनेहीसे क्या फल होगा ? सुहृद लोगोंका जैसा कहना उचित है, वह सब कहा गया, इस समय जैसी तुम्हारी इच्छा होवे, वैसे ही कार्य तुम करो । तुमको अब अधिक बात कहनेकी मेरी इच्छा नहीं होती है । ( १५—१७ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, द्रोणाचार्यके वचनके शेष होनेपर महा बुद्धिमान् विदुर भी क्रोधी दुर्योधनके मुंहकी ओर देखकर यह वचन बोले । हे भरतसत्तम !

मैं तुम्हारे निमित्त कुछ भी शोक नहीं करता हूं; परन्तु ये जो बूढ़े तुम्हारे माता और पिता हैं, जो तेरे जैसे दुष्टबुद्धि के कारण अनाथ जैसे होंगे, मैं उन्हींके निमित्त शोकसे व्याकुल हो रहा हूं । अहो ! ऐसे कुलघाती पापी कुपुत्रको उत्पन्न करके वह मित्र सेवक और सम्बन्धियोंके मारे जानेपर भिक्षुक और पङ्खरहित पक्षीकी भांति इस पृथ्वी पर शोक करते हुए चारों ओर घूमेंगे, यही मुझे असह्य दुःख है । ( १८—२१ )

अनन्तर राजा धृतराष्ट्र भाइयोंके सहित राजाओंके बीचमें बैठे हुए दुर्योधनके यह वचन कहने लगे । हे पुत्र



आदत्स्व शिवमत्यन्तं योगक्षेमवदव्ययम् ॥ २३ ॥

अनेन हि सहायेन कृष्णेनाऽक्लिष्टकर्मणा ।

इष्टान्सर्वानभिप्रायान्प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥ २४ ॥

सुसंहतः केशवेन तात गच्छ युधिष्ठिरम् ।

चर स्वस्त्ययनं कृत्स्नं भरतानामनामयम् ॥ २५ ॥

वासुदेवेन तीर्थेन तात गच्छस्व संशमम् ।

कालप्राप्तमिदं मन्ये मा त्वं दुर्योधनाऽतिगाः ॥ २६ ॥

शमं चेद्याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यासि केशवम् ।

त्वदर्थमभिजल्पन्तं न तवाऽस्त्यपराभवः ॥ २७ ॥ [ ४०९५ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

भीष्मादिवाक्ये पञ्चविंशधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

वैशम्पायन उवाच-धृतराष्ट्रवचः श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ समन्वयौ ।

दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम् ॥ १ ॥

यावत्कृष्णावसन्नद्धौ यावत्तिष्ठति गाण्डिवम् ।

दुर्योधन ! महात्मा कृष्णने धर्म और अर्थसे युक्त जो कुछ शुभ वचन कहे हैं, वह तुम अवश्य अपने हृदयमें धारण करो। यह महा तेजस्वी कृष्ण जब हम लोगोंके सहाय बनेंगे, तो निःसन्देह हम लोग सब राजाओंके बीच सब प्रकारसे अपना अभीष्ट प्राप्त करेंगे इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। हे तात ! इससे तुम कृष्णके कहनेके अनुसार पाण्डवोंके संग सम्बन्ध करके युधिष्ठिरसे मेल करो; भरत कुलकी रक्षाका अनुष्ठा-न करो । (२२-२५)

आचार्यरूपी कृष्णका उपदेश मान कर शान्ति स्थापनके निमित्त प्रवृत्त हो जाओ । मेरी समझमें सन्धि करनेका

यही उत्तम समय उपस्थित हुआ है; इससे किसी प्रकारसे भी यह समय मत ढालो । दयावान् कृष्णने तुम्हारे हित और शान्तिके निमित्त ये सब बातें कही हैं । यदि इन वचनोंपर ध्यान न दोगे, तो निःसन्देह तुम्हारा पराजय होगा । ( २६-२७ ) [ ४०९५ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ पच्चीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ छत्वीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा धृतराष्ट्रके वचन सुन समदुःखी भीष्म और द्रोणाचार्य शासनको न माननेवाले दुर्योधनसे यह वचन बोले । हे भारत ! जबतक कृष्ण अर्जुन युद्धके निमित्त नहीं खड़े होते हैं; जबतक गाण्डीवधनुष स्थिर भावसे

यावद्वौम्यो न मेधाग्नौ जुहोतीह द्विषद्वलम् ॥ २ ॥

यावन्न प्रेक्षते क्रुद्धः सेनां तव युधिष्ठिरः ।

हीनिषेवा महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ३ ॥

यावन्न दृश्यते पार्थः स्वेऽप्यनिके व्यवस्थितः ।

भीमसेनो महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ४ ॥

यावन्न चरते मार्गान्पृतनामभिधर्षयन् ।

भीमसेनो गदापाणिस्तावत्संशाम्य पाण्डवैः ॥ ५ ॥

यावन्न शातयत्याजौ शिरांसि गजयोधिनाम् ।

गदया वीरघातिन्या फलानिव वनस्पतेः ॥ ६ ॥

कालेन परिपक्वानि तावच्छाम्यतु वैशसम् ।

नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ७ ॥

विराटश्च शिखण्डी च शैशुपालिश्च दंशिताः ।

यावन्न प्रविशन्त्येते नक्रा इव महार्णवम् ॥ ८ ॥

कृतास्त्राः क्षिप्रमस्यन्तस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ।

यावन्न सुकुमारेषु शरीरेषु महीक्षिताम् ।

गार्धपत्राः पतन्त्युग्रास्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ९ ॥

है; जबतक पुरोहित धौम्य यज्ञकी अग्निमें शत्रुओंका बल नहीं हवन करते हैं; लज्जाशील महारथ युधिष्ठिर जबतक क्रुद्ध होकर तुम्हारी सेनाके ऊपर दृष्टि नहीं करते हैं; जबतक वह भयङ्कर युद्ध आरम्भ नहीं होता है, तब ही तक इस विरोधकी शान्ति होनी उचित है । ( १-३ )

जबतक प्रचण्ड धनुष ग्रहण करके भीमसेन सम्मुख नहीं आता है और यमराजके समान गदा हाथमें लेकर जबतक सब सेनाका संहार नहीं करता है, तभीतक तुम पाण्डवोंके सङ्ग विरोध त्यागकर सन्धि कर लो । जबतक

भीमकी गदासे वृक्षसे पके हुए फलोंके समान गजयोधी वीरोंके शिर पृथ्वीमें नहीं गिरते हैं, तभीतक तुम सन्धिके निमित्त यत्न करो । ( ४-७ )

जबतक नकुल सहदेव, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, विशाट, शिशुपालके पुत्र आदि सब शस्त्रोंको जाननेवाले वीर लोग क्रोध धारण करके महासमुद्रमें नक्रकी भांति रणभूमिमें प्रवेश नहीं करते हैं, तभी तक विरोध त्याग करके सन्धिके निमित्त यत्न करो । जबतक राजाओंके कोमल शरीरमें चोखे बाण नहीं घुसते हैं, तभीतक सन्धि होनी

चन्दनागुरुदिग्धेषु हारनिष्कधरेषु च ।  
 नोरःसु यावद्याधानां महेष्वासर्महेश्वरः ॥ १० ॥  
 कृतास्त्रैः क्षिप्रमस्यद्भिर्दूरपातिभिरायसाः ।  
 अभिलक्ष्यैर्निपात्यन्ते तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ११ ॥  
 अभिवादयमानं त्वां शिरसा राजकुञ्जरः ।  
 पाणिभ्यां प्रतिगृह्णातु धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥  
 ध्वजाङ्कुशपताकाङ्कं दक्षिणं ते सुदक्षिणः ।  
 स्कन्धे निक्षिपतां बाहुं शान्तये भरतर्षभ ॥ १३ ॥  
 रत्नौषधिसमेतेन रत्नाङ्गुलितलेन च ।  
 उपविष्टस्य पृष्ठं ते पाणिना परिमार्जतु ॥ १४ ॥  
 शालस्कन्धो महाबाहुस्त्वां स्वजानो वृकोदरः ।  
 साम्नाऽभिवदतां चापि शान्तये भरतर्षभ ॥ १५ ॥  
 अर्जुनेन यस्माभ्यां च त्रिभिस्तैरभिवादितः ।  
 सूर्ध्नि तान्समुपाग्राय प्रेम्णाऽभिवद पार्थिव ॥ १६ ॥  
 हृष्टा त्वां पाण्डवैर्वीरैर्भ्रातृभिः सह सङ्गतम् ।  
 यावदानन्दजाश्रूणि प्रमुञ्चन्तु नराधिपाः ॥ १७ ॥

उचित है । पाण्डवोंको उत्तेजित करने-  
 वाले, महा धनुर्दारी बहुत दूरके लक्ष्य  
 ( निशाने ) को वेधनेवाले, सब शस्त्रों-  
 को जाननेवाले सैनिक योद्धा लोग  
 जबतक चन्दनचर्चित मणि और हार से  
 शोभित योद्धाओंके वक्षस्थलपर लोहमय  
 शस्त्रोंको नहीं छोड़ते हैं, तभीतक शान्ति  
 होनी उचित है । ( ७-११ )

हे राजन् ! राजाओंमें श्रेष्ठ धर्मराज  
 युधिष्ठिर तुमको शिर झुका कर प्रणाम  
 करते हुए देखकर अपनी दोनों भुजा-  
 ओंसे ग्रहण करें, शान्तिके निमित्त  
 ध्वजा, अंकुश आदि चिन्हसे युक्त

अपना दहिना हाथ तुम्हारे कन्धपर  
 रखें और तुम्हारे बैठनेपर रत्न औष-  
 धिसे युक्त उज्ज्वल अंगूठियोंसे शोभित  
 अपनी हथेलीसे तुम्हारी पीठ ठोके । हे  
 भरतर्षभ ! महाबाहु भीमसेन तुम्हारे  
 सङ्ग मिलकर शान्तिके निमित्त तुमसे  
 बात चीत करें । अर्जुन और नकुल,  
 सहदेव भी जब तुम्हें प्रणाम करें तब  
 तुम उनका मस्तक संघकर उन लोगोंके  
 सङ्ग प्रीतिपूर्वक बातचीत करो । १२-१६

हे राजेन्द्र ! तुमको वीरोंमें अग्रगामी  
 पाण्डव भाईयोंके सङ्ग मिलते हुए देखकर  
 सम्पूर्ण राजा लोग आनन्दसे आंसू

दुष्यतां राजधानीषु सर्वसम्पन्महीक्षिताम् ।

पृथिवी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरो भव ॥ १८ ॥ [४११३]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

वैशम्पायन उवाच-श्रुत्वा दुर्योधनो वाक्यमप्रियं कुरुसंसदि ।

प्रत्युवाच महाबाहुं वासुदेवं यशस्विनम् ॥ १ ॥

प्रसमीक्ष्य भवानेतद्वक्तुमर्हति केशव ।

मामेव हि विशेषेण विभाष्य परिगर्हसे ॥ २ ॥

भक्तिवादेन पार्थानामकस्मान्मधुसूदन ।

भवान्गर्हयते नित्यं किं समीक्ष्य बलाबलम् ॥ ३ ॥

भवान्क्षत्ता च राजा वाऽप्याचार्यो वा पितामहः ।

मामेव परिगर्हन्ते नाऽन्यं कश्चन पार्थिवम् ॥ ४ ॥

न चाऽहं लक्ष्ये कश्चिद्व्यभिचारमिहाऽऽत्मनः ।

अथ सर्वे भवन्तो मां विद्विषन्ति सराजकाः ॥ ५ ॥

न चाऽहं कश्चिदत्यर्थमपराधमरिन्दम ।

विचिन्तयन्प्रपश्यामि सुसूक्ष्ममपि केशव ॥ ६ ॥

गिरावेंगे। समस्त राजाओंकी राजधानियों में तुम लोगोंके आपसमें भ्रातृभावसे मिलनेकी घोषणा होगी। अधिक क्या कहें, तुम लोग भ्रातृभावसे आपसमें मिलकर सम्पूर्ण पृथ्वीकी राजलक्ष्मी भोगते हुए सब शोक और चिन्तासे रहित होओगे। (१७-१८) [४११३]

उद्योगपर्वमें एकसौ छब्बीस अध्याय समाप्त।

उद्योगपर्वमें एकसौ सताईस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले; राजा दुर्योधन कौरवोंकी सभाके बीचमें अप्रिय वचन सुनकर महाबाहु यशस्वी श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले, आपने जो कुछ वचन कहे, वह अच्छे प्रकारसे विचार-

कर कहना उचित था। हे मधुसूदन ! पाण्डवोंकी भक्तिके वशमें होकर उक्त प्रकारके वचनोंसे तुमने मेरी बहुत ही निन्दा की है। परन्तु मैं पूछता हूं, कि तुम कौनसे विशेष हेतुका विचारकर इस प्रकारसे मेरी सदा निन्दा करते हो ? केवल तुम ही नहीं; विदुर, राजा, आचार्य और पितामह भी दूसरे सब राजाओंको छोड़कर केवल मेरी ही निन्दा करते रहते हैं। मैंने अपनी ओरसे कोई दोष नहीं किया है; तौ भी तुम तथा दूसरे राजा लोग मुझसे द्वेष करते हैं। (१-५)

हे शत्रुनाशन कृष्ण ! मैं एकाग्र चित्तसे विचार कर देखता हूं, तौ भी

प्रियाभ्युपगते द्यूते पाण्डवा मधुसूदन ।  
 जिताः शकुनिना राज्यं तत्र किं मम दुष्कृतम् ॥ ७ ॥  
 यत्पुनर्द्रविणं किञ्चित्त्राऽजीयन्त पाण्डवाः ।  
 तेभ्य एवाऽभ्यनुज्ञातं तत्तदा मधुसूदन ॥ ८ ॥  
 अपराधो न चाऽस्माकं यत्ते ह्यक्षैः पराजिताः ।  
 अजेया जयतां श्रेष्ठ पार्थाः प्रव्राजिता वनम् ॥ ९ ॥  
 केन वाऽप्यपवादेन विरुद्धयन्त्यरिभिः सह ।  
 अशक्ताः पाण्डवाः कृष्ण प्रहृष्टाः प्रत्यमित्रवत् ॥ १० ॥  
 किमस्माभिः कृतं तेषां कस्मिन्वा पुनरागसि ।  
 धार्तराष्ट्रास्त्रिधांसन्ति पाण्डवाः सृज्यैः सह ॥ ११ ॥  
 न चाऽपि वयमुग्रेण कर्मणा वचनेन वा ।  
 प्रभ्रष्टाः प्रणमामेह भयादपि शतक्रतुम् ॥ १२ ॥  
 न च तं कृष्ण पश्यामि क्षत्रधर्ममनुष्ठितम् ।  
 उत्सहेत युधा जेतुं यो नः शत्रुनिबर्हण ॥ १३ ॥

तुम्हारा कोई भारी अपराध मुझसे नहीं हुआ है, भारी अपराध क्यों ? मेरा तनिक भी दोष नहीं दीख पड़ता है । हे मधुसूदन ! पाण्डवोंके प्रिय और इच्छानुसार जुएके खेलमें शकुनिने जो उन लोगोंका राज्य जीत लिया था, उसमें मेरा क्या अपराध था ? किन्तु उस समयमें जो कुछ धन जीता गया था, वह उन्हीं लोगोंको लौटा देनेके लिये मैंने आज्ञा की थी । हे शत्रुनाशन ! पासेके खेलमें फिर भी हारकर जो अजेय पाण्डव वनको गये, उसमें भी मेरा कौनसा अपराध है ? (६-९)

हे कृष्ण ! वे लोग किस अपराधसे हम लोगोंको शत्रु स्थिर करते हैं ? और

असमर्थ होकर भी महार्षिके साथ हम लोगोंके सङ्ग विरोध करनेमें क्यों प्रवृत्त हो रहे हैं ? मैंने उन लोगोंकी कौनसी हानि की है ? कौनसे अपराधके कारण से वे सृज्योंके सहित धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी हिंसा करनेकी अभिलाषा करते हैं ? हम लोग क्या किसी कठोर कर्म अथवा वचनसे भयभीत होकर उनके संमुख शिर झुकावेंगे ? कभी नहीं; साक्षात् इन्द्र भी आवें तौ भी मैं किसी प्रकारसे न डरूंगा । (१०-१२)

हे शत्रुनाशन कृष्ण ! मैं क्षत्रिय धर्मके अनुष्ठान करनेवाले ऐसे किसी पुरुषको नहीं देखता हूं, जो हम लोगोंको जीतनेमें उत्साही हो सके ।

नहि भीष्मकृपद्रोणाः सकर्णा मधुसूदन ।  
 देवैरपि युधा जेतुं शक्याः किमुत पाण्डवैः ॥ १४ ॥  
 स्वधर्ममनुपश्यन्तो यदि माधव संयुगे ।  
 अस्त्रेण निधनं काले प्राप्स्यामः स्वर्गमेव तत् ॥ १५ ॥  
 मुख्यश्चैवैष नो धर्मः क्षत्रियाणां जनार्दन ।  
 यच्छयीमहि संग्रामे शरतल्पगता वयम् ॥ १६ ॥  
 ते वयं वीरशयनं प्राप्स्यामो यदि संयुगे ।  
 अप्रणम्यैव शत्रूणां न नस्तपस्यन्ति माधव ॥ १७ ॥  
 कश्च जातु कुले जातः क्षत्रधर्मेण वर्तयन् ।  
 भयादूर्तिं समीक्ष्यैवं प्रणमेदिह कर्हिचित् ॥ १८ ॥  
 उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।  
 अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कर्हिचित् ॥ १९ ॥  
 इति मातङ्गवचनं परीप्स्यन्ति हितेप्सवः ।  
 धर्माय चैव प्रणमेद्वाह्येभ्यश्च माद्विधः ॥ २० ॥  
 अचिन्तयन्कश्चिदन्यं यावज्जीवं तथाऽऽचरेत् ।

हे कृष्ण ! पाण्डवोंकी बात तो दूर है, साक्षात् देवता लोग भी भीष्म, द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य आदि मेरे महावीर योद्धाओंको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे कृष्ण ! अपने धर्मको पालन करते हुए, यदि दैव संयोगसे हम लोग संग्राममें मारे जावेंगे, तौ भी हम लोगोंको स्वर्ग लोक मिलेगा। हे जनार्दन ! हम लोग युद्धमें शरशय्यापर शयन करें, यही हम लोगोंके क्षत्रियकुलका परम धर्म है। हे कृष्ण ! इससे हम लोग शत्रुओंके सम्मुख शिर न झुकाकर वीर-शय्यापर शयन करेंगे; वह शय्या किसी प्रकारसे भी हम लोगोंको

सन्तापित न करेगी। (१३-१७)

वीरकुलमें उत्पन्न होकर धर्मका अनुष्ठान करनेवाला कौन पुरुष केवल अपने प्राणकी रक्षाके निमित्त शत्रुओंके सम्मुख शिर झुकावेगा ? आत्म-हितको चाहनेवाले बुद्धिमान् क्षत्रिय लोग "सदा ही उद्यमशील हों, किसी प्रकारसे भी मस्तक न झुकावें; क्योंकि उद्यम ही पुरुषार्थ है; यद्यपि और स्थानमें अवनत होवे, पर किसी कालमें भी शत्रुके सम्मुख शिर न झुकावे" मातङ्ग मुनिके इस वचनको सदा आदरके साथ ग्रहण करते रहते हैं। मेरे समान क्षत्रिय लोग और किसीकी भी चिन्ता न करके

एष धर्मः क्षत्रियाणां मतमेतच्च मे सदा ॥ २१ ॥

राज्यांशश्चाऽभ्यनुज्ञातो यो मे पित्रा पुराऽभवत् ।

न स लभ्यः पुनर्जातु मयि जीवति केशव ॥ २२ ॥

यावच्च राजा ध्रियते धृतराष्ट्रो जनार्दन ।

न्यस्तशस्त्रा वयं ते वाऽप्युपजीवाम माधव ।

अप्रदेयं पुरा दत्तं राज्यं परवतो मम ॥ २३ ॥

अज्ञानाद्वा भयाद्वापि मयि बाले जनार्दन ।

न तदद्य पुनर्लभ्यं पाण्डवैर्वृष्णिनन्दन ॥ २४ ॥

ध्रियमाणे महाबाहौ मयि सम्प्रति केशव ।

यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विद्धयेदग्रेण केशव ॥

तावदप्यपरित्याज्यं भूमेनः पाण्डवान्प्रति ॥ २५ ॥ [४१३८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

दुर्योधनवाक्ये सप्तविंशधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

वैशम्पायन उवाच- ततः प्रशम्य दाशार्हः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।

धर्मके निमित्त केवल ब्राह्मणको ही प्रणाम करेंगे, परन्तु दूसरे लोगोंके साथमें जीवन पर्यन्त मातङ्ग मुनिके ऊपर कहे हुए वचनके अनुसार व्यवहार करेंगे । यही क्षत्रियोंका धर्म और यही मेरा निश्चित मत है । ( १८-२१ )

हे कृष्ण ! पहिले पाण्डवोंको जो मेरे पिताने राज्यका अंश दे दिया था; इस समय मेरे जीवित रहते वे लोग किसी प्रकारसे भी नहीं पा सकेंगे । राजा धृतराष्ट्र जबतक जीवित हैं तबतक क्या हम लोग और क्या वे लोग सब-हीको शस्त्र त्यागकर उनका उपजीवी बनना पड़ेगा ! हे कृष्ण ! जबतक मैं बालक और दूसरेके आधीनमें था, उस

समय मेरे पिताने अज्ञानसे अथवा भयसे ही मेरा राज्य पाण्डवोंको दिया था । परन्तु अब वह राज्य किसी प्रकारसे भी नहीं दिया जा सकता । हे वृष्णि-नन्दन ! हे महाबाहो केशव ! अब इस समयमें दुर्योधनके जीवित रहते वे लोग किसी कालमें भी वह राज्य फिर नहीं पा सकते । अधिक क्या कहूं, तीक्ष्ण सुईके नोकसे जितनी भूमि विद्ध हो सकती है, मेरे राज्यसे उतनी भूमि भी पाण्डवोंको नहीं दी जावेगी । २२-२५

उद्योगपर्वमें एकसौ सत्ताईस अध्याय समाप्त ४१३८

उद्योगपर्वमें एकसौ अठाईस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर श्रीकृष्ण क्रोध-पूरित नेत्रोंसे दुर्योधनकी

दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ १ ॥  
 लप्स्यसे वीरशयनं काममेतदवाप्स्यसि ।  
 स्थिरो भव सहामात्यो विमर्दो भविता महान् ॥ २ ॥  
 यच्चैवं मन्यसे मूढ न मे कश्चिद्व्यतिक्रमः ।  
 पाण्डवेष्विति तत्सर्वं निबोधत नराधिपाः ॥ ३ ॥  
 श्रिया सन्तप्यमानेन पाण्डवानां महात्मनाम् ।  
 त्वया दुर्मन्त्रितं द्यूतं सौबलेन च भारत ॥ ४ ॥  
 कथं च ज्ञातयस्तात श्रेयांसः साधुसम्मताः ।  
 अथाऽन्याय्यमुपस्थातुं जिह्वेनाऽजिह्वचारिणः ॥ ५ ॥  
 अक्षयूतं महाप्राज्ञ सतां मतिविनाशनम् ।  
 असतां तत्र जायन्ते भेदाश्च व्यसनानि च ॥ ६ ॥  
 तदिदं व्यसनं घोरं त्वया द्यूतमुखं कृतम् ।  
 असमीक्ष्य सदाचारैः सार्धं पापानुबन्धनैः ॥ ७ ॥  
 कश्चाऽन्यो भ्रातृभार्या वै विप्रकर्तुं तथाऽर्हति ।  
 आनीय च सभां व्यक्तं यथोक्ता द्रौपदी त्वया ॥ ८ ॥

ओर देखकर हंसते हुए यह वचन बोले,  
 हे दुर्योधन ! तुम धीरज धरो, तुम  
 मंत्रियोंके सहित अवश्य ही वीरशय्या  
 प्राप्त करोगे; शीघ्र ही तुम्हारी यह  
 अभिलाषा पूर्ण होगी; क्योंकि महा  
 मयङ्कर युद्ध अब अवश्य ही शुरू  
 होगा । रे मूर्ख ! तू कहता है, कि  
 “पाण्डवोंके विषयमें मैंने कोई अपराध  
 नहीं किया है,” इस बातको सब ही  
 राजा लोग अच्छी प्रकारसे मालूम करें ।  
 हे भारत ! तुमने पाण्डवोंका महा  
 ऐश्वर्य देखके जलकर शकुनिके सङ्ग  
 दुष्ट विचार करके जुएका खेलरूपी कपट  
 व्यवहार किया था; वह किसको विदित

नहीं है ? ( १-४ )

हे भारत ! सरल स्वभावसे युक्त श्रेष्ठ  
 पाण्डव लोग इस कपटी शकुनि के  
 साथ इस जुएके सदृश अन्याय कर्म  
 करनेमें कैसे प्रवृत्त हुए थे; यह बात  
 भी कौन नहीं जानता है ? ( ५ )

हे महाबुद्धिमान् ! जुएके खेल में  
 साधु पुरुषोंकी बुद्धिका भी नाश होता  
 है; और दुष्ट लोगोंमें सुहृद्भेद तथा  
 नानाप्रकारके विपदकी उत्पत्ति होती  
 है । तुमने साधु पुरुषोंके सङ्ग विना  
 परामर्श किये ही केवल पापबुद्धि और  
 दुराचारी लोगोंकी कुमन्त्रणासे उस दुष्ट  
 जुआ रूपी घोर व्यसनका आरंभ किया



कुलीना शीलसम्पन्ना प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।  
 महिषी पाण्डुपुत्राणां तथा विनिकृता त्वया ॥ ९ ॥  
 जानन्ति कुरवः सर्वे यथोक्ताः कुरुसंसदि ।  
 दुःशासनेन कौन्तेयाः प्रव्रजन्तः परन्तपाः ॥ १० ॥  
 सम्यग्वृत्तेष्वलुब्धेषु सततं धर्मचारिषु ।  
 स्वेषु बन्धुषु कः साधुश्चरेदेवमसाम्प्रतम् ॥ ११ ॥  
 नृशंसानामनार्याणां पुरुषाणां च भाषणम् ।  
 कर्णदुःशासनाभ्यां च त्वया च बहुशः कृतम् ॥ १२ ॥  
 सह मात्रा प्रदग्धुं तान्बालकान्वारणावते ।  
 आस्थितः परमं यत्नं न समृद्धं च तत्तव ॥ १३ ॥  
 ऊषुश्च सुचिरं कालं प्रच्छन्नाः पाण्डवास्तदा ।  
 मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ १४ ॥  
 विषेण सर्पबन्धैश्च यतिताः पाण्डवास्त्वया ।

था । पाण्डवोंको प्राणसे बढकर प्रिय, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई, शीलसे युक्त द्रौपदीको तुमने महा सभामें बुलाके अनेक भांतिसे कट्टाकृति और हंसी करके जैसा असह्य दुःख दिया था, इस पृथ्वी-के बीचमें कौन पुरुष भाईके स्त्रीकी वैसी दुर्दशा करनेमें प्रवृत्त होसकता है ? ( ५—९ )

और जब तेजस्वी कुन्तीपुत्र वनको चले थे, उस समय दुष्ट दुःशासनने उन लोगोंको जो कुछ वचन कहे थे, वे सब कौरवोंके बीचमें किसको विदित नहीं हैं ? साधु पुरुष, उत्तम चरित्रवाले, धर्मात्मा, लोभ रहित अपने आत्मीय बन्धु बान्धवोंके सङ्ग ऐसा अयोग्य और अनुचित व्यवहार कौन करता है ?

निष्ठुर अनाचारी और नीच पुरुषोंको जैसा वचन कहना उचित है, वैसे ही वचन कर्ण, दुःशासन और तुमने बार बार कहे थे । ( १०—१२ )

पाण्डव लोग जिस समय बालक थे उसी समय वारणावत नगरमें तुमने उनको लाक्षागृहमें बलानेके निमित्त परम यत्न किया था, परन्तु प्रारब्धसे तुम्हारा वह यत्न सिद्ध नहीं हुआ । उस महाघोर कष्टसे बचकर उन लोगोंने एकचक्रानगरीमें किसी ब्राह्मणके घरमें वेष बदल कर बहुत दिनों तक माताके सङ्ग वास किया था । और भी देखो, तुमने विष और सर्प आदि सब प्रकारके उपायसे उन लोगोंके नाश करनेकी चेष्टा की थी; परन्तु किसी उपायसे भी

सर्वोपायैर्विनाशाय न समृद्धं च तत्तव ॥ १५ ॥  
 एवंबुद्धिः पाण्डवेषु मिथ्यावृत्तिः सदा भवान् ।  
 कथं ते नाऽपराधोऽस्ति पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १६ ॥  
 यच्चैभ्यो याचमानेभ्यः पित्र्यमंशं न दित्ससि ।  
 तत्र पाप प्रदाताऽसि भ्रष्टैश्वर्यो निपातितः ॥ १७ ॥  
 कृत्वा बहून्यकार्याणि पाण्डवेषु नृशंसवत् ।  
 मिथ्यावृत्तिरनार्यः सन्नय विप्रतिपद्यसे ॥ १८ ॥  
 मातापितृभ्यां भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ।  
 शाम्येति सुहुरुक्तोऽसि न च शाम्यसि पार्थिव १९ ॥  
 शमे हि सुमहौल्लाभस्तव पार्थस्य चोभयोः ।  
 न च रोचयसे राजन्किमन्यद् बुद्धिलाघवात् ॥ २० ॥  
 न शर्म प्राप्स्यसे राजन्नुत्क्रम्य सुहृदां वचः ।  
 अधर्म्यमयशस्यं च क्रियते पार्थिव त्वया ॥ २१ ॥

कृतकार्य न होसके । इससे जब तुमने  
 इस प्रकारसे नीच बुद्धिके वशमें होकर  
 उन महात्माओंकी पद पद पर बुराई  
 की है, तब कैसे कहा जावे कि तुमने  
 उन लोगोंके विषयमें कुछ भी अपराध  
 नहीं किया है । (१३-१६)

अरे पापी ! उन लोगोंके प्रार्थना  
 करनेपर भी तू उनके पैतृक राज्यका  
 अंश इस समयमें नहीं देता है, यह  
 ठीक है; परन्तु जिस समयमें ऐश्वर्य  
 भ्रष्ट होगा तथा तू मारा जायगा, उसी  
 समयमें वह सब प्रदान करना पड़ेगा ।  
 आहा ! क्या आश्चर्यका विषय है, कि  
 तुम सदासे महा नीचता और मिथ्या  
 व्यवहार तथा अत्यन्त निष्ठुरताके सहि-  
 त पाण्डवोंके सङ्ग अनेक बुरे कर्मोंका

अनुष्ठान करके भी इस समयमें उसको  
 उलटा सिद्ध करके निर्दोषी बनना चाहते  
 हो ? हे राजन् ! तुम्हारे माता पिता,  
 भीष्म, द्रोणाचार्य और विदुर आदि  
 सज्जन पुरुष लोग तुमको “शान्त होइए”  
 यह वचन बार बार कहते हैं, तौ भी  
 तुम शान्तिके स्थापित होनेमें सहमत  
 नहीं होते हो । (१७-१९)

हे राजन् ! सन्धि होनेसे तुम्हें और  
 युधिष्ठिर दोनोंका परम कल्याण हो  
 सकता है; परन्तु उसमें तुम्हारी रुचि  
 नहीं होती है; इसमें तुम्हारी बुद्धिकी  
 लघुताके अतिरिक्त और क्या कहा जा  
 सकता है ? हे नरनाथ ! तुम सुहृद  
 लोगोंके वचन उल्लंघन करके किसी समय  
 में भी अपना कल्याण लाभ करनेमें समर्थ

वैशम्पायन उवाच- एवं ब्रुवन्ति दाशार्हे दुर्योधनममर्षणम् ।

दुःशासन इदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ २२ ॥

न चेत्सन्धास्यसे राजन्स्वेन कामेन पाण्डवैः ।

बध्वा किल त्वां दास्यन्ति कुन्तीपुत्राय कौरवाः ॥ २३ ॥

वैकर्तनं त्वां च मां च त्रीनेतान्मनुजर्षभ ।

पाण्डवेभ्यः प्रदास्यन्ति भीष्मो द्रोणः पिता च ते ॥ २४ ॥

भ्रातुरेतद्वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ।

क्रुद्धः प्रातिष्ठतोत्थाय महानाग इव श्वसन् ॥ २५ ॥

विदुरं धृतराष्ट्रं च महाराजं च बाल्किम् ।

कृपं च सोमदत्तं च भीष्मं द्रोणं जनार्दनम् ॥ २६ ॥

सर्वानेताननाहत्य दुर्मतिर्निरपत्रपः ।

अशिष्टवदमर्यादो मानी मान्यावमानिता ॥ २७ ॥

तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य भ्रातरो मनुजर्षभ ।

अनुजग्मुः सहाभात्या राजानश्चापि सर्वशः ॥ २८ ॥

न हो सकोगे; इससे जिस कर्मके अनुष्ठान करनेके निमित्त तुम हठ करते हो, वह महा अधर्म और अयश देनेवाला है । २०-२१

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इस प्रकारसे कहते हुए जब श्रीकृष्णचन्द्रने अपना वक्तव्य समाप्त किया, तब क्रूर-बुद्धि दुःशासन कौरवोंकी सभाके बीचमें क्रोधी दुर्योधनसे बोला, हे महाराज ! यदि तुम अपनी इच्छासे पाण्डवोंके सङ्गमें सन्धि न करोगे; तो कौरव लोग निश्चयही तुम्हें बांधकर पाण्डवोंको समर्पण करेंगे । दूसरेकी क्या बात है ? भीष्म, द्रोणाचार्य और तुम्हारे पिता महाराज धृतराष्ट्र—ये ही लोग कर्णको, तुम्हें और भुलिषको बांधके पाण्डवोंके

हाथमें समर्पण करेंगे । ( २२-२४ )

माईकी बात सुनकर माननीय लोकोंका अवमान करनेवाला, मर्यादासे रहित, लज्जाहीन, दुष्ट-बुद्धि दुर्योधनने क्रोधसे भरकर प्रचण्ड सर्पकी भांति लम्बी सांस लेते हुए अपने आसनपरसे उठकर राजा धृतराष्ट्र, श्रीकृष्ण, भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर, महाराज बाल्कि, कृपाचार्य और सोमदत्त आदि सब लोगोंका अनादर करके नीच पुरुषकी भांति सभासे प्रस्थान किया । राजा दुर्योधनको सभासे उठके चलते हुए देखकर सेवकोंके सहित उनके सब भाई और जितने राजा वहांपर बैठे थे, सब उनके पीछे चले । ( २५-२८ )

सभायासुत्थितं क्रुद्धं प्रस्थितं भ्रातृभिः सह ।  
 दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ २९ ॥  
 धर्मार्थावभिसन्त्यज्य संस्मृतं योऽनुमन्यते ।  
 हसन्ति व्यसने तस्य दुर्हृदो न चिरादिव ॥ ३० ॥  
 दुरात्मा राजपुत्रोऽयं धार्तराष्ट्रोऽनुपायकृत् ।  
 मिथ्याभिमानी राज्यस्य क्रोधलोभवशानुगः ॥ ३१ ॥  
 कालपक्रामिदं मन्ये सर्वं क्षत्रं जनार्दन ।  
 सर्वे ह्यनुसृता मोहात्पार्थिवाः सह मन्त्रिभिः ॥ ३२ ॥  
 भीष्मस्याऽथ वचः श्रुत्वा दाशार्हः पुष्करेक्षणः ।  
 भीष्मद्रोणमुखान्सर्वानभ्यभाषत वीर्यवान् ॥ ३३ ॥  
 सर्वेषां कुरुवृद्धानां महानयमतिक्रमः ।  
 प्रसह्य भन्दमैश्वर्यं न नियच्छत यद्वृषम् ॥ ३४ ॥  
 तत्र कार्यमहं मन्ये कालप्राप्तसरिन्दमाः ।  
 क्रियमाणे भवेच्छ्रेयस्तत्सर्वं शृणुताऽनघाः ॥ ३५ ॥

तब शान्तनुपुत्र भीष्म दुर्योधनको  
 इस प्रकारसे क्रोधसे भरकर सहसा  
 सभासे उठते और भाइयोंके सहित चलते  
 देखकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले, हे जनार्द-  
 न ! जो पुरुष धर्म और अर्थको त्याग  
 कर निज हठका ही अनुमोदन करता  
 है, उसके शत्रुलोग शीघ्र ही उसे व्यस-  
 नमें फंसे हुए देखकर हंसी करते हैं ।  
 यह नीचबुद्धि वृथा राज्यका अभिमान  
 करनेवाला दुष्टात्मा राजपुत्र दुर्योधन  
 केवल क्रोध और लोभके वशमें होकर  
 चलता है । इसके अनुगामी यह सम्पूर्ण  
 क्षत्रिय वीर कालसे पके हुए फलके  
 समान शीघ्र पतित होनेके योग्य बोध  
 हो रहे हैं; क्योंकि ये लोग मोहमें पड़

कर मन्त्रियोंके सहित सब ही दुर्योधनके  
 पीछे पीछे जा रहे हैं । ( २९-३२ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महा  
 पराक्रमी, कमल-नेत्र, यदुकुलभूषण  
 श्रीकृष्ण भीष्मके वचन सुनकर उनके  
 और द्रोणाचार्य आदि बूढ़े काँवरोंसे  
 बोले, आप लोग जो ऐश्वर्यसे दूषित  
 और सूर्यादारहित दुर्योधनको शासन  
 करके अच्छे मार्गमें नहीं लाते हैं, इससे  
 आप लोगोंमें बहुत भारी दोष लग  
 रहा है । हे शत्रुनाशन ! हे पापरहित !  
 उस विषयमें मैं यह कार्य उपयुक्त  
 समझता हूँ, इसका अनुष्ठान करनेसे  
 मंगल हो सकता है; इससे आप लोग  
 यह पूर्णरूपसे सुनिये । ( ३३-३५ )

प्रत्यक्षमेतद्भवतां यद्वक्ष्यामि हितं वचः ।  
 भवतामानुकूल्येन यदि रोचेत भारताः ॥ ३६ ॥  
 भोजराजस्य वृद्धस्य दुराचारो ह्यनात्मवान् ।  
 जीवतः पितुरैश्वर्यं हत्वा मृत्युवशं गतः ॥ ३७ ॥  
 उग्रसेनसुतः कंसः परित्यक्तः स बान्धवैः ।  
 ज्ञातीनां हितकामेन मया शस्तो महासृधे ॥ ३८ ॥  
 आहुकः पुनरस्माभिर्ज्ञातिभिश्चापि सत्कृतः ।  
 उग्रसेनः कृतो राजा भोजराजन्यवर्धनः ॥ ३९ ॥  
 कंसमेकं परित्यज्य कुलार्थे सर्वयादवाः ।  
 सम्भूय सुखमेधन्ते भारताऽन्धकवृष्णयः ॥ ४० ॥  
 अपि चाप्यवदद्राजन्परमेष्ठी प्रजापतिः ।  
 व्यूढे देवासुरे युद्धेऽभ्युद्यतेष्वायुधेषु च ॥ ४१ ॥  
 द्वैधीभूतेषु लोकेषु विनश्यत्सु च भारत ।  
 अब्रवीत्सृष्टिमान्देवो भगवाँल्लोकभावनः ॥ ४२ ॥  
 पराभविष्यन्त्यसुरा दैतेया दानवैः सह ।

हे भरतसत्तम ! मैं जिस बातका प्रस्ताव करूंगा, यदि वह आपके अनुकूल और मानने योग्य होवे, तो प्रत्यक्षमें कल्याण और हितकारक होगा । देखिये उग्रसेनका पुत्र दुराचारी कंस इन्द्रियोंके वशमें होकर पिताके जीवित रहते ही उस वृद्ध भोजराजका ऐश्वर्य हरण करके मृत्युके वशमें होगया था, उसकी उस नीचताको देखकर बन्धुबान्धवोंने उसे त्याग दिया और मैंने भी जातिके लोगोंके हितकी कामनासे महा युद्धमें उसका संहार किया था । फिर मैं और जातिके लोगोंने भोजराजके कुल में उत्पन्न हुए सब क्षत्रियोंको बढ़ानेवाले

आहुकपुत्र उग्रसेनका अच्छी प्रकारसे सत्कार करके फिर उनको राज्यका स्वामी बनाया । ( ३६-३९ )

हे भरतनन्दन महाराज धृतराष्ट्र ! इसी प्रकारसे कुलकी रक्षा करनेके निमित्त एक मात्र कंसको त्यागनेसे यदुवंशी अन्धक और वृष्णि लोग सहमत होके परम सुखसे बढ रहे हैं । और भी देखिये, जब देवासुरके महा युद्धमें कालस्वरूप सब शस्त्र उठे, तब सम्पूर्ण लोकोंके नाश होनेकी सम्भावना थी; उस समय सब लोकोंके पितामह प्रजापति भगवान् ब्रह्माने कहा था; कि इस युद्ध में असुर, दैत्य और दानव सब हार

आदित्या वसवो रुद्रा भविष्यन्ति दिवौकसः ॥ ४३ ॥  
 देवासुरमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः ।  
 अस्मिन्युद्धे सुसंकुद्धा हनिष्यन्ति परस्परम् ॥ ४४ ॥  
 इति सत्वाऽब्रवीद्धर्म परमेष्ठी प्रजापतिः ।  
 वरुणाय प्रयच्छैतान्बध्वा दैतेयदानवान् ॥ ४५ ॥  
 एवमुक्तस्ततो धर्मो न्रियोगात्परमेष्ठिनः ।  
 वरुणाय ददौ सर्वान्बध्वा दैतेयदानवान् ॥ ४६ ॥  
 तान्बध्वा धर्मपाशैश्च स्वैश्च पाशैर्जलेश्वरः ।  
 वरुणः सागरे यत्तो नित्यं रक्षति दानवान् ॥ ४७ ॥  
 तथा दुर्योधनं कर्णं शकुनिं चाऽपि सौवलम् ।  
 बध्वा दुःशासनं चापि पाण्डवेभ्यः प्रयच्छत ॥ ४८ ॥  
 त्यजेत्कुलार्थं पुरुषं ग्रामस्याऽर्थे कुलं त्यजेत् ।  
 ग्रामं जनपदस्याऽर्थे आत्मार्ये पृथिवीं त्यजेत् ॥ ४९ ॥  
 राजन्दुर्योधनं बध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः ।  
 त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ५० ॥ [४१८८]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्दानपर्वणि कृष्णवाक्ये अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

जावेंगे, और आदित्य, वसु, रुद्र, आदि देवता लोग विजयी होंगे; परन्तु देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प और मनुष्य आदि सब ही आपसमें लड़के नष्ट-प्राय हो जावेंगे । (४०-४४)

प्रजापति ब्रह्माने अपने मनमें ऐसा निश्चय करके धर्मको आज्ञा दी, कि इस सम्पूर्ण दैत्य दानवोंको बांधके वरुणके हाथमें समर्पण करो । ब्रह्माकी आज्ञा सुन के धर्मने समस्त दैत्य दानवोंको बांधके स्वामी वरुणने उन लोगोंको धर्मके और अपने फांसेसे बांधकर यत्नपूर्वक समुद्रके बीचमें रोक रक्खा । उसी प्रकारसे आप

लोग भी दुष्ट दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासनको बांधके पाण्डवोंके हाथमें समर्पण कीजिये । (४५—५८)

पाण्डितोंने कहा है, यदि एक पुरुषके त्यागनेसे कुल भरकी रक्षा होती हो, तो अवश्य ही उसको त्याग देना चाहिये; सम्पूर्ण गांव भरकी रक्षाके निमित्त कुलको, जन-पदके वास्ते गांवको और अपनी आत्माकी रक्षाके निमित्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीको भी त्याग देना चाहिये । हे क्षत्रियश्रेष्ठ महाराज धृतराष्ट्र ! आप दुर्योधनको शान्त करके पाण्डवोंके संग सन्धि स्थापित करें;

वैशम्पायन उवाच-कृष्णस्य तु वचः श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।

विदुरं सर्वधर्मज्ञं त्वरमाणोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥

गच्छ तात महाप्राज्ञां गान्धारीं दीर्घदर्शिनीम् ।

आनयेह तथा सार्थमनुनेष्यामि दुर्मतिम् ॥ २ ॥

यदि साऽपि दुरात्मानं शमयेदुष्टचेतसम् ।

अपि कृष्णस्य सुहृदस्तिष्ठेम वचने वयम् ॥ ३ ॥

अपि लोभाभिभूतस्य पन्थानमनुदर्शयेत् ।

दुर्वृद्धेर्दुःसहायस्य शमार्थं ब्रुवती वचः ॥ ४ ॥

अपि नो व्यसनं घोरं दुर्योधनकृतं महत् ।

शमयेच्चिररात्राय योगक्षेमवदव्ययम् । ॥ ५ ॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिनीम् ।

आनयामास गान्धारीं धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- एष गान्धारि पुत्रस्ते दुरात्मा शासनातिगः ।

ऐश्वर्यलोभादैश्वर्यं जीवितं च प्रहास्यति ॥ ७ ॥

आपके निमित्त जिसमें सब क्षत्रियोंका नाश न होने पावे । (४९-५०) [४१८८]

उद्योगपर्वमें एकसौ अठारहस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ उनतीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा धृतराष्ट्र श्रीकृष्णचन्द्रकी बातोंको सुनकर शीघ्रतापूर्वक सब धर्मोंके जाननेवाले विदुरसे बोले, हे वत्स ! तुम जलदी जाकर दीर्घ-दर्शिनी महा बुद्धिमती गान्धारीको इस स्थान पर बुला लाओ; उसके संग मिलकर मैं नीचबुद्धि दुर्योधनसे कुछ विनती करूंगा; वह भी यदि इस दुष्टको शान्त कर सके, तो भी हम लोग परम सुहृद् श्रीकृष्णचन्द्रके वचनोंकी रक्षा कर सकेंगे । (१-३)

शान्तिके प्रसंगसे गान्धारीको नीच बुद्धि, दुष्टोंकी सहायतासे युक्त, लोभसे भरे हुए, दुष्ट पुत्रोंको अच्छे मार्गमें ले आना कुछ भी असंभव नहीं है । प्रारब्धसे वह यदि दुर्योधनके किये हुए इस महा घोर व्यसनसे हम लोगोंको मुक्त कर सके, तो यह महा अनुष्ठान हम लोगोंके निमित्त सदाके लिये मंगलदायक होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । विदुर महाराज धृतराष्ट्रकी इन बातोंको सुनते ही शीघ्र दीर्घदर्शिनी गान्धारीको वहांपर बुला लाये । (४-६)

अनन्तर राजा धृतराष्ट्रने उन्हें सम्बोधन करके कहा, हे गान्धारी ! देखो यह

अशिष्टवदमर्यादः पापैः सह दुरात्मवान् ।

सभाया निर्गतो मूढो व्यतिक्रम्य सुहृद्वचः ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच-सा भर्तृवचनं श्रुत्वा राजपुत्री यशस्विनी ।

अन्विच्छन्ती महच्छ्रेयो गान्धारी वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

गान्धार्युवाच— आनायय सुतं क्षिप्रं राज्यकामुकमातुरम् ।

न हि राज्यमशिष्टेन शक्यं धर्मार्थलोपिना ॥ १० ॥

आप्तुमाप्तं तथापीदमविनीतेन सर्वथा ।

त्वं ह्येवाऽत्र भृशं गह्व्यो धृतराष्ट्र सुतप्रियः ॥ ११ ॥

यो जानन्पापतामस्य तत्प्रज्ञामनुवर्तसे ।

स एष काममन्युभ्यां प्रलब्धो लोभमास्थितः ॥ १२ ॥

अशक्योऽद्य त्वया राजन्विनिवर्तयितुं बलात् ।

राष्ट्रप्रदाने मूढस्य बालिशस्य दुरात्मनः ॥ १३ ॥

दुःसहायस्य लुब्धस्य धृतराष्ट्रोऽश्रुते फलम् ।

कथं हि स्वजने भेदमुपेक्षेत महीपतिः ।

शासनको लांघनेवाला तुम्हारा पापी पुत्र ऐश्वर्यके लोभमें पड़कर सब ऐश्वर्य तथा जीवनको भी विसर्जन करने केलिये तैयार हुआ है। वह मर्यादासे रहित, मूढबुद्धि, पापी, सुहृदलोंगोंकी बातोंको न मानकर महा मूर्खकी भांति पाप कर्म करनेवाले पामरोंके सङ्ग सभासे उठके चला गया है। (७-८)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वह यशस्विनी राजपुत्री गान्धारी स्वामीका वचन सुनकर यथार्थ कल्याणकी इच्छा से कहने लगी। हे महाराज ! उस राजमदसे मतवारे आतुर पुत्रको शीघ्र यहांपर बुलाइये। धर्म अर्थके नाश करनेवाले मूर्ख लोग कभी राज्य नहीं

पा सकते हैं; तौ भी उस विनय-रहित दुर्योधनने सब प्रकारसे राज्य प्राप्त किया है। हे महाराज धृतराष्ट्र ! इस विषयमें आपही अत्यन्त निन्दाके योग्य हैं; क्योंकि उसको पापबुद्धि जानकर भी केवल पुत्रके प्रेमके वशमें होकर आप उसकी बुद्धिको उलटना चाहते हैं। हे राजन् ! वह पाप बुद्धि दुर्योधन काम, क्रोध और मोहमें स्थित है; इससे अब उसको बलपूर्वक शान्त करनेकी आपकी शक्ति नहीं है। (९-१३)

नीच बुद्धि, दुष्ट मन्त्रियोंके कहेमें चलनेवाला अज्ञानी, पापी और लोभसे खिचे हुए पुरुषको आपने जो राज्य प्रदान किया था, उसीका फल इस



भिक्षं हि स्वजनेन त्वां प्रहसिष्यान्ति शत्रवः ॥ १४ ॥

या हि शक्या महाराज साम्रा भेदेन वा पुनः ।

निस्तर्तुमापदः स्वेषु दण्डं कस्तत्र पातयेत् ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच-शासनाद्धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनममर्षणम् ।

मातुश्च वचनात्क्षत्ता सभां प्रावेशयत्पुनः ॥ १६ ॥

स मातुर्वचनाकांक्षी प्रविवेश पुनः सभाम् ।

आभिताम्रेक्षणः क्रोधाग्निः श्वसन्निव पन्नगः ॥ १७ ॥

तं प्रविष्टमभिप्रेक्ष्य पुत्रसुतपथमास्थितम् ।

विगर्हमाणा गान्धारी शमार्थं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥

दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम पुत्रक ।

हितं ते सानुबन्धस्य तथाऽऽयत्यां सुखोदयम् ॥ १९ ॥

दुर्योधन यदाह त्वां पिता भरतसत्तम ।

भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता सुहृदां कुरु तद्वचः ॥ २० ॥

भीष्मस्य तु पितुश्चैव मम चाऽपचितिः कृता

भवेद् द्रोणसुखानां च सुहृदां शान्म्यता त्वया ॥ २१ ॥

समय भोग रहे हो । हे राजेन्द्र ! आत्मीय लोगोंके संग भेद होनेसे आप न जाने क्यों उपेक्षा कर रहे हैं, इसे मैं कुछ भी नहीं समझ सकती हूँ । शत्रु लोग तुमको दुष्ट मित्रों तथा बन्धु बान्धवोंसे हीन देखकर अवश्य ही हंसी करेंगे, इसमें किञ्चित् मात्र भी सन्देह नहीं है । हे महाराज ! आत्मीय पुरुषों के निकट साम तथा दानसे जब पार हो सकते हैं, तब कौन बुद्धिमान् पुरुष उस स्थानमें दण्डका प्रयोग करता है? १३-१५

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, गान्धारीके वचन और धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुर दुर्योधनको फिर सभामण्डपमें बुला

लाये । दुर्योधन माताके वचन सुननेकी इच्छासे क्रोधमें भरे, लाल नेत्रसे युक्त, महा प्रचण्ड सर्पके समान लम्बी सांस लेते जब फिर वहाँपर उपास्थित हुए; तब गान्धारी इस कुमार्गगामी दुष्ट पुत्रकी यथा उचित निन्दा करती हुई यह कहने लगी । ( १६—१८ )

हे पुत्र दुर्योधन ! एक बार ध्यान देकर मेरे इन हितकर वचनोंको सुनो । इसके माननेसे बन्धुबान्धवोंके सहित तुम परम सुखसे रहोगे । तुम्हारे पिता भरत सत्तम धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर आदि सुहृद लोगोंने तुम्हारे वास्ते जो वचन कहे हैं; उनको तुम निःसन्देह

नहि राज्यं महाप्राज्ञ स्वेन कामेन शक्यते ।  
 अवाप्तुं रक्षितुं वापि भोक्तुं भरतसत्तम ॥ २२ ॥  
 न ह्यवह्येन्द्रियो राज्यमश्रीयाद्दीर्घमन्तरम् ।  
 विजितात्मा तु मेधावी स राज्यमभिपालयेत् ॥ २३ ॥  
 कामक्रोधौ हि पुरुषमर्थेभ्यो व्यपकर्षतः ।  
 तौ तु शत्रून्विनिर्जित्य राजा विजयते महीम् ॥ २४ ॥  
 लोकेश्वरप्रभुत्वं हि सहदेनदुरात्मभिः ।  
 राज्यं नामेप्सितं स्थानं न शक्यमभिरक्षितुम् ॥ २५ ॥  
 इन्द्रियाणि महत्प्रेप्सुर्नियच्छेदर्थधर्मयोः ।  
 इन्द्रियैर्नियतैर्बुद्धिर्वर्धतेऽग्निरिवेन्धनैः ॥ २६ ॥  
 अविधेयानि हीमानि व्यापादयितुमप्यलम् ।  
 अविधेया इवाऽद्वान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥ २७ ॥

पालन करो। तुम्हारे शान्त होनेहीसे  
 भीष्म, धृतराष्ट्र, मेरी तथा द्रोण आदि  
 सुहृद पुरुषोंका पूर्ण आदर तथा सन्मान  
 होगा। ( १९-२१ )

हे महा बुद्धिमान् भरतर्षभ ! अपनी  
 केवल इच्छाके अनुसार ही कभी कोई  
 पुरुष राज्यकी प्राप्ति और भोग नहीं कर  
 सकता, इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाला मूढबु-  
 द्धि पुरुष बहुत दिनतक राज भोग कर-  
 नेमें कभी समर्थ नहीं होता। इन्द्रियोंको  
 वशमें करनेवाला, तेजस्वी बुद्धिमान् पुरुष  
 राज्य करनेका यथार्थ पात्र होता है।  
 काम और क्रोध ये दोनों ही पुरुषको  
 सब अर्थोंसे सदा आकर्षित करते रहते  
 हैं; इससे जो बुद्धिमान् राजा इन दोनों  
 प्रबल शत्रुओंको जीत सकता है, वही  
 इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतनेका अधि-

कारी होता है। ( २२-२४ )

लोकका स्वामी होकर प्रभुता करना  
 बहुत बड़ा कार्य है। दुष्टबुद्धि पामर  
 लोग सहजहीमें राज्य पदके पानेकी  
 अभिलाषा करते हैं, यह ठीक है; परन्तु  
 उसकी रक्षा करनी उनके सामर्थ्यसे  
 बाहर है। जो पुरुष इस ऊंचे पदको  
 पानेकी इच्छा करता है, उसे प्रथम  
 सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने वशमें करना  
 उचित है। काठके मिलनेसे जैसे अग्नि  
 बढ़ती है, वैसे ही इन्द्रियोंको विषयोंसे  
 रोकनेसे पुरुषकी बुद्धि बढ़ती रहती है।  
 चञ्चल और दुष्ट घोड़े जैसे मार्गमें सूखे  
 सारथीको नष्ट करते हैं, वैसे ही विना  
 वशमें की हुई इन्द्रियां भी पुरुषका नाश  
 कर देती हैं। ( २५-२७ )

जो पुरुष पहिले आत्माको न जीत-

अविजित्य य आत्मानममात्यान्विजिगीषते ।  
 अमित्रान्वाऽजितामात्यः सोऽवशः परीहीयते ॥ २८ ॥  
 आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्ट्यरूपेण योजयेत् ।  
 ततोऽमात्यानमित्रांश्च न सोऽयं विजिगीषते ॥ २९ ॥  
 वश्येन्द्रियं जितामात्यं धृतदण्डं विकारिषु ।  
 परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यर्थं श्रीर्निषेवते ॥ ३० ॥  
 क्षुद्राक्षेणेव जालेन श्लषावपिहितानुभौ ।  
 कामक्रोधौ शरीरस्थौ प्रज्ञानं तौ विलुम्पतः ॥ ३१ ॥  
 याभ्यां हि देवाः स्वर्गातुः स्वर्गस्थ पिदधुर्मुखम् ।  
 बिभ्यतोऽनुपरागस्य कामक्रोधौ स्म वर्धितौ ॥ ३२ ॥  
 कामं क्रोधं च लोभं च दम्भं दर्पं च भूमिपः ।  
 सम्यग्विजेतुं यो वेद स महीमभिजायते ॥ ३३ ॥  
 सततं निग्रहे युक्तं इन्द्रियाणां भवेन्नृपः ।  
 ईप्सन्नर्थं च धर्मं च द्विषतां च पराभवम् ॥ ३४ ॥

कर सेवकोंके जीतनेकी इच्छा करता है और सेवकोंको विना वशमें किये ही शत्रुओंके जीतनेकी अभिलाषा करता है, वह अवश्य, ही दूसरेके वशमें पडकर धनसम्पत्तिसे भ्रष्ट होता है । आत्माका हित करनेवाला पुरुष जो कुछ आत्मासे स्वाभाविक दुष्ट भाव दीख पड़े उसको शत्रु समझकर दूर करे, उसके अनन्तर सेवक और शत्रुओंके जीतनेकी इच्छा करे; ऐसा करनेसे उसका उद्योग किसी प्रकारसे भी निष्फल न होगा । राज-लक्ष्मी इन्द्रियोंके जीतनेवाले, सत्य असत्यका विचार करनेवाले वीर पुरुषकी अत्यन्त ही दृढताके साथ सेवा करती है । ( २८-३० )

छोटे छिद्रोंसे युक्त जालमें बंधी हुई दो मछलियोंकी भांति पुरुषकी बुद्धिको काम और क्रोध भ्रष्ट कर देते हैं । भयभीत होकर देवता लोग राग द्वेषसे रहित स्वर्ग धाममें जानेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके निमित्त बड़े हुए कामक्रोधकी सहायतासे स्वर्गके द्वार रोके रहते हैं । जो बुद्धिमान् राजा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अभिमान आदि शत्रुओंको पूरी रीतिसे जीतता है, वही इस पृथ्वीका राज्य कर सकता है । ( ३१-३३ )

धर्म अर्थकी अभिलाषा और शत्रुओंके जीतनेकी इच्छा करनेवाला राजा पहिले अपनी इन्द्रियोंको वशमें करनेका

कामाभिभूतः क्रोधाद्वा यो मिथ्या प्रतिपद्यते ।  
 स्वेषु चाऽन्येषु वा तस्य न सहाया भवन्त्युत ॥ ३५ ॥  
 एकीभूतैर्महाप्राज्ञैः शूरैररिनिवर्हणैः ।  
 पाण्डवैः पृथिवीं तात भोक्ष्यसे सहितः सुखी ॥ ३६ ॥  
 यथा भीष्मः शान्तनवो द्रोणश्चापि महारथः ।  
 आहतुस्तात तत्सत्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ३७ ॥  
 प्रपद्यस्व महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।  
 प्रसन्नो हि सुखाय स्यादुभयोरेव केशवः ॥ ३८ ॥  
 सुहृदामर्थकामानां यो न तिष्ठति शासने ।  
 प्राज्ञानां कृतविद्यानां स नरः शत्रुनन्दनः ॥ ३९ ॥  
 न युद्धे तात कल्याणं न धर्मार्थौ कुतः सुखम् ।  
 न चापि विजयो नित्यं मा युद्धे चेत् आधिथाः ॥ ४० ॥  
 भीष्मेण हि महाप्राज्ञ पित्रा ते बाह्निकेन च ।  
 दत्तोऽशः पाण्डुपुत्राणां भेदाद्भीतैररिन्दम ॥ ४१ ॥

यत्न करे । जो पुरुष काम क्रोधके वशमें  
 होकर अपने आत्मीय पुरुषोंके सङ्ग  
 कपट आचरण करता है, उसको बहु-  
 तसी सहायता नहीं मिल सकती । हे  
 पुत्र ! अत्यन्त बलवान् धर्मात्मा पाण्ड-  
 वोंके सङ्ग मिलकर तुम सम्पूर्ण पृथ्वीको  
 भोग करोगे ( ३४-३६ )

हे पुत्र ! शान्तनुपुत्र भीष्म और  
 महात्मा द्रोणाचार्यने तुमसे जो कुछ  
 वचन कहे हैं, वे सब ही सत्य हैं;  
 कृष्ण और अर्जुनको कोई भी युद्धमें  
 नहीं जीत सकता । इससे तुम अत्यन्त  
 कठिन तथा कठोर कर्मोंके करनेवाले  
 महात्मा कृष्णके शरणागत होओ; श्रीकृ-  
 णके प्रसन्न होनेसे दोनों ओरका कल्याण

होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। जो पुरु-  
 ष बुद्धिमान सब कार्योंको जाननेवाले, हित  
 चाहनेवाले सुहृद पुरुषोंके शासनमें नहीं  
 रहना चाहता, वह अवश्य ही शत्रुओंका  
 आनन्द बढ़ाता है । ( ३७-३९ )

हे तात ! युद्ध करना किसी प्रकारसे  
 भी उत्तम नहीं है; क्योंकि उसमें धर्म  
 अर्थ कुछ भी नहीं सिद्ध हो सकता, तब  
 उससे सुख मिलनेकी किस प्रकारसे  
 सम्भावना हो सकती है ? युद्धमें जो  
 सदा जय हुआ करती है, यह भी कुछ  
 निश्चय नहीं है; इससे तुम ऐसे निन्द-  
 नीय कार्यमें कभी अपने चित्तको मत  
 लगाओ। हे शत्रुनाशन ! जिसमें पाण्ड-  
 वोंके संग भेद न हो जावे इसी भयसे

तस्य चैतत्प्रदानस्य फलमद्याऽनुपश्यसि ।  
 यद्भुङ्क्षे पृथिवीं कृत्स्नां शूरैर्निहतकण्टकाम् ॥ ४२ ॥  
 प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिन्दम ।  
 यदीच्छसि सहामात्यो भोक्तुमर्धं प्रदीयताम् ॥ ४३ ॥  
 अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम् ।  
 सुहृदां वचने तिष्ठन्यशः प्राप्स्यसि भारत ॥ ४४ ॥  
 श्रीमद्भिरात्मवद्विस्तैर्बुद्धिमद्भिर्जितेन्द्रियैः ।  
 पाण्डवैर्विग्रहस्तात भ्रंशयेन्महतः सुखात् ॥ ४५ ॥  
 निगृह्य सुहृदां मन्युं शाधि राज्यं यथोचितम् ।  
 स्वमंशं पाण्डुपुत्रेभ्यः प्रदाय भरतर्षभ ॥ ४६ ॥  
 अलमङ्ग निकारोऽयं त्रयोदश समाः कृतः ।  
 शमयैनं महाप्राज्ञ कामक्रोधसमेधितम् ॥ ४७ ॥  
 न चैष शक्तः पार्थानां यस्त्वमर्थमभीप्ससि ।

भीत होकर तुम्हारे पिता महाराज  
 धृतराष्ट्र, भीष्म और बाह्लिकने न्याय-  
 पूर्वक पाण्डवोंको राज्यका आधा भाग  
 बांट दिया था; इस समय तुम उन  
 वीरोंके प्रतापसे निष्कण्टक सम्पूर्ण पृथ्वी-  
 का राज्य भोग कर रहे हो; उसी राज्यके  
 अंशके देनेका यह फल है । (४०-४२)

हे महा बुद्धिमन् ! इससे यदि तुम  
 राज्यका आधा अंश भाग देनेकी इच्छा  
 करते हो, तो इस समय भी पाण्डवोंको  
 आधा राज्य प्रदान करो । हे भारत !  
 पृथ्वीके आधे ही राज्यसे सेवकोंके  
 सहित तुम्हारा आनन्दसे जीवन बीते-  
 गा; विशेष करके सुहृद पुरुषोंकी बात  
 माननेसे तुम अत्यन्त यशके पात्र बने-  
 गे । हे पुत्र ! उन लक्ष्मीवान, धृतिसे

युक्त, बुद्धिमान और इन्द्रियोंके जीतने-  
 वाले पाण्डवोंके संगमें युद्ध करनेसे वे  
 लोग तुमको इस बड़े भारी सुखसे अष्ट  
 कर सकेंगे । ( ४३—४५ )

हे भरतर्षभ ! इससे तुम पाण्डवोंको  
 आधा राज्य देकर सुहृद पुरुषोंकी इच्छा-  
 के अनुसार यथा उचित राज्यका शासन  
 करो । हे पुत्र ! तुमने पाण्डवोंको तेरह  
 वर्षतक राज्यसे पृथक् करके उन लोगों  
 को जो कुछ दुःख तथा क्लेश दिया है,  
 वही बहुत हुआ है । हे महाबुद्धिमान् !  
 अब इस समय तुम काम क्रोध त्याग  
 करके उन लोगोंके दुःख और क्लेशकी  
 शान्ति करो । तुम कुन्तीपुत्रोंका धन  
 हरलेनेकी अभिलाषा करते हो, यह ठीक  
 है; परन्तु किसी समयमें भी तुम्हारी

सूतपुत्रो हृदक्रोधो भ्राता दुःशासनश्च ते ॥ ४८ ॥

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे भीमसेने धनञ्जये ।

धृष्टद्युम्ने च संक्रुद्धे न स्युः सर्वाः प्रजा ध्रुवम् ॥ ४९ ॥

अमर्षवशमापन्नो मा कुरुंस्तात जीघनः ।

एषा हि पृथिवी कृत्स्ना मा गमत्त्वत्कृते वधम् ॥ ५० ॥

यच्च त्वं मन्यसे मूढ भीष्मद्रोणकृपादयः ।

योत्स्यन्ते सर्वशक्त्येति नैतद्योपपद्यते ॥ ५१ ॥

समं हि राज्यं प्रीतिश्च स्थानं हि विदितात्मनाम् ।

पाण्डवेष्वथ युष्मासु धर्मस्त्वभ्यधिकस्ततः ॥ ५२ ॥

राजपिण्डभयादेते यदि हास्यन्ति जीवितम् ।

नहि शक्यन्ति राजानं युधिष्ठिरमुदीक्षितुम् ॥ ५३ ॥

न लोभादर्थसम्पत्तिर्नराणामिह दृश्यते ।

तदलं तात लोभेन प्रशाम्य भरतर्षभ ॥ ५४ ॥ [ ४२४२ ]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि गान्धारीवाक्ये ऊनत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

यह अभिलाषा पूरी न हो सकेगी; केवल तुम ही नहीं, महा क्रोधी सूर्यपुत्र कर्ण और तुम्हारा भाई दुःशासन, कोई भी उस अभिलाषाको पूर्ण करनेमें समर्थ न होगा; तब यह हो सकता है, कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण और भीम, अर्जुन, धृष्टद्युम्न आदि वीरोंके अत्यन्त क्रोध करनेपर इस संपूर्ण पृथ्वीके प्रजा मात्रके जीवित रहनेकी सम्भावना न रहेगी । ( ४६—४९ )

हे तात ! इससे तुम क्रोध वशमें होकर इस बड़े हुए प्रतिष्ठित कुरुवंशका व्यर्थ नाश मत करो । जिसमें यह सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रजा तुम्हारे निमित्त नाश न होजावे, तुम वही उपाय करो । अरे

मूढ ! जो यह समझता है, कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि सब वीर अपनी पूरी शक्तिके अनुसार युद्ध करेंगे, सो वह तेरी आज्ञा कभी पूर्ण न हो सकेगी; क्योंकि क्या तुम लोग और क्या पाण्डव लोग दोनों ओर इन लोगोंका समान ही सम्बन्ध है; विशेष करके धर्म ही सबसे प्रबल है । इससे यदि राज्यकी, जीविका पानेसे ये लोग अपने प्राणको भी त्यागनेमें सम्मत होंगे, तौ भी युधिष्ठिरके ऊपर कभी इन लोगोंकी कोपदृष्टि न होसकेगी । हे तात ! लोभसे पुरुषको अर्थ तथा सम्पत्ति मिलती है, यह कहीं भी नहीं दीख पड़ता । हे भरतर्षभ ! इससे लोभ करनेका कुछ भी

वैशम्पायन उवाच-तत्तु वाक्यमनाहत्य सोऽर्थवन्मातृभाषितम् ।

पुनः प्रतस्थे संरम्भात्सकाशमकृतात्मनाम् ॥ १ ॥

ततः सभाया निर्गम्य मन्त्रयामास कौरवः ।

सौबलेन मताक्षेण राज्ञा शकुनिना सह ॥ २ ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ।

दुःशासनचतुर्थानामिदमासीद्विचेष्टितम् ॥ ३ ॥

पुराऽयमस्मान्गृह्णाति क्षिप्रकारी जनार्दनः ।

सहितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च ॥ ४ ॥

वयमेव हृषीकेशं निगृह्णीम बलादिव ।

प्रसह्य पुरुषव्याघ्रमिन्द्रो वैरोचनिं यथा ॥ ५ ॥

श्रुत्वा गृहीतं वाष्पेयं पाण्डवा हतचेतसः ।

निरुत्साहा भविष्यन्ति भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ॥ ६ ॥

अयं ह्येषां महाबाहुः सर्वेषां शर्म वर्म च ।

अस्मिन्गृहीते वरदे ऋषभे सर्वसात्वताम् ॥ ७ ॥

निरुद्यमा भविष्यन्ति पाण्डवाः सोमकैः सह ।

प्रयोजन नहीं है; तुम शान्ति अवलम्बन करो । ( ५०-५४ ) [ ४२४२ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ उनतीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ तीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, दुर्योधन धर्म अर्थसे युक्त अपनी माताके उत्तम वचनोंको न मानकर फिर भी उस सभासे निकलकर नीचबुद्धिसे युक्त दुष्ट पुरुषोंकी मण्डलीमें चले गये; वहांपर जाकर वह सुबलपुत्र शकुनिके सङ्ग सलाह करने लगे । अन्तमें दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन इन चार पुरुषोंका यह सङ्कल्प स्थिर हुआ; कि “यह कृष्ण राजा धृतराष्ट्र और भीष्म के

सङ्ग परामर्श करके हम लोगोंको बांधनेकी इच्छा करता है, परन्तु इन्द्रने जैसे बालिको बांध लिया था, उसी प्रकारसे हम लोग पहिले ही बलपूर्वक इस पुरुष-सिंह कृष्णको शीघ्र ही बांध लेंगे । १-५

कृष्णको बांधा हुआ सुनकर पाण्डव-लोग दांत टूटे हुए सर्पकी भांति होजावेंगे; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, क्योंकि यह महाबाहु कृष्ण ही उन लोगोंके सब प्रकारसे सहाय और सकल कल्याणके मूल हैं । सम्पूर्ण यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ इस कृष्णके पकड़े जानेपर पाण्डव तथा उनके सहाय सोमकवंशियोंका सब उद्योग नष्ट हो जावेगा ।

तस्माद्वयमिहैवैनं केशवं क्षिप्रकारिणम् ॥ ८ ॥  
 क्रोशतो धृतराष्ट्रस्य बद्ध्वा योत्स्यामहे रिपून् ।  
 तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम् ॥ ९ ॥  
 इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुद्ध्यत सात्यकिः ।  
 तदर्थमभिनिष्क्रम्य हार्दिक्येन सहाऽऽस्थितः ॥ १० ॥  
 अब्रवीत्कृतवर्माणं क्षिप्रं योजय वाहिनीम् ।  
 व्यूढानीकः सभाद्वारमुपतिष्ठस्व दंशितः ॥ ११ ॥  
 यावदाख्याम्यहं चैतत्कृष्णायाऽक्लिष्टकारिणे ।  
 स प्रविश्य सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव ॥ १२ ॥  
 आचष्ट तमभिप्रायं केशवाय महात्मने ।  
 धृतराष्ट्रं ततश्चैव विदुरं चाऽन्वभाषत ॥ १३ ॥  
 तेषामेतमभिप्रायमाचक्षे स्मयन्निव ।  
 धर्मादर्थान्न कामाच्च कर्म साधुविगर्हितम् ॥ १४ ॥  
 मन्दाः कर्तुमिहेच्छन्ति न चाऽवाप्यं कथञ्चन ।  
 पुरा विकुर्वते मूढाः पापात्मानः समागताः ॥ १५ ॥

इससे राजा धृतराष्ट्र चाहे कितना ही  
 मना करें; परन्तु हम लोग इसी अवसर  
 में कृष्णको यहांपर बांध रखेंगे;  
 और फिर संशय रहित होकर शत्रुओंके  
 सङ्ग युद्ध करेंगे ” । ( ६-९ )

इङ्गितज्ञ महा बुद्धिमान् बलवान्  
 सात्यकीने उन नीचबुद्धि पापियोंके इस  
 पापमय विचारको शीघ्र ही जान लिया  
 और उसके निमित्त सभासे निकलकर  
 हार्दिकनन्दन कृतवर्माके सङ्ग परामर्श  
 करके उनसे कहा, कि मैं जबतक कठिन  
 कर्म करनेवाले श्रीकृष्णको यह सब  
 वृत्तान्त सुनाऊं, तबतक आप सेनाका  
 व्यवहारा बनाकर दृढ सावधानताके सहित

सभाके द्वारपर उपास्थित रहें । ऐसा  
 कहकर वह पर्वतकी कन्दरामें सिंहके  
 समान कौरवोंकी सभामें प्रविष्ट हुए,  
 सभामें जा करके पहिले महात्मा कृष्ण  
 और उसके अनन्तर राजा धृतराष्ट्र तथा  
 विदुरसे इन दुष्टबुद्धियोंका नीच विचार  
 कह सुनाया । ( १०-१३ )

उन लोगोंके उस दुष्ट अभिप्रायको  
 कहकर हंसता हुआ कहने लगा, कि  
 नीच बुद्धि दुष्ट और पापी लोग धर्म  
 अर्थ और कामसे भी साधु पुरुषोंसे  
 निन्दनीय दूतके बन्धनरूपी जो महा  
 नीच कार्य करनेकी अभिलाषा कर  
 रहे हैं, वह किसी प्रकारसे भी सिद्ध न



धर्षिताः काममन्युभ्यां क्रोधलोभवशानुगाः ।  
 इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः ॥ १६ ॥  
 पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला यथा जडाः ।  
 सात्यकेस्तद्वचः श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिवान् ॥ १७ ॥  
 धृतराष्ट्रं महाबाहुमब्रवीत्कुरुसंसदि ।  
 राजन्परीतकालास्ते पुत्राः सर्वे परन्तप ॥ १८ ॥  
 अशक्यमयशस्यं च कर्तुं कर्म समुद्यताः ।  
 इमं हि पुण्डरीकाक्षमभिभूय प्रसह्य च ॥ १९ ॥  
 निग्रहीतुं किलेच्छन्ति सहिता वासवानुजम् ।  
 इमं पुरुषशार्दूलमप्रधृष्यं दुरासदम् ॥ २० ॥  
 आसाद्य न भविष्यन्ति पतङ्गा इव पावकम् ।  
 अयमिच्छन्ति तान्सर्वान्युद्धयमानाञ्जनार्दनः ॥ २१ ॥  
 सिंहो नागानिव क्रुद्धो गमयेद्यमसादनम् ।

हो सकेगी । क्रोध और लोभके वशमें  
 होकर ये सब इकट्ठे हुए मूढ़ पुरुष तथा  
 पापी लोग काम, क्रोधमें फँसकर कल-  
 हरूपी महा भयङ्कर कार्य करनेमें तत्पर  
 होंगे । उन लोगोंकी मूर्खताकी बात-  
 क्या कहूँ, बालक जड बुद्धि तथा  
 मतवारे लोग जैसे कपड़ेसे प्रचण्ड  
 अग्निको ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं,  
 वैसे ही ये लोग पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णच-  
 न्द्रको बलपूर्वक पकड़ने की अभिलाषा  
 करते हैं । (१३-१७)

कौरवोंकी सभामें सात्यकीके यह  
 वचन सुनकर दीर्घदर्शी महा बुद्धिमान्  
 विदुर राजा धृतराष्ट्रको सम्बोधन करके  
 बोले, हे शत्रुनाशन महाराज ! तुम्हारे  
 पुत्र लोग अत्यन्त ही कालके वश हो-

गये हैं । जब वे सब लोग मिलकर महाघोर  
 अयश फैलानेवाले असाध्य कर्म करने-  
 के निमित्त उद्यत हो रहे हैं; और महा-  
 बाहु कृष्णका बलपूर्वक बंधन करनेके  
 निमित्त अभिलाषा करते हैं; तब फिर  
 उन लोगोंके कालके वश होनेमें अब  
 क्या सन्देह है । (१७-२०)

जलती हुई अग्निके निकट पतङ्गकी  
 भाँति वे लोग महाबाहु अत्यन्त कठिन  
 कार्य करनेवाले महा बलवान् कृष्णके  
 सम्मुख होकर कबतक जीवित रह सकते  
 हैं ? यदि वे सब लोग मिलकर भी  
 इनसे युद्ध करेंगे, तौभी महात्मा कृष्ण  
 हाथियोंको फाड़नेवाले क्रोधी सिंहके  
 समान अकेले ही उन सबको यमपुरीमें  
 पहुँचा सकते हैं; परन्तु पुरुषोत्तम कृष्ण

न त्वयं निन्दितं कर्म कुर्यात्पापं कथञ्चन ॥ २२ ॥  
 न च धर्मादपक्रामेदच्युतः पुरुषोत्तमः ।  
 विदुरेणैवमुक्ते तु केशवो वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥  
 धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य सुहृदां शृण्वतां मिथः ।  
 राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृहीयुरोजसा ॥ २४ ॥  
 एते वा माभहं वै नाननुजानीहि पार्थिव ।  
 एतान्हि सर्वान्संरब्धान्नियन्तुमहमुत्सहे ॥ २५ ॥  
 न त्वहं निन्दितं कर्म कुर्यां पापं कथञ्चन ।  
 पाण्डवार्थं हि लुभ्यन्तः स्वार्थान्हास्यन्ति ते सुताः २६ ॥  
 एते चेदेवमिच्छन्ति कृतकार्यो युधिष्ठिरः ।  
 अद्यैव ह्यहमेनांश्च ये चैनाननु भारत ॥ २७ ॥  
 निगृह्य राजन्यार्थेभ्यो दद्यां किं दुष्कृतं भवेत् ।  
 इदं तु न प्रवर्तेयं निन्दितं कर्म भारत ॥ २८ ॥  
 सन्निधौ ते महाराज क्रोधजं पापबुद्धिजम् ।  
 एष दुर्योधनो राजन्यथेच्छति तथाऽस्तु तत् ॥ २९ ॥

धर्मको त्यागकर ऐसे निन्दनीय कर्ममें प्रवृत्त न होंगे । ( २१—२३ )

विदुरका वचन समान होनेपर महात्मा श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्रकी ओर देखकर सुहृद लोगोंके बीचमें बोले, हे राजन् ! यदि वे लोग क्रुद्ध होकर बलपूर्वक मुझे पकड़ सकें तो पकड़ें; अथवा मैं ही इन लोगोंको बांध लूंगा; इन दोनों बातोंके लिये आप आज्ञा दीजिये । वे लोग चाहे कितने ही क्रुद्ध क्यों न होंवें, मैं अकेला ही उन सबको शासन करनेके निमित्त उत्साही हो सकता हूं; परन्तु कभी मैं ऐसे निन्दित कर्मका अनुष्ठान न करूंगा । तुम्हारे पुत्र

लोग पाण्डवोंके अर्थके लोभमें पड़कर अपने अर्थसे भी निःसंदेह विमुख हो जावेंगे । ( २३—२६ )

ये लोग यदि ऐसी इच्छा करते हैं, वत तो राजा युधिष्ठिर अनायास ही कृतकार्य हो सकते हैं । मैं आज ही इन लोगोंको और इनके अनुकूल सहाय लोगोंको पकड़के पाण्डवोंको समर्पण कर सकता हूं; ऐसा करना मेरे वास्ते कौनसा कठिन कार्य है । हे भरतनन्दन महाराज ! तुम्हारे सम्मुख क्रोध और पापबुद्धिसे उत्पन्न हुए ऐसे निन्दित कर्ममें मैं कभी प्रवृत्त न होऊंगा । हे राजन् ! यह दुर्योधन जैसा

अहं तु सर्वास्तनयाननुजानामि ते नृप ।  
 एतच्छ्रुत्वा तु विदुरं धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ॥  
 क्षिप्रमानय तं पापं राज्यलुब्धं सुयोधनम् ॥ ३० ॥  
 सहमित्रं सहामात्यं ससौदर्यं सहानुगम् ।  
 शक्नुयां यदि पन्थानमवतारायितुं पुनः ॥ ३१ ॥  
 ततो दुर्योधनं क्षत्ता पुनः प्रावेशयत्सभाम् ।  
 अकामं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥ ३२ ॥  
 अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ।  
 कर्णदुःशासनाभ्यां च राजभिश्चापि संवृतम् ॥ ३३ ॥  
 नृशंस पापभूयिष्ठ क्षुद्रकर्मसहायवान् ।  
 पापैः सहायैः संहत्य पापं कर्म चिकीर्षसि ॥ ३४ ॥  
 अशक्यमयशस्यं च सद्भिश्चापि विगर्हितम् ।  
 यथा त्वादृशको भूढो व्यवस्थेत्कुलपांसनः ॥ ३५ ॥  
 त्वमिमं पुण्डरीकाक्षमप्रधृष्यं दुरासदम् ।  
 पापैः सहायैः संहत्य निग्रहीतुं किलेच्छसि ॥ ३६ ॥

करनेकी इच्छा करता है, वैसा ही होवे  
 उसमें मेरी कुछ भी आपत्ति नहीं है;  
 बल्कि तुम्हारे सब पुत्रोंको उस  
 विषयमें मैं आज्ञा देता हूँ। (२७-३०)

श्रीकृष्णके यह वचन सुनते ही  
 राजा धृतराष्ट्रने विदुरसे कहा, तुम उस  
 राज्यके लोभी पापी दुर्योधनको भाई,  
 मित्र, और सेवकोंके सहित यहाँपर ले  
 आओ। यदि फिर भी उपदेशसे उसको  
 अच्छे मार्गमें ला सकें तो उसकी को-  
 शिश करनी चाहिये। धृतराष्ट्रकी आज्ञा  
 सुन विदुरने राजाओंसे घिरे हुए दुर्यो-  
 धनको सभामें न जानेकी इच्छा करनेपर  
 भी फिर सभा मण्डपमें ले आये। तब

राजा धृतराष्ट्र, कर्ण, दुःशासन और  
 अनेक दुष्ट बुद्धि राजाओंके बीचमें घिरे  
 हुए मूढ बुद्धि दुर्योधनकी निन्दा करते  
 हुए कहने लगे। (३०—३३)

अरे पापी क्रूर बुद्धि! तू नीच कर्मोंके  
 करनेवाले सहायकोंके सङ्गमें मिलकर  
 महा भयङ्कर पाप कर्मके करनेकी इच्छा  
 करता है। मैंने सुना है, तू इन पाप  
 बुद्धि पासोंकी सहायतासे अत्यन्त  
 तेजस्वी महाप्रतापी पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण  
 को पकड़नेकी अभिलाषा करता है, तेरे  
 समान मूढ और कुलमें कलङ्क लगाने-  
 वाले नीच पुरुषके अतिरिक्त और कौन  
 पुरुष ऐसे अयश देनेवाले निन्दित और

यो न शक्यो बलात्कर्तुं देवैरपि सवासवैः ।  
 तं त्वं प्रार्थयसे मन्द बालश्चन्द्रमसं यथा ॥ ३७ ॥  
 देवैर्मनुष्यैर्गन्धर्वैरसुरैरुरगैश्च यः ।  
 न सोढुं समरे शक्यस्तं न बुद्धयसि केशवम् ॥ ३८ ॥  
 दुर्ग्राह्यः पाणिना वायुर्दुस्पर्शः पाणिना शशी ।  
 दुर्धरा पृथिवी मूर्धा दुर्ग्राह्यः केशवो बलात् ॥ ३९ ॥  
 इत्युक्ते धृतराष्ट्रेण क्षत्ताऽपि विदुरोऽब्रवीत् ।  
 दुर्योधनमभिप्रेत्य धार्तराष्ट्रमवर्षणम् ॥ ४० ॥  
 विदुर उवाच— दुर्योधन निबोधेदं वचनं भव साम्प्रतम् ।  
 सौभद्वारे वानरेन्द्रो द्विविदो नाम नामतः ।  
 शिलावर्षेण सहता छादयामास केशवम् ॥ ४१ ॥  
 ग्रहीतुकामो विक्रम्य सर्वयत्नेन बाधवम् ।  
 ग्रहीतुं नाऽशक्यैतं तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४२ ॥  
 प्राग्ज्योतिषगतं शौरिं नरकः सह दानवैः ।

असाध्य कर्मके करनेके निमित्त इच्छा कर सकता है ? ( ३४-३६ )

अरे मूर्ख ! इन्द्रके सहित सब देवता लोग भी कृष्णको बलसे नहीं पकड़ सकते; चन्द्रमाको ग्रहण करनेकी इच्छा करनेवाले बालककी भांति तू उस कृष्ण को पकड़नेकी अभिलाषा करता है ? युद्धके समयमें देवता, गन्धर्व, दैत्य, राक्षस आदि जिसका प्रताप सहनेमें असमर्थ हैं; यह वही कृष्ण हैं, यह क्या तू नहीं जानता है ? तुम यह निश्चय जान रखो, हाथसे जैसे वायु तथा अग्निको ग्रहण करना कठिन है, तथा शिरपर पृथ्वीको उठा लेना जैसा असम्भव है, वैसे ही बलसे श्रीकृष्णचन्द्रको

भी पकड़ना असम्भव और महा कठिन कार्य है । ( ३५-३९ )

राजा धृतराष्ट्रका वचन समाप्त होने-पर महा बुद्धिमान् विदुर भी क्रोधी दुर्योधनकी ओर देखकर बोले, हे भर-तर्षभ ! सौभ नगरके पुर-द्वारमें द्विविद नाम वानर अपने सब प्रकारके प्रयत्न और पराक्रमको प्रकाश करके भी जिस कृष्णको पकड़नेकी इच्छासे बहुतसी शिलाकी वर्षासे सब दिशाओंको पूरित करनेपर भी कुत कार्य न हो सका; उसी कृष्णको तुम बलपूर्वक पकड़नेकी इच्छा करते हो ? ( ४०-४२ )

प्राग्ज्योतिष नगरमें जानेपर जिसको पकड़नेकी इच्छासे महाबली नरका-

ग्रहीतुं नाऽशक्तस्तत्र तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४३ ॥

अनेकयुगवर्षायुर्निहत्य नरकं मृधे ।

नीत्वा कन्यासहस्राणि उपयेमे यथाविधि ॥ ४४ ॥

निर्मोचने षट्सहस्राः पार्श्वैर्बद्धा महासुराः ।

ग्रहीतुं नाऽशक्तश्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४५ ॥

अनेन हि हता बाल्ये पूतना शकुनी तथा ।

गोवर्धनो धारितश्च गवार्थे भरतर्षभ ॥ ४६ ॥

अरिष्टो धेनुकश्चैव चाणूरश्च महाबलः ।

अश्वराजश्च निहतः कंसश्चाऽरिष्टमाचरन् ॥ ४७ ॥

जरासन्धश्च वक्रश्च शिशुपालश्च वीर्यवान् ।

बाणश्च निहतः संख्ये राजानश्च निषूदिताः ॥ ४८ ॥

वरुणो निर्जितो राजा पावकश्चाऽभितौजसा ।

पारिजातं च हरता जितः साक्षाच्छचीपतिः ॥ ४९ ॥

एकार्णवे च स्वपता निहतौ मधुकैटभौ ।

सुर बहुतसे दानवोंके सङ्ग अनेक यत्न और चेष्टा करके भी कृतकार्य न हुआ, परंतु अनेक युग वर्ष आयुष्यवाले नरका-सुरको युद्धमें मारकर उसके घरमें रुद्ध की हुई अनेक सहस्र कन्याओंको लाकर जिसने उनके साथ व्याह किया था, उसी महा तेजस्वी श्रीकृष्णको तुम बलसे बांधनेकी इच्छा करते हो ? निर्मोचन पुरीमें छः हजार असुर लोग जिसको पकड़नेके अभिलाषी होकर स्वतः फाँसेमें बद्ध होनेके कारण उसको नहीं पकड़ सके, उसी कृष्णको तुम बलपूर्वक बांधनेकी इच्छा करते हो ? (४३-४९)

अलौकिक बल और प्रभावसे युक्त जिस पुरुषोत्तम कृष्णने बालक अवस्था-

हीमें पूतना राक्षसी और पक्षीरूपधारी दोनों असुरोंका नाश किया था, जिन्होंने गोकुलकी रक्षा करनेके निमित्त बाँये हाथसे गोवर्द्धन पर्वत उठाया था, बुरे कार्य करनेवाले अरिष्ट, धेनुक, चाणूर, अश्वराज आदि महा बली असुरों और कंस, दन्तवक्र आदि प्रबल प्रतापी राजाओंकी समररूपी यज्ञमें आहुति दी थी; जिस महा तेजस्वीने बाणासुर, वरुणदेव, जरासन्ध और अग्निदेवताको पराजित किया और कल्पवृक्षको हरकर साक्षात् देवताओंके स्वामी शचीपति इन्द्रको भी परास्त किया । (४६-४९)

शेष शय्यापर सोते हुए जिन्होंने मधु कैटभ नाम दोनों असुरों और शरीर

जन्मान्तरमुपागम्य हयग्रीवस्तथा हतः ॥ ५० ॥

अयं कर्ता न क्रियते कारणं चापि पौरुषे ।

यद्यदिच्छेदयं शौरिस्तत्तत्कुर्याद्यत्नतः ॥ ५१ ॥

तं न बुद्धयसि गोविन्दं घोरविक्रममच्युतम् ।

आशीविषमिव क्रुद्धं तेजोराशिमनिन्दितम् ॥ ५२ ॥

प्रधर्षयन्महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।

पतङ्गोऽग्निमिवाऽऽसाद्य सामात्यो न भविष्यसि ॥ ५३ ॥ ४२९५

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्वाचनपर्वणि विदुरवाक्ये त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३०॥

वैशम्पायन उवाच-विदुरेणैवमुक्तस्तु केशवः शत्रुपूगहा ।

दुर्योधनं धार्तराष्ट्रमभ्यभाषत वीर्यवान् ॥ १ ॥

एकोऽहमिति यन्मोहान्मन्यसे मां सुयोधन ।

परिभूय सुदुर्बुद्धे ग्रहीतुं मां चिकीर्षसि ॥ २ ॥

इहैव पाण्डवाः सर्वे तथैवाऽन्धकवृष्णयः ।

इहाऽऽदित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च महर्षिभिः ॥ ३ ॥

धारण करके वेदोंको चुराने वाले हयग्रीव असुरको मारा था; जो सबके पैदा करनेवाले और स्वयं किसीसे भी नहीं उत्पन्न हुए हैं, सब पौरुष तथा शक्तिके कारण होनेसे जो इच्छा मात्रसे सब कठिन कर्म अनायास ही पूर्ण कर सकते हैं, उस महा प्रतापी अमित तेजस्वी भगवान् कृष्णको तुम अभीतक भी नहीं जान सके ? क्रुद्ध विषधारी सर्पके समान प्रचण्ड तेजसे भरे हुए, अग्निके तुल्य, निन्दा-रहित कठिन कर्म करने वाले, महाबाहु कृष्णको यदि तुम लोग पकड़नेकी इच्छा करके उनके सम्मुखमें जाओगे, तो जलती हुई अग्निमें गिरनेवाले पतङ्गकी भांति इष्ट मित्र और

सेवकोंके सहित क्षण भर भी जीते न बच सकोगे । (५०-५३) [ ४२९५ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ तीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ इकतीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, विदुरके ऐसा कहनेके अनन्तर शत्रुओंको नाश करनेवाले महा प्रतापी अमित तेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्र दुर्योधनके ऊपर कटाक्ष करते हुए बोले, हे दुर्योधन ! तुम मुझको अकेला समझ अपनी मूर्खतासे मुझे पकड़नेकी अभिलाषा करते हो, परन्तु तुम यह निश्चय जान रखो, कि मैं अकेला नहीं हूँ; सब पाण्डव, अंधक, वृष्णि तथा आदित्य, रुद्र, वसु और ऋषि लोग सब ही मेरे सङ्ग हैं । ( १-३ )

एवमुक्त्वा जहासोच्चैः केशवः परवरिहा ।  
 तस्य संस्मयतः शौरेर्विद्युद्रूपा महात्मनः ॥ ४ ॥  
 अंगुष्ठमात्रास्त्रिदशा सुसुचुः पावकार्षिषः ।  
 अस्य ब्रह्मा ललाटस्थो रुद्रो वक्षसि चाऽभवत् ॥ ५ ॥  
 लोकपाला भुजेष्वासन्नग्निरास्यादजायत ।  
 आदित्याश्चैव साध्याश्च वसवोऽथाऽश्विनावपि ॥ ६ ॥  
 मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वे देवास्तथैव च ।  
 बभूवुश्चैकरूपाणि यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥ ७ ॥  
 प्रादुरास्तां तथा दोभ्यां सङ्कर्षणधनञ्जयौ ।  
 दक्षिणेऽथाऽर्जुनो धन्वी हली रामश्च सन्यतः ॥ ८ ॥  
 भीमो युधिष्ठिरश्चैव माद्रीपुत्रौ च पृष्ठतः ।  
 अन्धका वृष्णयश्चैव प्रद्युम्नप्रमुखास्ततः ॥ ९ ॥  
 अग्रे बभूवुः कृष्णस्य समुद्यतमहायुधाः ।  
 शङ्खचक्रगदाशक्तिशार्ङ्गलाङ्गलनन्दकाः ॥ १० ॥  
 अदृश्यन्तोद्यतान्येव सर्वप्रहरणानि च ।  
 नानाबाहुषु कृष्णस्य दीप्यमानानि सर्वशः ॥ ११ ॥  
 नेत्राभ्यां नस्ततश्चैव श्रोत्राभ्यां च समन्ततः ।

ऐसा कहके शत्रुओंके नाश करनेवाले  
 श्रीकृष्णचन्द्र ऊंचे स्वरसे हंसने लगे ।  
 उस अट्टहासके साथही अग्निके समान तेज  
 धारण करनेवाले महात्मा कृष्णके शरीर  
 से विद्युत्के आकारके समान अंगुष्ठके  
 प्रमाण सब देवता लोग बाहर होने  
 लगे । मस्तक पर ब्रह्मा, छातीमें रुद्र,  
 भुजोंमें लोक पाल, मुखमें अग्नि, आदि-  
 त्य, साध्य, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्रके  
 सहित सब देवता, मरुत्गण, विश्वदेव  
 तथा अनगिनत यक्ष, राक्षस और  
 गन्धर्व उत्पन्न हुए । (४-७)

दोनों हाथोंसे बलदेव और अर्जुन  
 उत्पन्न हुए, दहिने हाथसे धनुर्दारी  
 अर्जुन और बायें हाथसे हलधारी बल-  
 राम प्रकट भये । पीछे राजा युधिष्ठिर,  
 भीम, माद्रीपुत्र नकुल, सहदेव और  
 सन्मुखमें सब अन्धकवंशीय और  
 प्रद्युम्न आदिक सम्पूर्ण यदुवंशीय लोग  
 प्रचण्ड अस्त्र शस्त्रको लेकर खड़े हुए ।  
 कृष्णके अपने अनेक हाथोंमें भी शङ्ख,  
 चक्र, गदा, पद्म, लाङ्गल और नन्दक  
 आदि सब प्रज्वलित अस्त्र प्रकट भये,  
 उनके दोनों नेत्र, नासिकाके छिद्र और

प्रादुरासन्महारौद्रा सधूमाः पावकार्चिषः ॥ १२ ॥

रोमकूपेषु च तथा सूर्यस्येव मरचियः ।

तं दृष्ट्वा घोरमात्मानं केशवस्य महात्मनः ॥ १३ ॥

न्यमीलयन्त नेत्राणि राजानस्त्रस्तचेतसः ।

ऋते द्रोणं च भीष्मं च विदुरं च महामतिम् ॥ १४ ॥

सञ्जयं च महाभागमृषींश्चैव तपोधनान् ।

प्रादात्तेषां स भगवान्दिव्यं चक्षुर्जनार्दनः ॥ १५ ॥

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं माधवस्य सभातले ।

देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षं पपात च ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- त्वमेव पुण्डरीकाक्ष सर्वस्य जगतो हितः ।

तस्मात्त्वं यादवश्रेष्ठ प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥

भगवन्मम नेत्राणामन्तर्धानं वृणे पुनः ।

भवन्तं द्रष्टुमिच्छामि नाऽन्यं द्रष्टुमिहोत्सहे ॥ १८ ॥

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः ।

अदृश्यमाने नेत्रे द्वे भवेतां कुरुनन्दन ॥ १९ ॥

दोनों कान तथा रोम कूपसे प्रचण्ड धूँके सहित अग्निके कण निकलने लगे ( ८-१३ )

विराटमूर्ति महात्मा कृष्णका वह महा घोर और भयङ्कर रूपको देखकर केवल भीष्म, द्रोण, बुद्धिमान् विदुर, सञ्जय और तप करनेवाले ऋषियोंके अतिरिक्त और वहाँपर जितने राजा खडे थे, सबने अपनी आंख मूंदली । भगवान् कृष्णने उस समयमें द्रोणाचार्य आदि महात्मा पुरुषोंको दिव्य दृष्टि प्रदान किया था, उसीसे उन लोगोंको शङ्का नहीं हुई । हे भरतर्षभ ! देवता लोग कौरवोंकी सभामें श्रीकृष्णका यह

अद्भुत और आश्चर्य कार्य देखकर आकाशसे दुन्दुभी बजाकर उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे । ( १४-१६ )

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पुण्डरीकाक्ष ! संपूर्ण जगत् का हितकर्ता तूही हो, इसलिये हे यादवश्रेष्ठ ! मुझपर प्रसाद करनेके लिये योग्य हो । हे भगवन् ! मैं तेरा दर्शन करना चाहता हूँ, किसी दूसरेको देखने की अभिलाषा मुझे नहीं है । तेरा स्वरूप देखनेके पश्चात् मेरी दृष्टि पूर्ववत् अंध हो जाय । इस लिये एक बार तुझे देखनेके लिये मुझे दर्शन शक्ति प्राप्त हो जाय । यह धृतराष्ट्रकी इच्छा सुन कर महाबाहु जनार्दन उनसे



तत्राद्भुतं महाराज धृतराष्ट्रश्च चक्षुषी ।  
 लब्धवान्वासुदेवाच्च विश्वरूपदिदक्षया ॥ २० ॥  
 लब्धचक्षुषमासीनं धृतराष्ट्रं नराधिपाः ।  
 विस्मिता ऋषिभिः सार्धं तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ २१ ॥  
 चचाल च मही कृत्स्ना सागरश्चापि चुक्षुमे ।  
 विस्मयं परमं जग्मुः पार्थिवा भरतर्षभ ॥ २२ ॥  
 ततः स पुरुषव्याघ्रः सञ्जहार वपुः स्वकम् ।  
 तां दिव्यामद्भुतां चित्रामृद्धिमत्तामरिन्दमः ॥ २३ ॥  
 ततः सात्यकिमादाय पाणौ हार्दिक्यमेव च ।  
 ऋषिभिस्तैरनुज्ञातो निर्ययौ मधुसूदनः ॥ २४ ॥  
 ऋषयोऽन्तर्हिता जग्मुस्ततस्तो नारदादयः ।  
 तस्मिन्कोलाहले वृत्ते तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २५ ॥  
 तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य कौरवाः सह राजभिः ।  
 अनुजग्मुर्नरव्याघ्रं देवा इव शतक्रतुम् ॥ २६ ॥  
 अचिन्तयन्नमेयात्मा सर्वं तद्राजमण्डलम् ।

बोले, “हे कुरुनन्दन ! आपके दर्शन शक्ति रहित दोनों नेत्रोंमें उत्तम दृष्टि उत्पन्न हो जायगी ।” उसी समय आश्चर्यकी बात यह हुई की, विश्वरूपका दर्शन करनेकी इच्छा होतेही वासुदेवके प्रसादसे महाराज धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र प्राप्त हुए । यह देख कर वहाँके राजा लोग विस्मित होके ऋषियोंके सहित मधुसूदनकी स्तुति करने लगे । १७-२१

सम्पूर्ण पृथ्वी और समुद्र उस समय डगमगाने लगा और समस्त राजा अत्यन्त ही भयभीत होगये । अनन्तर पुरुषसिंह शत्रु नाशन कृष्णने अपने उस अद्भुत और विचित्र विराट रूपको

समेटकर अपना पहिलेका रूप धारण कर लिया और ऋषियोंकी आज्ञा लेकर सात्यकी और कृतवर्माका हाथ धरके सभासे निकले । उस समय जब महा कोलाहल होने लगा, तब नारद आदि ऋषि लोग भी अन्तर्द्धान होकर अपने अपने स्थानपर चले गये । उन लोगोंका अकस्मात अन्तर्द्धान होनाभी एक आश्चर्यका विषय हुआ । ( २२-२५ )

पुरुषसिंह कृष्णको सभासे जाते हुए देखकर जैसे देवता लोग इन्द्रके पीछे चलते हैं, उसी प्रकारसे कौरव लोग भी कृष्णके पीछे चले; परन्तु महा तेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्र उन अनुगामी राजा

निश्चक्राम ततः शौरिः सधूम इव पावकः ॥ २७ ॥  
 ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।  
 हेमजालविचित्रेण लघुना मेघनादिना ॥ २८ ॥  
 सूपस्करेण शुभ्रेण वैयाघ्रेण वरूथिना ।  
 शैव्यसुग्रीवयुक्तेन प्रत्यहृद्यत दारुकः ॥ २९ ॥  
 तथैव रथमास्थाय कृतवर्मा महारथः ।  
 वृष्णीनां सम्मतो वीरो हार्दिक्यः समहृद्यत ॥ ३० ॥  
 उपस्थितरथं शौरिं प्रयास्यन्तमरिन्दमम् ।  
 धृतराष्ट्रो महाराजः पुनरेवाऽभ्यभाषत ॥ ३१ ॥  
 यावद्वलं मे पुत्रेषु पश्यतस्ते जनार्दन ।  
 प्रत्यक्षं ते न ते किञ्चित्परोक्षं शत्रुकर्शन ॥ ३२ ॥  
 कुरूणां शममिच्छन्तं यतमानं च केशव ।  
 विदित्वैतामवस्थां मे नाऽभिशाङ्कितुमर्हसि ॥ ३३ ॥  
 न मे पापोऽस्त्यभिप्रायः पाण्डवान्प्रति केशव ।  
 ज्ञातमेव हितं वाक्यं यन्मयोक्तः सुयोधनः ॥ ३४ ॥

ओंकी ओर आंखसे भी न देखकर धूम-  
 के सहित आगिके समान सभासे निक-  
 लके चले । सभाके द्वारपर पहुंचके  
 देखा, सुवर्णसे भूषित, किङ्किणी लगी  
 हुई श्वेतवर्ण व्याघ्रके चमड़ेसे घिरा हुआ,  
 सब सामग्रियोंसे शोभित, शैव्य सुग्रीव  
 आदि चारों घोड़ोंसे युक्त, बादलके  
 समान गम्भीर शब्द करनेवाले, श्वेतवर्ण,  
 शीघ्रतासे गमन करनेवाले महा रथको  
 लेकर दारुक सारथी उपस्थित है। २६-२९

रथको वहां पर सजा हुआ देखकर  
 श्रीकृष्ण उसी समय उस पर चढ़े और  
 यदुवंशियोंमें माननीय हृदिकनन्दन  
 कृतवर्मा भी रथपर चढ़े । हे महाराज !

शत्रुनाशन कृष्णको चलते हुए देखकर  
 महाराज धृतराष्ट्र फिर उनसे बोले, हे  
 शत्रुनाशन जनार्दन ! पुत्रोंके ऊपर मेरी  
 जितनी प्रभुता है उसको तुमने प्रत्यक्ष  
 ही देखा, कुछ भी तुमसे छिपा नहीं है,  
 मेरी ऐसी अवस्था देखकर विशेष कर-  
 के मैं कौरवोंकी हित-कामनामें जैसा  
 यत्नवान हुआ हूं, उसे भी जानकर तुम  
 किसी प्रकारसे मेरे ऊपर शङ्का न कर  
 सकोगे । हे कृष्ण ! पाण्डवोंके निमित्त  
 मैं कुछ भी दुष्ट अभिलाषा नहीं करता  
 हूं; मैंने सब प्रकारके यत्नसे शान्तिके  
 निमित्त उत्सुक होकर दुर्योधनसे जो  
 कुछ वचन कहा था, वह भी सब तुमको

तत्राद्भुतं महाराज धृतराष्ट्रश्च चक्षुषी ।  
 लब्धवान्वासुदेवाच्च विश्वरूपदिदक्षया ॥ २० ॥  
 लब्धचक्षुषमासीनं धृतराष्ट्रं नराधिपाः ।  
 विस्मिता ऋषिभिः सार्धं तुष्टुवर्मधुसूदनम् ॥ २१ ॥  
 चचाल च मही कृत्स्ना सागरश्चापि चुक्षुभे ।  
 विस्मयं परमं जग्मुः पार्थिवा भरतर्षभ ॥ २२ ॥  
 ततः स पुरुषव्याघ्रः सञ्जहार वपुः स्वकम् ।  
 तां दिव्यामद्भुतां चित्रामृद्धिमत्तामरिन्दमः ॥ २३ ॥  
 ततः सात्यकिमादाय पाणौ हार्दिक्यमेव च ।  
 ऋषिभिस्तैरनुज्ञातो निर्ययौ मधुसूदनः ॥ २४ ॥  
 ऋषयोऽन्तर्हिता जग्मुस्ततस्ते नारदादयः ।  
 तस्मिन्कोलाहले वृत्ते तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २५ ॥  
 तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य कौरवाः सह राजभिः ।  
 अनुजग्मुर्नरव्याघ्रं देवा इव शतक्रतुम् ॥ २६ ॥  
 अचिन्तयन्नमेयात्मा सर्वं तद्राजमण्डलम् ।

बोले, “हे कुरुनन्दन ! आपके दर्शन  
 शक्ति रहित दोनों नेत्रोंमें उत्तम दृष्टि  
 उत्पन्न हो जायगी।” उसी समय  
 आश्चर्यकी बात यह हुई की, विश्वरूपका  
 दर्शन करनेकी इच्छा होतेही वासुदेवके  
 प्रसादसे महाराज धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र  
 प्राप्त हुए। यह देख कर वहाँके राजा  
 लोग विस्मित होके ऋषियोंके सहित  
 मधुसूदनकी स्तुति करने लगे। १७-२१

सम्पूर्ण पृथ्वी और समुद्र उस समय  
 डगमगाने लगा और समस्त राजा  
 अत्यन्त ही भयभीत होगये। अनन्तर  
 पुरुषसिंह शत्रु नाशन कृष्णने अपने  
 उस अद्भुत और विचित्र विराट रूपको

समेटकर अपना पहिलेका रूप धारण  
 कर लिया और ऋषियोंकी आज्ञा लेकर  
 सात्यकी और कृतवर्माका हाथ धरके  
 सभासे निकले। उस समय जब महा  
 कोलाहल होने लगा, तब नारद आदि  
 ऋषि लोग भी अन्तर्द्धान होकर अपने  
 अपने स्थानपर चले गये। उन लोगों-  
 का अकस्मात अन्तर्द्धान होनाभी एक  
 आश्चर्यका विषय हुआ। ( २२-२५ )

पुरुषसिंह कृष्णको सभासे जाते हुए  
 देखकर जैसे देवता लोग इन्द्रके पीछे  
 चलते हैं, उसी प्रकारसे कौरव लोग  
 भी कृष्णके पीछे चले; परन्तु महा तेज-  
 स्वी श्रीकृष्णचन्द्र उन अनुगामी राजा

निश्चक्राम ततः शौरिः सधूम इव पावकः ॥ २७ ॥  
 ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।  
 हेमजालविचित्रेण लघुना मेघनादिना ॥ २८ ॥  
 सूपस्करेण शुभ्रेण वैयाघ्रेण वरूथिना ।  
 शैव्यसुग्रीवयुक्तेन प्रत्यदृश्यत दारुकः ॥ २९ ॥  
 तथैव रथमास्थाय कृतवर्मा महारथः ।  
 वृष्णीनां सम्मतो वीरो हार्दिक्यः समदृश्यत ॥ ३० ॥  
 उपस्थितरथं शौरिं प्रयास्यन्तमरिन्दमम् ।  
 धृतराष्ट्रो महाराजः पुनरेवाऽभ्यभाषत ॥ ३१ ॥  
 यावद्वलं मे पुत्रेषु पश्यतस्ते जनार्दन ।  
 प्रत्यक्षं ते न ते किञ्चित्परोक्षं शत्रुकर्शन ॥ ३२ ॥  
 कुरूणां शममिच्छन्तं यतमानं च केशव ।  
 विदित्वैतामवस्थां मे नाऽभिशाङ्कितुमर्हसि ॥ ३३ ॥  
 न मे पापोऽस्त्यभिप्रायः पाण्डवान्प्रति केशव ।  
 ज्ञातमेव हितं वाक्यं यन्मयोक्तः सुयोधनः ॥ ३४ ॥

ओंकी ओर आंखसे भी न देखकर धूँ-  
 के सहित अग्निके समान सभासे निक-  
 लके चले । सभाके द्वारपर पहुँचके  
 देखा, सुवर्णसे भूषित, किङ्किणी लगी  
 हुई श्वेतवर्ण व्याघ्रके चमड़ेसे घिरा हुआ,  
 सब सामग्रियोंसे शोभित, शैव्य सुग्रीव  
 आदि चारों घोड़ोंसे युक्त, बादलके  
 समान गम्भीर शब्द करनेवाले, श्वेतवर्ण,  
 शीघ्रतासे गमन करनेवाले महा रथको  
 लेकर दारुक सारथी उपस्थित है। २६-२९

रथको वहाँ पर सजा हुआ देखकर  
 श्रीकृष्ण उसी समय उस पर चढ़े और  
 यदुवंशियोंमें माननीय हृदिकनन्दन  
 कृतवर्मा भी रथपर चढ़े । हे महाराज !

शत्रुनाशन कृष्णको चलते हुए देखकर  
 महाराज धृतराष्ट्र फिर उनसे बोले, हे  
 शत्रुनाशन जनार्दन ! पुत्रोंके ऊपर मेरी  
 जितनी प्रभुता है उसको तुमने प्रत्यक्ष  
 ही देखा, कुछ भी तुमसे छिपा नहीं है,  
 मेरी ऐसी अवस्था देखकर विशेष कर-  
 के मैं कौरवोंकी हित-कामनामें जैसा  
 यत्नवान हुआ हूँ, उसे भी जानकर तुम  
 किसी प्रकारसे मेरे ऊपर शङ्का न कर  
 सकोगे । हे कृष्ण ! पाण्डवोंके निमित्त  
 मैं कुछ भी दुष्ट अभिलाषा नहीं करता  
 हूँ; मैंने सब प्रकारके यत्नसे शान्तिके  
 निमित्त उत्सुक होकर दुर्योधनसे जो  
 कुछ वचन कहा था, वह भी सब तुमको

जानान्ति कुरवः सर्वे राजानश्चैव पार्थिवाः ।

शमे प्रयतमानं मां सर्वयत्नेन माधव ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच- ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः ।

द्रोणं पितामहं भीष्मं क्षत्तारं बाह्लिकं कृपम् ॥ ३६ ॥

प्रत्यक्षमेतद्भवतां यद्वृत्तं कुरुसंसदि ।

यथा चाऽशिष्टवन्मन्दो रोषादद्य समुत्थितः ॥ ३७ ॥

वदत्यनीशभात्मानं धृतराष्ट्रो महीपतिः ।

आपृच्छे भवतः सर्वान्गमिष्यामि युधिष्ठिरम् ॥ ३८ ॥

आमन्त्र्य प्रस्थितं शौरिं रथस्थं पुरुषर्षभ ।

अनुजग्मुर्महेष्वासाः प्रवीरा भरतर्षभाः ॥ ३९ ॥

भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता धृतराष्ट्रोऽथ बाह्लिकः ।

अश्वत्थामा विकर्णश्च युयुत्सुश्च महारथः ॥ ४० ॥

ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।

कुरूणां पश्यतां द्रष्टुं स्वसारं स पितुर्ययौ ॥ ४१ ॥ [४३३६]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि विश्वरूपदर्शने एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

विदित है, और सम्पूर्ण कौरव तथा दूसरे राजा लोग भी इस बातको विशेष रूपसे जानते हैं । ( ३०—३५ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महाबाहु श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, बाह्लिक और विदुरको सम्बोधन करके बोले, कि कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ, नीचबुद्धि दुर्योधन अत्यन्त ही क्रोधित होकर महाभूखकी भांति जिस प्रकारसे उठकर चला जाने में उद्यत हुआ, और राजा धृतराष्ट्रने जिस प्रकारसे अपनेको प्रभुतासे रहित कहा है, वह सब आप लोगोंने प्रत्यक्ष देखा है; इस

समय युधिष्ठिरके समीप जानेके निमित्त मैं सबसे बिदा होता हूं । ( ३६—३८ )

इसी भांतिसे सबकी अनुमति लेकर पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्णके रथपर चढ़के चलनेपर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, बाह्लिक और राजा धृतराष्ट्र अश्वत्थामा, विकर्ण और युयुत्सु आदि महाधनुर्दारी महारथ लोग उनके पीछे चलने लगे । भगवान् देवकीनन्दन कृष्णने उन सब लोगोंके संमुख ही उस रथपर चढ़के पिताकी बाहिन अपनी फूफी कुन्ती देवीके दर्शनके निमित्त उसके मन्दिरमें गमन किया । ( ३९—४१ ) [४३३६]

उद्योगपर्वमें एकसौ इकतीस अध्याय समाप्त ।

वैशम्पायन उवाच—प्रविश्याऽथ गृहं तस्याश्चरणावभिवाच्य च ।

आचरयौ तत्समासेन यदुक्तं कुरुसंसदि ॥ १ ॥

वासुदेव उवाच— उक्तं बहुविधं वाक्यं ग्रहणीयं सहेतुकम् ।

ऋषिभिश्चैव च मया न चाऽसौ तद्गृहीतवान् ॥ २ ॥

कालपक्रामिदं सर्वं सुयोधनवशानुगम् ।

आपृच्छे भवतीं शीघ्रं प्रयास्ये पाण्डवान्प्रति ॥ ३ ॥

किं वाच्याः पाण्डवेयास्ते भवत्या वचनान्मया ।

तद् ब्रूहि त्वं महाप्राज्ञे शुश्रूषे वचनं तव ॥ ४ ॥

कुन्त्युवाच— ब्रूयाः केशव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।

भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ॥ ५ ॥

श्रोत्रियस्येव ते राजन्मन्दकस्याऽविपश्चितः ।

अनुवाकहता बुद्धिर्धर्ममेवैकमीक्षते । ॥ ६ ॥

अज्ञाऽवेक्षस्व धर्मं त्वं यथा शृष्टः स्वयम्भुवा ।

उद्योगपर्वमें एकसौ बत्तीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महात्मा कृष्ण अपनी फूफीके घरमें जाकर उसके दोनों चरणोंको वन्दन करके कौरवोंकी सभाका जो कुछ वृत्तान्त था सो संक्षेप रूपसे वर्णन करके कहा;—मैंने और ऋषियोंने तथा भीष्म आदि पुरुषोंने अनेक युक्तियोंसे युक्त ग्रहण करने योग्य उत्तम तथा हितकर अनेक वचन कहे, परन्तु मूढबुद्धि दुर्योधनने किसी प्रकारसे उन वचनोंको ग्रहण नहीं किया । इसीसे जाना जाता है, वह पाप-बुद्धि दुर्योधन तथा उसके वशमें रहनेवाले सब राजा लोग कालसे पके हुए फलकी भांति शीघ्र ही पतित होंगे । इससे मैं तुम्हारे समीपसे बिदा होकर

शीघ्र ही पाण्डवोंके समीप जाऊंगा । हे महाबुद्धिमती ! तुम्हारे वचनके अनुसार उन लोगोंसे क्या क्या कहना होगा ? सो तुम मुझसे कहो; तुम्हारे सन्देहके वचनोंको सुननेकी मुझे बहुत ही इच्छा है । ( १-४ )

कुन्ती बोली, हे पुत्र कृष्ण ! तुम मेरे वचनके अनुसार धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरसे यह कहना “हे पुत्र ! तुम्हारे धर्मकी बहुत ही हानि होरही है, शान्ति चाहनेवाले ब्राह्मणोंकी भांति तुम्हारी यह वेद-अध्ययन करनेवाली मन्दबुद्धि केवल धर्महीकी ओर झुकी रहती है; इससे इस समय भी सावधान होजाओ, आत्म धर्मका व्यर्थ ही नाश मत करो । प्रजापति स्वयम्भू भगवानने

बाहुभ्यां क्षत्रियाः सृष्टा बाहुवीर्योपजीविनः ॥ ७ ॥

क्रूराय कर्मणे नित्यं प्रजानां परिपालने ।

शृणु चाऽत्रोपसामेकां या वृद्धेभ्यः श्रुता मया ॥ ८ ॥

मुचुकुन्दस्य राजर्षेरददत्पृथिवीमिमाम् ।

पुरा वैश्रवणः प्रीतो न चाऽसौ तद्गृहीतवान् ॥ ९ ॥

बाहुवीर्यार्जितं राज्यमश्रियामिति कामये ।

ततो वैश्रवणः प्रीतो विस्मितः समपद्यत ॥ १० ॥

मुचुकुन्दस्ततो राजा सोऽन्वशासद्रसुन्धराम् ।

बाहुवीर्यार्जितां सम्यक्क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ११ ॥

यं हि धर्मं चरन्तीह प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः ।

चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा विन्देत भारत ॥ १२ ॥

राजा चरति चेद्धर्मं देवतायैव कल्पते ।

स चेद्धर्मं चरति नरकायैव गच्छति ॥ १३ ॥

दण्डनीतिश्च धर्मेभ्यश्चातुर्वर्ण्यं नियच्छति ।

धर्मको जिस जिस प्रकारके स्वरूपसे उत्पन्न किया है, तुम उसी स्वरूपसे उसको मानो। देखो उनकी भुजासे जीविका उपार्जन करनेवाले क्षत्रियोंकी उत्पत्ति भई है; क्षत्रियोंका धर्म यही है, कि क्रूर कर्म अर्थात् युद्ध आदिसे सदा प्रजाका पालन करनेमें तत्पर होवे। मैंने पाण्डितोंके मुखसे जिस प्रकार सुना है, उसीके अनुसार इस विषयकी एक उपमा भी कहती हूं, उसे तुम सुनो। (५-८)

पहिले समयमें धनके स्वामी कुबेर राजर्षि मुचुकुन्दके ऊपर प्रसन्न होकर उनको समस्त पृथ्वीके राज्य देनेके निमित्त उद्यत हुए थे, परन्तु उस बलवान राजाने उसको नहीं ग्रहण किया।

उन्होंने यह कहा था, कि “मेरी यह प्रतिज्ञा है, कि अपने बाहुबलसे उपार्जन किये हुए राज्यका भोग करूंगा” यह सुनकर कुबेर बहुत ही विस्मित और प्रसन्न हुए थे। क्षत्रधर्ममें निष्ठावान् राजा मुचुकुन्दने भी अपने बाहुबलसे समस्त पृथ्वीका राज्य उपार्जन करके भोग किया था। (९-११)

हे तात ! प्रजा अच्छी प्रकारसे रक्षित होकर जिस किसी धर्मका अनुष्ठान करती है; राजा उसके चौथे अंशका भागी होता है। राजा स्वयं धर्मका आचरण करने पर देवताका पद पानेके योग्य होता है; परन्तु यदि वह अधर्मका आचरण करे, तो अवश्य ही नरकमें

प्रयुक्ता स्वामिना सम्यग्धर्मैभ्यश्च यच्छति ॥ १४ ॥  
 दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक्कात्स्नर्येन वर्तते ।  
 तदा कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तते ॥ १५ ॥  
 कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम् ।  
 इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम् ॥ १६ ॥  
 राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च ।  
 युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥ १७ ॥  
 कृतस्य करणाद्राजा स्वर्गमत्यन्तमश्नुते ।  
 त्रेतायाः करणाद्राजा स्वर्गं नात्यन्तमश्नुते ॥ १८ ॥  
 प्रवर्तनाद् द्वापरस्य यथाभागमुपाश्नुते ।  
 कलेः प्रवर्तनाद्राजा पापमत्यन्तमश्नुते ॥ १९ ॥  
 ततो वसति दुष्कर्मा नरके शाश्वतीः समाः ।  
 राजदोषेण हि जगत्स्पृश्यते जगतः स च ॥ २० ॥

जाता है। राजा पूर्ण रीतिसे यदि दण्ड करे, तो वह ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको वर्णके अनुसार अपने अपने धर्ममें लगाकर, बहुत ही धर्म सञ्चय करनेमें समर्थ कर सकता है। यहाँतक कि जबतक दण्ड देनेवाला राजा सब प्रकारसे अपने धर्मके अनुसार नीतिशास्त्रके अनुकूल कार्य करता है, तबतक युगों तथा समयमें श्रेष्ठ सत्ययुग कहाता है। (१२—१५)

हे धर्मज्ञ ! काल राजाका कारण है, अथवा राजा कालका कारण है ? ऐसी शङ्का जिससे तुम्हारे मनमें उत्पन्न न होवे, इस निमित्त तुम यह निश्चय जान रखो कि राजा ही कालका कारण है। धर्म और अधर्मके तारतम्यके अनुसार

राजा ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगोंके कारण हुआ करते हैं। जो राजा ऊपर कहे हुए सत्य कालके प्रवर्तक होते हैं, वे स्वर्ग भोग करते हैं। जो त्रेतायुगका प्रवर्तन करते हैं, उन्हें भी स्वर्गभोग मिलता है; परन्तु बहुत नहीं। द्वापर युगके प्रवर्तन करनेवाले राजा भी यथा उचितसे पुण्यफलका अंश पाते हैं; परन्तु जो राजा कलियुगको उत्पन्न करता है, इसको बहुत ही पाप भोगना पड़ता है। (१६—१९)

वह नीच कर्म करनेवाला राजा बहुत दिनतक नरकमें वास करता है। राजामें जो दोष रहते हैं, वे समस्त संसारमें फैल जाते हैं और जगत्के भी



राजधर्मानवेक्षस्व पितृपैतामहोचितान् ।  
 नैतद्राजर्षिवृत्तं हि यत्र त्वं स्थातुमिच्छसि ॥ २१ ॥  
 न हि वैक्लव्यसंसृष्ट आनृशंस्यव्यवस्थितः ।  
 प्रजापालनसम्भूतं फलं किञ्चन लब्धवान् ॥ २२ ॥  
 न ह्येतामाशिषं पाण्डुर्न चाऽहं न पितामहः ।  
 प्रयुक्तवन्तः पूर्वं ते यया चरसि मेधया ॥ २३ ॥  
 यज्ञो दानं तपः शौर्यं प्रज्ञा सन्तानमेव च ।  
 माहात्म्यबलमोजश्च नित्यमाशंसितं मया ॥ २४ ॥  
 नित्यं स्वाहा स्वधा नित्यं दद्युर्मानुषदेवताः ।  
 दीर्घमायुर्धनं पुत्रान्सम्यगाराधिताः शुभाः ॥ २५ ॥  
 पुत्रेष्वशासते नित्यं पितरो दैवतानि च ।  
 दानमध्ययनं यज्ञः प्रजानां परिपालनम् ॥ २६ ॥  
 एतद्धर्ममधर्मं वा जन्मनैवाऽभ्यजायथाः ।

दोष राजाको लगते हैं । हे पुत्र ! इससे तुम पिता और पितामहके आचरणके अनुसार राजधर्मकी आलोचना करो । तुम जिस धर्ममें स्थित होनेकी अभिलाषा करते हो, वह कभी राजऋषियोंका धर्म नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि करुणा रसकी पोषकता, दीन-भाव और शान्त-स्वभावसे स्थित रहनेपर प्रजापालन रूपी फलके मिलनेकी सम्भावना नहीं रहती । ( २०—२२ )

तुम अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा आचरण करते हो, उसके निमित्त पहिले राजा पाण्डु, मैं और पितामह आदि सब लोगोंने कभी तुम्हें आशीर्वाद नहीं दिया है । मैं सदा तुम्हारे यज्ञ, दान, तपस्या, वीरता, बुद्धि, सन्तान,

माहात्म्य, बल और ओजकी प्रार्थना करती थी । शुभ आकांक्षा करनेवाले ब्राह्मण लोग भी पूर्ण रीतिसे सत्कार पानेपर तुम्हारी दीर्घ आयु; धन और पुत्र आदिके निमित्त अभिलाषा करते हुए पितर-लोक और देवलोकके उद्देश्य से सदा स्वाहा और स्वधा प्रदान करते थे । पितर और देवता लोग भी सदासे क्षत्रिय पुत्रोंके निमित्त दान, अध्ययन यज्ञ और प्रजापालनकी अभिलाषा करते हैं । ( २३ - २६ )

हे तात ! इससे यह दान आदि कर्म,—धर्म हों, चाहे अधर्म हों, क्षत्रिय-धर्मके अनुसार तुमने इन्हीं सब धर्मोंके अनुष्ठान करनेके निमित्त जन्म ग्रहण किया है; परन्तु दान आदिका

ते तु वैद्याः कुले जाता अवृत्त्या तात पीडिताः॥ २७ ॥  
 यत्र दानपतिं शूरं क्षुधिताः पृथिवीचराः ।  
 प्राप्य तुष्टाः प्रतिष्ठन्ते धर्मः कोऽभ्यधिकस्ततः॥ २८ ॥  
 दानेनाऽन्यं बलेनाऽन्यं तथा सन्तुतया परम् ।  
 सर्वतः प्रतिगृहीयाद्राज्यं प्राप्येह धार्मिकः ॥ २९ ॥  
 ब्राह्मणः प्रचरेद्भैक्षं क्षत्रियः परिपालयेत् ।  
 वैश्यो धनार्जनं कुर्याच्छूद्रः परिचरेच्च तान् ॥ ३० ॥  
 भैक्षं विप्रतिषिद्धं ते कृषिनैवोपपद्यते ।  
 क्षत्रियोऽसि क्षतात्त्राता बाहुवीर्योपजीविता ॥ ३१ ॥  
 पित्र्यमंशं महाबाहो निमग्नं पुनरुद्धर ।  
 साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनाऽथ नयेन वा ॥ ३२ ॥  
 इतो दुःखतरं किं नु यदहं दानवान्धवा ।  
 परपिण्डमुदीक्षे वै त्वां सूत्वा मित्रनन्दन ॥ ३३ ॥

करना तो दूर रहा, तुम उत्तम कुलमें  
 उत्पन्न होके तथा सब विद्या जानकर  
 भी इस समय जीविकाके दुःखसे  
 पीडित हो रहे हो । क्षुधासे आर्त्त हुए  
 मनुष्य लोग जो बलवान तथा दान  
 देने योग्य राजाका आसरा करके  
 सन्तुष्ट और प्रतिष्ठित होते हैं, इससे बढके  
 दूसरा धर्म और कौनसा हो सकता है, पृ-  
 थ्वीमें राज्य प्राप्त करके धर्मात्मा पुरुषका  
 यही कर्त्तव्य कर्म है, किसीको दान,  
 किसीको बल, किसीको मीठे वचनोंसे  
 अपने वशमें कर लेते हैं । ( २७-२९ )

ब्राह्मण भिक्षा वृत्तिको अवलम्बन  
 करें, क्षत्रिय प्रजापालनमें तत्पर होवे,  
 वैश्य धन उपार्जन करे और शूद्र इन  
 ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करे;

यही सनातन धर्म है । इससे भीख  
 मांगना भी तुम्हारे वास्ते उत्तम नहीं  
 है और कृषि आदि व्यवसायका  
 करना भी तुम्हारे पक्षमें युक्त नहीं है ।  
 क्षत अर्थात् दीन दुःखियोंके उद्धार  
 करनेसे बाहुबल ही क्षत्रियोंका एक  
 मात्र जीविकाका स्थान है । हे महाबाहो!  
 इससे तुम साम, दान, भेद, दण्ड अथवा  
 नय आदि जिस किसी उपायसे हो सके,  
 अपने पिता पितामहके राज्यका अंश फिर  
 ग्रहण करो । ( ३०-३२ )

देखो, मित्रोंके आनन्द बढानेवाले !  
 तुमको उत्पन्न करके भी मैं इस समय  
 बन्धुवान्धवोंसे रहित होकर पराये अन्न-  
 से अपना जीवन धारण करती हूँ;  
 इससे बढके तुमको और अधिक दुःख

युद्धयस्व राजधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान् ।

मा गमः क्षीणपुण्यस्त्वं सानुजः पापिकां गतिम् ॥ ३४ ॥ [४३७०]

इति श्रीमहर्भारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि

कुन्तीवाक्ये द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

कुन्त्युवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीमिमितिहासं पुरातनम् ।

विदुलायाश्च संवादं पुत्रस्य च परन्तप ॥ १ ॥

ततः श्रेयश्च भूयश्च यथावद्वक्तुमर्हसि ।

यशस्विनी मन्युमती कुले जाता विभावरी ॥ २ ॥

क्षत्रधर्मरता दान्ता विदुला दीर्घदर्शिनी ।

विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता ॥ ३ ॥

विदुला नाम राजकन्या जगर्हे पुत्रमौरसम् ।

निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम् ॥ ४ ॥

विदुलोवाच—

अनन्दन मया जातं द्विषतां हर्षवर्धन ।

क्या होगा? हे पुत्र! इससे तुम राजधर्म के अनुसार युद्ध करो। व्यर्थ अपने पूर्व पितृ-पितामहका नाम लोप मत करो। और तुम स्वयं भी भाइयोंके सहित पुण्य क्षीण होकर पापमय गति पानेके अधिकारी मत बनो। ( ३३-३४ ) [४३७०]

उद्योगपर्वमें एकसौ बत्तीस अध्याय समाप्त।

उद्योगपर्वमें एकसौ तैतीस अध्याय ।

कुन्ती बोली, हे परन्तप ! मैंने युधिष्ठिरसे कहनेके निमित्त तुमसे जो वचन कहे हैं, पण्डित लोग विदुला और उसके पुत्रके संवाद रूप इस नीचे कहे हुए पुराने इतिहासको इसके लिये उदाहरणमें कहते हैं। इसमेंसे जो कुछ मङ्गलदायक वचन हो, अथवा इसकी अपेक्षा यदि कुछ अधिक श्रेष्ठ

वचन सम्भव हो, तो तुम उसीको युधिष्ठिरके समीप कहना। (१-२)

पहिले समयमें विदुला नामक एक दीर्घदर्शिनी यशस्विनी राजकन्या थी। वह क्षत्रधर्ममें रत, विदुषी, कुछ क्रोधी और राजनीति जानेवाली अतएव बहुत-सी राजसभाओंमें प्रसिद्ध थी। उसने अनेक लोगोंके बहुतसे वचन सुने थे; और अनेक शास्त्र पढ़ चुकी थी। यह उग्र राजकन्या अपने पुत्रको सिन्धुराजके द्वारा पराजित होकर उद्योग-रहित और उत्साह शून्य तथा मनमलिन, चित्तसे दुःखित देखकर यह कहके निन्दा किया करती थी। ( २-४ )

विदुला बोली, “अरे शत्रुनन्दन कुपुत्र ! तू मेरा पुत्र नहीं है, मेरे गर्भसे तुम्हारा

न मया त्वं न पित्रा च जातः काऽभ्यागतो ह्यसि॥५॥  
 निर्मन्युश्चाऽप्यसंख्येयः पुरुषः क्लीबसाधनः ।  
 यावज्जीवं निराशोऽसि कल्याणाय धुरं वह ॥ ६ ॥  
 माऽऽत्मानमवमन्यस्व भैनमल्पेन बीभरः ।  
 मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर ॥ ७ ॥  
 उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शोष्वैवं पराजितः ।  
 अमित्रान्नन्दयन्सर्वान्निर्मानो बन्धुशोकदः ॥ ८ ॥  
 सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो सुषिकाञ्जलिः ।  
 सुसन्तोषः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति ॥ ९ ॥  
 अप्यहेरारुजन्दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज ।  
 अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमेः ॥ १० ॥  
 अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं पश्येस्त्वं विपरिक्रमन् ।

जन्म नहीं हुआ और तुम्हारे पिताने भी तुम्हे उत्पन्न नहीं किया; तू न जाने कहाँसे आगया है ? इसको मैं कुछ भी नहीं समझ सकती हूँ। तुम्हारा क्रोध, सम्भ्रम और पुरुषार्थ कुछ भी नहीं है, तुम्हारे साधन नपुंसककी भाँति प्रतीत होते हैं; तुम्हारी गिनती पुरुषोंमें नहीं हो सकती; तू सदाके वास्ते इक्वारगी आशा रहित होगया है। अरे मूर्ख ! यदि तू अपने कल्याणकी इच्छा करता है, तो अबसे भी पुरुषोंके योग्य पुरुषार्थका अवलम्बन कर। थोड़ेहीमें तू होकर इस अपरिमेय आत्माका अपमान मत कर। निर्भय रह, उत्साह और उद्योगसे अपने चित्तकी शङ्काओंको दूर कर। ( ५—७ )

अरे मूर्ख ! पराजित, मान-रहित,

बन्धु-बान्धवोंको शोक और शत्रुओंका आनन्द बढ़ानेवाला होकर इस प्रकारसे क्यों पडा है ? शीघ्र उठ। हा ! छोटे नदीके पात्र जैसे अल्प ही जलमें भर जाते हैं, तथा चूहेकी अञ्जली थोड़े ही अन्नसे भर जाती है, वैसे ही कापुरुष लोग भी थोड़े ही वित्तसे सन्तुष्ट हो जाते हैं। अरे कुलको कलङ्क लगानेवाले ! तू महा विषधारी सर्प के दाँत को उखाडकर अतिशीघ्रही मर जा क्योंकि पुरुषार्थ हीन होकर जीवित रहकर तेरे जीवित का भी क्या प्रयोजन है ? तू अपने जीनेकी आशा त्याग करके भी पराक्रमको प्रकाशित क्यों नहीं करता ? आकाशमें उड़नेवाले बाज पक्षीकी भाँति शत्रुओंके ऊपर क्यों नहीं गिरता। अथवा इधर उधर घूमकर मौनव्रत

विवदन्वाऽथवा तूष्णीं व्योम्निवाऽपरिशङ्कितः॥ ११ ॥

त्वमेवं प्रेतवच्छेषे कस्माद्रज्रहतो यथा ।

उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा स्वप्सीः शत्रुनिर्जितः ॥ १२ ॥

माऽस्तं गमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा ।

मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माऽधो भूस्तिष्ठ गर्जितः॥ १३ ॥

अलातं तिन्दुकस्येव सुहूर्तमपि हि ज्वल ।

मा तुषाग्निरिवाऽनर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः ॥ १४ ॥

सुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम् ।

मा ह स्म कस्यचिद्वेहे जनि राज्ञः खरो मृदुः ॥ १५ ॥

कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाऽऽजिं यावदुत्तमम् ।

धर्मस्याऽऽनृण्यमाप्नोति न चाऽऽत्मानं विगर्हते॥ १६ ॥

अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नाऽनुशोचति पण्डितः ।

धारणकर शत्रुओंका छिद्र क्यों नहीं  
खोजता ? ( ८-११ )

अरे क्लीवप्रकृतिवाले ! तू वज्रसे  
मारे गये मृतककी भाँति जडरूपसे  
इस समय क्यों सो रहा है ? शीघ्र उठ !  
शत्रुओंसे हारकर अब यह सोनेका  
समय नहीं है । दीनताका अवलम्बन  
करके लोकमें निन्दित न बन, अपने  
पुरुषार्थसे तू सब लोकोंमें विख्यात हो  
जा । साम दान आदि चारों उपायोंके  
अनुसार पण्डितोंने जो उत्तम और  
अधम व्यवस्था कही है, उसमेंसे तुम  
तेजस्वियोंके योग्य दण्डरूपी श्रेष्ठ उपा-  
यका अवलम्बन करके उत्तम श्रेणीके  
उपयुक्त बनो ! अरे डरपोक-स्वभाववाले !  
अग्निमें धुक्त सूखे काठके समान एक  
घड़ी भरके वास्ते भी क्यों नहीं जल

उठता ? व्यर्थ ही जीवनकी इच्छा करता  
हुआ, ज्वालासे रहित फूसकी अग्निके  
समान क्यों छिपा हुआ है । ( १२-१४ )

बहुत दिनतक ऐसी दशामें पड़े  
रहनेसे थोड़े समयतक भी उठके अपने  
तेजको दिखाना अत्यंत उत्तम है ।  
मेरा मत यही है, कि किसी राजाके  
घर अत्यन्त कठोर तथा बहुत कोमल  
स्वभाववाला पुत्र कभी उत्पन्न न होवे ।  
युद्धविद्याके जाननेवाले वीर-पुरुष सं-  
ग्रामभूमिमें शत्रुओंके संमुख जाकर  
वीर मनुष्योंके योग्य सम्पूर्ण उत्तम क-  
र्म करके धर्मके समीप ऋणरहित होते  
हैं; किसी प्रकारसे अपनी आत्माको  
तुच्छ नहीं होने देते; इससे वह अपनी  
अभिलषित वस्तु पावें, अथवा न पावें;  
उससे कभी शोक नहीं करते; बल्कि

आनन्तर्यं चाऽऽरभते न प्राणानां धनायते ॥ १७ ॥  
 उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम् ।  
 धर्मं पुत्राऽग्रतः कृत्वा किंनिमित्तं हि जीवासि ॥ १८ ॥  
 इष्टापूर्तं हि ते क्लीब कीर्तिश्च सकला हता ।  
 विच्छिन्नं भोगमूलं ते किंनिमित्तं हि जीवासि ॥ १९ ॥  
 शत्रुनिमज्जता ग्राह्यो जङ्घायां प्रपतिष्यता ।  
 विपरिच्छिन्नमूलोऽपि न विषीदेत्कथञ्चन ॥ २० ॥  
 उद्यम्य धुरमुत्कर्षेदाजानेयकृतं स्मरन् ।  
 कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः ॥ २१ ॥  
 उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि ।  
 यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम् ॥ २२ ॥  
 राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान् ।

प्राणकी आशा त्याग करके अन्तिम कर्त्तव्य कार्यको आरम्भ करते हैं । ( १५-१७ )

हे पुत्र ! इससे तू चाहे अपने बाहुबलको प्रकाशित कर, अथवा वीरों-के योग्य संग्रामभूमिमें मरकर स्वर्गको जा, धर्मको छोड़के व्यर्थ जीनेसे क्या प्रयोजन है ? अरे क्लीब ! तेरे अग्निहोत्र, तपस्या, सत्य, वेदका पठना, अतिथियोंकी सेवा और बलि-वैश्वदेव, आदि सब कर्मोंका लोप हुआ और भोग तथा सुखका मूल इकबारगी नष्ट होगया । इससे ऐसी अवस्थामें जीवित रहने से क्या प्रयोजन है ? यदि इकबारगी अपनी पराजय होती हुई देखे, तो वीर पुरुषका यही कर्त्तव्य है, कि शत्रुकी जंघा ग्रहण करके अपने साथ

ही उसे भी लेकर मृत्युको प्राप्त होवे; इकबारगी जड़ सहित उखड़ जानेसे भी उत्साह तथा उद्यमसे रहित होना तो किसी प्रकारसे भी उचित नहीं है । ( १८-२० )

रे मूर्ख पुत्र ! इससे जैसे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए अच्छे घोड़े अपने पराक्रमको प्रकाशित करते हैं, वैसे ही तुम भी अपने तेज तथा पराक्रमको प्रकट करो, तुम्हारे निमित्त जो कुल इस समय डुबा चाहता है, तुम अपने पुरुषार्थसे उसके उद्धारके निमित्त तत्पर होकर यत्न करो । लोकमें जिसके किये हुए किसी अद्भुत और बड़े कार्यकी कोई बड़ाई नहीं करता वह केवल लोककी संख्या ही बढ़ानेवाला कहाता है; वह स्त्री तथा पुरुष कुछ भी नहीं

दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चरितं यशः ॥ २३ ॥  
 विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ।  
 श्रुतेन तपसा वाऽपि श्रिया वा विक्रमेण वा ॥ २४ ॥  
 जनान्योऽभिभवत्यन्यान्कर्मणा हि स वै पुमान् ।  
 न त्वेव जाल्मी कापाली वृत्तिमेषितुमर्हसि ॥ २५ ॥  
 नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम् ।  
 यत्नेनभिनन्देयुरभिन्नाः पुरुषं कृशम् ॥ २६ ॥  
 लोकस्य समवज्ञातं निहीनासनवाससम् ।  
 अहो लाभकरं हीनमल्पजीवनमल्पकम् ॥ २७ ॥  
 नेदृशं बन्धुमासाद्य बान्धवः सुखमेधते ।  
 अवृत्त्यैव विपत्स्यामो वयं राष्ट्रात्प्रवासिताः ॥ २८ ॥  
 सर्वकामरसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टा अकिञ्चनाः ।  
 अवलगुकारिणं सत्सु कुलवंशस्य नाशनम् ॥ २९ ॥  
 कलिं पुत्रप्रवादेन सञ्जय त्वामजीजनम् ।

कहा जा सकता, उसकी गिनती केवल नपुंसकोंमें होती है। (२१-२३)

दान, तपस्या, सत्य, विद्या और धनके उपार्जन करनेमें जिसका यश इस पृथ्वीमें नहीं विख्यात होता है, वह माताका सल मात्र ही कहा जाता है; उसको कभी पुत्र नहीं कह सकते। जो तेजस्वी पुरुष शास्त्रके ज्ञान, तपस्या, धन, पराक्रम तथा दूसरे पुरुषार्थोंसे सब लोगोंको जीतता है, वही यथार्थ में पुरुष कहा जाता है। अरे मूर्ख ! कापालिक पुरुषोंकी भांति नपुंसकोंके योग्य, घृणित, निन्दित, अयश देनेवाली, तथा दुःख उत्पन्न करनेवाली भिक्षा वृत्ति-को ग्रहण करनेकी इच्छा कभी नहीं

करनी चाहिये। (२३-२६)

आहा ! लोकमें निन्दाके पात्र, वस्त्रआभूषणोंसे रहित जिस पुरुषको देखकर शत्रुओंके आनन्दकी वृद्धि होती है; ऐसे लोभी, दीन, हीन, थोड़ी शक्तिवाले, क्षुद्र पुरुषके बन्धुबान्धव कभी सुखी नहीं रह सकते। हां ! अपने स्थानसे भ्रष्ट और राज्यसे अलग हुए तथा सब प्रकारके सुख और भोगोंसे रहित होकर हम लोगोंको क्या जीविकाके भारसे ही प्राणत्याग करना पड़ेगा ? अरे सञ्जय ! साधु पुरुषोंके समूहमें मैं ऐसे अयुक्त व्यवहार करने-वाले, वंशको नाश करनेवाले तथा कुलको कलङ्कित करनेवाले तुमको

निरमर्ष निरुत्साहं निर्वीर्यमरिन्दनम् ॥ ३० ॥  
 मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ।  
 मा धूमाय ज्वलाऽत्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान् ॥ ३१ ॥  
 ज्वल सूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम् ।  
 एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी ॥ ३२ ॥  
 क्षमावान्निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान् ।  
 सन्तोषो वै श्रियं हन्ति तथाऽनुक्रोश एव च ॥ ३३ ॥  
 अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाऽश्रुते महत् ।  
 एभ्यो निकृतिपापेभ्यः प्रमुञ्चाऽऽत्मानमात्मना ॥ ३४ ॥  
 आयसं हृदयं कृत्वा सृगयस्व पुनः स्वकम् ।  
 परं विषहते यस्मात्तस्मात्पुरुष उच्यते ॥ ३५ ॥  
 तमाहुर्व्यर्थनामानं स्त्रीविद्य इह जीवति ।

अपने गर्भमें पुत्ररूपसे धारण करके साक्षात् कलियुगी माता हुई हूँ। मेरे समान और कोई तेजस्विनी रानी ऐसे क्रोध तथा उत्साह-रहित, बलहीन, शत्रु नन्दन कुपुत्रको कभी गर्भमें धारण न करे। (२६-३१)

अरे भाग्य रहित ! उद्यम रहित, धूर्तमें न छिपकर उत्साह रूपी अग्निसे प्रकाशित होकर पूर्ण रीतिसे शत्रुओंपर आक्रमण करके उनका संहार क्यों नहीं करता ? घड़ी भर अथवा क्षण भरके वास्ते भी शत्रुओंके मस्तकके ऊपर क्यों नहीं विराजमान होता है ? क्रोधयुक्त और क्षमा रहित होनाही यथार्थमें पुरुषका कर्म है। जो पुरुष सदा क्षमामें युक्त और क्रोध-शून्य रहता है, वह न स्त्री और न पुरुषही है; वह एक प्रकारका

नपुंसक कहा जाता है ! सन्तोष, दया, उद्योग न करना और भय ये सब लक्ष्मीके विनाश करनेके कारण हैं; निरिच्छ पुरुष राज्य आदि बड़े फल कभी नहीं पा सकता। (३१-३४)

रे पुत्र ! इससे तू इन सब ऊपर कहे हुए दोषोंको त्यागकर अपना हृदय लोहेकी भाँति कठोर करके अपना निज राज्य तथा सम्पत्तिके ग्रहण करने में प्रवृत्त हो जा। राज्य कार्य आदि बड़े भारी कार्योंके करनेमें समर्थ होनेहीसे अथवा शत्रुके हमलोंसे परास्त न होनेसे ही मनुष्य पुरुष कहा जाता है; इससे जो पुरुष स्त्रियोंके समान घरमें बैठकर इस लोकमें जीता रहता है, उसका जीना व्यर्थ ही कहा जाता है। सिंहके-समान प्रबल प्रतापका विस्तार



शूरस्योर्जितसत्त्वस्य सिंहविक्रान्तचारिणः ॥ ३६ ॥  
 दिष्टभावं गतस्याऽपि विषये मोदते प्रजा ।  
 य आत्मनः प्रियसुखे हित्वा मृगयते श्रियम् ॥ ३७ ॥  
 अमात्यानामथो हर्षमादधात्यचिरेण सः ॥ ३८ ॥  
 पुत्र उवाच— किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया ।  
 किमाभरणकृत्यं ते किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३९ ॥  
 मातोवाच— किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस्तानवाप्नुयुः ।  
 ये त्वाहतात्मनां लोकाः सुहृदस्तान्ब्रजन्तु नः ॥ ४० ॥  
 भृत्यैर्विहीयमानानां परपिण्डोपजीविनाम् ।  
 कृपणानामसत्त्वानां मा वृत्तिमनुवर्तिथाः ॥ ४१ ॥  
 अनु त्वां तात जीवन्तु ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा ।  
 पर्जन्यमिव भूतानि देवा इव शतक्रतुम् ॥ ४२ ॥  
 यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि सञ्जय ।

करनेवाले, ऊँचे चित्तवाले, शूरवीर  
 राजाके मर जानेपर भी उसके शासन  
 तथा अधिकारमें रहनेवाली प्रजा सुख  
 भोगती हुई हृष्ट-पुष्ट बनी रहती है। जो  
 बुद्धिमान् राजा अपने प्रिय सुखको  
 भी त्यागकर राजलक्ष्मीकी खोजमें  
 प्रवृत्त होता है, वह शीघ्रही सेवक तथा  
 बन्धु-बान्धवोंका हर्ष और आनन्द  
 बढाता है । ( ३४-३८ )

पुत्र बोला, यदि तुम मुझे ही न  
 देखोगी तो फिर तुम्हारे इस सम्पूर्ण  
 पृथ्वीके राज्य, भूषण, भोग सुख और  
 जीनेहीसे क्या प्रयोजन है ? ( ३९ )

माता बोली, मेरी यही अभिलाषा  
 है, कि धनसे रहित नीच लोग जो  
 लोक पाते हैं, हमारे शत्रु लोग वही

लोक पावें, और आदरसे युक्त तेजस्वी  
 पुरुष जिस लोकमें जाते हैं; हम लोगोंके  
 बन्धु बान्धव तथा सुहृद लोग उसी  
 लोकमें गमन करें। हे तात ! सेवकोंसे  
 रहित, पराये अन्नसे जीवन धारण कर,  
 दीन, हीन और मलिनचित्त होकर  
 कभी नपुंसकोंकी वृत्तिका अवलम्बन  
 करना उचित नहीं है। सम्पूर्ण प्राणी  
 जैसे वर्षा करनेवाले मेघके अनुजीवी हैं,  
 तथा देवता लोग जैसे इन्द्रकी उपासना  
 करते हैं, वैसेही ब्राह्मण लोग तथा  
 सुहृद-पुरुष तुम्हारे द्वारा अपनी जीविका  
 पावें । ( ४०-४२ )

हे सञ्जय ! अच्छे प्रकारसे पके हुए  
 फलोंसे युक्त वृक्षका जैसे पक्षी लोग  
 आसरा करके जीवन धारण करते हैं,

पक्वं द्रुममिवाऽऽसाद्य तस्य जीवितमर्थवत् ॥ ४३ ॥

यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवाः सुखम् ।

त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम् ॥ ४४ ॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः ।

स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम् ॥ ४५ ॥ ४४१५

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतानुशासने त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

विदुलोवाच— अथैनस्यामवस्थायां पौरुषं हातुमिच्छसि ।

निहीनसेवितं मार्गं गमिष्यस्याचिरादिव ॥ १ ॥

यो हि तेजो यथाशक्ति न दर्शयति विक्रमात् ।

क्षत्रियो जीविताकांक्षी स्तेन इत्येव तं विदुः ॥ २ ॥

अर्थवन्त्युपपन्नानि वाक्यानि गुणवन्ति च ।

नैव सम्प्राप्नुवन्ति त्वां सुमूर्धुमिव भेषजम् ॥ ३ ॥

सन्ति वै सिन्धुराजस्य सन्तुष्टा न तथा जनाः ।

उसी भांतिसे सब प्राणी लोग भाग्यवान् पुरुषका आसरा करके अपनी जीविका निर्वाह किया करते हैं, ऐसे ही भाग्यवान् पुरुषका जीवन सार्थक है। इन्द्रके बाहुबलसे बड़े हुए देवताओंके समान जिस महावीर पुरुषके प्रचण्ड प्रतापके सहारेसे बन्धुबान्धवोंका सुख और ऐश्वर्य बढ़ता है, उसीका जीवन सार्थक है। जो भाग्यवान् पुरुष अपने बाहुबलके सहारे जीवनके समयको बिताता है, वह इस लोकमें कीर्तिमान् होकर अन्तमें कल्याणमयी परम गति पाता है। ( ४३-४५ ) ४४१५

उद्योगपर्वमें एकसौ तैत्तिरीय अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ चौतीस अध्याय ।

विदुला बोली, हे पुत्र ! यदि तुम

ऐसी हीन अवस्थाके समयमें पुरुषार्थ छोड़ दोगे, तो शीघ्र ही अधम पुरुषोंसे सेवित नीच मार्गमें गमन करोगे; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। क्षत्रिय कुलमें जन्म ग्रहण करके जो पुरुष इस असार जीवनकी इच्छासे अपनी शक्तिके अनुसार पराक्रम तथा अपना बल प्रकट करके निज तेजको नहीं प्रकाशित करता; पण्डित लोग उसको चोरके समान समझते हैं। हा ! मृत्युसे ग्रस्त रोगीके समीप औषधिकी भांति यथार्थ स्वार्थसे युक्त, युक्ति सम्मत, गुणोंसे भरे हुए, उत्तम वचन सब तुम्हारे ऊपर बल प्रकाश करनेमें असमर्थ हो रहे हैं। १-३

देखो सिन्धुराजकी सहायता करनेके निमित्त बहुतसे पुरुष हैं, यह ठीक है;

दौर्बल्यादासते मूढा व्यसनौघप्रतीक्षिणः ॥ ४ ॥  
 सहायोपचिन्ति कृत्वा व्यवसाय्य ततस्ततः ।  
 अनुदुष्येयुरपरे पश्यन्तस्तव पौरुषम् ॥ ५ ॥  
 तैः कृत्वा सह सङ्घातं गिरिदुर्गालयं चर ।  
 काले व्यसनमाकांक्ष नैवाऽयमजरामरः ॥ ६ ॥  
 सञ्जयो नामतश्च त्वं न च पश्यामि तत्त्वयि ।  
 अन्वर्थनामा भव मे पुत्र सा व्यर्थनामकः ॥ ७ ॥  
 सम्यग्दृष्टिर्महाप्राज्ञो बालं त्वां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।  
 अयं प्राप्य महत्कृच्छ्रं पुनर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ८ ॥  
 तस्य स्मरन्ती वचनमाशंसे विजयं तव ।  
 तस्मात्तात ब्रवीमि त्वां वक्ष्यामि च पुनः पुनः ॥ ९ ॥  
 यस्य ह्यर्थभिनिर्वृत्तौ भवन्त्याप्यायिताः परे ।

परन्तु कोई भी उससे सन्तुष्ट नहीं है;  
 सब ही उससे विरक्त हैं । अपनी निर्ब-  
 लताके कारणसे विशेष करके निज  
 जीविकाके उपार्जन करनेके दुःखसे  
 असमर्थ होकर वह लोग केवल स्वामीके  
 व्यसनमें फंसनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।  
 इसके अतिरिक्त जो पुरुष स्पष्ट रूपसे  
 उसके सङ्ग शत्रुता करते हैं, वह लोग  
 तुम्हारे पुरुषार्थको देखकर तुम्हारे साथ  
 ही उसके विरुद्ध युद्ध करनेमें प्रवृत्त  
 होंगे । इससे तुम उन्हीं सब लोगोंके  
 सङ्गमें मिलकर समयके अनुसार शत्रुके  
 व्यसनमें फंसनेकी प्रतीक्षा करते हुए  
 दुर्ग-रूपी पर्वतका आसरा ग्रहण करो ।  
 सिन्धुराज अजर अथवा अमर है, ऐसा  
 तुम कभी भी अपने मनमें निश्चय न  
 करना । (४-६)

हे पुत्र ! तुम्हारा नाम सञ्जय है,  
 परन्तु सञ्जयका कार्य मैं तुम्हारेमें कुछ  
 भी नहीं देख सकती हूँ, इसी कारणसे  
 कहती हूँ, कि अपने नामको व्यर्थ न  
 करके उसकी सार्थकताको पूर्ण करो;  
 ऐसा करनेहीसे तुम मेरे पुत्र कहे जानेके  
 योग्य बनोगे । तुम्हारी बालक अवस्थामें  
 एक महा बुद्धिमान् ज्योतिषी ब्राह्मणने  
 कहा था, कि “यह बालक पहिले  
 अत्यन्त कष्टमें पड़कर अन्तमें बहुतसी  
 राजलक्ष्मीको भोगेगा ।” उस ब्राह्मणका  
 वचन स्मरण करके मैं तुम्हारे विजयकी  
 आशा करती हूँ; और इसी कारणसे  
 इतना हठ करके भी तुमको उत्तेजित  
 कर रही हूँ तथा बार बार इसी भांतिसे  
 उत्तेजित करूंगी । क्योंकि तुम इस  
 बातको खूब ही जानते हो, कि जो

तस्याऽर्थसिद्धिर्नियता नयेष्वर्थानुसारिणः ॥ १० ॥

समृद्धिरसमृद्धिर्वा पूर्वेषां मम सञ्जय ।

एवं विद्वान्युद्धमना भव मा प्रत्युपाहरः ॥ ११ ॥

नाऽतः पापीयसीं काश्चिदवस्थां शम्भरोऽब्रवीत् ।

यत्र नैवाऽद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ १२ ॥

पतिपुत्रवधादेतत्परमं दुःखमब्रवीत् ।

दारिद्र्यमिति यत्प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत् ॥ १३ ॥

अहं महाकुले जाता हृदाद्भ्रमिवाऽऽगता ।

ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥ १४ ॥

महार्हमालयाभरणां सुसृष्टाम्बरवाससम् ।

पुरा हृष्टः सुहृद्गो मां पश्यत्सुहृद्गताम् ॥ १५ ॥

यदा मां चैव भार्या च द्रष्टाऽसि भृशदुर्बलाम् ।

न तदा जीवितेनाऽर्थो भविता तव सञ्जय ॥ १६ ॥

पुरुष स्वयं यथार्थ नीतिके अनुसार कार्य करता है, और दूसरे लोग भी जिसके कार्यके सिद्ध होनेके निमित्त सहायता करते हैं; उसका मनोरथ अवश्य पूरा होजाता है । (७-१०)

हे सञ्जय ! “इस कार्यके करनेसे मेरे पूर्व सञ्चित विषयका चाहे नाश होवे, अथवा वृद्धि होवे, मैं कभी भी निवृत्त न होऊंगा ।” इसी प्रकारसे दृढ-सङ्कल्प करके तुम युद्धके निमित्त उद्योग करो, एक ही समयमें उसकी समाप्ति न करना । शम्भर मुनिने कहा है, “जिस अवस्थामें आज घरमें अन्न नहीं है, कलह क्या होगा, सदा ऐसी ही चिन्ता लगी रहती है, उससे बढके पापी पुरुषकी और दूसरी कौनसी दशा

हो सकती है ?” यहां तक कि, पति और पुत्रके वधसे जैसा दुःख होना सम्भव है, उससे भी बढके यह ऊपर कहे हुए दुःखका शम्भर मुनिने वर्णन किया है । इससे दरिद्रताका दुःख मृत्यु का एक नामान्तर मात्र ही है । (११-१३)

देखो मैं उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा स्वामीके आदरकी पात्री और सबके कल्याणको करनेवाली थी । पहिले सुहृद लोग मुझको महामूल्यवान माला और सब भूषणोंसे भूषित तथा नाना सुगन्ध और सुन्दर वस्त्रोंसे युक्त देखकर इस समय अत्यन्त दुःखमें पड़ी हुई देखेंगे । हे सञ्जय ! तुम जिस समय मुझे और अपनी स्त्रीको दीन, हीन तथा अत्यन्त दुःखित देखोगे, उस

दासकर्मकरान्भृत्यानाचार्यर्त्विक्पुरोहितान् ।  
 अवृत्याऽस्मान्प्रजहतो हृष्टा किं जीवितेन ते ॥ १७ ॥  
 यदि कृत्यं न पश्यामि तवाऽद्याहं यथा पुरा ।  
 श्लाघनीयं यशस्यं च का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ १८ ॥  
 नेति चेद्ब्राह्मणं ब्रूयां दीर्येत हृदयं मम ।  
 न ह्यहं न च मे भर्ता नेति ब्राह्मणमुक्तवान् ॥ १९ ॥  
 वयमाश्रयणीयाः स्म न श्रोतारः परस्य च ।  
 साऽन्यमासाद्य जीवन्ती परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ २० ॥  
 अपारे भव नः पारमप्लवे भव नः प्लवः ।  
 कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान्सञ्जीवयस्व नः ॥ २१ ॥  
 सर्वे ते शत्रवः शक्या न चेज्जीवितुमर्हसि ।

समय तुमको जीवित रहनेकी इच्छा  
 न रहेगी । दास-दासी, सेवक, गुरु,  
 ऋत्विक्, पुरोहित आदि सब कोई  
 जीविकाके दुःखसे हम लोगोंको छोड़कर  
 चले जावेंगे, इसको देखकर तुम्हारे  
 जीनेसे क्या प्रयोजन रहेगा । (१४-१७)

तुम पहिले प्रशंसाके योग्य यशको  
 प्रकट करनेवाले जिन सब कर्मोंका अनु-  
 ध्यान करते थे, यदि उसको अब मैं न  
 देखूंगी, तो मेरे हृदयमें शान्ति किस  
 प्रकारसे हो सकेगी ? कोई ब्राह्मण जब  
 मुझसे कुछ वस्तु मांगेगा, तब उससे मैं  
 “ नहीं है ” यदि ऐसा वचन कहूंगी,  
 तो मेरा हृदय एकबारगी टुकड़े टुकड़े  
 हो जावेगा; क्योंकि पहिले मैं तथा मेरे  
 स्वामीने ब्राह्मणोंके मांगनेपर कभी  
 “ नहीं है ” यह वचन नहीं कहा है ।  
 सब लोग हमारी ही आशा करते थे

और हम लोगोंने कभी किसीकी आशा  
 नहीं की है; इससे यदि दूसरेके वशमें  
 होकर जीविका निर्वाह करना पड़ेगा,  
 तो मैं अवश्य ही शरीरको त्याग  
 दूंगी । (१८-२०)

हे पुत्र ! इससे अपार दुःख-सागरमें  
 पड़े ही हुए हम लोगोंको पार करनेके  
 वास्ते तुम ही एक मात्र अवलम्ब हो ।  
 नौका-रहित विपदरूपी समुद्रसे उबारने  
 के निमित्त तुम ही नौका स्वरूप हो ।  
 इससे यदि तुमको स्थान त्यागकर दूसरी  
 जगह निवास करना पड़े, महा घोर  
 क्लेश सहना पड़े, तो उसका भी तुम  
 स्वीकार कर लो । अधिक क्या कहूंगी,  
 हम लोगोंके मृतक समान शरीरको तुम  
 जीवित करो । यदि तुम अपने जीनेकी  
 इच्छा त्याग दो, तो सब शत्रुओंसे युद्ध  
 कर सकते हो; और यदि ऐसे ही क्लीब-

अथ चेदीदृशीं वृत्तिं क्लीबामभ्युपपद्यसे ॥ २२ ॥  
 निर्विण्णात्मा हतमना मुञ्चैतां पापजीविकाम् ।  
 एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ॥ २३ ॥  
 इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत ।  
 माहेन्द्रं च गृहं लेभे लोकानां चेश्वरोऽभवत् ॥ २४ ॥  
 नाम विश्राव्य वै संख्ये शत्रुनाहूय दंशितान् ।  
 सेनाग्रं चापि विद्राव्य हत्वा वा पुरुषं वरम् ॥ २५ ॥  
 यदैव लभते वीरः सुयुद्धेन महद्यशः ।  
 तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥ २६ ॥  
 त्यक्त्वाऽऽत्मानं रणे दक्षं शूरं कापुरुषा जनाः ।  
 अवशास्तर्पयन्ति स्म सर्वकामसमृद्धिभिः ॥ २७ ॥  
 राज्यं चाप्युग्रविभ्रंशं संशयो जीवितस्य वा ।  
 न लब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः ॥ २८ ॥  
 स्वर्गद्वारोपमं राज्यमथवाऽप्यमृतोपमम् ।  
 रुद्रमेकायनं मत्वा पतोलमुक इवाऽरिषु ॥ २९ ॥

वृत्तिका अवलम्बन किये हुए, दुःखयुक्त  
 और उत्साह रहित होकर रहना पड़े,  
 तौ भी तुम शीघ्र ही इस पापमयी  
 जीविकाको त्याग दो। जो पुरुष परा-  
 क्रमी होता है, वह एक ही शत्रुको मार-  
 कर पृथ्वीमें यश पाता है। ( २१-२३ )

देखो इन्द्र एक ही वृत्रासुरको मार-  
 कर कीर्तिमानू हुए और सब देवताओंकी  
 प्रभुता पाकर सदाके वास्ते सबके राजा  
 हुए हैं। उत्साहसे युक्त वीर पुरुष लोग  
 जब रणभूमिमें अपना नाम प्रकाशित  
 करके हर्षके सहित शत्रुओंकी सेनाको  
 छिन्न भिन्न करके अपने पराक्रमसे मुख्य  
 मुख्य सेनापतियोंको मारते हैं; तब ही

उनके दूसरे शत्रुलोग भी भय भीत  
 होकर स्वयं उनके निकटमें अवनति  
 स्वीकार कर लेते हैं। ( २४—२६ )

परन्तु जो पुरुष नपुंसकताका अव-  
 लम्बन करता है, वह शत्रुओंके वशमें  
 होकर युद्ध विद्याके जाननेवाले पराक्र-  
 मी शत्रुके सब मनोरथ पूर्ण करता है।  
 उत्साह और साहससे युक्त पुरुष चाहे  
 राज्यका नाश होजावे अथवा प्राणही-  
 का सङ्कट उपास्थित होवे; परन्तु शत्रुको  
 पानेपर विना उसे नाश किये कभी  
 नहीं छोड़ते। हे सञ्जय ! केवल पराक्र-  
 मको प्रकाश करनेहीसे स्वर्गका द्वार  
 अथवा अमृतके समान राज्यपद मिलता

जहि शत्रूत्रणे राजन्स्वधर्ममनुपालय ।  
 मा त्वादृशं सुकृपणं शत्रूणां भयवर्धनम् ॥ ३० ॥  
 अस्मदीयैश्च शोचद्भिर्नदद्भिश्च परैर्वृतम् ।  
 अपि त्वां नाऽनुपश्येयं दीनादीनमिवाऽऽस्थितम् ॥ ३१ ॥  
 हृष्य सौवीरकन्याभिः श्लाघ स्वार्थैर्यथा पुरा ।  
 मा च सैन्धवकन्यानामवसन्नो वशं गमः ॥ ३२ ॥  
 युवा रूपेण सम्पन्नो विद्ययाऽभिजनेन च ।  
 यत्त्वादृशो विकुर्वति यशस्वी लोकविश्रुतः ॥ ३३ ॥  
 अधुर्यवच्च वोढव्ये मन्ये मरणमेव तत् ।  
 यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम् ॥ ३४ ॥  
 पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का शान्तिर्हृदयस्य मे ।  
 नाऽस्मिञ्जातु कुले जातो गच्छेद्योऽन्यस्य पृष्ठतः ॥ ३५ ॥  
 न त्वं परस्याऽनुचरस्तात जीवितुमर्हसि ।

है । इस बातको हृदयमें रखके जलती हुई अग्निके समान शत्रुओंके बीचमें प्रवेश करो । ( २७-२९ )

हे क्षत्रिय ! रणभूमिमें शत्रुओंका नाश करके अपने धर्मकी रक्षा करो । मैं जिसमें तुमको शत्रुओंके आनन्दका बढ़ानेवाला और अत्यन्त कातर न देखूँ । हमारी ओरके पुरुष लोग शोक प्रकाश करते हुए तथा शत्रुओंकी ओरके लोग हर्षित होकर तुमको चारों ओरसे घेर रहे हैं; तुम अत्यन्त हीनता अवलम्बन करके उनके बीचमें पड़े हो; यह देखकर मुझको रोना न पड़े । हे पुत्र ! तुम पहिलेकी भांति हर्षयुक्त चित्तसे वीरोंके योग्य कार्य करके सौवीर-कन्याओंके बीचमें बड़ाई और आन-

न्दके पात्र बनो, उत्साह रहित और पराक्रमसे हीन होकर कभी सिन्धु देशकी कन्याओंके वशमें मत पड़ो । ऐसे रूप, गुणसे युक्त, सब विद्याओंसे भूषित, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ, जगत् में विख्यात, यशस्वी युवा पुरुषके बैलकी भांति दूसरेकी आज्ञामें चलने और मरनेमें मेरे विचारसे कुछ भी भेद नहीं है । ( ३०-३४ )

यदि मैं तुम्हें दूसरेके वशमें पड़े उसके पीछे गमन करते हुए देखूंगी, तो मेरे हृदयमें कैसे शान्ति हो सकेगी ? दूसरेके आज्ञाकारी बनें ऐसे पुरुष तुम्हारे इस कुलमें कभी नहीं उत्पन्न हुए हैं; हे पुत्र ! इससे दूसरेका सेवक होकर तुमको कभी जीना उचित नहीं है । क्षत्रियोंका



अहं हि क्षत्रहृदयं वेद यत्परिशाश्वतम् ॥ ३६ ॥  
 पूर्वैः पूर्वतरैः प्रोक्तं परैः परतरैरपि ।  
 शाश्वतं चाऽऽययं चैव प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ ३७ ॥  
 यो वै कश्चिदिहाऽऽजातः क्षत्रियः क्षत्रकर्मवित् ।  
 भया तिसमीक्षो वा न नमेदिह कस्यचित् ॥ ३८ ॥  
 उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।  
 अप्यपर्वणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित् ॥ ३९ ॥  
 मातङ्गो मत्त इव च परीयात्स महामनाः ।  
 ब्राह्मणेभ्यो नमेन्नित्यं धर्मायैव च सञ्जय ॥ ४० ॥  
 नियच्छन्नितरान्वर्णान्विघ्नन्सर्वदुःकृतः ।  
 ससहायोऽसहायो वा यावज्जीवं तथा भवेत् ॥ ४१ ॥ [४४५६]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि विदुलापुत्रानुशासने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३४ ॥

जो सदासे एकरूप अविकल हृदय है, वह मुझको भली भांति मालूम है । ( ३३-३६ )

पहिले तथा पीछे पण्डितोंने उस विषयमें जो कुछ वचन कहे हैं, तथा प्रजापति ब्रह्माने क्षत्रियोंको जिस कार्यके निमित्त उत्पन्न किया है, उसको मैं खूबही जानती हूं । पृथ्वीके बीच किसी प्रसिद्ध क्षत्रिय-वंशमें उत्पन्न होकर जो पुरुष सब धर्मोंकी यथार्थ बातोंको जानकर भी केवल अपनी प्राणरक्षाके निमित्त भयसे शत्रुओंके निकट अवनति स्वीकार करता है, वह पुरुष किसी प्रकारसे उत्तम नहीं कहा जा सकता । उद्यम ही पुरुषका पुरुषार्थ है, इससे सदा उद्योगी ही बनना चाहिये किसी समयमें अवनति स्वीकार करनी उचित-

त नहीं है । बालिक रणभूमिमें पराक्रम प्रकाशित करता हुआ मरकर स्वर्गको जावे; परन्तु किसीके समीपमें अपनी अवनति स्वीकार न करे । ( ३७-३९ )

मनस्वी वीरपुरुष मदसे मत्त हाथी-के समान निर्भय होकर सब स्थानोंमें भ्रमण करें, केवल धर्मके अनुसार ब्राह्मणोंके निकट अपनी अवनति स्वीकार करें; इसके अतिरिक्त और सब वर्णोंको बलपूर्वक अपने वशमें करके उनके बुरे कर्मोंके छुड़ाने का यत्न करे; उससे यदि उसे बहुतसी सहायतासे युक्त अथवा एकबारगी सहायतासे रहित होना पड़े, तौ भी वह अपने जीवनके समयतक इसी प्रकारके कर्म तथा अनुष्ठान करता रहे । ( ४०-४१ ) [ ४४५६ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ चौतीस अध्याय समाप्त ।



पुत्र उवाच- कृष्णायसस्येव च ते संहत्य हृदयं कृतम् ।  
 मम मातस्त्वकरुणे वीरप्रज्ञे ह्यमर्षणे ॥ १ ॥  
 अहो क्षत्रसमाचारो यत्र मामितरं यथा ।  
 नियोजयसि युद्धाय परमातेव मां तथा ॥ २ ॥  
 ईदृशं वचनं ब्रूयाद्भवती पुत्रमेकजम् ।  
 किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया ॥ ३ ॥  
 किमाभरणकृत्येन किं भोगैर्जीवितेन वा ।  
 भयि वा सङ्गरहते प्रियपुत्रे विशेषतः ॥ ४ ॥  
 मातोवाच-- सर्वावस्था हि विदुषां तात धर्मार्थकारणात् ।  
 तावेवाऽभिसमीक्ष्याऽहं सञ्जय त्वामचूचुदम् ॥ ५ ॥  
 स समीक्ष्य क्रमोपेतो मुख्यः कालोऽयमागतः ।  
 अस्मिंश्चेदागते काले कार्यं न प्रतिपद्यसे ॥ ६ ॥  
 असम्भावितरूपस्त्वमानृशंस्यं करिष्यसि ।

उद्योगपर्वमें एकसौ पैंतीस अध्याय ।

पुत्र बोले, हे क्रोधयुक्त, करुणारहित, वीरताका अभिमान करनेवाली माता ! मालूम होता है, कि अत्यन्त कठोर लोहेसे ब्रह्माने तुम्हारे इस कठिन हृदयको बनाया है। हाय ! क्षत्रिय धर्म क्या ही विचित्र है, कि जिसके कारण तुम मुझे को सामान्य पुरुषकी भांति समझकर युद्धके कराल-मुखमें फेंक रही हो। गर्भधारिणी माता होकर भी तुम सौतेली माताके समान ऐसे वचन-रूपी बाणोंसे मेरे हृदयको छेद रही हो। तुमसे मैं यही एक बात पूछता हूँ, कि यदि तुम मुझे ही न देखोगी; तो तुम्हारे इस समस्त पृथ्वीके राज्य, भूषण, भोग, सुख और जीनेसे क्या

प्रयोजन सिद्ध होगा ? ऐसे उत्तम प्यारे पुत्रके रणमें नाश होनेपर तुम जीके क्या करोगी ? (१-४)

माता बोली ! बुद्धिमान् मनुष्योंके सम्पूर्ण कर्म ही धर्म और अर्थसे युक्त रहते हैं; मैं उसी धर्म और अर्थकी ओर लक्ष्य करके तुमको युद्ध करनेको कहती हूँ। देखो तुम्हें पराक्रम प्रकाशित करनेका यह मुख्य समय उपस्थित हुआ है, इससे यदि तुम इस उपस्थित समयमें अपने कर्तव्य कार्यका अनुष्ठान न करोगे, तो तुम लोकके बीचमें मान रहित होकर मेरा अत्यन्त ही अहित कार्य करोगे। तुम्हारे धन सम्पत्ति राज्य, यश और बड़ाईकी कुछभी सम्भावना नहीं रहेगी। तुमको अपयशसे ग्रस्त

तं त्वामयशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि सञ्जय ॥ ७ ॥

खरीवात्सल्यमाहुस्तन्निःसामर्थ्यमहेतुकम् ।

सद्भिर्विगर्हितं मार्गं त्यज सूर्खनिषेवितम् ॥ ८ ॥

अविद्या वै महत्यास्ति यामिमां संश्रिताः प्रजाः ।

तव स्याद्यदि सदृत्तं तेन मे त्वं प्रियो भवेः ॥ ९ ॥

धर्मार्थगुणयुक्तेन नेतरेण कथञ्चन ।

दैवमानुषयुक्तेन सद्भिराचरितेन च ॥ १० ॥

यो ह्येवमविनीतेन रमते पुत्रनमृणा ।

अनुत्थानवना चापि दुर्विनीतेन दुर्धिया ॥ ११ ॥

रमते यस्तु पुत्रेण मांघं तस्य प्रजाफलम् ।

अकुर्वन्तो हि कर्माणि कुर्वन्तो निन्दितानि च ॥ १२ ॥

सुखं नैवेह नाऽसुत्र लभन्ते पुरुषाधमाः ।

होता हुआ देखकर भी यदि मैं प्रीति पूर्वक उसके निवारण करनेके निमित्त कुछ वचन न कहूं तो वह किसी प्रकार से भी युक्ति युक्त तथा यथार्थ प्रीति-का कार्य नहीं हो सकता; ऐ से पुत्रस्नेह को पण्डित लोग सामर्थ्य रहित विना कारणकी प्रीति और निरर्थक स्नेह कह-ते हैं। हे सञ्जय ! इससे तुम सूर्ख लोगोंके मानने योग्य और बुद्धिमानोंमें निन्दित इस बुरे मार्गको त्याग दो । (५-८)

देखो इस पृथ्वीमें बहुत ही अविद्या प्रायः सब स्थानोंमें विराज रही है; यदि तुम इस अविद्यासे छूटकर सदा-चारी बनोगे, तभी मेरा प्रिय कार्य सिद्ध होगा। धर्म अर्थ आदि गुणसे युक्त, देवता और मनुष्योंके कर्मके जा-

ननेवाले साधु पुरुषोंके मानने योग्य विना उत्तम कार्य किये तुम कभी मेरी प्रीतिके पात्र नहीं हो सकते। जो भली प्रकारसे उत्तम कर्म और विद्या-विनयसे युक्त पुत्र पौत्र आदिके ऊपर प्रीति करते हैं, उनकी प्रीतिको ही यथार्थ प्रीति कहते हैं। नहीं तो जो पुरुष उद्यम और विनय रहित नीचबुद्धि पुत्रके ऊपर प्रीति करते हैं; उनके प्रजाका फलही एकवारगी नष्ट हो जाता है । (९-१२)

मनुष्योंके योग्य कर्त्तव्य कर्मका अनुष्ठान न करनेवाले और निन्दित तथा बुरे कर्मके करनेमें बहुत ही हठ करने-वाले अधम पुरुषोंको इस लोक तथा परलोकमें कहीं भी सुख नहीं मिल स-कता। हे सञ्जय ! तुम यह निश्चय जान

युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः सञ्जयेह जयाय च ॥ १३ ॥

जयन्वा बध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम् ।

न शक्रभवने पुण्ये दिवि तद्विद्यते सुखम् ॥

यदमित्रान्वशे कृत्वा क्षत्रियः सुखमेधते ॥ १४ ॥

मन्युना दह्यमानेन पुरुषेण मनस्विना ।

निकृतेनेह बहुशः शत्रून्प्रतिजिगीषया ॥ १५ ॥

आत्मानं वा परित्यज्य शत्रुं वा विनिपात्य च ।

अतोऽन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत् ॥ १६ ॥

इह प्राज्ञो हि पुरुषः स्वल्पमप्रियमिच्छति ।

यस्य स्वल्पं प्रियं लोके ध्रुवं तस्याऽल्पमप्रियम् ॥ १७ ॥

प्रियाभावाच्च पुरुषो नैव प्राप्नोति शोभनम् ।

ध्रुवं चाऽभावमभ्येति गत्वा गङ्गेव सागरम् ॥ १८ ॥

पुत्र उवाच — नेयं मतिस्त्वया वाच्या मातः पुत्रे विशेषतः ।

कारुण्यमेवाऽत्र पश्य भूत्वेह जडमूकवत् ॥ १९ ॥

रक्खो, किं केवल युद्ध और जय करने-  
हीके निमित्त इस पृथ्वीमें क्षत्रियोंकी  
उत्पत्ति हुई है। क्षत्रिय पुरुष चाहे शत्रु-  
ओंको जीते अथवा रणभूमिमें मारा  
ही जावे; दोनों भाँतिसे उमे इन्द्रलोक  
मिलता है। अमित्रोंको वशमें करके  
क्षत्रिय पुरुष जैसे सुख और सम्पत्तिके  
अधिकारी होते हैं; वैसा सुख स्वर्गके इन्द्र  
भवनमें भी नहीं मिल सकता है। १२-१४

मनस्वी पुरुष शत्रुओंसे अनेक बार  
पराजित होकर क्रोधकी अग्निमें चलता  
हुआ अपने शत्रुओंका इकवारगी  
नाशकर देवे अथवा उनसे मरकर स्वर्ग  
लोकहीको जावे; इसके अतिरिक्त और  
किसी प्रकारसे उसके हृदयमें शान्ति

नहीं हो सकती। इस संसारमें बुद्धिमान  
पुरुष बहुत थोड़ी वस्तुमें प्रीति नहीं क-  
रते हैं; थोड़ी वस्तु जिस प्यारी होती है,  
वह अवश्य ही एक दिन उसके अनिष्ट-  
की जड होजाती है। क्योंकि प्यारी  
वस्तुओंके अत्यन्त ही अभाव होजानेपर  
फिर पुरुषके कल्याणकी संभावना नहीं  
रहती, बल्कि समुद्रमें लीन हुई गङ्गाकी  
भाँति एकवारगी सब पदार्थोंका अभाव  
हो जाता है। (१५—१८)

पुत्र बोला, हे माता ! इस प्रकारका  
अभिप्राय प्रगट करना तुमको उचित  
नहीं है। विशेष करके पुत्रके वास्ते  
ऐसी प्रवृत्ति करनी तुम्हें योग्य नहीं है।  
इस समय जड अथवा गूंगेकी भाँति

मातोवाच— अतां मे भूयसी नन्दिर्यदेवमनुपश्यसि ।  
 चोद्यं मां चोदयस्येत शं वै चोदयामि ते ॥ २० ॥  
 अथ त्वां पूजयिष्यामि हत्वा वै सर्वसैन्धवान् ।  
 अहं पश्यामि विजयं कृच्छ्रभाषितमेव ते ॥ २१ ॥  
 पुत्र उवाच— अकोशस्यांस्सहायस्य कुतः सिद्धिर्जयो मम ।  
 इत्यवस्थां विदित्वैतामात्मनाऽऽत्मनि दारुणाम् ॥ २२ ॥  
 राज्याद्भावो निवृत्तो मे त्रिदिवादिव दुष्कृतः ।  
 ईदृशं भवती काश्चिदुपायमनुपश्यति ॥ २३ ॥  
 तन्मे परिणतप्रज्ञे सम्यक्प्रब्रूहि पृच्छते ।  
 करिष्यामि हि तत्सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ २४ ॥  
 मातोवाच— पुत्र नाऽऽत्माऽवमन्तव्यः पूर्वाभिरसमुद्भिभिः ।  
 अभूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चाऽपरे ॥  
 अमर्षेणेव चाप्यर्था नाऽऽरब्धव्याः सुबालिशैः ॥ २५ ॥

शान्तभावसे हरकर केवल करुणा दिखाना ही तुम्हारा कर्त्तव्य-कार्य है । ( १९ )

माता बोली, हे पुत्र ! तुम जैसा विचार करते हो, उससे तुम्हारे ऊपर मेरी अधिक प्रीति उत्पन्न होरही है । मेरे विषयमें जैसा वचन कहना उचित है, तुम वैसा ही कहते हो, और मैं भी उसके अनुसार तुमको प्रेमसे युक्त प्रेरणा करती हूं । तुम्हारे हाथसे पहिले सम्पूर्ण सैन्धव-वीरों को मारकर पीछे तुम्हारी अत्यन्त प्रशंसा करती रहूंगी । अधिक क्या कहूं, तुम्हारी जो सब प्रकारसे विजय होगी, उसको मैं प्रत्यक्ष रूपसे देख रही हूं । ( २०-२१ )

पुत्र बोला, हमारे धन, बल, सहाय आदि कुछ भी वस्तु नहीं है; तब फिर

कैसे हमारी जीत हो सकती है ? तुम्हारी ऐसी दारुण अवस्थाको जानकर मैं खुद ही उन आशाको छोड़कर चुप बैठ हूं; अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होने योग्य स्वर्गलोकके समान राज्यकी आशा भी मैंने छोड़ दी है । हे महा बुद्धिमती ! जिससे मैं कृतकार्य हो सकूं, तुम यदि वैसा कुछ उपाय जानती हो, तो विशेष रूपसे कहो; तुम्हारे उस वचनको मैं सम्पूर्ण रूपसे पालन करूंगा । २२-२४

माता बोली, हे पुत्र ! मेरी जीत नहीं होगी, पहिले ही ऐसी चिन्ता करके अपनी आत्माको तुच्छ मत समझो क्योंकि घटनाके अनुकूल बहुत समयका नष्ट हुआ अर्थभी मिलता है, और प्राप्त धनका भी नाश हो जाता है । पूर्ण

सर्वेषां कर्मणां तात फले नित्यमनित्यता ।  
 अनित्यमिति जानन्तो न भवन्ति भवन्ति च ॥ २६ ॥  
 अथ ये नैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते ।  
 ऐकगुण्यमनीहायामभावः कर्मणां फलम् ॥ २७ ॥  
 अथ द्वैगुण्यमनीहायां फलं भवति वा न वा ।  
 यस्य प्रागेव विदिता सर्वार्थानामनित्यता ॥ २८ ॥  
 बुद्धेर्बुद्धिसमृद्धी स प्रतिकूले नृपात्मज ।  
 उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ॥ २९ ॥  
 भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ।  
 सङ्गलानि पुरस्कृत्य ब्राह्मणांश्चेश्वरैः सह ॥ ३० ॥  
 प्राज्ञस्य नृपतेराशु वृद्धिर्भवति पुत्रक ।  
 अभिवर्तति लक्ष्मीस्तं प्राचीमिव दिवाकरः ॥ ३१ ॥

रीतिसे उपाय करनेपर अवश्य ही पुरुषकी वृद्धि होती है, मूर्खतासे केवल क्रोधके वशमें ही होकर किसी कार्यका आरम्भ करना उचित नहीं है । हे तात ! सब प्रकारके कर्मों ही से फलकी सिद्धिके विषयमें उपस्थित अनित्यता देख पड़ती है । जो पुरुष फलकी अनित्यताको स्थिर करके भी कर्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होता है; उसके अभिलाषाकी सिद्धि भी होती है, और नहीं भी हो सकती । परन्तु विना निश्चय किये ही जो एकवारगी कार्यके अनुष्ठानमें प्रवृत्त नहीं होते, वह किसी समयमें कृतकार्य नहीं हो सकते । कार्यके करनेका उद्योग न करनेसे एकवारगी फलका अभाव होता है, और कार्यमें प्रवृत्त रहनेसे कार्यके फल सिद्धि होने और न होने

दोनोंहीकी सम्भावना होती है। (२५-२८)

हे राजपुत्र ! आरम्भ करनेके पहिले ही जो पुरुष सब कार्योंकी अनित्यताको स्थिर करके उद्यम करता है, उसकी पीडा नष्ट होती है और शत्रुकी समृद्धि नहीं हो सकती । इससे “ निश्चय ही कार्य सिद्ध होगा ” ऐसा विचार कर उत्साहके सहित कार्यमें तत्पर होना और माङ्गलिक कार्योंके अनुष्ठानको करना ही उचित है । हे पुत्र ! बुद्धिमान् राजा लोग देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा तथा स्वस्त्ययन आदि माङ्गलिक कर्मोंका अनुष्ठान करके अपने अभीष्टके सिद्ध करनेवाले कर्मको आरम्भ करते हैं; उससे अवश्य ही उनकी वृद्धि होती है । पूर्व दिशा जैसे भगवान् सूर्यको आलिङ्गन करती है, वैसेही

निदर्शनान्युपायांश्च बहून्युद्धर्षणानि च ।  
 अनुदर्शितरूपोऽसि पश्यामि कुरु पौरुषम् ॥ ३२ ॥  
 पुरुषार्थमभिप्रेतं समाहर्तुमिहाऽर्हसि ।  
 क्रुद्धान्लुब्धान्परिक्षीणानवलिप्तान्विमानीतान् ॥ ३३ ॥  
 स्पर्धिनश्चैव ये केचित्तान्युक्त उपधारय ।  
 एतेन त्वं प्रकारेण महतो भेत्स्यसे गणान् ॥ ३४ ॥  
 महावेग इवोद्भूतो मातरिश्वा बलाहकान् ।  
 तेषामग्रप्रदायी स्याः कल्पोत्थायी प्रियंवदः ॥  
 ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति पुरो धास्यन्ति च ध्रुवम् ॥ ३५ ॥  
 यदैव शत्रुर्जानीयात्सपत्नं त्यक्तजीवितम् ।  
 तदैवाऽस्मादुद्विजते सर्पाद्वैश्वगतादिव ॥ ३६ ॥  
 तं विदित्वा पराक्रान्तं वशे न कुरुते यदि ।

लक्ष्मी देवी खुद ही उस पुरुषसिंहके वशमें हो जाती है । ( २८—३१ )

हे सञ्जय ! मैंने जो यह सब प्रमाण उपाय और उत्साहसे युक्त वचन तुमसे कहे हैं, मैं तुमको उसीके योग्य देख रही हूँ; इससे तुम सब शङ्काओंको त्यागके अपने पराक्रमको प्रकाशित करो सब प्रकारसे यत्नपूर्वक अपने कार्यको सिद्ध करनेके निमित्त उत्साहपूर्वक यत्न करो । तुम्हारे शत्रुके ऊपर जो लोग क्रुद्ध हैं, जो लोभके वशमें हैं, जो लोग उससे दुःखित हैं, जिनका उसने अवमान किया है; जो लोग गर्वमें भरे हुए हैं; और जो उसके सङ्गमें युद्धकी इच्छा करते हैं; —तुम पूर्ण रीतिसे यत्नपूर्वक उन लोगोंको अपनी ओर मिला लो; उन लोगोंको पहिले वेतन

देकर सन्तुष्ट करो और अपने कार्यको साधन करनेके निमित्त शीघ्र ही उद्यम करो । इस प्रकारके कार्यक<sup>१</sup> करनेसे ही, जैसे वायु प्रबल बादलोंके समूहको छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकारसे इन बहुतसे मनुष्योंको अपने वशमें करनेसे तुम अवश्य ही समर्थ हो जाओगे और वह लोग भी तुमको आदरके सहित प्रीतिपूर्वक अपना स्वामी तथा अग्रणी बनावेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । ( ३२—३५ )

जब शत्रु जानता है, कि मेरा वैरी अपने प्राणकी आशा त्याग करके युद्धके निमित्त उपास्थित हुआ है; तब ही वह घरमें वास करने वाले सर्पकी भांति उससे डरता है । उसको अत्यन्त प्रबल जानकर यदि वह वशमें करनेकी कोशिश

निर्वादैर्निर्वदेदेनमन्तस्तद्भविष्यति ॥ ३७ ॥

निर्वादादास्पदं लब्ध्वा धनवृद्धिर्भविष्यति ।

धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाऽऽश्रयन्ति च ॥ ३८ ॥

स्खलितार्थं पुनस्तानि सन्त्यजन्ति च बान्धवाः ।

अप्यस्मिन्नाश्वसन्ते च जुगुप्सन्ते च तादृशम् ॥ ३९ ॥

शत्रुं कृत्वा यः सहायं विश्वासमुपगच्छति ।

अतः सम्भाव्यमेवैतच्छ्राज्यं प्राप्नुयादिति ॥ ४० ॥ [ ४४९६ ]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि विदुलापुत्रानुशासने पञ्चविंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

मातोवाच—

नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्याश्चिदापदि ।

अथ चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्तेत दीर्णवत् ॥ १ ॥

दीर्णं हि हृष्टा राजानं सर्वमेवाऽनुदीर्यते ।

राष्ट्रं बलममात्याश्च पृथक्कुर्वन्ति ते मतीः ॥ २ ॥

करेगा, तो अवश्य सामदानके प्रयोगसे अपने; अनुकूलमें करनेकी इच्छा करेगा, ऐसा होनेपर एक प्रकारसे उसको वशमें करना सिद्ध हो जावेगा। क्योंकि सन्धिको स्थापित करके स्थान तथा राज्यको पानेसे कभी धनकी भी वृद्धि होगी, पुरुषके धनवान् होनेसे मित्र लोग उसे मानते तथा उसका आसरा ग्रहण करते हैं। ( २६—३८ )

परन्तु यदि वह दैव-संयोगसे धन तथा सम्पत्तिसे भ्रष्ट हो जावे, तो वह मित्र लोग और भाई बन्धु उसको छोड़कर चले जाते हैं; केवल छोड़के ही नहीं जाते, बल्कि उससे घृणा करते तथा उसकी निन्दा भी करनेमें सङ्कोच नहीं करते। जो पुरुष शत्रुको सहायक बनाकर उसका विश्वास करता

है; उसको जो किसी समयमें राज्य मिल सकेगा, यह केवल सम्भावना मात्र ही होती है ? परन्तु यथार्थमें उसकी वह आशा कभी सफल नहीं हो सकती। ( ३९—४० ) [ ४४९६ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ पैंतीस अध्याय समाप्त।

उद्योगपर्वमें एकसौ छत्तीस अध्याय ।

माता बोली, हे सञ्जय ! राजाके विषयमें चाहे कैसे ही आपद क्यों न उपस्थित होवे, उससे डरके व्याकुल होना कभी उचित नहीं है, यदि मनमें कोई शङ्का भी उत्पन्न होजावे, तो बाहर उस विषयको कभी भी प्रकाशित न करना चाहिये। क्योंकि राजाको शङ्कित देखकर राज्य, बल, सेवक आदि सब ही भयसे व्याकुल होकर उत्साह-रहित हो जाते हैं। ऐसी अवस्था

शत्रून्नेके प्रपद्यन्ते प्रजहत्यपरे पुनः ।  
 अन्ये तु प्रजिहीर्षन्ति ये पुरस्ताद्विमानिताः ॥ ३ ॥  
 य एवाऽत्यन्तसुहृदस्त एनं पर्युपासते ।  
 अशक्तयः स्वस्तिकामा बद्धवत्सा इला इव ॥ ४ ॥  
 शोचन्तमनुशोचन्ति पतितानिव बान्धवान् ।  
 अपि ते पूजिताः पूर्वमपि ते सुहृदो मताः ॥ ५ ॥  
 ये राष्ट्रमभिमन्यन्ते राज्ञो व्यसनमीयुषः ।  
 मा दीदिरस्त्वं सुहृदो मा त्वां दीर्णं प्रहासिषुः ॥ ६ ॥  
 प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जिज्ञासन्त्या मया तव ।  
 विदधत्या समाश्वासमुक्तं तेजोविवृद्धये ॥ ७ ॥  
 यदेतत्संविजानासि यदि सम्यग्ब्रवीम्यहम् ।  
 कृत्वाऽसौम्यमिवाऽऽत्मानं जयायोत्तिष्ठ सञ्जय ॥ ८ ॥

के आने पर कोई कोई स्वामीको छोड़ देते हैं, कोई शत्रुके आसरेको अवलम्बन करते हैं, और जो सब पुरुष पहिले मानराहित हो गये थे, वह अवसर पाकर अपने स्वामीकी विरुद्धता करने पर उपस्थित हो जाते हैं; इसके अतिरिक्त जो लोग अत्यन्तही सुहृद हैं, वही लोग सामर्थ्य रहित होकर भी जिसका वत्स बंधा हुआ है ऐसे धेनुके समान स्वामीकी भक्तिके अनुसार उसकी परतन्त्रताको स्वीकार करके उस समयमें कल्याणकी अभिलाषासे उसकी सेवा करते हैं । (१-४)

भाई बन्धुको पतित देखकर जैसे बन्धु बान्धव लोग दुःख और शोक प्रकट करते हैं, वैसे ही विश्वास पात्र सुहृद इष्टमित्र भी स्वामीको बुरी अवस्था-

में पड़ा हुआ देखकर शोक प्रकाशित करते हैं । इससे स्वामीको व्यसनमें पड़े हुए देखकर जो लोग तनमनसे उसके राज्यकी रक्षा चाहते हैं, वही लोग यथार्थमें मित्र हैं, सबके पहिले उन्हीं लोगोंकी पूजा करनी उचित है । हे पुत्र ! ऐसे सुहृद पुरुषोंको तुम कभी भी भयसे व्याकुल मत करना । तुमको भयभीत देख कर वह लोग तुम्हें त्याग न देवें । तुम्हारे प्रभाव पराक्रम और बुद्धिके जाननेकी अभिलाषासे मैंने जो यह सब वचन कहे हैं, वह तुम्हारी आशा, उत्साह और तेजको बढ़ानेके निमित्त ही कहा गया है । यदि यह यथार्थ रूपसे तुम्हें उत्तम जंचे और मेरी बातोंमें प्रीति तथा विश्वास होवे, तो धीरताको अवलम्बन करके तुम अपने विजयके निमित्त उद्योग करो । ५-८



अस्ति नः कोशानिचयो महान्हि विदितस्तव ।

तमहं वेद नाऽन्यस्तमुपसम्पादयामिते ॥ ९ ॥

सन्ति नैकतमा भूयः सुहृदस्तव सञ्जय ।

सुखदुःखसहा वीर संग्रामादनिवर्त्तिनः ॥ १० ॥

तादृशा हि सहाया वै पुरुषस्य बुभूषतः ।

इष्टं जिहीर्षतः किञ्चित्साचिवाः शत्रुकर्शन ॥ ११ ॥

तस्यास्त्वीदृशकं वाक्यं श्रुत्वाऽपि स्वल्पचेतसः ।

तमस्त्वपागमत्तस्य सुचित्रार्थपदाक्षरम् ॥ १२ ॥

पुत्र उवाच— उदके भूरियं धार्या मर्तव्यं प्रवणे मया ।

यस्य मे भवती नेत्री भविष्यद्भूतिदर्शिनी ॥ १३ ॥

अहं हि वचनं त्वत्तः शुश्रूषुरपरापरम् ।

किञ्चित्किञ्चित्प्रतिवदंस्तूष्णीमासं मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥

अतृप्यन्नमृतस्येव कृच्छ्रालुब्धस्य बान्धवात् ।

हे सञ्जय ! हम लोगोंका एक बहुत बड़ा धनका स्थान है वह तुमको नहीं मालूम है, मुझे छोड़के और कोई भी उस खजानेके स्थानको नहीं जानता है; उस स्थानमें जो बहुतसा धन है, वह सम्पूर्ण तुमको देती हूं। हे वीर ! इसके अतिरिक्त तुम्हारे कई सौ इष्ट मित्र तथा सुहृद लोग भी विद्यमान हैं; वह सब ही तुम्हारे सुख दुःखके साथी और युद्धमें कभी भी पीछे न हटनेवाले हैं। हे शत्रुनाशन ! कोई कल्याणको चाहनेवाला पुरुष बलपूर्वक यदि किसी कार्यको करनेका अनुष्ठान करे तो ऐसे सहाय लोग ही उसके मन्त्री बन कर सब कार्य करते हैं। (९-११)

सञ्जय स्वभावसे ही थोड़ी बुद्धिसे

युक्त था, परन्तु अपनी माताके ऐसे उत्तम पद पदार्थसे युक्त, सुन्दर और मनोहर वचनोंको सुनते ही उसी समयमें उसका भय और शंका दूर होगई तब वह साहसके ऊपर भरोसा करके बोला, हे माता ! भावी कल्याणको देखनेवाली तुम जब मुझे उत्तम शिक्षा दे रही हो; तब मुझको कोई कार्य भी कठिन नहीं है। मैं जलमें डूबे हुए के समान या तो पैतृक राज्यका उद्धार करूंगा अथवा रणभूमिमें प्राणको त्यागकर स्वर्ग लोकमें जाऊंगा। तुम्हारे उपदेशके वचनोंको सुननेके समय मैं प्रायः मौन रूपसे सुन रहा था; केवल बीच बीचमें कुछ थोड़ा सा जवाब दिया था; उसका कारण यही था, कि

कुन्त्युवाच—

उद्यच्छाम्येष शत्रूणां नियमार्थं जयाय च ॥ १५ ॥

सदश्व इव स क्षिप्तः प्रणुन्नो वाक्यसायकैः ।

तच्चकार तथा सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ १६ ॥

इदमुद्धर्षणं भीमं तेजोवर्धनमुत्तमम् ।

राजानं श्रावयेन्मन्त्री सिद्दन्तं शत्रुपीडितम् ॥ १७ ॥

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा ।

महीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रूंश्च मर्दति ॥ १८ ॥

इदं पुंसवनं चैव वीराजननमेव च ।

अभीक्षणं गर्भिणी श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते ॥ १९ ॥

विद्याशूरं तपःशूरं दानशूरं तपस्विनम् ।

ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानं साधुवादे च सम्मतम् ॥ २० ॥

अर्चिष्मन्तं बलोपेतं महाभागं महारथम् ।

धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम् ॥ २१ ॥

तुम्हारे दूसरे उपदेशके वचनोंको भी सुनूंगा। अत्यन्त दुर्लभ अमृतके पीनेसे जैसे वृषि नहीं होती; वैसे ही तुम्हारे अमृत रूपी वचनोंके सुननेसे मेरी इच्छा पूर्ण नहीं होती थी, इसीसे मैंने चुपचाप तुम्हारे वचनोंको सुना है; इस समयमें शत्रुओंके नाश और अपने विजयके निमित्त उद्योग करता हूँ। (१२-१५)

कुन्ती बोली, विदुलाके ऐसे कठोर वचन रूपी बाणोंसे विद्ध और प्रसिद्ध उत्तम घोड़ेकी भांति उत्तेजित होकर माताकी आज्ञाके अनुसार सज्जयने सब कार्योंको शीघ्र ही पूर्ण किया था। कोई राजा यदि शत्रुओंसे पीडित और उत्साह शून्य होवे, तो शत्रुओंके नाश करनेवाले तेजको बढ़ानेवाले

इस उत्तम वृत्तान्तको उसके मंत्रिको उसे अवश्य सुनाना उचित है। विजय चाहनेवाले पुरुषकी जय रूपी इस कथाको अवश्य सुनना चाहिये। जो पुरुष एक बार भी इस कथाको चित्त लगाके सुनता है, वह शीघ्र ही सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतने और शत्रुओंके नाश करनेमें समर्थ होता है, गर्भिणी स्त्री वीर पुत्रको उत्पन्न करनेकी इच्छासे इस कथाको बार बार मननेसे अवश्य ही शूरवीर पुत्र उत्पन्न करती हैं। १६-१९

जो कोई क्षत्रिय-नारी यह कथा चित्त लगाके सुनती है, वह अवश्यही विद्यावीर, दानवीर, तपस्या वीर, दिव्य शोभासे प्रकाशित, साधु पुरुषोंमें गिनने योग्य, महातेजस्वी, महाबली,

नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम् ।

ईदृशं क्षत्रिया सूते वीरं सत्यपराक्रमम् ॥ २२ ॥ [ ४५१८ ]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि विदुलापुत्रानुशासनसमाप्तौ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

कुन्तुवाच—

अर्जुनं केशव ब्रूयास्त्वयि जाते स्म सूतके ।

उपोषविष्टा नारीभिराश्रमे परिवारिता ॥ १ ॥

अथाऽन्तरिक्षे वागासीदिव्यरूपा मनोरमा ।

सहस्राक्षसमः कुन्ति भविष्यत्येष ते सुतः ॥ २ ॥

एष जेष्यति संग्रामे कुरुन्सर्वान्समागतान् ।

भीमसेनद्वितीयश्च लोकमुद्वर्तयिष्यति ॥ ३ ॥

पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चाऽस्य दिवं स्पृशेत् ।

हत्वा कुरुंश्च संग्रामे वासुदेवसहायवान् ॥ ४ ॥

पित्र्यमंशं प्रनष्टं च पुनरप्युद्धरिष्यति ।

भ्रातृभिः सहितः श्रीमांस्त्रीन्मेधानाहरिष्यति ॥ ५ ॥

स सत्यसन्धो बीभत्सुः सव्यसाची यथाऽच्युत ।

तथा त्वमेव जानासि बलवन्तं दुरासदम् ॥ ६ ॥

भाग्यवान्, महारथ, सबको जीतनेवाले,  
अपराजित, दुष्टोंका शासन करनेवाले,  
धर्मात्माओंकी रक्षा करनेवाले, सत्य-  
पराक्रमी, वीर पुत्रकी माता हो सकती  
है; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं  
है । (२०-२२) [ ४५१८ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ छत्तीस अध्याय ।

उद्योगपर्वमें एकसौ सैंतिस अध्याय ।

कुन्ती बोली, हे कृष्ण ! तुम मेरी  
ओरसे अर्जुनको कहना, कि हे पुत्र !  
तुमको उत्पन्न करके जिस समय मैं  
स्त्रियोंके बीचमें घिरी आश्रमके निकट  
बैठी थी, उसी समय आकाशसे यह  
भनोहर देववाणी हुई थी, “हे कुन्ती !

तुम्हारा यह पुत्र साक्षात् इन्द्रके समान  
होगा; इसका यश स्वर्गतक फैलेगा ।  
भीमसेनकी सहायतासे यह सम्पूर्ण  
पृथ्वीको जीतकर लोकमें प्रसिद्ध होगा ।  
श्रीकृष्णकी सहायतासे संग्राम भूमिमें  
उपस्थित हुए सम्पूर्ण कोरवोंको जीत-  
कर हरण किए हुए अपने पैतृक रा-  
ज्यका अंश फिर प्राप्त करेगा; और  
भाइयोंके सङ्ग मिलकर तीन महायज्ञ  
पूर्ण करेगा । ” (१-५)

हे कृष्ण ! वह सव्यसाची अर्जुन  
जैसा सत्य प्रतिज्ञ शत्रुओंसे जीतने के  
अयोग्य और बलवान् है, उसे तुम  
विशेष रूपसे जानते हो; इससे देववाणी

तथा तदस्तु दाशार्हं यथा वागभ्यभाषत ।  
 धर्मश्चेदस्ति वाष्पेयं तथा सत्यं भविष्यति ॥ ७ ॥  
 त्वं चापि तत्तथा कृष्ण सर्वं सम्पादयिष्यसि ।  
 नाऽहं तदभ्यसूयामि यथा वागभ्यभाषत ॥ ८ ॥  
 नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः ।  
 एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः ॥ ९ ॥  
 यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।  
 नहि वैरं समासाद्य सीदन्ति पुरुषर्षभाः ॥ १० ॥  
 विदिता ते सदा बुद्धिर्भीमस्य न स शाम्यति ।  
 यावदन्तं न कुरुते शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥ ११ ॥  
 सर्वधर्मविशेषज्ञां स्तुषां पाण्डोर्महात्मनः ।  
 ब्रूया माधव कल्याणीं कृष्ण कृष्णां यशस्विनीम् ॥ १२ ॥  
 युक्तमेतन्महाभागे कुले जाते यशस्विनि ।  
 यन्मे पुत्रेषु सर्वेषु यथावत्त्वमवर्तिथाः ॥ १३ ॥

जो हुई है, वह जिससे सिद्ध होवे, वही करना, हे कृष्ण ! यदि धर्म रहेगा, तो अवश्य ये सब वचन सत्य होंगे, तुम ही सब प्रकारके यत्नोंसे उसको पूर्ण करोगे । इससे उस आकाशवाणीमें जो वचन सुने गये हैं, मैं किसी प्रकारसे भी उसके ऊपर दोष नहीं दे सकती हूँ । भगवान् धर्मको सब प्रकारसे नमस्कार है, धर्म ही सम्पूर्ण प्रजाओंको धारण करता है । हे कृष्ण ! अर्जुनसे ऐसा कहकर सदा उद्यम करनेवाले उद्योगी भीमसेनसे भी यह वचन कहना; "क्षत्रियोंकी नारी जिस दिनके वास्ते पुत्रको उत्पन्न करती है, उसके योग्य समय यही अब उपस्थित हुआ है ।

पुरुषश्रेष्ठ वीर लोग कभी वैरीको पाकर चुपचाप बैठे नहीं रहते हैं ।" ६-१०

हे शत्रुनाशी कृष्ण ! भीमकी बुद्धि तुम्हें सदासे विदित है; वह भीमसेन जबतक शत्रुओंका नाश नहीं कर लेते, तबतक शान्त भी नहीं होते । हे कृष्ण ! महात्मा पाण्डुराजकी सुयोग्य पुत्रवधू सब कार्यों को विशेष रूपसे जाननेवाली, यशस्विनी, कल्याणी द्रौपदीसे भी तुम मेरी ओरसे यह वचन कहना कि "हे महाभागे ! हे यशस्विनि ! हे उत्तमकुलमें उत्पन्न हुई मनस्विनि ! हमारे सब पुत्रोंके ऊपर तुमने जो साध्वी स्त्रीके अनुसार यथार्थ आचरण किये हैं, वह तुम्हारे योग्य ही हैं । (११—१३)

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतावुभौ ।  
 विक्रमेणाऽर्जितान्भोगान्वृणीतं जीवितादपि ॥ १४ ॥  
 विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः ।  
 मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम ॥ १५ ॥  
 यच्च वः प्रेक्षमाणानां सर्वधर्मोपचायिनाम् ।  
 पाश्चाली पुरुषाण्युक्ता को नु तत्क्षन्तुमर्हति ॥ १६ ॥  
 न राज्यहरणं दुःखं व्यूते चाऽपि पराजयः ।  
 प्रव्राजनं सुतानां वा न मे तद् दुःखकारणम् ॥ १७ ॥  
 यत्र सा बृहती श्यामा सभायां रुदती तदा ।  
 अश्रौषीत्पुरुषा वाचस्तन्मे दुःखतरं महत् ॥ १८ ॥  
 स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा ।  
 नाऽध्यगच्छत्तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती ॥ १९ ॥  
 तं वै ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।  
 अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं द्रौपद्याः पदवीं चर ॥ २० ॥  
 विदितं हि तवाऽत्यन्तं क्रुद्धाविव यमान्तकौ ।

हे पुरुषोत्तम कृष्ण ! इसके अनन्तर  
 क्षत्रियोंके धर्ममें सदा रत रहनेवाले  
 दोनों माद्रीपुत्रोंसे कहना "हे पुत्रों ! तुम  
 लोग प्राणकी आशा त्यागकर भी अपने  
 पराक्रमसे उपार्जित किये हुए भोग  
 और सुखकी अभिलाषा करो, क्योंकि  
 अपने पुरुषार्थसे उत्पन्न हुआ धन ही क्ष-  
 त्रिय पुरुषोंको प्यारा होता है। देखो तुम  
 लोग सब धर्मोंके चलाने तथा जानने-  
 वाले होकर भी तुम्हारे संमुखमें जो  
 द्रौपदीको क्रुद्ध वचन सुनना पड़ा था,  
 उसको कौन क्षत्रिय पुरुष सह सकता  
 है ? हे कृष्ण ! पुत्रोंके राज्य जाने, जुवे-  
 में हारने और वनवास करनेसे भी मुझे

उतना दुःख नहीं है, जितना कि प्रा-  
 णसे भी बढके पातियोंकी प्यारी सुन्दरी  
 द्रौपदीके सभामें रोती हुई-दुष्टोंके कुटि-  
 ल तथा व्यङ्ग वचन सुननेसे; मुझको  
 यही एक हृदयको विदीर्ण करनेवाला  
 महा कठिन दुःख है । ( १४-१८ )

अहो ! क्षत्रिय धर्ममें सदा रत रहने  
 वाली, स्त्री धर्मसे युक्त, सुन्दरी द्रौपदी  
 अत्यन्त श्रेष्ठ नाथवती होकर भी उस  
 समयमें अनाथा हुई थी । हे कृष्ण !  
 सब धनुर्दारियोंमें श्रेष्ठ पुरुषसिंह अर्जुन  
 से यह वचन कहना, कि वह द्रौपदी-  
 हीके बताये हुए मार्गसे चलें । भीम  
 अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होनेपर मानो दो

भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम् ॥ २१ ॥  
 तयोश्चैतदवज्ञानं यत्सा कृष्णा सभागता ।  
 दुःशासनश्च यद्भीमं कटुकान्यभ्यभाषत ॥ २२ ॥  
 पश्यतां कुरुवीराणां तच्च संसारयेः पुनः ।  
 पाण्डवान्कुशलं पृच्छेः सपुत्रान्कृष्णया सह ॥ २३ ॥  
 मां च कुशलिनीं ब्रूयास्तेषु भूयो जनार्दन ।  
 अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुत्रान्मे प्रतिपालय ॥ २४ ॥  
 वैशम्पायन उवाच-अभिवाद्याऽथ तां कृष्णः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।  
 निश्चक्राम महाबाहुः सिंहखेलगतिस्ततः ॥ २५ ॥  
 ततो विसर्जयामास भीष्मादीन्कुरुपुङ्गवान् ।  
 आरोप्याऽथ रथे कर्णं प्रायात्सात्यकिना सह ॥ २६ ॥  
 ततः प्रयाते दाशार्हे कुरवः सङ्गता मिथः ।  
 जजल्पुर्महदाश्चर्यं केशवे परमाद्भुतम् ॥ २७ ॥  
 प्रमूढा पृथिवी सर्वा मृत्युपाशवशिकृता ।

यमकी मूर्ति धारण करके देवताओंको भी नष्ट कर सकते हैं; यह तुमको भली भाँति मालूम है । (१९-२१)

उन लोगोंके ऐसे पराक्रमी होनेपर भी जो उनकी प्यारी स्त्री द्रौपदी सभा में बुलाई गई थी, इससे बढके और अपमानका विषय दूसरा क्या होगा ? हे जनार्दन ! कौरव वीरोंके बीचमें भीमसेनको भी जो दुःशासनने कठोर वचन कहा था, उसको भी तुम फिर स्मरण करा देना । मेरी ओरसे पुत्र कलत्रके सहित पाण्डवोंको कुशल वार्त्ता पूछना । इस समय तुम सब विघ्नोंसे रहित होकर शुभ मार्गसे प्रस्थान करो और वहाँ पहुँचकर मेरे पुत्रोंका प्रतिपा-

लन करो । (२२-२४)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्र कुन्तीदेवीको प्रणाम और प्रदक्षिण करके उनके मन्दिरसे बाहर हुए और भीष्म आदि कौरवश्रेष्ठ सब पुरुषोंको वहींपर बिदा करके केवल कर्णके अपने रथपर चढाकर सात्यकीके सहित वहाँसे चले ! श्रीकृष्णके चले जानेपर सब कौरव लोग निर्जन स्थानमें इकट्ठे होकर उनके परम अद्भुत महा आश्चर्यसे युक्त वृत्तान्तकी आलोचना करने लगे; और सचने मिलकर यह अभिप्राय प्रकट किया "यह सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल मोहसे युक्त होकर मृत्युके वशमें हुआ है ।

दुर्योधनस्य बालिश्यान्नैतदस्तीति चाऽब्रुवन् ॥ २८ ॥

ततो निर्याय नगरात्प्रययौ पुरुषोत्तमः ।

मन्त्रयाभास च तदा कर्णेन सुचिरं सह ॥ २९ ॥

विसर्जयित्वा राधेयं सर्वयादवनन्दनः ।

ततो जवेन महता तूर्णमश्वानचोदयत् ॥ ३० ॥

ते पिबन्त इवाऽऽकाशं दारुकेण प्रचोदिताः ।

हया जग्मुर्महावेगा मनोमारुतरंहसः ॥ ३१ ॥

ते व्यतीत्य महाध्वानं क्षिप्रं ह्येना इवाऽऽशुगाः ।

उच्चैर्जगमुपप्लव्यं शार्ङ्गधन्वानमावहन् ॥ ३२ ॥ [ ४५५० ]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि कुन्तीवाक्ये सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

वैशम्पायन उवाच-कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ महारथौ ।

दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम् ॥ १ ॥

श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र कुन्त्याः कृष्णस्य सन्निधौ

वाक्यमर्थवदत्युग्रमुक्तं धर्म्यमनुत्तमम् ॥ २ ॥

तत्करिष्यन्ति कौन्तेया वायुदेवस्य सम्मतम् ।

दुर्योधनके मूर्खतारूपी दोषसे अवश्य ही यह सम्पूर्ण राष्ट्र तथा प्रजा संहार दशमें उपस्थित होगी ।” (२५-२८)

इधर सम्पूर्ण यदुवंशियोंके हर्षको बढ़ानेवाले पुरुषोत्तम कृष्ण नगरसे निकलनेके अनन्तर कर्णसे बहुत देर तक विचार करके अनन्तर अत्यन्त शीघ्रताके सहित अपने रथके घोड़ोंको चलाया । मन और वायुके समान शीघ्र चलनेवाले वे घोड़े दारुक सारथीके हाँकनेपर ऐसे चले, कि जैसे आकाश मार्गसे गमन कर रहे हैं, और अत्यन्त शीघ्रतासे गमन करनेवाले बाज पक्षीकी भाँति अनेक मार्ग और नगरोंको लांघ-

कर उपप्लव्य नगरमें आकर उपस्थित हुए । ( २९-३२ ) [ ४५५० ]

उद्योगपर्वमें एकसौ सैंतीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ अठतीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुन्ती देवी-ने कृष्णसे जो सब वचन कहे थे, महारथ द्रोणाचार्य और भीष्म उन सब बातोंको सुनकर शासनका उल्लङ्घन करनेवाले दुर्योधनसे बोले, कि हे पुरुषसिंह ! कृष्णसे कुन्तीने जिन सब धर्म और अर्थसे युक्त वचनोंको कहा, उसको तुमने सुना है ? श्रीकृष्णके प्रीतिके पात्र उसके पुत्र लोग अवश्य ही कुन्तीके उपदेशरूपी वचनोंको पालन करेंगे । हे

नहि ते जातु शाम्येरञ्जते राज्येन कौरव ॥ ३ ॥  
 क्लेशिता हि त्वया पार्था धर्मपाशसितास्तदा ।  
 सभायां द्रौपदी चैव तैश्च तन्मर्षितं तव ॥ ४ ॥  
 कृतास्त्रं ह्यर्जुनं प्राप्य भीमं च कृतनिश्चयम् ।  
 गाण्डीवं चेष्टुधी चैव रथं च ध्वजमेव च ॥ ५ ॥  
 नकुलं सहदेवं च बलवीर्यसमन्वितौ ।  
 सहायं वासुदेवं च न क्षंस्यति युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥  
 प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा पार्थेन धीमता ।  
 विराटनगरे पूर्वं सर्वे स्म युधि निर्जिताः ॥ ७ ॥  
 दानवा घोरकर्माणो निवातकवचा युधि ।  
 रौद्रमस्त्रं समादाय दग्धा बानरकेतुना ॥ ८ ॥  
 कर्णप्रभृतयश्चेमे त्वं चाऽपि कवची रथी ।  
 मोक्षितो घोषयात्रायां पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ।  
 प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ॥ ९ ॥

कौरव ! पहिले वे लोग धर्मके बन्धनमें बंधकर बहुत दुःख और क्लेश पा चुके हैं, इस समय विना राज्य लिये कभी शान्त न होवेंगे । सभाके बीच तुमने द्रौपदीको जो अत्यन्त दुःख दिया था, उन्होंने धर्म भयसे डर कर ही तुम्हारी वह दुष्टता सही थी, परन्तु इस समय वह धर्मका भय नहीं है; । (१-४)

इस समय सब शास्त्रोंके जाननेवाले अर्जुन, दृढसङ्कल्पको करनेवाले भीमसेन, गाण्डीव धनुष, दोनों अक्षय तूणीर, कपिध्वजासे युक्त रथ, महा पराक्रमी नकुल सहदेव और महा पराक्रमी श्री-कृष्णकी सहायता पाकर राजा युधिष्ठिर अब किसी प्रकारसे भी विना राज्य

लिये शान्त न रह सकेंगे । हे महाबाहो ! इसके पहिले वीरोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् अर्जुनने जो अकेले ही हम लोगोंको युद्धमें जीता था उन सब वृत्तान्तोंको तुम जानते ही है । इसके अतिरिक्त निवातकवच नामक महा पराक्रमी दानव लोग उस रुद्रास्त्रके धारण करने-वाले कपिध्वजासे युक्त अर्जुनके प्रता-परूपी अग्निमें भस्म होगये हैं । ५-८

और भी घोषयात्राके समय कर्ण आदि सब महारथ योद्धा और कवचको धारण करके रथमें बैठे हुए तुम सब लोग अर्जुनके बाहु बलसे गन्धर्वोंके हाथसे छूटे थे । यह सब कर्म ही उन पाण्डवोंके पराक्रमके पूर्ण प्रमाण हैं । हे



रक्षेमां पृथिवीं सर्वां मृत्योर्दष्टान्तरङ्गताम् ।  
 ज्येष्ठो भ्राता धर्मशीलो वत्सलः श्लक्ष्णवाक्कविः ॥ १० ॥  
 तं गच्छ पुरुषव्याघ्रं व्यपनीयेह किल्बिषम् ।  
 दृष्टश्च त्वं पाण्डवेन व्यपनीतशरासनः ॥ ११ ॥  
 प्रशान्तभ्रुकुटिः श्रीमान्कृता शान्तिः कुलस्य नः ।  
 तमभ्येत्य सहामात्यः परिष्वज्य नृपात्मजम् ॥ १२ ॥  
 अभिवादय राजानं यथापूर्वमरिन्दम ।  
 अभिवादयमानं त्वां पाणिभ्यां भीमपूर्वजः ॥ १३ ॥  
 प्रतिगृह्णातु सौहार्दात्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
 सिंहस्कन्धोरुबाहुस्त्वां वृत्तायतमहाभुजः ॥ १४ ॥  
 परिष्वजतु बाहुभ्यां भीमः प्रहरतां वरः ।  
 कम्बुग्रीवो गुडाकेशस्ततस्त्वां पुष्करेक्षणः ॥ १५ ॥  
 अभिवादयतां पार्थः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ १६ ॥  
 आश्विनेयौ नरव्याघ्रौ रूपेणाऽप्रतिमौ भुवि ।  
 तौ च त्वां गुरुवत्प्रेम्णा पूजया प्रत्युदीयताम् ॥ १७ ॥

पुरुषश्रेष्ठ ! इससे तुम भाइयोंके सङ्ग  
 मिलकर पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि स्थापित  
 करलो । मृत्युके मुखमें पड़े हुए इस  
 सम्पूर्ण पृथ्वीके वीरोंका उद्धार करो ।  
 विचार करके देखो, तो सही युधिष्ठिर  
 तुम्हारे जेष्ठ भाई धर्मात्मा, भाइयोंपर  
 वात्सल्य भाव प्रकट करनेवाले, प्यारे  
 और पण्डित हैं । इससे पाप बुद्धिको  
 त्यागके ऐसे पुरुषश्रेष्ठ वीरोंके सङ्ग  
 मिलकर कार्य करना ही तुमको सब  
 भांतिसे उचित है । (९-११)

युधिष्ठिर यदि तुमको धनुषसे रहित,  
 सीधी भ्रुकुटी, और शान्तमूर्त्तिसे देखें;  
 तब ही कौरवोंके कुलमें शान्ति हो स-

कती है । हे शत्रुनाशन नृपनन्दन !  
 इससे तुम सेवकोंके सहित राजा युधि-  
 ष्ठिरके निकट जाकर पहिलेकी भांति  
 आलिङ्गन और प्रणाम करो । भीमके  
 बड़े भाई युधिष्ठिर तुमको प्रणाम करते  
 हुए देखकर प्रीतिपूर्वक अपने दोनों  
 हाथोंसे ग्रहण करेंगे । लम्बी भुजा,  
 और सिंहके समान कन्धे वाले प्रहार  
 करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीमसेन तुमको दोनों  
 भुजाओंसे आलिङ्गन करेंगे । उसके  
 अनन्तर शंखके समान सुन्दर ग्रीवावा-  
 ले कमलनयन अर्जुन तुम्हें प्रणाम करेंगे  
 और पृथ्वीके बीच अश्विनीकुमारोंके पुत्र  
 अत्यन्त रूपवान् नकुल और सहदेव

मुञ्चन्त्वानन्दजाश्रूणि दाशार्हप्रमुखा नृपाः ।  
 सङ्गच्छ भ्रातृभिः सार्धं मानं सन्त्यज्य पार्थिव ॥ १८ ॥  
 प्रशाधि पृथिवीं कृत्स्नां ततस्त्वं भ्रातृभिः सह ।  
 समालिङ्ग्य च हर्षेण नृपा यान्तु परस्परम् ॥ १९ ॥  
 अलं युद्धेन राजेन्द्र सुहृदां शृणु वारणम् ।  
 ध्रुवं विनाशो युद्धे हि क्षत्रियाणां प्रहश्यते ॥ २० ॥  
 ज्योतींषि प्रतिकूलानि दारुणा मृगपक्षिणः ।  
 उत्पाता विविधा वीर हश्यन्ते क्षत्रनाशनाः ॥ २१ ॥  
 विशेषत इहाऽस्माकं निमित्तानि निवेशने ।  
 उल्काभिर्हि प्रदीप्ताभिर्बाध्यते पृतना तव ॥ २२ ॥  
 वाहनान्यप्रहृष्टानि रुदन्तीव विशाम्पते ।  
 गृध्रास्ते पर्युपासन्ते सैन्यानि च समन्ततः ॥ २३ ॥  
 नगरं न यथापूर्वं तथा राजनिवेशनम् ।  
 शिवाश्चाऽशिवनिर्घोषा दीप्तां सेवन्ति वै दिशम् ॥ २४ ॥

प्रीति पूर्वक गुरुकी भांति तुम्हारी  
 आराधना करेंगे । (११-१७)

कृष्ण आदि सब राजा लोग तुम  
 लोगोंका मिलना देखकर पुलकित हो-  
 कर आनन्दपूर्वक आंसुओंकी धारा  
 बहावेंगे । तुम अभिमान छोड़के भा-  
 ईयोंके सङ्ग मिलो और सब कोई एकत्र  
 होकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको  
 शासन करो । इकट्ठे हुए सम्पूर्ण राजा  
 लोग आपसमें मिलकर हर्षपूर्वक अपने  
 अपने स्थान पर जावें । हे पृथ्वीनाथ !  
 युद्ध करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं  
 है । सुहृद लोगोंकी बात मानकर तुम  
 युद्धमें प्रवृत्त मत होओ क्षत्रियोंके कुल-  
 का अवश्य ही भावी विनाश स्पष्ट रूप-

से दीख पड़ता है । (१८-२०)

हे वीर ! देखो प्रकाशमान ज्योति सब  
 प्रतिकूल हो रही हैं, हरिण और पक्षी  
 आदि सब जीवजन्तु भयङ्कर भाव  
 धारण किये हुए हैं । क्षत्रियोंके नाश  
 होनेके विषयमें और भी बहुतसे भयङ्कर  
 उत्पात दिखाई पड़ रहे हैं । विशेष  
 करके हम लोगोंके बीचहीमें सब अशकु-  
 नोंकी अधिक उत्पात्ति होरही है ।  
 तुम्हारी सेनाके ऊपर उल्कापात हो रहा  
 है । सवारीके वाहन मानो हर्षसे रहित हो  
 कर रुदन कर रहे हैं । अशुभ फल देने-  
 वाले गिद्ध आदि पक्षी सेनाके चारों ओर  
 घूम रहे हैं; नगर और राजभवनकी  
 शोभा पाहिलेके समान अब नहीं है ।

कुरु वाक्यं पितुर्मातुरस्माकं च हितैषिणाम् ।

त्वय्यायत्तो महाबाहो शमो व्यायाम एव च ॥ २५ ॥

न चेत्करिष्यसि वचः सुहृदामरिकर्शन ।

तप्स्यसे वाहिनीं दृष्ट्वा पार्थबाणप्रपीडिताम् ॥ २६ ॥

भीमस्य च महानादं नदतः शुष्मिणो रणे ।

श्रुत्वा स्मर्तासि मे वाक्यं गाण्डीवस्य च निःस्वनम् ।

यद्येतदपसव्यं ते वचो मम भविष्यति ॥ २७ ॥ [४५७७]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

वैशम्पायन उवाच-एवमुक्तस्तु विमनास्तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ।

संहत्य च भ्रुवोर्मध्यं न किञ्चिद्भ्राजहार ह ॥ १ ॥

तं वै विमनसं दृष्ट्वा सम्प्रेक्ष्याऽन्योन्यमन्तिकात् ।

पुनरेवोत्तरं वाक्यमुक्तवन्तौ नरर्षभौ ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—शुश्रूषुमनसूयं च ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम् ।

सियार आदि पशु भयङ्कर शब्द करते हुए सब दिशाओंमें घूम रहे हैं। २१-२४

हे महाबाहो ! इससे तुम पिता माता और हित चाहनेवाले हम लोगोंके वचनोंका पालन करो । देखो, शान्ति और युद्ध दोनों ही तुम्हारे अधिकारमें हैं । हे शत्रुनाशन ! यदि इकबारगी तुम सुहृद पुरुषोंकी बातोंको न मानोगे, तो अपनी सेनाको अर्जुनके बाणोंसे पीडित देखकर अवश्य ही तुमको पश्चात्ताप करना पड़ेगा । संग्रामभूमिमें अग्निके समान तेजस्वी भयङ्कर शब्द करने वाले भीमसेनके सिंहनाद और गाण्डीव धनुष के प्रचण्ड शब्द को सुनकर हम लोगोंके यह वचन तुमको स्मरण होंगे । यदि इन वचनोंमें तुम्हें

उलटी समझ होरही है, तो ये वचन अवश्य ही कार्यमें परिणत होंगे इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। २५-२७ [४५७७]

उद्योगपर्वमें एकसौ अठतीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ उनतालीस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्म और द्रोणाचार्यके ऐसे वचन सुनके दुर्योधन नीची गर्दन करके दोनों भौंओंके मध्यस्थानको सिकोडकर तिरछी दृष्टिसे पृथ्वीकी ओर देखने लगे; और कुछ भी उत्तर न दिया । उनको इन प्रकारसे मनमलिन हुए देखकर वे दोनों वीर पुरुष एक दूसरेका मुख देखकर फिर भी दुर्योधनसे यह वचन बोले । (१-२)

भीष्म बोले, मैं सेवा करनेवाले, पापरहित, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवचन कहने

प्रतियोत्स्यामहे पार्थमतो दुःखतरं नु किम् ॥ ३ ॥  
 द्रोण उवाच— अश्वत्थाम्नि यथा पुत्रे भूयो मम धनञ्जये ।  
 बहुमानः परो राजन्सन्नतिश्च कपिध्वजे ॥ ४ ॥  
 तं च पुत्रात्प्रियतमं प्रतियोत्स्ये धनञ्जयम् ।  
 क्षात्रं धर्ममनुष्ठाय धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ५ ॥  
 यस्य लोके सप्तो नास्ति कश्चिदन्यो धनुर्धरः ।  
 मत्प्रसादात्स वीभत्सुः श्रेयानन्यैर्धनुर्धरैः ॥ ६ ॥  
 मित्रधृगदुष्टभावश्च नास्तिकोऽथाऽनृजुः शठः ।  
 न सत्सु लभते पूजां यज्ञे सूर्ख इवाऽऽगतः ॥ ७ ॥  
 वार्यमाणोऽपि पापेभ्यः पापात्मा पापमिच्छति ।  
 चोद्यमानोऽपि पापेन शुभात्मा शुभमिच्छति ॥ ८ ॥  
 मिथ्योपचरिता ह्येते वर्तमाना ह्यनुप्रिये ।  
 अहितत्वाय कल्पन्ते दोषा भरतसत्तम ॥ ९ ॥

वाले कुन्तीपुत्र अर्जुनके विरुद्ध युद्ध करूंगा  
 इससे बढके और दुःखका विषय क्या  
 होगा ? (३)

द्रोणाचार्य बोले, हे राजन् ! अपने पुत्र  
 अश्वत्थामाके ऊपर मेरी जैसी प्रीति  
 है; अर्जुनके ऊपर उससे भी अधिक  
 है । अश्वत्थामा जिस प्रकारसे मेरा  
 मान और प्रतिष्ठा करता है, अर्जुन  
 उससे भी अधिक मान, प्रतिष्ठा तथा  
 नम्रता प्रकाश करता है । क्षत्रिय धर्म-  
 का अनुष्ठान करनेसे मुझको पुत्रसे भी  
 प्यारे उस अर्जुनके सङ्ग युद्ध करना  
 पडेगा ! अहा ! क्षत्रियोंकी जीविका  
 कैसी बुरी है ! इस पृथ्वीके बीच जिससे  
 समान धनुर्द्वारी और कोई भी नहीं है,  
 वह अर्जुन मेरे ही प्रसादसे सबमें श्रेष्ठ

हुआ है । (४-६)

जो पुरुष मित्रद्रोही, दुष्ट स्वभाव,  
 नास्तिक, विनय रहित और शठतासे  
 युक्त होता है, वह यज्ञके स्थानमें आये  
 हुए सूर्खके समान कभी पूजित नहीं  
 हो सकता है । पापी मनुष्य बार बार  
 निवारण करने पर भी जैसे पापकर्महीका  
 अनुष्ठान करनेका अभिलाषी होता है;  
 उसी प्रकारसे पुण्यात्मा पुरुष पापकर्मोंसे  
 सदा उत्तेजित किये जानेपर भी केवल  
 पुण्यकर्मोंके करनेहीकी वासना करते  
 हैं । हे भरतसत्तम ! तुमने शठता द्वारा  
 पाण्डवोंको अलग किया है, तौभी वे  
 लोग तुम्हारे प्रिय ही कार्यके करनेमें  
 रत हैं; परन्तु तुम सदा उनके अहित  
 ही कर्म करनेमें तत्पर रहते हो । (७-९)

त्वमुक्तः कुरुवृद्धेन मया च विदुरेण च ।  
 वासुदेवेन च तथा श्रेयो नैवाऽभिमन्यसे ॥ १० ॥  
 अस्ति मे बलमित्येव सहसा त्वं तितीर्षसि ।  
 सग्राहनक्रमकरं गङ्गावेगामिवोष्णगे ॥ ११ ॥  
 वाससैव यथा हि त्वं प्रावृण्वानोऽभिमन्यसे ।  
 स्रजं त्यक्तामिव प्राप्य लोभाद्यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥ १२ ॥  
 द्रौपदीमहितं पार्थ सायुधैर्भातृभिर्वृतम् ।  
 वनस्थमपि राज्यस्थं पाण्डवं को विजेष्यति ॥ १३ ॥  
 निदेशो यस्य राजानः सर्वे निष्ठन्ति किङ्कराः ।  
 तस्यैलविलमासाद्य धर्मराजो व्यराजत ॥ १४ ॥  
 कुबेरसदनं प्राप्य ततो रत्नान्यवाप्य च ।  
 स्फीतमाक्रम्य ते राष्ट्रं राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ॥ १५ ॥  
 दत्तं हुतमधीतं च ब्राह्मणास्तर्पिता धनैः ।

देखो, कौरवोंमें बूढ़ और बुद्धिमान् विदुर, मैं, द्रोणाचार्य और श्रीकृष्ण आदि सब लोग तुम्हारे हितके निमित्त उपदेश करते हैं; परन्तु तुम किसीकी बात भी उत्तम नहीं समझते हो। “मुझमें अत्यन्त बल है” यही समझ कर तुम मगरमच्छ घाडियाल आदिसे युक्त महा समुद्रको तरनेकी इच्छासे गङ्गाके वेगकी भांति सहसा पाण्डवोंकी सेनाके पार जानेकी अभिलाषा करते हो। दूसरेके पहरें हुए वस्त्रको पहननेके अथवा त्याग की हुई मालाका धारण करनेके समान तुम युधिष्ठिरकी राजलक्ष्मी पाकर ऐसी अभिलाषा करते हो। (१०—१२)

परन्तु मैं तुमसे यही वचन पूछता हूँ, कि युधिष्ठिरको द्रौपदीके सहित शस्त्र-

धारी भाइयोंसे घिरे हुए वनमें निवास करनेपर भी कौन वीर पुरुष राज्यमें स्थित रहकर उन्हें जीत सकता है? सम्पूर्ण यक्ष जिसके आज्ञाकारी तथा सेवक बने हैं; उस धनके स्वामी कुबेरके समीपमें भी जो युधिष्ठिर उनके समान तथा अधिक मान और प्रतिष्ठाके सहित विराजमान हुए थे; पाण्डव लोग कुबेर के राजभवनमें जाकर अनेक प्रकारके रत्नोंको पाकर अब इस समय तुम्हारी इस बहुत विशाल पृथ्वीके राज्यका आक्रमण करके अपने राज्यके बढानेकी अभिलाषा करते हैं। (१३—१५)

हे राजन्! हम लोगोंकी तो आयु गतप्राय हुई है, हम लोगोंने अपनी शक्तिके अनुसार दान, अध्ययन, होम और धनसे

आवयोगर्गतमायुश्च कृतकृत्यौ च विद्धि नौ ॥ १६ ॥

त्वं तु हित्वा सुखं राज्यं मित्राणि च धनानि च ।

विग्रहं पाण्डवैः कृत्वा महद्भयसनमाप्स्यसि ॥ १७ ॥

द्रौपदी यस्य चाऽऽशास्ते विजयं सत्यवादिनी ।

तपोघोरव्रता देवी कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ १८ ॥

मन्त्री जनार्दनो यस्य भ्राता यस्य धनञ्जयः ।

सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठः कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ १९ ॥

सहाया ब्राह्मणा यस्य धृतिमन्तो जितेन्द्रियाः ।

तमुग्रतपसं वीरं कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ २० ॥

पुनरुक्तं च वक्ष्यामि यत्कार्यं भूतिमिच्छता ।

सुहृदा मज्जमानेषु सुहृत्सु व्यसनार्णवे ॥ २१ ॥

अलं युद्धेन तैर्वीरैः शाम्य त्वं कुरुवृद्धये ।

मा गमः ससुतामात्यः सबलश्च पराभवम् ॥ २२ ॥ [४५९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्गीतानपर्वणि

भीष्मद्रोणवाक्ये एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

ब्राह्मणोंको तृप्त किया है; इससे हम लोगों को तो एक प्रकारसे कृतकृत्य ही समझना चाहिये । इस समय पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करके तुमको राज्य, सुख, मित्र, धन आदि सब वस्तुओंको त्यागकर महा घोर व्यसनमें पडना होगा, महा घोर तपस्या और व्रत करनेवाली द्रौपदी देवी जिसके विजयकी अभिलाषा करती हैं, उन पाण्डवोंको तुम कैसे जीत सकोगे ? श्रीकृष्ण जिसके मन्त्री और सब धनुर्द्वारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन जिनके भाई हैं, ऐसे प्रतापी पाण्डवोंको तुम किस प्रकारसे जीत सकोगे । (१६-१९)

इन्द्रियोंको जीतनेवाले तपस्वी और

बुद्धिमान् ब्राह्मण लोग जिस युधिष्ठिरकी सहायता कर रहे हैं, उसे महा पराक्रमी सत्यवादी वीर-पुरुषको तुम किस प्रकारसे पराजित कर सकोगे ? मित्रोंको विपद रूपी समुद्रमें डूबनेके समयमें कल्याण चाहनेवाले सुहृद् पुरुषोंको जैसा वचन कहना उचित है, उसीके अनुसार मैं फिर कहता हूं, कि युद्ध करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है । कुरुकुलकी वृद्धिके निमित्त उन पुरुषसिंह पाण्डवोंके सङ्गमें सन्धि करो । पुत्र, सेवक और सेनाके साहित निरर्थक मृत्यु के मुखमें मत पडो । (२०-२२) ४५९९

उद्योगपर्वमें एकसौ उनतालिस अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र उवाच- राजपुत्रैः परिवृतस्तथा भृत्यैश्च सञ्जय ।

उपारोप्य रथे कर्णं निर्यातो मधुसूदनः ॥ १ ॥

किमब्रवीदमेयात्मा राधेयं परवीरहा ।

कानि सान्त्वानि गोविन्दः सूतपुत्रे प्रयुक्तवान् ॥ २ ॥

उद्यन्मेघस्वनः काले कृष्णः कर्णमथाऽब्रवीत् ।

मृदु वा यदि वा तीक्ष्णं तन्ममाऽऽक्ष्व सञ्जय ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच- आनुपूर्व्येण वाक्यानि तीक्ष्णानि च मृदूनि च ।

प्रियाणि धर्मयुक्तानि सत्यानि च हितानि च ॥ ४ ॥

हृदयग्रहणीयानि राधेयं मधुसूदनः ।

यान्यब्रवीदमेयात्मा तानि मे शृणु भारत ॥ ५ ॥

वासुदेव उवाच- उपासितास्ते राधेय ब्राह्मणा वेदपारगाः ।

तत्त्वार्थं परिपृष्टाश्च नियतेनाऽनसूयया ॥ ६ ॥

त्वमेव कर्णं जानासि वेदवादान्सनातनान् ।

त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः ॥ ७ ॥

उद्योगपर्वमें एकसौ चालीस अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! श्री-  
कृष्णचन्द्र सेवक और राजपुत्रोंके सहि-  
त घिरकर कर्णको रथपर बैठाकर नगर  
से बाहर हुए थे । उन महा तेजस्वी शत्रु  
नाशन कृष्णने सूतपुत्र कर्णके सङ्ग किन  
बातोंका प्रसङ्ग किया था और कौनसा  
शान्तवाद दर्शाया था? वर्षाकालके मेघके  
समान जनार्दन कृष्णने राधापुत्र कर्ण-  
से जो सब वचन कहे थे, वे सब वचन  
कोमल अथवा कठोर थे; तुम मेरे निक-  
ट विस्तारपूर्वक कहो । ( १-३ )

सञ्जय बोले, हे भारत ! श्रीकृष्णचन्द्र-  
ने यथा उचित कर्णसे कोमल और क-  
ठोर दोनों प्रकारके वचनोंका प्रसङ्ग

किया था । उन महा तेजस्वी कृष्णने  
सब वचन कर्णसे कहे थे, वह सब ही  
धर्म अर्थसे युक्त, प्रिय, सत्य, हितकारी  
और हृदयसे ग्रहण करने योग्य वचन  
थे; मैं तुम्हारे समीप विस्तारपूर्वक उन  
वचनोंको कहता हूं, तुम चित्त लगाकर  
सुनो । ( ४-५ )

श्रीकृष्णचन्द्रने कर्णसे यह वचन कहा  
था, कि हे कर्ण ! तुमने बहुतेरे वेदके  
जाननेवाले ब्राह्मणोंकी उपासना की है;  
और पापरहित होकर निष्ठा और श्रद्धाके  
साहित अनेक तत्त्वोंके अर्थको भी जान  
लिया है, इससे तुम सनातन वेदवादको  
यथार्थरूपसे जानते हो, और सूक्ष्मसे सूक्ष्म  
सब धर्मशास्त्रके मर्मको भी तुम जानते हो ।

कानीनश्च सहोदश्च कन्यायां यश्च जायते ।  
 वोढारं पितरं तस्य प्राहुः शास्त्रविदो जनाः ॥ ८ ॥  
 सोऽसि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः ।  
 निग्रहाद्धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि ॥ ९ ॥  
 पितृपक्षे च ते पार्था मातृपक्षे च वृष्णयः ।  
 द्वौ पक्षावभिजानीहि त्वमेतौ पुरुषर्षभ ॥ १० ॥  
 मया सार्द्धमितो यातमद्य त्वां तात पाण्डवाः ।  
 अभिजानन्तु कौन्तेयं पूर्वजातं युधिष्ठिरात् ॥ ११ ॥  
 पादौ तव ग्रहीष्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।  
 द्रौपदेयास्तथा पञ्च सौभद्रश्चाऽपराजितः ॥ १२ ॥  
 राजानो राजपुत्राश्च पाण्डवार्थं समागताः ।  
 पादौ तव ग्रहीष्यन्ति सर्वे चाऽन्धकवृष्णयः ॥ १३ ॥  
 हिरण्ययांश्च ते कुम्भाजराजतान्पार्थिवांस्तथा ।  
 ओषधयः सर्वबीजानि सर्वरत्नानि वीरुधः ॥ १४ ॥  
 राजन्या राजकन्याश्चाऽप्यानयन्त्वाभिषेचनम् ।

देखो स्त्रीकी अवस्थामें जो कानीन और सहोद दो प्रकारके पुत्र उत्पन्न होते हैं, शास्त्रको जाननेवाले पण्डित लोग कन्याके पाणिग्रहण करनेवाले पुरुषको ही उन पुत्रोंको पिता कहते हैं; इससे कुन्ती देवीके कन्या अवस्थामें तुम्हारा जन्म होनेसे धर्मशास्त्रकी आज्ञाके अनुसार तुम भी धर्मपूर्वक पाण्डुराजहीके पुत्र हो । इससे चलो, युधिष्ठिरके पहिले तुम ही राजा बनोगे । (६-९)

तुम्हारे पितृपक्षमें पाण्डव और मातृपक्षमें वृष्णिवंश हैं; हे पुरुषर्षभ ! इन दोनों पक्षोंको तुम सदा अपना सहायक समझो । आज ही मेरे सङ्ग तुम इस

स्थानसे प्रस्थान करो। हे तात! तुम युधिष्ठिरसे पहिले ही कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुए हो; वह पाण्डवोंको आज विदित होजावे । पाण्डव लोग पांचों भाई द्रौपदीके पांचों पुत्र, सुभद्रानन्दन अभिमन्यु और पाण्डवोंके कार्यके निमित्त इकट्ठे हुए अन्धक और वृष्णि आदि सम्पूर्ण राजा तथा राजपुत्र लोग तुम्हारी चरण वन्दना करेंगे । (१०-१३)

तुम्हारे राज्याभिषेकके निमित्त राजा और राजकन्या लोग सुवर्ण, चांदी आदि के कलशोंमें सब औषधी, सब धान्य, सम्पूर्ण रत्न और लता आदि समस्त सामग्रियोंको लाकर उपस्थित करेंगी;



षष्ठे त्वां च तथा काले द्रौपद्युपगमिष्यति ॥ १५ ॥  
 अग्निं जुहोतु वै धौम्यः संशितात्मा द्विजोत्तमः ।  
 अद्य त्वामभिषिञ्चन्तु चातुर्वैद्या द्विजातयः ॥ १६ ॥  
 पुरोहितः पाण्डवानां ब्रह्मकर्मण्यवस्थितः ।  
 तथैव भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ॥ १७ ॥  
 द्रौपदेयास्तथा पञ्च पञ्चालाश्चेदयस्तथा ।  
 अहं च त्वाऽभिषेक्ष्यामि राजानं पृथिवीपतिम् ॥ १८ ॥  
 युवराजोऽस्तु ते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
 गृहीत्वा व्यजनं श्वेतं धर्मात्मा संशितव्रतः ॥ १९ ॥  
 उपान्वारोहतु रथं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
 छत्रं च ते महाश्वेतं भीमसेनो महाबलः ॥ २० ॥  
 अभिषिक्तस्य कौन्तेयो धारयिष्यति सूर्ध्वनि ।  
 किङ्किणीशतनिर्घोषं वैद्याघ्रपरिवारणम् ॥ २१ ॥  
 रथं श्वेतहयैर्युक्तमर्जुनो वाहयिष्यति ।  
 अभिमन्युश्च ते नित्यं प्रत्यासन्नो भविष्यति ॥ २२ ॥  
 नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च पञ्च ये ।

पाण्डवोंकी प्यारी द्रूपदनन्दिनी द्रौपदी  
 भी समयके छठवें भागमें तुम्हारे समीप  
 उपस्थित होगी । पवित्र अन्तःकरण-  
 वाले ब्राह्मणश्रेष्ठ धौम्य मुनि अग्निहोतृका  
 कार्य पूर्ण करेंगे और पाण्डवोंके वैदिक  
 कर्मका अनुष्ठान करनेवाले चारों वेदोंके  
 जाननेवाले ब्राह्मण लोग आज ही तुमको  
 पृथ्वीके राज्यके ऊपर अभिषेक करके  
 सिंहासनपर बैठावें, पुरुषश्रेष्ठ पांचों  
 भाई पाण्डव लोग, मैं तथा द्रौपदीके  
 पांचों पुत्र, पाञ्चाल और चेदिवंशीय  
 क्षत्रिय लोग तथा सब कोई मिलकर  
 इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यपर तुम्हारे

आधिपत्यको प्रचार करेंगे । ( १४-१८ )  
 सत्यवादी धर्मात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिर  
 तुम्हारे युवराज बनेंगे । वह श्वेतछत्र  
 धारण करके तुम्हारे पछि रथपर चढ़के  
 चलेंगे । हे राजन् ! राज्यपर तुम्हारा  
 अभिषेक होनेसे महा बलवान् कुन्तीपुत्र  
 भीमसेन तुम्हारे शिरके ऊपर श्वेतछत्र  
 धारण करके खड़े होंगे । अर्जुन किङ्कि-  
 णिके शब्दोंसे पूरित वाद्यके चमड़ेसे  
 घिरा हुआ श्वेतवर्णके घोड़ोंसे युक्त  
 तुम्हारे उत्तम रथको चलावेंगे । उनका  
 पुत्र अभिमन्यु सदा तुम्हारी सेवामें  
 उपस्थित रहेगा, नकुल, सहदेव, द्रौपदी-

पञ्चालाश्चाऽनुयास्यन्ति शिखण्डी च महारथः ॥ २३ ॥  
 अहं च त्वाऽनुयास्यामि सर्वे चाऽन्धकवृष्णयः ।  
 दाशार्हाः परिवारास्ते दाशार्णाश्च विशाम्पते ॥ २४ ॥  
 भुङ्क्व राज्यं महाबाहो भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ।  
 जपैर्होमैश्च संयुक्तो मङ्गलैश्च पृथग्विधैः ॥ २५ ॥  
 पुरोगमाश्च ते सन्तु द्रविडाः सह कुन्तलैः ।  
 आन्ध्रास्तालचराश्चैव चूचुपा वेणुपास्तथा ॥ २६ ॥  
 स्तुवन्तु त्वां च बहुभिः स्तुतिभिः सूतमागधाः ।  
 विजयं वसुषेणस्य घोषयन्तु च पाण्डवाः ॥ २७ ॥  
 स त्वं परिवृतः पार्थैर्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।  
 प्रशाधि राज्यं कौन्तेय कुन्तीं च प्रतिनन्दय ॥ २८ ॥  
 मित्राणि ते प्रहृष्यन्तु व्यथन्तु रिपवस्तथा ।  
 सौभ्रात्रं चैव तेऽद्याऽस्तु भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ॥ २९ ॥ ४६२८

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्वापर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

कर्ण उवाच— असंशयं सौहृदान्मे प्रणयाच्चाऽऽत्थ केशव ।

के पांचों पुत्र, शिखण्डी और पाञ्चाल  
 देशीय दूसरे सम्बन्धी लोग भी तुम्हारे  
 अनुगामी बनेंगे । ( २०—२३ )

अन्धक, वृष्णि, दाशार्ह और दशार्ण  
 वंशीय राजा और हम लोग सम्बन्धके  
 अनुसार तुम्हारे अनुयायी बनेंगे। हे महा-  
 बाहो ! इससे तुम होम और अनेक मङ्ग-  
 ल कर्मोंसे युक्त होकर सहोदर पाण्डवोंके  
 सहित परम सुखसे भोग करोगे । द्रविड  
 कुन्तल, अन्ध तालचर, चूचुप और  
 वेणुप देशीय राजा लोग तुम्हारे अनु-  
 यायी होवेंगे और सूत, मागध, बन्दी  
 लोग अनेक प्रकारसे तुम्हारी स्तुति  
 करते रहेंगे । ( २४—२७ )

पाण्डव लोग “वसुषेणकी जय”  
 ऐसा कहकर सब ओर तुम्हारी विजयकी  
 घोषणा करेंगे । हे कौन्तेय ! नक्षत्रोंके  
 बीचमें विराजमान बृहस्पतिकी भांति  
 तुम भाइयोंके साथ मिलकर राज्य  
 शासनमें प्रवृत्त होकर कुन्तीका आनन्द  
 भी बढ़ाओगे । तुम्हारे इष्ट मित्र प्रसन्न  
 और शत्रु लोग दुःखित होवेंगे; भ्राता  
 रूपसे आज ही पाण्डवोंके सङ्ग तुम्हारा  
 मिलाप होजावेगा । ( २७—२९ ) ४६२८

उद्योगपर्वमें एकसौ चालीस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ इकतालिस अध्याय ।

कर्ण बोले, हे वृष्णिनन्दन कृष्ण !  
 तुम जो मित्रता, प्रीति, हितैषितासे

सख्येन चैव वाष्ण्येय श्रेयस्कामतयैव च ॥ १ ॥  
 सर्वं चैवाऽभिजानामि पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः ।  
 निग्रहाद्धर्मशास्त्राणां यथा त्वं कृष्ण मन्यसे ॥ २ ॥  
 कन्यागर्भं समाधत्त भास्करान्मां जनार्दन ।  
 आदित्यवचनाच्चैव जातं मां सा व्यसर्जयत् ॥ ३ ॥  
 सोऽस्मि कृष्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः ।  
 कुन्त्या त्वहमपाकीर्णो यथा न कुशलं तथा ॥ ४ ॥  
 सूतो हि मामधिरथो हृष्टैवाऽभ्यानयद्गृहान् ।  
 राधायाश्चैव मां प्रादात्सौहार्दान्मधुसूदन ॥ ५ ॥  
 मत्स्नेहाच्चैव राधायां सद्यः क्षीरमवातरत् ।  
 सा मे मूत्रं पुरीषं च प्रतिजग्राह माधव ॥ ६ ॥  
 तस्याः पिण्डव्यपनयं कुर्यादस्मद्विधः कथम् ।  
 धर्मविद्धर्मशास्त्राणां श्रवणे सततं रतः ॥ ७ ॥  
 तथा मामभिजानाति सूतश्चाऽधिरथः सुतम् ।

युक्त मेरे निमित्त इन सब वचनोंको  
 कहते हो, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं  
 है, मैं उन सब वचनोंको स्वीकार करता  
 हूँ ! हे कृष्ण ! तुम जैसा विचार करते  
 हो, वह सब सत्य है, धर्मशास्त्रके  
 अनुसार धर्मपूर्वक मैं पाण्डुराजका ही  
 पुत्र हूँ । माताने कन्या अवस्थामें सूर्य-  
 देवके अंशसे मुझे गर्भमें धारण किया  
 था, और उत्पन्न होते ही सूर्यदेवके  
 वचनके अनुसार मुझे छोड़ दिया था; हे  
 शत्रुनाशन कृष्ण ! इससे इस प्रकारसे  
 उत्पन्न होनेसे धर्मशास्त्रके अनुसार मैं  
 पाण्डुराजकी पुत्र कहा जा सकता हूँ,  
 परन्तु कुन्तीदेवीने मेरी कुछ भी कुशल  
 चिन्ता न करके अपने हाथसे त्याग

दिया । उस समयमें सूतजातीय अधिरथ  
 नामक पुरुषने मुझे देखते ही प्रीतिके  
 सहित अपने घरमें लाकर अपनी प्यारी  
 स्त्री राधाके हाथमें समर्पण किया था । १-५  
 हे कृष्ण ! जब मुझे पाकर अधिरथने  
 अपनी स्त्री राधाके हाथमें समर्पण किया  
 था, तब पुत्रके स्नेहसे युक्त होकर रा-  
 धाके दोनों स्तनोंसे दूधकी धारा उत्पन्न  
 हुई थी और पुत्रके समान उसने मेरा  
 मल-मूत्र साफ किया था । इससे धर्म-  
 को जाननेवाला और सदा धर्मशास्त्रको  
 सुनकर मेरे समान पुरुष किस प्रकारसे  
 उनके पिण्डको लोप करनेमें समर्थ हो  
 सकता है ? विशेष करके राधाकी भांति  
 अधिरथ भी प्रीति पूर्वक मुझे अपना

पितरं चाऽभिजानामि तमहं सौहृदात्सदा ॥ ८ ॥  
 स हि मे जातकर्मादि कारयामास माधव ।  
 शास्त्रदृष्टेन विधिना पुत्रप्रीत्या जनार्दन ॥ ९ ॥  
 नाम वै वसुषेणेति कारयामास वै द्विजैः ।  
 भार्याश्चोढा मम प्राप्ते यौवने तत्परिग्रहात् ॥ १० ॥  
 तासु पुत्राश्च पौत्राश्च मम जाता जनार्दन ।  
 तासु मे हृदयं कृष्ण सज्जातं कामबन्धनम् ॥ ११ ॥  
 न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः ।  
 हर्षाद्भयाद्वा गोविन्द मिथ्या कर्तुं तदुत्सहे ॥ १२ ॥  
 धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधनसमाश्रयात् ।  
 मया त्रयोदश समा भुक्तं राज्यमकण्टकम् ॥ १३ ॥  
 इष्टं च बहुभिर्गृहैः सह सूतैर्मयाऽसकृत् ।  
 आवाहाश्च विवाहाश्च सह सूतैर्मया कृताः ॥ १४ ॥  
 मां च कृष्ण समासाद्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ।  
 दुर्योधनेन बाष्पेय विग्रहश्चाऽपि पाण्डवैः ॥ १५ ॥

पुत्र ही समझते हैं, और मैं सदासे उनको  
 पिता ही समझता हूँ । पुत्रप्रेमके वशमें  
 होकर उन्होंने शास्त्रमें कही हुई विधिके  
 अनुसार ब्राह्मणोंसे मेरा जातिकर्म  
 आदि सब संस्कार कराके “ वसुषेण ”  
 नाम रक्खा, और युवा अवस्थाके प्राप्त  
 होनेपर अपनी स्वजातीय कन्याके सङ्ग  
 मेरा व्याह किया । (६-१०)

हे मधुसूदन जनार्दन ! उनके गर्भसे  
 मेरे पुत्र और पौत्र आदि उत्पन्न हुए  
 हैं और उन ही लोगोंके संग मेरा हृदय  
 तथा वासनावन्धन लगा हुआ है । इससे  
 बहुतसा सुवर्णका ढेर और सम्पूर्ण  
 पृथ्वीमण्डलके मिलने तथा अत्यन्त

हर्ष और भयको पानेपर भी मैं उस  
 प्रीतिके बन्धनको कभी नहीं तोड़  
 सकता हूँ । हे कृष्ण ! राजा धृतराष्ट्रके  
 कुलमें मैं दुर्योधनके आसरेमें रहकर  
 तेरह वर्षसे निष्कण्टक राज्यको भोग कर  
 रहा हूँ; इतने दिनोंमें मैंने बहुतसे यज्ञ  
 आदिके शुभकर्मोंका भी अनुष्ठान किया  
 है । परन्तु स्वतजातिसे पृथक् कभी  
 कोई कर्म नहीं किया है । मेरा विवाह  
 आदि सब कार्य स्वतजातिमें हुआ  
 है । ( ११—१४ )

हे कृष्ण ! मेरा ही आसरा करके  
 राजा दुर्योधन पाण्डवोंके संग विरोध  
 करके युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए हैं । उसी

तस्माद्रणे द्वैरथे मां प्रत्युद्यातारमच्युत ।  
 वृतवान्परमं कृष्ण प्रतीपं सव्यसाचिनः ॥ १६ ॥  
 वधाद्वन्धाद्भयाद्वाऽपि लोभाद्वापि जनार्दन ।  
 अनृतं नोत्सहे कर्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १७ ॥  
 यदि ह्यद्य न गच्छेयं द्वैरथे सव्यसाचिना ।  
 अकीर्तिः स्याद्धृषीकेश मम पार्थस्य चोभयोः ॥ १८ ॥  
 असंशयं हितार्थाय ब्रूयास्त्वं मधुसूदन ।  
 सर्वं च पाण्डवाः कुर्युस्त्वद्वशित्वान्न संशयः ॥ १९ ॥  
 मन्त्रस्य नियमं कुर्यास्त्वमत्र मधुसूदन ।  
 एतदत्र हितं मन्ये सर्वं यादवनन्दन ॥ २० ॥  
 यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः ।  
 कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति ॥ २१ ॥  
 प्राप्य चाऽपि महद्राज्यं तदहं मधुसूदन ।  
 स्फूर्तिं दुर्योधनायैव सम्प्रदद्यामरिन्दम ॥ २२ ॥  
 स एव राजा धर्मात्मा शाश्वतोऽस्तु युधिष्ठिरः ।

कारणसे द्वैरथ-युद्धमें सबसे अग्रणी और अर्जुनसे युद्ध करनेके निमित्त मुझको ही निश्चित किया है। हे जनार्दन कृष्ण! इससे अब इस समयमें वध, बन्धन, भय और लोभसे विचलित होकर उस बुद्धिमान् धृतराष्ट्र-पुत्रके सङ्ग मुझको किसी प्रकारसे भी मिथ्या आचरण करनेका उत्साह नहीं होता। (१५-१७)

यदि अब इस समयमें अर्जुनके संग मैं द्वैरथयुद्धमें न प्रवृत्त होऊंगा, तो मेरी तथा अर्जुन दोनोंही की बहुत अकीर्ति होवेगी। हे मधुसूदन कृष्ण! तुम निःसन्देह यह सब वचन हमारे हितके निमित्त कहते हो, और तुम्हारे वशमें चलने-

वाले पाण्डव लोग भी तुम्हारे कहे हुए सब कार्योंको पूर्ण करेंगे, उसमें भी मुझको कुछ सन्देह नहीं है। हे शत्रुनाशन! इस समय तुम पाण्डवोंके निकट हम लोगोंका यह विचार गुप्त रखना, यही मुझे सब प्रकारसे उत्तम बोध होता है। १८-२०

हे शत्रुनाशन! यदि इन्द्रियोंको जीतनेवाला धर्मात्मा युधिष्ठिर मुझे कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुआ प्रथम पुत्र जानेगा तो वह स्वयं राज्य न ग्रहण करके मुझको ही समर्पण करेगा, और मैं भी उस प्रसिद्ध विशाल राज्यको ग्रहण करके अपनी पहिली प्रतिज्ञाके अनुसार दुर्योधनको दे दूंगा। हे मधुसूदन कृष्ण!

नेता यस्य हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः ॥ २३ ॥  
 पृथिवी तस्य राष्ट्रं च यस्य भीमो महारथः ।  
 नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च माधव ॥ २४ ॥  
 धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः ।  
 उत्तमौजा युधामन्युः सत्यधर्मा च सौमकिः ॥ २५ ॥  
 चैद्यश्च चेकितानश्च शिखण्डी चाऽपराजितः ।  
 इन्द्रगोपकवर्णाश्च केकया भ्रातरस्तथा ॥  
 इन्द्रायुधसवर्णश्च कुन्तिभोजो महासनाः ॥ २६ ॥  
 मातुलो भीमसेनस्य श्येनजिच्च महारथः ।  
 शङ्खः पुत्रो विराटस्य निधिस्त्वं च जनार्दन ॥ २७ ॥  
 महानयं कृष्ण कृतः क्षत्रस्य समुदानयः ।  
 राज्यं प्राप्तमिदं दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥ २८ ॥  
 धार्तराष्ट्रस्य वाष्पेय शस्त्रयज्ञो भविष्यति ।  
 अस्य यज्ञस्य चेत्ता त्वं भविष्यसि जनार्दन ॥ २९ ॥  
 आध्वर्यवं च ते कृष्ण कृतावस्मिन्भविष्यति ।

इससे ही धर्मात्मा युधिष्ठिर ही सदाके लिये राजा बना रहे । तुम जिसके मन्त्री हो और महारथ भीम तथा अर्जुन जिसके मुख्य वीर योद्धा हैं, और नकुल सहदेव तथा द्रौपदीके पुत्र जिन के पृष्ठरक्षक हैं, उसके निमित्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको बहुत दिनतक भोग करनेहीमें कौन कठिनाई है? २१-२४

हे कृष्ण ! युधिष्ठिरने जिस प्रकारसे क्षत्रियोंकी बड़ी सेना इकट्ठी की है, उसमें हम लोगोंसे सहायता लेनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं है। देखो, नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पुत्र, पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्न, महारथ सात्यकी, उत्तमौजा और युधामन्यु,

सत्यधर्मा सौमकी, चैद्य, चेकितान, अपराजित शिखण्डी, लाल वर्णके केकय लोग, भीमसेनका मामा महात्मा कुन्तिभोज, महाबल श्येनजित, विराट-पुत्र शङ्ख और समुद्रकी भांति सब कार्योंको पूर्ण करने वाले तुम तथा और भी बहुतसे मुख्य मुख्य राजा लोग इकट्ठे हुए हैं। (२५-२८)

हे कृष्ण ! दुर्योधन सब पृथ्वीके राज्यको पाकर लोकमें विख्यात हुए हैं, यह ठीक है; परन्तु इस समय उनको बड़े भारी शस्त्ररूपी यज्ञका अनुष्ठान करना पड़ेगा । तुम उस यज्ञके कराने-वाले मुखिया होगे और तुमको ही अध्वर्यु

होता चैवाऽत्र बीभत्सुः सन्नद्धः सकपिध्वजः ॥ ३० ॥  
 गाण्डीवं सुकतथा चाऽऽज्यं वीर्यं पुंसां भविष्यति ।  
 ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्णं च माधव ॥  
 मन्त्रास्तत्र भविष्यन्ति प्रयुक्ताः सव्यसाचिना ॥ ३१ ॥  
 अनुयातश्च पितरमधिको वा पराक्रमे ।  
 गीतं स्तोत्रं स सौभद्रः सम्यक्तत्र भविष्यति ॥ ३२ ॥  
 उद्गाताऽत्र पुनर्भीमः प्रस्तोता सुमहाबलः ।  
 विनदन्स नरव्याघ्रो नागानीकान्तकृद्रेणे ॥ ३३ ॥  
 स चैव तत्र धर्मात्मा शश्वद्राजा युधिष्ठिरः ।  
 जपेहोमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वं कारयिष्यति ॥ ३४ ॥  
 शङ्खशब्दाः ससुरजा भेर्यश्च मधुसूदन ।  
 उत्कृष्टसिंहनादश्च सुब्रह्मण्यो भविष्यति ॥ ३५ ॥  
 नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ यशस्विनौ ।  
 शामित्रं तौ महावीर्यौ सम्यक्तत्र भविष्यतः ॥ ३६ ॥  
 कल्पाषट्पण्डा गोविन्द विमला रथपंक्तयः ।  
 यूपाः समुपकल्पन्तामस्मिन्यज्ञे जनार्दन ॥ ३७ ॥

का कार्य करना होगा । गाण्डीव धनुष धारी कपिध्वजासे युक्त अर्जुन होताका कार्य करेंगे । गाण्डीव धनुष सुक् और शत्रुपक्षके लोगोंका पराक्रम ही उसमें घृतरूपी होगा । हे कृष्ण ! शस्त्रोंके चला-नेके समयमें पराक्रमी अर्जुन पाशुपत, ब्रह्मास्त्र, ऐन्द्र और स्थूणाकर्ण आदि जो सब मन्त्र चलावेंगे, वह सब यज्ञीय मन्त्रोंके समान होंगे । (२९-३१)

पराक्रममें पिताके समान अथवा उससे भी अधिक बलवान् सुभद्रापुत्र अभिमन्यु गीत-स्तोत्र अर्थात् उद्गाता बनेंगे, रणभूमिमें महा घोर शब्द करने-

वाले हाथियोंकी सेनाके निमित्त कालस्वरूप महाबली पराक्रमी पुरुषसिंह भीम-सेन सामवेदी मन्त्रोंको जाननेवाले प्रस्तोताका कार्य करेंगे । जप होमसे युक्त स्वयं राजा युधिष्ठिर होमके ब्रह्माके कार्यको समाप्त करेंगे । हे मधुसूदन ! शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग नगाडेके बाजे और वीरोंके सिंहनाद सुब्रह्मण्यके मन्त्रस्वरूप वचन होंगे । ( ३२—३५ )

यशस्वी बलवान् माद्रीनन्दन नकुल और सहदेव इस यज्ञके निमित्त उत्तम शमिताका कर्म करेंगे हे जनार्दन कृष्ण ! विचित्र वर्णके दण्ड सब उत्तम रथोंका

कर्णिनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहणाः ।  
 तोमराः सोमकलशाः पवित्राणि धनूंषि च ॥ ३८ ॥  
 असयोऽत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च ।  
 हविस्तु रुधिरं कृष्ण तस्मिन् यज्ञे भविष्यति ॥ ३९ ॥  
 इध्माः परिधयश्चैव शक्तयो विबला गदाः ।  
 सदस्या द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥ ४० ॥  
 इषवोऽत्र परिस्तोमा सुक्ता गाण्डीवधन्वना ।  
 महारथप्रयुक्ताश्च द्रोणद्रौणिप्रचोदिताः ॥ ४१ ॥  
 प्रतिप्रास्थानिकं कर्म सात्यकिस्तु करिष्यति ।  
 दीक्षितो धार्तराष्ट्रोऽत्र पत्नी चाऽस्य महाचमूः ॥ ४२ ॥  
 घटोत्कचोऽत्र शामित्रं करिष्यति महाबलः ।  
 अतिरात्रे महाबाहो वितते यज्ञकर्मणि ॥ ४३ ॥  
 दक्षिणा त्वस्य यज्ञस्य धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।  
 वैतानिके कर्मसुखे जातो यत्कृष्ण पावकात् ॥ ४४ ॥  
 यदब्रुवमहं कृष्ण कटुकानि स्म पाण्डवान् ।

समूह यज्ञके यूपरूप होंगे । कर्णि  
 नालीक, नाराच आदि शस्त्र वत्सदन्त  
 और सोम आहुति साधनके निमित्त  
 चर्म आदिके स्थापनमें गिने जावेंगे । हे  
 कृष्ण । उस यज्ञमें तुम्हारे समीप सोम-  
 कलश शरासन खड्ग आदि अभिषवण,  
 मस्तक आदि पुरोडाश, शक्ति अश्रिको  
 उद्दीपन करनेवाली समिधा, गदा-परिघ  
 आहुतिकी रक्षाके निमित्त दोनों किना-  
 रेकी लकड़ी और रुधिर होमका कार्य  
 करेगा । ( ३६—४० )

द्रोणाचार्य तथा शरद्वतपुत्र कृपाचा-  
 र्यके शिष्य लोग इस यज्ञके कार्यको  
 पूर्ण करेंगे, गाण्डीवधारी अर्जुन और

द्रोणाचार्य आदि महारथ वीर जिन  
 अस्त्रशस्त्रोंको छोड़ेंगे, वह सब परिस्तोम  
 और सात्यकी प्रतिज्ञाके सहित पूर्ण री-  
 तिसे मन्त्र सन्धारण कर्मको करेगा ।  
 इस शस्त्र यज्ञमें धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन  
 दीक्षित होगा और उसकी महासेना  
 यजमानपत्नी होगी । हे महाबाहो ! इस  
 प्रकारसे यज्ञके कर्मका विस्तार होनेपर  
 भीमसेनका पुत्र घटोत्कच उस यज्ञमें  
 शमिता का कार्य करेगा । हे कृष्ण ! प्रतापी  
 धृष्टद्युम्न जो द्रुपदकी सभामें यज्ञके  
 कर्म आरम्भ करनेपर अग्निमें उत्पन्न  
 हुआ है, वही इस यज्ञमें दक्षिणा स्वरूप  
 होगा । हे कृष्ण ! दुर्योधनकी प्रीतिके



प्रियार्थं धार्तराष्ट्रस्य तेन तप्ये ह्यकर्मणा ॥ ४५ ॥  
 यदा द्रक्ष्यसि मां कृष्ण निहतं सव्यसाचिना ।  
 पुनश्चित्तिस्तदा चाऽस्य यज्ञस्याऽथ भविष्यति ॥ ४६ ॥  
 दुःशासनस्य रुधिरं यदा पास्यति पाण्डवः ।  
 आनर्दं नर्दतः सम्यक्तदा सूर्यं भविष्यति ॥ ४७ ॥  
 यदा द्रोणं च भीष्मं च पाञ्चाल्यौ पातयिष्यतः ।  
 तदा यज्ञावसानं तद्भविष्यति जनार्दन ॥ ४८ ॥  
 दुर्योधनं यदा हन्ता भीमसेनो महाबलः ।  
 तदा समाप्स्यते यज्ञो धार्तराष्ट्रस्य माधव ॥ ४९ ॥  
 स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य सङ्गताः ।  
 हतेश्वरा नष्टपुत्रा हतनाथाश्च केशव ॥ ५० ॥  
 रुदन्यः सह गान्धार्या श्वगृध्रकुरराकुले ।  
 स यज्ञेऽस्मिन्नवभृथो भविष्यति जनार्दन ॥ ५१ ॥  
 विद्यावृद्धा वयोवृद्धाः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ।  
 वृथा मृत्युं न कुर्वीरस्त्वत्कृते मधुसूदन ॥ ५२ ॥  
 शस्त्रेण निधनं गच्छेत्समृद्धं क्षत्रमण्डलम् ।

निमित्त मैंने पाण्डवोंको जो कुछ कठोर वचन कहा था, उस नीच कर्मके निमित्त इस समयमें शोकित हो रहा हूं। ४१-४५

जब तुम मुझको अर्जुनके बाणोंसे मरा हुआ देखोगे, तब मेरे कहे हुए उस शस्त्रयज्ञका फिर आरम्भ किया जायगा। भीमसेन जब महाघोर शब्द करके दुःशासनके रुधिरको पीवेगा, तब ही सोमरसका पान समझा जायगा। हे कृष्ण! जब पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्न और शिखण्डी द्रोणाचार्य और भीष्मको मारेंगे, तब ही इस यज्ञकी समाप्ति अर्थात् कुछ कालके निमित्त ठहराव होगा

और महाबली भीमसेन जब धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको मारेगा तभी यज्ञ समाप्त होजावेगा। (४६-४९)

हे कृष्ण! धृतराष्ट्रकी पुत्रवधू जब स्वामी और पुत्रसे हीन होकर गान्धारीके सहित रोदन करेंगी, तब ही कुत्ते, गिद्ध और सियारोंसे युक्त इस शस्त्र यज्ञकी समाप्ति होवेगी। हे शत्रुनाशन कृष्ण! अब अन्तिम प्रार्थना यही है, कि विद्या और अवस्थामें बूढ़े हुए क्षत्रियलोग जिसमें तुम्हारे निमित्त व्यर्थ मृत्युको न स्वीकार करें। तीनों लोगोंमें पवित्र पुण्यभूमि इस कुरुक्षेत्रमें इकट्ठे

कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे त्रैलोक्यस्याऽपि केशव ॥ ५३ ॥  
 तदत्र पुण्डरीकाक्ष विधत्स्व यदभीप्सितम् ।  
 यथा कात्स्न्येन वाष्पेय क्षत्रं स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥  
 यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च जनार्दन ।  
 तावत्कीर्तिभवः शब्दः शाश्वतोऽयं अविष्यति ॥ ५५ ॥  
 ब्राह्मणाः कथयिष्यन्ति महाभारतमाहवम् ।  
 समागमेषु वाष्पेय क्षत्रियाणां यशोधनम् ॥ ५६ ॥  
 समुपानय कौन्तेय युद्धाय मम केशव ।  
 मन्त्रसंवरणं कुर्वन्नित्यमेव परन्तप ॥ ५७ ॥ [४६८५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतपर्वणि  
 कर्णोपनिवादे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

सञ्जय उवाच- कर्णस्य वचनं श्रुत्वा केशवः परवीरहा ।  
 उवाच प्रहसन्वाक्यं स्मितपूर्वमिदं यथा ॥ १ ॥  
 श्रीभगवानुवाच- अपि त्वां न लभेत्कर्ण राज्यलम्भोपपादनम् ।  
 मया दत्तां हि पृथिवीं न प्रशासितुमिच्छसि ॥ २ ॥

होकर पराक्रमी क्षत्रिय लोग जिसमें  
 शस्त्रसे मरकर स्वर्ग लोकको जावें । हे  
 पुण्डरीकाक्ष ! इस विषयमें तुम्हारी जै-  
 सी इच्छा होवे, वैसा ही करो; यह सब  
 क्षत्रिय वीर जिससे स्वर्ग लोकमें गमन  
 करें तुम उसहीका विधान करो । ५०-५४  
 हे जनार्दन कृष्ण ! इस पृथ्वीपर  
 जगतक पर्वत और नदी विद्यमान हैं;  
 तबतक यह कीर्ति सदा प्रकाशित रहे-  
 गी । ब्राह्मण लोग महाभारत युद्धकी  
 कथा सदा कहते रहेंगे । हे कृष्ण !  
 युद्धमें यश अर्थात् जय अथवा शक्तिके  
 अनुसार पराक्रमको प्रकाश करके जो  
 मृत्यु होती है, वही क्षत्रियोंका धन है ।

हे परन्तप कृष्ण ! हमारे इस विचारको  
 सदा गोपन रखके तुम अर्जुनको युद्धके  
 निमित्त मेरे सम्मुखमें उपस्थित कर-  
 ना । (५५-५७) [४६८५]

उद्योगपर्वमें एकसौ इकतालिस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ वियालिस अध्याय ।

सञ्जय बोले, शत्रुओंको नाश करने-  
 वाले भगवान कृष्ण कर्णकी यह बात  
 सुनकर हंसते हुए उनसे फिर कहने  
 लगे, हे कर्ण ! राज्य प्राप्त करनेका  
 उपाय क्या तुम्हें उत्तम नहीं जंचता  
 है ? मैं तुमको समस्त पृथ्वीके राज्यको  
 देनेमें सहमत हूँ; तौभी उसके शासन  
 करनेके निमित्त तुम इच्छा नहीं करते

ध्रुवो जयः पाण्डवानामितीदं न संशयः कश्चन विद्यतेऽत्र ।

जयध्वजो दृश्यते पाण्डवस्य समुच्छ्रितो वानरराज उग्रः ॥ ३ ॥

दिव्या माया विहिता भौमनेन समुच्छ्रिता इन्द्रकेतुप्रकाशा ।

दिव्यानि भूतानि जयावहानि दृश्यन्ति चैवाऽत्र भयानकानि ॥ ४ ॥

न सज्जते शैलवनस्पतिभ्य ऊर्ध्वं तिर्यग्योजनमात्ररूपः ।

श्रीमानध्वजः कर्णं धनञ्जयस्य समुच्छ्रितः पावकतुल्यरूपः ॥ ५ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।

ऐन्द्रमस्त्रं विकुर्वाणमुभे चाऽप्यग्निमारुते ॥ ६ ॥

गाण्डीवस्य च निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ।

न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ७ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

जपहोमसमायुक्तं स्वां रक्षन्तं महाचमूम् ॥ ८ ॥

आदित्यमिव दुर्धर्षं तपन्तं शत्रुवाहिनीम् ।

न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ९ ॥

हो, इससे मुझको निश्चय बोध होता है, कि पाण्डवोंका अवश्य ही भावी विजय होवेगा । अर्जुनके कपिध्वजासे युक्त रथपर प्रचण्ड जय शब्द सुनाई देगा, यह मुझे प्रत्यक्ष ही दीख पड़ता है । विश्वकर्माने उस कपिध्वजाको दिव्य मायासे ऐसा विस्तार किया है, कि बोध होता है, इन्द्र धनुषके समान प्रकाशित और अनेक पताकाओंसे युक्त है, और विजय चाहनेवाले भूत, प्रेत, राक्षस आदि भी उसपर दीख पड़ते हैं । १-४

हे कर्ण ! अर्जुनके ऊपर एक योजन और सम्मुख एक योजनके घेरेमें वह ध्वजा जलती हुई अधिके समान ऐसी बनाई गई है, कि उसकी गति पर्वत

वृक्ष आदिसे भी नहीं रुक सकती । रणभूमिमें कृष्ण सारथीके सहित जब श्वे-तवाहन अर्जुनको तुम आग्नेय, वायव्य, ऐन्द्र आदि शस्त्रोंको चलाते हुए देखोगे, और साक्षात् वज्रके समान गाण्डीव धनुषके शब्दको सुनोगे, उस समय मूर्त्तिमान् कलिदेवकी उत्पात्ति होगी । सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका उस समयमें चिन्ह भी न दीख पड़ेगा । ( ५-७ )

जब देखोगे, जप होमसे युक्त धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर खुद ही रणभूमिमें आकर अपनी महासेनाकी रक्षा कर रहे हैं और सूर्यके समान प्रज्वलित होकर शत्रु सेनाको पीड़ित कर रहे हैं, उस समयमें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे भीमसेनं महाबलम् ।

दुःशासनस्य रुधिरं पीत्वा नृत्यन्तमाहवे ॥ १० ॥

प्रभिन्नमिव भातङ्गं प्रतिद्विरदधातिनम् ।

न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ११ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे द्रोणं शान्तनवं नृपम् ।

सुयोधनं च राजानं सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ १२ ॥

युद्धायाऽऽपततस्तूर्णं वारितान्सव्यसाचिना ।

न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ १३ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे माद्रीपुत्रौ महाबलौ ।

वाहिनीं धार्तराष्ट्राणां क्षोभयन्तौ गजाविव ॥ १४ ॥

विगाढे शस्त्रसम्पाते परवीररथारुजौ ।

न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ १५ ॥

ब्रूयाः कर्णं इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम् ।

सौम्योऽयं वर्तते भासः सुप्रापयवसेन्धनः ॥ १६ ॥

सर्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्पमाक्षिकः ।

कोई लक्षण न दीख पड़ेगा । जब देखोगे, कि महाबली भीमसेन दुःशासनके रुधिरको पीकर रणभूमिमें दूसरे हाथीको मारनेवाले मत्त हाथीके समान नृत्य कर रहे हैं, उस समय सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका कर्म नहीं रहेगा । ( ८-११ )

जब तुम देखोगे, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य महाराज सुयोधन, सिन्धुनन्दन जयद्रथ आदि महारथ योद्धाओंके रणभूमिमें आनेपर धनुर्द्वारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन शीघ्र ही उन लोगोंको अपने बाणोंसे पीछे हटाते हैं, उस समय सत्ययुग त्रेता और द्वापरका कुछ भी कर्म न दीख पड़ेगा । जब देखोगे, शत्रुओं-

को नाश करनेवाले पराक्रमी नकुल और सहदेव रणभूमिमें अपने महाघोर शस्त्रोंको चलाकर मतवारे हाथीके समान धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सेनाको विकल कर रहे हैं, उस समयमें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका कोई भी कर्म न दीख पड़ेगा । ( १२-१५ )

हे कर्ण ! तुम यहांसे जाकर भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे यह वचन कहना, कि वर्त्तमान महीना सब प्रकारसे उत्तम है, इस महीनेमें मक्ष्य भोज्य और काठ बहुत मिलेंगे, वनमें सब औषधी और फलोंकी बहुत ही उत्पत्ति होती है; मक्खियोंका उपद्रव बहुत थोड़ा रहता है; मार्गमें कीचड़ नाम

निष्पङ्को रसवत्तोयो नाऽत्युष्णशिशिरः सुखः ॥ १७ ॥

सप्तमाचापि दिवसादमावास्या भविष्यति ।

संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम् ॥ १८ ॥

तथा राज्ञो वदेः सर्वान्ये युद्धायाऽभ्युपागताः ।

यद्वो मनीषितं तद्वै सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥ १९ ॥

राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः ।

प्राप्य शस्त्रेण निधनं प्राप्स्यन्ति गतिमुत्तमाम् ॥ २० ॥ [ ४७०५ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि कर्णोपनिवादे

भगवद्वाक्ये द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

सञ्जय उवाच— केशवस्य तु तद्वाक्यं कर्णः श्रुत्वाऽऽहितः शुभम् ।

अब्रवीदभिसम्पूज्य कृष्णं तं मधुसूदनम् ॥ १ ॥

जानन्मां किं महाबाहो सम्मोहयितुमिच्छसि ।

योऽयं पृथिव्याः कात्स्नर्येण विनाशः समुपस्थितः ॥ २ ॥

निमित्तं तत्र शकुनिरहं दुःशासनस्तथा ।

दुर्योधनश्च नृपतिर्धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् ॥ ३ ॥

असंशयमिदं कृष्ण महद्युद्धमुपस्थितम् ।

मात्रको भी नहीं है; जल उत्तम रससे युक्त है, वायु थोड़ा उष्ण और ठण्ठा है, इससे यह महीना सदा ही सुखका देनेवाला है। आजसे सात दिनके बाद अमावास्या होगी; पाण्डित लोग इन्द्रको इस तिथिका देवता वर्णन करते हैं, इससे उसी दिन युद्ध आरम्भ करो। इसके अतिरिक्त जो सब राजा लोग युद्धके निमित्त उपस्थित हैं; उनसे भी कहना, कि तुम लोगोंकी जो अभिलाषा है, मैं उसको सब प्रकारसे पूर्ण करूँगा; दुर्योधनके वशमें रहनेवाले सब राजा और राजपुत्र शस्त्रसे मर कर उत्तम गति-

को पावेंगे। ( १६-२० ) [ ४७०५ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ विंशतिस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ तैत्तलिस अध्याय ।

सञ्जय बोले, श्रीकृष्णचन्द्रके यह हितकारी वचन सुन कर्ण उनकी यथा उचित पूजा करके यह वचन बोले, हे महाबाहो ! तुम जान बूझ कर क्यों मुझको मोहित करनेकी इच्छा करते हो ? पृथ्वी मण्डलका जो यह पूर्णरूपसे विनाश होनेका समय उपस्थित हो रहा है, उसका कारण केवल शकुनि, मैं, दुःशासन और राजा दुर्योधन हैं। हे कृष्ण ! कौरव पाण्डवोंसे जो महा संग्राम

पाण्डवानां कुरूणां च घोरं रुधिरकर्दमम् ॥ ४ ॥

राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः ।

रणे शस्त्राग्निना दग्धाः प्राप्स्यन्ति यमसादनम् ॥ ५ ॥

स्वप्ना हि बहवो घोरा दृश्यन्ते मधुसूदन ।

निमित्तानि च घोराणि तथोत्पाताः सुदारुणाः ॥ ६ ॥

पराजयं धार्तराष्ट्रे विजयं च युधिष्ठिरे ।

शंसन्त इव वाष्पेय विविधा रोमहर्षणाः ॥ ७ ॥

प्राजापत्यं हि नक्षत्रं ग्रहस्तीक्ष्णो महाद्युतिः ।

शनैश्चरः पीडयति पीडयन्प्राणिनोऽधिकम् ॥ ८ ॥

कृत्वा चाऽङ्गारको वक्रं ज्येष्ठायां मधुसूदन ।

अनुराधां प्रार्थयते सैत्रं सङ्गमयन्निव ॥ ९ ॥

नूनं महद्भयं कृष्ण कुरूणां समुपस्थितम् ।

विशेषेण हि वाष्पेय चित्रां पीडयते ग्रहः ॥ १० ॥

सोमस्य लक्ष्म व्यावृत्तं राहुरर्कमुपैति च ।

दिवश्चोत्काः पतन्त्येताः सनिर्घाताः सकम्पनाः ॥ ११ ॥

उपस्थित होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। पृथ्वी अवश्य इस युद्धमें रुधिरके कीचडसे भर जावेगी, दुर्योधनके अनुयायी सब राजा और राजपुत्र लोग अवश्यही युद्धक्षेत्रमें मरकर यमपुरीमें पहुँचेंगे। ( १-५ )

हे कृष्ण ! रोवेंको खडे करनेवाले अनेक प्रकारके बुरे स्वप्न, भयङ्कर अशकुन और सब प्रकारके दारुण आपात सदा ही दीख पड़ते हैं, उससे युधिष्ठिरका विजय और दुर्योधनका पराजय स्पष्ट रूपसे सूचित होता है। हे कृष्ण ! देखो, तीक्ष्ण ग्रह तेजस्वी शनैश्चर प्राणियोंको अधिक पीड़ा देनेके

निमित्त प्रजापति-दैवत रोहिणी नक्षत्रको पीडित कर रहा है। मङ्गल टेढ़ी चालसे ज्येष्ठानक्षत्र पर आकर मित्रकुलके संहार करनेके निमित्त मित्रदैवत नक्षत्र अनुराधासे सङ्गम करनेकी अभिलाषा करता है। ( ६-९ )

हे कृष्ण ! राहुग्रह चित्राको विशेष रूपसे पीडित कर रहा है। इससे निश्चय कौरवोंको महाभय उपस्थित होगा। चन्द्रमाके भीतर जो छाया रहती है, वह अपने स्थानसे पृथक् मालूम होरही है। राहु सर्वदा सूर्यके समीपमें हुआ चाहता है। आकाशसे आघात और कम्पसे युक्त उल्कापात होरहा है, हाथी बुरे

निष्ठनन्ति च मातङ्गा मुञ्चन्त्यश्रूणि वाजिनः ।  
 पानीयं यवसं चापि नाऽभिनन्दन्ति माधव ॥ १२ ॥  
 प्रादुर्भूतेषु चैतेषु भयमाहुरुपस्थितम् ।  
 निमित्तेषु महाबाहो दारुणं प्राणिनाशनम् ॥ १३ ॥  
 अल्पे भुक्ते पुरीषं च प्रभूतमिह दृश्यते ।  
 वाजिनां वारणानां च मनुष्याणां च केशव ॥ १४ ॥  
 धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु सर्वेषु मधुसूदन ।  
 पराभवस्य तल्लिङ्गमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥ १५ ॥  
 प्रहृष्टं वाहनं कृष्ण पाण्डवानां प्रचक्षते ।  
 प्रदक्षिणा मृगाश्चैव तत्तेषां जयलक्षणम् ॥ १६ ॥  
 अपसन्धा मृगाः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य केशव ।  
 वाचश्चाऽप्यक्षरीरिण्यस्तत्पराभवलक्षणम् ॥ १७ ॥  
 मयूराः पुण्यशकुना हंससारसचातकाः ।  
 जीवज्जीवकसङ्घाश्चाऽप्यनुगच्छन्ति पाण्डवान् ॥ १८ ॥  
 गृध्राः कङ्का वकाः श्येना यातुधानास्तथा वृकाः ।  
 मक्षिकाणां च सङ्घाता अनुधावन्ति कौरवान् ॥ १९ ॥

शब्दको करते हैं, घोड़े घास और पानी-  
 की इच्छाको त्याग करके अकारण ही  
 रोदन कर रहे हैं । ( १०-१२ )

हे कृष्ण ! इन सब विषयोंके जान  
 नेवाले पाण्डितोंने कहा है, कि इन सब  
 बुरे अशगुनोंके उत्पन्न होनेपर अनेक  
 प्राणियोंका संहार करनेवाला महाघोर  
 भय उपस्थित होता है । हे महाबाहो  
 कृष्ण ! दुर्योधनकी सेनामें हाथी, घोड़े,  
 मनुष्य आदि सबके थोड़े भोजन करने पर  
 भी अधिक मल दीख पड़ता है । बुद्धिमान्  
 पाण्डितोंने इसको केवल पराजय हीका  
 लक्षण निश्चित किया है । ( १३-१५ )

हे कृष्ण ! इधर पाण्डवोंके सब वाहन  
 हृष्टपुष्ट और हरिण आदि शुभ शगुनके  
 जाननेवाले पशु उनकी दहिनी ओरसे  
 गमन करते हैं; यह केवल उन लोगोंके  
 विजयका ही लक्षण दीख पड़ता है,  
 परन्तु दुर्योधनकी बांयी ओरसे हरिण  
 आदि पशु चलते हैं, और अमानुषी  
 वाणी सुन पड़ती है, यह सब पराजयके  
 ही लक्षण हैं । पक्षी, मोर, हंस, सारस,  
 चातक और चकोर आदि पाण्डवोंके  
 अनुगामी होते हैं; परन्तु कौरवोंके पी-  
 छे गिद्ध, कौए, सियार, राक्षस तथा  
 मक्खियोंका झुण्ड चलता है । ( १६-१९ )

धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु भेरीणां नास्ति निःस्वनः ।  
 अनाहताः पाण्डवानां नदन्ति पटहाः किल ॥ २० ॥  
 उदपानाश्च नदन्ति यथा गोवृषभास्तथा ।  
 धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु तत्पराभवलक्षणम् ॥ २१ ॥  
 मांसशोणितवर्षं च वृष्टं देवेन माधव ।  
 तथा गन्धर्वनगरं भानुमत्समुपस्थितम् ॥ २२ ॥  
 सप्राकारं सपरिखं सवप्रं चारुतोरणम् ।  
 कृष्णश्च परिघस्तत्र भानुमावृत्त्य तिष्ठति ॥ २३ ॥  
 उदयास्तमने सन्ध्ये वेदयन्ती महद्भयम् ।  
 शिवा च वाशते घोरं तत्पराभवलक्षणम् ॥ २४ ॥  
 एकपक्षाक्षिचरणाः पक्षिणो मधुसूदन ।  
 उत्सृजन्ति महद्घोरं तत्पराभवलक्षणम् ॥ २५ ॥  
 कृष्णग्रीवाश्च शकुना रक्तपादा भयानकाः ।  
 सन्ध्यामभिमुखा यान्ति तत्पराभवलक्षणम् ॥ २६ ॥  
 ब्राह्मणान्प्रथमं द्वेष्टि गुरुंश्च मधुसूदन ।  
 भृत्यान्भक्तिमतश्चाऽपि तत्पराभवलक्षणम् ॥ २७ ॥

दुर्योधनकी सेनामें भेरी आदि बाजोंका भी शब्द नहीं होता है; परन्तु पाण्डवों के युद्धके बाजे बिना बजाये ही बजने लगते हैं। हे माधव ! दुर्योधनके स्नान करनेवाले स्थानमें कृष्ण, बावली आदिसे वृषभके समान शब्द बाहर होते हैं, देवता लोग मांस और रुधिरकी वर्षा करते हैं, अकस्मात् सुन्दर तेज और प्राकार, परिख, तट आदिसे युक्त गन्धर्व नगर आकाशमें दीख पड़ता है। वहाँपर कृष्णवर्ण प्रचण्ड परिघ सूर्यको आच्छादित करता है। (२०-२३)

प्रथम और अन्त दोनों सन्ध्याके

समयमें महाभय उत्पन्न होता है, सियार रात दिन अशुभ शब्दसे चिल्लाते हैं, एक पक्ष, एक ही नेत्र एकही चरणवाले बहुतसे विकटरूपके पक्षी दीख पड़ते हैं, और महा घोर शब्द करते हैं। काली गर्दन और लाल चरणवाले भयानक पक्षी सन्ध्याके समय इधर उधर घूमते हुए दीख पड़ते हैं। यह पराभवका चिन्ह है। सेनाके पुरुष पहिले ब्राह्मणोंको, पीछे गुरु और भक्तिसे युक्त सेवकोंसे भी द्वेष करते हैं। हे मधुसूदन कृष्ण ! यह सब ही पराजयके लक्षण हैं।

दुर्योधनकी सेनाका स्थान पूर्व दिशामें



पूर्वा दिग्लोहिताकारा शस्त्रवर्णा च दक्षिणा ।  
 आमपात्रप्रतीकाशा पश्चिमा मधुसूदन ॥  
 उत्तरा शङ्खवर्णाभा दिशां वर्णा उदाहृताः ॥ २८ ॥  
 प्रदीप्ताश्च दिशः सर्वा धार्तराष्ट्रस्य माधव ।  
 महद्भयं वेदयन्ति तस्मिन्नुत्पातदर्शने ॥ २९ ॥  
 सहस्रपादं प्रासादं स्वप्नान्ते स्म युधिष्ठिरः ।  
 अधिरोहन्मया दृष्टः सह भ्रातृभिरच्युत ॥ ३० ॥  
 श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे वै शुक्लवाससः ।  
 आसनानि च शुभ्राणि सर्वेषामुपलक्षये ॥ ३१ ॥  
 तव चापि मया कृष्ण स्वप्नान्ते रुधिराविला ।  
 अन्त्रेण पृथिवी दृष्टा परिक्षिप्ता जनार्दन ॥ ३२ ॥  
 अस्थिसञ्चयमारूढश्चाऽमितौजा युधिष्ठिरः  
 सुवर्णपात्र्यां संहृष्टो भुक्तवान्धृतपायसम् ॥ ३३ ॥  
 युधिष्ठिरो मया कृष्ण ग्रसमानो वसुन्धराम् ।  
 त्वया दत्तामिमां व्यक्तं भोक्ष्यते स वसुन्धराम् ॥ ३४ ॥  
 उच्चं पर्वतमारूढो भीमकर्मा वृकोदरः ।

रक्तवर्ण दीखता है। शस्त्रके रूपके समान  
 दक्षिण दिशाका वर्ण हो गया है और  
 पश्चिम दिशाका रूप विना पके हुए  
 मट्टीके पात्रके समान है। सब दिशाएं  
 प्रज्वलित होकर दुर्योधनको बड़े भारी  
 भयका बोध कराती हैं। ( २४-२९ )

हे कृष्ण ! मैंने स्वप्नमें देखा है, कि  
 भाइयोंके सहित राजा युधिष्ठिर सहस्र  
 खम्भोंसे युक्त एक ऊंचे मन्दिरके ऊपर  
 चढ़ रहे हैं; वह सब लोग अत्यन्त उत्तम  
 वस्त्रोंको धारण करके श्वेतवर्णके छत्रसे  
 युक्त हैं। उन लोगोंके आसन भी श्वेत  
 ही वर्णके दीख पड़े। हे जनार्दन कृष्ण !

उस समय मैंने यह भी देखा था, कि  
 मानो रुधिरसे भरी हुई पृथ्वीको तुम  
 अपने शस्त्रोंसे व्याकुल कर रहे हो और  
 महा तेजस्वी राजा युधिष्ठिर हाडियोंके  
 ऊपर बैठकर सुवर्ण पात्रमें घृत और  
 दूधको पान कर रहे हैं, और यह भी  
 देखा; कि युधिष्ठिर सब पृथ्वीको ग्रास  
 कर रहे हैं, इससे अवश्य ही बोध होता  
 है कि वह तुम्हारे दिये हुए इस सम्पूर्ण  
 पृथ्वीमण्डलके राज्यको भोगेंगे। ३०-३४

युधिष्ठिरकी भांति पुरुषसिंह भीमसेन  
 भी ऊंचे पर्वतके शिखर पर चढ़के हाथ-  
 में गदा लेकर पृथ्वीको नष्ट करनेकी

गदापाणिर्नरव्याघ्रो ग्रसन्निव महीभिमाम् ॥ ३५ ॥  
 क्षपायिष्यति नः सर्वान्स सुव्यक्तं महारणे ।  
 विदितं मे हृषीकेश यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ३६ ॥  
 पाण्डुरं गजमारूढो गाण्डीवी स धनञ्जयः ।  
 त्वया सार्धं हृषीकेश श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ३७ ॥  
 यूयं सर्वे वधिष्यध्वं तत्र मे नाऽस्ति संशयः ।  
 पार्थिवान्समरे कृष्ण दुर्योधनपुरोगमान् ॥ ३८ ॥  
 नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।  
 शुक्लकेयूरकण्ठत्राः शुक्लमाल्याम्बरावृताः ॥ ३९ ॥  
 अधिरूढा नरव्याघ्रा नरवाहनमुत्तमम् ।  
 त्रय एते मया दृष्टाः पाण्डुरच्छत्रवाससः ॥ ४० ॥  
 श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते त्रय एते जनार्दन ।  
 धार्तराष्ट्रेषु सैन्येषु तान्विजानीहि केशवः ॥ ४१ ॥  
 अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।  
 रक्तोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे माधव पार्थिवाः ॥ ४२ ॥

इच्छा करते हैं; इससे मुझे यह बोध होता है, कि वह इस उपस्थित संग्राम में हम सब लोगोंका नाश करेगा। हे कृष्ण ! जिस स्थानपर धर्म रहता है, वहां पर ही जय होती है, इसे मैं खूब जानता हूं। हे कृष्ण ! गाण्डीव धनुष-को ग्रहण करनेवाले अर्जुन तुम्हारे सहित पाण्डुरवर्ण हाथीके ऊपर चढ़के परम शोभासे शोभित हुए थे। ( ३५-३७ )

हे कृष्ण ! सब बातोंके मर्मको भली भांति विचार करके देखनेसे यही बोध होता है, कि तुम लोग सब कोई मिलकर रणभूमिमें दुर्योधनका नाश करदोगे, उसमें मुझको क्या कुछ भी सन्देह हो

सकता है ? हे कृष्ण ! फिर भी मैंने यह देखा, नकुल सहदेव और सात्यकी यह तीन पुरुषसिंह महारथ वीर सफेद रङ्गके कवच माला और वस्त्रोंसे भूषित होकर उत्तम मनुष्योंकी सवारीमें विराजमान हैं; उनके सिरके ऊपर पाण्डुरवर्ण छत्र शोभित हैं। इन तीनों पुरुषोंको श्वेत उष्णीष धारण किये हुए मैंने देखा था। ( ३८-४१ )

हे महाबाहो कृष्ण ! दुर्योधनकी सेनामें भी अश्वत्थामा, कृपाचार्य, यदुवंशीयश्रेष्ठ कृतवर्मा और इसके अतिरिक्त सब राजा लोगोंके लालरङ्गके वस्त्रोंसे सिर बंधे हुए दीख पड़े। हे शत्रुनाशन कृष्ण !

उष्ट्रप्रयुक्तमारूढौ भीष्मद्रोणौ महारथौ ।

मया सार्धं महाबाहो धार्तराष्ट्रेण वा विभो ॥ ४३ ॥

अगस्त्यशास्तां च दिशं प्रयाताः स्म जनार्दन ।

अचिरेणैव कालेन प्राप्स्यामो यमसादनम् ॥ ४४ ॥

अहं चाऽन्ये च राजानो यच्च तत्क्षत्रमण्डलम् ।

गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्याम इति मे नाऽस्ति संशयः ॥ ४५ ॥

कृष्ण उवाच— उपस्थितविनाशेयं नूनमद्य वसुन्धरा ।

यथा हि मे वचः कर्ण नोपैति हृदयं तव ॥ ४६ ॥

सर्वेषां तात भूतानां विनाशे प्रत्युपस्थिते ।

अनयो नयसङ्काशो हृदयान्नाऽपसर्पति ॥ ४७ ॥

कर्ण उवाच— अपि त्वां कृष्ण पश्याम जीवन्तोऽस्मान्महारणात् ।

समुत्तीर्णा महाबाहो वीरक्षत्रविनाशनात् ॥ ४८ ॥

अथवा सङ्गमः कृष्ण स्वर्गे नो भविता ध्रुवम् ।

तत्रेदानीं समेक्ष्यामः पुनः सार्धं त्वयाऽनघ ॥ ४९ ॥

सञ्जय उवाच— इत्युक्त्वा साधवं कर्णः परिष्वज्य च पीडितम् ।

महारथ भीष्म और द्रोणाचार्य मुझे और दुर्योधनको सङ्ग लेकर ऊंटसे चलाये हुए विमानमें बैठकर दक्षिण दिशाकी ओर चले । इससे यह निश्चय बोध हो रहा है, कि हम लोग शीघ्र ही यम-पुरीमें पहुँचकर अतिथि रूपसे ग्रहण किये जावेंगे । हे जनार्दन कृष्ण ! हम लोग सब राजाओंके सहित गाण्डीधनुषके प्रतापरूपी आग्निमें भस्म होजावेंगे, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है । (४१-४५)

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे कर्ण ! जब मेरी बात तुम्हारे हृदयमें नहीं उत्तम बोध होती है, तब इस संपूर्ण पृथ्वीकी प्रजाओंका नाशका समय निश्चय ही

उपस्थित हुआ है । हे भ्राता ! जब सबके नाश होनेका समय उपस्थित है, तब उत्तम नीतिके समान बोध होनेवाली यथार्थमें दुष्ट नीति कभी भी हृदयसे नहीं दूर होती है । (४६-४७)

कर्ण बोले, हे कृष्ण ! यदि मैं इस वीरवंशके नाश करनेवाले महायुद्धसे पार होकर जीता रहूंगा, तब तुमसे भेंट कर सकूंगा, नहीं तो स्वर्ग लोकमें अवश्य ही फिर हम लोगोंका मिलाप होगा । हे पाप रहित ! इससे अब उस ही स्थानपर तुम्हारे सङ्ग मेरा मिलाप सम्भव होता है । (४८-४९)

सञ्जय बोले, राधापुत्र कर्ण कृष्णसे

विसर्जितः केशवेन रथोपस्थादवातरत् ॥ ५० ॥

ततः स्वरथमास्थाय जाम्बूनदविभूषितम् ।

सहाऽस्माभिर्निववृते राधेयो दीनमानसः ॥ ५१ ॥

ततः शीघ्रतरं प्रायात्केशवः सहसात्यकिः ।

पुनरुच्चारयन्वाणीं याहि याहीति सारथिम् ॥ ५२ ॥ [४७५७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतपर्वणि

कर्णोपनिषादे कृष्णकर्णसंवादे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

वैशम्पायन उवाच-असिद्धानुनये कृष्णे कुरुभ्यः पाण्डवान्गते ।

अभिगम्य पृथां क्षत्ता शनैः शोचन्निवाऽब्रवीत् ॥ १ ॥

जानासि मे जीवपुत्रि भावं नित्यमविग्रहे ।

क्रोशतो न च गृह्णीते वचनं मे सुयोधनः ॥ २ ॥

उपपन्नो ह्यसौ राजा चेदिपाञ्चालकेकयैः ।

भीमार्जुनाभ्यां कृष्णेन युयुधानयमैरपि ॥ ३ ॥

उपप्लव्ये निविष्टोऽपि धर्ममेव युधिष्ठिरः ।

कांक्षते ज्ञातिसौहार्दाद्बलवान्दुर्बलो यथा ॥ ४ ॥

ऐसा वचन कहकर उन्हें अच्छी प्रकार-  
के आलिङ्गन करके यहांसे बिदा हो  
कृष्णके रथसे उतर सुवर्ण भूषित अपने  
रथपर चढ़के दीनतायुक्त चित्तसे हम  
लोगोंके सङ्ग हस्तिनापुरको लौटे; अन-  
न्तर सात्यकी के सहित कृष्णने सारथीसे  
रथ हांकनेको कहा; और उन्होंने वहांसे  
प्रस्थान किया । (५०-५२) [४७५७]

उद्योगपर्वमें एकसौ तैंतालिस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ चत्वारलिस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्ण  
ने कर्णसे निरर्थक इन विचारों को  
करके कौरवोंकी मण्डलीसे निकलकर  
पाण्डवोंके समीप गमन किया । विदुर

कुन्तीदेवीके समीप जाकर धीमे स्वरसे  
शोक प्रकाश करते हुए कहने लगे, हे  
यशस्विनी ! युद्ध न होना ही मुझे  
उत्तम जंचता है, वह तुमको भली भांति  
से विदित है, परन्तु मेरे सहस्रों वार  
कहने पर भी दुर्योधन किसी प्रकारसे  
मेरा वचन ग्रहण नहीं करता । राजा  
युधिष्ठिर चेदी, पाञ्चाल, केकय, भीम,  
अर्जुन, नकुल, सहदेव, कृष्ण और सात्यकी  
आदि वीरोंकी सहायतासे अत्यन्त बल-  
वान् होकर भी अपने राज्यको छोड़कर  
विराटनगरमें निवास कर रहे हैं; तौभी  
जातिकी शुभ कामना विचारकर निर्वल  
पुरुषोंकी भांति केवल धर्महीकी

राजा तु धृतराष्ट्रोऽयं वयोवृद्धो न शाम्यति ।  
 मत्तः पुत्रमदेनैव विधर्मे पथि वर्तते ॥ ५ ॥  
 जयद्रथस्य कर्णस्य तथा दुःशासनस्य च ।  
 सौबलस्य च दुर्बुद्ध्या मिथो भेदः प्रपत्स्यते ॥ ६ ॥  
 अधर्मेण हि धर्मिष्ठं कृतं वै कार्यमीदृशम् ।  
 येषां तेषामयं धर्मः सानुबन्धो भविष्यति ॥ ७ ॥  
 क्रियमाणे बलाद्धर्मे कुरुभिः को न सञ्ज्वरेत् ।  
 अस्मात्मा केशवे याते समुद्योक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ८ ॥  
 ततः कुरूणामनयो भविता वीरनाशनः ।  
 चिन्तयन्न लभे निद्रामहःसु च निशासु च ॥ ९ ॥  
 श्रुत्वा तु कुन्ती तद्वाक्यमर्थकामेन भाषितम् ।  
 सा निःश्वसन्ती दुःखार्ता मनसा विममर्श ह ॥ १० ॥  
 धिगस्त्वर्थं यत्कृतेऽयं महाञ्ज्ञातिवधः कृतः ।  
 वत्स्यते सुहृदां चैव युद्धेऽस्मिन्वै पराभवः ॥ ११ ॥  
 पाण्डवाश्चेदिपञ्चाला यादवाश्च समागताः ।

अभिलाषा करते हैं; परन्तु यह अन्धराज  
 धृतराष्ट्र बूढ़े होकर भी किसी प्रकारसे  
 शान्त नहीं होते हैं, वह पुत्र ही के मद  
 में मत्त होकर केवल अधर्म ही के मार्ग  
 से चल रहे हैं । ( १-५ )

इससे शकुनि, जयद्रथ, कर्ण, दुःशा-  
 सनकी दुष्टबुद्धिसे कुरुकुलका नाश होगा;  
 यथार्थ धर्म-निष्ठ पुरुषके सङ्ग जिन्होंने  
 ऐसा अधर्मका कार्य किया है, उन लोगोंका  
 वही अधर्म अवश्य ही उनके नाश  
 करनेका कारण होगा । अहा ! कौरवोंने  
 बलपूर्वक धर्मका कर्म छेदन किया है,  
 उससे कौन पुरुषके हृदयमें दुःख नहीं  
 उत्पन्न होगा ? हे देवि ! कृष्ण जब

सन्धि स्थापन नहीं कर सके, तब पाण्डवों  
 के समीप चले गये; अब पाण्डव लोग  
 युद्धका अवश्य ही उद्योग करेंगे, और  
 कौरवोंका अवश्य ही नाश होगा, इन्हीं सब  
 बातोंका विचार करके मुझे दिन और  
 रातको नींद नहीं आती है । ( ६-९ )

परम हितैषी विदुरके यह वचन सु-  
 नकर कुन्ती अत्यन्त ही दुःखित होकर  
 लम्बी सांस लेती हुई अपने मनमें यह  
 चिन्ता करने लगी, कि हाय ! धन क्या  
 ही अनर्थका मूल है, कि इसीके निमित्त  
 यह महाभयंकर जातिके लोगोंका वध  
 उपस्थित हुआ है । इससे इस अर्थको  
 धिक्कार है । इस युद्धमें सुहृद पुरुषोंही

भारतैः सह योत्स्यन्ति किं नु दुःखमतः परम् ॥ १२ ॥

पश्ये दोषं ध्रुवं युद्धे तथाऽयुद्धे पराभवम् ।

अधनस्य सृतं श्रेयो नहि ज्ञातिक्षयो जयः ॥ १३ ॥

इति मे चिन्तयन्त्या वै हृदि दुःखं प्रवर्तते ।

पितामहः शान्तनव आचार्यश्च युधां पतिः ॥ १४ ॥

कर्णश्च धार्तराष्ट्रार्थं वर्धयन्ति भयं मम ।

नाऽऽचार्यः कामवाञ्छिष्यैर्द्रोणो युद्धयेत जातुचित् ॥ १५ ॥

पाण्डवेषु कथं हार्दं कुर्यान्न च पितामहः ।

अयं त्वेको वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥ १६ ॥

मोहानुवर्ती सततं पापो द्वेष्टि च पाण्डवान् ।

महत्यनर्थे निर्वन्धी बलवांश्च विशेषतः ॥ १७ ॥

कर्णः सदा पाण्डवानां तन्मे दहति सम्प्रति ।

आशंसे त्वद्य कर्णस्य मनोऽहं पाण्डवान्प्रति ॥ १८ ॥

का पराभव होगा । पाण्डव लोग चेदि, पाञ्चाल और यदुवंशियोंके सङ्ग मिलकर कौरवोंसे युद्ध करेंगे, इससे अधिक दुःख का और कौनसा विषय होगा ? (१२-१२)

संग्राममें मुझे अवश्य ही दोष दीख पड़ता है, और युद्ध न करनेसे अपने पक्षकी पराभव दीखती है; क्योंकि धनहीन पुरुषका मरना ही उत्तम है । और अनगिनत जातिके लोगोंका वध करके जय मिलना भी उत्तम नहीं है । यही सब विचारकर मेरा अन्तःकरण अत्यन्त दुःखसे पीड़ित हो रहा है । योद्धाओंमें मुख्य शान्तनुपुत्र पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण ये लोग दुर्योधनके सहाय हैं; इससे मुझे बहुत भय लगता है; परन्तु मुझे बोध होता है, कि प्यारे

शिष्यके सङ्ग आचार्य कभी अपनी इच्छाके अनुसार युद्ध नहीं करेंगे, पितामह भीष्म ही भला पुत्रोंके ऊपर क्यों न प्रीति करेंगे ? तब मिथ्या मोह में पड़ा हुआ एक मात्र कर्ण ही सब अनिष्ट कर्मोंका मूल है । यह दुष्टात्मा नीचबुद्धि दुर्योधनके मोहमें पड़कर सदा ही पाण्डवोंके सङ्ग द्वेष किया करता है, जिससे उन लोगोंको दुःख मिले, उसके निमित्त यह सदा दुष्टबुद्धिका प्रयोग किया करता है; विशेषतः वह स्वयं महाबली है । (१३-१७)

उसके दुष्ट चरित्रही मेरे अन्तःकरण को भस्म कर रहे हैं । इससे आज मैं उस के समीप जाकर सम्पूर्ण गूढ़ विषयोंका वर्णन करके जिससे पाण्डवोंके ऊपर

प्रसादयितुमासाद्य दर्शयन्ती यथातथम् ।  
 तोषितो भगवान्यत्र दुर्वासा मे वरं ददौ ॥ १९ ॥  
 आह्वानं मन्त्रसंयुक्तं वसन्त्याः पितृवेदमनि ।  
 साऽहमन्तःपुरे राज्ञः कुन्तीभोजपुरस्कृता ॥ २० ॥  
 चिन्तयन्ती बहुविधं हृदयेन विदूयता ।  
 बलाबलं च मन्त्राणां ब्राह्मणस्य च वाग्बलम् ॥ २१ ॥  
 स्त्रीभावाद्बालभावाच्च चिन्तयन्ती पुनः पुनः ।  
 धात्र्या विश्वब्धया गुप्ता सखीजनवृता तदा ॥ २२ ॥  
 दोषं परिहरन्ती च पितुश्चारिष्यरक्षिणा ।  
 कथं नु सुकृतं मे स्यान्नाऽपराधवती कथम् ॥ २३ ॥  
 भवेयमिति सचिन्त्य ब्राह्मणं तं नमस्य च ।  
 कौतूहलात्तु तं लब्ध्वा बालिश्यादाचरं ततः ।  
 कन्या सती देवमर्कमासादयमहं तदा ॥ २४ ॥  
 योऽसौ कानीनगर्भो मे पुत्रवत्परिरक्षितः ।

उसका चित्त प्रसन्न होवे, उसकी चेष्टा करूंगी। जिस प्रकारसे उसका जन्म हुआ है, उस वृत्तान्तको मैं विशेष रूप से वर्णन करूंगी। जब मैं पिता कुन्ति-भोज राजाके भवनमें वास करती थी तब भगवान् दुर्वासा मुनिने मेरी सेवासे प्रसन्न होकर मुझे एक मन्त्र बताके यह वर दिया था, कि “तुम पुत्रकी इच्छा से जिस देवताको आवाहन करोगी, वही तुम्हारे समीप चला आवेगा।” उस प्रकारका विचित्र वर पाकर मैं स्त्रीस्वभाव, चञ्चलता तथा बालस्वभाव के कारणसे अनेक प्रकारकी चिन्ता करने लगी। मन्त्रका बल और ब्राह्मणके वचनकी परीक्षा करनेके निमित्त मुझे अत्यन्तही अ-

भिलाषा उत्पन्न हुई। ( १७-२२ )

परन्तु उस समय विश्वास-पात्री दासियोंसे रक्षित और सखियोंसे युक्त थी; विशेष कर किस प्रकारसे मुझे दोष न होवे, तथा पिताको भी कोई कलङ्क न लगे, किस प्रकारसे मेरा सुकृत नष्ट न होगा, और किस भांति मैं अपराधिनी न हो सकूंगी; इसी प्रकारकी चिन्तासे व्याकुल होकर इकबारगी उस सङ्कल्पसे पीछे हटने लगी। अन्तमें अत्यन्तही कौतूहल की अभिलाषासे मैंने दुर्वासा ऋषिको प्रणाम करके कन्या अवस्थाहीमें उस मन्त्रका उच्चारण करके सूर्यदेवका आवाहन किया। इससे जो पुरुष कन्या अवस्थामें मेरे गर्भसे उत्पन्न होकर पुत्र

कस्मान्न कुर्याद्ब्रूचनं पथ्यं आतृहितं तथा ॥ २५ ॥  
 इति कुन्ती विनिश्चित्य कार्यनिश्चयमुत्तमम् ।  
 कार्यार्थमभिनिश्चित्य ययौ भागीरथीं प्रति ॥ २६ ॥  
 आत्मजस्य ततस्तस्य घृणिनः सत्यसङ्गिनः ।  
 गङ्गातीरे पृथाऽश्रौषीद्वेदाध्ययननिःस्वनम् ॥ २७ ॥  
 प्राङ्मुखस्योर्ध्वबाहोः सा पर्यतिष्ठत पृष्ठतः ।  
 जप्यावसानं कार्यार्थं प्रतीक्षन्ती तपस्विनी ॥ २८ ॥  
 अतिष्ठत्सूर्यतापार्ता कर्णस्योत्तरवासासि ।  
 कौरव्यपत्नी वाष्णेयी पद्ममालेव शुष्यती ॥ २९ ॥  
 आपृष्ठतापाज्जप्त्वा स परिवृत्त्य यतव्रतः ।  
 दृष्ट्वा कुन्तीमुपातिष्ठदाभिवाच कृताञ्जलिः ॥ ३० ॥  
 यथान्यायं महातेजा मानी धर्मभृतां वरः ।  
 उत्स्मयन्प्रणतः प्राह कुन्तीं वैकर्तनो वृषः ॥ ३१ ॥ [४७८८]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतानपर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

के समान रक्षित हुआ था, वह अपने भाइयोंके हितार्थ मेरे कहे हुए वचनों को क्यों नहीं स्वीकार करेगा। २२-२५  
 कुन्तीदेवी ऐसा विचारकर अपने प्रयोजनको निश्चय करके कर्णसे भेंट करनेके निमित्त भागीरथीके तीरपर गई। वहाँपर वह परम दयालु सत्यव्रत करने वाला महाबाहु कर्ण अपनी भुजाको ऊपर उठाकर पूर्व ओर मुह करके वेद मन्त्रोंका उच्चारण करता हुआ जप कर रहा था। उसे इस प्रकारसे देखकर उस की दुःखिता माता जपके शेष होनेपर अपना प्रयोजन सिद्ध करनेकी इच्छासे पीछे खड़ी हुई। ( २६-२८ )

वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुई पाण्डुराजकी

भार्या सुकुमारी कुन्तीदेवी बहुत समय-तक कर्णके पीछे खड़ी रहकर सूर्यके प्रचण्ड तेजसे कमलकी मालाके समान मुरझा गई; अन्तमें कर्णके ऊपरके वस्त्रको छायाका सहारा करके वहाँपर खड़ी हुई। धर्मात्मा सत्यव्रत करनेवाले अत्यन्त तेजस्वी महामानी सूर्यपुत्र कर्णने जब-तक अच्छी प्रकारसे पीठपर सूर्यका तेज नहीं पहुंचा, तबतक जप करके अन्तमें पीठ घुमाकर देखा तो वहाँपर कुन्तीदेवी खड़ी थी। अकस्मात् उनको देखकर वह विस्मित होकर दोनों हाथ जोड़के उन्हें प्रणाम करके, यथा उचित नीचे कहे हुए वचन बोले। ( २९-३१ )

एकसौ चौवालिस अध्याय समाप्त । [ ४७८८ ]



कर्ण उवाच— राधेयोऽहमाधिरथिः कर्णस्त्वामभिवादये ।  
 प्राप्ता किमर्थं भवती ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १ ॥

कुन्तियुवाच— कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाऽधिरथः पिता ।  
 नाऽसि सूतकुले जातः कर्ण तद्विद्धि मे वचः ॥ २ ॥

कानीनस्त्वं मया जातः पूर्वजः कुक्षिणा धृतः ।  
 कुन्तिराजस्य भवने पार्थस्त्वमसि पुत्रक ॥ ३ ॥

प्रकाशकर्मा तपनो योऽयं देवो विरोचनः ।  
 अजीजनत्त्वां मय्येष कर्ण शस्त्रभृतां वरम् ॥ ४ ॥

कुण्डली बद्धकवचो देवगर्भः श्रिया वृतः ।  
 जातस्त्वमसि दुर्धर्ष मया पुत्र पितुर्गृहे ॥ ५ ॥

स त्वं भ्रातृनसम्बुद्धय मोहाद्यदुपसेवसे ।  
 धार्तराष्ट्रान्न तद्युक्तं त्वयि पुत्र विशेषतः ॥ ६ ॥

एतद्धर्मफलं पुत्र नराणां धर्मनिश्चये ।

उद्योगपर्वमें पैतालिस अध्याय ।

कर्ण बोले, मैं राधा और अधिरथका पुत्र कर्ण हूं, मैं तुमको प्रणाम करता हूं, तुम किस निमित्त मेरे समीप आई हो, तुम्हारा कौनसा कार्य मुझको करना होगा; वह सब तुम मुझसे कहो । (१)

कुन्ती बोले, हे कर्ण ! तुम कुन्तीपुत्र हो, राधापुत्र नहीं हो; अधिरथ भी तुम्हारा पिता नहीं है; तुम सूतकुलमें उत्पन्न नहीं हुए हो । मैं तुम्हारे जन्मका गूढ़ वृत्तान्त कहती हूं, उसे तुम निश्चय करके सत्य समझो । हे पुत्र ! मैंने कन्या अवस्थामें पहिले ही तुमको गर्भमें धारण किया था, इससे तुम मेरे ही कानीन पुत्र हो; तुम कुन्तिराजके भवनमें उत्पन्न हुए थे । हे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण !

यह जो सब लोगोंको प्रकाश करनेवाले भगवान् सूर्य सदा आकाशमण्डलमें विराजमान हैं, इन्होंने तुमको मेरे गर्भसे उत्पन्न किया था । हे महातेजस्वी पुत्र ! मेरे पिताके मन्दिरमें तुम देवकुमारकी भांति सुन्दर कवच और कुण्डलके सहित अत्यन्त शोभामें युक्त होकर मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए थे । ( २-५ )

इस समयमें माइयोंके सङ्ग जान पहचान न रहनेके कारण तुम मोहमें पड़कर दुर्योधनकी सेवा कर रहे हो । तुम्हारे समान तेजस्वी और बुद्धिमान पुरुषके लिये यह कार्य किसी प्रकारसे उचित नहीं है । हे पुत्र ! मनुष्य धर्मको निरूपण करनेवाले पाण्डितोंने पितृवर्ग और एक मात्र स्नेहमयी माताके

यत्तुष्यन्त्यस्य पितरो माता चाऽप्येकदर्शिनी ॥ ७ ॥

अर्जुनेनाऽर्जितां पूर्वं हतां लोभादसाधुभिः ।

आच्छिद्य धार्तराष्ट्रेभ्यो भुंक्ष्व यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥ ८ ॥

अद्य पश्यन्ति कुरवः कर्णार्जुनसमागमम् ।

सौभ्रात्रेण समालक्ष्य सन्नमन्तामसाधवः ॥ ९ ॥

कर्णार्जुनौ वै भवेतां यथा रामजनार्दनौ ।

असाध्यं किं नु लोके स्याद्युवयोः संहितात्मनोः ॥ १० ॥

कर्ण शोभिष्यसे नूनं पञ्चभिर्भ्रातृभिर्वृतः ।

देवैः परिवृतो ब्रह्मा वेद्यामिव महाध्वरे ॥ ११ ॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैर्ज्यैष्ठः श्रेष्ठेषु बन्धुषु ।

सूतपुत्रेति सा शब्दः पार्थस्त्वमसि वीर्यवान् ॥ १२ ॥ [४८००]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततः सूर्यान्निश्चरितां कर्णः शुश्राव भारतीम् ।

सन्तोषको पूर्ण करनेहीको धर्मका फल निश्चय किया है। इससे गर्भ धारण करनेवाली माताको प्रसन्न करना ही तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य है। पहिले अर्जुन की भुजासे उपार्जन की हुई राजलक्ष्मी जो दुष्टोंके द्वारा हरण की गई है, तुम युधिष्ठिरकी वह राजलक्ष्मी धृतराष्ट्रपुत्रोंसे बलपूर्वक छीनकर स्वयं भोग करो। (६-८)

कौरव लोग आज कर्ण अर्जुनका समागम देखें। ये दुष्ट तथा पापमर लोग तुम लोगोंको भ्राता रूपसे मिलते हुए देखकर अवनति स्वीकार करें। लोकमें जैसे रामकृष्णका नाम एकत्र उच्चारण किया जाता है, वैसे ही कर्ण अर्जुनका नाम भी आजसे पृथ्वीमें विख्यात हो। अहा ! तुम लोगोंके एकत्र होनेपर इस

लोकमें ऐसा कौनसा कार्य है, जो पूर्ण न हो सकेगा ? हे कर्ण ! तुम पांच सहोदर भाइयोंसे युक्त होकर बड़े यज्ञकी वेदीमें देवतासे घिरे हुए साक्षात् ब्रह्माके समान राजसिंहासनपर शोभित होओगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। तुम सब गुणोंसे पूर्ण और मेरे सब पुत्रोंसे जेठे हो; इससे “सूतपुत्र” यह शब्द जिससे फिर कभी तुम्हारे ऊपर न प्रयोग किया जावे; तुम महा तेजस्वी पार्थ हो। (९-१२) [४८००]

उद्योगपर्वमें एकसौ छियालिस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ सैंतालीस अध्यायः ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर कर्णने सूर्यमण्डलसे निकली हुई एक स्नेहमयी आकाशवाणी सुनी, भगवान्

दुरत्ययां प्रणयिनीं पितृवद्भास्करेरिताम् ॥ १ ॥

सत्यमाह पृथा वाक्यं कर्णं मातृवचः कुरु ।

श्रेयस्ते स्यान्नरव्याघ्र सर्वमाचरतस्तथा ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच-एवमुक्तस्य मात्रा च स्वयं पित्रा च भानुना ।

चचाल नैव कर्णस्य मतिः सत्यधृतेस्तदा ॥ ३ ॥

कर्ण उवाच— न चैतच्छ्रद्धां वाक्यं क्षत्रिये भाषितं त्वया ।

धर्मद्वारं भूमैतत्स्यान्नियोगकरणं तव ॥ ४ ॥

अकरोन्मयि यत्पापं भवती सुमहात्ययम् ।

अपकीर्णोऽसि यन्मातस्तवशःकीर्तिनाशनम् ॥ ५ ॥

अहं चेत्क्षत्रियो जातो न प्राप्तः क्षत्रसत्क्रियाम् ।

त्वत्कृते किं नु पापीयः शत्रुः कुर्यान्ममाहितम् ॥ ६ ॥

क्रियाकाले त्वनुक्रोशमकृत्वा त्वमिमं मम

हीनसंस्कारसमयमद्य मां समचूचुदः ॥ ७ ॥

सूर्यने खुदही पुत्रप्रेमके वशमें होकर कल्याण करनेवाले शुभ वचन कहे थे । वह वचन यही है; “हे कर्ण ! कुन्तीने सत्य वचन कहा है, तुम सब शङ्काओं-को छोड़कर माताके इस वचनका पालन करो । हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! सब प्रकारसे कुन्तीके वचनके अनुसार कार्य करनेसे तुम्हारा अत्यन्त ही मङ्गल होगा।” १-२

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले माता कुन्तीदेवी और पिता सूर्यदेवके वचन सुनकर सत्य प्रतिज्ञा करने वाले वीर कर्ण की बुद्धि तनिक भी विचलित न हुई, उन्होंने माताको सम्बोधन करके कहा, कि हे क्षत्रियजननी ! तुमने जो कहा, कि “मेरी आज्ञाको पालन करना ही तुम्हारे धर्मका द्वारस्वरूप है;” इस वचन

पर मैं श्रद्धा नहीं कर सकता हूँ । हे माता ! जन्मते ही जो तुमने मुझे त्याग कर प्राणको नाश करने योग्य महा घोर बुरा और अधर्मका कार्य किया था उसीसे मेरा यश तथा कीर्ति आदि नष्ट होगये हैं । ( ३-५ )

यदि मैं क्षत्रियकुलहीमें उत्पन्न हुआ होऊँ तो भी तुम्हारे कारणसे क्षत्रियोंके योग्य मेरा कोई भी संस्कार नहीं होने पाया । इससे विचार करके देखो मेरा क्या कोई शत्रु तुमसे भी अधिक बुरा आचरण मेरे साथ कर सकता है ? कैसे आश्चर्यका विषय है, कि तुम दया करने के समयमें कुछ भी मेरे हितका कार्य न करके इस समयमें अपनी आज्ञा पालन करनेके निमित्त मुझे उपदेश

न वै मम हितं पूर्वं मातृवचेष्टितं त्वया ।  
 सा मां सम्बोधयस्यद्य केवलात्महितैषिणी ॥ ८ ॥  
 कृष्णेन सहितात्को वै न व्यथेत धनञ्जयात् ।  
 कोऽद्य भीतिं न मां विद्यात्पार्थानां समितिं गतम् ॥ ९ ॥  
 अत्राता विदितः पूर्वं युद्धकाले प्रकाशितः ।  
 पाण्डवान्यदि गच्छामि किं मां क्षत्रं वदिव्यति ॥ १० ॥  
 सर्वकामैः संविभक्तः पूजितश्च यथासुखम् ।  
 अहं वै धार्तराष्ट्राणां कुर्यां तदफलं कथम् ॥ ११ ॥  
 उपनह्य परैर्वैरं ये मां नित्यमुपासते ।  
 नमस्कुर्वन्ति च सदा वसवो वासवं यथा ॥ १२ ॥  
 मम प्राणेन ये शत्रून्शक्ताः प्रतिसमासितुम् ।  
 मन्यन्ते ते कथं तेषामहं छिन्त्यां मनोरथम् ॥ १३ ॥  
 मया ह्येन संग्रामं तितीर्षति दुरत्ययम् ।

करती हो । पहिले जब तुमने माताके  
 समान मेरा कोई भी हितका कार्य नहीं  
 किया था, तो इस समयमें निश्चय यही  
 बोध होता है, कि तुम केवल अपने कल्या-  
 णकी इच्छासे ही इस अवसरमें मुझको पुत्र  
 कहके सम्बोधन कर रही हो । (६-८)

कृष्णके मित्र अर्जुनसे कौन पुरुष  
 भयभीत नहीं हो सकता ? इससे पाण्ड-  
 वोंकी सभा तथा संग्राममें गमन कर-  
 नेसे कौन पुरुष मुझको भयभीत नहीं  
 समझेगा ? पहिले मैं उन लोगोंका  
 आता कहके प्रसिद्ध नहीं था, इस सम-  
 यमें युद्धका अवसर आनेपर यदि पाण्ड-  
 वोंका पक्ष अवलम्बन करूंगा, तो यह  
 सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी मण्डली मुझको क्या  
 कहेगी ? विशेष करके जिसमें मुझे सुख

मिले, ऐसा सब प्रकारका भोग और  
 भोजनकी वस्तुओंसे धृतराष्ट्र-पुत्रोंने  
 आजतक मेरा अत्यन्त ही सत्कार किया  
 है; उसको मैं इस समय कैसे निष्फल  
 कर सकता हूँ ? (९-११)

शत्रुओंके सङ्ग वैर करके जो लोग  
 सदा ही मेरी उपासना किया करते हैं;  
 और बन्धु बान्धव लोग जैसे इन्द्रको  
 प्रणाम करते हैं, वैसे ही वे लोग मेरे  
 सम्मुख विनीतभाव अवलम्बन किये रहते  
 हैं, जो लोग मेरे प्राणके सहारेसे शत्रु-  
 ओंके जीतनेकी अभिलाषा करते हैं,  
 उन लोगोंका वह मनोरथ मैं किस  
 प्रकारसे विफल कर सकता हूँ ? महा  
 घोर युद्धरूपी समुद्रमें जो लोग मुझे  
 नौका स्वरूप समझकर उससे पार होने-

अपारे पारकामा ये त्यजेयं तानहं कथम् ॥ १४  
 अयं हि कालः सम्प्राप्तो धार्तराष्ट्रोपजीविनाम् ।  
 विर्वेष्टन्यं मया तत्र प्राणानपरिरक्षता ॥ १५ ॥  
 कृतार्थाः सुभृता ये हि कृत्यकाले ह्युपस्थिते ।  
 अनवेक्ष्य कृतं पापा विकुर्वन्त्यनवस्थिताः ॥ १६ ॥  
 राजकिल्बिषिणां तेषां भर्तृपिण्डापहारिणाम् ।  
 नैवाऽयं न परो लोको विद्यते पापकर्मणाम् ॥ १७ ॥  
 धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामर्थे योत्स्यामि ते सुतैः ।  
 बलं च शक्तिं चाऽऽस्थाय न वै त्वय्यनुतं वदे ॥ १८ ॥  
 आनृशंस्यमथो वृत्तं रक्षन्सत्पुरुषोचितम् ।  
 अतोऽर्थकरमप्येतन्न करोम्यद्य ते वचः ॥ १९ ॥  
 न च तेऽयं समारम्भो मयि भोगो भविष्यति ।  
 वध्यान्विषह्यान्संग्रामे न हनिष्यामि ते सुतान् ॥ २० ॥  
 युधिष्ठिरं च भीमं च यमौ चैवाऽर्जुनादृते ।

की इच्छा करते हैं, इस समयमें क्या  
 कहके मैं उन लोगोंको त्याग सकता  
 हूं ? ( १२-१४ )

जो लोग दुर्योधनके उपजीवी हैं,  
 उनके कर्त्तव्य कर्मका यही यथार्थ समय  
 उपस्थित हुआ है । इससे इस अवसरमें  
 मैं अपने प्राणकी आशाको छोड़ करके  
 अवश्य उसके उपकारके पलट्टेमें युद्ध  
 करूंगा । जो सब अधम पुरुष सदा  
 स्वामीके समीपमें अन्न वस्त्र पाकर  
 कार्यके समयमें अनायास ही उसको  
 छोड़कर चले जाते हैं, उन स्वामीके  
 पिण्डको हरण करनेवाले कृतघ्न महा  
 पापियोंके निमित्त यह लोक और पर-  
 लोक कुछ भी नहीं रह सकता । १५-१७

हे मातः ! तुमसे मिथ्या बोलनेकी  
 क्या आवश्यकता है, मैं धृतराष्ट्रपुत्रोंके  
 निमित्त सम्पूर्ण बल और शक्तिको  
 प्रकाशित करके अवश्य तुम्हारे पुत्रोंके  
 सङ्ग युद्ध करूंगा । दया, धर्म और  
 सत्पुरुषोंके पवित्र चरित्रकी अवश्यही  
 मुझको रक्षा करनी पड़ेगी । इससे यथार्थ  
 हितकारी होनेपर भी इस समयमें मैं  
 तुम्हारी बातोंका किसी प्रकारसे भी  
 पालन नहीं कर सकता हूं । १८-१९

तब मुझसे जो तुमने इतना अनुरोध  
 किया है, वह भी निष्फल न होगा, मैं  
 युद्धमें प्रवृत्त होकर केवल अर्जुनके अति  
 रिक्त तुम्हारे युधिष्ठिर, भीम, नकुल,  
 सहदेव चार पुत्रोंके नाश करनेके निमित्त

अर्जुनेन समं युद्धमपि यौधिष्ठिरे बले ॥ २१ ॥

अर्जुनं हि निहत्याऽऽजौ सम्प्राप्तं स्यात्फलं मया ।

यशसा चापि युज्येयं निहतः सव्यसाचिना ॥ २२ ॥

न ते जातु न शिष्यन्ति पुत्राः पञ्च यशस्विनि ।

निरर्जुनाः सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि ॥ २३ ॥

इति कर्णवचः श्रुत्वा कुन्ती दुःखात्प्रवेपती ।

उवाच पुत्रमाश्लिष्य कर्ण धैर्यादकम्पनम् ॥ २४ ॥

एवं वै भाव्यमेतेन क्षयं यात्यन्ति कौरवाः ।

यथा त्वं भाषसे कर्ण दैवं तु बलवत्तरम् ॥ २५ ॥

त्वया चतुर्णां भ्रातॄणामभयं शत्रुकर्शन ।

दत्तं तत्प्रतिजानीहि सङ्गरप्रतिमोचनम् ॥ २६ ॥

अनामयं स्वस्ति चेति पृथाऽथो कर्णमब्रवीत् ।

तां कर्णोऽथ तथेत्युक्त्वा ततस्तौ जग्मतुः पृथक् ॥ २७ ॥ ४८२७

इति श्रीमहाभारते० भगवद्गीतापर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

कभी यत्न न करूंगा । मैं तुम्हारे निक-  
टमें यह प्रतिज्ञा करके सत्य सकता हूँ,  
कि संग्राममें युधिष्ठिर आदि युद्ध करने  
योग्य तथा वध्य होनेपर भी मैं कभी  
उनके नाश करनेका उपाय न करूंगा ।  
युधिष्ठिरकी सेनामें केवल अर्जुनके सङ्ग  
मेरा युद्ध होगा; क्योंकि युद्धमें अर्जुन-  
को मारनेहीसे यथेष्ट फल लाभ करूंगा  
अथवा उसके हाथसे मरकर यशसे युक्त  
होके स्वर्ग लोकमें जाऊंगा । हे यश-  
स्विनि ! तुम्हारे पांच पुत्रोंका कभी  
नाश न होगा, क्योंकि अर्जुनके मरनेसे  
कर्णको लेकर तुम्हारे पांच पुत्र रहेंगे;  
और मेरे मरनेसे अर्जुनके सहित वही  
च पुत्र रहेंगे । ( २०—२३ )

कर्णके इस वचनको सुनकर कुन्ती  
दुःख और शोकसे कांपती हुई उस  
अत्यन्त धैर्यशाली महावीर पुरुषको  
आलिङ्गन करके यह वचन बोली, ' हे  
पुत्र ! तुम जो बोलते हो, वही सम्भव  
तथा सत्य बोध होता है; इस उपस्थित  
युद्धमें कौरव लोगोंका नाश होजावेगा  
क्या किया जावे ? दैवका बल सबसे  
प्रबल है । हे शत्रु नाशन ! तुमने जो  
युधिष्ठिर आदि चारों भाइयोंको अभय  
दान किया है, तुम्हारी यह प्रतिज्ञा  
जिसमें पूर्ण रीतिसे सत्य होवे । ' अनन्तर  
कुन्ती कर्णसे यह वचन बोली, हे  
पुत्र ! तुम्हारा कल्याण होवे, तुम रोग  
रहित होकर कुशलसे रहो । कर्णने भी

वैशम्पायन उवाच-आगम्य हास्तिनपुरादुपप्लव्यमरिन्दमः ।

पाण्डवानां यथावृत्तं केशवः सर्वमुक्तवान् ॥ १ ॥

सम्भाष्य सुचिरं कालं मन्त्रयित्वा पुनः पुनः ।

स्वमेव भवनं शौरिर्विश्रामार्थं जगाम ह ॥ २ ॥

विभ्रज्य सर्वानृपतीन्विराटप्रमुखांस्तदा ।

पाण्डवा आतरः पञ्च भानावस्तं गते सति ॥ ३ ॥

सन्ध्यामुपास्य ध्यायन्तस्तमेव गतमानसाः ।

आनाय्य कृष्णं दाशार्हं पुनर्मन्त्रममन्त्रयन् ॥ ४ ॥

युधिष्ठिर उवाच- त्वया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः ।

किमुक्तः पुण्डरीकाक्ष तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ५ ॥

वासुदेव उवाच-मया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः ।

तथ्यं पथ्यं हितं चोक्तो न च गृह्णाति दुर्मतिः ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर उवाच- तस्मिन्नुत्पथमापन्ने कुरुवृद्धः पितामहः ।

शिर झुकाकर उनको प्रणाम किया और कहा "जो तुम्हारी आज्ञा वही होगा।"

इसके अनन्तर दोनों अपने अपने स्थानपर चले गये । (२४-२७) [४८-५७]

उद्योगपर्वमें एकसौ छियालिस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ सैंतालिस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इधर शत्रुनाशन कृष्णने हस्तिनापुरसे विराटके उपप्लव्य नगरमें पहुँच पाण्डवोंके समीप कौरवोंका सम्पूर्ण वृत्तान्त आदिसे अन्त तक वर्णन किया । बहुत समयतक बात चीत और विचारकरके अन्तमें विश्राम करनेके निमित्त अपने निवास भवनमें गमन किया । अनन्तर भगवान् सूर्यके अस्ताचल पर्वतके शिखर पर जानेके अनन्तर पाण्डव लोग पाँचों भाई विरा-

ट आदि राजाओंको विदा करके संध्या-पासना करनेपर कृष्णके वचन सुननेकी अभिलाषासे शीघ्रही उन्हें अपने समीपमें बुलाकर फिर विचार करने लगे । (१-४)

युधिष्ठिर बोले, हे पुण्डरीकाक्ष ! हस्तिनापुरमें जाकर क्या क्या वचन कहे थे, वह विशेष रूपसे मेरे निकट वर्णन करो । (५)

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, मैं हस्तिनापुरमें जाकर जो उत्तम, पथ्य और हितकारी वचन थे, उसे ही कहा था; परन्तु नीचबुद्धि दुर्योधनने किसी प्रकारसे भी मेरे वचनोंको ग्रहण नहीं किया । (६)

राजा युधिष्ठिरने पूछा, हे हृषीकेश जनार्दन ! दुर्योधनके नीच मार्ग अवलम्बन करनेपर कौरवोंमें बृद्ध पितामह

किमुक्तवान्हृषीकेश दुर्योधनममर्षणम् ॥ ७ ॥

आचार्यो वा महाभाग भारद्वाजः किमब्रवीत् ।

पिता वा धृतराष्ट्रस्तं गान्धारी वा किमब्रवीत् ॥ ८ ॥

पिता यवीयानस्माकं क्षत्ता धर्मविदां वरः ।

पुत्रशोकाभिसन्तप्तः किमाह धृतराष्ट्रजम् ॥ ९ ॥

किं च सर्वे नृपतयः सभायां ये समासते ।

उक्तवन्तो यथातत्त्वं तद् ब्रूहि त्वं जनार्दन ॥ १० ॥

उक्तवान्हि भवान्सर्वं वचनं कुरुमुख्ययोः ।

धार्तराष्ट्रस्य तेषां हि वचनं कुरुसंसदि ॥ ११ ॥

कामलोभाभिभूतस्य मन्दस्य प्राज्ञमानिनः ।

अप्रियं हृदये मद्यं तन्न तिष्ठति केशव ॥ १२ ॥

तेषां वाक्यानि गोविन्द श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो ।

यथा च नाऽभिपद्येत कालस्तात तथा कुरु ॥

भवान्हि नो गतिः कृष्ण भवान्नाथो भवान्गुरुः ॥ १३ ॥

वासुदेव उवाच—शृणु राजन्यथा वाक्यमुक्तो राजा सुयोधनः ।

मध्ये कुरूणां राजेन्द्र सभायां तन्निबोध मे ॥ १४ ॥

मया विश्राविते वाक्ये जहास धृतराष्ट्रजः ।

भीष्मने क्या कहा था ? भरद्वाजनन्दन महात्मा द्रोणाचार्य, पिता धृतराष्ट्र तथा माता गान्धारीने क्या कहा था ? धर्मात्मा विदुर जो सदा ही हम लोगोंके शोक और दुःखसे व्याकुल रहते हैं, उन्होंने दुर्योधनके निमित्त क्या वचन कहा था ? और सभामें बैठे हुए सब राजाओंने कैसे वचन कहे थे ? (७-१०)

हे कृष्ण ! कौरवोंमें श्रेष्ठ भीष्म, धृतराष्ट्र तथा दूसरे सभासदोंने जो नीचबुद्धि लोभी दुर्योधनसे उसके हितके निमित्त अप्रिय वचनोंको कहा था, वह

सब तुमने मुझसे कहा परन्तु वह सब यथार्थ रूपसे मेरे हृदयङ्गम नहीं हुए हैं, इससे फिर उनलोगोंके वचनोंके सुननेकी मुझे अभिलाषा है । हे गोविन्द ! जिसमें योग्य समय बीत न जावे, तुम उसका विधान करो । हे तात ! हे कृष्ण ! तुम एक मात्र हम लोगोंकी गति, प्रभु और गुरु-स्वरूप हो । ११-१३

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे राजेन्द्र ! कौरवोंकी सभामें राजा दुर्योधनसे जैसा वचन कहा गया था, उसे मैं वर्णन करता हूं, तुम चित्त लगाकर सुनो ।



अथ भीष्मः सुसंकुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥  
 दुर्योधन निबोधेदं कुलार्थं यद्वर्षामि ते ।  
 तच्छ्रुत्वा राजशार्दूल स्वकुलस्य हितं कुरु ॥ १६ ॥  
 मम तात पिता राजञ्शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।  
 तस्याऽहमेक एवाऽसं पुत्रः पुत्रवतां वरः ॥ १७ ॥  
 तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना द्वितीयः स्यात्कथं सुतः ।  
 एकपुत्रमपुत्रं वै प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १८ ॥  
 न चोच्छेदं कुलं यायाद्विस्तीर्यैव कथं यशः ।  
 तस्याऽहमीप्सितं बुध्वा कालीं मातरमावहम् ॥ १९ ॥  
 प्रतिज्ञां दुष्करां कृत्वा पितुरर्थं कुलस्य च ।  
 अराजा चोर्ध्वरेताश्च यथा सुविदितं तव ॥  
 प्रतीतो निवसास्येष प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ २० ॥  
 तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रीमान्कुरुकुलोद्वहः ।

मेरा जो कुछ वक्तव्य था, उसके सुना-  
 नेपर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन हंसने लगा,  
 इससे भीष्म अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर  
 उससे कहने लगे । हे दुर्योधन ! कुलकी  
 रक्षाके निमित्त मैं जो तुमसे यह वचन  
 कहता हूँ, उसको अच्छी प्रकारसे हृदयमें  
 धारण करो । (१४-१६)

हे राजशार्दूल ! उसे सुनकर अपने  
 कुलके हित साधनके निमित्त यत्न करो ।  
 हे तात ! मेरे पिता शान्तनु लोकमें  
 विख्यात थे; पहिले मैं ही उनके एक  
 मात्र पुत्र था । पण्डित लोग एक पुत्रको  
 पुत्र ही नहीं गिनते; इससे और एक पुत्र  
 उत्पन्न करनेके निमित्त पिताको बहुत  
 ही अभिलाषा हुई । कैसे मेरा कुल  
 बढेगा, किस प्रकारसे यश स्थिर रहेगा,

इसी प्रकारकी उन्हें चिन्ता हुई । पिता-  
 के मनोरथको जानकर मैंने व्यासदेवकी  
 साता योजनगन्धाके सङ्ग पिताका  
 विवाह कराया । कुल-रक्षा और पिताके  
 मनोरथको पूर्ण करनेके निमित्त मैंने  
 कठिन प्रतिज्ञा करके इस कार्यको सिद्ध  
 किया था । उसी प्रतिज्ञाके कारणसे मैं  
 राजा नहीं हो सका और सदासे ब्रह्म-  
 चर्य व्रत अवलम्बन किये हुए रहता हूँ;  
 वह तुम लोगोंको भली भाँतिसे विदित  
 है । मैंने राज्यपदको नहीं पाया, इसके  
 निमित्त कभी भी मुझे विषाद तथा  
 दुःख नहीं हुआ । अपनी प्रतिज्ञाको  
 पूर्ण करनेसे मैं हृष्ट पुष्ट और सन्तुष्ट  
 चित्तसे जीवन धारण करता हूँ । (१७-२०)

हे राजन् ! समयके अनुसार इस

विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कनीयान्मम पार्थिव ॥ २१ ॥

स्वर्ग्यतेऽहं पितरि तं स्वराज्ये सन्यवेशयम् ।

विचित्रवीर्यं राजानं भृत्यो भूत्वा ह्यधश्चरः ॥ २२ ॥

तस्याऽहं सदृशान्दारान्राजेन्द्र समुपाहरम् ।

जित्वा पार्थिवसङ्घातमपि ते बहुशः श्रुतम् ॥ २३ ॥

ततो रामेण समरे द्वन्द्वयुद्धमुपागमम् ।

स हि रामभयादेभिर्नागरैर्विप्रवासितः ॥ २४ ॥

दारेष्वप्यतिसक्तश्च यक्षमाणं सम्पद्यत ।

यदा त्वराजके राष्ट्रे न बवर्ष सुरेश्वरः ॥

तदाऽभ्यधावन्मामेव प्रजाः क्षुद्रयपीडिताः ॥ २५ ॥

प्रजा ऊचुः— उपक्षीणाः प्रजाः सर्वा राजा भव भवाय नः ।

ईतीः प्रणुद भद्रं ते शान्तनोः कुलवर्धन ॥ २६ ॥

पीड्यन्ते ते प्रजाः सर्वा व्याधिभिर्भृशदारुणैः ।

सत्यवती माताके गर्भसे कुरुकुल-धुरन्धर धर्मात्मा महाबाहु विचित्रवीर्यका जन्म हुआ । पिताके स्वर्ग लोकमें जानेके अनन्तर मैंने अपने छोटे भाईको लक्ष्मी-से युक्त अपने राज्यपर अभिषेक किया । विचित्रवीर्य राजा हुए और मैं उनका अनुजीवी होकर राज्यकी रक्षा करता रहता था । हे राजन् ! विवाहका समय उपस्थित होनेपर मैंने योग्य कन्याके सङ्ग उनका विवाह किया । उस विवाह-के विषयमें मैंने जो अनेक राजाओंको पराजित किया था; उसे तुमने कई बार सुना है । (२१-२३)

अनन्तर जब मैं परशुरामके साथ द्वन्द्व युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ था, तब सब प्रजा भयसे विकल होकर विचित्रवीर्य

को दूसरे स्थानमें ले गई । वह बुद्धिहीन आता स्त्रीके सङ्गमें अत्यन्त ही आसक्त होकर यक्षमा रोगसे मर गया । इस प्रकारसे कुरुराज्य राजासे रहित होने पर इन्द्र जल वर्षा करनेसे विरत हुए; तब सम्पूर्ण प्रजा भय और क्षुधासे पीडित होकर मेरे निकट आई । (२४-२५)

सब प्रजा इकट्ठी होकर मुझे यह वचन कहने लगी, “हे शान्तनु-नन्दन भीष्म ! राज्यके राजासे रहित होनेके कारण तुम्हारी सम्पूर्ण प्रजा नष्ट-प्राय हो रही हैं; इससे हमलोगोंके कल्याणके निमित्त इस समय तुम राज्यके भारको ग्रहण करो ! तुम्हारे राज्यभारको ग्रहण करनेसे हम लोगोंका सङ्गल होगा और इन्द्र जलकी वर्षा करेंगे । हे गङ्गानन्दन !

अल्पावशिष्टा गाङ्गेय ताः परित्रातुमर्हसि ॥ २७ ॥  
 व्याधीन्प्रणुद वीर त्वं प्रजा धर्मेण पालय ।  
 त्वयि जीवति मा राष्ट्रं विनाशमुपगच्छतु ॥ २८ ॥  
 भीष्म उवाच— प्रजानां क्रोशतीनां वै नैवाऽक्षुभ्यत मे मनः ।  
 प्रतिज्ञां रक्षमाणस्य सदृत्तं स्मरतस्तथा ॥  
 ततः पौरा महाराज माता काली च मे शुभा ॥ २९ ॥  
 भृत्याः पुरोहिताचार्या ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ।  
 माम्बुधृशसन्तप्ता भव राजेति सन्ततम् ॥ ३० ॥  
 प्रतीपरक्षितं राष्ट्रं त्वां प्राप्य विनाशिष्यति ।  
 स त्वमस्मद्वितार्थं वै राजा भव महामते ॥ ३१ ॥  
 इत्युक्तः प्राञ्जलिभूत्वा दुःखितो भृशमातुरः ।  
 तेभ्यो न्यवेदयं तत्र प्रतिज्ञां पितृगौरवात् ॥ ३२ ॥

महाघोर विपदमें पडकर सम्पूर्ण प्रजा नष्ट हो रही है; जो सब पुरुष अबतक जीवित हैं उन्हीं के उबारनेके निमित्त आप राज्यके भारको ग्रहण कीजिये । हे पुरुषसिंह ! इस समय विना तुम्हारी कृपाके हम लोगोंकी रक्षा नहीं हो सकती । इससे सब प्रजाके ऊपर कृपा कर तुम राज्य ग्रहण करके प्रजाका पालन करो, तुम्हारे जीवित रहते ही जिसमें सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रजाका नाश न हो जावे ।” ( २६-२८ )

प्रजा लोगोंसे इस प्रकारके अनेक दीन वचनको सुनने पर भी मेरा स्थिर चित्त तनिक भी विचलित नहीं हुआ, साधुपुरुषोंके चरित और सदाचारको स्मरण करके मैं अपनी पहिली प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेहीमें तत्पर रहा । तब सम्पूर्ण

पुरवासी और मेरी सौतेली माता सत्यवती, सेवक, पुरोहित और सब शास्त्रोंके जानने वाले ब्राह्मण लोग भी अत्यन्त दुःखित होके मुझको राज्यपद ग्रहण करनेके निमित्त बहुत ही अनुरोध करने लगे । हे महाबुद्धिमान् ! हम लोगोंके हितके निमित्त तुम राजसिंहासन पर बैठो । तुम्हारे विद्यमान रहने पर भी तुम्हारे पितामह प्रतीप महाराजके रक्षित इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यका विनाश हो रहा है, यह बहुत ही दुःख का विषय है । ( २८-३१ )

उन लोगोंके इस वचनको सुनकर मैंने अत्यन्त दुःखित और शोकित होके हाथ जोडकर उनसे निवेदन किया; मैंने पिताके गौरव और कुलकी रक्षाके निमित्त राज्य-रहित होकर ब्रह्मचर्यव्रत

ऊर्ध्वरेता ह्यराजा च कुलस्याऽर्थे पुनः पुनः ।  
 विशेषतस्त्वदर्थं च धुरि मा मां नियोजय ॥ ३३ ॥  
 ततोऽहं प्राञ्जलिर्भूत्वा मातरं सम्प्रसादयम् ।  
 नाऽम्ब शान्तनुना जातः कौरवं वंशमुद्रहन् ॥ ३४ ॥  
 प्रतिज्ञां वितथां कुर्यामिति राजन्पुनः पुनः ।  
 विशेषतस्त्वदर्थं च प्रतिज्ञां कृतवानहम् ॥ ३५ ॥  
 अहं प्रेक्ष्यश्च दासश्च तवाऽयं सुतवत्सले ।  
 एवं तामनुनीयाऽहं मातरं जनमेव च ॥ ३६ ॥  
 अयाचं भ्रातृदारेषु तदा व्यासं महामुनिम् ।  
 सह मात्रा महाराज प्रसाद्य तमृषिं तदा ॥ ३७ ॥  
 अपत्यार्थं महाराज प्रसादं कृतवांश्च सः ।  
 त्रीन्स पुत्रानजनयत्तदा भरतसत्तम ॥ ३८ ॥  
 अन्धः करणहीनत्वाञ्च वै राजा पिता तव ।  
 राजा तु पाण्डुरभवन्महात्मा लोकविश्रुतः ॥ ३९ ॥

करनेकी प्रतिज्ञा की है; इससे अब इस समयमें राज्यके भारको कैसे ग्रहण कर सकता हूं ? साधारणरूपसे सबसे ऐसा वचन कहके माताको भी यह वचन कहके शान्त किया;—“हे माता ! मैं तुम्हारे ही कारणसे इस प्रतिज्ञा पाशमें बंधा हुआ हूं, इससे तुम मुझे अब राज्य भारको ग्रहण करनेकी आज्ञा मत करो। हे माता ! कुरुवंशमें विशेष करके शान्तनुके वीर्यसे उत्पन्न होकर मैं किस प्रकारसे अपनी प्रतिज्ञाका भङ्ग कर सकता हूं ? केवल तुम्हारे ही निमित्त जब मैंने ऐसी प्रतिज्ञा की है; तब तुम ही अब किस प्रकारसे उस प्रतिज्ञाको तोड़नेकी आज्ञा दे रही हो ? हे माता !

इससे तुम्हारा उपजीवी तथा सेवक होकर भी मैं इस आज्ञाको किसी भांतिसे नहीं पालन कर सकूंगा । (३२-३६)

हे राजन् ! मैं माता और पुरवासी-योंसे ऐसी विनंती करके अन्तमें भ्रातृ-जायाके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करनेके नि-मित्त महामुनि व्यासदेवसे प्रार्थना की; उसके निमित्त माताने भी उनसे बहुत अनुरोध किया था । हे भरत सत्तम ! व्यासदेवने हमलोगोंकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर तीन पुत्र उत्पन्न किये । उनमेंसे तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र अन्धे उत्पन्न हुए थे; इससे जेठे पुत्र होकर भी इन्द्रिय-विकारके कारण राजा न होसके । सब लोकोंमें विख्यात महात्मा पाण्डु राजा

स राजा तस्य ते पुत्राः पितुर्दायाद्यहारिणः ।

मा तात कलहं कार्षी राज्यस्याऽर्थं प्रदीयताम् ॥४०॥

मयि जीवति राज्यं कः सम्प्राशासेत्पुमानिह ।

माऽवमंस्था वचो मह्यं शममिच्छामि वः सदा ॥४१॥

न विशेषोऽस्ति मे पुत्र त्वयि तेषु च पार्थिव ।

मतमेतत्पितुस्तुभ्यं गान्धार्या विदुरस्य च ॥ ४२ ॥

श्रोतव्यं खलु वृद्धानां नाऽभिशाङ्कीर्ष्यो मम ।

नाशयिष्यसि मा सर्वमात्मानं पृथिवीं तथा ॥४३॥[४८७०]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि भगवद्वाक्ये सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७॥

वासुदेव उवाच— भीष्मेणोक्ते ततो द्रोणो दुर्योधनसभाषत ।

मध्ये नृपाणां भद्रं ते वचनं वचनक्षमः ॥ १ ॥

प्रातीपः शान्तनुस्तात कुलस्याऽर्थे यथा स्थितः ।

यथा देवव्रतो भीष्मः कुलस्याऽर्थे स्थितोऽभवत् ॥ २॥

हुए थे । वह जब राजा हुए थे, तब उनके पुत्र अवश्य ही उस राज्यके पानेके अधिकारी हैं । हे पुत्र ! इससे तुम निरर्थक झगडा मत बढाओ; राज्यका आधा भाग पाण्डवोंको अवश्य प्रदान करो । ( ३७-४० )

विचाकर देखो तो सही, मेरे जीवित रहते कौन पुरुष राज्यपदके ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है ? इससे तुम मेरे वचन मत टालो । मैं सदा तुम लोगोंमें केवल शान्तिकी इच्छा करता हूँ । तुममें और पाण्डवोंमें मेरी समान ही प्रीति है । मैंने तुमसे जैसा वचन कहा है, तुम्हारे माता पिता और विदुर का भी वही मत है । हे तात ! बूढ़ोंके वचनको अवश्य सुनना और मानना

चाहिये, इससे तुम मेरे इन वचनोंमें कुछ भी शङ्का न करके अपने और इस सम्पूर्ण पृथ्वीके कल्याण-साधनके निमित्त यत्न करो; निरर्थक सबके नाश करनेमें प्रवृत्त होना किसी प्रकारसे उचित नहीं है । ( ४१-४३ ) [४८७०]

उद्योगपर्वमें एकसौ सैंतालिस अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ अठतालिस अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्मके ऊपर कहे हुए वचनोंके समाप्त होनेपर बुद्धिमान् द्रोणाचार्य भी दुर्योधनको सम्बोधन करके सब राजाओंके सम्मुख ही उससे यह वचन बोले । हे तात ! प्रतीपनन्दन शान्तनु जैसे कुलकी रक्षामें लगे हुए थे और उनके पुत्र देवव्रत भीष्मने कुल-रक्षके निमित्त जैसे प्रतिज्ञा

तथा पाण्डुर्नरपतिः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।  
 राजा कुरूणां धर्मात्मा सुव्रतः सुसमाहितः ॥ ३ ॥  
 ज्येष्ठाय राज्यमददधृतराष्ट्राय धीमते ।  
 यवीयसे तथा क्षत्रे कुरूणां वंशवर्धनः ॥ ४ ॥  
 ततः सिंहासने राजन्स्थापयित्वैनमच्युतम् ।  
 वनं जगाम कौरव्यो भार्याभ्यां सहितो नृपः ॥ ५ ॥  
 नीचैः स्थित्वा तु विदुर उपास्ते स्म विनीतवत् ।  
 प्रेष्यवत्पुरुषव्याघ्रो बालव्यजनमुत्क्षिपन् ॥ ६ ॥  
 ततः सर्वाः प्रजास्तात धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।  
 अन्वपद्यन्त विधिवद्यथा पाण्डुं जनाधिपम् ॥ ७ ॥  
 विसृज्य धृतराष्ट्राय राज्यं स विदुराय च ।  
 चचार पृथिवीं पाण्डुः सर्वा परपुरञ्जयः ॥ ८ ॥  
 कोशसंवन्ने दाने भृत्यानां चाऽन्ववेक्षणे ।  
 भरणे चैव सर्वस्य विदुरः सत्यसङ्गरः ॥ ९ ॥  
 सन्धिविग्रहसंयुक्तो राज्ञां संवाहनक्रियाः ।  
 अवैक्षत महातेजा भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ १० ॥

करके उसका निर्वाह किया है; वैसे ही सत्यवादी धर्मात्मा पाण्डु राजा भी कुरुकुलमें धर्म-धुरन्धर थे, वह समाधि-निष्ठ सत्यव्रतसे युक्त धर्मात्मा कुलको बढाने वाले पाण्डु स्वयं राजा होनेपर भी अपने जेठे भाई धृतराष्ट्र और छोटे भाई विदुरको अपना राज्याधिकार समर्पण किया था । (१-४)

कुरुश्रेष्ठ राजा पाण्डु धृतराष्ट्रको सिंहासन पर बैठाकर अपनी दोनों रानियों के सङ्ग वनको चले गये थे । तब पुरुषसिंह विदुर अपनी स्वाभाविक सरलतासे धृतराष्ट्रके समीप खड़े होकर

सेवककी भांति हाथमें चंवर लेकर उनकी उपासना करने लगे; और सम्पूर्ण प्रजा राजा पाण्डुकी भांति नियमके अनुसार उनका सम्मान करने लगी । पराये देशको जीतनेवाले पाण्डुराज धृतराष्ट्र और विदुरके हाथमें राज्यका भार समर्पण करके सम्पूर्ण पृथ्वीमें घूमने लगे; उसके अनन्तर सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले विदुर खजानेका सञ्जय करने, दान देने और सेवकोंका प्रतिपालन करनेमें नियुक्त हुए । (५-९)

और शत्रुनाशन महा तेजस्वी भीष्म सन्धि-विग्रह आदि कार्योंको देखने

सिंहासनस्थो धृतराष्ट्रो महाबलः ।

अन्वास्यमानः सततं विदुरेण महात्मना ॥ ११ ॥

कथं तस्य कुले जातः कुलभेदं व्यवस्यसि ।

सम्भूय भ्रातृभिः सार्धं भुंक्ष्व भोगाञ्जनाधिप ॥ १२ ॥

ब्रवीम्यहं न कार्पण्यान्नाऽर्थहेतोः कथञ्चन ।

भीष्मेण दत्तामिच्छामि न त्वया राजसत्तम ॥ १३ ॥

नाऽहं त्वत्तोऽभिकांक्षिष्ये वृत्युपायं जनाधिप ।

यतो भीष्मस्ततो द्रोणो यद्भीष्मस्त्वाह तत्कुरु ॥ १४ ॥

दीयतां पाण्डुपुत्रेभ्यो राज्यार्धमरिकर्शन ।

समसाचार्यकं तात तव तेषां च मे सदा ॥ १५ ॥

अश्वत्थामा यथा मद्यं तथा श्वेतहयो मम ।

बहुना किं प्रलापेन यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १६ ॥

वासुदेव उवाच- एवमुक्ते महाराज द्रोणेनाऽभिततेजसा ।

और विचारने लगे । महाबलसे युक्त राजा धृतराष्ट्रके सिंहापर बैठनेपर महात्मा विदुर सदा उनके समीप उपास्थित रहते थे । हे प्रजानाथ ! इससे तुम इसी धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न होकर क्यों कुलके नाश करनेमें प्रवृत्त हो रहे हो, ऐसी नीच प्रवृत्ति त्यागकर तुम भाइयों के सङ्ग मिलके उत्तम राज्यके भोगोंका भोग करो । ( १०-१२ )

हे राजसत्तम ! युद्धसे डरके अथवा धनके लोभमें पडके मैं तुमसे यह वचन नहीं कहता हूं । मैं भीष्मके दिये हुए अन्नका भोगकर रहा हूं, तुम्हारे दिये हुए अन्नका नहीं । हे राजन् ! तुम्हारे समीप जीवनके निमित्त अन्न ग्रहण करनेकी मेरी कभी भी अभिलाषा न

होगी । हे शत्रुनाशन ! तुम यह निश्चय समझ रखो भीष्म जिस ओर रहेंगे; मैं भी उसी ओर रहूंगा । इससे यदि मेरा मत ग्रहण करनेकी तुम्हें इच्छा होवे, तो भीष्म जैसा कहते हैं, तुम वैसा ही कार्य करो; पाण्डु-पुत्रोंको राज्यका आधा भाग दे डालो । हे तात ! मैंने तुम्हारे और उन लोगोंके आचार्यका कार्य समान ही किया है; इससे दोनों ओर मेरी समान ही प्रीति है । मुझे अश्वत्थामा जैसा प्रिय है, अर्जुन भी वैसा ही प्यारा है । इससे अधिक बातोंके कहनेकी क्या आवश्यकता है; जहांपर धर्म रहता है, वहींपर जय होती है । ( १३-१६ )

श्रीकृष्ण बोले, महा तेजस्वी द्रोणा-

व्याजहार ततो वाक्यं विदुरः सत्यसङ्गरः ।

पितुर्वदनमन्वीक्ष्य परिवृत्य च धर्मवित् ॥ १७ ॥

विदुर उवाच — देवव्रत निबोधेदं वचनं मम भाषतः ।

प्रनष्टः कौरवो वंशस्त्वयाऽयं पुनरुद्धृतः ॥ १८ ॥

तन्मे विलपमानस्य वचनं समुपेक्ष्यसे ।

कोऽयं दुर्योधनो नाम कुलेऽस्मिन्कुलपांसनः ॥ १९ ॥

यस्य लोभाभिभूतस्य मतिं समनुवर्तसे ।

अनार्यस्याऽकृतज्ञस्य लोभेन हृतचेतसः ॥ २० ॥

अतिक्रामति यः शास्त्रं पितुर्धर्मार्थदर्शिनः ।

एते नश्यन्ति कुरवो दुर्योधनकृतेन वै ॥ २१ ॥

यथा ते न प्रणश्येयुर्महाराज तथा कुरु ।

मां चैव धृतराष्ट्रं च पूर्वमेव महामते ॥ २२ ॥

चित्रकार इवाऽऽलेख्यं कृत्वा स्थापितवानसि ।

प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा यथा संहरते तथा ॥ २३ ॥

चार्यके वचन समाप्त होनेपर सत्यवादी सब धर्मोंके जाननेवाले बुद्धिमान् विदुर शान्तनुनन्दन भीष्मका मुंह देखकर यह वचन कहने लगे । हे देवव्रती भीष्म ! मैं जो कुछ कहता हूं, उसे एक बार तुम एकाग्र चित्तसे सुनो । तुमने जो इस नष्टप्राय कौरवकुलका फिरसे उद्धार किया है; उसी निमित्त क्या हम लोगोंके बारबार विलाप और आर्त्तनादपर उपेक्षा कर रहे हो ? निष्कलङ्क कुरुकुलमें यह दोष लगानेवाला दुर्योधन कौन है ? ऐसा विनय-रहित पापी पुरुष कभी इस कुलके योग्य नहीं हो सकता । परन्तु क्या ही आश्चर्यका विषय है, तुम इस लोभी मूर्ख, दुष्ट

पुरुषकी बुद्धि फेर रहे हो । ( १७-२० )

जो अधम पुरुष धर्म अर्थ जाननेवाले पिताकी आज्ञाको उल्लंघन कर रहा है; उसके कर्मसे जो यह सम्पूर्ण कौरवोंके कुलका नाश होवेगा, इसमें क्या सन्देह है ? हे महाराज ! जिसमें कुलका नाश न होवे, उसके निमित्त तुम अब भी सब भांतिसे उपाय करो । हे महाबुद्धिमान् ! तुमने मुझे, धृतराष्ट्र तथा और दूसरे पुरुषोंको चित्रकारने चित्रमें लिखे पुतलोंकी भांति कर रक्खा है । हे महाबाहो ! प्रजापति ब्रह्मा जैसे सृष्टिको रचकर फिर समयके अनुसार उसका संहार करते हैं, वैसा करना तुमको उचित नहीं है । ( २१-२३ )



नोपेक्षस्व महाबाहो पश्यमानः कुलक्षयम् ।

अथ तेऽद्य मतिर्नष्टा विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ २४ ॥

वनं गच्छ मया सार्धं धृतराष्ट्रेण चैव ह ।

बध्वा वा निकृतिप्रज्ञं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम् ॥ २५ ॥

शाधीदं राज्यमद्याऽऽशु पाण्डवैरभिरक्षितम् ।

प्रसीद राजशार्दूल विनाशो दृश्यते महान् ॥ २६ ॥

पाण्डवानां कुरूणां च राज्ञामभिततेजसाम् ।

विररामैवमुक्त्वा तु विदुरो दीनमानसः ।

प्रध्यायमानः स तदा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ २७ ॥

ततोऽथ राज्ञः सुबलस्य पुत्री धर्मार्थयुक्तं कुलनाशभीता ।

दुर्योधनं पापमतिं नृशंसं राज्ञां समक्षं सुतमाह कोपात् ॥ २८ ॥

ये पार्थिवा राजसभां प्रविष्टा ब्रह्मर्षयो ये च सभासदोऽन्ये ।

शृण्वन्तु वक्ष्यामि तवाऽपराधं पापस्य सामात्यपरिच्छदस्य ॥ २९ ॥

राज्यं कुरूणामनुपूर्वभोज्यं क्रमागतो नः कुलधर्म एषः ।

तुमने स्वयं जिस कुलकी रक्षा की है, अकस्मात् उसका नाश होता देखकर भी चुपचाप न बैठे रहो । अवश्य ही भावी संहारका समय उपस्थित हुआ जानकर यदि तुम्हारी बुद्धिमें भ्रम उपस्थित होता हो, तो तुम मुझे और धृतराष्ट्रको संग लेकर वनवासके निमित्त प्रस्थान करो और नहीं तो आज ही इस नीचबुद्धि दुष्ट दुर्योधनको बांध कर पाण्डवोंके रक्षित इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यका शासन करो । हे राजशार्दूल ! देखो, कुरु पाण्डव तथा दूसरे सब राजाओंके नाश होनेका समय उपस्थित हुआ है; इससे अब भी प्रसन्न होकर कार्यका विधान करो । (२४-२७)

विदुरके दीन वचनोंके समाप्त होने-पर कुलनाशके भयसे डरी हुई, सुबल-राजपुत्री गान्धारी राजाओंके सम्मुख ही दुष्ट पापबुद्धि दुर्योधनको सम्बोधन करके क्रोधसे भरे हुए धर्म अर्थसे युक्त यह वचन बोली । अरे नीचबुद्धि ! इस सभामें जो सब राजा, ब्रह्मर्षि तथा दूसरे सभासद लोग बैठे हैं, सब वे कोई सुनें, मैं तेरे अपराधकी बात वर्णन करती हूं; सेवकोंके सहित तूने कितने पापकर्मका अनुष्ठान किया है, उसको सीमा नहीं हो सकती । अरे नीचबुद्धि दुर्योधन ! कौरवोंका राज्य सदासे कुल परम्पराके क्रमसे चला आता है, यही हम लोगोंके कुलका क्रमगत धर्म है ।

त्वं पापबुद्धेऽतिनृशंसकर्मनराज्यं कुरूणामनयाद्विहांसि ॥ ३० ॥  
 राज्ये स्थितो धृतराष्ट्रो मनीषी तस्याऽनुजो विदुरो दीर्घदर्शी ।  
 एतावतिक्रम्य कथं नृपं त्वं दुर्योधन प्रार्थयसेऽद्य मोहात् ॥ ३१ ॥  
 राजा च क्षत्ता च महानुभावो भीष्मे स्थिते परवन्तौ भवेताम् ।  
 अयं तु धर्मज्ञतया महात्मा न कामयेद्यो नवरो नदीजः ॥ ३२ ॥  
 राज्यं तु पाण्डोरिदमप्रधृष्यं तस्याऽद्य पुत्राः प्रभवन्ति नाऽन्ये ।  
 राज्यं तदेतन्निखिलं पाण्डवानां पैतामहं पुत्रपौत्रानुगामि ॥ ३३ ॥  
 यद्वै ब्रूते कुरुमुख्यो महात्मा देवव्रतः सत्यसन्धो मनीषी ।  
 सर्वं तदस्माभिरहत्य कार्यं राज्यं स्वधर्मान्परिपालयद्भिः ॥ ३४ ॥  
 अनुज्ञया चाऽथ महाव्रतस्य ब्रूयानृपोऽयं विदुरस्तथैव ।  
 कार्यं भवेत्तत्सुहृद्भिर्नियोज्यं धर्मं पुरस्कृत्य सुदीर्घकालम् ॥ ३५ ॥  
 न्यायागतं राज्यमिदं कुरूणां युधिष्ठिरः शास्तु वै धर्मपुत्रः ।

अरे नीचकर्म करनेवाले पापी ! तू दुष्ट-  
 नीतिके वशमें होकर उस धर्मको त्यागकर  
 सदाके लिये कुरुराज्यका नाश करनेमें  
 प्रवृत्त हो रहा है । (२७-३०)

रे दुर्योधन ! बुद्धिमान् धृतराष्ट्र और  
 उनके भाई दीर्घदर्शी विदुर ये ही  
 राज्यपदपर प्रतिष्ठित थे, इस समय तू  
 मोहमें पड़कर कुलकी मर्यादाको लांघकर  
 क्यों राज्यको ग्रहण करनेकी अभि-  
 लाषा करता है ? भीष्मके जीवित रहते  
 राजा धृतराष्ट्र और महा बुद्धिमान्  
 विदुर भी स्वाधीन नहीं हो सकते;  
 परन्तु इन पुरुषसिंह महात्मा गङ्गानन्दन  
 भीष्म ने धर्मको पालन करनेके निमित्त  
 राज्यकी इच्छा छोड़ दी है । इसी  
 कारण इस सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य  
 पाण्डुराजके हाथमें समर्पण किया गया

था । इससे अब उनके पुत्रोंके सिवाय  
 कौन सब राज्यके स्वामी हो सकते हैं ?  
 केवल पाण्डव लोग ही पुत्र पौत्र  
 आदिके क्रमसे इस सम्पूर्ण राज्यका  
 भोग करनेके अधिकारी हैं, और किसी-  
 का इसमें अधिकार नहीं है । (३१-३३)

अत्यन्त बुद्धि और पराक्रमसे युक्त  
 सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले, कौरवोंमें मुख्य,  
 देवव्रती, महात्मा, पितामह भीष्म जो  
 वचन कहते हैं; उसे स्वीकार करके सब  
 भांतिसे उसीके अनुसार कार्य करना  
 हम लोगोंका परम धर्म है । अपने  
 धर्मको पालन करते हुए पाण्डवोंको  
 राज्य प्रदान करना उचित है । अन्ध-  
 राज और विदुर भी महाव्रत करनेवाले  
 भीष्मकी आज्ञाके अनुसार मेरे कहे हुए  
 वचनको पृष्ट करें; ऐसा करनेहीसे यथार्थ

प्रचोदितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा पुरस्कृतः शान्तनवेन चैव ॥ ३६ ॥ [४९०६]  
इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि कृष्णवाक्ये अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

वासुदेव उवाच- एवमुक्ते तु गान्धार्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।  
दुर्योधनमुवाचेदं राजमध्ये जनाधिप ॥ १ ॥  
दुर्योधन निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।  
तथा तत्कुरु भद्रं ते यद्यस्ति पितृगौरवम् ॥ २ ॥  
सोमः प्रजापतिः पूर्वं कुरूणां वंशवर्धनः ।  
सोमाद्बभूव षष्ठोऽयं ययातिर्नहुषात्मजः ॥ ३ ॥  
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च राजर्षिसत्तमाः ।  
तेषां यदुर्महातेजा ज्येष्ठः समभवत्प्रभुः ॥ ४ ॥  
पूरुर्यवीयांश्च ततो योऽस्माकं वंशवर्धनः ।  
शर्मिष्ठया सम्प्रसूतो दुहित्रा वृषपर्वणः ॥ ५ ॥  
यदुश्च भरतश्चेष्ट देवयान्याः सुतोऽभवत् ।  
द्रौहित्रस्तात शुक्रस्य कान्यस्याऽमिततेजसः ॥ ६ ॥  
यादवानां कुलकरो बलवान्वीर्यसम्मतः ।

सुहृद और धर्मका कार्य बहुत काल तक सिद्ध होगा । महाराज धृतराष्ट्र और भीष्मसे सम्मानित होकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर न्यायसे इस कुरुराज्यको धर्मके अनुसार बहुत दिनतक शासन करें । (३४-३६)  
एकसौ अदतालिस अध्याय समाप्त । [ ४९०६ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ उनचास अध्याय ।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे महाराज ! गान्धारी की बात समाप्त होनेपर, राजा धृतराष्ट्र सब राजाओंके बीचमें दुर्योधनसे यह वचन कहने लगे । हे पुत्र ! यदि पिताके ऊपर तुम्हारी भक्ति होवे, तो मैं जो वचन कहता हूं, तुम उसीका अनुष्ठान करो । हे भरतश्चेष्ट ! देखो

पहिले प्रजानाथ सोम कौरवोंके वंश बढानेवाले हुए थे; नहुषपुत्र राजा ययाति सोमसे छठी पीढ़ीमें उत्पन्न हुए थे । उनके राजक्रापरियोंमें मुख्य पांच-पुत्र थे; उनमें महातेजस्वी यदु सबसे बड़े थे, इससे वही सबके स्वामी हुए थे । ( १-४ )

हे तात ! उनके छोटे पुत्रका नाम पुरु था, वही हम लोगोंके वंशके बढाने वाले हुए थे; वृषपर्वराजाकी पुत्री शर्मिष्ठाके गर्भसे उनका जन्म हुआ था । यदु देवयानीके पुत्र और महा तेजस्वी शुक्राचार्यके दौहित्र थे; उसी महावीर पुरुषसे यदुवंशीयोंके कुलकी उत्पत्ति

अवमेने स तु क्षत्रं दर्पपूर्णः सुमन्दधीः ॥ ७ ॥  
 न चाऽतिष्ठत्पितुः शास्त्रे बलदर्पविमोहितः ।  
 अवमेने च पितरं भ्रातृश्चाऽप्यपराजितः ॥ ८ ॥  
 पृथिव्यां चतुरन्तायां यदुरेवाऽभवद्वली ।  
 वशे कृत्वा स नृपतीन्न्यवसन्नागसाहये ॥ ९ ॥  
 तं पिता परमक्रुद्धो ययातिर्नहुषात्मजः ।  
 शशाप पुत्रं गान्धारे राज्याच्चापि व्यरोपयत् ॥ १० ॥  
 ये चैनमन्ववर्तन्त भ्रातरो बलदर्पिताः ।  
 शशाप तानभिक्रुद्धो ययातिस्तनयानथ ॥ ११ ॥  
 यवीयांसं ततः पूरुं पुत्रं स्ववशवर्तिनम् ।  
 राज्ये निवेशयामास विधेयं नृपसत्तमः ॥ १२ ॥  
 एवं ज्येष्ठोऽप्यथोत्सिक्तो न राज्यमभिजायते ।  
 यवीयांसोऽपि जायन्ते राज्यं वृद्धोपसेवया ॥ १३ ॥  
 तथैव सर्वधर्मज्ञः पितुर्मम पितामहः ।

हुई है । दुष्ट बुद्धिके वशमें होकर उन्होंने  
 अपने बल और अभिमानसे सम्पूर्ण  
 क्षत्रियोंको अपमानित किया और बलके  
 घमण्डसे मोहित होकर पिताकी आज्ञा  
 उल्लङ्घन की थी । उस महा पराक्रमी  
 अत्यन्त तेजस्वी यदुने पिता और  
 भाईयोंका अनादर करते हुए सम्पूर्ण  
 पृथ्वीको वशमें करके हस्तिनापुरमें  
 निवास किया था । ( ५—९ )

हे पुत्र ! नहुषनन्दन ययातिने  
 अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर उस नीचबुद्धि  
 पुत्रको शाप दिया और राज्यसे भी  
 पृथक् कर दिया । पुरुषसिंह ययातिके  
 जो और तीन पुत्र बलके अभिमानमें  
 भरे हुए यदुके अनुयायी हुए थे उन्हें

भी राजा ययातिने क्रुद्ध होकर शाप  
 दिया था । अनन्तर उन्होंने अपने छोटे  
 पुत्र पुरुको राज्य दिया । पुरु अत्यन्त  
 ही विनीत स्वभावसे युक्त और पिताके  
 आज्ञाकारी थे इससे गुणमे छोटे होकर  
 भी अपने स्वाभाविक गुणसे सर्वके स्वामी  
 हुए । इससे विचार करके देखो, श्रेष्ठ होने  
 पर भी दुष्टता तथा नीचबुद्धिताके कारण  
 जेष्ठ पुत्र पिताके राज्यसे पृथक् किया  
 जाता है, और कनिष्ठपुत्र भी वृद्धोंकी  
 सेवा आदि गुणोंसे युक्त होने पर राज्य  
 पद पाता है । ( १०—१३ )

ऐसा ही और एक प्रमाण है । हमारे  
 प्रपितामह पृथ्वीनाथ प्रतीप सब धर्मोंके  
 जाननेवाले और तीनों लोकोंमें विख्यात

प्रतीपः पृथिवीपालस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ १४ ॥  
 तस्य पार्थिवसिंहस्य राज्यं धर्मेण शासतः ।  
 त्रयः प्रजज्ञिरे पुत्रा देवकल्पा यशस्विनः ॥ १५ ॥  
 देवापिरभवच्छ्रेष्ठो बाह्लीकस्तदनन्तरम् ।  
 तृतीयः शान्तनुस्तात धृतिमान्मे पितामहः ॥ १६ ॥  
 देवापिस्तु महातेजास्त्वग्दोषी राजसत्तमः ।  
 धार्मिकः सत्यवादी च पितुः शुश्रूषणे रतः ॥ १७ ॥  
 पौरजानपदानां च सम्मतः साधुसत्कृतः ।  
 सर्वेषां बालवृद्धानां देवापिर्हृदयङ्गमः ॥ १८ ॥  
 वदान्यः सत्यसन्धश्च सर्वभूतहिते रतः ।  
 वर्तमानः पितुः शास्त्रे ब्राह्मणानां तथैव च ॥ १९ ॥  
 बाह्लीकस्य प्रियो भ्राता शान्तनोश्च महात्मनः ।  
 सौभ्रात्रं च परं तेषां सहितानां महात्मनाम् ॥ २० ॥  
 अथ कालस्य पर्याये वृद्धो नृपतिसत्तमः ।  
 सम्भारानभिषेकार्थं कारयाभास शास्त्रतः ॥ २१ ॥  
 कारयाभास सर्वाणि भङ्गलार्थानि वै विशुः ।  
 तं ब्राह्मणाश्च वृद्धाश्च पौरजानपदैः सह ॥ २२ ॥

होकर धर्मके अनुसार राज्य-शासन करते थे । हे तात ! उन राजसिंहके वीर्यसे महा यशस्वी तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें देवापि बड़े, बाह्लिक दूसरे और हमारे पितामह शान्तनु तीसरे पुत्र थे । (१४-१६)

महा तेजस्वी देवापि कोठनाम कुष्ठ रोकसे अत्यन्त ही पीडित थे; क्या बालक, क्या बूढ़े सब ही देवापि के संग अन्तःकरणसे प्रीति करते थे । यह परम धर्मात्मा, सत्यवादी, पिताकी सेवासे युक्त, पुरवासी और सेनाके

प्यारे, साधु पुरुषोंके सत्कार करनेवाले, सब प्राणियोंके हित-कार्यमें रत, पिता और ब्राह्मणोंकी आज्ञामें चलनेवाले पुरुष थे । और महात्मा बाह्लिक भी शान्तनुके प्रिय भ्राता थे । उन महातेजस्वी तीनों भाइयोंमें अत्यन्त ही प्रीति थी । (१७-२०)

समयके अनुसार राजसत्तम महाराज प्रतीपने जेठे पुत्रके राज्याभिषेकके निमित्त सब सामग्री इकट्ठी की; राज्याभिषेकके योग्य सब उत्तम वस्तुएं इकट्ठी हुई; परन्तु ब्राह्मणोंने पुरवासियोंके

सर्वे निवारयामासुर्देवापेरभिषेचनम् ।  
 स तच्छ्रुत्वा तु नृपतिरभिषेकनिवारणम् ।  
 अश्रुकण्ठोऽभवद्राजा पर्यशोचत चाऽऽत्मजम् ॥ २३ ॥  
 एवं वदान्यो धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च सांऽभवत् ।  
 प्रियः प्रजानामपि संस्त्वग्दोषेण प्रदूषितः ॥ २४ ॥  
 हीनाङ्गं पृथिवीपालं नाऽभिनन्दन्ति देवताः ।  
 इति कृत्वा नृपश्रेष्ठं प्रत्यषेधन्निजर्षभाः ॥ २५ ॥  
 ततः प्रव्यधिताङ्गोऽसौ पुत्रशोकसमन्वितः ।  
 निवारितं नृपं दृष्ट्वा देवापिः संश्रितो वनम् ॥ २६ ॥  
 बाह्लीको मातुलकुलं त्यक्त्वा राज्यं समाश्रितः ।  
 पितृभ्रातृन्परित्यज्य प्राप्तवान्परमर्षिमतम् ॥ २७ ॥  
 बाह्लीकेन त्वनुज्ञातः शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।  
 पितर्युपरते राजन् राज्ञ्यमकारयत् ॥ २८ ॥  
 तथैवाऽहं मतिमता परिचिन्त्येह पाण्डुना ।  
 ज्येष्ठः प्रभ्रांशितो राज्याद्धीनाङ्ग इति भारत ॥ २९ ॥  
 पाण्डुस्तु राज्यं संप्राप्तः कनीयानपि सन्नृपः ।

सङ्ग मिलकर बाधा डाली और उन्हें इस कार्यसे निवारण किया। राजाने पुत्रके राज्याभिषेकके रुकनेसे दुःखित होकर बहुत ही शोक किया। इस प्रकार से देवापी विनीतभाव, धर्मात्मा, सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले और प्रजाके प्रीति पात्र होकर भी केवल चर्म-दोषके कारणसे राज्य नहीं प्राप्त कर सके। ( २१-२४ )

राजाका शरीर विकल होनेसे देवताओंको प्रसन्नता नहीं होती; इसी कारण ब्राह्मणोंने उन्हें राज्यके ग्रहण करनेसे निषेध किया था। शरीरसे पीडित देवापि अपने लिये पिता प्रतीपको निवारित

होते देखकर दुःखित होकर वनको चले गये। हे राजन् ! महाराज बाह्लिक अपने मातामहका राज्य पाकर भाइयोंको त्यागके पहिलेहीसे मातामह ( नाना ) के यहां रहते थे। इससे पिताके स्वर्गलोक गमन करनेपर शान्तनुने ही बाह्लिककी आज्ञाके अनुसार राज्यका भार ग्रहण किया। ( २५-२८ )

हे भारत ! बाह्लिकने जैसे शान्तनुको अपना राज्य प्रदान किया था; वैसे ही बुद्धिमान पाण्डुने भी मुझको अपना राज्य समर्पण किया था। मैंने ज्येष्ठ पुत्र होकर भी नेत्र न रहनेके कारण राज्यपदको नहीं

विनाशो तस्य पुत्राणामिदं राज्यमरिन्दम ॥ ३० ॥

मय्यभागिनि राज्याय कथं त्वं राज्यमिच्छसि ।

अराजपुत्रो ह्यस्वामी परस्वं हर्तुमिच्छसि ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिरो राजपुत्रो महात्मा न्यायागतं राज्यमिदं च तस्य ।

स कौरवस्याऽस्य कुलस्य भर्ता प्रशासिता चैव महानुभावः ॥ ३२ ॥

स सत्यसन्धः स तथाऽप्रमत्तः शास्त्रे स्थितो बन्धुजनस्य साधुः ।

प्रियः प्रजानां सुहृदानुकम्पी जितेन्द्रियः साधुजनस्य भर्ता ॥ ३३ ॥

क्षमा तितिक्षा दम आर्जवं च सत्यव्रतत्वं श्रुतमप्रमादः ।

भूतानुकम्पा ह्यनुशासनं च युधिष्ठिरे राजगुणाः समस्ताः ॥ ३४ ॥

अराजपुत्रस्त्वमनार्यवृत्तो लुब्धः सदा बन्धुषु पापबुद्धिः ।

क्रमागतं राज्यमिदं परेषां हर्तुं कथं शक्यसि दुर्विनीत ॥ ३५ ॥

प्रयच्छ राज्यार्धमपेतमोहः सवाहनं त्वं सपरिच्छदं च ।

पाया था; इससे छोटे पुत्र होकर भी पाण्डु राज ही कुरुराज्यके अधिकारी हुए थे । हे शत्रुनाशन ! इससे अब राजा पाण्डु के न रहनेपर उसके पुत्रोंके अतिरिक्त और दूसरा कौन राज्यका अधिकारी हो सकता है ? मैं जिस राज्यका भागी नहीं हो सका । उस राज्यकी तुम क्यों अभिलाषा करते हो ? तुम राजाके पुत्र भी नहीं हो और न राज्यके अधिकारी ही हो । केवल मोह और लोभमें पड़ कर दूसरेका राज्य हरण करनेकी अभिलाषा करते हो । ( २९—३१ )

महात्मा युधिष्ठिर राजाके पुत्र हैं, इससे यह राज्य भी उन्हींको न्यायके अनुसार मिलना उचित है; वही धर्मात्मा इस गुरुकुलका पालन पोषण और शासन करनेवाले हैं । राजाके विषयमें

क्षमा, सहन-शीलता, दम, दया, विनय, सत्य-निष्ठा, शास्त्रज्ञान, अप्रमाद, सब प्राणियोंके ऊपर कृपा, और नियमके अनुसार सबका शासन करना आदि जो सब गुण होने उचित हैं, सब ही युधिष्ठिर में विद्यमान हैं । वह सत्यवादी सदा सावधान, भाइयोंका मान करनेवाले, प्रजाओंकी प्रीतिके पात्र, मित्रोंके ऊपर दया करनेवाले, जितेन्द्रिय और साधु पुरुषोंका पालन करने वाले हैं । ३२-३४

अरे विनय रहित दुर्योधन ! तू राजाका पुत्र न होकर विशेष करके नीच पुरुषोंके चरित्रसे युक्त, महालोभी और बन्धु-बान्धवोंकी बुराई करनेमें सदा तत्पर होकर क्रमसे आते हुए इस पाण्डवोंके राज्यको कैसे छीन सकेगा ? यदि भाइयोंके सहित कुछ दिनतक तुझको

ततोऽवशेषं तव जीवितस्य सहानुजस्यैव भवेन्नरेन्द्र ॥ ३६ ॥ [ ४९४२ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि भगवद्दानपर्वणि

धृतराष्ट्रवाक्यकथने एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

वासुदेव उवाच- एवमुक्ते तु भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ।

गान्धार्या धृतराष्ट्रेण न वै मन्दोऽन्वबुद्ध्यत ॥ १ ॥

अवधूयोत्थितो मन्दः क्रोधसंरक्तलोचनः ।

अन्वद्रवन्त तं पश्चाद्राजानस्त्यक्तजीविताः ॥ २ ॥

आज्ञापयच्च राज्ञस्तान्पार्थिवान्नष्टचेतसः ।

प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुनः पुनः ॥ ३ ॥

ततस्ते पृथिवीपालाः प्रययुः सहसैनिकाः ।

भीष्मं सेनापतिं कृत्वा संहृष्टाः कालचोदिताः ॥ ४ ॥

अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणां समागताः ।

तासां प्रमुखतो भीष्मस्तालकेतुर्व्यरोचत ॥ ५ ॥

यदत्र युक्तं प्राप्तं च तद्विधत्स्व विशां पते ।

जीनेकी इच्छा होवे, तो इस समय भी मोह और लोभ छोड़ कर पाण्डवोंको वाहन और सब वस्तुओंके सहित राज्य का आधा भाग प्रदान कर । ३५-३६

एकसौ उनचास अध्याय समाप्त । [ ४९४२ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ पचास अध्याय ।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, इसी प्रकारसे भीष्म, द्रोण, गान्धारी और राजा धृतराष्ट्रने अपने अपने उपदेश-वचनोंको दुर्योधनसे कहा; परन्तु उसने किसीकी बात ग्रहण न की। उसने सबकी बातों का अनादर करके क्रोध पूर्वक सभासे प्रस्थान किया। जो सब राजा लोग उसके निमित्त अपने प्राणतक देनेमें भी उद्यत थे, वे भी उठकर उसके पीछे

पीछे चले। दुर्योधनने इन मन्द-बुद्धि राजाओंको बारबार यही आज्ञा दी; आज पुष्य नक्षत्र है, इससे आज ही तुम लोग कुरुक्षेत्रमें गमन करो । १-३

अनन्तर उन सब राजाओंने कालके वशमें होकर भीष्मको सेनापति बनाकर अत्यन्त हर्षके सहित अपनी सेनाके सहित युद्धके निमित्त यात्रा की। हे महाराज ! कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना युद्धके निमित्त इकट्ठी होकर ताल-चिन्हकी ध्वजासे युक्त महावीर भीष्म-को सबके आगे करके विराजमान है। इससे अब इस समयमें जैसा योग्य और कर्तव्य कार्य करना स्थिर हो, आप उसका ही विधान कीजिये। हे भारत !



उक्तं भीष्मेण यद्वाक्यं द्रोणेन विदुरेण च ॥ ६ ॥  
 गान्धार्या धृतराष्ट्रेण समक्षं मम भारत ।  
 एतत्ते कथितं राजन्यद्वृत्तं कुरुसंसदि ॥ ७ ॥  
 साम्यमादौ प्रयुक्तं मे राजन्सौभ्रात्रामिच्छता ।  
 अभेदायाऽस्य वंशस्य प्रजानां च विवृद्धये ॥ ८ ॥  
 पुनर्भेदश्च मे युक्तो यदा साम न गृह्यते ।  
 कर्मानुकीर्तनं चैव देवमानुषसंहितम् ॥ ९ ॥  
 यदा नाऽऽद्वियते वाक्यं सामपूर्वं सुयोधनः ।  
 तदा मया समानीय भेदिताः सर्वपार्थिवाः ॥ १० ॥  
 अद्भुतानि च घोराणि दारुणानि च भारत ।  
 अमानुषाणि कर्माणि दर्शितानि मया विभो ॥ ११ ॥  
 निर्भर्त्सयित्वा राज्ञस्तांस्तृणीकृत्य सुयोधनम् ।  
 राधेयं भीषयित्वा च सौबलं च पुनः पुनः ॥ १२ ॥  
 द्यूततो धार्तराष्ट्राणां निन्दां कृत्वा तथा पुनः ।  
 भेदयित्वा नृपान्सर्वान्वाग्भिर्मन्त्रेण चाऽसकृत् ॥ १३ ॥  
 पुनः सामाभिसंयुक्तं सम्प्रदानमथाऽब्रुवम् ।

मेरे जानेपर कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ था; भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी और राजा धृतराष्ट्रने मेरे संमुख दुर्योधनसे जो कुछ वचन कहे थे, वे सब मैंने आपसे कह दिये । ( ४—७ )

हे राजन् ! जिससे आप लोगोंमें भ्रातृभाव स्थापित होवे, ऐसे प्रसिद्ध-वंशका नाश न होवे, वही समझकर मैंने पहिले सामवादका प्रयोग किया था; परन्तु मैंने देखा, कि सामवादका ग्रहण नहीं होता है; तब भेदके प्रयोग करनेमें बाध्य हुआ और आपके दैवी तथा मानुषी सब बड़े बड़े कर्मोंको कह सु-

नाया । हे भारत ! दुर्योधनने जब मेरे शान्तिके निमित्त कहे हुए वचनोंका अनादर किया, तब मैंने सब राजाओंमें भेद उत्पन्न करनेके निमित्त तनिक भी सङ्कोच नहीं किया और महाघोर अमानुषी कर्म दिखानेमें भी मैंने कुछ त्रुटि न की । ( ८—११ )

इकट्ठे हुए राजाओंको बारबार वचन और युक्तिसे भेदित और निन्दा करके दुर्योधनको तुनके समान अनादर करके, कर्णको बार बार भय दिखाके, धृतराष्ट्र पुत्रोंके जुएके खेलकी जड़ पापी शकुनिकी अत्यन्त ही निन्दा करके

अभेदात्कुरुवंशस्य कार्ययोगात्तथैव च ॥ १४ ॥  
 ते शूरा धृतराष्ट्रस्य भीष्मस्य विदुरस्य च ।  
 तिष्ठेयुः पाण्डवाः सर्वे हित्वा मानमधश्चराः ॥ १५ ॥  
 प्रयच्छन्तु च ते राज्यमनीशास्ते भवन्तु च ।  
 यथाऽऽह राजा गाङ्गेयो विदुरश्च हितं तव ॥ १६ ॥  
 सर्वं भवतु ते राज्यं पञ्चग्रामान्विसर्जय ।  
 अवश्यं भरणीया हि पितुस्ते राजसत्तम ॥ १७ ॥  
 एवमुक्तोऽपि दुष्टात्मा नैव भागं व्यमुञ्चत ।  
 दण्डं चतुर्थं पश्यामि तेषु पापेषु नाऽन्यथा ॥ १८ ॥  
 निर्याताश्च विनाशाय कुरुक्षेत्रं नराधिपाः ।  
 एतत्ते कथितं राजन्यद् वृत्तं कुरुसंसदि ॥ १९ ॥  
 न ते राज्यं प्रयच्छन्ति विना युद्धेन पाण्डव ।  
 विनाशहेतवः सर्वे प्रत्युपस्थितमृत्यवः ॥ २० ॥ [ ४९६२ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि भगवद्गीतानपर्वणि

कृष्णवाक्ये पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥ समाप्तं च भगवद्गीतानपर्वं ॥

अन्तमें मैंने फिर शान्तिके निमित्त प्रस्ताव किया। कुरुवंशके मङ्गल और कार्यकी सिद्धिके निमित्त मैंने दुर्योधनको राज्य देनेकी बात भी कही। १२-१४

मैंने कहा “वह शूरावीर तेजस्वी पाण्डव मान और प्रभुताको त्यागकर तुम्हींको राज्य समर्पण करके धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुरकी आज्ञाके अनुसार चलेंगे। तुम्हारे हितके निमित्त धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुर जो कुछ कहें, वही होवे; तुम्हीं राज्यके अधिकारी बनो; केवल पांच गांव पाण्डवोंको प्रदान करो। हे राजसत्तम ! वे लोग चाहे कैसे ही होवें, परन्तु तुम्हारे पिताको

उनका पालन करना योग्य है। १५-१७

ऐसी विनतीकी बातें कहनेपर भी वह दुष्टात्मा किसी प्रकारसे राज्यका अंश देनेमें संमत नहीं हुआ। हे राजन् ! इससे दुष्ट और पापीके विषयमें चौथे उपाय दण्डके अतिरिक्त और कुछ भी मैं नहीं देखता हूँ। उसकी सहायताके निमित्त बुद्धिहीन राजा लोग भी कुरुक्षेत्रमें गये हैं। हे पाण्डव ! कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ था; वे सब बातें मैंने तुम्हारे निकट वर्णन कीं। विना युद्धके दुर्योधन कभी तुमको राज्यका भाग न देगा। वह सब लोगोंके सहित जो मृत्युके वशमें होकर सबके नाश

वैशम्पायन उवाच-जनार्दनवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

भ्रातृनुवाच धर्मात्मा समक्षं केशवस्य ह ॥ १ ॥

श्रुतं भवद्भिर्यद् वृत्तं सभायां कुरुसंसदि ।

केशवस्याऽपि यद्वाक्यं तत्सर्वमवधारितम् ॥ २ ॥

तस्मात्सेनाविभागं मे कुरुध्वं नरसत्तमाः ।

अक्षौहिण्यश्च समैताः समेता विजयाय वै ॥ ३ ॥

तासां ये पतयः सप्त विख्यातास्तान्निबोधत ।

द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ४ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च भीमसेनश्च वीर्यवान् ।

एते सेनाप्रणेतारो वीराः सर्वे तनुत्यजः ॥ ५ ॥

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।

हीमन्तो नीतिमन्तश्च सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ६ ॥

इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे तथा सर्वास्त्रयोधिनः ।

करनेका कारण हुआ है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । (१८-२०) [ ४९६२ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ पचास अध्याय

और भगवद्गीतापर्व समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ एकावन अध्याय

और सैन्यनिर्याणपर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्ण-चन्द्रके वचन सुनकर धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिर उनके सम्मुख ही अपने भाइ-योंसे बोले, हे पुरुषसिंहो ! कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ था, वह सब तुम लोगोंने सुना; और श्रीकृष्णके वचन भी निश्चित कर लिये । इससे अब इस समय मेरी सेनाका विभाग होना उचित है । यह सात अक्षौहिणी सेना

विजयके निमित्त इकट्ठी हुई है; जो लोकमें विख्यात सात महारथी इसके नायक होंगे, उनका नाम सुनो । १-४

द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकी, चेकितान और वीर्यवान् भीमसेन, यही सात वीर पुरुष इस सेनाके नायक होंगे । ये सब लोग प्राणकी आशा त्याग करके युद्धके निमित्त उत्साह करते हैं, ये सब ही वेदको जाननेवाले, शूरवीर, उत्तम-चरित्र और व्रतसे युक्त, लज्जाशील, नीतिसे युक्त, युद्धविद्याको जाननेवाले, बाण आदि अस्त्र शस्त्रोंके चलानेमें निपुण, और सबही सब प्रकारके अस्त्रोंको धारण करनेवाले वीर योद्धा हैं । परन्तु हे कुरुनन्दन सहदेव!

सप्रानामपि यो नेता सेनानां प्रविभागवित् ॥ ७ ॥

यः सहेत रणे भीष्मं शरार्चिःपावकोपमम् ।

तं तावत्सहदेवाऽत्र प्रब्रूहि कुरुनन्दन ॥

स्वमतं पुरुषव्याघ्र को नः सेनापतिः क्षमः ॥ ८ ॥

सहदेव उवाच—संयुक्त एकदुःखश्च वीर्यवांश्च महीपतिः ।

यं समाश्रित्य धर्मज्ञं स्वमंशमनुयुज्जमहे ॥ ९ ॥

मत्स्यो विराटो बलवान्कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।

प्रसहिष्यति संग्रामे भीष्मं तांश्च महारथान् ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच-तथोक्ते सहदेवेन वाक्ये वाक्यविशारद ।

नकुलोऽनन्तरं तस्मादिदं वचनमाददे ॥ ११ ॥

वयसा शास्त्रतो धैर्यात्कुलेनाऽभिजनेन च ।

हीमान्बलान्वितः श्रीमान्सर्वशास्त्रविशारदः ॥ १२ ॥

वेद चाऽस्त्रं भरद्वाजादुर्धर्षः सत्यसङ्गरः ।

यो नित्यं स्पर्धते द्रोणं भीष्मं चैव महाबलम् ॥ १३ ॥

श्लाघ्यः पार्थिववंशस्य प्रमुखे वाहिनीपतिः ।

पुत्रपौत्रैः परिवृतः शतशाख इव हुमः ॥ १४ ॥

जो पुरुष इन सात वीरोंका नायक होसके, और संग्राममें बाणरूपी शिखासे युक्त अग्निके समान तेजस्वी भीष्मका सामना कर सके; सेनाके विभागको जाननेवाले ऐसे किसी योग्य पुरुषको तुम निश्चित करो । (४-८)

सहदेव बोले, जिस धर्मात्मा पुरुषका आसरा करके हम लोग अपने पैतृक राज्यके अंशको पानेकी अभिलाषा करते हैं, वही सब लक्षणोंसे युक्त, सुख-दुःखको समान जाननेवाले सब शास्त्र और युद्धविद्यामें निपुण बलवान् मत्स्यराज विराट युद्धमें भीष्म तथा दूसरे महारथ

वीरोंका सामना कर सकेंगे । (९-१०)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सहदेवके ऐसा कहनेपर पुरुषसिंह नकुल यह वचन बोले, जो अवस्था, शास्त्र, धीरज, कुल और स्वजनसमूहसे युक्त, लज्जाशील, बलसे युक्त, लक्ष्मीवान्, सब शास्त्रोंके जाननेवाले, पराक्रमी, सत्य प्रातिज्ञा करनेवाले हैं; जिन्होंने भरद्वाजसे शस्त्रविद्या सीखी है, जो महाबली पुरुष सदा भीष्म और द्रोणाचार्यसे युद्ध करनेकी अभिलाषा करते हैं । (११-१२)

राजाओंमें अग्रणी और प्रशंसाके योग्य जो सेनापति पुत्र पौत्रके सहित

यस्तताप तपो घोरं सदारः पृथिवीपतिः ।  
 रोषाद् द्रोणविनाशाय वीरः समितिशोभनः ॥ १५ ॥  
 पितेवाऽस्मान्समाधत्ते यः सदा पार्थिवर्षभः ।  
 श्वशुरो द्रुपदोऽस्माकं सेनाग्रं स प्रकर्षतु ॥ १६ ॥  
 स द्रोणभीष्मावाधातौ सहेदिति मतिर्मम ।  
 स हि दिव्यास्त्रविद्राजा सखा चाऽङ्गिरसो नृपः ॥ १७ ॥  
 माद्रीसुताभ्यामुक्ते तु स्वमते कुरुनन्दनः ।  
 वासविर्वासवसमः सव्यसाच्यब्रवीद्वचः ॥ १८ ॥  
 योऽयं तपःप्रभावेन ऋषिसन्तोषणेन च ।  
 दिव्यः पुरुष उत्पन्नो ज्वालावर्णो महाभुजः ॥ १९ ॥  
 धनुष्मान्कवची खड्गी रथमारुह्य दंशितः ।  
 दिव्यैर्हयवरैर्युक्तमग्निकुण्डात्समुत्थितः ॥ २० ॥  
 गर्जन्निव महामेघो रथघोषेण वीर्यवान् ।  
 सिंहसंहननो वीरः सिंहतुल्यपराक्रमः ॥ २१ ॥  
 सिंहोरस्कः सिंहभुजः सिंहवक्षा महाबलः ।  
 सिंहप्रगर्जनो वीरः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः ॥ २२ ॥  
 सुभ्रूः सुदंष्ट्रः सुहनुः सुबाहुः सुमुखोऽकृशः ।

सौ शाखाओंसे युक्त वृक्षकी भांति  
 मालूम पड़ते हैं; जिस शत्रुनाशन पृथ्वी-  
 नाथने क्रोधमें भरकर द्रोणाचार्यके वध  
 करनेके निमित्त स्त्रीके सहित महाघोर  
 तपस्या की थी और जो महाराज ससुर  
 होकर भी पिताके समान हम लोगोंका  
 पालन करते हैं; वही द्रुपदराज हम  
 लोगोंके सेना नायक बनें। मेरी समझमें  
 वह भीष्म और द्रोणाचार्यके सम्मुख  
 युद्ध कर सकेंगे; क्योंकि वह सब दिव्य  
 शस्त्रोंके जाननेवाले, प्रतापी और द्रोणा-  
 चार्यके सखा हैं। ( १४-१७ )

माद्रीपुत्रोंके अपने अपने अभिप्राय  
 प्रकट करनेपर कुरुनन्दन इन्द्रके समान  
 इन्द्रपुत्र अर्जुन बोले; अग्निकी शिखाके  
 समान वर्णसे युक्त यह जो महाबाहु  
 तपस्याके प्रभाव और ऋषियोंके सन्तोष  
 से उत्पन्न हुआ है, धनुष, कवच, खड्ग  
 और दिव्य घाड़ोंसे युक्त रथमें बैठकर  
 तथा सावधान होकर रथके शब्दके  
 सहित बादलके समान गर्जते हुए  
 अग्निकुण्डसे उत्पन्न हुआ है; जिसकी  
 मूर्ति, भुजा, कन्धा और गर्जनेका  
 शब्द सिंहके समान है। ( १८-२२ )

सुजयः सुविशालाक्षः सुपादः सुप्रतिष्ठितः ॥ २३ ॥

अभेद्यः सर्वशस्त्राणां प्रभिन्न इव वारणः ।

जज्ञे द्रोणविनाशाय सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ २४ ॥

धृष्टद्युम्नमहं अन्ये सहेद्भीष्मस्य सायकान् ।

वज्राशनिसमस्पर्शान्दीप्तास्यानुरगानिव ॥ २५ ॥

यमदूतसमान्वेगे निपाते पावकोपमान् ।

रामेणाऽऽजौ विषहितान्वज्रनिष्पेषदारुणान् ॥ २६ ॥

पुरुषं तं न पश्यामि यः सहेत महाव्रतम् ।

धृष्टद्युम्नमृते राजन्निति मे धीयते मतिः ॥ २७ ॥

क्षिप्रहस्तश्चित्रयोधी मतः सेनापतिर्मम ।

अभेद्यकवचः श्रीमान्मातङ्ग इव यूथपः ॥ २८ ॥

भीमसेन उवाच— वधार्थं यः समुत्पन्नः शिखण्डी द्रुपदात्मजः ।

वदन्ति सिद्धा राजेन्द्र ऋषयश्च समागताः ॥ २९ ॥

यस्य संग्राममध्ये तु दिव्यमस्त्रं प्रज्जुर्वतः ।

रूपं द्रक्ष्यन्ति पुरुषा रामस्येव महात्मनः ॥ ३० ॥

जिसकी दोनों भौहैं दांत, मुख, और कपोलके ऊपरका हिस्सा, भुजा, कन्धोंके मीठे, बड़ी आंख और पांव अत्यन्त सुन्दर हैं; जो महाबली, महा तेजस्वी, प्रतिष्ठित, रोगरहित, सब शस्त्रोंके जाननेवाले, मतवारे हाथीके समान अत्यन्त बलसे युक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय पुरुष द्रोणाचार्यके वधके निमित्त उत्पन्न हुआ है, मेरे विचारमें वही धृष्टद्युम्न भीष्मके वज्र समान खून करनेवाले, महा विषधर सर्पके समान मुखवाले, वेगमें यमदूतके समान, पतनमें अग्निके समान, युद्धमें परशुरामको भी विकल करनेवाले और वज्रके समान महा कठोर उनके

सब बाणोंको सह सकेंगे । ( २३-२६ )

हे महाराज ! मुझे यह निश्चय बोध होता है, कि मैं एक मात्र धृष्टद्युम्नके अतिरिक्त और ऐसे किसी पुरुषको भी नहीं देखता हूं; जो युद्धमें महाव्रती भीष्मके बाणोंको सहनेमें समर्थ हो सके। इससे यही अभेद कवच धारण करनेवाला पुरुषसिंह यूथपति मतवारे हाथीके समान हम लोगोंका सेनापति बनाया जावे; यही मेरा मत है । ( २७-२८ )

भीमसेन बोले, हे राजेन्द्र ! सिद्ध और ऋषियोंने जिसको भीष्मके वधके निमित्त उत्पन्न हुआ वर्णन किया है। मनुष्य लोग संग्रामभूमिमें दिव्य अस्त्रों-

न तं युद्धे प्रपश्यामि यो भिन्ध्यात्तु शिखाण्डिनम् ।

शस्त्रेण समरे राजन्सन्नद्धं स्यन्दने स्थितम् ॥ ३१ ॥

द्वैरथे समरे नाऽन्यो भीष्मं हन्यान्महाव्रतम् ।

शिखाण्डिनमृते वीरं स मे सेनापतिर्मतः ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर उवाच— सर्वस्य जगतस्तात सारासारं बलाबलम् ।

सर्वं जानाति धर्मात्मा मतमेषां च केशवः ॥ ३३ ॥

यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु सेनापतिर्मम ।

कृतास्त्रोऽप्यकृतास्त्रो वा वृद्धो वा यदि वा युवा ॥ ३४ ॥

एष नो विजये मूलमेष तात विपर्यये ।

अत्र प्राणाश्च राज्यं च भावाभावौ सुखासुखे ॥ ३५ ॥

एष धाता विधाता च सिद्धिरत्र प्रतिष्ठिता ।

यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु नो बाहिनीपतिः ॥ ३६ ॥

ब्रवीतु वदतां श्रेष्ठो निशा समभिवर्तते ।

ततः सेनापतिं कृत्वा कृष्णस्य वशवर्तिनः ॥ ३७ ॥

के चलानेवाले जिस पुरुषसिंहके महा-  
त्म्यको रामके समान देखेंगे; युद्धमें  
सावधान, रथमें स्थित उस द्रुपदपुत्र  
शिखण्डीको शस्त्रसे मार सकें; ऐसा  
कोई पुरुष मैं नहीं देखता हूं। हे महाराज!  
बल और पराक्रमसे युक्त शिखण्डीके अति  
रिक्त और कोई पुरुष भी द्वैरथ युद्धमें  
महाव्रत करनेवाले भीष्मको नहीं मार  
सकता। इससे मेरे विचारमें वही शिख-  
ण्डी हम लोगोंका सेनापति बनाया  
जावे। (२९—३२)

युधिष्ठिर बोले, हे तात! धर्मात्मा  
कृष्ण, इस सम्पूर्ण जगत्के सार असार  
बलाबल और अभिप्रायको जानते हैं।  
इससे दाशार्ह कृष्ण जिसको कहेंगे, सब

शास्त्रोंको जाननेवाला होवे अथवा न  
होवे, बालक हो, चाहे बूढ़ा हो; वह  
निश्चय हमारा सेनापति बनाया जावेगा।  
हे तात! कृष्ण ही हम लोगोंके जय  
और पराजयके मूल हैं, हम लोगोंका  
प्राण, राज्य, भले-बुरे कर्म, सुख-दुःख  
इनहींमें प्रतिष्ठित हैं; हम लोगोंके यही  
धाता और विधाता हैं; इससे हम लोगों  
की सिद्धि भी इनहीं से प्रतिष्ठित है,  
दाशार्ह कृष्ण जिसको कहेंगे, वही हमारा  
सेनापति बनेगा। (३३—३६)

अब रात्रिका समय उपास्थित हो  
रहा है, इसी समय बोलनेवालों में  
श्रेष्ठ कृष्ण उस पुरुषका नाम वर्णन  
करें; उसके अनन्तर हम लोग उस

रात्रेः शेषे व्यतिक्रान्ते प्रयास्यामो रणाजिरम् ।

अधिवासितशस्त्राश्च कृतकौतुकमङ्गलाः ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन उवाच-तस्य तद्वचनं श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।

अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमवेक्ष्य ह ॥ ३९ ॥

ममाऽप्येते महाराज भवद्भिर्य उदाहृताः ।

नेतारस्तव सेनाया मता विक्रान्तयोधिनः ॥ ४० ॥

सर्व एव समर्था हि तव शत्रुं प्रबाधितुं ।

इन्द्रस्याऽपि भयं ह्येते जनयेयुर्महाहवे ॥ ४१ ॥

किं पुनर्धार्तराष्ट्राणां लुब्धानां पापचेतसाम् ।

मयाऽपि हि महाबाहो त्वत्प्रियार्थं महाहवे ॥ ४२ ॥

कृतो यत्नो महास्तत्र शमः स्यादिति भारत ।

धर्मस्य गतमानृण्यं न स्म वाच्या विवक्षताम् ॥ ४३ ॥

कृतास्त्रं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः ।

धार्तराष्ट्रो बलस्थं च पश्यत्यात्मानमातुरः ॥ ४४ ॥

युज्यतां वाहिनी साधु बधसाध्या हि मे मताः ।

पुरुषके वशवर्त्ती होकर सेनापति, शस्त्र तथा सेनाके सब मङ्गल कर्मोंको सिद्ध करके युद्धके निमित्त यात्रा करेंगे। ३७-३८

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमान् धर्मराजके वचन सुनकर पुण्डरीकाक्ष जनार्दन कृष्ण अर्जुनके मुखको देखकर उनके मतको अनुमोदन करके युधिष्ठिरसे बोले, महाराज ! तुमने जिन सब पराक्रमी महारथ शोद्धाओंको अपनी सेनाका नायक बनाया है; उसमें मैं भी सहमत हूँ; क्यों किये सब लोग तुम्हारे शत्रुओंको संहार करनेमें समर्थ हैं। लोभसे युक्त पापी धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी बात ही क्या है; ये लोग युद्धमें इन्द्रको भी

भयभीत कर सकते हैं। ( ३९-४२ )

हे महाबाहो ! तुम्हारे प्रियकार्यका साधन करनेके निमित्त मैंने वहाँपर भी बहुत यत्न किया है; इससे धर्मके समीपमें भी मैं ऋणसे रहित होगया हूँ; दोष देनेवाला कोई पुरुष भी हम लोगोंकी निन्दा न कर सकेगा। नीच-बुद्धि मूर्ख दुर्योधन अपनेको सब शस्त्रोंसे युक्त समझता है और आतुर होकर भी अपनेको बलवान् समझ रहा है; इससे शीघ्र ही सेना सजाकर युद्धके निमित्त यात्रा कीजिये; क्योंकि विना मरे वह किसी प्रकारसे भी तुम्हारे वशमें न होगा। ( ४२-४५ )



न धार्तराष्ट्राः शक्ष्यन्ति स्थातुं दृष्ट्वा धनञ्जयम् ॥४५॥

भीमसेनं च संक्रुद्धं यमौ चापि यमोपमौ ।

युयुधानद्वितीयं च धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ ४६ ॥

अभिमन्युं द्रौपदेयान्विराट्द्रुपदावपि ।

अक्षौहिणीपतींश्चाऽन्यान्नेन्द्रान्भीमविक्रमान् ॥ ४७ ॥

सारवद्वलमस्माकं दुष्प्रधर्षं दुरासदम् ।

धार्तराष्ट्रबलं संख्ये हनिष्यति न संशयः ॥ ४८ ॥

धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सेनापतिमरिन्दम ।

वैशम्पायन उवाच-एवमुक्ते तु कृष्णेन सम्प्राहृष्यन्नरोत्तमाः ॥ ४९ ॥

तेषां प्रहृष्टमनसां नादः समभवन्महान् ।

योग इत्यथ सैन्यानां त्वरतां सम्प्रधावताम् ॥ ५० ॥

हयवारणशब्दाश्च नेमिघोषाश्च सर्वतः ।

शङ्खदुन्दुभिघोषाश्च तुमुलाः सर्वतोऽभवन् ॥ ५१ ॥

तदुग्रं सागरनिभं क्षुब्धं बलसमागमम् ।

रथपत्तिगजोदग्रं महोर्मिभिरिवाऽऽकुलम् ॥ ५२ ॥

धावतामाह्वयानानां तनुत्राणि च बध्नताम् ।

अर्जुन, कोधी भीमसेन, युयुधान, शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, द्रौपदीके पांचों पुत्र, विराट, द्रुपद और सेनाके स्वामी दूसरे सब राजाओंको देखकर धृतराष्ट्रके पुत्र लोग कभी संमुखमें न खड़े हो सकेंगे; हम लोगोंकी यह तेजस्विनी बलवती सेना युद्धमें अवश्य ही दुर्योधनकी सेनाका नाश करेगी। धृष्टद्युम्नही हमारा सेनापति होवे, यह मुझे अभिप्रेत है। (४२-४९)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कृष्णके ऐसा कहने पर सम्पूर्ण राजा लोग अत्यन्त ही आनन्दित हुए। सबके

हर्षयुक्त होनेपर उन लोगोंके बीच बड़ी भारी हर्षसे भरी हुई ध्वनि सुनाई पड़ी आतुर होकर इधर उधर दौड़नेवाले कहने लगे;- “ रथ चलाओ, सेना सजाओ ” पुरुषका सिंह नाद और हाथी घोड़ोंका शब्द होने लगा, शङ्ख, भेरी, नगाडे आदि जुझाऊ बाजोंके बजनेसे बड़ा भारी शब्द उत्पन्न हुआ। वह रथ पदाति गज आदिसे पूर्ण सैन्य तरंगोंसे युक्त सागरके समान क्षुब्ध और भयानक दीखने लगे। उस सेनामें कोई दूसरोंको आह्वान करने लगे, कोई इधर उधर घूमने लगे और कोई शरीर

प्रयास्यतां पाण्डवानां ससैन्यानां समन्ततः ॥ ५३ ॥  
 गङ्गेव पूर्णा दुर्धर्षा समदृश्यत बाहिनी ।  
 अग्रानीके भीमसेनो माद्रीपुत्रौ च दंशितौ ॥ ५४ ॥  
 सौभद्रो द्रौपदेयाश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।  
 प्रभद्रकाश्च पञ्चाला भीमसेनमुखा ययुः ॥ ५५ ॥  
 ततः शब्दः समभवत्समुद्रस्येव पर्वणि ।  
 हृष्टानां सम्प्रयातानां घोषो दिवसिवाऽस्पृशत् ॥ ५६ ॥  
 प्रहृष्टा दंशिता योधाः परानीकविदारणाः ।  
 तेषां मध्ये ययौ राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५७ ॥  
 शकटापणवेशाश्च यानयुग्यं च सर्वशः ।  
 कोशं यन्त्रायुधं चैव ये च वैद्याश्चिकित्सकाः ॥ ५८ ॥  
 फल्गु यच्च बलं किञ्चिद्यच्चाऽपि कृशदुर्बलम् ।  
 तत्संगृह्य ययौ राजा ये चापि परिचारकाः ॥ ५९ ॥  
 उपप्लव्ये तु पाञ्चाली द्रौपदी सत्यवादिनी ।  
 सहस्रीभिर्निवृत्ते दासीदाससमावृता ॥ ६० ॥  
 कृत्वा मूलप्रतीकारं गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।

में कवच पहनने लगे । युद्धके निमित्त  
 प्रस्थान करनेवाली वह पाण्डवोंकी सेना  
 जलसे भरी हुई गङ्गाकी भांति दिखाई  
 देने लगी । ( ४९-५३ )

सेनाके अगाड़ी भीमसेन, कवचधारी  
 नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, द्रौपदीके  
 पाँचों पुत्र और धृष्टद्युम्न हुए और प्रभद्रक  
 तथा पाञ्चाल योद्धा लोग भीमसेनको  
 आगे करके चले । अनन्तर जैसे अमा-  
 वस और पूर्णमासीको समुद्रकी तरङ्ग  
 उठती है, वैसे ही उस प्रस्थान करने-  
 वाली सेनाके महा कोलाहलसे युक्त  
 शब्द आकाशमण्डलको स्पर्श करने

लगा । ( ५४-५६ )

शत्रुओंके बलको नाश करनेवाले  
 सब वीर योद्धा लोग अत्यन्त ही प्रसन्न  
 थे । उन लोगोंके बीचमें राजा युधिष्ठिर  
 ने शकट, वस्त्र आदि, सवारी, खजाना,  
 गऊ, यन्त्र, आयुर्वेदको जाननेवाले  
 अस्त्रचिकित्सक, परिवारके लोग, और  
 असार, निर्बल और कृश सेनाका संग्रह  
 करके गमन किया । द्रुपदनान्दिनी  
 सत्यवादिनी द्रौपदी दास दासियोंसे  
 युक्त होकर स्त्रियोंके सङ्ग उपप्लव्य नगर  
 को लौट आई । ( ५७-६० )

हे राजन् ! पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने

स्कन्धाचारेण महता प्रययुः पाण्डुनन्दनाः ॥ ६१ ॥  
 ददतो गां हिरण्यं च ब्राह्मणैरभिसंवृताः ।  
 स्तूयमाना ययू राजन्रथैर्मणिविभूषितैः ॥ ६२ ॥  
 केकया धृष्टकेतुश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभुः ।  
 श्रेणिमान्वसुदानश्च शिखण्डी चाऽपराजितः ॥ ६३ ॥  
 हृष्टास्तुष्टाः कवचिनः सशस्त्राः समलंकृताः ।  
 राजानमन्वयुः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥ ६४ ॥  
 जघनार्धे विराटश्च याज्ञसेनिश्च सौमकिः ।  
 सुधर्मा कुन्तिभोजश्च धृष्टद्युम्नस्य चाऽऽत्मजाः ॥ ६५ ॥  
 रथायुतानि चत्वारि हयाः पञ्चगुणास्तथा ।  
 पत्तिसैन्यं दशगुणं गजानामयुतानि षट् ॥ ६६ ॥  
 अनाधृष्टिश्चेकितानो धृष्टकेतुश्च सात्यकिः ।  
 परिवार्य ययुः सर्वे वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ६७ ॥  
 आसाद्य तु कुरुक्षेत्रं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।  
 पाण्डवाः समहृद्यन्त नर्दन्तो वृषभा इव ॥ ६८ ॥  
 तेऽवगाह्य कुरुक्षेत्रं शङ्खान्दध्मुररिन्दमाः ।  
 तथैव दध्मतुः शङ्खं वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ६९ ॥

प्राकार आदि स्थावर तथा शूरवीर योद्धा  
 रूपी चल साधनोंसे तथा रक्षक बड़ी  
 सेनासे धन और स्त्रियोंकी रक्षाका वि-  
 धान किया और ब्राह्मणोंको गऊ, सुवर्ण,  
 रत्न आदि दान करते और स्तुति सुनते  
 हुए सुवर्ण और मणियोंसे भूषित रथपर  
 चढ़के सेनाके मङ्ग चले । केकय-देशीय  
 पांचों राजपुत्र, धृष्टकेतु, काशिराजपुत्र,  
 श्रेणिमान्, वसुदान, अपराजित, शिख-  
 ण्डी आदि वीर लोग राजा युधिष्ठिरको  
 चारों ओरसे घेरकर उनका अनुगमन  
 करते हुए चले । ( ६१-६४ )

विराट, धृष्टद्युम्न, सुधर्मा, कुन्तिभोज,  
 और धृष्टद्युम्नके पुत्र लोग चालीस हजार  
 रथ, दो लाख घोड़े, साठ हजार हाथी  
 और चार लाख पैदल लेकर पीछे पीछे  
 चले । अनाधृष्टि, चेकितान, धृष्टकेतु और  
 सात्यकी ये लोग अर्जुनके सहित कृष्णको  
 घेरकर चले । इस प्रकारसे व्यूह बनाकर  
 शत्रुनाशन पाण्डव लोग कुरुक्षेत्रमें पहुँ-  
 चकर गर्जनेवाले वृषभोंके समूहकी भाँति  
 दिखाई देने लगे । ( ६५-६८ )

वह शत्रुनाशन पुरुषसिंह कुरुक्षेत्रमें  
 जाकर अपने अपने शङ्ख बजाने लगे

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं विस्फूर्जितामिवाऽशनेः ।

निशम्य सर्वसैन्यानि समहृष्यन्त सर्वशः ॥ ७० ॥

शङ्खदुन्दुभिसंहृष्टः सिंहनादस्तरस्विनाम् ।

पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च सागरांश्चाऽन्वनादयत् ॥ ७१ ॥ [५०३३]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि कुरुक्षेत्रप्रवेशे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततो देशे समे स्त्रिग्वे प्रभृतयवसेन्धने ।

निवेशयामास तदा सेनां राजा युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

परिहृत्य श्मशानानि देवतायतनानि च ।

आश्रमांश्च महर्षीणां तीर्थान्यायतनानि च ॥ २ ॥

मधुरानूषरे देशे शुचौ पुण्ये महामतिः ।

निवेशं कारयामास कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

ततश्च पुनरुत्थाय सुखी विश्रान्तवाहनः ।

प्रययौ पृथिवीपालैर्वृतः शतसहस्रशः ॥ ४ ॥

विद्वान्य शतशो गुल्मान्धारतराष्ट्रस्य सैनिकान् ।

पर्यक्रामत्समन्ताच्च पार्थेन सह केशवः ॥ ५ ॥

शिविरं सापयामास धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।

और कृष्ण तथा अर्जुनने भी अपने अपने शङ्ख बजाये । वज्रके समान पाञ्चजन्य शङ्खका शब्द सुनकर सब सैनिक-पुरुषोंके रोवें खड़े होगये । इसके अनन्तर सम्पूर्ण तेजस्वियोंके सिंहनादका शब्द, शङ्ख, नगाडे आदि जुझाऊ बाजोंका शब्द पृथ्वी आकाश और समुद्रमें गूँजने लगा । ( ६९-७१ ) [ ५०३३ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ एकावन अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ बावन अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर राजा युधिष्ठिरने तृण और काठसे युक्त समतल और सुन्दर भूमिमें अपनी सेना

ठहरायी; महा बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने श्मशान, देवालय, महर्षियोंके आश्रम, तीर्थ और मन्दिरोंको छोड़कर मनको हरनेवाली सुन्दर उपजाऊ और पवित्र-भूमिमें अपनी सेनाके निवास का स्थान ठहराया । ( १—३ )

इसके अनन्तर वाहन आदिको सुखसे विश्राम कराकर फिर उठके सैकड़ों, सहस्रों, राजाओंके सहित प्रस्थान किया । इधर अर्जुनके सहित कृष्ण दुर्योधनके सैकड़ों सैनिक पुरुषोंको हटाते हुए चारों ओर घूमने लगे । द्रुपदनन्दन धृष्टद्युम्न, सात्यकी, महा पराक्रमी युयुधान,

सात्यकिश्च रथोदारो युयुधानश्च वीर्यवान् ॥ ६ ॥  
 आसाद्य सरितं पुण्यां कुरुक्षेत्रे हिरण्वतीम् ।  
 सूपतीर्थां शुचिजलां शर्करापङ्कवर्जिताम् ॥ ७ ॥  
 खानयामास परिखां केशवस्तत्र भारत ।  
 गुप्त्यर्थमपि चाऽऽदिश्य बलं तत्र न्यवेशयत् ॥ ८ ॥  
 विधिर्यः शिविरस्याऽऽसीत्पाण्डवानां महात्मनाम् ।  
 तद्विधानि नरेन्द्राणां कारयामास केशवः ॥ ९ ॥  
 प्रभूततरकाष्ठानि दुराधर्षतराणि च ।  
 भक्ष्यभोज्यान्नपानानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥  
 शिविराणि महार्हाणि राज्ञां तत्र पृथक्पृथक् ।  
 विमानानीव राजेन्द्र निविष्टानि महीतले ॥ ११ ॥  
 तत्राऽऽसज्जिषलिपनः प्राज्ञाः शतशो दत्तवेतनाः ।  
 सर्वोपकरणैर्युक्ता वैद्याः शास्त्रविशारदाः ॥ १२ ॥  
 ज्याधनुर्वर्मशस्त्राणां तथैव मधुसर्पिषोः ।  
 ससर्जरसपांसूनां राशयः पर्वतोपमाः ॥ १३ ॥  
 बहूदकं सुयवसं तुषाङ्गारसमन्वितम् ।  
 शिविरे शिविरे राजा सञ्चकार युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥

इन लोगोंने शिविरका स्थान निश्चित किया । ( ४—६ )

हे भारत ! श्रीकृष्णचन्द्रने कुरुक्षेत्रमें हिरण्वती नाम्नी सुन्दर जलसे भरी हुई कङ्कड और कीचडसे रहित पवित्र तीर्थको देखकर वहाँ पर जलके निमित्त परिखा स्थापित की । और उसकी रक्षाके निमित्त उत्तम प्रकारसे प्रबन्ध कर दिया । महात्मा पाण्डवोंके शिविर बननेके विषयमें जैसा नियम था, श्रीकृष्णने राजाओंके निमित्त वैसा ही शिविर तैयार करवाया । ( ७—९ )

हे राजेन्द्र ! वहाँपर राजाओंके लकड़ी और अन्न पानसे युक्त सैकड़ों सहस्रों महामूल्यवान् सब शिविर विमानकी भांति पृथ्वीपर दिखाई देने लगे । वहाँपर नियमित वेतनको पानेवाले सैकड़ों शिल्पी और शास्त्रको जाननेवाले वैद्य उपस्थित थे । राजा युधिष्ठिरने सब शिविरोंमें महा यत्नसे ढेरके ढेर धनुष, धनुष के रोदे, वर्म, शस्त्र, तूणीर, बाण, नाराच, तोमर, परशु, और मधु, घृत, जल, भक्षण करनेके योग्य रस, उत्तम तृण, अग्नि आदि सब आवश्यकीय वस्तुओं-

महायन्त्राणि नाराचास्तोमराणि परश्वधाः ।

धनूंषि कवचादीनि ऋष्टयस्तूणसंयुताः ॥ १५ ॥

गजाः कण्टकसन्नाहा लोहवर्मात्तरच्छदाः ।

दृश्यन्ते तत्र गिर्याभाः सहस्रशतयोधिनः ॥ १६ ॥

निविष्टान्पाण्डवांस्तत्र ज्ञात्वा मित्राणि भारत ।

अभिससुर्यथादेशं सबलाः सहबाहनाः ॥ १७ ॥

चरितब्रह्मचर्यास्ते सोमपा भूरिदक्षिणाः

जयाय पाण्डुपुत्राणां समाजमुर्महीक्षितः ॥ १८ ॥ [ ५०५१ ]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि शिविरादिनिर्माणे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

जनमेजय उवाच—युधिष्ठिरं सहानीकमुपायान्तं युयुत्सया ।

सन्निविष्टं कुरुक्षेत्रे वासुदेवेन पालितम् ॥ १ ॥

विराटद्रुपदाभ्यां च सपुत्राभ्यां समन्वितम् ।

केकयैर्वृष्णिभिश्चैव पार्थिवैः शतशो वृतम् ॥ २ ॥

महेन्द्रमिव चाऽऽदित्यैरभिगुप्तं महारथैः ।

श्रुत्वा दुर्योधनो राजा किं कार्यं प्रत्यपश्यत ॥ ३ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महामते ।

सम्भ्रमे तुमुले तस्मिन्यदासीत्कुरुजाङ्गले ॥ ४ ॥

को स्थापित किया । ( १०-१४ )

वहांपर बड़े यन्त्र, नाराच, तोमर, परश्वध, धनुष, कवच, ऋष्टि, तूण तथा लोहेके वर्मसे युक्त घण्टे और धौसेके सहित सैकड़ों, सहस्रों हाथी पर्वतके समान दिखाई देने लगे । हे भारत ! पाण्डवोंको कुरुक्षेत्रमें पहुंचा हुआ जानकर मित्र राजा लोग बल और सेनासे युक्त होकर उसी स्थानपर गये । ब्रह्मचर्यके अनुष्ठान और सोमपान करने वाले तथा ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा देने वाले राजा लोग पाण्डवोंके विजयके

निमित्त वहांपर जा पहुंचे । ( १५-१८ )

एकसौ बावन अध्याय समाप्त । [ ५०५१ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ तिरपन अध्याय ।

राजा जनमेजय बोले, हे महामुनि ! श्रीकृष्ण, पुत्रके सहित विराट, द्रुपद, केकय और यदुवंशी आदि सैकड़ों राजाओंसे युक्त, देवताओंमें इन्द्रके समान महारथ वीरोंसे रक्षित, राजा युधिष्ठिरको कुरुक्षेत्रमें पहुंचा हुआ सुनकर राजा दुर्योधनने क्या कार्य किया था ? उस महा सेनाके कुरुक्षेत्रमें उपस्थित होनेपर जो जो वृत्तान्त हुआ था; वह

व्यथयेयुरिमे देवान्सेन्द्रानपि समागमे ।  
 पाण्डवा वासुदेवश्च विराटद्रुपदौ तथा ॥ ५ ॥  
 धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः ।  
 युधामन्युश्च विक्रान्तो देवैरपि दुरासदः ॥ ६ ॥  
 एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ।  
 कुरूणां पाण्डवानां च यद्यदासीद्विचेष्टितम् ॥ ७ ॥  
 वैशम्पायन उवाच-प्रतियाते तु दाशार्हे राजा दुर्योधनस्तदा ।  
 कर्ण दुःशासनं चैव शकुनिं चाऽब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥  
 अकृतेनैव कार्येण गतः पार्थानघोक्षजः ।  
 स एनान्मन्युनाऽऽविष्टो ध्रुवं धक्ष्यत्यसंशयम् ॥ ९ ॥  
 इष्टो हि वासुदेवस्य पाण्डवैर्मम विग्रहः ।  
 भीमसेनार्जुनौ चैव दाशार्हस्य मते स्थितौ ॥ १० ॥  
 अजातशत्रुरत्यर्थं भीमसेनवशानुगः ।  
 निकृतश्च मया पूर्वं सह सर्वैः सहोदरैः ॥ ११ ॥  
 विराट्द्रुपदौ चैव कृतवैरौ मया सह ।  
 तौ च सेनाप्रणेतारौ वासुदेववशानुगौ ॥ १२ ॥

विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये । (१-४)

पाण्डव लोग श्रीकृष्ण, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकी और अत्यन्त ही पराक्रमी महारथ वीरोंसे युक्त होकर देवताओंके सहित इन्द्रको भी भयभीत कर सकते थे । हे महामुनि! इससे कौरव पाण्डवोंमें जो जो वृत्तान्त हुआ था, वह तुम विस्तारपूर्वक वर्णन करो । (५-७)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजेन्द्र! श्रीकृष्णके कुरुसभासे चले जानेपर राजा दुर्योधन कर्ण, दुःशासन और शकुनिसे यह वचन बोले, “कृष्ण जब यहांसे

निराश होकर पाण्डवोंके समीपमें गये हैं, तब वह अवश्य ही क्रोधमें भरके पाण्डवोंको उत्तेजित करेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । पाण्डवोंके सहित हम लोगोंका युद्ध होवे, यह कृष्णकी अत्यन्त ही अभिलाषा है । भीम-अर्जुन भी कृष्णके मतमें सम्मत हैं, और युधिष्ठिर, भीमके अत्यन्त ही वशमें हैं । पहिले वह भाइयोंके सहित मुझसे अपमानित किये गये थे । (८-११)

मैंने जिनके सङ्ग शत्रुता की थी, वह विराट और द्रुपद भी कृष्णके वशमें होकर युधिष्ठिरकी सेनाके नायक हुए

भविता विग्रहः सोऽयं तुमुलो लोमहर्षणः ।  
 तस्मात्सांग्रामिकं सर्वं कारयध्वमतन्द्रिताः ॥ १३ ॥  
 शिविराणि कुरुक्षेत्रे क्रियन्तां वसुधाधिपाः ।  
 स्वपर्याप्तावकाशानि दुरादेयानि शत्रुभिः ॥ १४ ॥  
 आसन्नजलकोष्ठानि शतशोऽथ सहस्रशः ।  
 अच्छेद्याहारमार्गाणि बन्धोच्छ्रयचितानि च ॥ १५ ॥  
 विविधायुधपूर्णानि पताकाध्वजवन्ति च ।  
 समाश्च तेषां पन्थानः क्रियन्तां नगराद्वहिः ॥ १६ ॥  
 प्रयाणं घुष्यतामद्य श्वोभूत इति मा चिरम् ।  
 ते तथेति प्रतिज्ञाय श्वोभूते चक्रिरे तथा ॥ १७ ॥  
 हृष्टरूपा महात्मानो निवासाय महीक्षिताम् ।  
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तच्छ्रुत्वा राजशासनम् ॥ १८ ॥  
 आसनेभ्यो महार्हेभ्य उदतिष्ठन्नमर्षिताः ।  
 बाहून्परिघसङ्काशान्संसृशन्तः शनैः शनैः ॥ १९ ॥  
 काञ्चनाङ्गददीप्तांश्च चन्दनागुरुभूषितान् ।  
 उष्णीषाणि नियच्छन्तः पुण्डरीकनिभैः करैः ॥  
 अन्तरीयोत्तरीयाणि भूषणानि च सर्वशः ॥ २० ॥

हैं; इससे अब रावेंको खड़ा करनेवाला  
 महाघोर संग्राम उपस्थित होगा, इससे  
 तुम लोग आलस्यको छोड़कर युद्धके  
 योग्य सब वस्तुओंको इकट्ठी करो ।  
 कुरुक्षेत्रमें बहुत दूरतक शत्रुओंसे पृथक्  
 अन्न, जल, काठ, बहुतसी भोजन करने  
 की वस्तु, बहुतसे शस्त्र और ध्वजा  
 पताकासे युक्त सैकड़ों सहस्रों शिविर  
 तैयार कराओ । नगरके बाहर सेनाके  
 गमन करने योग्य सब मार्गोंको समान  
 तथा साफ़ करा दो । (१२—१६)

आज ही ढिंडोरा देदो “ कि कलह

युद्धके निमित्त यात्रा की जायगी। ” वह  
 सब राजा लोग प्रसन्न होकर बोले,  
 “ ऐसा ही होगा । ” ऐसी प्रतिज्ञा करके  
 दूसरे दिन राजाओंके निवासके निमित्त  
 सब कार्यको समाप्त किया । अनन्तर  
 इकट्ठे हुए सब राजा लोग राजशासनको  
 सुनकर बहुमूल्य आसनोंसे त्वरित उठे;  
 मणि सुवर्णसे भूषित चन्दनचर्चित परिघ  
 के समान अपनी भुजाको धीरे धीरे स्पर्श  
 करने लगे और अपने करकमलोंसे  
 वस्त्र, आभूषण, शिरोभूषण पहिरने लगे ।  
 मुख्य मुख्य रथी लोग रथ, घुसडवार



ते रथान् रथिनः श्रेष्ठा हयांश्च हयकोविदाः ।  
 सज्जयन्ति स्म नागांश्च नागशिक्षास्वनुष्ठिताः ॥ २१ ॥  
 अथ वर्माणि चित्राणि काञ्चनानि बहूनि च ।  
 विविधानि च शस्त्राणि चक्रुः सर्वाणि सर्वशः ॥ २२ ॥  
 पदातयश्च पुरुषाः शस्त्राणि विविधानि च ।  
 उपाजग्हुः शरीरेषु हेमचित्राण्यनेकशः ॥ २३ ॥  
 तदुत्सव इवोदग्रं सम्प्रहृष्टनरावृतम् ।  
 नगरं धार्तराष्ट्रस्य भारताऽऽसीत्समाकुलम् ॥ २४ ॥  
 जनौघसलिलावर्तो रथनागाश्चमीनवान् ।  
 शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः कोशसञ्चरतवान् ॥ २५ ॥  
 चित्राभरणवर्मोर्मिः शस्त्रनिर्मलफेनवान् ।  
 प्रासादमालाद्रिवृतो रथ्यापणमहाहृद् ॥ २६ ॥  
 योधचन्द्रोदयोद्भूतः कुरुराजमहार्णवः ।  
 व्यहृद्यत तदा राजंश्चन्द्रोदय इवोदधिः ॥ २७ ॥ [५०७८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि  
 दुर्योधनसैन्यसज्जकरणे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

घोड़े और हाथियोंकी शिक्षामें निपुण पुरुष हाथियोंको सजाने लगे । (१७-२१)

उसके अनन्तर वीरोंने सुवर्ण भूषित वर्म और सब शस्त्रोंको धारण किया । पैदल चलनेवाले वीरोंने भी अपने शरीरपर कई प्रकारके शस्त्र और कवचोंको धारण किया । हे भारत ! अत्यन्त ही प्रसन्न चित्तसे वीर पुरुषोंके इकट्ठे होनेपर वह नगर उत्सवके समयकी भांति मालूम होने लगा । (२२-२४)

हे राजन् ! उस समय वीर योद्धारूपी चन्द्रमाके उदय होनेपर कुरुराजरूपी समुद्र यथार्थमें समुद्रकी भांति

दिखाई देने लगा । उस महा समुद्रमें सब सेना जल और तरङ्ग रूप हुई; रथ, घोड़े और हाथी-भगर मच्छ और घड़ियाल रूपसे दीख पड़ते थे । शंख, भेरी और नगाड़े तथा घोसोंका शब्द समुद्रकी लहरके समान बोध होने लगा; खजाना रत्नके स्थानमें बोध होता था; विचित्र भूषण, वर्म तथा सब शस्त्र समुद्रके फेनके समान दिखाई देने लगे; ऊंचे मन्दिरोंका समूह समुद्रके तीर पर रहनेवाले पर्वत और उस सेनाके चलनेका मार्ग हृदरूपी दीखता था । (२५-२७)

एकसौ तिरपन अध्याय समाप्त । [५०७८]

वैशम्पायन उवाच-वासुदेवस्य तद्वाक्यमनुस्मृत्य युधिष्ठिरः ।

पुनः पप्रच्छ वाष्णेयं कथं मन्दोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

अस्मिन्नभ्यागते काले किं च नः क्षममच्युत ।

कथं च वर्तमाना वै स्वधर्मान्न च्यवेमहि ॥ २ ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ।

वासुदेव मतज्ञोऽसि मम सभ्रातृकस्य च ॥ ३ ॥

विदुरस्याऽपि तद्वाक्यं श्रुतं भीष्मस्य चोभयोः ।

कुन्त्याश्च विपुलप्रज्ञ प्रज्ञा कात्स्नर्येन ते श्रुता ॥ ४ ॥

सर्वमेतदतिक्रम्य विचार्य च पुनः पुनः ।

क्षमं यन्नो महाबाहो तद्ब्रवीत्यविचारयन् ॥ ५ ॥

श्रुत्वैतद्धर्मराजस्य धर्मार्थसहितं वचः ।

मेघदुन्दुभिनिर्घोषः कृष्णो वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥ ६ ॥

कृष्ण उवाच— उक्तवानस्मि यद्वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।

न तु तन्निकृतिप्रज्ञे कौरव्ये प्रतितिष्ठति ॥ ७ ॥

न च भीष्मस्य दुर्मेधाः शृणोति विदुरस्य वा ।

मम वा भाषितं किञ्चित्सर्वमेवाऽतिवर्तते ॥ ८ ॥

उद्योगपर्वमें एकसौ चौवन अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रके पहिले कहे हुए वचनोंको स्मरण करके फिर उनसे पूछा, हे कृष्ण ! मुख दुर्योधनने किस प्रकारसे इस वचनको कहा था ? और इस उपस्थित समयमें कैसे कार्यका अनुष्ठान करनेसे मैं धर्म और अर्थसे पतित न होऊंगा ? हे महाबाहो ! तुम दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और भाइयोंके सहित मेरे अभिप्रायको भी जानते हो । हे महाबुद्धिमन् ! तुमने विदुर, भीष्म और माता कुन्ती-देवीके अभिप्रायको अच्छे

प्रकारसे सुना है । इससे तुम उन सब बातोंका भली भाँतिसे विचार करके जिस कार्यको करनेसे मेरा मङ्गल होवे, वैसी ही युक्ति मुझसे वर्णन करो । ( १-५ )

श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरके धर्म और अर्थसे भरे हुए ऐसे वचन सुनकर बादल और नगाड़ेके समान गंभीर शब्दसे यह वचन बोले, तुमने जो धर्म अर्थसे युक्त हित वचनोंको कहा था, नीच बुद्धि दुर्योधनने उनको नहीं ग्रहण किया । उस दुष्टात्माने भीष्म, विदुर, मेरे तथा किसीके वचनों को भी नहीं स्वीकार किया । वह सबकी बातोंको

नैष कामयते धर्मं नैष कामयते यशः ।  
 जितं स मन्यते सर्वं दुरात्मा कर्णमाश्रितः ॥ ९ ॥  
 बन्धमाज्ञापयामास मम चापि सुयोधनः ।  
 न च तं लब्धवान्कामं दुरात्मा पापनिश्चयः ॥ १० ॥  
 न च भीष्मो न च द्रोणो युक्तं तत्राऽऽहतुर्वचः ।  
 सर्वे तमनुवर्तन्ते ऋते विदुरमच्युत ॥ ११ ॥  
 शकुनिः सौबलश्चैव कर्णदुःशासनावपि ।  
 त्वय्ययुक्तान्यभाषन्त सूढा सूढममर्षणम् ॥ १२ ॥  
 किं च तेन मयोक्तेन यान्यभाषत कौरवः ।  
 संक्षेपेण दुरात्माऽसौ न युक्तं त्वयि वर्तते ॥ १३ ॥  
 पार्थिवेषु न सर्वेषु य इमे तव सैनिकाः ।  
 यत्पापं यन्न कल्याणं सर्वं तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥ १४ ॥  
 न चाऽपि वयमत्यर्थं परित्यागेन कर्हिचित् ।  
 कौरवैः शममिच्छामस्तत्र युद्धमनन्तरम् ॥ १५ ॥

उल्लंघन करके स्वकीय इच्छाके अनुसार  
 कार्य करता है । वह दुष्टबुद्धि न धर्मकी  
 इच्छा करता है और न यशकी अभि-  
 लाषा करता है; वह कर्णका आसरा करके  
 “मैंने सबको जीत लिया” अपने  
 मनमें ऐसा ही समझता है । (६-१०)

उस पापबुद्धि दुष्ट दुर्योधनने मुझको  
 भी कैद करनेकी आज्ञा दी थी;  
 परन्तु उसकी वह अभिलाषा सफल  
 नहीं हुई । उस विषयमें भीष्म, द्रोण  
 आदि किसीने भी युक्तिसे पूरित वच-  
 नोंको नहीं कहा था । एक मात्र विदुरके  
 अतिरिक्त और सब लोग उसके अनु-  
 गामी हुए थे । नीच बुद्धि शकुनि,  
 कर्ण और दुःशासनने तुम्हारे विषयमें

अनेक प्रकारके बुरे वचनोंको कहा था ।  
 दुर्योधनने जिन सब वचनोंको कहा है,  
 उनके वर्णन करनेकी कुछ भी आवश्य-  
 कता नहीं है; उसका संक्षेप मर्म यही  
 है, कि वह तुमको उचित रीतिसे राज्य  
 न देगा और न तुम्हारे संग और  
 तुम्हारी सेनामें इकट्ठे हुए राजाओंके  
 संग भी उत्तम व्यवहार करेगा । जो कुछ  
 पाप तथा बुरे कर्म हैं; वह सब उस  
 नीच बुद्धि दुर्योधनमें विद्यमान हैं । हम  
 लोग भी लक्ष्मीको त्याग कर किसी  
 प्रकार भी कौरवोंके संग शान्ति नहीं  
 स्थापित कर सकते; इससे अब ऐसी  
 अवस्थामें युद्ध ही करना उचित  
 है । (११-१५)

वैशम्पायन उवाच-तच्छ्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे वासुदेवस्य भाषितम् ।

अब्रुवन्तो मुखं राज्ञः समुदैक्षन्त भारत ॥ १६ ॥

युधिष्ठिरस्त्वभिप्रायमभिलक्ष्य महीक्षिताम् ।

योगमाज्ञापयामास भीमार्जुनयमैः सह ॥ १७ ॥

ततः किलकिलाभूतमनीकं पाण्डवस्य ह ।

आज्ञापिते तदा योगे समहृष्यन्त सैनिकाः ॥ १८ ॥

अवध्यानां वधं पश्यन्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

निःश्वसन्भीमसेनं च विजयं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥

यदर्थं वनवासश्च प्राप्तं दुःखं च यन्मया ।

सोऽयमस्मानुपैत्येव परोऽनर्थः प्रयत्नतः ॥ २० ॥

तस्मिन्यत्नः कृतोऽस्माभिः स नो हीनः प्रयत्नतः ।

अकृते तु प्रयत्नेऽस्मानुपावृत्तः कलिर्महान् ॥ २१ ॥

कथं ह्यवध्यैः संग्रामः कार्यः सह भविष्यति ।

कथं हत्वा गुरुन्वृद्धान्विजयो नो भविष्यति ॥ २२ ॥

तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्य सव्यसाची परन्तपः ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत !

श्रीकृष्णचन्द्रके इस वचनको सुनकर सम्पूर्ण राजा लोग कुछ भी न कहके महाराज युधिष्ठिरके मुंहकी ओर देखने लगे । तब राजा युधिष्ठिरने सब राजाओं-के अभिप्रायको जानकर भीम, अर्जुन और नकुल सहदेवके संग विचार करके युद्धकी तैयारी करनेकी आज्ञा दी । अनन्तर पाण्डवोंकी सेनामें महा घोर कोलाहल होने लगी । युद्धके तैयारीकी आज्ञाको सुनकर सेनाके पुरुष अत्यन्त ही आनन्दित और प्रसन्न हुए । १६-१८

परन्तु धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर अवध्य पुरुषोंके वधको देखनेके निमित्त लम्बी

सांस लेकर भीम अर्जुनसे यह वचन बोले, जिसको त्यागनेके निमित्त मैंने वनवास स्वीकार करके अत्यन्त क्लेश सहन किया था; वही महा अनर्थ प्रयत्नके क्रमसे हम लोगोंमें उपास्थित हो रहा है । इस विषयमें हम लोगोंने जो यत्न किया, वह निष्फल हुआ और कुछ भी यत्न न करनेपर भी यह महा भयङ्कर संग्राम उपास्थित हुआ है, वन्दना करने योग्य माननीय पुरुषोंके संग कैसे युद्ध हो सकता है ? वृद्ध गुरु आदि पुरुषोंके वध करनेसे ही मेरा किस प्रकारसे विजय होगा ? ( १९-२२ )

धर्मराज युधिष्ठिरके वचनको सुनकर

यदुक्तं वासुदेवेन श्रावयामास तद्वचः ॥ २३ ॥

उक्तवान्देवकीपुत्रः कुन्त्याश्च विदुरस्य च ।

वचनं तत्त्वया राजन्निखिलेनाऽवधारितम् ॥ २४ ॥

न च तौ वक्ष्यतोऽधर्ममिति मे नैष्ठिकी मतिः ।

नाऽपि युक्तं च कौन्तेय निवर्तितुमयुध्यतः ॥ २५ ॥

तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽपि सव्यसाचिवचस्तदा ।

स्मयमानोऽब्रवीद्वाक्यं पार्थमेवमिति ब्रुवन् ॥ २६ ॥

ततस्ते धृतसङ्कल्पा युद्धाय सहसैनिकाः ।

पाण्डवेया महाराज तां रात्रिं सुखभावसन् ॥ २७ ॥ ५१०५

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

वैशम्पायन उवाच-व्युष्टायां वै रजन्यां हि राजा दुर्योधनस्ततः ।

व्यभजत्तान्यनीकानि दश चैकं च भारत ॥ १ ॥

नरहस्तिरथाश्वानां सारं मध्यं च फल्गु च ।

सर्वेष्वेतेष्वनीकेषु सन्दिदेश नराधिपः ॥ २ ॥

सानुकर्षाः सतूणीराः सवरूथाः सतोमराः ।

परन्तप अर्जुन श्रीकृष्णके कहे हुए सब वचनोंका स्मरण कराके यह वचन बोले, हे राजन् ! देवकीनन्दन कृष्णने कुन्ती और विदुरके कहे हुए जिन सब वचनोंको सुनाथा; वह सम्पूर्ण रूपसे तुमने निश्चय किया है; मुझे यह निश्चय बोध होता है, कि वह लोग किसी प्रकारसे भी अधर्मसे युक्त वचन न कहेंगे, विशेष करके बिना युद्ध किये हम लोगोंको निवृत्त होना उचित नहीं है । अनन्तर राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और अर्जुनके वचनको सुनकर हंसके कहा “ यही ठीक है ” ऐसा कहनेसे उन लोगोंके वचनकी पुष्टता होगई । हे महाराज !

इसके अनन्तर पाण्डवोंने युद्ध करनेके निमित्त सङ्कल्प करके सेनाके पुरुषोंके सहित परम सुखसे निवास करके रात बिताई । ( २३-२७ ) [ ५१०५ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ चौवन अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ पचपन अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत ! अनन्तर रातके बतनेपर राजा दुर्योधनने अपनी ग्यारह अश्वौहिणी सेनाको नियमके अनुसार विभाग किया और मनुष्य, हाथी, घोड़े, रथ आदिका उत्तम मध्यम विचार करके आगे पीछे और सेनाके रहनेके निमित्त आज्ञा देदी। ( १-२ ) अनुकर्ष, तूणीर, वरूथ ( रथको

सोपासङ्गाः सशक्तीकाः सनिषङ्गाः सहर्षयः ॥ ३ ॥

सध्वजाः सपताकाश्च सशरासनतोमराः ।

रज्जुभिश्च विचित्राभिः सपाशाः सपरिच्छदाः ॥ ४ ॥

सकचग्रहविक्षेपाः सतैलगुडवालुकाः ।

साशीविषघटाः सर्वे ससर्जरसपांसवः ॥ ५ ॥

सघण्टफलकाः सर्वे साधोगुडजलोपलाः ।

सशालभिन्दिपालाश्च समधूच्छिष्टमुद्गराः ॥ ६ ॥

सकाण्डदण्डकाः सर्वे ससीरविषतोमराः ।

सशूर्पपिटकाः सर्वे सदात्राङ्कुशतोमराः ॥ ७ ॥

सकीलकवचाः सर्वे वाशीवृक्षादनान्विताः ।

व्याघ्रचर्मपरीवारा द्वीपिचर्मावृताश्च ते ॥ ८ ॥

सहर्षयः सशृङ्गाश्च सप्रासविविधायुधाः ।

सकुठाराः सकुदालाः सतैलक्षौमसर्पिषः ॥ ९ ॥

रुक्मजालप्रतिच्छन्ना नानामणिविभूषिताः ।

चित्रानीकाः सुवपुषो ज्वलिता इव पावकाः ॥ १० ॥

तथा कवचिनः शूराः शस्त्रेषु कृतनिश्चयाः ।

कुलीना हययोनिजाः सारथ्ये विनिवेशिताः ॥ ११ ॥

ढकनेके निमित्त व्याघ्र आदिके चमड़े)  
तोमर, उपासंग, शक्ति, निषंग, ध्वजा,  
पताका, ऋष्टि, धनुष, तोमर, कई  
प्रकारके रस्से, फांसे, तैल, गुड, बालू,  
सर्पसे युक्त घड़े, धूपके चूर्ण, घण्टफलक  
(घण्टासे युक्त चोखे शस्त्र) लोहेकी गाली,  
जलयुक्त पत्थर, शूलसे युक्त भिन्दिपाल,  
मोम, मुद्गर, काटेसे युक्त दण्ड, लांगल,  
विषदिग्ध तोमर, शूर्प, पिटक, परशु,  
अंकुशके तोमर, दण्डसे युक्त कर-  
पत्र, वासी, वृक्षादन (लोहेके काटे)  
वाघ आदिके चमड़ेसे घिरे हुए रथ,

ऋष्टि, शृंग, प्रास, विविध आयुध,  
माला, कुठार आदि बहुतसे शस्त्र, तैलसे  
युक्त वस्त्र (जिसका मस्म घावपर ल-  
गाई जाती है) घावकी शोधनके वास्ते  
पुराना घृत आदि अनेक प्रकारकी  
युद्धके योग्य सब सामग्री और अनेक  
सैनिक वीरोंके सुवर्ण तथा रत्नोंसे भू-  
षित होनेपर वह सेना जलती हुई  
अग्निके समान दीखने लगी। (३-१०)

कवच धारण करनेवाले, शस्त्रोंकी  
शिक्षा तथा घोड़ोंके तत्त्वोंको जानने वाले  
कुलीन वीर लोग सारथ्यपर नियुक्त हुए।

बद्धारिष्टा बद्धकक्षा बद्धध्वजपताकिनः ।  
 बद्धाभरणनिर्यूहा बद्धचर्मसिपट्टिशाः ॥ १२ ॥  
 चतुर्युजो रथाः सर्वे सर्वे चोत्तमवाजिनः ।  
 सप्रासक्तष्टिकाः सर्वे सर्वे शतशरासनाः ॥ १३ ॥  
 धुर्ययोर्हययोरेकस्तथाऽन्यौ पार्ष्णिसारथी ।  
 तौ चापि रथिनां श्रेष्ठौ रथी च हयवित्तथा ॥ १४ ॥  
 नगराणीव गुप्तानि दुराधर्षाणि शत्रुभिः ।  
 आसन्नरथसहस्राणि हेममालीनि सर्वशः ॥ १५ ॥  
 यथा रथास्तथा नागा बद्धकक्षाः खलंकृताः ।  
 बभूवुः सप्त पुरुषा रत्नवन्त इवाऽद्रयः ॥ १६ ॥  
 द्वावंकुशधरौ तत्र द्वावुत्तमधनुर्धरौ ।  
 द्वौ वरासिधरौ राजन्नेकः शक्तिपिनाकधृक् ॥ १७ ॥  
 गजैर्मत्तैः समाकीर्णं सबर्मायुधकोशकैः ।  
 तद्वभूव बलं राजन्कौरव्यस्य महात्मनः ॥ १८ ॥

रथमें उत्तम जातिके चार चार घोड़े जोते गये; अशुभ लक्षणोंके निवारणके वास्ते यन्त्र, औषधि; घोड़ोंके भूषित करनेके निमित्त घण्टा, माला, मोतियोंकी लड़ी, ध्वज, पताका, मुकुट, भूषण, तरवार, पट्टिश, प्रास और एक एक सौ धनुष रथोंमें रखे गये। रथके अगाड़ीके दोनों घोड़ोंके निमित्त एक सारथी और रथके चक्रके पीछे दोनों घोड़ोंके निमित्त दो सारथी नियुक्त किये गये। ऐसे ही रथके ऊपर दो उत्तम सारथी, रथी और घोड़ोंके तत्त्वोंको जाननेवाले वीर पुरुषोंसे रक्षित, सुवर्णकी मालासे युक्त और शत्रुओंसे जीतनेके अयोग्य, सुरक्षित नगरोंके

समान दीखने वाले सहस्रों रथ चारों ओर दीखने लगे। ( ११-१५ )

रथहीके अनुसार सुवर्णके भूषणोंसे भूषित किये गये, हाथियोंके हौदेमें सात सात वीर पुरुषोंके चढ़ने पर ऐसी शोभा हुई जैसे रत्नोंके सहित पर्वत शोभायमान होता है। इन सात वीरोंमें दो अंकुश ग्रहण करनेवाले, दो तरवार चलाने वाले और एक एक शक्ति तथा त्रिशूल चलाने वाले वीर योद्धा रखे गये। हे महाराज ! राजा दुर्योधनकी वह सेना अनेक प्रकारके वर्म और तूणीरसे युक्त तथा विचित्र रूपसे कवच, पताका और उत्तम भूषणोंसे भूषित होकर मतवारे हाथियोंके झुण्डसे घिर गई। १६-१८

आमुक्तकवचैर्युक्तैः सपताकैः खलंकृतैः ।  
 सादिभिश्चोपपन्नास्तु तथा चाऽयुतशो हयाः ॥ १९ ॥  
 असंग्राहाः सुसम्पन्ना हेमभाण्डपरिच्छदाः ।  
 अनेकशतसाहस्राः सर्वे सादिवशे स्थिताः ॥ २० ॥  
 नानारूपविकाराश्च नानाकवचशस्त्रिणः ।  
 पदातिनो नरास्तत्र बभूवुर्हेममालिनः ॥ २१ ॥  
 रथस्याऽऽसन्दश गजा गजस्य दश वाजिनः ।  
 नरा दश हयस्याऽऽसन्पादरक्षाः समन्ततः ॥ २२ ॥  
 रथस्य नागाः पञ्चाशन्नागस्याऽऽसञ्शतं हयाः ।  
 हयस्य पुरुषाः सप्त भिन्नसन्धानकारिणः ॥ २३ ॥  
 सेना पञ्चशतं नागाः रथास्तावन्त एव च ।  
 दश सेना च पृतना पृतना दश वाहिनी ॥ २४ ॥  
 सेना च वाहिनी चैव पृतना ध्वजिनी चमूः ।  
 अक्षौहिणीति पर्यायैर्निरुक्ता च वरूथिनी ॥ २५ ॥  
 एवं व्यूढान्यनीकानि कौरवेयेण धीमता ।  
 अक्षौहिण्यो दशैका च संख्याताः सप्त चैव ह ॥ २६ ॥

विचित्र रूपके कवच, पताका, उत्तम  
 भूषणोंसे युक्त, असवारोंके सहित, दोषों  
 से रहित, उत्तम शिक्षासे युक्त, दश दश  
 हजार तथा लाख लाख घोड़ोंका समूह  
 असवारोंके वशमें चलने लगा; नाना  
 प्रकारके भूषण, शस्त्र, सुवर्णकी माला  
 और कवचोंसे युक्त होकर अगणित  
 पैदल चलनेवाले वीर योद्धा सजके खड़े  
 हुए । एक एक रथके साथ दश हाथी,  
 एक एक हाथी पर दश दश घोड़े और  
 एक एक घोड़ेके निमित्त दश दश पैदल  
 चलनेवाले वीर योद्धा पादरक्षक बनाये  
 गए । रथसे पचास गुने हाथी, हाथीसे

सौगुणे घोड़े, और घोड़ोंसे सातगुणे  
 भिन्न संधान करने वाले मनुष्य रक्खे  
 गये । ( १९—२३ )

इसके अतिरिक्त छिन्न-भिन्न सेना  
 फिरसे सजाई जाने लगी, पाँचसौ रथ  
 और पाँच सौ हाथियों पर एक सेना,  
 दश सेनाओं पर एक पृतना, दश पृतना  
 ओं पर एक वाहिनी रक्खी गई; इस रीतिसे  
 सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजिनी, चमू,  
 वरूथिनी अक्षौहिणी आदि शब्द समाना-  
 र्थक ही हैं । बुद्धिमान् राजा दुर्योधनने  
 इसी सेनाके व्यूहकी रचना की । दोनों  
 ओरकी सम्पूर्ण सेना अठारह अक्षौहिणी



अक्षौहिण्यस्तु सप्तैव पाण्डवानामभूद्वलम् ।  
 अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणामभूद्वलम् ॥ २७ ॥  
 नराणां पञ्चपञ्चाशदेषा पत्तिर्विधीयते ।  
 सेनामुखं च तिस्रस्ता गुल्म इत्यभिशाब्दितम् ॥ २८ ॥  
 त्रयो गुल्मा गणस्त्वासीद्गुणास्त्वयुतशोऽभवन् ।  
 दुर्योधनस्य सेनासु योत्स्यमानाः प्रहारिणः ॥ २९ ॥  
 तत्र दुर्योधनो राजा शूरान्बुद्धिमतो नरान् ।  
 प्रसमीक्ष्य महाबाहुश्चक्रे सेनापतींस्तदा ॥ ३० ॥  
 पृथगक्षौहिणीनां च प्रणेतृन्तरसत्तमान् ।  
 विधिवत्पूर्वमानीय पार्थिवानभ्यभाषत ॥ ३१ ॥  
 कृपं द्रोणं च शल्यं च सैन्धवं च जयद्रथम् ।  
 सुदक्षिणं च काम्बोजं कृतवर्माणमेव च ॥ ३२ ॥  
 द्रोणपुत्रं च कर्णं च भूरिश्रवसमेव च ।  
 शकुनिं सौबलं चैव बाह्लीकं च महाबलम् ॥ ३३ ॥  
 दिवसे दिवसे तेषां प्रतिवेलं च भारत ।  
 चक्रे स विविधाः पूजाः प्रत्यक्षं च पुनः पुनः ॥ ३४ ॥  
 तथा विनियताः सर्वे ये च तेषां पदानुगाः ।

हुई; उनमेंसे पाण्डवोंकी सात अक्षौहिणी  
 और कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना  
 थी । ( २४-२७ )

पचपन मनुष्योंकी एक पत्ति, तीन  
 पत्तियोंका एक सेनामुख वा गुल्म होता  
 है और तीन गुल्मोंसे एक गण कहा  
 जाता है; दुर्योधनकी सेनाके बीच ऐसे  
 सहस्रों गण युद्धके निमित्त हर्षित और  
 उत्साहित होकर उपस्थित हुए । महा-  
 बाहु राजा दुर्योधनने अच्छे प्रकारसे  
 विचार पूर्वक पराक्रमी बुद्धिमान मनु-  
 ष्योंको अपनी सेनाका सेनापति

बनाया । ( २८-३० )

कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य, जय-  
 द्रथ, काम्बोजराज सुदक्षिण, कृतवर्मा,  
 अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनि  
 और बाह्लिक,—इन सब राजाओंको  
 नियमके अनुसार पृथक् पृथक् अक्षौहि-  
 णीका नायक बनाकर सबका यथा उचित  
 सम्मान किया और प्रतिदिन तथा हर  
 घड़ी अपने सम्मुख इन लोगोंकी अनेक  
 प्रकारसे पूजा करने लगे । हे राजन् !  
 इसी प्रकारके नियममें बद्ध होकर वह  
 सब पराक्रमी राजा और उनके पृष्ठरक्षक

बभ्रूवुः सैनिका राज्ञां प्रियं राज्ञश्चिकीर्षवः ॥ ३५ ॥ [५१४०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि

दुर्योधनसैन्यविभागे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततः शान्तनवं भीष्मं प्राञ्जलिर्धृतराष्ट्रजः ।

सह सर्वैर्महीपालैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

ऋते सेनाप्रणेतारं पृतनासु महत्यपि ।

दीर्यते युद्धमासाद्य पिपीलिकपुटं यथा ॥ २ ॥

नहि जातु द्वयोर्बुद्धिः समा भवति कर्हिचित् ।

शौर्यं च बलनेतृणां स्पर्धते च परस्परम् ॥ ३ ॥

श्रूयते च महाप्राज्ञ हैहयानमितौजसः ।

अभ्ययुर्ब्राह्मणाः सर्वे समुच्छिन्नकुशध्वजाः ॥ ४ ॥

तानभ्ययुस्तदा वैश्याः शूद्राश्चैव पितामह ।

एकतस्तु त्रयो वर्णा एकतः क्षत्रियर्षभाः ॥ ५ ॥

ततो युद्धेष्वभज्यन्त त्रयो वर्णाः पुनः पुनः ।

क्षत्रियाश्च जयन्त्येव बहुलं चैकतो बलम् ॥ ६ ॥

वीर योद्धा लोग राजा दुर्योधनके प्रिय  
कार्यके साधन करनेके निमित्त उत्साही  
हुए । ( ३१-३५ ) [ ५१४० ]

उद्योगपर्वमें एकसौ पचपन अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ छप्पन अध्याय ।

वैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर  
राजा दुर्योधन सब राजाओंके सङ्ग  
मिलकर शान्तनुनन्दन भीष्मसे यह  
वचन बोले, हे पितामह ! सेनापतिके  
विना अत्यन्त बड़ी सेना भी युद्धमें  
पहुँच कर चींटियोंके पृथक् रूपसे ग-  
मन करनेके अनुसार शत्रुओंसे पीडित  
होकर तितर बितर होजाती है; क्यों  
कि दो पुरुषोंकी बुद्धि कभी समान

नहीं होती । और युद्धमें बहुत नेता  
होनेसे शौर्यके विषयमें उन्हींमें स्पर्धा  
उत्पन्न होनेका संभव है । ( १-३ )

हे महाबुद्धिमन् ! सुना जाता है, कि  
ब्राह्मणोंने कुश उखाडकर महातेजस्वी  
हैहयवंशियोंके विरुद्ध युद्धके निमित्त  
यात्रा की थी; उस समयमें वैश्य और  
शूद्र लोग भी उनके अनुगामी हुए थे ।  
इसी प्रकारसे एक ओर क्षत्रिय और दू-  
सरी और तीनों वर्ण थे, अनन्तर युद्ध  
के आरम्भ होनेपर ब्राह्मण आदि तीनों  
वर्णोंका बार बार पराजय होने लगा,  
और क्षत्रियोंने एक पक्ष होकर भी इन  
तीनों वर्णोंको जीत लिया । ( ४-६ )

ततस्ते क्षत्रियानेव पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः ।  
 तेभ्यः शशंसुर्धर्मज्ञा याथातथ्यं पितामह ॥ ७ ॥  
 वयमेकस्य शृण्वाना महाबुद्धिमतो रणे ।  
 भवन्तस्तु पृथक्सर्वे स्वबुद्धिवशवर्तिनः ॥ ८ ॥  
 ततस्ते ब्राह्मणाश्चकुरेकं सेनापतिं द्विजम् ।  
 नये सुकुशलं शूरमजयन्क्षत्रियांस्ततः ॥ ९ ॥  
 एवं ये कुशलं शूरं हितेप्सितमकल्मषम् ।  
 सेनापतिं प्रकुर्वन्ति ते जयन्ति रणे रिपून् ॥ १० ॥  
 भवानुशनसा तुल्यो हितैषी च सदा मम ।  
 असंहार्यः स्थितो धर्मे स नः सेनापतिर्भव ॥ ११ ॥  
 रश्मिवतामिवाऽऽदित्यो वीरुधाभिव चन्द्रमाः ।  
 कुबेर इव यक्षाणां देवानामिव वासवः ॥ १२ ॥  
 पर्वतानां यथा मेरुः सुपर्णः पक्षिणां यथा ।  
 कुमार इव देवानां वसूनामिव हव्यवाद् ॥ १३ ॥  
 भवता हि वयं गुप्ताः शक्रेणैव दिवौकसः ।  
 अनाधृष्या भविष्यामस्त्रिदशानामपि ध्रुवम् ॥ १४ ॥

तब उन ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंसे इसका  
 कारण पूछा और धर्मात्मा क्षत्रियोंने भी  
 उन लोगोंसे यही यथार्थ उत्तर दिया,  
 कि हम लोग युद्धमें एक महाबुद्धिमान्  
 मनुष्यके वचनके अनुसार चलते हैं  
 और आप लोग सब कोई अपनी बुद्धिके  
 वशमें होकर कार्य करते हैं । हे पिता-  
 मह! इसके अनन्तर उन ब्राह्मणोंने नीति  
 जाननेवाले एक महा पराक्रमी और  
 बुद्धिमान् ब्राह्मणको अपना सेनापति  
 बनाया और इसीसे क्षत्रियोंको युद्धमें  
 जीता था । ऐसे ही जो पुरुष नीतिसे  
 युक्त, पराक्रमी, हितैषी, पाप रहित

किसी पुरुषको अपना सेनापति बनाते  
 हैं; वह शत्रुओंको जीत लेते हैं । ७-१०  
 आप शुक्राचार्यके समान नीतिज्ञ,  
 सब शस्त्रोंको जाननेवाले और धर्मात्मा  
 हैं; विशेष करके हमारे हितकी अभिलाषा  
 करनेवाले हैं । इससे जैसे तेजस्वी पदा-  
 थोंमें आदित्य, ओषधियोंमें चन्द्र-  
 मा, यक्षोंमें कुबेर, देवताओंमें इन्द्र, पर्वतों  
 में सुमेरु, पक्षियोंमें गरुड, देवोंमें कुमार  
 और वसुओंमें अग्नि मुख्य हैं; उसी प्र-  
 कारसे तुम हम लोगोंके प्रधान सेनापति  
 बनो। क्योंकि इन्द्रसे रक्षित देवताओं  
 की भांति हम लोग तुम्हारे बाहुबलसे

प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः ।

वयं त्वामनुयास्यामः सौरभेया इवर्षभम् ॥ १५ ॥

भीष्म उवाच— एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।

यथैव हि भवन्तो मे तथैव मम पाण्डवाः ॥ १६ ॥

अपि चैव मया श्रेयो वाच्यं तेषां नराधिप ।

संयोद्धव्यं तवार्थाय यथा मे समयः कृतः ॥ १७ ॥

न तु पश्यामि योद्धारमात्मनः सदृशं भुवि ।

ऋते तस्मान्नरव्याघ्रात्कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥ १८ ॥

स हि वेद महाबुद्धिर्दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ।

न तु मां विवृतो युद्धे जातु युद्धयेत पाण्डवः ॥ १९ ॥

अहं चैव क्षणेनैव निर्भनुष्यमिदं जगत् ।

कुर्यां शस्त्रबलेनैव ससुरासुरराक्षसम् ॥ २० ॥

न त्वेवोत्सादनीया मे पाण्डोः पुत्रा जनाधिप ।

तस्माद्योधान्हनिष्यामि प्रयोगेणाऽयुतं सदा ॥ २१ ॥

रक्षित होकर देवताओंसे भी न जीतने योग्य होवेंगे; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। तुम देवताओंमें अग्रणी स्वामि कार्तिकीकी भांति हम लोगोंके आगे आगे चलो, हम लोग महावृषभके पीछे बछड़ोंकी भांति तुम्हारे पीछे गमन करेंगे । (११—१५)

भीष्म बोले, हे महाबाहो ! तुम जो कुछ वचन कहते हो, वह सब ठीक है; परन्तु मेरे पक्षमें जैसे तुम लोग हो; वैसे ही पाण्डव भी हैं। हे राजेन्द्र ! इससे मुझे उन लोगोंके निमित्त भी कल्याणके वचन कहने पड़ेंगे और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तुम्हारे निमित्त युद्ध भी करना पड़ेगा। उस एक मात्र अर्जुनके अतिरिक्त मैं इस पृथ्वीमें ऐसा

कोई वीर योद्धा भी नहीं देखता हूं, जो मेरे समान हो सके। महा बुद्धिमान् पाण्डुपुत्र अर्जुन अनेक दिव्य अस्त्रोंको जानता है; इससे वह युद्धमें मेरे समान हो सकता है; परन्तु वह रणभूमिमें प्रकाशित होकर कभी मेरे सङ्ग युद्ध न कर सकेगा । (१६—१९)

मैं अपने शस्त्रोंके बलकी सहायतासे क्षण भरमें देवता असुर और राक्षसों के सहित इस सम्पूर्ण जगत्को मनुष्यहीन कर सकता हूं परन्तु हे प्रजानाथ ! पाण्डुपुत्रोंको मैं किसी प्रकारसे नष्ट करने में उत्साही न होऊंगा। इससे मैं अपने शस्त्रोंको चलाकर प्रतिदिन दूसरे दश हजार वीर योद्धाओंको मारूंगा ।

एवमेषां करिष्यामि निधनं कुरुनन्दन ।

न चेत्ते मां हनिष्यन्ति पूर्वमेव सभागमे ॥ २२ ॥

सेनापतिस्त्वहं राजन्समयेनाऽपरेण ते ।

भविष्यामि यथाकामं तन्मे श्रोतुमिहाऽर्हसि ॥ २३ ॥

कर्णो वा युद्धयतां पूर्वमहं वा पृथिवीपते ।

स्पर्धते हि सदाऽत्यर्थं सूतपुत्रो मया रणे ॥ २४ ॥

कर्ण उवाच— नाऽहं जीवति गाङ्गेथे राजन्योत्स्ये कथञ्चन ।

हते भीष्मे तु योत्स्यामि सह गाण्डीवधन्वना ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततः सेनापतिं चक्रे विधिवद्भूरिदक्षिणम् ।

धृतराष्ट्रात्मजो भीष्मं सोऽभिषिक्तो व्यरोचत ॥ २६ ॥

ततो भेरीश्च शङ्खाश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।

बादयामासुरव्यग्रा बादका राजशासनात् ॥ २७ ॥

सिंहनादाश्च विविधा वाहनानां च निःस्वनाः ।

प्रादुरासन्ननभ्रे च वर्षा रुधिरकर्दमम् ॥ २८ ॥

निर्घाताः पृथिवीकम्पा गजवृंहितनिःस्वनाः ।

रणभूमिमें यदि पहिले ही वह लोग मुझे न मारेंगे, तो इसी प्रकारसे उन लोगोंके सम्पूर्ण वीर योद्धाओंका नाश कर दूंगा । हे राजन् ! मैं दूसरे एक नियमसे इच्छाके अनुसार तुम्हारा सेनापति होऊंगा; वह नियम यह है;—चाहे पहिले कर्ण युद्ध करे अथवा मैं प्रथम युद्ध करूं; क्योंकि यह सूतपुत्र सदा युद्धमें मेरे सङ्ग बहुत ही इर्षा किया करता है । ( २०-२४ )

कर्ण बोले, हे राजन् ! गङ्गानन्दन भीष्मके जीते रहते, मैं किसी प्रकारसे भी युद्ध न करूंगा; भीष्मके मारे जानेपर गाण्डीव धनुषको धारण करने वाले

अर्जुनके सङ्ग युद्ध करूंगा । ( २५ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर राजा दुर्योधनने ब्राह्मणोंको बहुतसी दक्षिणा देकर भीष्मको विधिपूर्वक सेनापति बनाया । अनन्तर राजाकी आज्ञा पाकर बाजे बजानेवाले पुरुष अनेक प्रकारके बाजे शङ्ख भेरी आदि बजाने लगे; वीरोंके सिंहनाद और हाथी घोड़ोंके शब्द सुनाई देने लगे । विना बादलके रुधिरकी वर्षा होकर पृथ्वी कीचडसे युक्त होगई । ( २६-२८ )

अकस्मात् भूकम्प और हाथियोंकी भयङ्कर चिङ्गाड सम्पूर्ण वीर योद्धाओंके अन्तःकरणको पीडित करने लगी ।

आसंश्च सर्वयोधानां पातयन्तो मनांस्युत ॥ २९ ॥

वाचश्चाऽप्यशरीरिण्यो दिवश्चोल्काः प्रपेदिरे ।

शिवाश्च भयवेदिन्यो नेदुर्दीप्ततरा भृशम् ॥ ३० ॥

सैनापत्ये यदा राजा गाङ्गेयमभिषिक्तवान् ।

तदैतान्युग्ररूपाणि बभूवुः शतशो नृप ॥ ३१ ॥

ततः सेनापतिं कृत्वा भीष्मं परबलार्दनम् ।

वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठान्गोभिर्निष्कैश्च भूरिशः ॥ ३२ ॥

वर्धमानो जयाशीर्भिर्निर्ययौ सैनिकैर्वृतः ।

आपगेयं पुरस्कृत्य भ्रातृभिः सहितस्तदा ॥ ३३ ॥

स्कन्धावारेण महता कुरुक्षेत्रं जगाम ह । ॥ ३४ ॥

परिक्रम्य कुरुक्षेत्रं कर्णेन सह कौरवः ।

शिविरं प्रापयामास समे देशे जनाधिप ॥ ३५ ॥

मधुरानूषरे देशे प्रभूतयवसेन्धने ।

यथैव हास्तिनपुरं तद्वच्छिविरमावभौ ॥ ३६ ॥ [५१७६]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि भीष्मसैनापत्ये षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५६॥

जनमेजय उवाच- आपगेयं महात्मानं भीष्मं शस्त्रभृतां वरम् ।

पितामहं भारतानां ध्वजं सर्वमहीक्षिताम् ॥ १ ॥

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया पृथिविसमम् ।

आकाशसे देववाणी और उल्कापात होने लगा । सियारोंके झुण्ड भी बार बार महा घोर शब्द करने लगे । हे राजन् ! राजा दुर्योधनने जब भीष्मको सेनापति बनाया, तब इसी प्रकारसे सैकड़ों भयङ्कर उत्पात दीख पड़े थे । (२९-३१)

शत्रुनाशन शान्तनुपुत्र भीष्मको सेनापति बनानेके अनन्तर राजा दुर्योधनने अनेक गौ और धन देकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया और उनके आशीर्वादसे वर्द्धित होकर सैनिक-पुरुषों-

के सङ्ग यात्रा की और भाइयोंके सहित इस महासेनाको लेकर कुरुक्षेत्रमें आपहुंचे । अनन्तर कर्णके सङ्ग उन्होंने सम्पूर्ण कुरुक्षेत्रमें घूमकर समान भूमिमें शिविर स्थापित कराया । अनेक तृण काठसे युक्त उर्वरा भूमिमें स्थापित हुए वे सब शिविर हास्तिनापुरकी भांति प्रकाशित होने लगे । (३२-३६) [५१७६]

उद्योगपर्वमें एकसौ छप्पन अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ सत्तावन अध्याय ।

राजा जनमेजय बोले;—बुद्धिमें

समुद्रमिव गाम्भीर्ये हिमवन्तमिव स्थिरम् ॥ २ ॥

प्रजापतिसिवौदार्ये तेजसा भास्करोपमम् ।

महेन्द्रमिव शत्रूणां ध्वंसनं शरवृष्टिभिः ॥ ३ ॥

रणयज्ञे प्रवितते सुभीमे लोमहर्षणे ।

दीक्षितं चिररात्राय श्रुत्वा तत्र युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

किमब्रवीन्महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।

भीमसेनार्जुनौ वापि कृष्णो वा प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच-आपद्वर्माथकुशलो महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः ।

सर्वान्भ्रातृन्सभानीय वासुदेवं च शाश्वतम् ॥ ६ ॥

उवाच वदतां श्रेष्ठः सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।

पर्याक्रामत सैन्यानि यत्तास्तिष्ठत दंशिता ॥ ७ ॥

पितामहेन वो युद्धं पूर्वमेव भविष्यति ।

तस्मात्सप्तसु सेनासु प्रणेतृन्मम पश्यत ॥ ८ ॥

कृष्ण उवाच— यथाऽर्हति भवान्वक्तुमस्मिन्काले ह्युपास्यते ।

तथेदमर्थवद्वाक्यमुक्तं ते भरतर्षभ ॥ ९ ॥

रोचते मे महाबाहो क्रियतां यदनन्तरम् ।

बृहस्पति, क्षमामें पृथ्वी, गम्भीरतामें समुद्र, स्थिरतामें हिमालय, उदारतामें प्रजापति ब्रह्मा, तेजमें सूर्य, बाणोंकी वर्षासे इन्द्रकी भांति शत्रुओंके संहार करनेवाले, सब राजाओंमें अग्रणी, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, महात्मा, गंगानन्दन, पितामह भीष्मको महाभयङ्कर रोवेंको खड़े करनेवाले रणयज्ञमें सदासे दीक्षित सुनकर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु युधिष्ठिर इस विषयमें क्या बोले, भीम तथा अर्जुनहीने क्या कहा और कृष्णहीने क्या उत्तर दिया था ? (१-५)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म अर्थ

को जाननेवाले, बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ, महा बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर भाइयोंके सहित कृष्णको बुलाकर मीठे वचनसे ऐसा कहने लगे, तुम लोग तैयार तथा सज्जित होकर सावधानीसे सब सेनामें भ्रमण करो। पहिले ही पितामह भीष्मके सङ्ग लोगोंका युद्ध होगा; इसमें मेरी सात अश्वहिणी सेनामें सात सेनापति नियत करो। (६-८)

श्रीकृष्ण बोले, हे भरतर्षभ ! इस उपस्थित समयमें आपके समान पुरुषको जैसा कहना उचित है, आपने वैसेही अर्थसे भरे हुए वचन कहे हैं। हे महा-

नायकास्तव सेनायां क्रियन्तामिह सप्त वै ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच-ततो द्रुपदमानाय्य विराटं शिनिपुङ्गवम् ।

धृष्टद्युम्नं च पाश्चात्यं धृष्टकेतुं च पार्थिव ॥ ११ ॥

शिखण्डिनं च पाश्चात्यं सहदेवं च मागधम् ।

एतान्सप्त महाभागान्वीरान्युद्धाभिकांक्षिणः ॥ १२ ॥

सेनाप्रणेतृन्विधिवदभ्यषिञ्चद्युधिष्ठिरः ।

सर्वसेनापतिं चाऽत्र धृष्टद्युम्नं चकार ह ॥ १३ ॥

द्रोणान्तहेतोरुत्पन्नो य इद्राज्जातवेदसः ।

सर्वेषामेव तेषां तु समस्तानां महात्मनाम् ॥ १४ ॥

सेनापतिपतिं चक्रे गुडाकेशं धनञ्जयम् ।

अर्जुनस्याऽपि नेता च संयन्ता चैव वाजिनाम् ॥ १५ ॥

सङ्कर्षणानुजः श्रीमान्महाबुद्धिर्जनार्दनः ।

तद् दृष्ट्वापस्थितं युद्धं समासन्नं महात्ययम् ॥ १६ ॥

प्राविशद्भवनं राजन्पाण्डवानां हलायुधः ।

सहाऽक्रूरप्रभृतिभिर्गदसाम्बोद्धवादिभिः ॥ १७ ॥

रौक्मिणयेयाहुकस्तुतैश्चारुदेष्णपुरोगमैः ।

बाहो ! यह सम्पूर्ण रूपसे हम लोगोंको उत्तम बोध होता है, इससे शीघ्र इस कर्त्तव्य-कर्मका अनुष्ठान होना उचित है, अपनी सेनामें सात पुरुषोंको सेनाका नायक बनाइये । ( ९-१० )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर राजा युधिष्ठिरने द्रुपद, विराट, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, धृष्टकेतु, शिखण्डी और मागधराज सहदेव, — युद्धकी अभिलाषा करनेवाले इन सात महात्मा वीरोंको बुलाकर विधि पूर्वक अपनी सेनाका नायक बनाया । जो यज्ञकी आग्निसे द्रोणाचार्यके वधके निमित्त उत्पन्न हुए

थे, उस धृष्टद्युम्नको सम्पूर्ण सेनाका सेनापति बनाया और इन सबके ऊपर अर्जुनको नियुक्त किया । बलदेवके भाई महाबाहु श्रीमान् कृष्ण अर्जुनके भी नायक तथा उनके साथी बने । ( ११-१६ )

हे महाराज ! नीलाम्बरधारी, कैलास पर्वतके शिखरके समान, मतवारे, लाल नेत्रसे युक्त, सिंहके समान चलनेवाले महाबाहु श्रीमान् हलधारी बलदेवजीने इस सब प्राणियोंका नाश करने वाले उपस्थित युद्धको शीघ्रही होता हुआ जानके देवतोंसे रक्षित इन्द्रके समान अक्रूर, उद्धव, गद, साम्ब, प्रद्युम्न और



वृष्णिमुखैरधिगतैर्व्याघ्रैरिव बलोत्कटैः ॥ १८ ॥  
 अभिगुप्तो महाबाहुर्मरुद्भिरिव वासवः ।  
 नीलकौशेयवसनः कैलासशिखरोपमः ॥ १९ ॥  
 सिंहखेलगतिः श्रीमान्मदरक्तान्तलोचनः ।  
 तं दृष्ट्वा धर्मराजश्च केशवश्च महाद्युतिः ॥ २० ॥  
 उदतिष्ठत्ततः पार्थो भीमकर्मा वृकोदरः ।  
 गाण्डीवधन्वा ये चाऽन्ये राजानस्तत्र केचन ॥ २१ ॥  
 पूजयाश्चक्रिरे ते वै समायान्तं हलायुधम् ।  
 ततस्तं पाण्डवो राजा करे पस्पर्श पाणिना ॥ २२ ॥  
 वासुदेवपुरोगास्तं सर्व एवाऽभ्यवादयन् ।  
 विराटद्रुपदौ वृद्धावभिवाच हलायुधः ॥ २३ ॥  
 युधिष्ठिरेण सहित उपाविशदरिन्दमः ।  
 ततस्तेषूपविष्टेषु पार्थिवेषु समन्ततः ॥ २४ ॥  
 वासुदेवमभिप्रेक्ष्य रौहिणेयोऽभ्यभाषत ॥ २४ ॥  
 भविताऽयं महारौद्रो दारुणः पुरुषक्षयः ।  
 दिष्टमेतद्भुवं मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ २५ ॥  
 तस्माद्युद्धात्समुत्तीर्णानपि वः ससुहृज्जनान् ।

चारुदेष्ण आदि बलसे मुख्य यदुवंशियोंसे  
 रक्षित होकर पाण्डवोंके समीपमें आकर  
 उपास्थित हुए । ( १६-२० )

बलरामजीको आते हुए देखकर ध-  
 र्मराज, श्रीकृष्ण, गाण्डीव धनुष्य धारण  
 करनेवाले अर्जुन, भयंकर कर्म करनेवा-  
 ले भीमसेन, और अन्य सब राजालोग  
 उठ कर खड़े हुए और बलरामकी पूजा  
 करने लगे । अनन्तर राजा युधिष्ठिरने  
 अपने हाथोंसे उनके करतलको स्पर्श  
 किया और कृष्ण आदि सब पुरुषोंने उन्हें  
 प्रणाम किया । शत्रु नाशन बलराम

अवस्थामें बूढ़े द्रुपद और विराटको  
 प्रणाम करके युधिष्ठिरके सहित आसन-  
 पर बैठे । ( २०—२४ )

अनन्तर सब राजाओंके चारों ओर  
 बैठ जानेपर रौहिणीनन्दन बलदेवजी  
 श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखकर यह  
 वचन बोले, - इस महा भयङ्कर युद्धमें  
 प्राणियोंका नाश होगा; मैं बोध करता  
 हूं, दैवकी ऐसी ही इच्छा है; कोई  
 इसको किसी प्रकारसे नहीं रोक सकेगा ।  
 इस समयमें मैं यही चाहता हूं, कि तुमको  
 सुहृदपुरुषोंके सहित इस युद्धसे उत्तीर्ण

अरोगानक्षतैर्देहैर्द्रष्टास्मीति मतिर्मम ॥ २६ ॥  
 समेतं पार्थिवं क्षत्रं कालपक्रमसंशयम् ।  
 विमर्दश्च महान्भावी मांसशोणितकर्मः ॥ २७ ॥  
 उक्तो मया वासुदेवः पुनः पुनरुपहरे ॥  
 सम्बन्धिषु समां वृत्तिं वर्तस्व मधुसूदन ॥ २८ ॥  
 पाण्डवा हि यथाऽस्माकं तथा दुर्योधनो नृपः ।  
 तस्याऽपि क्रियतां साह्यं स पर्येति पुनः पुनः ॥ २९ ॥  
 तच्च मे नाऽकरोद्वाक्यं त्वदर्थं मधुसूदनः ।  
 निर्विष्टः सर्वभावेन धनञ्जयमवेक्ष्य ह ॥ ३० ॥  
 ध्रुवो जयः पाण्डवानामिति मे निश्चिता मतिः ।  
 तथा ह्यभिनिवेशोऽयं वासुदेवस्य भारत ॥ ३१ ॥  
 न चाऽहमुत्सहे कृष्णमृते लोकमुदीक्षितुम् ।  
 ततोऽहमनुवर्तामि केशवस्य चिकीर्षितम् ॥ ३२ ॥  
 उभौ शिष्यौ हि मे वीरौ गदायुद्धविशारदौ ।  
 तुल्यस्नेहोऽस्म्यतो भीमे तथा दुर्योधने नृपे ॥ ३३ ॥  
 तस्माद्यास्यामि तीर्थानि सरस्वत्या निषेवितुम् ।

अरोग तथा घावसे रहित देखूं। पृथ्वीके  
 सम्पूर्ण क्षत्रिय लोग कालके वशमें होके  
 इस युद्धमें इकट्ठे हुए हैं, इसमें कुछ भी  
 सन्देह नहीं है। मांस और रुधिरसे पृथ्वी  
 अवश्य ही पूरित होवैगी। (२५-२७)

हे भरतनन्दन युधिष्ठिर ! मैंने एका-  
 न्तमें कृष्णसे बार बार कहा था, कि हे  
 मधुसूदन ! पाण्डव लोग हमारे जैसे  
 सम्बन्धी हैं, राजा दुर्योधन भी वैसे ही  
 हैं, इससे समान सम्बन्धियोंको समान  
 ही सहायता देनी उचित है; दुर्योधनको  
 भी सहायता दो, क्योंकि उस ही नि-  
 मित्तसे वह बार बार यहाँपर आरहे हैं।

परन्तु तुम्हारे निमित्त कृष्णने मेरी बात  
 नहीं ग्रहण की। अर्जुनके स्नेहसे ये तुम्हा-  
 री ही ओर सब प्रकारसे रत हैं। पाण्डवों-  
 का जो निश्चय जय होगा, यह मुझे खू-  
 ब ही विदित है, क्योंकि कृष्णकी ऐसी  
 ही इच्छा है। (२८-३८)

मैं भी कृष्णके बिना इस संसारमें  
 नहीं रह सकता; इसी कारणसे कृष्णके  
 अभिप्रायके अनुसार ही चलता हूं।  
 गदायुद्धको जाननेवाले भीम और दुर्यो-  
 धन दोनों ही मेरे शिष्य हैं, इससे दोनोंके  
 ऊपर मेरी समान प्रीति है। इससे अब  
 मैं सरस्वती तीर्थ करनेके निमित्त गमन

न हि शक्ष्यामि कौरव्यान्नश्यमानानुपेक्षितुम् ॥ ३४ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुरनुज्ञातश्च पाण्डवैः ।

तीर्थयात्रां ययौ रामो निर्वर्त्य मधुसूदनम् ॥ ३५ ॥ [५२११]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि  
बलरामतीर्थयात्रागमने सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

वैशम्पायन उवाच-एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मकस्य महात्मनः ।

हिरण्यरोम्णो नृपतेः साक्षादिन्द्रसखस्य वै ॥ १ ॥

आकूतीनामधिपतिर्भोजस्याऽतियशस्विनः ।

दाक्षिणात्यपतेः पुत्रो दिक्षु रुक्मीति विश्रुतः ॥ २ ॥

यः किम्पुरुषसिंहस्य गन्धमादनवासिनः ।

कृत्स्नं शिष्यो धनुर्वेदं चतुष्पादमवाप्तवान् ॥ ३ ॥

यो माहेन्द्रं धनुर्लेभे तुल्यं गाण्डीवतेजसा ।

शार्ङ्गेण च महाबाहुः सस्मितं दिव्यलक्षणम् ॥ ४ ॥

त्रीण्येवैतानि दिव्यानि धनूंषि दिविचारिणाम् ।

वारुणं गाण्डीवं तत्र माहेन्द्रं विजयं धनुः

शार्ङ्गं तु वैष्णवं प्राहुर्दिव्यं तेजोमयं धनुः ॥ ५ ॥

धारयामास तत्कृष्णः परसेनाभयावहम् ।

करता हूं; कौरवोंको अपने सम्मुख नष्ट  
हुआ देखकर उपेक्षा न कर सकूंगा ।  
महाबाहु बलराम ऐसा कहके पाण्डवोंसे  
विदा हुए और कृष्णको लौटा कर तीर्थ  
यात्राके निमित्त प्रस्थान किया । ३२-३५

एकसौ सतावन अध्याय समाप्त । [ ५२११ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ अठावन अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इसी अवस-  
रमें साक्षात् इन्द्रके मित्र अत्यन्त यशस्वी  
हिरण्य-रोमा भोजराज दक्षिण देशके  
भूपति महात्मा भीष्मकके पुत्र, पृथ्वीमें  
रुक्मी नामसे विख्यात था; उस सत्य-

सङ्कल्प करनेवाले महाबाहु रुक्मीने  
गन्धमादनवासी किंपुरुषसिंह द्रमके  
शिष्य होकर उनके समीपसे चारों पादसे  
युक्त धनुर्वेदको सम्पूर्ण रूपसे पढ़ा था,  
और दिव्यलक्षणोंसे युक्त तथा गाण्डीव  
और शार्ङ्ग धनुषके समान माहेन्द्रके विजय  
धनुषको प्राप्त किया । तेजमें वरुणका  
गाण्डीव, इन्द्रका विजय और विष्णुका  
शार्ङ्ग ये तीनों धनुष ही दिव्य और  
अत्यन्त तेजस्वी कहके विख्यात हैं । १-५

उनमेंसे शत्रुसेनाका नाश करनेवाला  
भयङ्कर शार्ङ्ग धनुष कृष्ण धारण करते

गाण्डीवं पावकाल्लेभे खाण्डवे पाकशासनिः ॥ ६ ॥

द्रुमाद् रुक्मी महातेजा विजयं प्रत्यपद्यत ।

जिञ्चय मौरवान्पाशान्निहत्य मुरुमोजसा ॥ ७ ॥

निर्जित्य नरकं भौममाहत्य मणिकुण्डले ।

षोडशस्त्रीसहस्राणि रत्नानि विविधानि च ॥ ८ ॥

प्रतिपेदे हृषीकेशः शार्ङ्गं च धनुरुत्तमम् ।

रुक्मी तु विजयं लब्ध्वा धनुर्मेघनिभस्वनम् ॥ ९ ॥

विभीषयन्निव जगत्पाण्डवानभ्यवर्तत ।

नाऽमृष्यत पुरा योऽसौ स्वबाहुबलगर्वितः ॥ १० ॥

रुक्मिण्या हरणं वीरो वासुदेवेन धीमता ।

कृत्वा प्रतिज्ञां नाऽहत्वा निवर्तिष्ये जनार्दनम् ॥ ११ ॥

ततोऽन्वधावद्वाष्णेयं सर्वशस्त्रभृतां वरः ।

सेनया चतुरङ्गिण्या महत्या दूरपातया ॥ १२ ॥

विचित्रायुधवर्मिण्या गङ्गयेव प्रवृद्धया ।

स समासाद्य वाष्णेयं योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ १३ ॥

व्यसितो व्रीडितो राजन्नाजगाम स कुण्डिनम् ।

यत्रैव कृष्णेन रणे निर्जितः परवीरहा ॥ १४ ॥

थे; इन्द्रतनय अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निके समीपसे गाण्डीव-धनुष पाया था, और महा तेजस्वी रुक्मीने द्रुमके निकट जाकर विजय-धनुष प्राप्त किया था । श्रीकृष्णने मुर दैत्यके अस्त्रमय सब प्रासोंको काटके और भूमिपुत्र नरकासुरको असुरोंके सहित मारकर अदिति के मणिजटित दोनों कुण्डल, सोलह हजार कुमारीकन्या और शार्ङ्ग धनुष्यको प्राप्त किया था । ( ६—९ )

रुक्मीने मेघके समान शब्दवाले विजय धनुषको पाकर मानो सम्पूर्ण भूमिको

भयभीत करता हुआ पाण्डवोंके पास गमन किया । अपनी भुजाओंके बलसे गर्वित रुक्मीने बुद्धिमान् कृष्णके रुक्मिणी हरणको न सहकर यह प्रतिज्ञा की थी, कि “मैं कृष्णको विना मारे शान्त न होऊंगा” ऐसी प्रतिज्ञा कर बड़ी हुई गंगाकी भांति अपनी चतुरङ्गिणी महा सेनाके सहित कृष्णसे लड़नेको चढ़ गया था । अनन्तर वृष्णिनन्दन योगेश्वर कृष्णके समीप पहुंचकर उनसे लड़कर पराजित हुआ और लज्जित होकर कुण्डिनके निकटमें गमन किया

तत्र भोजकटं नाम कृतं नगरमुत्तमम् ।  
 सैन्येन महता तेन प्रभूतगजवाजिना ॥ १५ ॥  
 पुरं तद्भुवि विख्यातं नाम्ना भोजकटं नृप ।  
 स भोजराजः सैन्येन महता परिवारितः ॥ १६ ॥  
 अक्षौहिण्या महावीर्यः पाण्डवान्क्षिप्रमागमत् ।  
 ततः स कवची धन्वी तली खड्गी शरासनी ॥ १७ ॥  
 ध्वजेनाऽऽदित्यवर्णेन प्रविवेश महाचमूम् ।  
 विदितः पाण्डवेयानां वासुदेवप्रियेऽस्य ॥ १८ ॥  
 युधिष्ठिरस्तु तं राजा प्रत्युद्गम्याऽभ्यपूजयत् ।  
 स पूजितः पाण्डुपुत्रैर्यथान्यायं सुसंस्तुतः ॥ १९ ॥  
 प्रतिगृह्य तु तान्सर्वान्विश्रान्तः सहसैनिकः ।  
 उवाच मध्ये वीराणां कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ २० ॥  
 सहायोऽस्मि स्थितो युद्धे यदि भीतोऽसि पाण्डव ।  
 करिष्यामि रणे साह्यमसह्यं तव शत्रुभिः ॥ २१ ॥  
 न हि मे विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन ।  
 हनिष्यामि रणे भागं यन्मे दास्यसि पाण्डव ॥ २२ ॥

था । शत्रुनाशन रुक्मी जिस स्थानपर  
 कृष्णसे लड़कर हार गये थे वहाँपर  
 उन्होंने भोजकट नामक एक नगर बसाया  
 था । (९-१५)

हे महाराज ! अनेक हाथी घोड़े और  
 सेनासे युक्त वह नगर भोजकट नामसे  
 विख्यात है । वही महा तेजस्वी भोजराज  
 बहुतसी सेनामेंसे एक अक्षौहिणी सेना  
 लेकर अकस्मात् पाण्डवोंके समीपमें उ-  
 पास्थित हुए । अनन्तर वह कवच, बाण,  
 तलवार और शरासनको धारण करने-  
 वाले रुक्मीने पाण्डवोंमें विदित होकर  
 कृष्णके प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे

सूर्यके वर्णवाली ध्वजाके सहित उस  
 महासेनामें प्रवेश किया । तब राजा  
 युधिष्ठिरने दूरहीसे उठकर उनकी यथा  
 उचित पूजा की । रुक्मीने पाण्डवोंसे  
 यथा उचित पूजित और सम्मानित  
 होकर उन लोगोंमें भी अवस्थाके अनु-  
 सार सबकी यथायोग्य पूजा करके  
 सेनाके सहित विश्राम किया । (१५-२०)

अनन्तर वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनसे यह  
 वचन बोले; हे पाण्डव ! इस युद्धके  
 निमित्त यदि तुम शत्रुओंसे डरते हो,  
 तो मैं तुम्हारी सहायता करूंगा । इस  
 पृथ्वीके बीच ऐसा पराक्रमी कोई भी

अपि द्रोणकृपौ वीरौ भीष्मकर्णावथो पुनः ।

अथवा सर्व एवैते तिष्ठन्तु वसुधाधिपाः ॥ २३ ॥

निहत्य समरे शत्रूंस्तव दास्यामि मेदिनीम् ।

इत्युक्तो धर्मराजस्य केशवस्य च सन्निधौ ॥ २४ ॥

शृण्वतां पार्थिवेन्द्राणामन्येषां चैव सर्वशः ।

वासुदेवमभिप्रेक्ष्य धर्मराजं च पाण्डवम् ॥ २५ ॥

उवाच धीमान्कौन्तेयः प्रहस्य सखिपूर्वकम् ।

कौरवाणां कुले जातः पाण्डोः पुत्रो विशेषतः ॥ २६ ॥

द्रोणं व्यपदिशञ्जिष्यो वासुदेवसहायवान् ।

भीतोऽस्मीति कथं ब्रूयां दधानो गाण्डिवं धनुः ॥ २७ ॥

युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः ।

सहायो घोषयात्रायां कस्तदासीत्सखा मम ॥ २८ ॥

तथा प्रतिभये तस्मिन्देवदानवसंकुले ।

खाण्डवे युद्धयमानस्य कः सहायस्तदाऽभवत् ॥ २९ ॥

निवातकवचैर्युद्धे कालकेयैश्च दानवैः ।

तत्र मे युद्धयमानस्य कः सहायस्तदा भवत् ॥ ३० ॥

पुरुष नहीं है, जो मेरे समान हो सके । हे पाण्डव ! युद्धमें तुम मुझे जो अंश प्रदान करोगे, मैं उसहीको युद्धमें मारूंगा । द्रोण, कृपाचार्य, भीष्म, कर्ण आदि सबका ही वध करूंगा । अथवा ये सम्पूर्ण राजा लोग चुप चाप बैठे रहे, मैं अकेला ही युद्धमें शत्रुओं को मारकर यह सम्पूर्ण पृथ्वी तुम्हें प्रदान करूंगा । (२०-२४)

बुद्धिमान् अर्जुन, धर्मराज युधिष्ठिर, कृष्ण तथा दूसरे राजाओंके बीचमें रुक्मीके यह वचन सुन कृष्ण और युधिष्ठिरके मुखकी ओर देख कर हंसते

हुए धीरभावसे उससे यह वचन बोले, हे वीर ! मैं कौरवकुलमें उत्पन्न विशेष करके राजा पाण्डुका पुत्र होके और कृष्णकी सहायता पाकर तथा गाण्डीव धनुषको धारण करके “डर गया हूँ” ऐसी बात किस प्रकारसे कह सकता हूँ ? (२४-२७)

घोषयात्राके समयमें जब महाबली गन्धर्वोंके सङ्ग मैंने युद्ध किया था, तब किसने मेरी सहायता की थी ? खाण्डव वनमें देवता और दानवोंसे जब मैंने घोर युद्ध किया था, उस समय किसने मेरी सहायता की थी ? जब निवातकवच

तथा विराटनगरे कुरुभिः सह सङ्गरे ।  
 युद्धयतो बहुभिस्तत्र कः सहायोऽभवन्मम ॥ ३१ ॥  
 उपजीव्य रणे रुद्रं शक्रं वैश्रवणं यमम् ।  
 वरुणं पावकं चैव कृपं द्रोणं च माधवम् ॥ ३२ ॥  
 धारयन्गाण्डिवं दिव्यं धनुस्तेजोमयं दृढम् ।  
 अक्षय्यशरसंयुक्तो दिव्यास्त्रपरिवृंहितः ॥ ३३ ॥  
 कथमस्मद्विधो ब्रूयाद्भीतोऽस्मीति यशोहरम् ।  
 वचनं नरशार्दूल वज्रायुधमपि स्वयम् ॥ ३४ ॥  
 नाऽस्मि भीतो महाबाहो सहायार्थश्च नाऽस्ति मे ।  
 यथाकामं यथायोगं गच्छ वाऽन्यत्र तिष्ठ वा ॥ ३५ ॥  
 विनिवर्त्य ततो रुक्मी सेनां सागरसन्निभाम् ।  
 दुर्योधनमुपागच्छत्तथैव भरतर्षभ ॥ ३६ ॥  
 तथैव चाऽभिगम्यैनमुवाच वसुधाधिपः ।  
 प्रत्याख्यातश्च तेनाऽपि स तदा शूरमानिना ॥ ३७ ॥  
 द्वावेव तु महाराज तस्माद्युद्धादपेयतुः ।

और कालकेय दानवोंके सङ्ग मैंने युद्ध किया था, तब कौन मेरा सहाय हुआ था ? और भी जिस समय विराट नगरमें मैंने अनेक कौरवोंसे युद्ध किया था, उस समयमेंही किसने मेरी सहायता की थी ? (२८-३१)

युद्धके निमित्त रुद्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और कृष्ण की आराधना करके दिव्य तेजसे युक्त दृढ गाण्डीव धनुषको धारण करके तथा अक्षय्य तूणीर और दिव्य-शस्त्रोंसे युक्त होकर भी "डर गया हूं" यह यशको लोप करनेवाला वचन साक्षात् इन्द्रसे भी मेरे समान पुरुष कैसे कह सकता

है ? हे पुरुषसिंह ! न मुझे कुछ डर है, और न मुझे सहायताकी आवश्यकता है, हे महाबाहो ! इससे यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यहांसे दूसरे स्थान पर गमन करो अथवा इस ही स्थान पर निवास करो । ( ३२—३५ )

हे भरतर्षभ ! अनन्तर रुक्मी उस समुद्रके समान अपनी सेनाको लौटाकर राजा दुर्योधनके समीप भी उसी प्रकारसे गये; उनसे भी वैसे ही वचन बोले; और उस शूरमानी दुर्योधनने भी उनसे कहा, कि मुझको सहायताकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है । ( ३६-३७ )

इससे वृष्णिकुलमें उत्पन्नहुए रोहिणी-

रौहिणेयश्च वाष्णेयो रुक्मी च वसुधाधिपः ॥ ३८ ॥  
 गते रामे तीर्थयात्रां भीष्मकस्य सुते तथा ।  
 उपाविशन्पाण्डवेया मन्त्राय पुनरेव च ॥ ३९ ॥  
 समितिर्धर्मराजस्य सा पार्थिवसमाकुला ।  
 शुशुभे तारकैश्चित्रा चौश्चन्द्रेणेव भारत ॥ ४० ॥ [५२५१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि  
 रुक्मिप्रत्याख्याने अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

जनमेजय उवाच-तथा व्यूढेष्वनीकेषु कुरुक्षेत्रे द्विजर्षभ ।  
 किमकुर्वन्श्च कुरवः कालेनाऽभिप्रचोदिताः ॥ १ ॥  
 वैशम्पायन उवाच-तथा व्यूढेष्वनीकेषु यत्तेषु भरतर्षभ ।  
 धृतराष्ट्रो महाराज सञ्जयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥  
 एहि सञ्जय सर्व मे आचक्ष्वाऽनवशेषतः ।  
 सेनानिवेशे यद्वृत्तं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ३ ॥  
 दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषं चाऽप्यनर्थकम् ।  
 यदहं बुद्धयमानोऽपि युद्धदोषान्क्षयोदयान् ॥ ४ ॥  
 तथापि निकृतिप्रज्ञं पुत्रं दुर्यतदेविनम् ।

पुत्र बलराम और राजा रुक्मी;-ये दो पुरुष इस युद्धसे पृथक् हुए थे। बल रामको तीर्थ-यात्राके निमित्त गमन करने और रुक्मीके लौट जाने पर पाण्डव लोग फिर विचार करनेके निमित्त इकट्ठे हुए। हे महाराज ! राजाओंसे भरी हुई वह सभा तारोंसे चित्रित आकाश मण्डल की भांति शोभित होने लगी । ( ३८—४० ) [ ५२५१ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ अठावन अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ उनसठ अध्याय ।

राजा जनमेजय बोले, हे द्विजसत्तम ! कुरुक्षेत्रमें इस प्रकारसे सम्पूर्ण सेनाके

व्यूह-बद्ध होने पर काल प्रेरित कौरवोंने क्या किया ? ( १ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! सब सेनाके इस प्रकारसे व्यूह बद्ध होके खड़ी होने पर राजा धृतराष्ट्रने सञ्जयसे यह वचन कहा; हे सञ्जय ! कुरु पाण्डवोंकी सेनाके कुरुक्षेत्रमें इकट्ठी होने पर वहां जो कुछ वृत्तान्त हुआ, वह सम्पूर्ण तुम मुझसे वर्णन करो। मैं पुरुषार्थको व्यर्थ जान कर दैवको ही श्रेष्ठ समझता हूं; क्योंकि विनाशका परिणाम और युद्धके दोषको भली भांतिसे जान कर भी आत्महित के लिये नीचबुद्धि दुष्ट पुत्रों



न शक्नोमि नियन्तुं वा कर्तुं वा हितमात्मनः ॥ ५ ॥

भवत्येव हि मे सूत बुद्धिदोषानुदर्शिनी ।

दुर्योधनं समासाद्य पुनः सा परिवर्तते ॥ ६ ॥

एवङ्गते वै यद्भावि तद्भविष्यति सञ्जय ।

क्षत्रधर्मः किल रणे तनुत्यागो हि पूजितः ॥ ७ ॥

सञ्जय उवाच — त्वयुक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथेच्छसि ।

न तु दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ॥ ८ ॥

शृणुष्वाऽनवशेषेण वदतो मम पार्थिव ।

य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः ॥

न स कालं न वा देवानेनसा गन्तुमर्हति ॥ ९ ॥

महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत् ।

स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥ १० ॥

निकारा मनुजश्रेष्ठ पाण्डवैस्त्वत्प्रतीक्षया ।

अनुभूताः सहामायैर्निकृतैरधिदेवने ॥ ११ ॥

हयानां च गजानां च राज्ञां चाऽमिततेजसाम् ।

वैशसं समरं वृत्तं यत्तन्मे शृणु सर्वशः ॥ १२ ॥

को नियममें नहीं स्थिर कर सकता हूँ । ( २—५ )

हे सूत! मेरी बुद्धिसे दोषोंका भी बोध हो रहा है परन्तु दुर्योधनके मिलने पर फिर मेरी बुद्धि पलट जाती है। हे सञ्जय! इससे ऐसी अवस्थामें जो होना है वही होगा; क्योंकि युद्धमें शरीर त्याग करना भी क्षत्रियोंका प्रशंसनीय धर्म है। ६-७

सञ्जय बोले, हे महाराज ! तुम जो इच्छा करते हो वह तुम्हारे योग्य ही प्रश्न है, यह ठीक है; परन्तु इस दोषको दुर्योधनके ऊपर आरोपित करना तुमको उचित नहीं है। हे राजन् ! मैं जो वचन

कहता हूँ, उनको सुनो, जो मनुष्य अपने किये हुए बुरे कर्मका अशुभ-फल पाता है, उसे काल तथा ईश्वरके ऊपर दोष लगाना उचित नहीं है। हे महाराज ! मनुष्योंमें जो पुरुष निन्दनीय कर्मका अनुष्ठान करते हैं, वह बुरे कर्मके आचरण करनेसे सब लोगोंसे ही वध करनेके योग्य होजाते हैं। ( ८-१० )

हे राजेन्द्र ! पाण्डवोंने जुएमें हारकर केवल तुम्हारे शासन और प्रतिज्ञाहीसे इष्ट मित्रोंके सहित सब प्रकारसे अपमान और तिरस्कार सहन किया था। युद्ध में घोड़े, हाथी और महातेजस्वी राजाओंके

स्थिरो भूत्वा महाप्राज्ञ सर्वलोकक्षयोदयम् ।

यथाभूतं महायुद्धे श्रुत्वा चैकमना भव ॥ १३ ॥

न ह्येव कर्ता पुरुषः कर्मणोः शुभपापयोः ।

अस्वतन्त्रो हि पुरुषः कार्यते दारुयन्त्रवत् ॥ १४ ॥

केचिदीश्वरनिर्दिष्टाः केचिदेव यदृच्छया ।

पूर्वकर्मभिरप्यन्ये त्रैधमेतत्प्रदृश्यते ।

तस्मादनर्थमापन्नः स्थिरो भूत्वा निशामय ॥ १५ ॥ [५२६६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि

सञ्जयवाक्ये ऊनषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥ समाप्तं च सैन्यनिर्याणपर्व ।

अथ उल्लूकदूतागमनपर्व ।

सञ्जय उवाच — हिरण्यवत्यां निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।

न्यविशन्त महाराज कौरवेया यथाविधि ॥ १ ॥

तत्र दुर्योधनो राजा निवेश्य बलमोजसा ।

सम्मानयित्वा नृपतीन्त्यस्य गुल्मांस्तथैव च ॥ २ ॥

आरक्षस्य विधिं कृत्वा योधानां तत्र भारत ।

नाश होनेका जो कारण हुआ, उसे तुम पूर्ण रीतिसे सुनो । ( ११—१२ )

हे महाबुद्धिमन् ! प्राणियोंके नाश करनेवाले इस महायुद्धके वृत्तान्तको सुनकर ऐसा निश्चय कीजिये, कि पुरुष कभी शुभ तथा अशुभ कर्मोंका स्वयं कर्त्ता नहीं हो सकता, कठपुतलीकी भांति दूसरेके वशमें होकर कर्म करता है। शुभ और अशुभ कर्मके विषयमें तीन प्रकारके मतभेद हैं। कोई कोई कहते हैं, कि मनुष्य ईश्वरके वशमें होकर सब कर्म करता है, कोई कहते हैं, पुरुष अपनी इच्छाके अनुसार कर्म करता है और कोई कहते हैं, कि वर्त्तमान कर्मों-

के अनुष्ठानके विषयमें पूर्व जन्मके कर्म ही उन कर्मोंके कारण होते हैं। ( १३-१५ )

उद्योगपर्वमें एकसौ उनसठ अध्याय और सैन्यनिर्याणपर्व समाप्त । [५२६६]

उद्योगपर्वमें एकसौ साठ अध्याय और उल्लूकदूतागमन पर्व ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! महात्मा पाण्डवोंके हिरण्यती नदीके किनारे शिविर स्थापित करने पर कौरवोंने भी उचित स्थानमें अपनी सेनाको एकत्रित किया। प्रतापी राजा दुर्योधनने वहां पर अपने शिविरको स्थापित करके सब राजाओंको संमानित किया और रक्षक सेना खड़ी करके योद्धाओंकी रक्षा करने योग्य

कर्ण दुःशासनं चैव शकुनिं चापि सौबलम् ॥ ३ ॥

आनाय्य नृपतिस्तत्र मन्त्रयामास भारत ।

तत्र दुर्योधनो राजा कर्णेन सह भारत ॥ ४ ॥

सम्भाषित्वा च कर्णेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ।

सौबलेन च राजेन्द्र मन्त्रयित्वा नरर्षभ ॥ ५ ॥

आहूयोपहरे राजन्नुलूकमिदमब्रवीत् ।

उलूक गच्छ कैतव्य पाण्डवान्सहसोमकान् ॥ ६ ॥

गत्वा मम वचो ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ।

इदं तत्समनुप्राप्तं वर्षपूर्गाभिचिन्तितम् ॥ ७ ॥

पाण्डवानां कुरूणां च युद्धं लोकभयङ्करम् ।

यदेतत्कथनावाक्यं सञ्जयो महदब्रवीत् ॥ ८ ॥

वासुदेवसहायस्य गर्जतः सानुजस्य ते ।

मध्ये कुरूणां कौन्तेय तस्य कालोऽयमागतः ॥ ९ ॥

यथा वः सम्प्रतिज्ञातं तत्सर्वं क्रियतामिति ।

ज्येष्ठं तथैव कौन्तेय ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ॥ १० ॥

वस्तुओंकी रक्षाका विधान करदिया।१-३

हे भारत ! अनन्तर कर्ण, दुःशासन और शकुनिको बुलाकर विचार करने लगे । दुर्योधनने कर्णके संग बातचीत करके अन्तमें कर्ण, दुःशासन और शकुनिकी सम्मतिसे एकान्त स्थानमें उलूकको बुलाकर यह वचन कहा “ हे कितव-नन्दन उलूक ! तुम सोमकवंशियोंसे युक्त पाण्डवोंके समीपमें जाओ और वहां पर पहुंच कर कृष्णके संमुख अर्जुनसे मेरे इस वचनको कहना, कि कई वर्षोंसे जो विचार हो रहा था, वह महाभयङ्कर कुरु-पाण्डवों का युद्ध इस समयमें उपास्थित हुआ है । (४-८)

हे अर्जुन ! तुमने कृष्णके संग मिल कर भाइयोंके सहित गर्जन करते हुए जो अपनी अत्यन्त बड़ाई की थी, जिस को सञ्जयने आकर कौरवोंमें प्रकाशित किया था, उसका समय यही उपास्थित हुआ है; इससे तुम लोगोंने जिस प्रकारसे प्रतिज्ञा की थी, इस अवसरमें उस का प्रतिपालन करो । (८-१०)

हे उलूक ! भाइयों तथा सम्पूर्णसोमक और केकयवंशियों में बैठे हुए राजा युधिष्ठिरसे भी यह वचन कहना, “प्रसिद्ध धर्मात्मा होकर तुम क्यों अधर्ममें चित्त लगाते हो ? धूर्त और दुष्ट पुरुषकी भांति क्यों जगतका नाश करने का विचार

भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सोमकैश्च सकेकयैः ।  
 कथं वा धार्मिको भूत्वा त्वमधर्मे मनः कृथाः ॥ ११ ॥  
 य इच्छसि जगत्सर्वं नश्यमानं नृशंसवत् ।  
 अभयं सर्वभूतेभ्यो दाता त्वमिति मे मतिः ॥ १२ ॥  
 श्रूयते हि पुरा गीतः श्लोकोऽयं भरतर्षभ ।  
 प्रहादेनाऽथ भद्रं ते हृते राज्ये तु दैवतैः ॥ १३ ॥  
 यस्य धर्मध्वजो नित्यं सुराध्वज इवोच्छ्रितः ।  
 प्रच्छन्नानि च पापानि बैडालं नाम तद्रुतम् ॥ १४ ॥  
 अत्र ते वर्तयिष्यामि आख्यानमिदमुत्तमम् ।  
 कथितं नारदेनेह पितुर्मम नराधिप ॥ १५ ॥  
 मार्जारः किल दुष्टात्मा निश्चेष्टः सर्वकर्मसु ।  
 उर्ध्वबाहुः स्थितो राजन्गङ्गातीरे कदाचन ॥ १६ ॥  
 स वै कृत्वा मनःशुद्धिं प्रत्यथार्थं शरीरिणाम् ।  
 करोमि धर्ममित्याह सर्वानेव शरीरिणः ॥ १७ ॥  
 तस्य कालेन महता विश्रम्भं जग्मुरण्डजाः ।  
 समेत्य च प्रशंसन्ति मार्जारं तं विशाम्पते ॥ १८ ॥

करते हो ? मैं समझता हूँ, कि तुम सब प्राणियोंके अभय-दाताही होंगे। १०-१२ हे भरतर्षभ ! सुना जाता है, कि पहिले समयमें देवता लोगोंने जब दानवोंसे राज्यको हरण किया था, उस समयमें प्रहादने यह एक श्लोक पढ़ा था, “हे देवगण ! जिसके धर्मके चिह्न ऊंची ध्वजाकी भांति सदा प्रकाशित रहते हैं; परन्तु पापकर्म सब गुप्त रीति से उसके अन्तःकरणमें निवास करते हैं, उसके उस व्रतको बिडालव्रत कहते हैं।” हे प्रजानाथ ! इस विषयमें नारद मुनिने मेरे पिताके समीप जो उत्तम

उपाख्यान वर्णन किया था, इस समय मैं तुम्हारे समीपमें उस विषयको कहता हूँ। चित्त लगाकर सुनो। (१३-१५) हे राजन् ! किसी समयमें एक धूर्त बिडाल सब हिंसा आदि कर्मोंसे विरक्त हो गङ्गाके तीरपर ऊर्ध्वबाहु होकर निवास करता था, वह सब जीवजन्तुओं में विश्वास उत्पन्न करनेके निमित्त सबसे यही वचन कहा करता था, कि “मैं धर्मका आचरण कर रहा हूँ” हे राजन् ! इसी प्रकारसे कुछ दिनोंके अनन्तर सब पक्षी उसका विश्वास करने लगे और सबोंने मिलकर उसकी बहुत ही प्रशंसा

पूज्यमानस्तु तैः सर्वैः पक्षिभिः पक्षिभोजनः ।  
 आत्मकार्यं कृतं मेने चर्यायाश्च कृतं फलम् ॥ १९ ॥  
 अथ दीर्घस्य कालस्य तं देशं सूषिका ययुः ।  
 ददृशुस्तं च ते तत्र धार्मिकं व्रतचारिणम् ॥ २० ॥  
 कार्येण महता युक्तं दम्भयुक्तेन भारत ।  
 तेषां मतिरियं राजन्नासीत्तत्र विनिश्चये ॥ २१ ॥  
 बहुमित्रा वयं सर्वे तेषां नो मातुलो ह्ययम् ।  
 रक्षां करोतु सततं वृद्धबालस्य सर्वशः ॥ २२ ॥  
 उपगम्य तु ते सर्वे बिडालमिदमब्रुवन् ।  
 भवत्प्रसादादिच्छामश्चर्तुं चैव यथासुखम् ॥ २३ ॥  
 भवान्नो गतिरव्यग्रा भवान्नः परमः सुहृत् ।  
 ते वयं सहिताः सर्वे भवन्तं शरणं गताः ॥ २४ ॥  
 भवान्धर्मपरो नित्यं भवान्धर्मे व्यवस्थितः ।  
 स नो रक्ष महाप्रज्ञ त्रिदशानिव वज्रभृत् ॥ २५ ॥  
 एवमुक्तस्तु तैः सर्वैर्मूषिकैः स विशाम्पते ।

करनी आरम्भ की । ( १६-१८ )

पक्षियोंको भोजन करनेवाले धूर्त  
 बिडालने पक्षियों में पूजित होके यह  
 सोचा, कि इतने दिन के अनन्तर  
 अब मेरी तपस्याका फल उदय हुआ  
 है; अब मेरा कार्य सफल हुआ । हे  
 भारत ! अनन्तर कुछ दिनोंमें चूहे भी  
 वहांपर उपस्थित हुए और उस व्रत  
 करनेवाले धार्मिक दम्भसे युक्त धूर्त  
 बिडालको महाव्रतमें रत देखा । हे रा-  
 जन् ! ऐसा निश्चय होने पर उन चूहों  
 की ऐसी बुद्धि हुई, कि हम लोगोंके  
 बहुतसे मित्र हैं, इससे ये वृद्ध और  
 बालकोंसे युक्त हम लोगोंके मामा बन

कर हमारी सदा रक्षा किया करें। १९-२२

ऐसा विचार कर वे सब चूहे बिडा-  
 लके समीप जाकर यह वचन बोले, कि  
 तुम्हारे आसरे में हम लोग सुखपूर्वक  
 सब स्थानों में अमण करने की इच्छा  
 करते हैं, तुम ही हम लोगोंकी परम  
 गति और तुम ही हमारे परम-बन्धु हो;  
 इसी कारणसे हम सब लोग मिलकर  
 तुम्हारे शरणागत हुए हैं; तुम धर्मात्मा  
 हो और सदा धर्महीके कार्यमें लगे  
 रहते हो; इससे हे महाबुद्धिमन् ! जैसे  
 इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं वैसे  
 ही तुम भी हम लोगोंकी रक्षा  
 करो । ( २३-२५ )

प्रत्युवाच ततः सर्वान्सूषिकान्सूषिकान्तकृत् ॥ २६ ॥  
 द्वयोर्योगं न पश्यामि तपसो रक्षणस्य च ।  
 अवश्यं तु मया कार्यं वचनं भवतां हितम् ॥ २७ ॥  
 युष्माभिरपि कर्तव्यं वचनं मम नित्यशः ।  
 तपसाऽस्मि परिश्रान्तो दृढं नियममास्थितः ॥ २८ ॥  
 न चापि गमने शक्तिं काश्चित्पश्यामि चिन्तयन् ।  
 सोऽस्मि नेयः सदा ताता नदीकूलमितः परम् ॥ २९ ॥  
 तथेति तं प्रतिज्ञाय सूषिका भरतर्षभ ।  
 वृद्धबालमथो सर्वं मार्जाराय न्यवेदयन् ॥ ३० ॥  
 ततः स पापो दुष्टात्मा सूषिकानथ भक्षयन् ।  
 पीवरश्च सुवर्णश्च दृढबन्धश्च जायते ॥ ३१ ॥  
 सूषिकाणां गणश्चाऽत्र भृशं संक्षीयतेऽथ सः ।  
 मार्जारो वर्धते चापि तेजोबलसमन्वितः ॥ ३२ ॥  
 ततस्ते सूषिकाः सर्वे समेत्याऽन्योन्यमब्रुवन् ।  
 मातुलो वर्धते नित्यं वयं क्षीयामहे भृशम् ॥ ३३ ॥

हे राजन्! वह चूहोंको भक्षण करने-  
 वाला बिडाल उन सब के वचनोंको  
 सुनकर बोला, कि तपस्या और रक्षा ये  
 दोनों कार्य एक ही समयमें नहीं हो  
 सकते । परन्तु हित साधन करनेके नि-  
 मित्त तुम्हारे इस वचनकी रक्षा मुझको  
 अवश्य ही करनी पड़ेगी, और मेरी  
 बात भी तुम लोगोंको नित्य ही प्रति-  
 पालन करनी उचित है, मैं इस दृढ व्रत  
 में स्थित होके तपस्यामें क्षीण होगया  
 हूं; विशेष रूपसे विचारने पर भी मुझमें  
 चलने की कुछ भी शक्ति नहीं दीख  
 पड़ती; संप्रति दिनके समय तुम लोग  
 मुझे नदी-किनारे पर ले चलना ॥ २६-२९

हे भरतर्षभ ! चूहोंने कहा, “ऐसा-  
 ही होगा” ऐसी प्रतिज्ञा करके सब  
 चूहोंने उस बिडालके समीपमें बूढ़े और  
 बच्चोंको समर्पण किया । अनन्तर वह  
 पापबुद्धि दुष्टात्मा बिडाल चूहोंको धीरे  
 धीरे भक्षण करके मोटे शरीर, उत्तम  
 वर्ण और खूब ही पुष्ट होने लगा ।  
 इसी प्रकार से सब चूहोंका नाश होने  
 लगा और वह बिडाल तेजस्वी और  
 बलवान् होता जाता था । (३०—३२)

अनन्तर एक दिन सब चूहे इकट्ठे  
 होकर आपसमें यह वचन कहने लगे,  
 कि मामा नित्य ही मोटे ताजे और  
 बलवान् हुए जाते हैं, और हम लोगोंके

ततः प्राज्ञतमः कश्चिडिण्डिको नाम सूषिकः ।

अब्रवीद्वचनं राजन्सूषिकाणां महागणम् ॥ ३४ ॥

गच्छतां वो नदीतीरं सहितानां विशेषतः ।

पृष्ठतोऽहं गमिष्यामि सहैव मातुलेन तु ॥ ३५ ॥

साधु साध्विति ते सर्वे पूजयाश्चक्रिरे तदा ।

चक्रुश्चैव यथान्यायं डिण्डिकस्य वचोऽर्थवत् ॥ ३६ ॥

अविज्ञानात्ततः सोऽथ डिण्डिकं ह्युपभुक्तवान् ।

ततस्ते सहिताः सर्वे मन्त्रयामासुरज्जसा ॥ ३७ ॥

तत्र वृद्धतमः कश्चित्कोलिको नाम सूषिकः ।

अब्रवीद्वचनं राजज्ज्ञानिमध्ये यथातथम् ॥ ३८ ॥

न मातुलो धर्मकामश्छद्ममात्रं कृता शिखा ।

न मूलफलभक्षस्य विष्टा भवति लोमशा ॥ ३९ ॥

अस्य गात्राणि वर्धन्ते गणश्च परिहीयते ।

अद्य सप्ताष्टदिवसान् डिण्डिकोऽपि न दृश्यते ॥ ४० ॥

एतच्छ्रुत्वा वचः सर्वे सूषिका विप्रदुर्मुखः ।

कुलका अत्यन्तही नाश हो रहा है । हे राजन् ! अनन्तर डिण्डिक नामक कि-सी बुद्धिमान् चूहेने उन सबोंसे यह वचन कहा, कि तुम लोग विशेष रूपसे इकट्ठे होकर नदीके तीरपर जाना और मैं मामाके सङ्ग ही तुम लोगोंके पीछे चलूंगा । (३३—३५)

तब सब चूहे “धन्य धन्य” कहके उसकी प्रशंसा करने लगे । और डिण्डिकके इस अर्थयुक्त वचन की न्यायके अनुसार रक्षा करने लगे । अनन्तर बिडालने यह सब बात न जानकर डिण्डिक का भक्षण किया; तब सब चूहे इकट्ठे होके एकान्त स्थानमें विचार

करने लगे । (३६—३७)

हे राजन् । कोलिक नामका एक बूढा चूहा सब चूहोंके बीचमें यह यथार्थ वचन कहने लगा, कि मामा धर्मात्मा नहीं है, हम लोगोंके शत्रु होकर भी केवल छल करनेके निमित्त मित्र भावका अवलम्बन किये हुये हैं, जो पुरुष फल मूल भोजन करता है, उसकी विष्टा कभी रोवोंसे युक्त नहीं होती; इसका शरीर नित्य ही बढ रहा है; और चूहोंके कुलका धीरे धीरे नाश हुआ चला जा रहा है, विशेष करके आज सात आठ दिन हुआ डिण्डिकका दर्शन नहीं मिलता है । कोलिकका

बिडालोऽपि स दुष्टात्मा जगामैव यथागतम् ॥ ४१ ॥  
 तथा त्वमपि दुष्टात्मन्बैडालं व्रतमास्थितः ।  
 चरसि ज्ञातिषु सदा बिडालो मूषिकेष्विव ॥ ४२ ॥  
 अन्यथा किल ते वाक्यमन्यथा कर्म दृश्यते ।  
 दम्भनार्थाय लोकस्य वेदाश्चोपशमश्च ते ॥ ४३ ॥  
 त्यक्त्वा छद्मं त्विदं राजन्क्षत्रधर्मं समाश्रितः ।  
 कुरु कार्याणि सर्वाणि धर्मिष्ठोऽसि नरर्षभ ॥ ४४ ॥  
 बाहुवीर्येण पृथिवीं लब्ध्वा भरतसत्तम ।  
 देहि दानं द्विजातिभ्यः पितृभ्यश्च यथोचितम् ॥ ४५ ॥  
 क्लिष्टाया वर्षपूर्णांश्च मातुर्मातृहिते स्थितः ।  
 प्रमार्जाऽश्रु रणे जित्वा सम्मानं परमावह ॥ ४६ ॥  
 पञ्च ग्रामा वृता यत्नाच्चाऽस्माभिरपवर्जिताः ।  
 युद्धयामहे कथं संख्ये कोपयेम च पाण्डवान् ॥ ४७ ॥  
 त्वत्कृते दुष्टभावस्य सन्त्यागो विदुरस्य च ।  
 जातुषे च गृहे दाहं स्मर तं पुरुषो भव ॥ ४८ ॥

वचन सुनकर सब चूहे इधर उधर भाग गए और वह दुष्टात्मा धूर्त बिडाल भी वहाँसे चला गया । ( ३८—४१ )

अरे दुष्टात्मा ! इससे तुमने भी उस ही बिडाल व्रतका अवलम्बन किया है; चूहोंके बीचमें बिडालने जैसा आचरण किया था, तू भी जातियोंके बीच वैसा ही आचरण कर रहा है, तुम्हारे वचन और भाँति के सुन पड़ते हैं; और कर्म दूसरी प्रकारके दीख पड़ते हैं; तुम्हारे वेद-विहित कर्म और धर्मका दम्भ लोकों को दिखानेके निमित्त है। हे राजन् ! तुम धर्मात्मा कहके विख्यात हो; इससे अब तुम इस कपट-व्यवहारको त्यागकर

क्षत्रिय धर्मके अनुसार सब कार्य करो। हे भरतसत्तम ! अपने बाहुबलसे पृथ्वीका राज्य ग्रहण करके ब्राह्मण और पितरोंको यथा उचित दान करो । ( ४२—४५ )

तुम्हारी माता कई वर्षसे क्लेश तथा दुःख सह रही है, इससे उसके हित-साधनके निमित्त यत्न करके युद्धमें शत्रुओं को जीत करके उसके आंसूको बन्द करो। तुमने युक्तिसे पाँच गाँव माँगे थे, परन्तु हम लोग “पाण्डवोंको किस प्रकारसे क्रोधित करेंगे ? कैसे उनसे रणभूमिमें युद्ध करेंगे ?” यही विचारकर नहीं प्रदान किया। तुम्हारे निमित्त दुष्ट अभिप्राय, विदुरका त्याग, और जतुगृह



यच्च कृष्णमवोचस्त्वमायान्तं कुरुसंसदि ।  
 अयमस्मि स्थितो राजञ्शमाय समराय च ॥ ४९ ॥  
 तस्याऽयमागतः कालः समरस्य नराधिप ।  
 एतदर्थं मया सर्वं कृतमेतद्युधिष्ठिर ॥ ५० ॥  
 किं नु युद्धात्परं लाभं क्षत्रियो बहु मन्यते ।  
 किं च त्वं क्षत्रियकुले जातः सम्प्रस्थितो भुवि ॥ ५१ ॥  
 द्रोणादस्त्राणि सम्प्राप्य कृपाच्च भरतर्षभ ।  
 तुल्ययोनौ समबले वासुदेवं समाश्रितः ॥ ५२ ॥  
 ब्रूयास्त्वं वासुदेवं च पाण्डवानां समीपतः ।  
 आत्मार्यं पाण्डवार्थं च यत्तो मां प्रतियोधय ॥ ५३ ॥  
 सभामध्ये च यद्रूपं मायया कृतवानसि ।  
 तत्तथैव पुनः कृत्वा सार्जुनो मामभिद्रव ॥ ५४ ॥  
 इन्द्रजालं च मायां वै कुहका वापि भीषणा ।  
 आत्तशस्त्रस्य संग्रामे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥ ५५ ॥

मैं तुम लोगोंको जलाना आदि विषयों  
 को स्मरण करके अब इस समयमें तुम  
 पुरुषार्थ अवलम्बन करो । ( ४६-४८ )

हे भारत ! तुमने कौरवोंकी सभामें  
 अनेक समय कृष्णसे कहा था, कि “हे  
 राजन् ! मैं शान्ति और युद्ध दोनोंके नि-  
 मित्त तैयार हूँ” ऐसी बात कहला भेजी  
 थी; वही युद्धका समय अब उपस्थित  
 हुआ है । हे युधिष्ठिर ! इस ही निमित्त  
 मैंने सब सामान ठीक कर रक्खा है ।  
 क्षत्रिय पुरुष युद्धके अतिरिक्त और किस  
 विषयको उत्तम समझेंगे ? हे भरतर्षभ !  
 तुम क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होकर पृथ्वीमें  
 विख्यात हुए हो, और द्रोणाचार्य तथा  
 कृपाचार्यसे सब अस्त्र शस्त्रकी शिक्षा

पाकर समान जन्म, बल और तेजको  
 धारण करके तुमने वसुदेव पुत्र कृष्णका  
 आसरा ग्रहण किया है । ( ४९-५२ )

हे उलूक ! तुम पाण्डवोंके समीपमें  
 कृष्णसे भी यह वचन कहना, कि तुम  
 अपनी और पाण्डवोंकी रक्षामें यत्नवान्  
 होकर हम लोगोंके सङ्ग युद्ध करो ।  
 पहिले तुमने सभामें मायासे जो रूप  
 धारण किया था, अब फिर उस रूपको  
 प्रकट करके अर्जुनके सहित मेरे सम्मुखमें  
 आकर युद्ध करो । इन्द्रजाल,  
 माया, और बाजीगरी सब देखनेमें  
 भयङ्कर होती हैं, यह ठीक है, परन्तु  
 रणभूमिमें शस्त्रधारी पुरुषके सम्मुख  
 भयङ्कर होनी तो दूर रहे; वह उलटे

वयमप्युत्सहेम व्यां खं च गच्छेम मायया ।  
 रसातलं विशामोऽपि ऐन्द्रं वा पुरमेव तु ॥ ५६ ॥  
 दर्शयेम च रूपाणि स्वशरीरे बहून्यपि ।  
 न तु पर्यायतः सिद्धिर्वुद्धिमाप्नोति मानुषीम् ॥ ५७ ॥  
 मनसैव हि भूतानि धातैव कुरुते वशे ।  
 यद्ब्रवीषि च वाष्णेय धार्तराष्ट्रानहं रणे ॥ ५८ ॥  
 धातयित्वा प्रदास्यामि पार्थेभ्यो राज्यमुत्तमम् ।  
 आचक्ष्वे च मे सर्वं सञ्जयस्तव भाषितम् ॥ ५९ ॥  
 भद्वितीयेन पार्थेन वैरं वः सव्यसाचिना ।  
 स सत्यसङ्गरो भूत्वा पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥ ६० ॥  
 युद्धयस्वाऽद्य रणे यत्तः पश्यामः पुरुषो भव ।  
 यस्तु शत्रुमभिज्ञाय शुद्रं पौरुषमास्थितः ॥ ६१ ॥  
 करोति द्विषतां शोकं स जीवति सुजीवितम् ।  
 अकस्माच्चैव ते कृष्ण ख्यातं लोके महद्यशः ॥ ६२ ॥  
 अचेदानीं विजानीमः सन्ति षण्ढाः सशृङ्गकाः ।

क्रोधको उत्पन्न करती हैं । (५३-५५)

मैं भी निज शरीरसे अनेकरूप प्रकट करके स्वर्ग और आकाशमें गमन करने-का उत्साह कर सकता हूं और पाताल तथा इन्द्र लोकमें भी जानेमें समर्थ हो सकता हूं । परन्तु माया और भय दिखाना तथा वशीकरण आदि सब माया-के कार्योंसे जो सिद्धि होवेगी, वह पुरुषार्थ को प्रकाशित करनेवाले पुरुषोंके सम्मुख नहीं चलती । क्योंकि विधाता ही अपनी इच्छाके अनुसार सब प्राणियोंको अपने वशमें कर सकता है, दूसरा नहीं कर सकता । हे कृष्ण ! तुम जो कहा करते हो, कि मैं युद्धमें धृतराष्ट्रपु-

त्रोंको मारकर यह सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य पाण्डवोंको समर्पण करूंगा और सञ्जयने मेरे समीप तुम्हारे इस वचनको कहा था, कि “मेरे सहित उस अर्जुनसे तुम्हारी शत्रुता हुई है” अब पाण्डवोंके निमित्त उन वचनोंको पालन करके सत्य-प्रातिज्ञ बनो । (५६-६०)

रणभूमिमें यत्पूर्वक युद्ध करो ! हम लोग देखें, तुम एकवार पुरुष बनो । जो पुरुष शत्रुओंको विशेष रूपसे जानकर अपने यथार्थ पुरुषार्थ को अवलम्बन करके उनको शोकित और दुःखित करते हैं, वे ही उत्तम जीवन धारण करके जीते रहते हैं । हे कृष्ण ! पृथ्वीके बीच अकस्मात्

मद्विधो नापि नृपतिस्त्वयि युक्तः कथञ्चन ॥ ६३ ॥  
 सन्नाहं संयुगे कर्तुं कंसभृत्ये विशेषतः ।  
 तं च तूवरकं बालं बह्वाशिनमविच्यकम् ॥ ६४ ॥  
 उलूक मद्रुचो ब्रूहि असकृद्भीमसेनकम् ।  
 विराटनगरे पार्थ यस्त्वं सूदो ह्यभूः पुरा ॥ ६५ ॥  
 बल्लवो नाम विख्यातस्तन्ममैव हि पौरुषम् ।  
 प्रतिज्ञातं सभामध्ये न तन्मिथ्या त्वया पुरा ॥ ६६ ॥  
 दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ।  
 यद्वृषीषि च कौन्तेय धार्तराष्ट्रानहं रणे ॥ ६७ ॥  
 निहनिष्यामि तरसा तस्य कालोऽयमागतः ।  
 त्वं हि भोज्ये पुरस्कार्यो भक्ष्ये पेये च भारत ॥ ६८ ॥  
 क युद्धं क च भोक्तव्यं युद्धस्व पुरुषो भव ।  
 शयिष्यसे हतो भूमौ गदामालिङ्ग्य भारत ॥ ६९ ॥  
 तद्वृथा च सभामध्ये वल्गितं ते वृकोदर ।  
 उलूक नकुलं ब्रूहि वचनान्मम भारत ॥ ७० ॥

तुम्हारा यश विख्यात हुआ है, किन्तु  
 नपुंसकता इस समय सबको विदित  
 होजावेगी । कंसके दास बने हुए तुमसे  
 मेरे समान किसी राजाने कभी युद्ध  
 नहीं किया होगा । (६१—६४)

हे उलूक ! उस सींगसे रहित बैलके  
 समान, बहुत भोजन करनेवाले, विद्या-  
 शून्य, और मूर्ख भीमसेनसे भी बार  
 बार मेरे इस वचनको कहना, कि हे  
 पार्थ ! पहिले विराटनगरमें जो बल्लव  
 नामक प्रसिद्ध रसोई बनानेवाले स्तूपकार  
 हुए थे, वह सब मेरा ही पराक्रम था ।  
 सभाके बीचमें तुमने जो प्रतिज्ञा की  
 थी, वह जिसमें मिथ्या न होजावे, यदि

शक्ति हो, तो दुःशासनका रुधिर पान  
 करो । हे कौन्तेय ! तुम जो कहा करते  
 हो, कि युद्धमें मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंको  
 शीघ्र ही मारूंगा; उसका समय अब  
 उपस्थित हुआ है । (६४—६८)

हे भारत ! तुम खाने पीने और  
 भोजन करनेहीमें पुरुष हो; भोजनकी  
 बात अलग है और भोजनसे युद्धका  
 बहुत अन्तर है । आओ पुरुष होकर  
 युद्ध करो । हे भारत ! तुम प्राणरहित  
 निश्चय ही पृथ्वीमें शयन करोगे । हे  
 भीम ! तुमने सभामें बहुत ही अपनी  
 बड़ाई की थी, वह अत्यन्त ही तुच्छ  
 है । (६८—७०)

युद्धयस्वाऽद्य स्थिरो भूत्वा पश्यामस्तव पौरुषम् ।  
 युधिष्ठिरानुरागं च द्वेषं च मयि भारत ।  
 कृष्णायाश्च परिक्लेशं स्मरेदानीं यथातथम् ॥ ७१ ॥  
 ब्रूयास्त्वं सहदेवं च राजमध्ये वचो मम ।  
 युद्धयेदानीं रणे यत्तः क्लेशान्स्मर च पाण्डव ॥ ७२ ॥  
 विराटद्रुपदौ चोभौ ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ।  
 न दृष्टपूर्वा भर्तारो भृत्यैरपि महा गुणैः ॥ ७३ ॥  
 तथाऽर्थपतिभिर्भृत्या यतः सृष्टा प्रजास्ततः ।  
 अश्लाघ्योऽयं नरपतिर्युवधोरिति चाऽऽगतम् ॥ ७४ ॥  
 ते यूयं संहता भूत्वा तद्वधार्थं ममापि च ।  
 आत्मार्थं पाण्डवार्थं च प्रयुद्धयध्वं मया सह ॥ ७५ ॥  
 धृष्टद्युम्नं च पाश्चाल्यं ब्रूयास्त्वं वचनान्मम ।  
 एष ते समयः प्राप्तो लब्धव्यश्च त्वयाऽपि सः ॥ ७६ ॥  
 द्रोणमासाद्य समरे ज्ञास्यसे हितमुत्तमम् ।  
 युद्धयस्व ससुहृत्पापं कुरु कर्म सुदुष्करम् ॥ ७७ ॥

हे उलूक ! तुम नकुलसे भी मेरा यह वचन कहना, “हे भारत ! युधिष्ठिरके ऊपर अनुराग, मुझसे द्वेष और द्रौपदीका क्लेश स्मरण करके इस समय युद्ध करो । राजाओंके बीचमें सहदेवसे भी मेरा यह वचन कहना, कि हे पाण्डव ! अब इस समय सब क्लेशोंको स्मरणकर यत्नवान् होके युद्ध करो । ( ७०-७२ )

हे उलूक ! विराट और द्रुपदको भी मेरी ओरसे यह वचन कहना, कि जबसे प्रजाकी सृष्टि हुई है, तबसे महागुणवान् सेवकोंने स्वामीको कभी विशेष रूपसे नहीं देखा है और राजाने भी कभी सेवकोंको नहीं जाना है, यह राजा

अपनी बड़ाई नहीं करता, ऐसा समझकर तुम लोग मेरे वध करनेके निमित्त आये हो; इस समय सब कोई मिलकर पाण्डव और अपने हितके निमित्त मेरे सङ्गमें युद्ध करो । ( ७३-७५ )

पाश्चालनन्दन धृष्टद्युम्नको भी मेरी ओरसे यह वचन कहना; यही अब तुम्हारा समय आगया है और तुम भी युद्धमें प्रवृत्त होजाओ; युद्धमें द्रोणाचार्यके सम्मुख होकर अपने उत्तम हितको सिद्ध करनेके निमित्त यत्न करो । आओ अपने मित्रोंके सङ्ग मिलकर युद्ध करके अपने निमित्त कठिन-कर्म करो । ७६-७७

हे उलूक ! अनन्तर शिखण्डीको

शिखण्डिनमथो ब्रूहि उलूक वचनान्मम ।  
 स्त्रीति मत्वा महाबाहुर्न हनिष्यति कौरवः ॥ ७८ ॥  
 गाङ्गेयो धन्विनां श्रेष्ठो युद्धयेदानीं सुनिर्भय ।  
 कुरु कर्म रणे यत्तः पश्यामः पौरुषं तव ॥ ७९ ॥  
 एवमुक्त्वा ततो राजा प्रहस्योलूकमब्रवीत् ।  
 धनञ्जयं पुनर्ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ८० ॥  
 अस्मान्वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ।  
 अथवा निर्जितोऽस्माभी रणे वीर शायिष्यसि ॥ ८१ ॥  
 राष्ट्रान्निर्वासनक्लेशं वनवासं च पाण्डव ।  
 कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन्पुरुषो भव ॥ ८२ ॥  
 यदर्थं क्षत्रिया सूते सर्वं तदिदमागतम् ।  
 बलं वीर्यं च शौर्यं च परं चाप्यस्त्रलाघवम् ॥ ८३ ॥  
 पौरुषं दर्शयन्पुद्गे कोपस्य कुरु निष्कृतिम् ।  
 परिक्लिष्टस्य दीनस्य दीर्घकालेषितस्य च ।  
 हृदयं कस्य न स्फोटैदैश्वर्याद् भ्रंशितस्य च ॥ ८४ ॥  
 कुले जातस्य शूरस्य परवित्तेष्वगृह्यतः ।

मेरी ओरसे यह कहना, कि सम्पूर्ण शस्त्र-  
 धारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु कुरुनन्दन गङ्गा-  
 पुत्र भीष्म तुम्हें स्त्री समझके तुम्हारा  
 वध नहीं करेंगे । इससे आओ अब तुम  
 निर्भय होके युद्ध करो । रणभूमिमें यत्न-  
 पूर्वक युद्धके कर्मको करो और हम लोग  
 तुम्हारे पराक्रमको देखें । ( ७८-७९ )

ऐसा कहकर राजा दुर्योधन हंसते  
 हुए फिर उलूकसे बोले, कि तुम कृष्णके  
 सम्मुख अर्जुनसे फिर हमारे इस वचन  
 को कहना, हे वीर ! या तो तुम हम  
 लोगोंको मारकर इस पृथ्वीको शासन  
 करोगे, अथवा हम लोगोंके हाथसे मर-

कर पृथ्वीमें शयन करोगे । हे पाण्डव !  
 राज्यसे निकाले जाने पर वनवासका  
 दुःख और द्रौपदीका क्लेश स्मरण करके  
 इस समयमें तुम अपने पराक्रमको प्र-  
 काशित करो । क्षत्रियोंकी माता जिस  
 कार्यके वास्ते पुत्रको उत्पन्न करती है,  
 उसका समय अब उपास्थित हुआ है ।  
 इससे युद्धमें बल, वीर्य, पराक्रम और  
 अत्यन्त शीघ्रतासे अस्त्र चलाकर अपने  
 पराक्रमको प्रकाशित करो । ऐश्वर्यसे  
 भ्रष्ट, बहुत दिन तक वनवासमें अत्यन्त  
 ही क्लेश पाकर किसका हृदय दुःखित  
 न होगा ? ( ८०-८४ )

आस्थितं राज्यमाक्रम्य कोपं कस्य न दीपयेत् ॥ ८५ ॥  
 यत्तदुक्तं महद्वाक्यं कर्मणा तद्विभाव्यताम् ।  
 अकर्मणा कत्थितेन सन्तः कुपुरुषं विदुः ॥ ८६ ॥  
 अमित्राणां वशे स्थानं राज्यं च पुनरुद्धर ।  
 द्वावर्थौ युद्धकामस्य तस्मात्तत्कुरु पौरुषम् ॥ ८७ ॥  
 पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चाऽऽनायिता सभाम् ।  
 शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ॥ ८८ ॥  
 द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद्विवासितः ।  
 संवत्सरं विराटस्थ दास्यमास्थाय चोषितः ॥ ८९ ॥  
 राष्ट्राग्निर्वासनक्लेशं वनवासं च पाण्डव ।  
 कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन्पुरुषो भव ॥ ९० ॥  
 अप्रियाणां च वचनं प्रब्रुवत्सु पुनः पुनः ।  
 अमर्षं दर्शयस्व त्वममर्षो ह्येव पौरुषम् ॥ ९१ ॥  
 क्रोधो बलं तथा वीर्यं ज्ञानयोगोऽस्त्रलाघवम् ।

कौन पुरुष मेरे कुलमें उत्पन्न हुए  
 शूरवीर पराये धनको लेनेवाले किसी  
 पुरुषका सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यका आक्र-  
 मण करके उसे क्रोधित न करेगा? तुम-  
 ने जो अपनी बहुत बड़ाई की थी, इस  
 समयमें कर्मसे उसको पूरा करो। विना  
 कर्म किये मिथ्या अपनी बड़ाई करनेपर  
 पण्डित लोग उसे अधम-पुरुष कहते हैं।  
 शत्रुओंके वशमेंसे छुटकारा पाना और  
 राज्यका फिरसे उद्धार करना; इन दोनों  
 विषयोंके निमित्त युद्ध करनेवाले पुरुष  
 का प्रयोजन होता है; इससे बल और  
 पराक्रमको प्रकाशित करके उसे पूर्ण  
 करो। (८५-८७)

तुम भी जुएमें हारे थे और द्रौपदी

भी सभामें बुलाई गई थी; इससे बल-  
 वान् पुरुषको अवश्य ही क्रोध उत्पन्न  
 हो सकता है। हे पाण्डव! तुमने रा-  
 ज्यसे भ्रष्ट होकर बारह वर्ष वनमें और  
 एक वर्षतक विराटनगरमें दासवृत्तिको  
 अवलम्बन करके वास किया था, इससे  
 राज्यसे भ्रष्ट होना, वनवास और द्रौपदी  
 के दुःखको स्मरण करके पुरुष बनो। और  
 भी शत्रुओंके तुल्य कठोर वचनोंको  
 बार बार कहनेवाले दुःशासन आदि  
 पुरुषोंके वचनको स्मरण करके भी तुम-  
 को क्रोध करना उचित है। क्योंकि  
 क्रोधमें ही पौरुष रहता है। (८७-९१)

हे पार्थ! युद्धमें तुम्हारा क्रोध, बल,  
 वीर्य, ज्ञान और शीघ्र शस्त्रका चलाना

इह ते दृश्यतां पार्थ युद्धयस्व पुरुषो भव ॥ ९२ ॥  
 लोहांभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम् ।  
 पुष्टास्तेऽश्वा भृता योधाः श्वो युद्धयस्व सकेशवः ॥ ९३ ॥  
 असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकथसे ।  
 आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ९४ ॥  
 एवं कथसि कौन्तेय अकथन्पुरुषो भव ।  
 सूतपुत्रं सुदुर्धर्षं शल्यं च बलिनां वरम् ॥ ९५ ॥  
 द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि ।  
 अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि ॥ ९६ ॥  
 ब्राह्मे धनुषि चाऽऽचार्य वेदयोरन्तगं द्वयोः ।  
 युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकचरमच्युतम् ॥ ९७ ॥  
 द्रोणं महाद्युतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा ।  
 नहि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥ ९८ ॥  
 अनिलो वा वहन्मेरुं द्यौर्वाऽपि निपतेन्महीम् ।

प्रकाशित होवे, तुम युद्ध करो, पुरुष बनो। तुम्हारे शस्त्रोंका संस्कार आदि भी हुआ है, और कुरुक्षेत्रकी भूमि भी विना कीचड़के स्वच्छ और सुन्दर है, घोड़े पुष्ट हैं और सेनाके पुरुषोंको भी वेतन मिला हुआ है; इमसे अब कृष्णके सङ्ग मिलकर कलही युद्ध करनेके निमित्त प्रवृत्त होजाओ। हे कौन्तेय ! तुम युद्धमें भीष्मके संमुख विना संग्राम किये ही व्यर्थ अपनी बड़ाई क्यों करते हो ? जैसे कोई मूर्ख मनुष्य गन्धमादन पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा करता है, तुम भी वैसा ही व्यर्थ गर्व कर रहे हो। (९२-९४)

इससे अपने मुखसे अपनी बड़ाई

त्यागकर अब इस समयमें पुरुष बनो। संग्राममें वीरधुरीण सूतपुत्र कर्ण, बलवानोंमें श्रेष्ठ शल्य, इन्द्रके समान द्रोणाचार्यको विना पराजित किये ही तुम क्यों राज्य ग्रहण करनेकी इच्छा करते हो ? हे पार्थ ! तुम जो वेदमन्त्र और धनुर्वेद दोनों विद्याओंके आचार्य वीर शिरोमणि महा पराक्रमी अत्यन्त तेजस्वी सेनापति द्रोणाचार्यको जीतनेकी अभिलाषा करते हो, वह तुम्हारा उद्योग अत्यन्त ही व्यर्थ है, क्यों कि वायुसे सुमेरु पर्वत उड़ जावे; ऐसा कभी नहीं सुना गया है। (९५-९८)

यदि वायु कभी सुमेरु पर्वतको भी उड़ा सके, स्वर्ग पृथ्वीसे मिल जावे

युगं वा परिवर्तेत यद्येवं स्याद्यथाऽऽत्थ माम् ॥ ९९ ॥  
 को ह्यस्ति जीविताकांक्षी प्राप्येसमरिर्मर्दनम् ।  
 पार्थो वा इतरो वापि कोऽन्यः स्वस्ति गृहान्त्रजेत् ॥ १०० ॥  
 कथमाभ्यामभिध्यातः संस्पृष्टो दारुणेन वा ।  
 रणे जीवन्प्रमुच्येत पदा भूमिमुपस्पृशन् ॥ १०१ ॥  
 किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां न बुध्यसे राजचमूं समेताम् ।  
 दुराधर्षा देवचमूप्रकाशां गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम् ॥ १०२ ॥  
 प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यैरुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च ।  
 शाल्वैः समत्स्यैः कुरुमध्यदेश्यैर्मलेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्ध्रकांच्यैः ॥ १०३ ॥  
 नानाजनौघं युधि सम्प्रवृद्धं गाङ्गं यथा वेगमपारणीयम् ।  
 मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे ॥ १०४ ॥  
 अक्षय्याविषुधी चैव अग्निदत्तं च ते रथम् ।  
 जानीमो हि रणे पार्थ केतुं दिव्यं च भारत ॥ १०५ ॥

अथवा कालचक्रका परिवर्तन होजाय  
 तब ही तुम मुझको जो कहो, वह संभव  
 हो सकता है; क्योंकि भीष्म और द्रो-  
 णाचार्यके शस्त्रकी चोटसे कौन मनुष्य  
 जीते बचनेकी अभिलाषा करेगा ?  
 अर्जुन ही होवे, अथवा दूसरा ही कोई  
 क्यों न होवे, कौन पुरुष युद्धमें उनके  
 संमुखसे कुशलपूर्वक लौटकर अपने  
 घरको जा सकेगा ? युद्धमें ये लोग जि-  
 सको मारनेकी इच्छा अर्थात् अपने महा  
 भयङ्कर अस्त्रोंसे उसके शरीरपर प्रहार  
 करते हैं, पांवसे पृथ्वीपर गमन करने-  
 वाला ऐसा कौन मरण धर्मशील मनुष्य  
 जीवित रह सकता है ? (९९-१०१)

हे मन्दबुद्धि ! तू कूपमें रहनेवाले  
 मेढककी भांति मूढ होकर देवताओंसे

रक्षित स्वर्गपुरीकी साक्षात् देवताओंकी  
 राजाओंसे रक्षित प्राच्य सेनाके समान  
 बलवान् इकट्ठी हुई प्रतीच्य, दाक्षिणात्य,  
 औदिक्य, काम्बोजक, शक, खश, शा-  
 ल्व, मत्स्य, मलेच्छ, द्राविड, आन्ध्र और  
 काश्चि देशीय आदि इस सम्पूर्ण राजसे-  
 नाका बोध करनेमें क्यों नहीं समर्थ होता  
 है ? अरे अल्पबुद्धि मूढ ! तू इस अपार  
 गङ्गाके वेगके समान पूर्ण रूपसे बढे हुए  
 नाना भांतिके अनेक वीर योद्धाओंके  
 सहित और नागबलके समान बीचमें  
 स्थित मेरे सङ्ग युद्ध करनेकी किस प्रकारसे  
 अभिलाषा करता है ? (१०२-१०४)

रे पार्थ ! तेरे जो अक्षय दोनों तू-  
 णीर, अग्निका दिया हुआ दिव्य रथ  
 और पताका है; वह रणभूमिमें ही जानी



अकथमानो युद्धयस्व कथसेऽर्जुन किं बहु ।

पर्यायात्सिद्धिरेतस्य नैतत्सिद्धयति कथनात् ॥ १०६ ॥

यदीदं कथनाल्लोके सिद्धयेत्कर्म धनञ्जय ।

सर्वे भवेयुः सिद्धार्थाः कथने को हि दुर्गतः ॥ १०७ ॥

जानामि ते वासुदेवं सहायं जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम् ।

जानाम्यहं त्वादृशो नास्ति योद्धा जानानस्ते राज्यं येन दुरामि ॥ १०८ ॥

न तु पर्यायधर्मेण सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ।

मनसैवाऽनुकूलानि धातैव कुरुने वशे ॥ १०९ ॥

त्रयोदश सभा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव ।

भूयश्चैव प्रशासिष्ये त्वां निहत्य सबान्धवम् ॥ ११० ॥

क तदा गाण्डिवं तेऽभूच्चत्वं दासपणौर्जितः ।

क तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन ॥ १११ ॥

सगदाङ्गीमसेनाद्वा फाल्गुनाद्वा सगाण्डिवात् ।

जावेगी । रे अर्जुन ! तू झूठी बडाईको त्यागके अब युद्ध करके पराक्रम दिखा; निरर्थक बहुत ही वृथा गर्व क्यों करता है ? केवल बातोंहीसे युद्ध सिद्ध न होता, पूर्ण रीतिसे पराक्रमको प्रकाशित करनेहीसे इसकी सिद्धि होती है । हे अर्जुन ! इस संसारमें यदि अपनी बडाई करनेहीसे यह कर्म सिद्ध होजावे ऐसा होनेसे सब ही कृतकार्य हो सकते हैं । क्योंकि व्यर्थ गर्वको प्रकाशित करनेमें कौन दरिद्र है ? ( १०५-१०७ )

मैं तुम्हारे सहायक कृष्णको भी जानता हूं और ताल प्रमाण गाण्डीव धनुषको भी जानता हूं तथा तुम्हारे समान कोई वीर योद्धा नहीं है, उसे भी जानता हूं और जानकर ही तुम्हारे

राज्यको ग्रहण कर रहा हूं । रे अर्जुन ! मनुष्य छल कपटसे कभी भी सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता; एक मात्र विधा-ता ही अनुकूल होकर सबको उसके वशमें कर लेता है । मैंने तेरह वर्षतक तुम्हारे राज्यका भोग किया और तुम लोग विलाप करते हुए देखते ही रहे; अब इसके अनन्तर तुमको भाईयोंके सहित मारकर बहुत दिनतक इस राज्य का शासन करूंगा । ( १०८-११० )

रे अर्जुन ! जब तू दासभावसे परोंसे पराजित हुआ था, उस समयमें तेरा गाण्डीव धनुष कहाँ था और भीमसेनका बल भी क्या होगया था ? उस समयमें एक मात्र निन्दारहित द्रौपदीके अतिरिक्त गदाधारी भीम और गाण्डीवधारी

न वै मोक्षस्तदा योऽभूद्विना कृष्णामन्दिताम् ॥११२॥  
 सा वो दास्ये समापन्नान्मोचयामास पार्षती ।  
 अमानुष्यं समापन्नान्दासकर्मण्यवस्थितान् ॥ ११३ ॥  
 अवोचं यत्षण्ढतिलानहं वस्तथमेव तत् ।  
 धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा ॥ ११४ ॥  
 सूदकर्माणि विश्रान्तं विराटस्य महानसे ।  
 भीमसेनेन कौन्तेय यत्तु तन्मम पौरुषम् ॥ ११५ ॥  
 एवमेव सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः ।  
 वेणीं कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसि ॥ ११६ ॥  
 न भयाद्वायुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन ।  
 राज्यं प्रतिप्रदास्यामि युद्धयस्व सहकेशवः ॥ ११७ ॥  
 न माया हीन्द्रजालं वा कुहका वापि भीषणा ।  
 आत्तशस्त्रस्य संग्रामे बहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥ ११८ ॥  
 वायुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ।  
 आसाद्य माममोघेषुं द्रविष्यन्ति दिशो दश ॥ ११९ ॥  
 संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम् ।

अर्जुनसे तुम लोगोंकी मुक्ति नहीं हुई  
 थी । तुम लोग अमानुषी दासभावको  
 प्राप्त होकर हम लोगोंके दास कर्ममें  
 स्थित हुए थे; पाञ्चालनन्दिनी द्रौपदीहीने  
 तुम लोगोंको मुक्त किया था । मैंने जो  
 तुमको षण्ढ कहा था, वह ठीक ही है;  
 क्योंकि उस समयमें तुमने विराटनगरमें  
 वेणी धारण की थी । (१११-११४)

और भी विराटकी पाकशालामें जो  
 भीम भोजन बनाया करता था, वह  
 मेरा ही पराक्रम था । रे अर्जुन ! क्ष-  
 त्रियोंके निमित्त क्षत्रिय लोग इसी  
 प्रकारसे दण्ड दिया करते हैं; देखो तुम

नपुंसकके वेशमें वेणी धारण करके  
 कन्याओंको नाचना और गाना सिखाते  
 थे । रे अर्जुन ! मैं कृष्णके भयसे अथवा  
 तेरे भयसे कभी राज्यप्रदान न करूंगा,  
 इससे कृष्णके सङ्ग मिलकर तुम युद्ध  
 करो । क्योंकि संग्राममें शस्त्रधारी पुरुषके  
 सम्मुखमें माया, इन्द्रजाल और वाजीगरी  
 कभी भयङ्कर नहीं हो सकती, बल्कि  
 क्रोधको ही उत्पन्न करती हैं । ११५-११८

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ मेरे सम्मुखमें  
 आकर सहस्रों कृष्ण और सैंकड़ों अर्जुन  
 दशों दिशामें भाग जावेंगे । रे नीच-  
 बुद्धि ! तुम भीष्मके सङ्ग युद्ध करो, वा

तरस्व वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम् ॥ १२० ॥

शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम् ।

बृहद्वलमहोद्वेलं सौमदत्तितिमिङ्गिलम् ॥ १२१ ॥

भीष्मवेगमपर्यन्तं द्रोणग्राहदुरासदम् ।

कर्णशल्यझषावर्तं काम्बोजवडवामुखम् ॥ १२२ ॥

दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं सुषेणचित्रायुधनागनक्रमम् ।

जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥ १२३ ॥

शस्त्रौघमक्षय्यमभिप्रवृद्धं यदाऽवगाह्यश्रमनष्टचेताः ।

भविष्यसि त्वं हनसर्वबान्धवस्तदा मनस्ते परितापमेव्यति ॥ १२४ ॥

तदा मनस्ते त्रिदिवादिवाऽशुचेर्निवर्तिता पार्थ महीप्रशासनात् ॥ ५३९१ ॥

प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्लभं त्वया बुभूषितः स्वर्गं इवाऽतपस्विना ॥ १२५ ॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि दुर्योधनवाक्ये षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

सञ्जय उवाच— सेनानिवेशं सम्प्राप्तः कैतव्यः पाण्डवस्य ह ।

मस्तकके धकेसे पर्वत तोड़ो, अथवा  
बाहुसे नीचे कहे हुए इस अगाध पुरुष-  
सागरको तर जाओ अर्थात् मस्तकसे  
पर्वत तोड़नेकी भांति ये दोनों कार्य  
असम्भव हैं । ( ११९—१२० )

इस अगाध पुरुषसागरमें कृपाचार्य  
महामीन, विविंशति महासर्प, बृहद्वल महा  
तरङ्ग, भूरिश्रवातिमिङ्गल, भीष्म वेग,  
द्रोणाचार्य मयङ्कर ग्राह, कर्ण और शल्य  
भंवर, काम्बोज वडवानल, दुःशासन  
प्रवाह, शल और शल्य मत्स्य, सुषेण और  
चित्रायुध नाग, जयद्रथ दूसरे किनारे पर  
रहनेवाले पर्वत, पुरुमित्र गम्भीरता, युयु-  
त्सु और दुर्मर्षण जल, भगदत्त वायु, श्रुत-  
वायु और कृतवर्मा आरपार, और शकुनि  
दूसरा किनारास्वरूप हैं । ( १२१—१२२ )

हे पार्थ ! इस अक्षय अस्त्र प्रवाहसे  
युक्त अगम्य पुरुषसागरको तरते हुए  
जब तुम परिश्रमसे चेत रहित होजाओगे  
और तुम्हारे सब बन्धुबाधव मारे जावेंगे,  
तभी तुम्हारे मनमें शोक उत्पन्न होगा  
और पापी मनुष्यका मन जैसे स्वर्गकी  
अभिलाषासे निवृत्त होजाता है, उसी  
भांतिसे पृथ्वीको शासन करनेकी तुम्हारी  
अभिलाषा जाती रहेगी; क्योंकि तपसे  
हीन पुरुषकी स्वर्गलोक पानेकी इच्छाके  
समान इस प्रशंसनीय पृथ्वीके राज्यको  
पाना तुम्हारे तिमित बहुत ही कठिन  
कार्य है । ( १२४—१२५ ) [ ५३९१ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ साठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ इकसठ अध्याय ।

सञ्जय बोले, कितवनन्दन उलूक

समागतः पाण्डवेयैर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ १ ॥  
 अभिज्ञो दूतवाक्यानां यथोक्तं ब्रुवतो मम ।  
 दुर्योधनसमादेशं श्रुत्वा न क्रोद्धुमर्हसि ॥ २ ॥  
 युधिष्ठिर उवाच— उलूक न भयं तेऽस्ति ब्रूहि त्वं विगतज्वरः ।  
 यन्मतं धार्तराष्ट्रस्य लुब्धस्याऽदीर्घदर्शिनः ॥ ३ ॥  
 ततो व्युत्तिमतां मध्ये पाण्डवानां महात्मनाम् ।  
 सृञ्जयानां च मत्स्यानां कृष्णस्य च यशस्विनः ॥ ४ ॥  
 द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च सन्निधौ ।  
 भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह ॥ ५ ॥  
 उलूक उवाच— इदं त्वामब्रवीद्राजा धार्तराष्ट्रो महामनाः ।  
 शृण्वतां कुरुवीराणां तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ६ ॥  
 पराजितोऽसि व्यूतेन कृष्णा चाऽऽनायिता सभाम् ।  
 शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ॥ ७ ॥  
 द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद्विवासितः ।  
 संवत्सरं विराटस्य दास्यमास्थाय चोषितः ॥ ८ ॥  
 अमर्षं राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव ।

पाण्डवोंकी सेनामें पहुंचकर पाण्डवोंके समीप जाके राजा युधिष्ठिरसे यह वचन बोले, कि तुम दूतके कर्मको जानते हो, इससे दुर्योधनने मुझसे जो कुछ कहा है, वह कहूंगा, सुनकर मेरे ऊपर क्रोध न कीजियेगा । (१-२)

युधिष्ठिर बोले, हे उलूक ! तुम्हें कुछ भय नहीं है, अदीर्घदर्शी लोभी दुर्योधनका जो कुछ अभिप्राय है, तुम स्थिरचित्तसे उसे वर्णन करो । (६)

अनन्तर उलूक महातेजस्वी महात्मा पाण्डव, सृञ्जय, मत्स्य, यशस्वी कृष्ण, पुत्रोंके सहित द्रुपद और विराटके स-

मीप तथा सब राजाओंके बीचमें ये वचन कहने लगा; - हे युधिष्ठिर ! महात्मा राजा दुर्योधनने सब कौरवोंके संमुख तुमको यह वचन कहा है; तुम सुनो। "हे पाण्डव ! तुम स्वयं जुएमें पराजित हुए थे और द्रौपदी भी सभामें बुलाई गई थी, इससे पराक्रमी पुरुष अवश्य क्रोधित हो सकता है । (४-७)

तुमने राज्यसे भ्रष्ट होकर बारह वर्ष वनमें और एक वर्षतक दासवृत्ति अवलम्बन करके विराटके घरमें वास किया था । इससे राज्यका हरण, वन-वास और द्रौपदीके दुःखको स्मरण कर-

द्रौपद्याश्च परिक्लेशं संस्मरन्पुरुषो भव ॥ ९ ॥  
 अशक्तेन च यच्छप्तं भीमसेनेन पाण्डव ।  
 दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ॥ १० ॥  
 लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्मम् ।  
 समः पन्था भृतास्तेऽश्वाः श्वो युध्यस्व सकेशवः ॥ ११ ॥  
 असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकृत्यसे ।  
 आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ १२ ॥  
 एवं कतथसि कौन्तेय अकतथन्पुरुषो भव ।  
 सूतपुत्रं सुदुर्बलं शल्यं च बलिनां वरम् ॥ १३ ॥  
 द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि ।  
 अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि ॥ १४ ॥  
 ब्राह्मे धनुषि चाऽऽचार्यं वेदयोरन्तगं द्वयोः  
 युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकचरमच्युतम् ॥ १५ ॥  
 द्रोणं महायुतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा ।  
 नहि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥ १६ ॥

के पुरुष बनो। हे पाण्डव ! निर्बल होके  
 भी भीमने जो प्रतिज्ञा की थी, उसके  
 अनुसार उसे यदि शक्ति है, तो दुः-  
 शासनके रुधिरको पान करे। तुम्हारे  
 सब शस्त्रोंके संस्कार हो चुके हैं, कुरु-  
 क्षेत्र भी इस समय कीचड़से रहित है,  
 मार्ग भी समतल है, घोड़े भी हृष्ट पुष्ट  
 हैं, इससे कलही कृष्णके सङ्ग मिलकर  
 युद्ध करो। (८-११)

हे कौन्तेय! तुम युद्धमें विना भीष्मके  
 संमुख हुए ही अपनी व्यर्थ बड़ाई क्यों  
 करते हो ? कोई बुद्धिहीन मनुष्य जैसे  
 गन्धमादन पर्वतके शिखरपर चढ़नेकी  
 इच्छा करता है, तुम भी वैसे ही व्यर्थ

अपनी बड़ाई करते हो; इससे अपने  
 मुखसे अपनी बड़ाईका करना छोड़कर  
 अब पुरुष बनो। संग्राममें महावीर क-  
 र्ण, बलवानोंमें श्रेष्ठ शल्य, इन्द्रके समान  
 द्रोणाचार्यको विना पराजित किये ही तुम  
 क्यों राज्य ग्रहण करनेकी इच्छा करते हो?  
 हे पार्थ! तुम जो मन्त्रवेद और धनुर्वेदको  
 जाननेवाले वीरधुरीण अपराजित महा-  
 पराक्रमी, महा तेजस्वी सेनापति द्रो-  
 णाचार्यको जीतनेकी अभिलाषा करते  
 हो, वह सब तुम्हारा उद्योग अत्यन्त  
 ही व्यर्थ है। क्योंकि वायुके झकोरसे  
 सुमेरु पर्वत उड़ जावे ऐसा कभी नहीं  
 सुना गया है। (१२-१६)

अनिलो वा बहेन्मेरुं यौर्वापि निपतेन्महीम् ।

युगं वा परिवर्तेत यद्येवं स्याद्यथाऽऽत्थ माम् ॥ १७ ॥

को ह्यस्ति जीविताकांक्षी प्राप्येधमरिर्मर्दनम् ।

गजो वाजी रथो वापि पुनः स्वस्ति गृहान्त्रजेत् ॥ १८ ॥

कथमाभ्यामभिध्यातः संसृष्टो दारुणेन वा ।

रणे जीवन्विमुच्येत पदा भूमिमुपस्पृशन् ॥ १९ ॥

किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां न बुद्धयसे राजचमूं समेताम् ।

दुराधर्षा देवचमूपकाशां गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव चाम् ॥ २० ॥

प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यैरुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च ।

शाल्वैः समत्स्यैः कुरुमुख्यदेह्यैर्म्लेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्धकाञ्च्यैः ॥ २१ ॥

नानाजनौघं युधि सम्प्रवृद्धं गाङ्गं यथा वेगमपारणीयम् ।

मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे ॥ २२ ॥

इत्येवमुक्त्वा राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

यदि वायु कभी सुमेरु पर्वतको उडा सके, स्वर्ग पृथ्वीसे मिल जावे अथवा कालचक्र परिवर्तित हो जावे, तब ही तुम मुझसे जो कुछ कहो, सब सम्भव हो सकता है । क्योंकि युद्धमें इस शत्रु-नाशन द्रोणके सम्मुख होकर कौन पुरुष जीवित रह सकता है ? घुडसवार, गज-पति, रथी अथवा कोई पुरुष क्यों न होवे, कौन युद्धमें उनके सम्मुखसे जी-वित रहकर कुशलपूर्वक घरको लौट सकता है ? युद्धमें भीष्म द्रोणके अस्त्रकी चोटसे विद्ध होकर पांवसे पृथ्वीको स्पर्श करनेवाला कौन मरण-धर्मशील मनुष्य जीतेजी निस्तार पा सकता है ? ( १७-१९ )

रे मन्द बुद्धि ! तू कूए में रहनेवाले

मेढककी भांति मूढ होकर देवताओंसे रक्षित स्वर्गपुरीकी भांति, प्रतीच्य, दा-क्षिणात्य, औदीच्य, काम्बोज, शक, शाल्व, म्लेच्छ, द्राविड, आन्ध्र और काश्मीरी देशीय पुलिन्दगण आदि असंख्य राजाओंसे रक्षित साक्षात् देवताओंकी सेनाके समान महाबलवान् इस इकट्ठी हुई राजसेनाको बोध करनेमें क्यों नहीं समर्थ होता है ? रे अल्पबुद्धिवाले ! तू संग्राममें इस अपार गङ्गावेगके समान पूर्णरूपसे बढे हुए नाना भांतिके असंख्य वीर योद्धाओं और हाथियोंकी सेनाके बीच स्थित मेरे सङ्ग युद्ध करनेकी किस प्रकारसे अभिलाषा करता है ? ( २०-२२ )

उलूक धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे ऐसे कहकर फिर अर्जुनकी ओर मुख फेरकर

अभ्यावृत्य पुनर्जिष्णुमुलूकः प्रत्यभाषत ॥ २३ ॥

अकथमानो युद्धयस्व कथसेऽर्जुन किं बहु ।

पर्यायात्सिद्धिरेतस्य नैतत्सिद्धयति कथनात् ॥ २४ ॥

यदीदं कथनाल्लोके सिद्धयेत्कर्म धनञ्जय ।

सर्वे भवेयुः सिद्धार्थाः कथने को हि दुर्गतः ॥ २५ ॥

जानामि ते वासुदेवं सहायं जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम् ।

जानाम्येतत्त्वादृशो नास्ति योद्धा जानानस्ते राज्यमेतद्वरामि ॥ २६ ॥

न तु पर्यायधर्मेण राज्यं प्राप्नोति मानुषः ।

भनसैवाऽनुकूलानि विधाता कुरुते वशे ॥ २७ ॥

त्रयोदश समा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव ।

भूयश्चैव प्रशासिष्ये निहत्य त्वां सबान्धवम् ॥ २८ ॥

क तदा गाण्डिवं तेऽभूयत्त्वं दासपणैर्जितः ।

क तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन ॥ २९ ॥

सगदाद्भीमसेनाद्वा पार्थाद्वाऽपि सगाण्डिवात् ।

कहने लगे, “ रे अर्जुन ! तू झूठी बड़ाई त्यागकर युद्ध क्यों नहीं करता ? निरर्थक बहुतसा वृथा गर्व क्यों करता है ? केवल बातोंहीसे युद्ध नहीं सिद्ध होता, पूरी रीतिसे पराक्रमको प्रकाशित करनेपर उसकी सिद्धि होती है । रे अर्जुन ! लोकमें यदि अपनी बड़ाई करनेहीसे सब कर्म सिद्ध होजावें, तो ऐसा होनेसे सब ही कृत कार्य हो सकता है; क्योंकि वृथा गर्व प्रकाशित करनेमें कौन दरिद्र है ? ( २३—२५ )

मैं तेरे सहाय कृष्णको भी जानता हूँ, तालके प्रमाण गाण्डीव धनुष्यको भी जानता हूँ और तेरे समान कोई वीर योद्धा नहीं है, इसे भी जानता हूँ, और

जान कर ही तेरे राज्यको धारण करता हूँ । रे पार्थ ! मनुष्य छल आदि कर्मसे कभी सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता; विधाता ही एक मात्र अपने संकल्पसे सबको उसके वशमें करता है । मैंने इस तेरह वर्ष-तक तेरे राज्यको भोग किया; तुम लोग केवल विलाप करते हुए देखते ही रहे; अब तुमको बन्धुबान्धवोंके सहित मारकर बहुत दिनतक इस सम्पूर्ण राज्यका शासन करूंगा ( २४—२८ )

रे अर्जुन ! जब तू दासभावसे पराजित हुआ था, उस समय तेरा गाण्डीव धनुष कहाँ था और भीमसेनका बल कहाँ चला गया था ? उस समयमें निन्दारहित द्रौपदीके अतिरिक्त गदाधारी

न वै मोक्षस्तदा वोऽभूद्विना कृष्णामनिन्दिताम् ॥ ३० ॥  
 सा वो दास्ये समापन्नान्मोक्षयामास पार्षती ।  
 अमानुष्यं समापन्नान्दासकर्मण्यवस्थितान् ॥ ३१ ॥  
 अवोचं यत्षण्ढतिलानहं वस्तथ्यमेव तत् ।  
 धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा ॥ ३२ ॥  
 सूदकर्मणि च श्रान्तं विराटस्य महानसे ।  
 भीमसेनेन कौन्तेय यच्च तन्मम पौरुषम् ॥ ३३ ॥  
 एवमेतत्सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः ।  
 वेणीं कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसि ॥ ३४ ॥  
 न भयाद्वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन ।  
 राज्यं प्रतिप्रदास्यामि युद्धयस्व सहकेशवः ॥ ३५ ॥  
 न माया हीन्द्रजालं वा कुहका वापि भीषणा ।  
 आत्तशस्त्रस्य मे युद्धे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥ ३६ ॥  
 वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ।  
 आसाद्य माममोघेषुं द्रविष्यन्ति दिशो दश ॥ ३७ ॥  
 संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम् ।

भीम और गाण्डीवधारी अर्जुनसे तुम लोगोंकी मुक्ति नहीं हुई थी; तुम लोग अमानुषी दासभावको प्राप्त कर हम लोगोंके दासकर्ममें स्थित थे, उस समयमें पाञ्चालनन्दिनी द्रौपदीने ही तुम लोगोंको मुक्त किया था । ( २९-३१ )

मैंने जो तुमको षण्ढ कहा था, वह यथार्थ ही है; क्योंकि उस समय तुमने विराटनगरमें वेणी धारण की थी और विराटकी पाकशालामें भीम जो रसोई बनाता था, वह मेरा ही पराक्रम था । इससे क्षत्रिय लोग सदा क्षत्रियोंको इसी प्रकारसे दण्ड किया करते हैं; देखो

तुम नपुंसकके वेशमें वेणी धारण करके कन्याओंको नाचना और गाना सिखाते थे । ( ३२-३४ )

रे अर्जुन ! मैं कृष्ण अथवा तेरे भयसे कभी राज्य न दूंगा, इससे कृष्णके सङ्ग मिलकर मुझसे युद्ध कर; क्योंकि संग्राममें शस्त्रधारी पुरुषोंके सम्मुख माया, इन्द्रजाल और बाजीगरी कभी भयङ्कर नहीं हो सकती; बल्कि वह क्रोधहीको उत्पन्न करती है । शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ मेरे सम्मुख आकर सहस्रों कृष्ण और सैकड़ों अर्जुन दशों दिशामें पलायन करेंगे । रे नचिबुद्धि अर्जुन ! तू भीष्मके



तरेमं वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम् ॥ ३८ ॥

शारद्वनमहामीनं विविंशतिमहोरगम् ।

बृहद्वलमहोद्वेलं सौमदात्तितिमिङ्गिलम् ॥ ३९ ॥

भीष्मवेगमपर्यन्तं द्रोणग्राहदुरासदम् ।

कर्णशल्यझषावर्तं काम्बोजवडवामुखम् ॥ ४० ॥

दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं सुषेणचित्रायुधनागनक्रम् ।

जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥ ४१ ॥

शस्त्रौघमक्षय्यमतिप्रवृद्धं यदाऽवगाह्य श्रमनष्टचेताः ।

भविष्यसि त्वं हनसर्वबान्धवस्तदा मनस्ते परितापमेष्यति ॥ ४२ ॥

तदा मनस्ते त्रिदिवादिवाऽशुचेर्निवर्तिता पार्थ महीप्रशासनात् । [ ५४३४ ]

प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्लभं त्वया बुभूषितः स्वर्गं इवाऽतपस्विना ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि

उलूकवाक्ये एकषष्ठ्योत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

सञ्जय उवाच— उलूकस्त्वर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ।

सङ्गमें संग्राम कर वा मस्तकसे पर्वतको तोड़ अथवा वायुसे नीचे कहे हुए पुरुष सागरको तर जा । (३५-३८)

इस अगम पुरुषसागरमें कृपाचार्य महामीन, विविंशति महासर्प, बृहद्वल महातरङ्ग, भूरिश्रवा तिमिङ्गिल, भीष्म वेग, द्रोणाचार्य भयङ्कर ग्राह, कर्ण, और शल्य भंवर, काम्बोज वडवानल, दुःशासन प्रवाह, शल शल्य मत्स्य, सुषेण और चित्रायुध नाग, जयद्रथ दूसरे किनारे पर रहनेवाले पर्वत, पुरुमित्र गम्भीरता, दुर्मर्षण जल और शकुनि दूसरा किनारा स्वरूप है । (२९-४१)

रे पार्थ ! इस अक्षय शस्त्रप्रवाहसे युक्त पूर्ण रीतिसे बड़े हुए पुरुष सागर-

को तरता हुआ जब तू परिश्रमसे थक कर चेतनारहित होजावेगा और तेरे बन्धु-बान्धव मारे जावेंगे तब ही तेरे मनमें बोध उत्पन्न होगा और पापी मनुष्यका चित्त जैसे स्वर्गकी अभिलाषासे निवृत्त होजाता है, वैसे ही पृथ्वीको शासन करनेकी अभिलाषासे तेरा अन्तःकरण भी निवृत्त होजावेगा, क्योंकि तपसे हीन पुरुषके स्वर्ग पानेकी आशाके समान इस प्रशंसनीय राज्यको प्राप्त करना तेरे निमित्त बहुत ही कठिन कार्य है । (४२-४३) [ ५४३४ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ इकसठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ बासठ अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे महाराज ! उलूकने

आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन्वाक्यशलाकया ॥ १ ॥  
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रुषिताः पाण्डवा भृशम् ।  
 प्रागेव भृशसंकुद्धाः कैतव्येनाऽपि धर्षिताः ॥ २ ॥  
 आसनेषूदतिष्ठन्त बाहूंश्चैव प्रचिक्षिपुः ।  
 आशीविषा इव क्रुद्धा वीक्षाश्चक्रुः परस्परम् ॥ ३ ॥  
 अवाकिशरा भीमसेनः समुदैक्षत केशवम् ।  
 नेत्राभ्यां लोहितान्ताभ्यामाशीविष इव श्वसन् ॥ ४ ॥  
 आर्तं वातात्मजं दृष्ट्वा क्रोधेनाऽभिहतं भृशम् ।  
 उत्स्यन्ननिव दागार्हः कैतव्यं प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥  
 प्रयाहि शीघ्रं कैतव्य ब्रूयाश्चैव सुयोधनम् ।  
 श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत्ते तथाऽस्तु तत् ॥ ६ ॥  
 एवमुक्त्वा महाबाहुः केशवो राजसत्तम ।  
 पुनरेव महाप्राज्ञं युधिष्ठिरमुदैक्षत ॥ ७ ॥  
 सृञ्जयानां च सर्वेषां कृष्णस्य च यशस्विनः ।  
 द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च सन्निधौ ॥ ८ ॥

क्रोधसे पूरित विषधारी सर्पके समान  
 वचनरूपी शलाकासे पाण्डवोंको पूर्ण  
 रीतिसे पीडित करते हुए दुर्योधनके  
 कहे हुए सब वचनोंको फिर कहना  
 आरम्भ किया । पाण्डव लोग पहिलेहीसे  
 क्रुद्ध हो रहे थे; इस समय उसके उन  
 वचनोंको सुनकर विशेष करके कितवपुत्र  
 के समीप भी तिरस्कृत होकर एकवार  
 अत्यन्त ही क्रोधमें भर गये । सब लोग  
 अपने आसनोंपरसे उठके खड़े होगये  
 और भुजाओंको फटकारने लगे तथा एक  
 दूसरेके मुखकी ओर देखने लगे । १-३

भीमसेन नीची गर्दन करके महावि-  
 षधारी सर्पकी भांति सांस लेते हुए

लाल नेत्र करके कृष्णकी ओर देखने  
 लगे । तब कृष्णने भीमसेनको अत्यन्त  
 क्रुद्ध और व्याकुल देखकर हंसकर कि-  
 तवपुत्रमें कहा, कि हे उलूक ! तुम  
 शीघ्र यहाँसे जाकर दुर्योधनसे कहो, कि  
 तुम्हारा वचन भी सुना गया और अर्थ  
 भी ग्रहण किया गया । तुम्हारा जैसा  
 अभिप्राय है, वैसा ही होगा । (४-६)

हे राजसत्तम ! महाबाहु कृष्ण उलू-  
 कसे ऐसा कहकर फिर महाबुद्धिमान्  
 राजा युधिष्ठिरकी ओर देखने लगे ।  
 उलूकने भी सम्पूर्ण सृञ्जय, यशस्वी  
 कृष्ण, पुत्रोंके सहित द्रुपद, और विरा-  
 टके समीप तथा सब राजाओंके बीच

भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह ।  
 उलूकोऽप्यर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥  
 आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन्वाक्यशलाकया ।  
 कृष्णादींश्चैव तान्सर्वान्यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥  
 उलूकस्य तु तद्वाक्यं पापं दारुणमीरितम् ।  
 श्रुत्वा विचुक्षुभे पार्थो ललाटं चाऽप्यमार्जयत् ॥ ११ ॥  
 तदवस्थं तदा दृष्ट्वा पार्थ सा समितिर्वप ।  
 नाऽमृष्यन्त महाराज पाण्डवानां महारथाः ॥ १२ ॥  
 अधिक्षेपेण कृष्णस्य पार्थस्य च महात्मनः ।  
 श्रुत्वा ते पुरुषव्याघ्राः क्रोधाज्ज्वलुरच्युत ॥ १३ ॥  
 धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः ।  
 केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ १४ ॥  
 द्रौपदेयाभिमन्युश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ।  
 भीमसेनश्च विक्रान्तो यमजौ च महारथौ ॥ १५ ॥  
 उत्पेतुरासनात्सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः ।  
 बाहून्प्रगृह्य रुचिरान् रक्तचन्दनरूषितान् ॥  
 अङ्गदैः पारिहार्यैश्च केयूरैश्च विभूषितान् ॥ १६ ॥

अपने वचनरूपी शलाकासे क्रोधसे युक्त  
 विषैले सर्पके समान अर्जुनको पीड़ित  
 करते हुए दुर्योधनके कहे हुए सब  
 वचनोंका फिर वर्णन किया और कृष्ण  
 आदि सब राजाओंसे भी दुर्योधनके  
 कहे हुए यथार्थ वचनोंको कह  
 दिया । (७-१०)

अर्जुन उलूकके कहे हुए महाकठोर  
 तथा दारुण वचनोंको सुनकर अत्यन्त  
 ही क्रुद्ध हुए और मस्तकसे पसीना पों-  
 छने लगे । हे महाराज ! उस समयमें  
 वह राजसभा अर्जुनको ऐसी अवस्थामें

देखकर अत्यन्त ही अधीर हो गई; पा-  
 ण्डवोंके महारथ वीर लोग महात्मा कृष्ण  
 और अर्जुनके अपमानको सुनकर किसी  
 प्रकारसे भी धीरज न धर सके । स्वाभा-  
 विक स्थिरचित्त होकर भी ये पुरुषसिंह  
 वीर लोग उलूकके वचनको सुनकर  
 क्रोधसे प्रज्वलित होगये । (११-१३)

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकी, केक-  
 यराजके पाँचों पुत्र, राक्षस घटोत्कच,  
 द्रौपदीके पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, धृष्टकेतु,  
 भीमसेन और नकुल, सहदेव आदि  
 सब ही वीर लोग चन्दनचर्चित सब

दन्तान्दन्तेषु निष्पिष्य सृङ्गिणी परिलेलिहन् ।  
 तेषामाकारभावज्ञः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ १७ ॥  
 उदतिष्ठत्स वेगेन क्रोधेन प्रज्वलन्निव ।  
 उद्धृत्य सहसा नेत्रे दन्तान्कटकटाय च ॥ १८ ॥  
 हस्तं हस्तेन निष्पिष्य उलूकं वाक्यमब्रवीत् ।  
 अशक्तानामिवाऽस्माकं प्रोत्साहननिमित्तकम् ॥ १९ ॥  
 श्रुतं ते वचनं मूर्खं यत्त्वां दुर्योधनोऽब्रवीत् ।  
 तन्मे कथयतो मन्दं शृणु वाक्यं दुरासदम् ॥ २० ॥  
 सर्वक्षत्रस्य मध्ये तं यद्वक्ष्यसि सुयोधनम् ।  
 शृण्वतः सूतपुत्रस्य पितुश्च त्वं दुरात्मनः ॥ २१ ॥  
 अस्माभिः प्रीतिकामैस्तु भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः ।  
 मर्षितं ते दुराचार तत्त्वं न बहु मन्यसे ॥ २२ ॥  
 प्रेषितश्च हृषीकेशः शमाकांक्षी कुरुन्प्रति ।  
 कुलस्य हितकामेन धर्मराजेन धीमता ॥ २३ ॥  
 त्वं कालचोदितो नूनं गन्तुकामो यमक्षयम् ।  
 गच्छस्वाऽऽहवमस्माभिस्तच्च श्वो भविता ध्रुवम् ॥ २४ ॥

भूषणोंसे भूषित भुजाओंको उठाकर  
 आसनोंसे कूदकर खड़े होगये। धीमसेन  
 उन सबके आकार और इशारेको जान-  
 कर क्रोधसे जलते हुए दांतसे दांत  
 पीसते और ओठोंको काटते हुए वेगसे  
 उठ खड़े हुए। (१४-१८)

वह अकस्मात् दोनों नेत्र लाल करके  
 हाथसे हाथ रगड़ते और दांतोंको कट-  
 कटाते हुए उलूकसे यह वचन बोले,  
 रे मूर्ख! दुर्योधनने मुझसे जो सब वचन  
 कहे थे, असमर्थ की भांति हमलोगोंकी  
 उत्तेजनाके निमित्त तेरे वह वचन सुने  
 गये। इस समय तू जाकर सूतपुत्र कर्ण

और दुष्टात्मा शकुनिके सम्मुख दुर्योधन-  
 से जो वचन कहेगा, उसे सुन मैं कहता  
 हूं। (१९-२१)

रे दुराचारी! मैंने जेठे भाईकी प्री-  
 तिके वशमें होकर तेरी दुष्टताको सहा-  
 था; परन्तु तू उस बातको नहीं समझ-  
 ता है, धर्मराज युधिष्ठिरने कुलकी हि-  
 तकामनासे ही शान्तिकी इच्छा करके  
 कौरवोंके बीच कृष्णको भेजा था; पर-  
 न्तु तू अत्यन्त ही कालके वशमें होकर  
 यमपुरीमें जानेकी अभिलाषा करता है;  
 इससे अब आ हम लोगोंसे युद्ध कर;  
 युद्ध भी कलह ही होगा। (२२-२४)

मयाऽपि च प्रतिज्ञातो वधः सभ्रातृकस्य ते ।  
 स तथा भविता पाप नाऽत्र कार्या विचारणा ॥२५॥  
 वेलामतिक्रमेत्सद्यः सागरो वरुणालयः ।  
 पर्वताश्च विशीर्येयुर्मयोक्तं न मृषा भवेत् ॥ २६ ॥  
 सहायस्ते यदि यमः कुबेरो रुद्र एव वा ।  
 यथाप्रतिज्ञं दुर्बुद्धे प्रकरिष्यन्ति पाण्डवाः ।  
 दुःशासनस्य रुधिरं पाता चाऽस्मि यथेप्सितम् ॥२७॥  
 यश्चेह प्रतिसंरब्धः क्षत्रियो माऽभियास्यति ।  
 अपि भीष्मं पुरस्कृत्य तं नेष्यामि यमक्षयम् ॥ २८ ॥  
 यच्चैतदुक्तं वचनं मया क्षत्रस्य संसदि ।  
 यथैतद्भविता सत्यं तथैवाऽऽत्मानमालभे ॥ २९ ॥  
 भीमसेनवचः श्रुत्वा सहदेवोऽप्यमर्षणः ।  
 क्रोधसंरक्तनयनस्ततो वाक्यमुवाच ह ॥ ३० ॥  
 शौटीर शूरसदृशमनीकजनसंसदि ।  
 शृणु पाप वचो मर्ह्यं यद्वाच्यो हि पिता त्वया ॥ ३१ ॥  
 नाऽस्माकं भविता भेदः कदाचित्कुरुभिः सह ।

रे पापी ! मैंने जो भाइयोंके सहित  
 तेरे मारनेकी प्रतिज्ञा की है, वह अवश्य  
 उसी भांतिसे सिद्ध होगी; उस विषयमें  
 तू कुछ भी सन्देह मत कर । समुद्र य-  
 दि अपनी मर्यादाको लांघकर शीघ्र  
 पृथ्वीको डुबा दे, पर्वत सब टुकड़े हो-  
 जावें, तौभी मेरे वचन कभी मिथ्या  
 न होंगे । रे नीचबुद्धि दुर्योधन ! जो  
 यम, कुबेर और साक्षात् रुद्र आकर ते-  
 री सहायता करें, तौभी पाण्डव लोग  
 अपनी प्रतिज्ञाको अवश्य पालन करेंगे ।  
 मैं अपनी इच्छाके अनुसार अवश्य  
 दुःशासनका रुधिर पीऊंगा और उस

समय जो कोई क्षत्रिय क्रुद्ध होकर मेरे  
 सम्मुख आवेगा, वह चाहे भीष्मको  
 भी आगे करके आवे, तौभी उसको  
 यमपुरीमें भेज दूंगा । मैंने क्षत्रियोंके  
 बीचमें जो कुछ वचन कहा है, उस वि-  
 षयमें मैं अपने आत्माको शपथ करके  
 कहता हूँ, कि वह वचन अवश्य ही  
 सत्य होंगे । ( २५-२९ )

भीमसेनकी बातको सुनकर शत्रुना-  
 शन सहदेव भी क्रोधसे लाल नेत्र करके  
 उलूकसे यह बोले;—रे पापी ! अहं  
 कारी शूरवीरकी भांति सेनाके पुरुषोंके  
 बीच तू अपने पितासे जो वचन कहेगा,

धृतराष्ट्रस्य सम्बन्धो यदि न स्यात्त्वया सह ॥ ३२ ॥  
 त्वं तु लोकविनाशाय धृतराष्ट्रकुलस्य च ।  
 उत्पन्नो वैरपुरुषः स्वकुलघ्नश्च पापकृत् ॥ ३३ ॥  
 जन्मप्रभृति चाऽस्माकं पिता ते पापपुरुषः ।  
 अहितानि नृशंसानि नित्यशः कर्तुमिच्छति ॥ ३४ ॥  
 तस्य वैरानुषङ्गस्य गन्तास्म्यन्तं सुदुर्गमम् ।  
 अहमादौ निहत्य त्वां शकुनेः सम्प्रपश्यतः ॥ ३५ ॥  
 ततोऽस्मि शकुनिं हन्ता मिषतां सर्वधन्विनाम् ।  
 भीमस्य वचनं श्रुत्वा सहदेवस्य चोभयोः ॥ ३६ ॥  
 उवाच फाल्गुनो वाक्यं भीमसेनं स्मयन्निव ।  
 भीमसेन न ते सन्ति येषां वैरं त्वया सह ॥ ३७ ॥  
 मन्दा गृहेषु सुखिनो मृत्युपाशवशं गताः ।  
 उत्लूकश्च न ते वाच्यः परुषं पुरुषोत्तम ॥ ३८ ॥  
 दूताः किमपराध्यन्ते यथोक्तस्याऽनुभाषिणः ।  
 एवमुक्त्वा महाबाहुभीमं भीमपराक्रमम् ॥ ३९ ॥  
 धृष्टद्युम्नमुखान्वीरान्सुहृदः समभाषत ।

वह मुझसे सुन । “ यदि तुम्हारे सङ्ग  
 धृतराष्ट्रका सम्बन्ध न होता, तो हम  
 लोगोंकी कौरवोंसे कभी जुदाई न होती ।  
 रे पापी ! तू धृतराष्ट्रके कुल, अपने  
 कुल और सब लोगोंके विनाशके निमित्त  
 साक्षात् वैरकी सृतिवाले पुरुषरूपसे  
 उत्पन्न हुआ है । ( ३०—३३ )

रे उत्लूक ! तेरा पापी पिता जन्मसे  
 ही हम लोगोंके सङ्ग बुराई कर रहा  
 है, इससे मैं उसी शत्रुताके सम्बन्धसे  
 इस कठिन कर्मको करूंगा; कि शकु-  
 निके सम्मुख पहिले तुझे मारकर पीछे  
 इच्छाके अनुसार सब धनुर्धारियोंके

सम्मुख ही शकुनिको मारूंगा । ३४-३६

भीम और सहदेवकी बात सुनकर  
 अर्जुन हंसते हुए भीमसेनसे यह वचन  
 बोले, हे भीम ! तुम्हारे संग जिसकी  
 शत्रुता होती है, वह जीता नहीं बचता;  
 घरमें सुखसे सोता हुआ वह पापी मृ-  
 त्युके वशमें हो ही रहा है; परन्तु हे  
 पुरुषसिंह ! उत्लूकको कठोर वचन कहना  
 तुम्हें उचित नहीं है; क्योंकि दूत लोग  
 क्या अपराध करते हैं ? वह यथार्थ कहे  
 हुए वचनको ही कहते हैं । ( ३६-३९ )

महाबाहु अर्जुन पराक्रमी भीमसे  
 ऐसा कहकर सुहृद वीरपुरुषोंसे

श्रुतं वस्तस्य पापस्य धार्तराष्ट्रस्य भाषितम् ॥ ४० ॥  
 कुत्सनं वासुदेवस्य सम चैव विशेषतः ।  
 श्रुत्वा भवन्तः संरब्धा अस्माकं हितकाम्यया ॥ ४१ ॥  
 प्रभावाद्वासुदेवस्य भवतां च प्रयत्नतः ।  
 समग्रं पार्थिवं क्षत्रं सर्वं न गणयाम्यहम् ॥ ४२ ॥  
 भवद्भिः समनुज्ञातो वाक्यमस्य यदुत्तरम् ।  
 उलूके प्रापयिष्यामि यद्वक्ष्यति सुयोधनम् ॥ ४३ ॥  
 श्वोभूते कथितस्याऽस्य प्रतिवाक्यं चमूमुखे ।  
 गाण्डीवेनाऽभिधास्यामि क्लीबा हि वचनोत्तराः ॥ ४४ ॥  
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रशंसंस्तुर्धनञ्जयम् ।  
 तेन वाक्योपचारेण विस्मिता राजसत्तमाः ॥ ४५ ॥  
 अनुनीय च तान्सर्वान्यथामान्यं यथावयः ।  
 धर्मराजं तदा वाक्यं तत्प्राप्यं प्रत्यभाषत ॥ ४६ ॥  
 आत्मानमवमन्वानो नहि स्यात्पार्थिवोत्तमः ।  
 तत्रोत्तरं प्रवक्ष्यामि तव शुश्रूषणे रतः ॥ ४७ ॥  
 उलूकं भरतश्रेष्ठ सामपूर्वमथोजितम् ।

बातचीत करते हुए धृष्टद्युम्न आदिसे बोले; आप लोगोंने उस पापी दुर्योधनकी कटूक्ति विशेष करके कृष्णकी और मेरी निन्दा सुनी है और सुनकर हम लोगोंके हितकी इच्छासे सब कोई क्रुद्ध होगये हैं। मैं कृष्णके प्रभाव और आप लोगोंकी सहायतासे पृथ्वी मात्रके क्षत्रियोंको कुछ नहीं गिनता हूं। इस समय इस वचनका जो उत्तर होगा; उलूक दुर्योधनसे जो कहेगा; आप लोगोंकी अनुमतिसे मैं वह सब उलूकसे कह दूंगा। इस वचनका जो उत्तर है, वह कह सेनाके सम्मुख गाण्डीव धनुषसे

वर्णन करूंगा। क्योंकि नपुंसक और असमर्थ लोग ही वचनसे उत्तर दिया करते हैं। ( ३९—४४ )

अनन्तर वह सब राजसत्तम राजा लोग अर्जुनकी बात सुनकर विस्मित होके उनकी प्रशंसा करने लगे। तब धर्मराज युधिष्ठिर अवस्थाके अनुसार सबको विनीत भावसे शान्त करके अपनी ओरसे दुर्योधनसे कहनेके निमित्त उलूकसे यह वचन बोले; कोई राजा अपनेको अपमानित समझ कर शान्त नहीं रह सकते; इससे मैं तुम्हारे वचनोंको सुननेमें रत था; अब उसका प्रत्युत्तर करूंगा। ( ४५—४७ )



दुर्योधनस्य तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभः ॥ ४८ ॥  
 अतिलोहितनेत्राभ्यामाशीविष इव श्वसन ।  
 स्मयमान इव क्रोधात्सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ४९ ॥  
 जनार्दनमभिप्रेक्ष्य भ्रातृश्वेदमब्रवीत् ।  
 अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥ ५० ॥  
 उत्लूक गच्छ कैतव्य ब्रूहि तात सुयोधनम् ।  
 कृतघ्नं वैरपुरुषं दुर्मतिं कुलपांसनम् ॥ ५१ ॥  
 पाण्डवेषु सदा पाप नित्यं जिह्मं प्रवर्तते ।  
 स्ववीर्याद्यः पराक्रम्य पाप आह्वयते परान् ।  
 अभीतः पूरयन्वाक्यमेष वै क्षत्रियः पुमान् ॥ ५२ ॥  
 स पापः क्षत्रियो भूत्वा अस्मानाह्वय संयुगे ।  
 मान्यामान्यान्पुरस्कृत्य युद्धं मा गाः कुलाधम ॥ ५३ ॥  
 आत्मवीर्यं समाश्रित्य भृत्यवीर्यं च कौरव ।  
 आह्वयस्व रणे पार्थान्सर्वथा क्षत्रियो भव ॥ ५४ ॥  
 परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान् ।

हे भरतर्षभ ! धर्मात्मा युधिष्ठिर दुर्यो-  
 धनके उस वचनको सुनकर क्रोधमें भर  
 कर गर्वित-पुरुषकी भांति लाल नेत्र कर-  
 के विषधारी सर्पके समान लम्बी सांस  
 छोड़ते और दांतोंको पीसकर कृष्ण और  
 भाइयोंके मुखकी ओर देख अपनी प्रच-  
 ण्ड भुजाको उठाकर कितवनन्दनसे  
 बोले, हे तात उत्लूक ! तुम कुलघाती,  
 कृतघ्न, वैरकी मूर्ति, नीचबुद्धि दुर्योधन  
 के समीप जाकर उससे यह वचन कहो  
 कि रे पापी ! तू पाण्डवोंके निमित्त सदा  
 ही कुटिल आचरण करता रहता है । रे  
 मूर्ख ! जो पुरुष अपने बल और पराक्र-  
 मसे शत्रुओंको आवाहन करता है और

निर्भय होकर अपना वचन पूरा करता  
 है; उसको ही क्षत्रिय पुरुष कहते  
 हैं । (४८-५२)

रे कुलघाती ! इससे तू क्षत्रिय हो  
 कर युद्धमें हम लोगोंको आवाहन क्यों  
 नहीं करता ? मानके पात्र इष्टमित्रोंको  
 आगे करके क्यों युद्धकी अभिलाषा  
 करता है ? रे कौरव ! तू अपने बल  
 और सेवकोंके पराक्रमके आसरेसे पा-  
 ण्डवोंको युद्धमें आवाहन करके सब  
 भांतिसे क्षत्रिय पुरुष क्यों नहीं बनता ?  
 रे अधम पुरुष ! जो पराये बलके अव-  
 लम्बसे शत्रुओंको आवाहन करता है  
 और स्वयं उसके सम्मुख होनेमें असमर्थ



अशक्तः स्वयमादातुमेतदेव नपुंसकम् ॥ ५५ ॥  
 स त्वं परेषां वीर्येण आत्मानं बहु मन्यसे ।  
 कथमेवमशक्तस्त्वमस्मान्समभिगर्जसि ॥ ५६ ॥  
 कृष्ण उवाच— मद्रुचश्चापि भूयस्ते वक्तव्यः स सुयोधनः ।  
 श्व इदानीं प्रपद्येथाः पुरुषो भव दुर्मते ॥ ५७ ॥  
 मन्यसे यच्च मूढ त्वं न योत्स्यति जनार्दनः ।  
 सारथ्येन वृतः पार्थैरिति त्वं न बिभेषि च ॥ ५८ ॥  
 जघन्यकालमप्येतन्न भवेत्सर्वपार्थिवान् ।  
 निर्देहेयमहं क्रोधात्तृणानीव हुताशनः ॥ ५९ ॥  
 युधिष्ठिरनियोगात्तु फाल्गुनस्य महात्मनः ।  
 करिष्ये युध्यमानस्य सारथ्यं विजितात्मनः ॥ ६० ॥  
 यद्युत्पतसि लोकांस्त्रीन्यद्याविशसि भूतलम् ।  
 तत्र तत्रार्जुनरथं प्रभाते द्रक्ष्यसे पुनः ॥ ६१ ॥  
 यच्चापि भीमसेनस्य मन्यसे मोघभाषितम् ।  
 दुःशासनस्य रुधिरं पीतमद्याऽवधारय ॥ ६२ ॥

रहता है; उसे बुद्धिमान् लोग नपुंस-  
 कोंमें गिनते हैं; इससे जब तू स्वयं अस-  
 मर्थ होकर दूसरेके पराक्रमसे अपनेको  
 बलवान् समझता है, तो फिर किस  
 प्रकारसे हम लोगोंके सङ्ग इतना तर्जन  
 गर्जन कर रहा है ? (५३—५६)

कृष्ण बोले, हे उलूक ! तुम मेरे  
 इस वचनको भी दुर्योधनसे कहना, कि  
 रे नीचबुद्धि दुर्योधन ! तूने कहा है,  
 कल युद्ध होगा; तो इस समय उस  
 कर्मको करके अब पुरुषार्थ अवलम्बन  
 कर । रे मूढ ! तू जो ऐसा समझता  
 है, कि पाण्डवोंने कृष्णको केवल सार-  
 थी-कर्मके वास्ते वरण किया है--इससे

वह युद्ध न करेंगे; ऐसा समझ कर ही जो  
 तू निर्भय हो रहा है, वैसा किसी कालमें  
 भी न होगा; क्योंकि क्रुद्ध होनेपर तृण-  
 समूहको भस्म करनेवाले अग्निकी भांति  
 सब राजाओंको भस्म कर सकता हूं ।  
 किन्तु युधिष्ठिरकी आज्ञासे युद्धमें  
 प्रवृत्त हुए विजयी अर्जुनके रथका सार-  
 थी ही बनूंगा । तू यदि तीनों लोकको  
 लांघकर भाग जावे अथवा पृथ्वीके  
 बीच प्रवेश करे, तोभी कल उसी उसी  
 स्थानपर अर्जुनके रथको देखेगा । तुम  
 भीमसेनका वचन व्यर्थ समझते हो;  
 परन्तु इस समय यह निश्चय कर रखो,  
 कि दुःशासनका रुधिर पान हो चुका

न त्वां समीक्षते पार्थो नापि राजा युधिष्ठिरः ।

न भीमसेनो न यमौ प्रतिकूलप्रभाषिणम् ॥ ६३ ॥ [५४९७]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि उल्लूकदूताभिगमनपर्वणि कृष्णादिवाक्ये द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६२॥

सञ्जय उवाच— दुर्योधनस्य तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभ ।

नेत्राभ्यामतिताम्राभ्यां कैतव्यं समुदैक्षत ॥ १ ॥

स केशवमभिप्रेक्ष्य गुडाकेशो महायशः ।

अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥ २ ॥

स्ववीर्यं यः समाश्रित्य समाह्वयति वै परान् ।

अभीतो युद्धयते शत्रून्स वै पुरुष उच्यते ॥ ३ ॥

परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान् ।

क्षत्रबन्धुरशक्तत्वालोके स पुरुषाधमः ॥ ४ ॥

स त्वं परेषां वीर्येण मन्यसे वीर्यमात्मनः ।

स्वयं कापुरुषो मूढ परांश्च क्षेममुमिच्छसि ॥ ५ ॥

यस्त्वं वृद्धं सर्वराज्ञां हितबुद्धिं जितेन्द्रियम् ।

मरणाय महाप्रज्ञं दीक्षयित्वा विकत्थसे ॥ ६ ॥

भावस्ते विदितोऽस्माभिर्दुर्बुद्धे कुलपांसन ।

है और यह भी जान रखो, कि विरुद्ध वचन बोलने पर अर्जुन, युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव कोई भी तुम्हें कुछ भी समर्थ नहीं समझते हैं । (५७-६३) ५४९७

उद्योगपर्वमें एकसौ बासठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ तिस्रठ अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे भरतर्षभ ! महायशस्वी अर्जुन दुर्योधनके वचनोंको सुनकर कृष्ण के मुखकी ओर देखकर उल्लूककी ओर लाल नेत्र करके यह वचन बोले, जो पुरुष अपने पराक्रमके आसरेसे शत्रुओंको आवाहन करके निर्भय होकर युद्ध करता है, उसको ही पुरुष कहा जाता है;

परन्तु जो पराये बलके आसरे शत्रुओंको आवाहन करता है, उसे पुरुषोंमें असमर्थ अधम क्षत्रिय-पुरुष कहते हैं । ( १-४ )

रे मूर्ख ! तू भी पराये बलसे अपनेको बलवान् समझ रहा है और स्वयं कापुरुष होकर भी शत्रुओंके जीतनेकी अभिलाषा करता है । रे नीचबुद्धि मूर्ख ! तू जो सब राजाओंमें बूढ़े, हित करनेवाले, इन्द्रियोंको जीतनेवाले, महाबुद्धिमान् भीष्मको मरनेके निमित्त तैयार करके बृथा बड़ाई कर रहा है; उसका अभिप्राय हम लोगोंको विदित है । रे दुष्ट ! तेरा यह अभिप्राय है, कि पाण्डव

न हनिष्यन्ति गाङ्गेयं पाण्डवा घृणयेति हि ॥ ७ ॥  
 यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्रं विकत्थसे ।  
 हन्ताऽस्मि प्रथमं भीष्मं मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ८ ॥  
 कैतव्य गत्वा भरतान्समेत्य सुयोधनं धार्तराष्ट्रं वदस्व ।  
 तथेत्युवाचाऽर्जुनः सव्यसाची निशाव्यपाये भविता विमर्दः ॥ ९ ॥  
 यद्वाऽब्रवीद्वाक्यमदीनसत्त्वो मध्ये कुरुन्हर्षयन्सत्यसन्धः ।  
 अहं हन्ता सृञ्जयानामनीकं शाल्वेयकांश्चेति ममैष भारः ॥  
 कैतव्य गत्वा भरतान्समेत्य सुयोधनं धार्तराष्ट्रं वदस्व ॥ १० ॥  
 हन्यामहं द्रोणमृतेऽपि लोकं न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः ।  
 ततो हि ते लब्धतमं च राज्यमापद्गताः पाण्डवाश्चेति भावः ॥ ११ ॥  
 स दर्पपूर्णो न समीक्षसे त्वमनर्थमात्मन्यपि वर्तमानम् ।  
 तस्मादहं ते प्रथमं समूहे हन्ता समक्षं कुरुवृद्धमेव ॥ १२ ॥  
 सूर्योदये युक्तसेनः प्रतीक्ष्य ध्वजी रथी रक्षत सत्यसन्धम् ।  
 अहं हि वः पश्यतां द्वीपमेनं भीष्मं रथात्पातयिष्यामि बाणैः ॥ १३ ॥

दया करके गंगानन्दन भीष्मको नहीं मारेंगे । रे दुर्योधन ! तू जिसके बलके आसरेसे वृथा गर्व कर रहा है; उस भीष्मको मैं ईर्ष्यापूर्वक सब धनुर्द्वारियोंके सम्मुख पहिले ही मारूंगा । (५-८)

हे उल्लूक ! तुम कौरवोंके बीचमें जाकर दुर्योधनसे यह वचन कहो, कि सव्यसाची अर्जुनने भी यही वचन कहा है; रात बीतनेपर सवेरे ही युद्ध आरम्भ होगा । महापराक्रमी सत्यप्रतिज्ञा करने वाले भीष्मने कुरुगणके बीच सबके आनन्दको बढ़ाते हुए “मैं सृञ्जयोंकी सेना और शाल्वके लोगोंको युद्धमें मारूंगा, इसका भार मेरे ही ऊपर है । मैं द्रोणाचार्यको छोड़कर अकेला ही

सब लोगोंका संहार कर सकता हूँ; इससे पाण्डवोंसे तुम्हें कुछ भय नहीं है ।” यह जो वचन कहा है, उससे तुम्हें ऐसा ज्ञान हुआ है, कि सब राज्य मेरा हुआ और पाण्डव लोग सदाके लिये आपद्ग्रस्त हुए । (९—११)

तुम इससे अभिमान द्वारा मतवारे होकर अपनेमें जो सब अनर्थ विद्यमान हैं, उन्हें नहीं देख सकते हो । इससे तुम्हारे संमुख ही मैं भीष्मको युद्धमें सबसे पहिले मारूंगा । सूर्यके उदय होते ही तुम रथी और ध्वजधारी होकर सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले भीष्मकी रक्षा करो, क्योंकि तुम लोगोंके संमुख ही मैं द्वीप अर्थात् रक्षकस्वरूप महावारि

श्वोभूते कथनावाक्यं विज्ञास्यति सुयोधनः ।  
 आचितं शरजालेन मया दृष्ट्वा पितामहम् ॥ १४ ॥  
 यदुक्तञ्च सभामध्ये पुरुषो ह्रस्वदर्शनः ।  
 क्रुद्धेन भीमसेनेन भ्राता दुःशासनस्तव ॥ १५ ॥  
 अधर्मज्ञो नित्यवैरी पापबुद्धिर्नृशंसवत् ।  
 सत्यां प्रतिज्ञामचिराद् द्रक्ष्यसे तां सुयोधन ॥ १६ ॥  
 अभिमानस्य दर्पस्य क्रोधपाह्वययोस्तथा ।  
 नैष्ठुर्यस्याऽवलेपस्य आत्मसम्भावनस्य च ॥ १७ ॥  
 नृशंसतायास्तैक्ष्ण्यस्य धर्मविद्वेषणस्य च ।  
 अधर्मस्याऽतिवादस्य वृद्धातिक्रमणस्य च ॥ १८ ॥  
 दर्शनस्य च चक्रस्य कृत्स्नस्याऽपनयस्य च ।  
 द्रक्ष्यसि त्वं फलं तीव्रमचिरेण सुयोधन ॥ १९ ॥  
 वासुदेवद्वितीये हि मयि क्रुद्धे नराधम ।  
 आशा ते जीविते मूढ राज्ये वा केन हेतुना ॥ २० ॥  
 शान्ते भीष्मे तथा द्रोणे सूतपुत्रे च पातिते ।  
 निराशो जीविते राज्ये पुत्रेषु च भविष्यसि ॥ २१ ॥  
 भ्रातॄणां निधनं श्रुत्वा पुत्राणां च सुयोधन ।

भीष्मको अपने तेज बाणोंकी सहायतासे  
 रथमेंसे पृथ्वीपर गिरा दूंगा । दुर्योधन  
 कल पितामह भीष्मको मेरे बाणोंसे छिपा  
 हुआ देखकर बडाईका वचन कैसा है,  
 विशेष रूपसे जान जावेगा । (१२-१४)

रे दुर्योधन ! भीमसेनने क्रोधसे भर  
 कर सभाके बीचमें तुम्हारे भाई नीच,  
 अधर्मी, सदा वैरी, पापी, दुष्ट, अधम  
 पुरुष दुःशासनको जो कुछ वचन कहा  
 था, उस सत्य प्रतिज्ञाको तू शीघ्र ही  
 पूरी होते देखेगा । और अभिमान, गर्व,  
 क्रोध, कडा वचन, निष्ठुरता, अपनी

बडाई, निर्दयता, टेढापन, धर्मसे द्वेष  
 अधर्म, निन्दा बूढ़ोंके वचनोंका अनादर,  
 कर्णादिसे जयकी आशा, अधिक सेना  
 होनेका गर्व और अन्य सब बुरे कर्मोंका  
 फल भी भली भांति देखेगा । (१५-१९)

रे अधम पुरुष ! रे मूढ ! कृष्णको  
 सहाय बनाकर मेरे क्रुद्ध होनेपर तेरे  
 प्राण और राज्यकी कैसे आशा की जा  
 सकती है ? मैं जिस समय भीष्म और  
 द्रोणाचार्यको शान्त करूंगा और सूत-  
 पुत्र कर्णको मारूंगा तब ही तू जीते जी  
 राज्य और पुत्रसे निराश हो जावेगा ।

भीमसेनेन निहतो दुष्कृतानि स्मरिष्यसि ॥ २२ ॥  
 न द्वितीयां प्रतिज्ञां हि प्रतिजानामि कैतव ।  
 सत्यं ब्रवीम्यहं ह्येतत्सर्वं सत्यं भविष्यति ॥ २३ ॥  
 युधिष्ठिरोऽपि कैतव्यमुलूकमिदमब्रवीत् ।  
 उलूक मद्रुचो ब्रूहि गत्वा तात सुयोधनम् ॥ २४ ॥  
 स्वेन वृत्तेन मे वृत्तं नाऽधिगन्तुं त्वमर्हसि ।  
 उभयोरन्तरं वेद सूनृतानृतयोरपि ॥ २५ ॥  
 न चाऽहं कामये पापमपि कीटपिपीलयोः ।  
 किं पुनर्ज्ञातिषु वधं कामयेयं कथञ्चन ॥ २६ ॥  
 एतदर्थं मया तात पञ्च ग्रामा वृताः पुरा ।  
 कथं तव सुदुर्बुद्धे न प्रेक्षये व्यसनं महत् ॥ २७ ॥  
 स त्वं कामपरीतात्मा मूढभावाच्च कथ्यसे ।  
 तथैव वासुदेवस्य न गृह्णासि हितं वचः ॥ २८ ॥  
 किञ्चेदानीं बहूक्तेन युद्धयस्व सह बान्धवैः ।  
 मम विप्रियकर्तारं कैतव्य ब्रूहि कौरवम् ॥ २९ ॥

रे दुर्योधन ! तू भाई और पुत्रोंका मरना  
 सुनकर और स्वयं भीमसेनकी गदाके  
 दारुण चोटसे विकल होकर अपने किये  
 हुए सब पापोंको स्मरण करेगा । रे धूर्त !  
 मैं दोबार कभी प्रतिज्ञा नहीं करता,  
 तुझसे सत्य ही कहता हूँ, कि मैंने जो  
 कुछ वचन कहे हैं, सब ही सत्य  
 होंगे । ( २०—२३ )

युधिष्ठिर भी उलूकसे यह वचन  
 बोले, हे तात उलूक ! तुम दुर्योधनके  
 समीप जाकर मेरे इस वचनको कहना  
 कि अपने चरित्रके दृष्टान्तसे मेरे चरि-  
 त्रको बोध करना तुमको उचित नहीं  
 है । दोनोंका अन्तर और सत्य तथा

मिथ्याका प्रमेद मुझे विदित है । हे  
 तात ! मैं किस भान्तिसे जातीय लोगों  
 के वधकी अभिलाषा करूंगा ? मैं कभी  
 कीट और चींठी आदिका भी अनिष्ट  
 करनेकी इच्छा नहीं करता हूँ । २४-२६

रे नीच बुद्धि मूर्ख ! किसी प्रकारसे  
 तेरी महाविपद देखनी न पड़े, इसी  
 निमित्त मैंने पहले केवल पांचही गाँव  
 माँगे थे, परन्तु तू मूढता युक्त लोभमें  
 पड़ कर वृथा गर्वकर रहा है, और  
 कृष्णके भी उत्तम वचन तूने नहीं ग्रहण  
 किये । इस समय अब बहुत बातोंके  
 व्यय करनेका क्या प्रयोजन है ? बन्धु-  
 बान्धवोंके सहित मिल कर युद्ध कर ।

श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत्ते तथाऽस्तु तत् ।  
 भीमसेनस्ततो वाक्यं भूय आह नृपात्मजम् ॥ ३० ॥  
 उलूक मद्रुचो ब्रूहि दुर्मतिं पापपूरुषम् ।  
 शठं नैकृतिकं पापं दुराचारं सुयोधनम् ॥ ३१ ॥  
 गृध्रोदरे वा वस्तव्यं पुरे वा नागसाहये ।  
 प्रतिज्ञातं मया यच्च स भामध्ये नराधम ॥ ३२ ॥  
 कर्ताऽहं तद्रुचः सत्यं सत्येनैव शपामि ते ।  
 दुःशासनस्य रुधिरं हत्वा पास्याम्यहं मृधे ॥ ३३ ॥  
 सक्थिनी तव भक्तवैव हत्वा हि तव सोदरान् ।  
 सर्वेषां धार्तराष्ट्राणामहं मृत्युः सुयोधन ॥ ३४ ॥  
 सर्वेषां राजपुत्राणामभिमन्युरसंशयम् ।  
 कर्मणा तोषयिष्यामि भूयश्चैव वचः शृणु ॥ ३५ ॥  
 हत्वा सुयोधन त्वां वै सहितं सर्वसोदरैः ।  
 आक्रमिष्ये पदा मूर्ध्नि धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥  
 नकुलस्तु ततो वाक्यमिदमाह महीपते ।

हे उलूक ! मेरी बुराई करनेवाले दुष्ट  
 दुर्योधनसे कहना, कि तुम्हारे वचन भी  
 सुने गये और अर्थ भी ग्रहण किया  
 गया; तुम्हारा जैसा अभिप्राय है, तैसा  
 ही होगा । ( २७—३० )

अनन्तर भीमसेन फिर बोले, हे  
 उलूक ! उस नीच बुद्धि, पापी बुरे कर्म  
 करनेवाले, शठ दुष्ट राजपुत्र दुर्योधनसे  
 मेरा यह वचन कहना, कि या तो तुम  
 गिद्धके पेटमें जाओगे अथवा हस्तिना-  
 पुरमें निवास करोगे । रे पुरुषाधम !  
 मैं तेरे निकट यह शपथ करके कहता  
 हूँ, मैंने सभाके बीच जो कुछ प्रतिज्ञा  
 की है, उसे अवश्य पूरी करूँगा; युद्धमें

दुःशासनका रुधिर पान करूँगा और  
 तुम्हारी भी दोनों जङ्घाओंको तोड़के  
 तुम्हारे सब भाइयोंको मारूँगा । ३०-३४  
 रे दुर्योधन ! मैं सब धृतराष्ट्रके पुत्रों  
 और अभिमन्यु सब राजपुत्रोंका साक्षात्  
 मृत्युस्वरूप हूँ । रे दुर्योधन ! मैं अपनी  
 प्रतिज्ञाके अनुसार तुम सबको तो सन्तुष्ट  
 करूँगा ही; परन्तु उसके अतिरिक्त और  
 भी मेरी एक बात सुनो, मैं तुमको  
 भाइयोंके सहित मारकर धर्मराजके स-  
 म्मुख ही अपने पाँवसे तुम्हारे सिरपर  
 आघात करूँगा । ( ३४—३६ )

हे राजन् ! अनन्तर नकुल यह वचन  
 बोले, हे उलूक ! तुम कौरवोंमें नीच

उलूक ब्रूहि कौरव्यं धार्तराष्ट्रं सुयोधनम् ॥ ३७ ॥  
 श्रुत्वा ते गदतो वाक्यं सर्वमेव यथानथम् ।  
 तथा कर्ताऽस्मि कौरव्य यथा त्वमनुशासि माम् ॥ ३८ ॥  
 सहदेवोऽपि नृपते इदमाह वचोऽर्थवत् ।  
 सुयोधन मतिर्या ते वृथैषा ते भविष्यति ॥ ३९ ॥  
 शोचिष्यसे महाराज सपुत्रज्ञातिबान्धवः ।  
 इमं च क्लेशमस्माकं हृष्टो यत्त्वं विकत्थसे ॥ ४० ॥  
 विराटद्रुपदौ वृद्धावुलूकमिदमूचतुः ।  
 दासभावं नियच्छेव साधोरिति मतिः सदा ॥  
 तौ च दासावदासौ वा पौरुषं यस्य यादृशम् ॥ ४१ ॥  
 शिखण्डी तु ततो वाक्यमुलूकमिदमब्रवीत् ।  
 वक्तव्यो भवता राजा पापेष्वाभिरतः सदा ॥ ४२ ॥  
 पश्य त्वं मां रणे राजन्कुर्वाणं कर्म दारुणम् ।  
 यस्य वीर्यं समासाद्य मन्यसे विजयं युधि ॥ ४३ ॥  
 तमहं पातयिष्यामि रथात्तव पितामहम् ।  
 अहं भीष्मवधात्सृष्टो नूनं धात्रा महात्मना ॥ ४४ ॥

दुर्योधनसे कहना, कि तुम्हारी सब बातें सुनी गई। हे कौरव ! मुझे जैसी आज्ञा दी है, मैं उसको पूर्ण करूंगा। ३७-३८  
 हे राजन् ! सहदेवने भी ऐसेही वचन कहे, कि दुर्योधन ! तुम्हारी जैसी बुद्धि है, वैसे ही हम लोगोंके इस क्लेशको देखकर तुम आनन्दित होकर अपनी बड़ाई कर रहे हो, परन्तु पुत्र, भाई और जातिके लोगोंके सहित शोकित तथा दुःखित होओगे। (३९-४०)  
 बूढ़े राजा विराट और द्रुपदने भी उलूकसे यह वचन कहा, कि धर्मात्मा पुरुषके सेवक बनें, यह लोगोंके निमित्त

बहुत ही उत्तम है; परन्तु हम लोग दास हैं, वा प्रभु और जिसका जैसा पराक्रम है, (वह कलह ही प्रकाशित होजावेगा।) (४१)

अनन्तर शिखण्डीने उलूकसे यह वचन कहा, कि पापी राजा दुर्योधनसे तुम यह वचन कहो, कि “ हे राजन् ! मैं युद्धमें कैसा भयङ्कर कर्म करता हूं, उसे तुम प्रत्यक्ष देखोगे जिसके बलकी आशासे तुम अपनी विजयका निश्चय करते हो, तुम्हारे उसी पितामहको मैं रथसे पृथ्वीपर गिराऊंगा; विधाताने मुझे भीष्मके वध करनेहीके निमित्त

सोऽहं भीष्मं हनिष्यामि मिषतां सर्वधन्विनाम् ।  
 धृष्टद्युम्नोऽपि कैतव्यमुत्कृकमिदमब्रवीत् ॥ ४५ ॥  
 सुयोधनो मम वचो वक्तव्यो नृपतेः सुतः ।  
 अहं द्रोणं हनिष्यामि सगणं सहबान्धवम् ॥ ४६ ॥  
 अवश्यं च मया कार्यं पूर्वेषां चरितं महत् ।  
 कर्ता चाऽहं तथा कर्म यथा नाऽन्यः करिष्यति ॥ ४७ ॥  
 तमब्रवीद्धर्मराजः कारुण्यार्थं वचो महत् ।  
 नाऽहं ज्ञातिवधं राजन्कामयेयं कथञ्चन ॥ ४८ ॥  
 तवैव दोषाद्दुर्बुद्धे सर्वमेतत्त्वनावृतम् ।  
 स गच्छ मा चिरं तात उत्कृक यदि मन्यसे ॥ ४९ ॥  
 इह वा तिष्ठ भद्रं ते वयं हि तव बान्धवाः ।  
 उत्कृकस्तु ततो राजन्धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५० ॥  
 आमन्त्र्य प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः ।  
 उत्कृकस्तत आगम्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ ५१ ॥  
 अर्जुनस्य समादेशं यथोक्तं सर्वमब्रवीत् ।  
 वासुदेवस्य भीमस्य धर्मराजस्य पौरुषम् ॥ ५२ ॥

उत्पन्न किया है; इससे मैं सब धनु-  
 र्धारियोंके सम्मुख भीष्मको अवश्य ही  
 मारूंगा; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं  
 है । (४२-४५)

धृष्टद्युम्न भी कितव-पुत्र उत्कृकसे  
 यह वचन बोले, कि तुम मेरी ओरसे  
 जाकर दुर्योधनसे यह वचन कहना, कि  
 मैं बन्धु बान्धवोंके सहित द्रोणाचार्यको  
 मारूंगा और ऐसा कर्म करूंगा, कि जैसा  
 कोई भी कभी नहीं कर सकेगा । ४६-४७

अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिर करुणा  
 प्रकाशित करके उत्कृकसे बोले, हे राजन्!  
 मैं किसी प्रकारसे भी जातिके लोगोंके

वधकी इच्छा नहीं करता हूँ; परन्तु तुम्हारी  
 नीचबुद्धिके दोषसे यह सब भांतिसे  
 करनेों ही पड़ेगा; धृष्टद्युम्न आदि वीरोंके  
 प्रतिज्ञापालन करनेके विषयमें मुझे  
 अवश्य आज्ञा देनी पड़ेगी । हे उत्कृक!  
 अब तेरी इच्छा हो शीघ्र जाओ, अथवा  
 यहाँपर ही निवास करो; क्योंकि हम  
 लोग भी तुम्हारे बन्धु हैं । (४८-५०)

हे राजन् ! अनन्तर उत्कृक, धर्म-पुत्र  
 युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर दुर्योधनके  
 समीप गये । वहाँपर क्रोधी दुर्योधनके  
 निकट पहुँचकर उन्होंने अर्जुनके कहे  
 हुए यथार्थ वचनोंको वर्णन किया ।



नकुलस्य विराटस्य द्रुपदस्य च भारत ।  
 सहदेवस्य च वचो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः ।  
 केशवार्जुनयोर्वाक्यं यथोक्तं सर्वमब्रवीत् ॥ ५३ ॥  
 कैतव्यस्य तु तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभः ।  
 दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि भारत ॥ ५४ ॥  
 आज्ञापयत राज्ञश्च बलं मित्रबलं तथा ।  
 यथा प्रागुदयात्सर्वे युक्तास्तिष्ठन्त्यनीकिनः ॥ ५५ ॥  
 ततः कर्णसमादिष्टा दूताः सन्त्वरिता रथैः ।  
 उष्ट्रवामीभिरप्यन्ये सदश्वैश्च महाजवैः ॥ ५६ ॥  
 तूर्णं परिययुः सेनां कृत्स्नां कर्णस्य शासनात् ।  
 आज्ञापयन्तो राज्ञश्च योगः प्रागुदयादिति ॥ ५७ ॥ [५५-५८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि  
 उलूकापयाने त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

सञ्जय उवाच — उलूकस्य वचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
 सेनां निर्यापयामास धृष्टद्युम्नपुरोगमाम् ॥ १ ॥  
 पदातिनीं नागवतीं रथिनीमश्ववृन्दिनीम् ।  
 चतुर्विधबलां भीमामकम्पां पृथिवीमिव ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण, भीम, युधिष्ठिर, नकुल, सह-  
 देव, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न और  
 शिखण्डीके वचन तथा कृष्ण अर्जुनके  
 यथार्थ सन्देशको सुनकर दुःशासन,  
 कर्ण और शकुनिके बोले, कि तुम लोग  
 राजाओं और अपनी सेनाओंमें यह  
 आज्ञा प्रचार करो, कि सूर्यके उदय  
 होनेके पहिले ही सम्पूर्ण सेना युद्धके  
 निमित्त सजके खड़ी रहे । (५०-५५)

अनन्तर कर्णकी आज्ञा पाते ही दूत  
 लोग रथ, ऊंट और कोई घोड़ोंपर चढ़के  
 कर्णकी आज्ञाके अनुसार सब सेनामें

घूमकर सूर्यके उदय होनेके पहिले सेनाको  
 युद्धके निमित्त सजाकर तयार रखनेकी  
 आज्ञा करनेके लिये गये । (५६-५७)

एकसौ तिरसठ अध्याय समाप्त । [ ५५-५८ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ चौसठ अध्याय ।

सञ्जय बोले, उलूककी बात सुनकर  
 कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर धृष्टद्युम्नको आगे  
 करके चलनेवाली सेनाको युद्धके निमित्त  
 यात्रा करनेकी आज्ञा दी । धृष्टद्युम्नके  
 वशमें चलनेवाली, पृथ्वीके समान स्थिर,  
 घोड़े, हाथी और पैदलोंसे युक्त वह  
 चतुरङ्गिनी सेना अर्जुन भीम आदि

भीमसेनादिभिर्गुप्तां साऽर्जुनैश्च महारथैः ।  
 धृष्टद्युम्नवशां दुर्गां सागरस्तिमितोपमाम् ॥ ३ ॥  
 तस्यास्त्वग्रे महेष्वासः पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः ।  
 द्रोणप्रेम्सुरनीकानि धृष्टद्युम्नो व्यकर्षत ॥ ४ ॥  
 यथाबलं यथोत्साहं रथिनः समुपादिशत् ।  
 अर्जुनं सूतपुत्राय भीमं दुर्योधनाय च ॥ ५ ॥  
 धृष्टकेतुं च शल्याय गौतमायोत्तमौजसम् ।  
 अश्वत्थाम्ने च नकुलं शैब्यं च कृतवर्मणे ॥ ६ ॥  
 सैन्धवाय च वाष्पेयं युयुधानं समादिशत् ।  
 शिखण्डिनं च भीष्माय प्रमुखे समकल्पयत् ॥ ७ ॥  
 सहदेवं शकुनये चेकितानं शलाय वै ।  
 द्रौपदेयांस्तथा पञ्च त्रिगर्तेभ्यः समादिशत् ॥ ८ ॥  
 वृषसेनाय सौभद्रं शेषाणां च महीक्षिताम् ।  
 स समर्थं हितं मेने पार्थादभ्यधिकं रणे ॥ ९ ॥  
 एवं विभज्य योधांस्तान्पृथक्च सह चैव ह ।  
 ज्वालावर्णो महेष्वासो द्रोणमंशमकल्पयत् ॥ १० ॥

महारथ वीरोंसे रक्षित होकर अगम समुद्र  
 की भांति दीखने लगी। महाधनुर्द्वारी  
 द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करनेवाले  
 शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न उस सेनाके आगे  
 होकर सैनिक पुरुषोंका निर्वाचन करके  
 सबको आकर्षण करते हुए चलने  
 लगे । (१-४)

इस धृष्टद्युम्नने बल और उत्साहके  
 अनुसार रथियोंका युद्ध करनेके निमित्त  
 निश्चित किया, कर्णसे अर्जुन, दुर्योधनसे  
 भीम, शल्यसे धृष्टकेतु, कृपाचार्यसे  
 उत्तमौजा, अश्वत्थामासे नकुल, कृत-  
 वर्मासे शैब्य और जयद्रथके निमित्त

वृष्णिवंशीय युयुधानको नियुक्त किया ।  
 भीष्मके सम्मुख शिखण्डीको स्थापित  
 किया । (५-७)

शकुनसे सहदेव, शलसे चेकितान  
 और त्रिगर्तसे युद्ध करनेके निमित्त  
 द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको निश्चित किया।  
 वृषसेन और शेषराजाओंके निमित्त  
 अभिमन्युको नियुक्त किया; क्योंकि उस  
 को वह अर्जुनसे भी युद्ध करनेमें अधिक  
 सामर्थ्यवान् समझते थे । तेजस्वी अग्नि-  
 वर्णवाले, महाधनुर्द्वारी सेनापति धृष्टद्युम्न  
 सब योद्धाओंको पृथक् पृथक् और इकट्ठे  
 विभाग करके द्रोणाचार्यको अपने अंश

धृष्टद्युम्नो महेष्वासः सेनापतिपतिस्ततः ।

विधिवद् व्यूह्य मेधावी युद्धाय धृतमानसः ॥ ११ ॥

यथोद्दिष्टानि सैन्यानि पाण्डवानामयोजयत् ।

जयाय पाण्डुपुत्राणां यत्तस्तस्थौ रणाजिरे ॥ १२ ॥ [५५६६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि  
सेनापतिनियोगे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥ समाप्तं चोलूकदूतागमनपर्वं ॥

अथ रथातिरथसंख्यानपर्वं ॥

धृतराष्ट्र उवाच- प्रतिज्ञाने फाल्गुनेन वधे भीष्मस्य संयुगे ।

किमकुर्वत मे मन्दाः पुत्रा दुर्योधनादयः ॥ १ ॥

हतमेव हि पश्यामि गाङ्गेयं पितरं रणे ।

वासुदेवसहायेन पार्थेन दृढधन्वना ॥ २ ॥

स चाऽपरिमितप्रज्ञस्तच्छ्रुत्वा पार्थभाषितम् ।

किमुक्तवान्महेष्वासो भीष्मः प्रहरतां वरः ॥ ३ ॥

सेनापत्यं च सम्प्राप्य कौरवाणां धुरन्धरः ।

किमचेष्टत गाङ्गेयो महाबुद्धिपराक्रमः ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततस्तत्सञ्जयस्तस्मै सर्वमेव न्यवेदयत् ।

यथोक्तं कुरुवृद्धेन भीष्मेणाऽमिततेजसा ॥ ५ ॥

मैं निश्चित किया और उसी प्रकारसे व्यूह बनाकर युद्धके निमित्त तैयार होकर सम्पूर्ण सेनाको सजाके पाण्डवोंके जयके निमित्त रणभूमिमें आकर खड़े हुए । ८-१२

उद्योगपर्वमें एकसौ चौसठ अध्याय और उलूकदूतागमनपर्व समाप्त । [५५६६]

उद्योगपर्वमें एकसौ पैंसठ अध्याय और रथातिरथसंख्यानपर्व ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, अर्जुनने युद्धमें भीष्मके वध करनेकी प्रतिज्ञा की, इसको सुनकर मेरे नीचबुद्धि पुत्रोंने क्या किया ? मुझे बोध होता है, कि कृष्णकी

सहायतासे युक्त दृढ धनुर्द्वारी अर्जुन युद्धमें जेठे पिता गङ्गानन्दन भीष्मका अवश्य ही वध करेगा। हे सञ्जय ! अर्जुनकी प्रतिज्ञा सुनकर वह महाबुद्धिमान्, महा धनुर्द्वारी, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, कौरव धुरन्धर, महातेजस्वी और पराक्रमसे युक्त भीष्मने ही क्या कहा और सेनापति बनकर किस प्रकारसे उद्योग किया ? १-४

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर सञ्जयने अत्यन्त तेजस्वी कौरवोंमें बूढ़े भीष्मने जैसा वचन कहा था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त धृतराष्ट्रसे वर्णन किया । (५)

सञ्जय उवाच— सैन्यापत्यमनुप्राप्य भीष्मः शान्तनवो नृप ।

दुर्योधनमुवाचेदं वचनं हर्षयन्निव ॥ ६ ॥

नमस्कृत्य कुमाराय सेनान्ये शक्तिपाणये ।

अहं सेनापतिस्तेऽद्य भविष्यामि न संशयः ॥ ७ ॥

सेनाकर्मण्यभिज्ञोऽस्मि व्यूहेषु विविधेषु च ।

कर्म कारयितुं चैव भृतानप्यभृतांस्तथा ॥ ८ ॥

यात्रायाने च युद्धे च तथा प्रशमनेषु च ।

भृशं वेद महाराज यथा वेद बृहस्पतिः ॥ ९ ॥

व्यूहानां च समारम्भान्दैवगान्धर्वमानुषान् ।

तैरहं मोहयिष्यामि पाण्डवान्वयेतु ते ज्वरः ॥ १० ॥

सोऽहं योत्स्यामि तत्त्वेन पालयंस्तव वाहिनीम् ।

यथावच्छास्त्रतो राजन्वयेतु ते मानसो ज्वरः ॥ ११ ॥

दुर्योधन उवाच— विद्यते मे न गाङ्गेय भयं देवासुरेष्वपि ।

समस्तेषु महाबाहो सत्यमेतद्वीमि ते ॥ १२ ॥

किंपुनस्त्वयि दुर्धर्षे सैन्यापत्ये व्यवस्थिते ।

सञ्जय बोले, हे राजन्! भीष्म सेनापति होकर दुर्योधनको आनन्दित करते हुए यह वचन बोले, मैं शक्तिको ग्रहण करनेवाले सेनापति स्वामिकार्त्तिक को नमस्कार करके आज तुम्हारा सेनापति बनूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। मैं सेनाका कर्म और अनेक मांतिके व्यूह रचनेमें अभिज्ञ हूं और वेतन पानेवाले तथा मित्रतासे इकट्ठे हुए सैनिक पुरुषोंसे जैसा कर्म कराना उचित है, वह भी जानता हूं। ( ६ - ८ )

हे महाराज ! युद्धयात्रा, और दूसरे के शस्त्रोंका निवारण तथा प्रतीकार करनेमें मैं बृहस्पतिके समान बुद्धिमान्

हूं। मैं जो देवता, गन्धर्व और मनुष्य सम्बन्धीय सब व्यूहकी रचना करना जानता हूं, उसहीसे पाण्डवोंको मोहित करूंगा; इससे तुम अपनी सब चिन्ता दूर करो। हे राजन् ! तुम्हारी सेनाकी सब प्रकारसे रक्षा करते हुए मैं शास्त्रके अनुसार निष्कपट चित्तसे युद्ध करूंगा, इससे तुम अपनी सब चिन्ता और शोक दूर करो। ( ९—११ )

दुर्योधन बोले, हे महाबाहो गङ्गानन्दन भीष्म ! मैं तुमसे यह सत्य वचन कहता हूं कि सम्पूर्ण देवता और असुरोंसे भी मुझे कुछ भय नहीं है; तुम्हारे समान महावीर पुरुषके सेनापति होने

द्रोणे च पुरुषव्याघ्रे स्थिते युद्धाभिनन्दिनि ॥ १३ ॥

भवद्भ्यां पुरुषाग्न्याभ्यां स्थिताभ्यां विजये मम ।

न दुर्लभं कुरुश्रेष्ठ देवराज्यमपि ध्रुवम् ॥ १४ ॥

रथसंख्यां तु कात्स्नर्येन परेषामात्मनस्तथा ।

तथैवाऽतिरथानां च वेत्तुमिच्छामि कौरव ॥ १५ ॥

पितामहो हि कुशलः परेषामात्मनस्तथा ।

श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वैः सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ १६ ॥

भीष्म उवाच— गान्धारे शृणु राजेन्द्र रथसंख्यां स्वके बले ।

ये रथाः पृथिवीपाल तथैवाऽतिरथाश्च ये ॥ १७ ॥

बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।

रथानां तव सेनायां यथामुख्यं तु मे शृणु ॥ १८ ॥

भवानग्रे रथोदारः सह सर्वैः सहोदरैः ।

दुःशासनप्रभृतिभिर्भ्रातृभिः शतसंमितैः ॥ १९ ॥

सर्वे कृतप्रहरणाश्छेदभेदविशारदाः ।

और पुरुषसिंह द्रोणाचार्यके प्रसन्नतापूर्वक युद्धमें स्थित रहनेपर मुझे भय नहीं रहेगा, इसमें कौनसा सन्देह है ? हे भरतश्रेष्ठ ! पुरुषोंमें मुख्य आप दोनों महावीर पुरुषोंके स्थित रहनेपर मेरा निश्चय ही विजय होगा; विजयकी तो बात ही क्या है, देवताओंका राज्य भी मुझे दुर्लभ नहीं है । ( १२—१४ )

हे कौरव ! अब इस समयमें शत्रुओं और तुम्हारी सेनामें कितने रथी और अतिरथी हैं, उनको मैं जाननेकी इच्छा करता हूं । हे पितामह ! तुम अपने और शत्रु पक्षके वीरोंको खूब ही जानते हो, इससे मैं इन सम्पूर्ण राजाओंके सहित इस वृत्तान्तको सुननेकी अभिलाषा

करता हूं । ( १५—१६ )

भीष्म बोले, हे गान्धारीनन्दन राजेन्द्र ! अपनी सेनाके बीच रथियोंकी संख्या सुनो, जो लोग रथी और अतिरथी हैं, वह मैं सब वर्णन करता हूं । हे राजन् ! तुम्हारी सेनाके बीच कई सहस्र, कई लाख और अनेक अर्बुद रथी हैं; उनमें जो मुख्य हैं, उनका नाम कहता हूं, तुम सुनो । ( १७—१८ )

पहिले दुःशासन आदि सौ भाईयोंके सहित तुम ही एक प्रधान रथी हो; तुम लोग सब ही शस्त्र चलानेके विषयमें कृतकार्य और छेदन, भेदन आदि सब विषयोंको जाननेवाले हो । तुम लोग रथ और हाथियों पर चढ़के जैसे

रथोपस्थे गजस्कंधे गदाप्रासासिचर्मणि ॥ २० ॥  
 संयन्तारः प्रहर्तारः कृतास्त्रा भारसाधनाः ।  
 हृष्वस्त्रे द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥ २१ ॥  
 एते हनिष्यन्ति रणे पञ्चालान्युद्धदुर्मदान् ।  
 कृतकिल्बिषाः पाण्डवेयैर्धार्तराष्ट्रा मनस्विनः ॥ २२ ॥  
 तथाऽहं भरतश्रेष्ठ सर्वसेनापतिस्तव ।  
 शत्रून्विध्वंसायिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥ २३ ॥  
 न त्वात्मनो गुणान्वक्तुमर्हामि विद्रितोऽस्मि ते ।  
 कृतवर्मा त्वतिरथो भोजः शस्त्रभृतां वरः ॥ २४ ॥  
 अर्थसिद्धिं तव रणे करिष्यति न संशयः ।  
 शस्त्रविद्विरनाधृष्यो दूरपाती दृढायुधः ॥ २५ ॥  
 हनिष्यति च भूँ तेषां महेन्द्रो दानवानिव ।  
 मद्राजो महेष्वासः शल्यो मेऽतिरथो मतः ॥ २६ ॥  
 स्पर्धते वासुदेवेन नित्यं यो वै रणे रणे ।  
 भागिनेयान्निजांस्त्यक्तवा शल्यस्तेऽतिरथो मतः ॥  
 एष योत्स्यति संग्रामे पाण्डवांश्च महारथान् ॥ २७ ॥

लडनेवाले हो, वैसे ही गदा, प्रास  
 तलवार आदि शस्त्रोंको भी चलानेवाले  
 हो; तुम लोग शस्त्रको चलाने और भार  
 उठानेमें समर्थ और अस्त्र शस्त्र तथा  
 मन्त्रमें द्रोणाचार्य और कृपाचार्यके शिष्य  
 हो । यह मनस्वी धार्तराष्ट्रगण पाण्डवोंके  
 ऊपर क्रुद्ध होकर युद्धमें मतवारे पाञ्चाल  
 वीरोंको मारेंगे । ( १९—२२ )

हे भरतश्रेष्ठ ! तुम सबका सेनापति  
 मैं भी तुम्हारे शत्रु पाण्डवोंका पराजय,  
 साधन करता हुआ सबका नाश करूंगा  
 हे राजन् ! अपना गुण सम्पूर्ण रूपसे  
 वर्णन करना मुझे उचित नहीं है, मैं

जैसा हूं, उसे तुम जानते ही हो ।  
 शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अतिरथी भोजराज  
 कृतवर्मा भी युद्धमें तुम्हारी अर्थ सिद्धि  
 करेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; यह  
 शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ दृढशस्त्र और दूरतक  
 अस्त्रोंके चलानेमें समर्थ हैं, इससे इन्द्र  
 जैसे दानवोंका संहार करते हैं, वैसे ही यह  
 शत्रुओंकी सेनाको नष्ट करेंगे । २३-२६

मेरी समझमें महाधनुर्द्वारी मद्राज  
 शल्य भी एक मुख्य अतिरथी हैं, यह  
 राजसत्तम युद्धमें कृष्णके सङ्ग सदा  
 लडनेकी इच्छा करते हैं, विशेष करके  
 अपने भागिनेयोंको त्याग करके तुम्हारा

सागरोर्मिसमैर्बाणैः प्लावयन्निव शात्रवान् ।  
 भूरिश्रवाः कृतास्त्रश्च तव चापि हितः सुहृत् ॥ २८ ॥  
 सौमदत्तिर्महेष्वासो रथयूथपयूथपः ।  
 बलक्षयममित्राणां सुमहांतं करिष्यति ॥ २९ ॥  
 सिन्धुराजो महाराज सतो मे द्विगुणो रथः ।  
 योत्स्यते समरे राजन्विक्रान्तो रथसत्तमः ॥ ३० ॥  
 द्रौपदीहरणे राजन्परिक्षिष्टश्च पाण्डवैः ।  
 संस्मरंस्तं परिक्षेशं योत्स्यते परवीरहा ॥ ३१ ॥  
 एतेन हि तदा राजंस्तप आस्थाय दारुणम् ।  
 सुदुर्लभो वरो लब्धः पाण्डवान्योद्धुमाहवे ॥ ३२ ॥  
 स एष रथशार्दूलस्तद्वैरं संस्मरन्रणे । [ ५५९९ ]  
 योत्स्यते पाण्डवैस्तात प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि  
 पञ्चपष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

भीष्म उवाच— सुदक्षिणस्तु काम्बोजो रथ एकगुणो भूतः ।  
 तवार्थसिद्धिमाकांक्षन्योत्स्यते समरे परैः ॥ १ ॥

पक्ष अवलम्बन किये हुए हैं; इस-  
 से यह समुद्रके तरङ्गके समान अपने  
 बाणोंसे शत्रुओंको दूर करते हुए महारथ  
 पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करेंगे। महाधनुर्धारी  
 रथयूथपतियोंका भी रथपति सौमदत्तके  
 पुत्र भूरिश्रवा कृतास्त्र भी हैं और तुम्हारे  
 हितकारी मित्र भी हैं; इससे यह शत्रुओंकी  
 सेनाका खूब ही विध्वंस करेंगे। २६-२९

हे महाराज सिन्धुराज जयद्रथको मैं  
 द्विगुणरथ समझता हूँ; यह राजसत्तम  
 सम्पूर्ण रूपसे पराक्रम प्रकाशित करके  
 शत्रुओंसे युद्ध करेंगे; हे राजन् ! द्रौप-  
 दीहरणके समयमें पाण्डवोंने जो इन्हे

अत्यन्त क्लेश दिया था, उसे पूर्ण रीतिसे  
 स्मरण करके यह शत्रुनाशी वीर युद्धमें  
 प्रवृत्त होंगे। हे राजन् ! उस समयमें  
 इन्होंने बहुत कठिन तपस्या करके महा-  
 देवसे अत्यन्त दुर्लभ वर पाया था, इस-  
 से हे तात ! यह राज-शार्दूल जयद्रथ  
 युद्धमें उस वैरका स्मरण करके अपने  
 प्रिय प्राणको त्याग करके भी पाण्डवोंके  
 संग युद्ध करेंगे। (३०—३३) [ ५५९९ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ पैंसठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ छः अध्याय ।

भीष्म बोले, हे राजसत्तम ! काम्बोज  
 राज सुदक्षिण एकगुण रथी हैं; तुम्हारी



एतस्य रथसिंहस्य तवाऽर्थे राजसत्तम ।  
 पराक्रमं यथेन्द्रस्य द्रक्ष्यन्ति कुरवो युधि ॥ २ ॥  
 एतस्य रथवंशे हि तिग्मवेगप्रहारिणः ।  
 काम्बोजानां महाराज शलभानामिवाऽऽयतिः ॥ ३ ॥  
 नीलो माहिष्मतीवासी नीलवर्मा रथस्तव ।  
 रथवंशेन कदनं शत्रूणां वै करिष्यति ॥ ४ ॥  
 कृतवैरः पुरा चैव सहदेवेन मारिष ।  
 योत्स्यते सततं राजंस्तवाऽर्थे कुरुनन्दन ॥ ५ ॥  
 बिन्दानुबिन्दावावन्यौ सम्मतौ रथसत्तमौ !  
 कृतिनौ समरे तात हृदवीर्यपराक्रमौ ॥ ६ ॥  
 एतौ तौ पुरुषव्याघ्रौ रिपुसैन्यं प्रधक्ष्यतः ।  
 गदाप्रासासिनाराचैस्तोमरैश्च करच्युतैः ॥ ७ ॥  
 युद्धाभिकामौ समरे क्रीडन्ताविव यूथपौ ।  
 यूथमध्ये महाराज विचरन्तौ कृतान्तवत् ॥ ८ ॥  
 त्रिगर्त्ता भ्रातरः पञ्च रथोदारा मता मम ।  
 कृतवैराश्च पार्थैस्ते विराटनगरे तदा ॥ ९ ॥

अर्थ सिद्धिकी इच्छा करके यह शत्रुओंसे युद्ध करेंगे । कौरव लोग युद्धमें तुम्हारे निमित्त शस्त्र चलानेवाले इस रथसिंहका इन्द्रके समान पराक्रम देखेंगे; क्योंकि इनके रथके समूह शलभपुञ्जकी भांति तीव्र वेगसे युक्त काम्बोज वीरोंका विस्तार दीख पड़ेगा । (१-३)

हे महाराज ! माहिष्मतीवासी नीलवर्मा नीलराज भी रथी हैं; ये अपने रथके समूहसे तुम्हारे शत्रुओंका नाश करेंगे; हे कुरुनन्दन ! पहिले सहदेवने इनके संग शत्रुता की थी, इससे तुम्हारे निमित्त ये स्थिर होके युद्ध करेंगे । हे तात ! महा

बलवान्, पराक्रमी, युद्ध-कर्मको जानने वाले अवन्तिदेशीय विन्द और अनुविन्द उत्तम रथी कहके विख्यात हैं । हे महाराज ! युद्धमें क्रीडा करनेवाले दो मतवारे हाथियोंकी भांति युद्धकी इच्छासे ये पुरुषसिंह रणभूमिमें कालके समान घूमते हुए अपने हाथसे गदा, प्रास, तलवार और तोमर आदि शस्त्रोंको चलाकर शत्रुओंकी सेनाको भस्म करते रहेंगे । (४-८)

हे राजेन्द्र ! त्रिगर्त्त लोग पांचों भाई मेरे मतमें रथश्रेष्ठ हैं । विराट-नगरमें पाण्डवोंने इनके संग शत्रुता की थी,



मकरा इव राजेन्द्र समुद्रततरङ्गिणीम् ।  
 गङ्गां विक्षोभयिष्यन्ति पार्थानां युधि बाहिनीम् ॥ १० ॥  
 ते रथाः पञ्च राजेन्द्र येषां सत्यरथो मुखम् ।  
 एते योत्स्यन्ति संग्रामे संस्मरन्तः पुरा कृतम् ॥ ११ ॥  
 व्यलीकं पाण्डवेयेन भीमसेनानुजेन ह ।  
 दिशो विजयता राजञ्श्वेतवाहेन भारत ॥ १२ ॥  
 ते हनिष्यन्ति पार्थानां तानासाद्य महारथान् ।  
 वरान्वरान्महेष्वासान्क्षत्रियाणां धुरन्धरान् ॥ १३ ॥  
 लक्ष्मणस्तव पुत्रश्च तथा दुःशासनस्य च ।  
 उभौ तौ पुरुषव्याघ्रौ संग्रामेष्वपलायिनौ ॥ १४ ॥  
 तरुणौ सुकुमारौ च राजपुत्रौ तरस्विनौ ।  
 युद्धानां च विशेषज्ञौ प्रणेतारौ च सर्वशः ॥ १५ ॥  
 रथौ तौ कुरुशार्दूल मतौ मे रथसत्तमौ ।  
 क्षत्रधर्मरतौ वीरौ महत्कर्म करिष्यतः ॥ १६ ॥  
 दण्डधारो महाराज रथ एको नरर्षभ ।  
 योत्स्यते तव संग्रामे स्वेन सैन्येन पालितः ॥ १७ ॥  
 बृहद्वलस्तथा राजा कौसल्यो रथसत्तमः ।

इससे घडियार मगर जैसे तरङ्गसे युक्त  
 भरी हुई गंगाको मथते हैं, युद्धमें ध्वजा-  
 धारी पाण्डवोंकी सेनाको भी ये लोग  
 वैसे ही तितर बितर करेंगे । इन पांच  
 रथियोंके बीच सत्यरथ मुख्य है । हे  
 भारत ! पहिले अर्जुनने दिग्विजयमें  
 प्रवृत्त होकर इन लोगोंका अनिष्ट किया  
 था, उसको पूरी रीतिसे स्मरण करके,  
 ये लोग युद्ध करेंगे; पाण्डवोंके सम्मुख  
 होकर ये लोग महा धनुर्धारी महारथ  
 मुख्य मुख्य क्षत्रियोंका वध करेंगे । ९-१३  
 हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण

और दुःशासनका पुत्र, ये दोनों मेरे मतसे  
 उत्तम रथी हैं, तरुण और सुकुमार  
 राजकुमार होकर भी ये पुरुषसिंह युद्धमें  
 पीले नहीं हटते, महातेजस्वी युद्धके कार्य  
 जाननेवाले और शस्त्र चलानेमें निपुण  
 हैं । ये दोनों वीर क्षत्रिय धर्ममें स्थित  
 होकर बहुत कठिन युद्धके कर्म करेंगे ।  
 हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज ! दण्डधार एकगुणे  
 रथी हैं, ये अपनी सेनासे रक्षित होकर  
 तुम्हारे निमित्त युद्ध करेंगे । (१५—१७)  
 हे तात ! महावेगवान् पराक्रमी  
 रथसत्तम कौसल्य बृहद्वल भी मेरे मतमें

रथो मम मतस्तात महावेगपराक्रमः ॥ १८ ॥  
 एष योत्स्यति संग्रामे स्वान्वन्धून्सम्प्रहर्षयन् ।  
 उग्रायुधो महेष्वासो धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥ १९ ॥  
 कृपः शारद्वतो राजन् रथयूथपयूथपः ।  
 प्रियान्प्राणान्परित्यज्य प्रधक्ष्यति रिपूंस्तव ॥ २० ॥  
 गौतमस्य महर्षेय आचार्यस्य शरद्वतः ।  
 कार्तिकेय इवाऽजेयः शरस्तम्बात्सुतोऽभवत् ॥ २१ ॥  
 एष सेनाः सुबहुला विविधायुधकामुकाः ।  
 अग्निवत्समरे तात चरिष्यति विनिर्दहन् ॥ २२ ॥ [५६२१]

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि षट्षष्ट्याधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

भीष्म उवाच— शकुनिर्मातुलस्तेऽसौ रथ एको नराधिप ।  
 प्रयुज्य पाण्डवैर्वैरं योत्स्यते नाऽत्र संशयः ॥ १ ॥  
 एतस्य सेना दुर्धर्षा समरे प्रतियायिनः ।  
 विकृतायुधभूयिष्ठा वायुवेगसमा जवे ॥ २ ॥  
 द्रोणपुत्रो महेष्वासः सर्वानेवाऽतिधन्विनः ।  
 समरे चित्रयोधी च दृढास्त्रश्च महारथः ॥ ३ ॥

रथी हैं । धृतराष्ट्रपुत्रोंके हितकार्यमें रत होकर ये अस्त्र शस्त्रको धारण करनेवाले महाधनुर्द्वारी रणभूमिमें अपने बन्धु बान्धवोंको आनन्दित करते हुए युद्ध करेंगे । हे राजन् ! रथयूथपति कृपाचार्य अपना प्रिय प्राण त्याग कर भी तुम्हारे शत्रुओंका नाश करेंगे; हे तात ! अजेय स्वामि कार्तिकके समान जो शरस्तम्बसे महर्षि गौतमके वीर्य द्वारा उत्पन्न हुए थे; ये वही वीरवर पुरुष हैं; युद्धमें धनुष और शस्त्रोंको धारण करके शत्रुओंकी सेनाको भस्म करते हुए साक्षात् अग्निके समान ये रणभूमिमें घूमेंगे । (१८-२२) [५६२१]

उद्योगपर्वमें एकसौ छासठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ सदसठ अध्याय ।

भीष्म बोले, हे नरनाथ ! तुम्हारा मामा शकुनि भी एकरथी है; पाण्डवोंके सङ्ग शत्रुता करके यह अवश्य युद्ध करेगा; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । युद्धमें शत्रुओंके विरुद्ध गमन करनेवाले इस वीरकी सेना अनेक शस्त्रोंको धारण करनेवाली और अत्यन्त बलवान् है । महाधनुर्द्वारी महारथ द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा सब धनुर्द्वारियोंमें श्रेष्ठ, युद्धमें महावीर योद्धा और दृढ़ शस्त्रधारी हैं । (१-३)

एतस्य हि महाराज यथा गाण्डीवधन्वनः ।  
 शरासनविनिर्मुक्ताः संसक्ता यान्ति सायकाः ॥ ४ ॥  
 नैष शक्यो मया वीरः संख्यातुं रथसत्तमः ।  
 निर्दहेदपि लोकांस्त्रीनिच्छन्नेष महारथः ॥ ५ ॥  
 क्रोधस्तेजश्च तपसा सम्भृतोऽऽश्रमवासिनाम् ।  
 द्रोणेनाऽनुगृहीतश्च दिव्यैरस्त्रैरुदारधीः ॥ ६ ॥  
 दोषस्त्वस्य महानेको येनैव भरतर्षभ ।  
 न मे रथो नाऽतिरथो मतः पार्थिवसत्तमः ॥ ७ ॥  
 जीवितं प्रियमत्यर्थमायुष्कामः सदा द्विजः ।  
 न ह्यस्य सहशः कश्चिदुभयोः सेनयोरपि ॥ ८ ॥  
 हन्यादेकरथेनैव देवानामपि बाहिनीम् ।  
 वपुष्मांस्तलघोषेण स्फोटयेदपि पर्वतान् ॥ ९ ॥  
 असंख्येयगुणो वीरः प्रहन्ता दारुणद्युतिः ।  
 दण्डपाणिरिवाऽसह्यः कालवत्प्रचारिष्यति ॥ १० ॥  
 युगान्ताग्निसमः क्रोधात्सिंहग्रीवो महाद्युतिः ।

हे राजन् ! गाण्डीव धनुषको धारण करनेवाले अर्जुनकी भांति इसके शरा-सनसे छूटे हुए सब बाण शत्रुओंके ऊपर मिलजुल कर जाते हैं। मैं इस रथसत्तम महावीर पुरुषके गुणोंकी संख्या करनेमें असमर्थ हूँ, यह महारथ इच्छा करनेसे तीनों लोकको भस्म कर सकता है। यह आश्रमवासी मुनियोंके क्रोध और तेजका समुदायरूप है, तथा उसने बहुत तपश्चर्या की है और उदारबुद्धिसे युक्त होनेसे द्रोणाचार्यकी कृपासे सब दिव्य अस्त्र शस्त्रोंको प्राप्त किया है; परन्तु इसमें एक ही दोष ऐसा है, कि जिससे मैं इसे रथी वा अति

रथी कुछ भी नहीं कह सकता हूँ। (४-७)

हे राजन् ! यह ब्राह्मण सदा आयु-की इच्छा करता है; इससे जीवन इसे अत्यन्त ही प्यारा है; जो हो, दोनों सेनाओंके बीच कोई योद्धा भी इसके समान विद्यमान नहीं है; यह महा पराक्रमी अश्वत्थामा एक रथसे देवताओंकी सेनाको भी वध कर सकता है और पर्वतोंको भी तोड़नेमें समर्थ है, इससे यह अत्यन्त गुणशाली महा तेजस्वी, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीरवर दण्डधारी कालके समान असह्य होकर शत्रुओंकी सेनामें भ्रमण करेगा; क्रोधमें प्रलयकालकी अग्निके समान यह महा

एष भारत युद्धस्य वृष्टं संशमयिष्यति ॥ ११ ॥  
 पिता त्वस्य महातेजा वृद्धोऽपि युवभिर्वरः ।  
 रणे कर्म महत्कर्ता अत्र मे नाऽस्ति संशयः ॥ १२ ॥  
 अस्त्रवेगानिलोद्भूतः सेनाकक्षेन्धनोत्थितः ।  
 पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि प्रधक्ष्यति रणे धृतः ॥ १३ ॥  
 रथयूथपयूथानां यूथपोऽयं नरर्षभः ।  
 भारद्वाजात्मजः कर्ता कर्म तीव्रं हितं तव ॥ १४ ॥  
 सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।  
 गच्छेदन्तं सृज्यानां प्रियस्त्वस्य धनञ्जयः ॥ १५ ॥  
 नैष जातु महेष्वासः पार्थमक्लिष्टकारिणम् ।  
 हन्यादाचार्यकं दीप्तं संस्मृत्य गुणानिर्जितम् ॥ १६ ॥  
 श्लाघतेऽयं सदा वीर पार्थस्य गुणाविस्तरैः ।  
 पुत्रादभ्यभिकं चैनं भारद्वाजोऽनुपश्यति ॥ १७ ॥  
 हन्यादेकरथेनैव देवगन्धर्वमानुषान् ।  
 एकीभूतानपि रणे दिव्यैरस्त्रैः प्रतापवान् ॥ १८ ॥  
 पौरवो राजशार्दूलस्तव राजन्महारथः ।

तेजस्वी पुरुषसिंह अश्वत्थामा पाण्डवों-  
 की सेनाको भस्म करेगा । (८-११)

इसके पिता द्रोणाचार्य बूढ़े होकर  
 भी तरुण पुरुषोंसे श्रेष्ठ हैं, संग्राममें जो  
 ये अत्यन्त ही बड़े कार्य करेंगे, उसमें  
 मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है । सेनारूपी  
 तृण-काठ अस्त्रशस्त्रोंके वेगरूपी पवनसे  
 बड़े हुए द्रोणरूपी अग्निमें निःसन्देह  
 युधिष्ठिरकी सेना भस्म होजावेगी; इससे  
 रथयूथप यूथ समूहोंके भी यूथपति यह  
 पुरुषश्रेष्ठ भरद्वाजनन्दन तुम्हारा अत्यन्त  
 ही हितकार्य सिद्ध करेंगे । सब धनुर्धा-  
 रियोंके मुकुटमणि यह बूढ़े आचार्य

सम्पूर्ण सृज्योंके काल-स्वरूप होसकते  
 हैं; परन्तु अर्जुन इनको बहुत ही प्यारा  
 है । (१२-१५)

यह महाधनुर्धारी द्रोणाचार्य अपने  
 आचार्य कर्मको स्मरण करके युद्धमें  
 कभी अर्जुनको नहीं मार सकेंगे । हे वीर !  
 अर्जुनके गुणोंसे मोहित होकर आचार्य  
 द्रोण सदा उसकी प्रशंसा किया करते  
 हैं और पुत्रसे भी उसके ऊपर इनकी  
 अधिक प्रीति है । यह अत्यन्त प्रतापी  
 महावीर द्रोणाचार्य एक रथसे ही अपने  
 दिव्य अस्त्रोंकी सहायतासे देवता और  
 सम्पूर्ण मनुष्योंका वध कर सकते

मतो मम रथोदारः परवीररथारुजः ॥ १९ ॥  
 स्वेन सैन्येन सहता प्रतपञ्शत्रुवाहिनीम् ।  
 प्रधक्ष्यति स पाञ्चालान्कक्षमग्निगतिर्यथा ॥ २० ॥  
 सत्यश्रवा रथस्त्वेको राजपुत्रो बृहद्वलः ।  
 तव राजनिर्पुबले कालवत्प्रचरिष्यति ॥ २१ ॥  
 एतस्य योधा राजेन्द्र विचित्रकवचायुधाः ।  
 विचरिष्यन्ति संग्रामे निघ्नन्तः शात्रवांस्तव ॥ २२ ॥  
 वृषसेनो रथस्तेऽग्न्यः कर्णपुत्रो महारथः ।  
 प्रधक्ष्यति रिपूणां ते बलं तु बलिनां वरः ॥ २३ ॥  
 जलसन्धो महातेजा राजन्रथवरस्तव ।  
 त्यक्ष्यते समरे प्राणान्माधवः परवीरहा ॥ २४ ॥  
 एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः ।  
 रथेन वा महाबाहुः क्षपयञ्शत्रुवाहिनीम् ॥ २५ ॥  
 रथ एष महाराज मतो मे राजसत्तम ।  
 त्वदर्थे त्यक्ष्यते प्राणान्सहसैन्यो महारणे ॥ २६ ॥  
 एष विक्रान्तयोधी च चित्रयोधी च सङ्गरे ।

हैं । ( १६—१८ )

हे राजन् ! तुम्हारे शत्रुओंको नाश करनेवाले यह पुरुषसिंह कौरव मेरे मतमें रथश्रेष्ठ हैं । यह अपनी सेनाको कंपाते हुए अग्नि जैसे सूखे तृण और लकड़ियोंको जला देती है; वैसे ही ये पाञ्चाल वीरोंको भस्मकर देंगे । हे भारत ! सत्यकीर्ति, एकरथ राजपुत्र बृहद्वल साक्षात् कालके समान शत्रुओंकी सेनामें भ्रमण करेंगे, इसके विचित्र कवच और शस्त्रोंको धारण करनेवाले वीर योद्धा लोग तुम्हारे शत्रुओंको मारते हुए रणभूमिमें भ्रमण करेंगे । ( १९—२२ )

हे राजन् ! कर्णका पुत्र वृषसेन तुम्हारा एक मुख्य रथी है । वह बलवानोंमें श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे शत्रुओंकी सेनाको अच्छी प्रकारसे नष्ट करेगा । हे राजन् ! तुम्हारे रथश्रेष्ठ शत्रु नाशन महातेजस्वी मधुवंशीय जलसन्ध प्राण देकर भी युद्ध करेंगे, हाथी और रथ दोनों वाहनोंपर चढ़के ये युद्ध कर सकते हैं; यह महाबाहु संग्राममें शत्रुओंकी सेनाको विक्षिप्त करते हुए युद्ध करेंगे; हे महाराज ! यह राज-सत्तम मेरे मतमें रथी हैं; तुम्हारे निमित्त संग्राममें यह अपनी सेनाके सहित प्राणत्याग करेंगे; यह

वीतभीश्चाऽपि ते राजञ्शत्रुभिः सह योत्स्यते ॥ २७ ॥  
 बाह्लीकोऽतिरथश्चैव समरे चाऽनिवर्त्तनः ।  
 मम राजन्मतो युद्धे शूरो वैवस्वतोपमः ॥ २८ ॥  
 न ह्येष समरं प्राप्य निवर्त्तत कथञ्चन ।  
 यथा सततगो राजन्स हि हन्यात्परान्रणे ॥ २९ ॥  
 सेनापतिर्महाराज सत्यवांस्ते महारथः ।  
 रणेऽबुद्धतकर्मा च रथी पररथारुजः ॥ ३० ॥  
 एतस्य समरं दृष्ट्वा न व्यथाऽस्ति कथञ्चन ।  
 उत्समयन्नुत्पतत्येष परान्रथपथे स्थितान् ॥ ३१ ॥  
 एष चाऽरिषु विक्रान्तः कर्म सत्पुरुषोचितम् ।  
 कर्त्ता विमर्दे सुमहत्त्वदर्थे पुरुषोत्तमः ॥ ३२ ॥  
 अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः क्रूरकर्मा महारथः ।  
 हनिष्यति परान्राजन्पूर्ववैरमनुस्सरन् ॥ ३३ ॥  
 एष राक्षससैन्यानां सर्वेषां रथसत्तमः ।  
 मायावी दृढवैरश्च समरे विचरिष्यति ॥ ३४ ॥

संग्राममें महापराक्रमी योद्धा है, इससे निर्भय होकर शत्रुओंसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त होंगे । ( २३—२७ )

हे राजन् ! युद्धमें अपराजित साक्षात् कालके समान अत्यन्त बली और महापराक्रमी बाह्यिक मेरे मतमें अतिरथी हैं, क्योंकि रणभूमिमें जाकर यह किसी प्रकारसे भी निवृत्त नहीं होते, वायुकी गतिके समान गमन करके यह सब शत्रुओंका अवश्य ही वध करेंगे । हे महाराज ! तुम्हारे सेनापति महारथ सत्यवान् युद्धमें अद्भुत कर्म करनेवाले रथी और शत्रुओंको पीडित करनेवाले हैं; युद्ध देखकर इनको किसी प्रकारसे

भी भय नहीं होता; वह रथोंके मार्गमें स्थित शत्रुओंको विस्मित करते हुए सहसा उनके ऊपर पतित होते हैं; शत्रुओंको नाश करनेवाले यह पुरुषसिंह तुम्हारे निमित्त सत्पुरुषोंके योग्य अत्यन्त बड़े कार्य करेंगे । ( २८—३२ )

हे राजन् ! क्रूर कर्म करनेवाला महारथ राक्षसेन्द्र अलम्बुष पहिला वैर स्सरण करके शत्रुओंको मारेगा । यह सम्पूर्ण राक्षसोंकी सेनाके बीच रथसत्तम, अनेक मायाओंको जाननेवाला और दृढ शत्रुता करनेवाला है; इससे रणभूमिमें घोर रूप धारण करके शत्रुओंकी सेनामें भ्रमण करेगा । ( ३३—३४ )

प्राग्ज्योतिषाधिपो वीरो भगदत्तः प्रतापवान् ।

गजांकुशधरश्रेष्ठो रथे चैव विशारदः ॥ ३५ ॥

एतेन युद्धमभवत्पुरा गाण्डीवधन्वना ।

दिवसान्सुबहून् राजन्नुभयोर्जयगृह्णिनोः ॥ ३६ ॥

ततः सखायं गान्धारे मानयन्पाकशासनम् ।

अकरोत्संबिदं तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ ३७ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः ।

ऐरावतगतो राजा देवानामिव वासवः ॥ ३८ ॥ [ ५६५९ ]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि सप्तषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

भीष्म उवाच— अचलो वृषकश्रैव सहितौ आतरावुभौ ।

रथौ तव दुराधर्षौ शत्रून्विध्वंसयिष्यतः ॥ १ ॥

बलवन्तौ नरव्याघ्रौ दृढक्रोधौ प्रहारिणौ ।

गान्धारमुख्यौ तरुणौ दर्शनीयौ महाबलौ ॥ २ ॥

सखा ते दयितो नित्यं य एष रणकर्कशः ।

उत्साहयति राजंस्त्वां विग्रहे पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥

पुरुषः कथनो नीचः कर्णो वैकर्त्तनस्तव ।

हे राजेन्द्र ! प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्त हाथियोंपर अंकुश धारण करके चढ़ने और रथविद्यामें भी निपुण हैं; पहिले गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनके सङ्ग इनका युद्ध हुआ था, दोनोंने अपने अपने जयकी अभिलाषासे बहुत दिनतक युद्ध किया था, पीछे अपने मित्र पाकशासन इन्द्रको मध्यस्थ मानके इन्होंने महात्मा पाण्डवोंके संग सन्धि किया था; हाथीपर चढ़के युद्ध करनेवाले यह राजा भगदत्त देवताओंके बीच ऐरावत हाथीपर चढ़े हुए इन्द्रकी भांति शत्रुओंसे युद्ध करेंगे । (३५-३८)

उद्योगपर्वमें एकसौ सदसठ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ अडसठ अध्याय ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! गान्धारोंमें प्रधान, तरुण, देखने योग्य, महाबली, पराक्रमी, दृढक्रोधी, पुरुषसिंह अचल और वृषभ दोनों भाई रथी हैं; ये दोनों मिलकर तुम्हारे शत्रुओंको नष्ट करेंगे । ( १-२ )

हे भारत ! तुम्हारा प्यारा मित्र, मन्त्री, नायक, अभिमानी, बन्धु, अत्यन्त ऊंची अभिलाषा करनेवाला, अपनी प्रशंसा करनेवाला, सदा युद्धको चाहनेवाला, नीचपुरुष, सूर्यपुत्र कर्ण जो सदा

मन्त्री नेता च बन्धुश्च मानी चाऽत्यन्तमुच्छ्रितः ॥ ४ ॥

एष नैव रथः कर्णो न चाऽप्यतिरथो रणे ।

वियुक्तः कवचेनैष सहजेन विचेतनः ॥ ५ ॥

कुण्डलाभ्यां च दिव्याभ्यां वियुक्तः सतनं घृणी ।

अभिशापाच्च रामस्य ब्राह्मणस्य च भाषणात् ॥ ६ ॥

करणानां वियोगाच्च तेन मेऽर्धरथो मतः ।

नैष फाल्गुनमासाद्य पुनर्जीवन्विमोक्ष्यते ॥ ७ ॥

ततोऽब्रवीत्पुनर्द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।

एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वं न मिथ्याऽस्ति कदाचन ॥ ८ ॥

रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चाऽपि दृश्यते ।

घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः ॥ ९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु राधेयः क्रोधादुत्फाल्य लोचने ।

उवाच भीष्मं राधेयस्तुदन्वाग्भिः प्रतोदवत् ॥ १० ॥

पितामह यथेष्टं मां वाक्शरैरुपकृन्तसि ।

अनागसं सदा द्वेषादेवमेव पदे पदे ॥ ११ ॥

ही तुमको पाण्डवोंके संग युद्ध करनेके निमित्त उत्साहित करता रहता है; इसको संग्राममें रथी वा अतिरथी कुछ भी नहीं कह सकते। यह अनभिज्ञ और अत्यन्त दयालु होनेके कारण अपने संग गर्भसे उत्पन्न हुए कवच और कुण्डलसे रहित हो गया, है; इससे परशुरामके शाप, ब्राह्मणके वचन और कवच कुण्डल आदि साधनोंसे रहित होनेसे मेरे मतमें यह अर्द्ध रथी है। युद्धमें अर्जुनके सम्मुख होकर यह कभी जीता न बचेगा। (३-७)

अनन्तर सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य बोले, हे गंगानन्दन भीष्म!

तुमने जो कुछ कहा, सब सत्य है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है; कर्ण प्रति बार युद्धसे अभिमानी होता है; परन्तु युद्धसे विमुख होते भी दीख पड़ता है; इससे यह घृणित और प्रमादी पुरुष मेरे मतमें भी अर्द्धरथी ही है। (८-९)

अनन्तर इस वचनको सुनकर कर्ण क्रोधसे दोनों नेत्र लाल करके अंकुशके समान वचनोंसे भीष्मको पीडित करते हुए यह वचन बोले, हे पितामह ! मैं निरपराधी हूं इसपर भी तुम केवल द्वेषके कारण ऐसे वचनरूपी बाणोंकी सहायतासे मुझको पद पदमें छेदन करते रहते हो, तौ भी दुर्योधनके



मर्षयामि च तत्सर्वं दुर्योधनकृतेन वै ।

त्वं तु मां मन्यसे मन्दं यथा कापुरुषं तथा ॥ १२ ॥

भवानर्धरथो मह्यं मतो वै नाऽत्र संशयः ।

सर्वस्य जगतश्चैव गाङ्गेयो न मृषा वदेत् ॥ १३ ॥

कुरुणामहितो नित्यं न च राजाऽवबुध्यते ।

को हि नाम समानेषु राजसूदारकर्मसु ॥ १४ ॥

तेजोवधमिमं कुर्याद्विभेदयिषुराहवे ।

यथा त्वं गुणविद्वेषादपरागं चिकीर्षसि ॥ १५ ॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः ।

महारथत्वं संख्यातुं शक्यं क्षत्रस्य कौरव ॥ १६ ॥

बलज्येष्ठं स्मृतं क्षत्रं मन्त्रज्येष्ठा द्विजातयः ।

धनज्येष्ठाः स्मृता वैश्याः शूद्रास्तु वयसाऽधिकाः ॥ १७ ॥

यथेच्छकं स्वयं ब्रूया रथानतिरथास्तथा ।

कामद्वेषसमायुक्तो मोहात्प्रकुरुते भवान् ॥ १८ ॥

दुर्योधन महाबाहो साधु सम्यगवेक्ष्यताम् ।

निमित्त मैं तुम्हारी सब बातोंको सहता रहता हूं। तुम मुझे कापुरुषकी भांति तुच्छ समझते हो। (१०-१२)

तुम निःसंशय अर्धरथी हो, ऐसा यदि गंगापुत्र भीष्म कहे तो कभी मिथ्या नहीं होगा, ऐसा जगत्का निश्चय रहनेसे मेरी सब जगत्में अपकीर्ति फैलेगी। विशेष करके आप कौरवोंके सदा अहितकारी कर्म कर रहे हो, परन्तु राजा दुर्योधन उसको नहीं जानते हैं। गुणके ऊपर द्वेष करके तुम जैसी मेरी बुराई करनेकी इच्छा करते हो, युद्धमें समान गुणोंसे युक्त उदार राजाओंके बीच भेद करनेकी इच्छासे कौन पुरुष इस प्रकार

दूसरोंको तेजहीन करता है? (१३-१५)

हे कौरव ! अवस्था, पके हुए केश, धन अथवा बन्धुबान्धवोंसे क्षत्रियोंकी महारथत्वकी संख्या कोई नहीं कर सकता है। क्षत्रिय बल, ब्राह्मण मन्त्र, वैश्य धन और शूद्र अवस्थाके क्रमसे बड़े तथा श्रेष्ठ कहके विख्यात होते हैं। परन्तु तुम केवल मोहसे युक्त और काम क्रोधमें आसक्त होकर अपनी इच्छाके अनुसार रथी और अतिरथी संख्याकी व्याख्या करके सबमें भेद उत्पन्न कर रहे हो। (१६-१८)

हे महाबाहो दुर्योधन ! तुम पूर्ण रीतिसे विचार करके इस दुष्ट अभिप्राय-

त्यज्यतां दुष्टभावोऽयं भीष्मः किल्बिषकृत्तव ॥ १९ ॥  
 भिन्ना हि सेना नृपते दुःसन्धेया भवत्युत ।  
 मौला हि पुरुषव्याघ्र किमु नाना समुत्थिताः ॥ २० ॥  
 एषां द्वैधं समुत्पन्नं योधानां युधि भारत ।  
 तेजोवधो नः क्रियते प्रत्यक्षेण विशेषतः ॥ २१ ॥  
 रथानां क्व च विज्ञानं क्व च भीष्मोऽल्पचेतनः ।  
 अहमावारयिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २२ ॥  
 आसाद्य माममोघेषुं गमिष्यन्ति दिशो दश ।  
 पाण्डवाः सहपञ्चालाः शार्दूलं वृषभा इव ॥ २३ ॥  
 क्व च युद्धं विमर्दो वा मन्त्रे सुव्याहृतानि च ।  
 क्व च भीष्मो गतवया मन्दात्मा कालचोदितः ॥ २४ ॥  
 एकाकी स्पर्धते नित्यं सर्वेण जगता सह ।  
 न चाऽन्यं पुरुषं कश्चिन्मन्यते मोघदर्शनः ॥ २५ ॥  
 श्रोतव्यं खलु वृद्धानामिति शास्त्रनिदर्शनम् ।

वाले भीष्मको शीघ्र ही परित्याग करो;  
 क्योंकि एकबार पृथक् होनेसे सेनाको  
 फिरसे जोड़ना बहुत ही कठिन हो  
 जावेगा । हे राजेन्द्र ! जो अनेक देशों-  
 से पृथक् पृथक् होकर सब राजा एक  
 ही कार्यके निमित्त यहांपर आके उप-  
 स्थित हुए हैं; उनकी बात तो दूर है,  
 भेद होनेसे मूल सेना भी, उत्साहरहि-  
 त हो जावेगी । हे भारत ! भीष्म इन  
 सम्पूर्ण योद्धाओं के संमुख ही हमें तेज  
 हीन कर रहे हैं; इससे युद्ध विषयमें  
 इन सैनिक पुरुषोंके हृदयमें अत्यन्त  
 संशय उत्पन्न हुआ है । (१९-२१)

हा ! कहां रथियोंका ज्ञान और  
 कहां अल्पबुद्धि भीष्म ! मैं ही अकेले

पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश करूंगा ।  
 शार्दूलके समीप आये हुए वृषभ आदि  
 पशुओंकी भांति पाण्डव और पाञ्चाल  
 योद्धा लोग अव्यर्थ - बाणोंको चलाने-  
 वाले मेरे संमुख आके दशों दिशामें  
 भाग जावेंगे । कहां युद्ध, शस्त्र, मन्त्र  
 और उत्तम वचन; और कहां बूढ़ा मन्दा-  
 त्मा कालप्रेरित भीष्म ? यह अकेले ही  
 सब जगतके सङ्ग युद्ध करनेकी अभि-  
 लाषा करता है और ऐसा असत्यदर्शी  
 होता है, कि किसीको भी पुरुष नहीं  
 समझता । (२२-२५)

शास्त्रमें ऐसी आज्ञा है, कि बूढ़ोंके  
 वचन सुनना उचित है, सो सब ठीक  
 है; परन्तु अति बृद्ध पुरुषोंके वचन

न त्वेव ह्यतिवृद्धानां पुनर्बाला हि ते मताः ॥ २६ ॥

अहमेको हनिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् ।

सुयुद्धे राजशार्दूल यशो भीष्मं गमिष्यति ॥ २७ ॥

कृतः सेनापतिस्त्वेष त्वया भीष्मो नराधिप ।

सेनापतौ यशो गन्ता न तु योधान्कथञ्चन ॥ २८ ॥

नाऽहं जीवति गाङ्गेये योत्स्ये राजन्कथञ्चन ।

हते भीष्मे तु योद्धास्मि सर्वैरेव महारथैः ॥ २९ ॥

भीष्म उवाच- समुद्यतोऽयं भारो मे सुमहान्सागरोपमः ।

धार्तराष्ट्रस्य संग्रामे वर्षपूगाभिचिन्तितः ॥ ३० ॥

तस्मिन्नभ्यागते काले प्रतप्ते लोमहर्षणे ।

मिथो भेदो न मे कार्यस्तेन जीवसि सूतज ॥ ३१ ॥

न ह्ययं त्वद्य विक्रम्य स्थवीरोऽपि शिशोस्तव ।

युद्धश्रद्धामहं छिन्त्यां जीवितस्य च सूतज ॥ ३२ ॥

जामदग्न्येन रामेण महाम्राणि विमुञ्चता ।

नहीं सुनने चाहिये; क्योंकि पाण्डितोंके विचारमें वह फिर बाल-भावको प्राप्त होजाते हैं। हे राजशार्दूल ! मैं अकेले ही इस युद्धमें पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाको मारूंगा; परन्तु यश भीष्महीको मिलेगा। हे राजेन्द्र ! तुमने इस भीष्मको सेनापति किया है, इससे यश सेनापतिहीमें गमन करता है; योद्धाओंका यश नहीं होता। इससे हे राजन् ! गङ्गानन्दन भीष्मके जीवित रहते, मैं किसी प्रकारसे भी युद्ध न करूंगा, भीष्मके मारे जानेपर सब महारथ वीरोंके सहित युद्धमें प्रवृत्त होऊंगा। (२६-२९)

भीष्म बोले, रे सूतपुत्र ! दुर्योधनने संग्रामके निमित्त इस समुद्रके समान

बड़ी सेनाका सम्पूर्ण भार मेरे ऊपर समर्पण किया है, मैं कई वर्षसे इसकी चिन्ता कर रहा था, इससे उस रोवेंको खड़े करनेवाले भयङ्कर युद्धका समय उपस्थित होनेपर आपसमें भेद करना मेरा कर्त्तव्य कर्म नहीं है, इसी निमित्त तू जीता बचा है, मैं बूढ़ा होकर भी बालकरूपी तुम्हारे ऊपर अपना पराक्रम प्रकाशित करके तुम्हारी युद्धकी लालसा और जीनेकी आशा मेट सकती हूँ; परन्तु इसी कारणसे मैंने पराक्रम प्रकाशित नहीं किया। (३०-३२)

रे सूतपुत्र ! तू मेरा क्या करेगा, तेरे गुरु परशुरामजी अपने सब महा अस्त्र-शस्त्रोंको चला कर मुझे पराजित

न मे व्यथा कृता काचित्त्वं तु मे किं करिष्यसि ३३ ॥  
 कामं नैतत्प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम् ।  
 वक्ष्यामि तु त्वां सन्तप्तो निहीन कुलपांसन ॥ ३४ ॥  
 समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिराजस्वयंवरे ।  
 निर्जित्यैकरथेनैव याः कन्यास्तरसा हताः ॥ ३५ ॥  
 ईदृशानां सहस्राणि विशिष्टानामथो पुनः ।  
 मयैकेन निरस्तानि ससैन्यानि रणाजिरे ॥ ३६ ॥  
 त्वां प्राप्य वैरपुरुषं कुरूणामनयो महान् ।  
 उपस्थितो विनाशाय यतस्व पुरुषो भव ॥ ३७ ॥  
 युद्धयस्व समरे पार्थ येन विस्पर्धसे सह ।  
 द्रक्ष्यामि त्वां विनिर्मुक्तमस्माद्युद्धात्सुदुर्मते ॥ ३८ ॥  
 तमुवाच ततो राजा धार्तराष्ट्रः प्रतापवान् ।  
 मां समीक्षस्व गाङ्गेय कार्यं हि महदुच्यतम् ॥ ३९ ॥  
 चिन्त्यतामिदमेकाग्रं मम निःश्रेयसं परम् ।  
 उभावपि भवन्तौ मे महत्कर्म करिष्यतः ॥ ४० ॥

नहीं कर सके । रे दुष्ट पुरुषाधम ! स-  
 त्पुरुष लोग कभी अपने मुंहसे अपनी  
 प्रशंसा नहीं करते, परन्तु मैं क्रुद्ध होकर  
 तुझसे कहता हूँ; काशिराजके स्वयंवरमें  
 इकट्ठे हुए सम्पूर्ण क्षत्रिय राजाओंको  
 मैंने एक रथसे ही जीतकर कन्याओंको  
 बलपूर्वक हरण किया था और भी  
 रणभूमिमें ऐसे सहस्रों तथा इनसे भी  
 श्रेष्ठ सेनाओंके सहित अनेक क्षत्रिय  
 राजाओंको अकेले ही पराजित किया  
 था । (३३-३६)

इससे साक्षात् वैररूपी तुझे पाकर  
 कौरवोंमें बहुत बड़ा अनर्थ उपस्थित  
 हुआ है; इस समय शत्रुओंके नाशके

निमित्त यत्न कर; पुरुष बन । रे नीच-  
 बुद्धि कर्ण ! जिसके सङ्ग तू सदा युद्धकी  
 अभिलाषा किया करता है, उस अर्जुनके  
 संग रण भूमिमें युद्ध कर । मैं इस  
 युद्धमें तुझे इकवारगी मारा हुआ देखू-  
 गा । (३७-३८)

अनन्तर प्रतापी राजा दुर्योधनने  
 गङ्गापुत्र भीष्मसे कहा; कि हे पितामह !  
 मेरी ओर दृष्टि कीजिये, देखिये-  
 यह बहुत बड़ा कार्य उपस्थित हुआ  
 है; इससे जिसमें मेरा मङ्गल होवे, आप  
 एकाग्रचित्त होकर उसीका अनुष्ठान  
 करें । आपलोग दोनों ही हमारे बहुत  
 बड़े कार्य करेंगे । अब मैं शत्रुओंके

भूयश्च श्रोतुमिच्छामि परेषां रथसत्तमान् ।

ये चैवाऽतिरथास्तत्र ये चैव रथयूथपाः ॥ ४१ ॥

बलाबलमभिप्राणां श्रोतुमिच्छामि कौरव ।

प्रभातायां रजन्यां वै इदं युद्धं भविष्यति ॥ ४२ ॥ [५७०१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि

भीष्मकर्णसंवादे अष्टषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

भीष्म उवाच- एते रथास्तवाऽऽख्यातास्तथैवाऽतिरथा नृप ।

ये चाऽप्यर्द्धरथा राजन्पाण्डवानामतः शृणु ॥ १ ॥

यदि कौतूहलं तेऽद्य पाण्डवानां बले नृप ।

रथसंख्यां शृणुष्व त्वं सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ २ ॥

स्वयं राजा रथोदारः पाण्डवः कुन्तिनन्दनः ।

अग्निवत्समरे तात चरिष्यति न संशयः ॥ ३ ॥

भीमसेनस्तु राजेन्द्र रथोऽष्टगुणसम्मितः ।

न तस्याऽस्ति समो युद्धे गदया सायकैरपि ॥ ४ ॥

नागायुतबलो भानी तेजसा न स मानुषः ।

माद्रीपुत्रौ च रथिनौ द्वावेव पुरुषर्षभौ ॥ ५ ॥

रथसत्तम पुरुषोंके नाम सुननेकी इच्छा करता हूं; वहांपर जो सब अतिरथी और यूथपति हैं उनका वृत्तान्त वर्णन कीजिये । हे कौरव ! मैं शत्रुओंके बलाबलको जाननेकी अभिलाषा करता हूं, क्योंकि रात्रिके बीतनेपर सबेरे ही यह युद्ध आरम्भ होगा । (३९—४२)

एकसौ अठसठ अध्याय समाप्त । [ ५७०१ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ उत्तर अध्याय ।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र ! तुम्हारे इन सब रथी अतिरथी और अर्धरथियोंका वर्णन किया गया; अब पाण्डवोंके रथी आदिका वर्णन सुनो । हे राजन् !

पाण्डवोंके बलके जाननेकी तुम्हे इच्छा है, तो सब राजाओंके सहित उन लोगोंकी रथ संख्या सुनो । (१-२)

हे तात ! स्वयं रथश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर युद्धमें अग्निके समान भ्रमण करेंगे; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । हे राजन् ! युद्धमें भीमसेन आठगुणा रथी है; गदा अथवा बाण चलानेमें कोई भी उसके समान नहीं; वह दस हजार हाथीके समान बलवान् अभिमानी और तेजमें भी मनुष्योंसे बढकर है । पुरुष श्रेष्ठ दोनों माद्री-पुत्र रथी और रूप तथा तेजमें साक्षात्

अश्विनाविव रूपेण तेजसा च समन्वितौ ।  
 एते चमूमुखगताः स्मरन्तः क्लेशमुत्तमम् ॥ ६ ॥  
 रुद्रवत्प्रचरिष्यन्ति तत्र मे नाऽस्ति संशयः ।  
 सर्व एव महात्मानः शालस्तंभा इवोद्गताः ॥ ७ ॥  
 प्रादेशेनाऽधिकाः पुम्भिरन्यैस्ते च प्रमाणतः ।  
 सिंहसंहननाः सर्वे पाण्डुपुत्रा महाबलाः ॥ ८ ॥  
 चरितब्रह्मचर्याश्च सर्वे तात तपस्विनः ।  
 हीमन्तः पुरुषव्याघ्रा व्याघ्रा इव बलोत्कटाः ॥ ९ ॥  
 जवे प्रहारे सम्मर्दे सर्व एवाऽतिमानुषाः ।  
 सर्वैर्जिता महीपाला दिग्जये भरतर्षभ ॥ १० ॥  
 न चैषां पुरुषाः केचिदायुधानि गदाः शरान् ।  
 विषहन्ति सदा कर्तुमधिज्यान्त्यपि कौरव ॥ ११ ॥  
 उद्यतां वा गदा गुर्वीः शरान्वा क्षेममाहवे ।  
 जवे लक्ष्यस्य हरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे ॥ १२ ॥  
 बालैरपि भवन्तस्तैः सर्व एव विशेषिताः ।  
 एतत्सैन्यं समासाद्य सर्व एव बलोत्कटाः ॥ १३ ॥  
 विध्वंसयिष्यन्ति रणे मा स्म तैः सह सङ्गमः ।

अश्विनीकुमारके समान हैं; ये सेनाके सम्मुख आकर सम्पूर्ण अपने दुःख तथा क्लेशोंको स्मरण करके रुद्रके समान निस्सन्देह शत्रुसेनामें भ्रमण करेंगे । ६-७

पाण्डुपुत्र सब ही महाबली, महात्मा, सिंहके समान शरीरवाले, वृक्षके समान ऊंचे और दूसरे पुरुषोंसे उंचाईमें अधिक हैं; हे तात ! ये पुरुषसिंह सब ही ब्रह्मचर्यव्रतके अनुष्ठान करनेवाले, तेजस्वी, लज्जाशील सिंहके समान बलवान्, वेग और शस्त्रोंके प्रहारमें असाधारण पुरुष हैं, हे तात ! इन लोगोंने दिग्वि-

जयमें सब राजाओंको पराजित किया था । युद्धमें इनके शस्त्र, गदा और बाणोंको सह सके ऐसे पुरुष ही नहीं दीख पाते हैं । बाणोंको सहना तो दूर है, इसके धनुषपर रोदा चढाना, भारी गदा आदि उठाने अथवा शस्त्रोंके चला-नेमें भी कोई समर्थ नहीं है । (७-१२)

बालक अवस्था में भी वे लोग वेग, लक्ष्य हरण, भोजन, तथा धूलि-फेंकने और खेल करनेमें तुम सब लोगोंसे अधिक थे । वे सब ही बलवान् हैं, युद्धमें तुम्हारी सेनाका अवश्य नाश

एकैकशस्ते सम्मर्दे हन्युः सर्वान्महीक्षितः ॥ १४ ॥  
 प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र राजसूये यथाऽभवत् ।  
 द्रौपद्याश्च परिक्लेशं व्यूते च परुषा गिरः ॥ १५ ॥  
 ते स्मरन्तश्च संग्रामे चरिष्यन्ति च रुद्रवत् ।  
 लोहिताक्षो गुडाकेशो नारायणसहायवान् ॥ १६ ॥  
 उभयोः सेनयोर्वीरो रथो नाऽस्तीति तादृशः ।  
 नहि देवेषु वा पूर्व मनुष्येषूरगेषु च ॥ १७ ॥  
 राक्षसेष्वथ यक्षेषु नरेषु कुत एव तु ।  
 भूतोऽथवा भविष्यो वा रथः कश्चिन्मया श्रुतः ॥ १८ ॥  
 समायुक्तो महाराज रथः पार्थस्य धीमतः ।  
 वासुदेवश्च संयन्ता योद्धा चैव धनञ्जयः ॥ १९ ॥  
 गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं ते चाऽश्वा वातरंहसः ।  
 अभेद्यं कवचं दिव्यमक्षय्यौ च महेषुधी ॥ २० ॥  
 अस्त्रग्रामश्च माहेन्द्रो रौद्रः कौबेर एव च ।  
 याम्यश्च वारुणश्चैव गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः ॥ २१ ॥  
 वज्रादीनि च मुख्यानि नानाप्रहरणानि च ।

करेंगे; इससे उनके सङ्ग युद्ध न करना  
 ही उत्तम है । हे राजेन्द्र ! वे लोग जो  
 अकेले ही सब राजाओंको मार सकते  
 हैं, सो राजसूय यज्ञमें तुमने देखा ही  
 था । वे लोग द्रौपदीके क्लेश और जु-  
 एके समयके कठोर वचनोंको स्मरण  
 करके साक्षात् रुद्रके समान तुम्हारी  
 सेनामें भ्रमण करेंगे । (१२-१६)

कृष्णकी सहायतासे युक्त, लालनेत्र  
 वाला जो अर्जुन है उसके समान दोनों  
 सेनाके बीच कोई भी वीर विद्यमान  
 नहीं है; मनुष्यकी बात ही क्या है,  
 पहिले देवता, यक्ष, राक्षस और नागों-

के बीचमें भी कोई उसके समान महा-  
 रथी हुआ था, अथवा भविष्यकालमें  
 होगा, मैंने ऐसी बात कहीं नहीं  
 सुनी है । (१६-१८)

हे राजेन्द्र ! बुद्धिमान् अर्जुनका  
 कपिध्वजासे युक्त रथ, कृष्ण सारथी,  
 अर्जुन योद्धा, दिव्य धनुष्य गाण्डीव,  
 वायुके समान चलनेवाले रथके घोड़े,  
 अभेद्य कवच, अक्षय दोनों तूणीर, इन्द्र,  
 रुद्र, कुबेर, वरुण और यम सम्बन्धीय  
 सम्पूर्ण अस्त्र और भयङ्कर गदा तथा  
 वज्र आदि अनेक प्रकारके शस्त्र एकत्रि-  
 त हुए हैं । इससे जिस पुरुषने एक ही

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ॥ २२ ॥

हतान्येकरथेनाऽऽजौ कस्तस्य सहशो रथः ।

एष हन्याद्वि संरम्भी बलवान्सत्यविक्रमः ॥ २३ ॥

तव सेनां महाबाहुः स्वां चैव परिपालयन् ।

अहं चैनं प्रत्युदियामाचार्यो वा धनञ्जयम् ॥ २४ ॥

न तृतीयोऽस्ति राजेन्द्र सेनयोरुभयोरपि ।

य एनं शरवर्षाणि वर्षन्तमुदियाद्रथी । ॥ २५ ॥

जीमूत इव घर्मान्ते महावातसमीरितः ।

समायुक्तस्तु कौन्तेयो वासुदेवसहायवान् ।

तरुणश्च कृती चैव जीर्णावावाप्तुभावपि ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच-एतच्छ्रुत्वा तु भीष्मस्य राज्ञां दध्वंसिरे तदा ।

काञ्चनाङ्गदिनः पीना भुजाश्चन्दनरूषिताः ॥ २७ ॥

मनोभिः सह संवेगैः संस्मृत्य च पुरातनम् ।

सामर्थ्यं पाण्डवेयानां यथा प्रत्यक्षदर्शनात् ॥ २८ ॥ [५७२९]

इति श्रीमहाभारते शतसहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणे रथातिरथसंख्यानपर्वणि

पाण्डवरथातिरथसंख्यायामूनसप्तत्यधिकशततमाऽध्यायः ॥ १६९ ॥

रथसे हिरण्यपुरवासी सहस्रों दानवोंको मारा था उसके समान रथी और दूमरा कौन हो सकता है ? ( १८-२३ )

यह अत्यन्त बलशाली, सत्य पराक्रमी; अपनी सेनाकी रक्षा करता हुआ तुम्हारी सेनाका नाश करेगा । हे राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य अथवा मैं, ये ही दो पुरुष अर्जुनसे युद्ध करनेमें समर्थ हो सकते हैं । इसके अतिरिक्त दोनों सेनाके बीच ऐमा कोई तीसरा रथी नहीं है, जो बाणोंकी वर्षा करनेवाले इस महावीर अर्जुनके संमुख खड़ा हो सके । ग्रीष्मकालके अन्तमें महा वायुसे प्रेरित हुए

मेघकी भांति कृष्णकी सहायतासे युक्त सव्यसाची अर्जुन युद्धके निमित्त सज्जित हो रहा है; वह तरुण और कृतास्त्र है और हम लोग दोनों ही बूढ़े हैं । ( २३-२६ )

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय मैं भीष्मके ऐसे वचन सुनकर संदेह-युक्त चित्त से पाण्डवोंके पुराने सामर्थ्य को फिर प्रत्यक्ष देखनेकी भांति पूर्ण रीतिसे स्मरण करके, राजाओंकी सुवर्ण के भूषणोंसे भूषित और चन्दन चर्चित भुजाएं शिथिल होगईं । ( २७-२८ )

एकसौ उनत्तर अध्याय समाप्त । [५७२९]



भीष्म उवाच— द्रौपदेया महाराज सर्वे पञ्च महारथाः ।  
 वैराटिरुत्तरश्चैव रथोदारो मतो मम ॥ १ ॥  
 अभिमन्युर्महाबाहू रथयूथपयूथपः ।  
 समः पार्थेन समरे वासुदेवेन चाऽरिहा ॥ २ ॥  
 लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च मनस्वी च दृढव्रतः ।  
 संस्मरन्वै परिक्लेशं स्वपितुर्विक्रमिष्यति ॥ ३ ॥  
 सात्यकिर्माधवः शूरो रथयूथपयूथपः ।  
 एष वृष्णिप्रवीराणाममर्षी जितसाध्वसः ॥ ४ ॥  
 उत्तमौजास्तथा राजन्रथोदारो मतो मम ।  
 युधामन्युश्च विक्रान्तो रथोदारो मतो मम ॥ ५ ॥  
 एतेषां बहुसाहस्रा रथा नागा हयास्तथा ।  
 योत्स्यन्ते ते तनूस्त्यक्त्वा कुन्तीपुत्रप्रियेप्सया ॥ ६ ॥  
 पाण्डवैः सह राजेन्द्र तव सेनासु भारत ।  
 अग्निमारुतवद्राजन्नाह्वयन्तः परस्परम् ॥ ७ ॥  
 अजेयौ समरे वृद्धौ विराटद्रुपदौ तथा ।  
 महारथौ महावीर्यौ मतौ मे पुरुषर्षभौ ॥ ८ ॥  
 वयोवृद्धावपि हि तौ क्षत्रधर्मपरायणौ ।

उद्योगपर्वमें एकसौ सत्तर अध्याय ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! द्रौपदीके पाँचों पुत्र महारथ हैं; विराटपुत्र उत्तर भी मेरी समझमें रथश्रेष्ठ हैं । महाबाहु अभिमन्यु रथयूथपतियोंका भी यूथपति है; युद्धमें अर्जुन और कृष्णके समान शत्रुओंका नाश करनेवाला, शीघ्र शस्त्र चलानेवाला, मनस्वी और दृढव्रती यह महावीर पुरुष पिताके दुःख और क्लेशोंको स्मरण करके अपना पराक्रम प्रकाशित करेगा । (१-३)

हे राजन् ! वृष्णिवंशियोंमें श्रेष्ठ भय-

रहित सात्यकी रथयूथपतियोंका भी यूथपति है और उत्तमौजा तथा बलवान् युधामन्यु भी मेरे विचारमें रथश्रेष्ठ हैं । हे भारत ! इन लोगोंके कई हजार रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेना है, कुन्ती पुत्रोंके हितकी इच्छासे ये लोग अपना प्राण त्याग करके भी युद्ध करेंगे । पाण्डवोंके सङ्ग मिलकर परस्पर आवाहन करते हुए अग्नि और वायुकी भांति ये लोग तुम्हारी सेनामें भ्रमण करेंगे । (४-७)

हे राजेन्द्र ! युद्धमें अपराजित महा पराक्रमी बूढ़े राजा विराट और द्रुपदभी

यतिष्येते परं शक्त्या स्थितौ वीरगते पथि ॥ ९ ॥  
 सम्बन्धकेन राजेन्द्र तौ तु वीर्यवलान्वयात् ।  
 आर्यवृत्तौ महेष्वासौ स्नेहवीर्यसितावुभौ ॥ १० ॥  
 कारणं प्राप्य तु नराः सर्व एव महाभुजाः ।  
 शूरा वा कातरा वाऽपि भवन्ति कुरुपुङ्गव ॥ ११ ॥  
 एकायनगतावेतौ पार्थिवौ दृढधन्विनौ ।  
 प्राणांस्त्यक्त्वा परं शक्त्या घटितारौ परन्तप ॥ १२ ॥  
 पृथगक्षौहिणीभ्यां तावुभौ संयति दारुणौ ।  
 सम्बन्धिभावं रक्षन्तौ महत्कर्म करिष्यतः ॥ १३ ॥  
 लोकवीरौ महेष्वासौ त्यक्तात्मानौ च भारत ।  
 प्रत्ययं परिरक्षन्तौ महत्कर्म करिष्यतः ॥ १४ ॥ [ ५७४३ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि

रथातिरथसंख्यानपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

भीष्म उवाच— पञ्चालराजस्य सुतो राजन्परपुरज्जयः ।

शिखण्डी रथमुख्यो मे मतः पार्थस्य भारत ॥ १ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे नाशयन्पूर्वसंस्थितम् ।

मेरे मतमें महारथ हैं; क्योंकि क्षत्रिय-  
 धर्मसे युक्त वे दोनों राजा बूढ़ होनेपर  
 भी अपनी शक्तिके अनुसार वीरोंके  
 गमन करने योग्य मार्गमें स्थित होके  
 यत्नपूर्वक युद्ध करेंगे। हे राजन् ! वे  
 दोनों उत्तम व्रत करनेवाले महाधनुर्धारी  
 दोनोंही विवाह और पाण्डवके सम्ब-  
 न्धके कारण स्नेह और पराक्रमसे बद्ध  
 हैं। (८-१०)

हे राजन् ! कारण पानेसे सम्पूर्ण  
 महाबाहुपुरुष ही शूर और कातर हो-  
 जाते हैं; परन्तु अपने प्राणोंकी आशा-  
 को छोड़ कर ये दोनों राजा परम शक्ति-

के सहित युद्धमें प्रवृत्त होंगे। हे परन्तप !  
 महा धनुर्धारी लोकमें विख्यात दारुण  
 कर्म करनेवाले ये दोनों राजा अपने  
 जीनेकी इच्छा त्याग कर सम्बन्धिभाव  
 और विश्वासकी रक्षा करते हुए पृथक्  
 पृथक् अक्षौहिणी सेनाके सहित बहुत  
 बड़े युद्धके कर्म करेंगे। (११-१४)

एकसौ सत्तर अध्याय समाप्त । [ ५७४३ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ इकहत्तर अध्याय ।

भीष्म बोले, हे भारत ! मेरे विचारमें  
 पञ्चालराजपुत्र पराये देशका जीतने-  
 वाला शिखण्डी युधिष्ठिरकी सेनामें एक  
 मुख्य रथी है। यह पुरुष पूर्व जन्मके

परं यशो विप्रथयंस्तव सेनासु भारत ॥ २ ॥  
 एतस्य बहुलाः सेनाः पञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ।  
 तेनाऽसौ रथवंशेन महत्कर्म करिष्यति ॥ ३ ॥  
 धृष्टद्युम्नश्च सेनानीः सर्वसेनासु भारत ।  
 मतो मेऽतिरथो राजन्द्रोणाशिष्यो महारथः ॥ ४ ॥  
 एष योत्स्यति संग्रामे सूदयन्वै परान्रणे ।  
 भगवानिव संकुद्रः पिनाकी युगसंक्षये ॥ ५ ॥  
 एतस्य तद्रथानीकं कथयन्ति रणप्रियाः ।  
 बहुत्वात्सागरप्रख्यं देवानामिव संयुगे ॥ ६ ॥  
 क्षत्रधर्मा तु राजेन्द्र मतो मेऽर्धरथो नृप ।  
 धृष्टद्युम्नस्य तनयो बाल्यान्नाऽतिकृतश्रमः ॥ ७ ॥  
 शिशुपालसुतो वीरश्चेदिराजो महारथः ।  
 धृष्टकेतुर्महेष्वासः सम्बन्धी पाण्डवस्य ह ॥ ८ ॥  
 एष चेदिपतिः शूरः सह पुत्रेण भारत ।  
 महारथानां सुकरं महत्कर्म करिष्यति ॥ ९ ॥  
 क्षत्रधर्मरतो मह्यं मतः परपुरञ्जयः ।

स्त्री स्वभावको त्याग करके युद्धमें तु-  
 म्हारी सेनाके बीच परम यशका विस्तार  
 करता हुआ युद्ध करेगा । इसके सङ्ग  
 पाञ्चाल और प्रभद्रक प्रभृति बहुत सेना  
 हैं, उन रथसमूहोंके सहित यह वीरवर  
 युद्धमें बहुत बड़े कार्य करेगा । (१—२)

हे राजन् ! पाण्डवोंकी सब सेनाके  
 बीच सेनापति द्रोणाचार्यका शिष्य  
 धृष्टद्युम्न मेरी समझ में अतिरथी है; यह  
 वीर सृष्टिके अन्तमें अत्यन्त क्रोधमें  
 भरे हुए साक्षात् पिनाकधारी रुद्रकी  
 भांति संग्राममें शत्रुओंको पीडित  
 करता हुआ युद्ध करेगा । युद्धको प्रिय

जाननेवाले योद्धा लोग देवताओंकी  
 सेनाके समान संग्राममें इसकी रथसे  
 युक्त सेनाको समुद्रकी भांति वर्णन करते  
 हैं । (४—६)

हे राजेन्द्र ! धृष्टद्युम्नका पुत्रक्षत्रधर्मा  
 बाल स्वभावसे युक्त होनेके कारण अ-  
 धिक परिश्रम नहीं कर सकता, इस  
 निमित्त उसे मैं अर्धरथीकी संख्यामें  
 गिनता हूँ । हे भारत ! महाधनुर्धारी,  
 महारथ शिशुपालपुत्र चंदिराज धृष्टकेतु  
 युधिष्ठिरका सम्बन्धी है । यह पराक्रमी  
 चंदिराज पुत्रके महित महारथोंको करनेमें  
 सुकर युद्धके कठिन कार्यको करेगा । हे

क्षत्रदेवस्तु राजेन्द्र पाण्डवेषु रथोत्तमः ॥ १० ॥  
 जयन्तश्चाऽमितौजाश्च सत्यजित् महारथः ।  
 महारथा महात्मानः सर्वे पाञ्चालसत्तमाः ॥ ११ ॥  
 योत्स्यन्ते समरे तात संरब्धा इव कुञ्जराः ।  
 अजो भोजश्च विक्रान्तौ पाण्डवार्थं महारथौ ॥ १२ ॥  
 योत्स्येते बलिनौ शूरौ परं शक्त्या क्षयिष्यतः ।  
 शीघ्रास्त्राश्चित्रयोद्धारः कृतिनो दृढविक्रमाः ॥ १३ ॥  
 केकयाः पञ्च राजेन्द्र भ्रातरो दृढविक्रमाः ।  
 सर्वे चैव रथोदाराः सर्वे लोहितकध्वजाः ॥ १४ ॥  
 काशिकः सुकुमारश्च नीलो यश्चाऽपरो नृप ।  
 सूर्यदत्तश्च शङ्खश्च मदिराश्वश्च नामतः ॥ १५ ॥  
 सर्व एव रथोदाराः सर्वे चाऽऽहवलक्षणाः ।  
 सर्वास्त्रविदुषः सर्वे महात्मानो मता मम ॥ १६ ॥  
 वार्धक्षेमिर्महाराज मतो मम महारथः ।  
 चित्रायुधश्च नृपतिर्मतो मे रथसत्तमः ॥ १७ ॥  
 स हि संग्रामशोभी च भक्तश्चापि किरीटिनः ।  
 चेकितानः सत्यधृतिः पाण्डवानां महारथौ ।

राजेन्द्र ! पाण्डवोंके बीच क्षत्रियधर्ममें रत, पराये देशको जीतनेवाले क्षत्रदेव मेरे मतमें रथश्रेष्ठ हैं । (७—१०)

पाञ्चाल सत्तम जयन्त, अमितौजा, और महारथ सत्यजित् ये सब ही महात्मा और महारथ हैं; हे तात ! रणभूमिमें ये लोग क्रुद्ध हुए मतवारे हाथियों की भांति युद्ध करेंगे । शीघ्र शस्त्र चलाने वाले महाबली अत्यन्त पराक्रमी अज और भोज ये दोनों महारथ पाण्डवोंके निमित्त अपनी परम शक्तिके सहित युद्ध करके शत्रुओंका नाश करेंगे । (११-१३)

हे राजन् ! युद्धमें भय रहित केकय-राजके पांचों पुत्र रथश्रेष्ठ और लाल ध्वजाओंसे युक्त हैं । हे राजन् ! काशिक, सुकुमार, नील, सूर्यदत्त, शङ्ख और मदिराश्व ये लोग भी मुख्य रथी हैं; ये युद्ध तथा सब शस्त्रोंको जाननेवाले और महात्मा हैं । हे महाराज ! वार्धक्षेमिको भी मैं महारथ समझता हूँ और चित्रायुध को रथश्रेष्ठ मानता हूँ, क्योंकि वे लोग युद्धमें शोभित अर्जुनके भक्त हैं । चेकितान और सत्यधृति ये भी पाण्डवोंके महारथ हैं; ये दोनों पुरुषसिंह मेरे

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्रौ रथोदारौ मतौ मम ॥ १८ ॥  
 व्याघ्रदत्तश्च राजेन्द्र चन्द्रसेनश्च भारत ।  
 मतौ मम रथोदारौ पाण्डवानां न संशयः ॥ १९ ॥  
 सेनाबिन्दुश्च राजेन्द्र क्रोधहन्ता च नामतः ।  
 यः समो वालुदेवेन भीमसेनेन वा विभो ॥ २० ॥  
 स योत्स्यति हि विक्रम्य समरे तव सैनिकैः ।  
 मां च द्रोणं कृपं चैव यथा सम्मन्यते भवान् ॥ २१ ॥  
 तथा स समरश्लाघी मन्तव्यो रथसत्तमः ।  
 काश्यः परमश्लाघास्त्रः श्लाघनीयो नरोत्तमः ॥ २२ ॥  
 रथ एकगुणो मह्यं ज्ञेयः परपुरञ्जयः ।  
 अयं च युधि विक्रान्तो मन्तव्योऽष्टगुणो रथः ॥ २३ ॥  
 सत्यजित्समरश्लाघी द्रुपदस्याऽऽत्मजो युवा ।  
 गतः सोऽतिरथत्वं हि धृष्टद्युम्नेन सम्मितः ॥ २४ ॥  
 पाण्डवानां यशस्कासः परं कर्म करिष्यति ।  
 अनुरक्तश्च शूरश्च रथोऽयमपरो महान् ॥ २५ ॥  
 पाण्डयराजो महावीर्यः पाण्डवानां धुरन्धरः ।  
 दृढधन्वा महेष्वासः पाण्डवानां महारथः ॥ २६ ॥

मतमें रथश्रेष्ठ हैं । (१४—१८)

हे राजेन्द्र ! व्याघ्रदत्त और चन्द्रसेन ये भी पाण्डवोंके रथियोंमें उत्तम हैं इसमें कुछ संदेह नहीं है । सेनाबिन्दु और क्रोधहन्ता नाम वीर जो भीमसेन और कृष्णके समान हैं, वे भी अपना पराक्रम प्रकाशित करके तुम्हारी सेनासे युद्ध करेंगे । हे राजन् ! तुम द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और मुल्लको जैसा समझते हो, रथसत्तम उस वीरवर को भी वैसा ही समझो । (१९—२२)

पराये देशको जीतनेवाले प्रशंसाके

योग्य पुरुषोंमें श्रेष्ठ काशिराज मेरे मतमें एक रथी हैं और द्रुपदपुत्र पराक्रमी युवा पुरुष सत्यजित् आठ गुणा रथी हैं; क्योंकि धृष्टद्युम्नके समान होनेसे वह अतिरथित्व पदके योग्य हुए हैं और यश पानेकी इच्छासे पाण्डवोंके बहुत बड़े युद्धका कार्य करेंगे । महाबलवान् पाण्डयराज पाण्डवोंके एक बहुत बड़े रथी हैं, ये उन लोगोंके अनुरक्त हैं और पराक्रमी भी हैं; इससे ये भी युद्धमें अपना पराक्रम प्रकाशित करेंगे । महा धनुर्धारी दृढधन्वा पाण्डवोंकी सेनामें

श्रेणिमान्कौरवश्रेष्ठ वसुदानश्च पार्थिवः ।

उभावेतावतिरथौ मनौ परपुरञ्जयौ ॥ २७ ॥ [ ५७७० ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि

रथातिरथसंख्यानपर्वणि एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

भीष्म उवाच— रोचमानो महाराज पाण्डवानां महारथः ।

योत्स्यतेऽन्नरवत्संख्ये परसैन्येषु भारत ॥ १ ॥

पुरुजित्कुन्तिभोजश्च महेष्वासो महाबलः ।

मातुलो भीमसेनस्य स च अतिरथो मतः ॥ २ ॥

एष वीरो महेष्वासः कृती च निपुणश्च ह ।

चित्रयोधी च शक्तश्च मतो मे रथपुङ्गवः ॥ ३ ॥

स योत्स्यति हि विक्रम्य मयवानिव दानवैः ।

योधा ये चाऽस्य विख्याताः सर्वेयुद्धविशारदाः ॥ ४ ॥

भागिनेयकृते वीरः स करिष्यति सङ्गरे ।

सुमहत्कर्म पाण्डूनां स्थितः प्रियहिते रतः ॥ ५ ॥

भैमसेनिर्महाराज हैडिम्बो राक्षसेश्वरः ।

मतो मे बहुमायावी रथयूथपयूथपः ॥ ६ ॥

एक महारथ योद्धा है । हे राजेन्द्र !  
कौरवश्रेष्ठ! शत्रुओंके नगरोंके जीतनेवाले  
श्रेणिमान् और राजा वसुदान दोनोंही  
अतिरथीकी गिनतीमें हैं । (२२-२७)

एकसौ इकत्तर अध्याय समाप्त । [ ५७७० ]

उद्योगपर्वमें एकसौ बाहत्तर अध्याय ।

भीष्म बोले, हे महाराज ! पाण्डवों-  
के महारथ रोचमान युद्धमें शत्रु सेनाके  
बीच देवके समान संग्राम करेंगे । भीम-  
सेनके मामा धनुर्धारी महाबल कुन्ति-  
भोज और पुरुजित् मेरे विचारमें अति-  
रथी हैं । इस रथ-सत्तम वीर पुरुषको  
मैं अत्यन्त कृतास्त्र युद्धमें निपुण और

समर्थ समझता हूँ । हे भारत ! इन्द्रने  
जैसे दानवोंमें युद्ध किया था, वह वैसे  
ही बल और पराक्रम प्रकाशित करके  
युद्ध करेंगे । उनके जो सब विख्यात  
सैनिक वीर योद्धा हैं, वे भी सब युद्धके  
कार्यमें निपुण हैं, इससे पाण्डवोंके प्रि-  
य और हित कार्यको करनेके निमित्त  
स्थित होकर यह बरिवर युद्धमें अत्यन्त  
बड़े कार्य करेंगे । (१-५)

हे महाराज! भीमसेनका पुत्र हिडिम्बा  
के गर्भसे उत्पन्न हुआ राक्षसेन्द्र घटो-  
त्कच बहुत ही मायावी और रथयूथप-  
तियोंका भी यूथपति है; वह युद्धको

योत्स्यते समरे तात मायावी समरप्रियः ।  
 ये चाऽस्य राक्षसा वीराः सचिवा वशवर्तिनः ॥ ७ ॥  
 एते चाऽन्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।  
 समेताः पाण्डवस्याऽर्थे वासुदेवपुरोगमाः ॥ ८ ॥  
 एते प्राधान्यतो राजन्पाण्डवस्य महात्मनः ।  
 रथाश्चाऽतिरथाश्चैव ये चाऽन्येर्धरथा नृप ॥ ९ ॥  
 नेष्यन्ति समरे सेनां भीमां यौधिष्ठिरीं नृप ।  
 महेन्द्रेणैव वीरेण पाल्यमानां किरीटिना ॥ १० ॥  
 तैरहं समरे वीर मायाविद्विर्जयैषिभिः ।  
 योत्स्यामि जयमाकांक्षन्नथवा निधनं रणे ॥ ११ ॥  
 वासुदेवं च पार्थ च चक्रगाण्डीवधारिणौ ।  
 सन्ध्यागताविवाऽर्केन्दू समेष्येते रथोत्तमौ ॥ १२ ॥  
 ये चैव ते रथोदाराः पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।  
 सहसैन्यानहं तांश्च प्रतीयां रणमूर्धनि ॥ १३ ॥

एते रथाश्चाऽतिरथाश्च तुभ्यं यथाप्रधानं नृप कीर्तिता मया ।

तथाऽपरे येऽर्धरथाश्च केचित्तथैव तेषामपि कौरवेन्द्र ॥ १४ ॥

चाहनेवाला, मायावी और उसके वशमें रहनेवाले जो सब बलवान् राक्षस उसके सहायक हैं, वे सब संग्राममें महाघोर युद्ध करेंगे। ये सब लोग और दूसरे बहुत से राजा श्रीकृष्णको आगे करके पाण्डवों के कार्यके निमित्त इकट्ठे हुए हैं। (६-८)

हे राजन्! महात्मा युधिष्ठिरकी सेना में रथी, अतिरथी और अर्धरथी जो सब पुरुष हैं; उन सबमें कृष्ण ही मुख्य हैं; यह इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनसे रक्षित युधिष्ठिरकी महासेनाको युद्ध के निमित्त आगे बढावेंगे। हे वीर! माया जाननेवाले और जयकी

इच्छा करनेवाले योद्धाओंके सहित मैं विजय अथवा मरनेकी अभिलाषा करके युद्ध करूंगा। चक्र और गाण्डीवधारी रथश्रेष्ठ कृष्ण और अर्जुन का सन्ध्या कालके सूर्य और चन्द्रमाके समान एक ही स्थानपर एकत्र होनेपर भी मैं तुम्हारे निमित्त उन लोगोंके सम्मुख युद्धके वास्ते गमन करूंगा और युधिष्ठिर के दूमेर जो सब रथश्रेष्ठ सेनापति हैं, अपनी सेनाके सहित उनके सङ्ग भी मैं युद्ध करूंगा। (९-१३)

हे राजन्! प्रधानताके अनुसार पाण्डवोंके येही सब रथी, अतिरथी और

अर्जुनं वासुदेवं च ये चाऽन्ये तत्र पार्थिवाः ।  
 सर्वास्तान्वारयिष्यामि यावद् द्रक्ष्यामि भारत ॥१५॥  
 पाश्चात्यं तु महाबाहो नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।  
 उद्यतेषुमथो हृष्टा प्रतियुध्यन्तमाहवे ॥ १६ ॥  
 लोकस्तं वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया ।  
 प्राप्तं राज्यं परित्यज्य ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ॥ १७ ॥  
 चित्राङ्गदं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम् ।  
 विचित्रवीर्यं च शिशुं यौवराज्येऽभ्यषेचयम् ॥ १८ ॥  
 देवव्रतत्वं विज्ञाप्य पृथिवीं सर्वराजसु ।  
 नैव हन्यां स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कदाचन ॥ १९ ॥  
 स हि स्त्रीपूर्वको राजजिह्मखण्डी यदि ते श्रुतः ।  
 कन्या भूत्वा पुमाञ्जातो न योत्स्ये तेन भारत ॥ २० ॥  
 सर्वास्त्वन्यान्हनिष्यामि पार्थिवान्भरतर्षभ ।  
 यान्समेष्यामि समरे न तु कुन्तीसुतानृप ॥ २१ ॥ [५७९१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि  
 द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥ रथातिरथसंख्यानपर्व समाप्तम् ।

अर्थ रथी हैं; सो मैंने तुमसे वर्णन किया ।  
 हे भारत ! मैं जहां तक देख सकूंगा,  
 वहां तक अर्जुन कृष्ण तथा दूसरे सब  
 राजाओंको निवारण करूंगा; परन्तु हे  
 महाबाहो ! युद्धमें मेरी सेनाके विरुद्ध  
 संग्राम करनेवाला शस्त्रधारी द्रुपदपुत्र  
 शिखण्डीको देखकर मैं उसका वध नहीं  
 करूंगा । ( १४—१६ )

पिताके प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे  
 मैंने प्राप्त हुआ राज्य भी त्याग दिया  
 और ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित होके चित्राङ्ग-  
 दको कौरवोंके महाराजके और विचित्र  
 वीर्यको युवराजके पदमें नियुक्त किया

था; यह सब लोगोंको विदित है । पृथ्वी  
 के सब राजाओंके बीचमें देवव्रत अर्था-  
 त् ब्रह्मचारी कहके मैं विख्यात हूं; इस  
 से स्त्री अथवा पहिले स्त्री हुए पुरुषको  
 मैं कभी नहीं मार सकता हूं । हे राजन्!  
 शिखण्डी जो पहिले स्त्रीरूपमें था, सो तुम  
 ने सुना ही है; हे भारत! इससे मैं उसके  
 सङ्ग युद्ध नहीं करूंगा । इसके अतिरिक्त  
 संग्राममें जिन सब राजाओंके सम्मुख  
 होऊंगा; उन सबको अवश्य मारूंगा; परन्तु  
 कुन्तीपुत्रोंको नहीं मार सकूंगा । १७-२१

उद्योगपर्वमें एकसौ बाहन्तर अध्याय और  
 रथातिरथसंख्यानपर्व समाप्त । [५७९१]



अथाम्बोपाख्यानपर्व ।

दुर्योधन उवाच- किमर्थं भरतश्रेष्ठ नैव हन्याः शिखण्डिनम् ।

उद्यतेषुमथो हृष्ट्वा समरेष्वाततायिनम् ॥ १ ॥

पूर्वमुक्त्वा महाबाहो पञ्चालान्सह सोमकैः ।

हनिष्यामीति गाङ्गेय तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥

भीष्म उवाच- शृणु दुर्योधन कथां सहैर्भिर्वसुधाधिपैः ।

यदर्थं युधि सम्प्रेक्ष्य नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ॥ ३ ॥

महाराजो मम पिता शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।

दिष्टान्तमाप धर्मात्मा समये भरतर्षभ ॥ ४ ॥

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ प्रतिज्ञां परिपालयन् ।

चित्राङ्गदं भ्रातरं वै महाराज्येऽभ्यषेचयम् ॥ ५ ॥

तस्मिंश्च निधनं प्राप्ते सत्यवत्या मते स्थितः ।

विचित्रवीर्यं राजानमभ्यषिञ्चं यथाविधि ॥ ६ ॥

मयाऽभिषिक्तो राजेन्द्र यवीयानपि धर्मतः ।

विचित्रवीर्यो धर्मात्मा मामेव समुदैक्षत ॥ ७ ॥

तस्य दारक्रियां तात चिकीर्षुरहमप्युत ।

उद्योगपर्वमें एकसौ तिहत्तर अध्याय और  
अम्बोपाख्यान पर्व ।

दुर्योधन बोले, हे गङ्गानन्दन भरत-  
र्षभ पितामह ! हे महाबाहो ! “ मैं  
सोमकवंशियोंके सहित सब पाञ्चालवी-  
रोंको मारुंगा ” पहिले ऐसा कहकर इस  
समय अब युद्धमें आततायी शस्त्र लिये  
हुए शिखण्डीको देखकर आप किस  
कारणसे उसका वध न करेंगे, उसे वर्णन  
कीजिये । ( १—२ )

भीष्म बोले, हे दुर्योधन ! मैं शिख-  
ण्डीको रणभूमिमें देखकर जिस कारणसे  
उसका वध नहीं करुंगा; वह सम्पूर्ण

वृत्तान्त तुम मुझसे सब राजाओंके  
सहित सुनो । हे भरतर्षभ ! मेरे पिता  
लोकमें विख्यात धर्मात्मा महाराज शा-  
न्तनु यथा समयमें शरीरको छोड़कर  
स्वर्गको गये । अनन्तर मैं अपनी प्रति-  
ज्ञाका पालन करता हुआ भाई चित्राङ्ग-  
दको इस सम्पूर्ण राज्यका स्वामी बनाया ।  
हे राजन् ! चित्राङ्गदके मरनेपर सत्यवती  
की सम्मतिसे विचित्रवीर्यको विधिपूर्वक  
राज्य-पदपर प्रतिष्ठित किया । ( ३-६ )

हे राजेन्द्र ! छोटे होकर भी धर्मके  
अनुसार मेरे द्वारा राज्यपद पानेपर  
धर्मात्मा विचित्रवीर्य केवल मेरी ही

अनुरूपादिव कुलादित्येव च मनो दधे ॥ ८ ॥  
 तथाऽश्रौषं महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वयंवराः ।  
 रूपेणाऽप्रतिमाः सर्वाः काशिराजसुतास्तदा ॥  
 अम्बां चैवाऽम्बिकां चैव तथैवाऽम्बालिकामपि ॥ ९ ॥  
 राजानश्च समाहूताः पृथिव्यां भरतर्षभ ।  
 अम्बा जेष्ठाऽभवत्तासामम्बिका त्वथ मध्यमा ॥ १० ॥  
 अम्बालिका च राजेन्द्र राजकन्या यवीयसी ।  
 सोऽहमेकरथेनैव गतः काशिपतेः पुरीम् ॥ ११ ॥  
 अपश्यं ता महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वलंकृताः ।  
 राज्ञश्चैव समाहूतान्पार्थिवान्पृथिवीपते ॥ १२ ॥  
 ततोऽहं तान्नृपान्सर्वानाहूय समरे स्थितान् ।  
 रथमारोपयाञ्चके कन्यास्ता भरतर्षभ ॥ १३ ॥  
 वीर्यशुल्काश्च ता ज्ञात्वा समारोप्य रथं तदा ।  
 अवोचं पार्थिवान्सर्वानहं तत्र समागतान् ॥  
 भीष्मः शान्तनवः कन्या हरतीति पुनः पुनः ॥ १४ ॥  
 ते यतध्वं परं शक्त्या सर्वे मोक्षाय पार्थिवाः ।  
 प्रसह्य हि हराम्येष मिषतां वो नरर्षभाः ॥ १५ ॥

प्रतीक्षा करते थे । ते तात ! मैंने भी  
 समान कुलमेंसे कन्या लाकर उसके  
 विवाह करनेकी इच्छा की । उस समयमें  
 मैंने सुना, कि काशिराजके यहां महा-  
 सुन्दरी उनकी अम्बा, अम्बिका और  
 अम्बालिका तीन कन्याओंका स्वयंवर  
 होरहा है और उसके निमित्त पृथ्वीके  
 सम्पूर्ण राजा इकट्ठे हुए हैं । (७—१०)

हे राजेन्द्र ! इन कुमारियोंके बीच  
 अम्बा जेठी, अम्बिका मध्यमा और  
 अम्बालिका छोटी थी । हे महाबाहो !  
 मैंने एक ही रथ पर काशिराजके नगरमें

गमन करके सब भूषणोंसे भूषित उन  
 कन्याओंको देखा । अनन्तर बल तथा  
 पराक्रम ही उनका पण था, ऐसा बोध  
 होनेपर मैंने युद्ध करनेके निमित्त इकट्ठे  
 हुए सम्पूर्ण राजाओंको आवाहन करके  
 उन तीनों कन्याओंको रथमें बैठा लिया ।  
 कुमारियोंको रथमें रखकर मैंने इकट्ठे  
 हुए सब राजाओंसे बारबार यह वचन  
 कहा, “हे राजा लोग ! शान्तनुनन्दन  
 भीष्म कन्याओंको हरण करता है,  
 इससे तुम लोग परम शक्तिके सहित  
 उनको छुड़ानेका यत्न करो । हे नरर्षभ

ततस्ते पृथिवीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः ।  
 योगो योग इति क्रुद्धाः सारथीनभ्यचोदयन् ॥ १६ ॥  
 ते रथैर्गजसङ्काशैर्गजैश्च गजयोधिनः ।  
 पुष्टैश्चाऽश्वैर्महीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः ॥ १७ ॥  
 ततस्ते मां महीपालाः सर्व एव विशाम्पते ।  
 रथव्रातेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ १८ ॥  
 तानहं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयम् ।  
 सर्वानृपांश्चाऽप्यजयं देवराडिव दानवान् ॥ १९ ॥  
 अपातयं शरैर्दीप्तैः प्रहसन्भरतर्षभ ।  
 तेषामापततां चित्रान्ध्वजान्हेमपरिष्कृतान् ॥ २० ॥  
 एकैकेन हि बाणेन भूमौ पातितवानहम् ।  
 हयांस्तेषां गजांश्चैव सारथींश्चाऽप्यहं रणे ॥ २१ ॥  
 ते निवृत्ताश्च भग्नाश्च दृष्ट्वा तल्लाघवं मम ।  
 अथाऽहं हास्तिनपुरमायां जित्वा महीक्षितः ॥ २२ ॥  
 ततोऽहं ताश्च कन्या वै आतुरर्थाय भारत ।

गण ! तुम लोगोंकी अभिलाषा रहनेपर भी मैं सबके सम्मुख ही इन कन्याओंको बलपूर्वक हरण किये जाता हूँ ।” ( १०—१५ )

अनन्तर वे सब राजा लोग अपने सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रोंको लेकर उठ खड़े हुए और सारथीको रथ सजानेके निमित्त आज्ञा करने लगे । हे राजेन्द्र ! उन राजाओंमें रथी लोग हाथियों और घोड़ोंके असवार लोग अपने हृष्ट पुष्ट घोड़ोंपर चढ़के सब शस्त्रोंके सहित मेरे सम्मुख आ पहुँचे और सब ओरसे मुझे घेर लिया । मैंने भी अपने बाणोंकी वर्षासे उन सबको निवारित किया और

इन्द्र जैसे दानवोंको पराजित करते हैं, उसी प्रकारसे अकेले ही सब राजाओंको जीत लिया । ( १६—१९ )

हे भरतर्षभ ! वे लोग जब मुझ पर आक्रमण करनेके निमित्त उद्यत हुए, तब मैंने हंसते हंसते अपने जलते हुए चोखे बाणोंसे उनकी सुवर्ण भूषित विचित्र ध्वजाओंको काटकर गिरा दिया और एक ही एक बाणसे घोड़े, हाथी और सारथियोंको मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया । मेरी ऐसी शस्त्रशीघ्रता देखकर सब राजा पराजित होकर भाग गये । हे महाबाहो ! अनन्तर मैंने उन सब राजाओंको जीतकर और हस्तिनापुरमें प्राप्त

तच्च कर्म महाबाहो सत्यवतै न्यवेदयम् ॥ २३ ॥ [ ५८१४ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

भीष्म उवाच — ततोऽहं भरतश्रेष्ठ धातरं वीरमातरम् ।

अभिगम्योपसंगृह्य दाशेयीमिदमब्रुवम् ॥ १ ॥

इमाः काशिपतेः कन्या मया निर्जित्य पार्थिवान् ।

विचित्रवीर्यस्य कृते वीर्यशुल्का हता इति ॥ २ ॥

ततो मूर्धन्युपाघ्राय पर्यश्रुनयना नृप ।

आह सत्यवती हृष्टा दिष्टया पुत्राजितं त्वया ॥ ३ ॥

सत्यवत्यास्त्वनुमते विवाहे समुपस्थिते ।

उवाच वाक्यं सत्रीडा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ॥ ४ ॥

भीष्म त्वमसि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।

श्रुत्वा च वचनं धर्म्यं मह्यं कर्तुमिहाऽर्हसि ॥ ५ ॥

मया शाल्वपतिः पूर्वं अनसाऽभिवृत्तो वरः ।

होकर भ्राताके निमित्त उन कन्याओंको लेकर सत्यवतीको समर्पण किया और युद्धका वृत्तान्त भी सम्पूर्ण रूपसे वर्णन किया । ( २०-२३ ) [ ५८१४ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ तिहत्तर अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ चौहत्तर अध्याय ।

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर मैंने कैवर्तकी कन्या वीर जननी सत्यवतीके समीप जाकर प्रणाम करके यह वचन कहा, “हे माता ! मैं सब राजाओंको जीतकर विचित्रवीर्यके निमित्त काशिराजकी इन कई एक कन्याओंको लाया हूँ, पराक्रम ही इनका पण था, इसीसे मैं अपने बाहुबलसे सब राजाओंको जीतकर इनको लाया हूँ । ” हे

राजन् ! अनन्तर सत्यवतीने आनंदित होके मेरा मस्तक संघा और आखोंमें आंसू भरकर यह वचन बोला, “ हे पुत्र ! प्रारब्धहीसे तुमने विजय लाभ किया है । ” ( १-३ ]

इसके अनन्तर सत्यवतीकी अनुमति से जब विवाहका समय उपस्थित हुआ, तब काशिराजकी जेठी कन्या लज्जापूर्वक मुझसे यह वचन बोली, “ हे भीष्म ! तुम सब शास्त्रोंको जाननेवाले और धर्मात्मा हो; इससे मेरे धर्मयुक्त वचनों को सुनकर उनकी रक्षा करनी तुमको उचित है । पहिले मैंने शाल्वपतिको मन ही मन अपना वर निश्चय किया था और उन्होंने भी पिताको ज्ञात न होकर

तेन चाऽस्मि वृता पूर्व रहस्यविदिते पितुः ॥ ६ ॥  
 कथं मामन्यकामां त्वं राजधर्ममतीत्य वै ।  
 वासयेथा गृहे भीष्म कौरवः सन्विशेषतः ॥ ७ ॥  
 एतद् बुद्ध्या विनिश्चित्य मनसा भरतर्षभ ।  
 यत्क्षमं ते महाबाहो तदिहाऽऽरब्धुमर्हसि ॥ ८ ॥  
 स मां प्रतीक्षते व्यक्तं शाल्वराजो विशाम्पते ।  
 तस्मान्मां त्वं कुरुश्रेष्ठ समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ९ ॥  
 कृपां कुरु महाबाहो भयि धर्मभृतां वर ।  
 त्वं हि सत्यव्रतो वीरपृथिव्यामिति नः श्रुतम् ॥ १० ॥ ५८२४

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि

अम्बावाक्ये चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

भीष्म उवाच— ततोऽहं समनुज्ञाप्य कालीं गन्धवतीं तदा ।  
 मन्त्रिणश्चर्त्विजश्चैव तथैव च पुरोहितान् ॥ १ ॥  
 समनुज्ञासिषं कन्यामम्बां ज्येष्ठां नराधिप ।  
 अनुज्ञाता ययौ सा तु कन्या शाल्वपतेः पुरम् ॥ २ ॥  
 वृद्धैर्द्विजातिभिर्गुप्ता धात्र्या चाऽनुगता तदा ।

एकान्त स्थानपर मुझे पानेकी अभिलाषा की थी, हे भीष्म ! इससे तुम श्रेष्ठ कौरवोंके कुलमें उत्पन्न होकर किस प्रकारसे धर्मका अतिक्रम कर सकते हो? दूसरेकी अभिलाषा करनेवाली कामिनी को तुम कैसे अपने घरमें रख सकते हो ? ( ४-७ )

हे महाबाहो ! बुद्धिसे इस विषयको अच्छी प्रकारसे विचार कर जैसा उचित हो, वैसा ही कीजिये । हे राजेन्द्र ! वह शाल्वराज अवश्य मेरी बात जोहते होंगे । हे कुरुश्रेष्ठ ! इससे मुझे उनके समीप जानेकी आज्ञा दीजिये । हे महाबाहो !

हे धार्मिक ! मेरे ऊपर कृपा कीजिये; मैंने सुना है, आप पृथ्वीमें सत्यव्रत ( ब्रह्मचारी ) कहके विख्यात हैं ।" ८-१०  
 एकसौ चौहत्तर अध्याय समाप्त । [ ५८२४ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ पचत्तर अध्याय ।

भीष्म बोले, हे प्रजानाथ ! अनन्तर मैंने योजनगन्धा, मन्त्री और पुरोहितोंको सब बात सुनाकर उन लोगोंकी सम्मतिसे बड़ी कन्या अम्बाको शाल्वराजके यहां जानेकी आज्ञा दी और उसने भी बूढ़े ब्राह्मणोंसे रक्षित और दासियोंसे युक्त होकर शाल्वराजके नगरको गमन किया । कन्या सब मार्गोंको

अतीत्य च तमध्वानमासाद्य नृपतिं तथा ॥ ३ ॥  
 सा तमासाद्य राजानं शाल्वं वचनमब्रवीत् ।  
 आगताऽहं महाबाहो त्वामुद्दिश्य महाभते ॥ ४ ॥  
 तामब्रवीच्छाल्वपतिः स्मयन्निव विशाम्पते ।  
 त्वयाऽन्यपूर्वया नाऽहं भार्यार्थी वरवर्णिनि ॥ ५ ॥  
 गच्छ भद्रे पुनस्तत्र सकाशं भीष्मकस्य वै ।  
 नाऽहमिच्छामि भीष्मेण गृहीतां त्वां प्रसह्य वै ॥ ६ ॥  
 त्वं हि भीष्मेण निर्जित्य नीता प्रीतिमती तदा ।  
 परामृश्य महायुद्धे निर्जित्य पृथिवीपतीन् ॥ ७ ॥  
 नाऽहं त्वय्यन्यपूर्वायां भार्यार्थी वरवर्णिनि ।  
 कथमस्मद्विधो राजा परपूर्वां प्रवेशयेत् ॥ ८ ॥  
 नारीं विदितविज्ञानः परेषां धर्ममादिशन् ।  
 यथेष्टं गम्यतां भद्रे मा त्वां कालोऽत्यगादयम् ॥ ९ ॥  
 अम्बा तमब्रवीद्राजन्ननङ्गशरपीडिता ।  
 नैवं वद महीपाल नैतदेव कथञ्चन ॥ १० ॥

लांघ कर शाल्वराजके समीप पहुँच कर  
 यह वचन बोली, हे महाबाहो ! हे महा-  
 बुद्धिमन् ! मैं तुम्हारे निमित्त यहाँपर  
 आई हूँ । ( १-४ )

हे राजेन्द्र ! तब शाल्वराज हंसकर  
 उससे यह वचन बोले, हे सुन्दरी !  
 तुम अन्यपूर्वा हो; इस कारण मैं तुमको  
 अपनी भार्या बनानेकी अभिलाषा नहीं  
 कर सकता हूँ । हे भद्रे ! तुम फिर  
 भीष्मके समीप जाओ; भीष्मने तुमको  
 बलपूर्वक ग्रहण किया था; इससे अब  
 मैं तुमसे विवाह करनेकी इच्छा नहीं  
 करता हूँ । भीष्मने जब सब राजाओंको  
 जीत कर हाथ पकड़के तुम्हे हरण

किया था, उस समय तुमने उसके सङ्ग  
 विलक्षण प्रीति की थी ; हे सुन्दरि !  
 इससे अन्यपूर्वा स्त्रीको मैं अपनी भार्या  
 नहीं बना सकता हूँ । शास्त्र और धर्मको  
 जाननेवाले मेरे समान राजा दूसरेकी  
 ग्रहण की हुई स्त्रीको किस प्रकारसे  
 अपने घर रख सकता है ? इससे हे भद्रे !  
 शीघ्र ही अब जहाँ तुम्हारी इच्छा होवे,  
 गमन करो । ( ५-९ )

हे राजन् ! तब अम्बा कामशरसे  
 पीडित होकर उनसे यह वचन बोली; हे  
 राजेन्द्र ! ऐसा न कहिये; आप जो कुछ  
 कहते हैं, वह किसी प्रकारसे भी सत्य  
 नहीं है । भीष्मके हाथसे हरण किये

नाऽस्मि प्रीतिमती नीता भीष्मेणाऽभिन्नकर्शन ।  
 बलान्नीताऽस्मि रुदती विद्राव्य पृथिवीपतीन् ॥ ११ ॥  
 भजस्व मां शाल्वपते भक्तां बालामनागसम् ।  
 भक्तानां हि परित्यागो न धर्मेषु प्रशस्यते ॥ १२ ॥  
 साऽहमात्मन्य गाङ्गेयं समरेष्वनिवर्तिनम् ।  
 अनुज्ञाता च तेनैव ततोऽहं भृशमागता ॥ १३ ॥  
 न स भीष्मो महाबाहुर्मामिच्छति विशाम्पते ।  
 भ्रातृहेतोः समारम्भो भीष्मस्येति श्रुतं मया ॥ १४ ॥  
 भगिन्यौ मम ये नीते अम्बिकाम्बालिके नृप ।  
 प्रादाद्विचित्रवीर्याय गाङ्गेयो हि यवीयसे ॥ १५ ॥  
 यथा शाल्वपते नाऽन्यं वरं ध्यामि कथञ्चन ।  
 त्वामृते पुरुषव्याघ्र तथा मूर्धनमालभे ॥ १६ ॥  
 न चाऽन्यपूर्वा राजेन्द्र त्वामहं समुपस्थिता ।  
 सत्यं ब्रवीमि शाल्वैतत्सत्येनाऽऽत्मानमालभे ॥ १७ ॥  
 भजस्व मां विशालाक्ष स्वयं कन्यामुपस्थिताम् ।

जानेपर मैंने कभी उनसे प्रीति नहीं की थी, भीष्मने जिस समय सब राजाओं-को जीतकर बलपूर्वक मुझको ग्रहण किया उस समयमें मैं रोदन करती थी; हे शाल्वराज ! इससे आप इस दासी निरपराधिनी बालाको ग्रहण करा देख भक्त लोगोंको त्यागना धर्मविरुद्ध है । मैं युद्धमें अपराजित गङ्गानन्दन भीष्मसे बार बार अपने मनोरथोंको निवेदन करके उनकी आज्ञाके अनुसार ही यहाँ-आई हूँ । ( १०-१३ )

हे राजेन्द्र ! मैंने सुना है, कि वह महाबाहु भीष्म स्वयं मेरी इच्छा नहीं करते; भाईके निमित्त ही उन्होंने ऐसा

यत्न किया था । हे राजन् ! गङ्गातनय भीष्म जो मेरी और दो बहिन अम्बिका और अम्बालिकाको ले गये थे, उन्हींके सङ्ग अपने छोटे भाई विचित्रवीर्यका विवाह किया है । हे पुरुषसिंह शाल्वराज ! तुम्हारे अतिरिक्त जो मैं और दूसरे किसी वरकी इच्छा नहीं करती हूँ उस विषयमें मैं मस्तक छूकर शपथ करती हूँ । हे राजन् ! मैं पाहिले दूसरेकी होकर तुम्हारे समीपमें नहीं आई हूँ; हे शाल्वराज ! मैं अपनी आत्माकी शपथ करके यह सत्य ही कहती हूँ । हे प्रजानाथ ! इससे दूसरेकी इच्छा न करनेवाली, आपके ही प्रसादकी इच्छा

अनन्यपूर्वा राजेन्द्र त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणीम् ॥ १८ ॥  
 तामेवं भाषमाणां तु शाल्वः काशिपतेः सुताम् ।  
 अत्यजद्भरतश्रेष्ठ जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ १९ ॥  
 एवं बहुविधैर्वाक्यैर्याच्यमानस्तथा नृपः ।  
 नाऽश्रद्धाच्छाल्वपतिः कन्यायां भरतर्षभ ॥ २० ॥  
 ततः सा मन्युनाऽऽविष्टा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ।  
 अब्रवीत्साश्रुनयना बाष्पविप्लुतया गिरा ॥ २१ ॥  
 त्वया त्यक्ता गमिष्यामि यत्र तत्र विशाम्पते ।  
 तत्र मे गतयः सन्तु सन्तः सत्यं यथा ध्रुवम् ॥ २२ ॥  
 एवं तां भाषमाणां तु कन्यां शाल्वपतिस्तदा ।  
 परितत्याज कौरव्य करुणं परिदेवतीम् ॥ २३ ॥  
 गच्छ गच्छेति तां शाल्वः पुनः पुनरभाषत ।  
 बिभेमि भीष्मात्सुश्रोणि त्वं च भीष्मपरिग्रहः ॥ २४ ॥  
 एवमुक्ता तु सा तेन शाल्वेनाऽदीर्घदर्शिना ।  
 निश्चक्राम पुरादीना रुदती कुररी यथा ॥ २५ ॥  
 भीष्म उवाच- निष्क्रामन्ती तु नगराचिन्तयामास दुःखिना ।

करनेवाली स्वयं उपस्थित हुई; पुत्र कुमारीको आप ग्रहण करें। (१४-१८)

हे भरतर्षभ ! काशिराजकी कन्याके ऐसा कहने पर भी शाल्वराजने पुरानी केंचुकीको छोड़नेवाले सर्पके समान उसे त्याग दिया । कन्याने इसी प्रकारसे अनेक वचन कहे; परन्तु शाल्वराजने उसे ग्रहण नहीं किया । अनन्तर अम्बा रोती हुई आँखोंमें आँसू भरकर यह वचन बोली, हे राजन् ! तुमने मेरा परित्याग किया परन्तु मैं जहाँ जहाँ जाऊँगी, वहाँ पर ही साधु पुरुष मेरी रक्षा करेंगे; क्योंकि सत्यका कभी

नाश नहीं होता । (१९-२२)

हे कुरुनन्दन ! उस समय ऐसा वचन कहकर करुण स्वरसे रोदन करनेवाली उस काशिराजकी कन्याको शाल्वराजने शीघ्रही ही त्याग किया और “जाओ जाओ” बार बार ऐसे ही वचन कहने लगे; हे सुन्दरि ! मैं भीष्मसे डरता हूँ, और तुम भीष्मकी प्रथम ग्रहण की हुई हो; इससे जल्दी यहाँसे चले जाओ । अम्बा अदीर्घदर्शी शाल्वराजका ऐसा वचन सुन कर, कातर होके कुररीकी भाँति रोदन करती हुई नगरसे बाहर हुई । (२३-२५)



पृथिव्यां नाऽस्ति युवतिर्विषमस्थतरा मया ॥ २६ ॥  
 बन्धुभिर्विप्रहीणाऽस्मि शाल्वेन च निराकृता ।  
 न च शक्यं पुनर्गन्तुं मया वारणसाह्वयम् ॥ २७ ॥  
 अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वमुद्दिश्य कारणम् ।  
 किं नु गर्हाम्यथाऽऽत्मानमथ भीष्मं दुरासदम् ॥ २८ ॥  
 अथवा पितरं मूढं यो मेऽकार्षात्स्वयंवरम् ।  
 मयाऽयं स्वकृतो दोषो याऽहं भीष्मरथात्तदा ॥ २९ ॥  
 प्रवृत्ते दारुणे युद्धे शाल्वार्थं नाऽपतं पुरा ।  
 तस्येयं फलनिर्वृत्तिर्यदापन्नाऽस्मि मूढवत् ॥ ३० ॥  
 धिग्भीष्मं धिक्च मे मन्दं पितरं मूढचेतसम् ।  
 येनाऽहं वीर्यशुल्केन पण्यस्त्रीव प्रचोदिता ॥ ३१ ॥  
 धिक् मां धिक् शाल्वराजानं धिग्धातारमथाऽपि वा ।  
 येषां दुर्नीतभावेन प्राप्ताऽस्म्यपदमुत्तमाम् ॥ ३२ ॥  
 सर्वथा भागधेयानि स्वानि प्राप्नोति मानवः ।  
 अनयस्याऽस्य तु मुखं भीष्मः शान्तनवो मम ॥ ३३ ॥

भीष्म बोले, अत्यन्त दुःखिता का-  
 शिराजकी कन्या नगरसे निकल कर  
 ऐसी चिन्ता करने लगी, कि पृथ्वीमें  
 मेरे समान भाग्यहीन राजपुत्री और  
 कोई भी नहीं है; मैं अपने बन्धुबान्ध-  
 वोंसे पृथक् हुई हूँ और शाल्वने भी मेरा  
 त्याग किया । फिर भी हस्तिनापुरको  
 जानेका अब मुझे साहस नहीं है, क्यों-  
 कि शाल्वराजके निमित्त भीष्मसे विदा  
 होकर उनकी आज्ञा लेकर यहाँ आई हूँ ।  
 इससे अपनी निन्दा करूँ, वा उस दुष्ट  
 भीष्मका ही तिरस्कार करूँ वा जिन्होंने  
 मेरा स्वयंवर किया था, उस मूढ पिता  
 की ही निन्दा करूँ ? अथवा यह

मेरा अपना ही दोष है, क्योंकि उस  
 दारुण संग्रामके उपस्थित होनेपर मैं  
 भीष्मके रथसे उतरकर शाल्वराजके रथ-  
 पर क्यों न चली गई ? हा इस समय  
 मूढाकी भांति मैं उसी बुद्धिहीनता का  
 फल पा रही हूँ । (२६-३०)

जिसकी दुष्ट नीतिसे मैं इस भारी  
 विपदमें पड़ी हूँ; उसे धिक्कार है; भीष्म-  
 को भी धिक्कार है, जिसने पराक्रमका  
 पण करके मुझे वेश्याकी भांति हरण  
 किया । उस मन्दबुद्धि मूढ पिताको  
 और भी धिक्कार है । शाल्वराज और  
 विधाताको भी धिक्कार है । मनुष्य  
 अपने प्रारब्धके अनुसार फल पाता है,

सा भीष्मे प्रतिकर्तव्यमहं पश्यामि साम्प्रतम् ।  
 तपसा वा युधा वापि दुःखहेतुः स मे मतः ॥ ३४ ॥  
 को नु भीष्मं युधा जेतुमुत्सहेत महीपतिः ।  
 एवं सा परिनिश्चित्य जगाम नगराद्बहिः ॥ ३५ ॥  
 आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् ।  
 ततस्तामवसद्रात्रिं तापसैः परिवारिता ॥ ३६ ॥  
 आचर्यौ च यथावृत्तं सर्वमात्मनि भारत ।  
 विस्तरेण महाबाहो निखिलेन शुचिस्मिता ॥  
 हरणं च विसर्गं च शाल्वेन च विसर्जनम् ॥ ३७ ॥  
 ततस्तत्र महानासीद्ब्राह्मणः संशितव्रतः ।  
 शैखावत्यस्तपोवृद्धः शास्त्रे चाऽऽरण्यके गुरुः ॥ ३८ ॥  
 आर्ता तामाह स मुनिः शैखावत्यो महातपाः ।  
 निःश्वसन्तीं सतीं बालां दुःखशोकपरायणाम् ॥ ३९ ॥  
 एवङ्गते तु किं भद्रे शक्यं कर्तुं तपस्विभिः ।  
 आश्रमस्थैर्महाभागे तपोयुक्तैर्महात्मभिः ॥ ४० ॥  
 सा त्वेनमब्रवीद्राजन्क्रियतां मदनुग्रहः ।

यह ठीक है; परन्तु शान्तनुपुत्र भीष्म  
 ही मेरी इस विपदका मूल कारण है ।  
 इससे चाहे तपस्यासे हो अथवा युद्धसे  
 होसके; उसके सङ्ग शत्रुता करना मेरा  
 कर्त्तव्य कार्य बोध होता है । (३१-३५)

परन्तु कौन राजा युद्धमें भीष्मको  
 पराजित करनेका उत्साह कर सकता  
 है ? हे भारत ! इसी प्रकारसे चिन्ता  
 करती हुई अम्बा नगरके बाहर पुण्यशील  
 महात्मा तपस्वियोंके आश्रमों पर जा  
 पहुँची । वहाँपर तपस्वियोंसे युक्त होकर  
 रात्रि बितायी और अपने हरण करने,  
 छूटने तथा शाल्वराजसे परित्याग किये

जानेका सम्पूर्ण वृत्तान्त उन तपस्वियोंके  
 निकट वर्णन किया । ( ३५-३७ )

हे महाबाहो ! वहाँपर तपमें वृद्ध,  
 शास्त्र और आरण्यक उपनिषदोंके आ-  
 चार्य, दृढव्रती, अग्निहोत्र करनेवाले,  
 वेद और स्मार्त्त कर्ममें निपुण शैखाव-  
 त्य नाम एक महा विद्वान् ब्राह्मण थे ।  
 वह महातपस्वी शैखावत्य मुनि अत्यन्त  
 कातरा, शोक और दुःखसे युक्त लम्बी  
 सांस छोड़नेवाली साध्वी कन्या अम्बा  
 से बोले, हे भद्रे ! हे महाभागे ! ऐसी  
 अवस्थामें आश्रमवासी तपस्वी लोग  
 क्या कर सकते हैं ? ( ३८-४० )

प्रात्राज्यमहमिच्छामि तपस्तपस्यामि दुश्श्रमम् ॥ ४१ ॥

मयैव यानि कर्माणि पूर्वदेहे तु सूदया ।

कृतानि नूनं पापानि तेषामेतत्फलं ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

नोत्सहे तु पुनर्गन्तुं स्वजनं प्रति तापसाः ।

प्रत्याख्याता निरानन्दा शाल्वेन च निराकृता ॥ ४३ ॥

उपदिष्टमिहेच्छामि तापस्यं वीतिकल्मषाः ।

युष्माभिर्देवसंकाशैः कृपा भवतु वो मयि ॥ ४४ ॥

स ताम्नाश्वासयत्कन्यां दृष्टान्तागमहेतुभिः ।

सान्त्वयामास कार्यं च प्रतिजज्ञे द्विजैः सह ॥ ४५ ॥ [ ५८६९ ]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि शैखावत्यां वासंवादे पंचसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

भीष्म उवाच— ततस्ते तापसाः सर्वे कार्यवन्तोऽभवन्स्तदा ।

तां कन्यां चिन्तयन्तस्ते किं कार्यमिति धर्मिणः ॥ १ ॥

केचिदाहुः पितुर्वैश्वमीयतामिति तापसाः ।

केचिदस्मदुपालम्भे मतिं चक्रुर्हि तापसाः ॥ २ ॥

परन्तु अम्बा दृढताके सहित उससे यह वचन बोली, हे महाभाग ! मेरे ऊपर कृपा करो । मैं प्रव्रज्या धर्मको ग्रहण करनेकी इच्छा करती हूँ, कठिन होनेपर भी मैं तपस्या करूंगी । मैंने मोहमें पड़कर पूर्वजन्ममें जो कुछ पाप किया था; उसका यह सब फल भोग कर रही हूँ, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; हे पापरहित तापसवृन्द ! फिर बन्धु बान्धवोंके बीच गमन करनेके निमित्त मुझे उत्साह नहीं होता है । शाल्वने भी जब मुझको परित्याग कर दिया; तो अब मैं सब प्रकारसे आनन्द रहित होकर तपस्या कर्मके उपदेशको सुननेकी इच्छा करती हूँ; आप लोग देवता

ओंके समान हैं, इससे मेरे ऊपर कृपा कीजिये ( ४१—४४ )

तब उस मुनिने लौकिक दृष्टान्त, वेद और युक्तिसे शान्त करके उस कन्याका धीरज कराया और ब्राह्मणोंके सङ्ग मिलकर उसके कार्यको पूर्ण करनेके निमित्त विचार करने लगे । ( ४५ )

एकसौ पचत्तर अध्याय समाप्त । [ ५८६९ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ छिहत्तर अध्याय ।

भीष्म बोले, अनन्तर वे धर्मात्मा तपस्वी लोग, उस समय इस कन्याके विषयमें क्या करना उचित है; ऐसी चिन्ता करके सब कोई विचार करने लगे । कोई बोले, इसको पिताके घर लेजाना चाहिये, कोई कोई मरी निन्दा

केचिच्छाल्वपतिं गत्वा नियोज्यमिति मेनिरे ।

नेति केचिद्व्यवस्यन्ति प्रत्याख्याता हि तेन सा ॥ ३ ॥

एवङ्गते तु किं शक्यं भद्रे कर्तुं मनीषिभिः ।

पुनरुचुश्च तां सर्वे तापसाः संशितव्रताः ॥ ४ ॥

अलं प्रव्रजितेनेह भद्रे शृणु हितं वचः ।

इतो गच्छस्व भद्रं ते पितुरेव निवेशनम् ॥ ५ ॥

प्रतिपत्स्यति राजा स पिता ते यदनन्तरम् ।

तत्र वत्स्यसि कल्याणि सुखं सर्वगुणान्विता ॥ ६ ॥

न च तेऽन्या गतिर्न्याय्या भवेद्भद्रे यथा पिता ।

पतिर्वापि गतिर्न्याय्याः पिता वा वरवर्णिनि ॥ ७ ॥

गतिः पतिः समस्थाया विषमे च पिता गतिः ।

प्रव्रज्या हि सुदुःखेयं सुकुमार्या विशेषतः ॥ ८ ॥

राजपुत्र्याः प्रकृत्या च कुमार्यास्तव मामिनि ।

भद्रे दोषा हि विद्यन्ते बहवो वरवर्णिनि ॥ ९ ॥

आश्रमे वै वसन्त्यास्ते न भवेयुः पितुर्गृहे ।

करने लगे और कोई शाल्वराजके निकट जाकर उसीको कन्या समर्पण करनेको कहने लगे; परन्तु कोई कोई तपस्वी यह कहने लगे, कि उसके समीप ले जाकर इसका समर्पण करना उचित नहीं है क्योंकि उसने इसका परित्याग किया है । ( १-२ )

दृढव्रत करनेवाले तपस्वियोंने आप-समें ऐसा वादानुवाद करके फिर उस कन्यासे कहा, हे भद्रे ! ऐसी अवस्थामें धर्मात्मा लोग क्या कर सकते हैं ? इससे तापस धर्मको ग्रहण करनेका तुम्हे कुछ भी प्रयोजन नहीं है; हम लोगोंके हितके वचन सुनो; इस स्थान

से लौट कर तुम पिताके घर जाओ, तुम्हारे पिता काशिराजका जैसा कर्त्तव्य होगा वैसा करेंगे । वहाँपर कल्याणयुक्त और सब गुणोंसे भूषित होकर तुम परम सुखसे वास करोगी । ( ४-६ )

हे भद्रे ! न्यायके अनुसार अब ऐसी अवस्थामें पिताकी भांति तुम्हारा दूसरा कोई भी रक्षक नहीं है । हे सुन्दरि ! स्त्री को पति अथवा पिता ही गतिस्वरूप है । कालकी अनुकूलतामें पति और प्रतिकूलतामें पिता रक्षक होता है । हे भाविनि ! तुम स्वभावहीसे राजपुत्री उस पर भी सुकुमारी कन्या हो; इससे तपस्या तुमको अत्यन्त ही दुःखदायी होगी; विशेष

अम्बोवाच—

ततस्त्वन्येऽब्रुवन्वाक्यं तापसास्तां तपस्विनीम् ॥१०॥  
 त्वामिहैकाकिनीं दृष्ट्वा निर्जने गहने वने ।  
 प्रार्थयिष्यन्ति राजानस्तस्मान्मैवं मनः कृथाः ॥ ११ ॥  
 न शक्यं काशिनगरं पुनर्गन्तुं पितुर्गृहान् ।  
 अवज्ञाता भविष्यामि बान्धवानां न संशयः ॥ १२ ॥  
 उषिताऽस्मि तथा बाल्ये पितुर्वैशमनि तापसाः ।  
 नाऽहं गमिष्ये भद्रं वस्तत्र यत्र पिता मम ।  
 तपस्तमुभभीप्सामि तापसैः परिरक्षिता ॥ १३ ॥  
 यथा परेऽपि मे लोके न स्यादेवं महात्ययः ।  
 दौर्भाग्यं तापसश्रेष्ठास्तस्मात्तपस्याभ्यहं तपः ॥ १४ ॥  
 इत्येवं तेषु विप्रेषु चिन्तयत्सु यथातथम् ।  
 राजर्षिस्तद्वनं प्राप्तस्तपस्वी होत्रवाहनः ॥ १५ ॥  
 ततस्ते तापसाः सर्वे पूजयन्ति स्म तं नृपम् ।  
 पूजाभिः स्वागताद्याभिरासनेनोदकेन च ॥ १६ ॥  
 तस्योपविष्टस्य सतो विश्रान्तस्योपशृण्वतः ।

भीष्म उवाच—

करके आश्रममें वास करनेमें अनेक दोष हैं, पर पिताके घरमें उन सब दोषोंकी संभावना नहीं है । ( ७-१० )

अनन्तर दूसरे कोई तपस्वी लोग उस तपस्विनीसे यह वचन बोले, हे भद्रे! इस निर्जन भयङ्कर वनमें तुमको अकेली देख कर राजा लोग तुम्हारे ग्रहण करनेकी अभिलाषा करेंगे; इससे तुम कभी यहाँ पर रहनेकी इच्छा मत करो (१०-११)

अम्बा बोली, हे तपस्वी लोग! आपका कल्याण हो, मैं फिर काशी नगरीमें अपने पिताके स्थान पर नहीं जा सकती; ऐसा करनेसे बन्धु बान्धवोंके बीचमें अवश्य ही अवज्ञाकी पात्री होऊंगी ।

बालक अवस्थामें बहुत दिन तक पति के घरमें वास किया था; इस समय अब मैं तपस्वियोंसे रक्षित होकर तपस्या करनेकी अभिलाषा करती हूँ । हे तपस्वी श्रेष्ठ महात्मागण ! परलोकमें भी मेरे प्रारब्धमें ऐसी ही विपद न उपस्थित होवे; इसी आशयसे मैं तपस्या करूंगी । १२-१४

भीष्म बोले, वे ब्राह्मण लोग इसी प्रकारसे कर्त्तव्य कार्यकी चिन्ता कर रहे थे; उस ही अवसरमें तपस्वी राजर्षि होत्रवाहन उस तपोवनमें आकर उपस्थित हुए । अनन्तर तपस्वियोंने स्वागत प्रश्न करके विधिपूर्वक आसन अर्घ्य प्रदान करके उनकी पूजा की ।

पुनरेव कथां चक्रुः कन्यां प्रति वनौकसः ॥ १७ ॥  
 अम्बायास्तां कथां श्रुत्वा काशिराजस्य भारत ।  
 राजर्षिः स महातेजा बभूवोद्विग्नमानसः ॥ १८ ॥  
 तां तथावादिनीं श्रुत्वा हृष्टा च स महातपाः ।  
 राजर्षिः कृपयाऽऽविष्टो महात्मा होत्रवाहनः ॥ १९ ॥  
 स वेपमान उत्थाय मातुस्तस्याः पिता तदा ।  
 तां कन्यामङ्गमारोप्य पर्याश्वासयत प्रभो ॥ २० ॥  
 स तामपृच्छत्कात्स्नर्येन व्यसनोत्पत्तिमादितः ।  
 सा च तस्मै यथावृत्तं विस्तरेण न्यवेदयत् ॥ २१ ॥  
 ततः स राजर्षिरभूदुःखशोकसमन्वितः ।  
 कार्यं च प्रतिपेदे तन्मनसा सुमहातपाः ॥ २२ ॥  
 अब्रवीद्वेपमानश्च कन्यामार्तां सुदुःखितः ।  
 मा गाः पितुर्गृहं भद्रे मातुस्ते जनको ह्यहम् ॥ २३ ॥  
 दुःखं छिन्यामहं ते वै मयि वर्तस्व पुत्रिके ।  
 पर्याप्तं ते मनो वत्से यदेवं परिशुष्यसि ॥ २४ ॥  
 गच्छ मद्वचनाद्रामं जामदग्न्यं तपस्विनम् ।

उनके विश्राम करके बैठनेपर वनवासी  
 तपस्वी लोग उनके संमुख ही फिर उस  
 कन्यासे बात चीत करने लगे। १७-१७

हे भारत ! अम्बा और काशिराजका  
 वह वृत्तान्त सुनकर वह महातेजस्वी ऋषि  
 व्याकुल होगये, महातेजस्वी महात्मा राज  
 ऋषि होत्रवाहन अम्बाके मातामह थे,  
 इससे उसे इस प्रकारसे बात चीत करते  
 हुए सुनकर अत्यन्त ही कृपायुक्त और  
 शरीरसे कांपते हुए उठकर कन्याको  
 गोदमें धारण करके उसे धीरज देने लगे।  
 उन्होंने अम्बासे उसकी उत्पत्तिका सम्पूर्ण  
 वृत्तान्त आदिसे ही पूछना आरंभ किया

और उसने भी जो कुछ हुआ था, उसे  
 विस्तारपूर्वक वर्णन किया। (१८-२१)

अनन्तर वह महा तपस्वी राजर्षि  
 दुःख शोकसे युक्त होकर अपने मन ही  
 मन कार्यका निश्चय करने लगे; और  
 कांपते हुए शरीरसे उस दुःखसे कातर  
 कन्यासे बोले, हे भद्रे ! पिताके घर मत  
 जाओ; मैं तुम्हारा मातामह ( नाना ) हूं;  
 इससे मैं ही तुम्हारे दुःखको दूर करूंगा।  
 हे पुत्री ! तुम मेरे सङ्ग रहो। (२२-२४)

तुम जिस प्रकारसे तनुक्षीण होरही  
 हो, उससे बोध होता है, कि तुम्हारा  
 अन्तःकरण दुःखके भारसे पूर्ण हो रहा

रामस्ते सुमहदुःखं शोकं चैवाऽपनेष्यति ॥ २५ ॥

हनिष्यति रणे भीष्मं न करिष्यति चेद्वचः ।

तं गच्छ भार्गवश्रेष्ठं कालाग्निसमतेजसम् ॥ २६ ॥

प्रतिष्ठापयिता स त्वां समे पथि महातपाः ।

ततस्तु सुखरं बाष्पमुत्सृजन्ती पुनः पुनः ॥ २७ ॥

अब्रवीत्पितरं मातुः सा तदा होत्रवाहनम् ।

अभिवादयित्वा शिरसा गमिष्ये तव शासनात् ॥ २८ ॥

अपि नामाऽद्य पश्येयमार्यं तं लोकविश्रुतम् ।

कथं च तीव्रं दुःखं मे नाशयिष्यति भार्गवः ॥

एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं यथा यास्यामि तत्र वै ॥ २९ ॥

होत्रवाहन उवाच-रामं द्रक्ष्यसि भद्रे त्वं जामदग्न्यं महावने ।

उग्रे तपसि वर्तन्तं सत्यसन्धं महाबलम् ॥ ३० ॥

महेन्द्रं वै गिरिश्रेष्ठं रामो नित्यमुपास्ति ह ।

ऋषयो वेदविद्वांसो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ३१ ॥

तत्र गच्छस्व भद्रं ते ब्रूयाश्चैनं वचो मम ।

है; इससे मेरे वचनके अनुसार तुम तप-  
स्वियोंमें श्रेष्ठ परशुरामके समीप गमन  
करो। वह तुम्हारे इस बहुत बड़े दुःख  
और शोकको दूर करेंगे। भीष्म यदि  
उनकी बात न मानेगा; तो वह युद्धमें  
अवश्य ही उसका वध करेंगे। इससे  
तुम उसी प्रलयकालके अग्निके समान  
तेजस्वी परशुरामके समीप गमन करो।  
वह महातपस्वी महात्मा भार्गव तुमको  
सन्मार्गमें प्रतिष्ठित करेंगे। (२४-२७)

अनन्तर अम्बा बार बार लम्बी  
सांस लेती हुई मातामहको प्रणाम करके  
मधुर स्वरसे यह वचन बोली, आपकी  
आज्ञाके अनुसार मैं गमन करूंगी; परन्तु

उन लोक विख्यात महात्मा भार्गवका  
मैं कहाँपर दर्शन करूंगी! वह किस  
प्रकारसे मेरे तीव्र दुःखको नाश करेंगे  
और कैसे मैं उनके समीप जाऊंगी?  
उसे जाननेकी इच्छा करती हूँ। २७-२९

होत्रवाहन बोले, हे भद्रे। तुम स-  
त्यव्रती महाबल जामदग्न्य परशुराम-  
को महावनमें अत्यन्त कठिन तपस्या  
करते हुए वर्त्तमान देखोगी। परशुराम  
पर्वत श्रेष्ठ महेन्द्र गिरिके शिखरपर  
नित्य ही निवास करते हैं, और वेदको  
जाननेवाले ऋषि, गन्धर्व तथा अप्सरा  
भी वहाँपर विद्यमान रहती हैं। तुम  
उसी स्थानमें गमन करके उन दृढव्रती

अभिवाच्य च तं सूर्धा तपोवृद्धं दृढव्रतम् ॥ ३२ ॥  
 ब्रूयाश्चैनं पुनर्भद्रे यत्ते कार्यं मनीषितम् ।  
 मयि सङ्कीर्तिते रामः सर्वं तत्ते करिष्यति ॥ ३३ ॥  
 मम रामः सखा वत्से प्रीतियुक्तः सुहृच्च मे ।  
 जमदग्निसुतो वीरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३४ ॥  
 एवं ब्रुवति कन्यां तु पार्थिवे होत्रवाहने ।  
 अकृतव्रणः प्रादुरासीद्रामस्याऽनुचरः प्रियः ॥ ३५ ॥  
 ततस्ते मुनयः सर्वे समुत्तस्थुः सहस्रशः ।  
 स च राजा वयोवृद्धः सृङ्गयो होत्रवाहनः ॥ ३६ ॥  
 ततो हृष्टा कृतातिथ्यमन्योन्यं ते वनौकसः ।  
 सहिता भरतश्रेष्ठ निषेदुः परिवार्य तम् ॥ ३७ ॥  
 ततस्ते कथयामासुः कथास्तास्ता मनोरमाः ।  
 धन्या दिव्याश्च राजेन्द्र प्रीतिर्हर्षमुदा युताः ॥ ३८ ॥  
 ततः कथान्ते राजर्षिर्महात्मा होत्रवाहनः ।  
 रामं श्रेष्ठं महर्षीणामपृच्छदकृतव्रणम् ॥ ३९ ॥  
 क सम्प्रति महाबाहो जामदग्न्यः प्रतापवान् ।

तपमें लगे हुए महात्मा भार्गवको प्रणा-  
 म करके मेरा वचन कहना और अपना  
 अभिप्राय भी वहाँपर वर्णन करना ।  
 हे पुत्री ! वह सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ  
 वीरवर जमदग्निपुत्र परशुराम मेरे सखा  
 और प्रीतिपात्र सुहृद हैं; इससे मेरा  
 नाम लेनेहीसे वह तुम्हारा सम्पूर्ण का-  
 र्य सिद्ध करेंगे । (३०-३४)

राजा होत्रवाहन कन्यासे ऐसे वचन  
 कह रहे थे, उसी समय में परशुरामके  
 प्यारे सेवक अकृतव्रण वहाँपर आकर  
 उपस्थित हुए । तब वहाँपर वे सब  
 सहस्रों मुनि और अवस्थामें बूढ़े राजा

होत्रवाहन सब ही तपस्वी उठके खड़े  
 हुए । हे भरतर्षभ ! अनन्तर वे सब  
 तपस्वी लोग उनका यथा उचित अति-  
 थि-सत्कार करके सब कोई उनको  
 चारों ओरसे घेरकर बैठ गये । फिर  
 प्रीतिपूर्वक प्रसन्न चित्तसे बहुतसी दि-  
 व्य उत्तम और मनोहर कथाका प्रसङ्ग  
 करने लगे । (३५-३८)

अनन्तर कथाके समाप्त होने पर  
 महात्मा राजर्षि होत्रवाहनने अकृतव्रणसे  
 महर्षि श्रेष्ठ परशुरामकी बात पूछी; हे  
 महाबाहो अकृतव्रण ! वेद जाननेवालोंमें  
 श्रेष्ठ प्रतापवान् परशुरामजी इस समयमें



अकृतव्रण शक्यो वै द्रष्टुं वेदविदां वर ॥ ४० ॥  
 अकृतव्रण उवाच- भवन्तमेव सततं रामः कीर्त्तयति प्रभो ।  
 सृञ्जयो मे प्रियसखो राजर्षिरिति पार्थिव ॥ ४१ ॥  
 इह रामः प्रभाते श्वो भवितेति मतिर्मम ।  
 द्रष्टाऽस्येनमिहाऽऽद्यान्तं तव दर्शनकांक्षया ॥ ४२ ॥  
 इयं च कन्या राजर्षे किमर्थं वनमागता ।  
 कस्य चेयं तव च का भवतीच्छामि वदितुम् ॥ ४३ ॥  
 होत्रवाहन उवाच- द्रौहित्रीयं मम विभो काशिराजसुता प्रिया ।  
 ज्येष्ठा स्वयंवरे तस्यौ भगिनीभ्यां सहाऽनघ ॥ ४४ ॥  
 इयमम्बेति विख्याता ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ।  
 अम्बिकाम्बालिके कन्ये कनीयस्यौ तपोधन ॥ ४५ ॥  
 समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्या ततोऽभवत् ।  
 कन्यानिमित्तं विप्रर्षे तत्राऽऽसीदुत्सवो महान् ॥ ४६ ॥  
 ततः किल महावीर्यो भीष्मः शान्तनवो नृपान् ।  
 अधिक्षिप्य महातेजास्त्रिभुवः कन्यां जहार ताः ॥ ४७ ॥

कहाँपर मिल सकते हैं ? ( ३९-४० )

अकृतव्रण बोले, हे प्रभावसे युक्त राजेन्द्र ! परशुराम “राजर्षि होत्रवाहन मेरे प्यारे मित्र हैं” ऐसा कहकर सदा तुम्हारा स्मरण किया करते हैं; मुझे बोध होता है, कि तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे वह कल यहींपर आवेंगे; इससे यहाँपर आनेहीसे तुम उन्हें देख सकोगे। हे राजर्षि ! यह कन्या किस कारणसे वनमें आई है ? यह किसकी कन्या है और तुम्हारी कौन होती है ? इस विषयको सुननेकी मुझे बहुत ही इच्छा है । ( ४१-४३ )

होत्रवाहन बोले, हे विभो ! यह मेरी

द्रौहित्री, काशिराजकी पुत्री और इसका नाम अम्बा है । हे तपोधन ! काशिराजकी यह जेठी कन्या है, अम्बिका और अम्बालिका नाम्नी दो छोटी बहिनोंके सहित इसका स्वयंवर हुआ था उसमें पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षत्रिय राजा कन्याको प्राप्त करनेके निमित्त काशीपुरीमें इकट्ठे हुए थे । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! उस समय वहाँपर अत्यन्त ही उत्सव हुआ था । ४४-४६

अनन्तर महाबली अत्यन्त तेजस्वी शान्तनुपुत्र भीष्मने सब राजाओंको पराजित करके तीनों कन्याओंको हरण किया था । वह प्रतापी भीष्म सब राजाओंको परास्तकर तीनों कन्याओंके सहित

निर्जित्य पृथिवीपालानथ भीष्मो गजाह्वयम् ।  
 आजगाम विशुद्धात्मा कन्याभिः सह भारतः ॥ ४८ ॥  
 सत्यवत्यै निवेद्याऽथ विवाहं समनन्तरम् ।  
 भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य समाज्ञापयत प्रभुः ॥ ४९ ॥  
 तं तु वैवाहिकं दृष्ट्वा कन्येयं समुपार्जितम् ।  
 अब्रवीत्तत्र गाढेयं मन्त्रिमध्ये द्विजर्षभ ॥ ५० ॥  
 मया शाल्वपतिर्वीरो मनसाऽभिवृतः पतिः ।  
 न मामर्हसि धर्मज्ञ दातुं भ्रात्रेऽन्यमानसाम् ॥ ५१ ॥  
 तच्छ्रुत्वा वचनं भीष्मः सम्मन्य सह मन्त्रिभिः ।  
 निश्चित्य विससर्जेमां सत्यवत्या मते स्थितः ॥ ५२ ॥  
 अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वं सौभपतिं ततः ।  
 कन्येयं मुदिता तत्र काले वचनमब्रवीत् ॥ ५३ ॥  
 विसर्जिताऽस्मि भीष्मेण धर्मं मां प्रतिपादय ।  
 मनसाऽभिवृतः पूर्वं मया त्वं पार्थिवर्षभ ॥ ५४ ॥  
 प्रत्याचर्यौ च शाल्वोऽस्याश्चारित्रस्याऽभिशाङ्कितः ।  
 सेयं तपोवनं प्राप्ता तापस्येऽभिरता भृशम् ॥ ५५ ॥

हस्तिनापुरमें आकर सत्यवतीको निवेदन करके निज भ्राता विचित्रवीर्यके विवाहके निमित्त आज्ञा दी। (४७-४९)

हे द्विजश्रेष्ठ ! उस समय इस कन्या विचित्रवीर्यको विवाहके निमित्त उपस्थित और माङ्गलिक सूत्रबन्धन आदिसे युक्त होते देखकर मन्त्रियोंके बीच भीष्मसे यह वचन बोली, हे वीर ! मैंने मन ही मन शाल्वराजको पतिरूपसे वरण किया है, इससे हे धर्मके जानने-वाले ! दूसरे पुरुषमें आसक्त कामिनीको भाईके हाथमें समर्पण करना तुमको उचित नहीं है। (५०-५१)

भीष्मने उस वचनको सुनकर मन्त्रियोंके सङ्ग विचार कर सत्यवतीकी सम्मतिसे इसे विसर्जन किया। तब यह कन्या भीष्मकी आज्ञा पाकर प्रसन्न चित्तसे सौभपति शाल्वके निकट जाकर यह वचन बोली, हे राजन् ! मैंने मन ही मन तुमको पतिरूपसे वरण किया है, इस समय भीष्मने मुझको त्याग दिया, इससे अब तुम मेरे धर्मकी रक्षा करो। परन्तु शाल्वराजने इसके चरित्रके विषयमें शङ्कित होकर इसको ग्रहण करनेमें अस्वीकार किया। इसी कारणसे यह तपके निमित्त अत्यन्त अभिलाषा

अम्बोवाच—

मया च प्रत्यभिज्ञाता वंशस्य परिकीर्तनात् ।

अस्य दुःखस्य चोत्पत्तिं भीष्ममेवेह मन्यते ॥ ५६ ॥

भगवन्नेवमेवेह यथाऽऽह पृथिवीपतिः ।

शरीरकर्ता मातुर्मे सृज्यो होत्रवाहनः ॥ ५७ ॥

नह्युत्सहे स्वनगरं प्रतियातुं तपोधन ।

अपमानभयाच्चैव वीडया च महामुने ॥ ५८ ॥

यत्तु मां भगवान् रामो वक्ष्यति द्विजसत्तम ।

तन्मे कार्यतमं कार्यमिति मे भगवन्मतिः ॥ ५९ ॥ [५९२८]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि होत्रवाहनां वासंवादे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

अकृतव्रण उवाच—दुःखद्वयमिदं भद्रे कतरस्य चिकीर्षसि ।

प्रतिकर्तव्यमबले तत्त्वं वत्से वदस्व मे ॥ १ ॥

यदि सौभपतिर्भद्रे नियोक्तव्यो मतस्तव ।

नियोक्ष्यति महात्मा स रामस्त्वद्वितकाभ्यया ॥ २ ॥

अथाऽऽपगेयं भीष्मं त्वं रामेणेच्छासि धीमता ।

रणे विनिर्जितं द्रष्टुं कुर्यात्तदपि भार्गवः ॥ ३ ॥

करके इस तपोवनमें आई है और मैंने भी वंशका नाम लेनेसे इसको जाना है । हे तपोधन ! दुःखकी उत्पत्तिके विषयमें यह भीष्महीको कारण समझती है। (५२-५६)

अम्बा बोली, हे द्विजसत्तम ! यह राजर्षि सृज्य होत्रवाहन जो कुछ कहते हैं, वह सब ठीक है । हे महामुनि ! लज्जा और अपमानके भयसे फिर अपने पिताके घर जानेका मुझे उत्साह नहीं होता है । हे भगवन् ! इससे अब मेरी यह इच्छा है, कि भगवान् परशुराम मुझको जो कुछ कहेंगे, वही कार्य मैं सब प्रकारसे करूंगी । (५७-५९) [५९२८]

उद्योगपर्वमें एकसौ छिहत्तर अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ सत्तर अध्याय ।

अकृतव्रण बोले, भद्रे ! तुमको यह दो दुःख उपास्थित हैं; इनमेंसे तुम किसके प्रतीकारकी इच्छा करती हो; वह मुझसे यथार्थ रूपसे वर्णन करो । हे भद्रे ! यदि शाल्वसे विवाह करनेकी तुम्हारी इच्छा होवे, तो महात्मा परशुराम अवश्य ही तुम्हारे हितके निमित्त उसके हाथमें तुम्हें समर्पण करेंगे; और जो तुम गंगानन्दन भीष्मको बुद्धिमान् परशुरामके संग युद्धमें पराजित हुए देखनेकी इच्छा करो, तो भृगुनन्दन परशुरामजी उस कार्यको भी कर सकते हैं । ( १-३ )

अम्बोवाच—

सृञ्जयस्य वचः श्रुत्वा तव चैव शुचिस्मिते ।

यदत्र ते भृशं कार्यं तदचैव विचिन्त्यताम् ॥ ४ ॥

अपनीताऽस्मि भीष्मेण भगवन्नविजानता ।

नाऽभिजानाति मे भीष्मो ब्रह्मञ्जाल्वगतं मनः ॥ ५ ॥

एतद्विचार्य मनसा भवानेतद्विनिश्चयम् ।

विचिनोतु यथान्यायं विधानं क्रियतां तथा ॥ ६ ॥

भीष्मे वा कुरुशार्दूले शाल्वराजेऽथवा पुनः ।

उभयोरेव वा ब्रह्मन्युक्तं यत्तत्समाचर ॥ ७ ॥

निवेदितं मया ह्येतद्दुःखमूलं यथातथम् ।

विधानं तत्र भगवन्कर्तुमर्हसि युक्तितः ॥ ८ ॥

अकृतव्रण उवाच-उपपन्नमिदं भद्रे यदेवं वरवर्णिनि ।

धर्मं प्रति वचो ब्रूयाः शृणु चेदं वचो मम ॥ ९ ॥

यदि त्वामापगेयो वै न नयेद्भजसाह्वयम् ।

शाल्वस्त्वां शिरसा भीरु गृहीयाद्रामचोदितः ॥ १० ॥

तेन त्वं निर्जिता भद्रे यस्मान्नीताऽसि भाविनि ।

हे सुन्दरि ! इससे यह राजर्षि सृञ्जय और तुम मेरी बात सुनकर, अब इस विषयमें तुम्हें जो कुछ करना होवे, उसका आज ही विशेष रूपसे विचार कर रखो । ( ४ )

अम्बा बोली, हे भगवन् ! भीष्मने विना जाने ही मुझको हरण किया था, मेरा मन जो शाल्वराजके सङ्ग लगा था, इस बातको भीष्म नहीं जानते थे। हे ब्राह्मण ! इससे आप अच्छी प्रकारसे विचार पूर्वक न्यायके अनुसार जैसा निश्चय कीजिये; उसहीको करनेका विधान कीजिये । कुरुशार्दूल भीष्म अथवा शाल्वराज वा दोनोंके विषयमें जैसा

आचरण करना उचित होवे; वैसा ही कार्य तुम करो । हे भगवन् ! मैंने अपना दुःखका मूल कारण पूर्ण रीतिसे कह सुनाया है; इस समय युक्तिके अनुसार जैसा करना उचित होवे, वैसा ही आप लोग उपाय कीजिये । ( ५-८ )

अकृतव्रण बोले, हे भद्रे ! तुमने धर्मकी ओर लक्ष्य करके जो यह वचन कहा है, वह ठीक है, इस विषयमें मेरा यह वचन सुनो । हे भीरु ! यदि भीष्म तुमको हस्तिनापुर न लेजाते, तो शाल्व परशुरामकी आज्ञामें तुम्हें मस्तकके ऊपर धारण करते, हे भाविनि ! भीष्मने सब राजाओंको जीत कर तुम्हें हरण

अम्बोवाच—

भीष्म उवाच—

संशयः शाल्वराजस्य तेन त्वयि सुमध्यमे ॥ ११ ॥

भीष्मः पुरुषमानी च जितकाशी तथैव च ।

तस्मात्प्रतिक्रिया युक्ता भीष्मे कारयितुं तव ॥ १२ ॥

समाऽप्येष सदा ब्रह्मन्हृदि कामोऽभिवर्त्तते ।

घातयेयं यदि रणे भीष्ममित्येव नित्यदा ॥ १३ ॥

भीष्मं वा शाल्वराजं वा यं वा दोषेण गच्छसि ।

प्रशाधि तं महाबाहो यत्कृतेऽहं सुदुःखिता ॥ १४ ॥

एवं कथयतामेव तेषां स दिवसो गतः ।

रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ सुखशीतोष्णमारुता ॥ १५ ॥

ततो रामः प्रादुरासीत्प्रज्वलन्निव तेजसा ।

शिष्यैः परिवृतो राजञ्जटाचीरधरो मुनिः ॥ १६ ॥

धनुष्पाणिरदीनात्मा खड्गं विभ्रत्परश्वधी ।

विरजा राजशार्दूल सृञ्जयं सोऽभ्ययानृपम् ॥ १७ ॥

ततस्तं तापसा दृष्ट्वा स च राजा महातपाः ।

तस्थुः प्राञ्जलयो राजन्सा च कन्या तपस्विनी ॥ १८ ॥

किया है; इस ही निमित्त तुम्हारे ऊपर शाल्वराजको सन्देह हुआ है, हे कल्याणि ! भीष्म पुरुषमानी और जयसे युक्त है; इससे उसके संग ही शत्रुता समाप्त करना तुमको उचित है । (९-१२)

अम्बा बोली, हे ब्रह्मन् ! मेरे भी मनमें यही इच्छा है, कि जिस प्रकारसे हो सके भीष्मका युद्धमें वध कराऊँ । हे महाऋषि ! जिस कारणसे मैं अत्यन्त दुःखिता हुई हूँ, वह भीष्म ही हो अथवा शाल्व ही हो; जिसको आप लोग दोषी स्थिर कीजिये उसहीका शासन करिये । ( १३-१४ )

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! इसी प्रकारसे

वातचीत करते हुए उन लोगोंका वह दिन बीत गया और सुख देनेवाली शीतल और उष्ण वायुसे युक्त रात्रि भी बीत गई । अनन्तर जटा चीर धारण किये तेजसे जलते हुए परशुरामजी शिष्य मण्डलीके सहित आकर उपस्थित हुए । हे राजशार्दूल ! कांधे पर फरसा लिये तलवार तथा धनुष बाण धारण किये हुए पापरहित भार्गव महात्मा राजा होत्रवाहनसे मिलने को वहाँ पर आये । (१५—१७)

उनको देखकर सम्पूर्ण तपस्वी और महातपस्वी राजा होत्रवाहन और तपस्विनी कन्या सब लोग हाथ जोड़कर

पूजयामासुरव्यग्रा मधुपर्केण भार्गवम् ।  
 अर्चितश्च यथान्यायं निषसाद सहैव तैः ॥ १९ ॥  
 ततः पूर्वव्यतीतानि कथयन्तौ स्म तावुभौ ।  
 आसातां जामदग्न्यश्च सृञ्जयश्चैव भारत ॥ २० ॥  
 तथा कथान्ते राजर्षिभृगुश्रेष्ठं महाबलम् ।  
 उवाच मधुरं काले रामं वचनमर्थवत् ॥ २१ ॥  
 रामेयं मम दौहित्री काशिराजसुता प्रभो ।  
 अस्याः शृणु यथातत्त्वं कार्यं कार्यविशारद ॥ २२ ॥  
 परमं कथयतां चेति तां रामः प्रत्यभाषत ।  
 ततः साऽभ्यवदद्रामं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ २३ ॥  
 ततोऽभिवाच्य चरणौ रामस्य शिरसौ शुभौ ।  
 स्पृष्ट्वा पद्मदलाभाभ्यां पाणिभ्यामग्रतः स्थिता ॥ २४ ॥  
 रुरोद सा शोकवती बाष्पव्याकुललोचना ।  
 प्रपेदे शरणं चैव शरण्यं भृगुनन्दनम् ॥ २५ ॥

राम उवाच— यथा त्वं सृञ्जयस्याऽस्य तथा मे त्वं नृपात्मजे ।

खडे होगये और स्थिरचित्तसे मधुपर्कसे परशुरामकी पूजा की। वह भी यथा न्यायसे पूजित होकर उन लोगोंके सहित आसनपर बैठे। हे भारत ! अनन्तर परशुराम और होत्रवाहन दोनों महात्मा एकत्र बैठकर पहिले अत्यन्त उत्तम कथाओंको कहने लगे। अनन्तर उस कथाके समाप्त होने पर राजर्षि होत्रवाहन अवसर देखकर महाबली भृगुनन्दन परशुरामजीसे यह अर्थयुक्त मधुर वचन कहने लगे, हे परशुराम ! यह कन्या काशिराजकी पुत्री और मेरी दौहित्री है, हे कार्यविशारद ! इसका एक कार्य है; उसको सुनो । (१८-२२)

यह वचन सुन परशुराम अम्बासे बोले, तुम्हारा कौनसा कार्य है ? मुझसे कहो। तब अम्बा जलती हुई अग्निके समान परशुरामके समीप जाकर अपने कमलके समान हाथों से उनके दोनों चरणको स्पर्श कर शिरझुकाकर प्रणाम करके सम्मुख खड़ी हुई और शोकित तथा दुःखित होकर आंखोंमें आंसू भर के रोदन करती हुई शरणागतकी रक्षा करनेवाले परशुरामजी की शरणापन्न हुई । ( २३—२५ )

परशुराम बोले, हे राजपुत्री ! तुम इस राजसत्तमकी जैसी प्रिय हो, मुझे भी वैसी ही हो; इससे तुम्हारे मनमें

ब्रूहि यत्ते मनोदुःखं करिष्ये वचनं तव ॥ २६ ॥  
 अम्बोवाच— भगवञ्शरणं त्वाऽद्य प्रपन्नाऽस्मि महाव्रतम् ।  
 शोकपङ्कणान्ममग्रां घोरादुद्धर मां विभो ॥ २७ ॥  
 भीष्म उवाच— तस्याश्च दृष्ट्वा रूपं च वपुश्चाऽभिनवं पुनः ।  
 सौकुमार्यं परं चैव रामश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ २८ ॥  
 किमियं वक्ष्यतीत्येवं विममर्श भृगूद्वहः ।  
 इति दध्यौ चिरं रामः कृपयाऽभिपरिप्लुतः ॥ २९ ॥  
 कथयतामिति सा भूयो रामेणोक्ता शुचिस्मिता ।  
 सर्वमेव यथातत्त्वं कथयामास भार्गवे ॥ ३० ॥  
 तच्छ्रुत्वा जामदग्न्यस्तु राजपुत्र्या वचस्तदा ।  
 उवाच तां वरारोहां निश्चित्याऽर्थविनिश्चयम् ॥ ३१ ॥  
 राम उवाच— प्रेषयिष्यामि भीष्माय कुरुश्रेष्ठाय भाविनि ।  
 करिष्यति वचो मय्यं श्रुत्वा च स नराधिपः ॥ ३२ ॥  
 न चेत्करिष्यति वचो मयोक्तं जाह्नवीसुतः ।  
 धक्ष्याम्यहं रणे भद्रे सामात्यं शस्त्रतेजसा ॥ ३३ ॥  
 अथवा ते मतिस्तत्र राजपुत्रि न वर्तते ।

जो कुछ दुःख है, उसको कहो, मैं तुम्हारे वचनकी रक्षा करूंगा । ( २६ )

अम्बा बोली, हे भगवन् ! हे महाव्रत ! आज मैं तुम्हारी शरणागत हुई हूँ; इससे महाघोर शोकरूपी कीचड़में फंसी हुई मुझको तुम उद्धार करो । ( २७ )

भीष्म बोले, भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी उसके रूप, तरुणाई, देह और परम सुकुमारताको देखकर चिन्ता करने लगे, कि यह क्या कहेंगी ? ऐसा मनमें विचारते हुए कृपायुक्त हो कर बहुत समय तक ध्यान करने लगे, अनन्तर बोले, तुम्हारा क्या कार्य है, उसे कहो।

तब उस कन्याने भार्गवका वचन सुनकर उनके समीपमें विस्तारपूर्वक अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया । ( २८-३० )

परशुरामजी राजपुत्रीके सब वचनोंको सुनकर कार्यका निश्चय करके उस कुमारीसे बोले, हे भाविनि ! मैं कुरुश्रेष्ठ भीष्मके निकट अपना सन्देश भेजूंगा, वह अवश्य ही मेरे वचनको सुनकर उसे स्वीकार करेगा । गङ्गानन्दन भीष्म यदि इकचारगी मेरी बातोंको न मानेगा, तो मैं अपने शस्त्रोंके प्रतापसे युद्धमें उसको बन्धु बान्धव और अनुयायियोंके सहित भस्म कर दूंगा । अथवा उससे

अम्बोवाच—

यावच्छाल्वपतिं वीरं योजयाम्यत्र कर्मणि ॥ ३४ ॥

विसर्जिताऽहं भीष्मेण श्रुत्वैव भृगुनन्दन ।

शाल्वराजगतं भावं मम पूर्वं मनीषितम् ॥ ३५ ॥

सौभराजमुपेत्याऽहमवाचं दुर्वचं वचः ।

न च मां प्रत्यगृह्णात्स चारित्र्यपरिशङ्कितः ॥ ३६ ॥

एतत्सर्वं विनिश्चित्य स्वबुद्ध्या भृगुनन्दन ।

यदत्रौपयिकं कार्यं तच्चिन्तयितुमर्हसि ॥ ३७ ॥

मम तु व्यसनस्याऽस्य भीष्मो मूलं महाव्रतः ।

येनाऽहं वशमानीता समुत्क्षिप्य बलात्तदा ॥ ३८ ॥

भीष्मं जहि महाबाहो यत्कृते दुःखमीदृशम् ।

प्राप्ताऽहं भृगुशार्दूल चराम्यप्रियमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

स हि लुब्धश्च नीचश्च जितकाशी च भार्गव ।

तस्मात्प्रतिक्रिया कर्तुं युक्ता तस्मै त्वयाऽनघ ॥ ४० ॥

एष मे क्रियमाणाया भारतेन तदा विभो ।

अभवद्भूदि सङ्कल्पो घातयेयं महाव्रतम् ॥ ४१ ॥

यदि तुम्हारा मन निवृत्त होवे, तो मैं शाल्वराजको तुम्हारे विवाहके निमित्त उपस्थित करूँ । (३१-३४)

अम्बा बोली; हे भृगुनन्दन! शाल्वराजके विषयमें मेरे पहिले सङ्कल्पको सुनकर ही भीष्मने मेरा परित्याग किया था । मैंने सौभराजके समीप आकर उन सब वचनोंको निवेदन किया; परन्तु उन्होंने मेरे चरित्र पर शङ्कित होकर मुझे ग्रहण नहीं किया । हे भृगुनन्दन ! इससे सम्पूर्ण विषयको आप अपनी बुद्धिसे निश्चय करके जैसा करना उचित होवे, वैसा कीजिये । ( ३५-३७ )

महाव्रत भीष्म ही मेरे इस विपदका

कारण है; क्योंकि बलपूर्वक मुझे ग्रहण करके उन्होंने अपने वशमें किया था; इससे हे महाबाहो ! जिसके निमित्त मैंने ऐसा दुःख पाया है; उस भीष्मही को आप युद्धमें विनष्ट कीजिये । हे भृगु शार्दूल ! इससे ही मैं अपने वैरका पलटा लूंगी । हे भार्गव ! भीष्म अत्यन्त लोभी नीच और जयके अभिमानमें भरा है; इससे उसका वध करना ही तुमको उचित है । (३८-४०)

हे विभो ! जिस समय भीष्मने मुझको हरण किया था उस समय मेरे मनमें किसी प्रकारसे इसका वध कराऊंगी; ऐसा ही सङ्कल्प उपस्थित हुआ था ।



तस्मात्कामं ममाऽद्येयं रामं सम्पादयानघ ।

जहि भीष्मं महाबाहो यथा वृत्रं पुरन्दरः ॥ ४२ ॥ [५९७०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि  
रामाम्बासंवादे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

भीष्म उवाच— एवमुक्तस्तदा रामो जहि भीष्ममिति प्रभो ।

उवाच रुदतीं कन्यां चोदयन्तीं पुनः पुनः ॥ १ ॥

काश्ये न कामं गृह्णामि शस्त्रं वै वरवर्णिनि ।

ऋते ब्रह्मविदां हेतोः किमन्यत्करवाणि ते ॥ २ ॥

वाचा भीष्मश्च शाल्वश्च मम राज्ञि वशानुगौ ।

भाविष्यतोऽनवद्याङ्गि तत्करिष्यामि मा शुच ॥ ३ ॥

न तु शस्त्रं ग्रहीष्यामि कथञ्चिदपि भाविनि ।

ऋते नयोगाद्विप्राणामेष मे समयः कृतः ॥ ४ ॥

अम्बोवाच— मम दुःखं भगवता व्यपनेयं यतस्ततः ।

तच्च भीष्मप्रसूतं मे तं जहीश्वर मा चिरम् ॥ ५ ॥

राम उवाच— काशिकन्ये पुनर्ब्रूहि भीष्मस्ते चरणावुभौ ।

हे राम ! इससे अब आप मेरी उसी  
अभिलाषाको पूर्ण कीजिये । हे महाबा-  
हो ! इन्द्रने जैसे वृत्रासुरका संहार किया  
था, तुम भी भीष्मका उसी भाँतिसे  
वध करो । (४१-४२) [ ५९७० ]

उद्योगपर्वमें एकसौ सत्तर अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ अठत्तर अध्याय ।

भीष्म बोले, तब परशुरामजी “ भीष्म  
का वध करो ” बारबार ऐसा ही  
कहकर रोदन करनेवाली कुमारी अ-  
म्बासे बोले, हे सुन्दरी ! हे काशिराज-  
पुत्रि ! ब्रह्मवादियोंके प्रयोजनके विना  
अब मैं शस्त्रोंको नहीं ग्रहण करता हूँ,  
इससे तुम्हारा और कौनसा कार्य करना

होगा उसे कहो। हे राजनन्दिनि ! भीष्म  
और शाल्व दोनों ही मेरे वशवर्त्तों हो-  
वेंगे; हे अनिन्दिते ! तुम शोक मत  
करो, तुम्हारे कार्यको सिद्ध करूंगा ।  
परन्तु हे भाविनि ! विना ब्राह्मणोंकी  
आज्ञाके मैं कभी शस्त्र ग्रहण नहीं करूँ-  
गा; क्योंकि मैंने पहिले ऐसा ही नियम  
कर लिया है । (१-४)

अम्बा बोली, हे प्रभो ! जिस प्रकार-  
से होंवे, मेरे दुःखको छुड़ाना तुम्हारा  
कर्त्तव्य कार्य है; वह दुःख भीष्महीसे  
उत्पन्न हुआ है, इससे भीष्मको ही  
शीघ्र नष्ट कीजिये । (५)

परशुराम बोले, हे राजपुत्रि ! तुम

शिरसा वन्दनार्होऽपि ग्रहीष्यति गिरा मम ॥ ६ ॥  
 अम्बोवाच— जहि भीष्मं रणे राम गर्जन्तमसुरं यथा ।  
 समाहूतो रणे राम मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥  
 प्रतिश्रुतं च यदपि तत्सत्यं कर्तुमर्हसि ॥ ७ ॥  
 भीष्म उवाच— तयोः संवदतोरेवं राजन्रामाम्बयोस्तदा ।  
 ऋषिः परमधर्मात्मा इदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥  
 शरणागतां महाबाहो कन्यां न त्यक्तुमर्हसि ।  
 यदि भीष्मो रणे राम समाहूतस्त्वया मृधे ॥ ९ ॥  
 निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूयात्कुर्याद्वा वचनं तव ।  
 कृतमस्या भवेत्कार्यं कन्याया भृगुनन्दन ॥ १० ॥  
 वाक्यं सत्यं च ते वीर भविष्यति कृतं विभो ।  
 इयं चापि प्रतिज्ञा ते तदा राम महामुने ॥ ११ ॥  
 जित्वा वै क्षत्रियान्सर्वान्ब्राह्मणेषु प्रतिश्रुता ।  
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव रणे यदि ॥ १२ ॥  
 ब्रह्मद्विड् भविता तं वै हनिष्यामीति भार्गव ।  
 शरणार्थे प्रपन्नानां भीतानां शरणार्थिनाम् ॥ १३ ॥

यदि कहो, तो भीष्म तुमसे वन्दना करने योग्य होकर भी मेरे वचनसे तुम्हारे दोनों पावों पर अपना शिर रक्खेगा । (६)

अम्बा बोली, हे राम! यदि मेरे प्रिय कार्यको तुम करनेकी इच्छा करते हो, तो युद्धमें आये गर्जते हुए असुरकी भांति भीष्मका वध करो । तुमने जो प्रतिज्ञा की है उसे सत्य करना ही उचित है । (७)

भीष्म बोले, हे राजन् ! परशुराम और अम्बाका इस ही प्रकारसे वादानुवाद हो रहा था, उसी समयमें परम

धर्मात्मा अकृतव्रण ऋषि यह वचन बोले, हे महाबाहो भृगुनन्दन ! शरणागता कन्याका परित्याग न कीजिये । आपके संमुख युद्धमें आकर भीष्म यदि कहे, कि “मैं परास्त हुआ” अथवा यदि तुम्हारे वचनोंकी रक्षा करे; तौभी इसका कार्य पूर्ण होगा और तुम्हारा वचन भी सत्य होगा । (८-११)

हे महाबाहो ! पहिले सब क्षत्रियोंको जीतकर तुमने ब्राह्मणोंके समीपमें यह प्रतिज्ञा की थी, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा जो कोई पुरुष ब्राह्मणोंका द्रोही होगा; उसको मैं विनष्ट करूंगा

राम उवाच—

न शक्यामि परित्यागं कर्तुं जीवन्कथञ्चन ।  
 यश्च कृत्स्नं रणे क्षत्रं विजेष्यति समागतम् ॥ १४ ॥  
 दीप्तात्मानमहं तं वै हनिष्यामीति भार्गव ।  
 स एवं विजयी राम भीष्मः कुरुकुलोद्वहः ।  
 तेन युद्धयस्व संग्रामे समेत्य भृगुनन्दन ॥ १५ ॥  
 स्मराम्यहं पूर्वकृतां प्रतिज्ञामृषिसत्तम ।  
 तथैव च चरिष्यामि यथा साध्नैव लप्स्यते ॥ १६ ॥  
 कार्यमेतन्महद्ब्रह्मन्काशिकन्यामनोगतम् ।  
 गमिष्यामि स्वयं तत्र कन्यामादाय यत्र सः ॥ १७ ॥  
 यदि भीष्मो रणश्लाघी न करिष्यति मे वचः ।  
 हनिष्याम्येनमुद्रित्कमिति मे निश्चिता मतिः ॥ १८ ॥  
 न हि बाणा मयोत्सृष्टाः सज्जन्तीह शरीरिणाम् ।  
 कायेषु विदितं तुभ्यं पुरा क्षत्रियसङ्गरे ॥ १९ ॥  
 एवमुक्त्वा ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः ।  
 प्रयाणाय मतिं कृत्वा समुत्तस्थौ महातपाः ॥ २० ॥

और भयभीत शरणमें आये हुए लोगों-  
 का जीते जी कभी परित्याग न कर  
 सकूंगा, और जो पुरुष सम्पूर्ण क्षत्रिय  
 कुलको युद्धमें परास्त करेगा; उस तेज-  
 स्वी पुरुषका भी मैं वध करूंगा । हे  
 भृगुनन्दन ! वह कुरुकुल-धुरंधर भी-  
 ष्म भी इसी प्रकारसे विजयी हुआ है;  
 इससे रणभूमिमें आये हुए उसके सङ्ग  
 युद्ध कीजिये । ( ११-१२ )

परशुराम बोले, हे ऋषिसत्तम ! मैं  
 पहिले की हुई प्रतिज्ञाका स्मरण करता  
 हूँ, तौभी सामपूर्वक यदि कार्य सिद्ध  
 होगा, तो उसहीका विधान करूंगा ।  
 हे ब्रह्मन् ! काशिराजकी कन्याके मन-

का कार्य बहुत ही बड़ा है, इससे इस-  
 को सङ्गमें लिवाकर मैं स्वयं भीष्मके  
 समीप गमन करूंगा । युद्धमें प्रशंसित  
 भीष्म यदि मेरे वचनोंको न मानेगा  
 तो मेरा यह निश्चय संकल्प है, कि मैं  
 उस अभिमानी क्षत्रियको युद्धमें विनष्ट  
 करूंगा । मेरे हाथसे छूटे हुए सम्पूर्ण  
 बाण मनुष्योंके शरीरमें लगकर उसे  
 नहीं छोड़ते, वह तुमको पहिले क्षत्रि-  
 योंके युद्धमें विदित ही होगया  
 है । ( १६-१९ )

तपस्वी परशुराम ऐसा वचन कह  
 कर उन ब्रह्मवादियोंके सहित प्रस्थान  
 करनेके निमित्त संकल्प करके उठ खड़े

ततस्ते तामुषित्वा तु रजनीं तत्र तापसाः ।

हुताग्नयो जप्तजप्याः प्रतस्थुर्मज्जिघांसया ॥ २१ ॥

अभ्यगच्छत्ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः ।

कुरुक्षेत्रं महाराज कन्यया सह भारत ॥ २२ ॥

न्यविशन्त ततः सर्वे परिगृह्य सरस्वतीं ।

तापसास्ते महात्मानो भृगुश्रेष्ठपुरस्कृताः ॥ २३ ॥

भीष्म उवाच — ततस्तृतीये दिवसे सन्दिदेश व्यवास्थितः ।

कुरु प्रियं स मे राजन्प्राप्तोऽस्मीति महाव्रतः ॥ २४ ॥

तमागतमहं श्रुत्वा विषयान्तं महाबलम् ।

अभ्यगच्छं जवेनाऽऽशु प्रीत्या तेजोनिधिं प्रभुम् ॥ २५ ॥

गां पुरस्कृत्य राजेन्द्र ब्राह्मणैः परिवारितः ।

ऋत्विग्भिर्देवकल्पैश्च तथैव च पुरोहितैः ॥ २६ ॥

स मामभिगतं दृष्ट्वा जामदग्न्यः प्रतापवान् ।

प्रतिजग्राह तां पूजां वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

राम उवाच — भीष्म कां बुद्धिमास्थाय काशिराजसुता तदा ।

अकामेन त्वयाऽऽनीता पुनश्चैव विसर्जिता ॥ २८ ॥

हुए । अनन्तर उन तपस्वियोंने वहाँपर उस रात्रिको बिताकर सबेरा होते ही होम जप और समस्त नित्यकर्म समाप्त करके मेरे धंधके निमित्त प्रस्थान किया । हे भारत ! अनन्तर परशुरामने उन तपस्वी और कन्याके सहित कुरुक्षेत्रमें आकर सरस्वती नदीके तीर पर विश्राम किया । ( २०-२३ )

भीष्म बोले, हे राजन् ! अनन्तर उस महाव्रती अत्यन्त तेजस्वी परशुराम-ने वहाँपर स्थित होके तीसरे दिन मेरे समीप यह सन्देशा प्रेरित किया, कि मैं आया हूँ; मेरे प्रिय कार्यको पूर्ण करो ।

वह महातेजस्वी बलवान् तपोनिधि मेरे निमित्त आये हैं, यह सुनकर मैं प्रसन्न चित्तसे ब्रह्मचारी ऋत्विक् पुरोहित और ब्राह्मणोंके सहित एक गऊ लेकर आ-तुरतासे शीघ्र ही उनके समीपमें गमन किया । ( २४-२६ )

प्रतापवान् परशुरामजीने मुझको वहाँपर उपस्थित देखकर वह पूजा ग्रहण की और मुझसे यह वचन बोले, हे भीष्म ! तुमने काम रहित होकर भी कैसी बुद्धि ग्रहण की है, इस काशिराज की कन्याके स्वयंवरके समयमें तुम-ने इसे हरण किया, और फिर किस

विभ्रंशिता त्वया हीयं धर्मादास्ते यशस्विनी ।  
 परामृष्टां त्वया हीमां को हि गन्तुमिहाऽर्हति ॥ २९ ॥  
 प्रत्याख्याता हि शाल्वेन त्वया नीतेति भारत ।  
 तस्मादिमां मन्त्रियोगात्प्रतिगृहीष्व भारत ॥ ३० ॥  
 स्वधर्मं पुरुषव्याघ्र राजपुत्री लभत्वियम् ।  
 न युक्तस्त्ववमानोऽयं राज्ञां कर्तुं त्वयाऽनघ ॥ ३१ ॥  
 ततस्तं वै विमनसमुदीक्षयाऽहमथाऽब्रुवम् ।  
 नाऽहमेनां पुनर्दद्यां ब्रह्मन्भ्रात्रे कथञ्चन ॥ ३२ ॥  
 शाल्वस्याऽहमिति प्राह पुरा मामेव भार्गव ।  
 मया चैवाऽभ्यनुज्ञाता गतेयं नगरं प्रति ॥ ३३ ॥  
 न भयान्नाऽप्यनुक्रोशान्नाऽर्थलोभान्न काम्यया ।  
 क्षात्रं धर्ममहं जह्यामिति मे व्रतमाहितम् ॥ ३४ ॥  
 अथ मामब्रवीद्रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।  
 न करिष्यसि चेदेतद्वाक्यं मे नरपुङ्गव ॥ ३५ ॥

निमित्तसे इसका परित्याग किया ?  
 तुम्हारे परित्याग करनेहीसे यह तप-  
 स्विनी निज धर्मसे अष्ट हो रही है; क्यों-  
 कि जब तुमने स्पर्श किया है, तब कौन  
 पुरुष इसको ग्रहण कर सकता है ? हे  
 भारत ! तुमने इसे हरण किया था,  
 इसी निमित्त शाल्वने इसको अपने  
 घरमें नहीं रक्खा ! इससे अब मेरी  
 आज्ञासे तुम इसका पाणिग्रहण करो,  
 हे पुरुषसिंह ! यह राजपुत्री निज  
 धर्मका लाभ उठावे । हे पापरहित !  
 राजाओंका ऐसा अवमान करना तुमको  
 उचित नहीं है । ( २७—३१ )

अनन्तर मैंने उनसे यह वचन कहा,  
 हे ब्राह्मण ! मैं किसी प्रकारसे भाईक

हाथमें अब इसे नहीं समर्पण कर सक-  
 ता हूँ । हे भार्गव ! पहिले, इसने मुझ-  
 से ही यह वचन कहा था, कि “मैं शाल्व  
 की हुई हूँ” और मैंने भी इसको  
 शाल्वके निकट जानेके निमित्त आज्ञा  
 दी थी । मेरी अनुमतिसे इसने सौभ  
 नगरमें गमन किया था; इससे अब भय,  
 दया, अर्थ, लोभ अथवा कामसे भी  
 मैं क्षत्रियधर्म नहीं परित्याग कर  
 सकता हूँ; क्योंकि यही मेरा सदासे  
 व्रत है । ( ३२—३४ )

हे राजेन्द्र ! अनन्तर परशुराम क्रो-  
 धसे लाल नेत्र करके मुझसे बोले, तुम  
 यदि मेरे वचनको न मानोगे तो तुमको  
 मंत्रियोंके सहित आज ही मारुंगा ”

हनिष्यामि सहामात्यं त्वामद्येति पुनः पुनः ।  
 संरम्भादब्रवीद्रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ३३ ॥  
 तमहं गीर्भिरिष्टाभिः पुनः पुनररिन्दम ।  
 अयाचं भृगुशार्दूलं न चैव प्रशशाम सः ॥ ३७ ॥  
 प्रणम्य तमहं सूधा भूयो ब्राह्मणसत्तमम् ।  
 अब्रुवं कारणं किं तद्यत्त्वं युद्धं मयेच्छसि ॥ ३८ ॥  
 इष्वस्त्रं मम बालस्य भवतैव चतुर्विधम् ।  
 उपदिष्टं महाबाहो शिष्योऽस्मि तव भार्गव ॥ ३९ ॥  
 ततो मामब्रवीद्रामः क्रोधसंरक्तलोचनः ।  
 जानीषे मां गुरुं भीष्म गृह्णासीमां न चैव ह ॥ ४० ॥  
 सुतां काश्यपस्य कौरव्य सत्प्रियार्थं महामते ।  
 न हि ते विद्यते शान्तिरन्यथा कुरुनन्दन ॥ ४१ ॥  
 गृहाणेमां महाबाहो रक्षस्व कुलमात्मनः ।  
 त्वया विभ्रंशिता हीयं भर्तारं नाऽधिगच्छति ॥ ४२ ॥  
 तथा ब्रुवन्तं तमहं रामं परपुरञ्जयम् ।

शत्रुनाशन ! परशुराम क्रोधसे नेत्र  
 लाल करके गम्भीर स्वरसे बार बार  
 मुझे ऐसा ही कहने लगे । ( ३५-३६ )

मैंने विनय पूर्वक उनसे बार बार  
 प्रार्थना की; तौभी वह शान्त न हुए ।  
 तब मैंने उन ब्राह्मण - सत्तम भृगुन-  
 न्दनको शिर झुकाकर प्रणाम किया  
 और यह वचन कहा, हे महाबाहो !  
 जो मेरे सङ्ग तुम युद्ध करनेकी इच्छा  
 करते हो, उसका कारण क्या है ? हे  
 भार्गव ! बालक अवस्थामें तुमने ही मुझे  
 चारों प्रकारकी धनुर्विद्या सिखाई थी;  
 मैं तुम्हारा शिष्य हूँ । ( ३७-३९ )

अनन्तर परशुराम क्रोधपूरित नेत्रसे

युक्त यह वचन फिर बोले, हे भीष्म !  
 तुम मुझको अपने गुरु भी समझते हो,  
 और मेरी प्रीतिके निमित्त इस काशि-  
 राजकी कन्याको ग्रहण नहीं करते हो;  
 हे कुरुनन्दन ! इससे अतिरिक्त और  
 किसी प्रकारसे भी मुझे शान्ति न होवेगी ।  
 हे महाबाहो ! इससे इस कन्याको ग्रहण  
 करके अपने कुलकी रक्षा करो; तुम्हारे  
 हाथसे हरण किये जानेसे यह अष्ट हुई  
 है, इस लिये अब इसको स्वामी नहीं  
 मिलता है । ( ४०-४२ )

पराये देशके जीतनेवाले परशुराम-  
 जीके इस वचनको सुनकर मैंने उनसे  
 फिर कहा, हे ब्रह्मर्षि ! तुम निरर्थक

नैतदेवं पुनर्भावि ब्रह्मर्षे किं श्रमेण ते ॥ ४३ ॥  
 गुरुत्वं त्वयि सम्प्रेक्ष्य जामदग्न्य पुरातनम् ।  
 प्रसादये त्वां भगवंस्त्यक्तैषा तु पुरा मया ॥ ४४ ॥  
 को जातु परभावां हि नारीं व्यालीमवस्थिताम् ।  
 वासयेत गृहे जानन्स्त्रीणां दोषो महात्ययः ॥ ४५ ॥  
 न भयाद्वासवस्याऽपि धर्मं जह्यां महाव्रत ।  
 प्रसीद मा वा यद्वा ते कार्यं तत्कुरु मा चिरम् ॥ ४६ ॥  
 अयं चापि विशुद्धात्मन्पुराणे श्रूयते विभो ।  
 मरुत्तेन महाबुद्धे गीतः श्लोको महात्मना ॥ ४७ ॥  
 गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।  
 उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥ ४८ ॥  
 स त्वं गुरुरिति प्रेम्णा मया सम्मानितो भृशम् ।  
 गुरुवृत्तिं न जानीषे तस्माद्योत्स्यामि वै त्वया ॥ ४९ ॥  
 गुरुं न हन्यां समरे ब्राह्मणं च विशेषतः ।  
 विशेषतस्तपोवृद्धमेवं क्षान्तं मया तव ॥ ५० ॥

श्रम क्यों करते हो ? यह किसी प्रकार-  
 से भी नहीं हो सकता । हे जामदग्न्य  
 परशुराम ! तुम मेरे गुरु हो, इसहीसे  
 मैं तुमसे विनय कर रहा हूँ । हे भगवन् !  
 इसको मैंने पहिले ही त्याग किया है,  
 स्त्रियोंमें जो सब दोष अनर्थके मूल हो-  
 ते हैं, उसको जानकर भी कौन पुरुष  
 सांपिनकी भांति दूसरे पुरुषमें आसक्त  
 हुई स्त्रीको अपने घरमें रख सकता  
 है ? (४३—४५)

हे महाव्रत करनेवाले ! मैं इन्द्रके  
 भयसे भी धर्मको नहीं परित्याग कर  
 सकता हूँ; इससे आप मेरे ऊपर प्रसन्न  
 होइये; अथवा तुमको जैसा करना उ-

चित होवे उसे शीघ्र ही पूर्ण करो ।  
 हे विभो ! हे पापरहित ! पुराणमें महात्मा  
 मरुत्तका कहा हुआ यह एक श्लोक  
 सुन लीजिये, “कार्याकार्यको न जानने-  
 वाले, बुरे मार्गसे गमन करनेवाले  
 अभिमानसे युक्त गुरुको भी परित्याग  
 करना उचित है ।” (४६-४८)

तुम मेरे गुरु हो, इस ही निमित्त  
 प्रेमके वशमें होकर मैं बार बार तुम्हारा  
 सम्मान करता हूँ; परन्तु तुम गुरुके  
 धर्मको नहीं जानते हो; इस कारणसे  
 मैं तुम्हारे सङ्ग युद्ध करूँगा । गुरु और  
 विशेष करके तपोवृद्ध ब्राह्मणको युद्धमें  
 नहीं मार सकता हूँ; यही विचारकर मैं

उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा ब्राह्मणं क्षत्रबन्धुवत् ।  
 यो हन्यात्समरे क्रुद्धं युध्यन्तमपलायिनम् ॥ ५१ ॥  
 ब्रह्महत्या न तस्य स्यादिति धर्मेषु निश्चयः ।  
 क्षत्रियाणां स्थितो धर्मं क्षत्रियोऽस्मि तपोधन ॥ ५२ ॥  
 यो यथा वर्तते यस्मिंस्तस्मिन्नेव प्रवर्तयन् ।  
 नाऽधर्मं समवाप्नोति न चाऽश्रेयश्च विन्दति ॥ ५३ ॥  
 अर्थे वा यदि वा धर्मे समर्थो देशकालवित् ।  
 अर्थसंशयमापन्नः श्रेयान्निःसंशयो नरः ॥ ५४ ॥  
 यस्मात्संशयितेऽप्यर्थेऽयथान्यायं प्रवर्तसे ।  
 तस्माद्योत्स्यामि सहितस्त्वया राम महाहवे ॥ ५५ ॥  
 पश्य मे बाहुवीर्यं च विक्रमं चाऽतिमानुषम् ।  
 एवञ्जतेऽपि तु मया यच्छक्यं भृगुनन्दन ॥ ५६ ॥  
 तत्करिष्ये कुरुक्षेत्रे योत्स्ये विप्र त्वया सह ।  
 द्वन्द्वे राम यथेष्टं मे सज्जीभव महाद्युते ॥ ५७ ॥  
 तत्र त्वं निहतो राम मया शरशतार्दितः ।

क्षमा प्रार्थना करता हूँ, परन्तु धर्मशा-  
 स्त्रमें लिखा हुआ है, कि जो पुरुष ब्राह्म-  
 णको दुष्ट क्षत्रियकी भांति शस्त्र लिये  
 हुए उद्यत और अपराजित तथा युद्धमें  
 प्रवृत्त हुए देखकर मारता है; उसे ब्राह्म-  
 हत्याका पाप नहीं लगता। हे तपोधन !  
 मैं क्षत्रियधर्ममें निवास करनेवाला क्षत्रि-  
 य हूँ । ( ४९—५२ )

जो पुरुष जिसके संग जैसा आचरण  
 करता है, उसके संग वैसा आचरण  
 करनेसे पाप नहीं होता और अपना  
 अमंगल भी नहीं होता है । धर्म अर्थके  
 विचार करनेमें समर्थ, देशकालको जान-  
 नेवाले पुरुष यदि अर्थ वा धर्म विषयमें

कुछ संशय-युक्त होते हैं, तो अर्थको  
 छोड़कर धर्महीका अनुष्ठान करके कल्या-  
 णको प्राप्त करते हैं । हे परशुराम ! इस  
 से संशय करने योग्य अर्थमें भी जब  
 तुम निरर्थक अन्यायपूर्वक प्रवृत्त होते  
 हो, तब तुम्हारे सङ्ग मैं अवश्य ही महा  
 संग्राम करूंगा, हे भृगुनन्दन ! मेरे  
 बाहुबल और अलौकिक पराक्रमको  
 देखो, ऐसी अवस्थामें मैं जो कर सकता  
 हूँ, वह अवश्य ही करूंगा । कुरुक्षेत्रमें  
 तुम्हारे सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त होऊंगा । हे  
 महातेजस्वी ! द्वन्द्व युद्धके निमित्त इच्छा-  
 नुसार सज्जित होइये । ( ५३—५७ )

हे राम ! जिस स्थलमें सैकड़ों बाणों-



प्राप्स्यसे निर्जिताँल्लोकाञ्छस्त्रपूतो महारणे ॥ ५८ ॥  
 स गच्छ विनिवर्तस्व कुरुक्षेत्रं रणप्रिय ।  
 तत्रैष्यामि महाबाहो युद्धाय त्वां तपोधन ॥ ५९ ॥  
 अपि यत्र त्वया राम कृतं शौचं पुरा पितुः ।  
 तत्राऽहमपि हत्वा त्वां शौचं कर्ताऽस्मि भार्गव ॥ ६० ॥  
 तत्र राम समागच्छ त्वरितं युद्धदुर्मद ।  
 व्यपनेष्यामि ते दर्पं पौराणं ब्राह्मणब्रुवः ॥ ६१ ॥  
 यच्चापि कथ्यसे राम बहुशः परिवत्सरे ।  
 निर्जिताः क्षत्रिया लोके मयैकेनेति तच्छृणु ॥ ६२ ॥  
 न तदा जातवान्भीष्मः क्षत्रियो वाऽपि मद्विधः ।  
 पश्चाज्जातानि तेजांसि तृणेषु ज्वलितं त्वया ॥ ६३ ॥  
 यस्ते युद्धमयं दर्पं कामं च व्यपनाशयेत् ।  
 सोऽहं जातो महाबाहो भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ ६४ ॥  
 व्यपनेष्यामि ते दर्पं युद्धे राम न संशयः ॥ ६४ ॥

भीष्म उवाच — ततो मामब्रवीद्रामः प्रहसन्निव भारत ।

से पीडित होकर तुम मरकर पृथ्वीमें  
 और महा युद्धमें शस्त्रोंसे जलकर सब  
 निर्जित लोकोंको प्राप्त करोगे, उस ही  
 कुरुक्षेत्रमें गमन करो । हे महाबाहो !  
 हे तपोधन ! वहाँपर युद्धप्रिय तुम्हारे  
 सङ्ग मैं अवश्य युद्ध करूँगा । हे राम !  
 पहिले जिस स्थलपर तुमने पिताकी  
 शुद्धि की थी, मैं भी उस स्थानपर तुमको  
 मारकर क्षत्रिय कुलके वैरको पूर्ण करूँ-  
 गा । हे अभिमानी विप्र ! तुम शीघ्र  
 वहाँपर गमन करो, मैं तुम्हारे इस पुराने  
 घमण्डको दूर कर दूँगा । (५८-६१)

हे भार्गव ! “मैंने अकेले ही इस  
 सम्पूर्ण पृथ्वीके क्षत्रियोंको जीता है”

बहुत दिनोंसे तुम जो ऐसा गर्व किया  
 करते हो, उसका कारण सुनो; उस  
 समयमें भीष्म अथवा भीष्मके समान  
 कोई क्षत्रिय पुरुष नहीं उत्पन्न हुए थे ।  
 हे तपोधन ! तुम उस समय केवल  
 तृण-समूहमें ही प्रज्वलित हुए थे;  
 परन्तु तेजस्वी क्षत्रिय अब उत्पन्न हुए  
 हैं । हे महाबाहो ! जो पुरुष तुम्हारे  
 युद्धमय अभिमान और अभिलाषाको  
 छुड़ा सकता है, वह पराये देशको जी-  
 तनेवाला भीष्म अब उत्पन्न हुआ है ।  
 हे राम ! युद्धमें अवश्य ही मैं तुम्हारे  
 इस अभिमानको छुड़ा दूँगा; इसमें कुछ  
 भी सन्देह नहीं है । (६२-६४)

दिष्ट्या भीष्म मया सार्धं योद्धुमिच्छसि सङ्गरे ॥ ६५ ॥  
 अयं गच्छामि कौरव्य कुरुक्षेत्रं त्वया सह ।  
 भाषितं ते कारिष्यामि तत्राऽऽगच्छ परन्तप ॥ ६६ ॥  
 तत्र त्वां निहतं माता मया शरशताचितम् ।  
 जाह्नवी पश्यतां भीष्म गृध्रकङ्कबलाशनम् ॥ ६७ ॥  
 कृपणं त्वामभिप्रेक्ष्य सिद्धचारणसेविता ।  
 मया विनिहतं देवी रोदतामद्य पार्थिव ॥ ६८ ॥  
 अतदर्हा महाभागा भगीरथसुताऽनघा ।  
 या त्वामजीजनन्मन्दं युद्धकामुकमातुरम् ॥ ६९ ॥  
 एहि गच्छ मया भीष्म युद्धकामुक दुर्मद ।  
 गृहाण सर्वं कौरव्य रथादि भरतर्षभ ॥ ७० ॥  
 इति ब्रुवाणं तमहं रामं परपुरञ्जयम् ।  
 प्रणम्य शिरसा राममेवमस्तिवत्यथाऽब्रुवम् ॥ ७१ ॥  
 एवमुक्त्वा ययौ रामः कुरुक्षेत्रं युयुत्सया ।  
 प्रविश्य नगरं चाऽहं सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ ७२ ॥

भीष्म बोले, हे भारत ! अनन्तर  
 परशुराम हंसते हुए मुझसे यह  
 वचन बोले, “हे भीष्म ! प्रारब्धहीसे  
 तुम मेरे सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छा करते  
 हो । हे कौरव ! अब मैं तुम्हारे निमित्त  
 कुरुक्षेत्रमें जाता हूँ; हे परन्तप ! तुम  
 वहाँपर गमन करो; मैं तुम्हारे वचनको  
 प्रातिपालन करूंगा । “हे भीष्म ! तुम्हारी  
 माता जाह्नवी वहाँपर तुमको सैकड़ों  
 बाणोंसे युक्त मरा हुआ और गिद्ध  
 कौए सियार आदिका भक्ष्य होते देखे-  
 गी । (६५-६७)

हे राजन् । जिसने तुम्हारे समान  
 मन्दबुद्धि युद्धकामी आतुर पुत्रको उत्प-

न्न किया है, वह सिद्ध चारणोंसे सेविता  
 भगीरथसुता महा यशस्विनी जान्हवी  
 देवी रोदन करनेके अयोग्य होकर भी  
 आज तुम्हें दीन भावसे युक्त मेरे हाथसे  
 मरा हुआ देख कर रोदन करेगी । रे  
 युद्धकी इच्छा करनेवाले ! आके मेरे  
 सहित चल, तेरा जो कुछ रथ आदि  
 सामग्री है, सब ग्रहण करके चल ।”  
 ऐसे वचनको सुन कर मैंने पराये देश  
 को जीतनेवाले परशुरामको शिर झुका  
 कर प्रणाम करके यह वचन कहा, “बहुत  
 अच्छा वही होगा ।” ( ६८-७१ )

हे राजेन्द्र ! परशुराम मुझसे ऐसे  
 वचन कहके युद्धकी इच्छासे कुरुक्षेत्रको

ततः कृतस्वस्त्ययनो मात्रा च प्रतिनन्दितः ।  
 द्विजातीन्वाच्य पुण्याहं स्वस्ति चैव महाद्युते ॥ ७३ ॥  
 रथमास्थाय रुचिरं राजतं पाण्डुरैर्हयैः ।  
 सूपस्करं स्वधिष्ठानं वैयाघ्रपरिवारणम् ॥ ७४ ॥  
 उपपन्नं महाशस्त्रैः सर्वोपकरणान्वितम् ।  
 तत्कुलीनेन वीरेण हयशास्त्रविदारणे ॥ ७५ ॥  
 यत्तं सूतेन शिष्टेन बहुशो दृष्टकर्मणा ।  
 दंशितः पाण्डुरेणाऽहं कवचेन वपुष्मता ॥ ७६ ॥  
 पाण्डुरं कार्मुकं गृह्य प्रायां भरतसत्तम ।  
 पाण्डुरेणाऽऽतपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ॥ ७७ ॥  
 पाण्डुरैश्चापि व्यजनैर्वीज्यमानो नराधिप ।  
 शुक्लवासाः सितोष्णीषः सर्वशुक्लविभूषणः ॥ ७८ ॥  
 स्तूयमानो जयाशीर्भिर्निष्क्रम्य गजसाह्वयात् ।  
 कुरुक्षेत्रं रणक्षेत्रमुपायां भरतर्षभ ॥ ७९ ॥  
 ते हयाश्चोदितास्तेन सूतेन परमाहवे ।  
 अवहन्मां भृशं राजन्मनोमारुतरंहसः ॥ ८० ॥  
 गत्वाऽहं तत्कुरुक्षेत्रं स च रामः प्रतापवान् ।

गये और मैंने भी नगरमें आके सत्यव-  
 तीको यह सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन  
 किया । हे भरतसत्तम ! अनन्तर मैंने  
 जननीसे आशीर्वाद पाकर ब्राह्मणोंसे  
 पुण्याह वाचन स्वस्तिवाचन कराकर  
 पाण्डुर-वर्ण धनुष कवच धारण करके  
 श्रेष्ठ सूतकुलमें उत्पन्न हुए वीर और  
 घोड़ोंकी विद्याको जाननेवाले, अनेक  
 युद्धोंके देखनेवाले सारथीसे युक्त उत्तम  
 शोभायमान चक्र और वाघके चमडसे  
 घिरा हुआ, शस्त्रोंसे पूर्ण, सब युद्धकी  
 सामग्रीसे युक्त, पाण्डुरवर्णके चार घो-

ढोंके सहित रौप्य निर्मित मनोहर रथ-  
 पर चढ़के प्रस्थान किया । (७२-७७)  
 हे भरतर्षभ ! पाण्डुरवस्त्र, शिरपर पां-  
 डुर वर्ण छत्र, मुकुट, श्वेत व्यजन और श्वेत  
 रत्नके भूषणोंसे भूषित होकर जय आ-  
 शीर्वाद सुनते हुए हस्तिनापुरसे निकल  
 कर मैंने रणभूमि कुरुक्षेत्रके निमित्त  
 यात्रा की । हे राजन् ! मन और वायुके  
 समान शीघ्र गमन करनेवाले उत्तम घोड़े  
 उस बुद्धिमान् सारथीके चलानेपर अति  
 शीघ्र ही मुझे रथ समेत लेकर महायुद्धके  
 स्थान पर आके उपस्थित हुए । (७७-८०)

युद्धाय सहसा राजन्पराक्रान्तौ परस्परम् ॥ ८१ ॥  
 ततः सन्दर्शनेऽतिष्ठं रामस्याऽतितपस्विनः ।  
 प्रगृह्य शङ्खप्रवरं ततः प्राधममुत्तमम् ॥ ८२ ॥  
 ततस्तत्र द्विजा राजंस्तापसाश्च वनौकसः ।  
 अपश्यन्त रणं दिव्यं देवाः सेन्द्रगणास्तदा ॥ ८३ ॥  
 ततो दिव्यानि माल्यानि प्रादुरासंस्ततस्ततः ।  
 वादित्राणि च दिव्यानि मेघवृन्दानि चैव ह ॥ ८४ ॥  
 ततस्ते तापसाः सर्वे भार्गवस्याऽनुयायिनः ।  
 प्रेक्षकाः समपद्यन्त परिवार्य रणाजिरम् ॥ ८५ ॥  
 ततो मामब्रवीद्देवी सर्वभूतहितैषिणी ।  
 माता स्वरूपिणी राजन्किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥ ८६ ॥  
 गत्वाऽहं जामदग्न्यं तु प्रयाचिष्ये कुरूद्रह ।  
 भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति पुनः पुनः ॥ ८७ ॥  
 मा मैवं पुत्र निर्बन्धं कुरु विप्रेण पार्थिव ।  
 जामदग्न्येन समरे योद्धुमित्येव भर्त्सयत् ॥ ८८ ॥  
 किं न वै क्षत्रियहणो हरतुल्यपराक्रमः ।

हे राजन् ! मैं और प्रतापवान् परशु-  
 रामजी दोनों युद्धके निमित्त वहाँपर  
 सहसा आकर खड़े हुए, अनन्तर अत्य-  
 न्त तपस्वी परशुरामजी और मैंने अपने  
 उत्तम शङ्खोंको ग्रहण करके जोरसे बजा-  
 या; तब उस समय वनवासी तपस्वी  
 और इन्द्रके सहित सब देवता लोग वहाँ  
 पर दिव्य युद्धको देखनेमें प्रवृत्त हुए ।  
 बहुतसी दिव्यमाला, दिव्य-बाजे, और  
 बादलोंके समूह इधर उधर दीखने लगे ।  
 अनन्तर परशुरामके अनुयायी सब तप-  
 स्वी लोग रणभूमिको घेरकर दर्शक  
 हुए । ( ८१-८५ )

इसके अनन्तर सब प्राणियोंकी हितै-  
 षिणी मेरी माता गङ्गादेवी मूर्तिमयी  
 होकर मेरे निकटमें आकर यह वचन  
 बोली;—हे पुत्र ! तुम यह क्या करने-  
 की इच्छा करते हो ? हे कुरुश्रेष्ठ ! मैं  
 परशुरामजीके निकट जाकर बार बार  
 यह मांगूंगी, कि तुम निजशिष्य भीष्म  
 के सङ्ग युद्ध मत करो । हे पुत्र ! तुम  
 क्षत्रिय होकर तपस्वी परशुरामके संग  
 युद्ध करनेकी इच्छा न करना । शंकर  
 के समान अत्यन्त पराक्रमी जो परशुराम  
 क्षत्रियकुलके संहार करनेवाले हैं; वह क्या  
 तुमको विदित नहीं है; जो तुम इस समयमें

विदितः पुत्र रामस्ते यतस्तं योद्धुमिच्छसि ॥ ८९ ॥

ततोऽहमब्रुवं देवीमाभिवाच कृताञ्जलिः ।

सर्वं तद्भरतश्रेष्ठ यथावृत्तं स्वयंवरे ॥ ९० ॥

यथा च रामो राजेन्द्र मया पूर्वं प्रचोदितः ।

काशिराजसुतायाश्च यथा कर्म पुरातनम् ॥ ९१ ॥

ततः सा राममभ्येत्य जननी मे महानदी ।

मदर्थं तमृषिं वीक्ष्य क्षमयामास भार्गवम् ॥ ९२ ॥

भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति वचोऽब्रवीत् ।

स च तामाह याचन्तीं भीष्ममेव निवर्तय ।

न च मे कुरुते काममित्यहं तमुपागमम् ॥ ९३ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततो गङ्गा सुतस्नेहाङ्गीष्मं पुनरुपागमत ।

न चाऽस्याश्चाऽकरोद्वाक्यं क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ९४ ॥

अथाऽदृश्यत धर्मात्मा भृगुश्रेष्ठो महातपाः

आह्वयामास च तदा युद्धाय द्विजसत्तमः ॥ ९५ ॥ [६०६५]

इति श्रीमहा० उद्यो० अम्बोपाख्यानपर्वणि परशुरामभीष्मयोः कुरुक्षेत्रावतरणे अष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः १७८

उनके संग युद्ध करनेकी इच्छा करते हो ? ( ८६-८९ )

हे भारत ! माता इसी प्रकारसे मेरी निन्दा करने लगी। तब मैंने निजमाता गंगा देवीको दोनों हाथ जोडके प्रणाम करके धीरे धीरे जो कुछ वृत्तान्त हुआ था, उसे पूर्ण रीतिसे कह सुनाया; और पहिले परशुरामजीके जैसा वचन कहा था और काशीराजकी कन्याका जो कुछ कर्म था, वह भी सम्पूर्ण वर्णन किया। (९०-९१)

अनन्तर मेरी माता गंगादेवी परशुरामके निकट जाकर “तुम निज शिष्य भीष्मके संग युद्ध मत करो” ऐसा कह कर मेरे निमित्त उनसे विनती करने

लगी; परन्तु उन्होंने उस प्रार्थना करने वाली मेरी माता जाह्नवीसे कहा, कि तुम भीष्महीको रोको; वह मेरी अभिलाषाको पूर्ण नहीं करता है, इस ही कारणसे युद्ध करनेके निमित्त उसके निकट आया हूं। (९२-९३)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर गंगा पुत्रके प्रेमके वशमें होकर फिर भीष्मके समीप गई; परन्तु उन्होंने क्रोधसे नेत्र लाल करके उनके वचनों को नहीं माना। इसके अनन्तर द्विजसत्तम महातपस्वी परशुराम दीख पड़े और युद्धके निमित्त आवाहन किया। (९४-९५)

एकसौ अठत्तर अध्याय समाप्त । [६०६५]

भीष्म उवाच- तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम् ।  
 भूमिष्ठं नोत्सहे योद्धुं भवन्तं रथमास्थितः ॥ १ ॥  
 आरोह स्यन्दनं वीर कवचं च महाभुज ।  
 बधान समरे राम यदि योद्धुं मयेच्छसि ॥ २ ॥  
 ततो मामब्रवीद्रामः स्मयमानो रणाजिरे ।  
 रथो मे मेदिनी भीष्म वाहा वेदाः सदश्ववत् ॥ ३ ॥  
 सूतश्च मातरिश्वा वै कवचं वेदमातरः ।  
 सुसंवीतो रणे तामिर्योत्स्येऽहं कुरुनन्दन ॥ ४ ॥  
 एवंब्रुवाणो गान्धारे रामो मां सत्यविक्रमः ।  
 शरव्रातेन महता सर्वतः प्रत्यवारयत् ॥ ५ ॥  
 ततोऽपश्यं जामदग्न्यं रथमध्ये व्यवस्थितम् ।  
 सर्वायुधवरे श्रीमत्यद्भुतोपमदर्शने ॥ ६ ॥  
 मनसा विहिते पुण्ये विस्तीर्णे नगरोपमे ।  
 दिव्याश्वयुजि सन्नद्धे काञ्चनेन विभूषिते ॥ ७ ॥  
 कवचेन महाबाहो सोमार्ककृतलक्ष्मणा ।  
 धनुर्धरो बद्धतूणो बद्धगोधांगुलित्रवान् ॥ ८ ॥

उद्योगपर्वमें एकसौ उनासी अध्याय ।

भीष्म बोले, तब मैंने मुसकराके रणभूमिमें स्थित परशुरामसे यह वचन कहा, हे वीर! मैं रथमें बैठकर पृथ्वीपर पैदल चलनेवाले तुम्हारे संग युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करता हूं। हे महाबाहो! यदि युद्ध करनेकी इच्छा हो, तो रथपर चढ़के कवच धारण कीजियो। तब परशुराम हंसते हंसते मुझसे यह वचन बोले, हे भीष्म! पृथ्वी ही मेरा रथ है, वेद सब उत्तम वाहन, वायु सारथी, और वेदमाता गायत्री, सावित्री और सरस्वती मेरे कवच हैं। हे कुरुनन्दन! मैं इस ही सब सामग्रियोंसे

युक्त होकर तुमसे युद्ध करूंगा (१-४)

हे गान्धारीनन्दन! सत्य पराक्रमी परशुरामजीने ऐसे वचनोंको कहते कहते बाणोंसे सब दिशाओंको आच्छादित कर लिया। हे महाबाहो! अनन्तर मैंने परशुरामको सहसा प्रकट हुए, अद्भुत रूप, मनसे निर्मित बड़े नगरके समान, दिव्य घोड़ोंसे युक्त, सावधान, चन्द्र सूर्यके चिह्नसे चित्रित सुवर्णके कवचसे भूषित, सब प्रकारके उत्तम शस्त्रोंके सहित, पवित्र श्रीसे युक्त रथके बीच स्थित देखा! (५-८)

इस रथमें परशुरामके प्यारे सखा

सारथ्यं कृतवांस्तत्र युयुत्सोरकृतव्रणः ।  
 सखा वेदविदित्यन्तं दयितो भार्गवस्य ह ॥ ९ ॥  
 आह्वयानः स मां युद्धे मनो हर्षयतीव मे ।  
 पुनः पुनरभिक्रोशन्नभियाहीति भार्गवः ॥ १० ॥  
 तमादित्यमिवोद्यन्तमनाधृष्यं महाबलम् ।  
 क्षत्रियान्तकरं राममेकमेकः समासदम् ॥ ११ ॥  
 ततोऽहं बाणपातेषु त्रिषु बाहान्निगृह्य वै ।  
 अवतीर्य धनुर्न्यस्य पदातिर्ऋषिसत्तमम् ॥ १२ ॥  
 अभ्यागच्छं तदा राममर्चिष्यन्द्विजसत्तमम् ।  
 अभिवाच्य चैनं विधिवदब्रुवं वाक्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥  
 योत्स्ये त्वया रणे राम सहशेनाऽधिकेन वा ।  
 गुरुणा धर्मशीलेन जयमाशास्व मे विभो ॥ १४ ॥  
 राम उवाच — एवमेतत्कुरुश्रेष्ठ कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।  
 धर्मो ह्येष महाबाहो विशिष्टैः सह युध्यताम् ॥ १५ ॥  
 शपेयं त्वां न चेदेवमागच्छेथा विशास्पते ।

वेदको जाननेवाले अकृतव्रण गोधा,  
 अंगुलित्वाण, तूणीर और शरासनधारी  
 होकर परशुरामके सारथीका कार्य करते  
 थे । भार्गव “आओ ! आओ !” युद्धके  
 निमित्त बार बार ऐसा ही कहकर युद्ध  
 को प्रसन्नचित्तसे आवाहन करने लगे ।  
 मैं उस महातेजस्वी सूर्यके समान प्रका-  
 शित महाबली क्षत्रियोंके नाश करनेवाले  
 अकेले परशुरामके सम्मुख अकेला ही  
 गया । ( ८-११ )

अनन्तर उनके तीन बार बाणके  
 छोड़नेपर मैंने घोड़ोंको रोकके और  
 धनुषको उतारकर पैदल ही उन ऋषि-  
 सत्तम गुरुकी पूजा करनेके निमित्त उन

के समीप गमन किया, और उनको  
 विधिपूर्वक प्रणाम करके यह उत्तम वचन  
 कहा, कि हे परशुराम ! आप समान  
 होवें, अथवा मुझसे अधिक होवें; परन्तु  
 मैं आपके सङ्ग युद्ध करूंगा । हे विभो !  
 आप गुरु और धर्मात्मा हैं, इससे मुझे  
 जयके निमित्त आशीर्वाद करो ॥ (१२-१४)

राम बोले, हे कुरुश्रेष्ठ ! कल्याणकी  
 इच्छा करनेवाले पुरुषको इसी प्रकारका  
 कर्तव्य-कर्म करना उचित है; क्योंकि  
 जो बड़ोंके सङ्ग युद्ध करता है, उसे  
 ऐसा ही व्यवहार करना धर्मके अनुसार  
 उत्तम है । हे महाबाहो । तुम यदि इस  
 प्रकारसे मेरे पास न आते; तो मैं तुम-

युध्यस्व त्वं रणे यत्तो धैर्यमालम्ब्य कौरव ॥ १६ ॥  
 न तु ते जयमाशासे त्वां विजेतुमहं स्थितः ।  
 गच्छ युध्यस्व धर्मेण प्रीतोऽस्मि चरितेन ते ॥ १७ ॥  
 ततोऽहं तं नमस्कृत्य रथमारुह्य सत्वरः ।  
 प्राध्मापयं रणे शङ्खं पुनर्हंसपरिष्कृतम् ॥ १८ ॥  
 ततो युद्धं समभवन्मम तस्य च भारत ।  
 दिवसान्सुबहून्राजन्परस्परजिगीषया ॥ १९ ॥  
 स मे तस्मिन्नरणे पूर्वं प्राहरत्कङ्कपत्रिभिः ।  
 षष्ठ्या शतैश्च नवभिः शराणां नतपर्वणाम् ॥ २० ॥  
 चत्वारस्तेन मे वाहाः सूतश्चैव विशां पते ।  
 प्रतिकृद्वास्तथैवाऽहं समरे दंशितः स्थितः ॥ २१ ॥  
 नमस्कृत्य च देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।  
 तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम् ॥ २२ ॥  
 आचार्यता मानिता मे निर्मर्यादे ह्यपि त्वयि ।  
 भूयश्च शृणु मे ब्रह्मन्सम्पदं धर्मसंग्रहे ॥ २३ ॥  
 ये ते वेदाः शरीरस्था ब्राह्मण्यं यच्च ते महत् ।

को शाप देता । हे कौरव ! अब तुम  
 धीरज धरके सावधान होकर युद्ध करो।  
 हे राजन् ! मैं स्वयं तुमको जीतनेको  
 उद्यत हुआ हूँ; इससे तुम्हारे जयकी  
 अभिलाषा नहीं कर सकता हूँ; अब तुम  
 जाओ, धर्म पूर्वक युद्ध करो; मैं तुम्हारे  
 चरित्रसे प्रसन्न हुआ हूँ । ( १५-१७ )

अनन्तर मैंने उन्हें नमस्कार करके  
 शीघ्र रथपर चढ़कर सुवर्ण-भूषित अपने  
 शङ्खको फिर बजाया । हे राजन् ! इसके  
 अनन्तर उनका और मेरा परस्पर जय-  
 अभिलाषासे बहुत दिनतक युद्ध हुआ ।  
 पहिले परशुरामने नव सौ साठ चोखे

कङ्कपत्रसे युक्त बाणोंसे मेरे रथपर प्रहार  
 किया और मेरे रथके चारों घोड़े और  
 सारथीको बाणोंकी वर्षासे विकल कर  
 दिया । तौभी मैं इस प्रकारसे दंशित  
 होकर संग्राममें निर्भय खड़ा ही  
 था । ( १८—२१ )

अनन्तर देवता और ब्राह्मणोंको  
 विशेषरूपसे नमस्कार करके रणभूमिमें  
 स्थित उन ऋषिराज परशुरामसे यह  
 वचन कहा, हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे मर्यादा  
 रहित होनेपर भी मैं तुम्हारे गुरुपनका  
 सम्मान करता हूँ और धर्म संग्रह विषय  
 में और भी कुछ कर्त्तव्य-कर्मको कहता



तपश्च ते महत्तप्तं न तेभ्यः प्रहराम्यहम् ॥ २४ ॥  
 प्रहारे क्षत्रधर्मस्य यं त्वं राम समाश्रितः ।  
 ब्राह्मणः क्षत्रियत्वं हि याति शस्त्रसमुद्यमात् ॥ २५ ॥  
 पश्य मे धनुषो वीर्यं पश्य बाहोर्बलं मम ।  
 एष ते कार्मुकं वीर छिन्नाग्नि निशितेषुणा ॥ २६ ॥  
 तस्याऽहं निशितं भल्लं चिक्षेप भरतर्षभ ।  
 तेनाऽस्य धनुषः कोटिं छित्वा भूमावपातयम् ॥ २७ ॥  
 तथैव च पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम् ।  
 चिक्षेप कङ्कपत्राणां जामदग्न्यस्थं प्रति ॥ २८ ॥  
 काये विषक्तास्तु तदा वायुना समुदीरिताः ।  
 चेलुः क्षरन्तो रुधिरं नागा इव च ते शराः ॥ २९ ॥  
 क्षतजोक्षितसर्वाङ्गः क्षरन्स रुधिरं रणे ।  
 बभौ रामस्तदा राजन्मेरुर्धातुमिवोत्सृजन् ॥ ३० ॥  
 हेमन्तान्तेऽशोक इव रक्तस्तवकमण्डितः ।  
 बभौ रामस्तथा राजन्प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥ ३१ ॥

हूं उसे सुनिये । ( २२—२३ )

तुम्हारे शरीरमें जो सब वेद और  
 अत्यन्त ही ब्राह्मणत्व है और उससे जो  
 तुमने बहुत ही तपस्या सञ्चित की है;  
 उन सबके ऊपर मैं प्रहार नहीं करता हूं,  
 तुमने जो क्षत्रिय धर्मका आसरा ग्रहण  
 किया है; मैं उसहीके ऊपर प्रहार कर-  
 ता हूं; क्योंकि शस्त्र धारण करनेहीसे  
 ब्राह्मण क्षत्रियत्वको प्राप्त करता है । हे  
 वीर ! तुम मेरे धनुषके पराक्रम और  
 बाहुबलको देखो । मैं इस उत्तम तीक्ष्ण  
 धारासे युक्त बाणसे तुम्हारा धनुष्य  
 काटता हूं । ( २४—२६ )

हे भरतर्षभ ! ऐसा कहकर मैंने उन

के ऊपर एक तेज बाण चलाया और  
 उसीसे उनके धनुषका अग्रभाग (शिरा)  
 काटके पृथ्वीमें गिरा दिया । उनके  
 रथपर भी सैकड़ों तीक्ष्ण बाणोंको  
 चलाया, हे राजन् ! पहिले शरीरमें  
 पृथक् पृथक् विद्ध होकर पीछे सर्पकी  
 भांति वे सब बाण शरीरसे रक्त बहाने  
 लगे । उस समयमें परशुराम रक्तपूरित  
 देहसे ऐसे शोभित हुए, जैसे धातुओंके  
 बहनेसे सुमेरु पर्वत तथा हेमन्त ऋतुके  
 अन्तमें अशोक और वसन्त ऋतुमें  
 पलाश का वृक्ष फूलोंसे शोभायमान  
 लगता है । ( २७—३१ )

अनन्तर वह क्रोधसे युक्त होकर

ततोऽन्यद्वनुरादाय रामः क्रोधसमन्वितः ।  
हेमपुङ्खान्सुनिशिताञ्शरांस्तान्हि चवर्ष सः ॥ ३२ ॥  
ते समासाद्य मां रौद्रा बहुधा मर्मभेदिनः ।  
अकम्पयन्महावेगाः सर्पानलविषोपमाः ॥ ३३ ॥  
तमहं समवष्टभ्य पुनरात्मानमाहवे ।  
शतसंख्यैः शरैः क्रुद्धस्तदा राममवाकिरम् ॥ ३४ ॥  
स तैरग्न्यर्कसङ्काशैः शरैराशीविषोपमैः ।  
शितैरभ्यर्दितो रामो मन्दचेता इवाऽभवत् ॥ ३५ ॥  
ततोऽहं कृपयाऽऽविष्टो विष्टभ्याऽऽत्मानमात्मना ।  
धिग्धिगित्यब्रुवं युद्धं क्षत्रधर्मं च भारत ॥ ३६ ॥  
असकृच्चाऽब्रुवं राजञ्शोकवेगपरिहृतः ।  
अहो बत कृतं पापं मयेदं क्षत्रधर्मणा ॥ ३७ ॥  
गुरुर्द्विजातिर्धर्मात्मा यदेवं पीडितः शरैः ।  
ततो न प्राहर भूयां जामदग्न्याय भारत ॥ ३८ ॥  
अथाऽवताप्य पृथिवीं पूषा दिवससंक्षये ।  
जगामाऽस्तं सहस्रांशुस्ततो युद्धसुपारमत ॥ ३९ ॥ [६१०४]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि रामभष्मयुद्धे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

दूसरा धनुष लेकर सुवर्ण पंखसे युक्त उत्तम पानीमें बुझे हुए बाणोंको वर्षाने लगे । वह महा वेगशाली सर्पके विष वा अग्निके समान भयङ्कर अनेक बाण मेरे शरीरमें लगकर मुझे कंपाने लगे । तब मैंने किसी प्रकार युद्धमें फिर स्थिर होके क्रोधमें भरके सौ बाण परशुरामके ऊपर चलाया, वे सब बाण सूर्यके तेज और विषैले सर्पके समान परशुराम के शरीरमें लगनेसे वह चेतनारहितके समान होगये । (३२-३५)

हे भारत ! उस समय मैं कृपासे

युक्त होकर अपने मन ही मन कहने लगा, कि हाय ! मैंने क्षत्रियधर्मके ग्रहण करनेहीसे यह पाप किया है; यह धर्मात्मा ब्राह्मण और विशेष करके मेरे गुरु हैं, सो उनका मैंने अपने बाणोंसे पीडित किया । हे राजन् ! मैं शोकसे पूरित होकर बार बार ऐसा ही बिलाप करने लगा, उसके अनन्तर फिर मैंने परशुराम के ऊपर प्रहार नहीं किया । ( ३६-३८ )

अनन्तर भगवान् सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वीको तपाकर सन्ध्याके समय अस्त होगये और युद्ध भी निवृत्त

भीष्म उवाच— आत्मनस्तु ततः सूतो हयानां च विशाम्पते ।  
 मम चाऽपनयामास शल्यान्कुशलसम्मतः ॥ १ ॥  
 स्नातापवृत्तैस्तुरगैर्लब्धतोयैरविहलैः ।  
 प्रभाते चोदिते सूर्ये ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥  
 दृष्ट्वा मां तूर्णमायान्तं दंशितं स्यन्दने स्थितम् ।  
 अकरोद्रथमत्यर्थं रामः सज्जं प्रतापवान् ॥ ३ ॥  
 ततोऽहं राममायान्तं दृष्ट्वा समरकांक्षिणम् ।  
 धनुःश्रेष्ठं समुत्सृज्य सहसाऽवतरं रथात् ॥ ४ ॥  
 अभिवाच्य तथैवाऽहं रथमारुह्य भारत ।  
 युयुत्सुर्जामदग्न्यस्य प्रमुखे वीतभीः स्थितः ॥ ५ ॥  
 ततोऽहं शरवर्षेण महता समवाकिरम्  
 स च मां शरवर्षेण वर्षन्तं समवाकिरत् ॥ ६ ॥  
 संक्रुद्धो जामदग्न्यस्तु पुनरेव सुतेजितान् ।  
 सम्प्रैषीन्मे शरान्घोराब्दीप्तास्यानुरगानिव ॥ ७ ॥  
 ततोऽहं निशितैर्भलैः शतशोऽथ सहस्रशः ।  
 अच्छिदं सहसा राजन्नन्तरिक्षे पुनः पुनः ॥ ८ ॥

हुआ । ( ३९ ) [ ६१०४ ]

उद्योगपर्वमें एकसा उनासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ अस्सी अध्याय ।

भीष्म बोले, हे प्रजानाथ ! अनन्तर मेरे निपुण सारथीने अपना, घोड़ों-का और मेरे शरीरका सब शल्य निकाला। दूसरे दिन सवेरे सूर्यके उदय होनेपर स्नान कराके अत्यन्त तेजस्वी घोड़ोंको रथमें जुटाकर मुझे रणभूमिमें ले आया, उसके अनन्तर युद्ध आरंभ हुआ। प्रतापवान परशुरामने मुझे रथमें बैठे हुए, कवचसे युक्त शीघ्र आया हुआ देखकर अत्यन्तही अपनी रथसज्जा की। (१-३)

अनन्तर मैं युद्धकी अभिलाषा करने वाले परशुरामको आगमन करते हुए देखकर अपने उत्तम धनुषको त्याग, शीघ्र ही रथमें उतरकर, पहिलेकी भांति उन्हें प्रणाम करके फिर रथपर चढ़के युद्ध करनेके निमित्त उनके समुख निर्भय खड़ा हुआ। इसके अनन्तर बहुतसे बाणोंकी वर्षा करके एक दूसरेको पीड़ित करने लगे। (४-६)

परशुरामजीने फिर मेरे ऊपर उत्तम पानीमें बुझ जलते हुए सर्प तुल्य बाणोंको चलाया। उस समय मैंने सहस्रों और सैकड़ों बाणोंसे उन सबको

ततस्त्वस्त्राणि दिव्यानि जामदग्न्यः प्रतापवान् ।

मयि प्रयोजयामास तान्यहं प्रत्यषेधयम् ॥ ९ ॥

अस्त्रैरेव महाबाहो चिकीर्षन्नधिकां क्रियाम् ।

ततो दिवि महान्नादः प्रादुरासीत्समन्ततः ॥ १० ॥

ततोऽहमस्त्रं वायव्यं जामदग्न्ये प्रयुक्तवान् ।

प्रत्याजघ्ने च तद्रामो गुह्यकास्त्रेण भारत ॥ ११ ॥

ततोऽहमस्त्रमाग्नेयमनुमन्त्र्य प्रयुक्तवान् ।

वारुणेनैव तद्रामो वारयामास मे विभुः ॥ १२ ॥

एवमस्त्राणि दिव्यानि रामस्याऽहमवारयम् ।

रामश्च मम तेजस्वी दिव्यास्त्रविदरिन्दमः ॥ १३ ॥

ततो मां सव्यतो राजनरामः कुर्वन्दिवा उत्तमः ।

उरस्यविध्यत्संकुद्धो जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ १४ ॥

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ संन्यषीदं रथोत्तमे ।

ततो मां कश्मलाविष्टं सूतस्तूर्णमुदावहत् ॥ १५ ॥

ग्लायन्तं भरतश्रेष्ठ रामबाणप्रपीडितम् ।

ततो मामपयातं वै भृगं विद्वमचनसम् ॥ १६ ॥

मार्गहीमें काटना आरम्भ किया । तब महाप्रतापी परशुरामने मेरे ऊपर दिव्य अस्त्रोंको चलाना आरंभ किया । मैंने उससे भी अपनी अधिक श्रेष्ठता दिखानेके निमित्त उत्तम शस्त्रोंको भी काटडाला । इसके अनन्तर आकाश-मण्डल से महा गंभीर नाद उत्पन्न होने लगा । (७-१०)

हे भारत ! अनन्तर मैंने परशुराम-के ऊपर वायव्य-अस्त्र चलाया और उन्होंने भी गुह्यक अस्त्रसे उसे काट गिराया । तब मैंने मन्त्र पढ़के आग्नेय अस्त्र चलाया; परशुरामने वारुणास्त्रसे उसका संहार किया । इसी प्रकारसे मैं

भी रामके सब दिव्य अस्त्रोंको निवारण करने लगा; और उन्होंने मेरे सब दिव्य शस्त्र निवारण किये । हे राजन् ! अनन्तर महातेजस्वी और प्रतापी परशुरामने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुझे बाणों और करके मेरे छातीमें शस्त्र प्रहार किया; उससे मैं चेतारहितकी भांति रथपर गिर गया । तब सारथीने मुझे इस प्रकारसे मूर्च्छित देख कर शीघ्रही रथ को लौटाया । (११-१५)

हे राजन् ! अकृतव्रण आदि रामके अनुयायी लोग और काशिगजकी कन्या भार्गवके बाणसे मुझे अत्यन्त

रामस्याऽनुचरा हृष्टाः सर्वे हृष्टा विचुकुशुः ।  
 अकृतव्रणप्रभृतयः काशिकन्या च भारत ॥ १७ ॥  
 ततस्तु लब्धसंज्ञोऽहं ज्ञात्वा सूतमथाऽब्रुवम् ।  
 याहि सूत यतो रामः सज्जोऽहं गतवेदनः ॥ १८ ॥  
 ततो मामवहत्सूतो हयैः परमशोभितैः ।  
 नृत्यद्भिरिव कौरव्य मारुतप्रतिमैर्गतौ ॥ १९ ॥  
 ततोऽहं राममासाद्य बाणवर्षैश्च कौरव ।  
 अवाकिरं सुसंरब्धः संरब्धं च जिगीषया ॥ २० ॥  
 तानापतत एवाऽसौ रामो बाणानजिह्वगान् ।  
 बाणैरेवाऽच्छिनत्तूर्णमेकैकं त्रिभिराहवे ॥ २१ ॥  
 ततस्ते सूदिताः सर्वे मम बाणाः सुसंशिताः ।  
 रामबाणैर्द्विधा च्छिन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २२ ॥  
 ततः पुनः शरं दीप्तं सुप्रभं कालसम्मितम् ।  
 अस्मृजं जामदग्न्याय रामायाऽहं जिघांसया ॥ २३ ॥  
 तेन त्वभिहतो गाढं बाणवेगवशां गतः ।  
 सुमोह समरे रामो भूमौ च निपपात ह ॥ २४ ॥  
 ततो हाहाकृतं सर्वं रामे भूतलमाश्रिते ।

पीडित, विद्व, ग्लानिसे युक्त, अचेत और  
 रणसे पराजित होते देख कर आनन्दित  
 होने लगे । अनन्तर जब मुझे चेतना  
 प्राप्त हुई और मेरी बुद्धि ठीक हुई, तब  
 मैंने सारथीसे कहा, हे सूत ! मैं पीडा  
 रहित और सावधान हुआ हूं; इससे  
 तुम मुझको परशुरामके समीप ले चलो।  
 हे कौरव ! मेरा सारथी मुझे उत्तम घोड़ों-  
 से युक्त शोभायमान रथपर लेकर चला  
 और वायुके समान घोड़े भी अत्यन्त  
 शीघ्रतासे नाचते हुए चले । (१६-१९)

अनन्तर मैंने परशुरामके समीप

जाकर क्रोधपूर्वक उनके ऊपर बाणोंकी  
 वर्षा करनी आरम्भ की । उन्होंने तीन  
 तीन बाणोंसे मेरे सब बाण सरलभावसे  
 मार्गहीमें काट डाले; इस प्रकारसे मेरे  
 सैकड़ों तथा सहस्रों बाण परशुरामके  
 बाणोंसे दो दो टुकड़े होकर पृथ्वीपर  
 गिर पड़े । तब मैंने परशुरामके वध  
 करनेकी इच्छासे साक्षात् काल दण्डके  
 समान अत्यन्त प्रकाशित जलता हुआ  
 शस्त्र चलाया; उसके लगनेसे वह मूर्च्छित  
 होके पृथ्वीमें गिर पड़े । (२०-२४)

हे भारत ! सूर्यके पतित होनेसे

जगद्भारत संविभ्रं यथाऽर्कपतने भवेत् ॥ २५ ॥

तत एनं समुद्विग्नाः सर्व एवाऽभिदुद्रुवुः ।

तपोधनास्ते सहसा काश्या च कुरुनन्दन ॥ २६ ॥

तत एनं परिष्वज्य शनैराश्वासयंस्तदा ।

पाणिभिर्जलशीतैश्च जयाशीर्भिश्च कौरव ॥ २७ ॥

ततः स विह्वलं वाक्यं राम उत्थाय चाऽब्रवीत् ।

तिष्ठ भीष्म हतोऽसीति बाणं सन्धाय कार्मुके ॥ २८ ॥

स मुक्तो न्यपतत्तूर्णं सव्ये पार्श्वे महाहवे ।

येनाऽहं भृशमुद्विग्नो व्याघूर्णित इव द्रुमः ॥ २९ ॥

हत्वा हयांस्ततो रामः शीघ्रास्त्रेण महाहवे ।

अवाकिरन्मां विस्त्रब्धो बाणैस्तैर्लोमवाहिभिः ॥ ३० ॥

ततोऽहमपि शीघ्रास्त्रं समरप्रतिवारणम् ।

अवासृजं महाबाहो तेऽन्तराऽधिष्ठिताः शराः ॥ ३१ ॥

रामस्य मम चैवाऽऽशु व्योमाऽऽवृत्य समन्ततः ।

न स्म सूर्यः प्रतपति शरजालसमावृतः ॥ ३२ ॥

जगत् जिस प्रकारसे व्याकुल हो सकता है, परशुरामके पृथ्वीपर गिरनेसे सवने उसी भांतिसे हाहाकार किया । वह सब तपस्वी और काशिराजकी कन्या आदि अत्यन्त व्याकुल होके उनके निकट गये और धीरे धीरे उन्हें आलिङ्गन करके जलसे युक्त शीतल हाथोंसे स्पर्श करके और जय आशीर्वादसे उनकी स्तुति करने लगे । (२५-२७)

अनन्तर परशुराम उठ कर धनुषपर बाण चढाके विह्वल वचनसे मुझे कहने लगे; “भीष्म ! खडा रह ! खडा रह ! यही मारा गया ।” संग्राममें वह बाण धनुषसे छूट कर अत्यन्त वेगसे मेरी

बांयीं ओर हृदयमें लगा । उसके लगनेसे मैं वायुसे उखडते हुए वृक्षकी भांति व्याकुल होगया । परशुरामने शीघ्रता से अपना शस्त्र चलाकर मेरे सब घोटों-को मार डाला और क्रोधपूर्वक लोम युक्त बाणोंके जालसे मुझे छिपा दिया । ( २८-३० )

मैंने भी उनके शस्त्रोंके निवारण करनेके निमित्त शीघ्र शस्त्र चलाया । हे भारत ! परशुरामके और मेरे वे सब बाण आकाशमें व्याप्त होकर ऊपर ही रह गये; इससे बाणोंके जालसे आकाश ऐसा छा गया, कि सूर्यकी किरण प्रकाशित नहीं होती थी, और वायुका

मानरिश्वा ततस्तस्मिन्मेघरुद्ध इवाऽभवत् ।  
 ततो वायोः प्रकम्पाच्च सूर्यस्य च गभस्तिभिः ॥ ३३ ॥  
 अभिघातप्रभावाच्च पावकः समजायत ।  
 ते शराः स्वसमुत्थेन प्रदीप्ताश्चित्रभानुना ॥ ३४ ॥  
 भूमौ सर्वे तदा राजन्भस्मभूताः प्रपेदिरे ।  
 तदा शतसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ ३५ ॥  
 अयुतान्यथ स्वर्वाणि निखर्वाणि च कौरव ।  
 रामः शराणां संकुद्धो मयि तूर्णं न्यपातयत् ॥ ३६ ॥  
 ततोऽहं तानपि रणे शरैराशीविषोपमैः ।  
 सञ्छिद्य भूमौ नृपते पानयेयं नगानिव ॥ ३७ ॥  
 एवं तदभवद्युद्धं तदा भरतसत्तम ।  
 सन्ध्याकाले व्यतीते तु व्यपायात्स च मे गुरुः ॥ ३८ ॥ [६१४२]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपवणि रामभीष्मयुद्धे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८० ॥

भीष्म उवाच— समागतस्य रामेण पुनरेवाऽतिदारुणम् ।

अन्येद्युस्तुमुलं युद्धं तदा भरतसत्तम ॥ १ ॥  
 ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो दिव्यान्यस्त्रापयनेकशः ।  
 अयोजयत्स धर्मात्मा दिवसे दिवसे विभुः ॥ २ ॥

शीघ्र चलना भी रुक गया । इससे  
 वायुकी सनसनाहट, बाणोंकी चोट,  
 और सूर्यकी किरणसे अधिकी उत्पत्ति  
 हुई । (३१-३४)

तत्र सम्पूर्ण बाण स्वतःसे उत्पन्न हुए  
 अग्निसे भस्म होकर पृथ्वीमें गिर पड़े । हे  
 कौरव ! अनन्तर परशुराम खूबही क्रोधसे  
 पूरित होकर सौ, हजार दश-हजार,  
 लाख, अर्बुद, खर्व, निखर्व आदि अन-  
 गितन बाणोंको अत्यन्त शीघ्रतासे  
 वर्षाने लगे । मैं भी विषधारी सर्पके  
 समान अपने बाणोंसे उनके सब बाणों-

को काट काट पृथ्वीमें गिरा दिया । हे  
 भरत सत्तम ! उस समय इसी प्रकारसे  
 घोर संग्राम होने लगा । सन्ध्याकाल के  
 समय व्यतीति होने पर वह मेरे गुरु युद्धसे  
 विरत होगये । (३४-३८) [६१४२]

उद्योगपर्वमें एकसौ अस्सी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ एकासी अध्याय ।

भीष्म बोले, हे भरतर्षभ ! दूसरे  
 दिन मेरा और परशुरामका समागम  
 होने पर फिर अत्यन्त घोर युद्ध हुआ,  
 वह दिव्य शस्त्रोंके जाननेवाले धर्मात्मा  
 प्रतापी परशुराम प्रतिदिन अनेक

तान्यहं तत्प्रतीघातैरस्त्रैरस्त्राणि भारत ।

व्यधमं तुमुले युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥ ३ ॥

अस्त्रैरस्त्रेषु बहुधा हतेष्वेव च भारत ।

अक्रुध्यत महातेजास्त्यक्तप्राणः स संयुगे ॥ ४ ॥

ततः शक्तिं प्राहिणोद्धोररूपामस्त्रे रुद्धे जामदग्न्यो महात्मा ।

कालोत्सृष्टां प्रज्वलितामिवोल्कां सन्दीप्ताग्रां तेजसा व्याप्य लोकम् ॥ ५ ॥

ततोऽहं तामिषुभिर्दीप्यमानां समायान्तीमन्तकालार्कदीप्ताम् ।

छित्वा त्रिधा पातयामास भूमौ ततो बवौ पवनः पुण्यगन्धिः ॥ ६ ॥

तस्यां छिन्नायां क्रोधदीप्तोऽथ रामः शक्तीर्घोराः प्राहिणोद् द्वादशाऽन्याः ।

तासां रूपं भारत नोत शक्यं तेजस्वित्वाल्लाघवाच्चैव वक्तुम् ॥ ७ ॥

किन्तुवेवाऽहं विह्वलः सम्प्रहृश्य दिग्भ्यः सर्वास्ता महोल्का इवाऽग्नेः ।

नानारूपास्तेजसोग्रेण दीप्ता यथाऽऽदित्या द्वादश लोकसंक्षये ॥ ८ ॥

ततो जालं बाणमयं विवृत्तं सन्दृश्य भित्त्वा शरजालेन राजन् ।

द्वादशेषून्प्राहिणवं रणेऽहं ततः शक्तीरप्यधमं घोररूपाः ॥ ९ ॥

दिव्य अस्त्रोंको चलाने लगे, और मैं भी अपने अस्त्रों से उन सब अस्त्रोंको निवारण करने लगा। हे भारत! मैं अपने प्राणकी आशा छोड़कर युद्ध करने लगा। इसी प्रकारसे अनेक शस्त्रोंके चलने और उनका निवारण होनेपर महातेजस्वी परशुराम भी प्राणपण करके युद्ध करने लगे। (१-४)

अस्त्रोंके विफल होनेपर महात्मा परशुरामने प्रकाशमान उल्काके समान जलती हुई सब लोकोंमें तेजसे व्याप्त होनेवाली महाघोर शक्ति चलायी। मैंने भी अपने तेज बाणोंसे उस सम्मुख आनेवाली प्रलयकालके सूर्यके समान प्रकाशित शक्तिको तीन खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया; तब शीतल वायु

चलने लगा। (५-६)

हे भारत! उस शक्तिको कटकर गिरती हुई देखकर परशुरामने क्रोधमें भरकर और भी बारह महा भयङ्कर शक्तियां चलायी। तेजस्विता और शीघ्रतासे युक्त होनेसे उन शक्तियोंके रूपका वर्णन करना बहुत कठिन है; रूपका मैं क्या वर्णन करूं। सब दिशाओंसे अग्निके लुकाके समान नाना रूपसे युक्त, प्रलयकालके बारह आदित्यके समान तेजसे जलती हुई उन शक्तियोंको देखकर ही मैं विह्वल होगया। (७-८)

अनन्तर उनको संमुख आई हुई जानकर मैंने अत्यन्त उत्तम बारह बाण चलाये और उनहीसे उन महा



ततो राजञ्जामदग्न्यो महात्मा शक्तीर्घोरा व्याक्षिपद्वेमदण्डाः ।  
 विचित्रिताः काश्चनपट्टनद्धा यथा महोत्का ज्वलितास्तथा ताः ॥१०॥  
 ताश्चाप्युग्राश्चर्मणा वारयित्वा खड्गेनाऽऽजौ पातयित्वा नरेन्द्र ।  
 बाणैर्दिव्यैर्जामदग्न्यस्य संख्ये दिव्यानश्वानभ्यवर्ष ससूतान् ॥ ११ ॥  
 निर्मुक्तानां पन्नगानां सरूपा दृष्ट्वा शक्तीर्हेमचित्रा निकृत्ताः ।  
 प्रादुश्चक्रे दिव्यमस्त्रं महात्मा क्रोधाविष्टो हैहयेशप्रमाथी ॥ १२ ॥  
 ततः श्रेण्यः शलभानामिवोग्राः समापेतुर्विशिखानां प्रदीप्ताः ।  
 समाचिनोच्चापि भृशं शरीरं हयान्सूतं सरथं चैव मल्लम् ॥ १३ ॥  
 रथः शरैर्मै निचिनः सर्वतोऽभूत्तथा वाहाः सारथिश्चैव राजन् ।  
 युगं रथेषां च तथैव चक्रे तथैवाऽक्षः शरकृत्तोऽथ भग्नः ॥ १४ ॥  
 ततस्तस्मिन्बाणवर्षे व्यतीते शरौघेण प्रत्यवर्षं गुरुं तम् ।  
 स विश्नतो मार्गणैर्ब्रह्मराशिर्देहादसक्तं सुमुचे भूरि रक्तम् ॥१५॥  
 यथा रामो बाणजालाभितप्तस्तथैवाऽहं सुभृशं गाढविद्धः ।  
 ततो युद्धं व्यरमचाऽपराह्णे भानावस्तं प्रतियाते महीध्रम् ॥१६॥ [६१५८]  
 इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

घोर शक्तियोंको भी भस्म कर दिया,  
 हे राजन् ! तब महात्मा परशुरामने  
 फिर सुवर्णके दण्डसे युक्त अत्यन्त  
 विचित्र जलती हुई उत्काके समान म-  
 हाभयङ्कर बहुतसी शक्तियां चलायी,  
 मैंने उन्हें चर्म (ढाल) से रोककर तर-  
 वारसे काटा और दिव्य बाणोंको चला-  
 कर सारथीके सहित उनके दिव्य घोड़ों-  
 को बाणोंसे छा लिया । (९-११)

तब हैहयवंशीय कार्तवीर्य अर्जुनके  
 नाश करनेवाले महात्मा परशुरामने  
 केंचुलीसे छूटे हुए सर्पकी भांति सुवर्ण  
 भूषित उन शक्तियोंको कटती हुई दे-  
 खकर अत्यन्त ही क्रोधके वशमें होकर

दिव्य अस्त्रोंको चलाना आरम्भ किया ।  
 अनन्तर प्रचण्ड तेजसे युक्त प्रकाशित  
 शलभ-समूहकी भांति उन सब शस्त्रों-  
 ने आकर मेरे रथके घोड़े और रथसमे-  
 त सारथीको सब ओरसे आच्छादित  
 करते हुए रथकी दोनों धुरी तथा  
 रथके पहिये आदिको तोड़कर गिरा  
 दिया । (१२-१४)

अनन्तर उनके बाणोंकी वर्षा शेष  
 होनेपर मैंने भी अपने तेज बाणोंकी  
 वर्षा करनी आरंभ की । उस समय वह  
 महात्मा परशुराम बाणोंके लगनेसे रक्त  
 मोचन करने लगे । मेरे बाणोंसे परशु-  
 राम व्याकुल होगये; और मैं भी उनके

भीष्म उवाच— ततः प्रभाते राजेन्द्र सूर्ये विमलतां गते ।  
 भार्गवस्य मया सार्धं पुनर्युद्धमवर्तत ॥ १ ॥  
 ततोऽभ्रान्ते रथे तिष्ठन् रामः प्रहरतां वरः ।  
 ववर्ष शरजालानि मयि मेघ इवाऽचले ॥ २ ॥  
 ततः सूतो मम सुहृच्छरवर्षेण ताडितः ।  
 अपयातो रथोपस्थान् मनो मम विषादयन् ॥ ३ ॥  
 ततः सूतो ममाऽत्यर्थं कश्मलं प्राविशन्महत ।  
 पृथिव्यां च शराघातान्निपपात सुमोह च ॥ ४ ॥  
 ततः सूतोऽजहात्प्राणान् रामबाणप्रपीडितः ।  
 सुहृतादिव राजेन्द्र मां च भीराविशत्तदा ॥ ५ ॥  
 ततः सूते हते तस्मिन्क्षिपतस्तस्य मे शरान् ।  
 प्रमत्तमनसो रामः प्राहिणोन्मृत्युसम्मितम् ॥ ६ ॥  
 ततः सूतव्यसनिनं विभुतं मां स भार्गवः ।  
 शरेणाऽभ्यहनद्गाढं विकृष्य बलवद्धनुः ॥ ७ ॥  
 स मे भुजान्तरे राजन्निपत्य रुधिराशनः ।

बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध हुआ। अन्तमें सन्ध्या समय सूर्यके अस्त होनेपर युद्धका होना बन्द हुआ। (१५-१६) [८१५८]

उद्योगपर्वमें एकसौ एकासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ बियासी अध्याय ।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र ! अनन्तर प्रातःकाल सूर्यके उदय होने पर मेरे सङ्ग फिर परशुरामका युद्ध आरम्भ हुआ । प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ परशुरामजी अपने भ्रमणशील रथपर स्थित होके पर्वतके ऊपर जल वर्षाने वाले बादलकी भांति मेरे ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे; उससे मेरा सुहृद् सारथी परशुरामके बाणोंसे पीडित होकर मेरे अन्तः-

करणको दुःखित करता हुआ रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। अत्यन्त ही मूर्च्छा के वशमें होके परशुरामके बाणोंसे पीडित होकर वह मेरा सारथी सुहृत् भरमें मर गया और मैं भी उस समयमें भयभीत होगया। (१—५)

सारथीके मारे जानेपर मैं डोलायमान चित्तसे उसके निमित्त शोक कर रहा था; उस ही समयमें महात्मा भार्गवने मेरे ऊपर कालके समान बाण चलाया। मैं सूतके अभावसे विपद्ग्रस्त होकर विचार कर रहा था; तौभी परशुरामने बलपूर्वक धनुषपर बाण चढाकर मुझे पीडित किया। हे राजन् ! वह रक्तको

मयैव सह राजेन्द्र जगाम वसुधातलम् ॥ ८ ॥  
 मत्वा तु निहतं रामस्ततो मां भरतर्षभ ।  
 मेघवद्विननादोच्चैर्जहृषे च पुनः पुनः ॥ ९ ॥  
 तथा तु पतिते राजन्मयि रामो मुदा युतः ।  
 उदक्रोशन्महानादं सह तैरनुयायिभिः ॥ १० ॥  
 मम तत्राऽभवन् ये तु कुरवः पार्श्वतः स्थिताः ।  
 आगता अपि युद्धं तज्जनास्तत्र दिदृक्षवः ॥  
 आतिं परमिकां जग्मुस्ते तदा पतिते मयि ॥ ११ ॥  
 ततोऽपश्यं पतितो राजसिंह द्विजानष्टौ सूर्यहुताशनाभान् ।  
 ते मां समन्तात्परिवार्य तस्थुः स्वबाहुभिः परिधार्याऽऽजिमध्ये ॥ १२ ॥  
 रक्ष्यमाणश्च तैर्विप्रैर्नाऽहं भूमिमुपास्पृशम् ।  
 अन्तरिक्षे धृतो ह्यस्मि तैर्विप्रैर्बान्धवैरिव ॥ १३ ॥  
 श्वसन्निवाऽन्तरिक्षे च जलबिन्दुभिरुक्षितः ।  
 ततस्ते ब्राह्मणा राजन्नब्रुवन्परिगृह्य माम् ॥ १४ ॥  
 मा भैरिति समं सर्वे स्वस्ति तेऽस्त्विति चाऽसकृत् ।  
 ततस्तेषामहं वाग्भिस्तर्पितः सहस्रोत्थितः ।

पीनेवाला भयङ्कर बाण मेरी छातीमें  
 लगकर मेरे सहित पृथ्वीमें आपड़ा, तब  
 परशुराम मुझे पृथ्वीमें गिरा हुआ देख  
 कर प्रसन्न हो ऊंचे स्वरसे बादलके समान  
 बार बार गर्जने लगे । हे राजेन्द्र ! मुझे  
 इस प्रकारसे चेतारहित देखकर परशुराम  
 अनुचरवृन्दके सहित हर्षित होकर सिंह-  
 नाद करने लगे । ( ६-१० )

वहांपर मेरे निकट जो कौरव थे,  
 तथा जो लोग युद्ध देखनेके निमित्त  
 आये थे; वे लोग मुझे इस प्रकारसे पड़ा  
 हुआ देखकर बहुत ही दुःखित हुए ।  
 हे राजसिंह ! अनन्तर मैंने रथसे गिर

कर देखा, कि रणभूमिमें सूर्य और अ-  
 ग्निके समान तेजस्वी आठ ब्राह्मण मुझे  
 चारों ओरसे घेरकर अपनी भुजाओंसे  
 धारण किये हुए हैं । उन ब्राह्मणोंसे  
 रक्षित होकर मैंने पृथ्वीको स्पर्श नहीं  
 किया; उन लोगोंने बन्धुकी भांति मुझे  
 अन्तरिक्षहीमें थाम रक्खा था; मैं  
 लम्बी सांस छोड़ रहा था और वह लोग  
 जलसे मुझे मावधान कर रहे थे । ११-१४

हे राजन् ! उस समयमें वे ब्राह्मण मुझे  
 धारण करके बार बार यह कहने लगे “तुम  
 भय मत करो, तुम्हारा कल्याण होगा ।”  
 उन लोगोंके वचनसे, मैं तर्पित और माव-

मातरं सरितां श्रेष्ठामपश्यं रथमास्थिताम् ॥ १५ ॥  
 हयाश्च मे संगृहीतास्तयाऽऽसन्महानद्या संयति कौरवेन्द्र ।  
 पादौ जनन्याः प्रतिगृह्य चाऽहं तथा पितृणां रथमभ्यरोहम् ॥ १६ ॥  
 ररक्ष सा मां सरथं हयांश्चोपस्कराणि च ।  
 तामहं प्राञ्जलिर्भूत्वा पुनरेव व्यसर्जयम् ॥ १७ ॥  
 ततोऽहं स्वयमुद्यम्य हयांस्तान्वातरंहसः ।  
 अयुध्यं जामदग्न्येन निवृत्तेऽहनि भारत ॥ १८ ॥  
 ततोऽहं भरतश्रेष्ठ वेगवन्तं महाबलम् ।  
 अमुश्चं समरे बाणं रामाय हृदयच्छिदम् ॥ १९ ॥  
 ततो जगाम वसुधां मम बाणप्रपीडितः ।  
 जानुभ्यां धनुस्तस्य रामो मोहवशं गतः ॥ २० ॥  
 ततस्तस्मिन्निपतिते रामे भूरिसहस्रदे ।  
 आववृर्जलदा व्योम क्षरन्तो रुधिरं बहु ॥ २१ ॥  
 उल्काश्च शतशः पेतुः सनिर्घाताः सकम्पनाः ।  
 अर्कं च सहसा दीप्तं स्वर्भानुरभिसंवृणोत् ॥ २२ ॥  
 ववुश्च वाताः परुषाश्चलिता च वसुन्धरा ।  
 गृध्रा बलाश्च कङ्काश्च परिपेतुर्मुदा युताः ॥ २३ ॥

धान होके उठ खड़ा हुआ और देखा, कि नदियोंमें श्रेष्ठ मेरी माता गंगा देवी रथमें बैठी हैं । हे राजेन्द्र ! मेरी माता गंगाने युद्धमें मेरे घोड़ोंको भी सावधान किया था । अनन्तर मैं जननी और पितरोंकी चरण-वन्दना करके रथपर चढ़ा । तब मेरी माता रथ, घोड़े और सब सामाग्रियोंके सहित मेरी रक्षा करने लगी । परन्तु मैं हाथ जोड़के विनय पूर्वक उन्हें विदा किया और स्वयं ही वायुके समान शीघ्र चलनेवाले घोड़ोंको चलाकर सन्ध्या काल पर्यन्त परशुरामके

संग युद्ध किया । ( १४-१८ )

हे भरतश्रेष्ठ ! उनके ऊपर मैंने एक हृदयको छेदनेवाला महाबलशाली बाण चलाया । मेरे उस बाणसे पीडित हो, परशुराम मोहके वशवर्ती होकर धनुषको छोड़के दोनों घुटनोंसे पृथ्वीको अवलम्बन करके खड़े रहे । ( १९—२० )

उन महातेजस्वी परशुरामके पृथ्वी टेकके खड़े होने पर बादलयुक्त आकाशमें रुधिरकी वर्षा होने लगी, बिजली और सैकड़ों उल्कापात होने लगे, सूर्य छिप गया, वायु बड़े जोरसे बहने लगी,

दीप्तायां दिशि गोमायुर्दारुणं मुहुरुन्नदत् ।

अनाहता दुन्दुभयो विनेदुर्भृशानिःस्वनाः ॥ २४ ॥

एतदौत्पातिकं सर्वं घोरमासीद्भयङ्करम् ।

विसंज्ञकल्पे धरणीं गते रामे महात्मनि ॥ २५ ॥

ततो वै सहस्रोत्थाय रामो मामभ्यवर्तत ।

पुनर्युद्धाय कौरव्य विह्वलः क्रोधमूर्छितः ॥ २६ ॥

आददानो महाबाहुः कार्मुकं बलसन्निभम् ।

ततो मर्याददानं तं राममेव न्यवारयन् ॥ २७ ॥

महर्षयः कृपायुक्ताः क्रोधाविष्टोऽथ भार्गवः ।

स मेऽहरदमेयात्मा शरं कालानलोपमम् ॥ २८ ॥

ततो रविर्मन्त्रमरीचिमण्डलो जगामाऽस्तं पांसुपुञ्जावगूढः ।

निशा व्यगाहत्सुखशीतमारुता ततो युद्धं प्रत्यवहारयावः ॥ २९ ॥

एवं राजन्नवहारो बभूव ततः पुनर्विमलेऽभूत्सुघोरम् । [ ३१८८ ]

कल्यं कल्यं विंशतिं वै दिनानि तथैव चाऽन्यानि दिनानि त्रीणि ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि राम भीष्मयुद्धे द्वाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

पृथ्वी जलने लगी, मिद्ध कौएं तथा बगुला आदि मांस भक्षण करनेवाले पक्षी हर्षित होकर इधर उधर घूमने लगे; सब दिशाएं जलने लगीं, शियार महाघोर शब्द करने लगे और बिना बजाये ही नगाड़े अत्यन्त कर्कश शब्दसे बजने लगे । ( २१-२४ )

हे भारत ! महात्मा परशुरामके चेत रहित होकर पृथ्वीपर गिरनेसे महाघोर भयङ्कर ये सब उत्पातके चिह्न उत्पन्न हुए । हे कौरव ! अनन्तर परशुराम विह्वल और क्रोधसे व्याप्त होकर अकस्मात् मेरे साथ युद्धके लिये तैयार हुए और हाथमें महा बलवान धनुषको

लेकर उसमें मेरे लिये प्रलयकालके समान बाण जोड़ने लगे; तब मुनियोंने कृपायुक्त होकर रामको उस कर्मसे निवृत्त किया और रामनेभी मुनियोंके वचनसे बाणका उपसंहार किया। (२५-२८)

अनन्तर भगवान् सूर्य घूलसे छिपकर अस्त होगये और सुख देनेवाली शीतल वायुसे युक्त रात्रिका समय हुआ; तब मैंने भी युद्ध करना बन्द किया । हे राजन् ! इसी प्रकारसे सन्ध्याको निवृत्त और प्रातःकाल फिर युद्धका आरंभ होने लगा । इसी भांतिसे तेईस दिन महा घोर संग्राम हुआ । ( २९-३० )

एकसौ बियासी अध्याय समाप्त । ६१८८ ]

भीष्म उवाच— ततोऽहं निशि राजेन्द्र प्रणम्य शिरसा तदा ।  
 ब्राह्मणानां पितृणां च देवतानां च सर्वशः ॥ १ ॥  
 नक्तश्चराणां भूतानां राजन्यानां विशाम्पते ।  
 शयनं प्राप्य रहिते मनसा समचिन्तयम् ॥ २ ॥  
 जामदग्न्येन मे युद्धमिदं परमदारुणम् ।  
 अहानि च बहून्यद्य वर्तते सुमहात्ययम् ॥ ३ ॥  
 न च रामं महावीर्यं शक्नोमि रणमूर्धनि ।  
 विजेतुं समरे विप्रं जामदग्न्यं महाबलम् ॥ ४ ॥  
 यदि शक्यो मया जेतुं जामदग्न्यः प्रतापवान् ।  
 दैवतानि प्रसन्नानि दर्शयन्तु निशां मम ॥ ५ ॥  
 ततो निशि च राजेन्द्र प्रसुप्तः शरविक्षतः ।  
 दक्षिणेनेह पार्श्वेन प्रभातसमये तदा ॥ ६ ॥  
 ततोऽहं विप्रमुख्यैस्तैर्यैरस्मि पतितो रथात् ।  
 उत्थापितो धृतश्चैव मा भैरिति च सान्त्वितः ॥ ७ ॥  
 त एव मां महाराज स्वप्नदर्शनमेत्य वै ।  
 परिवार्याऽब्रुवन्वाक्यं तन्निबोध कुरूद्रह ॥ ८ ॥  
 उत्तिष्ठ मा भैर्गाङ्गेय न भयं तेऽस्ति किञ्चन ।

उद्योगपर्वमें एकसौ तिरासी अध्याय ।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र ! अनन्तर रात्रिके समयमें मैं ब्राह्मण, पितर, देवता, रात्रिको भ्रमण करनेवाले भूतवृन्द और राजगणको शिर झुका कर प्रणाम करके एकान्त स्थानपर शय्याके ऊपर मन ही मन यह चिन्ता करने लगा, कि आज बहुत दिन हुआ परशुरामके सङ्ग मेरा महा-भयंकर दारुण-संग्राम हो रहा है; तौ भी मैं महाबलसे युक्त महावीर विप्रको पराजित नहीं कर सकता हूँ । प्रतापी परशुरामको युद्धमें परा-

जित करनेकी यदि मुझे सामर्थ्य हो, तो देवता लोग प्रसन्न होके आज रात्रिके समयमें मुझे दर्शन देंगे । ( १—५ )

हे राजन् ! मैं बाणोंके लगनेसे घायल होके इसी प्रकारसे दाहिनी ओर शय्या-पर सोया था, उसी समयमें प्रातःकालके पहिले ही जिन ब्राह्मणोंने मुझे रथसे गिरनेपर उठाया और मुझे ग्रहण करके कहा था, तुम्हें भय नहीं है, उन्हीं लोगों ने स्वप्नमें मुझे दर्शन दिया । और उन सबोंने मुझे घेरकर जो वचन कहा, वह तुम सुनो । ( ६—८ )

रक्षामहे त्वां कौरव्य स्वशरीरं हि नो भवान् ॥ ९ ॥

न त्वां रामो रणे जेता जामदग्न्यः कथञ्चन ।

त्वमेव समरे रामं विजेता भरतर्षभ ॥ १० ॥

इदमस्त्रं सुदायितं प्रत्यभिज्ञास्यते भवान् ।

विदितं हि तवाऽप्येतत्पूर्वस्मिन्देहधारणे ॥ ११ ॥

प्राजापत्यं विश्वकृतं प्रस्वापं नाम भारत ।

नहीदं वेद रामोऽपि पृथिव्यां वा पुमान्कचित् ॥ १२ ॥

तत्स्मरस्व महाबाहो भृशं संयोजयस्व च ।

उपस्थास्यति राजेन्द्र स्वयमेव तवाऽनघ ॥ १३ ॥

येन सर्वान्महावीर्यान्प्रशासिष्यसि कौरव ।

न च रामः क्षयं गन्ता तेनाऽस्त्रेण नराधिप ॥ १४ ॥

एनसा न तु संयोगं प्राप्स्यसे जातु मानद ।

स्वप्स्यते जामदग्न्योऽसौ त्वद्बाणबलपीडितः ॥ १५ ॥

ततो जित्वा त्वमेवैनं पुनरुत्थापयिष्यसि ।

अस्त्रेण दयितेनाऽऽजौ भीष्म सम्बोधनेन वै ॥ १६ ॥

एवं कुरुष्व कौरव्य प्रभाते रथमास्थितः ।

वह लोग बोले, भीष्म ! उठो; तुमको कुछ भी भय नहीं है; हम लोग तुम्हारी रक्षा करेंगे; क्योंकि तुम हम लोगों के ही शरीर हो; हे भरतर्षभ ! परशुराम किसी प्रकारसे भी तुम्हें युद्ध में पराजित न कर सकेंगे; बल्कि तुम ही उन्हें परास्त करोगे । हे भरतश्रेष्ठ ! विश्वकर्मा का बनाया यह जो प्रस्वाप नाम उत्तम प्राजापत्य अस्त्र है, वह तुमको युद्ध के समय में विदित हो जायेगा, क्योंकि पूर्वजन्म में भी यह तुमको विदित था । ( ९—१२ )

हे भारत ! परशुराम तथा पृथ्वी के

दूरे किसी भी पुरुष ने आज समय तक इसके तत्त्व को नहीं जाना है । हे भारत ! इससे तुम इस अस्त्र को स्मरण करो; और दृढ़ता के सहित चलाओ वह आप ही तेरे पाम आजायगा । हे भारत ! इस शस्त्र से परशुराम की मृत्यु नहीं होवेगी, और तुमको भी ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगेगा । हे भीष्म ! तुम्हारे बाण के बल से पीडित होकर परशुराम केवल शयन मात्र करेंगे । ( १२—१५ )

अनन्तर उनको जीतकर तुम ही अपने उत्तम सम्बोधन अस्त्र से उठाना, हे राजेन्द्र ! इससे प्रातःकाल उठकर

प्रसुप्तं वा मृतं वेति तुल्यं मन्यामहे वयम् ॥ १७ ॥

न च रामेण मर्त्यं कदाचिदपि पार्थिव ।

ततः समुत्पन्नामिदं प्रस्वापं युज्यतामिति ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता राजन्सर्व एव द्विजोत्तमाः ।

अष्टौ सहशरूपास्ते सर्वे भासुरमूर्तयः ॥ १९ ॥ [ ६२०७ ]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि

भीष्मप्रस्वापनाखलाभे व्यशित्याधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

भीष्म उवाच— ततो रात्रौ व्यतीतायां प्रतिबुद्धोऽस्मि भारत ।

ततः सञ्चिन्त्य वै स्वप्नमवापं हर्षमुत्तमम् ॥ १ ॥

ततः समभवद्युद्धं मम तस्य च भारत ।

तुमुलं सर्वभूतानां लोमहर्षणमद्भुतम् ॥ २ ॥

ततो बाणमयं वर्षं ववर्ष मयि भार्गवः ।

न्यवारयमहं तच्च शरजालेन भारत ॥ ३ ॥

ततः परमसंकुद्धः पुनरेव महातपाः ।

ह्यस्तनेन च कोपेन शक्तिं वै प्राहिणोन्मयि ॥ ४ ॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शा यमदण्डसमप्रभाम् ।

ज्वलन्तीमग्निवत्संख्ये लेलिहानां समन्ततः ॥ ५ ॥

तुम ऐसा ही करो; सोना और मरना दोनोंको हम लोग समान ही समझते हैं। हे कौरव ! परशुरामकी कभी मृत्यु न हो सकेगी; इससे तुम अब इस प्रस्वाप अस्त्रको धनुषपर चढ़ाओ। वह तेजस्वी मूर्त्तिमान् समान रूपवाले आठों ब्राह्मण ऐसा वचन कहकर वहीं अन्तर्द्धान होगये। (१६-१९) [६२०७]

उद्योगपर्वमें एकसौ तिरासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ चारसी अध्याय ।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र ! अनन्तर रात्रिके बीतनेपर मैं निद्रासे उठ उस

स्वप्नके वृत्तान्तको मनमें विचार कर हर्षित हुआ। इसके बाद परशुरामका और मेरा सब लोकोंको विस्मित करने-वाला परम अद्भुत संग्राम आरम्भ हुआ। हे भारत ! उस समय परशुरामने मेरे ऊपर बाणोंकी वर्षा की और मैंने भी उसे निवारण किया। (१-३)

अनन्तर महातेजस्वी भार्गवने पूर्व दिनके कोपसे कुद्ध होकर मेरे ऊपर इन्द्रके वज्र समान कठोर साक्षात् यमदण्डके समान शक्ति चलायी, हे भरतर्षभ ! वह महाघोर शक्ति जलती हुई अग्निके



ततो भरतशार्दूल धिष्ण्यमाकाशं यथा ।  
 स मामभ्यवधीत्तूर्णं जत्रुदेशे कुरुद्वह ॥ ६ ॥  
 अथाऽस्रमस्रवद्धोरं गिरेर्गैरिकधातुवत् ।  
 रामेण सुमहाबाहो क्षतस्य क्षतजेक्षण ॥ ७ ॥  
 ततोऽहं जामदग्न्याय भृशं क्रोधसमन्वितः ।  
 चिक्षेप मृत्युसङ्काशं बाणं सर्पविषोपमम् ॥ ८ ॥  
 स तेनाऽभिहतो वीरो ललाटे द्विजसत्तमः ।  
 अशोभत महाराज सशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ९ ॥  
 स संरब्धः समावृत्य शरं कालान्तकोपमम् ।  
 सन्दधे बलवत्कृष्य घोरं शत्रुनिबर्हणम् ॥ १० ॥  
 स वक्षसि पपातोग्रः शरो व्याल इव श्वसन् ।  
 महीं राजंस्ततश्चाऽहमगमं रुधिराविलः ॥ ११ ॥  
 सम्प्राप्य तु पुनः संज्ञां जामदग्न्याय धीमते ।  
 प्राहिण्वं विमलां शक्तिं ज्वलन्तीमशनीमिव ॥ १२ ॥  
 सा तस्य द्विजमुख्यस्य निपपात भुजान्तरे ।  
 विह्वलश्चाऽभवद्राजन्वेपथुश्चैनमाविशत् ॥ १३ ॥  
 तत एनं परिष्वज्य सखा विप्रो महातपाः ।

समान प्रकाशित होकर सब दिशाओंको  
 प्रज्वालित करती हुई आकाश में स्थित  
 नक्षत्रके समान शीघ्रही आकर मेरे कन्धे  
 में लगी । हे महाबाहो ! तब परशुरामके  
 शस्त्रसे घायल होकर गेरुकी धार वर्षने-  
 वाले पर्वतकी भांति मेरे शरीरसे रक्त  
 बरसने लगा । (४—७)

तब मैं अत्यन्त क्रोधित होकर पर-  
 शुरामकी ओर सर्प विषके-समान मृत्यु-  
 रूपी बाण चलाया। हे महाराज ! वह बाण  
 वीरवर द्विजसत्तम परशुरामके मस्तकमें  
 लगा; उससे शृङ्गयुक्त पर्वतकी भांति

उन्होंने क्रोधपूर्वक धनुषको खींचकर शत्रु  
 ओंको नाश करनेवाला कालके समान  
 बाण चलाया। वह फुफुकार करता हुआ  
 सर्पके समान गर्जता हुआ बाण मेरी  
 छातीमें लगा, उसके लगनेसे मैं रक्तसे  
 भीगकर पृथ्वीमें गिर पड़ा; परन्तु फिर  
 सावधान होकर बुद्धिमान् परशुरामकी  
 ओर वज्रके समान जलती हुई प्रकाशित  
 शक्ति चलायी । ( ८-१२ )

हे राजन् ! वह शक्ति द्विजसत्तम  
 परशुरामकी छातीमें लगी; उससे वह  
 विह्वल होके कांपने लगे। तब उनके प्यारे

अकृतव्रणः शुभैर्वाक्यैराश्वासयदनेकधा ॥ १४ ॥  
 समाश्वस्तस्ततो रामः क्रोधासर्षसमन्वितः ।  
 प्रादुश्चक्रे तदा ब्राह्मं परमास्त्रं महाव्रतः ॥ १५ ॥  
 ततस्तत्प्रतिघातार्थं ब्राह्ममेवाऽस्त्रमुत्तमम् ।  
 मया प्रयुक्तं जज्वाल युगान्तमिव दर्शयत् ॥ १६ ॥  
 तयोर्ब्रह्मास्त्रयोरासीदन्तरा वै समागमः ।  
 असम्प्राप्यैव रामं च मां च भारतसत्तम ॥ १७ ॥  
 ततो व्योम्नि प्रादुरभूत्तेज एव हि केवलम् ।  
 भूतानि चैव सर्वाणि जग्मुरार्तिं विशाम्पते ॥ १८ ॥  
 ऋषयश्च सगन्धर्वा देवताश्चैव भारत ।  
 सन्तापं परमं जग्मुरस्त्रतेजोभिपीडिताः ॥ १९ ॥  
 ततश्च चाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा ।  
 सन्तप्तानि च भूतानि विषादं जग्मुरुत्तमम् ॥ २० ॥  
 प्रजज्वाल नभो राजन्धूमायन्ते दिशो दश ।  
 न स्थातुमन्तरिक्षे च शोकुराकाशगास्तदा ॥ २१ ॥  
 ततो हाहाकृते लोके सदेवासुरराक्षसे ।  
 इदमन्तरमित्येवं मोक्तुकामोऽस्मि भारत ॥ २२ ॥

मित्र महातपस्वी अकृतव्रण उनको आलि-  
 ङ्गन करके अनेक प्रकारके उत्तम और  
 शुभ वचनोंसे हर्षित करने लगे । अनन्तर  
 महाव्रत करनेवाले परशुरामने क्रोधपूर्वक  
 ब्रह्मास्त्र चलाया । तब मैंने उसके निवारण  
 करनेको परमब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया ।  
 हे भारत ! वह महा अस्त्र प्रलयकालके  
 समान प्रज्वलित होने लगे । (१३-१६)  
 हे भारत सत्तम ! परशुरामके तथा मेरे  
 पास न पहुंच कर दोनों ब्रह्मास्त्रोंका  
 आकाशके बीचमें ही समागम हुआ । उस  
 समय सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त ही पीडित

होने लगे । दोनों अस्त्रोंके तेजसे पीडित  
 होकर ऋषि, गन्धर्व, देवता आदि सब  
 ही अत्यन्त दुःखित हुए । (१७-१९)

पर्वत, वन और वृक्षोंके सहित पृथ्वी  
 कांपने लगी और प्राणी मात्र अत्यन्त  
 पीडित होकर विषाद करने लगे, आकाश  
 मण्डल प्रज्वलित होने लगा, सब दिशा  
 ओमें धूआं भर गया; इससे आकाशचारी  
 भी आकाशमें निवास न कर सके । अन-  
 न्तर देव, असुर और राक्षसोंसे युक्त सब  
 लोकोंमें हाहाकार होने लगा । “ यही  
 उत्तम समय है ” विचार करके मैंने शीघ्र

प्रस्वापमस्त्रं त्वरितो वचनाद्ब्रह्मवादिनाम् ।

विचित्रं च तदस्त्रं मे मनसि प्रत्यभात्तदा ॥ २३ ॥ [६२३०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि

परस्परब्रह्मास्त्रप्रयोगे चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

भीष्म उवाच -- ततो हलहलाशब्दो दिवि राजन्महानभूत् ।  
 प्रस्वापं भीष्म मा स्नाक्षीरिति कौरवनन्दन ॥ १ ॥  
 अगुञ्जमेव चैवाऽहं तदस्त्रं भृगुनन्दने ।  
 प्रस्वापं मां प्रयुञ्जानं नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥  
 एते वियति कौरव्य दिवि देवगणाः स्थिताः ।  
 ते त्वां निवारयन्त्यद्य प्रस्वापं मा प्रयोजय ॥ ३ ॥  
 रामस्तपस्वी ब्रह्मण्यो ब्राह्मणश्च गुरुश्च ते ।  
 तस्याऽवमानं कौरव्य मा स्म कार्षीः कथञ्चन ॥ ४ ॥  
 ततोऽपश्यं दिविष्ठान्वै तानष्टौ ब्रह्मवादिनः ।  
 ते मां स्मयन्तो राजेन्द्र शनकैरिदमब्रुवन् ॥ ५ ॥  
 यथाऽऽह भरतश्रेष्ठ नारदस्तत्तथा कुरु ।  
 एतद्धि परमं श्रेयो लोकानां भरतर्षभ ॥ ६ ॥  
 ततश्च प्रतिसंहत्य तदस्त्रं स्वापनं महत् ।

ही उन ब्राह्मणोंके वचनके अनुसार प्रस्वा-  
 पास्त्र चलानेकी इच्छा की; उस समय  
 वह विचित्र अस्त्र भी मेरे मनके बीच  
 प्रकाशित होगया । (२०-२३) [६२३०]

उद्योगपर्वमें एकसौ चौरासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ पचासी अध्याय ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! अनन्तर आ-  
 काशमें “हे कौरव नन्दन भीष्म ! प्रस्वा-  
 पास्त्र मत चलाओ” इसी प्रकारसे महा-  
 घोर शब्द हुआ; तौभी परशुरामकी ओर  
 मैंने उस अस्त्रका प्रयोग किया । तब  
 नारद मुझसे बोले, हे कौरव ! देखो वह

आकाशमें सब देवता स्थित हैं; इससे तुम  
 प्रस्वापास्त्र मत चलाओ । हे भारत !  
 परशुराम तपस्वी और ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण  
 हैं, विशेष करके तुम्हारे गुरु हैं; इससे किसी  
 प्रकारसे उनका अपमान मत करो । १-४

हे राजेन्द्र ! फिर मैंने उन आठ ब्राह्म-  
 णोंको आकाशमें स्थित देखा, वह लोग  
 हंसके मुझसे यह वचन बोले, “हे भारत  
 श्रेष्ठ ! नारद जो कहते हैं, वही करो;  
 क्योंकि यह लोकका परम कल्याण कर-  
 नेवाला वचन है ।” (५-६)

अनन्तर मैंने उस महाघोर प्रस्वापा-

ब्रह्मास्त्रं दीपयाश्रके तस्मिन्पुत्रि यथाविधि ॥ ७ ॥  
 ततो रामो हृषितो राजसिंह इष्ट्वा तदस्त्रं विनिवर्तितं वै ।  
 जितोऽस्मि भीष्मेण सुमन्दबुद्धिरित्येव वाक्यं सहसा व्यमुञ्चत् ॥ ८ ॥  
 ततोऽपश्यत्पितरं जात्रदग्ध्यः पितुस्तथा पितरं चाऽस्य मान्यम् ।  
 ते तत्र चैनं परिवार्य तस्थुरूचुश्चैनं सान्त्वपूर्वं तदानीम् ॥ ९ ॥  
 पितर ऊचुः — मा स्मैवं साहसं तात पुनः कार्षीः कथञ्चन ।  
 भीष्मेण संयुगं गन्तुं क्षत्रियेण विशेषतः ॥ १० ॥  
 क्षत्रियस्य तु धर्मोऽयं यदुद्धं भृगुनन्दन ।  
 स्वाध्यायो व्रतचर्याऽथ ब्राह्मणानां परं धनम् ॥ ११ ॥  
 इदं निमित्ते कस्मिंश्चिदस्माभिः प्रागुदाहृतम् ।  
 शस्त्रधारणमत्युग्रं तच्चाऽकार्यं कृतं त्वया ॥ १२ ॥  
 वत्स पर्याप्तमेतावद्भीष्मेण सह संयुगे ।  
 विमर्दस्ते महाबाहो व्यपयाहि रणादितः ॥ १३ ॥  
 पर्याप्तमेतद्भद्रं ते तव कार्मुकधारणम् ।  
 विसर्जयैतदुर्ध्वं तपस्तप्यस्व भार्गव ॥ १४ ॥

स्रका संहार करके विधिपूर्वक ब्रह्मास्त्र ही  
 दीपित किया । हे राजसिंह ! तब क्रोधमें  
 भरे हुए परशुराम उस प्रस्थापनास्त्रको  
 रुकता हुआ देखकर सहसा यह वचन  
 बोले, भीष्मने मुझे पराजित किया । मैं  
 अत्यन्त ही मन्द-बुद्धि हूँ । (७-८)

इसके अनन्तर परशुरामने माननी-  
 य अपने पिता और पितामह आदि  
 पितरोंको देखा । वह लोग उसी स्थान  
 पर उनको घेर कर खड़े हुए और उस  
 समय उन्हें शान्त करनेके निमित्त यह  
 वचन बोले, “हे तात ! तुम फिर कभी  
 किसी प्रकारसे भी ऐसा कर्म मत कर-  
 ना, भीष्म तथा क्षत्रियोंके सङ्ग अब

कभी युद्ध करनेका उत्साह मत करो । हे  
 भृगुनन्दन ! युद्ध क्षत्रियोंका ही धर्म है,  
 ब्राह्मणोंका वेद पठना और व्रत करना  
 ही परम धर्म है । (९-११)

पहिले किसी कारणके उपलक्षमें  
 हम लोगोंने तुमको इन शस्त्रोंको धारण  
 करनेके निमित्त कहा था, और तुमने  
 भी महाघोर कठिन कार्य का अनुष्ठान  
 किया था । हे महाबाहो ! संग्राममें  
 भीष्मके संग तुम्हारा यह युद्ध यहां  
 ही तक हुआ । हे पुत्र ! इससे अब तुम  
 इस रणभूमिसे बाहर चलो । हे भार्गव !  
 तुम्हारा धनुष धारण करना भी आज ही  
 तक रहा; इससे हे पुत्र ! अब तुम इसे

एष भीष्मः शान्तनवो देवैः सर्वैर्निवारितः ।  
 निवर्तस्व रणादस्मादिति चैव प्रसादितः ॥ १५ ॥  
 रामेण सह मा योत्सीर्गुरुणोति पुनः पुनः ।  
 न हि रामो रणे जेतुं त्वया न्याय्यः कुरुद्रुह ॥ १६ ॥  
 मानं कुरुष्व गाङ्गेय ब्राह्मणस्य रणाजिरे ।  
 वयं तु गुरवस्तुभ्यं तस्मात्त्वां वारयामहे ॥ १७ ॥  
 भीष्मो वसूनामन्यतमो दिष्टया जीवसि पुत्रक ।  
 गाङ्गेयः शान्तनोः पुत्रो वसुरेष महायशाः ॥ १८ ॥  
 कथं शक्यस्त्वया जेतुं निवर्तस्वेह भार्गव ।  
 अर्जुनः पाण्डवश्रेष्ठः पुरन्दरसुतो बली ॥ १९ ॥  
 नरः प्रजापतिर्वीरः पूर्वदेवः सनातनः ।  
 सव्यसाचीति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ॥  
 भीष्ममृत्युर्यथाकालं विहितो वै स्वयम्भुवा ॥ २० ॥  
 भीष्म उवाच— एवमुक्तः स पितृभिः पितृन्रामोऽब्रवीदिदम् ।  
 नाऽहं युधि निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ॥ २१ ॥  
 न निवर्तितपूर्वश्च कदाचिद्रणमूर्धनि ।

विसर्जन करके तपस्या करो ॥ (१२-१४)  
 सम्पूर्ण देवता लोग इस शान्तनु  
 नन्दन भीष्मको “हे कुरुश्रेष्ठ! इस संग्राम-  
 से निवृत्त होजाओ, गुरु परशुरामके  
 संग युद्ध मत करो; इनको युद्धमें परा-  
 जित करना तुमको उचित नहीं है । हे  
 गंगानन्दन ! रणभूमिमें इनका यथा  
 उचित सम्मान करो;” बारबार ऐसे वच-  
 नोंको कहके निवारण करके तुम्हारे  
 ऊपर कृपा की है । हे पुत्र ! इससे हम  
 लोग भी तुम्हारे गुरु हैं; इस ही कार-  
 णसे तुम्हें निवारण करते हैं । १६-१७  
 हे भार्गव ! शान्तनुके वीर्य और

गंगाके गर्भसे उत्पन्न हुए महायशस्वी  
 वसुको तुम कैसे पराजित कर सकते  
 हो ? हे पुत्र ! भीष्म वसुओंमें एक प्रधान  
 पुरुष हैं, इससे प्रारब्धसे जो तुम जीते  
 बचे हो; यही बहुत है । इससे अब तुम  
 युद्धसे निवृत्त होजाओ; स्वयंभू विधाता-  
 ने पूर्वदेव इन्द्रपुत्र बलवान् पाण्डवश्रेष्ठ  
 अर्जुनको समयके अनुसार भीष्मके वधके  
 निमित्त उत्पन्न किया है ।” (१८-२२)  
 भीष्म बोले, परशुरामने अपने पिता,  
 पितामह आदि पितरोंके वचनको सुन-  
 कर यह कहा, कि “मैं युद्धसे कभी  
 भी निवृत्त न होऊंगा” ऐसा व्रत धा-

निवर्त्यतामापगेयः कामं युद्धात्पितामहाः ॥ २२ ॥  
 न त्वहं विनिवर्तिष्ये युद्धादस्मात्कथञ्चन ।  
 ततस्ते मुनयो राजवृचीकप्रमुखास्तदा ॥ २३ ॥  
 नारदेनैव सहिताः समागम्येदमब्रुवन् ।  
 निवर्तस्व रणात्तात मानयस्व द्विजोत्तमम् ॥ २४ ॥  
 इत्यवोचमहं तांश्च क्षत्रधर्मव्यपेक्षया ।  
 मम व्रतमिदं लोके नाऽहं युद्धात्कदाचन ॥ २५ ॥  
 विमुखो विनिवर्तेयं पृष्ठतोऽभ्याहतः शरैः ।  
 नाऽहं लोभान्न कार्पण्यान्न भयान्नाऽर्थकारणात् ॥ २६ ॥  
 त्यजेयं शाश्वतं धर्ममिति मे निश्चिता मतिः ।  
 ततस्ते मुनयः सर्वे नारदप्रमुखा नृप ॥ २७ ॥  
 भागीरथी च मे माता रणमध्यं प्रपेदिरे ।  
 तथैवाऽऽत्तशरो धन्वी तथैव दृढनिश्चयः ॥  
 स्थिरोऽहमाहवे योद्धुं ततस्ते राममब्रुवन् ॥ २८ ॥  
 समेत्य सहिता भूयः समरे भृगुनन्दनम् ।  
 नावनीतं हि हृदयं विप्राणां शाम्य भार्गव ॥ २९ ॥

रण किया है; और पहिले भी युद्धसे कभी निवृत्त नहीं हुआ हूँ। पितामहगण ! इससे आप लोग गंगातनय भीष्म-हीको युद्धसे निवृत्त कीजिये; मैं इस युद्धसे किसी प्रकारसे भी निवृत्त न होऊंगा। (२१-२३)

हे राजन् ! अनन्तर वह ऋचिक आदि मुनि लोग नारदके सहित मिल कर मेरे निकट आकर बोले, 'हे तात ! युद्धसे निवृत्त हो जाओ, इस द्विजोत्तमका सम्मान करो। तब मैंने भी क्षत्रिय धर्मकी प्रतीक्षासे उन सबसे कहा, लोकमें मेरा यह व्रत है, कि मैं युद्धसे

कभी पीठ दिखाकर निवृत्त न होऊंगा। मैं लोभ, कृपणता, भय और अर्थ आदि किसी प्रकारसे भी अपने सनातन धर्मको नहीं छोड़ सकता हूँ, यही मेरा स्थिर निश्चय है। (२३—२७)

हे राजेन्द्र ! अनन्तर नारद आदि सब मुनि और मेरी माता भागीरथी तथा ऋषि लोग रणभूमिमें आये; तौभी मैं उसी प्रकारसे धनुष बाण धारण करके युद्धके निमित्त दृढ निश्चयसे खड़ा था। तब वह सब कोई मिलकर भृगुनन्दन परशुरामके निकट जाकर यह वचन बोले, हे भार्गव ! ब्राह्मणोंका

राम राम निवर्तस्व युद्धादस्माद् द्विजोत्तम ।  
 अवध्यो वै त्वया भीष्मस्त्वं च भीष्मस्य भार्गव ॥ ३० ॥  
 एवं ब्रुवन्तस्ते सर्वे प्रतिक्रुद्धय रणाजिरम् ।  
 न्यासयाश्चकिरे शस्त्रं पितरो भृगुनन्दनम् ॥ ३१ ॥  
 ततोऽहं पुनरेवाऽथ तानष्टौ ब्रह्मवादिनः ।  
 अद्राक्षं दीप्यमानान्वै ग्रहानष्टाविवोदितान् ॥ ३२ ॥  
 ते मां सप्रणयं वाक्यमब्रुवन्समरे स्थितम् ।  
 प्रैहि रामं महाबाहो गुरुं लोकहितं कुरु ॥ ३३ ॥  
 दृष्ट्वा निवर्तितं रामं सुहृद्वाक्येन तेन वै ।  
 लोकानां च हितं कुर्वन्नहमप्याददे वचः ॥ ३४ ॥  
 ततोऽहं राममासाद्य ववन्दे भृशविक्षतः ।  
 रामश्चाऽभ्युत्समयन्प्रेम्णा मासुवाच महातपाः ॥ ३५ ॥  
 त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन्क्षत्रियः पृथिवीचरः ।  
 गम्यतां भीष्म युद्धेऽस्मिंस्तोषितोऽहं भृशं त्वया ॥ ३६ ॥  
 मम चैव समक्षं तां कन्यामाहूय भार्गवः ।

हृदय अत्यन्त ही कोमल होता है, इससे  
 तुम ही शान्त हो जाओ। हे राम ! हे  
 द्विजोत्तम ! इस युद्धसे निवृत्त हो जा-  
 ओ। हे भृगुनन्दन ! भीष्म तुम्हारा  
 अवध्य और तुम भी भीष्मके अवध्य  
 हो। (२७—३०)

वह पितर लोग रणभूमिको रोककर  
 सब कोई ऐसे ही वचन कहते कहते  
 परशुरामसे शस्त्र त्याग करवाया। अन-  
 न्तर मैंने उन प्रकाशित ग्रहसमूहकी  
 भांति ब्रह्मवादी आठ ऋषियोंको फिर  
 देखा; वह लोग युद्धमें स्थिर मुझको  
 प्रीतिपूर्वक यह वचन बोले, हे महाबाहो !  
 लोकके हितका कार्य करो; विनयपूर्वक

अपने गुरु परशुरामके निकट जाओ, तब  
 मैंने परशुरामको सुहृद् लोगोंके वचनसे  
 निवृत्त होता हुआ देखकर लोगोंके  
 हितके निमित्त अपने सुहृद् पुरुषोंके  
 वचनको ग्रहण किया। (३१—३४)

अनन्तर शस्त्रोंसे अत्यन्त पीड़ित  
 होकर भी मैंने परशुरामके समीपमें जा-  
 कर उन्हें प्रणाम किया; महातपस्वी  
 परशुराम भी प्रेमपूर्वक हंसते हुए वचन  
 बोले, हे भीष्म ! पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण  
 क्षत्रियोंमें भी तुम्हारे समान कोई क्षत्रि-  
 य पुरुष विद्यमान नहीं है; इस युद्धमें  
 तुमने मुझको अत्यन्त ही सन्तुष्ट किया  
 है; इससे अब गमन करो। मुझसे ऐसा

उक्तवान्दीनया वाचा मध्ये तेषां महात्मनाम् ॥ ३७ ॥ [६२६७]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि युद्धनिवृत्तौ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

राम उवाच— प्रत्यक्षमेतल्लोकानां सर्वेषामेव भाविनि ।  
 यथा शक्त्या मया युद्धं कृतं वै पौरुषं परम् ॥ १ ॥  
 न चैवमपि शक्नोमि भीष्मं शस्त्रभृतां वरम् ।  
 विशेषयितुमत्यर्थमुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ॥ २ ॥  
 एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ।  
 यथेष्टं गम्यतां भद्रे किमन्यद्वा करोमि ते ॥ ३ ॥  
 भीष्ममेव प्रपद्यस्व न तेऽन्या विद्यते गतिः ।  
 निर्जितो ह्यस्मि भीष्मेण महास्त्राणि प्रमुञ्चता ॥ ४ ॥  
 एवमुक्त्वा ततो रामो विनिःश्वस्य महामनाः ।  
 तूष्णीमासीत्ततः कन्या प्रोवाच भृगुनन्दनम् ॥ ५ ॥  
 भगवन्नेवमेवैतद्यथाऽऽह भगवांस्तथा ।  
 अजेयो युधि भीष्मोऽयमपि देवैरुदारधीः ॥ ६ ॥  
 यथाशक्ति यथोत्साहं मम कार्यं कृतं त्वया ।

वचन कहकर परशुरामजीने सब महा-  
 त्माओंके बीच मेरे सम्मुख ही उस कन्या  
 को आवाहन करके दीन वचनसे नीचे  
 कही हुई बातोंको कहने लगे । (३५-३७)

एकसौ पचाशी अध्याय समाप्त । [ ६२६७ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ छियासी अध्याय

परशुराम बोले, हे भाविनि ! मैंने  
 अपने पुरुषार्थके अनुसार पराक्रमको  
 प्रकाशित करके जो युद्ध किया, उसे  
 सब लोगोंने ही देखा है । मैंने अनेक  
 उत्तम अस्त्र शस्त्र चलाए, तौभी शस्त्रधा-  
 रिओंमें श्रेष्ठ भीष्मको परास्त न कर सका ।  
 मेरी जितनी शक्ति और बल है, उसे  
 प्रकाशित किया; इससे हे भद्रे ! अब

जहां इच्छा हो वहां जाओ । तुम्हारा  
 दूसरा कार्य ही मैं क्या करूंगा ? इससे  
 अब तुम भीष्महीकी शरणमें जाओ;  
 इसके अतिरिक्त और कहीं भी तुम्हारी  
 गति नहीं है; देखो मैं अपने परम दिव्य  
 अस्त्रोंको चला कर भी भीष्मको नहीं  
 जीत सका । ( १—४ )

महातेजस्वी परशुराम ऐसे वचन कह  
 कर लम्बी सांस लेते हुए चुप होगये ।  
 अनन्तर अम्बाने उनसे कहा; भगवन् !  
 तुम जो कहते हो, वह सब ठीक है;  
 यह उदार बुद्धि भीष्म युद्धमें देवताओंसे  
 भी अजेय है । तुम्हारी जितनी शक्ति  
 और जैसा उत्साह था, तुमने उसके



अनिवार्य रणे वीर्यमस्त्राणि विविधानि च ॥ ७ ॥  
 न चैव शक्यते युद्धे विशेषयितुमन्ततः ।  
 न चाऽहमेनं यास्यामि पुनर्भीष्मं कथञ्चन ॥ ८ ॥  
 गमिष्यामि तु तत्राऽहं यत्र भीष्मं तपोधन ।  
 समरे पातयिष्यामि स्वयमेव भृगूद्वह ॥ ९ ॥  
 एवमुक्त्वा ययौ कन्या रोषव्याकुललोचना ।  
 तापस्ये धृतसङ्कल्पा सा मे चिन्तयती वधम् ॥ १० ॥  
 ततो महेन्द्रं सहितैर्मुनिभिर्भृगुसत्तमः ।  
 यथागतं तथा सोऽगान्मासुपासन्त्य भारत ॥ ११ ॥  
 ततो रथं समारुह्य स्तूयमानो द्विजातिभिः ।  
 प्रविश्य नगरं मात्रे सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ १२ ॥  
 यथावृत्तं महाराज सा च मां प्रत्यनन्दत ।  
 पुरुषांश्चाऽऽदिशं प्राज्ञान्कन्यावृत्तान्तकर्माणि ॥ १३ ॥  
 दिवसे दिवसे ह्यस्या गतिजल्पितचेष्टितम् ।  
 प्रत्याहरंश्च मे युक्ताः स्थिताः प्रियहिते सदा ॥ १४ ॥  
 यदैव हि वनं प्रायात्सा कन्या तपसे धृता ।

अनुसार ही मेरा कार्य किया है, रणभूमिमें अत्यन्त बल, पराक्रम और दिव्य शस्त्रोंको प्रकाशित किया, तौभी भीष्मसे अधिक न होसके, परन्तु हे तपोधन! मैं इस भीष्मके निकटमें अब किसी प्रकारसे भी न जाऊंगी; उसी स्थान पर जाऊंगी जहां आपही रणभूमिमें उसे परास्त कर सकूंगी । ( ५—९ )

ऐसा वचन कह कर वह कन्या क्रोधसे व्याकुल होके वहांसे चली गई और मेरे वध करनेका सङ्कल्प करके तपस्या करनेका सङ्कल्प किया । अनन्तर भृगुसत्तम परशुरामने उन मुनियोंके

सहित विदा होनेके समय उनसे यथा उचित बातचीत करके महेन्द्र पर्वत पर चले गये । हे भारत ! मैं रथ पर चढ़के ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन सुनता हुआ हस्तिनापुरमें प्रवेश करके माता सत्यवतीसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा, और उन्होंने भी मुझे आनन्दित किया । हे महाराज ! तब मैं अम्बाके वृत्तान्तको जाननेके वास्ते अत्यन्त निपुण बुद्धिमान् पुरुषोंको नियुक्त किया । ( १०—१३ )

वह सब दूत मेरे प्रिय कार्यमें रत होकर उस कन्याके प्रतिदिन की गति, वाणी और चेष्टा सुनाने लगे । हे तात !

तदैव व्यथितो दीनो गतचेता इवाऽभवम् ॥ १५ ॥  
 न हि मां क्षत्रियः कश्चिद्वीर्येण व्यजयद्युधि ।  
 कृते ब्रह्मविदस्तात तपसा संशितव्रतात् ॥ १६ ॥  
 अपि चैतन्मया राजन्नारदेऽपि निवेदितम् ।  
 व्यासे चैव तथा कार्यं तौ चोभौ मामवोचताम् ॥ १७ ॥  
 न विषादस्त्वया कार्यो मीष्म काशिसुतां प्रति ॥ १८ ॥  
 दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ।  
 सा कन्या तु महाराज प्रविश्याऽऽश्रममण्डलम् ।  
 यमुनातीरमाश्रित्य तपस्तेपेऽतिमानुषम् ॥ १९ ॥  
 निराहारा कृशा रूक्षा जटिला मलपङ्क्तिनी ।  
 षण्मासान्वायुभक्षा च स्थाणुभूता तपोधना ॥ २० ॥  
 यमुनाजलमाश्रित्य संवत्सरमथाऽपरम् ।  
 उदवासं निराहारा पारयामास भाविनी ॥ २१ ॥  
 शीर्णपर्णेन चैकेन पारयामास सा परम् ।  
 संवत्सरं तीव्रकोपा पादांगुष्ठाग्रधिष्ठिता ॥ २२ ॥

अम्बा जब तपस्याके निमित्त सङ्कल्प करके वनको गई तब ही मैं व्याकुल स्वभावसे युक्त और चेत-रहित हो गया; क्योंकि ब्रह्मज्ञ लोगोंसे ही मुझे भय हुआ करता है; तपस्या करनेवाले ब्रह्मज्ञ लोगोंके अतिरिक्त और कोई क्षत्रिय मुझे युद्धमें नहीं जीत सकता । ( १४—१६ )

हे राजन् ! मैंने नारद और व्यास देवसे भी उस कार्यकी निवेदन किया । उससे वह लोग मुझसे बोले, हे मीष्म ! तुम काशिराजकी कन्याके विषयमें कुछ भी शोक मत करो; पुरुषार्थसे कोई पुरुष क्या दैवको अतिक्रम कर सकता है ? ( १७—१९ )

हे राजन् ! वह कन्या आश्रममण्डलमें प्रवेश करके यमुनाके तीर पर अपना आश्रम बना कर अलौकिक तपस्या करने लगी; उसने आहारको त्याग दिया । कृशित, जटाधारिणी, धूल और कीचडके सङ्ग रहनेवाली सूखी लकड़ीकी भांति स्थिर होकर छः महीने वायु भक्षण करते तपस्या करती रही; फिर एक वर्ष तक यमुना जलके आसरे निराहार व्रत धारण किया; फिर केवल वृश्चसे गिरे हुए एक एक सूखे पत्तोंको खाकर एक वर्ष बिताया । वह महाक्रोध करनेवाली तपस्विनी अपने पांवके अंगूठेके अग्रभागके बलसे खड़ी होकर इसी

एवं द्वादश वर्षाणि तापयामास रोदसी ।  
 निवर्त्यमानाऽपि च सा ज्ञातिभिर्नैव शक्यते ॥ २३ ॥  
 ततोऽगमद्वत्सभूमिं सिद्धचारणसेविताम् ।  
 आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥  
 तत्र पुण्येषु तीर्थेषु साऽऽप्लुताङ्गी दिवानिशम् ।  
 व्यचरत्काशिकन्या सा यथाकामविचारिणी ॥ २५ ॥  
 नन्दाश्रमे महाराज तथोत्तूकाश्रमे शुभे ।  
 च्यवनस्याऽऽश्रमे चैव ब्रह्मणः स्थान एव च ॥ २६ ॥  
 प्रयागे देवयजने देवारण्येषु चैव ह ।  
 भोगवत्यां महाराज कौशिकस्याऽऽश्रमे तथा ॥ २७ ॥  
 माण्डव्यस्याऽऽश्रमे राजन्दिलीपस्याऽऽश्रमे तथा ।  
 रामहृदे च कौरव्य पैलगर्गस्य चाऽऽश्रमे ॥ २८ ॥  
 एतेषु तीर्थेषु तदा काशिकन्या विशास्पते ।  
 आप्लावयत गात्राणि व्रतमास्थाय दुष्करम् ॥ २९ ॥  
 तामब्रवीच्च कौरव्य मम माता जले स्थिता ।  
 किमर्थं क्लिश्यसे भद्रे तथ्यमेव वदस्व मे ॥ ३० ॥  
 सैनमथाऽब्रवीद्राजन्कृताञ्जलिरनिन्दिता ।

प्रकारसे बारह वर्ष तपस्या करके स्वर्ग  
 और पृथ्वीको तपाने लगी । जातिके  
 लोगोंने बहुत ही चेष्टा की; परन्तु  
 किसी प्रकारसे भी उसे निवृत्त न कर  
 सके । (१९-२३)

अनन्तर अम्बाने पुण्यशील महात्मा  
 ब्रह्मवादी तपस्त्रियोंके आश्रम, भूत सि-  
 द्ध और चारणोंसे सेवित वत्स भूमिमें  
 गमन करती हुई; इच्छापूर्वक सब स्था-  
 नोंमें भ्रमण करने लगी । हे महाराज !  
 वह क्रमसे नन्दाश्रम, उत्तूक-आश्रम,  
 च्यवनके आश्रम, ब्रह्मस्थान, प्रयाग,

देवयजन, देव अरण्य, भोगवती, वि-  
 श्वामित्रके आश्रम, माण्डव्य आश्रम,  
 दिलीप-आश्रम, रामहृद् और पैल गर्गके  
 आश्रममें भ्रमण करने लगी । (२४-२८)

हे राजेन्द्र ! उस काशिराजकी क-  
 न्याने अत्यन्त कठिन व्रत अवलम्बन  
 करके उस समय सम्पूर्ण तीर्थोंमें जाकर  
 स्नान किया था । हे कौरव ! किसी  
 दिन जलमें खड़ी हुई देखकर मेरी माता  
 गङ्गा-देवीने उससे कहा, हे भद्रे !  
 तुम किस कारणसे इतना क्लेश सह रही  
 हो; वह मुझसे सत्य सत्य कहो । २९-३०

भीष्मेण समरे रामो निर्जितश्चारुलोचने ॥ ३१ ॥  
 कोऽन्यस्तमुत्सहेजेतुमुच्यतेषु महीपतिः ।  
 साऽहं भीष्मविनाशाय तपस्तप्ये सुदारुणम् ॥ ३२ ॥  
 विचरामि महीं देवि यथा हन्यामहं नृपम् ।  
 एतद्रतफलं देवि परमस्मिन् यथा हि मे ॥ ३३ ॥  
 ततोऽब्रवीत्सागरगा जिह्वां चरसि भाविनि ।  
 नैष कामोऽनवद्याङ्गि शक्यः प्राप्तुं त्वयाऽबले ॥ ३४ ॥  
 यदि भीष्मविनाशाय काश्ये चरसि वै व्रतम् ।  
 व्रतस्था च शरीरं त्वं यदि नाम विमोक्षयसि ॥ ३५ ॥  
 नदी भविष्यसि शुभे कुटिला वार्षिकोदका ।  
 दुस्तीर्था न तु विज्ञेया वार्षिकी नाऽष्टमासिकी ॥ ३६ ॥  
 भीमग्राहवती घोरा सर्वभूतभयङ्करी ।  
 एवमुक्त्वा ततो राजन्काशिकन्यां न्यवर्तत ॥ ३७ ॥  
 माता मम महाभागा समयमानेव भाविनी ।

तब वह अनिन्दिता काशीराजकी  
 कन्या हाथ जोडकर बोली, हे देवी !  
 हे सुन्दर-नेत्रवाली ! परशुरामने भी-  
 ष्मको युद्धमें नहीं जीता; तब और कौ-  
 न बलवान राजा उस शस्त्रधारी महा-  
 वीरको जीत सकता है ? इससे मैं भी-  
 ष्मके वधके निमित्त यह महा घोर तप-  
 स्या कर रही हूँ; ऐसा ही मनमें निश्चय  
 करके पृथ्वीमें भ्रमण कर रही हूँ । हे  
 देवी ! किसी प्रकारसे उस भीष्मका  
 वध कर सकूँ, यही मेरे व्रतका परम  
 फल है । ( ३१—३३ )

अनन्तर समुद्रमें गमन करनेवाली  
 मेरी माता भागीरथीने उससे कहा, हे  
 भाविनी ! तुम कुटिल आचरण कर

रही हो; हे सुन्दरी ! तुम्हारी यह अ-  
 भिलाषा पूर्ण न होवेगी । हे काशिराजकी  
 कन्या ! यदि भीष्मके वधके निमित्त  
 तुम इस प्रकारसे व्रत करोगी, और व्रत  
 करती हुई शरीरको छोड़ोगी; तब टेढ़ी  
 चालसे बहनेवाली नदी रूप होजाओ-  
 गी । केवल वर्षाकालहीमें तुम्हारा जल  
 रहंगा और दूसरे आठ महीनेतक तुम  
 जल-रहित होओगी । और तुम्हारा  
 तीर्थ निन्दनीय होगा, कोई भी तुमको  
 न जान सकेगा । तुम विकराल ग्राहव-  
 ती और घोररूपा होकर सब प्राणियोंको  
 भयङ्करी बोध होओगी । ( ३४—३७ )

हे राजन् ! मेरी माता यशस्विनी  
 भागीरथीने हंसते हंसते ऐसे वचन कह-

कदाचिदष्टमे मासि कदाचिद्दशमे तथा ।  
 न प्राश्रीतोदकमपि पुनः सा वरवर्णिनी ॥ ३८ ॥  
 सा वत्सभूमिं कौरव्य तीर्थलोभात्ततस्ततः ।  
 पतिता परिधावन्ती पुनः काशिपतेः सुता ॥ ३९ ॥  
 सा नदी वत्सभूम्यां तु प्रथिताऽम्बेति भारत ।  
 वार्षिकी ग्राहबहुला दुस्तीर्था कुटिला तथा ॥ ४० ॥  
 सा कन्या तपसा तेन देहार्धेन व्यजायत ।  
 नदी च राजन्वत्सेषु कन्या चैवाऽभवत्तदा ॥ ४१ ॥ [६३०८]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि अम्बातपस्यायां षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

भीष्म उवाच — ततस्ते तापसाः सर्वे तपसे धृतनिश्चयाम् ।  
 दृष्ट्वा न्यवर्तयंस्तात किं कार्यमिति चाऽब्रुवन् ॥ १ ॥  
 तानुवाच ततः कन्या तपोवृद्धानृषींस्तदा ।  
 निराकृताऽस्मि भीष्मेण भ्रंशिता पतिधर्मतः ॥ २ ॥  
 वधार्थं तस्य दीक्षा मे न लोकार्थं तपोधनाः ।  
 निहत्य भीष्मं गच्छेयं शान्तिमित्येव निश्चयः ॥ ३ ॥

कर काशिराजकी कन्याको बिदा किया।  
 अनन्तर वह कन्या फिर व्रत अवलम्बन  
 करके कभी आठ महीने और दश मास  
 तक जल भी नहीं पीती थी। हे कौरव !  
 और सब तीर्थोंमें इधर उधर भ्रमण करके  
 फिर वह वत्स-भूमिमें आई और वहांपर  
 वर्षाकालमें बहनेवाली अनेक ग्राह आदि  
 जल-जन्तुओंसे युक्त टेढ़ी और भय  
 उत्पन्न करनेवाली नदीरूपसे विख्यात  
 हुई। हे राजन् ! वत्सभूमिमें अम्बा उस  
 तपस्याके बलसे शरीरके आधे भागसे  
 नदी हुई और शेष आधे-भागसे कन्या-  
 भी बनीरही । ( ३७-४१ ) [६३०८]

उद्योगपर्वमें एकसौ छियासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ सत्तासी अध्याय ।

भीष्म बोले, अनन्तर वह सब तपस्वी  
 लोगोंने काशिराज कन्याको तपस्यामें  
 कृत संकल्प देखकर उसे निवारण किया  
 और उसका कौनसा कार्य है, इस बात-  
 को भी पूछा। तब अम्बा उन तपोवृद्ध  
 ऋषियोंसे बोली, हे तपोधनवृन्द ! मैं  
 भीष्मके हाथसे ग्रहण की जानेसे पति  
 धर्मसे रहित हुई हूं, इससे उसीके  
 वधके निमित्त मेरी यह तपस्या है,  
 स्वर्ग आदि लोकोंके प्राप्त करनेके निमि-  
 त्त मैं तप नहीं करती हूं। भीष्मको  
 मारकर शान्त होऊंगी, यही निश्चय  
 है । (१—३)

यत्कृते दुःखवसतिमिमां प्राप्ताऽस्मि शाश्वतीं ।  
 पतिलोकाद्विहीना च नैव स्त्री न पुमानिह ॥ ४ ॥  
 नाऽहत्वा युधि गाङ्गेयं निवर्तिष्ये तपोधनाः ।  
 एष मे हृदि सङ्कल्पो यदिदं कथितं मया ॥ ५ ॥  
 स्त्रीभावे परिनिर्विण्णा पुंस्त्वार्थे कृतनिश्चया ।  
 भीष्मे प्रतिचिकीर्षामि नाऽस्मि वार्येति वै पुनः ॥ ६ ॥  
 तां देवो दर्शयामास शूलपाणिरुमापतिः ।  
 मध्ये तेषां महर्षीणां स्वेन रूपेण तापसीम् ॥ ७ ॥  
 छन्द्यमाना वरेणाऽथ सा वत्रे सत्पराजयम् ।  
 हनिष्यसीति तां देवः प्रत्युवाच मनस्विनीम् ॥ ८ ॥  
 ततः सा पुनरेवाऽथ कन्या रुद्रमुवाच ह ।  
 उपपद्येत्कथं देव स्त्रिया युधि जयो मम ॥ ९ ॥  
 स्त्रीभावेन च मे गाढं मनः शान्तमुभापते ।  
 प्रतिश्रुतश्च भूतेश त्वया भीष्मपराजयः ॥ १० ॥  
 यथा स सत्यो भवति तथा कुरु वृषध्वज ।

हे तापसवृन्द ! जिसके कारणसे इ-  
 तना दुःख सह रही हूं, और पति-लोक  
 से रहित होगई हूं, न मैं स्त्री और  
 न पुरुष हूं, उस गङ्गापुत्र भीष्मको वि-  
 ना युद्धमें मारे अब निवृत्त न होऊंगी ।  
 आप लोगोंसे मैंने जो यह वचन कहा  
 है, यही मेरे हृदयका सङ्कल्प है । मैं  
 स्त्रीभावसे दुःख पाकर अब पुरुषत्व  
 प्राप्त करनेका निश्चय करके भीष्म के  
 वध करनेकी इच्छा करती हूं । इससे  
 आप लोग अब मुझको निवारण न  
 कीजिएगा । (४—६)

हे भारत ! अनन्तर देवोंके देव शू-  
 लधारी महादेव उन महर्षियोंके बीच इस

तपस्विनीको दर्शन देकर बोले, “तेरी  
 क्या अभिलाषा है ? वर मांग ” । तब  
 उस मनस्विनी काशिराजकी कन्याने  
 मेरे वध करनेके निमित्त वरदान मांगा ।  
 उसका वचन सुनकर महादेव बोले,  
 “अवश्य वध करोगी ” यह वचन सुन  
 कर अम्बाने महादेवसे पूछा, कि हे  
 देवोंके देव ! मैं स्त्री होकर भीष्मको युद्ध-  
 में मारूंगी, यह कैसे संभव और ठीक  
 हो सकता है ? (७—९)

हे भूतोंके स्वामी उमानाथ ! स्त्री  
 भाव विशेष करके तपस्यासे मेरा मन  
 अत्यन्त ही शान्त होगया है; तुमने भी  
 भीष्मकी वध करनेका मुझे वर दिया,

यथा हन्यां समांगस्य भीष्मं शान्तनवं युधि॥ ११ ॥  
 तामुवाच महादेवः कन्यां किल वृषध्वजः ।  
 न मे वागनृतं प्राह सत्यं भद्रे भविष्यति ॥ १२ ॥  
 हनिष्यसि रणे भीष्मं पुरुषत्वं च लप्स्यसे ।  
 स्मरिष्यसि च तत्सर्वं देहमन्यं गता सती ॥ १३ ॥  
 द्रुपदस्य कुले जाता भविष्यसि महारथः ।  
 शीघ्रास्त्रश्चित्रयोधी च भविष्यसि सुसम्मतः॥ १४ ॥  
 यथोक्तमेव कल्याणि सर्वमेतद्भविष्यति ।  
 भविष्यसि पुमान्पश्चात्कस्माच्चित्कालपर्ययात् ॥ १५ ॥  
 एवमुक्त्वा महादेवः कपर्दी वृषभध्वजः ।  
 पश्यतामेव विप्राणां तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ १६ ॥  
 ततः सा पश्यतां तेषां महर्षीणामनिन्दिता ।  
 समाहृत्य वनात्तस्मात्काष्ठानि वरवर्णिनी ॥ १७ ॥  
 चितां कृत्वा सुमहतीं प्रदाय च हुताशनम् ।  
 प्रदीप्तेऽग्नौ महाराज रोषदीप्तेन चेतसा ॥ १८ ॥

इससे हे वृषभध्वज ! शान्तनुनन्दन  
 भीष्म जिस प्रकारसे मेरा वध्य होवे,  
 वही कीजिये । मैं उसके सङ्ग युद्धमें-  
 जाकर जिस प्रकारसे उस भीष्मको मार  
 सकूँ तुम उस ही उपायका विधान  
 करो । ( १०—११ )

तब वृषभध्वज महादेव उस कन्या-  
 से बोले, हे भद्रे ! मेरी बात कभी मि-  
 थ्या न होगी, यह अवश्य ही सत्य  
 होगी । तुम भीष्मको युद्धमें मारोगी,  
 और पुरुषत्वभी प्राप्त करोगी तथा दूसरे  
 शरीरमें गमन करके पूर्व जन्मके सम्पू-  
 र्ण वृत्तान्तको भी स्मरण करोगी ।  
 द्रुपदके कुलमें जन्म लेकर तुम महा-

रथ, शीघ्र शस्त्र चलानेवाले महाबलवा-  
 न् योद्धा बनोगी । हे कल्याणि ! मैंने  
 जो कुछ कहा, वह सब सत्य होगा,  
 तुम कुछ कालके बाद पुरुष हो  
 जाओगी । ( १२—१५ )

वृषभध्वज कपाली महादेव ऐसा  
 वचन कह कर तपस्वी ब्राह्मणोंके सम्मुख  
 ही अन्तर्द्धान्न होगये । अनन्तर अनि-  
 न्दिता काशिराजकी कन्या अम्बाने  
 उन महर्षियोंके सम्मुख ही वनमेंसे  
 काठ लाकर यमुनाके समीप एक बड़ी  
 चिता बनाकर उसमें अग्नि लगा दी ।  
 हे महाराज ! उस अग्निके प्रज्वलित  
 होने पर वह काशिराजकी बड़ी कन्या

उक्त्वा भीष्मवधायेति प्रविधिवेश हुताशनम् ।

ज्येष्ठा काशिसुता राजन्यमुनामभितो नदीम् ॥१९॥ ६३२७

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि अम्बाहुताशनप्रवेशे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७॥

दुर्योधन उवाच—कथं शिखण्डी गाङ्गेय कन्या भूत्वा पुरा तदा ।

पुरुषोऽभूच्छुधि श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—भार्या तु तस्य राजेन्द्र द्रुपदस्य महीपतेः ।

महिषी दयिता ह्यासीदपुत्रा च विशां पते ॥ २ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदो वै महीपतिः ।

अपत्यार्थं महाराज तोषयामास शङ्करम् ॥ ३ ॥

अस्मद्रुधार्थं निश्चित्य तपो घोरं समास्थितः ।

ऋते कन्यां महादेव पुत्रो मे स्यादिति ब्रुवन् ॥ ४ ॥

भगवन्पुत्रमिच्छामि भीष्मं प्रतिचिकीर्षया ।

इत्युक्तो देवदेवेन स्त्रीपुमांस्ते भविष्यति ॥ ५ ॥

निवर्तस्व महीपाल नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।

स तु गत्वा च नगरं भार्यामिदमुवाच ह ॥ ६ ॥

क्रोधपूर्वक “मैं भीष्मके वधके निमित्त इस अग्निमें प्रवेश करती हूँ” ऐसा वचन कहकर अग्निमें प्रवेश करके जल गई । (१६—१९) [ ६३२७ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ सतासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ अठासी अध्याय ।

दुर्योधन बोले, हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ गंगानन्दन पितामह ! शिखण्डी पहिले कन्या होकर पीछे किस प्रकारसे पुरुष होगया; उसे वर्णन कीजिये । (१)

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र ! लोकमें विख्यात राजा द्रुपदकी प्यारी रानी पुत्रहीन थी । हे राजेन्द्र ! उसी समय राजा द्रुपदने मेरे वधके निमित्त निश्चय

करके महा घोर तप करके पिनाकधारी महादेवको सन्तुष्ट किया और उनसे यह वचन बोले, “हे भगवन् ! मैं भीष्म के वधके निमित्त एक पुत्रकी इच्छा करता हूँ; हे शङ्कर ! इससे कन्याके अतिरिक्त मेरे एक पुत्र होवे । (२-५)

उनकी यह प्रार्थना सुनकर देवोंके देव महादेव बोले, तुमको स्त्री और पुरुष ऐसा एक पुत्र उत्पन्न होगा; हे राजन् ! तुम निवृत्त होजाओ; मैंने जो वचन कहा है, कभी वह झूट न होगा । राजा द्रुपद महादेवका ऐसा वचन सुनकर नगरमें आकर अपनी भार्यासे बोले, हे देवी ! मैंने अत्यन्त यत्नसे तपस्यासे



कृतो यत्नो महादेवस्तपसाऽऽराधितो मया ।  
 कन्या भूत्वा पुमान्भावी इति चोक्तोऽस्मि शम्भुना ॥  
 पुनः पुनर्याच्यमानो दिष्टमित्यब्रवीच्छिवः ।  
 न तदन्यच्च भविता भवितव्यं हि तत्तथा ॥ ८ ॥  
 ततः सा नियता भूत्वा ऋतुकाले मनस्विनी ।  
 पत्नी द्रुपदराजस्य द्रुपदं प्रविवेश ह ॥ ९ ॥  
 लेभे गर्भं यथाकालं विधिदृष्टेन कर्मणा ।  
 पार्षतस्य महीपाल यथा मां नारदोऽब्रवीत् ॥ १० ॥  
 ततो दधार सा देवी गर्भं राजीवलोचना ।  
 तां स राजा प्रियां भार्या द्रुपदः कुरुनन्दन ॥ ११ ॥  
 पुत्रस्नेहान्महाबाहुः सुखं पर्यचरत्तदा ।  
 सर्वानभिप्रायकृतान्भार्याऽलभत कौरव ॥ १२ ॥  
 अपुत्रस्य सतो राज्ञो द्रुपदस्य महीपतेः  
 यथाकालं तु सा देवी महिषी द्रुपदस्य ह ॥ १३ ॥  
 कन्यां प्रवररूपां तु प्राजायत नराधिप ।  
 अपुत्रस्य तु राज्ञः सा द्रुपदस्य मनस्विनी ॥ १४ ॥

महादेवको प्रसन्न किया है; उन्होंने कहा है, कि तुमको कन्या और पुत्र ऐसा एक सन्तान उत्पन्न होगी; उस वचनको सुनकर मैंने बार बार प्रार्थना की, परन्तु शङ्करने कहा, यह मेरी बात कभी नहीं पलट सकती। इससे हे भाविनि ! उस वचनमें अब कुछ भी रद-बदल न होगा, क्योंकि इसी प्रकारकी भवितव्यता थी । ( ५-८ )

अनन्तर यशस्विनी द्रुपदराजकी पुत्रीने ऋतुमती होकर नियम पूर्वक उन के सङ्ग सहवास किया और शास्त्रमें कहे हुए कर्मसे यथा समयमें गर्भ धारण

किया । महाराज ! नारदने मुझसे शि-खण्डीका जिस प्रकारसे जन्म-वृत्तान्त कहा था, मैं उसहीको वर्णन करता हूँ । हे कुरुनन्दन ! उस सुन्दर नेत्रवाली महाराणीके गर्भ धारण करनेपर राजा द्रुपदने पुत्र स्नेहके कारण सब प्रकारसे भार्याके सुखके निमित्त यत्न किया । हे राजन् ! द्रुपद पुत्रहीन थे, इससे उनकी भार्याने जो कुछ अभिलाषा की, वह सब वस्तु देकर उन्होंने उसके मनोरथको पूर्ण किया । ( ९-१३ )

अन्तमें उस द्रुपदराजकी प्यारी रानीने एक उत्तम रूपवाली कन्या

ख्यापयामास राजेन्द्र पुत्रो ह्येष ममेति वै ।  
 ततः स राजा दूरुपदः प्रच्छन्नाया नराधिप ॥ १५ ॥  
 पुत्रवत्पुत्रकार्याणि सर्वाणि समकारयत् ।  
 रक्षणं चैव मन्त्रस्य महिषी दूरुपदस्य सा ॥ १६ ॥  
 चकार सर्वयत्नेन ब्रुवाणा पुत्र इत्युत ।  
 न च तां वेद नगरे कश्चिदन्यत्र पार्षतात् ॥ १७ ॥  
 श्रद्धधानो हि तद्वाक्यं देवस्याऽच्युततेजसः ।  
 छादयामास तां कन्यां पुमानिति च सोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥  
 जातकर्माणि सर्वाणि कारयामास पार्थिवः ।  
 पुंवद्विधानयुक्तानि शिखण्डीति च तां विदुः ॥ १९ ॥  
 अहमेकस्तु चारेण वचनान्नारदस्य च ।  
 ज्ञातवान्देववाक्येन अम्बायास्तपसा तथा ॥ २० ॥ [६३४७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्या उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि  
 शिखण्ड्युत्पन्नावष्टाशतित्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

भीष्म उवाच- चकार यत्नं दूरुपदः सुतायाः सर्वकर्मसु ।  
 ततो लेख्यादिषु तथा शिल्पेषु च परन्तप ॥ १ ॥

प्रसव किया, हे राजेन्द्र ! दूरुपदराजके पुत्र न रहनेपर उनकी प्यारी स्त्रीने कहा, "मुझे यह पुत्र हुआ है" ऐसीही बात सर्वत्र प्रचार कर दी । हे राजन् ! अनन्तर राजा दूरुपदने उस छिपी हुई कन्याको पुत्रके समान जानकर उसका सम्पूर्ण पुत्र-कार्य कराया और उनकी रानीने भी पुत्र पुत्र कहकर सब प्रकारसे यत्न पूर्वक उसकी रक्षा की । नगरके बीच एकमात्र राजा दूरुपदको छोड़ कर और कोई पुरुष भी उस कन्याको कन्या नहीं जानता था । (१३-१७)

हे राजन् ! राजा दूरुपदने अविनाशी

महादेवके वचनपर श्रद्धा करके उस कन्याको छिपाकर पुत्र कहके प्रचार किया और पुत्रहीके समान सब जाति-कर्म संस्कार कराया । लोकमें इस कन्याको सब शिखण्डी कहके जानते हैं; परन्तु मैं ही अकेला दूतों तथा नारदके वचन, देववाक्य और अम्बाकी तपस्यासे उसके स्वरूपको जानता हूँ । (१८-२०) ६३४७

उद्योगपर्वमें एकसौ अठासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ नवामी अध्याय ।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र ! राजा दूरुपदने कन्याको लिखना और शिल्प आदि सब कर्मोंको सिखानेका यत्न

इष्वस्त्रे चैव राजेन्द्र द्रोणाशिष्यो बभूव ह ।

तस्य माता महाराज राजानं वरवर्णिनी ॥ २ ॥

चोदयामास भार्यार्थं कन्यायाः पुत्रवत्तदा ।

ततस्तां पार्षतो दृष्ट्वा कन्यां सम्प्राप्तयौवनाम् ।

स्त्रियं मत्वा ततश्चिन्तां प्रपेदे सह भार्यया ॥ ३ ॥

दूरुपद उवाच-- कन्या ममेयं सम्प्राप्ता यौवनं शोकवर्धिनी ।

मया प्रच्छादिता चेयं वचनाच्छूलपाणिनः ॥ ४ ॥

भार्योवाच— न तन्मिथ्या महाराज भविष्यति कथञ्चन ।

त्रैलोक्यकर्ता कस्माद्धि वृथा वक्तुमिहाऽर्हति ॥ ५ ॥

यदि ते रोचते राजन्वक्ष्यामि शृणु मे वचः ।

श्रुत्वेदानीं प्रपद्येथाः स्वां मतिं पृषतात्मज ॥ ६ ॥

क्रियतामस्य यत्नेन विधिवद्धारसंग्रहः ।

अविता तद्वचः सत्यमिति मे निश्चिता मतिः ॥ ७ ॥

ततस्तौ निश्चयं कृत्वा तस्मिन्कार्येऽथ दम्पती ।

वरयाश्चक्रतुः कन्यां दशार्णाधिपतेः सुताम् ॥ ८ ॥

ततो राजा दूरुपदो राजसिंहः सर्वान्राज्ञः कुलतः सन्निशाम्य ।

किया । शिखण्डी बाण और अस्त्रशिक्षा में द्रोणाचार्यका शिष्य हुआ । उसकी प्यारी माताने पुत्रकी भांति उसके विवाहके निमित्त अनुरोध किया । हे महाराज ! उस समय दूरुपदराज कन्याको यौवनवती देखकर भार्याके सहित चिन्ता करने लगे । दूरुपद बोले, देखो मेरा शोक बढ़ानेवाली इस कन्याके यौवनका समय प्राप्त हुआ है; मैं ने शूलधारी महादेवके वचनसे इसे छिपा कर रक्खा है । (१-४)

भार्या बोली, महाराज ! वह वचन कभी मिथ्या न होगा, तीनों लोकके

कर्ता होकर महादेव किस प्रकारसे झूठ बोलेंगे ? हे राजन् ! यदि मेरे वचनमें आपकी रुचि होवे, तो मैं जो वचन कहती हूं, उसको सुनिये और सुनकर अपने मतके अनुसार कार्य कीजिये । यत्नके सहित विधिपूर्वक किसी कन्यासे इसका विवाह कर्म कीजिये; शिवका वचन अवश्य ही सत्य होगा । (१-७)

अनन्तर वह दोनों स्त्री-पुरुष उस कार्यका निश्चय करके दशार्णाधिपतिकी कन्याको अपनी कन्याके निमित्त प्रार्थना की । राजसिंह राजा दूरुपदने कुलके अनुसार सब राजाओंके वृत्तान्तको सुन-

दाशार्णकस्य नृपतेस्तनूजां शिखण्डिने वरयामास दारान् ॥ ९ ॥

हिरण्यवर्मेति नृपो योऽसौ दाशार्णकः स्मृतः ।

स च प्रादान्महीपालः कन्यां तस्मै शिखण्डिने ॥ १० ॥

स च राजा दशार्णेषु महानासीत्सुदुर्जयः ।

हिरण्यवर्मा दुर्धर्षो महासेनो महामनाः ॥ ११ ॥

कृते विवाहे तु तदा सा कन्या राजसत्तम ।

यौवनं समनुप्राप्ता सा च कन्या शिखण्डिनी ॥ १२ ॥

कृतदारः शिखण्डी च काम्पिल्यं पुनरागमत् ।

ततः सा वेद तां कन्यां कश्चित्कालं स्त्रियं किल ।

हिरण्यवर्मणः कन्या ज्ञात्वा तां तु शिखण्डिनीम् ॥ १३ ॥

धात्रीणां च सखीनां च ब्रीडयाना न्यवेदयत् ।

कन्यां पञ्चालराजस्य सुतां तां वै शिखण्डिनीम् ॥ १४ ॥

ततस्ता राजशार्दूल धान्यो दाशार्णिकास्तदा ।

जग्मुरार्तिं परां प्रेष्याः प्रेषयामासुरेव च ॥ १५ ॥

ततो दशार्णाधिपतेः प्रेष्याः सर्वा न्यवेदयन् ।

विप्रलम्भं यथावृत्तं स च चुक्रोध पार्थिवः ॥ १६ ॥

कर दशार्णराजकी कन्याको ही शिखण्डीके निमित्त वरण किया । हिरण्यवर्मा नामसे विख्यात दशार्णराजने भी अपनी कन्या शिखण्डीके निमित्त प्रदान की । वह महातेजस्वी हिरण्यवर्मा दशार्ण देश के बड़े पराक्रमी अनेक सेनाओंसे युक्त बलवान् राजा थे । ( ८-११ )

हे राजसत्तम ! विवाह कर्मके समाप्त होनेपर वह कन्या शिखण्डिनी धीरे धीरे सम्पूर्ण रूपसे यौवनवती हुई । शिखण्डीने दार-परिग्रह करके काम्पिल्य नगरमें फिर आगमन किया । कुछ दिनोंके अनन्तर उस कन्याने शिखण्डी

को स्त्री जान लिया । हिरण्यवर्माकी कन्याने शिखण्डीको शिखण्डिनी जानकर लज्जापूर्वक दुःखित चित्तसे दासी और सखियोंके निकटमें पञ्चालराजकी कन्या शिखण्डिनीके स्वरूपका वृत्तान्त कह दिया । ( १२-१४ )

हे राज शार्दूल ! तब दशार्णराजकी दासियोंने अत्यन्त दुःखित होकर अपने स्वामीके निकटमें दूतियोंको भेजा । उन दूतियोंने भी दशार्णराजके समीपमें इस प्रवञ्चना (ठगपना)का वृत्तान्त ठीक ठीक वर्णन किया और राजा भी सुनकर क्रुद्ध हुए । इधर शिखण्डिनी भी नारी

शिखण्ड्यपि महाराज पुंवद्राजकुले तदा ।  
 विजहार मुदा युक्तः स्त्रीत्वं नैवाऽतिरोचयन् ॥ १७ ॥  
 ततः कतिपयाहस्य तच्छ्रुत्वा भरतर्षभ ।  
 हिरण्यवर्मा राजेन्द्र रोषादार्तिं जगाम ह ॥ १८ ॥  
 ततो दाशार्णको राजा तीव्रकोपसमन्वितः ।  
 दूतं प्रस्थापयामास द्रुपदस्य निवेशनम् ॥ १९ ॥  
 ततो द्रुपदमासाद्य दूतः काञ्चनवर्मणः ।  
 एकं एकान्तमुत्सार्य रहो वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥  
 दाशार्णराजो राजंस्त्वामिदं वचनमब्रवीत् ।  
 अभिषङ्गात्प्रकुपितो विप्रलब्धस्त्वयाऽनघ ॥ २१ ॥  
 अवमन्यसे मां नृपते नूनं दुर्मन्त्रितं तव ।  
 यन्मे कन्यां स्वकन्यार्थं मोहाद्याचितवानसि ॥ २२ ॥  
 तस्याऽद्य विप्रलम्भस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ।  
 एष त्वां सजनामात्यमुद्धरामि स्थिरो भव ॥ २३ ॥ [ ६३७० ]

इति श्रीमहाभारते० अम्बोपाख्यानपर्वणि हिरण्यवर्मदूतागमने ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

भीष्म उवाच— एवमुक्तस्य दूतेन द्रुपदस्य तदा नृप  
 चोरस्येव गृहीतस्य न प्रावर्तत भारती ॥ १ ॥

भावको छिपाती हुई प्रसन्नता पूर्वक राज-  
कुलमें भ्रमण करने लगी । ( १४-१७ )

हे राजेन्द्र ! राजा हिरण्यवर्मा कुछ दिनों के अनन्तर इस वृत्तान्तको सुनकर क्रोधसे पीड़ित हुए, अनन्तर अत्यन्त कुपित हो इन्होंने राजा द्रुपदके समीप दूत भेजा । हिरण्यवर्माका दूत द्रुपदके समीपमें जाकर निर्जन स्थानमें यह वचन बोला, हे राजन् ! तुम्हारी प्रवञ्चना से दशार्ण - राजने कुपित होकर यह कहा है, हे राजेन्द्र ! तुमने जो मोहमें पड़कर अपनी कन्याके निमित्त मेरी कन्या

मांगी, वह निश्चय ही तुम्हारी दुष्ट मन्त्र-  
णा का कार्य है । तुम मेरा अपमान करते हो, यह ठीक है, परन्तु रे नीचबुद्धि वाले ! इससे अब तू प्रतारणाके फलको भोग करेगा । मैं तुमको अब इष्ट मित्र और बन्धुबान्धवोंके सहित मारुंगा; खड़े रहो । ( १८-२३ ) [ ६३७० ]

उद्योगपर्वमें एकसौ नवासी अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ नव्वे अध्याय ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! दूतके मुखसे ऐसा वचन सुन कर पकड़े हुए चोरकी भांति राजा द्रुपदके मुखसे कुछभी वचन

स यत्नमकरोत्तीव्रं सम्बन्धिन्यनुमानने ।  
 दूतैर्मधुरसम्भाषैर्न तदस्तीति सन्दिशन् ॥ २ ॥  
 स राजा भूय एवाऽथ ज्ञात्वा तत्त्वमथाऽगमत् ।  
 कन्येति पाञ्चालसुतां त्वरमाणो विनिर्ययौ ॥ ३ ॥  
 ततः सम्प्रेषयामास मित्राणाममितौजसाम् ।  
 दुहितुर्विप्रलम्भं तं धात्रीणां वचनात्तदा ॥ ४ ॥  
 ततः समुदयं कृत्वा बलानां राजसत्तमः ।  
 अभियाने मतिं चक्रे दूरुपदं प्रति भारत ॥ ५ ॥  
 ततः सम्मन्त्रयामास मन्त्रिभिः स महीपतिः ।  
 हिरण्यवर्मा राजेन्द्र पाञ्चाल्यं पार्थिवं प्रति ॥ ६ ॥  
 तत्र वै निश्चितं तेषामभूद्राज्ञां महात्मनाम् ।  
 तथ्यं भवति चेदेतत्कन्या राजञ्छिखण्डिनी ॥ ७ ॥  
 बध्वा पञ्चालराजानमानयिष्यामहे गृहम् ।  
 अन्यं राजानमाधाय पञ्चालेषु नरेश्वरम् ॥ ८ ॥  
 घातयिष्याम नृपतिं पाञ्चालं सशिखण्डिनम् ॥ ९ ॥  
 तत्तदाऽनृतमाज्ञाय पुनर्दूतान्नराधिपः ।

न निकला, वह धीमे स्वरसे बोलनेवाले दू-  
 तोंसे यह वचन बोले, "यह ठीक नहीं है"  
 इस प्रकारसे सन्देश भेज कर वह सम्बन्धी  
 को प्रसन्न करनेके निमित्त अत्यन्त  
 यत्न करने लगे; परन्तु राजा हिरण्यव-  
 र्माने फिर अनुसन्धान करके यह जान  
 लिया, कि शिखण्डी द्रुपदराजकी कन्या  
 ही है; इससे शीघ्र ही उन्होंने युद्धके  
 निमित्त यात्रा की । (१-३)

अनन्तर उन्होंने दासियोंके वचनके  
 अनुसार अपनी कन्याके इस प्रकारसे  
 ठगे जानेका वृत्तान्त महातेजस्वी मित्रों-  
 के निकट वर्णन किया । हे भारत! उस

राजसत्तम हिरण्यवर्माने बहुत बड़ा बल  
 संग्रह करके दूरुपदके विरुद्ध युद्ध करनेके  
 निमित्त इच्छा की; और मन्त्रियोंसे  
 मिल कर इस विषयमें विचार करने  
 लगे । (४-६)

उसमें उन महात्मा राजाओंका यह  
 निश्चय हुआ, कि शिखण्डी कन्या है,  
 यदि यह वचन सत्य होवे, तो हम  
 लोग पाञ्चाल राजको बांधकर इस  
 स्थान पर ले आवेंगे और दूसरे किसी  
 भूपालको पञ्चाल देशका राजा बनाके  
 शिखण्डी के सहित दूरुपदका वध करेंगे।  
 तब हिरण्यवर्मा राजाने ऐसा ही निश्चय

प्रास्थापयत्पार्षताय निहन्मीति स्थिरो भव ॥ १० ॥

भीष्म उवाच— स हि प्रकृत्या वै भीतः किल्बिषी च नराधिपः ।

भयं तीव्रमनुप्राप्तो दूरुपदः पृथिवीपतिः ॥ ११ ॥

विसृज्य दूतान्दाशार्णे दूरुपदः शोकमूर्छितः ।

समेत्य भार्या रहिते वाक्यमाह नराधिपः ॥ १२ ॥

भयेन महताऽऽविष्टो हृदि शोकेन चाऽऽहतः ।

पाञ्चालराजो दयितां मातरं वै शिखण्डिनः ॥ १३ ॥

अभियास्यति मां कोपात्सम्बन्धी सुमहाबलः ।

हिरण्यवर्मा नृपतिः कर्षमाणो वरूथिनीम् ॥ १४ ॥

किमिदानीं करिष्यावो मूढौ कन्यामिमां प्रति ।

शिखण्डी किल पुत्रस्ते कन्येति परिशङ्कितः ॥ १५ ॥

इति सञ्चिन्त्य यत्नेन समित्रः सबलानुगः ।

वञ्चितोऽस्मीति मन्वानो मां किलोद्धर्तुमिच्छति ॥ १६ ॥

किमत्र तथ्यं सुश्रोणि मिथ्या किं ब्रूहि शोभने ।

श्रुत्वा त्वत्तः शुभं वाक्यं संविधास्याम्यहं तथा ॥ १७ ॥

अहं हि संशयं प्राप्तो बाला चेयं शिखण्डिनी ।

करके “तुम्हारा वध करूंगा, खडे रहो!”  
ऐसा कहके फिर राजा दूरुपदके समीप  
दूत भेजा । (७—१०)

भीष्म बोले, राजा दूरुपद स्वभावसे  
ही डरपोक थे, तिस पर भी उस पाप-  
कर्मके कारण अत्यन्त ही भयभीत हुए।  
वह शोकित होकर हिरण्यवर्माके निकट  
दूत भेज कर भार्याके सहित निर्जन  
स्थानमें बैठ कर शोक और भयपूरित  
चित्तसे शिखण्डिनीकी माता प्यारी  
रानीसे यह वचन बोले, हे सुश्रोणि !  
हम लोगोंके वैवाहिक सम्बन्धी महाब-  
ली हिरण्यवर्मा राजा सेना संग्रह करके

कुपित होकर मुझसे लडनेको चले आते  
हैं। इस समय इस कन्याके विषयमें मैं  
क्या करूंगा, कुछ समझ नहीं सकत।  
हूँ । (११—१५)

मैंने सुना है, कि तुम्हारे पुत्र शिख-  
ण्डीको लोग कन्या कहके सन्देह करते  
हैं; इसी कारणसे हिरण्यवर्मा “मैं ठगा  
गया हूँ” यह विचारकर यत्नपूर्वक मित्र  
बल और अनुचरोंके सङ्ग मिलकर मेरे  
नाश करनेकी इच्छा करता है। हे मद्रे !  
इससे अब इस विषयमें सत्य वा मिथ्या  
जो कुछ हो, वह तुम मुझसे वर्णन करो।  
तुम्हारा वचन सुनकर मैं उसके अनुसार

त्वं च राज्ञि महत्कृच्छ्रं सम्प्राप्ता वरवर्णिनि ॥ १८ ॥

सा त्वं सर्वविमोक्षाय तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ।

तथा विदध्यां सुश्रोणि कृत्यमाशु शुचिस्मिते ॥ १९ ॥

शिखण्डिनि च मा भैस्त्वं विधास्ये तत्र तत्त्वतः ।

कृपयाऽहं वरारोहे वञ्चितः पुत्रधर्मतः ॥ २० ॥

मया दाशार्णको राजा वञ्चितः स महीपतिः ।

तदाचक्ष्व महाभागे विधास्ये तत्र यद्वितम् ॥ २१ ॥

जानता हि नरेन्द्रेण ख्यापनार्थं परस्य वै ।

प्रकाशं चोदिता देवी प्रत्युवाच महीपतिम् ॥ २२ ॥ [६३९२]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि द्रुपदप्रश्ने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

भीष्म उवाच— ततः शिखण्डिनो माता यथातत्त्वं नराधिप ।

आचक्ष्वे महाबाहो भर्त्रे कन्यां शिखण्डिनीम् ॥ १ ॥

अपुत्रया मया राजन्सपत्नीनां भयादिदम् ।

ही कार्यका विधान करूंगा । हे वरवर्णिनि! देखो मुझे भी संशय प्राप्त हुआ है और बाला शिखण्डिनी और तुम भी महाक्लेशसे ग्रस्त हुई हो; इससे तुमसे पूछता हूँ, कि तुम सबको इस विपदसे छुड़ाने के निमित्त यथार्थ तत्त्व वर्णन करो । हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारे वचनको सुनकर वैसे ही कार्यका अनुष्ठान करूंगा । (१५-१९)

हे वरारोहे ! यद्यपि तुमने मुझे पुत्रधर्मसे वञ्चित किया है, तौ भी शिखण्डी तथा अपने विषयमें कुछ भय मत करो, मैं कृपा करके तुम लोगोंके विषयमें पूर्णरीतिसे उपायका विधान करूंगा । परन्तु हे सुन्दरि ! राजा दशार्णराजके सङ्ग मैंने प्रवञ्चना की है, उस विषयमें

किस प्रकारसे हित साधनके निमित्त कार्यका विधान करूँ; उसे तुम वर्णन करो । (२०-२१)

पाञ्चालराज द्रुपदने जान बूझकर भी केवल दूसरेके निकट अपनी निर्दोषिता प्रकट करनेके निमित्त प्रकाशित भावसे अपनी भार्यासे पूछा । और उसने भी नीचे कहे हुए वचनोंसे उत्तर दिया । (२२) [ ६३९२ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ नव्वे अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ एकानव्वे अध्याय ।

भीष्म बोले, हे प्रजानाथ ! अनन्तर शिखण्डिनीकी माताने अपने पति राजा द्रुपदसे कन्या शिखण्डिनीका यथार्थ वृत्तान्त वर्णन किया; उसने कहा, महाराज ! मेरे पुत्र न रहनेसे सौत



कन्या शिखण्डिनी जाता पुरुषो वै निवेदिता ॥ २ ॥

त्वया चैव नरश्रेष्ठ तन्मे प्रीत्याऽनुमोदितम् ।

पुत्रकर्म कृतं चैव कन्यायाः पार्थिवर्षभ ॥ ३ ॥

भार्या चोढा त्वया राजन्दशार्णाधिपतेः सुता ।

मया च प्रत्यभिहितं देववाक्यार्थदर्शनात् ॥

कन्या भूत्वा पुमान्भावीत्येवं चैतदुपेक्षितम् ॥ ४ ॥

एतच्छ्रुत्वा द्रुपदो यज्ञसेनः सर्वं तत्त्वं मन्त्रविद्वयो निवेद्य ।

मन्त्रं राजा मन्त्रयामास राजन्यथायुक्तं रक्षणे वै प्रजानाम् ॥ ५ ॥

सम्बन्धकं चैव समर्थं तस्मिन्दाशार्णके वै नृपतौ नरेन्द्र ।

स्वयं कृत्वा विप्रलम्भं यथावन्मन्त्रैकाग्रो निश्चयं वै जगाम ॥ ६ ॥

स्वभावगुप्तं नगरमापत्काले तु भारत ।

गोपयामास राजेन्द्र सर्वतः समलंकृतम् ॥ ७ ॥

आर्तिं च परमां राजा जगाम सह भार्यया ।

दशार्णपतिना सार्धं विरोधे भरतर्षभ ॥ ८ ॥

कथं सम्बन्धिना सार्धं न मे स्याद्विग्रहो महान् ।

लोगोंके भयसे युक्त होकर मैंने इस कन्याके उत्पन्न होनेपर पुत्र कहके तुम्हारे समीप वर्णन किया था; तुमने भी मेरी प्रीतिके निमित्त उस वचनकी पोषकता की थी; और कन्याका पुत्रके समान जातकर्म संस्कार कराया था। फिर तुमने दशार्णराजकी कन्याके सङ्ग इसका विवाह भी किया;—और मैंने भी वचनसे उसके निमित्त परिपोषकता की थी। हे राजन्! “कन्या उत्पन्न होकर पुरुष हो जावेगी” महादेवके वचनोंका ऐसा अर्थ जानकर ही मैंने इस विषयमें उपेक्षा की थी। (१—४)

हे भारत ! यह वचन सुनकर यज्ञ

सेन द्रुपदराज मन्त्रियोंसे सम्पूर्ण विषय वर्णन करके प्रजाकी रक्षाके निमित्त यथा उचित विचार करने लगे। उन्होंने पूरी रीतिसे प्रतारणा करके भी “मैंने यथार्थ सम्बन्ध ही किया है” ऐसा ही निश्चय करके कार्यके विषयमें विचार करने लगे। हे राजेन्द्र ! उनका नगर स्वाभाविक ही रक्षित था; उस पर भी आपदकालके उपास्थित होनेपर उन्होंने सबभांतिसे नगरको अलंकृत करके उसकी दृढ रक्षाका विधान किया। (५—७)

हे भरतर्षभ ! दशार्ण पातिके सङ्ग विरोध होनेके निमित्त पाञ्चालराज भार्याके सहित अत्यन्त ही पीडित हुए।

इति सश्रिन्य मनसा देवतामर्चयत्तदा ॥ ९ ॥  
 तं तु दृष्ट्वा तदा राजन्देवी देवपरं तदा ।  
 अर्चा प्रयुञ्जानमथो भार्या वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥  
 देवानां प्रतिपत्तिश्च सत्यं साधुमता सताम् ।  
 किमु दुःखार्णवं प्राप्य तस्मादर्चयतां गुरून् ॥ ११ ॥  
 दैवतानि च सर्वाणि पूज्यन्तां भूरिदक्षिणम् ।  
 अग्नयश्चापि हूयन्तां दशार्णप्रतिषेधने ॥ १२ ॥  
 अयुद्धेन निवृत्तिं च मनसा चिन्तय प्रभो ।  
 देवतानां प्रसादेन सर्वमेतद्भविष्यति ॥ १३ ॥  
 मन्त्रिभिर्मन्त्रितं सार्धं त्वया पृथुललोचन ।  
 पुरस्याऽस्याऽविनाशाय यच्च राजंस्तथा कुरु ॥ १४ ॥  
 दैवं हि मानुषोपेतं भृशं सिद्ध्यति पार्थिव !  
 परस्परविरोधाद्धि सिद्धिरस्ति न चैतयोः ॥ १५ ॥  
 तस्माद्विधाय नगरे विधानं सचिवैः सह ।

वैवाहिक सम्बन्धीके सङ्ग जिस प्रकारसे  
 मेरा यह महाविग्रह उपस्थित न होवे,  
 उसहीकी चिन्ता करके उस समयमें वह  
 देवताओंकी पूजा करने लगे । (८-९)

तब राजा द्रुपदकी प्यारी रानी उन-  
 को इस प्रकारसे देव-परायण और  
 पूजामें तत्पर देखकर यह वचन बोली,  
 हे महाराज ! देवताओंकी आराधना सदा  
 ही कल्याण करनेवाली है, ऐसा साधु  
 पुरुषोंका मत है । जो पुरुष दुःखरूपी  
 समुद्रमें डूब रहा है; उसके निमित्त  
 क्या कहना है ? इससे तुम दशार्ण  
 राजके शान्त होनेके निमित्त देवताओंकी  
 आराधना करो, ब्राह्मणोंका संमान  
 तथा बहुतसी दक्षिणा प्रदान करके

देवताओंकी पूजा और अग्निमें होम  
 करो । (१०-१२)

हे स्वामी ! जिससे विना युद्धके  
 किये ही शान्ति होवे, तुम मन ही मन  
 उसहीका विचार करो । देवताओंको  
 सन्तुष्ट करनेसे सब कुछ हो सकता है ।  
 हे प्रजानाथ ! नगरकी रक्षाके निमित्त  
 तुमने मन्त्रियोंके सङ्ग जैसा विचार  
 किया है; उसका भी पूर्ण रीतिसे अनु-  
 ष्ठान करो । क्योंकि पुरुषार्थ युक्त होने-  
 हीसे दैवी प्रारब्ध पूर्ण रूपसे सिद्ध हो-  
 ता है; दोनोंके परस्पर विरोध होनेसे  
 कार्य सिद्ध नहीं होता । इससे हे राजे-  
 न्द्र ! मन्त्रियोंके सङ्ग मिलकर नगरकी  
 रक्षाका उपाय करके इच्छानुसार देवता-

अर्चयस्व यथाकामं दैवतानि विशाम्यते ॥ १६ ॥  
 एवं सम्भाषमाणौ तु दृष्ट्वा शोकपरायणौ ।  
 शिखण्डिनी तदा कन्या व्रीडितेव तपस्विनी ॥ १७ ॥  
 ततः सा चिन्तयामास मत्कृते दुःखितावुभौ ।  
 इमाविति ततश्चक्रे मतिं प्राणविनाशने ॥ १८ ॥  
 एवं सा निश्चयं कृत्वा भृशं शोकपरायणा ।  
 निर्जगाम गृहं त्यक्त्वा गहनं निर्जनं वनम् ॥ १९ ॥  
 यक्षेणर्द्धिमता राजन्स्थूणाकर्णेन पालितम् ।  
 तद्गयादेव च जनो विसर्जयति तद्वनम् ॥ २० ॥  
 तत्र च स्थूणभवनं सुधामृत्तिकलेपनम् ।  
 लाजोल्लापिकधूमाढ्यमुच्चप्राकारतोरणम् ॥ २१ ॥  
 तत्प्रविश्य शिखण्डी सा द्रुपदस्याऽऽत्मजा नृप ।  
 अनश्नाना बहुतिथं शरीरमुदशोषयत् ॥ २२ ॥  
 दर्शयामास तां यक्षः स्थूणो मारदवसंयुतः ।  
 किमर्थोऽयं तवाऽरम्भः करिष्ये ब्रूहि सा चिरम् ॥ २३ ॥  
 अशक्यमिति सा यक्षं पुनः पुनरुवाच ह ।

ओंकी आराधना कीजिये । ( १३-१६ )

उस समयमें वह लोग शोकसे युक्त होकर ऐसी ही बातचीत करते थे; यह देखकर तपस्विनी कन्या शिखण्डिनी अत्यन्त लज्जित हुई। अनन्तर उसने जग जाना कि ये लोग “मेरे ही निमित्त दुःखित हुए हैं,” तब चिन्ता करके अपना प्राण नाश करनेका सङ्कल्प किया। हे राजन् ! शिखण्डिनी ऐसा निश्चय करके अत्यन्त दुःखित होकर घर त्यागकर निर्जन घने वनमें चली गई। यह वन स्थूणाकर्ण नामके एक महाबलवान् यक्षसे रक्षित था; उसके भयसे मनुष्य

मात्र वहां नहीं जाते थे । ( १७-२० )

वहांपर स्थूणाकर्णका एक ऊंचा मन्दिर था और तोरणयुक्त चूना और स्वच्छ मृत्तिकासे पोता हुआ, शीतल मन्द सुगन्ध वायुसे युक्त उसका अत्यन्त सुन्दर निवास-स्थान था। द्रुपद पुत्री शिखण्डिनी उसी स्थानमें प्रवेश करके आहार त्यागकर अपना शरीर सुखाने लगी; तब स्थूणाकर्ण दया करके उसे दर्शन देकर बोला, कि किस कारणसे तुम ऐसा व्रत करती हो; मैं शीघ्र ही उसे पूर्ण करूंगा । ( २१-२३ )

तब शिखण्डिनी बार बार उससे

करिष्यामीति वै क्षिप्रं प्रत्युवाचाऽथ गुह्यकः ॥ २४ ॥

धनेश्वरस्याऽनुचरो वरदोऽस्मि नृपात्मजे ।

अदेयमपि दास्यामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ २५ ॥

ततः शिखण्डी तत्सर्वमखिलेन न्यवेदयत् ।

तस्मै यक्षप्रधानाय स्थूणाकर्णाय भारत ॥ २६ ॥

शिखण्ड्युवाच- अपुत्रो मे पिता यक्ष न चिरान्नाशमेष्यति ।

अभियास्यति सक्रोधो दशार्णाधिपतिर्हि तम् ॥ २७ ॥

महाबलो महोत्साहः सहेमकवचो नृपः ।

तस्माद्रक्षस्व मां यक्ष मातरं पितरं च मे ॥ २८ ॥

प्रतिज्ञातो हि भवता दुःखप्रतिशमो मम ।

भवेयं पुरुषो यक्ष त्वत्प्रसादादनिन्दितः ॥ २९ ॥

यावदेव स राजा वै नोपयाति पुरं मम ।

तावदेव महायक्ष प्रसादं कुरु गुह्यक ॥ ३० ॥ [ ६४२२ ]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि स्थूणाकर्णसमागमे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः १९१॥

भीष्म उवाच— शिखण्डिवाक्यं श्रुत्वाऽथ स यक्षो भरतर्षभ ।

कहने लगी “ वह असाध्य कार्य है, तुम उससे पूर्ण न कर सकोगे । ” उस की बात सुनकर यक्ष बोला; - मैं अवश्य पूर्ण करूंगा । हे राजपुत्री ! मैं कुबेरका सेवक हूं, इससे वर दान करनेमें भी समर्थ हूं, तुम्हारी जैसी इच्छा होवे, वह मुझसे कहो; मैं न देने योग्य वस्तु होने पर भी तुमको अवश्य दूंगा । हे भारत ! तब शिखण्डीने उस यक्षोंमें प्रधान स्थूणाकर्णके समीप आदिसे अन्ततक सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया । २४-२६

शिखण्डीने कहा, हे यक्ष ! मेरे पुत्र हीन पिता शीघ्र ही मारे जावेंगे, क्योंकि दशार्ण राजने क्रोधमें पूर्ण होकर

उनके ऊपर युद्धके निमित्त चढ़ाई करनेका उद्योग किया है; वह हिरण्यवर्मा महाबल और उत्साहसे युक्त है; हे यक्ष! इससे तुम मेरी और मेरे माता पिताकी रक्षा करो । हे पापरहित ! तुमने मेरे दुःखको दूर करनेकी प्रतिज्ञा की है; इससे तुम्हारी कृपासे जिस प्रकारसे मैं पुरुष होसकूं; - उसी उपायको करो । हे महायक्ष ! जब तक राजा हिरण्यवर्मा मेरे नगरमें नहीं आता है, उतने ही समयके भीतर मुझको वर प्रदान करो । २७-३०

एकसौ एकानव्वे अध्याय समाप्त । [ ६४२२ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ बानव्वे अध्याय ।

भीष्म बोले, हे भरतर्षभ ! अनन्तर

प्रोवाच मनसा चिन्त्य दैवेनोपनिपीडितः ॥ १ ॥

भवितव्यं तथा तद्धि मम दुःखाय कौरव ।

भद्रे कामं करिष्यामि समयं तु निबोध मे ॥ २ ॥

किञ्चित्कालान्तरे दास्ये पुलिङ्गं स्वमिदं तव ।

आगन्तव्यं त्वया काले सत्यं चैव वदस्व मे ॥ ३ ॥

प्रभुः सङ्कल्पसिद्धोऽस्मि कामचारी विहङ्गमः ।

मत्प्रसादात्पुरं चैव त्राहि बन्धुंश्च केवलम् ॥ ४ ॥

स्त्रीलिङ्गं धारयिष्यामि तवेदं पार्थिवात्मजे ।

सत्यं मे प्रतिजानीहि करिष्यामि प्रियं तव ॥ ५ ॥

शिखण्ड्युवाच — प्रतिदास्यामि भगवन्पुलिङ्गं तव सुव्रत ।

किञ्चित्कालान्तरं स्त्रीत्वं धारयस्व निशाचर ॥ ६ ॥

प्रतियाते दशार्णे तु पार्थिवे हेमवर्षणि ।

कन्यैव हि भविष्यामि पुरुषस्त्वं भविष्यसि ॥ ७ ॥

भीष्म उवाच — इत्युक्त्वा समयं तत्र चक्राते तावुभौ नृप ।

अन्योन्यस्याऽभिसन्देहे तौ संक्रामयतां ततः ॥ ८ ॥

वह यक्ष शिखण्डीके वचन सुनकर दैवी संयोगके वशमें होकर मन ही मन चिन्ता करके बोला, हे भद्रे ! मैं अवश्य ही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूंगा, परन्तु जिस प्रकारका नियम करता हूँ, उसको तुम सुनो। कुछ समयके निमित्त मैं अपना यह पुरुषचिह्न तुमको देता हूँ; फिर निश्चित समयपर तुम्हें मेरे निकटमें आना पड़ेगा, तुम मुझसे सत्य वचन कहो, मैं सङ्कल्प सिद्ध कामचारी खेचर हूँ; जो इच्छा करूँ, वही कर सकता हूँ; इससे तुम मेरे प्रसादसे नगरका और बन्धुबान्धवोंका सम्पूर्ण रूपसे परित्राण करो। हे राजपुत्री ! मैं

तुम्हारा यह स्त्री चिह्न धारण करूंगा; तुम मेरे निकट आनेके निमित्त सत्य प्रतिज्ञा करो, मैं अवश्य ही तुम्हारा प्रिय कार्य साधन करूंगा। (१-५)

तब शिखण्डीने यह वचन सुनकर कहा, हे भगवन् ! मैं तुम्हारा पुरुषचिह्न फिर प्रदान करूंगी। हे यक्ष ! तुम थोड़े समयके निमित्त स्त्रीभाव धारण करो। दशार्णराज हिरण्यवर्माके लौट जानेपर मैं कन्या हो जाऊंगी और तुम भी पुरुष बन जाओगे। (६-७)

भीष्म बोले, हे राजन् ! ऐसा कह कर उन दोनोंने शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा की और आपसमें लिङ्गको अदल बदल

स्त्रीलिङ्गं धारयामास स्थूणायक्षोऽथ भारत ।  
 यक्षरूपं च तद्दीप्तं शिखण्डी प्रत्यपद्यत ॥ ९ ॥  
 ततः शिखण्डी पाञ्चाल्यः पुंस्त्वमासाद्य पार्थिव ।  
 विवेश नगरं हृष्टः पितरं च समासदत् ॥ १० ॥  
 यथावृत्तं तु तत्सर्वमाचख्यौ द्रुपदस्य तत् ।  
 दूरुपदस्तस्य तच्छ्रुत्वा हर्षमाहारयत्परम् ॥ ११ ॥  
 सभार्यस्तच्च सस्मार महेश्वरवचस्तदा ।  
 ततः सम्प्रेषयामास दशार्णाधिपतेर्नृपः ॥ १२ ॥  
 पुरुषोऽयं मम सुतः श्रद्धतां मे भवानिति ।  
 अथ दशार्णको राजा सहसाऽभ्यागमत्तदा ॥ १३ ॥  
 पञ्चालराजं द्रुपदं दुःखशोकसमन्वितः ।  
 ततः काम्पिल्यमासाद्य दशार्णाधिपतिस्ततः ॥ १४ ॥  
 प्रेषयामास सत्कृत्य दूतं ब्रह्मविदां वरम् ।  
 ब्रूहि मद्रचनादूत पाञ्चाल्यं तं नृपाधमम् ॥ १५ ॥  
 यन्मे कन्यां स्वकन्यार्थे वृतवानसि दुर्मते ।  
 फलं तस्याऽवलेपस्य द्रक्ष्यस्यद्य न संशयः ॥ १६ ॥

कर लिया । स्थूणाकर्णने स्त्रीलिङ्ग धारण  
 किया और शिखण्डीने उस प्रकाशमान  
 यक्षरूपको प्राप्त होकर प्रसन्न चित्तसे  
 नगरमें प्रवेश करके पिताके निकट  
 जाकर जो कुछ वृत्तान्त हुआ था, सब  
 वर्णन किया, तब राजा दूरुपद उसका वह  
 वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए  
 और भार्याके सहित महादेवजीका वचन  
 स्मरण किया । (८—१२)

अनन्तर उन्होंने दशार्णराजके निकट  
 यह संवाद भेज दिया, कि मेरा यह  
 पुत्र यथार्थमें पुरुष ही है तुम मेरे वच-  
 नका विश्वास करो । उस समय राजा

हिरण्यवर्माने भी दुःख और शोकसे  
 युक्त होकर सहसा पाञ्चाल राजके  
 विरुद्ध गमन किया । अनन्तर दशार्ण-  
 राज हिरण्यवर्माने काम्पिल्य नगरके  
 निकट जाकर शास्त्र जाननेवाले एक  
 ब्राह्मणको अपना दूत बनाकर दूरुपदके  
 समीपमें भेजा; हिरण्यवर्माने उस दूतसे  
 कहा, हे दूत ! तुम मेरे वचनसे उस अधम  
 राजा दूरुपदसे यह कहना, कि रे नीच-  
 बुद्धि ! तूने जो अपनी कन्याके संग  
 मेरी कन्याका विवाह किया है, उस  
 गर्वका फल शीघ्र भोग करेगा; इसमें  
 कुछ भी सन्देह नहीं है । (१२—१६)

एवमुक्तश्च तेनाऽसौ ब्राह्मणो राजसत्तम ।  
 दूतः प्रयातो नगरं दशार्णनृपचोदितः ॥ १७ ॥  
 तत आसादयामास पुरोध दूरुपदं पुरे ।  
 तस्मै पाश्चालको राजा गामर्घ्यं च सुसत्कृतम् ॥ १८ ॥  
 प्रापयामास राजेन्द्र सह तेन शिखण्डिना ।  
 तां पूजां नाऽभ्यनन्दत्स वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १९ ॥  
 यदुक्तं तेन वीरेण राज्ञा काश्चनवर्मणा ।  
 यत्तेऽहमधमाचार दुहित्राऽस्म्यभिवञ्चितः ॥ २० ॥  
 तस्य पापस्य करणात्फलं प्राप्नुहि दुर्मते ।  
 देहि युद्धं नरपते ममाऽद्य रणसूर्धनि ॥ २१ ॥  
 उद्धरिष्यामि ते सद्यः सामात्यसुतबान्धवम् ।  
 तदुपालम्भसंयुक्तं श्रावितः किल पार्थिवः ॥ २२ ॥  
 दशार्णपतिना चोक्तो मन्त्रिमध्ये पुरोधसा ।  
 अभवद्भरतश्रेष्ठ दूरुपदः प्रणयानतः ॥ २३ ॥  
 यदाह मां भवान्ब्रह्मन्सम्बन्धिवचनाद्ब्रूचः ।  
 अस्थोत्तरं प्रतिवचो दूतो राज्ञे वदिष्यति ॥ २४ ॥

हे राजसत्तम ! उनका यह वचन सुनकर वह पुरोहित - ब्राह्मण दशार्ण राजका दूत होकर दूरुपद राजके नगरकी ओर गमन किया और शीघ्र ही राजा दूरुपदकी नगरीमें पहुंचे, तब शिखण्डीके सहित पाश्चालराज दूरुपदने गौ और अर्घ आदि यथा उचित सत्कार प्रदान किया; परन्तु उसको ग्रहण न करके वीरवर राजा हिरण्यवर्माके कहे हुए वचनोंका अनुवाद करके कहने लगे, रे नृपाधम ! तूने जो कन्याके संग मेरी कन्याका विवाह करके मुझे ठगा है, उस पाप कर्मका फल शीघ्र पावेगा । हे नीचबु-

द्विवाले ! रणभूमिमें आकर मेरे संग युद्ध कर । मैं तुझे सेवक, पुत्र और बन्धु-बान्धवोंके सहित शीघ्र ही नाशकर दूंगा । (१७—२२)

हे भरतश्रेष्ठ ! राजा दूरुपद मन्त्रियोंके बीचमें दशार्ण - राजके ऐसे तिरस्कार युक्त वचन सुनकर प्रीति और विनय पूर्वक यह वचन बोले, हे ब्राह्मण ! वैवाहिक सम्बन्धी हिरण्यवर्माके वचनके अनुसार तुमने मुझसे जो कुछ कहा है, मेरा दूत राजाके समीप जाकर उसका यथार्थ उत्तर देगा । (२२—२४)

अनन्तर दूरुपदने भी हिरण्यवर्माके

ततः सम्प्रेषयामास द्रुपदोऽपि महात्मने ।

हिरण्यवर्मणे दूतं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ २५ ॥

तस्मागम्य तु राजानं दशार्णाधिपतिं तदा ।

तद्वाक्यमाददे राजन्यदुक्तं द्रुपदेन ह ॥ २६ ॥

आगमः क्रियतां व्यक्तः कुमारोऽयं सुतो मम ।

मिथ्यैतदुक्तं केनाऽपि तदश्रद्धेयमित्युत ॥ २७ ॥

ततः स राजा द्रुपदस्य श्रुत्वा विमर्षयुक्तो युवतीर्वरिष्ठाः ।

सम्प्रेषयामास सुचारुरूपाः शिखण्डिनं स्त्री पुमान्वेति वेत्तुम् ॥ २८ ॥

ताः प्रेषितास्तत्त्वभावं विदित्वा प्रीत्या राज्ञे तच्छशंसुर्हि सर्वम् ।

शिखण्डिनं पुरुषं कौरवेन्द्र दाशार्णराजाय महानुभावम् ॥ २९ ॥

ततः कृत्वा तु राजा स आगमं प्रीतिमानथ ।

सम्बन्धिना समागम्य हृष्टो वाससुवास ह ॥ ३० ॥

शिखण्डिने च सुदितः प्रादाद्वित्तं जनेश्वरः ।

हस्तिनोऽश्वान्श्च गाश्चैव दास्योऽथ बहुलास्तथा ॥ ३१ ॥

पूजितश्च प्रतिययौ निर्भर्त्स्य तनयां किल ।

निकट एक वेद जाननेवाले ब्राह्मणको दूत बनाकर भेजा । वह ब्राह्मण दशार्ण-राज हिरण्यवर्माके निकट जाकर राजा द्रुपदने जो कुछ कहा था, उन्हीं वचनोंको राजा हिरण्यवर्मासे कहने लगा, आप साक्षी आदिसे परीक्षा कीजिये, मेरा यह पुत्र यथार्थमें कुमार ही है, तुमसे न जाने किसने मिथ्या वचन कहा था; उन वचनों पर विश्वास करना उचित नहीं है । (२५—२७)

अनन्तर राजा हिरण्यवर्माने द्रुपदके उस वचनको सुनकर हर्ष और विषादसे युक्त हो, शिखण्डी स्त्री है, या पुरुष, इस बातको जाननेके निमित्त अत्यन्त

सुन्दरी उत्तम वाराङ्गनाओंको भेजा । उन्होंने भी यथार्थ वृत्तान्त जान कर शिखण्डी अत्यन्त उत्तम पुरुष है, यह सम्पूर्ण समाचार दशार्णराज हिरण्यवर्माके समीप जाकर वर्णन किया । तब वह राजा साक्षियोंके वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपने सम्बन्धी द्रुपद के सङ्ग मिल कर आनन्द पूर्वक एकत्र सहवास किया, हे राजन् ! राजा हिरण्यवर्माने अत्यन्त आनन्दित होके शिखण्डीको बहुतसा धन, हाथी, घोड़े, गऊआदि वस्तु प्रदान किया और अन्तमें पूजित होकर अपनी कन्याकी निन्दा करके निज नगरको गये । (२७-३२)



विनीतकिल्बिषे प्रीते हेमवर्मणि पार्थिवे ॥ ३२ ॥

प्रतियाते दशार्णे तु दृष्टरूपा शिखण्डिनी ।

कस्यचित्त्वथ कालस्य कुबेरो नरवाहनः ।

लोकयात्रां प्रकुर्वाणः स्थूणस्याऽगान्निवेशनम् ॥ ३३ ॥

स तद्गृहस्योपरि वर्त्तमान आलोकयामास धनाधिगोप्ता ।

स्थूणस्य यक्षस्य विवेश वेश्म खलंकृतं माल्यगुणैर्विचित्रैः ॥ ३४ ॥

लाज्यैश्च गन्धैश्च तथा वितानैरभ्यर्चितं धूपनधूपितं च

ध्वजैः पताकाभिरलंकृतं च भक्ष्यान्नपेयामिषदन्तहोमम् ॥ ३५ ॥

तत्स्थानं तस्य दृष्ट्वा तु सर्वतः समलंकृतम् ।

मणिरत्नसुवर्णानां मालाभिः परिपूरितम् ॥ ३६ ॥

नानाकुसुमगन्धाढ्यं सिक्तसम्पृष्टशोभितम् ।

अथाऽब्रवीद्यक्षपतिस्तान्यक्षाननुगांस्तदा ॥ ३७ ॥

स्वलंकृतमिदं वेश्म स्थूणस्याऽमितचिक्रमाः ।

नोपसर्पति मां चैव कस्मादद्य स मन्दधीः ॥ ३८ ॥

यस्माज्जानन्स मदात्मा मामसौ नोपसर्पति ।

तस्मात्तस्मै महादण्डो धार्यः स्यादिति मे मतिः ॥ ३९ ॥

यक्षा ऊचुः— दूरुपदस्य सुता राजनराज्ञो जाता शिखण्डिनी ।

हे राजन् हिरण्यर्माको क्रोध रहित और मन्तुष्ट होकर निज देशकी ओर लौटता हुआ देखकर शिखण्डिनी अत्यन्त ही प्रसन्न हुई । कुछ समय के अनन्तर धनके स्वामी यक्षोंके राजा कुबेर लोकमें भ्रमण करते हुए स्थूणाकर्ण भवनके समीप आये; उन्होंने स्थूणाकर्णके मन्दिर पर खड़े होकर देखा, कि वह बहुत उत्तम निवास स्थान है ! विचित्र पुष्पमालाओंसे शोभित, तथा धूपसे धूपित, अनेक सुगन्धित वस्तुओं और ध्वजा पताकासे युक्त, मांसआदि सब खानेकी

सामग्रियोंसे पूरित था । (३२-३५)

यक्षराज-कुबेरने सुन्दर मणि, रत्न और सुवर्णसे पूर्ण नाना पुष्प और सुगन्धित वस्तुओंसे युक्त उस सुन्दर भवनको देखकर अपने सेवक यक्षोंसे कहा, हे अत्यन्त पराक्रमी यक्ष लोगो ! स्थूणाकर्णके इस मन्दिरको मैं खूब ही अलंकृत देखता हूँ, परन्तु वह मन्दबुद्धि अभी तक मेरे समीप क्यों नहीं आया ? वह दुष्ट जब जान बूझके भी मेरे निकट नहीं आता है, तब उसके ऊपर महादण्डका विधान करना ही उत्तम बोध होता है । (३६-३९)

तस्या निमित्ते कस्मिंश्चिदात्पुरुषलक्षणम् ॥ ४० ॥

अग्रहीलक्षणं स्त्रीणां स्त्रीभूतो तिष्ठते गृहे ।

नोपसर्पति तेनाऽसौ सत्रीडः स्त्रीसरूपवान् ॥ ४१ ॥

एतस्मात्कारणाद्राजन्स्थूणो न त्वाऽद्य सर्पति ।

श्रुत्वा कुरु यथान्यायं विमानमिह तिष्ठताम् ॥ ४२ ॥

आनीयतां स्थूण इति ततो यक्षाधिपोऽब्रवीत् ।

कर्ताऽस्मि निग्रहं तस्य प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ ४३ ॥

सोऽभ्यगच्छत यक्षेन्द्रमाहूतः पृथिवीपते ।

स्त्रीसरूपो महाराज तस्यौ व्रीडासमन्वितः ॥ ४४ ॥

तं शशापाऽथ संक्रुद्धो धनदः कुरुनन्दन ।

एवमेव भवत्वद्य स्त्रीत्वं पापस्य गुह्यकाः ॥ ४५ ॥

ततोऽब्रवीद्यक्षपतिर्महात्मा यस्माददास्त्ववमन्येह यक्षान् ।

शिखण्डिनो लक्षणं पापबुद्धेः स्त्रीलक्षणं चाऽग्रहीः पापकर्मन् ॥ ४६ ॥

अप्रवृत्तं सुदुर्बुद्धं यस्मादेतत्त्वया कृतम् ।

तस्मादद्यप्रभृत्येव स्त्री त्वं सा पुरुषस्तथा ॥ ४७ ॥

ततः प्रसादयामासुर्यक्षा वैश्रवणं किल ।

यक्ष लोक बोले, हे राजन्! द्रुपद-राजके शिखण्डिनी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई थी, स्थूणाकर्णने किसी कारणके उपलक्षमें अपना पुरुष-लक्षण उसे अर्पण किया है और स्वयं स्त्री चिह्न ग्रहण करके स्त्री होकर घरमें बैठा है। इससे स्त्री-भावसे युक्त होनेके कारण लज्जासे आपके समीप नहीं आता है। अब आपका इस विषयमें जो करना हो, वह कीजिये; विमान यहां ही रहे। यह वचन सुनकर यक्षोंके स्वामी कुबेर बार बार कहने लगे, स्थूणाकर्णको शीघ्र यहां पर लाओ, मैं यथा उचितसे दण्ड दूंगा। (४०-४३)

हे राजन्! वह स्त्रीरूपधारी स्थूणाकर्ण स्वामीकी आज्ञा सुनकर उनके समीप आकर लज्जापूर्वक खड़ा हुआ। तब धनके स्वामी यक्षराज कुबेर अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले, “हे यक्षवृन्द! यह पापी इसी प्रकार से स्त्री ही बना रहे” ऐसा कहके उसे शाप दिया। फिर बोले, रे पापी! तूने यक्षों की अवमानना करके शिखण्डीको अपना पुरुष लक्षण अर्पण किया और उसका स्त्री चिह्न तूने धारण किया है; इससे रे पापी! जो तूने ऐसा अयुक्त कर्मका अनुष्ठान किया है; इसी निमित्त आजसे तू स्त्री और वह कन्या पुरुष रहेगी। (४४-४७)

स्थूणस्याऽर्थे कुरुष्वाऽन्तं शापस्येति पुनः पुनः ॥४८॥

ततो महात्मा यक्षेन्द्रः प्रत्युवाचाऽनुगामिनः ।

सर्वान्यक्षगणांस्तात शापस्याऽन्तचिकीर्षया ॥ ४९ ॥

शिखण्डिनि हते यक्षाः स्वं रूपं प्रतिपत्स्यते ।

स्थूणो यक्षो निरुद्वेगो भवत्विति महामनाः ॥ ५० ॥

इत्युक्त्वा भगवान्देवो यक्षराजः सुपूजितः ।

प्रययौ सहितः सर्वैर्निमेषान्तरचारिभिः ॥ ५१ ॥

स्थूणस्तु शापं सम्प्राप्य तत्रैव न्यवसत्तदा ।

समये चाऽगमत्पूर्णं शिखण्डी तं क्षपाचरम् ॥ ५२ ॥

सोऽभिगम्याऽब्रवीद्वाक्यं प्राप्तोऽस्मि भगवन्निति ।

तमब्रवीत्ततः स्थूणः प्रीतोऽस्मीति पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

आर्जवेनाऽऽगतं दृष्ट्वा राजपुत्रं शिखण्डिनम् ।

सर्वमेव यथावृत्तमाचक्षे शिखण्डिने ॥ ५४ ॥

यक्ष उवाच— शप्तो वैश्रवणेनाऽहं त्वत्कृते पार्थिवात्मज ।

गच्छेदानीं यथाकामं चर लोकान्यथासुखम् ॥ ५५ ॥

दिष्टमेतत्पुरा मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ।

हे तात ! अनन्तर यक्ष लोग “शा-  
पसे मुक्त कीजिये” बार बार ऐसा  
वचन कहकर स्थूणाकर्णके निमित्त  
कुबेरसे प्रार्थना करने लगे। तब महात्मा  
यक्षराज कुबेर शापसे मुक्त करनेके नि-  
मित्त अभिलाषी होकर सेवकोंसे यह  
वचन बोले, हे यक्षवृन्द ! शिखण्डीके  
मरने पर स्थूणाकर्ण फिर अपने स्वरूप  
को पावेगा; इससे यह महात्मा यक्ष  
धीरज धारण करे। ऐसा वचन कह कर  
भगवान् कुबेर पूजित होकर सेवकोंके  
सहित अपने स्थान पर गये और स्थू-  
णाकर्ण शाप ग्रस्त होकर वहाँपर निवास

करने लगा (४८—५२)

अनन्तर शिखण्डीने यथा समयमें  
उस यक्षके निकट गमन किया और  
उसके सम्मुख जाकर यह वचन कहा,  
हे भगवन् ! मैं आया हूँ; तब स्थूणाकर्ण  
“मैं प्रसन्न हुआ” बार बार यही वचन  
कहने लगा। हे भारत ! वह यक्ष राजपुत्र  
शिखण्डीको सरलभावसे आया हुआ  
देखकर जो कुछ वृत्तान्त हुआ था,  
सब वर्णन किया। वह बोला, हे  
राजपुत्र ! मैं तुम्हारे निमित्त कुबेरसे  
शाप पाचुका हूँ, अब तुम जाओ इच्छा-  
नुसार सुखपूर्वक लोकमें आनन्द करो;

भीष्म उवाच-

गमनं तव चेतो हि पौलस्त्यस्य च दर्शनम् ॥ ५६ ॥

एवमुक्तः शिखण्डी तु स्थूणयक्षेण भारत ।

प्रत्याजगाम नगरं हर्षेण महता वृतः ॥ ५७ ॥

पूजयामास विविधैर्गन्धमाल्यैर्महाधनैः ।

द्विजातीन्देवताश्चैव चैत्यानथ चतुष्पथान् ॥ ५८ ॥

द्रुपदः सह पुत्रेण सिद्धार्थेन शिखण्डिना ।

सुदं च परमां लेभे पाञ्चाल्यः सह बान्धवैः ॥ ५९ ॥

शिष्यार्थं प्रददौ चाऽथ द्रोणाय कुरुपुङ्गव ।

शिखण्डिनं महाराज पुत्रं स्त्रीपूर्विणं तथा ॥ ६० ॥

प्रतिपदे चतुष्पादं धनुर्वेदं नृपात्मजः ।

शिखण्डी सह युष्माभिर्घृष्टद्युम्नश्च पार्वतः ॥ ६१ ॥

मम त्वेतच्चरास्तात यथावत्प्रत्यवेदयन् ।

जडान्धबधिराकारा ये मुक्ता द्रुपदे मया ॥ ६२ ॥

एवमेष महाराज स्त्रीपुमान्द्रुपदात्मनः ।

स सम्भूतः कुरुश्रेष्ठ शिखण्डी रथसत्तमः ॥ ६३ ॥

ज्येष्ठा काशिपतेः कन्या अम्बानामेति विश्रुता ।

तुम्हारा यहाँपर आना और यक्षराज कुबेरका दर्शन दोनों ही को मैं पूर्व जन्मकी दैवी घटना समझता हूँ; किसी प्रकारसे भी इसे अतिक्रम करनेकी किसीको भी सामर्थ्य नहीं है । ५२-५६

भीष्म बोले, हे भारत ! शिखण्डीने स्थूणाकर्णका वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हो, नगरमें लौटकर महामूल्य अनेक सुगन्धित माला तथा धनसे ब्राह्मण, देवता, गऊ, वृक्ष आदिकी पूजा की । हे भारत ! राजा द्रुपद निज पुत्र शिखण्डी और बन्धु बान्धवोंके सहित बहुत ही आनन्दित हुए । अनन्तर

उन्होंने स्त्रीसे पुरुष हुए पुत्रको धनुष विद्या सिखानेके निमित्त द्रोणाचार्यके हाथमें समर्पण किया । हे महाराज ! घृष्टद्युम्न और शिखण्डीने तुम लोगोंके संग चारों पादसे युक्त धनुषविद्या सीखी है । (५७-६१)

हे तात ! मैंने द्रुपदके यहाँ जो जड अन्धे और बधिर आकारके सब गुप्त चरोंको नियुक्त किया था उन्हीं लोगोंने मुझे यह यथार्थ वृत्तान्त सुनाया था। हे पुरुष श्रेष्ठ ! द्रुपदपुत्र रथ सत्तम शिखण्डी इसी प्रकारसे स्त्री होकर फिर पुरुष हुआ है । अम्बा नामकी काशि-

द्रुपदस्य कुले जाता शिखण्डी भरतर्षभ ॥ ६४ ॥

नाऽहमेनं धनुष्पाणि युयुत्सुं समुपस्थितत् ।

मुहूर्तमपि पश्येयं प्रहरेयं न चाऽप्युत ॥ ६५ ॥

व्रतमेतन्मम सदा पृथिव्यामपि विश्रुतम् ।

स्त्रियां स्त्रीपूर्वके चैव स्त्रीनाम्नि स्त्रीसरूपिणि ॥ ६६ ॥

न मुञ्चेयमहं बाणमिति कौरवनन्दन ।

न हन्यामहमेतेन कारणेन शिखण्डिनम् ॥ ६७ ॥

एतत्तत्त्वमहं वेद जन्म तात शिखण्डिनः ।

ततो नैनं हनिष्यामि समरेष्वाततायिनम् ॥ ६८ ॥

यदि भीष्मः श्रियं हन्यात्सन्तः कुर्युर्विगर्हणम् ।

नैनं तस्माद्वनिष्यामि दृष्ट्वाऽपि समरे स्थितम् ॥ ६९ ॥

वैशम्पायन उवाच-एतच्छ्रुत्वा तु कौरव्यो राजा दुर्योधनस्तदा ।

मुहूर्तमिव स ध्यात्वा भीष्मे युक्तममन्यत ॥ ७० ॥ [ ६४९२ ]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि शिखण्डिपुंस्त्वप्राप्तौ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

सञ्जय उवाच— प्रभातायां तु शर्वर्या पुनरेव सुतस्तव ।

राजकी बड़ी कन्या राजा द्रुपदके कुलमें जन्म लेकर शिखण्डी हुई है। हे भरत-र्षभ! हाथमें धनुष लेकर युद्धके निमित्त शिखण्डीके सम्मुख उपस्थित होने पर भी मैं उसकी ओर क्षणमात्र न देखूंगा और न उसके ऊपर प्रहार ही करूंगा। (६२-६५)

पृथ्वीके बीच मेरा यह सदासे व्रत प्रसिद्ध है, कि मैं स्त्री, अथवा स्त्री-पूर्वक, स्त्री स्वरूप वा स्त्रीनामधारी पुरुषके ऊपर शस्त्र नहीं चलाता हूं। हे कौरव-नन्दन! इससे मैं इस ही कारणसे शिखण्डीका वध नहीं करूंगा। हे तात! मैंने इस शिखण्डीके जन्म-वृत्तान्तको

जान लिया है, इससे युद्धमें आततायी होनेपर भी उसका वध न करूंगा। भीष्म यदि स्त्री हत्या करे, तो अवश्य ही साधु पुरुषोंमें निन्दनीय होगा; इससे मैं उसे युद्धमें सम्मुख खड़ा देख करके भी न मारूंगा। (६६-६९)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तब राजा दुर्योधन यह वचन सुनकर एक मुहूर्त भर चिन्ता करके भीष्मके पक्षमें इसे उत्तम बोध किया। ( ७० ) [ ६४९२ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ बानव्हे अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ तिरानव्हे अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन्! रातके बीच-तने पर तुम्हारे पुत्रोंने फिर सेनाके

मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पितामहमपृच्छत ॥ १ ॥

पाण्डवेयस्य गाङ्गेय यदेतत्सैन्यमुद्यतम् ।

प्रभूतनरनागाश्वं महारथसमाकुलम् ॥ २ ॥

भीमार्जुनप्रभृतिभिर्महेष्वासैर्महाबलैः ।

लोकपालसमैर्गुप्तं धृष्टद्युम्नपुरोगमैः ॥ ३ ॥

अप्रधृष्यमनाचार्यमुद्धूतमिव सागरम् ।

सेनासागरमक्षोभ्यमपि देवैर्महाहवे ॥ ४ ॥

केन कालेन गाङ्गेय क्षपयेथा महाद्युते ।

आचार्यो वा महेष्वासः कृपो वाऽऽशु महाबलः ॥ ५ ॥

कर्णो वा समरश्लाघी द्रौणिर्वा द्विजसत्तमः ।

दिव्यास्त्रविदुषः सर्वे भवन्तो हि बले मम ॥ ६ ॥

एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं परं कौतूहलं हि मे ।

हृदि नित्यं महाबाहो वक्तुमर्हसि तन्मम ॥ ७ ॥

भीष्म उवाच— अनुरूपं कुरुश्रेष्ठ त्वय्येतत्पृथिवीपते ।

बलाबलमभिप्राणां तेषां यदिह पृच्छसि ॥ ८ ॥

शृणु राजन्मम रणे या शक्तिः परमा भवेत् ।

बीचमें भीष्म पितामहसे पूछा, हे गङ्गा-  
नन्दन ! युधिष्ठिरकी यह अनेक पैदल  
सेना, हाथी घोड़ोंसे युक्त, महारथ यो-  
द्धा धृष्टद्युम्न, भीम, अर्जुन आदि धनु-  
र्धारी महाबलसे युक्त लोकपालके समान  
महारथ वीरोंसे रक्षित; अत्यन्त बलवा-  
न, निवारण न होने योग्य, महासमुद्र-  
के समान देवताओंसे भी शीघ्र न जी-  
तने योग्य, यह जो अपार सेनासागर  
युद्धके निमित्त तैयार है, तुम कितने समय  
में उसका नाश कर सकते हो ? (१—५)

महा धनुर्धारी आचार्य महाबलवान्  
कृपाचार्य, युद्धमें प्रशंसित कर्ण और

द्विजसत्तम अश्वत्थामा; ये लोग ही  
कितने दिनोंमें शत्रुसेनाका नाश कर  
सकते हैं ? क्योंकि मेरी सेनामें आप  
सब ही दिव्य अस्त्रोंके जानने वाले हैं।  
हे महाबाहो ! मैं इसे जाननेकी इच्छा  
करता हूँ; यह परम कुतूहल मेरे हृदय-  
में उत्पन्न हुआ है, इससे आप लोग  
इस विषयको वर्णन कीजिये । (५-७)

भीष्म बोले, हे कुरुश्रेष्ठ ! तुम जो  
इस समय शत्रुओंके बलाबलको जान-  
नेकी इच्छा करते हो, यह तुम्हारे यो-  
ग्य ही प्रश्न है। हे महाबाहो ! युद्धमें  
मेरी जितनी शक्ति, शस्त्रका पराक्रम,

शस्त्रवीर्ये रणे यच्च भुजयोश्च महाभुज ॥ ९ ॥

आर्जवेनैव युद्धेन योद्धव्य इतरो जनः ।

मायायुद्धेन मायावी इत्येतद्धर्मनिश्चयः ॥ १० ॥

हन्यामहं महाभाग पाण्डवानामनीकिनीम् ।

दिवसे दिवसे कृत्वा भागं प्राणाहिकं मम ॥ ११ ॥

योधानां दशसाहस्रं कृत्वा भागं महाद्युते ।

सहस्रं रथिनामेकमेव भागो मतो मम ॥ १२ ॥

अनेनाऽहं विधानेन सन्नद्धः सततोत्थितः ।

क्षपयेयं महत्सैन्यं कालेनाऽनेन भारत ॥ १३ ॥

सुश्रेयं यदि वाऽस्त्राणि महान्ति समरे स्थितः ।

शतसाहस्रघातीनि हन्यां मासेन भारत ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच— श्रुत्वा भीष्मस्य तद्वाक्यं राजा दुर्योधनस्ततः ।

पर्यपृच्छत राजेन्द्र द्रोणमङ्गिरसां वरम ॥ १५ ॥

आचार्य केन कालेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ।

निहन्या इति तं द्रोणः प्रत्युवाच हसन्निव ॥ १६ ॥

स्थविरोऽस्मि महाबाहो मन्दप्राणविचेष्टितः ।

बाहुबल हो सकता है, उसे तुम सुनो ।  
हे राजन् ! युद्धधर्मका यही सिद्धान्त  
है, कि साधारण लोगोंके सङ्ग सरल युद्ध  
और मायासे युद्ध करवाले के सङ्ग  
माया-युद्ध ही करना उचित है (८-१०)

हे महाभाग ! मैं प्रतिदिन दश हजार  
योद्धा और एक हजार रथी इस प्रकार-  
से पाण्डवोंकी सेनाका भाग कल्पित  
करके नाश कर सकता हूँ । हे भारत !  
मैं सावधान और सदा उद्यमशील हो-  
कर इसी प्रकारसे अंश और समयके  
अनुसार उस महा सेनाके नाश करनेमें  
समर्थ हूँ । अथवा युद्धमें स्थित होकर

शतघाती तथा सहस्र पुरुषोंके मारनेवाले  
शस्त्रोंको चलाऊँ तो एक महीनेमें पाण्ड-  
वोंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश कर सकता  
हूँ । (११-१४)

सञ्जय बोले, हे राजेन्द्र ! राजा दु-  
र्योधनने भीष्मका वचन सुनकर फिर  
भारद्वाज-श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे भी यह  
प्रश्न किया, कि हे गुरुदेव ! तुम कित-  
ने दिनोंमें युधिष्ठिरकी सेनाका नाश  
कर सकते हो ? तब द्रोणाचार्य हंसकर  
उनसे यह वचन बोले, हे महाबाहो !  
मैं अब वृद्ध होगया हूँ, इससे मेरी चेष्टा  
और तेज भी कम होगया है; तौभी

शस्त्राग्निना निर्देहेयं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १७ ॥

यथा भीष्मः शान्तनवो मासेनेति मतिर्मम ।

एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ॥ १८ ॥

द्वाभ्यामेव तु मासाभ्यां कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।

द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे बलक्षयम् ॥ १९ ॥

कर्णस्तु पञ्चरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ।

तच्छ्रुत्वा सूतपुत्रस्य वाक्यं सागरगास्तुतः ॥ २० ॥

जहास सखनं हासं वाक्यं चेदमुवाच ह ।

न हि यावद्रणे पार्थ बाणशङ्खधनुर्धरम् ॥ २१ ॥

वासुदेवसमायुक्तं रथेनाऽऽयान्तमाहवे ।

समागच्छसि राधेय तेनैवमभिमन्यसे ॥

शक्यमेवं च भूयश्च त्वया वक्तुं यथेष्टतः ॥ २२ ॥ [६५१४]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि भीष्मादिशक्तिकथने त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

वैशम्पायन उवाच-एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयः सर्वान्भ्रातृनुपहरे ।

आहूय भरतश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच- धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु ये चारपुरुषा मम ।

मुझे बोध होता है, कि शान्तनुपुत्र भीष्मकी भांति मैंभी एक महीनेमें अपने शस्त्रोंकी अग्निसे पाण्डवोंकी सेना भस्म कर सकता हूं; यही मेरी परम शक्ति तथा परम बल है । (१५-१८)

अनन्तर कृपाचार्यने दो महीनेमें, अश्वत्थामा दश रात और महाअस्त्रोंके जाननेवाले कर्णने पांच दिनमें पाण्डवोंके बलके नाश करनेकी प्रतिज्ञा की । सूतपुत्र कर्णका वचन सुनकर गङ्गानन्दन भीष्म ऊंचे स्वरसे हंसने लगे और यह वचन बोले, हे राधेय ! तुम जबतक संग्राममें बाण, शङ्ख और शरासनधारी

कृष्णके सहित रथपर चढ़े हुए अर्जुन के संमुख नहीं पहुंचते हो तभीतक ऐसा समझते हो, ऐसा क्या तुम अपनी इच्छाके अनुसार इससे भी अधिक कह सकते हो । (१९-२२) [ ६५१४ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ तिरानव्वे अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्वमें एकसौ चौरानव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरत-श्रेष्ठ ! युधिष्ठिर यह वृत्तान्त सुनकर सब भाइयोंको निर्जन स्थानमें बुलाकर उनसे यह वचन बोले, हे भ्रातृगण ! मैंने जो दुर्योधनकी सब सेनामें अपने चारोंको नियुक्त किया था, उन लोगोंने



ते प्रवृत्तिं प्रयच्छन्ति ममेष्मां व्युषितां निशाम् ॥ २ ॥  
 दुर्योधनः किलाऽपृच्छदापगोयं महाव्रतम् ।  
 केन कालेन पाण्डूनां हन्याः सैन्यमिति प्रभो ॥ ३ ॥  
 मासेनेति च तेनोक्तो धार्तराष्ट्रः सुदुर्मतिः ।  
 तावता चापि कालेन द्रोणोऽपि प्रतिजज्ञिवान् ॥ ४ ॥  
 गौतमो द्विगुणं कालमुक्तवानिति नः श्रुतम् ।  
 द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ॥ ५ ॥  
 तथा दिव्यास्त्रवित्कर्णः सम्पृष्टः कुरुसंसदि ।  
 पञ्चभिर्दिवसैर्हन्तुं स सैन्यं प्रतिजज्ञिवान् ॥ ६ ॥  
 तस्मादहमपीच्छामि श्रोतुमर्जुन ते वचः ।  
 कालेन कियता शत्रून्क्षपयेरिति फाल्गुन ॥ ७ ॥  
 एवमुक्तो गुडाकेशः पार्थिवेन धनञ्जयः ।  
 वासुदेवं समीक्ष्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥  
 सर्व एते महात्मानः कृतास्त्राश्चित्रयोधिनः ।  
 असंशयं महाराज हन्युरेव न संशयः ॥ ९ ॥  
 अपैतु ते मनस्तापो यथा सत्यं ब्रवीम्यहम् ।

आज प्रातःकाल मुझे यह संवाद दिया है; कि दुर्योधनने महाव्रत गङ्गानन्दन भीष्मसे पूछा था, “ आप लोग कितने समयमें पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर सकेंगे ? ” उस बातको सुनकर भीष्मने उस नीचबुद्धिसे कहा है “ एक महीनेमें ” और द्रोणाचार्यने भी उतने ही समयमें मेरी सेनाके नाश करनेकी प्रतिज्ञा की है । ( १-४ )

मैंने सुना है, कृपाचार्य दो-मास और महाअस्त्रोंके जाननेवाले अश्वत्थामाने दश रात्रिमें मेरी सेनाको नष्ट करने की प्रतिज्ञा की है । दिव्य अस्त्रोंके

जाननेवाले कर्णने कौरवोंके बीच पूछे जानेपर पांच दिनके बीच मेरी सेनाके नाश करनेकी प्रतिज्ञा की है । हे अर्जुन ! इससे मैं भी तुम्हारा वचन सुननेकी इच्छा करता हूं; हे फाल्गुन ! तुम कितने समयमें शत्रुओंकी सेनाका संहार कर सकते हो ? ( ५-७ )

अर्जुन युधिष्ठिरका यह वचन सुन कृष्णके मुंहकी ओर देखकर यह वचन बोले, हे महाराज ! ये लोग सब ही महात्मा कृतास्त्र और महावीर योद्धा हैं, इससे अवश्य ही तुम्हारी सेनाका नाश कर सकते हैं; इसमें कुछ भी

हन्यामेकरथेनैव वासुदेवसहायवान् ॥ १० ॥  
 सामरानपि लोकांस्त्रीन्सर्वान्स्थावरजङ्गमान् ।  
 भूतं भव्यं भविष्यं च निमेषादिति मे मतिः ॥ ११ ॥  
 यत्तद्धोरं पशुपतिः प्रादादस्त्रं महम्मम ।  
 कैराते द्वन्द्वयुद्धे तु तदिदं मयि वर्तते ॥ १२ ॥  
 यद्युगान्ते पशुपतिः सर्वभूतानि संहरन् ।  
 प्रयुङ्क्ते पुरुषव्याघ्र तदिदं मयि वर्तते ॥ १३ ॥  
 तन्न जानाति गाङ्गेयो न द्रोणो न च गौतमः ।  
 न च द्रोणसुतो राजन्कुत एव तु सूतजः ॥ १४ ॥  
 न तु युक्तं रणे हन्तुं दिव्यैरस्त्रैः पृथग्जनम् ।  
 आर्जुवेनैव युद्धेन विजेष्यामो वयं परान् ॥ १५ ॥  
 तथेमे पुरुषव्याघ्राः सहायास्तव पार्थिव ।  
 सर्वे दिव्यास्त्रविद्रांसः सर्वे युद्धाभिकांक्षिणः ॥ १६ ॥  
 वेदान्तावभृथस्नाताः सर्व एतेऽपराजिताः ।  
 निहन्युः सभरे सेनां देवानामपि पाण्डव ॥ १७ ॥

सन्देह नहीं है । परन्तु आप अपने मनसे यह दुःख दूर कीजिये; मैं सत्य कहता हूँ, श्रीकृष्णकी सहायतासे एकरथसे निमेष मात्रमें मैं भूत, वर्त्तमान, भविष्य स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण प्राणियों, यहाँ-तक कि देवताओंके सहित तीनों लोकका भी संहार कर सकता हूँ । (८-११)

किरातीय द्वन्द्व-युद्धमें भगवान् महा-देवने मुझे जो यह अत्यन्त घोर महा-अस्त्र प्रदान किया था, वह मेरे निकट विद्यमान है । हे पुरुषसिंह ! प्रलयकाल के समय सब प्राणियोंके संहारके निमित्त भगवान् रुद्र इस महाअस्त्रको चलाते हैं । वही यह महाअस्त्र मेरे समीपमें

वर्त्तमान हैं; सतपुत्र उसे क्या जानेगा । भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामाभी उस महा अस्त्रको नहीं जानते हैं । १२-१४

परन्तु दिव्य-अस्त्रोंसे साधारण लोगोंको युद्धमें मारना उचित नहीं है; इस कारणसे मैं सरल युद्धहीसे शत्रुओंको पराजित करूँगा; और यह जो सब पुरुषसिंह तुम्हारे सहाय हैं, ये सब ही दिव्य अस्त्रोंके जाननेवाले तथा सब ही युद्धको चाहनेवाले हैं । दारपग्रिहके साथही साथ सब यज्ञस्नात हुए हैं, हे राजन् ! ये अपराजित महारथ लोग युद्धमें देवताओंकी सेनाको भी नष्ट कर सकते हैं । (१५-१७)

शिखण्डी युयुधानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।  
 भीमसेनो यमौ चोभौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ १८ ॥  
 विराटदूरुपदौ चोभौ भीष्मद्रोणसमौ युधि ।  
 शङ्खश्चैव महाबाहुर्हैडिम्बश्च महाबलः ॥ १९ ॥  
 पुत्रोऽस्याऽञ्जनपर्वा तु महाबलपराक्रमः ।  
 शौनेयश्च महाबाहुः सहायो रणकोविदः ॥ २० ॥  
 अभिमन्युश्च बलवान्द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ।  
 स्वयं चापि समर्थोऽसि त्रैलोक्योत्सादनेऽपि च ॥ २१ ॥  
 क्रोधाद्यं पुरुषं पश्येस्तथा शक्रसमद्युते ।  
 स क्षिप्रं न भवेद्व्यक्तमिति त्वां बोद्धि कौरव ॥ २२ ॥ [ ६५३६ ]

इति श्रीमहा० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततः प्रभाते विमले धार्तराष्ट्रेण चोदिताः ।  
 दुर्योधनेन राजानः प्रययुः पाण्डवान्प्रति ॥ १ ॥  
 आह्लाद्य शुचयः सर्वे स्रग्विणः शुक्लवाससः ।  
 गृहीतशस्त्रा ध्वजिनः स्वस्ति वाच्य हुताग्रयः ॥ २ ॥  
 सर्वे ब्रह्माविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।  
 सर्वे कामकृतश्चैव सर्वे चाऽऽहवलक्षणाः ॥ ३ ॥

शिखण्डी, युयुधान, धृष्टद्युम्न, भीम-  
 सेन, नकुल, सहदेव, युधामन्यु, उत्तमौजा,  
 भीष्म-द्रोणके समान बूढ़े विराट और  
 दूरुपद, महाबाहु शंख, महाबल घटोत्कच,  
 इसका पुत्र महाबली पराक्रमी अञ्जनप-  
 र्वा, युद्धके कार्यको जाननेवाला महाबाहु  
 सात्यकी, बलवान् अभिमन्यु, द्रौपदीके  
 पांचों पुत्र, ये सम्पूर्ण महारथ वीर  
 तुम्हारे सहाय हैं। हे पाण्डव ! तुम भी  
 तीनों लोकोंके नाश करनेमें समर्थ हो। हे  
 वासवकल्प ! मैं इस बातको निश्चय जा-  
 नता हूँ, कि तुम क्रोधपूर्वक जिस पुरु-

षकी ओर देखोगे वह क्षणभर भी जी-  
 वित नहीं रह सकता है । ( १८-२२ )  
 एकसौ चौरानव्वे अध्याय समाप्त । [ ६५३६ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ पचानव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर  
 भली भाँतिसे सवेरा, होनेपर दुर्योधनके  
 सब राजा लोगोंने स्नान करके पवित्र हो,  
 सफेद-वस्त्र और माला पहन कर अस्त्र  
 शस्त्र ध्वजा आदि ग्रहण करके होम स्वस्ति-  
 वाचनके अनन्तर पाण्डवों से युद्ध कर-  
 नेके निमित्त यात्रा की। वह सब लोग  
 ब्रह्मज्ञ, उत्तम-चरित और व्रत करनेवाले,

आह्वेषु पराँल्लोकास्त्रिगिषन्तो महाबलाः ।  
 एकाग्रमनसः सर्वे श्रद्धाढाः परस्परम् ॥ ४ ॥  
 विन्दानुविन्दावावन्तयौ केकया बाह्लिकैः सह ।  
 प्रययुः सर्व एवैते भारद्वाजपुरोगमाः ॥ ५ ॥  
 अश्वत्थामा शान्तनवः सैन्धवोऽथ जयद्रथः ।  
 दाक्षिणात्याः प्रतीच्याश्च पार्वतीयाश्च ये नृपाः ॥ ६ ॥  
 गान्धारराजः शकुनिः प्राच्योदीच्याश्च सर्वशः ।  
 शकाः किराता यवनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ७ ॥  
 स्वैः स्वैरनीकैः सहिताः परिवार्य महारथम् ।  
 एते महारथाः सर्वे द्वितीये निर्ययुर्बले ॥ ८ ॥  
 कृतवर्मा सहानीकस्त्रिगर्तश्च महारथः ।  
 दुर्योधनश्च नृपतिर्भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ९ ॥  
 शलो भूरिश्रवाः शल्यः कौशल्योऽथ बृहद्रथः ।  
 एते पश्चादनुगता धार्तराष्ट्रपुरोगमाः ॥ १० ॥  
 ते समेत्य यथान्यायं धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।  
 कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यवतिष्ठन्त दंशिताः ॥ ११ ॥

पराक्रमी, अभीष्टके सिद्ध करनेवाले और  
 युद्ध - विद्याके जाननेवाले थे। वह महा-  
 बलवान् क्षत्रिय लोग सब ही आपसमें  
 श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त होकर युद्धमें परम  
 लोकोंके जीतनेकी अभिलाषासे प्रस्थित  
 हुए। (१-४)

पहिले अवन्ती-देशीय विन्द और  
 अनुविन्द और बाह्लिकके सहित केकय  
 देशके वीर योद्धा द्रोणाचार्यको आगे  
 करके चले; उसके अनन्तर अश्वत्थामा,  
 भीष्म, जयद्रथ, गान्धारराज शकुनि,  
 दाक्षिणात्य, प्रतीच्य, प्राच्य, औदीच्य,  
 पर्वतीय राजा लोग और शक, किरात,

यवन, शिबि और वसाति आदि सब  
 महारथ राजाओंने अपनी अपनी सेना-  
 से युक्त होकर दूसरी सेनाकी श्रेणीसे  
 युद्धके निमित्त चले। (५-८)

उसके अनन्तर सेनाके सहित कृत-  
 वर्मा, महाराज त्रिगर्त, भाइयोंके सहित  
 राजा दुर्योधन, शल, भूरिश्रवा, शल्य और  
 कौशलराज बृहद्रथ; ये लोग धार्तराष्ट्र  
 को आगे करके सब पीछे चले। हे  
 भारत ! वह महाभाग धार्तराष्ट्र लोग  
 यथा न्यायसे मिलकर कुरुक्षेत्रके पीछे  
 अर्द्धभागमें स्थित होकर युद्धके निमित्त  
 सजके खड़े हुए। (९-११)

दुर्योधनस्तु शिविरं कारयामास भारत ।  
 यथैव हास्तिनपुरं द्वितीयं समलंकृतम् ॥ १२ ॥  
 न विशेषं विजानन्ति पुरस्य शिविरस्य वा  
 कुशला अपि राजेन्द्र नरा नगरवासिनः ॥ १३ ॥  
 तादृशान्येव दुर्गाणि राज्ञामपि महीपतिः ।  
 कारयामास कौरव्यः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥  
 पञ्चयोजनमुत्सृज्य मण्डलं तद्रणाजिरम् ।  
 सेनानिवेशास्ते राजन्नाविशिष्टतसङ्घशः ॥ १५ ॥  
 तत्र ते पृथिवीपाला यथोत्साहं यथाबलम् ।  
 विविशुः शिविराण्यत्र द्रव्यवन्ति सहस्रशः ॥ १६ ॥  
 तेषां दुर्योधनो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् ।  
 व्यादिदेश सबाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥ १७ ॥  
 स नागाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः ।  
 ये चाऽन्येऽनुगतास्तत्र सूतमागधवन्दिनः ॥ १८ ॥  
 वणिजो गणिकाश्चारा ये चैव प्रेक्षका जनाः ।  
 सर्वास्तान्कौरवो राजा विधिवत्प्रत्यवैक्षत ॥ १९ ॥ [६५५५]

इति श्रीमहाभारते० उद्योगपर्वणि अंबोपाख्यानपर्वणि कौरवसैन्यनिर्याणे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

दुर्योधनने अपने शिविरको दूसरे ह-  
 स्तिनापुरके समान अलंकृत कराया । हे  
 राजन् ! नगरवासी निपुण मनुष्य लोग  
 नगर और शिविरमें कुछ भी प्रभेद न कर  
 सके । प्रजानाथ कौरवराजने दूसरे राजा  
 ओंके भी वैसे ही सेकड़ों सहस्रों दुर्गम  
 शिविर निर्माण कराये । हे राजन् ! उस  
 रणभूमिके पांच योजनके परिमाण परिधि  
 युक्त स्थानको व्याप्त करके वह सब सहस्र  
 राजाओंकी सेना इकट्ठी हुई । (१२-१७)

वहांपर उन सब राजा लोगोंने उ-  
 त्साह और बलके अनुसार बहुतसी सा-

मग्रियोंसे युक्त अनेक शिविर तयार क-  
 राया । राजा दुर्योधनने उन सब हाथी,  
 घोड़े, पैदल और वाहनोंसे युक्त महात्मा  
 राजाओंके भक्ष्य, भोजन के निमित्त  
 उत्तम प्रकारसे व्यवस्था कर दी । इस-  
 के अतिरिक्त वहांपर जो सब शिल्पी,  
 सूत, मागध, स्तुतिपाठ करनेवाले, व-  
 णिक, वेइया, दूत और युद्धके देखने  
 वाले पुरुष आये थे, कौरवराज दुर्योध-  
 नने उन लोगोंके निमित्तभी विधिपूर्वक  
 प्रबन्ध किया । (१६-१९) [६५५५]

उद्योगपर्वमें एकसौ पचानव्वे अध्याय समाप्त ।

वैशम्पायन उवाच-तथैव राजा कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

धृष्टद्युम्नमुखान्वीरांश्चोदयामास भारत ॥ १ ॥

चेदिकाशिकरूषाणां नेतारं दृढविक्रमम् ।

सेनापतिममित्रघ्नं धृष्टकेतुमथाऽऽदिशत् ॥ २ ॥

विराटं दूरुपदं चैव युयुधानं शिखण्डिनम् ।

पाञ्चाल्यौ च महेष्वासौ युधामन्युत्तमौजसौ ॥ ३ ॥

ते शूराश्चित्रवर्मणस्तप्तकुण्डलधारिणः ।

आज्यावसिक्ता ज्वलिता धिष्ण्येष्विव हुताशनाः ॥ ४ ॥

अशोभन्त महेष्वासा ग्रहाः प्रज्वलिता इव ।

अथ सैन्यं यथायोगं पूजयित्वा नरर्षभः ॥ ५ ॥

दिदेश तान्यनीकानि प्रयाणाय महीपतिः ।

तेषां युधिष्ठिरो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् ॥ ६ ॥

व्यादिदेश सबाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ।

स गजाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः ॥ ७ ॥

अभिमन्युं बृहन्तं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ।

धृष्टद्युम्नमुखानेतान्प्राहिणोत्पाण्डुनन्दनः ॥ ८ ॥

उद्योगपर्वमें एकसौ छानव्वे अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत ! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने भी उसी प्रकारसे धृष्टद्युम्न आदि वीरोंको तैयार होने के निमित्त आज्ञा दी । चेदि काशि और करुषगणोंके नायक सेनापति धृष्टकेतु, विराट, द्रुपद, युयुधान, शिखण्डी पाञ्चालनन्दन युधामन्यु, और उत्तमौजा आदि सबने उनकी आज्ञाका पालन किया । ( १—३ )

वह सब महारथ शूरवीर विचित्र कवच और सुवर्ण कुण्डलधारी अग्निके स्थानपर रहनेवाले, घृतसे युक्त प्रज्वलित

अग्नि अथवा प्रकाशमान ग्रह पुञ्जोंकी भाँति शोभित होने लगे । अनन्तर पुरुष श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर सम्पूर्ण सेनाके वीरोंकी यथा उचितसे पूजा करके युद्धके निमित्त गमन करनेकी आज्ञा दी; उन घोड़े हाथी, पैदल और वाहनोंसे युक्त महात्मा राजाओं तथा शिल्पी लोगोंके उत्तम भक्षण और भोजनकी व्यवस्था की । ( ४—७ )

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने पहिले धृष्टद्युम्न को आगे करके अभिमन्यु बृहन्त और द्रौपदीके पुत्रोंको उनके सङ्ग भेजा । फिर भीम, युयुधान, और अर्जुनको दूसरी

भीमं च युयुधानं च पाण्डवं च धनञ्जयम् ।  
 द्वितीयं प्रेषयामास बलस्कन्धं युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥  
 भाण्डं समारोपयतां चरतां सम्प्रधावताम् ।  
 हृष्टानां तत्र योधानां शब्दो दिवमिवाऽस्पृशत् ॥ १० ॥  
 स्वयमेव ततः पश्चाद्विराट्द्रुपदान्वितः ।  
 अथाऽपरैर्महीपालैः सह प्रायान्महीपतिः ॥ ११ ॥  
 भीमधन्वायनी सेना धृष्टद्युम्नेन पालिता ।  
 गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्यन्दमाना व्यदृश्यत ॥ १२ ॥  
 ततः पुनरनीकानि न्ययोजयत बुद्धिमान् ।  
 मोहयन्धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां बुद्धिनिश्चयम् ॥ १३ ॥  
 द्रौपदेयान्महेष्वासानभिमन्युं च पाण्डवः ।  
 नकुलं सहदेवं च सर्वाश्चैव प्रभद्रकान् ॥ १४ ॥  
 दश चाऽश्वसहस्राणि द्विसहस्राणि दन्तिनाम् ।  
 अयुतं च पदातीनां रथाः पञ्चशतं तथा ॥ १५ ॥  
 भीमसेनस्य दुर्धर्षं प्रथमं प्रादिशद्वलम् ।  
 मध्यमे च विराटं च जयत्सेनं च पाण्डवः ॥ १६ ॥  
 महारथौ च पाश्चात्यौ युधामन्युत्तमौजसौ ।

सेनाके विभागमें नियुक्त किया । वहाँपर  
 घोड़ोंको भूषणोंसे भूषित करनेमें तत्पर  
 इधर उधर घूमनेवाले, दौड़नेवाले, प्रसन्न  
 चित्तसे सब योद्धाओंके कोलाहलका शब्द  
 मानो आकाशको स्पर्श करने लगा ॥ ८-१०

महाराज युधिष्ठिरने अन्तमें विराट,  
 द्रुपद और दूसरे राजाओंके सङ्ग स्वयं  
 प्रस्थान किया । आगे निश्चल रहकर  
 पीछेसे चलती हुई अर्थात् जलसे युक्त  
 गङ्गाकी तरङ्गका वेग जिस प्रकारसे  
 दीख पड़ता है, धृष्टद्युम्नसे रक्षित पाण्ड  
 वोंकी भीम धनुष धारण करनेवाली सेना

भी उसी भांतिसे दीखने लगी । अनन्तर  
 बुद्धिमान् युधिष्ठिर धृतराष्ट्रपुत्रोंकी बुद्धिमें  
 भ्रम उत्पन्न करनेके निमित्त फिर दूसरी  
 भांति से अपनी सेना को सजाके चलने  
 लगे । ( ११—१३ )

महाधनुर्धारी द्रौपदी पुत्र, अभिम-  
 न्यु, नकुल, सहदेव, और सम्पूर्ण प्रभद्र-  
 क वीर योद्धा, दश हजार घोड़े दो  
 हजार हाथी, अयुत पैदल और पांच सौ  
 रथ, बलवान् सेना भीमसेनसे रक्षित हो  
 कर चले; इस प्रकारसे आदेश किया ।  
 बीचकी सेनामें विराट, जयत्सेन, और

वीर्यवन्तौ महात्मानौ गदाकार्मुकधारिणौ ॥ १७ ॥  
 अन्वयातां तदा मध्ये वासुदेवधनञ्जयौ ।  
 बभूवुरतिसंख्याः कृतप्रहरणा नराः ॥ १८ ॥  
 तेषां विंशतिसाहस्रा हयाः शूरैरधिष्ठिताः ।  
 पञ्च नागसहस्राणि रथवंशाश्च सर्वशः ॥ १९ ॥  
 पदातयश्च ये शूराः कार्मुकासिगदाधराः ।  
 सहस्रशोऽन्वयुः पश्चादग्रतश्च सहस्रशः ॥ २० ॥  
 युधिष्ठिरो यत्र सैन्ये स्वयमेव बलार्णवे ।  
 तत्र ते पृथिवीपाला भूयिष्ठं पर्यवस्थिताः ॥ २१ ॥  
 तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च ।  
 तथा रथसहस्राणि पदातीनां च भारत ॥ २२ ॥  
 चेकितानः स्वसैन्येन महता पार्थिवर्षभ ।  
 धृष्टकेतुश्च चेदीनां प्रणेता पार्थिवो ययौ ॥ २३ ॥  
 सात्यकिश्च महेष्वासो वृष्णीनां प्रवरो रथः ।  
 वृतः शतसहस्रेण रथानां प्रणुदन्वली ॥ २४ ॥  
 क्षत्रदेवब्रह्मदेवौ रथस्थौ पुरुषर्षभौ ।  
 जघनं पालयन्तौ च पृष्ठतोऽनुप्रजग्मतुः ॥ २५ ॥

गदा धनुष धारण करनेवाले, पराक्रमी,  
 महारथ महात्मा पाञ्चालनन्दन युधामन्यु  
 और उत्तमौजाको नियुक्त किया। उस  
 समयमें कृष्ण और अर्जुन भी मध्यभाग  
 में होकर चले। ( १४—१८ )

वहाँपर अत्यन्त ही उत्साहसे युक्त  
 कृतयुद्ध सैनिक पुरुष थे; उन लोगोंके  
 सङ्ग बीस हजार घोड़े, पाँच हजार हाथी,  
 और रथोंका समूह था और आगे  
 तथा पीछे धनुष, तरवार, गदा ग्रहण  
 करनेवाले पैदल वीर योद्धा थे, जिस  
 सेनाके समूहमें महाराज युधिष्ठिर स्वयं

विराजमान थे; उसमें अनेक राजा लोग  
 विद्यमान थे। ( १८—२१ )

हे भारत ! उसमें कई हजार हाथी; कई  
 अयुत घोड़े, कई हजार रथ और पैदल  
 योद्धा थे। अपनी बहुतसी सेनाके सहित  
 चेकितान और चेदिगणके स्वामी राजा  
 धृष्टकेतु चले। वृष्णि वंशियोंमें श्रेष्ठ महा-  
 धनुर्द्वारी प्रधान रथी बलशाली सात्यकी  
 सौ हजार रथोंसे युक्त होकर सेनाको  
 चलाया; और रथमें स्थित पुरुषश्रेष्ठ क्षत्रदेव  
 और ब्रह्मदेव पृष्ठ-रक्षा करते हुए सबके  
 पीछे चलने लगे। ( २१—२५ )



शकटापणवेशाश्च यानं युग्यं च सर्वशः ।  
 तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च ।  
 फल्गु सर्व कलत्रं च यकिश्चित्कृशदुर्बलम् ॥ २६ ॥  
 कोशसञ्चयवाहांश्च कोष्ठागारं तथैव च ।  
 गजानीकेन संगृह्य शनैः प्रायाद्युधिष्ठिरः ॥ २७ ॥  
 तमन्वयात्सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः ।  
 श्रेणिमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यपस्य वा विश्वः ॥ २८ ॥  
 रथा विंशतिसाहस्रा ये तेषामनुयायिनः ।  
 हयानां दशकोट्यश्च महतां किङ्किणीकिनाम् ॥ २९ ॥  
 गजा विंशतिसाहस्रा ईषादन्ताः प्रहारिणः ।  
 कुलीना भिन्नकरटा मेघा इव विसर्पिणः ॥ ३० ॥  
 षष्टिर्नागसहस्राणि दशाऽन्यानि च भारत ।  
 युधिष्ठिरस्य यान्यासन्युधि सेना महात्मनः ॥ ३१ ॥  
 क्षरन्त इव जीमूताः प्रभिन्नकरटामुखाः ।  
 राजानमन्वयुः पश्चाच्चलन्त इव पर्वताः ॥ ३२ ॥  
 एवं तस्य बलं भीमं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ।

इसके अतिरिक्त गाड़ी, छकडे, युद्धके  
 उपयुक्त सवारी और साधारण वाहन  
 सब पीछे चलने लगे । राजा युधिष्ठिर  
 सहस्रों हाथी, लक्षों घोड़े, सम्पूर्ण बालक,  
 स्त्री, कृशित और दुर्बल सेना, धनके  
 ढोनेवाले घोड़े, अन्नका कोष, हाथियोंकी  
 सेना और सब सामग्री संग्रह करके धीरे  
 धीरे चलने लगे । ( २६—२७ )

सत्य सङ्कल्प करनेवाले, युद्धदुर्मद  
 सौचित्ति, श्रेणिमान्, वसुदान, काशि-  
 राजपुत्र विश्व और उन लोगोंके अनुया-  
 यी बीस हजार रथ किङ्किणियुक्त दश  
 करोड़ घोड़े और सुन्दर श्वेत दातोंसे

युक्त, युद्ध करनेवाले, उत्तम कुलमें  
 उत्पन्न हुए, मतवारे काले बादलोंके  
 समान बीस हजार हाथी उनके पीछे  
 चलने लगे । इसके अतिरिक्त युधिष्ठिर-  
 के संग्रामके निमित्त स्थित सात अश्वौ-  
 हिणी सेनाके बीच घनघटाके समान  
 तथा जीमूतकदम्बके समान मदसावी  
 सत्तर हजार हाथी थे, वह भी सब  
 उनके पीछे चलनेवाले पर्वतोंके समान  
 चले । । ( २८—३२ )

हे भारत ! वह बुद्धिमान् युधिष्ठिरकी  
 महा भयङ्कर सेना इस प्रकारसे सज्जित  
 होकर चली; उसीके आसरेसे उन्होंने

यदाश्रित्याऽथ युयुधे धार्तराष्ट्रं सुयोधनम् ॥ ३३ ॥

ततोऽन्ये शतशः पश्चात्सहस्रायुतशो नराः ।

नर्दन्तः प्रययुस्तेषामनीकानि सहस्रशः ॥ ३४ ॥

तत्र भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च ।

न्यवादयन्त संहृष्टाः सहस्रायुतशो नराः ॥ ३५ ॥ [३५९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि

पाण्डवसेनानिर्याणे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

आदिपर्वतः श्लोकसंख्या [३२२१५]

समाप्तमुद्योगपर्व ।

अस्याऽनन्तरं भीष्मपर्व भविष्यति तस्याऽयमाद्यः श्लोकः—

जनमेजन उवाच-कथं युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः ।

पार्थिवाः सुमहात्मानो नानादेशसमागताः ॥ १ ॥

दुर्योधनके सङ्ग युद्ध किया था । ऊपर लिखे हुए हाथियोंके अतिरिक्त सैकड़ों सहस्रों तथा लक्षों मनुष्य और सहस्रों सेनाके पुरुष गर्जते हुए पीछे चलने लगे। हे महाराज ! वह सब सहस्र सहस्र तथा दश दश हजार सैनिक-पुरुष पूर्ण

रीतिसे आनन्दित और प्रसन्नचित्त होकर वहांपर सहस्रों भेरी और शंख आदि बाजों को बजाने लगे। (३३-३५) [ ३५९० ]  
संपूर्णश्लोकसंख्या [ ३२२१५ ]

उद्योगपर्वमें एकसौ छानव्वे अध्याय और अम्बोपाख्यानपर्व समाप्त ।

इति उद्योगपर्व समाप्तम् ।



# उद्योगपर्व की विषय सूची ।

अध्याय	पृष्ठ	अध्याय	पृष्ठ
१ विराटकी सभामें राजाओंके समीप युधिष्ठिरके राज्य प्राप्ति विषयमें श्रीकृष्णका प्रस्ताव	१	कृष्णका दुर्योधनको नारायणी सेना देनी और स्वयं अर्जुनका सारथी होना स्वीकार करना	२२
२ बलदेवजीकी वक्तृता	७	कृष्णके सहित अर्जुनका युधिष्ठिरके निकट आना ।	२५
३ सात्यकीकी वक्तृता	९	८ मद्राज शल्यका पाण्डवोंकी सहायताके लिये सेनाके सहित प्रस्थान करना तथा दुर्योधनके सत्कारसे प्रसन्न होना	२७
४ राजा द्रुपदकी वक्तृता और सब देशोंके राजाओं तथा कौरवोंके समीप दूत भेजनेका प्रस्ताव	१२	दुर्योधनकी ओरसे युद्ध करना स्वीकार करके शल्यका उपपुत्र नगरमें युधिष्ठिरको देखनेके लिये जाना	२८
५ राजा द्रुपदके वचनमें सम्मत होकर कृष्णका स्वजनोंके सहित द्वारकामें जाना	१५	शल्यका युधिष्ठिरके समीप कथा प्रसंगसे शत्रुविजय नाम इतिहास कहना	३२
विराटनगर और हस्तिनापुरमें सेनाके सहित देश देशके राजाओं का आना	१७	९ विश्वरूपकी तपश्चर्या, उसके पास इन्द्रका अप्सराओंको भेजना, इन्द्रके द्वारा वज्रसे विश्वरूपकी	
६ राजा द्रुपदका निज पुरोहित को पाण्डवोंका दूत बनाकर हस्तिनापुरमें भेजना	१८		
७ श्रीकृष्णके भवनमें अर्जुन और दुर्योधनका एकही समय जाना	२०		

अध्याय	पृष्ठ	अध्याय	पृष्ठ
मृत्यु, इन्द्रके आदेशसे तक्षाका विश्वरूप के सस्तकोंका तोड़ना, वृत्रासुरकी उत्पत्ति, उसके भयसे देव और ऋषियोंका चिन्ताग्रस्त होना ३२		१६ अग्निसे इन्द्रका पता मिलने पर देवोंके साथ बृहस्पतिका इन्द्रके पास जाना और नहुषको जीतनेके विषयमें कहना, कुबेर, यम आदि का इन्द्रके पास गमन और उनको इन्द्रसे वर मिलना । ६४	
१० वृत्रासुरके भयसे देव और ऋषियोंका विष्णुकी शरणमें जाना, विष्णुके वचनसे वृत्रके साथ सन्धि करना, वृत्रासुरका वध, ब्रह्महत्याके भयसे इन्द्रका छिपकर रहना ४०		१७ अगस्त्यशापसे नहुषका स्वर्गसे पतन ६९	
११ देव और ऋषियोंकी संमतिसे नहुषका इन्द्र होना, नहुषका यथेच्छ विषय सेवन और इन्द्राणीका बृहस्पतिकी शरणमें जाना ४६		१७ इन्द्रका फिर देवोंका राजा होना, शल्यका युधिष्ठिरको आश्वासन देना ७२	
१२ इन्द्राणीके विषयमें देव और नहुषकी बातचीत, बृहस्पतिके वचन इन्द्राणीका नहुषके पास जाना ५०		१९ सैन्यके साथ युयुधान आदिकों का युधिष्ठिर के पास, तथा भगदत्तादिका दुर्योधनके पास आगमन ७५	
१३ इन्द्राणीकी नहुषसे कालयाचना, अग्नि आदि देवोंका विष्णुके पास जाना, विष्णुके वचनसे अश्व मेधयज्ञ करना और उससे इन्द्रका ब्रह्महत्यासे मुक्त होना ५४		२० द्रुपदके भेजे हुए पुरोहितकी कौरवोंकी सभामें सन्धि विषयक वक्तृता ७९	
१४ उपश्रुति देवीकी सहायतासे इन्द्राणीका इन्द्रके पास जाकर नहुषका वृत्तान्त कथन करना ५७		२१ द्रुपदके पुरोहितके वचनमें भीष्मकी संमति ८२	
१५ इन्द्राणीका नहुषको ऋषियानसे अपने पास आनेका कथन, अग्निको इन्द्रके पास जानेके विषयमें बृहस्पतिका कथन ५९		द्रुपदके पुरोहितका वचन तथा भीष्मकी सम्मति सुनके कर्णकी अभिमानयुक्त वक्तृता और धृतराष्ट्रके द्वारा भीष्मकी प्रसन्नता तथा कर्णका तिरस्कार ८३	
		२२ धृतराष्ट्रकी शान्ति स्थापन करनेकी इच्छासे सञ्जयको पाण्डवोंके समीप भेजनेका प्रस्ताव ८४	

अध्याय	पृष्ठ	अध्याय	पृष्ठ
२३ धृतराष्ट्रकी आज्ञासे सञ्जयका उपप्लव्य नगरमें जाना	९१	ज्ञानकी कथा वर्णन	२१७
२४ पाण्डवोंके समीप सञ्जयका धृतराष्ट्रके कहे हुए वचन कहना	९५	४७-४८ पाण्डवोंके समीपसे लौटकर सञ्जयका कुरुसभामें जाना और धृतराष्ट्रके पूछनेपर अर्जुनका सन्देशा कहना	२५२
२५-२६ सञ्जयका वचन सुनके महाराज युधिष्ठिरका उत्तर देना	९६	४९ दुर्योधनको उपदेश करनेकी इच्छासे भीष्मके द्वारा कृष्णार्जुनका पूर्व वृत्तान्त वर्णन	२७२
२७ युधिष्ठिरका वचन सुनके सञ्जयका प्रत्युत्तर	१०३	कर्ण और भीष्मका वादविवाद	२७५
२८ सञ्जयका वचन सुनके युधिष्ठिरका निज धर्माधर्म व्यवहारके विषयमें श्रीकृष्णके ऊपर भार अर्पण करना	१०८	५० धृतराष्ट्रका सञ्जयसे पाण्डवोंके सहायकोंका सन्देशा पूछना और सञ्जयसे पाण्डवोंके सहाय करनेवाले राजाओंका पृथक् नाम कहना	२७८
२९ युधिष्ठिर और दुर्योधनके विषयमें श्रीकृष्णकी वक्तृता	११०	५१-५२ पाण्डवोंके बल तथा पराक्रमको कहते हुए धृतराष्ट्रका विलाप	२८५
३०-३१ युधिष्ठिरके सङ्ग वार्त्तालाप करके सञ्जयकी विदा होने के लिये प्रार्थना, युधिष्ठिरका कौरवोंके समीप सन्देशा भेजना	११८	५३-५४ धृतराष्ट्रका पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करनेका प्रस्ताव और सञ्जयके द्वारा धृतराष्ट्रकी निन्दा तथा अर्जुनकी प्रशंसा वा पाण्डवोंके विजयकी संभावना वर्णन	२८९
३२ सञ्जयका कुरुसभामें आना, सञ्जयके मुखसे युधिष्ठिरकी प्रशंसा और धृतराष्ट्रकी निन्दा	१२९	५५ अपना तथा भीष्म द्रोणादि योद्धाओंका पराक्रम वर्णन करके निज पक्षकी विजय संभावना दिखाते हुए दुर्योधनका धृतराष्ट्रको धीरज देना	३०२
३३-४० धृतराष्ट्रका प्रजागराव-स्थामें विदुरके मुखसे अनेक प्रकारकी नीति तथा धर्ममूलक कथा सुनना ( विदुरनीति )	१३४	५६ दुर्योधनके पूछनेसे सञ्जयके	
४१-४६ धृतराष्ट्रका सन्देश निवारण करनेके लिये सनत्सुजात ऋषिके द्वारा विस्तार पूर्वक तत्त्व-			

द्वारा युधिष्ठिरका युद्धविषयक अभिप्राय वर्णन	३११
सञ्जयके मुखसे अर्जुनके रथके घोड़े तथा ध्वजाका वर्णन	३१२
५७ धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जयका युधिष्ठिरकी सेनाके राजाओंका नाम तथा भागनिरूपण वर्णन	३१४
धृतराष्ट्रका वचन सुनके दुर्योधनकी वक्तृता	३१८
धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जयका युधिष्ठिरके विषयमें धृष्टद्युम्न की प्रशंसा वर्णन	३२०
५८ धृतराष्ट्रका दुर्योधनको युद्ध न करनेका उपदेश	३२२
धृतराष्ट्रका वचन सुनके दुर्योधनका उत्तर देना और निज पक्षके राजाओंके विषयमें धृतराष्ट्रका शोकयुक्त वचन	३२३
५९-६० धृतराष्ट्रके पूछनेपर संजयके द्वारा कृष्णार्जुनका माहात्म्य वर्णन तथा कृष्णार्जुनका सन्देशा सुनके दूसरे पक्षके बलाबलका निश्चय करके धृतराष्ट्रका दुर्योधनको सन्धि विषयक उपदेश करना	३२७
६१ दुर्योधनका क्रोधपूर्वक निज माहात्म्य सुनाकर धृतराष्ट्रको	

धीरज देना	३३३
६२ दुर्योधन को हर्षित करनेके लिये कर्णकी निज श्लाघायुक्त वक्तृता और पाण्डवोंके मारनेकी प्रतिज्ञा करना	३३७
भीष्मके द्वारा निज वचनका प्रतिवाद सुनके कर्णका उनके जीवित रहते पर्यन्त शस्त्रोंका परित्याग करके युद्धसे निवृत्त रहने का सङ्कल्प ।	३३९
६३ भीष्मसे दुर्योधनका वार्तालाप तथा युधिष्ठिरकी प्रशंसाके लिये धृतराष्ट्रके समीप विदुरका दम गुण और दान्त पुरुषके लक्षण वर्णन	३४०
६४ विदुरका दुर्योधनकी मूढता दिखाते हुए दो पक्षी व्याध तथा मूर्खकिरातोंका इतिहास कहके स्वजनोंके सङ्ग विरोध न करनेका उपदेश	३४३
६५ धृतराष्ट्रका दुर्योधनको पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करनेका उपदेश	३४७
६६ संजयके द्वारा अर्जुनके संदेशका वर्णन ।	३४९
६७ राजाओंके सभासे ऊठ जानेपर संजयके वचनसे व्यास और गांधारिका सभामें आगमन ।	३५२

६८ धृतराष्ट्रके समीप सञ्जयके द्वारा कृष्णका महात्म वर्णन	३५३
६९ धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जयके मुखसे ईश्वरज्ञानका उषाय वर्णन, धृतराष्ट्रका आक्षेप सुनके दुर्योधनके विषयमें गान्धारीका तिरस्कार	३५५
७०-७१ धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जयके द्वारा कृष्णके नाम और कर्मोंका वर्णन	३५९
७२ युधिष्ठिरका कृष्णके समीप विविध युक्ति प्रदर्शित करके कौरवोंके सङ्ग सन्धि करनेके लिये प्रस्ताव करना	३६३
७३ कृष्ण और युधिष्ठिरका उत्तर प्रत्युत्तर	३७७
७४ भीमसेनकी कृष्णके समीप कुरुसभामें सन्धि करनेके लिये अनुमति	३८३
७५ सन्धिकी इच्छा दूर करने और युद्धका उत्साह बढ़ानेके लिये भीमके विषयमें कौशलके अनुसार कृष्णकी वक्तृता	३८६
७६ कृष्णका वचन सुनके भीमसेनका क्रोध तथा उत्साहपूर्वक निज पराक्रम वर्णन	३९०
७७ कृष्णका भीमसे वचन ।	३९३
७८ अर्जुनका विविध युक्तिके	

सहित कृष्णसे कौरवोंके संग सन्धि करनेका उपदेश	३९६
७९ कृष्णका अर्जुनके वचनको अनुमोदन करना और हेतुवादके सहित युद्ध घटनाकी सम्भावना वर्णन	३९९
८० कृष्णके समीप नकुलका कार्यगतिके अनुसार सन्धि वा विग्रहका प्रस्ताव करनेके लिये उपदेश	४०२
८१ कृष्णसे सहदेवका युद्ध घटनाके उपयोगी प्रस्ताव करनेका अनुरोध करना और सहदेवके वचनमें सात्यकिकी संमति ।	४०५
८२ कृष्णके समीप द्रौपदीके विविध शोकपूरित वचन और कृष्णका द्रौपदीको धीरज देना	४०६
८३ कृष्णका हस्तिनापुरकी ओर चलना और युधिष्ठिर तथा अर्जुन प्रभृतिका कुन्तीके समीप कृष्णके द्वारा सन्देशा भेजना	४१३
मार्गमें चलते हुए देवर्षियोंके सङ्ग कृष्णकी वार्त्तालाप	४२१
८४ शालिभवन और वृकस्थलमें पुरवासियोंके द्वारा श्रीकृष्णका अतिथि सत्कार	४२३
८५-८६ धृतराष्ट्रके प्रस्तावसे वृकस्थल प्रभृति मार्गके स्थानमें	



अध्याय	पृष्ठ
दुर्योधनकी आज्ञासे सभा स्थान बनाना तथा कृष्णके अतिथिसत्कारके योग्य सब वस्तुओंको संग्रह करना, परन्तु उन सबका अनादर करके कृष्णका हस्तिनापुरमें जाना ४२७	
८७ धृतराष्ट्रको विदुरका हितोपदेश और कृष्णके समीप मणिरत्नादि उपहार देनेके लिये निषेध करना ४३३	
८८ कृष्णके सत्कार विषयमें दुर्योधनका प्रतिवाद और धृतराष्ट्रको भीष्मका सन्धि करनेके लिये उपदेश ४३५	
कृष्णको कैद करनेके विषयमें भीष्मके समीप दुर्योधनका प्रस्ताव और धृतराष्ट्रका दुर्योधनको उस विषयमें निषेध करना तथा दुर्योधनकी निन्दा करके भीष्मका सभासे बाहिर होना ४३७	
८९ कृष्णका हस्तिनापुरमें आना, कौरवोंके द्वारा कृष्णका सम्मान ४३९	
९० विदुरके गृहमें कृष्णका अतिथि सत्कार होना तथा कृष्णको देखके कुन्तीके शोकयुक्त वचन ४४३	
कृष्णका कुन्तीको धीरज देना ४५५	

अध्याय	पृष्ठ
९१ कृष्णका दुर्योधनके राजभवनमें जाना ४५८	
दुर्योधनका कृष्णको भोजनके निमित्त निमन्त्रण करना परन्तु कृष्णका अस्वीकृत होना ४५९	
९२ कृष्णके सन्धि प्रस्ताव निरर्थक तथा कौरवोंकी सभामें उनका प्रवेश करना अनुचित होनेके विषयमें कृष्णके सङ्ग विदुरका बार्तालाप ४६४	
९३ कृष्णका विदुरके समीप शान्ति स्थापित करनेकी उपधोगिता प्रदर्शित करना ४६९	
९४ कृष्णका कौरवोंकी सभामें जाना और वहां देवर्षियोंका आगमन ४७२	
९५ धृतराष्ट्रके समीप कृष्णका विविध युक्तिके सहित सन्धि स्थापित करनेके विषयमें प्रस्ताव करना ४७९	
९६ परशुरामके द्वारा राजा दम्भोद्भव और नर-नारायणकी कथा वर्णन ४८९	
९७ कण्व ऋषिके द्वारा नर-नारायणका माहात्म और मातलिका उपाख्यान वर्णन तथा दुर्योधनको सन्धि विषयक उपदेश ४९६	
९८ मातलि और नारदका	

अध्याय	पृष्ठ
समागम, नारदके साथ मातलिका वरुण लोकमें जाना, नारदके द्वारा वरुणलोकका वर्णन	४९९
९९ नारदके साथ मातलिका पातालमें जाना और नारदके द्वारा पातालवर्णन	५०३
१०० मातलि और नारदका हिरण्यपुरमें गमन और हिरण्यपुरका वर्णन	५०६
१०१ मातलि और नारदका गरुडके लोकमें गमन और गरुडलोकका वर्णन	५०८
१०२ मातलि और नारदका रसातलमें जाना और उस लोकका वर्णन	५१०
१०३ मातलि और नारदका भोगवती पुरीमें जाना । नागोंका नामनिर्देश, मातलिका चिकुरपुत्र सुमुखका स्वीकार करना	५१२
१०४ मातलि और आर्यक नागका परस्पर परिचय और सुमुखको लेकर मातलिका स्वर्गलोकमें जाना तथा इन्द्रका सुमुख को आयुःप्रदान करना	५१६
१०५ सुमुखको आयुः प्रदान सुनकर गरुडका क्रुद्ध होकर इन्द्रके पास जाना और विष्णुके द्वारा गरुडके गर्वका परिहार	५२०

अध्याय	पृष्ठ
१०६ दुर्योधनके समीप नारद-मुनिका अत्यंत हठ और क्रोध-अभिमानप्रभृति दोषोंसे रहित होनेके लिये उपदेश तथा गालवमुनिके इतिहासका वर्णन । गुरुदक्षिणा लेनेके लिये गालवका विश्वामित्रको आग्रह करना और क्रोधसे विश्वामित्रका गुरुदक्षिणा मांगना	५२६
१०७ गुरुदक्षिणा देनेमें असमर्थ होनेसे गालवका प्राण त्यागने के लिये उद्यत होना और गरुडका उसके पास आगमन	५३०
१०८ गरुडका गालवके पास पूर्व दिशाका वर्णन	५३३
१०९ गरुडके द्वारा दक्षिण दिशाका वर्णन	५३५
११० गरुडके द्वारा पश्चिम दिशाका वर्णन	५३८
१११ गरुडके द्वारा उत्तरदिशाका वर्णन	५४१
११२ गरुडके साथ गालवका पूर्वदिशाको जाना और गरुडके वेगसे भीत होना	५४५
११३ ऋषभपर्वतके ऊपर गरुड और गालवका जाना, शांडिली तपस्विनीसे वरप्राप्ति और गरुडको अच्छे पंख प्राप्त होना	५४८

११४ गरुडके वचनसे गालव  
का ययातिके पास जाना ५५२

११५ ययातिका गालवको गुरुद-  
क्षिणा की पूर्तिके लिये माधवी  
कन्याको देना और उस कन्याको  
लेकर गालवका हर्यश्चके पास  
जाना ५५५

११६ हर्यश्चसे एक ओर श्याम-  
कर्ण दोसौ अश्व लेकर एकपुत्र  
उत्पन्न करनेके लिये उसे  
माधवीको अर्पण करना, माधवीसे  
वसुमना का जन्म और पुनः माध-  
वीका कुमारी होना तथा माध-  
वीको साथ लेकर गालवका दिवो-  
दासके पास जाना ५५८

११७ दिवोदाससे दोसौ अश्व ले-  
ना और एक पुत्र उत्पन्न करनेके  
लिये माधवीको अर्पण करना  
और प्रतर्दन का जन्म तथा मा-  
धवीका कुमारी होकर गालव के  
पास आगमन ५६१

११८ गालवका माधवीको लेकर  
उशीनर के पास गमन, उशीनरसे  
दोसौ अश्व लेकर माधवीको  
देना और उससे शिबिकी उत्पत्ति ५६४

११९ गरुडका गालवके पास  
ऋचीककी कथा कहना, कन्याको  
लेकर गालव का विश्वामित्र के

पास आगमन, विश्वामित्रको  
कन्या अर्पण करना, उससे  
अष्टक की उत्पत्ति, और ययातिको  
पुनः कन्याको अर्पण करना ५६७

१२० माधवीका स्वयंवर, स्वयंवर  
में महावनको पति वरना, यया-  
तिका स्वर्गलोकमें गमन और वहां  
अभिमानसे तेजहीन होना ५७०

१२१ ययातिका स्वर्गसे पतन,  
दौहित्रोंका समागम, माधवीका  
ययातिके पास जाना ५७३

१२२ ययातिका दौहित्रोंके पु-  
ण्यप्रदानसे पुनः स्वर्गमें गमन ५७७

१२३ स्वर्गमें ययाति और पिता  
मह ब्रह्मदेवका संवाद ५८९

१२४ धृतराष्ट्रके अनुरोधसे कृष्ण  
का सन्धि स्थापित करनेके लिये  
दुर्योधनको आक्षेप करना ५८३

१२५ भीष्मका कृष्णके वचनको  
अनुमोदन करके दुर्योधनको उप-  
देश करना दुर्योधनको द्रोण,  
विदुर और धृतराष्ट्रका उपदेश । ५९२

१२६ भीष्म और द्रोणाचार्यके  
द्वारा पाण्डवोंका पराक्रम वर्णन  
और दुर्योधनको सन्धि विषयक  
उपदेश करना ५९६

१२७ दुर्योधनका कृष्णके समीप  
अपना निरपराधित्व प्रमाणित

करते हुए उत्तर देना और पाण्ड-  
वोंको राजांश न देनेका अभिप्राय  
प्रकाशित करना

५९९

१२८ कृष्णके क्रोधपूर्वक तिर-  
स्कार करनेपर दुर्योधनका मन्त्रि-  
योंके सहित सभामें बाहिर होना

६०२

दुर्योधनको संयत करनेके  
निमित्त कौरवोंको भगवान् कृष्ण-  
का उपदेश

६०७

१२९ धृतराष्ट्रकी आज्ञासे गान्धा-  
रीका सभामें आना और शान्ति  
स्थापन करनेकी इच्छासे दुर्योधन  
को बुलाना

६१०

दुर्योधनको गान्धारीका  
उपदेश

६१२

१३० गान्धारीके वचनका अना-  
दर करके दुर्योधनका सभासे  
बाहिर होके कृष्णके कैद करनेके  
लिये कर्ण और शकुनि प्रभृतिके  
सङ्ग पराशर्म करना तथा उनके  
अभिप्रायको जानके सात्यकिका  
कृतवर्माको सेना सज्जित करनेके  
लिये अनुमति देना

६१८

सात्यकिका कृष्णके निकट  
जाकर दुर्योधनका दुष्ट अभि-  
प्राय वर्णन करना और उस  
विषयमें धृतराष्ट्रसे कृष्णके वचन

६१९

विदुरके द्वारा फिर सभामें

बुलाकर दुर्योधनको धृतराष्ट्रका  
उपदेश

६२२

कृष्णका माहात्म कहके  
विदुरका दुर्योधनकी निन्दा  
करना

६२३

१३१ अट्टहासके सहित श्रीकृष्ण  
भगवानका कौरवोंकी सभामें  
विराटरूप दिखाना

६२५

ऋषियोंकी आज्ञासे श्रीकृष्णका  
कौरवोंकी सभासे बाहिर होना

६२८

१३२ कृष्णका कुन्तीके समीप  
जाना और कृष्णके समीप युधि-  
ष्ठिरादिके विषयमें कुन्तीका

उपदेश

६३१

१३३-१३६ कुन्तीका पाण्डवोंको  
उपदेश करनेके मिससे विदुला  
और संजयका इतिहास कहना

६३६

१३७ कुन्तीका कृष्णके सहारे  
पुत्रोंको सन्देशा भेजना

६६०

१३८-१३९ कृष्णके विषयमें  
कुन्तीके कहे हुए वचन दुर्योधनको  
त्रिदित कराके भीष्म और द्रोणा-  
चार्यका उसे युद्धसे निवृत्त होनेके  
लिये अनुरोध करना, राजभवन  
वा सेनाके बीच उत्पात तथा  
अशकुनोंको देखके कौरवोंके  
पराजयकी संभावना वर्णन

६६४

१४० धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जय

## अध्याय

पृष्ठ

के द्वारा कृष्ण और कर्णका  
संवाद वर्णन, कर्णके विषयमें  
कृष्णका पाण्डवपक्ष अवलम्बन  
करनेने लिये अनुरोध करना ६७२

१४१ कृष्णके समीप कर्णका  
पाण्डवपक्ष अवलम्बन करनेका  
विषय अस्वीकार करना और  
दुर्योधनके पक्षमें रहके युद्धमें देह  
त्यागनेका अभिप्राय प्रकाशित  
करना ६७५

१४२ कर्णके समीप कृष्णका  
युद्धके लिये दिन निश्चय करना ६८३

१४३ कृष्णके समीप कर्णका  
निज पक्षकी पराजय सूचक अश-  
कुन वर्णन करना ६८७

१४४ विदुरके निकट कुरु-पाण्ड-  
वोंकी सन्धि न होनी सुनके  
कुन्तीका कर्णको पाण्डवोंकी पक्ष  
अवलम्बन करनेकी इच्छासे  
उसका जन्म वृत्तान्त सुनाकर  
भाइयोंके सङ्ग मिलनेके लिये  
अनुरोध करना ६९३

१४५ कर्णका कुन्तीकी बात  
अस्वीकार करनी ६९८

१४६ कर्णका अर्जुनके अतिरिक्त  
कुन्तीके चारों पुत्रोंको न मारने-  
का प्रण करना ६९९

१४७-१५० युधिष्ठिरके पूछनेपर

## अध्याय

पृष्ठ

कृष्णका कौरवोंकी सभामें भीष्म  
द्रोण प्रभृतिने दुर्योधनको जिस  
प्रकार उपदेश किया था, उसे  
विस्तारपूर्वक वर्णन करना और  
दुर्योधनके दुष्ट अभिप्रायके अनु-  
सार भावी युद्धका विषय कहना ७०४

१५१-१५२ कृष्णका वचन  
सुनके युधिष्ठिरकी भीमादिको  
सेनाका विभाग करनेके लिये  
अनुमति और सेनापतिका निश्चय  
करके पाण्डवोंका सेनाके सहित  
कुरुक्षेत्रमें जाना ७२४

१५३ दुर्योधनकी आज्ञासे युद्धके  
निमित्त सज्जित हुए कौरव पक्षीय  
राजाओंकी शोभा वर्णन ७३५

१५४ कृष्ण और युधिष्ठिरका  
संवाद, युधिष्ठिरकी चिंता और  
अर्जुनका उसको शांत करना ७३९

१५५-१५६ दुर्योधनका भीष्मको  
सेनापति करना और भीष्मकी  
युद्ध विषयमें प्रतिज्ञा ७४२

१५७ युधिष्ठिरका सन्देह युक्त  
होकर कृष्णके समीप युद्ध विषय  
में सेना विभाग करनेके लिये  
कहना और कृष्णकी उस विषय  
में संमति तथा पाण्डवोंके समीप  
बलदेवजीका आना और युद्ध  
विषयमें निज संमति प्रकाशित

अध्याय	पृष्ठ	अध्याय	पृष्ठ
करके सरस्वती तीर्थमें जाना	७५१	भीष्मका कौरव पक्षीय रथी और	
१५८ युद्धमें सहायता करनेके		अतिरथियोंकी संख्या वर्णन	८०४
लिये सेनाके सहित रुक्मिराजका		१६८ कर्णको अर्द्धरथी कहनेपर	
पाण्डवोंके निकट आना और		भीष्मके सङ्ग कर्णका विवाद	८१६
वहाँसे लौटके दुर्योधनके समीप		१६९-१७२ भीष्मके द्वारा पाण्ड-	
जाना तथा वहाँसे विदा होकर		वपक्षीय रथी और अतिरथियोंकी	
निज नगरकी ओर प्रस्थान करना	७५६	संख्या वर्णन	८२२
१५९ धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्ज-		१७२ शिखण्डीके वध विषयमें	
यके द्वारा कुरु पाण्डवोंकी सेनाका		भीष्मकी सम्मति तथा दुर्योधनके	
निवास स्थान वर्णन और दूत		पूछनेपर अम्बोपाख्यान वर्णन	८३३
भेजनेके विषयमें दुर्योधनकी		१७३ भीष्मका शिखण्डीके पहले	
सलाह और वक्तव्य विषय कहके		स्त्री होनेका वृत्तान्त वर्णन कर-	
उलूकको पाण्डवोंके समीप भेजना	७६१	नेके विषयमें काशिराज पुत्री	
१६० उलूकका पाण्डवोंकी सभा-		अम्बादिका स्वयंवर तथा सब	
में जाना और दुर्योधनके कहे		राजाओंको पराजित करके निज	
हुए वचन कहके क्रोधी पाण्डवों		पराक्रमका वृत्तान्त कहना	८३४
का क्रोध बढ़ाना	७६४	१७४-१७५ अम्बाका शाल्वरा-	
१६१-१६३ पाण्डवोंका उलूकके		जके विषयमें पूर्व अनुराग प्रका-	
कहे हुए वचनका उत्तर देना		शित करनेपर उसे शाल्वके समीप	
और उलूकका पाण्डवोंकी सभासे		भेजनेके लिये भीष्मकी अनुमति,	
लौटकर दुर्योधनके निकट जाकर		अम्बाका शाल्वराजके निकट	
सब समाचार सुनाना	७८१	जाना और शाल्वके ग्रहण न	
१६४ पाण्डवोंका युद्धके निमित्त		करनेसे अम्बाका तपोवनमें जाना	
प्रस्थान करना और धृष्टद्युम्नके		तथा ऋषियोंके निकट तप करने	
द्वारा योद्धाओंके विषयमें प्रति-		की इच्छा करनी	८३७
द्विन्द्र निश्चय करके सैनिक पुरु-		१७६ अम्बाके विषयमें तपस्वि-	
षोंका विभाग करना	८०४	योंका विचार	८४४
१६५-१६७ दुर्योधनके पूछनेपर		तपस्वियों तथा अम्बाके निकट	

## अध्याय

पृष्ठ

राजर्षि होत्रवाहनका आना और निज दौहित्री अम्बाका परिचय पाके उसके दुःखको दूर करनेके विषयमें उपदेश करना

८४६

होत्रवाहनका परशुरामके सेवक अकृतव्रणके निकट निज-दौहित्रीका वृत्तान्त कहना

८४०

१७७ अकृतव्रणका अम्बाको परशुरामके द्वारा वैर समाप्त करानेके विषयमें उपदेश करना

८५२

१७८-१८२ तपस्त्रियोंके निकट परशुरामका आना और अम्बाके दुःखका वृत्तान्त सुनके भीष्मको शासन करनेका विषय अङ्गीकार करके कुरुक्षेत्रमें जाना

८५८

भीष्मको आह्वान करके परशुरामका उन्हें अम्बा ग्रहण करनेके विषयमें अनुरोध करना और उस विषयमें भीष्मकी असम्मति तथा तेईस दिन-पर्यन्त भीष्मके सङ्ग परशुरामका युद्ध वर्णन

८६३

१८३ भीष्मको सपनेमें वसुगणोंके द्वारा प्रस्थापनास्त्र चलानेकी विधि विदित होनी

८८७

१८४-१८५ दूसरे दिन प्रस्थापनास्त्र सन्धान करने पर देव तथा ऋषियोंके द्वारा भीष्मका निवारित होना और देवताओं तथा

## अध्याय

पृष्ठ

पितरोंके वचनसे निवारित होके दोनोंका युद्धसे निवृत्त होना

८८९

१८६ परशुरामके द्वारा भीष्मके सङ्ग वैर समाप्त न होनेपर अम्बाका फिर तपोवनमें जाकर उग्र तप करना और गङ्गाके शापसे आधे शरीरसे नदीरूप धारण करना

८९७

१८७ अम्बाको महादेवके समीप अभिलषित वर मिलना और अम्बाका जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके शरीर त्यागना ।

९०२

१८८ अम्बाका शिवके वरसे द्रुपदराजके गृहमें कन्यारूपसे उत्पन्न होके पुत्ररूपसे प्रसिद्ध होना

९०५

१८९ पुत्ररूपिणी द्रुपदकन्या शिखण्डिनीका दशार्ण देशके राजाकी कन्याके सङ्ग विवाह होना और निज कन्याके द्वारा उसका स्त्रीभाव प्रकाशित होनेपर दशार्णराजका द्रुपदके समीप दूत भेजना

९०७

१९०-१९१ महादेवके वरसे कन्याके पुरुषत्व लाभकी आशा रहनेपर द्रुपदके द्वारा देवताओंकी पूजा होनी और शिखण्डिनीका प्राण त्यागनेके लिये निर्जन वनमें जाना तथा स्थूणाकर्ण यक्षके

अध्याय

पृष्ठ

अध्याय

पृष्ठ

निकट पुरुषत्व लाभ करके निज नगरमें लौट आना और हिरण्यवर्माके समीप शिखण्डीका पुरुष रूपसे परिचय

९१०

१९२ स्थूणाकर्ण यक्षके स्थानमें कुवेरका आना और उसके पुरुषत्व परिवर्तन करनेका वृत्तान्त सुनके क्रुद्ध होकर शिखण्डीके जीवन समय पर्यन्त स्त्रीभावसे निवास करनेके लिये शाप देकर निज स्थानपर जाना

९२२

पहली प्रतिज्ञाके अनुसार शिखण्डीका पुरुषत्व प्रदान करनेके निमित्त स्थूणाकर्णके पास जाना और उसके शापका वृत्तान्त जानके वहांसे प्रसन्नतापूर्वक निज नगरमें लौट आना, शिखण्डीका स्त्रीपूर्वत्व वर्णन करनेके अनन्तर उसके वध विषयमें

भीष्मका अस्वीकार करना

९२२

१९३ दुर्योधनके पूछनेपर भीष्म और द्रोण प्रभृतिका पाण्डवों सेनाके विनाश विषयमें निज निज सामर्थ्यके अनुसार दिन निश्चय करना

९२६

१९४ युधिष्ठिरके पूछनेपर अर्जुनका कौरवी सेनाके विनाश विषयमें निज सामर्थ्यके अनुसार समय निर्णय करके युधिष्ठिरको धीरज देना

९२९

१९५ कौरवपक्षीय सेनाका श्रेणी क्रमके अनुसार युद्धके निमित्त प्रस्थान करके रणक्षेत्रमें शिविर स्थापित करना

९३२

१९६ पाण्डवोंकी सेनाका कौशलके अनुसार श्रेणी विभाग पूर्वक युद्धके निमित्त प्रस्थान करना

९३६

उद्योगपर्वकी विषयसूची

९४१

उद्योगपर्वकी विषयसूची समाप्त ।





INDIAN INSTITUTE OF TECHNOLOGY KANPUR  
REGISTRARS' OFFICE

GIRIRAJ KISHORE  
REGISTRAR AND  
SECRETARY, SENATE

No.R/IV-17/78-ITK/766  
Dated: March:9, 1978

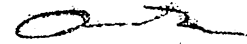
My dear Shri Nityanand,

Please find herewith Minutes, of the  
71st Meeting of the Senate held on February  
15, 1978 in L-6, as approved by the Chairman  
Senate, for your information.

Your comments, if any, may please be  
sent to the undersigned latest by 20th March,  
1978.

With regards,

Yours sincerely



(GIRIRAJ KISHORE)

Encl.:

Part I Minutes of the  
71st meeting of the Senate.

Shri Neeraj Nityanand  
Convenor  
Students' Senate